ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष ☎ 292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 7 जनवरी 2001 दयानन्दाब्द 177

श्री अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट, श्री सरदारी लाल व श्री कर्म चन्द माली सभा से निष्कासित

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की साधारण सभा दिनाक 17 12 2000 को एक प्रस्ताव के द्वारा श्री अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट श्री सरदारी लाल आय और श्री कमचन्द माली को सर्वसम्मति से छ छ वर्ष के लिए आय समाज तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की प्राथमिक सदस्यता स निष्कासित कर दिया गया है अब आय प्रतिनिधि सभा पजाब से इनका काइ सम्बन्ध नहीं है। हमे पता चला कि इन्होंने सभा से सम्बन्धित शिक्षा सस्थाओ को काइ परिपत्र भजा है जिसमें इन्होने लिखा है कि किसा तथाकथित अधिवेशन मे 24 12 2000 को इन्हे फिर चुन लिया गया हे। विचारणीय बात यह कि जो व्यक्ति 17 12 2000 को सभा से निकाले जा चुके हैं वह 24 12 2000 को सभा के अधिकारी केसे बन सकते है । इसलिए कोई भी सभा से सम्बन्धित शिक्षा सस्था इन सभा से निकाले हुए तीनों व्यक्तियों व इनके साथियो के किसी भी पत्र पर ध्यान न दे । सभी शिक्षा सस्थाओ का सम्बन्ध आय विद्या परिषद पजाब व आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर से है इसी पते पर सभी पत्र व्यवहार करे। हम आशा है कि किसी भी शिक्षा सस्था के अधिकारी व प्रिसीपल कोई अनुशासन हीनता नहीं करेगे क्योकि अनुशासन में रह कर ही आग बढा जा सकता है । इसी मे सभी की भलाई है । हम सब ने सगठित होकर कार्य करना है और विघटन कारियों को सभा से निकालना है ।

आज आय समाज म कइ ऐस लोग घुस आए हैं जिनका आय समाज से तथा महषि दयानन्द के सिद्धान्तो से दूर का भी वास्ता नहा है। जिन्होने सन्ध्या हवन करना तो दूर रहा गायत्री मन्त्र भी नहीं आता। ऐसे लोगो की केवल यही भावना हे कि हम येन केन प्रकारेण आर्य समाजो तथा सभा की शिक्षा सस्थाओ से आर्यो मे फूट डालकर धन बटोरे । एसे लोगो ने कई आर्य समाजो मे व शिक्षा सस्थाओ मे विघटन पैदा किया हुआ हे । पजाब की आर्य जनता अब ऐसे लोगों से सावधान हा गइ है अब इन लोगो को सभा से व आर्य समाजों से निकालने मे ही आय समाज की भलाई हे । आय समाज जैसी पवित्र सस्था में भ्रष्टाचारी लोगो का कोइ स्थान नहीं होना चाहिए । इसीलिए 17 12 2000 को सभा के साधारण अधिवेशन मे सारे पजाब की भिन्न भिन्न आर्य समाजो से आए हुए प्रतिनिधियो ने भ्रष्टाचारियो के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाइ ह जिसकी शुरुआत यह प्रस्ताव पारित करके कर दी गई है

साधारण सभा दिनाक 17 12 2000 म पारित प्रस्ताव सख्या 3 की सत्य प्रतिलिपि।

प्रस्ताव सख्या–3

डा के के पसरीचा ने बताया कि गत त्ना नम न भू पू महामन्त्री श्री अश्विनी कुमार शमा श्री सरदारी लाल आय और श्री कमचन्द माली ने आय प्रतिनिधि सभा पजाब का बहुत सा नुकसान किया है। सभा की बहुत सी भूमिया श्री अश्विनी कुमार शमा द्वारा बेची गई ओर उनका बहुत सा रुपया खुद खुर्द कर लिया गया ह गत वर्षो मे सभा की शिक्षा सस्थाओ स्कूलो व कालजो म कई अध्यापक प्रोफेसर एव प्रिसीपल रखे गए ह ओर उनकी नियुक्तियो म बहुत सा घोटाला किया गया हे। इसस सभा का छवि खराब हुई ह आर गरिमा को बहुत बडा धक्का लगा हे सभा प्रधान श्री प [illegible] लाल जी शर्मा और मेरे विरुद्ध बडे बडे षड्यन्त्र रच लगाए गए हैं। हम दोनो को बदनाम करने का इन्होने पूरा प्रयास किया ह म सभा की 1990 स लेकर 1999 तक बेची गई भूमियो की जानकारी लेना चाहता था ताकि सभा की बेची गइ भूमियो का पता लगा सके । परन्तु श्री अश्विनी कुमार शमा ने गैर अधिकार प्राप्त करते हुए श्री कर्मचन्द माली को एडमिस्टटर बना कर इस कार्यवाही को रोक दिया। मेने सभा कायालय मे आकर [illegible] म एम 1 खाली चैक और बहुत से खाली बाऊचर प्राप्त किए जिन पर [illegible] ओ पी पासी भू पू काषाध्यक्ष के हस्ताक्षर थ [illegible] फ्राड था। यदि मे ऐसा न करता तो श्री अश्विनी कुमार शमा किसी भी चेक पर अपन हस्ताक्षर करके जितना मर्जी उन सभा के खाते म से निकलवा सकता था । मरी इस कार्यवाही स सभा का धन बच गया है । इसके घिनोने कार्यो की जितनी भी निन्दा की जाए थोडी ह । मेरे विचार मे श्री अश्विनी कुमार शमा एडवोकेट श्री सरदारी लाल आय और श्री कमचन्द माली इन तीनो की सभा विरोधी कार्यवाहियो के कारण आय समाज तथा आय प्रतिनिधि सभा पजाब की प्राथमिक सदस्यता से छ छ वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया जाए सभा लोगो ने हाथ उठाकर इसका समर्थन किया और मेरा कहा कि अश्विनी कुमार शमा को सदा के लिए सभा से निकाल दिया जाए

सर्व सम्मति से यह निश्चय हुआ ह कि श्री अश्विनी कुमार शमा श्री सरदारी लाल आय तथा श्री कर्म चन्द माली को आर्य समाज तथा आय प्रतिनिधि सभा पजाब की प्राथमिक सदस्यता स छ छ वर्ष के लिए निकाला जाना स्वीकार है यह भी निश्चय हुआ कि 1990 स लेकर 1999 तक सभा की बेची गई भूमियो की जाच पडताल के लिए जाच कमीशन बनाया जाए और यह भी निश्चय हुआ कि इस जाच कमीशन की नियुक्ति का अधिकार सभा प्रधान को दिया जाता ह

के के पसरीचा सभा कार्यकर्ता प्रधान

यज्ञ विषयक कुछ मनोहारी वैदिक सूक्तियाँ

□ले० डॉ. भवानी लाल भारतीय, 8/423 [illegible], जोधपुर

आर्य समाज मदिरों के सभा कक्षो तथा यज्ञ शाल्लाओ मे वेद, उपनिषद शास्त्रों के मंत्रो तथा सूक्तियो को दीवारो पर अंकित कराने की सुन्दर प्रथा है । यहां आने वाले श्रोताओ तथा दर्शकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे इन सूक्तियो को पढे तथा उनसे प्रेरणा ग्रहण करें । विगत सप्ताह मुझे आर्य समाज जनकपुरी (सी-ब्लाक) की यज्ञशाला मे जब सप्ताह भर तक वैदिक प्रवचन करने का अवसर मिला तो वहा अंकित यज्ञ विषयक कुछ सुन्दर सूक्तियो पर मनन करने का अवसर भी मिला। यहा इन्ही सूक्तियो की चर्चा की जा रही है।

'यज्ञ' वैदिक शब्द है जिसका सहिताओ, ब्राह्मण ग्रन्थो, अरण्यको, उपनिषदो तथा परवर्ती धार्मिक साहित्य मे प्रचुर प्रयोग हुआ है । प्राय: इस शब्द को अग्निहोत्र अथवा होम का पर्याय मान लिया गया है किन्तु यदि इसके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ पर विचार करे तो इससे देवपूजा, सगतिकरण तथा दान आदि का भाव ग्रहण होता है । ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों मे यज्ञ का विस्तृत अर्थ करते हुए उसे लोकहित के लिए किए जाने वाले कार्यो की यज्ञ-सज्ञा मानी गई है। ऋग्वेद का आरम्भ ही यज्ञ के प्रयोग मे होता है जहा पर अग्नि को 'यज्ञ का देव' कहकर पुकारा गया ह । यजुर्वेद के प्रथम मत्र ''इषे त्वोर्ज्जे वा'' मे आर्य 'श्रेष्ठतमाय कर्मण' पद भी यज्ञ के ही वाचक है ।

इसी मत्र के व्याख्यानकार, शतपथ ब्राह्मण के रचियता महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा 'यज्ञो वे श्रेष्ठतम कम' (शतपथ 1/8/115) यज्ञ सर्व श्रेष्ट कर्म है क्योकि यह लोकोपकार प्राणिमात्र के हित, जलवायु के शोधन, पूज्य पुरुषो के सत्कार समाज मे एक सूत्रता लाने तथा दान की प्रवृत्ति को बढ़ाने के लिए किया जाता है । ताण्डव ब्राह्मण (16/15/5) मे यज्ञ करवाने का फल बताते हुए कहा गया है-स्वर्गकामो यजेत् स्वर्ग अर्थात् विशिष्ट सुख की कामना करने वाले को यज्ञ करवाना चाहिए। पारवर्ती काल में 'स्वर्ग' का अर्थ अत्यन्त सीमित कर दिया गया और उसे किसी लोक विशेष के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा । जहां पहुंच कर मनुष्य नाना प्रकार के दु:खों, द्वन्दो तथा ताप सन्ताप से त्राण पाकर अलौकिक सुख प्राप्त करता है । ऋषि दयानन्द के अनुसार किसी आकाशस्थ लोक का नाम स्वर्ग नहीं है । किन्तु इसी संसार में रहकर धर्मपूर्वक आचरण करने से जिस अपूर्व सुख की प्राप्ति होती है, वही स्वर्ग कहलाता है यज्ञकर्त्ता को जो सुख मिलता है वह आत्मिक सन्तोष का सुख है क्योंकि उसने परहित और लोकोपकार के लिए जो त्याग किया है, उससे उसे अनन्य सुख और सन्तोष मिलता है, यही स्वर्ग प्राप्त करना है ।

ऋग्वेद (21/26/2) ने प्रत्येक पुरुषार्थी व्यक्ति को यज्ञ करने का आदेश दिया और कहा ''यज्ञस्व वीर।'' हे वीर पुरुष तू यज्ञ कर और अपने पुरुषार्थ के द्वारा लोक तथा समाज के कल्याण के लिए की जाने वाली क्रियाओ को पूरा कर ।

यज्ञ के लिए घर मे वेदी (हवन कुण्ड) तैयार करना तथा उसमें नित्य प्रात: साय अग्निहोत्र करना गृहस्थ का आवश्यक दैनंदिन कर्त्तव्य माना गया है । इस अग्निहोत्र को भगवान मनु ने देवयज्ञ कह कर अभिहित किया है । प्राचीन काल में आर्य गृहस्थो के घरो में पृथक् यज्ञशाला रहती थी, इसे ही देवायतन (देव मदिर) कहा जाता था । ऋषियो के आश्रमो मे भी पूर्णतया लताओ से आच्छादित सुन्दर यज्ञ शालाए होती थी । यज्ञ के उपरान्त इन्ही यज्ञ शालाओ मे बैठ कर कर आचार्य गण शिष्यो की शकाओ का समाधान करते थे । याज्ञिक गृहस्थ भी अग्निहोत्र पूरा कर इन्हीं शालाओ मे वेदादि शास्त्रो का स्वाध्याय करते थे । ऋग्वेद के मंत्र (1/100/4) मे इस यज्ञ वेदी को भव्य रूप से सजाने के लिए कहा गया है अरं कृण्वन्तु वेदिम् । यज्ञ का स्थान भव्य और सुन्दर हो । यहां लताएं तथा पुष्प-पत्रो से सजावट की जाए साथ ही यज्ञ वेदी को भी आटा, हल्दी, रोली, गुलाल आदि से सज्जित किया जाए । यज्ञशाला मे प्रेरणादायी वेदमंत्र तथा सूक्तियां अंकित हों, यज्ञ पात्र, आसन तथा अन्य उपकरण स्वच्छ, शोभन तथा चित्ताकर्षक होने चाहिएं । यज्ञ के समय का वातावरण अत्यन्त शान्त, तथा मन को एकाग्र करने मे सहायक होना चाहिए । यज्ञशाला का उपयोग यज्ञ, स्वाध्याय से भिन्न अन्य लौकिक कामों के लिए नहीं किया जाए । यज्ञ की गरिमा और महत्व की दृष्टि से यज्ञस्थल की पवित्रता, शोभा और भव्यता को सुरक्षित रखना आवश्यक है ।

ऋग्वेद मे यज्ञ विषयक् एक अन्य सुन्दर सूक्ति आती है-यजध्वं हविषा तना गिरा (क्र, 2/2/1)

हे मनुष्यो ! तुम अपने धन शरीर तथा वाणी से यज्ञ किया करो। जैसा कि हम कह चुके है जितने लोकोपकार के काम हैं, वे सभी यज्ञ कहलाते हैं । स्वार्थ का परित्याग कर समष्टि के हित के लिए, जो कर्म हम करते हैं वे यज्ञ की श्रेणी मे आते हैं । यज्ञ मे हम अपनी हवि अर्पित करते हैं । जो स्थालीपाक (पक्वान्न मोहन भोग तथा अन्य मिष्ट पदार्थ) यज्ञ के लिए तैयार किया जाता है वह हवि कहलाता है। ऋषि ने 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' की टेक वाले मत्रो का अर्थ करते समय 'हविषा' के अनेक अर्थ किए हे । ईश्वर की प्रेम पूर्वक भक्ति करना, अपनी प्रिय वस्तु को उसके लिए समर्पित करना आदि हवि दान के ही रूप है । शरीर मे जो प्राणियो की सेवा की जाती है, वह भी यज्ञ संज्ञा है । उपदेश देना, कथा प्रवचन आदि के द्वारा धर्मोपदेश करना वाचिक यज्ञ है । इस प्रकार शरीर, धन, तथा वाणी तीनो से यज्ञ करना मनुष्य के लिए अभीष्ट माना गया है ।

ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के आठवे सूक्त के आठवे मत्र मे एक सूक्ति आती है-'**उर्ध्व कृण्वन्त्वध्वरस्थ केतुम्**' अर्थात् यज्ञ की ध्वजा ऊंची रखो ।

उपर्युक्त मंत्र में यज्ञ के लिए अध्वर शब्द का प्रयोग हुआ है । ध्वर नाम हिंसा का है, तत् प्रतिषेध: जहां हिंसा न हो, ऐसा कार्य अच्छा कहलाता है । वैदिक यज्ञ हिंसा रहित होते थे, यह इस पद से स्पष्ट ज्ञात होता है । यज्ञ लोकोपकारी कृत्य है, इसलिए यज्ञ करते समय हमारी भावनाऐं पवित्र रहें, हमारे विचार उदात्त हों, हम पूर्ण ऊर्ध्वस्वित होकर (High Spirited) यज्ञ का सम्पादन करें। अनमने होकर निराशा युक्त मन से किया गया यज्ञ इष्ट फल प्रदान नहीं करता, अत: मंत्र कहता है कि यज्ञ की ध्वजा को ऊंचा रखो। भावना प्रबल होकर, पूर्ण ऊर्जा तथा उत्साह से यज्ञ करो ।

यज्ञकर्त्ता यशस्वी होता है, संसार मे उसकी ख्याति और कीर्ति बढ़ती है, इस भाव का द्योतन ऋग्वेद की इस सूक्ति में किया गया है-जुहोत प्र च तिष्ठत (ऋ. 1/15/1)

यज्ञ करो और यश पाओ । यह तो सुविदित बात है कि मनुष्य का यश परोपकार के लिए किए जाने वाले कार्यों से ही बढ़ता है । क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति तो साधारण से साधारण मनुष्य भी कर लेता है किन्तु समाज मे प्रशंसा और श्लाघा का पात्र वही बनता है जो यज्ञमय जीवन जीता है । गीता के अनुसार यज्ञार्थ किए जाने वाले कृत्य ही हमे श्रेयमार्ग पर ले जाते हैं, शेष कर्म तो लोक में बंधन के ही कारण बनते है । पुरातन इतिहास ग्रन्थो मे सैकडो अश्वमेधादि यज्ञो के करने वाले यशस्वी, कीर्तिमान तथा परहितपरायण आर्य सम्राटो का उल्लेख मिलता है अत: यज्ञ करने से यश प्राप्त करना सहज और स्वाभाविक है ।

ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र (10/10/2) प्रत्येक कार्य के आरम्भ मे यज्ञ करने का आदेश देता है-

प्राञ्चं यज्ञं प्रणतया सखाय:

इसका भावार्थ है-हे मित्रो, प्रत्येक कार्य के आरम्भ में यज्ञ करो। इसी वैदिक आदेश का पालन अद्यपर्यन्त वैदिक सस्कृति को मानने वाले आर्य समुदाय मे होता आया है । मनुष्य की शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति मे सहायक सोलह संस्कार यज्ञ की विधि को सम्पन्न कर पूरे किए जाते हैं । गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कारों, वर्षगाठ, सगाई व्यापार का आरम्भ आदि अन्य लौकिक शुभ कृत्यों के प्रसंगानुकूल मंत्रो का चयन विद्वानों ने किया है । (शेष पृष्ठ 4 पर)

पंजाब के आर्य बन्धुओं संगठित हो जाओ

मैने आर्य मर्यादा के गत अंक में पंजाब के आर्य बन्धुओं से निवेदन किया था कि वह अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट और उसके साथियों से सावधान हो जाएं । मैं गत कई वर्ष से अपने समाचार पत्र धर्म-मर्यादा में लिखता रहा कि मुझे अश्विनी कुमार शर्मा ने कहा है कि मैंने आर्य समाज की जड़ों में तेल डालना है पंजाब में आर्य समाज को जड़ से उखाड़ना है। मैंने इसकी घिनौनी करतूतों से सावधान रहने के लिए बार-बार लिखा परन्तु मेरी कोई नहीं सुन रहा था। स्वर्गीय श्री वीरेन्द्र जी से मेरे बहुत अच्छे सम्बन्ध थे मैं आर्य समाज ऋषिकुञ्ज पक्का बाग का प्रधान था और वह इसी आर्य समाज के वर्षों सदस्य रहे । इसी आर्य समाज से वह प्रतिनिधि बन कर सभा में प्रधान बनते रहे । जब हमारे बार-बार मना करने पर और समझाने पर भी वह नहीं माने और अश्विनी कुमार को उन्होने सभा का मन्त्री बना दिया तो मुझे इससे बहुत दुःख हुआ । मैंने उन्हे बार-बार समझाया था कि यह व्यक्ति सभा पर कब्जा करने के लिए और आर्य समाज की जड़ों में तेल डालने के लिए आया है आप ऐसे निकृष्ट व्यक्ति को सभा मन्त्री ना बनाएं यह आपको भी बदनाम कर देगा और आपके काबू से भी बाहिर हो जाएगा, इसकी भावना शुद्ध नहीं है । यह स्वयं कहता कि मैंने सभा पर कब्जा करना है। मैंने बहुत सिर पटका परन्तु श्री वीरेन्द्र जी ने मेरी एक न सुनी । इसलिए मैने फिर भी अश्विनी कुमार के विरुद्ध आवाज उठाई । मेरा एक ही उद्देश्य था कि मैंने इससे आर्य समाज को व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को बचाना है । इसलिए मै श्री वीरेन्द्र जी को भी समझाता रहा। मेरे समझाने पर तो श्री वीरेन्द्र जी नहीं माने थे परन्तु बाद में वह भी इससे बहुत दुःखी हो गए थे और कई लोगों ने मुझे बताया कि वह अपने अन्तिम समय अश्विनी कुमार की करतूतो से बहुत दुःखी और परेशान थे । वह बहुत चिन्तित रहते थे और इसका परिणाम हमारे सामने है क्योंकि वह इसे सभा से निकाल नहीं सकते थे । श्री वीरेन्द्र जी को भी बहुत देर से इसके बारे मे पता चला था परन्तु जब उन्हें पता चला और वह कुछ करना चाहते थे तो जाने मे वह हमसे सदा के लिए बिछुड गए। गत दिनों सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा और श्री डा के के पसरीचा ने निश्चय किया कि हमने अश्विनी कुमार शर्मा से सभा को बचाना है मुझे भी सन्देश मिला कि मैं भी इसमे उनका सहयोग दूं । मेरा तो उद्देश्य ही अश्विनी कुमार शर्मा से सभा को छुडाना था इसलिए मैंने और मेरे साथियो ने इन दोनों सभा अधिकारियो को पूरा-पूरा साथ देने का आश्वासन दिया हम सभी तब से इनके साथ चल रहे है और चलते रहेगे।

पूज्य स्वामी ओमानन्द जो महाराज प्रधान सार्वदेशिक सभा ने आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की दोनो सभाओ को भग करके एक तदर्थ समिति बना दी थी । जिसका पंजाब की आर्य जनता ने बहुत स्वागत किया परन्तु अश्विनी कुमार शर्मा और इनके कुछ साथियो ने फिर भी सभा विरोधी गतिविधिया नहीं छोड़ीं । इसने तदर्थ समिति के रास्ते मे तरह-तरह के रोड़े अटकाए और पूज्य स्वामी ओमानन्द जी के विरुद्ध भी बहुत जहर उगला और सार्वदेशिक सभा के आदेश को मानने से भी इन्कार कर दिया, इसके साथ ही झूठा पत्र स्वामी जी के नाम से तदर्थ समिति को निरस्त करने का पेश कर दिया। यह इतना बौखला गया है कि कहीं तो सार्वदेशिक सभा को मानता है और कहीं नहीं मानता । सभा के विरुद्ध कोर्ट में किए गए मुकद्दमें में भी इसने ऐसा ही किया हुआ है । अब यह फिर कहता है कि मैं सार्वदेशिक सभा को नहीं मानता दयानन्द मठ दीना नगर को मानता हूं । कल को यह किस को मानेगा किसी को कुछ पता नहीं ।

इस लिए 17-12-2000 को सभ कार्यालय में जो चुनाव हुआ है उसमे जो महानुभाव यहां आए थे उन्हें पता है कि आर्य जनता में भी अश्विनी कुमार के विरुद्ध कितना रोष है । मुझे दुःख तो इस बात का है कि आर्य समाज के कई व्यक्ति जो अश्विनी कुमार की असलियत को अच्छी प्रकार जानते है वह भी इसके साथ लग कर पाप के भागी बन रहे है । ऐसे लोगों को आर्य समाज का इतिहास कभी क्षमा नही करेगा, जो जान-बूझ कर आर्य समाज के शत्रुओ का साथ दे रहे है। आज कई लोगों पर प्रश्न चिन्ह लगे हुए हैं कि आखिर वह कौन सी बात है जिससे यह लोग अश्विनी कुमार का साथ दे रहे है ?

मेरी पजाब के आर्य बन्धुओं से प्रार्थना है कि वह सभा को व आर्य समाज को बचाने के लिए संगठित हो जाए । मै भी और मेरे साथी भी अपने सब मत-भेद भुला कर सभा के प्रधान माननीय प. हरबंस लाल जी शर्मा और कार्यकर्त्ता प्रधान डाक्टर के के पसरीचा के साथ मिल कर आर्य समाज और सभा की उन्नति के लिए कार्य कर रहे हैं। मेरे जिम्मे जो भी काम लगाया गया मेने किया और आगे भी करता रहूंगा। मेरे जीवन का तो एक ही उद्देश्य है कि मेने आर्य समाज को भ्रष्टाचारियो से बचाना है । मे एक पुराना आर्य समाजी हू । मेने आर्य समाज का स्वर्ण युग देखा है और कुछ सुना ह । आर्य समाज का सारी दुनिया में एक विशेष स्थान बना रहा ह और वह अब भी रहना चाहिए। इसलिए आर्य बन्धुओ आप सब भी निश्चय करो कि हम सब ने मिल कर फिर आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के नाम को आर्य समाज के नाम को ऊंचा करना है । इसकी खोई हुई गरिमा को वापिस लाना है । इसमे घुसे विघटनकारी घुसपैठियो को आर्य समाज से निकालना है । जैसा आर्य समाज का भूतकाल था वैसा ही वर्तमान काल बनाना है और भविष्य को भी सम्भालना है इसके लिए सभी आर्य बन्धुओं को सचेत रहना पड़ेगा।

आज आर्य समाज को प्रबुद्ध और जागरूक लोगों की आवश्यकता है जिस आर्य समाज के पास वेदो का ज्ञान हो, उपनिषद, दर्शन शास्त्र और सत्यार्थ प्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका जैसे महान ग्रन्थ हो, जिसके पास सभी तरह के ज्ञान का भण्डार हो आज वही आर्य समाज पिछड रहा है, क्योकि इसमे कई गल्त तत्व आ गए है, स्वार्थी लोग आ गए है। कभी वह समय था जब लोगो ने सैकडों बीघे भूमिया सभा को और आर्य समाज को दान दी थी कहा अब यह समय आ गया ह कि कई लोग उस दान मे दी गई भूमि को भी बेच कर खा रहे ह और आर्य समाज की सम्पत्ति को लूट रहे है । हमने इस सम्पत्ति की रक्षा करनी है बुजुर्गों की धरोहर को बचाना है, दोषियो को दण्ड दिलवाना है।

इसलिए आर्य युवको, आर्य नेताओ, आर्य विद्वानो, महात्माओ और सन्यासियो सचेत हो जाओ । आज समय की यही पुकार है आर्य समाज को बचाना है तो सभी को सगठित होना पडेगा । एक दूसरे को सहयोग देना होगा । पता नहीं कितने ओर लोग अश्विनी कुमार की तरह आर्य समाज की जडो मे तेल डाल रहे ह उन सब को ढूंढ-ढूढ कर आर्य समाज से निकालना होगा । भ्रष्टाचारियो का आर्य समाज मे कोई स्थान नही होना चाहिए । सभा के वर्तमान अधिकारी आप सब का सहयोग चाहते है आप बुद्धिमान है अपनी बुद्धि से विचार कर देखे कि आप आर्य समाज की कितनी सेवा कर रहे है । कहीं ऐसा तो न हो कि आपके भोलेपन का लाभ उठाकर कोई आपके सहयोग से अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा हो ? आर्यो ? उठो जागो और आर्य समाज को बचाओ नही तो भ्रष्टाचारी व स्वार्थी लोग आर्य समाज की गरिमा को समाप्त कर देगे और आर्य समाज व सभा की सम्पत्तियों को खा जाएगे ।

—ऋषिपाल सिंह एडवोकेट
सभा उपप्रधान

सेहत की बातें

—: विशेषकर महिलाओं के लिए :—

—श्रीमती मधुमालती

* एक स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन 5 से 15 ग्राम नमक का सेवन करना चाहिए ।
* एक सर्वेक्षण के अनुसार खाना पकाने वाली महिलायें धुएं के साथ विषैले तत्व जैसे बेजोपाइरीन आदि अपने शरीर में खींच लेती हैं, जो कैंसर जैसे घातक रोग उत्पन्न कर देता है ।
* दातो के लिए दही मुख्य रूप से लाभदायक है ।
* धूएं के साथ निकलने वाली कार्बनमोनोआक्साइड के प्रभाव से महिलाये रक्तल्पता की शिकार हो जाती हैं ।
* अधिक नमक के सेवन से किडनी पर जोर पड़ता है ।
* ड्राइक्लीन किए गए कपडो से जहरीली गैस निकलती है, अत: अलमारी या बन्द स्थान मे रखने से पहले उन्हे खुली हवा में काफी देर तक रखना चाहिए ।
* एक रिपोर्ट के अनुसार चुम्बन से न केवल पायरिया या संक्रमण हो सकता है, वरन् साइटोमेगालो जैसे भयंकर वायरस का संक्रमण भी हो सकता है ।
* गर्भवती तथा दूध पिलाने वाली स्त्री को ज्यादा मात्रा में पानी पीना चाहिए ।
* भोजन के तुरन्त बाद पानी पीने से शरीर पर मोटापा आता है ।
* उच्च रक्तचाप के लिए दी जाने वाली सभी दवायें मां के दूध में भी चली जाती हैं, अत: इन महिलाओं को स्तनपान नहीं कराना चाहिए ।
* तम्बाकू व सिगरेट के धूएं में कार्बनमोनोऑक्साइड, निकोटीन, हाइड्रोजन सायनाइड, डाईबेंजोपायरीन जैसे कितने ही खतरनाक रसायन रहते हैं जो मुंह, गले तथा फेफड़ों के कैन्सर को निमन्त्रण देते हैं ।
* जीरा और मिश्री बराबर मात्रा मे पीसकर करीब एक चम्मच प्रतिदिन सुबह-शाम खाने से दूध पिलाने वाली माताओं की दूध की मात्रा बढ़ती है ।
* भिण्डी के सेवन से दूध मे बढ़ौत्तरी होती है ।
* हल्दी एव गुड को घी में पीसकर दिन में दो बार देने से प्रसूता स्त्रियो के दूध में वृद्धि होती है ।
* दूध बढाने के लिए मूंगफली वरदान का काम करती है ।
* सहजन के फूल का सेवन भी दुग्धवर्द्धक होता है ।
* सोयाबीन को गरीबो की कामधेनु माना जाता है । सोयाबीन एक उत्तम और सस्ता दुग्धवर्धक खाद्य है ।
* दूध पिलाने वाली माताओ को गुड़हल पुष्प के सेवन की सलाह दी जाती है ।
* पपीते के हलवा के नियमित सेवन से दूध बढ़ता है ।
* मेथी दाना पीसकर उसकी गोली (दो तोला) बनाकर दिन मे दो बार खाने से स्त्रियो का दूध बढ़ता है ।

(पृष्ठ 2 का शेष)

यज्ञ का कर्म वैयक्तिक भी है और सामूहिक भी है। नित्य करणीय पञ्च यज्ञ प्रत्येक को करने चाहिएं जबकि बृहद्यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, लोकोपकार के लिए किए जाने वाले श्रौत यज्ञ सामूहिक रूप से, मिलकर किए जाते हैं । इन बड़े यज्ञों में एकाधिकार लोगो का सहयोग अपेक्षित होता है । इसी प्रकार प्रचुर मात्रा में उपकरण साधन और धन जुटाना पड़ता है। अत: वेद कहता है–

सम्यञ्चो अग्निं संपर्यत ।

तुम सब मिलकर अग्नि की अराधना करो-यज्ञ करो । परोपकारार्थ किए जाने वाले यज्ञों में सभी वर्गों तथा समूहों का सहयोग अपेक्षित होता है । अन्यत्र कहा गया है-पञ्चजनाःमम होत्रं जुषध्वम्, ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण के लोग तथा आदिवासी, वनवासी, गिरिजन लोक भी मिल कर परमात्मा के लिए यज्ञ किया करें।

यजुर्वेद (23/62) में यज्ञ को निखिल भुवनों लोक-लोकान्तरों की नाभि (केन्द्र स्थल) बताया गया है । अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि: संसार की रचना स्थिति तथा प्रलय में परमात्मा की शक्ति ही कारण बनती है। परमात्मा का एक नाम यज्ञ भी है, वही यजनीय है, पूजनीय है, वन्दनीय है तथा हमारा आराध्य है । यज्ञ नाम वाले परमात्मा का यजन, पूजन और भजन भी यज्ञ के द्वारा ही होता है, यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा: (यजु 31।) निखिल विश्व में जो कुछ श्रेष्ठ, वरणीय तथा उदात्त कर्म हो रहे हैं उनकी संज्ञा यज्ञ ही है । इस न्याय से यज्ञ को अखिल भुवन की नाभि कहना सर्वथा उचित है ।

यज्ञ के करने में जहां यजनकर्त्ता की इच्छा, शक्ति तथा साधन अपेक्षित होते हैं वहां प्रभु की कृपा भी आवश्यक है । संसार में जो कुछ भव्य, उदात्त, मंगल और कल्याण के कृत्य हो रहे हैं उनके पीछे प्रभु का आशीर्वाद ही दिखाई देता है अथर्ववेद का निम्न मंत्र इसी भाव का द्योतक है-इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा (2/35/5) यह मेरा जीवन यज्ञ प्रभु ने ही विस्तृत किया है ।

जीवन में हमें जो उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं, जो श्रेय, काम्य और इष्ट हमें मिला है क्या उसमें हमारा व्यक्तिगत पुरुषार्थ ही कारण बना था नहीं ? यह तो परमपिता की असीम कृपा है , उस विश्व कर्मा-संसार के रचयिता, दिव्य कर्मों के कर्त्ता परमात्मा का प्रसाद है जो हम अपने जीवन में यत्किंचित् ख्याति, समृद्धि तथा सफलता प्राप्त कर सके हैं । हमारा जीवन यज्ञ-आरम्भ से लेकर अन्त पर्यन्त पूर्ण रहा और उसमे हमें सफलता मिलती रही, यह विश्वकर्मा की महती कृपा के बिना सम्भव नहीं था । अत: अपनी सफलताओं और उपलब्धियों पर गर्व न कर हमें परमात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए जिसने हमारे जीवन यज्ञ को सफल बनाया।

यज्ञ के पीछे निहित दर्शन तथा उसे तत्वार्थ को न समझकर लोगों ने उसे स्थूल तथा जटिल क्रिया-जाल ही बताया किन्तु यज्ञ भावना से अपरिचित व्यक्तियों ने यज्ञ में सूक्ष्म रूप से निहित लोकसंग्रह की भावना से अनभिज्ञता दिखाई। अथर्ववेद की यह सूक्ति (10/4/2) जब कहती है-'ईजाना: स्वर्गं यन्तिलोकम्' अर्थात् यज्ञकर्त्ता स्वर्ग को प्राप्त करता है तो उसका भाव किसी स्थान विशेष में यज्ञकर्त्ता को पहुंचाने का नहीं है। वस्तुत: यज्ञ कर्त्ता जब यज्ञ कार्य को पूरा कर लेता है तो उसे एक विशिष्ट तृप्ति का अनुभव होता है । वह सोचता है कि लोकहित के इस कृत्य को पूरा कर मैं मन की शांति और सुख को प्राप्त कर सका हूं साथ ही इसके द्वारा परहित और परोपकार की भावना का भी प्रसार हुआ है । यज्ञ बहुजन सुखाय बहुजन हिताय ही नहीं है उसका लक्ष्य है सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय व्यक्ति और समष्टि दोनों की सुख-समृद्धि यज्ञ में निहित है।

आर्य समाज जवाहर नगर पलवल का वार्षिकोत्सव सम्पन्न

ईश कृपा से आर्य समाज जवाहर नगर, पलवल जिला फरीदाबाद का 45वा वार्षिकोत्सव पलवल क्षेत्र के वयोवृद्ध प्रतिष्ठित आर्य नेता, केन्द्रीय आर्य सभा पलवल के प्रधान श्री धनपत राय आर्य की अध्यक्षता मे निर्विघ्न सोल्लास सम्पन्न हुआ ।

उत्सव मे आर्य जगत् के उच्च कोटि के विद्वानो आचार्य देवव्रत जी कुरुक्षेत्र गुरुकुल, प्रो ओ३म् कुमार जी जींद, श्री सुखदेव जी शास्त्री, महोपदेशक ने अपने प्रेरणादायक विचार दिए। सभा के भजनोपदेशक श्री सतपाल आर्य की भजनमंडली, श्री उदयवीर सिंह मथुरा, ताजवीर सिंह तथा बहन राजबाला एवं बहन पुष्पा शास्त्री के अतिरिक्त आदरणीय यशपाल जी आर्य बन्धु वैदिक सिद्धान्त मनीषी ने अपने भजनो व प्रवचनों के माध्यम से वेद कथा को काफी रोचक रूप में प्रस्तुत किया।

उत्सव के आकर्षण विभिन्न प्रकार के सम्मेलन थे जिनमें से प्रमुख " गौ पालन सम्मेलन" "[illegible] सम्मेलन" "छात्र जागृति सम्मेलन" "सम्मान समारोह" तथा "इक्कीस कुण्डीय यजुर्वेद शतकम्" यज्ञ थे । जिसमें इक्कीस युवा दम्पत्तियों ने भाग लेकर नगर के वातावरण को सुगन्ध से सराबोर कर दिया । सम्मेलनो का आयोजन युवा प्रतिभाशाली विद्वान् शिवराम आर्य विद्या वाचस्पति, अध्यक्ष आर्य युवक परिषद हरियाणा ने किया।

—जय प्रकाश आर्य,प्राध्यापक

जीवन क्या है ? मर्म को पहचानो और आगे बढ़ो!

□ले० डा. महेश विद्यालंकार, दिल्ली ।

(गतांक से आगे)

जीवन खत्म हुआ तो जीने का ढंग आया।

शमा बुझ गई तो महफिल मे रंग आया॥

जीवन का एक-एक क्षण अमूल्य है । जैसे नदी का पानी आगे बह जाने के बाद दुबारा वापिस नहीं आता है, वैसे ही जीवन का गुजरा हुआ समय फिर दोबारा वापिस नहीं मिलता है । परमात्मा सब कुछ देने में उदार है, किन्तु समय देने में बड़ा कंजूस है। मृत्यु के क्षणों में सारी दौलत के बदले भी दो पल का समय नहीं मिलता। इसलिए दुनिया में सबसे कीमती चीज़ समय है। जो समय को पहचानते और उसकी कीमत समझते हैं, वे जीवन में आगे बढ़ जाते हैं। समय के रहते जो सचेत हो जाते हैं, सफलता उनके चरणों को चूमती है। जीवन बड़ी तेजी से निकला जा रहा है । जो दिन, मास, वर्ष निकल गए, वो ज़िन्दगी में फिर कभी न आएंगे । देखते-देखते बालक जवान होता है जवान बूढ़ा होता है, बूढ़ा आगे बढ़ जाता है, फिर जन्म लेता है । यह आवागमन का चक्र न जाने कब से चल रहा है ? आम आदमी सोचता है, "रिटायर होने के बाद बुढ़ापे मे सेवा, परोपकार, भजन, सत्संग, भक्ति आदि कर लेगे । अभी तो खाओ, पियो, मौज करो । यह जवानी फिर कहां मिलेगी ?" वह सोचता है-

सैर कर दुनिया की गाफ़िल,
फिर ज़िन्दगानी है कहां ?

गर जिन्दगानी भी मिली, तो
फिर नौजवानी है कहां ?

यह बहुत बड़ी भूल है । यह तो ऐसे ही हैं-जैसे आम खाकर गुठलियों का दान करना, घर मे आग लगने पर कुआं खोदना, गाड़ी गुजर जाने के बाद पछताना, सब कुछ लुट जाने के बाद होश आना और जीवन खत्म होने के बाद सम्भलना । जो समय की कीमत नहीं करता, वह अन्तकाल में पछताता है । मृत्यु का कोई समय नहीं होता, पता नहीं कब आकर दरवाजा खटखटा दे । इसलिए सदा चलने के लिए तैयार रहना चाहिए । पता नहीं दुनिया से कब, कहां और कैसे चलना पड़ जाए ? हम बेखबर होकर नशे और गफलत में सोए पड़े हैं । दुनियां में आए थे किसलिए ? करने क्या लगे ? अन्तहीन संग्रह और भाग की दौड मे पागल बने दौड़े जा रहे हैं । पता ही नहीं-कहा जाना है और इस दौड़ का अन्त कहा है ? अनमोल जन्म इसी अन्धी दौड़ में निकला जा रहा है। किसी को जानने और सोचने की फुर्सत ही नहीं है ? कोई दो क्षण रुक कर, सुनने व समझने के लिए तैयार भी नहीं है । हर कोई जल्दी-जल्दी और ज्यादा-से-ज्यादा पाने व भोगने के लिए बेचैन है । मगर-

ग़ाफिल घड़ियाल दे रहा है सुनादी ।

ज़िन्दगी की एक घड़ी और कम हो गई ।

मनुष्य सोचता है कि उम्र बढ़ रही है। सच तो यह कि उम्र घट रही है । जैसे-तेज दौड़ती हुई रेलगाड़ी और मोटर-वाहन मे बैठा इन्सान बाहर देखता है तो लगता है वृक्ष, भवन, पहाड़ आदि दौड रहे होते हैं । व्यवहार में बोलते है- "अमुक जगह आ गई, गाड़ी से उतरो ।" वास्तविकता यह है कि हम उस जगह पहुचते हैं । जगह वहीं रहती है। ऐसे ही सच है कि हर साल उम्र घट रही है, बढती नहीं । जितना समय निकल गया, उतनी उम्र कम हो गई । यह सोच ज्ञानी ही कर सकता है । हम जीवन का सदुपयोग नहीं कर पा रहे हैं । कीमती जिन्दगी भूल-भूलैया और व्यर्थ की उलझनों मे गुजरी जा रही है। कीमती जन्म मिट्टी के बदले जा रहा है । जब तक शरीर स्वस्थ है, बुढापा दूर है, इन्द्रियों में शक्ति है, आयु का क्षय नहीं हुआ है, बुद्धिमानी इसी में है कि आत्म-कल्याण एवं धर्मार्थ का मार्ग अपना लिया जाए । बाद में पछताने से कुछ हाथ न लगेगा । समय, शक्ति और साधनो के रहते हुए जीवन के उद्देश्य की ओर चल पडना ही बुद्धिमानी है । जो मानव-जीवन पाकर भी इस लोक और परलोक को सुधार न सके, वे अनेक जन्मो तथा योनियो मे भटकते हुए महादुःखो को भोगते है । आद्य शकराचार्य का यह कथन-

पुनरपि जनमं, पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्

बार-बार जन्म लेना, फिर मृत्यु को प्राप्त होना, अनेक माताओ के उदर में कष्ट एव पीडा उठाना-अनन्तकाल तक यही सिलसिला चलता रहता है । नरकवास और गर्भवास बराबर माना गया है । जीव मां के उदर में, मल-मूत्र की थैली मे बन्द, बाहर आने के लिए छटपटाता है । बाहर आकर, उस दुःख व परमेश्वर को भूल जाता है। जीव का परमात्मा से दूर होना और भूलना ही महादुख का कारण है । जो ईश्वर तथा मृत्यु को स्मरण रखते है, उनके पास सच्चाजीवन है, वे अनेक दुःखों से बचे रहते है । उनके जीने का ढंग ही निराला होता है ।

जीवन का उद्देश्य

समस्त भारतीय चिन्तन का मुख्य स्वर रहा है-"आत्मान विद्धि।" अपने आप को जानो, अपने स्वरूप को पहचानो, अपने लक्ष्य को पकडो अपने दायित्वो, कर्त्तव्यो, जिम्मेदारियो आदि को निभाते हुए, धीरे-धीरे अपने जीवन-लक्ष्य की ओर बढते चलो। तभी मानव-जीवन की प्राप्ति सार्थक एव उपयोगी सिद्ध होगी । परमेश्वर की सृष्टि-रचना मे नियम, व्यवस्था तथा उद्देश्य है। कोई भी वस्तु बिना प्रयोजन के नही है । प्रत्येक जड और चेतन का उपयोगी एवं व्यवहार है । मानव-जीवन तो रचयिता की सबसे उत्कृष्ट [illegible] है। इसके निर्माण मे उसने अद्भुत कौशल दिखाया है । इसका एक-एक पुर्जा अमूल्य है । नष्ट हो जाए तो वैसा असली पुर्जा कोई नहीं बना सकता। इसका उद्देश्य भी उतना ही महान व ऊचा है । सारी सृष्टि मानव के उपयोग और उपभोग के लिए बनाई है । साथ मे नियम व्यवस्था एव शर्ते भी दी है। यदि मनुष्य उनका पालन करता है तो सृष्टि मगलमय एव स्वर्ग बन जाती है । यदि पालन नहीं करता, तो जगत नरक बन कर रह जाता हे

आज समूचा मानव-समाज अपने मूल लक्ष्य से दूर हो रहा है। जीवन का ध्येय भूलता जा रहा हे अधिकाश लोगो को यही पता नही है कि जीवन का उद्देश्य क्या है ? आज का पढा-लिखा, डिग्रीधारी अपने को विद्वान् व महान समझने वाला व्यक्ति, नई-नई खोजो, साधनों तथा सुख और भोग-विलास की चीजों के बारे मे बहुत कुछ जानता है, परन्तु उसे आत्मा-परमात्मा और अपने बारे मे कुछ भी पता नही है। आज के भौतिकवादी तथा भोगवादी इन्सान ने जल, थल व नभ में छिपे रहस्यो को जान लिया है । उन्हे अपनी मुट्ठी मे बन्द करने के लिए भी वह बेताब हो रहा है मगर अपने बारे और आत्मा-परमात्मा के बारे मे अनभिज्ञ ही हे। उसे पता ही नही "मै कौन हू ? कहा से आया हू ? किसलिए आया हू ? कहा जाना है ? मेरी जिन्दगी का विराम और विश्राम कहा हे ।" किसको जानकर तथा किसके पास पहुचकर मुझे पूर्ण सुख-शान्ति एव प्रसन्नता प्राप्त हो सकती ? कहा पहुचकर मे जन्म-जन्म की भटकन से छूट सकता हू ? मेरी आत्मा की सच्ची भूख क्या है ? वह किस के पास पहुचकर मिट सकती है ? मेरा मन मुझे चैन क्यो नहीं लेने देता ? क्यो और-और की चाह मे भटकता और नाचता रहा हू ? दुनिया मे अच्छा इन्सान बनकर जीवन को क्यो नहीं जी पा रहा हू ? सब कुछ परमात्मा द्वारा देने के बाद भी मै संतुष्ट, तृप्त व प्रसन्न क्यो नही होता ? (क्रमश.)

मानव परमेश्वर की महान् एवं उत्तम कृति है

आचार्य श्री पं. हरिदेव आर्य, एम.ए. नई दिल्ली।

आप मानव है। परमेश्वर की एक सर्वश्रेष्ठ कृति हैं आप अमृत पुत्र अथवा पुत्री हैं, भारतीय सस्कृति तथा विश्व एव सर्वोत्कृष्ट प्राणी है। हम सब स्वय अपनी आखो के सामने भी देखते है कि इस मानव शरीर मे असीम शक्तियो का भण्डार है। इसमे प्रकृति के सब भेदो को समझने की तथा उनके कारणो की जानकारी प्राप्त करके, सबके कल्याण के लिए, प्रयोग करने की क्षमता है। इसमे बुद्धि है, विवेक है, जिससे यह पांचो तत्वो-पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाश तथा अन्य सभी जड़ पदार्थो तथा चेतन प्राणियों के गुण, कर्म तथा स्वभाव को भली प्रकार समझकर उनका प्रयोग करके सबके कल्याण के लिए स्वय कर सकता है और दूसरो को ऐसा करने की प्रेरणा दे सकता है।

हम देखते हैं कि मानव अपनी सूझ-बूझ से बड़ी भीषण नदियो पर पुल अथवा बांध बना कर, उनकी कृषि क्षेत्रों को नष्ट करने से रोक कर उनके द्वारा कृषि क्षेत्रो की सिंचाई करके खाद्य पदार्थों का तथा अनेकानेक कार्य करने के लिए विद्युत शक्ति का उत्पादन कर सकता है। नरभक्षी हिसक पशुओ को पिंजरे मे बन्द करके उनसे अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करवा सकता है। हजारो किलोमीटर की दूरी पर बैठे मानव को देख सकता है, उसकी बात सुन सकता है, अपनी बात सुना सकता है। समुद्र के नीचे क्या है ? ऊपर आकाश मे क्या है ? जान सकता है, उसे प्राप्त करके सबके कल्याण के लिए प्रयोग कर सकता है। यह साधना से मछली की भांति पानी पर तैर सकता है तथा एक पक्षी की भांति आकाश मे उड़ सकता है। कहा जा सकता है कि मानव के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है।

परन्तु आज हम देखते हैं कि प्रत्येक साधारण मानव अपनी असीम शक्तियो को भूल गया है अथवा उन पर पर्दा पड़ गया है। उसके पास असीम शक्तियां होते हुए भी उनका प्रयोग नहीं कर पाता, वह मानसिक संकीर्णता से उत्पन्न बुराईयों-अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीनता, अन्धविश्वास आदि मे फंस कर दिशा भ्रमित हो गया है।

यदि हम निष्पक्ष होकर तटस्थ भाव से सोचे और इसके कारण को समझने का प्रयास करे तो हमें यह समझने में कुछ भी कठिनाई नहीं होगी कि **सृष्टिकर्त्ता तथा संचालक परमेश्वर ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृत्ति मानव की रचना अपने साकार प्रतिनिधि के रूप में की, जिससे वह बिना किसी भेदभाव के समान रूप में सबके लिए कल्याणकारी कार्य करे और सबको प्रेम, सुख, शान्ति के सन्देश दे परन्तु मानव अज्ञानवश मानसिक संकीर्णता में फंस कर ऊंच-नीच, मेरा-पराया, अच्छा-बुरा आदि भावनाओं में फंस गया, जिसके कारण उस की इन सब क्षमताओं पर पर्दा पड़ गया। उसके अन्दर यह सब शक्तियां होते हुए भी उनका प्रयोग नहीं कर पाता। जैसे हम देखते हैं कि आकाश में सूर्य है, जब वह बादलों की ओट में हो जाता है, वह दिखाई नहीं देता।**

आप ने भली प्रकार समझना है।

1 सम्पूर्ण जीवनी शक्ति, ज्ञान तथा आनन्द का स्रोत स्वयं आप के भीतर है। स्वयं अपने आप को तथा अन्य सभी को परम आनन्दमय, शक्ति सम्पन्न, ज्ञान सागर भगवान का आज्ञाकारी, क्रियाशील, विवेक और बुद्धि से युक्त परम प्रिय लाडला पुत्र अथवा पुत्री अनुभव करते हुए सबको प्रेम, सुख और शान्ति का सन्देश दे।

2. जब हम किसी से द्वेष अथवा घृणा करते हैं, किसी को कष्ट देते हैं, झूठ बोलते हैं, किसी को अपशब्द बोलते हैं, हममे ये शक्तियां नहीं रहतीं। हम इनका प्रयोग नहीं कर पाते। जब हम ऐसे अनैतिक कार्य करते हैं, उसी क्षण हमारे शरीर में रक्त संचार, पाचन क्रिया आदि में गड़बड़ी उत्पन्न होती है और हम रोग ग्रस्त हो जाते हैं। हमारे रोगों के कारण हमारे अपने ही दुष्कर्म हैं।

3. सबके प्रति प्रेम भावना रखने से, सुख-शान्ति तथा आनन्द का अनुभव करने से हमारे अन्दर स्थित शक्तियो का विकास होता है, ये शक्तियां जागृत होती हैं, हम समाज से तथा राष्ट्र से सहयोग प्राप्त करने के योग्य बनते हैं। हम अपनी निराशा और आलस्य का त्याग करके समाज कल्याण के लिए कार्य करने के योग्य बनते हैं।

4 हम अनुशासन में रहकर, श्रम-प्रिय बनकर बड़े उत्साह औ. उमंग से भरपूर आनन्द का अनुभव करते हुए प्राणीमात्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने के योग्य बनते हैं, हम अपने हृदय में किसी के प्रति भी काम, क्रोध, लोभ आदि की भावना न रख कर ही अपने में इन शक्तियो का विकास कर सकते हैं।

5 हम अपनी सम्पत्ति को न्यायपूर्ण ढग से बढ़ाने तथा सुरक्षित रखने की कामना अवश्य करे, परन्तु सम्पत्ति को अपनी व्यक्तिगत न समझते हुए उसका राष्ट्र कल्याण के लिए दया और करुणा से अभावग्रस्त व्यक्तियो को शिक्षित करके ऊपर उठाने के लिए प्रयोग करे।

6 मानव जीवन एक नाटक है, हम काम, क्रोध आदि का प्रदर्शन दूसरे व्यक्तियो को शिक्षित करने के लिए भल ही करें, परन्तु हमारे हृदय मे सब के प्रति प्रेम और सद्भाव का सागर उमड रहा हो।

7 हमारी संस्कृति मे नाटक का महत्व बहुत प्राचीन काल से है। रामायण, महाभारत आदि के नाटक हजारो वर्षो से खेले जा रहे है जिसमे अभिनेता प्रेम, सद्भाव, अहिसा आदि का तथा काम, क्रोध, हिंसा आदि का प्रदर्शन बडी कुशलता से करते है, परन्तु उनके ... में पूर्णरूप से सन्तुलन तथा शान्ति होती है, इससे शरीर पर कोई दुष्प्रभाव नहीं होता। हमने अपने छात्र/छात्राओ में इस योग्यता का विकास करना है कि वे लोक हित की भावनाओ का प्रदर्शन करते हुए भी अपने आप को इनसे अछूते रख सकें। नाटक खेलन. भी एक महत्वपूर्ण कला है।

8. गरीबी का स्थाई समाधान—इसमें किञ्चित सन्देह नहीं है कि भूखे को अन्न और वस्त्रहीन को वस्त्र देना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है, धर्म है। परन्तु यह समस्या का स्थाई समाधान नहीं है, क्योंकि अब उस को अन्न खिला देगे, पांच-छ: घंटे के पश्चात् उसकी स्थिति फिर वैसी ही हो जाएगी। कुछ सीमा तक यह अकर्मण्यता को भी प्रोत्साहित करता है। अच्छा है कि हम भूखे को भोजन खिला कर, उसको शिक्षा देकर और साधन जुटा कर उसको इस योग्य बनादे कि वह स्वयं अपने पांवों पर खड़ा होकर दूसरों को भी सहारा देने के योग्य हो जाए। जैसे ईश्वरचन्द विद्यासागर के उदाहरण हमारे सामने हैं।

9. हमने जीवन की समस्याओ का कुशलता से संघर्ष करना है। संघर्ष करते हुए भी अपने आप को पूर्णतः सन्तुलित रखना है। हमने भली प्रका. समझना है कि ये समस्याएं जीवन में अनिवार्य हैं। यह कष्ट देने के लिए नहीं है, यह हमारी बुद्धि की, योग्यता की परीक्षा लेकर हमे और अधिक योग्य बनाने के लिए हैं। उदाहरण के लिए सभी प्राणी छोटा अथवा बड़ा अपनी भूख, प्यास की पूर्ति मे लगा है। कृषि क्षेत्रो का निर्माण, सिंचाई की योजनाए आदि सभी इसी समस्या की पूर्ति के लिए हैं और भी हम देखते हैं कि यदि एक दिन भूख न लगे हम भूख लगाने वाली औषधी खाते हैं। यह भूख ही हमारे जीवन की हमारे रक्त-संचार तथा पाचन-तन्त्र की आधार है। जीवन की सभी समस्याएं जीवन का आधार हैं। समस्याओं के बिना निष्क्रिय जीवन भार है, अर्थहीन है।

10. हम डम्बल, मु... आदि लाते हैं ' व्यायाम कर हैं, कबड्डी, फुटबाल, हॉकी खेलते

(शेष पृष्ठ 8 पर)

गोनियाना मण्डी में वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज गोनियाना मण्डी (जि. बठिण्डा) में वेद प्रचार सप्ताह 24 नवम्बर से 30 नवम्बर 2000 तक मनाया गया। जिसमें महात्मा प्रेम प्रकाश जी द्वारा प्रतिदिन प्रातः यज्ञ हवन उपदेश एवं सायं पारिवारिक सत्संग होते रहे और रात्रि में भी प्रवचन होते रहे। इसके इलावा हर प्रातः 7 से साढ़े सात बजे साधना शिविर में आसन-प्राणायाम का अभ्यास कराया गया। सारा कार्यक्रम बहुत सफल रहा। लोगों में आर्य समाज का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

–तरसेम कुमार आर्य, मन्त्री

आर्य गर्ल्ज सी. सै. स्कूल भठिण्डा की गतिविधियां

1. बड़े हर्ष का विषय है कि हमारे विद्यालय की प्रबन्धक समिति के माननीय सदस्य श्री मोहन लाल जी गर्ग, जो आजकल इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट बठिंडा के चेयरमैन हैं–उन्होने 14 नवम्बर 2000, को बाल दिवस पर होने वाले समारोह मे अध्यक्षता की तथा हमारे विद्यालय के जरूरतमन्द बच्चों के लिए इक्यावन (51) ऊनी कोटियां दान में दीं।

उल्लेखनीय है कि आपने पिछले वर्ष भी शीतकाल में निर्धन बच्चों की सहायतार्थ 51 ऊनी कोटियां दी थीं।

2. लायन्ज क्लब सुप्रीमो, बठिंडा जिसके प्रधान श्री जीवा राम गोयल हैं, ने भी इस 14 नवम्बर के अवसर पर अन्तर्विद्यालय क्विज प्रतियोगिता का आयोजन किया तथा साथ ही हमारे विद्यालय के जरूरतमन्द बच्चों को 51 कोटियां सहायतार्थ दीं।

प्रिंसीपल श्रीमती शान्ति जिन्दल तथा स्टाफ ने क्लब का तथा माननीय मोहन लाल जी का हार्दिक धन्यावाद किया हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनके इसी तरह दान-पुण्य-सेवा व सहायता के शुभ विचार बने रहे। इनकी आमदनी में वृद्धि हो जिससे समाज मे निर्धन छात्रो व जरूरतमन्द लोगों की सेवा की उच्च भावना बनी रहे।

विशेष नोट :–वर्णनीय है कि लायन्ज क्लब के सदस्यो ने विद्यालय की अलग-2 कक्षाओं के 13 बच्चों को विशेष आर्थिक सहायता दी जिससे बच्चे किताबे-कापियां आदि खरीद सकें इसके लिए भी प्रिंसीपल स्टाफ व अभिभावक उनके धन्यावादी हैं।

प्रिंसीपल–शान्ति जिन्दल

भठिण्डा में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस

आर्य समाज भठिण्डा के महर्षि दयानन्द सत्संग भवन में दिनांक 24-12-2000 को स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस लाला वजीरचन्द जी की अध्यक्षता मे बड़ी धूम-धाम के साथ मनाया गया।

सर्वप्रथम पं श्री गुरु प्रसाद उपाध्याय शास्त्री जी के आचार्यत्व में हवन-यज्ञ सम्पन्न हुआ। यज्ञ के यज्ञमान श्री प्रेम भाटिया एव श्री बिहारी लाल मगला सपत्नीक थे। यज्ञ के पश्चात् ईश्वर भक्ति के भजन के साथ कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर आधारित भजन श्रीमती पुष्पा मंगला ने सुनाया।

आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल एवं आर्य माडल हाई स्कूल के छात्र-छात्राओ ने स्वामी जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल के विषय मे अपने-अपने विचार प्रकट किए। ब्रह्मचारी सूर्यदेव जी ने भी अपने विचार आर्यजनो के समक्ष रखे।

बलिदान दिवस के मुख्य वक्ता के रूप में पं श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जिस प्रकार मुंशीराम ने अपने निकृष्ट जीवन को समाज के सामने अति उत्कृष्ट कर दिखाया, हमें भी अपने जीवन मे उनके पद चिन्हों पर चलते हुए परोपकार एवं देश-सेवा करनी चाहिए। उपस्थित आर्यजनो को आह्वान करते हुए उन्होने आगे कहा कि हमे स्वामी श्रद्धानन्द जी के कार्यों को पूर्ण करने के लिए आज के दिन संकल्प लेना चाहिए।

आर्य समाज भठिण्डा के मत्री श्री बिहारी लाल जी ने मच सचालन सुचारू रूप से करते हुए आर्यजनो को सूचना दी कि जिला भटिण्डा मे से श्री प्रेम भाटिया आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री एवं लाला कुलवन्त राय जी अग्रवाल तथा श्री तरसेम आर्य जी को अन्तरंग सभा के सदस्य बनने की बहुत-बहुत बधाई दी। इस घोषणा का सभी आर्य जनो ने तालियो के साथ स्वागत किया और खुशी प्रकट की।

उसके पश्चात् लाला वजीर चन्द जी प्रधान जिला आर्य सभा ने समारोह मे उपस्थित स्कूल के अध्यापक-गण एवं छात्र-छात्राओ को तथा सभी आर्यजनो का धन्यावाद किया। अन्त मे शान्ति पाठ एव प्रसाद वितरण किया गया।

–प्रेम भाटिया

पं. हरबंस लाल जी शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

सादर नमस्ते। आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के सर्वसम्मति से चुनाव होने एवं आपके पुनः प्रधान बनने पर मैं आर्य समाज संगरूर की ओर से आपको बहुत-बहुत बधाई देता हूं तथा परम-पिता परमात्मा से यह प्रार्थना करता हू कि आपको दीर्घायु प्रदान करे जिससे भविष्य मे आर्य प्रतिनिधि सभा का कार्य सुचारू-रूप से चल सके।

मान्यवर प्रधान जी कुछ समय से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब बड़ी ही कठिन परिस्थिति से गुजर रही है जिससे समाज की छवि बहुत ही खराब हुई है लेकिन हमे अब इस बात से काफी आशा है कि शायद अब कोई सुधार हो सके कार्यालय के अन्दर जो भीड प्रतिनिधियो की हमने देखी और जिस प्रकार अफवाह फैला दी गई थी कि 17 तारिख चुनाव रद्द कर दिए गए है इससे हमे भी काफी निराशा हुई थी मगर 16 तारिख को हमने मान्यवर प धर्मदेव जी से टेलीफोन द्वारा पता किया तो पता चला कि 17 को चुनाव होगे फिर हम अपने सभी प्रतिनिधियों सहित जालन्धर आए और सब कुछ अपनी आंखों देखा व कानों से सुना हमे बहुत खुशी हुई कि सभी आर्य समाजो के प्रतिनिधि उस दिन सभा कार्यालय में सभा के साधारण अधिवेशन मे पधारे थे इसके लिए आपको बहुत-बहुत बधाई।

–रामशरण आर्य, मन्त्री आर्य समाज संगरूर

(पृष्ठ 6 का शेष)

हैं, पसीना-पसीना हो जाते हैं, थक जाते हैं । कभी कोई भयकर चोट भी लग सकती है, क्या यह सब हमारे लिए दुःख के कारण हैं ? कदापि नहीं, यह हमारे लिए परम आवश्यक हैं । इनसे हमारे शरीर पुष्ट होते हैं, हमारी बुद्धि तीव्र होती है । हम संघर्ष करना सीखते हैं । यह आतक्वादी हमारे लिए मुदगरों अथवा खेलो म विरोधी पक्ष का काय करत ह जिनके बिना कोई खेल सम्भव ही नही हे । **रामायण में से यदि कैकयी का और रावण का प्रसग काट दिया जाए तो सारी रामायण का महत्व समाप्त हो जाता है, राम को महान् बनाने वाले यह दो ही व्यक्ति हैं ।** हम आनन्द का प्रसन्नता का अनुभव करते हुए हृदय में विरोधियों के प्रति भी प्रेम और सद्भाव रखते हुए खेल भावना से युद्ध करना है। स्वय अपने आप को तथा अपन विरोधियों को **भी एक विशाल नाटक के अभिनेता समझते हुए प्रेम, घृणा, क्रोध आदि का प्रदर्शन करते हुए भी कुशलता से युद्ध करके उन पर विजय प्राप्त करनी है । क्रोध करते हुए तथा तीक्ष्ण वाणों से प्रहार करते हुए भी आपके हृदय में उनके प्रति प्रेम और सद्भाव का समुद्र उमड़ रहा हो ।**

11 हमने दृढ संकल्प से अपने स्वार्थ भाव का त्याग करके बिना किसी भेदभाव के प्राणीमात्र के कल्याण के लिए कार्य करना है, इससे निश्चित रूप से वह पर्दा दूर होगा, हमे अपनी शक्तियों की अनुभूति होगी और हम प्रसन्नता का अनुभव करते हुए बहुत सुगमता से कार्य कर सकेंगे । जब हम बिना किसी भेदभाव के परमेश्वर के लिए कार्य करेंगे, परमेश्वर स्वयं ही हम से सब कार्य करवा लेगा, हम तो एक निमित्त मात्र ही होंगे।

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत् ।

चण्डीगढ़ में अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस सम्पन्न

पूर्व वर्षा की भान्ति, आय समाज सैक्टर 22 ए चण्डीगढ द्वारा महान बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवस समारोह पूवक मनाया गया। इस उपलक्ष्य मे दिनाक 18 12 2000 से 23 12 2000 तक वेद कथा का आयोजन किया गया था इस अवसर पर आर्य जगत के मूधन्य विद्वान् एव साहित्य रचनाकार लेखनी के धनी, स्वामी दयानन्द सरस्वती की खोजपूर्ण जीवनी सम्बन्धी "नव जागरण के पुरोधा" ग्रन्थ के लेखक, दयानन्द पीठ पजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ के पूर्व अध्यक्ष डा भवानी लाल भारतीय द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन के विभिन्न पहलुओ का वेदिक विचारधारा से सामजस्य बैठाते हुए वेद कथा की गई तथा उभरत युवा भजनोपदेशक श्री उपेन्द्र आर्य एव ढोलक वादक रविन्द्र त्यागी द्वारा ईश भक्ति देश भक्ति के गीतो की बहुत ही सुमधुर प्रस्तुति की गइ । स्थानीय विद्वानो के अतिरिक्त 'परोपकारी' पत्रिका के सपादक डा धमवीर जी ने अपने ओजस्वी विचार प्रस्तुत किए तथा स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल कुरुक्षेत्र के अधिष्ठाता आचार्य देवव्रत जी द्वारा अमूल्य विचार प्रस्तुत किए गए एव युवा पीढी को विशेषकर, वैदिक मूल्यों के प्रति समर्पित होने का आह्वान किया गया।

इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत "स्वामी श्रद्धानन्द-एक विलक्षण व्यक्तित्व" विषयान्तर्गत विद्यालयो के छात्रा-छात्राओं के लिए भाषण-प्रतियोगिता का आयोजन किया गया । पुरस्कारों के अतिरिक्त सभी प्रतियोगियों को वैदिक साहित्य भेंट किया गया । वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य मे "वेद और विज्ञान" सम्मेलन का आयोजन भी किया गया। इस अवसर पर समाज के ऐसे सदस्यों को जिन्होंने अपने जीवन के 80 वर्ष पूरे कर लिए है एवं अन्य विद्वानो को शाल देकर सम्मानित किया गया ।

महर्षि दयानन्द आदर्श विद्यालय सैक्टर 22-ए चण्डीगढ़ के छात्र-छात्राओं द्वारा भाषण प्रतियोगिता में सम्मलित होने के साथ-साथ ईश भक्ति के गीत भी प्रस्तुत किए गए। **—बुधराम, आर्य, मन्त्री**

नवां शहर में जन कल्याण दिवस मनाया गया

31 दिसम्बर रविवार को आय समाज नवाशहर द्वारा जन कल्याण दिवस समारोह पूवक मनाया गया जिसकी अध्यक्षता श्री प्रेम कुमार भारद्वाज कापाध्यक्ष आय प्रतिनिधि सभा पजाब ने की मुख्य अतिथि नवा शहर जिला पुलिस अधीक्षक श्री इश्वर सिह आई पी एस ने की। इस अवसर पर गरीब लोगों में 100 कम्बल बाटे गए। मुख्य अतिथि ने स्वामी दयानन्द की जीवनी पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हरिजनों तथा महिलाओं के लिए जो स्वामी दयानन्द की देन है वह भुलाई नहीं जा सकती। आय समाज को बढ़ रही नशा प्रवृतियों के खिलाफ अपनी आवाज उठानी चाहिए इस अवसर पर शहर के गणमान्य व्यक्ति वहां उपस्थित थे ।

—वीरेन्द्र सरीन, उप प्रधान

लुधियाना में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस बड़े समारोह से जिला आर्य सभा के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ

31 दिसम्बर दिन रविवार को आर्य सी. सै. स्कूल पुरानी सब्जी लुधियाना में जिला आर्य सभा के तत्वावधान में श्रीमती राजेश शर्मा प्रधाना जिला आर्य सभा की अध्यक्षता में अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस बड़े समारोह से मनाया गया ।

सम्मेलन की कार्यवाही यज्ञ से आरम्भ हुई। 11 कुण्डों के इस महान यज्ञ मे कई यजमान आहूतियां डाल रहे थे । बड़ा शोभनीय वातावरण बना हुआ था । यज्ञ के ब्रह्म पं बाल कृष्ण जी शास्त्री और श्री योगराज जी शास्त्री थे ।

यज्ञ के बाद श्रद्धाजलि समारोह आरम्भ हुआ कई महानुभावो ने श्रद्धालियां अर्पित की । मुख्य रूप से जालन्धर से सभा के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री डॉ केके पसरीचा, रजिस्ट्रार श्री देवेन्द्र शर्मा और सभ कार्यालय अध्यक्ष पं धर्मदेव जी वहां पहुचे हुए थे । इस अवसर पर जालन्धर सभा की तरफ से पधारे सभी महानुभावों का विशेष रूप से श्री डा के.के पसरीचा का जिला आर्य सभा लुधियाना के अधिकारियो ने सभी आर्य समाजों के अधिकारियों तथा सभी शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों ने पुष्प मालाओं के द्वारा भव्य स्वागत किया। इस समारोह में मुख्य वक्ता श्री आचार्य देवव्रत जी थे। उन्होंने विस्तार पूर्वक स्वामी जी जीवन पर प्रकाश डाला और सभी आर्यों को स्वामी जी के पद चिन्हो पर चलने को प्रेरणा दी उन्होने कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द जी जब मुन्शी राम थे तब कोई ऐसी बुराई शेष नही थी जो उनके जीवन में न हो लेकिन महर्षि स्वामी दयानन्द जी के सम्पर्क में आने के बाद उन्होने सभी बुराईयो को त्याग दिया और आर्य समाज के प्रचार में जुट गए । उन्होंने यह भी कहा कि अगर स्वामी दयानन्द जी के पश्चात् कोई क्रान्तिकारी और आर्य समाज का कार्य करने वाला और कोई था तो वे थे स्वामी श्रद्धानन्द । इस अवसर पर माननीय डा पसरीचा मुख्य अतिथि जी ने बोलते हुए कहा कि श्रेष्ठ पुरुषों एक ही नाए। महर्षि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द जी का यही एक नारा है व सन्देश है स्वामी जी एक सच्चे इन्सान थे उन्होंने अपना सर्वस्व आर्य समाज के लिए समर्पित कर दिया था। वह निर्भीक और सत्यता की साक्षात् मूर्ति थे । हमें उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए कि हम भी उनके पद-चिन्हों पर चलते हुए आर्य समाज के कार्यों को आगे ले जाएं। आज आर्य समाज में गलत तत्व आ गए हैं उन्हें आर्य समाज से दूर करने का प्रयास हम सब मिल कर करे । यही हमारा धर्म है और कर्तव्य भी है । हम इन्सानो की तरह जीए पशुओं की तरह नहीं, जो कार्य करे सोच समझकर करें । इस अवसर पर कुमारी नम्रता सोनी तथा प योगराज शास्त्री जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी की महिमा के गीतो से श्रोताओ को मन्त्र-मुग्ध किया।

अन्त में डॉ के के पसरीचा जी ने श्रीमती राजेश शर्मा प्रधाना जिला आर्य सभा लुधियाना का विशेष रूप से धन्यवाद किया। इस अवसर पर श्री हरबस लाल जी सेठी एडवोकेट, श्रीमती राजेश शर्मा श्री सर्वजीत जी एडवोकेट, श्री ओ पी टण्डन, श्री नरेन्द्र जी भल्ला, श्री उष्णाक राय, श्री आशानन्द आर्य, आर्य स्कूल के प्रबन्धक, श्री सरीन जी, प्रिंसीपल बलराज कृष्ण वर्मा प्रिंसीपल कान्ता सूरी, श्रीमती जनक रानी श्रीमती इन्दिरा शर्मा, श्रीमती रमेश महाजन, श्री रवि महाजन, श्रीमति शुभ लता भण्डारी, श्री वेद प्रकाश भण्डारी, श्रीमती नीना बेरी, श्रीमती इन्द्रा होड़ा, श्री श्रवण कुमार बत्रा, श्री अजय कुमार बत्रा, श्री मदन मोहन चड्ढा, श्री सुरेश चड्डा श्री जनकराज भगत, श्री हर्ष सूद, श्री रमेश सूद, श्री विजय दयोडा, श्री सुनील शर्मा, श्री देवराज आर्य श्री अनिल कुमार निजावन, श्री ओ पी गुप्ता, श्री जगजीवन बस्सी, श्री अनिल गौतम, श्री बृजेन्द्र भण्डारी, श्री सुदेश शर्मा, श्रीमती किरण शुक्ला, श्री बलदेव राज जी तथा सभी शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियो का तथा सभी आर्य समाजो के अधिकारियो का धन्यावाद किया। जिन्होंने इस समारोह को सफल बनाने में विशेष सहयोग दिया। इस अवसर भारी संख्या में जिला लुधियाना की आर्य जनता वहां पहुची हुई थी।

श्रीमती राजेश शर्मा प्रधाना जिला आर्य सभा लुधियाना ने डा के के पसरीचा तथा सभा के अन्य अधिकारियों का धन्यवाद करते हुए सारी आर्य जनता का भी धन्यवाद किया।

—राजेश शर्मा, प्रधाना

श्री धमदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एल. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

दूरभाष : ☎ :292926

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 14 जनवरी 2001 दयानन्दाब्द 177

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित आर्य समाजों व शिक्षा संस्थाओं के अधिकारी महानुभावों की सेवा में

जैसा कि सभी आर्य बन्धुओ को पता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का त्रिवार्षिक चुनाव व साधारण अधिवेशन 17-12-2000 को सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर मे सम्पन्न हो चुका है और उसमे श्रीं पं हरबंस लाल जी शर्मा पुन: सर्व सम्मति से प्रधान चुने जा चुके हैं और उन्होंने साधारण सभा द्वारा प्रदत्त अधिकार के अनुसार अन्य पदाधिकारी व अन्तरंग सदस्य आदि मनोनित कर दिए हैं। जिसकी सूचना सभी शिक्षा सस्थाओ व आर्य समाजों को दी जा चुकी है। सभा से निष्कासित अश्विनी कुमार शर्मा आदि कुछ लोग भ्रान्तियां फैला रहे हैं कि यह चुनाव विधिवत नहीं हुआ। जो महानुभाव 17-12-2000 को सभा कार्यालय में पधारे थे उन्हे हमें बताने की आवश्यकता नहीं उन्होंने सब कुछ अपनी आंखों से देखा है परन्तु हम फिर भी यहां सभा की सारी संवैधानिक स्थिति स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

श्री अश्विनी कुमार शर्मा की सभा विरोधी गतिविधियों के कारण उन्हें 21-8-2000 को सभा से निलम्बित कर दिया गया था क्योंकि इसने सभा में धांधली मचा दी थी। सभा प्रधान जी ने विवश होकर 25-9-2000 को स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती प्रधान सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली को एक पत्र में सभा की सारी स्थिति स्पष्ट कर दी थी वह पत्र हम आर्य मर्यादा में छाप चुके हैं। जिस पत्र को पढ़ कर पूज्य स्वामी ओमानन्द जी ने अपने आदेश सं. 4/9 दिनांक 26-9-2000 के द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की अन्तरग सभा को भंग करके एक 25 सदस्यी तदर्थ समिति बना दी थी जिसने 28-9-2000 को सभा कार्यालय में अपनी बैठक करके सभा कार्यालय का चार्ज सम्भाल लिया था। अपनी प्रवृति के अनुसार अश्विनी कुमार शर्मा ने 6/9 एक जाली पत्र पूज्य स्वामी ओमानन्द जी प्रधान सार्वदेशिक सभा की ओर से बना कर जालन्धर प्रशासन को दिया जिसमें तदर्थ समिति को निरस्त दिखाया गया था परन्तु जब पूज्य स्वामी ओमानन्द जी को पता चला तो उन्होने अपने पत्र स 5/9 में लिखते हुए स्पष्ट किया कि 6/9 पत्र जाली है मैंने अभी तक इस सख्या का पत्र ही जारी नहीं किया इस पर अश्विनी कुमार शर्मा अपने आपको बचाने के लिए कोर्ट मे चला गया और जैसे-तैसे करके 14-10-2000 को अस्थाई निषेधाज्ञा प्राप्त कर ली परन्तु इस निषेधाज्ञा का तदर्थ समिति पर कोई प्रभाव नहीं पडा क्योंकि तदर्थ समिति का कार्य निरन्तर पहले से ही चल रहा था। जिसकी बैठके 28-9-2000, 1-10-2000, 6-10-2000, 11-10-2000 को हो चुकी थी माननीय सीनियर डीविजन सिविल जज श्री डी आर. अरोडा ने इस निषेधाज्ञा को भग करते हुए तदर्थ समिति को मान्यता प्रदान करते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के नए चुनाव करवाने का अधिकार भी प्रदान किया। तदर्थ समिति को कोर्ट ने सवैधानिक माना और पूज्य स्वामी ओमानन्द जी को इसे बनाने का अधिकार था यह स्पष्ट लिखा है। तदर्थ समिति ने अपना कार्य जारी रखते हुए अपनी बैठक दिनांक 11-10-2000 में प्रस्ताव संख्या 2 में सर्व सम्मति से यह निश्चय किया कि 17-12-2000 का आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का साधारण अधिवेशन व त्रिवार्षिक चुनाव किया जाए। तदानुसार 11-10-2000 से चुनाव प्रक्रिया आरम्भ हो गई। सभी प्रतिनिधियो को इसकी सूचना दे दी गई और एजैण्डा भेज दिया गया। पूज्य स्वामी ओमानन्द जी प्रधान सार्वदेशिक सभा से प्रार्थना की गई कि सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली की ओर से आप 17-12-2000 को सभा के होने वाले अधिवेशन के लिए पर्यवेक्षक जालन्धर भेजे। इस पर स्वामी ओमानन्द जी ने सार्वदेशिक सभा की ओर से पर्यवेक्षक के रूप मे श्री प्रो सत्यवीर जी शास्त्री सदस्य सार्वदेशिक सभा को 16-12-2000 को जालन्धर भेजा, उनके साथ पूज्य स्वामी इन्द्रवेश जी को भी भेजा वह भी जालन्धर पधारे और 17-12-2000 को प्रो सत्यवीर जी शास्त्री के पर्यवेक्षण में और स्वामी इन्द्रवेश जी की अध्यक्षता मे सभा का त्रिवार्षिक निर्वाचन विधिवत रूप से सम्पन्न हुआ। सार्वदेशिक सभा के पर्यवेक्षक श्री प्रो सत्यवीर जी शास्त्री ने इस निर्वाचन को प्रमाणित किया और वैध करार दिया है। इस अवसर पर साधारण अधिवेशन मे पधारे महानुभावों ने श्री अश्विनी कुमार शर्मा, श्री सरदारी लाल और श्री कर्मचन्द माली को छः-छः वर्ष के लिए सभा से सर्वसम्मति से निष्कासित कर दिया। अब इनका सभा से कोई सम्बन्ध नहीं है। श्री अश्विनी कुमार शर्मा पर जालन्धर मे जालसाजी करने ओर सभा की सम्पत्ति को हानि पहुचाने के कारण पुलिस मे एफ आई आर दर्ज हो गई है जिसमे इसने अन्तरिम जमानत लेने का यत्न किया परन्तु माननीय जिला शैशन जज ने अश्विनी कुमार शर्मा की जमानत की अर्जी ना मन्जूर कर दी है अब इनसे हाई कोर्ट चण्डीगढ से अन्तरिम जमानत करवाई हुई है। पुलिस कार्यवाही आरम्भ हो चुकी है सारी आर्य जनता को शीघ्र ही सारी जानकारी मिल जाएगी कि इसने सभा मे कितनी अनियमिताए की हुई है।

यह अभी भी गलत कार्य कर रहा है हमे पता चला है कि इसने सभा की शिक्षा सस्थाओ को भ्रमित करने के लिए कोई पत्र लिखा है। 24-12-2000 को आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का कोई चुनाव नहीं हुआ। 17-12-2000 को ही सभा का विधिवत चुनाव हुआ है और उसी को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के पर्यवेक्षक प्रो सत्यवीर शास्त्री ने प्रमाणित किया है। यह सभा से निकाले हुए व्यक्ति अपने आपको बचाने के लिए इधर-उधर हाथ-पाव मार रहे है परन्तु आर्य जनता अब इनकी असलियत को जान चुकी है। इसलिए आर्य विद्या परिषद पजाब और आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब से सम्बन्धित प्रत्येक शिक्षा सस्था के प्रिंसिपल अधिकारियो व आर्य समाजों के अधिकारियो से हमारा निवेदन है कि वह सभा के सगठन मे रह कर कार्य करे किसी अवैध व्यक्ति द्वारा बनाई गई किसी भी अवैध प्रबन्ध समिति की ओर कोई ध्यान न दे यदि कोई ऐसा करेगा तो यह अनुशासनहीनता समझी जाएगी।

हरबंस लाल शर्मा	**के.के. पसरीचा**	**सुरेन्द्र नाथ मुरगई**	**प्रेम भारद्वाज**	**देवेन्द्र नाथ शर्मा**
सभा प्रधान	सभा कार्यकर्त्ता प्रधान	महामन्त्री	कोषाध्यक्ष	रजिस्ट्रार

आर्य समाज की भावी योजना

□ले० महात्मा प्रेम प्रकाश वानप्रस्थ, आर्य कुटिया, धूरी, (पंजाब)

क्या आपके दिल में ''आर्य समाज'' को पुनः पूर्णमासी के चान्द, सितारो की जगमगाहट विमान की गति के समान वेद-प्रचार को फैलते देखने की इच्छा है, तो–

''संस्कारी ही अधिकारी''

1 आज सारे बहन-भाई प्रतीज्ञा करो कि आर्य समाज मे अधिकारी उसे ही बनाया जाएगा जिसके हृदय मे वैदिक सस्कारो के प्रति ज्ञान, श्रद्धा हो तथा जो घर में भी सस्कार आदि करवाता हो, उसे ही आगे किया जाएगा । कोई वोट की ओट मे खोट नही होने देगे । गलत व्यक्तियो के आगे आने के कारण आर्य समाज की प्रतिष्ठा घटी है, जिन्हे वैदिक पर्वो तक का ज्ञान नही, महत्व का पता होना दूर की बात है । सभी समाजों मे सभी पर्व मनाने का दृढ़ संकल्प करो । प्रत्येक पर्व की सूचना मून्यादी से नगर निवासियो को पहुंचाई जाए।

''विद्वान् और धर्मात्मा''

2 व्यवहार भानु पुस्तक मे एक स्थान पर महर्षि से पूछा गया कि क्या सारे विद्वान् हो सकते है ? कैसे वेदादि आर्ष ग्रन्थ व्याकरण, इतिहास, विज्ञान और गणित सभी केस पढकर विद्वान् हो सकते है ? ऋषि बोले विद्वान् तो सभी नही हो सकते परन्तु धर्मात्मा सभी हो सकते हैं । आज जब किसी भी व्यक्ति को आप कहे कि आर्यो को यह बात शोभा नही देती वह झट से कहेगा कि मेरी ''प्राईवेट लाइफ'' है, परन्तु पढ लो सुन लो, किसी भी आर्य का जीवन खुली पुस्तक होता है, प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी आर्य समाजी को गलत काम करते हुए को रोकने और टोकने का पूरा अधिकार है, आपको कोई अधिकार नही कि आप ''पाप'' को छपाने के लिए ''प्राईवेट लाइफ'' का बुर्का पहने, सच्चे आर्य समाजी बने, यदि सौभाग्य हो-तो ''आर्य'' बना जावें ।

वेद, गीता, रामायण और महाभारत में आर्य शब्द का अर्थ देखें तो आप झूम उठेंगे। मैं तो संक्षप्ति में ही लिख रहा हूं । आर्य शब्द तो मानव निर्माण फैक्ट्री का सूचक है ।

''ध्यान कक्ष एवं वेद मन्दिर''

3 प्रत्येक आर्य समाज मन्दिर मे एक ऐसा कमरा अवश्य होना चाहिए जहां बहुत सफाई हो, वेदादि और ऋषि कृत सभी आर्ष ग्रन्थ जो स्वाध्याय से सम्बन्धित हों तथा बिल्कुल धूले हुए या नवीन सौन्दर्य युक्त गलीचे या आसन हों, जहां पर बैठ कर कोई भी व्यक्ति ''ध्यान'' कर सकता हो, वेद शीशे के छोटे से बक्से में बड़े ही सुन्दर ढंग से रखे हो, उसका प्रातः दो घण्टे और सायं एक घण्टा खुलने का समय हो जिसमें सभी नगर निवासी आकर ध्यान कर सकते हों ।

''पुरोहित का होना और आर्य वीर दल''

4 आर्य समाज पुरोहित के बिना खुला भी नहीं रह सकता, दूसरे जो प्रचार का काम है, उसे कोई स्थानीय व्यक्ति वानप्रस्थ लेकर करे तो और भी स्वर्ण पर सुहागा होगा । यदि किसी आर्य समाज मे आर्य वीर दल नही है और आप आर्य वीर दल चलान चलाना चाहते हैं, तो मैं स्वय आकर चालू कर जाऊंगा, किसी आर्य समाजी की इच्छा हो, लडका दे दे, अन्यथा मेरे इण्टर स्कूलो में प्रवचन करवाने की आप व्यवस्था करे, पहले ही दिन आर्य वीर दल स्थापित हो जाएगा फिर उसको चलाने वाला बाद में आपके पास कोई होना ही चाहिए । मैं फ्री सेवा करने को तैयार हूं ।

''उपदेशक और पुरोहित''

5 विद्वान् का सम्मान करना, सबका कर्त्तव्य होता है, जहां विद्वानों का सम्मान नहीं वहां प्रचार नहीं हो सकता। पुरोहित और उपदेशकों के बच्चो को यदि आर्य विद्यालय हो, तो वहां पर ''फ्री शिक्षा'' की व्यवस्था आर्य समाज करवा कर दे । तथा पुरोहित और विद्वान् आचरण और वाणी से प्रचार करके ही आर्य समाज का प्रसार और प्रभाव बढ़ा सकते हैं । क्योंकि वेद के शब्दों में जादू है, मनो-विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान, मानव निर्माण और भगवान के ध्यान का वेद समुद्र है लोग इसमें गोते लगाना चाहते हैं परन्तु कोई लगवाने वाला चाहिए।

''गुरु विरजानन्द वृद्धाश्रम''

6. आर्य समाज में विद्वानों की, लगन रखने वालों की, घर फूंक तमाशा देखने वालों की कमी नहीं है, परन्तु यह प्रचारक अर्थात् भजनीक उपदेशक वानप्रस्थी सन्यासी और ब्रह्मचारी जब प्रचार क. 2 अशक्त हो जाते हैं तो उनके जीवन यापन की पूरी सुविधा से युक्त ''गुरु विरजानन्द वृद्धाश्रम'' मैं खोलना चाहता हूं, जिसमें अशक्त आर्य प्रचारकों को फ्री, भोजन, वस्त्र, आवास, औषधि तथा अन्त में सम्मान सहित वैदिक-रीति अनुसार संस्कार करना इस आश्रम का लक्ष्य होगा । क्या कोई माई का लाल आर्य समाजी है ? जो मेरी इच्छा को पूर्ण कर दे, मैं अपनी सारी शक्ति उपरोक्त आश्रम को देने को तैयार हू । इस काम से आर्य समाज से कलंक मिट जाएगा प्रचारकों को नव जीवन मिलेगा । लोग उछल-2 कर वानप्रस्थी और सन्यासी बनेगे।

''सरस्वती गद्दी''

7 आर्य समाज का एक ''अकाल तख्त'' होना ही चाहिए, उसे मैं ''सरस्वती गद्दी'' के नाम से चालू हो प्रयत्न करूगा । मैं यति मण्डल से प्रार्थना कर चुका हू और करता ही रहुंगा कि अजमेर, उदयपुर या टंकारा मे यह गद्दी हो जिसमे आर्य समाज के पूजनीय सन्यासियों का वहां ठहराव होगा, वहां कोई चुनाव नहीं होगा, वे तीनों सन्यासी अथवा उत्तराधिकारी पहले से ही ''चयन'' कर दिया करेंगे ! आर्य समाज से सम्बन्धित सभा संस्थाओं की समस्याओं का समाधान ''सरस्वती गद्दी'' में हुआ करेगा, सरस्वती गद्दी का निर्णय सर्वमान्य एवं अन्तिम होगा, उस निर्णय को कोर्ट में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस गद्दी से आर्य समाज में आध्यात्मिकता का प्रचार-प्रसार और प्रभाव बढ़ेगा और आर्य समाज जगमगा उठेगा।

''कुर्सी नहीं कर्त्तव्य''

8. मैं यह शब्द हृदय मन्दिर से लिख रहा हूं, बड़े ही दुःख से लिखना पडता है, कि आज प्रायः कई लोगो को केवल-प्रधान, मन्त्री या मैनेजर बनने की चिन्ता है, यही जीवन के पतन का कारण है, यही कारण लोगो का आर्य समाज से पीछे हटने का बना है । महर्षि का ऋण कोई समझता नहीं, शताश कोई देता नहीं । पहले आर्य लोग धन से धर्म कमाते थे, भूखों को अन्न-नंगों को कपड़ा, विद्यार्थियों को छात्र वृत्तियां देते थे, परन्तु आज कल धार्मिक संस्था का अधिकारी बन कर धर्म से धन कमाते हैं । सेवक कहलाते हैं स्वामी बने बैठे हैं । मुझे एक व्यक्ति ने कहा था कि जहां सांप होता है वहां धन होता है, परन्तु मैं कहना चाहता हूं जहां धन होता है वहां सांप आ जाते हैं । आओ ! हम ऋषि के सच्चे अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज पं लेखराम जी आदि-2 से त्याग की शिक्षा लेकर ऋषि ऋण चुकाने का दृढ सकंल्प करे।

''आर्य समाज के पर्वो में विशेषता लाना''

9 आर्य समाज के कुछ पर्वो को नए शब्द जोड़कर मनाने का निश्चय करना चाहिए, जैसे आर्य समाज स्थापना दिवस को ''एकता दिवस'' ऋषि निर्वाण दिवस दीपावली को, ''संकल्प दिवस'', वेद सप्ताह को ''प्रेरणा दिवस'' और ऋषि बोधोत्सव को ''भक्ति दिवस'' के नाम से धूम-धाम पूरी सज-धज और हर्ष पूर्वक मनाएं। यह भाषा नहीं, हृदय के उदगार हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि आर्य जनता मुझे पूरा सहयोग देगी । मैंने बिल्कुल संक्षिप्त लेख लिखा है, केवल आपके हृदय में उतारने की भावना से ।

सम्पादकीय...

राष्ट्रीय पर्व गणतन्त्र दिवस

हमारे देश में दो राष्ट्रीय पर्व मनाए जाते हैं । एक है 15 अगस्त जिस दिन 1947 में हमारा देश आजाद हुआ था । इस दिन को हम स्वतन्त्रता दिवस के रूप मे प्रति वर्ष मनाते हैं । दूसरा है 26 जनवरी इस दिन को हम गणतन्त्र दिवस के रूप में मनाते हैं । इन दोनों पर्वो को मनाते समय हम अपने देश के बारे में चिन्तन करते हैं । सैंकडों वर्षो की गुलामी के बाद 15 अगस्त 1947 को हमारा देश आजाद हुआ था । यह आजादी हमें कैसे प्राप्त हुई है यह सब बुद्धिजीवी लोग जानते हैं । इसके पश्चात् ही हमारे देश में गणतन्त्र राज्य आरम्भ हुआ है । हमारे देश में जनता द्वारा चुनी हुई सरकार ही हमारे देश को चलाती है । हमें आजाद हुए 53 वर्ष हो चुके हैं परन्तु आज भी हमें अपने देश में परतन्त्रता के कई चिन्ह नजर नहीं आते हैं।

आज हमारे देश की परिस्थितियां फिर बदल रही है विदेशी लोग आज फिर भारत मे घुसपैठ कर रहे हैं। कहीं आतंकवाद कहीं अलगाववाद भडका रहे है । देश पर फिर संकट के बादल मंडराने लगे हैं । इन बदलती हुई परिस्थितियों को देखते हुए देश भक्त लोग फिर कुछ चिन्तित रहन लगे हैं । देश की बाहर से आज हमारी सीमाएं बहुत हद तक सुरक्षित हैं । हमारे सैनिक आज देश की रक्षा करने मे समर्थ है परन्तु आज देश के अन्दर कुछ शत्रु लोगों ने अपना जाल फैला रखा है और वह लोग हमारे देश में विघटन पैदा कर रहे हैं ।

26 जनवरी को गणतन्त्र पर्व को मनाते हुए हमारे देश के सभी देश भक्तों को यह प्रण करना चाहिए कि हम देश में विघटन पैदा करने वाले तत्वों से देश की रक्षा करेगे । अलगाववाद और आतंकवाद को समाप्त करने मे सरकार को अपना पूरा-पूरा सहयोग देंगे ।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

मकर संक्रान्ति पर्व

14 जनवरी रविवार को हमारे देश में मकर सक्रान्ति का पर्व मनाया जा रहा है । प्रतिवर्ष हम इस पर्व को बड़े उत्साह से मनाते हैं। इस बार यह रविवार को आ रहा है इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजें इस पर्व को बड़े उत्साह से मनाएं । 13 जनवरी को लोहडी का पर्व है । पंजाब में यह पर्व भी बडे उत्साह से मनाया जाता है।

प्रत्येक आर्य समाज मे सभी पर्व मनाए जाने चाहिए। पर्वो को मनाने से आम लोगो में उत्साह बढता है । सगठन को बल मिलता है और यज्ञादि पवित्र कार्य करने से मन को शान्ति प्राप्त होती है ।

सूर्य 6 माह दक्षिण की ओर होकर और 6 माह उत्तर की ओर होकर निकलता है। इन दोनों को दक्षिणायन और उत्तरायन नाम से पुकारा जाता है। मकर सक्रान्ति से उत्तरायन आरम्भ होता है । इस पर्व से दिन बढने आरम्भ हो जाते हैं और रात्रि घटने लग जाती है । अर्थात् प्रकाश बढ़ता है और अधकार घटता है । इस लिए इस पर्व को महत्व दिया जाता है । क्योंकि प्रकाश पुण्य का प्रतीक है और अन्धकार पाप का प्रतीक है । ससार में जब-जब पु[illegible] बढ़ता है तो शान्ति स्थापित हो जाती है और जब पाप बढता है तो अशान्ति पैदा हो जाती है । आज के युग मे पाप बढता जा रहा है । पापी लोग आगे बढ़ रहे है, धर्मात्मा लोग पीछे हट रहे हैं। आज पाप का, बेईमानी का, भ्रष्टाचार का बोल बाला है । ऐसी अवस्था में प्रत्येक आर्य बन्धु को यह विचार करना होगा कि हम पुण्य की कैसे वृद्धि कर सकते है और पाप तथा पापी लोगों को कैसे समाज से दूर रख सकते है ?

इस पर्व को मनाते हुए हमें इस विषय पर विचार करना चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि हम धर्मात्मा लोगो का ही साथ देंगे और उन्ही के साथ मिल कर कार्य करेगे । इसलिए इस पर्व को मनाते हुए सभी आर्य बन्धु व बहनें यह सकल्प करें कि हम पुण्य के मार्ग पर सदा आगे बढ़ते रहेंगे ।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

अन्तरंग सभा व आर्य विद्या परिषद की कार्य समिति की बैठकें 21-1-2001 को जालन्धर में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अन्तरंग सभा की एक आवश्यक बैठक दिनांक 21-1-2001 दिन रविवार को सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर में प्रात: 11 बजे होनी निश्चित हुई है ।

इसके साथ ही आर्य विद्या परिषद की कार्य समिति की बैठक भी 21-1-2001 को ही दोपहर 1 बजे सभा कार्यालय में होनी निश्चित हुई है जिसकी सूचना सभी अन्तरंग सदस्यो व आर्य विद्या परिषद की कार्य समिति के सदस्यो को दे दी गई है । इसलिए सभी सदस्यों से प्रार्थना है कि वह 21-1-2001 को प्रात: 11 बजे सभा कार्यालय में समय पर पधार कर दोनों बैठको मे सम्मलित हों । इन बैठकों में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की उन्नति के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया जाएगा तथा कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाएगे । आज पंजाब में आर्य समाज के संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि कई स्वार्थी लोग सभा और आर्य समाज को हानि पहुंचाने में लगे हुए हैं । इन लोगों से आर्य समाज और सभा की रक्षा कैसे की जाए इस विषय पर मुख्य रूप से विचार किया जाएगा ।

—के.के. पसरीचा
सभा कार्यकर्त्ता प्रधान

1-2 दिसम्बर, 2000 को आर्य समाज मंदिर मार्ग, नई दिल्ली में आयोजित आर्य नेताओं की संगोष्ठी में स्वीकृत प्रस्ताव

21वीं शताब्दी के लिए आर्य समाज का घोषणा पत्र तैयार करने तथा आर्य समाज को राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूरी तेजस्विता से उभारने के लिए सक्रिय आर्य कार्यकर्त्ताओ की दो दिवसीय सगोष्ठी 1-2 दिसम्बर, 2000 को सम्पन्न हुई । इसमे सर्वसम्मति मे स्वीकृति घोषणा पत्र का आर्य जगत के प्रबुद्ध बुद्धिजीवियों ने जोरदार स्वागत किया है । पिछले 32 वर्षो से स्वामी इन्द्रवेश एवं स्वामी अग्निवेश जी के सान्निध्य में काम किए जुझारू युवा साथियो ने सकल्प लिया है कि आगामी अप्रैल-मई मे आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के अवसर पर 125 जीवनदानी निम्नलिखित कार्यक्रम को लागू करने के लिए सर्वात्मना आहुति देगे।

1 आर्य समाज एक आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक मुद्दों पर वैचारिक आन्दोलन है, संकीर्ण अर्थों मे धार्मिक नहीं है, मात्र हिन्दुओं का एक सुधारवादी सम्प्रदाय नहीं है अपितु विश्व के समस्त सगठित धर्मो एवं विचारधाराओ का प्रखर समीक्षक है ।

2 आर्य समाज का कार्यक्षेत्र समस्त विश्व का मानव समाज हे । विश्व मे विभिन्न राष्ट्रीयताओ मत-मतान्तरो एवं भाषाओ का प्रचलन है । इसलिए आर्य समाज के प्रचार मे स्थानीय राष्ट्रीयता, स्थानीय भाषा व बोली एव सास्कृतिक प्रतीको की प्राथमिकता आवश्यक है । अत: सभी स्थानीय जन समूहो के प्रति समान आदर भाव से प्रचार शैली विकसित की जाए ।

3 दूसरा से जुडने का अथवा दूसरो. को जोडने का तरीका वे तमाम् मुद्दे होने चाहिए जिन पर हमारी पूर्ण परस्पर मतैक्यता (सहमति) हो-इन मुद्दो को सामाजिक सहकर्म का आधार बनाकर मत भिन्नता के मुद्दो पर सवाद स्थापित किया जाए । आचार विचार भिन्नता के बावजूद मानवीय सम्बन्धो मे यथासभव मधुरता बनी रहे-कडुवाहट अथवा हिंसात्मक प्रतिरोध को हर तरीके से नकारा जाए । सहमति के मुद्दों के आधार पर जन-आन्दोलन चलाएं । जन-आन्दोलनों के लिए अनेक मोर्चे खोले जाएं जैसे साक्षरता, शाकाहार, नशाबन्दी, स्वभाषा, बाल-मजदूरी, बंधुआ मजदूरी, आदि । एक मोर्चे की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति को दी जाए । वह मुख्य रूप से उसी कार्य के प्रति समर्पित रहे।

4 वैदिक मान्यताओं पर आधारित तथा आर्य समाज के दूसरे नियम में परिभाषित परमेश्वर की ही उपासना को लक्ष्य निधारित कर व्यक्ति को दैनिक साधना मार्ग से राग-द्वेष रहित होकर समता में स्थित होने की प्रेरणा दी जाए और सामाजिक न्याय की अवधारणा को पुष्ट करते हुए सामाजिक संघर्ष को तेज किया जाए । सामान्य परिस्थिति मे अपेक्षाकृत कमजोर को सशक्त करने का उपाय हो ।

5 आर्य समाज के 10 नियम अपने आप में एक समतामूलक आस्तिक समाज की वैश्विक परिकल्पना को साकार करने के लिए पर्याप्त है । सामान्य रूप से इन 10 नियमों को स्वीकार करने वाले व्यक्ति को आर्य समाज की सदस्यता दी जाए । उप नियमों तथा आचारसंहिता का बंधन आर्य समाज संगठन के वरिष्ठ पदाधिकारियों के लिए सीमित किया जाए ।

6 जिला, प्रान्त, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के आर्य संगठनों के प्रधानो के लिए पूर्णकालिक होना जरूरी होगा । पूर्णकालिक कार्यकर्त्ता एवं प्रधान आदि की आर्थिक जिम्मेदारी संगठन उठाए और उन्हे सम्मानपूर्वक मानदेय प्रदान करें ।

7 आर्य समाज के नीचे से लेकर ऊपर के पदाधिकारियो को न्यूनतम एक महीने के विशेष प्रशिक्षण से गुजरना चाहिए जिसमें उन्हे साधना, सिद्धान्त एवं संगठन कार्य की विधि में दीक्षित किया जाए। ऐसे ही प्रशिक्षण की व्यवस्था आर्य समाज के समस्त उपदेशको, प्रचारकों, पुरोहितों आदि के लिए भी होनी चाहिए ।

8. आर्य समाज द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं के आचार्य, शिक्षक आदि के लिए तीन महीने से लेकर एक वर्ष के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो । समय-समय पर इन लोगों को एक-एक मास के तीन रिफ्रेसर कोर्स कराए जाएं । विदेशों में प्रचारार्थ इन्हीं विद्वानों में से छ: मास की विशेष ट्रेनिंग के बाद भेजने की व्यवस्था हो । विशेषकर योग आदि विषयों पर अलग से प्रचारक तैयार हों ।

9. आर्य साहित्य के विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन, आर्य पत्रिका के संपादन और आडियो/वीडियो कैसेट्स तैयार कर संचार माध्यमों के सदुपयोग पर जोर दिया जाए । आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि पर आर्यवाणी/वेदवाणी का प्रसारण हो।

10. जन्मना जातिवाद को तोड़कर गुण, कर्म, स्वभाव की समानता में दहेजरहित अन्तर्जातीय विवाह का अभियान चलाते हुए एक आर्य बिरादरी की स्थापना की जाए ।

11 महिलाओं को पुरुषों के बराबर सम्मान एवं अधिकार की स्वीकृति हो तथा नारी उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार बालिका भ्रूण हत्या, दहेज एवं दहेज-हत्या, शराबखोरी, बलात्कार आदि के विरुद्ध प्रचण्ड जनमत खड़ा किया जाए ।

12 शोषण एवं विषमतारहित समाज ही वास्तव में आर्य समाज है, ऐसा मानकर परिवार एव गाव सभा की ईकाईयों को मजबूत किया जाए तथा उपभोक्तावाद की आंधी में जीवन मूल्यों को नष्ट करने वाले भूमण्डलीकरण का विरोध किया जाए । विकास की आध्यात्मिक अवधारणा को जन-जन में प्रतिष्ठित किया जाए ।

13. अगले वर्ष के अन्त तक पूरे भारतीय उप महाद्वीप स्तर की एक विशाल जनजागरण यात्रा की योजना क्रियान्वित हो जो आर्य समाज, वैदिक मान्यताओं तथा महर्षि दयानन्द के क्रांतिकारी व्यक्तित्व को जनमानस में प्रतिष्ठित कर पाखण्ड, गुरुडम, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, जातिवाद, आदि के विरुद्ध आंदोलन खडा करे ।

14. सन् 2001 में जब कि आर्य समाज अपने जीवन के 125 वर्ष पूरे करने जा रहा है, उस समय दिल्ली में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया जाए । उस सम्मेलन में उक्त दस्तावेज पर विचार-विमर्श करने के उपरान्त इसे आने वाले समय के लिए आर्य समाज के नीति-निर्धारण सिद्धांतों एव कार्यक्रमों का चार्टर माना जाए और इसे अमल में लाने के लिए क्रांतिकारी युवा शक्ति का संघर्षशील सगठन खडा किया जाए ।

15 उपरोक्त सभी कामो के लिए अगले तीन माह मे सवा करोड, अर्थात् 125 लाख रु की 'स्थिर निधि' कायम की जाए और इन कामो को अन्जाम दिया जाए ।

शोक समाचार

तपा :-आर्य समाज तपा के प्रधान डा राजकुमार शर्मा तथा वरिष्ठ आर्य समाजी डा यादविन्द्र राय शर्मा जी की माता श्रीमती रुकमनी देवी गत 31 दिसम्बर को प्रात: काल स्वर्ग सिधार गई। वह 90 वर्ष की थी। श्रीमती रुकमनी देवी प्रतिदिन मदिर तथा गीता भवन मे जाकर भगवान की अराधना करती थीं तथा घर में भी हवन आदि का आयोजन करती थी। उनके निधन पर आर्य शिक्षण सस्थाओ तथा आर्य समाज तपा की ओर से शोक व्यक्त किया गया । एस एन आर्य हाई स्कूल, बी एस एन आर्य पब्लिक स्कूल की प्रबन्धक समितियो, छात्रो एवम् अध्यापकों ने प्रार्थना सभाएं करके दिवंगत आत्मा को श्रद्धाजलिया भेंट कीं । आर्य स्कूल तपा के मुख्य अध्यापक श्री सुरेन्द्र शर्मा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अंतरंग सदस्य श्री सी मारकडा ने श्रीमती रुकमनी देवी के जीवन पर प्रकाश डाला । अन्तिम शोक दिवस 10 जनवरी को अग्रवाल धर्मशाला में सम्पन्न हुआ

–मंत्री रामपाल शर्मा

आधुनिक जीवन में वैदिक धर्म की व्यवहारिकता

ले. श्री राम सुफल शास्त्री वैदिक प्रवक्ता, आर्य समाज हांसी।

प्राचीनता एवं आधुनिकता के विषय में वैदिक धर्म की व्यवहारिकता एवं आधुनिक जीवन का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए अथवा अन्तरमन से आत्म चिन्तन करें तो आधुनिक जीवन एवं वैदिक धर्म की व्यवहारिकता में कोई खास अन्तर नहीं है । अपितु बाहरी नजर से देखा जाए तो खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन में प्राचीन काल की अपेक्षा इस समय आधुनिक युग मे काफी कुछ बदलाव आया है।

यदि हम वैदिक धर्म की व्यवहारिकता का आन्तरिक दृष्टिकोण अपनाकर वर्तमान आधुनिक जीवन के व्यवहार एवं अमल में लाएं तो वैदिक धर्म की व्यवहारिकता आधुनिक जीवन के जीने में बिल्कुल भी बाधक नहीं हैं। जैसा कि कहावत भी है कि "जैसी दृष्टि वैसी वृष्टि" अर्थात् जैसी व्यक्ति की सोच होती है वैसे ही व्यक्ति के विचार बनते हैं। व्यक्ति के यदि विचार बढ़िया हो तो व्यक्ति की जीवन शैली भी अच्छी होती है और यदि व्यक्ति के विचार बढ़िया न हों तो उसका जीवन स्तर भी बढ़िया नहीं हो सकता । किसी कवि ने बहुत सुन्दर लिखा है कि-

जब उठते हैं विचार तो उठता है आदमी ।

जब गिरते हैं विचार तो गिरता है आदमी ।

वैदिक धर्म की व्यवहारिकता क्या है ? यह बहुत ही सोचने और विचारने का विषय है । काश ? हम यह जान पाए कि वैदिक धर्म की व्यवहारिकता का वास्तविक महत्व क्या है । तो हमे आधुनिक जीवन मे वैदिक जीवन पद्धति की व्यवहारिक, शैली को बनाने मे कोई कठिनाई नहीं होगी और वर्तमान आधुनिक जीवन मे वैदिक धर्म की व्यवहारिकता के आधार पर एक बहुत अच्छा जीवन जीने की शैली मिल सकती है । आज वैदिक धर्म तथा उसकी व्यवहारिकता का वास्तविक स्वरूप आम तौर पर लोगो को पता ही नहीं है । सच्चाई यह है कि बहुत थोड़े लोग हैं जिन्हे धर्म के विषय में जानकारी है। आज वर्तमान समय में आम तौर पर हर एक व्यक्ति के जो धर्म के विषय में विचार हैं, वे हिन्दू-मुस्लिम-सिख और इसाई के रूप हैं, जिनका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। ये अलग-अलग कुछ लोगों के मत-पन्थ व समुदाय तो हो सकते हैं: परन्तु धर्म नहीं है । क्योंकि धर्म तो एक ही होता है अनेक नहीं । आज धर्म अनेक मानने की वजह से ही हमें वैदिक धर्म के व्यवहारिक जीवन जीने में मुश्किलें पैदा होती हैं । किन्तु जिसे धर्म के सच्चे स्वरूप का ज्ञान है, उसके लिए वैदिक धर्म की व्यवहारिकता एवं आधुनिक जीवन परस्पर इस प्रकार सहयोगी होते हैं, जैसे व्यक्ति के दोनों हाथ परस्पर एक-दूसरे के लिए सहयोगी होते हैं । वैदिक धर्म एक सनातन आचरण पद्धति है । जिसे आज भी अपने जीवन मे आधुनिकता के साथ आचरण मे लाने की महती आवश्यकता है । धर्म एक धारण करने की चीज है, जिसे मनुष्य को हर एक काल में धारण करना चाहिए । चाहे वह प्राचीन काल हो अथवा आधुनिक जीवन का समय हो । यह हर अवस्था मे धारण करना चाहिए । जो व्यवहार मुझे अपने लिए पसन्द नहीं है, वह व्यवहार किसी के साथ नही करना चाहिए। इसी का नाम धर्म को धारण करना कहलाता है ।

हम यदि आधुनिक जीवन मे वैदिक धर्म की व्यवहारिकता अर्थात् प्राचीन पद्धति को लागू करना चाहते हैं तो किसी को कोई अच्छा मार्ग प्रशस्त करने अथवा उपदेश देने की बजाए वह व्यवहार अथवा आचरण पहले स्वयं पर लागू करें या फिर जिसे अच्छा मार्ग बताना है तो पहले उसकी मानसिकता को अच्छे मार्ग में चलने के योग्य बनाना चाहिए । उदाहरण के तौर पर एक बहुत ही अच्छे आचरण वाला व्यक्ति है । जो अपने रिश्वत खोर-बेईमान, गरीबो पर शोषण करने वाले मालिक को भी एक अच्छे रास्ते पर चालने का सपना देखता है और नौकर अपने मालिक को अपना समझकर उसे अच्छी सीख देता है किन्तु मालिक नौकर की अच्छी सीख नहीं सुनना चाहता बल्कि मालिक यह चाहता है कि नौकर सौ-दो सौ ज्यादा ले ले मगर कोई उपदेश न दे, क्योंकि मालिक के मन मे नौकर के प्रति केवल मात्र नौकर की ही भावना है । जब कि नौकर अपने मालिक के प्रति मालिक के अलावा एक अपनत्व भाव भी संजोए हुए है । इस स्थिति में नौकर को चाहिए कि वह अपने मालिक के विचारों मे नौकर को नौकर के इलावा उसे अपना हितैषी भी मान सके। जब तक दोनों परस्पर एक-दूसरे को अपना नहीं मानेंगे, तब तक नौकर अपने मालिक को चाहते हुए भी उसे सीख नहीं सीखा सकता। अगर प्रयास करने पर भी अभिमान वश मालिक उसे अपना मानने को तैयार नहीं है तो नौकर को चाहिए कि अपने मालिक को उपदेश अथवा अच्छी सीख देने की बजाय उन बातो को वह स्वय अपने जीवन मे धारण करे।

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि जैसे मालिक ओर नौकर का सम्बन्ध एक आधुनिक (सासारिक) जीवन है । ओर दोनो का एक दूसरे के प्रति इन्सानियत का व्यवहार करना ही एक वैदिक (सनातन) धर्म की व्यवहारिकता है ।

अत: आधुनिक जीवन को वैदिक धर्म की व्यवहारिकता के साथ समन्वय कर दे अथवा वैदिक (सनातन) जीवन पद्धति को वर्तमान जीवन पद्धति के साथ जोडकर जीने का प्रयास करे तो आधुनिक जीवन में वैदिक धर्म की व्यवहारिकता सार्थक सिद्ध हो सकती है ।

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस एवं वार्षिक उत्सव

दिनांक 23, 24 दिसम्बर को आर्य वीर दल हांसी द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस एवं वार्षिकोत्सव बडी धूम-धाम से मनाया गया। जिसमे प्रथम दिन प्रभात फेरी एव सायकाल महिला-सम्मेलन का आयोजन किया गया । दूसरे दिन प्रात. 8 से 11 बजे तक यज्ञ-भजन एव प्रवचन का कार्यक्रम हुआ ।

इस शुभ अवसर पर यज्ञ के ब्रह्मा स्थानीय आचार्य रामसुफल शास्त्री, मुख्य युवा ओजस्वी वक्ता आचार्य योगेन्द्र वीर भारती (पंजाब) विदुषी बहन श्रीमती मुदेश शास्त्री (हिसार), श्री राम दिनामल (हासी), बाबू सुरेन्द्र जैन एडवोकेट, भजोनपदेशक जयर सिंह ख्यारी, श्रीमती शन्नो देवी ठुकराल प्रधाना स्त्री समाज (हिसार) एव श्रीमती उषा राठी पार्षद (हासी) आदि विद्वानो एव महानुभावो ने अपने-अपने विचार रखे । इसी के साथ गायत्री विद्या मन्दिर एव आर डी पब्लिक स्कूल हासी के बच्चो ने रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

इस कार्यक्रम मे ध्वजारोहण श्री अत्तर सिंह सैनी पूर्व मन्त्री हरियाणा सरकार के कर-कमलो से हुआ ।

–राजेश शर्मा, (कौशिक)

आर्य समाज सुजानपुर का चुनाव

आर्य समाज सुजानपुर (गुरदासपुर) का वार्षिक चुनाव निम्न प्रकार हुआ ।

प्रधान :-वेद प्रकाश उप्पल । उप प्रधान :-श्री उदय भाटिया । मन्त्री :-श्री रेवती रमन । उप मन्त्री .- श्री विनोद भण्डारी । कोषाध्यक्ष.-श्री सुभाष चन्द्र सोनी ।

अन्तरंग सदस्य :-

डा भारत भूषण, श्री शाम सुन्दर शर्मा, श्री तिलक राज महाजन श्री महिन्दर प्रताप पुरी, श्री देवेन्द्र कुमार ऊप्पल, श्री प्रबोद्ध सोनी, श्री ओम प्रकाश उप्पल, श्री विनोद महाजन ।

सर्वहित परतन्त्रता ही सर्वसुख स्वतन्त्रता का मूल है

आचार्य आर्य नरेश "वैदिक गवेषणक" उद्गीथ साधना स्थली ग्राम-डेहर, डाक-[illegible] (हि. प्रदेश)

ससार में जैसे-जैसे ज्ञान-विज्ञान तथा प्रचार तन्त्र के द्वारा जनता प्रबुद्ध हो रही है ठीक वैसे-वैसे ही विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अधिकाधिक स्वतन्त्रता और सुख की कामना करने लग गया है। एक छोटे से छोटे व्यक्ति और कम से कम पढ़े-लिखे व्यक्ति मे भी सब बन्धनो से मुक्त होकर स्वेच्छापूर्वक जीने की भावना जागृत हो गई है। सुख और स्वतन्त्रता की प्रतिस्पर्धा मे यह दिखाई दे रहा है कि सुख और स्वतन्त्रता प्राप्त की अपेक्षा बढ़ते जा रहे हैं अपितु कम-हो गए है। आनन्द सुख की कामना मे आज प्रत्येक व्यक्ति चतुर व्यक्ति स्वच्छन्दता को ही स्वतन्त्रता समझकर व्यक्तिगत स्वार्थहित सब नियमो को तोड़कर मनमानी का जीवन जीने पर उतारू हो चुका है।

क्योंकि ससार की इस भीड़ मे प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको दूसरे से अधिक चतुर समझता है अतः वह अपनी तथाकथित स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए किसी भी दूसरे व्यक्ति की कोई चिन्ता नहीं करता। जिसका परिणाम आज का अनुशासन हीन समाज है। समाज मे जीते हुए यदि हम अन्य सब लोगो की उपेक्षा करके सुख और स्वतन्त्रता चाहेंगे तो क्या यह सम्भव हो सकेगा? कदापि नहीं। कारण, जैसे कि हम अपनी स्वतन्त्रता और सुख के लिए चिंतित हैं ठीक वैसे ही समाज मे रहने वाले अन्य लोगो की भी यही स्वाभाविक इच्छा है। परन्तु यदि प्रत्येक व्यक्ति अन्य लोगो की उपेक्षा करके सुख चाहेगा तो उनको सुख के स्थान पर दर सारे दुःख और स्वतन्त्रता के स्थान पर ढेर सारी चिन्ताएं ही उपलब्ध होगी। उदाहरणार्थ - किसी राजमार्ग पर यात्रा करते हुए अथवा किसी नगर की व्यस्त भरी सड़क पर चलते हुए यदि हम चाहे कि बस केवल हमारी ही गाड़ी आगे निकले और इसमे कोई व्यक्ति, कोई गाड़ी अथवा कोई नियम आड़े नही आवे। हम जैसे भी चाहे, सड़क के जिस ओर भी चाहे, गाडी को दौड़कर आगे ले जाए तो क्या यातायात के नियमो को तोड़कर कोई व्यक्ति अपने घर पर सुरक्षित पहुच सकेगा? क्या बाए अथवा दाए किसी भी ओर स्वच्छन्दता से अपनी गाड़ी चला लेने पर सड़क का यातायात चल सकेगा? कदापि नही। क्योंकि हमारे पीछे से एव सामने से आने वाले लोग भी बिना किसी नियम के तथाकथित स्वतन्त्रता को पूर्ण करने के लिए एव शीघ्रता से पहुचने के सुख को प्राप्त करने हेतु ऐसा ही करना चाहेंगे। जिसका परिणाम गाडी की तीव्र गति के स्थान पर यातायात का अवरुद्ध होना,और शीघ्र घर पहुचने के सुख के स्थान पर दुर्घटनाग्रस्त होकर किसी हस्पताल में भयंकर दु:ख को झेलना होगा।

इस उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि यदि समाज में रहते हुए हमे अधिक सुख-स्वतन्त्रता चाहिए तो हम सबको एक सर्वहितकारी नियम में बधने की परतन्त्रता को स्वीकार करना होगा। यह बात आज से लगभग डेढ शताब्दी पूर्व विश्वमित्र आर्य समाज के सस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कही थी। यदि हम तथाकथित स्वतन्त्रता के पश्चात् देव दयानन्द द्वारा प्रतिपादित विश्व शान्ति के दस नियमों मे से अन्तिम नियम को अंगीकार कर लेते तो निश्चित रूपेण आज के भारत का वातावरण इतना भयावह कभी न होता। ऋषिवर लिखते हैं-"प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने मे परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहे।" (आर्य समाज का 10वां नियम)

आज अत्यन्त दु:ख एव आश्चर्य का विषय है कि ज्ञान-विज्ञान की अत्यधिक उन्नति होने पर भी, देश के चप्पे-चप्पे मे विद्यालयो एव महाविद्यालयो का जाल बिछा होने पर भी और पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शिक्षित लोगो की सख्या अधिक होने पर भी समाज में अनुशासनहीनता, शत्रुता, द्वेष, अपराधो की संख्या एवं मानसिक तनाव निरन्तर बढ़ रहे हैं। जिसका मौलिक कारण है-सर्वहितकारी नियम पालन का अभाव। जिसे आज का तथाकथित बुद्धिजीवी व्यक्ति इसलिए स्वीकार नहीं करता क्योंकि ऐसा करके वह अपनी स्वतन्त्रता को भंग हो गई, समझता है। ऐसे समय मे वह दूसरे की स्वतन्त्रता की भावना को भूल जाता है। इसीलिए महर्षि दयानन्द ने कहा कि-प्रत्येक व्यक्ति को सर्वहितकारी नियम पालने मे परतन्त्र रहना चाहिए। देव दयानन्द द्वारा प्रस्तुत यह सर्वहित परतन्त्रता ही वास्तविक सुख और स्वतन्त्रता का मूल है। हम एक और उदाहरण के द्वारा विषय को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं-एक व्यक्ति जीवन को सुख-सुविधाओं को एकत्रित करने के लिए किसी सस्था मे कार्यरत था। उस सस्था के आने जाने, काम करने, उठने-बैठने तथा खाने-पीने के नियम निश्चित थे। दो-चार दिन के पश्चात् उस कार्यकर्ता ने कहा-"मै गुलाम बनकर कार्य नहीं कर सकता। इन नियमो को पालना और परतन्त्र होना मैं उचित नहीं समझता। मैं एक स्वतन्त्र प्राणी हूं। मैं अंकुश में रहना, पसन्द नहीं करता। मैं तो अब अपनी ही सस्था चलाऊगा। संस्था प्रारम्भ हुई। अधिक लाभ के लिए वस्तुओं तथा समय का सदुपयोग आवश्यक था। अतः उसने भी कार्यकर्ताओं के लिए आने-जाने, खाने-पीने, मशीनों पर कार्य करने व उनका प्रयोग करने के नियम प्रसारित कर दिए। उसकी संस्था मे उसका एक साथी जो पूर्व संस्था में कार्य कर चुका था भी कार्यरत था। उसने इस सस्था में इन सब नियमो को देखकर अपने उस मित्र एवं मालिक को कहा-"देखो भाई साहब! अब आप उन्ही सब नियमों का अकुश हम पर लगा रहे हैं जिनको आप गुलामी और परतन्त्रता की संज्ञा देकर छोड आए थे। इस बात को सुनकर उसका मित्र देखता रह गया और कुछ न कहता हुआ चुपचाप गर्दन झुकाकर खड़ा हो गया।"

पाठकवृन्द! मानव समाज में जीते हुए यदि हमे पूर्ण सुख और तनाव रहित शान्ति चाहिए तो महर्षि देव दयानन्द का सर्वहितकारी परतन्त्रता का यह नियम आज समाज के प्रत्येक स्तर पर वर्ग के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। कुछ वर्ष पूर्व स्वच्छन्दता को ही स्वतन्त्रता मानकर जीने वाले रजनीश की पूना में एक लहर चली थी। रजनीश कहता था सब बन्धनो को तोड़कर मुक्त हो जाओ। और ऐसा ही उसने किया भी। अर्थात् सब सामाजिक नियमो को ताक पर रखकर नग्नता का प्रदर्शन और अश्लीलता का वातावरण योग समझा जाने लगा। उन्हीं दिनो देश के एक प्रबुद्ध आर्य युवक ने उसके आश्रम मे पहुचकर उससे वार्तालाप करने के लिए समय ले लिया। समय नपा-तुला था ओर उतने ही समय मे उस युवक को अपनी बात पूर्ण करनी थी। विषय था कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने मन की तथाकथित इच्छा पूर्ण करने के लिए स्वच्छन्द हो जाए जिसे आप स्वतन्त्रता कहते हैं तो क्या समाज मे सुख बढ़ेगा या दु:ख? क्योकि जब हर व्यक्ति समाज मे अपनी मनमानी चलायेगा तो उसके स्वच्छन्द व्यवहार से प्रत्येक दूसरे व्यक्ति को हानि, तनाव और कष्ट निश्चित रूपेण होंगे ओर यह व्यवहार जिसे भूल से प्राय: स्वतन्त्रता कहा जाता है, स्वच्छन्दता ही है। क्योकि स्वतन्त्र में भी एक तन्त्र है अर्थात् एक आत्मिक सूत्र है जो सब आत्माओ के हित मे है। परन्तु स्वच्छन्दता तो पूरी मनमानी है। प्रश्न का उत्तर रजनीश के पास नहीं था। वह हड़बड़ाया ओर बोला-"मेरी बात तुम्हारी बुद्धि मे परे है। मेरा समय नष्ट मत करो और यहां से चले जाओ। और वैसे भी तुम्हें बातचीत के लिए दिया गया समय समाप्त हो चुका है। जैसे ही उस युवक ने समय का नियम सुना तो उसने आक्रोश में आकर कहा-"मैं अब तुम्हारी ही तरह स्वतन्त्र हू और मेरी इस स्वतन्त्रता को तुम भंग नहीं कर सकते। अर्थात् मैं भी सब नियमो से ऊपर हूं और मैं जितनी देर चाहू तुम्हें मेरी बात सुननी होगी और यदि तुम आनाकानी करोगे तो फिर मेरी मनमानी मार-पिटाई तक भी हो सकती है। रजनीश हक्का-बक्का रह गया और उसने हाथ जोडकर बडी कठिनाई से उस युवक से छुटाकारा पाया।" (विशेष जानकारी के लिए लेखक की अन्य पुस्तके पढे)

परिवारों में हम देखते है कि बच्चे यह नहीं चाहते कि माता-पिता उन पर नियमों का अकुश लगाएं। विद्यालय मे विद्यार्थी, कार्यालयों मे कार्यकर्त्ता, राष्ट्र मे राष्ट्र के अधिकारी भी यही चाहते हैं कि उन पर किसी प्रकार के नियम का प्रतिबन्ध न लगे। वे सब स्वच्छन्द रहे परन्तु सज्जनवृन्द! क्या ऐसा होने से कोई भी सुखी हो सकेगा? कदापि नही। आज इस तथाकथित स्वतन्त्र भारत के उच्छृखल समाज मे जो कुछ भी सुख अथवा स्वतन्त्रता दिखाई दे रहे है, उनका कारण वे कुछ मानवतावादी, धार्मिक लोग हैं जो कि सर्वहितकारी अनुशासन की परतन्त्रता मे बधकर ठीक समय पर निर्धारित स्थान पर, उचित साधना के द्वारा कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। यदि बच्चो की भाति माता-पिता भी पालन-पोषण के दायित्व की परतन्त्रता मे न बधे और उन्हें समय पर सब सुविधाएं न दें तो फिर बच्चो के सुख का क्या बनेगा? यदि बस, रेल राशन, बिजली, पानी हस्पताल आदि के सभी अधिकारी भी अन्य कुछ कर्त्तव्यहीन लोगो की ही भाति पूर्ण रूपेण स्वच्छन्द हो जाए तो फिर जनता के सुख और स्वतन्त्रता का क्या बनेगा? यदि सीमा के प्रहरी वीर सैनिक एव उनके सभी अधिकारी भी यही सोचे कि हम भी क्यों परतन्त्र बनकर यही खड़े और अड़े रहे? हमारी इच्छा होगी तो सीमा को देख लेगे अन्यथा नहीं। तो फिर देश मे एक कारगिल नही सभी सीमाएं कारगिल बन जाएगी और देश का कोई भी तथाकथित स्वतन्त्रता चाहने वाला स्वच्छन्द व्यक्ति सदा के लिए गुलामी की जंजीरों में जकड लिया जाएगा।

अतः पाठकवृन्द! महर्षि देव दयानन्द के शब्दो में यदि हमे सर्व सुख स्वतन्त्रता चाहिए तो उसकी प्राप्ति के लिए सर्वहितकारी सामाजिक नियमो में परतन्त्र रहना ही होगा। यही पूर्ण सुख का मूल मन्त्र है। इसलिए प्रत्येक देश के नागरिक को चाहिए कि वह अनुशासन युक्त जीवन को कभी दु:खदायी न समझे। अनुशासन से हमारा अभिप्राय एक ऐसे वातावरण से है जहां प्रत्येक व्यक्ति अपने ठीक समय और उचित स्थान क्रियाशील साधनों में सुसज्जित होकर प्रसन्नता एवं पुरुषार्थ पूर्वक कर्त्तव्य के पालन करने के लिए अडिग एवं तत्पर रहता है।

विश्व-शान्ति विषयक वैदिक शिक्षाएं

□ डॉ० [illegible], 2313 [illegible], [illegible] गेट, मथुरा, 281001

शाश्वत शान्ति और आनन्द का परम लक्ष्य है । मानव जाति के नेताओं और शुभचिन्तकों के लिए उचित है कि वे शान्ति की उपलब्धि के उपायो पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें और उन उपायों को अपनाने के लिए अपने अनुयायियों को प्रेरित करें जिससे अखिल विश्व में शान्ति व्याप्त हो जाए ।

शान्ति विषयक वैदिक शिक्षाओं पर संक्षेप में विचार करना युक्तियुक्त होगा । वे शिक्षाएं सार्वभौम हैं । अत: समस्त कालो और समस्त स्थानों पर चरितार्थ होने योग्य हैं ।

ओं शन्नोदेवीभिष्ट आपोभवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः॥

अर्थात्–दिव्य सर्वव्यापक भगवान् आनन्द की प्राप्ति के लिए और पूर्ण सुख एवं शान्ति के भोग के लिए हमें कल्याण दें और हम पर चारो ओर से सुख की वृष्टि करें।

ओ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षश्ठं शान्ति:।

शान्ति प्राप्ति के साधन–एक मात्र प्रार्थना पर्याप्त नहीं है । शान्ति की प्राप्ति के लिए हमें साधन जुटाने होते हैं और उन साधनों के विषय में वेदों से हमें सुनिश्चित निर्देश प्राप्त होते हैं ।

शान्ति की प्राप्ति के लिए सबसे पहली बात जो हमे ध्यान में रखनी होती है वह यह है कि परमात्मा स्थिर शान्ति का स्रोत और उसको प्रदान करने वाला है। दैनिक सन्ध्या की समाप्ति पर हम निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हैं ।

ओं नमः शम्भाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च। मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

सुख एवं शान्ति स्वरूप भगवान को नमस्कार हो, उत्तम सुखदाता भगवान को नमस्कार हो, भगतों के हितकारी भगवान को नमस्कार हो, मंगलमय भगवान को हमारा बारम्बार नमस्कार हो ।

इस प्रकार शान्ति की उपलब्धि के लिए पहली आवश्यक बात प्रभु भक्ति है । यदि सब लोग सच्चे हृदय से परमात्मा के भक्त बन जाएं और उसे समस्त प्राणियों का पिता और माता मानने लग जाएं तो पारस्परिक घृणा, सघर्ष और ईर्षा, द्वेष के लिए स्थान न रहे । वेद ने शिक्षा दी–

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधाते सुम्नमीमहे॥

हे प्रभो, तु हमारा पिता है । तू हमारी दिव्य माता है । अत: आनन्द और शान्ति के लिए हम एकमात्र तुझसे अभ्यर्थना करते हैं ।

ईश्वर के इस पितृत्व का अर्थ है भातृत्व। निम्नलिखित मन्त्र मे हमें स्मरण कराया गया है–

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वा वृधुः सौभगाय। युवा पितास्वपा रुद्र एषां सुदुधापृश्निः सुदिना मरूद्भ्यः।

सब मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं, जन्म से न कोई बड़ा है और न कोई छोटा । समानता के इस भाव को धारण करते हुए सब ऐश्वर्य व उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करते और आगे बढते हैं । परमात्मा सबका पिता और पृथ्वी माता है ।

वेद हमे यह भी शिक्षा देते हैं कि शान्ति की उपलब्धि के लिए वाणी, मन और इन्द्रियों का उचित प्रयोग भी अत्यावश्यक है। इस प्रसग मे निम्नलिखित मन्त्र विचार योग्य है–

इयं व परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मशंशिता।

यथैव संसृजे धीरं तथैव शान्तिरस्तु न. ॥

हमारी यह वाणी जिसका दुरुपयोग ससार मे भयकर विप्लव उत्पन्न कर देता है हमे शान्ति प्रदायिनी होवे । यह शान्ति प्रदायिनी तब होती हे जब ठीक ज्ञान प्राप्त होकर इसकी शक्ति बढती और दूसरो को चमकाने एव परमात्मा का गुणगान करने मे इसका प्रयोग होता है ।

हे माता-पिताओ और बच्चो गुरुओ और शिष्यो, शासको ओर शासितो, पति-पत्नियो । तुम्हारा मन जो संसार मे घोर विनाश व्याप्त कर देता है सबको शान्ति और सुख प्रदान करने वाला हो। मन की शक्ति ठीक ज्ञान ओर प्रभु-चिन्तन से विकसित होती है।

ये इन्द्रियां जिनका दुरुपयोग संसार में घोर उपद्रव व्याप्त कर देता है, सबको शान्ति देने वाली हो। मन की शक्ति ठीक ज्ञान उच्चकर्म और जनहित के कार्यो से विकसित होती है । परमात्मा करें, समस्त संसार में शान्ति व्याप्त हो।

सामाजिक एकता–ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के मन्त्रो मे सामाजिक एकता का बड़ा भव्य आदर्श प्रस्तुत किया गया है जिसके आचरण से शान्ति की समस्या सहज ही सुलझ सकती है ।

आयरलैण्ड के सुप्रसिद्ध कवि, कलाकार और तत्ववेत्ता डा. जेम्स कजिन डी लिट. ने अपनी शान्ति का मार्ग नामक उत्तम पुस्तक मे वैदिक शिक्षाओ पर विचार करके ठीक ही लिखा है:-

प्रेम करना, चिन्तन करना और **कर्म करना** ये तीनो वैदिक भावना के अनुसार निराशा से परिवेष्टित व्यर्थ की क्षणिक बाते नही है अपितु ये तीनों भौतिक प्रक्रिया के प्रतीक हैं जिनमे प्रभु के अनन्दन का पुट लगा होता है। वे प्रति-छाया हैं, नाचती हुई प्रतिच्छाए हैं जो समस्त प्रकाशो के प्रकाश से प्रस्फुटित होती हैं, परन्तु वे प्रतिइच्छाएं अन्धकार की नहीं अपितु प्रकाश की प्रतिच्छाएं होती हैं । उस प्रकार से प्रभु की उस ज्योति में जो भौतिक जगत् के माध्यम से हम तक आती है, मानव समाज को एक आदर्श की उपलब्धि हो सकती है जो अल्पकालीन दम्भ को समस्त प्राणियो के जीवन की पवित्रता के शाश्वत भाव में परिवर्तित कर देगा।

एकमात्र इसी वैदिक आदर्श पर जो विश्व के विवाद के कारणो को दूर कर प्रेम और सहानुभूति की भावनाएं जाग्रत करता है संसार का सुखधाम बनाया जाना सम्भव है।

गुणकारी मूली

डॉ० नरेश सिहाग 'सत्यार्थ शास्त्री', गांव बोहल डॉ. जमालपुर, जि. भिवानी 127035 (हरियाणा)

मूली की सब्जी बनाकर सलाद में और वैसे भी खाई जा सकती है। इसकी प्रकृति तर, गर्म और ठडी है । मूली में औषधीय गुण भी बहुत है । यह मुख्यत· सर्दी मे होती हे ओर भारत के प्रत्येक राज्य में आसानी से मिल जाती हे । मूली के गुण·-

1. पथरी–मूली के बीज 35 ग्राम आधा किलो पानी मे उबाले, जब पानी आधा रह जाए तो छनकर पीय । कुछ दिनो तक लेने से मूत्ररोग Bladder की पथरी गलकर निकल जाती है ।

2 मूत्र कष्ट–आधा गिलास मूली का रस पिलाने से पेशाब के समय होने वाली जलन और वेदना दर्द मिट जाती है ।

3 बवासीर–मूली काटकर उस पर शक्कर डाल कर नित्य दो माह तक खाने से बवासीर में आराम मिलता है ।

4. पेट दर्द–एक कप मूली के रस में नमक और काली मिर्च डालकर पिलाने से पेट दर्द ठीक हो जाता है ।

5. स्वर-भग–आधा चम्मच मूली के बीजो को पीस कर गर्म जल के साथ लेने से गला साफ हो जाता है ।

6. बिच्छू काटना–रोगी को मूली खिलाओ और दंश (काटे स्थान पर मूली का रस लगाये ।

7. गले के घाव--मूली का रस और पानी सामान मात्रा में मिलाकर नमक डालकर गरारे करने से गले के घाव ठीक हो जाते हैं।

8. हिचकी–मूली के चार पत्ते खाने से हिचकी बन्द हो जाती है ।

9. मधुमेह–मूली खाने से या इसका रस पीने से मधुमेह में लाभ होता है ।

10. पीलिया–एक कच्ची मूली नित्य प्रात: उठते ही खाते रहने से कुछ दिनों में पीलिया ठीक हो जाता है ।

मासिक धर्म की कमी के कारण मुंहासे निकलते हों तो प्रात: पत्तों सहित एक मूली नित्य कुछ दिन खाये ।

मूली खाने के बाद गुड़ खाने से डकार में गन्ध नहीं आती ।

त्यागमय जीवन

ओ३म् पर्व देवस्य-नमसा व्यन्तः, अवस्यवः श्रव आपन् अमृक्तम्।
नामानि चित्-दधिरे यज्ञियानि, भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥
(ऋग्वेद-6-1-4)

प्रकृति मानव के लिए शिक्षा का केन्द्र है, मनुष्य यदि उस के पद् चिन्हों पर चले तो कोई किसी प्रकार का झगडा ना हो, मानव भी सुखी रहे, एक-एक कण एक-एक पत्ता शिक्षा देने वाला है, सूर्य नियमबद्ध अपने आपको जला कर प्राणी मात्र को प्रकाश दे रहा है, कभी एक क्षण के लिए भी उसने विश्राम हेतु कार्य को नहीं छोडा, सृष्टि के आदि से उसने अपना कार्य आरम्भ किया, और जीवन के अन्त तक ऐसा ही चलता रहेगा, वह अपना प्रकाश बिना किसी भेदभाव के सब को देता है, इसी प्रकार बादल सब को समान रूप में जल देते हैं, वर्षा अमीर, गरीब, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सब की धरती पर समान रूप से होती है। वृक्ष, पौधे, फल, फूल सब को प्राप्त होते हैं, जो मेहनत करते हैं वे इन्हें प्राप्त कर लेते हैं, मालिक तोड कर फल खाये तो चोर चोरी करके खाये, फल का स्वाद, मिठास सब के लिए एक समान होता है, वृक्ष सबसे दुर्गन्ध लेते हैं और स्वच्छ वायु सब को समान भाव से देते हैं । ये सब प्रकृति के उदाहरण मनुष्य को अपने जीवन मे अपनाने चाहिएं हमें भी दृढ मन से परोपकार और लोक भलाई के कार्य करने चाहिए । महर्षि दयानन्द घर के सुखों को त्याग कर घर से प्रभु दर्शन की अभिलाषा से निकले थे परन्तु गुरु की शिक्षा से समाज कल्याण, परोपकार, लोक भलाई के मार्ग पर चल पड़े, ईंटे और पत्थर भी खाये परन्तु समाज कल्याण में अपना जीवन लगा दिया, अत: वेद का यह मन्त्र हमें शिक्षा देता है कि हमें अपने महापुरुषों के पद् चिन्हों पर चलना चाहिए, हम उनके बताए मार्ग पर चलते हुए ही जीवन में यश कीर्ति को प्राप्त कर सकते हैं । मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपने पिता के व्रत को निभाते हुए माता कैकेयी के आदेश पर 14 वर्ष बनवास में काटे, भाई भरत कुल की रीत को अपनाते हुए भाई को राज्य देने हेतु वन से उसे वापिस लेने गए, वह न आए तो उसकी खड़ाऊ ले आया, यह है निःस्वार्थ राष्ट्र सेवा, प्रबन्ध,

आर्य समाज का छठा नियम है:–

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

–चमन लाल मेहता, मन्त्री गुरुकुल शिल्प विद्यालय, भठिण्डा।

स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा गांधी

ले. श्री रघुवीर आर्य मन्त्री आर्य समाज मॉडल टाउन

1914 में जब गांधी जी अभी दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मूल के लोगों की समस्या सुलझाने में लगे हुए थे, तब उन्हें भारत से अपने परम हितैषी एव मित्र चारली एण्डरूज (C F Andrews) का एक पत्र मिला । पत्र मे अन्य बातों के साथ गाधी जी को भारत लौटने पर तीन व्यक्तियों को अवश्य ही मिलने का आग्रह किया था । इन तीन व्यक्तियो मे एक थे गुरुकुल कांगडी के महात्मा मुन्शी राम ।

गांधी जी अगले वर्ष 9 जनवरी 1915 शनिवार के दिन अफ्रीका से वापिस बम्बई पहुचे । उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है :-"इस साल (1915) हरिद्वार मे कुम्भ का मेला पडता था । उसमें आने की मेरी प्रबल इच्छा थी, फिर मुझे महात्मा मुशी राम जी के दर्शन भी करने थ।" अत: गाधी जी 6 अप्रैल 1915 मगलवार की प्रात: गुरुकुल कांगडी देखने गए । वहां आपने महात्मा मुंशी राम से भेंट की और उनकी बैलगाड़ी से वापिस हरिद्वार आ गए।

फिर 8 अप्रैल को गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की ओर से गांधी जी का अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए महात्मा मुंशी राम जी ने कहा था "मुझे आशा है कि महात्मा गांधी जी भारत के लिए ज्योति स्तम्भ बन जाएंगे। उनकी वाणी आगे चल कर सफल और सार्थक सिद्ध हुई । गाधी जी को "महात्मा" के नाम से सम्बोधन करने का शायद यह प्रथम अवसर था ।

1916 में 18 मार्च से 23 मार्च तक गांधी जी प्राय: हरिद्वार मुख्यत: गुरुकुल कांगडी में रहे । मार्च 18 को गुरुकुल कांगड़ी में अछूतोद्धार सम्मेलन हो रहा था। गांधी जी भी इस सम्मेलन में शामिल हुए । आपने अस्पृश्यता निवारण की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि हिन्दुओं को प्रायश्चित्त की भावना से यह कार्य करना चाहिए।

20 मार्च को गुरुकुल का पुरस्कार वितरण समारोह था। गाधी जी इस समारोह में भी शामिल हुए। आपने कहा "पाठशाल को ग्रामीण जीवन, ग्रामीण शिल्प, खुली हवा, आजादी तथा अपने लोगों की सेवा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना चाहिए।"

इसी दिन गुरुकुल कांगडी के वार्षिक उत्सव में उन्होंने एक मार्मिक भाषण दिया । उन्होंने कहा "उचित धार्मिक भावना हमारी सबसे बडी तात्कालिक आवश्यकता है । हमारी धार्मिक भावना सुप्त है और हम लोग इसी कारण हमेशा भयभीत बने रहते हैं ।"

[illegible] मार्च को उनकी तबीयत ठीक [illegible] भी आर्य समाज भवन [illegible] उन्होंने गुरुकुल के विद्यार्थियों के सामने एक छोटा सा भाषण करते हुए कहा कि अपनी आत्मा के प्रति सच्चा बनना चाहिए। तभी तो वे देश के प्रति भी सच्चे बन सकते हैं । गुरुकुल कागडी के महात्मा मुंशी राम के साथ मार्च 1916 में हुई महात्मा गांधी जी की यह मुलाकात शायद अन्तिम मुलाकात थी, क्योंकि अगले वर्ष 1917 मे ही महात्मा मुंशी राम जी ने सन्यास आश्रम में प्रवेश किया और वे स्वामी श्रद्धानन्द बन गए । सन्यासी बन जाने पर स्वामी श्रद्धानन्द जी केवल गुरुकुल कागडी के न रह कर सफल मानव जाति के बन गए । आपने जन सेवा विशेष कर राष्ट्रीय सेवा में बढ़-चढ कर भाग लेना शुरू कर दिया। महात्मा गाधी जी के आग्रह पर आपने कांग्रेस को सहयोग देना भी स्वीकार कर लिया ।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा [illegible] प्रेस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम् यजुर्वेद

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष : ☎ :292926

सामवेद अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 21 जनवरी 2001 दयानन्दाब्द 177

दयानन्द मठ दीनानगर की वर्तमान स्थिति

किसी समय मे दयानन्द मठ दीनानगर का पंजाब मे अपना एक विशेष स्थान था । पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी जब से बिमार पड़े हैं और उन्हे कम सुनना आरम्भ हुआ है तभी से दयानन्द मठ विवादों के घेरे में आता जा रहा है। पिछले कुछ समय से इस के प्रबन्धकों के बारे में जिला गुरदासपुर में कई तरह की चर्चाए हो रही हैं। अब जब से इसके प्रबन्धकों ने श्री अश्विनी कुमार शर्मा को सहयोग देना आरम्भ किया है तब से यह चर्चाए और बढ़ गई हैं ।

हमे कई लोगो के टेलीफोन आए है और लोग हमसे पूछते हैं कि दयानन्द मठ के प्रबन्धको को क्या हो गया है ? परन्तु हमारे पास इसका कोई उत्तर नहीं है । हम उन्हे क्या बताएं कि इन्हें क्या हो गया है । हम स्वामी सर्वानन्द जी महाराज को अपना पूज्य समझते हैं परन्तु अब उनकी स्थिति ऐसी है कि उन्हे हम अपनी कोई बात समझा नहीं सकते क्योकि वह पिछले कुछ समय से बहुत बीमार चले आ रहे हैं । कई लोग उनकी बिमारी का लाभ उठा कर उनके नाम से कई प्रकार के लेख अखबारों मे दिए जा रहे हैं। उनके हस्ताक्षरों से यति मण्डल ने पैड पर प्रमाण पत्र दिए जा रहे हैं । पूज्य स्वामी जी के नाम का गलत प्रयोग किया जा रहा है। इससे दयानन्द मठ दीनानगर की गरिमा को बहुत बडा धक्का लगा है और आगे चल कर दयानन्द मठ दीनानगर बदनाम हो जाएगा और पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के नाम को भी बट्टा लग जाएगा। हम यहा अपनी ओर से कुछ भी लिखना नहीं चाहते जो गत दिनों समाचार पत्रो मे जो छपा है वही यहा आर्य जनता की जानकारी के लिए देना चाहते हैं। दयानन्द मठ दीनानगर के सम्बन्ध मे गत दिनो दैनिक पत्र पंजाब केसरी, अमर उजाला और दैनिक जागरण मे कई लेख छपे हैं और अब भी छप रहे हैं हम इस समय केवल एक ही समाचार यहा देने लगे हैं यह समाचार तीनो दैनिक पत्रो मे छपा है । समाचार निम्न प्रकार है-

दयानन्द मठ के प्रबंधक अपनी कार्यशैली से विवादों के घेरे में

"दीनानगर, 28 दिसम्बर (निस) । आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सर्वसम्मति से सम्पन्न हुए चुनावो को व्यक्तिगत हितो के कारण तारपीड़ो करने के उद्देश्य से आर्य समाज से भ्रष्टाचार व घपलो के आरोपो में निष्कासित किए गए एडवोकेट अश्विनी कुमार शर्मा के साथ हाथ मिलाने से उत्पन्न हुई स्थिति ने दयानन्द मठ दीनानगर के प्रबन्धकों को विवादों के घेरे मे ला खड़ा किया है ।

आर्य समाज हल्कों में इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया जा रहा है आखिर ऐसी कौन सी परिस्थितियां पैदा हो गई थी, जिनके कारण आर्य समाज में अपना विशेष महत्व रखने वाले दयानन्द मठ ने संवैधानिक व सर्वसम्मति से 17 दिसम्बर को सम्पन्न हुए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के चुनाव का विरोध किया जबकि पंजाब के किसी भी अन्य क्षेत्र से इन चुनावो का विरोध नहीं हुआ, बल्कि पंजाब में कई वर्षो से चले रहे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के दो गुटों के एकीकरण का आर्य समाजी हल्कों ने जहा गर्मजोशी से स्वागत किया, वहीं इसे आर्य समाज के लिए एक शुभ संकेत माना है। इस सब के बावजूद भी जालन्धर मे 24 दिसम्बर को आयोजित की गई तथाकथित बैठक जिसकी अध्यक्षता दयानन्द मठ के स्वामी सदानन्द ने करते हुए इस बैठक को अपने सबोधन में कहा था कि दयानन्द मठ हमेशा विवादो से दूर रहा है । मगर अब जबकि असत्य सत्य पर विजय पाने के प्रयास में है तो हमे सत्य के साथ खड़ा होना पड रहा है। उन्होंने इस कार्यवाही को धर्मयुद्ध आरम्भ होने की भी संज्ञा प्रदान की। उनके इस संबोधन से कई तरह के प्रश्न उठ खड़े हुए हैं कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के 17 दिसम्बर के त्रैवार्षिक अधिवेशन तक तो सब कुछ शांत था । दीनानगर से भी डेलिगेटों के फार्म व फीस पहुंचा दिए जाने की आर्य समाज सूत्रों ने पुष्टि की है । इस अधिवेशन में सारी कार्यवाही शांति पूर्वक ढंग से निपट गई थी । इसमें सिर्फ सभा के पूर्व महामंत्री एडवोकेट अश्विनी कुमार शर्मा को उन पर लगे गंभीर आरोपों के कारण ही दो अन्यों के साथी आर्य समाज से 6 वर्ष के लिए निष्कासित करने के कारण ही क्या इस अधिवेशन की कारवाई को अवैध करार दिया गया। इस निष्कासन के अलावा तो कोई ऐसी कार्रवाई नहीं की गई कि एक बेठक बुला कर उससे गंभीर आरापो के कारण आर्य समाज से निष्कासित व्यक्ति को दोबारा महामंत्री बनाने का तथाकथित फैसला लिया जाए तथा धर्मयुद्ध-शुरू होने की घोषणा की जाए । आर्य समाज इस घोषणा को लेकर असमजस की स्थिति में है कि क्या एडवोकेट अश्विनी शर्मा का निष्कासन सत्य पर असत्य की विजय प्राप्त करने का प्रयास है । सूत्रो का कहना है कि इस सारी कार्यवाही से तो यही स्पष्ट है कि एडवोकेट अश्विनी शर्मा के दयानन्द मठ मे कुछ विशष सम्पर्क सूत्र हैं । इसीलिए शायद वे एडवोकेट शर्मा के निष्कासन से स्वय को भयभीत महसूस कर रहे हो और कहीं इसी कारण तो नही दयानन्द मठ ने 24 दिसम्बर की तथाकथित बैठक को आयोजित करवाने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह कुछ ऐसे ज्वलत प्रश्न हैं, जिनका जवाब जानने के लिए आर्य समाज मे उत्सुकता पाई जा रही है । क्योकि पूजनीय स्वामी सर्वानन्द जी सरस्वती जिनके त्याग सेवा और तप के कारण दयानन्द मठ तपोभूमि के रूप मे पूजा जाता हे व आर्य समाज के साथ-साथ सभी वर्गो मे उनके प्रति अथाह श्रद्धा व प्रेम हे कुछ प्रबन्धकों के कार्य व्यवहार के परिणामस्वरूप मठ के विवादित होने से आर्य समाज मे गंभीर चिन्ता व्याप्त है।"

हम इस समाचार पर कोई टिप्पणी करना नही चाहते परन्तु इतना जरूर लिखना चाहते हैं कि आखिर यह सब कुछ क्यो हो रहा है इसकी जानकारी शीघ्र ही आर्य जनता को मिल जाएगी। अब आर्य जनता जागरूक हो गई है। जिला गुरदासपुर की आर्य जनता दयानन्द मठ की वर्तमान स्थिति से बहुत चिंतित है और हम भी बहुत चिंतित हैं हम जो कुछ सुन रहे हैं यदि वह सब कुछ आगे चल कर सच निकला तो दयानन्द मठ दीनानगर की स्थिति बहुत गम्भीर हो जाएगी ।

इसी स्थिति को देखते हुए महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी ने 4-1-2001 को एक पत्र प्रिसीपल स्वतन्त्र कुमार जी सभा उप प्रधान को पठानकोट लिखा है। वह पत्र भी हम अक्षरश यहा दे रहे हैं ताकि आदरणीय महात्मा प्रेम प्रकाश जी के विचारों से भी जनता के पता चल सके । उनका पत्र निम्न प्रकार है -

श्री स्वतन्त्र कुमार जी
आर्य समाज मेन बाजार, पठानकोट

आर्य कुटिया, धूरी 4-1-2001

श्री आर्य जी, प्रेम भरी नमस्ते ।

1 प्रभो कृपा से आप सपरिवार प्रसन्न होगे, आवश्यक बात यह हे कि स्वामी सदानन्द जी ने अश्विनी कुमार वाली चुनाव सभा की अध्यक्षता करके यति मण्डल का अपमान किया है । यह वही अश्विनी है जिसने प. लेखराम बलिदान शताब्दी पर लोगो को कादिया आने से रोका था।

2 आर्य समाज की भूमि का जो बेची उसका हिसाब नही दे रहा । पूरा विवरण आर्य मर्यादा मे छप चुका है ।

3 हमारी धूरी आर्य समाज को इसी ने नरक बनाया था जिसके कारण सभा के आगे धरना मैंने दिया था उसमे स्वामी सदानन्द मेरे साथ थे। आपको स्मरण होगा ।

4. स्वामी सदानन्द जी गुरु जी को ऊचा सुनने के कारण गलत मार्ग दर्शन करते हैं । जिससे गुरु जी की छवि धूमिल होने की सम्भावना हे ।

5 मैंने स्वामी सदानन्द जी को बल पूर्वक पत्र लिखा था परन्तु पत्रोत्तर नहीं आ रहा । आप जाकर या फोन से समझाओ । बहुत-बहुत धन्यावाद ।

पत्रोत्तर की प्रतीक्षा मे ससार का सबसे सुखी व्यक्ति, प्रेम

आर्य जनता दयानन्द मठ दीनानगर की वर्तमान स्थिति पर स्वय विचार करे कि अब वहां क्या हो रहा है।

-देवेन्द्र नाथ शर्मा

चरित्र ही मानव की सुगन्धि

☐लेखिका अर्चनाप्रिय आर्या, ऊंचागांव (रसमई) मथुरा

हमारे देश में मानव की गरिमा का आधार सदैव चरित्र ही रहा है और उसकी रक्षा के लिए हमारे पूर्वजो से हमारी वीर प्रसविनी माताओ ने अपने प्राणों की भी आहुति दे दी थी । परन्तु आज सर्वत्र अनैतिकता भ्रष्टाचार तथा बलात्कार जैसी घटनाएं हो रही है । वैसे तो सरकार इन पर काबू पाने की कोशिश कर रही है परन्तु हम जड़ में तो खाद, पानी डाल रहे हैं और ऊपर की टहनियो को काटकर ही इस चरित्र हीनता के वृक्ष को सुखाने का असफल प्रयास कर रहे हैं । ऐसे तो इन पर काबू नहीं पाया जा सकता ।

हमारे चरित्र के विषय में महर्षि मनु ने हिमालय की चोटी से घोषणा की थी-

एतद्देश प्रसूतस्य साकशादग्र जन्मन: ।

स्वं-स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्व मानवा: ॥

अर्थात् समस्त भूमण्डल के मानव भारत मे उत्पन्न ब्राह्मणो के चरणो मे बैठकर अपने-अपने चरित्र की शिक्षा ले ।

परन्तु आज यदि मनु जी हमारे मध्य आ जाए तो वे हमारे चरित्रों का अवलोकन कर चकित रह जाए । शायद आज का युवक अपने चरित्र को भूल गया है जीवन का आधार अमूल्य धन चरित्र उसके पास नहीं है । इसका क्या कारण है ? मैं तो इसका कारण मानती हूं ब्रह्मचर्य का विनाश और ब्रह्मचर्य के विनाश का मूल कारण है वह है दूरदर्शन ।

ये दूरदर्शन जिसे टी.वी. कहते हैं आज नग्नता का प्रचार कर रहा है और इस पर गन्दी-गन्दी फिल्मे प्रसारित करके लड़के-लडकियो के चरित्र को नष्ट किया जा रहा है ।

आज घरो मे डिस कनैक्शन, केवल कनैक्शन आदि चरित्र नष्ट करने के प्रमुख साधन हैं । आज लोगों का बिना टी.वी के मनोरंजन नहीं होता। टी.वी. पर मनोरंजन करते हैं । छोटे-छोटे बच्चे बैठे हैं और उनके साथ दादा-दादी बैठे हैं और वहीं उनके माता-पिता बैठे हैं और उनके साथ-साथ नाना-नानी बैठे हैं और टी.वी. पर क्या चल रहा है तीन-तीन पीढ़ी एक साथ बैठी हैं और टी.वी. पर क्या आता है-'चोली के पीछे क्या है ।' और चीज बड़ी है मस्त-मस्त और अपने दिल पर हाथ रख कर आप कहो कि-चोली वाला गाना सुनकर आपका मनोरंजन होता है या कुछ और ? ये बात खासकर मैं नौजवानों से कह रही हू कि तुम अपने दिल पर हाथ रख कर बताओ कि मान लो तुम्हारे सामने तुम्हारी मां खड़ी है और टेलीविजन पर गाना आता है कि तेरी चोली के पीछे क्या है ? तुम्हें अपनी मां से पूछने की हिम्मत कि तेरी चोली के पीछे क्या है और मान लो तुम्हारे सामने तुम्हारी बहन खड़ी है जो हर साल तुम्हारी कलाई मे राखी बांधती है और तुम्हारे लिए दुआए मांगती है भगवान् से । वह बहन तुम्हारे सामने खड़ी है और गाना आ रहा हो कि 'तू चीज बड़ी है मस्त-मस्त' अपनी बहन से पूछने की हिम्मत है कि तू चीज बड़ी है मस्त-मस्त और जो गीत अपनी मा के सामने नहीं गा सकते बहन के सामने नहीं गा सकते उन गीतो को इन बच्चो को क्यो सिखा रहे हो । जो यह गीत लिखने वाले हैं उनके विषय मे मैं तो मानती हूं कि उन्होने अपनी आत्मा को बेचा है, शरीर बेचा है और अपना सब कुछ बेचा है जो ऐसा गीत लिखते हैं भगवान् उनकी आत्मा को जितनी जल्दी शान्ति दे उतना ही अच्छा । जिस देश में कभी कहा जाता था-

यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता ।

आज उसी देश में गाया जाता है कि 'चोली के पीछे क्या है ?' आज उसी देश में कोई कहता है 'तू चीज़ बड़ी है मस्त-मस्त' इस देश में हमारी संस्कृति बिल्कुल पतन के गर्त में चली गई है जब मैं इस देश के नौजवानों से यह गाते सुनती हूं तो मैं विचार करती हूं आखिर इतना अधोपतन क्यों ? मैं तो कहती हूं कि इस देश के नौजवानों को गाना चाहिए कि 'मेरा रंग दे बसंती चोला' लेकिन गा रहे हैं चोली के पीछे क्या है ? ये संस्कृति, नैतिकता, चरित्रता का नाश हो रहा है यह मनोरंजन नहीं हो रहा है।

एक युग था कि जब लोग अपने चरित्र की पावनता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए विशेष प्रयत्नशील रहा करते थे, किन्तु काल के फेर से भौतिकता के इस युग में मानव अपनी इस दिव्य सुगन्धि को खो बैठा है । आज चरित्र की नहीं, विद्या की भी नहीं, धन की पूजा ही सर्वत्र होने लग गई है और धन के द्वारा व्यसनो को मोल लेना आज का फैशन सा बन गया है । उपनिषद् मे कहा है-

नाविरतो दुश्चरितान्ना शान्तो नासमाहितः।

नाशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेनैव माप्नुयात् ॥ कठो.

'चाहे तुम कितना धन कमा लो, कितने ही विद्वान् बन जाओ चाहे कितनी ही भाषाएं सीख लो, कितने ही डिग्रियों प्राप्त कर लो, कितने ही शास्त्र पढ लो, वेद पाठी भी बन जाओ, परन्तु यदि तुम्हारा चरित्र उत्तम नहीं तो सुनो । सुनो ऐ संसार के लोगो ! तुम्हारा मूल्य दो कौड़ी भी नहीं।

और आजकल यह चरित्र ही सबसे तुच्छ वस्तु बन गई है । स्कूल में अध्यापक महोदय एक कविता पढ़ाते थे-

When Wealth is lost nothing is lost
When health is lost something is lost
When character is lost everything is lost

अर्थात् 'धन चला गया तो समझो कोई हानि नहीं हुई । स्वास्थ्य गया तो काफी कुछ हानि हुई । यदि चरित्र चला गया तो समझो सब कुछ समाप्त हो गया है ।' लेकिन अब यह कविता उल्टे ढंग से पढ़ाई जाती है-

When character is lost nothing is lost
When health is lost something is lost
When Weatlh is lost everything is lost

'चरित्र चला गया तो कुछ नहीं गया, साधारण बात है। जाने दो इसे। स्वास्थ्य चला गया तो कुछ हानि हुई अवश्य, परन्तु धन चला गया तो सब कुछ चला गया। अब विनाश ही विनाश है।' अब सब कुछ उल्टा हो गया है । जो सबसे ऊपर था वह सबसे नीचे आ गया है । जो सबसे नीचे था, वह सबसे ऊपर पहुंच गया है।

परन्तु आज की रीति हो या कल की, यह उचित तो नहीं है । सत्य यह है कि जो व्यक्ति अपने चरित्र को खो बैठता है उसका कोई मूल्य नहीं रहता । भले ही आज वह सुखी दिखाई देता हो उसके पास धन-सम्पत्ति सब कुछ हो, परन्तु स्मरण रखो ! उसके भीतर वाला उसे चैन से नहीं बैठने देगा । चोरी का विचार यदि मन मे आया तो उसका दण्ड मिलेगा अवश्य रात्रि के समय स्वप्न आएगा कि मैं चोरी करके भागा हूं, पीछे दूसरे लोग भागे आते हैं । हांपता कांपता भागा चला जाता हूं और धड़ाम से एक अन्धे कुएं मे जा गिरा हूं । यह है मानसिक पाप का मानसिक दण्ड जो अन्दर वाला देता है । अत: उपनिषद् ने कहा-उत्तम चरित्र वाला बन । ऐसा नहीं करेगा तो कितना भी विद्वान् क्यो न हो, तेरे मन को शान्ति नहीं मिलेगी । तेरा मन कभी ईश्वर मे नहीं लगेगा । हमारे महापुरुषो ने चरित्र की यत्न पूर्वक रक्षा की । ऐसे उदाहरण हमे इतिहास के पन्नो मे पढ़ने को मिलते है । दयानन्द, अर्जुन, दुर्गादास, और शिवाजी के चरित्र को पढ़े । एक बार की घटना है कि शिवाजी के सैनिको ने एक दुर्ग पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया । उस दुर्ग से एक अत्यन्त सुन्दरी यवन-बाला भी उनके हाथ लगी। सेनापति ने उसे शिवाजी के समक्ष उपस्थित करके राजरानी बनाने की विनय की। सेनापति की बात सुनकर शिवाजी ने कहा- 'सेनापति ! तुम्हें धिक्कार है तुम्हारा धर्म पर नारी हरण नहीं, पर नारी रक्षण है ।' फिर वे उस रमणी की ओर देखकर बोले 'माता ।' रूप के वशीभूत होकर मेरे सैनिक तुम्हें यहां ले आए हैं । इसके लिए मुझे (शेष पृष्ठ 4 पर)

सम्पादकीय...

आर्य बन्धु सावधान रहें !

पंजाब की आर्य जनता को पता है कि श्री अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट अपने आप को बचाने के लिए कई प्रकार के दाव-पेंच चल रहा है । अब जब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली ने आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के 17-12-2000 के चुनाव को मान्यता प्रदान कर दी है और अपने पर्यवेक्षक प्रो सत्यवीर शास्त्री को इस चुनाव के लिए भेज कर विधिवत चुनाव सम्पन्न करवा दिया है तो इस पर अब श्री अश्विनी कुमार शर्मा सार्वदेशिक सभा को छोड़ कर दयानन्द मठ दीना नगर को सर्वोपरी मानने लगे हैं और उन्होंने घोषणा की है कि उन्होंने अपना सम्बन्ध दयानन्द मठ दीना नगर से जोड़ लिया है । अब वह दयानन्द मठ का सहारा लेकर आगे आना चाहते हैं परन्तु आर्य जनता उसकी अब किसी भी चाल में आने वाली नहीं है। वह दयानन्द मठ की सदा अवहेलना करते रहे हैं। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के सम्बन्ध मे श्री अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट के कभी भी विचार शुद्ध नहीं रहे यह सारी आर्य जनता को पता है । पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी की जन्म शताब्दी पर भी इन्होंने यह कहना आरम्भ कर दिया था कि यह शताब्दी गलत मनाई जा रही है अभी स्वामी जी सौ वर्ष के नहीं हुए, परन्तु अब यह दयानन्द मठ को ही सार्वदेशिक सभा समझने लगे हैं । गत दिनो 7-1-2001 को दयानन्द मठ मे जब स्वामी स्वतन्त्रानन्द जन्म दिवस मनाया जा रहा था तो इन्होंने वहां घोषणा की है कि सभा का सारा रुपया मैं दयानन्द मठ को दे दूंगा। इससे पूर्व गढ़ा आर्य समाज मे दीपावली के अवसर पर इन्होंने घोषणा की थी कि मैं सभा का सारा रुपया मेघ बरादरी को दे दूगा परन्तु तुम सभी मेरा साथ दो । आगे पता नहीं सभा का रुपया यह किस-किस को देगे ।

पंजाब के आर्य बन्धुओ और बहनो से हमारी प्रार्थना है कि वह श्री अश्विनी कुमार के झासे मे न आवे । दूसरो को वही दे सकता है जिसे कुछ देने की आदत हो जिसे लेने की ही आदत हो वह दूसरो को क्या दे सकता है ।

अब लगभग पजाब के सभी आर्य बन्धु व बहने श्री अश्विनी कुमार शर्मा को अच्छी प्रकार जान गए हैं । अब यह अपनी अलग सभा बना कर चलाना चाहता है परन्तु अब यह ऐसा भी नहीं कर सकेगा क्योकि आर्य जनता अब इससे सावधान हो गई है । मेरी सभी आर्य बन्धुओं से प्रार्थना है कि सभा की उन्नति के लिए सभी हमे अपना पूरा-पूरा सहयोग दे।

–सुरेन्द्र नाथ मुरगई, सभा महामन्त्री

श्री रामचन्द्र जी जावेद की धर्मपत्नी नहीं रही

आर्य समाज के महान नेता प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के भू.पू महामन्त्री स्वर्गीय श्री रामचन्द्र जी जावेद की धर्म पत्नी श्रीमती चन्द्रावती जी का देहावसान हो गया। आज से कई वर्ष पूर्व स्वर्गीय जावेद जी हमे छोड़ कर चले गए थे । वह एक बहुत ही नेक व्यक्ति थे । जो भी उनके सम्पर्क मे आया वह उन्हे आज तक नहीं भूल सका । वह बहुत ही व्यवहार कुशल थे । स्वर्गीय वीरेन्द्र जी के साथ उनका बहुत स्नेह था जब तक श्री जावेद जी रहे श्री वीरेन्द्र जी उन्हें ही सभा का महामन्त्री बनाते रहे, क्योकि वह बहुत ही योग्य व्यक्ति थे । एन डी विक्टर हाई स्कूल जालन्धर छावनी के वह प्रिसिपल रहे और प्रिंसिपल होते हुए भी उनका जीवन बडा सादा था ।

उनकी धर्म पत्नी श्रीमती चन्द्रावती जी ने उनका पूरा साथ दिया सह-धर्मणी के नाते वह जो कर सकती थी करती रहीं । इनका जीवन भी बहुत सादा था । दिनाक 11-1-2001 को इनका देहावसान हो गया। अंत्येष्ठि सस्कार 12-1-2001 को पूर्ण वैदिक रीति से सभा के उपदेशक प विजय कुमार शास्त्री ने करवाया। अन्तिम शोक दिवस 14-1-2001 को जालन्धर छावनी मे मनाया गया । श्रद्धांजलि सभा मे आर्य समाज छावनी के प्रधान व सभा के वेद प्रचार अधिष्ठाता श्री जनकराज महाजन, कोषाध्यक्ष श्री जवाहर महाजन, उपमन्त्री श्री राम सिह जी, श्री चमन प्रकाश नन्दा तथा दूसरे सभी अधिकारी व सदस्य उपस्थित थे । सैंकड़ों लोगो ने उन्हे अपनी श्रद्धांजलि भेट की । उनके सुपुत्र श्री डा क्रान्ति जी, श्री अशोक जी और श्री कमल जावेद तथा पुत्री श्री इन्दु जी व मीरा जी तथा सारे परिवार ने यज्ञ में भाग लिया और दिवंगत आत्मा के लिए सद्गति की प्रार्थना की ।

हम जावेद परिवार के इस दुख मे सम्मलित होते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की ओर से व सभा के सभी अधिकारियों व कार्यकर्त्ताओ की ओर से उन्हें अपनी श्रद्धांजिल भेंट करते हैं और परम पिता परमात्मा से उनकी सद्गति के लिए प्रार्थना करते हैं। हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह जावेद परिवार को इस वियोग को सहन करने की शक्ति प्रदान करें ।

–धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

सभा से सम्बन्धित सभी स्कूल, कालेजों के प्रिंसिपल महोदयों की सेवा में

मान्य महोदय, सादर नमस्ते ।

आप को पूर्व भी सूचना मिल चुकी होगी कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि) गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर का विधिवत् चुनाव पूज्य स्वामी ओमानन्द सरस्वती प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली की आज्ञानुसार और उनकी तरफ से भेजे गए पर्यवेक्षक के रूप मे प्रो सत्यवीर जी शास्त्री तथा स्वामी इन्द्रवेश जी महाराज की अध्यक्षता मे 17-12-2000 को आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब (रजि.) गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर के कार्यालय मे सम्पन्न हुआ । जिस मे पंजाब की 84 आर्य समाजो के सभी प्रतिनिधियो ने सर्वसम्मति से सभी अधिकारियो का चुनाव किया गया है । जिस की सूची श्री प्रो सत्यवीर जी शास्त्री पर्यवेक्षक के हस्ताक्षरों के साथ प्रमाणित है । और यह भी आप को पता होगा कि माननीय जज श्री डी आर अरोडा, पी सी एस सीनियर डिविजन जालन्धर की अदालत से हमें पूरा आदेश मिल चुका है कि हमारी तदर्थ समिति ही कानूनी तौर पर माननीय है।

हम आप से निवेदन करते हैं कि आप किसी दूसरे द्वारा निश्चित की हुई स्कूल अथवा कालेज कमेटी को मान्यता न दे और उसी कमेटी को मान्यता दे जो कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा चुने गए अधिकारियो के हस्ताक्षरो से बनाई गई हो जिनकी लिस्ट पूर्व छप चुकी है । इस नए चुनाव के बारे म डी पी आई स्कूल, कालेज पजाब को भी एक कापी भेज दी गई है । ताकि वो कमेटियो को मान्यता देते समय किसी प्रकार की गलतफहमी मे न रहे ।

आप अपने इन चुने हुए अधिकारियों की बनाई गई कमेटियो के अलावा किसी दूसरी कमेटी को मान्यता देने की कोशिश न करे अन्यथा इसके लिए आप स्वयं जिम्मेवार होंगे ।

आप को तो पता ही है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का साप्ताहिक पत्र जो कि वेद प्रचार की दृष्टि से तथा आर्य समाजो के समाचार सभी आर्य समाजों एव आर्य जनता तक पहुचाता है वह आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशन पुरा जालन्धर से आर्य मर्यादा के नाम से प्रकाशित होता है । आप अपने स्कूल, कालेज की ओर से कम से कम महीने मे एक बार पूरे पृष्ठ का विज्ञापन अवश्य भेजे। जिस का शुल्क निम्नलिखित है । 1 पूरा पृष्ठ-750/- रुपए, 2 आधा पृष्ठ-500/- रुपए

–सुरेन्द्र नाथ मुरगई, सभा महामन्त्री

आर्य मर्यादा का शुल्क भेजें

हमारी आर्य मर्यादा ने सभी ग्राहक महानुभावो से प्रार्थना है कि वह अपना आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क 50 रु शीघ्र अति शीघ्र सभा कार्यालय मे भेजे । डाक व्यय और छपाई का खर्च बढ जाने पर भी हमने अभी तक इसका शुल्क नही बढाया फिर भी कई ग्राहक महानुभावो ने अपना शुल्क अभी तक नही भेजा । इसलिए हमारी प्रार्थना है कि अपना शुल्क शीघ्र अति शीघ्र मनि आर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा सभा कार्यालय मे भेजे ।

–सुरेन्द्र नाथ मुरगई, सभा महामन्त्री

आर्य समाजें अपने वार्षिकोत्सवों के कार्यक्रम शीघ्र बनाएं

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजो के अधिकारी महानुभावो से हमारी प्रार्थना है कि वह अपने वार्षिकोत्सवो की तिथियां निश्चित करके सभा कार्यालय को सूचित करे । फरवरी, मार्च से उत्सव आरम्भ हो जाते हैं इसलिए अपने उत्सवो की तिथियो को शीघ्र निश्चय करे । हम चाहते हैं कि इस वर्ष प्रत्येक आर्य समाज का उत्सव अवश्य हो और सभा के उपदेशक प्रत्येक आर्य समाज मे जाए । सभा कार्यालय के द्वारा ही आप अपने उत्सवो का प्रबन्ध करवाए ।

प्रत्येक आर्य समाज महर्षि दयानन्द का जन्म दिवस व शिवरात्रि पर्व-ऋषिबोधोत्सव अवश्य मनाए । सभी आर्य समाजों मे सभी वैदिक पर्व मनाए जाने चाहिए ।–**जनक राज महाजन**, अधिष्ठाता वेद प्रचार

(पृष्ठ 2 का शेष)

क्षमा करना । तुम्हारे सुन्दर रूप को देखकर मेरे मन मे तो यह भाव उठ रहा है कि यदि मैं तुम्हारे गर्भ से जन्म ग्रहण करता तो मेरा रूप अधिक सुन्दर होता । इसी भाव को श्री मंजुल जी ने एक कविता के रूप मे इस प्रकार किया है-

शिवा-शिविर मे सेनापति,
सुन्दरी यवन बाला लाया।
बोले, शिव 'कुकृत्य अरे यह,
पामर ! धिक्' वह थर्राया ॥
'जन्म तुम्हीं से यदि मै पाता,
तो होता सुन्दर छविमान्।'
साश्रु नयन सब गद्‌गद बाले,
'जग मे शिवा चरित्र महान् ॥'
कैसा आदर्श चरित्र है ! शिवाजी, आप धन्य है।''

वेद का आदेश है-

स्वय वाजिस्तन्व कल्पयस्व । (यजुर्वेद)

हे मानव ! शक्तिशाली ! अपने जीवन का निर्माण करो । अपने चरित्रो को उन्नत बनाओ ।

मनुष्य मर जाता है परन्तु उसका चरित्र सुगन्धि फैलाता रहता है । जिस मनुष्य मे चरित्र की सुगन्धि होती है वह आकर्षण का केन्द्र बन जाता है ।

आदिकाल से मानव सदाचार का सम्मान और दुराचार का तिरस्कार करता आया है । आज भी हम प्रतिवर्ष राम की जय-जय कार और रावण के पुतले जलाते हैं । पर ऐसा क्यो ? इसलिए कि एक सदाचारी था और दूसरा दुराचारी । आज भारतवासी अपने बच्चे का नाम राम तो रखते हैं पर रावण कोई नही रखता । यह इसी बात को प्रमाणित करता है कि सच्च चरित्रता का सम्मान और दुच्चरित्रता का तिरस्कार करने की मानव की सदा से प्रवृत्ति रही है किन्तु आज यह प्रवृत्ति भौतिकता की चकाचौंध में कहीं लुप्त हो गई है । वह भूल गया है कि मानव अथवा आर्य चरित्र से ही बनता है, धन अथवा विद्या या दोनो से नहीं। कहा भी है-

वृतेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया ।

स्पष्ट है कि एक सच्चे मानव अथवा आर्य संज्ञाधारी व्यक्ति के जीवन में आचरण को ही प्रमुखता है धन या विद्या आदि की नहीं इसी को दृष्टि मे रखते हुए प्राचीनकाल में चरित्र की पवित्रता पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाता था। चरित्र की रक्षा के लिए यह कहा गया था-

वृतं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमा, याति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्तरस्तु, हतो हतः॥

अर्थात् मनुष्य चरित्र की यत्न पूर्वक रक्षा करे क्योकि धन तो आता है और चला जाता है । धन से क्षीण व्यक्ति वस्तुतः क्षीण नहीं परन्तु चरित्र से गिरा तो मृतक के समान है । अनीति भरे आज के इस वातावरण मे धर्म और अनैतिकता को निर्वासित सा ही कर दिया गया है। परिणाम स्वरूप सर्वत्र बेईमानी, भ्रष्टाचार, रिश्वत खोरी, धोखा-धडी, लूटपाट, मारपीट और बलात्कार आदि का बाजार गर्म है । किसी को किसी पर विश्वास तक नहीं रहा सभी परस्पर शंकित है भयभीत हैं त्रस्त है और स्थिति यहा तक आ पहुंची है कि-

शैतान पर विश्वास भले ही कर लूं ।
आदमी देखकर डर जाता हूं॥

चारित्रिक पतन के कारण आज का मानव स्वयं मानव के रक्त का पिपासा बन रहा है यह देखकर हमे विस्मय होने लगता है कि मानव ने मानव की क्या दशा कर दी ।

आखिर मानव इस स्थिति में कैसे पहुंचा । निश्चय ही अपने चारित्रिक पतन के कारण वस्तुतः चरित्र का ही दूसरा नाम मानवता है । भौतिक सुख साधनो से सजे वर्तमान समाज में चरित्र की पावनता बनाए रखना वस्तुतः एक गम्भीर समस्या है । आज धर्म को हमने धर्म निरपेक्षता के नाम पर त्याग दिया है । अतः नीति अनीति को फिर कौन विचारे ? एक युग था जब 'आचारः परमो धर्मः' का पाठ पढ़ाया जाता था और धर्म को मानवता का प्रतीक माना जाता था पर आज यह उद्‌घोष कहां सुनाई देता है । हमारी शिक्षा का उद्देश्य चरित्रवान् नागरिक उत्पन्न करना था पर आज क्या हो रहा है यह सर्व विदित है । एक युग था जब हमारे गुरुकुलों में वानप्रस्थ, आचार्य हुआ करते थे और लोग उसने आचार की शिक्षा ग्रहण किया करते थे । वे भी विषयों से अनासक्त रह शिक्षा दिया करते थे । पर आज यह व्यवस्था सर्वथा बदल चुकी है । समस्या का समाधान कैसे हो ? इस पर विचार करने से पहले प्रथम यह बता देना आवश्यक है कि चरित्र कहते किसे हैं और उसका निर्माण कैसे होता है । चरित्र या आचार किसे कहते हैं कि अपने विचारो को क्रिया मे परिणति का नाम ही चरित्र है । चरित्र का निर्माण हमारे विचारों से होता है । यदि हमारे विचार श्रेष्ठ नहीं है तो फिर हमारा चरित्र श्रेष्ठ कैसे हो सकता है ? सद्‌विचार जब क्रिया मे ढलते हैं तो उसे सदाचार की सज्ञा दी जाती है । किन्तु जब राष्ट्र को सद्‌विचार ही न दिए जा रहे हों तो उससे फिर राष्ट्र सदाचारी कैसे हो सकता है । अश्लील उपन्यास अनीति भरे किस्से कहानियां आज धड़ाधड बिक रहे हैं । सृजनकारी साहित्य को आज पढ़ता ही कौन है । इस पर भी चाहना यह है कि आने वाली नसले सदाचारी हो यदि हम मानवता को संकट से उबारना चाहते हैं तो उसे श्रेष्ठ विचार देने ही होंगे अन्यथा समस्या का समाधान कदापि नहीं हो सकता ।

आज दूषित विचार मानव को कितना पथ भ्रष्ट कर रहे है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं । हमे अपने चरित्र के दोष दूर करने के लिए हमे अपनी आदतों पर भी नजर रखनी होगी क्योकि चरित्र आदतो का ही पूजीभूत रूप होता है । यदि हमारी आदते सुधर गई तो समझ लीजिए कि हम भ. सुधर गए इसके लिए आवश्यक है दृढ सकल्प और इच्छा शक्ति की । सकल्प स हम विश्व को बदल सकते है । अतः जीवन मे अच्छे विचार और महापुरुषो के गुणो को धारण करते हुए चरित्रवान् बनो ।

दयानन्द मठ चम्बा में पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का जन्म दिवस मनाया गया

दयानन्द मठ के संस्थापक पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का जन्म विक्रमी सम्वत् 1934 को पौष मास की पूर्णिमा को हुआ था। गत मगलवार को पूर्णिमा के दिन दयानन्द मठ चम्बा मे समारोह पूर्वक पूज्य स्वामी जी महाराज का जन्म दिवस मनाया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता पूज्यपाद श्रद्धेय श्री स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज ने की, समारोह के मुख्यातिथि स्वतन्त्रता सेनानी व प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री श्री किशोरी लाल जी पाराशर थे । इस अवसर पर दयानन्द मठ चम्बा के प्रबन्धक एवं संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री आचार्य महावीर सिंह जी व महर्षि दयानन्द आदर्श उच्च विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री कुन्दन लाल जी गुप्ता भी उपस्थित थे ।

महर्षि दयानन्द विद्यालय के छात्र भानू प्रताप, श्री कान्त भारद्वाज एवं छात्रा आरती दीप ने ओजस्वी विचार प्रकट किए ।

दयानन्द संस्कृत महाविद्यालय के प्राध्यापक श्री योगराज, श्री कमल कुमार ब्र जोगेन्द्र कुमार आचार्य श्री महावीर सिह जी ने स्वामी जी के जीवन की कई घटनाए सुनाते हुए उन्हे अपनी श्रद्धाजलि भेट की ।

अन्त में समारोह के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज ने अपने सारगर्भित उपदेश मे वेद मन्त्र द्वारा उस परमेश्वर की महानता का बखान करते हुए स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के जीवन पर प्रकाश डाला । स्वामी जी ने कहा कि यदि हम सब मिलकर काम करे तो आने वाले पाच-छः वर्षों में चम्बा भारतीय संस्कृति-सभ्यता का गढ़ बन जाएगा। यहां पर ऐसे विद्वान्, सदाचारी, नेतृत्व गुणों से युक्त युवा होंगे कि सारी दुनिया चम्बा से अपने लिए नेता मांगने लगेगी।

-ब्र. कमल शास्त्री

"आर्यो ! क्या यह 125 वां स्वर्णिम वर्ष यूं ही चला जाएगा ?"

राष्ट्र पितामह दयानन्द के सैनिको ! जागो

ले. आचार्य आर्यनरेश जी (वैदिक गवेषक), उद्गीथ साधना स्थली, हि.प्र.

जिस संस्था को भारत की गुलामी की जंजीरो को काट कर उसे स्वराज्य दिलवाने का श्रेय प्राप्त है। जिस संस्था को विश्व मे सर्वप्रथम नारियो पर हो रहे पक्षपात पूर्ण अत्याचारो को रोक कर उसे पुरुष के बराबर ही नही अपितु उससे भी अधिक (कई विषयो मे) सत्कार दिलवाने का व सर्वप्रथम जिला होशियारपुर के हरियाणा ग्राम मे कन्या विद्यालय खुलवाने का श्रेय है । जिस सस्था को विश्व मे सर्वप्रथम छुआ-छूत व रंग-भेद को मिटाकर गरीबो को गले लगाने व उन्हे समानता का अधिकार दिलवाने का श्रेय है। जिस संस्था को विश्व मे सर्वप्रथम अनाथो व असहाय बच्चो हेतु फिरोजपुर मे आर्य बाल विद्या मन्दिर व अनाथालय खुलवाने का श्रेय है। क्या ऐसी सस्था को पतित होते भारत को देखते हुए अब चुपचाप बैठे रहना चाहिए ? जिस सस्था को विश्व की बौद्धिक व शारीरिक और आर्थिक आधारशिला गोवश की रक्षा हेतु विश्व की सर्वप्रथम गोशाला रेवाड़ी मे खुलवान का श्रेय प्राप्त है । जिस सस्था के संस्थापक को विश्व मे सर्वप्रथम वेद का वैज्ञानिक भाष्य प्रस्तुत करके उसको गिनी बुक आफ रिकार्ड मे सर्वाधिक व प्राचीनतम मानव धर्म घोषित करवाने का श्रेय है । जिस सस्था के सस्थापक को विश्व मानव मैत्री हेतु भारत की राजधानी दिल्ली मे विश्व मे सर्वप्रथम सभी मतो को एक मत करने हेतु 'दिल्ली दरबार' लगाने का श्रेय है । क्या ऐसी संस्था को शांतचित्त बैठकर यू हीं अन्याय सहते रहना चाहिए ?

जिस संस्था को सर्वप्रथम आर्य समाज लाहौर मे स्वदेशियत की रक्षा हेतु विदेशी कपडो की होली जलाने का श्रेय प्राप्त है । जिस संस्था के महान् नेता अमर शहीद लाला लाजपतराय को अंग्रेजों के राज्य मे ही स्वराज्य-धर्म की रक्षा हेतु प्रथम स्वदेशी बैंक (जो पश्चात् पंजाब नैशनल बैंक बना) बनाने का श्रेय प्राप्त है। जिस संस्था के सस्थापक को गांधी बाबा से भी वर्षों पूर्व अंग्रेजियत के विरुद्ध नमक आन्दोलन व गरीबो हेतु मुफ्त न्याय और जंगल में गिरी हुई लकडी मुफ्त प्राप्त करवाने हेतु आन्दोलन चलाने का श्रेय है । जिस आर्य समाज रूपी 'क्रान्ति मशाल' को नवाब हैदराबाद को धूल चटाकर अपने तप-त्याग और बल से उसकी रियायत को भारत मे मिलाने का श्रेय है । क्या वह सस्था अब यू ही भारत का विघटन देखती रहेगी ? और कश्मीर प्रस्ताव का भी डट कर विरोध न करे ?

जिस संस्था को भारत मे सर्वाधिक विद्यालय महाविद्यालय व आश्रम व्यवस्था युक्त सस्कार विद्यालय चलाने का श्रेय प्राप्त है । जिस सस्था के सुदृढ स्तम्भ अमर बलिदानी श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को अपना खून सीचकर अछूतो, पिछडो व गरीबो को गले लगाने का श्रेय प्राप्त है । जिस सस्था को भारत से 'शारदा जी' के कारण कानूनन बाल-विवाह समाप्त करवाने का श्रेय प्राप्त है। जिस सस्था के पूज्य सस्थापक महर्षि दयानन्द व विद्वान् अनुयायियो के कारण भारत की राष्ट्रभाषा का पद हिन्दी को दिलवाने का श्रेय प्राप्त है । क्या वह सस्था इस सकट के समय चुपचाप रहकर अपना इतिहास मिटवाना चाहेगी ?

जिस सस्था के महान् सस्थापक देव दयानन्द सरस्वती को बाल्यकाल से ही पाखण्ड व अधश्रद्धा का गढ़ ढाहने का श्रेय प्राप्त है । जिस संस्था के महान् प्रचारक विद्वानो को तलवार की धार पर चल कर भारत की अस्मिता की रक्षा हेतु विदेशी घुसपैठियो, अर्थात् मौलवियो और पादरियो से शास्त्रार्थ करके उन्हे रोकने का श्रेय प्राप्त है । जिस संस्था को अपने बल पर ही भाग्यवाद, हस्तरेखा, दिशाभ्रम, बिल्ली के मार्ग काटने व तथा कथित भूत-प्रेत चुडैल की भ्रान्ति को निर्मूल करने का श्रेय प्राप्त है। जिस आर्य-समाज को उनके वैदिक महावैज्ञानिक सस्थापक ऋषि दयानन्द की कृपा से यज्ञ में हो रही प्राणियो की बलि से मुक्ति दिलाकर उसे प्रदूषण निवारण का देश-विदेश मे सर्वोत्तम साधन सिद्ध करने का श्रेय प्राप्त है। क्या उस अग्नि शिखा रूपी आर्य समाज सस्था को उसके 125वे स्वर्णिम वर्ष पर यू ही सुस्त व आलसी होकर बैठ जाना चाहिए? इन उपरोक्त मान्यताओ के प्रमाण के लिए हमारी पुस्तक 'गुप्त रहस्य' पढे । आपको पता चलेगा कि ये सब कार्य आर्य समाज ने ही किए थे ।

यदि हमे यूं ही आलसी होकर बैठना ठीक नहीं तो आर्यो !! फिर उठो और सकल्प करके खडे हो जाओ, कि जब तक यह भारत दयानन्द के आदर्शो का 'आर्यावर्त' नही बनेगा तब तक हम चुपचाप नही बैठेगे । उस भूले हुए विश्व-मित्र दयानन्द की याद को पुनः सारे ससार मे ताजा करने हेतु सर्वप्रथम भारत को ही केन्द्र बनायेगे ।

आर्य समाज के सदस्य जिन्होने कि अपने गुरुदेव के वेद आदर्शो से भारत वर्ष की अन्य सब सस्थाओ से कहीं अधिक शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक व राजनैतिक सेवा की है । वह अब अपने साथ सरकार का अलगाव पूर्ण और अधिक अन्याय व पक्षपातपूर्ण व्यवहार सहन नहीं करेगे। अब हम शान्त नहीं बैठेगे। आर्यो के ही 75 प्रतिशत खून से, बलिदानो से मिली इन राष्ट्र की कुर्सियो पर चैन से बैठें इन अन्धो और बहरो से हम यह पूछना चाहेगे कि क्या कारण है कि आज 'राष्ट्रपितामह देव दायनन्द' को तुम बिल्कुल ही भुला रहे हो ? क्या कारण है कि तुम्हे कहीं भी आर्य समाज का गौरवमय कार्य दिखाई नही देता ? क्या कारण है कि तुम कभी देव दयानन्द, श्रद्धानन्द, श्याम जी कृष्ण वर्मा व लाला लाजपत राय को दिल से याद नहीं करते ? क्या कारण है कि तुम्हारी पाठ्य पुस्तको या दूरदर्शन के चैनलो पर इस देश-हित सत्तरहा बार विष पीने वाले स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक व हिन्दी को राष्ट्रभाषा का श्रेय दिलवाने वाले उस अमर शहीद देव दयानन्द का कभी नाम भी नहीं आता ? कितनी शर्म की बात है कि कथित स्वतत्रता की 50वीं वर्षगाठ पर भी उसे दिल से याद नहीं किया गया !!!

इन आख के अन्धो ओर गाठ के पक्के नेताओ व मीडिया वालो को हे आर्यो! अब झकझोर कर रख दो । जन-जन मे देव दयानन्द के जीवन व आर्य समाज की उपलब्धियो का दर्शन करवा दो। भारत का कोई बच्चा, बूढा या युवा ऐसा न बचे, जिसे कि महर्षि दयानन्द व उसके समाज का सन्देश पता न हो । देश का कोई सामाजिक सस्थान विद्यालय, महाविद्यालय तथा सार्वजनिक सस्था तथा रेलवे-स्टेशन, बस-अड्डे, हास्पिटल नगर-पालिका व प्रधान मत्री तथा राष्ट्रपति तक के निवास भी राष्ट्र पितामह ऋषि दयानन्द के चित्रो तथा उनके आदर्श वाक्यो से सुशोभित हुए बिना न बचे जिससे कि किसी भी साधारण व्यक्ति को भी शीघ्र यह जानकारी हो जाए कि दयानन्द तो दयानन्द ही था और उसके आर्य सैनिक किसी से कम नही है। जिस ऋषि ने अमेरिका आदि विदेशो मे गए बिना अग्रेजियत के गुण गाए बिना गौमास, मास, मछली, अण्डा खाए बिना शराब का समर्थन किए बिना, गौ हत्यारे अग्रेजो से डरे बिना और भारत मे सर्वप्रथम स्वराज्य धर्म की ज्योति जलाई, गोरो से प्रशस्ति पत्र लिए बिना अग्रेजो के साथ समझौता किए बिना इसी पावन भूमि पर बैठे-बैठे केवल अपने प्रबलतेज, पवित्र चरित्र, ब्रह्मचर्य रूपी बल व त्याग से अग्रेजो पर विजय दिलवाकर भारत को अपने क्रातिकारी अनुयायियो द्वारा स्वतत्र करवा दिया था । अत: हमे इसके लिए अपने अधिकार मांगते हुए

(शेष पृष्ठ 6 पर)

(पृष्ठ 5 का शेष)

निम्न कुछ कार्यों को तुरन्त इसी वर्ष सफल करने का बीडा उठाना चाहिए :-

1 राजकोट (टंकारा) जाने वाली गाड़ी का नाम "वैदिक ज्योति" एक्सप्रैस करवाना चाहिए।

2. 'दिल्ली दरबार' की स्मृति मे राजधानी दिल्ली आने वाली एक गाडी का नाम 'वैदिक मैत्री' या 'आर्य मित्र एक्सप्रैस' रखवाना जाए।

3 लाहौर (पट्टी) जाने वाली गाडी का नाम 'आर्य स्वदेशी' एक्सप्रैस क्योकि वही आर्यो ने सर्वप्रथम 1879 में विदेशी कपडो की होली जलाई थी ।

4 उदयपुर जाने वाली गाड़ी का नाम 'सत्यार्थ-प्रकाश' एक्सप्रैस।

5 मुम्बई जाने वाली गाडी का नाम 'अन्धविश्वास उन्मूलन एक्सप्रैस' क्योकि वहीं आर्य समाज की विधि पूर्वक स्थापना की थी ।

6 फिरोजपुर का नाम बदल कर 'दयानन्द बाल सेवा पुरम' करके गाडी का नाम 'आर्य सेवा एक्सप्रैस' ।

7 होशियारपुर जाने वाली गाडी का नाम 'आर्य-नारी जागरण एक्सप्रैस' जहा प्रथम कन्या विद्यालय खोला था ।

8 हरिद्वार जाने वाली गाडी का नाम 'वैदिक सस्कृति एक्सप्रैस' जहा सस्कृति रक्षा हेतु पाखण्ड-खण्डनी पताका फहराई थी ।

9 रेवाडी जाने वाली गाडी का नाम 'वैदिक गौ गरिमा एक्सप्रैस' जहा विश्व की प्रथम गोशाला स्थापित की थी ।

10 अजमेर जाने वाली गाडी का नाम 'ऋषि दयानन्द बलिदान एक्सप्रैस' (अग्रेजी एक्सप्रैस शब्द के स्थान पर कुछ भी लिखा जा सकता है । जहा अग्रेजो की कूट नीति व गुप्त योजना से ऋषि ने वीरगति प्राप्त की थी ।

इसी तरह से ही इस 125 वे स्वर्णिम वर्ष पर कुछ निम्न प्रकार से किया जाए :-

1 दिल्ली जक्शन का नाम बदल कर 'महर्षि दयानन्द दिल्ली जक्शन' कर दिया जाए । दिल्ली बस अड्डे का नाम राणा प्रताप हो सकता है जो गर्व की बात है वैसे ही रेलवे स्टेशन का नाम बदलना चाहिए ।

2. फिरोपुर नगर का नाम बदल कर 'सेवा पुरम' जहां विश्व का प्रथम आर्य बाल गृह (अनाथालय चलाया) ।

3. श्रद्धानन्द बलिदान दिवस को 'दलितोद्धार दिवस' के रूप में मनाया जाए ।

4 पं. लेखराम बलिदान दिवस को 'शुद्धि दिवस' के रूप मे मनाया जाए ।

5 महर्षि दयानन्द बलिदान दिवस को 'अन्धविश्वास निवारण' दिवस के रूप में मनाया जाए।

6. महर्षि दयानन्द जन्म दिवस को 'राष्ट्र पितामह गौरवमय दिवस ।' या प्राची सस्कृति संरक्षण दिवस ।

7 सम्पूर्ण देश के जिस-जिस मार्ग पर भी आर्य समाज बना हो उस मार्ग का नाम महर्षि दयानन्द मार्ग कर दिया जाए । यह सब आर्यो को विक्रमी 2057 मे ही कर लेना चाहिए । ऐसा मेरा सभाओ एव आर्यों से अनुरोध है।

सभी आबाल वृद्धजनो का इस 125वे वर्ष पर यह 'परम धर्म' है कि भारत के सभी रेलवे स्टेशनों, बस अड्डो, विश्वविद्यालयों, नगर मार्गों, व ग्रामो मे जाकर वैदिक साहित्य, महर्षि दयानन्द जी की जीवनी व आर्य समाज की भारत को व विश्व को देन पर पुस्तिकाये बाटें। इनके प्रथम पृष्ठ पर ओ३म् चारो वेद व यज्ञ अग्नि का सुन्दर चित्रण हो, तथा दूसरे बाहर के पृष्ठ पर महर्षि दयानन्द का सुन्दर चित्र हो जिसके नीचे सुन्दर शब्दो मे लिखा हो-नारी, निर्धन, गो व सत्य सनातन वैदिक धर्म उद्धारक, स्वराज्य के प्रथम उद्घोषक, आर्य समाज के संस्थापक सती-प्रथा, जातिवाद, भाग्यवाद, पाखण्ड, छुआ-छूत व शान्ति के प्रबल समर्थक और 'सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए' के मंत्रदाता व चेतन प्रभु की उपासना के प्रेरक क्रांति गुरु राष्ट्र पितामह महर्षि दयानन्द सरस्वती की जय लिखा हो ।

उपासना और प्रार्थना की प्रक्रिया

ले० आचार्य श्री पं. हरिदेव आर्य, एम.ए. दिल्ली-92

स्थिर आसन-बहुत आराम से किसी भी सुखासन में बैठें । सारा शरीर, स्थिर और डीला । आंखे कोमलता से बन्द । दोनों हाथ दोनो घुटनों पर । हथेलियां ऊपर को, अंगुलिया ज्ञान मुद्रा में आपस मे मिली हुई, सिर गर्दन और छाती एक रेखा में । रीढ की हड्डी बिल्कुल सीधी । शरीर के किसी भाग मे कोई तनाव न हो । पूर्ण रूप से स्थित तथा जागरूक रहे । अपनी सब इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखें।

उपासना-परमेश्वर के पास बैठना, ऊपर आकाश मे तेज, प्रकाश और शक्ति के स्रोत सूर्य का, अमृत रस से भरपूर चन्द्र तथा तारो का, अपने सब ओर आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, दाएं-बाए, अन्दर-बाहर नीले आकाश का, पृथ्वी, पर्वतो, नदियो, वृक्षो, पक्षियो, प्राणियो आदि का ध्यान करे । पूर्णरूप से स्थिर तथा जागरूक रहे। अपने आपको इस असीम, अनन्त, सर्वांग पूर्ण, ज्योति पुंज सब शक्तियो तथा सम्पदाओ के स्रोत परम कल्याणकारी परमेश्वर का, ब्रह्म का अथवा सारी सृष्टि का एक महत्वपूर्ण अभिन्न अंश अनुभव करें। इसी के द्वारा उत्पन्न तथा पालित पोषित तथा प्रशिक्षित, इसी से ही प्राप्त शक्ति तथा साधनो द्वारा, इसी के लिए एक अभिनेता के रूप मे कार्य करने वाला सर्वथा निर्लेप इसी मे स्थित अपने आपको अनुभव करे । विश्व मे जो कुछ भी हो रहा है, उसको स्वयमेव ही स्वाभाविक होता हुआ अनुभव करते हुए केवल दृष्टाभाव से देखे। अपने आपको तथा अन्य सभी प्राणियो को अपने स्वभाव के वश कार्य करते हुए समझे। यदि कोई अनुचित कार्य करता है, उस पर क्रोध करने का अथवा उसकी चिन्ता करने का कोई लाभ नहीं है। मन में सब ओर से प्रेम सुख, शान्ति और आनन्द का अनुभव करे।

परमेश्वर की प्रार्थना-हे परमपिता परमेश्वर ! आपने ही मेरे माता-पिता के रूप में मुझे जन्म दिया तथा बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण किया है । आपने ही जन्म से पहले ही मेरी माता जी की छाती मे शक्तिवर्धक दूध उत्पन्न किया । माता जी तथा पिता जी को प्रेम तथा स्नेह करने की प्रेरणा दी । आप ही बन्धुओ और सखाओ के रूप मे मुझे सब प्रकार से कार्यो में सहयोग देने वाले हैं । हे प्रभो । मैं आपकी इस सुन्दर सृष्टि का एक अंश हू, आप ही मेरे अध्यापको तथा आचार्यों के रूप मे शिक्षित करके जो कार्य आपने करवाना था, मुझे उसके योग्य तथा कार्य कुशल बनाने वाले हे । आप ही स्वय मेरी सब अवश्यकताओ को समझकर पूरा करने वाले हैं । सब ज्ञानेन्द्रिये तथा कर्मेन्द्रियो मे, शरीर के सब तन्त्रो श्वास-प्रश्वास, रक्त सचार, पाचन तन्त्र आदि मे आप ही शक्ति के रूप ही हैं। मैं अपने शरीर के प्रत्येक रक्त बिन्दु मे आपकी ही शक्ति का अनुभव करता हू । प्रतिक्षण अपने आपको आप मे ही पूर्ण रूप से सुरक्षित समझते हुए आनन्द विभोर रहता हू।

हे प्रभो । ब्रह्मा के रूप मे आप ही मेरी आंखों के सामने इस सुन्दर सृष्टि की, सारे ब्रह्माण्ड की सुन्दर सर्वागपूर्ण रचना करने वाले है, विष्णु के रूप मे सब प्राणिमात्र का पालन-पोषण तथा सुचालन करने वाले हैं । हे प्रभो। आप ही परम कल्याणकारी शंकर के रूप मे प्रतिक्षण पुराने जर-जर पदार्थो, वृक्षो तथा प्राणियो को अपने आप मे ही लय करके, समेट करके परम कल्याणकारी शिव के रूप मे पुन: निर्माण करने वाले हैं। जिससे यह सृष्टि प्रत्येक क्षण सुन्दर नवीन ही रहती है ।

मैं आपकी इस असीम सत्ता को, शक्ति को, क्रियाशीलता तथा सर्वदक्षता, कार्य-कुशलता को देखकर नतमस्तक हूं । आनन्द विभोर हूं ।

हमारे प्रपितामह गुरु श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज

ले. ब्र. कमल जी शास्त्री दयानन्द मठ चम्बा (हि.प्र.)

पूज्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का जन्म विक्रमी सम्वंत 1934 को पौष मास की पूर्णिमा के दिन हुआ । इस दिन पंजाब की वीर प्रसविनी भूमि लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को पाकर धन्य हुई। कृत-कृत्य हुआ, अमर हुआ लुधियाना का मोही गाव । जिस प्रकार महर्षि दयानन्द के माता-पिता अपने पुत्र को शैव बनाना चाहते थे, गुरु नानक के पिता उन्हे व्यापारी बनाना चाहते थे ठीक इसी प्रकार इस बालक के पिता इन्हे सेना का सेनानायक बनाना चाहते थे । परन्तु भविष्य के गर्त मे क्या छिपा है किसी को पता न था । स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज सेनापति तो बने पर सेना के नहीं अपित सारे समाज के सेनापति बने।

स्वामी जी महाराज अनन्य ब्रह्मचारी थे। उनकी देह ब्रह्म अर्थात् विद्या और बल से ओतप्रोत थी। एक बार मठ के एक मार्ग पर सफेदे का विशाल वृक्ष गिर गया, कुछ ब्रह्मचारी उसे मार्ग से हटाने का असफल प्रयत्न कर रहे थे । उसी समय हमारे प्रेरणास्रोत पूज्य स्वामी जी महाराज वहां से निकले और देख कर बोले सारे एक तरफ हो जाओ और स्वामी जी ने अकेले ही उस वृक्ष को उठाकर एक ओर रख दिया, यह तो था शारीरिक बल। स्वामी जी महाराज अद्भुत प्रतिभा के धनी थे । उनका बुद्धि बल भी अनुपम था । सिन्ध में जब मुस्लिम शासक ने सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगा दिया और सत्यार्थ प्रकाश की उपलब्ध प्रतिया जलाई जाने लगी, तब श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने इस प्रयोजन से कि कही महर्षि दयानन्द कृत यह अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश विलुप्त ही न हो जाए, सारा का सारा सत्यार्थ प्रकाश अक्षरश: स्मरण कर लिया।

तप और त्याग मे स्वामी जी महाराज का कोई सानी न था । गर्मी की ऋतु मे दयानन्द मठ दीनानगर मे स्वामी जी महाराज बाहर तख्तपोश पर बैठ कर लेखन कार्य कर रहे थे। मध्याह्न मे जब सूर्य अपने पूर्ण यौवन मे प्रचण्ड होकर आग बरसा रहा था तो कुछ ब्रह्मचारी स्वामी जी महाराज के पास गए और बोले महाराज बहुत गर्मी हो रही है हम आपका तख्तपोश छांव मे सरका देते हैं तब स्वामी जी महाराज ने मानो गीता को आत्मसात करके श्री कृष्ण बनकर कहा-

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु: खदा: ।
आगमापायिनोऽ नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

अर्थात्:-यह सर्दी, गर्मी, सुख-दु:ख तो आने और जाने वाले हैं अत: इन्हे सहन करना चाहिए । स्वामी जी महाराज बोले अरे ब्रह्मचारियों मुझे क्यो हटाते हो कुछ देर बाद यह सूर्य अपने आप ही हट जाएगा । यह थी तप की पराकाष्ठा ।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज बाल्टी वाले सन्त के नाम से प्रसिद्ध थे क्योकि उन्होने सब कुछ त्याग कर, सब कुछ राष्ट्र के मानव जाति को अर्पित करके मात्र कौपीन पहन कर बाल्टी कर मे ग्रहण कर समाज की भलाई के पर्श के लिए रात-दिन रम गए । इस कारण लोग उन्हे बाल्टी वाला संत कहने लगे । स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने जिस कार्य को हाथ मे लिया जी जान से उसे सजीव करके पूर्णता प्रदान की । पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा ने लाहौर मे उपदेशक विद्यालय की स्थापना की व श्री स्वामी जी महाराज से विद्यालय का आचार्य पद ग्रहण करने की प्रार्थना की और स्वामी जी ने आचार्य पद स्वीकार कर लिया। अपनी अद्भुत योग्यता से स्वामी जी महाराज ने इस विद्यालय को आत्म-निर्भर कर दिया। आर्य समाज को सर्वाधिक सन्यासी, उपदेशक व प्रचारक देने का श्रेय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को प्राप्त है । लगभग 10 वर्ष तक स्वामी जी महाराज लाहौर उपदेशक विद्यालय के आचार्य रहे । जब उन्होने अवलोकन किया कि विद्यालय रूपी शिशु जो कल तक बिना मेरे सहारे के चल नहीं सकता था, आज पूर्ण युवा होकर विचरण कर रहा है, तब स्वामी जी महराज बिना किसी को बताए अपना दण्ड कमण्डल उठाकर सदा के लिए विद्यालय को त्याग कर वेद प्रचार करने हेतु निकल पड़े । यह था उनका अद्भुत त्याग ।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने जिन नियमो को धारण किया था आजीवन् उन्होने उन नियमो की परि पालना की । स्वामी जी महाराज ने नियम बनाया था कि एक समय दोपहर को 12 बजे भोजन करेगे और उन्होने दृढता से इस नियम का पालन किया यदि 12 बजे तक भोजन मिला तो ठीक अन्यथा दूसरे दिन 12 बजे भोजन करते थे । कई बार स्वामी जी महाराज आर्य समाजो के उत्सवो पर दो-दो, तीन-तीन दिन भूखे रहे लेकिन अपने व्याख्यान-प्रवचन उसी प्रकार देते रहे । ऐसी सहनशीलता दुर्लभ है ।

किसी कवि ने साधु-महात्माओ के सम्बन्ध मे बहुत अच्छा कहा है कि-

पारस और सन्त में सन्त अधिकतर जान।
एक लोहा कुन्दन करे दूसरा करे निज समान॥

अर्थात् कहते हैं पारसमणि मे वह शक्ति होती है कि वह लोहे का स्पर्श कर ले तो उसे सोना बना देती है । लेकिन सन्त जब किसी को अपनाता है तो उसे अपने समान बनाना चाहता है । पारसमणि सोचती है कि यदि लोहा मेरे समान बन गया तो मेरी कीमत नहीं रहेगी जबकि सन्त विचारता है कि सारे जन मेरी तरह बनें ताकि यह वसुधा जो मेरा घर-परिवार है वह सुखी रहे । ऐसी ही विचारों का अवलोकन हमने अपने प्रपितामह गुरु स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के जीवन में किया है । आओ हम सभी उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने समाज व राष्ट्र के पुनरोत्थान मे योगदान करें।

मृत्यु से अमृत की ओर

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तम् शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर किलवेस्मर कृतं स्मर॥

अर्थात्-प्राण वायु शरीर से निकल जाने पर अमर तत्व हो जाता है और यह शरीर भस्म करने लायक हो जाता है । अत: हे प्राणी तू जीवन प्र्यर्न्त तक ओम् नाम का स्मरण कर अपने किए हुए शुभाशुभ कर्मो का स्मरण कर जब यह जीव शरीर को छोडकर सब पृथित्यादि पदार्थो मे भ्रमण करता हुआ जहा जहा प्रवेश करता है और इधर-उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार जन्म पाता है तब ही जीव सुप्रसिद्ध हो जाता है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः
न चैव क्लेदयदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:॥

गीता के दूसरे अध्याय मे कृष्ण जी अर्जुन को उपदेश देते हैं कि हे अर्जुन जीवात्मा को शस्त्र काट नहीं सकते आग जला नहीं सकती न पानी गला सकता है और न ही हवा सुखा सकती है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपडे उतारकर नए कपडे पहन लेता है उसी प्रकार जीवात्मा पुराने शरीर को छोडकर नए शरीर को धारण कर लेता है ।

एक ऐसी दुल्हनिया सजाई गई । आग रखकर चिता में जलाई गई॥
न वो राजा रहे न वो रानी रही । वक्त कहने का केवल कहानी रही ॥
जिन्दगी मे हजारो का जोडा जुडा । हस जब-जब उडा तो अकेला उडा।

उसी प्रकार स्व उत्तम चन्द्र जी गुप्ता का जीवन था बहुत ही सदाचारी और लग्नशील व्यक्ति थे वे वर्षो डाक-तार के कर्मचारी रहे उन्होंने आर्य समाज मन्दिर अलावलपुर (जालन्धर) को दान के रूप मे लाखों रुपया दिया। वे आर्य समाज के उत्सव मे बढ-चढ कर भाग लेते थे ।

उनके निधन पर गहरा शोक हुआ है बडे भ्राता कृष्ण चन्द्र गुप्ता छोटे भाई प्रितम जी गुप्ता, उनके सुपुत्र परमजीत कुमार, डा साक्षी कमल हस्पताल जालन्धर, छोटे पुत्र सत्येन्द्र गुप्ता एव समस्त परिवारो मित्रो एवं सम्बन्धियो को इनके निधन से बहुत दुख हुआ है । परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे । और परिवारजनो को दुख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

-धर्मपाल, प्रिंसीपल, दयानन्द माडल स्कूल, अलावलपुर

पठानकोट में लोहड़ी पर्व

आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट के तत्वावधान मे लोहडी का पर्व 12-1-2001 को बडे समारोह पूर्वक साय 3 से 5.30 बजे तक धूमधाम से मनाया गया।

यज्ञ के ब्रह्मा श्री डा योगेन्द्र पाल जी शास्त्री व पण्डित विनोद जी शास्त्री थे । इस अवसर पर श्री डा योगेन्द्र पाल जी का बहुत ही प्रभावशाली प्रवचन हुआ ।

यज्ञ के मुख्य यज्ञमान प्रि पी एन अशोक ठा सत्य प्रकाश सिह, प्रि सतोष महाजन, श्री सुशील महता, श्री राकेश महाजन बने । बडी श्रद्धा से सभी ने यज्ञ किया । इस समारोह मे सैंकडो स्त्री-पुरुषों व बच्चों ने भाग लिया। इस अवसर पर प्रि. स्वतत्र कुमार जी व श्री यशपाल मित्तल विनोवा आश्रम सचालक ने भी लोहडी पर्व के उपलक्ष्य में अपने-अपने विचार प्रकट किए । कार्यक्रम बडा प्रभावशाली रहा । **-राकेश शर्मा**

आर्य समाज पठानकोट का वार्षिक चुनाव

आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट का वार्षिक चुनाव 24-12-2000 को सर्वसम्मति से निम्न प्रकार श्री यशपाल जी गान्धी की अध्यक्षता मे हुआ ।

सरक्षक-प्रि स्वतन्त्र कुमार जी, प्रधान-श्री विनोद मल्होत्रा एडवोकेट, उप प्रधान-श्री पृथ्वीराज महान, श्री सुशील महता, बहन अमरता जी, मन्त्री :-ठा सत्य प्रकाश सिंह। उपमन्त्री:- श्री रमेश नैव, श्री चरण दास। कोषाध्यक्ष:-श्री सुभाष महाजन, पुस्तकाध्यक्ष:-राकेश महाजन। स्टोर कीपर-सुरेश महेन्द्र ।

अन्तरंग सदस्य:-श्री अशोक गुप्ता, श्रीमती विमला डोगरा व सविता जी, मास्टर सतीश जी, डा वेद प्रकाश जी गुप्ता । श्री राम आहलुवालिया, श्री यशपाल गांधी।

-सत्य प्रकाश सिंह

धर्मवीर कर्मवीर दानवीर आर्य पुंज प्रेरणा स्रोत
श्री सत्यानन्द जी मुंजाल लुधियाना

पाठकगण ! आपको जानकर आश्चर्य और भरपूर प्रसन्नता होगी कि श्री सत्यानन्द जी मुजाल भारत के महान उद्योगपति होते हुए भी दिन रात आर्य समाज की सेवा कर रहे हैं। फैक्ट्री का काम यदि हाथ से करते हैं तो मन और मस्तिष्क आर्य समाज का काम करता है। मैं स्वयं एक बार फैक्ट्री में आर्य समाज के काम से गया वहां वह फैक्ट्री कार्यालय में आर्य समाज का काम कर रहे थे। यदि आप आर्य समाज में होते है तो आर्य समाज के भीष्म पितामह बन कर 83 वर्ष की आयु में भी हर रविवार को सेनापति की भान्ति तीन-2 और चार-2 आर्य समाजों के सत्संगों में स्वय पहुंच कर उन्हें सम्पन्न करवाते हैं । कमाल की बात है कि आपने ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि आर्य समाज माडल टाऊन का सत्संग समाप्त करके फिर दूसरी समाज का सत्संग 10 से 11.30 बजे तीसरी का 12 से 1.30 चौथी का 2.30 से 4 तक । आप सारा दिन रविवार को आर्य समाज के लिए रखते हैं । टिहरी गढवाल क्षेत्रो में जहां पहुचना आसान नहीं, वहां पहुंचकर तन, धन को उडेल कर आर्य समाज का प्रचार करते हैं । आप अपने घर मे वेदों से यज्ञ करते रहते हैं, क्योंकि आप केवल उद्योगपति ही नहीं, वेदों के विद्वान् भी है, और विशेषतय यह कि आप बहुत अच्छे वक्ता भी हैं । तथा जब भी देश पर "कारगिल" जैसे युद्ध का सकट आया तो आप लोगों ने भामा शाह बनकर 25 लाख रु राष्ट्र रक्षा कोष मे दे दिया। 75 वर्ष से महर्षि दयानन्द की जन्म भूमि जो जटिल उलझन मे पड़ी थी, आपने आर्य समाज को दिलवा कर अपना नाम आर्य समाज के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों मे लिखवा लिया। आपका हृदय बडा विशाल है, विचारों में उदारता और सभी छोटो बडों से आप प्यार करते हैं । जहां आपकी फैक्ट्रियां चलती हैं, विद्यालय चलते हैं, वहा आपने नि:शुल्क कन्याओं का गुरुकलु जो आधुनिक सभी सुविधाओ से युक्त है, खोल कर पंजाब की धरती का कलंक मिटा दिया तथा खाना-पीना, रहना और पहनना तक भी फ्री है मै उनकी सेवाओं की गणना भी नहीं कर सकता, जिनके रोम-रोम में महर्षि दयानन्द का ऋण उतारने की उमंग और तरग है ।

-महात्मा प्रेम प्रकाश, आर्य कुटिया धूरी

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में 11 फरवरी को महोत्सव

भक्ति संगीत एवं आध्यात्मिक प्रवचन का आयोजन 11 फरवरी 2001 रविवार को अमृतसर में किया जा रहा है । जिसमें विश्व विख्यात सन्यासी स्वामी इन्द्रवेश जी एवं श्री [illegible]वीर सिंह जी एडवोकेट अध्यक्ष, सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद के ओजस्वी व आध्यात्मिक प्रवचन होंगे । कार्यक्रम- दिनांक 11 फरवरी 2001 रविवार ।

गुरु नानक ऑडीटोरियम, नजदीक बस स्टैंड, अमृतसर ।

शुभारम्भ :- 10 बजे प्रात: । **प्रीति भोज** :-2 बजे दोपहर

-: निवेदक :-

पंजाब प्रान्तीय आर्य युवक परिषद्

महर्षि दयानन्द धाम, बाजार हंसली, नजदीक ढाब बस्ती राम, अमृतसर

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार (उत्तरप्रदेश)
ओ३म् कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद
साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
जालन्धर
दूरभाष : ☎ .292926
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र
सृष्टि संवत 1960853101, 28 जनवरी 2001 दयानन्दाब्द 177

"यह एक व्यक्ति कौन है ?"
श्री चन्द्रमोहन जी सम्पादक वीर प्रताप बताएं

श्री चन्द्रमोहन सम्पादक वीर प्रताप एक आदरणीय व्यक्ति हैं । उनके पूज्य पिता श्री वीरेन्द्र जी के आकस्मिक निधन के पश्चात् राजेन्द्रा पैलेस जालन्धर मे एक वैवाहिक पार्टी मे मैं श्री चन्द्रमोहन और कुछ अन्य गणमान्य सज्जन आपस मे वार्तालाप कर रहे थे तो श्री चन्द्रमोहन ने प्रसगवश वहा कहा कि ऋषिपाल सिह जी मैं आपको सच-सच बताता हूं मैं (चन्द्र मोहन), मेरी धर्मपत्नी [illegible] जी एवम् पिता स्व श्री वीरेन्द्र, रोजाना जब खाने के टेबल पर बैठ कर खाना खाते थे, तो हम तीनो अपने पिता जी के निधन से लगभग साल-सवा साल पहले से उन (वीरेन्द्र जी) से बोलते तक नहीं थे और कारण यह था कि हम उन से कहते थे कि 'ऋषिपाल सिह एक पक्का आर्य समाजी है और जो कुछ कहता हैं वह सब ठीक है उसके अनुकूल ही आप करे जबकि अश्विनी कुमार शर्मा, आर्य समाजी भी नहीं है और जो कुछ भी कहता है और करता है वह सब झूठ और धोखा है, उसके अनुकूल चल कर आप अपना और आर्य समाज का घोर अहित कर रहे हैं, भविष्य में भी आप का बहुत अपयश होगा ।'

कुछ समय पश्चात् मैं और श्री मुलखराज जी आर्य (तब महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब) मेरे साथ, समय निश्चित करके हम दोनों श्री चन्द्रमोहन (सम्पादक वीर प्रताप जालन्धर) के कार्यालय मे आर्य समाज सम्बन्धी आवश्यक वार्तालाप हेतु मिलने गए तो वहां पर भी श्री चन्द्रमोहन ने वही शब्द दोहराये जो मैं ऊपर राजेन्द्रा पैलेस (समीप बाम्बे पैलेस) मे कहे थे और उन्होंने यह भी कहा कि श्री वीरेन्द्र के बारे में जो कुछ वह (अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट) अब कहता या लिखता **है यह सब दुष्टता भरी चापलूसी करता है, पिता जी की व्यवस्था को तो** वह छिन्न-भिन्न कर रहा है।'

श्री चन्द्रमोहन ने "आर्य समाज का संकट" शीर्षक से पांच सम्पादकीय लेख लिखे थे। पहला 25-3-94 को, दूसरा 22-4-94 को, तीसरा 5-8-94 को, चौथा 24-5-95 को और पांचवा 10-6-95 को इसी से सम्बन्धित आदरणीय स्वामी सुमेधानन्द जी सरस्वती (चम्बा) ने भी 29-3-94 को, श्री चन्द्रमोहन के प्रथम लेख का एक प्रकार से अनुमोदन करते हुए वीर प्रताप में लिखा था । इन सभी लेखों मे सारा जोर केवल "एक व्यक्ति" पर था परन्तु इसे भीरुता ही कहा जाएगा कि उस "एक व्यक्ति" का नाम कहीं भी खुल कर नहीं लिखा गया, यह बात दूसरी है कि यह स्पष्ट है कि वह 'एक व्यक्ति' वही है जिस का नाम अब हम इस लेखनी के शीर्षक द्वारा उनसे पूछ रहे है ?

अब आईये जरा मुलाहजा फरमाए । उक्त सम्पादकीयो के संक्षेप, चन्द्र जी के शब्दो मे ही और आर्य जगत भी अपना-अपना अनुमान लगाये **कि अब वह पूज्य पिता जी की भान्ति आर्य समाज का हित कर रहे हैं या 'आर्य समाज की जड़ों में तेल डालने वाले उसी' 'एक व्यक्ति' के चुंगल** मे फंस गए हैं । यह भी गिरेबान मे झाक कर देखे, क्या इतिहास इन को मांफ करेगा ? :-'मेरा इस में कुछ नही, सब कुछ ह मो तेरा ।
तेरा तुझ को सौंप कर क्या लागे ह मेरा॥'

'आर्य समाज का सकट' (प्रथम सम्पादकीय दिनाक 25-3-94) 'यह लेख मैं अत्यन्त दु:ख से लिख रहा हू । इस मामले मे म हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था, लेकिन परिस्थितिया मुझे मजबूर कर रही हे कि आर्य जगत का ध्यान पजाब आर्य समाज मे बन रही स्थिति की तरफ दिलाऊं । मुझे आशंका है कि अगर आर्य समाज के महापुरुष आ· दूसरे वरिष्ठ नेता हस्तक्षेप नहीं करते तो यह सस्था शिथिल पड जाएगी **और ऐसे लोग (?) हावी हो जायेंगे जो इस सस्था का लाभ अपने निजि और व्यक्तिगत हित के लिए उठायेंगे** ।' 'मुझे आशका ह कि सभा को कुच्छ पदाधिकारी (?) इस के व्यापक हित को छाड कर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए इस्तेमाल कर रहे हे। इसलिए चेतावनी देने के लिए आज मैं यह लेख लिख रहा हू कि **सभा मे ऐसे लोग (?) हावी होते जा रहे हैं जो इसका आखिर में सत्यानाश करेगे।**'

'प्रधान जो कार्यकारी हैं एक नेक शरीफ ओर ईमानदार व्यक्ति हे **लेकिन वह घिर गए हैं (?) और कुछ लोग (?) उन्हें गलत रास्ते पर चलने का प्रयास कर रहे है ।** '......'मैंने तो खुद उनसे मिल कर **प्रार्थना की कि आप प्रधान हैं आप डट कर प्रधानगी करो** ओर सभा को गलत तत्वों (?) से बचाए रखो । ऐसा आश्वासन उन्होने (पं. हरबंस लाल शर्मा) ने मुझे दिया भी लेकिन दु:ख से कहना पडता है कि उन्हीं लोगो (?) के आगे वह आत्म समर्पण कर रहे है। **आज प्रधान सभा को नहीं चला रहे, प्रधान को कुछ महत्वाकांक्षी पदाधिकारी (?) चला रहे हैं।**'

'जब पिता जी (श्री वीरेन्द्र) का पार्थिव शरीर अभी घर पर ही पड़ा था तो यह लोग (?) जोड़-तोड़ मे लगे हुए थे । अब उन के दशकों से खड़ी की गई संस्था की जड़-उखाड़ने मे यह लोग (?) लगे हुए हैं ।'........

'नवांशहर आर्य समाज के लोगो ने एक भूमि सकण्डल के बारे प्रधान (श्री वीरेन्द्र) को सूचना दी थी । चाहिए तो यह था कि इस स्कैंडल की जांच की जाती ।' .'जिन लोगो को पिता जी ने वर्षो परखने के बाद जिम्मेवारिया दी थी उन्हे हटाया जा रहा हे ओर जिन्हे उन्होने हटाया था उन्हें आगे लाया जा रहा है, **और यह सब कुछ "एक व्यक्ति" के इशारे पर किया जा रहा है।**' 'अगर प्रधान खुद एक कठपुतली बन कर रह जाए तो संस्था का क्या बनेगा ? आज **'यह संस्था उन हाथों में खिसकती नजर आ रही है जिनका कोई व्यवसाय नहीं (?) जो अपना कामकाज छोड़ चुके है (?) आर्य समाज ही उनकी रोजी-रोटी है।** ''अभी यह क्रम शुरू हुआ हे आगे

(शेष पृष्ठ 2

(पृष्ठ 1 का शेष)

चल कर यह कहा पहुंचेगा यह नजर आता है । इसलिए आज आर्य जगत को यह चेतावनी दे रहा हू कि अगर आप सावधान और जागरूक नही होते तो स्वामी दयानन्द की प्रेरणा से बनाई गई यह संस्था बिखर जाएगी गलत हाथो (?) मे चली जाएगी । मेरा विशेष अनुरोध आर्य समाज की दो विभूतियो पूजनीय स्वामी सर्वानन्द और पूजनीय स्वामी सुमेधानन्द से है। आप कब तक मूक दर्शक बने रहेगे ?'

2 **"आर्य समाज का सकट" (दूसरा सम्पादकीय दिनांक 22-4-94)**

'सम्भवत· एक महीना पहले इसी शीर्षक से मैंने एक लेख लिखा था मेरी कोशिश केवल इतनी थी कि आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्दर जो स्थिति पेदा हो गई हें उसके बारे मे आर्य जगत को अवगत करा दूं ताकि समय रहते सुधार किया जा सके । मुझे इस बात का संतोष है कि इस लेख की प्रतिक्रिया बहुत सुखद रही है। बहुत से पत्र मुझे आए हैं और बहुत से लोग मुझे आ कर मिले है । पूजनीय स्वामी सर्वानन्द जी, स्वामी सुमेधानन्द जी और स्वामी आनन्दबोध जी सरस्वती जी तीनो ने भी पत्र लिख कर मेरे विचारो से सहमती व्यक्त की है । स्वामी आनन्दबोध जी ने तो सभा की "दयनीय स्थिति" पर चिन्ता व्यक्त की है । लेख लिखने के बाद में (चन्द्र मोहन) स्वयम् प्रतिनिधि सभा के कार्यकारी प्रधान श्री हरबस लाल शर्मा से भी मिला था, उन्होने भी मेरे विचारो से सहमति व्यक्त की और अपनी लाचारी और बेबसी प्रकट की। मेरा मकसद भी इतना ही था । मै चाहता था कि जो स्थिति बन रही हे उसके बारे आर्य जगत को जानकारी दूं ।' 'इस स्थिति का इलाज यह हे कि वरिष्ट सदस्य अपनी जिम्मेवारी समझे और हस्तक्षेप करे अगर इस समय वह चूक गए तो इतिहास उन्हे माफ नहीं करेगा । जहा तक मेरा सम्बन्ध है मै तो पहरेदार की भूमिका निभाता रहूंगा।'

3 **"आर्य समाज का सकट" (तीसर सम्पादकीय दिनांक 5-8-1994)**

जिस समय स्वामी सर्वानन्द जी को अधिकार देने का निर्णय लिया गया उस समय सार्वदेशिक के प्रधान स्वामी आनन्द बोध भी वहां उपस्थित थे उस समय सब को आशा थी कि अब यह मामला सही हो जाएगा, हमारी किश्ती किनारे लग जाएगी लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि फिर उल्टा चक्र चल पडा जो तदर्थ समिति स्वामी सर्वानन्द जी ने बनानी थी, दिल्ली से बन कर आ गई । **अधिकार इस महापुरुष को दिए गए थे, हडप कोई (?) और गया ।**

4 **'आर्य समाज का संकट" (चौथा सम्पादकीय दिनांक 24-5-95)**

'इब्राहिम लिंकन के यह शब्द याद करवाना चाहता हू "जिस समय विरोध करने की जरूरत हो, उस समय अगर खामोशी का पाप किया जाए तो इस से मनुष्य कायर बन जाता है।" '

आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थिति यह है कि इसके एक मात्र निर्वाचित पदाधिकारी आदरणीय वीरेन्द्र जी का स्वर्गवास हो चुका है। चाहिए तो यह था कि उनके देहान्त के बाद मुख्य सभा की बैठक बुला कर नय पदाधिकारियो का निर्वाचन कर लिया जाता । **लेकिन इसके विपरीत एक जुडली (?) वहा काबिज हो चुकी है, जो जोड़-तोड़ में अपन आप को कायम रख रही है।.....** ' किसी भी संगठन में इस प्रकार लोकतांत्रिक प्रतिक्रिया से खिलवाड नही किया जाता, जिस प्रकार पजाब सभा मे किया जा रहा है। **एक महत्वाकांक्षी पदाधिकारी (?) सब को नचा रहा है, और बाकी सब नाच रहे हैं । प्रधान जी शरीफ** आदमी हे, अच्छे और नेक इन्सान है दानवीर हैं, लेकिन वह खुद स्वीकार करते हे कि जिन पत्रो पर वह हस्ताक्षर करते हैं, उन्हे मालूम नही होता कि इन मे क्या लिखा है । **जहा तक महामन्त्री (?) जी** का सवाल हे वह कहते तो यह रहे हैं कि वह आदरणीय वीरेन्द्र जी के बहुत वफादार हें, लेकिन उन्होने पहला काम यह किया है कि जो व्यवस्था पिता जी ने वर्षों की मेहनत से खड़ी की थी उसे इस अवधि **में छिन्न-भिन्न कर दिया है। जो उनके वफादार साथी थे उन्हें एक-एक कर के पृथक् कर बाहर फैंका गया है। कमेटियां बनाना, बदलना, तोड़ना अब इस महोदय (?) का काम है। परिणाम यह है कि हर जगह, अस्थिरता का माहौल है । जहां तक कोषाध्यक्ष महोदय (श्री सोहन लाल सेठ के पिता स्वर्गीय योगेन्द्र पाल सेठ) का सम्बन्ध है, वह तो जालन्धर का एक आर्य स्कूल ही निगल गए हैं । "सईयां भये कोतवाल (?) इस लिए कोई पूछने वाला नहीं है। आर्य समाज अड्डा होशियारपुर, जालन्धर का सब से बड़ा आय समाज होता था। इस शाखा ने एक-एक कर सभी प्रमुख व्यक्तियो को वहां से निकाल दिया। आज वह अकेला है । हवन के समय भी केमरा लगाया जाता है, क्योंकि उपस्थिति शून्य होती है।"**

'मैं इन सब बातों से आर्य जगत को इस लिए अवगत करा रहा हूं, ताकि समय रहते स्थिति पर नियंत्रण कर लिया जाए । जिन लोगो ने अपनी सारी जिन्दगी आर्य समाज की सेवा में लगा दी, कई-कइ दशक अपना खून और पसीना आर्य समाज की सेवा में लगा दिया, उनसे मेरा पूछना है, कि आप कब तक खामोश बैठेंगे ? जब तक आर्य समाज का सारा ढांचा छिन्न-भिन्न नहीं हो जाता ? जायदाद लुप्त नहीं हो जाती हैं ? और आर्य शिक्षा संस्थाओ में नौकरिया बिकने नहीं लगती हैं ? जब सब कुछ खत्म हो जाएगा, तब आप उठोगे ?' मेरा आज पूछना है, सर्वश्री सरदारी लाल, केवल कृष्ण पुरी, रणवीर भाटिया, इन्दु, प्रो. स्वतत्र कुमार, आसानन्द, कमला आर्या, ब्रह्मदत्त शर्मा, कर्मचन्द माली, सैगर और इनके जैसे असख्य आर्य समाज के बुजुर्गो से कि आप कब तक खामोश बैठेगे ? आप से मेरी आय बहुत कम है इसलिए हाथ जोड कर निवेदन भी हे कि स्थिति की गंभीरता को पहचानिए और आगे आकर इस सस्था को सभालने की कोशिश करे।'

'मेरा इसमे कोई व्यक्तिगत हित नही है। कुछ गलत फहमिया अवश्य फैलाई जा रही हैं । न मै प्रधान बनना चाहता हू, न कोई पदाधिकारी । लेकिन इतना जरूर चाहता हू कि दादा स्वर्गीय महाशय कृष्ण जी, और पिता स्वर्गीय वीरेन्द्र जी ने जिस सस्था को बनाने म अपनी जिन्दगियां न्योछावर कर दी वह सस्था अब सही हाथो मे चली जाए। **जिन लोगों के हाथ में इस समय यह संस्था है (?) वहां यह सुरक्षित नहीं है। इस लिए आर्य समाज के बुजुर्गो, नेताओं और शुभ चिन्तकों से आज मैं अपील कर रहा हूं कि वह आगे आकर इस सस्था को इस संकट से निकालें ।'**

5. **"आर्य समाज का संकट" पांचवा और अन्तिम सम्पादकीय दिनांक 10-6-95**

'इस शीर्षक से यह मेरा पांचवा लेख है ।' . 'लेकिन कुछ महत्वाकांक्षी श्री (?) पदाधिकारियो ने अपनी रियासत कायम करने के लिए यह चुनाव नहीं होने दिए। कुच्छ जोड-तोड से इस पर कब्जा कर के बैठ गए हैं। मैंने रियासत शब्द का जानबूझ कर प्रयोग किया हे। आय प्रतिनिधि सभा भी किसी रियासत से कम नहीं है। इस के पास 60 के करीब शिक्षण संस्थाये हैं और अरबो रुपये की जायदाद है। इस लिए बहुत से लोग (?) इस की ओर आकर्षित हो रहे हैं।'

'जो संस्था नैतिकता में समाज का प्रतिनिधित्व करती थी आज खुद इस मामले में खोखली हो रही है।'

6. "आर्य समाज का सकट" वीर प्रताप 29-3-94 पृष्ठ 1 पर स्वामी सुमेधानन्द जी (चम्बा) ने तो विशेष एक बात पर ठीक ही जोर दिया है **कि मांसाहारी, शराबी, व्यसनी, यज्ञ न करने वाला, सत्संग म न आने वाला आर्य समाज का सदस्य न बनने पाए । (?)**

चौ० ऋषिपाल सिंह एडवोकेट,
उप प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

सम्पादकीय.....

भूकम्प ने की विनाशकारी लीला

जब भी, जहां भी भूकम्प आता है त्राहि-त्राहि मच जाती है । 26 जनवरी को गुजरात में आए भूकम्प में कहा जाता है कि 30,000 हजार लोगों की मृत्यु हो गई है और साथ यह भी कहा जा रहा है कि 1 लाख 50 हजार शव अभी भी मलवे के नीचे दबे पड़े हैं। इस विनाशकारी भूकम्प के झटके अहमदाबाद, सुरेन्द्र नगर, गांधी नगर, मौरवी, भुज, अंजार, रापर, कच्छ, भाचु अर्थात् गुजरात के लगभग सम्पूर्ण इलाके में 26 जनवरी 2001 को आए। भूकम्प ने यहां बहुत तबाही मचाई है । इतना बडा भूकम्प शायद पहले कभी न आया हो जितना कि इस बार आया है, क्योंकि इस बार 1 लाख से भी ऊपर इस भूचाल मे मरने वालों की संख्या का अनुमान है । 26 जनवरी से ही प्रत्येक नगर में भूचाल से गिरे हुए मकानों के मलवे को हटाने का काम चल रहा है परन्तु अभी तक पूरा मलवा हटाया नहीं जा सका। मलवा हटाने मे सेना के दमकल, बुलडोजर और क्रेन मशीने हजारो की संख्या में स्थान-स्थान पर लगी हुई हैं । सेना के साथ-साथ व्यक्तिगत तौर पर भी, जिस भी व्यक्ति के पास जो भी मलवा हटाने का साधन है वह उसे लेकर मलवा हटाने में लगा हुआ है । समाज सेवी संस्थाओं के भी बहुत सारे लोग मलवा हटाने के कार्य में तथा राहत कार्यों रात-दिन लगे हुए हैं ।

इस भूचाल में मरने वालों की संख्या 10000 आंकी गई थी फिर 20 हजार आंकी गई थी और अब 30 हजार की घोषणा हुई है। लेकिन मरने वालों की संख्या ज्यों-ज्यों मलवा हटाया जा रहा है बढ़ती जा रही है और इस का पूर्ण आकंलन तभी हो पाएगा जब सभी शहरों से, नगरों से तथा गांवों से घिरे हुए मकानों के मलवे को पूरी तरह से हटांया जा सकेगा । अब यह आशा तो कम हो गई है कि मलवे के नीचे से कोई भी जीवित व्यक्ति मिल सके । कहा जाता है कि अब वहां मलवों के नीचे से लोगों के शवों की दुर्गन्ध भी फैलने लग गई है ।

भूकम्प का समाचार सुनते ही भारत के अन्य प्रान्तों से हजारो की संख्या में लोग गुजरात पहुंचे हैं और अब भी पहुंच रहे हैं, विदेशों से भी लोग आ रहे हैं । मलवा हटाने में सभी लोग जुटे हुए हैं। जिन परिवारो के कुछ लोग बचे हैं वह अपने मृतक बन्धु-बांधवों के अन्त्येष्टि सस्कार कर रहे है । कई परिवार तो ऐसे हैं जिनका कोई भी व्यक्ति शेष नहीं बचा।

देश के ऊपर तथा समाज के ऊपर किसी भी प्रकार की कोई भी आपत्ति आई है तो आर्य समाज ने उसको दूर करने के लिए अपना तन-मन-धन सब कुछ लगाया है । पहले भी जब भी देश में बाढ व भूकम्प आदि आते हैं तो वहां सहायता कार्यो के लिए आर्य समाज सब से आगे रहा है । इस बार भी आर्य समाज को किसी से पीछे नहीं रहना चाहिए। वैसे तो बहुत से आर्य बन्धु गुजरात में राहत कार्य में लगे हुए हैं, परन्तु अब और अधिक लोगों को इस कार्य मे लग जाना चाहिए और तन-मन-धन से भूकम्प पीडित लोगो को सहायता करनी चाहिए ।

आर्य समाज का गुजरात से व मौरवी से विशेष सम्बन्ध है । यह महर्षि दयानन्द से सम्बन्धित है। यह महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्म स्थली है । महर्षि का जन्म टंकारा मे सन् 1824 में हुआ था। इसलिए आर्य समाज को महर्षि जन्म स्थली के भूकम्प पीड़ित लोगों की सहायता के लिए आगे आना चाहिए और सहायता कार्य करना चाहिए। हम आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से सभी मृतकों को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हैं और परमात्मा से उनकी आत्मिक शान्ति व सद्‌गति के लिए प्रार्थना करते हैं तथा घायल व्यक्तियों के शीघ्र स्वस्थ की परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

-हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी का स्पष्टीकरण

आर्य जनता को भ्रमित करने के लिए भू पू महामन्त्री श्री अश्विनी कुमार शर्मा कई प्रकार की अनियमितताए कर रहा हैं। उन्होने जो अपनी एक तथा कथित सभा बनाई है उसमे संरक्षक के रूप मे पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी का नाम भी दिया है। पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी आर्य समाज बस्ती गुजा जालन्धर में पिछले कई वर्षो से लगातार उत्सवों पर आते रहे हैं । मै भी पिछले कई वर्षो से आर्य समाज बस्ती गुजां का प्रधान चला आ रहा हू । मै स्वामी जी का बहुत सम्मान करता हूं मुझे विश्वास नही हो रहा था कि पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी कैसे इस तथाकथित सभा के सरक्षक बन गए है । स्वामी जी बड़े निष्पक्ष व्यक्ति है वह किसी भी विवाद मे पडने वाले नहीं हैं। फिर वह तो अपने त्रिवर्षीय महायज्ञ मे लगे हुए है । वह किसी तथाकथित सभा मे रह कर कैसे कार्य कर सकते हैं ?

आज जब स्वामी जी का रजिस्टर्ड पत्र दिनाक 29-1-2001 का लिखा मुझे प्राप्त हुआ और उसके साथ उनका स्पष्टीकरण पत्र प्राप्त हुआ तो मुझे वास्तविकता का पता चला कि श्री अश्विनी कुमार ने स्वामी जी से बिना पूछे ही उनका नाम अपनी सूचि मे दे दिया है। जनता को गुमराह करने के लिए उसने ऐसा किया है ताकि आर्य जनता यह समझे कि पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी व दयानन्द मठ चम्बा भी उनके साथ है । स्वामी जी ने अपने पत्र मे सारी बात स्पष्ट कर दी है आर्य जनता की जानकारी के लिए यह पत्र मैं प्रकाशित कर रहा हू। स्वामी सुमेधानन्द जी का स्पष्टीकरण-

स्पष्टीकरण

सभी आर्य भाई बहनों की सेवा में निवेदन करना चाहता हू कि मैं, स्वामी सुमेधानन्द, दयानन्द मठ-चम्बा 16-4-2000 से एक अभूतपूर्व तीन वर्षीय गायत्री एव चतुर्वेद परायण महायज्ञ मे संलग्न हूं । इस महान यज्ञ की पूर्णाहुति 16-4-2003 को होगी। मैंने निश्चय किया हुआ है कि पूर्णाहुति पर्यन्त मै मठ से बाहर नहीं जाऊंगा अत. किसी भी प्रकार की अन्य गतिविधियो में भाग लेने का प्रश्न ही नहीं उठता है । मै तन-मन से इस यज्ञ के प्रति समर्पित हू ।

इस स्पष्टीकरण की आवश्यकता इसलिए हुई क्योकि श्री अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट ने एक परिपत्र द्वारा यह जानकारी दी है कि उन्होंने जो सभा आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के नाम से गठित की है तथा जिसके वह मंत्री है उसके सरक्षक मण्डल मे पूज्यपाद गुरुदेव श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, मै (स्वामी सुमेधानन्द) तथा श्री चन्द्रमोहन है।

इस समाचार का मैं प्रतिवाद करता हूं । मुझसे पूछे बिना मेरा नाम लिखा जाना किसी भी प्रकार उचित नही ठहराया जा सकता। मैंने रजिस्टर्ड पत्र द्वारा श्री अश्विनी कुमार शर्मा को सूचित भी कर दिया था कि वह मेरा नाम सरक्षक मण्डल से हटा दे। धूरी के श्री महात्मा प्रेम प्रकाश जी को भी मैंने यह जानकारी उनके पूछने पर दी थी। मै 2003 तक सिवाय यज्ञ के अन्य किसी भी गतिविधि मे भाग नही लूंगा, यह दृढ निश्चय है। लोगों मे किसी प्रकार की शका उत्पन्न न हो इसीलिए स्पष्टीकरण दिया है।

-स्वामी सुमेधानन्द, चम्बा

मैंने स्वामी जी का पत्र जो उन्होने स्पष्टीकरण के रूप मे मुझे भेजा है उसे यहा प्रकाशित कर दिया है ताकि आर्य जनता को पता चल सके कि श्री अश्विनी कुमार शर्मा कैसी-कसी चाले चल रहा है। यह पत्र पढ़ कर दयानन्द मठ चम्बा के सम्बन्ध मे मेरे मन मे जो भ्रान्ति पैदा हो गई थी वह दूर हो गई है ।

-सुरेन्द्र नाथ मुरगई, सभा महामन्त्री

जन्म शताब्दी के अवसर पर–

उड़ीसा में आर्य समाज के समर्पणशील प्रचारक पं. लिंगराज अग्निहोत्री

ले. पं. प्रियव्रत दास, भुवनेश्वर

पातञ्जलि योग शास्त्र के प्रवक्ता समाज सुधारक तथा उत्कल प्रदश क आर्यो म अग्रगण्य प निगराज अग्निहोत्री का जन्म 1900 इ म उडीसा प्रान्त के गजाप जिले क एक गाव बुधाईसुनी मे हुआ था आज उडीसा मे आर्य समाज की जागृति दिखाई दे रही हे उसका मुख्य श्रेय इसी समपणशील प्रचारक को है जिसने गजाम जिल के पोलासरा नाम स्थान मे सर्वप्रथम आर्य समाज की स्थापना की । डेढ वर्ष की आयु म व यहा के वृद्ध दम्पति के दत्तक पुत्र क रूप मे आए थे। प्राथमिक शिक्षा क लिए भी इस बालक का बडा सघष करना पडा था । ब्राह्मण पुत्र हाने के कारण उन्हे एक पोराणिक । ईश्वर मिश्र के यहा पाराणिक कर्मकाण्ड का अध्ययन करने के लिए भेजा गया । यह वह समय था जब दक्षिण उडीसा के कुलीन ब्राह्मणा का परम्परा से बहुत बडी सख्या मे ब्राह्मण परिवार प्राप्त थे। ये शिष्य अपने गुरुआ का प्रति वर्ष नियमित रूप से दक्षिणा प्रदान करते, उनके चरणो म सिर झुकाते तथा उनके खाये भाजन को प्रसाद रूप मे ग्रहण करते उन्हे भगवान् का साक्षात् प्रतिनिधि माना जाता था। जब लिगराज बडे हुए ता उन्हे भी कहा गया कि व गावा मे जाकर वहा रह रह अपने पुराने शिष्यो को शिक्षित करे तथा नए शिष्य बनाये। लिगराज का गुरुडम के इस पाखण्ड पूण नियम से घृणा हो गइ । किन्तु जिस माता ने उन्ह दत्तकपुत्र बनाया था वह उन्हे इस कार्य के लिए विवश करने लगी। लिगराज ने अपने गुरु क समक्ष इस कार्य के प्रात अपना आक्रोश प्रकट किया।

उनके गुरु प इश्वर मिश्र ने उन्हे मनुस्मृति के कुछ अध्याय पढाये थे । इस ग्रन्थ का एक श्लाक उनके मन मे प्राय कौंधता रहता। वह था–

मृत शरीर मृतसृज्य काष्ठलाष्ठ सम क्षितौ ।
विमुखा बाधवा यान्ति धर्मस्तमयुगच्छति॥ 4-219

अर्थात् मृतक के बंधु जन तो उसके शरीर को लकडी और पत्थर तुल्य समझ कर धरती पर छोडकर चले जाते हैं । अकेला धर्म ही उसका अनुगमन करता है । लिगराज उस धर्म को साक्षात् देखना चाहते थे जिसके बारे मे शास्त्र का कहना है कि वह व्यक्ति के साथ जाता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे मृतको की अन्त्येष्टि यात्राओ मे बराबर जाते रहे । वे दाह स्थल पर घण्टो खडे रहते जबकि अन्य लोग स्वगृहो की ओर प्रस्थान कर जाते । उन्हे जब वहा धर्म के दर्शन नहीं होते हो वे निराश हो जाते । उनकी अकाक्षाओ का कोई समाधान नहीं कर सका उनका अध्यापक भी नहीं एक दिन वे अपने माता-पिता को बिना सूचना दिये कलकत्ता चले गए। वहा वह अनेक मत-सम्प्रदायो के आस्था स्थलो पर भटकने के पश्चात् 19 कार्नवालिस स्ट्रीट (अब विधान सरणी) के आर्य समाज मे पहुच गए । अब वे यहा नियमित रूप से आने लगे । यहीं पर उनकी धर्म जिज्ञासा शान्त हुई, उनकी शकाओ का उत्तर मिला और उन्होने अपने भावी मार्ग का निर्धारण कर लिया। अब उन्होने कलकत्ता के उडीसा निवासियों के बीच धर्म प्रचार करना आरम्भ किया ।

इसके पश्चात् वे अपने ग्राम मे आए । अब उनके पास स्वामी दयानन्द स्वामी श्रद्धानन्द तथा स्वामी दर्शनानन्द के कुछ ग्रन्थ थे। उन दिनो उडीसा के भीतरी भागो मे हिन्दी एक विदेशी भाषा के तुल्य थी। प लिगराज को हिन्दी सीखने तथा उपर्युक्त लेखो की पुस्तको के अभिप्रायः को जानने के लिए अत्यन्त श्रम करना पडा । शीघ्र ही उनका घर हिन्दी सीखने, योगासन का प्रशिक्षण देने तथा स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों का ज्ञान कराने का केन्द्र बिन्दु गया।

कलकत्ता छोड़ने के पहले वे अपने कुछ युवा मित्रो के साथ देश के स्वाधीनता आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए । अब वे चरखा क"ने, गांधी टोपी पहनते तथा देश भक्तों के जुलूसों में भाग लेते। कलकत्ता से उडीसा लौट कर उन्होने अपनी पूर्व प्रवृत्तियों को जारी रखा साथ ही अपने मित्रो को हिन्दी सीखने, उसका प्रचार करने, बालको का चरित्र निर्माण करने तथा बाल विवाह उन्मूलन अछूतोद्धार, पर्दा निवारण तथा जन्माधारित जाति व्यवस्था के उन्मूलन जैसे सामाजिक सुधारो का महत्व बतलाते ।

यह उनका सौभाग्य था कि उडीसा के प्रथम आर्य समाजी महान् समाज सुधारक तथा सत्यार्थ प्रकाश के उडीसा अनुवादक श्रीवत्स पण्डा उनके बहनोई थे और उनके गाव से मात्र पचास मील की दूरी पर रहते थे। दोनो का आर्य समाज से सम्पर्क भिन्न साधनो और परिस्थितियो मे हुआ था । श्रीवत्स पण्डा का पत्र व्यवहार लाहौर के तत्कालीन आर्य नेताओ से रहा जबकि लिगराज कलकत्ता के आर्यों के सम्पर्क मे आ चुके थे । अब दोनो ने मिलकर उडीसा में आर्य समाज के कार्य को बढाया । पण्डा जी ने अपने लेखन के "रा अधविश्वासो के विरोध मे अपना अभियान चलाया जब कि लिगराज वैदिक सौलह सस्कारो के प्रचार, योग प्रशिक्षण , तथा आध्यात्मिक साधना पर बल देते थे।

उनकी माता ने (पिता दिवगत हो चुके थे) अब उनका विवाह कर दिया । पत्नी उमा देवी उस समय उन्नीस वर्ष की थी जब कि लिगराज की आयु छब्बीस वर्ष की थी । पत्नी ही उनकी प्रथम शिष्या बनी जिसने देवप्रतिमाओ को कुए में डाल दिया और नियमित रूप से सध्या करने लगी। उसने वै।.क उपासना प्रणाली को अपना लिया। उनके दो पुत्र हुए जिनके आरम्भ से ही वैदिक सस्कार कराए गए । जब लिगराज हरिजन बस्ती के निकट के घर मे रहने लगे तो पौराणिक समुदाय ने उन्हें नाना कष्ट दिए तथा उत्पीडित किया । जब वे कथित अछूतों को अपने कुएं से पानी भरने देते, उन्हें गायत्री मंत्र सिखाते तो लोग उनको तंग करते, उनका उपहास करने लगते। लिंगराज से लोगों की नाराजगी इसलिए थी कि स्थानीय जनों को हिन्दी सिखाते थे । जब वे इधर-उधर व्यर्थ भटकने वाले साधुओ और बाबाओं को सुधारने की कोशिश करते तो यही लोग उनके विरुद्ध हो जाते ।

1940 में अपने परिजनों के कहर विरोध के उपरान्त उन्होन अपने दोनो पुत्रो प्रियव्रत तथा देवदत्त का आर्य समाज की विधि से उपनयन (यज्ञोपवीत) कराया। जब उनकी माता की मृत्यु हुई ता वैदिक रीति से उसका अन्त्येष्टि सस्कार किया। इस कारण गाव वालो तथा परिवार के लोगो द्वारा उनका विरोध चरम सीमा पर पहुच गया । अपने गाव मे उन्होंने एक हाई स्कूल की स्थापना की जा जिले का एक विशिष्ट स्कूल था। इसे उसी स्थान पर स्थापित किया गया जहा उडीसा के गाधी गोप बन्धु दास ने अपना व्याख्यान दिया था । उन्होने गोपबन्धु की यादगार मे एक पुस्तकालय भी स्थापित किया । उनके अन्य सेवा कार्यो मे कन्या पाठशाला की स्थापना कुए और तालाप खुदवाया तथा उन्हे स्वच्छ रखने की स्थायी व्यवस्था करना आदि मुख्य है । इस लोकोपकारी कार्यो में वे स्वय मजदूरो के काम का निरीक्षण करते ओर भवन निर्माण कार्य की पूर्ण चौकसी रखते । उन्होने मजदूरो से कहा कि वो अपना पारिश्रमिक उन लोगो से ले, जिन्होन इन कामो म अपना सहयोग करने का वचन दिया है। सेवाभावी लिगराज उस घर मे तुरन्त पहुचते जहा किसी की मृत्यु का समाचार उन्हे मिलता। वे मृत व्यक्ति की अन्तयष्टि म शरीक होते और वैदिक विधि स सस्कार करते ।

1943 में उडीसा में भयकर अकाल पडा। उस समय आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने अपने दो प्रचारको को अकाल पीडित सहायता कार्य के लिए लिगरा" के गाव पोलासरा भेजा। पजाब से आये पं. वेदव्रत शास्त्री और पं. अमरनाथ लिगराज की देखरेख में राहत कार्यों में जुट गए।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

(पृष्ठ 4 का शेष)

इस समय एक महत्वपूर्ण कदम उठा कर पं. लिंगराज ने स्वग्राम पोलासरा में आर्य समाज की स्थापना कर दी । सम्भवत: यह उड़ीसा की प्रथम आर्य समाज थी। 94 वर्षीय पं. वेदव्रत शास्त्री आज भी इस आर्य समाज में रहते हैं । पं लिंगराज ने ही इन्हें लाहौर के दयानन्द उपदेशक विद्यालय में अध्ययन के लिए भेजा था ।

लिंगराज अग्निहोत्री कहलाते थे क्योंकि कलकत्ता से लौटने के बाद उन्होंने नियमित रूप से यज्ञ करना आरम्भ कर दिया था। यदि वे रेल में यात्रा करते तब भी यज्ञ नियमित रूप से करते । वे प्रात: तीन बजे उठ जाते और संध्योपासना तथा स्वाध्याय मे लग जाते । जब -नहोत्र का समय आता तो अन्य जिज्ञासुगण भी उसमें सम्मिलित 1962 में उन्होंने सन्यास ले लिया तथा उड़ीसा के वनवासी प्रधान जिलों-कोरापुर तथा कालाहाण्डी मे रहने लगे । उनके अनथक प्रयत्न का ही परिणाम था कि अनेक आदिवासियो ने मांसाहार का त्याग कर दिया, मद्यपान तथा तलाक आदि बुराईयो को छोड़ दिया । वनवासियो का अध्ययन करने के लिए जब आक्सफोर्ड विश्व विद्यालय, इंगलैण्ड के प्रो टी बरूआ उडीसा के कोरापुर जिले में आए तो उन्हे इस महान् समाज सेवक से मिल कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । अब वे एक दुभाषिये के माध्यम से उनसे वार्तालाप करते। डा. बरूआ ने इन चर्चाओं का सारांश इंगलैंड के अनेक पत्रो मे प्रकाशित करवाया था । पं. लिंगराज ने उन्हे बताया कि प्राचीन ऋषियों को ही आदिवासी संज्ञा थी न कि आज के इन तथाकथित आदिवासियों को जो सामाजिक दृष्टि से पूर्णतया उपेक्षा से जी रहे हैं और जंगलों में दयनीय जीवन बिताते हैं । इन वनवासियों तथा पाश्चात्य देशों के लोगों में अनेक समानताएं हैं यथा भोजन पान, तथा तलाक आदि । दोनों के लोक गीतों में तो अद्भुत समानता दिखाई देती है। जब प्रो. बरूआ ने प्राचीन आर्यों द्वारा भारत पर आक्रमण की बात कही तो पं. लिंगराज ने उसका तीव्र प्रतिवाद किया।

पं. लिंगराज ने स्त्री शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया था। उनकी बड़ी पुत्र वधू श्रीमती शन्नो देवी ने उनके जीवन एवं शिक्षाओ से प्रेरणा ली और वैदिक उपदेशिका के रूप में कार्य किया । अब तक उन्होंने अनेक संस्कार कराए हैं, विविध ग्रन्थों की रचना की है, तथा अमेरिका, मोरिशस व इंग्लैंड मे वेद प्रचारार्थ जा चुकी हैं । उन्होंने अपनी उड़िया पुस्तक 'वेदपाठ और वैदिक कर्मकाण्डरे नारीर अधिकार' में लिखा- "चालीस वर्ष पूर्व मैं आपके (अपने श्वसुर पं लिंगराज) घर में पुत्रवधू के रूप में प्रविष्ट हुई थी और यहां मेरे नेत्रों को एक नया वातावरण मिला था। यहां का दिन उषाकाल की संध्या प्रार्थना, यौगिक व्यायाम, अग्निहोत्र, ध्यान, स्वावलम्बन, दानशीलता, अध्ययन तथा सादगीपूर्ण जोवनादर्श से आरम्भ होता है। यहां यह सब होता है जो व्यक्ति को कर्त्तव्य पारायण तथा दिव्य जीवन मुक्त बनाता है । आपने मुझे यज्ञोपवीत की दीक्षा देकर वैदिक विचार प्रदान किए। मैं आपकी अन्त्येष्टि में वेद मंत्रों का उच्चारण करते हुए सम्मिलित हुई। यह दृश्य राजधानी के इस भाग के निवासियो के लिए आश्चर्यप्रद था। यह सब आपके आदेश के अनुसार ही किया गया था। पिता जी! आज तो मिट्टी की बनी दुर्गा प्रतिमाएं आडम्बर और शान से पूजी जाती हैं जब कि जीवित देवियों का अपमान किया जाता है । उन्हें जलाया जाता है। एक विनम्र भेंट के रूप मे मैं यह पुस्तक आपकी पावन स्मृति में भेंट करती हूं ।"

पण्डित जी के दोनों पुत्र उड़ीसा के आर्य समाजी क्षेत्र में अत्यन्त सक्रिय हैं । उनके बड़े पुत्र प्रियव्रत दास ने बचपन से ही एक लेखक तथा वक्ता के रूप मे चमकना आरम्भ किया । वैदिक साहित्य पर उन्होंने लगभग 30 ग्रन्थों की रचना की है और अपनी साहित्यिक उपलब्धियो के लिए भारत तथा विदेशों मे सम्मानित हुए हं । भुवनेश्वर में आर्य समाज तथा वैदिक अनुसधान परिषद की स्थापना पं. लिंगराज के स्वप्नो को साकार करना ही है। यह पुरुषार्थ पं. प्रियव्रत ने किया जिनकी उडीसा में वेद प्रचार मे प्रमुख भूमिका रही और जो इसी कारण घर-घर में जाने गए । उडीसा राज्य के सार्व निर्माण विभाग के चीफ इंजीनियर के पद से वे 1929 मे अवकाश ले चुके हैं और अब आर्य समाज के पूर्णकालिक कार्यकर्त्ता हैं । उनके अनुज देवदत्त एक उद्योगपति तथा दानी हैं । अग्निहोत्री के पौत्र दृढ़ आर्य समाजी है । यज्ञ प्रकाश और ओम प्रकाश (पं प्रियव्रत के पुत्र) दोनो इंजीनियर हैं, साथ ही आर्य साहित्य के प्रणेता तथा आर्य समाज के कार्यकर्त्ता हैं ।

अग्निहोत्री जी की पत्नी उमादेवी की इक्यासी वर्ष की आयु मे 1984 मे मृत्यु हुई । उन्होने छब्बीस वर्षो का वैधव्य भोगा । जीवन के अन्त तक संध्योपासना करती, आर्य समाज के उत्सवों मे जाती तथा घर आए वैदिक विद्वानो तथा सन्यासियो का आतिथ्य सत्कार करती ।

पं लिंगराज की जन्म शताब्दी के वर्ष मे उनकी स्मृति मे अनेक कार्यक्रम किए जा रहे है । उनकी उड़िया जीवनी का जो एक यशस्वी पुत्र प प्रियव्रत ने लिखी ह । भुवनेश्वर मे एक भव्य समारोह मे लोकार्पण समारोह सम्पन्न हुआ । इसमे अनेक विद्वान् तथा शिक्षा शास्त्री सम्मिलित हुए थे। जीवनी का शीर्षक मोर पिता मोर गुरु ह । उनकी स्मृति मे शमशान बधु तथा वेद पथिक की उपाधियां आरम्भ की गई हैं। लाजपत राय युवा मण्डल ने श्रेष्ठ निबन्ध लेखन के लिए पुरस्कार घोषित किए हे । उडीसा के युवको के लिए प लिगराज अग्निहोत्री का नाम उच्च आदर्श वाले पुरुष के रूप मे चिर स्थाई रहेगा जो यह बताता हे कि किस प्रकार एक अनाथ जसे युवक ने सत्य की खोज के द्वारा एक आदर्श घर का निर्माण किया आर उडीसा जैसे पिछडे राज्य मे आर्य प्रचारको का एक सुदृढ संगठन बनाया ।

-रूपान्तर कर्ता डा. भवानी लाल भारतीय, शहीद नगर भुवनेश्वर

श्री हरबंस लाल जी मुजरिम की पुण्य तिथि मनाई गई

15 जनवरी 2001 को महर्षि दयानन्द माडल स्कूल आर्य समाज मन्दिर अलावलपुर में जनाब हरबंस लाल मुजरिम की पुण्य तिथि मनाई गई । जिसमें आर्य समाज अलावलपुर के प्रधान श्री कृष्णशरण गुप्ता, प्रो. आर डी कांसल, श्री पी.एन. कक्कड, हंसराज कपिला जी, सुरन्द्रि कुमार श्रंगारी। पूज्य लाला रोणकी राम जी अग्रवाल, श्री ओम् प्रकाश जी गुप्ता । 14-सी अलावलपुर, वैद्य श्री टेकचन्द जी वालिया, सरदार सुरजीत सिंह रिटॉयड वर्कस मैनेजर रेल कोच फैक्टरी कपूरथला श्री अनन्त शरण जिंदल जी, पंडित दुरगा दास जी मिश्र प्रधान एस.डी. हाई स्कूल अलावलपुर श्री कुलदीप भल्ला जी मोहल्ला झंडा साहिब, श्री रवि दत्त भण्डारी जी, मोहल्ला झण्डा साहिब अलावलपुर आर अन्य आर्य समाज के जाने माने सदस्य ने भाग लिया । इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान श्री कृष्ण शरण गुप्ता जी ने बताया कि श्री मुजरिम जी एक महान शायर थे और उनका अलावलपुर के कस्बे के साथ खास लगाव था। उन्होंने अपना सारा जीवन वेदो तथा दयानन्द जी के दर्शाए हुए मार्गो पर चलते हुए बिताया। वो निष्काम सेवा की भावना रखते थे । वो एक दृढ निश्चय वाले व्यक्ति थ और उन्होने गजल, वेत व काव्य की रचना पजाबी मे की । श्री अनन्त शरण जिदल जी मुजरिम जी के शार्गिद थे ।

संस्कारों से मनुष्य का दूसरा जन्म

—इन्द्रजित देव

यमुनानगर, वैदिक भजनोपदेशक प हरिश्चन्द्र ने हर वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी चतुर्वेद शतक पारायण यज्ञ का आयोजन किया। तीन दिनो तक चले इस यज्ञ के ब्रह्मा आर्य केन्द्रीय सभा के प्रचारमन्त्री व वैदिक प्रवक्ता प इन्द्रजित देव थे । पहले दिन ऋग्वेद के मत्रो से पारायण यज्ञ के अवसर पर पण्डित जी ने यज्ञोपवीत (जनेऊ) के महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला । आपने कहा कि जन्म से सभी शूद्र होते है व सस्कारो से मनुष्य का दूसरा जन्म होता है। सस्कारो के बिना मनुष्य, मनुष्य नही कहला सकता । आयुर्वेद वाले सखिया जैसे विष को सस्कारो से अमृत तुल्य बना लेते है । जनेऊ तब पहनाया जाता है, जब बालक को विद्या माता की गोद मे बिठाकर श्रेष्ठ नागरिक बनाने का कार्य शुरू किया जाता है । आज यह सिलसिला लगभग समाप्त होता जा रहा है।

वैदिक प्रवक्ता ने बताया कि हर व्यक्ति जन्म के साथ ही देव ऋण, ऋषि ऋण व पितृ ऋण-इन तीनो ऋणो को लेकर आता है। अनेक जड व चेतन देवो का वह कर्जदार है । ऋषियों-आचार्यो द्वारा प्राप्त विद्या का ऋण भी उस पर रहता हे । इसके अतिरिक्त माता-पिता का वह भारी कर्जदार है । यज्ञोपवीत के तीन तार इन्ही तीन कर्जो को उतारकर नम्रतापूर्वक जीवन गुजारने की शिक्षा देते है व स्वयं ऋषि, देव व श्रेष्ठ माता-पिता बनने की प्रेरणा देते हैं । पं. इन्द्रजित् देव ने कहा कि यज्ञोपवीत की रक्षा के लिए वीर हकीकत राय व गुरु तेग बहादुर ने अपने बलिदान दिए हैं ।

पारसी भी 'कुस्ती' नाम से आज यक यज्ञोपवीत धारण करते हैं । मुसलमान इसे बिस्मिल्ला पढना कहते हैं । बिस्मिल्ला पढते हुए हर बालक को वे 'बिस्मिल्ला ईर्हमान ईर्हीम' पढ़ाते हैं । जैसे वैदिक संस्कृति में 'गायत्री' पढना कहा जाता है । ईसाई अपने बच्चे को 'बपतिस्मा' देते हैं, जो जनेऊ का ही एक रूप है । इस का अर्थ 'पुनरुत्पत्ति' है । यह 'पुनरुत्पत्ति' वैदिक संस्कृति के 'द्विज' अर्थात् विद्या माता द्वारा मनुष्य के दूसरे जन्म देने की ही कल्पना है । यदि हम अभिमान रहित व उच्च संस्कार युक्त नागरिक पैदा करना चाहते हैं तो हमे देवो, ऋषियों व पितरों के बताए वैदिक मार्ग को अपनाकर यज्ञोपवीत के पीछे छिपी पवित्र भावना की रक्षा करनी चाहिए । श्री देव जी के विचार सुनकर उपस्थित अनेक नर-नारियो ने जनेऊ धारण किए। कार्यक्रम में पं. हरिश्चन्द्र व नीलोखेड़ी से पधारे, पं जयपाल के भजनों ने समां बाध दिया । इस अवसर पर रादौर व निकटस्थ गांवों के सैकड़ो लोग पधारे थे । कार्यक्रम का संचालन जिला वेद प्रचार मण्डल के मत्री सत्यकाम आर्य ने किया ।

आर्य समाज नंगल टाऊनशिप का वार्षिक चुनाव

दिनाक 14 1 2001 रविवार को सत्संग के पश्चात् 10.30 बजे प्रात· साधारण सभा की बैठक हुई जिसमे सर्व सम्मति से आगामी वर्ष के लिए निम्नलिखित अधिकारी चुने गए :-

श्री सुरेन्द्र कुमार जी रावल-प्रधान । श्री पृथ्वी सिह चौहान जी-मत्री। श्री हरिमित्र जी बाली-कोषाध्यक्ष ।

निर्वाचिन सर्वसम्मति एवम् शान्तिपूर्ण वातावरण में श्री आसकरनदास जी सरदाना की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ । साधारण सभा द्वारा सर्वसम्मति से शेष अधिकारियों एवं अन्तरंग सदस्यो को चुनने का अधिकार भी प्रधान श्री सुरेन्द्र कुमार जी रावटा को दिया गया ।

—पृथ्वी सिंह चौहान, मन्त्री

पुनर्जन्म एक अकाट्य सत्य : पं. इन्द्रजित देव

भास्कर समाचार सेवा

यमुनानगर, चतुर्वेद शतक पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति धूमधाम व शास्त्रानुसार पं. हरिश्चन्द्र आर्य के यहां हुई । इस अवसर पर रादौर व निकट के गांवो के सैंकड़ो नर_ारी उपस्थित थे । शतक यज्ञ के ब्रह्मा व आर्य केन्द्रीय सभा के प्रचार मंत्री पं. इन्द्रजीत देव ने इस अवसर पर अपने सम्बोधन मे कहा कि यह कहना कि पुनर्जन्म नहीं होता, सत्य से सर्वथा विपरीत है । जीवात्मा अजर व अमर है । मृत्यु केवल शरीर की होती है

आपने यजुर्वेद के 40वे अध्याय व गीता के दूसरे अध्याय के प्रमाण देते हुए बताया कि जिसका जन्म हुआ है, उसका मरण निश्चित है तथा जिसका मरण हुआ है, उसका जन्म अटल है । यदि हमारा यह जीवन प्रथम जन्म है, पहले हम जीवात्मा के रूप मे कहीं न थे तो मनुष्यों के विचारों, स्वभाव, गुणों, संस्कारो व पसन्द-नापसन्द में एकरूपता होनी चाहिए थी, जो नहीं है । सभी जीवों के संस्कार, विचार, गुण, अवगुण, रुचियां व योग्यताएं अलग-अलग हैं ।

यह विभिन्नता पिछले जन्मो के संस्कारों व कर्मो के आधार पर है। एक ही मां की कोख मे जन्म ले‍ वाले सगे भाईयो में भी यह अन्तर प्रत्यक्ष देखा जाता है । श्री देव ने कहा कि ईश्वर न्यायकारी है व प्रत्येक जीव को उसके कर्मानुसार ही वह फल प्रदान करता है। जो कर्म करे, उसे ही फल मिले । इस आधार पर पुनर्जन्म न मानने वाले यह बताएं कि इस जीवन मे जो व्यक्ति कुसंस्कारी, बुद्धि से कमजोर व अपंग जन्म से ही है, उसने कोन सा कर्म कब किया था, जिसक' फल उसे अब मिला है । मानना होगा कि हम पहले भी थे व पहले भी कर्म कर चुके हैं ।

विद्वानृद्वय ने कहा कि अब तो विज्ञान ने भी स्वीकार कर लिया है कि पदार्थ न तो उत्पन्न किया जा सकता है तथा न ही इसे नष्ट किया जा सकता है । आत्मा भी एक पदार्थ है व इसे न तो जलाया जा सकता है, न काटा जा सकात है और न ही पानी से गलाया व वायु से सुखाया नहीं जा सकता ।

पूर्णाहुति के अवकर पर विशाल ऋषि लगर का आयोजन किया गया था । पं. हरिश्चन्द्र व प. जयपाल की भजन मण्डलियो ने अपने भजनो द्वारा श्रोताओ को ईश्वर भक्त व राष्ट्रभक्त बनने की प्रेरणा दी । कार्यक्रम का संचालन जिला वेद प्रचार मण्डल के मंत्री सत्यकाम आर्य ने किया।

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा की गतिविधिया

आर्य समाज मन्दिर सिरकी बाजार शैडवाली गली भठिण्डा की ओर से मकर संक्रान्ति का पर्व दिनांक 14.1.2001 दिन रविवार को शास्त्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में, कोषाध्यक्ष श्री कृष्ण लाल जटाना के निवास धोबी बाजार मे मनाया गया । हवन यज्ञ व सत्संग 3.30 बजे से 5 बजे सायं तक सम्पन्न हुआ। जिसमें स्त्री अ, ' समाज भठिण्डा, तरसेम आर्य (गोनियाना) मेहता जी, बलदेव आर्य, कल्प वासुदेव, भगवान दास, विद्याधर, आर्य समाज के मन्त्री श्री बिहारी लाल व सभी आर्य प्रेमियों ने भाग लिया।

1. प्रातः प्रतिदिन दैनिक हवन 6.30 बजे से 7.50 बजे तक होता है।

2 आदर्श सिलाई व कढाई केन्द्र सायं 3.30 बजे से 5 बजे तक फ्री (गरीब कन्याओं की सहायता के लिए चलता है ।

रविवार को :-1. प्रातः 6.30 बजे से 7.30 बजे तक हवन यज्ञ।

2. 7.30 से 8.00 बजे तक बच्चों का कार्यक्रम भजन व प्रवचन।

3 सायं 3.30 से 5 00 बजे तक पारिवारिक हवन यज्ञ व सत्संग (घरों में) होता है ।

—बलदेव राज आर्य, प्रधान

योग क्या है ? इसके लाभ !

वै० ब. (डा.) माधुरी योगमती, पुस्तकालयाध्यक्ष-बी.बी.के.डी.ए.वी.
कालेज फार विमन, लारेन्स रोड, अमृतसर

योग शब्द के अनेकों अर्थ मिलते हैं, भिन्न-2 विद्वानों व शास्त्रों में इसकी व्याख्या विभिन्न प्रकार से की गई है । अमर कोश में इस शब्द को इस प्रकार से कहा गया है-स्वभाव, त्याग, निश्चय, अध्याय, सृष्टि, कवच, उपाय, ध्यान, सगति, युक्ति आदि-आदि....

श्री मद्‌भागवत गीता में द्वितीय व तृतीय अध्याय में इसकी परिभाषा इस प्रकार है--

योग: कर्मसु कौशलम्-अर्थात् कर्मो को कुशलता से किया जाना ही योग है । तथा

समत्वं योग उच्यते अर्थात् समत्व योग की प्राप्ति ही योग है ।

समत्व का अर्थ है कि-हानि-लाभ, जीवन-मरण, मेरा-तेरा, मै-तू, यश-अपयश, मान-अपमान, तथा सुख-दु:ख में समान रहा जाए।

अन्य कई विद्वानो ने भी इसकी परिभाषा भिन्न-भिन्न ढंग से की है। पतञ्जलि मुनि की परिभाषा को बहुत ही मान्यता प्राप्त है-आपने कहा- "योगश्चित्त वृत्ति निरोध:" अर्थात् चित्त की वृत्तियो का रुक जाना अर्थात् निरोध हो जाना ही योग है ।

योग के लाभ :-योग को समझने के पश्चात् अब प्रश्न उठता है कि इसके लाभ क्या है-क्या यह केवल योगियों व सिद्ध पुरुषों के लिए है ? केवल पुरुषों के लिए है ? क्या महिलाओ के लिए ? छोटे बच्चो व विद्यार्थियों एव वृद्धों के लिए भी है या नहीं ?

इन सभी प्रश्नो का उत्तर हमे इस निर्णय पर स्वयमेव पहुचा देगा । जब हम यह जान जायेगे कि इसके अपनाने से क्या लाभ हैं । आइये अब एक दृष्टि डालते हैं इसके लाभों पर जो इस प्रकार हैं-

1 सुदृढ़, सुगठित एवं हल्का-फुल्का शरीर ।
2 आनन्दमय एवं कान्तिमान चेहरा।
3 सुरीली एव प्रभावशाली वाणी ।
4 चमकदार आखें ।
5. आरोग्यता ।
6. इन्द्रियो पर संयम ।
7 तीव्र जठराग्नि तथा उचित पाचक शक्ति ।
8. नाड़ियो मे शुद्धता एव स्फूर्ति ।
9 प्रखर बुद्धि ।
10 मानसिक नियंत्रण एवं दक्षता ।
11 एकाग्रता एव तन्मयता
12. अनुशासन प्रियता
13 विकसित कल्पना शक्ति ।
14. चैतन्य मन ।
15. सही दिशा एवं सोच ।
16. कद का विकास ।
17 लक्ष्य के प्रति निष्ठा ।
18. कार्य दक्षता ।
19 परिश्रम मे विश्वास ।
20. सदाचारिता एवं शिष्टता।
21. ब्राह्म मुहूर्त में जागने की इच्छा व अभ्यास ।
22. तीव्र स्मरण शक्ति ।
23. ईश्वर प्रणिधान ।
24. दु:ख- सुख, मान-अपमान, लाभ-हानि, यश-अपयश में समभाव।
25. मोक्ष की कामना ।
26 सहनशीलता ।
27. अहिसा प्रेमी ।
28. क्रोध की समाप्ति ।
29. तनाव रहित जीवन ।
30. सत्संग, स्वाध्याय, साधना आदि कर्मों के प्रति आस्था ।

चौ० ऋषिपाल सिंह जी के नाम पत्र

आदरणीय उप प्रधान जी (चौ० ऋषिपाल सिह जी एडवोकेट) नमस्ते । एक वर्ष से भी अधिक समय हो गया आपके विचार पढने को तरस गए थे। इस बार 'आर्य मर्यादा' में आप का लेख पढ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। एक बार फिर पुन: 'धर्म मर्यादा' की याद ताजा हो गई । आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि अब निरन्तर 'आर्य मर्यादा' मे आप के लेख पढने को मिलते रहेगे। 'सभा' को बचा लेने में आपका सहयोग एव योगदान पंजाब के आर्य समाजियो के लिए सदा प्रेरणादायक तथा अनुकरणीय रहेगा।

आपने 'पंजाबी अकुंश' मे कभी 'वैदिक संध्या' गुरुमुखी लिपि में मंत्रों और कविता में अर्थ सहित छपवाई थी। अच्छा रहेगा कि उस को बुकलेट रूप में छपवाया जाए। आर्य समाज के 125 वे वर्ष में प्रवेश करने पर सभा की ओर से पजाब के लोगों को यह एक शानदार भेट हो सकती है ।

कभी समय निकाल कर भठिण्डा जिले का चक्र लगा जाओ। आप के आने से हम लोगो को नया जीवन मिलेगा । सब आर्य जनो को नमस्ते ।-**तरसेम कुमार आर्य,** मत्री आर्य समाज,गोनियाना मण्डी (भटिण्डा)

आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट की गतिविधिया

आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट की ओर से प्रतिमाह एक विशेष गोष्ठी होती है । इस बार 28-1-2001 पुनर्जन्म पर डा योगेन्द्र कुमार जी शास्त्री का प्रवचन हुा और शका समाधान किया गया। लगभग 600 स्त्री-पुरुषो ने इस गोष्ठी मे भाग लिया।

फरवरी के अन्तिम विवाह को 25-2-2001 को क्या मनुष्य की आयु निश्चित है इम विषय पर श्री शास्त्री जी का प्रवचन होगा।

4-2-2001 को पठानकोट मे विशेष शान्ति यज्ञ का आयोजन आय समाज की ओर से किया जा रहा है जिसमे पठानकोट की सभी धामिक सस्थाए भाग ले रही हैं । इसमे गुजरात मे भूकम्प में रमने वाले लोगो को श्रद्धाजलि अपित की जाएगी, उनकी आत्मिक शान्ति की प्रार्थना की जाएगी ओर घायलो का जल्दी स्वस्थ होने की परमात्मा से प्रार्थना की जाएगी ।

ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति

—अभयदेव दर्शनाचार्य

ज्ञान इन्द्रिया पाच है इनमे शक्ति बहुत ही है ये ज्ञान कराने में अत्यन्त समर्थ साधन है इनसे बहुत अधिक ज्ञान हो जाता है परन्तु सारा ज्ञान इन इन्द्रिया से सभव नही है

इन्द्रिया मे विशेष परिस्थिति को छोडकर सशय रहित ज्ञान होता है परन्तु अनुमान आदि प्रमाणो से जो ज्ञान होता है उनमें प्राय सशय बना रहता है जितना विश्वास एन्द्रियिक (इन्द्रिया से होने वाले ज्ञान) ज्ञान मे होता है उतना विश्वास आनुमानिक व शाब्दिक ज्ञान में नहीं होता है। हर व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए प्रयत्नशील रहता है। **इन्द्रियमतीन्द्रिय भ्रान्तानामधिष्ठाने**— यह साख्य दर्शन द्वितीय अध्याय का 23वा सूत्र है । जो आख कान आदि दिखाई दे रहे है ये इन्द्रिय नहीं है ये तो इन्द्रियो के गोलक हैं सूक्ष्म इन्द्रिया तो आख से दिखाई नहीं देता है । साख्य दर्शन के अनुसार इन्द्रिया प्रकृति के विकार है सूक्ष्म शरीर मे अठारह तत्व होते है उनमे इन्द्रिया भी आती है ये सूक्ष्म इन्द्रिया स्थूल शरीर तथा गोलको के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है। ये सूक्ष्म इन्द्रिया प्रलय काल तक रहती है जब तक सृष्टि रहती है इन्द्रिया भी रहती है जब सम्पूर्ण ससार प्रलय को प्राप्त हो जाता है उस काल मे सूक्ष्म इन्द्रिया भी प्रलयावस्था को प्राप्त हो जाती है परन्तु स्थूल शरीर के नष्ट होने पर इन्द्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पडता है । दूसरी सृष्टि मे फिर परमात्मा शरीर को बनाता है । उस समय केवल गोलको को ही बनाता है सूक्ष्म शरीर को नहीं । ये चक्षु आदि इन्द्रिया पशु पक्षी मे भी होती है पर गोलक अलग अलग होते है । आख कान आदि गोलक की रचना हर प्राणी की अलग अलग होती है परन्तु सूक्ष्म इन्द्रिया सबकी समान ही होता है यहा तक कि सूक्ष्म शरीर भी सबका समान भी होता है और स्थूल शरीर सबका अलग अलग होता है ।

प्रश्न—सम्पूर्ण शरीर मे एक त्वचा ही केवल इन्द्रय है क्योकि त्वचा सम्पूर्ण शरीर मे व्यापक है ?

उत्तर—यह बात ठीक है कि नाखुन बाल आदि को छोडकर त्वचा सम्पूर्ण शरीर मे व्यापक है परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि केवल एक ही इन्द्रिय है। क्योकि आख कान आदि के गोलक स्पष्ट रूप से अलग अलग दिखाई देते हैं अगर त्वचा ही केवल इन्द्रिय हो तो अन्धे व्यक्ति को भी रूप का ग्रहण होना चाहिए, जबकि ऐसा तो होता ही नहीं है उस त्वचा के द्वारा रूप का ग्रहण होना चाहिए जबकि ऐसा तो नहीं होता है अर्थात् अन्धा व्यक्ति किसी भी वस्तु को देख नहीं पाता है इससे सिद्ध हुआ कि रूप दर्शन के लिए त्वचा से भिन्न इन्द्रिय की जरूरत है जिसे आख कहते है उसी प्रकार से अन्य इन्द्रियों के विषय मे भी समझना चाहिए। अनेक बार ऐसा देखा जाता है कि वस्तु के उपस्थित रहने पर भी इन्द्रियो के द्वारा वस्तु उपलब्ध न होने मे अनेक कारण बताए गए हैं । इस विषय मे साख्य दर्शन प्रथमाध्याय का 108वा सूत्र व्याख्या है—

विषयोऽपविपयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ॥

इसी सूत्र के आधार पर साख्य कारिका मे एक कारिका बनाई गई है वह इस प्रकार है

अतिदूरात् सामीप्यात् इन्द्रियघातात् मनोऽनवस्थानात्॥
सौक्ष्म्यात् व्यवधानात् अभिभावात् समानाभिहाराच्च ॥

(क)—**अतिदूरात्**—दुनिया के अन्दर बहुत सारी वस्तुए ऐसी हैं जिनकी सत्ता तो है परन्तु बहुत दूर होने के कारण उसका ज्ञान नहीं हो पाता है जैसे अमरिका आदि देश भारत से बहुत दूर हैं उनको भारत मे ही रहकर देख पाना सम्भव नहीं परन्तु उनकी सत्ता तो है ही ।

(ख) अतिसामीप्यात्—कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो कि अत्यन्त निकट होने से उनको भी इन्द्रियो से जान नहीं सकते हैं जैसे कि आख की काजल को स्वयं कोई भी नहीं देख सकता है । जबकि वह मेरी आख में ही है ।

(ग) **इन्द्रियघातात्**—इन्द्रियो मे कोई विकार आ जाने पर भी वस्तु का ग्रहण नहीं हो पाता है जैसे कि बहरे व्यक्ति को रेडियों की आवाज सुनाई नहीं देती है जबकि रेडियों की आवाज तो आती ही रहती है ।

(घ) **मनोऽनवस्थानात्**—किसी भी वस्तु का ज्ञान तभी हो सकता है जब मन इन्द्रियों के साथ हो मन के बिना केवल इन्द्रिय से वस्तु का ज्ञान सभव नहीं है जैसे कि उस यात्री को भोजन के स्वाद का ज्ञान नहीं होता है जिसे जल्दी गाडी पकडनी होती है उसका मन तो गाडी में लगा होता है । अत पेट भरने के लिए खा लेता है । स्वाद का ज्ञान नहीं रहता है । जैसे यह विद्यार्थी शिक्षक की बात सुन नहीं पाता है जो बैठा तो रहता है विद्यालय में परन्तु मन तो कहीं और ही घुमता रहता है । अर्थात् मन किसी और विचार मे लगा रहता है।

(ड) **सौक्ष्यम्यात्**—कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो कि अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रियो के विषय नहीं बन पाते हैं जैसे कि फूलों फलों पर कुछ इतने छोटे 2 जीवाणु होते हैं जो कि आख से दिखना सभव नहीं है हा सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से दिखाई दे सकते हैं । उसी प्रकार से जीवात्मा और परमात्मा ऐसे तत्व हैं जो कि इन्द्रियो के द्वारा अथवा किसी यन्त्र के द्वारा देखे नहीं जा सकते हैं क्योंकि वे बहुत ही सूक्ष्म होते है ।

(च) **व्यवधानात्**—कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो कि व्यवधान के कारण दिखाई नहीं देते हैं जैसे कि पृथिवी के अन्दर कौन कौन से खनिज पदार्थ हैं । वे खनिज लोहा सोना आदि आख से नजर नहीं आते हैं ।

(छ) **अभिभवात्**—कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं जो कि अन्य पदार्थ से अभिभूत (दबना) हो जाते हैं अत वे उपस्थित रहने पर भी नजर नहीं आते हैं। जैसे कि दिन मे भी तारे रहते हैं परन्तु वे तारे सूर्य के प्रकाश से अभिभूत होकर दिन मे दिखाई नहीं देते हैं परन्तु रात्रि मे सूर्य के अभाव मे सम्पूर्ण आकाश भरा हुआ दिखाई देता है।

(ज) **समानाभिहाराच्च**—कुछ पदार्थ ऐसे होते है जो कि समान आकार प्रकार होने के कारण इन्द्रिय द्वारा अग्राह्य होते हैं। जैसे कि बालू मे बालू को मिला दिया जाए तो बाद का बालू कौन सा है। भेद करना असम्भव हो जाएगा परन्तु बालू में कुछ चने डाल दिए जायें तो चने अलग किए जा सकते हैं क्योंकि बालू का आकार प्रकार समान होता है और चने अलग प्रकार के होते हैं।

अत इन्द्रियों से हर चीज की ज्ञान सभव नहीं है जिसका ज्ञान इन्द्रिय से नहीं हो रहा है उसमें कोई न कोई कारण जरूर होगा उन कारणो को खोजना चाहिए।

अत इन्द्रियों से हर पदार्थ का ज्ञान सभव नहीं है ।

ऋषि जन्म भूमि-भूकम्प वास्त

26 जनवरी को प्रात-काल गुजरात में आए महाविनाशकारी भूकम्प से ऋषि जन्म भूमि परिसर टकारा भी अत्यन्त प्रभावित हुआ है। गौशाला सर्वथा ध्वस्त हो गइ है किन्तु ईश्वर की कृपा से गायें प्रकृति प्रदत्त वरदान स्वरूप सुरक्षित बाहर निकल आई हैं । परिसर का पुराना राजमहल और यज्ञशाला सर्वाधिक क्षतिग्रस्त हुआ तथा शेष सभी भवनों में दरारें पड गई हैं । राजमहल और यज्ञशाला का तो सर्वथा नव निर्माण ही करना पडेगा। परिसर मे जो नव निर्माण चल रहा है वह भी इस आपदा से बच नहीं पाया । ईश्वर की कृपा से वहा के सभी निवासी एव पशुधन सुरक्षित हैं। अन्यथा नए पुराने सभी भवन क्षतिग्रस्त हो गए हैं ।

टकारा ग्राम के भूकम्प प्रभावित होने के कारण सभी ग्राम वासी अपने घरो को छोडकर ऋषि जन्म भूमि परिसर मे एकत्रित हो गए हैं । टकारा ट्रस्ट की ओर से सभी ग्राम वासियों के भोजन एव आवास का समुचित व्यवस्था की जा रही है । निवास के लिए टैन्टों की व्यवस्था हो रही है। जन्म भूमि परिसर में 21 फरवरी को होने वाले शिवरात्रि के लिए जो खाद्य सामग्री वहा एकत्रित की गई थी वह सब भूकम्प पीडित ग्रामवासियो के उपयोग में आ रही है तथा ट्रस्ट के नई दिल्ली उपकार्यालय की ओर से एक लाख रुपए की राशि सहायतार्थ 26 जनवरी को भेज दिये गए हैं । अभी तुरन्त और धन राशि एव खाद्य सामग्री औषधियां तथा अन्यान्य वस्तुए भेजी जा रही हैं। ट्रस्ट का नई दिल्ली कार्यालय इस कार्य में युद्ध स्तर पर जुट गया है ।

—राम नाथ सहगल, मन्त्री

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टकारा नई दिल्ली

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष सम्पादक, प्रकाशक मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, गड्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन चौंक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

ऋग्वेद यजुर्वेद



साप्ताहिक

दूरभाष : ☎ :292926

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 11 फरवरी 2001 दयानन्दाब्द 177

गुजरात में महामारी रोकने के लिए स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े यज्ञ किए जाएं

यज्ञ की हमारे सभी ग्रन्थो में बहुत महिमा भरी पड़ी है। पर्यावरण को शुद्ध रखने के लिए देव यज्ञ एक बहुत बड़ा कृत्य है । आज के बढ़ते हुए प्रदूषण को रोकने के लिए कई बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने यज्ञ करने का सुझाव दिया है और यह परीक्षण करके बताया कि गाय के घी की अग्नि में आहुतियां देने से पर्यावरण शुद्ध होता है । यज्ञ शुद्धता पवित्रता का द्योतक माना गया है यज्ञ में प्रदूषण को दूर करने की शक्ति है ।

इस समय गुजरात में भूकम्प ने मानवों का तथा पशुओं का महान सहार किया है । कई स्थानों पर हजारों की संख्या में मानवों के अन्त्येष्टि संस्कार करने पड़े हैं । मानव शरीर तथा पशुओं के शरीर कई-कई दिन सड़ते रहे हैं उनसे वायु मण्डल मे दुर्गन्ध फैलती रही है और अभी भी फैल रही है। इस दुर्गन्ध से वायु मण्डल की अशुद्धि से गुजरात मे महामारी भयंकर बिमारी फैलने का डर है। इससे बचने के लिए गुजरात में स्थान-स्थान पर बहुत बड़े-बड़े यज्ञ होने चाहिएं । उन स्थानों पर विशेष रूप से हों जहां ज्यादा नरसंहार हुआ है। यही सुझाव आचार्य भद्रसेन जी का भी है ।

गुजरात में कई नगरो मे आर्य समाजें हैं, जहां नहीं भी आर्य समाजे हैं वहां आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओ को जाकर उत्तम किस्म की यज्ञ सामग्री तैयार करके सामूहिक तौर पर बड़े-बड़े यज्ञो का आयोजन करना चाहिए । यह कार्य सार्वदेशिक स्तर पर होना चाहिए। प्रत्येक प्रदेश से आर्य समाजें तथा जनता इसके लिए यज्ञ का सामान गुजरात भेजें । सार्वदेशिक सभा के अधिकारी व महर्षि दयानन्द ट्रस्ट टकरा के अधिकारी यज्ञों के लिए व्यवस्था करें । टकारा उपदेशक विद्यालय के विद्यार्थियों व अन्य आर्य विद्वानों को इन यज्ञो को सम्पन्न कराने के लिए स्थान-स्थान पर भेजा जा सकता है। यज्ञ के सारे सामान की व्यवस्था आर्य जनता की तरफ से की जाए। इससे महामारी से बहुत बचाव हो सकता है, उसे फैलने से रोका जा सकता है ।

इसलिए आर्य नेता व विद्वान् इस कार्य को करने के लिए गुजारत मे व्यवस्था करें । इससे जहां लोगों की व आम जनता की यज्ञ के प्रति श्रद्धा बढ़ेगी वहां इससे वहां की जनता को बिमारी से बचाया जा सकेगा।

—धर्मदेव आर्य, सम्पादक

सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा ने छः लाख रुपया भूकम्प पीड़ितों के लिए भिजवाया

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा दान देने में सदा सबसे आगे रहे हैं। गत दो वर्ष हुए जब कारगिल युद्ध में देश को धन की आवश्यकता पड़ी तो इसके लिए श्री पं. हरबंस लाल जी ने 8 लाख रुपया भिजवाया था। अब गुजरात में भूकम्प आया है तो इसके लिए पांच लाख रुपया अपने धर्मार्थ ट्रस्ट से और एक लाख रुपया अपने कारखाने के सभी वर्करों से इकट्ठा करके भिजवाया है। इसके साथ ही पांच सौ कम्बल और बहुत सा खाद्य सामान भी श्री सत्यानन्द जी मुन्जाल के द्वारा भिजवाया है ।

वह हमेशा मुक्त हाथ से दान करते हैं इसीलिए उन्हें लोग पंजाब के भामाशाह कहते हैं । इनके सारे परिवार की दान पुण्य के कार्यों में बहुत रुचि है। परमात्मा इनको दीर्घायु प्रदान करे ताकि यह इसी प्रकार समाज सेवा के कार्य करते रहें।

—धर्मदेव आर्य, सम्पादक

5000 से अधिक ईसाई वैदिक धर्म में आए

श्री सुदर्शन देव आर्य उपमन्त्री, उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा ने बताया कि गत 21, 22 जनवरी को विशाल वनवासी आर्य महासम्मेलन एवं शुद्धि समारोह ग्राम तोलमा में अत्यंत हर्षमय वातावरण में उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी व्रतानन्द जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । इसमें 2130 ईसाई परिवारों के लगभग 5000 सदस्यों ने वैदिक धर्म ग्रहण किया। इस कार्यक्रम का संचालन एवं दीक्षा यज्ञ श्री पं. विश्किकेशन जी शास्त्री, उपप्रधान उत्कल आर्य प्रतिनिधि सभा एवं ब्र. विनय कुमार नैष्ठिक ने कराया। इस कार्यक्रम में आशीर्वाद देने के लिए म.प्र. एवं विदर्भ आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री लक्ष्मी नारायण जी भार्गव पधारे थे । उन्होंने सभी दीक्षित सदस्यों का चरण धोकर सम्मान किया।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में क्षेत्रीय उत्साही सांसद विष्णुदेव सहाय एवं भा.ज.पा. के कई अधिकारी भी उपस्थित थे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के वरिष्ठ उप प्रधान श्री स्वामी सुमेधानन्द जी भी अन्तिम दिन आशीर्वाद देने के लिए पहुंच गए थे। दीक्षित लोगों को आशीर्वाद देने एवं उत्साहित करने के लिए दयानन्द सेवाश्रम संघ नई दिल्ली की महामंत्री पूण्या माता प्रेमलता भी पधारी थीं। ध्यान रहे दयानन्द सेवाश्रम संघ के सहयोग से ही तोलमा में एक मीडिल स्कूल भी स्वामी धर्मानन्द जी की देखरेख मे चल रहा है।

वनवासियों के सम्मेलन एवं शुद्धि समारोह को देखने के लिए श्री स्वामी देवानन्द जी हालैण्ड से विशेष रूप से पधारे थे। वे वनवासी लोगों को देखकर हर्ष विभोर हो गए। इस अवसर पर वेद पारायण महायज्ञ हुआ तथा आर्य वीर दल का शिविर भी लगाया गया था।

इस समारोह का आयोजन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान एवं गुरुकुल आश्रम आमसेना के आचार्य श्री स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती की प्रेरणा पर हुआ था। सारी आर्थिक व्यवस्था गुरुकुल की तरफ से स्वामी जी ने कर दी थी।

इस आयोजन की व्यवस्था एवं इसे सफल करने मे श्री प्रहल्लाद प्रसाद जी आर्य, श्री वेदपाल जी आर्य, श्री त्रिनाथ प्रसाद जी, श्री जोगीराय जी, श्री पिताम्बर प्रसाद जी एवं विद्यालय के उत्साही अध्यापको ने विशेष परिश्रम किया। सारा कार्यक्रम अत्यंत हर्षमय वातावरण मे सम्पन्न हुआ ।

भक्ति में शक्ति

❑ ले० महात्मा प्रेम प्रकाश जीआर्य कुटिया, धूरी

1 मानव जब कृत्रिमता श्रृंगार, पाप, असत्य, भय, चटक, मटक आदि संसारिक व्यवहारों से ऊब जाता है तो प्रभो के आचल की शरण चाहता है क्योंकि उसकी शरण मे जाने से शरीर को "सुख" मन को "शान्ति" और आत्मा को "आनन्द" की अनुभूति होती है, जैसे बहरा कान का, गूगा वाणी का और अन्धा आख का मूल्यांकन करता है । जीवन को श्रेष्ठतम और शान्तिमय बनाने का सबसे सुन्दर और पवित्र उपाय "प्रभु भक्ति" ही है ।

2 भक्ति एक प्रकार का आध्यात्मिक विवाह है, जैसे विवाह का अधिकार ब्रह्मचारी को ही है, व्यभिचारी को नहीं, ठीक यही बात भक्त पर लागू होती है, क्योंकि प्रभो भक्ति ब्रह्मचारी ही कर सकता है । विवाह का हेतु सन्तान है, इसीलिए भक्त कहता है कि , "सत्य मेरी माता, "ज्ञान" मेरा पिता" "धर्म" मेरा भाई, "दया" मेरा "मित्र" "शान्ति" मेरी पत्नि "क्षमा" मेरा पुत्र और पितामह: ईश्वर है । यह सारा परिवार नहीं तो और क्या है ? परन्तु अब उसका कर्त्तव्य परिवार पूजा नहीं, ईश्वर और उसके प्राणियों की पूजा (सेवा) है ।

3 ईश्वर पूजा के स्थान पर मूर्ति पूजा भी बहुत करते हैं, "मूर्ति और पूजा" का कोई भी विरोधी नही परन्तु जब "मूर्ति" और पूजा मे से "और" निकाल दिया जाए ओर दोनों को मिला दिया जाए, तो सभी विरोधी हो जाते हैं । जैसे "दूध" और पानी दोनो अलग-अलग दोनों ठीक हैं, परन्तु यदि "और" निकाल दिया जाए और इन दोनों को मिला दिया जाए तो विरोध होना स्वाभाविक है । इसका विरोध जगत गुरु शकराचार्य, रहीम, कबीर, गुरु नानक देव जी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने किया, नहीं-नहीं हम सभी करते हैं, कौन कहता है कि मिलावट अच्छी है ।

4 मूर्ति ही यदि ईश्वर होती तो हमारे ऋषि धारणा, ध्यान और समाधि द्वारा प्रभो दर्शन का उपदेश न देते और न ही इतने संयमी बनने का कष्ट उठाते । यदि इन्द्रियां ही ईश्वर को जान सकती होती तो कभी के प्रभो दर्शन हो चुके होते। प्रभो दर्शन न होने का कारण हमारा मार्ग चयन गलत है क्योंकि ईश्वर का विषय आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं, और इन्द्रियों के विषय भौतिक हैं- आध्यात्मिक नहीं, अत: स्पष्ट हो गया है कि ईश्वर इन्द्रियों से नहीं आत्मा से जाना जाता है ।

5. भक्त का आदर्श भगवान है, आदर्श का अर्थ है, उसके गुण, कर्म और स्वभाव को जानना और धारण करना । भगवान दयालु, कृपालु, रक्षक, पालक पोषक और प्रेरक है, अर्थात् उसके गुण अनन्त हैं, उसकी भक्ति अनन्त है, उसका ज्ञान अनन्त हैं, उसका धन अनन्त है, उसका दान अनन्त है, उसके प्राणी अनन्त है, अर्थात् अनन्त का सब कुछ अनन्त है । अत: गुणी के गुणों को जीवन में उतारना ही भक्ति है । जो केवल भाण्ड के समान परमेश्वर का कीर्तन करता चला जाता है और अपने जीवन को नहीं सुधारता, उसकी भक्ति व्यर्थ चली जाती है।

6. भक्ति करने के लिए आहार, व्यवहार, विचार और आचार की शुद्धि रखनी परमावश्यक है। संयमी रहकर परिश्रम करना ही "तप" कहा गया है, परन्तु कई पंच अग्नि तप भी करते हैं चारों ओर उपलों की अग्नि जलाकर सूर्य की धूप में बैठते हैं, वास्तव में यह तप नहीं है अपितु पंच अग्नि तप का अभिप्राय काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रूपी पांच अग्नियां सब में जल रही हैं, जो इनमें रहता हुआ भी, नहीं जलता, अर्थात् प्रभावित नहीं होता, वही सच्चा "तपस्वी" है। केवल यही भाव है ।

7 प्राय: लोग समझ बैठे हैं कि भक्त की भक्ति से भगवान प्रसन्न होते हैं, अर्थात् भगवान खुशामदी हैं, किन्तु उन्हें समझ लेना चाहिए कि ईश्वर ऐश्वर्यों का दाता व निर्माता है, यह ऐश्वर्य मनुष्य को शरीर के लिए "सुख" मन के लिए "शान्ति" और आत्मा के लिए "आनन्द" के रूप में प्राप्त होते रहते हैं तथा भगवान ज्योति स्वरूप है, इसी लिए भक्त कहता है, (तमसो मा ज्योतिर्गमय) अर्थात् मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सूर्य कभी इच्छा नहीं करता, कि आप उसके प्रकाश से अवश्य लाभ उठायें। यदि आप द्वार बन्द करके बैठेंगे, तो सूर्य का कुछ नहीं बिगड़ेगा, क्योंकि लाभ पहुंचाना सूर्य की इच्छा नहीं, स्वभाव है । जल का स्वभाव जीवन देना है, न कि इच्छा करना, कि लोग मुझे पियें । ऐसे ही भगवान स्वभाव से ही अकारण कृपालु हैं। अत: भक्ति करेंगे तो "भक्ति" का रस हमें प्राप्त होगा क्योंकि उसकी दया एवं प्रेरणा के भण्डारे चल रहे हैं।

8 भक्त अन्याय, अत्याचार, व्यभिचार अर्थात् अधर्म का विरोध करता है, क्योंकि प्रभो भक्ति ने बना दिया है "कुन्दन" उसको । अब उ , गुण, कर्म, स्वभाव भगवान से प्रेरणा लिए हुए हैं । अत: वह अपने में पवित्र "आत्म बल" को अनुभव करा है क्योंकि "भक्ति में शक्ति" होती है, बलवान ही पापियों और पाखण्डियों के विरुद्ध आवाज उठा सकता है, कमजोर तो बोल भी नहीं सकता, बोले तो सुनता है कौन ? सचमुच "ऋषि दयानन्द" की सच्ची और तीव्र पुकार ने संसार को हिला दिया था। कई समझते हैं भक्त कर्म नहीं किया करते, या उनको कर्म नहीं करने चाहिएं, परन्तु जब भक्त का जीवन आदर्श भगवान स्वयं क्रि‌यावान है, तो वह कैसे निकम्मे या आलसी बने रह सकते हैं । भक्त के कर्म और कर्त्तव्य इतने बढ जाते हैं कि उसे प्रभो के विशाल परिवार का निर्माण सुधार करना होता है। भक्त का मार्ग दर्शन भगवान स्वयं करते हैं, क्योंकि भक्त का भगवान ही "सहारा" और "किनारा" होता है, अत: भक्त सत्य मार्ग पर चलता ही जाता है, जबकि सत्य मार्ग में महान विघ्न आते हैं, प्रभो प्रेरणा से वह कल्याण मार्ग का पथिक बन जाता है । भक्ति का अर्थ केवल अपना कल्याण नहीं, अपितु प्रभु से शक्ति पाकर जनहित करना है । ई: भक्ति में यदि समाज सेवा का भाव नहीं तो व साधना अधूरी है । इसका प्रमाण गुरु नानक देव जी महर्षि दयानन्द जी स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी आत्मानन्द जी तथा आनन्द स्वामी जी आदि के रूप में हमारे सामने है । प्रभो से प्राप्त कि हुई शक्ति को बांटो । बांटो !!! बांटो !!! क्योंकि भगवान के जल ने किसी को जीवन देने से इन्कार नहीं किया, भगवान की वायु ने किसी को प्राण देने से इन्कार नहीं किया, भगवान की धरती ने किसी को अन्न देने से इन्कार नहीं किया, और भगवान के सूर्य ने किसी को प्रकाश देने से इन्कार नहीं किया।

9 भक्त की पहचान बड़ी सरल है, उसकी आकृति में आभा प्रसन्न मुद्रा, तेजस्विता, करुणा, नम्रता की मी मूर्ति इत्यादि गुण उसमें अवश्य होंगे, क्योंकि भगवान के यह गुण हैं जो सगति के प्रभाव से आ जाते हैं । जब एक आस्तिक भक्त प्रेमियो को मस्त विभोर देखता है तो उसे भी भक्ति का मस्ती चढ जाती है, प्रभु भक्ति का मस्ताना गा-गा कर सम्पूर्ण संसार को संगति मे बना देता हे, वह सब कुछ भूल जाता हे, "आनन्द" भी इसी लिए आता हे ओ भक्त ! जहां तू सब कुछ भूला है, वहा अपने आप को भी भूल जा । भृकुटि में जहा तिलक या टीका लगाते हैं वहां प्राणों को स्थापन करके "ओ३म्" की ध्वनि में ध्यान लगा, क्योंकि प्राणायाम से प्राणवश में हो जाता है, प्राण के वश में हो जाने से मन वश में हो जाता है, ऐसा करते रहने से एक समय ऐसा आता है कि प्राण, मन और आत्मा एक पंक्ति में आ जाते हैं तथा ध्यान स्वत: ही ब्रह्मरन्ध्र में चला जाता है जिसे समाधि कहते हैं। तब हृदय पटल पर "ज्ञान" और "आनन्द" की दृष्टि हुआ करती है।

10 भक्ति में विचित्र शक्ति है । भक्त का मनोबल इतना बढ जाता है कि भक्त जलती हुई आग में कूद सकता है, समुद्र में छलांग मार सकता है। भक्त निर्भय होकर रावण राज्य को "राम राज्य" बना सकता है, भारत को महाभारत बना सकता है, संसार को वेद मार्ग दिखाने के लिए स्वयं विष पी-पी कर संसार को अमृत पिला सकता है। बन्धुओ ! भक्त की भक्ति में बहुत कुछ छिपा है, पा जाओ तो बहुत अच्छा है।

अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन के संयोजक का पत्र

मान्यवर श्री हरबंस लाल जी शर्मा, *दिनांक 3-2-2001*
प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब।

मान्यवर श्री शर्मा जी, सादर नमस्ते ! आर्य मर्यादा के सभी अंक प्राप्त हुए । यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा फिर से प्रधान चुने गए हैं । आपको बहुत-बहुत बधाई ।

हमें आशा है कि आपके सबल एवं सशक्त नेतृत्व में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन के लिए धन संग्रह का काम बड़े उत्साह के साथ फिर से प्रारम्भ हो जाएगा तथा आपकी अनन्य कृपा से हमारी आवश्यकताएं सब पूरी होंगी ।

-कैप्टन देवरत्न आर्य,
संयोजक, आर्य महासम्मेलन, मुम्बई

सम्पादकीय.....

अश्विनी कुमार शर्मा की बौखलाहट

अश्विनी कुमार शर्मा के सम्बन्ध में अब सारी आर्य जनता को पता चल गया है कि इस व्यक्ति ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को कितनी हानि पहुंचाई है इसके विरुद्ध पुलिस में एफ.आई.आर दर्ज है और ज्यों-ज्यों उसकी कार्यवाही बढ़ती जा रही है त्यों-त्यों अश्विनी कुमार शर्मा बौखलाता जा रहा है । उसका एक ही निशाना है वह हैं सभा के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री डा. के.के. पसरीचा। पहले इसने श्री सरदारी लाल जी से उन पर झूठा मुकद्दमा करवाया था कि श्री डा. के.के. पसरीचा सभा की टाटा सूमो चुरा कर ले गए हैं जबकि टाटा सूमो सभा के पास है और उसे सभा के कार्यों में मैं ही प्रयोग कर रहा हूं । डाक्टर जी के पास अपनी कई गाड़ियां हैं उन्हें सभा की गाड़ी की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु अश्विनी कुमार उन्हें बदनाम करना चाहता है । अब उसने एक परिपत्र छाप कर लोगों को भेजा है उसमें भी डाक्टर जी को बदनाम करने के लिए दोषारोपण किया है। सभा की सारी एम.डी.आर. अश्विनी कुमार सभा कार्यालय से उठा कर अपने घर ले गया है और सभा का रिकार्ड भी उठा कर ले गया है और इसने वह सारा रिकार्ड अपने घर पर रखा हुआ है और डाक्टर जी पर दोष लगा रहा है कि वह सभा का रिकार्ड उठा कर ले गए हैं ।

हमें विश्वास है कि आर्य जनता अश्विनी कुमार शर्मा को अब अच्छी प्रकार से समझ गई है और वह जो कुछ भी बौखलाहट में आकर लिख रहा है उससे आर्य जनता गुमराह नहीं होगी ।

सभा से सम्बन्धित सभी शिक्षा संस्थाएं और आर्य समाजें सभा को अपना पूरा-पूरा सहयोग दे रही हैं । सभा कार्यालय का सारा कार्य सुचारू रूप से चल रहा है।

अश्विनी कुमार शर्मा का अब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से कोई सम्बन्ध नहीं है । उसे आर्य समाज की प्राथमिक सदस्यता मे व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से छः वर्ष के लिए निष्काषित किया जा चुका है । जो भी आर्य समाजें व शिक्षा संस्थाए अश्विनी कुमार का साथ देंगी यह उनकी अनुशासनहीनता होगी।

–सुरेन्द्र नाथ मुरगई, सभा महामन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित आर्य समाजों तथा शिक्षण संस्थाओं के अधिकारी महानुभावों की सेवा में

जैसा कि सभी को पता है कि गुजरात में भूकम्प ने बहुत तबाही मचाई है । जान-माल की सभी प्रकार की हानि हुई है। वहां धन की अत्यन्त आवश्यकता है । मैंने अपने ट्रस्ट की ओर से वहां कुछ राशि भिजवाई है मैं और भी भिजवा रहा हूं। मेरी पंजाब की सभी आर्य समाजों तथा शिक्षा संस्थाओं के अधिकारियों से प्रार्थना है कि वह इस कार्य के लिए हमें धन भेजें सभा में भूकम्प पीड़ित राहत कोष आरम्भ कर दिया गया है। इसलिए आप अपनी ओर से व अपनी संस्था की ओर से सहायता राशि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि) गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर के कार्यालय में भिजवा कर पुण्य के भागी बनें। राशि बैंक ड्राफ्ट, मनिआर्डर द्वारा भेज कर या नकद देकर अपनी रसीद प्राप्त कर लें।

–हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

श्री राधेश्याम जी मोहिल की धर्म पत्नी का देहावसान

यह जान कर अत्यन्त दुःख हुआ कि आर्य समाज के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री राधेश्याम जी मोहिल की धर्म पत्नी का 4 फरवरी को देहावसान हो गया है। पता चला है कि वह पिछले कई दिनों से बीमार चली आ रही थीं उनके चले जाने से श्री मोहिल जी को तथा उनके परिवार को बहुत आघात पहुंचा है । उनका अन्तिम शोक दिवस 11 फरवरी को आर्य कालेज धूरी में 2 से 3 बजे तक मनाया जा रहा है।

हम आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से दिवंगात्मा को अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते हुए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह दिवंगतात्मा को सद्गति प्रदान करे और उनके वियोग को सहन करने की मोहिल परिवार को शक्ति प्रदान करे।

–धर्मदेव आर्य, सम्पादक

श्री हरबंस लाल जी सेठी को मातृ शोक

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार लुधियाना के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री हरबस लाल जी सेठी एडवोकेट की माता का देहावसान हो गया। वह एक धार्मिक महिला थीं और उन्होंने जीवन मे अनेको श्रेष्ठ कार्य किए हैं । उनके चले जाने का जहा सेठी परिवार को बहुत दुःख है वहां हम सब को भी बहुत दुख है। मे अपनी ओर से व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर मे उन्हें श्रद्धांजलि भेंट करता हूं और परम पिता परमात्मा मे प्रार्थना करता हूं कि वह दिवगंतात्मा को सद्गति प्रदान करे तथा सेठी परिवार को इस वियोग को सहन करने की शक्ति प्रदान करें ।

–सुरेन्द्र नाथ मुरगई, सभा महामन्त्री

श्री एम.एल. जी सेठी के जमाता का देहान्त

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तरंग सदस्य तथा आर्य समाज के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री एम.एल.जी सेठी म न 3986 गली नं. 7 निजातम नगर बस्ती नौ जालन्धर के जमाता श्री मनदीप जी सपरा (मो. सराजगंज, जालन्धर) का युवा अवस्था में 4-2-2001 को देहावसान हो गया। 6-2-2001 को उनका अन्तिम शोक दिवस सराजगज जालन्धर मे मनाया गया। श्री मनदीप जी बहुत ही होनहार व्यक्ति थे परन्तु मृत्यु के आगे किसी का बस नहीं चलता वह युवा अवस्था में ही हमें छोड़ कर चले गए हैं । उनके चले जाने का सपरा परिवार को और सेठी परिवार को सबसे अधिक दुख हुआ। हम उनके इस दुख में शरीक होते हुए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उस दिवंगतात्मा को सद्गति व शान्ति प्रदान करे तथा सपरा परिवार को व सेठी परिवार को इस दुख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

–सुरेन्द्र नाथ मुरगई,
सभा महामन्त्री

शिक्षा और ब्रह्मचर्य की रक्षा

❑ ले० देव नारायण तिवारी, आर्य समाज कलकत्ता

मनोविश्लेषण वाद के प्रवर्तक डा० फ्रायड का कहना है कि "जब बच्चा मा की गोद में अगूठा चूस रहा होता है तभी से उस पर वे संस्कार पड़ रहे होते हैं जो उसके भावी जीवन का निर्माण करते हैं । वैदिक विचार धारा मे इन संस्कारो को नियन्त्रित करने के लिए संस्कार विशेष की व्यवस्था की गई थी । जिसके लिए बच्चे को विभिन्न सस्कारो से संस्कारित किया जाता था । इन्हीं सस्कारो को सामान्य भाषा मे शिक्षा की संज्ञा दी जाती है।

शिक्षा सस्कृत का एक शब्द है । इसके आधार पर इसका अर्थ किया जाए तो शक्ति का निर्माण होगा । संस्कृत का एक धातु है शब्द जिसका अर्थ है बल प्राप्त करना । शिक्षा से शक्ति का निर्माण होता है । अत: शक्ति पाने को शिक्षा के नाम से सम्बोधित करते है। इससे तात्पर्य हुआ कि शिक्षा वह वस्तु है जो निर्बल को शक्तिशाली बना देती है। शिक्षा प्राप्त करके मनुष्य अपने शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास करता है । इसी का नाम अध्यात्म भाषा मे धर्म है । अत: हमारी शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए कि हम अपनी धार्मिक प्रवृत्ति का निर्माण कर सके ।

वैदिक काल के शिक्षा शास्त्रियों ने बालक को शिक्षा का केन्द्र माना था । इस पद्धति में बालक को शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसे जन्म भर के लिए ऐसे संस्कारो से घेर दिया जाता था। जिसके प्रभाव से उसका व्यक्तित्व स्वयं ही बना करता था । परन्तु वर्तमन काल में जो यूरोपीय शिक्षा प्रणाली की पद्धति चल रही है और जो इसके इतिहास को जानते हैं उन्हें पता है कि इसमें क्या कमी है । एक लम्बे चौड़े युग से गुजरने के बाद भी इसमे से गुजरा हुआ बच्चा अपने को बेकारी की समस्याओं से घिरा मानता है । कारण जहां उसे केन्द्र बनना था वहा उसकी स्कूल की बिल्डिंग पढाई-लिखाई के घंटे पाठयक्रम का व्यय विभिन्न प्रकार के व्यसनों से परिपूर्ण परिवेश को ही शिक्षा का मुख्य विषय माना जाता है । बालक के विषय में-उसके विषय में जिसके यह सब कुछ था-शिक्षा जगत में कोई चर्चा ही नहीं रहती। शिक्षा की वैदिक विचार धारा में सबसे महत्वपूर्ण स्थान बालक को दिया गया है और उसी के लिए अनेक उच्च कल्पनाएं की गई हैं। मुख्यत: बालक पर तीन प्रकार के सस्कार अपना प्रभाव डालते हैं जिन पर नियंत्रण रखना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।

(क) उसके अपने पूर्व संस्कार (ख) माता-पिता के संस्कार (ग) परिवार और पर्यावरण द्वारा पड़ने वाले वर्तमान संस्कार

संस्कारों को पूर्व परिधि से देश को कैसे निकाला जाए इसकी चिंता पराधीन काल में यहां के शासको को अवश्य हुई थी । जिसके परिणामस्वरूप ही हमारे आचार से सम्बन्धित अनेक प्रकार की रूढ़ियों से हमें दूषित कर दिया गया। साहित्यों में मिलावट की गई या उन्हें नष्ट कर दिया गया ।

अंग्रेजों ने जब अपने शासनकाल में शिक्षा पर ध्यान दिया तब उनके सामने प्रथम प्रश्न उपस्थित हुआ कि भारतीय संस्कृति की बची नींव को कैसे नष्ट किया जाए जिसे कि इसकी धार्मिक सांस्कृतिक विचारधारा दूषित हो जाए। इस प्रश्न का समाधान करने के लिए उन्होंने एक समिति (कमेटी) का निर्माण किया । जिसकी रिपोर्ट सन् 1735 ई. में लार्ड मैकाले ने लिखी। उन्होंने इस रिपोर्ट में लिखा कि "हमें भारत में ऐसे व्यक्ति उत्पन्न करने हैं जो शरीर से भारतीय हों परन्तु रहन-सहन-वेश-भुषा बोलचाल में विचारो से अंग्रेज हों, शिक्षा के इस उद्देश्य के साथ उसके द्वारा जो नींव डाली गई वह ईंट-पत्थर और लोहे से भी अधिक सुदृढ़ थी । आज उसके माध्यम से ही अधर्म और अज्ञानता का अशिष्ट पाठ पढ़ाया जाता है । जहां शास्त्र के छोटे-छोटे किन्तु सारगर्भित सूत्रों द्वारा अपार ज्ञान का भण्डार बच्चों में भर दिया जाता था, आचार-अनाचार, धर्म-अधर्म, देव, गुरु, द्विज प्राज्ञ सत्य-मिथ्या आदि-आदि विषयों को पूर्ण बोध कर दिया जाता था वहीं अब दीर्घकालिक पढ़ाई की साधना के उपरान्त भी इन तथ्यों का यथातथ्य बोध नहीं हो पाता बल्कि कैट रैट आदि का ज्ञान रटते रह जाते हैं और दुख तो इस बात का है कि स्वाधीनता के 50 वर्ष बाद भी उन्हीं संस्कारों की चोटें लगातार पड़ रही हैं जिससे भारतीय मन मस्तिष्क अंग्रेजों जैसे बने रहें और व्यक्ति केवल रोटी कमाने खाने तक ही ज्ञान-विज्ञान की सोच से अभिभूत रहे, शेष अपनी सभ्यता संस्कृति, धर्म कर्म भूल भी जाए तथा वहीं का वहीं पड़ा रहे । स्वार्थवाद का बृहद् दैत्य धार्मिक एवं राष्ट्रीय दोनों वृत्तियों को निगल रहा है। हम हर नैतिक क्षेत्र में असफल हो रहे हैं । शिक्षा संस्थाएं एक ऐसी फैक्टरी का रूप धारण कर चुकी हैं कि जिनमे केवल आर्थिक उत्पादन ही देखा जा रहा है। पारिवारिक बोझ से बोझिल शिक्षक वर्ग भी अपने को मात्र फैक्टरी के मजदूर की तरह ही एक उच्च वेतन भोगी मजदूर सा ही समझते हैं । यह सत्य है कि जैसे मजदूर कम से कम काम करके अधिकाधिक पैसा खींचना चाहता है। उसी भांति शिक्षा की इन फैक्टिरयों में हो रहा है। शिक्षक को अपने दायित्व का रंचक मात्र भी बोध नहीं है कि हम देश के निर्माता तथा जन-जन के भाग्य विधाता हैं । विद्यार्थी भी देखा-देखी वैसे ही हो रहे हैं । वे भी युनियनें बनाते हैं, हड़ताल करते हैं घेराव करते हैं और सक्रिय राजनीति में भाग लेते हैं । बिना पढ़े पास होने की भीषण भूख छात्रों को सता रही है। अभिलाषाएं ऊंची हैं, कर्म निम्न हैं । गुरु और शिष्य के जो पावन सम्बन्ध पिता-पुत्र के तुल्य है । उसका तुलादान हो रहा है। तपस्या का ब्रह्मचर्य का सदाचार का चरित्र निर्माण का शैक्षणिक जीवन में कहीं स्थान नहीं रहा । जो धनी पिता की संतानें हैं प्राय: घमण्डी आलसी और भोगवादी होते हैं । इसलिए वे भी शिक्षा के नैतिक प्रभाव से शून्य रह जाते हैं और भौतिक जीवन स्तर को उच्च करने के साधन को जुटा कर अपनी इतिश्री समझते हैं।

प्राचीन ऋषियों ने शिक्षा की उच्चता को ध्यान में रखकर ही इसे दो भागों में विभाजित किया था ।

1-प्रसव से पूर्व के संस्कार-जिनमें गर्भाधान से लेकर सीमान्तोनयन संस्कार तक आ जाते हैं-इनका अर्थ था कि उच्च आचार, विचार और मासिक चिन्तन के द्वारा माता-पिता अपने रज वीर्य को अत्यन्त उत्तम और उन्नत कर लें कि जिससे आगन्तुक शिशु आरोग्य और दीर्घायु प्राप्त करे, माता-पिता के विशेषकर गर्भस्थ शिशु मां के उचित और सात्विक आहार-विहार के प्रभाव से ही उसके उदर में ही उत्तमोत्तम शरीर को धारण कर लें । जिससे दीर्घायु सुशीलता आदि गुणों से संस्कारित होकर उत्पन्न हो ।

2-प्रसवोत्तर संस्कार इस जात कर्म संस्कार से लेकर सन्यास तक के संस्कार आते हैं-इनका भी उद्देश्य मानव को पूर्ण सदाचारी, विनयी विद्वान् करना तथा ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके पूर्ण विद्वान् हुए उपरान्त गृहस्थ में आना है । इस जीवन काल मे माता-पिता से भी बढ़कर दायित्व आचार्य यानी शिक्षा गुरु का होता था । शिक्षा दान मे आचार्य भी शिष्य को अपने आश्रम-विद्यालय में उसी प्रकार रखता जैसे मां का गर्भस्थ शिशु ही हो ।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त: । (अथर्व. 11-5-3)

क्या गुरु शिष्य के लिए, इससे ऊंचा कोई आदर्श उपस्थित किया जा सकता है । जैसे गर्भस्थ शिशु मां के समस्त क्रिया कलापों का संस्कार अपने मे समेट कर जन्म लेता है, उसी भांति गुरु के भी समस्त क्रिया कलाप ब्रह्मचारी (विद्यार्थी) के निर्माण में पूरक होते हैं । अत: उत्तम ब्रह्मचर्य का ज्ञान कराके उसे धारण कराते हुए ही विद्यार्थी छात्र को शुद्ध संस्कारों से विकसित किया जा सकता है । "ब्रह्मणिचरतीति ब्रह्मचारी" अर्थात् जो ज्ञान में ही विचरण करे वही ब्रह्मचारी है। वर्तमान का भौतिकवादी वैभवपूर्ण विलासी, कामुक जीवन य, अत्यन्त साज सज्जा श्रृंगार तथा सह शिक्षा इसमें पूर्ण बाधक हैं । अत: शिक्षा और ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु एक सद्गुणों का धारण करना कराना अनिवार्य है।

वेदोपदेश......

परम पुरुष का ज्ञान ही मृत्यु दुःख से बचाता है

❑ ब्र० सुदर्शनदेवार्य

ओ३म् वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ यजु. 31-8

पदार्थ-(अहम्) मैं ब्रह्मनिष्ट योगी (महान्तम्) महान् (आदित्यवर्णम्) सूर्य के समान प्रकाश स्वरूप (तमसः परस्तात्) अन्धकार से सर्वथारहित (एवम् पुरुषम्) इस परिपूर्ण गुणोंवाले परमात्मा को (वेद) जानता हूं (तमेव विदित्वा) उसको ही जानकर (मृत्युम् अति एति) मृत्यु को पार करता है (अन्यः पन्था न विद्यते) इसके सिवाय और कोई मार्ग जाने के लिए नहीं है ।

भावार्थ :-इस यजुर्वेदीय ऋचा में परमपिता परमात्मा के आश्चर्यजनक गुण, कर्म, स्वभाव को समझकर साक्षात्कार कर परमात्मा के आनन्द मे निमग्न योगी हम इतर लोगो को उपदेश देते हुए, प्रेरित करते हुए, हमारे दुःखो को क्लेशो को समझते हुए दुःखो, क्लेशो से बचने के लिए, इन सब दुःखों से सर्वथा छुडाने के लिए परमात्मा के इशारे पर हमे कह रहे है कि हे मनुष्यो ! तुम इस अज्ञानान्धकार से सर्वथा रहित अविनाशी प्रकाशस्वरूप सब ओर से पूर्ण उस महापुरुष को जानो, वही तुम्हे मृत्यु जैसे अत्यन्त पीड़ा देने वाले दुःखो से पार लगा सकता है, क्योकि सिवाय इसके और कोई दूसरा मार्ग मृत्यु से पार जाने के लिए परमपद (अत्यन्त सुख) प्राप्त कराने के लिए नहीं है ।

व्याख्या-प्रत्येक मनुष्य हर प्रकार के दुःखो से छुटकर सुख प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं । संसार के जितने भी कार्य किसी भी प्रकार के सुख को देने के लिए क्यों न हों उनको करने के लिए समुद्यात हो जाते हैं, उसके लिए वे बड़े से बड़े कष्ट सहने को भी तैयार हो जाते हैं और उसको अन्त में प्राप्त भी कर लेते हैं परन्तु चेहरे में मुस्कान नहीं होती पुनः पूर्वसदृश दुःखी ही रहते हैं, तभी तो सांख्यकार महर्षि कपिल को कहना पड़ा-"**न दृष्टात् तत् सिद्धि निंवृर्तेरप्यनुवृत्तिदर्शनात्**" अर्थात् दृष्ट साधनों से-सांसारिक भौतिक साधनों से भोजन, वस्त्र, मकान, यानादि के द्वारा मनुष्यों को तृप्त नहीं कराया जा सकता, यदि इनसे वे तृप्त हो भी जाते हैं तो बस कुछ देर के लिए पुनः दूसरे दौर से और चीजों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं तभी तो उपनिषद्कार कहते हैं-**न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः**-अर्थात् भौतिक पदार्थों से मनुष्य को तृप्त नहीं करवाया जा सकता। महाभारतकार कहते **हैं-यत्पृथिव्यां व्रीहियवं-हिरण्यं पशवः स्त्रियः । एकस्यापि प पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परित्यजेत्॥**

धरती पर जितने अन्न, धन, पशु, स्त्री आदि हैं, सब मिलकर भी एक व्यक्ति की तृष्णा को शान्त करने में पर्याप्त नहीं है।

अतः इन सब उपरोक्त कथनों से यह समझ में आता है कि भौतिक साधनो से अत्यन्त मोक्ष सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता, तो अब प्रश्न उपस्थित होता है कि मोक्ष सुख को प्राप्त कैसे किया जाए-इसका उत्तर मन्त्र के द्वितीय भाग में है और कहा गया है-हृदयरूपी अन्तरात्मा में स्थित परमतत्व, परमात्मा के स्वरूप को समझकर जानकर दर्शन कर ही अनन्त सुख (मोक्ष) को प्राप्त किया जा सकता है, जिसको की उपनिषद्कार ने स्पष्ट शब्दों में कहा-

एकोवशी सर्व भूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

वह परमेश्वर एक है और सबको वश में रखने वाला तथा सब भूतों की अन्तरात्मा है और जो एक कारण स्वरूप प्रकृत्यात्मक रूप को अनेक प्रकार का कर देता है। जो धीर पुरुष अपनी आत्मा में स्थित उसको देखते हैं उन्हें शाश्वत सुख प्राप्त होता है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में भक्ति संगीत एवं आध्यात्मिक प्रवचन

समारोह अध्यक्ष :-श्री हरबंस लाल जी शर्मा, अध्यक्ष, आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब

मुख्य प्रवक्ता :-स्वामी इन्द्रवेश जी, विश्व विख्यात सन्यासी, पूर्व सांसद, जगवीर सिंह जी एडवोकेट, अध्यक्ष, सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद्

उद्घाटन करेंगे :-श्रीमती स्वदेश चोपडा (डायरैक्टर, हिन्द समाचार समूह)

ज्योति प्रज्वलित :-श्री चमन लाल सचदेवा (चेयरमेन, सचदेवा इन्डस्ट्रीज)

मुख्य अतिथि :-डा के.के. पसरीचा (कार्यकारी अध्यक्ष, आर्य प्रतिनिधि सभा), श्री एम.एल. एरी (प्रिंसीपल, डी.ए.वी. कालेज, अमृतसर)

विशेष अतिथि :-श्री दर्शन लाल (प्रधान केन्द्रीय आर्य सभा, अमृतसर), श्रीमती राजेश शर्मा, (प्रधान जिला आर्य सभा, लुधियाना श्री स्वतंत्र कुमार जी प्रधान जिला आर्य सभा गुरदासपुर)

कार्यक्रम संयोजक :-श्री ओम् प्रकाश आर्य (अध्यक्ष, महर्षि दयानन्द धाम)

कार्यक्रम :-दिनांक 11 फरवरी 2001, रविवार, गुरु नानक ऑडिटोरियम नजदीक बस स्टैंड, अमृतसर । शुभारम्भ 10 बजे प्रातः। प्रीति भोज 2 बजे दोपहर ।

-: निवेदक :-

पंजाब प्रान्तीय आर्य युवक परिषद्/महर्षि दयानन्द धाम,
बाजार हंसली, नजदीक ढाब बस्ती राम, अमृतसर ।

भूल सुधार

आर्य मर्यादा के गत अक 4-2-2001 में प्रथम पृष्ठ पर तिथि न बदले जाने से भूल से 28-1-2001 गत अक वाली तिथि रह गई है। पाठक वृन्द इस अंक पर 4-2-2001 लिख लें यह अक 4-2-2001 का अंक है। **-धर्मदेव आर्य**, सम्पादक

महात्मा प्रेम प्रकाश जी का टेलीफोन नम्बर बदल गया

महात्मा प्रेम प्रकाश वानप्रस्थी आर्य कुटिया धूरी का टेलीफोन नम्बर बदल गया है अब कोड न 01675 टेलीफोन न 621247 है।

साधना, स्वाध्याय एवं सेवा शिविर

23 फरवरी, 2001 से दिनांक 4 मार्च, 2001 तक

आपके मन के किसी कोने मे साधना करने की इच्छा बीज रूप में हो अपने जीवन को वेद एव ऋषियो के आदर्शानुकूल ढालना चाहते हों, विद्यात्मक एव सृजनात्मक जीवन चाहते हो, अपने मन को पवित्र बनाने की इच्छा रखते हो वैदिक साधना पद्धति को जानना-समझना चाहते हो, वैदिक सिद्धान्तों को समझना चाहते हो या अपने को वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार मे लगाने की अभिलाषा रखते हो तो यह शिविर आपको एक उत्तम अवसर प्रदान करेगा ।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर की ओर से ऋषि उद्यान मे वर्ष में तीन बार, पहला होली के आस-पास, दूसरा ग्रीष्मावकाश में तथा तीसरा दीपावली के आस-पास लगाए जाते है । शिविर योग्य आचार्यों के निर्देशन मे लगाया जाता है । शिविर के चलते सभी प्रकार के दुर्व्यसन निषिद्ध हैं तथा समाचार-पत्र पढने दूरदशन देखने एवं आकाशवाणी सुनने पर भी प्रतिबन्ध है ।

शिविर में रहने की, खाने-पीने की एवं बिछाने के बिस्तरो की व्यवस्था है । शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएं तथा मजन, ब्रश, साबुन, तेल दवाएं ओढ़ने-बिछाने की चादर/कंबल, लिखने के लिए संचिका (नोट बुक) लेखनी, टार्च आदि साधक अपने साथ लावें ।

शिविर मे भाग लेने वाले कृप्या यथाशीघ्र हमे अपना पूर्ण विवरण लिख कर निम्न पते पर भेज दे । **-धर्मवीर** मन्त्री,
परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर

हास्य और दीर्घायु

☐ प्रो० इन्द्रदेव सिंह आर्य, 188 शिवाजी नगर, नागपुर-10

मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण अभिलाषा यही है कि वह इस जिन्दगी मे अधिक से अधिक काल तक स्वस्थ और सम्पन्न बना रहे और जीवन का आनन्द लूटता रहे। अथर्ववेद मे कहा गया है कि यह जिन्दगी हसते, खेलते, कुदते, नाचते हुए हसते रहने के लिए हमे मिली है, चिन्ता, शोक, भय, निराशा और क्रोध से परेशान होने के लिए नहीं प्राप्त हुई है-

प्राञ्चो अगाम नृत्तये हसाय

(अथर्व 12-2-22)

इस सम्बन्ध मे हमे उन दीर्घजीवियो के अनुभवो से लाभ उठाना चाहिए, जिन्होने दीर्घायु प्राप्त की है । हमारे ही देश के परम पूज्य योगेश्यवर कृष्ण भगवान् ने 125 वर्ष की आयु प्राप्त की और हमे श्रीमद् भगवद् गीता जैसे ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र के महान ग्रन्थ द्वारा जीवन का सन्मार्ग बतलाया है । उन्होंने अपने कर्त्तव्य से युद्धक्षेत्र मे विमुख होते हुए वीरवर अर्जुन को जो उपदेश दिया वह यगु-युग तक मानव जाति का मार्गदर्शन करता रहेगा । इस अवसर पर उनके द्वारा अपने प्रियमित्र को प्रोत्साहित करने के लिए कहे शब्द अविस्मरणीय है-

क्लैव्य मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

हे अर्जुन । अत: तुम कर्तव्य पथ को छोडकर भागो मत, पौरुष का त्याग मत करो, हे वीर और कर्मठ योद्धा तुम हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ । इस उपदेश में सच पूछे तो सम्पूर्ण गीता का सार ही आ गया है।

महाभारत के एक और महावीर पुरुष एवं अग्रणी नेता भीष्म पितामह की आयु युद्ध के दौरान लगभग 175 वर्ष की बैठती है । इस आयु मे भी नवयुवकों के समान युद्ध करने वाले और शत्रुओं के छक्के छुड़ाने वाले योद्धा का ब्रह्मचर्य पूर्ण तपस्वी जीवन सभी के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय है। इन उदाहरणों को कोई प्राचीन युग के कहकर टाल सकता है ।

हमारे युग में भी स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द जैसे ब्रह्मचारी महापुरुषो को दीर्घायु प्राप्त हो सकती थी, परन्तु कई कारणों से ऐसा नहीं हो सका-प्रभु इच्छा गरीयसी । स्वामी विवेकानन्द जी ने नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि अपनी तन्त्रिकाओं को बलवान् बनाओ। आज हमें जिसकी आवश्यकता है, वह है-लोह के समान पुट्ठे और फौलाद की तन्त्रिकाएं ।

आज के जमाने में भी रूस में 158 वर्ष के एक किसान हुए हैं। उनका नाम था मखमूद इवाजीव । उन्हें सोवियत सरकार ने अपने देश के उच्चतम सम्मान से विभूषित किया था। वहीं रूस में एक महिला तेपो आतजीव ने तो वास्तव मे दीर्घायु का विशेष रिकार्ड कायम कर दिया है। उसने एक सौ अस्सी वर्ष की आयु प्राप्त की । वह कहा करती थी कि केवल मन को शान्त और संतुलित रखकर जीने से इस शरीर रूपी मशीन को कोई हानि नहीं पहुंचती। चीन की पीकिंग नगर में एक वृद्ध की आयु 155 वर्ष के लगभग है। वह कहता है कि मैंने अपने जीवन में तीन बातों का विशेष ध्यान रखा है । श्वास पूरा नाभि तक लिया, शीघ्रता से अधूरा श्वास कभी नहीं लिया और अपने मेरूदंड को सदैव सीधा रखा, कभी झककर नहीं बैठा, और अपने दिमाग को गरम नहीं होने दिया अर्थात् कभी चिन्ता या क्रोध की अग्नि में नहीं तपाया । वास्तव में उपर्युक्त तीनों नियम योग विद्या संबंधी आयु वृद्धिकर्त्ता हैं। पूरा श्वास लेने से कुम्भक हो जाता है। मेरूदण्ड को सीधा रखने से उसके भीतर की सुषुम्ना नाड़ी निर्बल नहीं होती, मस्तिष्क भी बलवान् और परिपुष्ट रहता है और आयुवृद्धि होती है। क्रोध करने से श्वास की गति तीव्र हो जाती है और मानसिक क्षति होती है।

जापान में शतायु 'तरुण' नागरिकों की संख्या सहस्त्र से ऊपर है, उनमें सबसे ज्येष्ठ नागरिक की आयु 115 वर्ष से भी अधिक पाई गई। एक समाचार पत्र के कार्यकर्त्ता द्वारा पूछे जाने पर कि आप इस आयु में भी इतने स्वस्थ सदाबहार युवक दिख रहे हैं, इसका रहस्य बताने की कृपा करें । इस पर उस सज्जन ने उत्तर दिया कि छोटी-छोटी बातों पर परेशान न होकर मैं उन्हें हंसी में ही उड़ा देता हूं, चिन्तित तो मैं इनसे बिल्कुल नहीं होता । छोटी बात का क्या कोई उदाहरण देनेकी कृपा करेंगे-पत्रकार ने पूछा। हां भाई, मेरी पत्नी गुजर जाने पर भी मैं मन ही मन हंसा, उसने मुस्कराते हुए-उत्तर दिया।

वास्तव में मनुष्य ही एक प्राणी है जो हंस सकता है । किसी विद्वान् ने कहा कि है-"मैन इज ए लाफिंग एनीमल"। हंसने की दैवी शक्ति केवल मनुष्य को प्राप्त है । अत्यन्त गंभीर रहने वाला मनुष्य भी एक न एक बार दिल खोल कर हंसता है । ऐसी हास्यवृत्ति एक ईश्वरीय वरदान मानी जा सकती है। कहा जाता है कि हाथी ही एक अन्य प्राणी है जिसे एक सीमा तक मजाक समझने की शक्ति प्राप्त है। इस संबंध में एक मजेदार उदाहरण भी दिया जाता है । एक छोटी लड़की संतरों की छोटी टोकरी के साथ एक सर्कस देखने गई थी। वहां उसके मन में विचार आया कि ये संतरे इन हाथियों को खिलाऊं तो अच्छा रहेगा परन्तु ज्यों ही वह आगे अपनी टोकरी लेकर बढ़ी कि उसे उन्हें देखकर इतना डर लगा कि वह आगे बढ़ नहीं पाई। यह बात सर्कस के मैनेजर ने देख ली। मैनेजर ने छोटी लड़की के हाथ से टोकरी ले ली और सामने खड़े छ: हाथियो को एक-एक संतार देता गया। उन सब को एक एक संतरा देने के बाद टोकरी में एक ही संतरा बचा था। उसने सोचा कि केवल एक हाथी को दो संतरे देना अच्छा नहीं होगा । अत: बच रहे एक संतरे को छीलकर हाथियो के सामने वह स्वयं एक-एक फाक खाने लगा । तब वे सब हाथी भी खुशी से अपने कधों को हिला हिला कर अपनी खुशी दिखाने लगे। खाने के दांतों से दिखाने के पृथक्-पृथक् दांत होने पर भी हाथी को हंसकर दिखाने के दांत तो होते ही नहीं। वास्तव मे अन्य किसी भी प्राणी को अपनी खुशी या दु:ख दिखाने का साधन भगवान ने नहीं दिया है, परन्तु मनुष्य के चेहरे पर प्रसन्नता का प्रतिबिम्ब तत्काल दिखाई देता है ।

आरोग्य की दृष्टि से हास्य, प्रसन्नता या मुस्कराते रहने के बहुत ज्यादा लाभ है। हास्य से सिरदर्द और रक्तदाब से भी मुक्ति मिल सकती है । खुलकर हंसने से शरीर के अनेक अंगों का व्यायाम होता है, जिससे रक्ताभिसरण शीघ्रता से होता है, और पेट नियमत रूप से कार्य करता है। सारांश यह है कि हास्य मनुष्य के आरोग्य और स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति के लिए ऐसी मनोवृत्ति प्राप्त करने का यत्न कीजिए जिससे संसार में सर्वत्र आनन्द बढ़े, प्रत्येक व्यक्ति हंसमुख बने । इस प्रकार हंसमुखता के अगणित लाभ हैं हंसिए दृढ़ शरीर प्राप्त कीजिए और निरोग रहकर दीर्घायु प्राप्त कीजिए ।

आर्य समाज जालन्धर छावनी का चुनाव

आर्य समाज जालन्धर छावनी का वार्षिक चुनाव 28-1-2001 को श्री के.एल. गुप्ता (एडवोकेट) की अध्यक्षता में हुआ जिसमें सर्वसम्मति से निम्न अधिकारी चुने गए ।

1. श्री जनकराज महाजन-प्रधान । 2. श्री चमन प्रकाश नन्दा वरिष्ठ उप प्रधान । 3. श्री चन्द्र गुप्ता-उप प्रधान । 4 श्री काशीराम अग्रवाल-उपप्रधान । 5. श्री जवाहर लाल महाजन-मन्त्री। 6. श्री राम सिंह-उपमन्त्री। 7. श्री रघुवीर यादव-कोषाध्यक्ष। 8. श्री रमेश चन्द्र-पुस्तकाध्यक्ष । 9. श्री स्वदेश कुमार लाला-आर्य वीर दल । 10. बलदेव राज शर्मा-लेखा निरीक्षक ।

लड़के लड़की में भेद भाव क्यों ?

□ कु. वीणा आर्या

कहने को आज के युग को प्रगतिशील तथा समानता का युग कहा जाता है और सभी ओर से यही आवाज उठ रही है कि महिलाओ को भी पुरुष के समान अधिकार देने चाहिएं परन्तु आज के युग में स्त्रियों की जैसी दुर्गति अवहेलना एवं तिरस्कार है वैसे पूर्वाकाल में नहीं था । मनुष्य के जीवन निर्माण मे स्त्री का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । भगवान् श्री राम, लक्ष्मण तथा पांचों पाण्डव एवं इस युग के महान् सन्त स्वामी शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती, छत्रपति शिवाजी आदि सभी महापुरुषो के निर्माण में माताओं की ही प्रेरणा रही है। "मां पै पूत पिता पै घोड़ा" यह लोकोक्ति बहुत प्रसिद्ध है । इसलिए पहले के पुरुष वीर, साहसी, सात्विक तथा वचन के पक्के होते थे। मनु जी महाराजा ने स्त्रियों की प्रशसा करते लिखा है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता
यात्रैतास्तु न पूज्यन्ते, स्तत्रसर्वाऽफलाक्रिया:॥

अर्थात्–जिस घर में महिलाओं का मान सम्मान होता है वहां सभी दिव्यगुण वास करते हैं परन्तु जहां इनका तिरस्कार होता है वह घर नरक बन जाता है। अत: परिवार की उन्नति और सुख सुमृद्धि के लिए महिलाओं का मान सम्मान सबसे ज्यादा करना चाहिए। पहले के मनुष्य देवियो के सम्मान एवं चरित्र की रक्षा के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए रहते थे । एक बार जिस पुरुष का जिस युवती से विवाह हो जाता था उसे वह आजीवन निभाता था।

परन्तु आज के तथाकथित प्रगतिशाली भोगवादी पुरुषों ने स्त्री को एक भोग की वस्तु मान लिया जब चाहा जैसा चाहा उसके जीवन का दुरुपयोग किया तथा उसे छोड दिया। स्त्री की विद्या एवं चरित्र की कीमत नहीं आकी जाती ।

अपितु उसके विवाह में कितना धन मिलता है यह देखते है । इच्छा अनुसार धन सम्पत्ति न मिलने पर स्त्री को मारने मे भी देर नही करते। अतएव माता पिता के लिए लड़की का पेदा होना बोझ हो गया हैं। इसी विवाह के खर्च से डरकर गर्भ की जांच करवाकर लडकी होने पर अनेक मा-बाप गर्भपात करवा देते है । एक-एक दम्पत्ति दो-दो तीन-तीन गर्भपात करवा देते हैं । यह बहुत बडा पाप है । इसका पाप उस दम्पत्ति को आजीवन दु:ख देता है । इससे उनका अगला जन्म तो बिगड़ता ही है। स्त्री का शरीर भी रोगों का घर बन जाता है । ऐसी गर्भपात करने वाली स्त्री की आयु क्षीण हो जाती है । ऐसे लोगो को न भगवान् का विश्वास है न कर्मफल का विश्वास है और न देश की संस्कृति बचाने की चिन्ता है । ईसाई-मुसलमान प्राय: परिवार नियोजन नहीं करते । उनके परिवार में पांच से दस तक बच्चे होते हैं फलस्वरूप उनकी संख्या बढ रही है। एक समय आएगा की इस देश में हिन्दु अल्पमत हो जाएंगे और ईसाई मुसलमान हम पर हावी हो जाएंगे । अत: विचारशील सज्जनों को इधर गम्भीरता पूर्वक सोचना चाहिए। तथा इस गर्भपात महापाप से बचने का यत्न करना चाहिए। वैसे भी लड़के की अपेक्षा लडकी दोनों परिवारों के लिए ज्यादा शुभचिन्तक रहती है । वह विवाह होने पर भी अपने मां बाप का ध्यान रखती है । दुख सुख में लड़की ही मां बाप को सम्भालती है । लड़के तो परिवार बनाकर अलग बैठ जाते हैं । अत: अपने भविष्य को देखते हुए लड़के की अपेक्षा लड़की को महत्त्व दें और कभी भी लड़की के नाम से गर्भपात न कराएं ।

श्री प्यारे लाल बेरी नहीं रहे

"विद्या का सूर्य छिप गया, शिक्षा का दीप बुझ गया" पूज्य प्रिंसीपल श्री प्यारे लाल बेरी जी, जिन्होंने अपनी सारी आयु साई दास ए एस सी सैकेण्डरी स्कूल जालन्धर में बच्चों को शिक्षा देने और सत्य मार्ग का ज्ञान देते हुए व्यतीत की, उनका 18-1-2001 को निधन हो गया और वे हमसे सदा के लिए बिछुड गए । वे एक महान शिक्षक थे उनके पुराने शिष्य उनकी शिक्षा को कभी भुला नहीं सकेंगे।

पूज्य बेरी जी का सम्पूर्ण जीवन शिक्षादायक था सादगी, वेद प्रचार आर्य समाज का प्रचार और वेद मार्ग पर चलना उनके जीवन का लक्ष्य था। आर्य समाज, विक्रमपुरा जालन्धर, साईं दास ए एस सीनियर सैकेण्डरी स्कूल पटेल चौक जालन्धर ए.एस. हाई स्कूल अलावलपुर, डी ए वी स्कूल हरियाणा, डी ए वी स्कूल अपरा (जालन्धर) तथा पजाब की अन्य आर्य समाज की शिक्षा संस्थाओ मे तथा आय समाजो मे बडी लगन से सारी उम्र सेवा करते रहे ।

श्री बेरी जी अलावलपुर की आर्य सस्थाओ से निजी तौर पर बहुत प्यार करते थे । उनका सारा जीवन त्याग, सादगी, मिलन सारी और मीठी वाणी से भरपूर था । त्याग की भावना उनमे कूट-कूट कर भरी हुई थी। वेद, गीता, रामायण, सत्यार्थ प्रकाश और महर्षि दयानन्द जी के बताए हुए मार्ग पर चलते हुए उन्होंने अपना सारा जीवन बिताया। आज की भयानक सामाजिक परिस्थितियो मे बेरी जी जैसे लोगो की अत्यन्त आवश्यकता थी।

श्री बेरी जी की मृत्यु से हम उनकी अगवाई से वचित हो गए है। उनकी पूर्ति बहुत कठिन है । परन्तु हम अलावलपुर की सभी आर्य संस्थाओं, ए एस हाई स्कूल अलावलपुर, महर्षि दयानन्द माडल स्कूल के प्रिंसिपल, स्टाफ तथा बच्चे आर्य समाज के सभी सदस्य और सभी अन्य सस्थाए इस गहरे कष्ट मे श्री बेरी जी के परिवार के साथ है।

प्रभु का नियम अटल है । मौत को कोई भी नहीं टाल सकता सिवाये सब्र के अब कोई चारा नहीं हम परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते है कि वे श्री बेरी जी की आत्मा को शान्ति तथा सद्गति प्रदान करें । इस दुख की घड़ी मे परमात्मा उनके परिवार को सात्वना प्रदान करे और हमे बल दे कि हम उनके दर्शाये मार्ग पर चल सकें। –कृष्ण शरण गुप्ता, प्रधान

क्या अंग्रेज़ी शिक्षा ही आदर्श शिक्षा है

❑ डॉ० कृष्णलाल

प्राय: कहा जाता है कि पब्लिक स्कूल आदर्श शिक्षा के केन्द्र है परन्तु शिक्षा का आदर्श क्या है इसे या तो इन स्कूलो को चलाने वाले जानने का प्रयत्न ही नहीं करते या जान बूझ कर अनजान बन जाते है । यह बताने की आवश्यकता नहीं कि बच्चे का शारीरिक मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक सर्वांगीण विकास करके उसे स्वावलम्बी, श्रेष्ठ, उपयोगी नागरिक बनाना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है ।

परन्तु इस उद्देश्य मे प्राथमिक कक्षाओ से विदेशी भाषा की पढाई किसी प्रकार सहायक नहीं है । हा उससे बच्चे मे अवाञ्छित मिथ्या गर्व की भावना अवश्य आती है । **किसी भी शिक्षा पद्धति में प्राथमिक कक्षाओं से बच्चे के कोमल मस्तिष्क पर विदेशी भाषाओं का बोझ लादना उचित नहीं माना गया। अंग्रेजी सीखते हुए उन्हें एक अपरिचित भाषा के साथ-साथ एक अवैज्ञानिक नई लिपि भी सीखनी पड़ती है।** पुस्तको मे कितनी ही लुभावनी तस्वीरों से आकर्षण पैदा किया जाए परन्तु यह एक तथ्य है कि सी यू टी सट नहीं कट और पी यू टी पुट जैसे अनेक शब्द उन्हें रटने पडते हैं । पता नहीं हम किस अन्धी दौड़ मे दौड़ते हुए बच्चों को पहाडे भी अंग्रेजी में सिखाते है । छोटे-छोटे बच्चों के बस्तो का बोझ बढ़ा रहे हैं ।

तब और भी दु:ख होता है जब सरकारें भी पब्लिक स्कूलों इस आदर्श (?) शैक्षिक दौड़ में गांवो के और अनपढ़ लोगों के करोड़ों बच्चो को धकेलने लगी है। "सबके लिए शिक्षा" का ढिंढ़ोरा पीटने वाली सरकारो को इस बात की क्या चिन्ता है कि कितने बच्चे इस दौड़ मे गिरते हैं और कितने गिरकर मैदान छोड़ जाएं या फिर कितने ही लंगडाते हुए चलते दिखाई दे । वे बच्चों को साहब बना रहे हैं, सबका अपनेपन का, भारतीयता का स्वत्व मिटाने मे सहायक हो रहे हैं।

हमारे लिए गम्भीरतापूर्वक सोचने का समय है कि क्या फ्रांस, इंग्लैण्ड, जापान, जर्मनी, रूस आदि किसी स्वतन्त्र देश में प्राथमिक कक्षाओं में कोई विदेशी भाषा सिखाई जाती है ? भारत में अंग्रेजी के पब्लिक स्कूलो में बच्चों को पढाना सम्पन्न धनाढ्य वर्ग में प्रतिष्ठा की होड़ जैसा दिखाई देता है । **हम यह भूल रहे हैं कि अंग्रेजी की प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा भारतीयता से काटकर बच्चों को अंग्रेजीयत के रंग में रंगने की कुचाल है । यह मैकाले की नीति का भारतीयों द्वारा सम्पोषण है।** अंग्रेजों को निकालने में हमने जो शौर्य दिखाया वह अब कहां गया ? राष्ट्रवादी विचारधारा वाले सभी लोग द्वारा प्रत्येक स्तर पर अंग्रेजी का बलपूर्वक विरोध किया जाना आवश्यक है । **स्वतन्त्र भारत अंग्रेजी की अनिवार्यता क्यों सहन करें ?**

श्रीमती जानकी देवी श्रद्धांजलि दिवस सम्पन्न

आर्य समाज के सुयोग्य वक्ता वैदिक विद्वान् एवं आर्य केन्द्रीय सभा यमुनानगर के प्रचार-सचिव श्री इन्द्रजित देव एवं आर्य समाज के यशस्वी, कर्मठ कार्यकर्त्ता भ्राता भूषण कुमार आर्य यमुनानगर की पूज्या माता श्रीमती जानकी देवी का 90 वर्ष की आयु मे देहांत हो गया। श्री आचार्य राज किशोर जी वैदिक साधना आश्रम यमुनानगर ने पूर्ण वैदिक रीति अनुसार अन्त्येष्टि संस्कार कराया। 26 जनवरी 2001 को एक विशेष शोक सभा का आयोजन किया गया जिसमें नगर की प्रमुख धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एव शैक्षणिक संस्थाओं एवं नगर के प्रमुख गणमान्य नागरिकों ने भाग लिया। मंच संचालन करते हुए आर्य वेद प्रचार मण्डल जिला यमुनानगर के महा सचिव श्री सत्यकाम आर्य जी ने पूज्या माता जी को श्रद्धांजलि देते हुए उनके धार्मिक एवं सात्विक जीवन की चर्चा की । उन्हीं के संस्कारों से श्री 'देव' जी एवं भूषण आर्य जी जैसी सन्तान इस समाज को मिली जो निष्ठा पूर्वक आर्य समाज के प्रचार प्रसार में कार्यरत हैं। श्री डा. राजेन्द्र वेदालंकार कुरुक्षेत्र महामन्त्री आर्य वीर दल जो आर्य समाज के ओजस्वी वक्ता एवं वैदिक विद्वान हैं ने जीवन-मृत्यु की वैदिक विवेचना की । पूज्या माता जी को श्रद्धांजलि देते हुए आचार्य श्री राज किशोर जी श्री मद्दयानन्द उपदेशक महाविद्यालय यमुनानगर ने मृत्यु के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन करवाया । श्री ओ३म् प्रकाश जी वर्मा, डॉ० कमला वर्मा पूर्व मन्त्री, श्री जय प्रकाश शर्मा विधायक यमुनानगर, श्री जयपाल आर्य प्रधान शादीपुर गुरुकुल, आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति शोक सभा में पधारे । पचासो संस्थाओं से शोक प्रस्ताव परिवार को प्राप्त हुए। परिवार की ओर से 11000 रुपए श्री वैदिक साधना आश्रम यमुननागर 4000, आर्य वीर दल 1000 आर्य वेद प्रचार मण्डल यमुनानगर एवं अन्य संस्थाओ को प्राप्त हुआ। परिवार की ओर से श्री सत्यकाम आर्य ने सभी का धन्यवाद मंच से किया एवं दान के लिए भी परिवार को संस्थाओ ने धन्यवाद किया।

–सत्यकाम आर्य, महासचिव
वेद प्रचार मण्डल, यमुनानगर

गणतन्त्र दिवस मनाया गया

26 जनवरी 2001 को महर्षि दयानन्द माडल स्कूल आर्य समाज मन्दिर अलावलपुर में गणतन्त्र दिवस बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। इसमें आर्य समाज अलावलपुर के प्रधान श्री कृष्ण शरण गुप्ता सदस्यों श्री सुरेन्द्र शिंगारी जी, श्री परमानन्द कक्कड़ तथा अन्य सदस्य के अतिरिक्त पूज्य वैद्य टेक चन्द जी, श्री सुरेन्द्र खुल्लर जी प्रिंसीपल श्री धर्मपाल जी स्कूल की अध्यापिकाओं व बच्चों ने भाग लिया ।

ऋषिबोधोत्सव (महाशिवरात्रि)

आर्य समाज (आर्य समाज चौक) भटिण्डा में महर्षि दयानन्द जन्म दिवस, ऋषिबोधोत्सव (महाशिवरात्रि) पर्व एवं 'ऋग्वेद शतक' महायज्ञ बड़ी धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ दिनांक 18 फरवरी से 21 फरवरी 2001 तक पूज्य स्वामी सम्पूर्णान्द जी महाराज (करनाल, हरियाणा) के ब्रह्मत्व में मनाया जा रहा है। इस समारोह में श्री विजय आनन्द जी 'आर्य गायक' मधुर कण्ठ द्वारा स्वामी दयानन्द जी की उपमा का रसपान करायेगे।

ध्वजारोहण आदरणीय श्री सोम प्रकाश जी गोयल अपने करकमलों के द्वारा करेंगे एवं पूर्णाहुति समारोह के मुख्य अतिथि आदरणीय श्री सुरजीत कुमार जी ज्यानी, वनमंत्री पंजाब होंगे।

इस पावन पर्व पर आप सादर आमन्त्रित हैं ।

–प्रेम भाटिया, प्रधान

न्यू क्लाथ मार्किट भठिण्डा में हवन यज्ञ

प्रति वर्ष की भांति न्यू क्लाथ मार्किट भठिण्डा मे मकर संक्रान्ति के पावन पर्व पर हवन यज्ञ आर्य समाज भठिण्डा के पुरोहित श्री पं. गुरु प्रसाद जी शास्त्री द्वारा सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ के मुख्य यजमान श्री भोजराज जी प्रधान न्यू क्लाथ मार्किट बने। हवन यज्ञ में मार्किट के सभी व्यापारियों ने प्रेम पूर्वक श्रद्धा से भाग लिया। न्यू क्लाथ मार्किट में हवन यज्ञ प्रति वर्ष लाला वजीर चन्द जी प्रधान जिला आर्य सभा की प्रेरणा से होता आ रहा है। हवन यज्ञ में श्री बिहारी लाल जी, मन्त्री आर्य समाज एवं श्री प्रेम भाटिया जी प्रधान व मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, विशेष आमन्त्रित थे।

–बिहारी लाल मंमला, मन्त्री

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रेस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि न एन' पी 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

दूरभाष ☎ 292926

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 18 फरवरी 2001 दयानन्दाब्द 177

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के सदस्यों की सेवा में

अश्विनी कुमार शर्मा का कच्चा चिट्ठा

अश्विनी कुमार शर्मा का स्वामी ओमानन्द को सार्वदेशिक सभा का प्रधान मानने से इन्कार

श्री अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट सार्वदेशिक सभा का निरन्तर विरोध कर रहा है परन्तु सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री वेदव्रत जी, श्री विमल वधावन श्री सच्चिदानन्द शास्त्री जी व श्री डा. धर्मपाल जी श्री अश्विनी के झासे मे आए हुए हैं । यह निरन्तर अश्विनी कुमार का पक्ष ले रहे हैं । अश्विनी कुमार शर्मा लोगो को कहता है कि मैंने इन्हे बहुत लाभ पहुचाया है यह सब मेरा साथ देंगे । यह ऐसा प्रापेगण्डा करके सार्वदेशिक सभा मे फूट डालने का प्रयास कर रहा है । सार्वदेशिक सभा के सभी अधिकारी व अन्तरग सदस्यो व प्रतिनिधियों को अश्विनी कुमार शर्मा से सावधान रहना चाहिए।

पूज्य स्वामी ओमानन्द जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा के 25 9 2000 के पत्र को पढ कर और सभा की नाजुक स्थिति को देखते हुए अपने आदेश सख्या 4/9 दिनाक 26 9-2000 के द्वारा एक तदर्थ समिति बना दी थी परन्तु अश्विनी कुमार शर्मा ने एक जाली पत्र स्वामी जी के नाम से स 6/9 दिनाक 29 9-2000 प्रस्तुत करके इस आदेश को निरस्त करने का प्रयास किया। जब स्वामी जी को इस जाली पत्र का पता चला तो उन्होने अपने पत्र स 5/9 दिनाक 2-10-2000 में स्पष्ट लिखा है कि मैंने 6/9 कोई पत्र जारी नहीं किया यह पत्र जाली है।

अपनी इस बात को सफल होते देख कर अश्विनी कुमार शर्मा को जब स्वामी जी के 2 10 2000 के पत्र का पता चला तो इसने 9 10 2000 को स्वामी जी के आदेश के विरुद्ध जालन्धर की अदालत मे मुकद्दमा कर दिया । इसमे इसने स्वामी ओमानन्द जी पर कई आरोप लगाए और उन्हे सार्वदेशिक सभा का प्रधान न मानकर सोमनाथ मरवाह को प्रधान माना। उसने कोर्ट में जो लिख कर दिया उसे ज्यो का त्यो यहा आपकी जानकारी के लिए दिया जा रहा है।

IN THE COURT OF CIVIL JUDGE (SENIOR DIVISION) JALANDHAR.

1. Arya Pratinidhi Sabha Punjab (Regd) Chowk Kishanpura. Jalandhar through its General Secretary Sh Ashwani Kumar Sharma. Advocate Jalandhar
2. Arya Vidya Parishad Punjab (Regd) Gurudutt Bhawan Chowk Kishanpura, Jalandhar through its General Secretary Sh Ashwani Kumar Sharma Advocate, Jalandar
3. Sh Ashwani Kumar Sharma, Advocate Jalandhar General Secretary Arya Pratinidhi Sabha Punjab (Regd) and Arya Vidya Parishad Punjab (Regd) Gurudutt Bhawan Chowk Kishanpura Jalandhar

Plaintiff/Applicants

VERSUS

1. Sh Harbans Lal Sharma R/o No 406 L Model Town Jalandhar
2. Sh K K Pasricha, Adarsh Nagar, Near MGN School Jalandhar
3. Sh Surinder Murgai R/o Basti Guzan Jalandhar
4. Sh Swatantar Kumar R/o Shanti Kuteer Municipal Colony Pathankot
5. Sh O P Tandon R/o Pindi Street Daresi Ludhiana
6. Sarvedeshik Arya Pratidhi Sabha (Regd) Maharishi Dayanand Bhawan Ram Leela Maidan, 3/5 Asaf Ali Road through its President Sh Som Nath Marwaha, New Delhi
7. Sarvedeshik Arya Pratinidhi Sabha (Regd) thorugh its alleged President Swami Oma Nand C/o Gurukul Jhazar Rohtak, Haryana
8. Sh Som Nath Marwaha President, Sarvedeshik Arya Pratinidhi Sabha (Regd) 3/5 Asaf Ali Road Maharishi Dayanand Bhwan Ram Leela Maidan New Delhi
9. Swami Oma Nand, Dyanand Math Gurukal Jhazar Rohtak Haryana

Defendants/Respondent

(SUIT FOR DECLARATION AND FOR PERMANENT INJUCTION)

Application u/o 39 rule 1&2 read with section 151 C P C restraining the respondents from implementing the orders No 4/9 dated 26 9 2000 and order No 5/9 dated 2 10 2000 and staying the operation of the orders and restraining the defdts from interfereing into the affairs of the plaintiffs and as well as into the managements and control of the colleges and schools of the plaintiffs during the pendency of the suit

Sir

The plaintiffs/applicants respectully submits as under

1 That the plaintiffs No 1 and 2 Arya Pratinidhi Sabha Punjab and Arya Vidya Parishad Punjab are registered societies under the societies registration Act The palintiff No 3 Ashwani Kumar Sharma, Advocate is the General Secretary of plaintiffs No 1 and 2 The plaintiffs No 1 and 2 have their own independent constitution according to which the plaintiffs are manging and controlling the colleges and schools and Arya Samaj is the head office of the plaintiffs is at Gurudutt Bhawan Chowk Kishanura, Jalandhar City which is being controlled and managed by the plaintiff No 3 who is in possession of the head office of the Sabha at Jalandhar The plaintiffs are not under the defdts No 7 and 9

2 That the defdts No 7 and 9 have no right title or interests in the plaintiffs They have no right to interfere into the affairs of the plaintiffs The defdts No 1 to 2 were removed from the post of President and Senior Vice President and both of them were expelled for six years from the membership of the plain tiffs No 1 and 2 in the meeting of the Executive Committee of the plaintiff No 1 Sh Sardari Lal Arya is the President of Plaintiff No 1 and 2 (शेष पृष्ठ 5 पर)

"विडम्बना श्री चन्द्रमोहन जी की, "वह एक व्यक्ति"

चौ० ऋषिपाल सिंह एडवोकेट, उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

इक चिंगारी ही काफी हैं आग लगाने को
सूखे पत्तों के यहां ढेर बहुत हैं।

दिनाक 25-12-2000 के पृष्ठ 1 पर दैनिक वीर प्रताप में कालम स 1-2-3 मे "सरदारी लाल सर्व सम्मति से सभा के प्रधान निर्वाचित" शीर्षक से एक समाचार पढ़ने को मिला जिसके प्रथम कालम में लिखा है "दैनिक वीर प्रताप के मुख्य सम्पादक श्री चन्द्रमोहन ने सरदारी लाल आर्य रत्न के नाम का प्रस्ताव पेश किया जब कि सभा मे उपस्थित सभी प्रतिनिधियो ने एक मत से इसे स्वीकार कर लिया।"

इस बात की वैधानिकता मे जाए बिना कि बिना अनुमोदन के यह केसे हो सकता है, श्री चन्द्र मोहन जी कभी भी किसी भी आर्य समाज के विधिवत सदस्य नहीं बने, वह किसी भी आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सगों मे नहीं जाते, न वह भार्गव नगर की आर्य समाज के सभासद् ही बन सकते हैं, क्योकि इन का नाम उस आर्य समाज मे दो वर्ष तक अंकित नहीं रहा, तो उन्होने एक 'बनावटी' 'आर्य रत्न' के नाम का प्रधान पद हेतु प्रस्ताव, और वह भी विशाल पंजाब सभा के लिए कैसे पेश कर दिया। बिस्मिल्ला ही गलत है । हा आग लगाने को इक चिंगारी ही काफी है सूखे पत्तो के ढेर मे, और बस "वह 'एक व्यक्ति' " जिसकी चन्द्र जी ने 'आर्य समाज का सकट' शीर्षक से प्रकाशित अपने पांच सम्पादकीयो मे अपनी सूझबूझ से सही सही भरपूर मिट्टी पलीत की थी उसी के चुगल मे स्वयम् फंस गए, उसे भी कथित रूप से महामन्त्री बना कर। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है? वह 'एक व्यक्ति' 'आर्य समाज की जड़ो मे तेल डालने के व्रत' हेतु येन-केन प्रकारेण अपने मिशन को जारी रखने हेतु कुच्छेक तत्वों को ढूढ ही लेता है।

श्री चन्द्रमोहन के अनुसार 'एक व्यक्ति' **जिसका कोई व्यवसाय नहीं, जो अपना काम काज छोड़ चुका है आर्य समाज ही उसकी रोजी रोटी है'** तो अब क्या यह सब कुछ उस 'एक व्यक्ति' के इशारे पर नहीं किया जा रहा ? क्या चन्द्रमोहन जैसा आदरणीय व्यक्ति उस 'एक व्यक्ति' को सलाह दे कर नही कह सकता कि उस पर घोर आरोप लग रहे है तो वह स्वयम् आर्य समाज से किनारा करके अपनी शारीरिक और आत्मिक उन्नति कर ले, बहुत हो चुकी सामाजिक अवमति तो । अन्यथा चन्द्र मोहन जी पर भी दोष लगेगा **'आर्य समाज की जड़ो में तेल डालने का'** । उन के पूज्य पिता जी ने इस व्यक्ति की घुसपैठ की यदि गलती की थी तो उन्होंने आर्य समाज का और भी काफी कार्य किया था परन्तु चन्द्र मोहन जी ने आर्य समाज का कोई विशेष कार्य तो किया नहीं कम से कम आर्य समाज की बनी हुई साख को नष्ट करने वाले 'एक व्यक्ति' के द्वारा आर्य समाज तथा विभिन्न आर्य शिक्षा सस्थाओ के दबाव डालकर दिलवाए गए । विज्ञापनो मे फंस कर अपयश के भागी तो न बने। स्वार्थ अच्छे-अच्छे मनुष्य को भी गर्त मे गिरा देता है ऐसा विद्वानो का कथन है। जबकि उस 'एक व्यक्ति' का कथन, है कि 'हम तो डूबेंगे सनम तुमको भी ले डूबेंगे' स्पष्ट है कि पूज्य पिता जी को भी डुबाने मे उस 'एक व्यक्ति' ने कोई कसर नहीं उठा रखी । प्रसिद्ध उद्योगपति श्री रवि मित्तल (मित्तल उद्योग) ने गत दिनो मुझे बताया था कि श्री चन्द्रमोहन ने एक बार उनको कहा था कि पं. हरबंस लाल शर्मा और डा पसरीचा तब जागेगे जब वह 'एक व्यक्ति' उनको भी दुष्टतापूर्ण ढग से आर्य समाज से निकाल देगा। श्री चन्द्र जी की दूर दृष्टि कितनी सही निकली । खैर वह तो समय पर सम्भल गए और उन्होंने उस 'एक व्यक्ति' को उठा बाहर फैंका और 'मां आर्य समाज' की हम सब के सहयोग से समय पर रक्षा करके पुण्य कमा रहे हैं परन्तु अब आप के ही शब्दो मे **'एक महत्वाकांक्षी पदाधिकारी (अब भूतपूर्व) (आप) सब को नचा रहा है और बाकी सब (आप) नाच रहे हैं।'** यह कैसी विडम्बना है श्री चन्द्र मोहन जी जैसे आदरणीय व्यक्तित्व की ?

जिन सरदारी लाल जी का नाम चन्द्र मोहन जी ने जायज या नाजायज की बहस में जाये बिना, प्रस्तावित किया उन द्वारा लिखा हुआ निम्नलिखित लेख "भ्रान्ति निवारण या झूठ का पुलन्दा" मेरे द्वारा सम्पादित साप्ताहिक धर्म मर्यादा जालन्धर अंक 158 दिनांक 17-3-96 के पृष्ठ 3 पर प्रकाशित हुआ है । सांगोपांग पढ़े और लगी हुई आग को बुझाने में सहयोग दें । वेद का फरमान है कि "दुष्टों का नाश करो और श्रेष्ठों को उभारो"। आईये आर्य समाज की सेवा करें। इस के गौरव को बढ़ायें । आप भी अपने को पहरेदार कहते हैं। हमने भी डट के पहरेदारी की है । पहरेदार को अहम् नहीं होता । वह तो 'जागते रहो की आवाजें लगाकर स्वयंम् जाग कर सोने वालों की सेवा कर रहा होता है । इसमें कोई विडम्बना कैसी ? आर्य समाज तो मानवता का पहरेदार है । तो आईये पढ़िए और निर्णय लीजिए इन व्यक्तियों का और भ्रान्ति निकालें :-'भ्रान्ति निलारण या झूठ का पुलन्दा'

17-3-96 अंक नं.—158 "धर्म-मर्यादा"

"भ्रान्ति निवारण या झूठ का पलन्दा"

ले. सरदारी लाल आर्य रत्न प्रधान आर्य समाज (वेद मन्दिर) भार्गव नगर, जालन्धर

कथित आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के साप्ताहिक पत्र "आर्य मर्यादा" के 3 मार्च 1996 के अंक में अश्विनी कुमार शर्मा द्वारा "भ्रान्ति समाप्त होनी चाहिए" के शीर्षक में जो सम्पादकीय छपा है उस को पढकर मुझे बेहद ही अफसोस हुआ। तथाकथित महामन्त्री श्री अश्विनी कुमार शर्मा व उप प्रधान माली कर्मचन्द ने जो ब्यान उपरोक्त सम्पादकीय में छापा है, वो बिल्कुल एक सफेद हाथी की तरह एक कोरा झूठ का पुलन्दा, वास्तविकता से कोसों दूर और आर्य जता की आखों मे एक बार फिर धूल झोंकने का असफल प्रयास है ।

वास्तविकता यह है कि आर्य समाज गढा के प्रधान व मन्त्री क्रमश: श्री कर्मचन्द माली व अमर नाथ को इस तथाकथित महामन्त्री अश्विनी कुमार शर्मा ने दबाव, डर और पदों के लालच देकर और उनसे लिखित माफी लेकर झूठे व आधारहीन प्रस्ताव आर्य समाज गढ़ा की तरफ से देकर अपने सम्पादकीय मे अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने की असफल कोशिश की है । इस सम्पादकीय में आर्य समाज गढ़ा के प्रस्ताव मे वहां के प्रधान माली कर्मचन्द जी कह रहे हैं कि मैंने सरदारी लाल आर्य रत्न के मौखिक रूप से कहने पर ही अश्विनी कुमार शर्मा को अपनी आर्य समाज से छ: साल के लिए निष्कासित किया था और फिर कहते हैं कि सरदारी लाल को नवां शहर की भूमि सम्बन्धी जांच करने का कोई अधिकार नहीं था।

मैं कर्मचन्द जी माली से पूछना चाहता हूं कि यदि नवांशहर की भूमि सम्बन्धी जांच करने का मुझे कोई अधिकार नहीं था तो मेरे साथ उस समय आप ऐसे ही 12 मीटर की पगड़ी बांध कर जांच करने नवांशहर गए थे। आपको इस बात की अच्छी तरह से जानकारी है । नहीं है तो सुन लो कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की दिनांक 8-5-94 की बैठक के प्रस्ताव संख्या-7 के अधीन नवांशहर की भूमि बेचे जाने के सम्बन्ध मे जांच-पड़ताल करने के लिए मुझे और सरदारी लाल को नियुक्त किया गया था और उसी प्रस्ताव में जांच कर अपनी रिपोर्ट अगली बैठक में पेश करने को भी लिखा गया था। मैंने और सरदारी लाल ने नवांशहर की भूमि के सम्बन्ध में सारी जांच-पड़ताल करके **अपनी रिपोर्ट जिसका पूरा रिकार्ड हमारे पास मौजूद है ।** बाकायदा लिखित रूप से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अगली दिनांक 17-7-94 की बैठक जिसकी प्रधानता सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी आनन्दबोध जी ने की थी, में पं. हरबंस लाल शर्मा प्रधान (शेष पृष्ठ 4 पर)

सम्पादकीय.....

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की वास्तविक स्थिति

पिछले लगभग 10 वर्षों में आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब में श्री अश्विनी कुमार शर्मा अधिक सक्रिय हुए है। 31 दिसम्बर 1993 को श्री वीरेन्द्र जी की मृत्यु हो गई। इससे पूर्व अश्विनी कुमार शर्मा को पजाब में कोई नहीं जानना था। श्री वीरेन्द्र जी से यह भूल हुई कि उन्होने गैर आर्य समाजी महत्वाकांक्षी अत्यन्त स्वार्थी लालची आर्य समाज के धन पर गिद्ध दृष्टि रखने वाले व्यक्ति अश्विनी कुमार शर्मा को नहीं पहचाना और 1992 के सभा के साधारण अधिवेशन के बाद इन्हें सभा का मन्त्री मनोनीत करके आर्य प्रतिनिधि के लिए सकट पैदा कर दिया। श्री वीरेन्द्र जी की भूल के कारण यह आगे आया और फिर यही उनके लिए कई प्रकार की परेशानिया पैदा करने लगा। जब श्री वीरेन्द्र को यह पता चला कि श्री अश्विनी कुमार शर्मा ने सभा की जमीन बेचने के लिए अन्तरग सभा मे जाली प्रस्ताव डाल दिए है और धोखे से उस अन्तरग सभा की कार्यवाही पर उनके भी हस्ताक्षर करवा लिए हैं और उन प्रस्तावो के आधार पर हरिद्वार मे भूमि बिक गई है जिसका पैसा अभी तक सभा कार्यालय मे जमा नहीं हुआ तो वह यह सदमा बर्दाश्त नहीं कर सके। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उससे पहले उन्होने अन्तरग सभा का रजिस्टर मगवा कर सारी कार्यवाहिया पढ़ी थी और इसका सदमा उनको ले बैठा। वह सदा के लिए हमसे जुदा हो गए। क्योकि अन्तरग सभा की कार्यवाहिया बदली हुई थीं। उनकी मृत्यु के बाद श्री वीरेन्द्र जी के घर पर सभा का जितना भी रिकार्ड पडा था अश्विनी कुमार शर्मा उसे उठाकर अपने घर 1 कूल रोड पर यह कह कर ले गया कि सभा कार्यालय दूर है मेरा घर समीप है इसलिए यह शीघ्र अति शीघ्र श्री वीरेन्द्र जा के घर से रिकार्ड उठा लेना चाहिए। कहीं बाद मे न मिले। उस रिकार्ड मे सभा की भूमियों की रजिस्ट्रीया आदि थीं और भी बहुत मूल्यवान रिकार्ड था। इसने सारा मूल्यवान रिकार्ड अपने पास रख लिया और जो बेकार की फाईले थी वह सभा कार्यालय मे भेज दीं। 1994 में श्री वीरेन्द्र जी की मृत्यु के बाद सभा मे विवाद हुआ इसने सारी सभा पर कब्जा करना चाहा प्रबुद्ध लोगो ने उस समय इससे सभा को बचाना चाहा इसके विरुद्ध आवाज उठी पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी भी आगे आए उन्होने इसे पास बैठा कर समझाया कि तू सभा छोड दे। इसने सभा छोडने से इन्कार किया तो स्वामी सर्वानन्द जी ने कहा तू मर कर भी तो सभा छोडेगा मेरी बात मान ले सभा छोड दे परन्तु इसने साफ इन्कार कर दिया इस पर सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन प्रधान स्वामी आनन्दबोध जी ने सभा की तदर्थ समिति बना दी और यह स्वामी आनन्द बोध जी को बहकाने मे सफल हो गया। यह सूचनाए हम धर्म मर्यादा मे भी देते रहे।

इसके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान आदरणीय पण्डित हरबस लाल जी शर्मा बने और यह जोड तोड करके फिर मन्त्री बन गया अब इसने अपनी वकालत छोडे दी थी और सभा की सम्पत्तियो को मुख्तारेआमो के माध्यम से बेचना आरम्भ कर दिया और सभा के स्कूल कालेजो पर भी इसने नियन्त्रण कर लिया। इसने पण्डित हरबस लाल जी की शराफत का पूरा पूरा लाभ उठाया। इसने पण्डित जी को भी धोखे मे रखा और उन्हे कुछ नहीं बताया कि यह क्या कर रहा है। सभा के स्कूल कालेजो की मनमाने ढग स कमेटिया बनाई। अपनी विचारधारा के लोगो को आगे लाया उनसे मिली भगत करके अध्यापको प्राध्यापको प्रिसिपलो के रिक्त स्थान भरते समय उनस धन लेना आदि घोटाले के कार्य इसने करने आरम्भ कर दिए। इसने बहुत बड़ी अपनी व्यक्तिगत सपत्ति तक बना ली है जब कि इसकी कोई वकालत नहीं चल रही। इसके घर मे शाही ठाठ बाठ है इसकी तीन लडकिया हाई एजुकेशन बोर्डिंगो मे रह कर प्राप्त कर रही है। लोग कई तरह की बाते करते हैं और कहते हैं कि एक चौथी लडकी भी थी जो दिमागी तोर पर कमजोर थी उसे लेकर यह दिल्ली गया था परन्तु बाद मे पता नहीं उसका क्या बना वह जिन्दा भी है या नहीं।

सन् 1999 मे प हरबस लाल जी के बिमार रहने का मुख्य कारण अश्विनी कुमार था। क्योकि पण्डित जी को हरिद्वार से बार बार सभा की भूमि बेचने के समाचार मिल रहे थे। पजाब मे स्कूल कालेजो की नियुक्तियो मे किए गए घाटाले के बारे मे लोग बताते थे इससे जब पण्डित जी पूछते थे ता यह साफ मुकर जाता था और कहता था यह लोग ऐसे ही मुझ बदनाम कर रह हैं

अश्विनी कुमार ने सभा प्रधान श्री हरबस लाल जी के अस्वस्थ होने का लाभ उठाते हुए उनको धोखे मे रख कर 10 स्कूल कालेजो की कमेटियो पर हस्ताक्षर करवा लिए जब बाद मे पण्डित जी को असलियत का पता चला तो उन्होने अपने वह आदेश वापिस ले लिए और कमेटिया निरस्त कर दी। अश्विनी कुमार द्वारा धोखाधडी करने के कारण तथा सेहत ठीक न होने के कारण प हरबस लाल जी ने अपने सब अधिकार श्री डा के के पसराचा को दिए ताकि वह सभा को बचा सके। श्री डा के के पसरीचा न सभा को बचाने की कार्यवाही आरम्भ कर दी श्री डा के के पसरीचा ने 1990 से लेकर 1999 तक सभा की बेची गई भूमियो की सभा कार्यालय स जानकारी लेनी चाही परन्तु अश्विनी कुमार शर्मा ने अनाधिकार चेष्टा करत हुए श्री कर्मचन्द माली को सभा कार्यालय का एडमिस्टेटर नियुक्त कर दिया और जाच की कार्यवाही भू पू लेखाकार श्री वीरेन्द्र से मिलकर रुकवा दी।

श्री कर्मचन्द माली ने अन्य साथियो के साथ हरिद्वार जाकर सभा की बेची गई भूमियो का कुछ रिकार्ड प्राप्त किया था। नवा शहर म अश्विनी कुमार ने सभा की कुछ भूमि बेची थी जिसकी पडताल के लिए सभा न श्री सरदारी लाल जी को नियुक्त किया था। श्री सरदारी लाल जी ने अपनी रिपोर्ट सभा मे दे दी थी कि 15 हजार रुपए मे सभा की भूमि की रजिस्ट्री हुई है। इस रिपोर्ट के काफी देर बाद यह राशि एक ड्रामा करके अश्विनी कुमार शर्मा ने सभा मे जमा करा दी। इस पर आर्य समाज गढा कैम्प जालन्धर ने अश्विनी कुमार शर्मा को अपनी आर्य समाज की प्राथमिक सदस्यता से छ वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया। श्री सरदारी लाल जी आर्य और श्री कर्मचन्द जी माली यह दोनो ही अश्विनी कुमार शर्मा की सभा विरोधी गतिविधियो से दुखी थे और पिछले कई वर्ष से अश्विनी कुमार का विरोध करते आ रहे थे परन्तु अब पता नहीं क्या कारण है कि श्री कर्मचन्द माली और श्री सरदारी लाल आर्य अश्विनी कुमार के गुण गा रहे हैं और उसकी तथाकथित सभा मे तथाकथित अधिकारी बन कर बैठ गए हैं। हमे पता चला है कि श्री कर्मचन्द माली और श्री सरदारी लाल आर्य तथा उनके साथियो को अश्विनी कुमार द्वारा कई प्रकार के लालच दिए गए हैं और यह सब अश्विनी कुमार के झासे मे आए हुए हैं।

हमे पता चला है कि श्री अश्विनी कुमार शर्मा अपने रिटायर्ड भाई श्री राम कुमार शर्मा को आर्य सी सै स्कूल बस्ती गुजा जालन्धर से 15 से 18 हजार रुपए मासिक दो वर्ष तक दिलवाते रहे हैं। अपने एक भतीजे को इसी स्कूल से पाच हजार रुपया मासिक वेतन दिलवा रहे हैं इतने ही रुपए श्री सरदारी लाल आर्य की लडकी को दिलवा रहे हैं। श्री कर्मचन्द माली के भी व्यक्तियो को स्कूल से वेतन दिया जा रहा है।

साईंदास स्कूल के रिटायर्ड प्रिसिपल श्री बलदेव राज तलवाड को मनमाने ढग से स्कूल का मैनेजर बना कर उसे मासिक धन देते रहे हे। जब डा के के पसरीचा ने सभा कार्यालय मे छापा मारा तो सभा के भू पू लेखाकार श्री वीरेन्द्र शर्मा से 31 खाली चैक तथा बहुत से खाली वाऊचर प्राप्त किए जिन पर भू पू सभा कोषाध्यक्ष श्री ओ पी पाशी ने हस्ताक्षर किए हुए थे। इन चैको मे पाच चैक पजाब नैशनल बैक हरिद्वार के भी थे जिसमे सभा की काफी राशि जमा है। यदि श्री डा के के पसरीचा यह चेक न पकडते तो अश्विनी कुमार शर्मा इन चेको पर अपने हस्ताक्षर करके जितना चाहता धन बैको से निकाल लेता। क्योकि सभा के बैक खाते ५ अधिकारियो के हस्ताक्षरो से अपरेट होते हे। श्री डा के के पसरीचा न सभा कार्यालय मे छापा मार कर सभा का धन बचा लिया नहीं ता अश्विनी कुमार सभा का सारा धन अपने हस्ताक्षर करके निकाल लेता ओर किसी का पता न चलता।

श्री डा के के पसरीचा ने तथा सभा प्रधान श्री हरबस लाल जी शर्मा ने 21 8 2000 को ऐसी अनेक अनियमितताओ के साथ अश्विनी कुमार शर्मा को आर्य प्रतिनिधि सभा स निलम्बित कर दिया था ओर उसके बाद चारजशीट भी दे दी थी परन्तु अश्विनी कुमार शर्मा ने आज तक इसका कोई उत्तर नहीं दिया। इस प्रकार 21 8 2000 के बाद से आज तक अश्विनी कुमार का आर्य प्रतिनिधि से कोई सम्बन्ध नहीं है। श्री सरदारी लाल को भी सभा विरोधी कार्यवाहियो के कारण सभा से निकाला हुआ है। यह दोनो इस समय सभा के कोई अधिकारी नहीं है।

—**ऋषिपाल सिह एडवोकेट** *सभा उपप्रधान*

(पृष्ठ 2 का शेष)

प्रतिनिधि सभा पजाब के यह कहने पर कि सरदारी लाल जी आप अपनी नवाशहर का रिर्पोट पेश करें के बाद पेश कर दी थी। **जिसकी प्रतिलिपिया स्वामी आनन्दबोध जी स्वामी सर्वानन्द जी व हरबंस लाल शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को भी पेश कर दी थी। उसी रिपोर्ट के आधार पर आर्य समाज गढ़ा ने अश्विनी कुमार शर्मा को 6 वर्ष के लिए अपनी स्थाई सदस्यता से निष्कासित कर दिया था और निष्कासन भी 31 7 94 की साधारण सभा के प्रस्ताव सख्या 15 के द्वारा किया गया।** मैं कर्मचन्द माली व उसके द्वारा रखे गए वैतनिक मन्त्री अमर नाथ जी से पूछना चाहता हू कि आपके दिमाग मे इतनी सी अक्ल भी नहीं है कि हम जो कार्य कर रहे है वह ठीक है या गलत ? और फिर इसकी याद भी आपको 5 11 95 यानि लगभग 15 16 महीनो के बाद ही आई । इतनी देर आप कहा थे? क्या भाग पीकर सोये हुए थे ? वास्तविकता यह है कि इस 15 16 मास के समय में भी कर्मचन्द जी माली व अश्विनी कुमार शर्मा तथाकथित महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की प्यार की पींघे पड रही थीं फिर चुनाव आया। अश्विनी कुमार शर्मा ने माली जी को उप प्रधानगी का दाना डाला । बस फिर क्या था

अन्धे को क्या चाहिए दो आखे

और हो गया भरत मिलाप।

अश्विनी कुमार ने कहा कि

बापू मैनू सिर्फ तू चाहिदा मै किसे होर नू की जानदा

और बापू जी फूलकर कुछ ज्यादा ही चौडे हो गए ।

मैं कर्मचन्द माली जी से पूछना चाहता हू कि वह यह बताने का कष्ट करे कि स्वामी आनन्दबोध व श्री सोमनाथ मरवाह को जो पत्र अश्विनी कुमार शर्मा के विरुद्ध लिखे थे वो आपने लिखे थे या कि किसी और ने ? अश्विनी कुमार शर्मा को 6 वर्ष के लिए आर्य समाज सदस्यता से आर्य समाज गढा से निकाला था या कि किसी और ने ? आपक हाथ किसन पकड कर यह फैसले करवाये थे ?

अब जरा इस तथाकथित महामन्त्री अश्विनी कुमार शर्मा की यह बात कि कुछ स्वार्थी और महत्वाकाक्षी व्यक्तियो ने जो कि सभा की जमीन जायदाद पर कब्जा करना चाहते थे मुझे बदनाम करने का प्रयास किया पर मैं यह पूछना चाहता हू कि अश्विनी कुमार शर्मा तथा काथत महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब **जोकि खुद नवाशहर की भूमि बेचे जाने के सम्बन्ध मे दोषी पाए गए थ** वो दूसरो पर इस पकार का दोष किस मूह से लगा रहे हैं कि वह आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का पैसा व भूमि षड्यन्त्र करके हडप करना चाहते हैं ? **रिकार्ड गवाह है कि नवाशहर भूमि का रुपया 15 000/ चार साल के बाद हमारी पेश की गई रिपोर्ट के बाद आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के खाते मे जमा हुआ है। क्या यह महामन्त्री जी बता सकते हैं कि यह रुपया इतना समय कहा रहा ? और क्यो रहा ? महामन्त्री जी आपको रह रह कर अपनी झूठी सफाईया पेश करने व बकरे की तरह मै मै करने व अपने मूह मिया मिट्ठू बनने की आदत है। जिसका प्रमाण स्वय आर्य प्रतिनिधि सभा का पत्र आर्य मर्यादा है जिसमे आप अपनी ही महिमा का गुणगान करते थकते नहीं।**

अन्त म मै यह कहना चाहता हू कि अगर इस प्रकार की गलत अफवाह पैदा करनी है तो हम इसके लिए हम तैयार हैं और हम भी आपकी तरह अनार्य भाषा मे इसका उत्तर देना जानते हैं । **अश्विनी कुमार शर्मा पहले भी कई गलत कारवाईया करता रहा है और करता रहेगा जोकि आर्य जनता बडी अच्छी तरह मे जानती है।** मगर एक बात के साथ मैं अपनी बात समाप्त करना चाहता हू कि अगर इसके बाद भी तथाकथित महामन्त्री व उसके उप प्रधान अपनी शरारतो से बाज न आये तो हमारी आज की इस बात को ट्रेलर मात्र समझा जाए **आपका असली चेहरा आपको दिखा दिया जाएगा।**

—सरदारी लाल आर्य रत्न

ऋषि बोधोत्सव पर विशेष—

भक्तों का जागरण और भगवान का शयन ?

□ ले. महात्मा प्रेम प्रकाश वानप्रस्थ आर्य कुटिया, धूरी-148024

बात सन् 1839 शिवरात्रि टकारा के शिव मन्दिर की है कि भक्तो ने कीर्तन एव हर हर महादेव के जयघोषों से 'भगवान् शिव का जगाने का प्रयास किया था और फिर चूहे ने उन्हें जगाने का प्रयास किया परन्तु वह जागे ही नहीं वहीं पर शकर का पुजारी मूल+शकर (भावी महर्षि दयानन्द) शिव पूजा करने के लिए उतावले मन से बैठा शिव प्रतिमा की ओर निहार रहा था बार बार आखो पर शीतल जल के छींटे मार मार कर जाग रहा था परन्तु भगवान शिव के न जगने के कारण उसने सकल्प किया कि मैं जागूगा और स्वय ही शिव बनूगा । एक कहावत है कि जो जागत है सो पावत है इसके अनुसार ही शिवरात्रि को शिव मन्दिर में दो जाग रहे थे दोनो ही मालामाल हो गए । चूहे ने माल खाया और मूल शकर ने शिव का मार्ग पाया ।

लगभग 30 वर्ष हुए हम परिवार सहित हरिद्वार ऋषिकेश लक्ष्मण भूला होते हुए गीता भवन को देखने जा रह थे स्वर्ग आश्रम से पहले एक शनि का मन्दिर बना ही था उसकी बडी प्रशसा थी हमने सोचा चलो इसे भी देख चले । दोपहर लगभग एक बजा था मन्दिर बन्द था हमने मन्दिर के पीछे से पुजारा जी को आवाज दी और मन्दिर देखने की इच्छा व्यक्त की पुजारी ने कहा इस समय भगवान सो रहे हैं। मोहम्मद गौरी ने भगवान सोमनाथ को जगाया मोहम्मद बिन कासम ने देवी को जगाया और बाबर ने भगवान राम को जगाया आदि आदि परन्तु व जागे ही नहीं । अत हम लूट लिए गए । भगवान कृष्ण जी ने (गीता 4 7) में वचन दिया कि जब जब अधर्म बढता है मैं जन्म लेता हू परन्तु इस आतकवाद मे जब निर्दोषों की दिन रात हत्याए हो रही थीं देवियां और बच्चे भी गोली से उडाये जा रहे थे पापी सब सीमाओं को पार कर चुके थे, परन्तु भगवान कृष्ण आए ही नहीं ।

3 मन में आया कि सामवेद के 1826 मन्त्र में भगवान तो उपदेश देते हैं कि जो जागता है उसकी कामनायें पूर्ण होती हैं जो जागता है वह जीवन का आनन्द लेता है और जो जागता है भगवान उसके मित्र होते हैं । अर्थात् जागने वाला जीवन के हर क्षेत्र मे सफल होता है फिर जगाने वाले भगवान स्वय कैसे सो सकते हैं ? महर्षि वाल्मीकि कहते हैं— न वै स्वपन्ति देव भगवान कभी नहीं सोते । भगवान ने तो क्या सोना था ? उसकी धरती कभी नहीं सोती उसका सूर्य और चान्द कभी नहीं सोते उसका जल और वायु कभी नहीं सोते । यहीं तक नहीं हमारी आत्मा भी कभी नहीं सोता अत हमारे प्राण भी कभी नहीं सोते हमारी नब्ज भी नहीं सोती । अत आओ । हम बुद्धि से जागे धियो यो न प्रचोदयात् के अनुसार भगवान से प्रेरणाये ले और अवस्था के अनुसार व्यवस्था करके सफलतायें प्राप्त करे ।

4 मैं एक दिन रात्रि में विचार कर रहा था कि मूल शकर जी ने 14 वर्ष की आयु मे ही शिवरात्रि का व्रत रखा जिस दिन अन्तिम बार घर से बार निकले तब भी उन्हे गुरु पढने में 14 वर्ष लगे थे। जब वे गुरु दक्षिणा में श्रद्धा दण्डी स्वामी गुरु विरजानन्द जी सरस्वती के आदेशानुसार अपना जीवन राष्ट्र अर्पण कर के निकले तो सबसे पहले उन्होंने जो ग्रन्थ लिखा उसके भी 14 समुल्लास लिखे । जब वेदाग प्रकाश लिखा उसके भी 14 अध्याय लिखे। उन्हें भ्रमण करते प्रचार करते और शास्त्रार्थ करते करते जीवन मे 14 बार ही विषपान करना पडा और एक विद्वान् ने तो बहुत पहले लिखा था कि जिस दिन महर्षि जी ने प्राण त्याग किए उस समय 14 थी और अमावस्या तो कुछ समय बाद प्रारम्भ होनी थी जो दीपावली की रात थी। समझ मे नहीं आ रहा था कि 14 क ऋषि जीवन से क्या सम्बन्ध ? सोचते सोचते मन में ... सृष्टि के आदि मे देवत जब समुद्र मन्थन किय भी 14 रत्न निकले थे

(शेष पृ

(पृष्ठ 1 का शेष)

3 That the defdt No 9 allegedly issued letter No 4/9 dated 6 9 2000 inconspiracy with the defdts No 1 to 5 in order to grab the properties of the plaintiffs No 1 and 2 The defdt No 9 issued letter No 6/9 dated 29 9 2000 through which he cancelled his previus order No 4/9 dated 26 9 2000 The letters of defdt No 9 Swami Oma Nand are illegal wrong, without juris diction and void and not binding upon the plaintiff The defdts No 8 who is the President of defdt No 6 as written a letter No SN/2000 dated 30 9 2000 and have cancelled the letters of Oma Nand and he stated that Oma Nand is not the President of Sarvdeshik Sabha

4 That the detailed grounds as mentioned in the plaint may kindly be read as a part of this application The palintiffs have filed the present suit in this court but no date has been fixed

5 That the plaintiffs have got a strong primafacie case as the plaintiffs are contorlling and managing the head office and all the educational institutions

6 That the defdts No 1 to 5 with the help of defdt No 9 are trying to forceably dispossess the plaintiffs No 1 and 2 and to interfere into the affairs of the plaintiffs by implementing order No 4/9 dated 26 9 2000 allegedly issued by defdt No 9 Swami Oma Nand and they are thrMettening to implement the said order and the thretts of the defdts have caused a cloud over the right of the plaintiffs In case the operation of the order No 4/9 dated 26 9 2000 is not stayed by granting interim injuction the plaintiffs would suffer an irrepairable loss and this will create multiplisty of litigation and many complications would arrise The plaintiffs are managing the head office and the balance of convience is also infavour of the plaintiffs

It is therefore prayed that an adinterim injuction may kindly be issued and the operation of the order No 4/9 dated 26 9 2000 and the order No 9 dated 2 10 2000 may kindly be stayed and the defdts No 1 to 5 and to 9 be restrained from interfereing into the management and affairs of the plaintiffs and there educational institutionals during the pendences of the suit infavour of the plaintiffs applicants and against the respondents

Note An affidavit duly attested is a attached

Submitted by — Plaintiffs/Applicants
Through Counsel For the Applicants

Dated 9 10 2000

यहा अश्विनी कुमार शर्मा ने स्पष्ट लिखा है कि वह श्री सोम नाथ मरवाहा वाली तथाकथित सार्वदेशिक सभा को मानता है। इन दो पृष्ठो के मुकद्मे का फैसला माननीय जज श्री डी आर अरोडा ने 14 पृष्ठो मे दिया है और इस फैसल मे जज महोदय ने स्वामी ओमानन्द जी को सार्वदेशिक सभा का प्रधान माना और उनके द्वारा बनाई गई तदर्थ समिति का वैध मान कर उसे सभा का आगामी चुनाव कराने का अधिकार दिया इस फैसले के बाद अश्विनी कुमार ने श्री वेदव्रत जी मन्त्री सार्वदेशिक सभा से फिर सम्पर्क किया और उन्हे मिल कर स्वामी जी को धोखे मे रख कर उनसे एक पत्र पर हस्ताक्षर करवा लिए जिसमे स्वामी सुमेधानन्द जी को पंजाब सभा का एडमिस्टेटर घोषित कर दिया परन्तु स्वामी सुमेधानन्द जी ने इससे अपनी असमर्थता पकट करते हुए त्याग पत्र दे दिया इस पर स्वामी ओमानन्द जी ने 17 12 2000 के सभा के साधारण अधिवेशन के लिए और चुनाव कराने की अनुमति देते हुए सार्वदेशिक सभा की ओर से पर्यवेक्षक के रूप म प्रो सत्यवीर जी शास्त्री को नियुक्त कर दिया और उन्हें जालन्धर भेज दिया। स्वामी इन्द्रवेश जी की अध्यक्षता मे और प्रो सत्यवीर जी शास्त्री के पर्यवेक्षण मे सभा का चुनाव विधिवत रूप से सम्पन्न हुआ इस चुनाव में पंजाब की 80 से ऊपर आर्य समाजो के 300 से ऊपर प्रतिनिधियों ने भाग लिया और इस अवसर पर पुन श्री अश्विनी कुमार शर्मा और सरदारी लाल शर्मा को साधारण सभा ने आर्य समाज की प्राथमिक सदस्यता से तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से छ वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया। इस अधिवेशन मे आगामी तीन वर्ष के लिए श्री प हरबंस लाल जी शर्मा सर्व सम्मति से प्रधान निर्वाचित हुए तथा सभा के अन्य पदाधिकारियो की मौके पर ही घोषणा कर दी जिसमें मुख्य रूप से डा के के पसरीचा वरिष्ट उप प्रधान व कार्यकर्त्ता प्रधान चौ ऋषिपाल सिह एडवोकेट उप प्रधान श्री सुरेन्द्र नाथ मुरगई महामन्त्री श्री देवेन्द्र नाथ जी शर्मा रजिस्ट्रार व श्री प्रेम भारद्वाज को कोषाध्यक्ष मनोनीत किया गया । अन्य पदाधिकारी व अन्तरग सभा के सदस्य भी मनोनित किए गए।

इस पर अश्विनी कुमार शर्मा ने फिर एक चाल चली और दयानन्द मठ दीनानगर के अध्यक्ष पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी की बिमारी का लाभ उठाते हुए स्वामी सदानन्द जी को लोभ लालच देकर उनके नाम से झूठे आदेश करने आरम्भ कर दिए और अपनी सभा का कोई तथा कथित चुनाव 24 12 2000 को आर्य समाज गढा जालन्धर मे हुआ बताने लगा है । इस प्रकार ये लोगो को भ्रमित कर रहा है। ऐसे तो कोई भी अपने घर में सभा का चुनाव करके कह सकता है कि वह अधिकारी बन गया है यह लोगो की आखो में धूल झोक रहा है ।

जो अश्विनी कुमार श्री सोमनाथ जी मरवाहा को सार्वदेशिक सभा का प्रधान मानता है उसका साथ सार्वदेशिक सभा के जो मन्त्री श्री वेदव्रत शर्मा आदि अधिकारी दे रहे हैं उन्हें अपने अन्दर झाक कर देखना चाहिए कि वह क्या कर रहे हैं । सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा मे व साधारण सभा मे ऐसे लोगों के बारे मे भी विचार करना चाहिए जो सभा प्रधान पूज्य स्वामी ओमानन्द जी के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे हैं और श्री सोमनाथ जी मरवाहा की सभा को सहयोग दे रहे हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का 17 12 2000 को सभा कार्यालय में चुनाव हुआ है । पंजाब की लगभग सभी आर्य समाजो के प्रतिनिधि इसमे सम्मलित हुए हैं यह चुनाव सार्वदेशिक सभा की देख रेख म हुआ है और कोर्ट के आदेशानुसार हुआ है इसलिए यह वैध है अश्विनी कुमार शर्मा व श्री सरदारी लाल का अब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

अश्विनी कुमार शर्मा के विरुद्ध जाली और झूठा 6/9 पत्र बना कर षडयन्त्र करने के आरोप मे पुलिस ने केस दर्ज कर लिया है और अश्विनी कुमार शर्मा ने पुलिस द्वारा गिरफ्तारी स बचने के लिए सैशन जज जालन्धर से अन्तरिम जमानत करवाने के लिए अर्जी दी थी । माननीय जिला तथा सत्र जज श्री एम एम अग्रवाल ने वह नामन्जूर कर दी । इसके तुरन्त बाद अश्विनी कुमार भूमिगत हो गया और कुछ दिनो के बाद हाई कोर्ट द्वारा अन्तरिम जमानत करवा कर आया है और अब वह फिर लोगो को झूठी तसल्लिया देकर तथ्यों को तोड मरोड कर लोगो मे भ्रान्तिया फैला रहा है जिसमे कि यह बहुत माहिर है और इसी प्रकार यह सार्वदेशिक सभा के अधिकारियो को भी अन्धेर म रख रहा है और सही जानकारी नहीं दे रहा इस बात के लिखित सबुत आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब क कार्यालय म किसी के भी देखने के लिए और अपनी तसल्ली करने के लिए उपलब्ध हैं

पंजाब की लगभग सभी आर्य समाजे सभा कार्यालय क साथ हे तथा सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा तथा अन्य सभा अधिकारियो को आर्य समाजो क सभी अधिकारी सहयोग द रहे है सभा स सम्बिन्धत सभी शिक्षण सस्थाए इन्हीं सभा अधिकारियो का मानती हे और सहयोग दे रही हैं सभा के बैंको ने अपने 2 कानूनी सलाहकारो की निजी सलाह लेकर कि कोन वैधानिक अधिकारी है यह खाते खोल दिए हैं । सभा का सारा उपदेशक मण्डल व सभा कार्यालय इन्ही अधिकारियो के आदेश से कार्य कर रहा है । सभा के सभी बैंको को यही अधिकारी आप्रेट कर रहे हैं । किसी भी बैक ने अश्विनी कुमार शर्मा व सरदारी लाल को सभा का अधिकारी नहीं माना । क्योकि यह दोनो अब सभा के कोई अधिकारी नहीं रहे । 90 प्रतिशत आर्य समाजे इस समय सभा को अपना सहयोग दे रहा हैं और सभा का कार्य सुचारू रूप स चल रहा है । अश्विनी कुमार सभा के नाम पर झूठा परिपत्र अपने घर पर बैठे निकाल रहा है और उसमे सभा अधिकारियो के विरुद्ध अनर्गल बाते लिख रहा है । इसके विरुद्ध यह परिपत्र निकालने पर कार्यवाही की जा रही है ताकि यह आगे से सभा विरोधी व सार्वदेशिक सभा विरोधी बाते न लिखे ।

देवेन्द्र नाथ शर्मा, रजिस्टार

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) का चुनाव 17-12-2000 रविवार को प्रातः 11 बजे सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन में जो हुआ है, यह वैध एवं संवैधानिक है

❒ मुलखराज आर्य, सभा मन्त्री

अश्विनी कुमार शर्मा तथा सरदारी लाल पंजाब की आर्य जनता मे गलत प्रचार कर रहे हैं । उनकी बातों पर आर्य जनता ध्यान ने देवे। इन लोगो ने एक परिपत्र 3 फरवरी 2001 आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम पर छापा है । यह परिपत्र आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम पर किसी दूसरे व्यक्ति को छापने का अधिकार नहीं है। यह अधिकार केवल प हरबस लाल जी शर्मा आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान तथा महामन्त्री श्री सुरेन्द्र नाथ जी मुरगई तथा जो उनके चुने हुए अधिकारी है वही आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम का प्रयोग कर सकते हैं । जो दूसरा कोई व्यक्ति इस नाम का प्रयोग करेगा उस पर केस कर दिया जाएगा। क्योंकि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का 17-12-2000 का चुनाव रजिस्ट्रार आफिस चण्डीगढ़ मे रजिस्टर्ड हो चुका है । आप यह कह सकते हैं कि 7 जून 1992 से लेकर 31-12-99 तक धर्म मर्यादा समाचार पत्र इस नाम पर चलता रहा, उस समय भी तो आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम पर ही धर्म मर्यादा चल रहा था । यहां मैं आप को बता देना चाहता हूं कि जब 7 जून 1992 सभा को चुनाव हुआ था तो हमने अपना चुनाव जो किया था जिसके प्रधान चौ. ऋषिपाल सिह जी चुने गए थे वह लिस्ट हमने चण्डीगढ़ रजिस्ट्रार को भेजी थी और उन्होंने हमे स्वीकृति दे दी थी उस समय श्री वीरेन्द्र जी ने रजिस्ट्रेशन के लिए नाम नहीं भेजे थे। इसलिए हमारे पर कोई भी केस नहीं हो सका । मुझे सब पता था इसलिए हमने 17-12-2000 का चुनाव पहले रजिस्टर्ड करवा लिया है। इसलिए अश्विनी कुमार शर्मा पर केस हो सकता है, शीघ्र ही यह केस कर दिया जाएगा। मेरे सरदारी लाल के साथ अच्छे सम्बन्ध रहे हैं इसलिए मैं नहीं चाहता था कि मैं कुछ लिखू परन्तु सरदारी लाल ने मेरे नाम को भी घसीटना आरम्भ कर दिया है। इसलिए उत्तर देना ही पड़ा । सरदारी लाल ने लिखा है कि मुखलराज आर्य ने श्री प हरबंस लाल शर्मा पर कोर्ट में केस किया हुआ है कि श्री हरबंस लाल शर्मा आर्य समाज का मैम्बर नहीं है। असल मे यह केस अश्विनी कुमार शर्मा पर है। श्री हरबंस लाल जी शर्मा को वैसे ही साथ रखा है। अश्विनी कुमार शर्मा जिस आर्य समाज गढा का वह सदस्य है उसकी गढ़ा आर्य समाज की जनरल सभा ने अश्विनी कुमार शर्मा को 31-7-1994 को 6 वर्ष के लिए आर्य समाज की सदस्यता से निकाल दिया था क्योंकि अश्विनी कुमार ने नवाशहर की पाच मरले भूमि बेचकर केवल पन्द्रह हजार की रजिस्ट्री करवाई गई। पता चला है कि यह भूमि 40 हजार रु. में बेची गई थी परन्तु रजिस्ट्री 15 हजार की हुई थी। 15 हजार रजिस्ट्री वाली राशि भी सभा मे जमा नही करवाई गई। 4 वर्ष के पश्चात् नवांशहर के आर्य समाज के अधिकारियों को पता चला तो उन्होने सभा में लिख कर भेजा उस समय आर्य प्रतिनिधि सभा मे विवाद खड़ा हो गया तो उस समय सरदारी लाल जी सभा में उप प्रधान थे। उस समय अन्तरग सभा ने सरदारी लाल को नवांशहर में जाकर जांच करने के लिए नियुक्त किया तो सरदारी लाल जी ने नवांशहर में जाकर सारी जाच करके अश्विनी कुमार शर्मा के विरुद्ध एक अपनी रिपोर्ट दी और अश्विनी को दोषी ठहराया गया। सरदारी लाल की रिपोर्ट के पश्चात अश्विनी कुमार शर्मा को 31-7-1994 को 6 वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया गया। यह सारा केस इस लिए अश्विनी पर किया गया कि श्री हरबंस लाल जी शर्मा अश्विनी कुमार शर्मा का कहना मानते थे इसलिए इसके साथ शर्मा जी का नाम जोड़ना पड़ा । असल अश्विनी पर ही है । अब अगली पेशी जो है उस में श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा का नाम वापिस हो जाएगा परन्तु अश्विनी कुमार शर्मा ने जब 11-1-2000 को हमारी पेशी थी तो वहां पर इसने420 किया। मैं केस भुगतने के लिए बाहर बैठा हुआ था परन्तु कोई आवाज नहीं दी गई तो 12 बजे हमारे वकील बाहरी साहिब का मुन्शी उधर आ गया। तो मुझे बैठा हुआ देख कर कहा कि तारीख तो पड़ चुकी है उसने बताया कि मैं देखकर बताता हूं कि कौन सी तारीक है । जबकि अगली तारीक की लिस्ट में हमारा नाम नहीं था तो अन्दर से पता किया तो उन्होंने कहा कि 2 बजे के बाद पता करना । जब दो बजे फाईल निकलवाई तो उसमें लिखा गया था कि केस वापिस हो गया है। हम हैरान हो गए क्योंकि अश्विनी कुमार शर्मा बाहरी साहिब के एक वकील को साथ लेकर जज साहिब के पास पेश हो गया और कहा कि हम केस वापिस लेते हैं । जब कि बाहरी साहिब ने और मैंने केस वापिस नहीं लिया तो हम कई दिन भटकते रहे और हमारे वकील बाहरी साहिब ने न्यायाधीश को एक पत्र लिखा कि हमने कोई केस वापिस नहीं लिया। हमने नए सिरे से सब की तामिल करवाई, जिसमें अश्विनी कुमार की तामिल हो चुकी है और श्री हरबंस लाल जी शर्मा की हम ने तामिल नहीं कराई और अब जब पेशी आएगी तो हम उनका नाम वापिस ले लेंगे और जो अश्विनी कुमार शर्मा पर केस है वह भी हमारा पूरा हो गया है परन्तु जज साहिब से अपील की जाएगी कि अश्विनी कुमार शर्मा ने आपके साथ धोखा किया इस पर 420 का केस किया जाए। सरदारी लाल की दी हुई रिपोर्ट भी यहां छापी जा रही है जो उसने 1994 में सभा में दी थी परन्तु अब सरदारी लाल यह लिख रहे हैं कि एक व्यक्ति के पीछे यह लोग पड़े हुए हैं और अश्विनी शर्मा को एक झूठे फौजदारी केस में फंसाया जा रहा है और साजिश करके अश्विनी कुमार शर्मा को नुक्सान पहुंचाने की कोशिश की जा रही है। क्या सरदारी लाल जी यह बता सकते हैं कि जो रिपोर्ट आपने छापी हुई है क्या वह गलत है और आज आप अश्विनी शर्मा के गुण गा रहे हैं । आप यह भी कह रहे हैं कि काले धन के साथ सबको अपनी मुट्ठी मे करना चाहते हैं । आज शर्मा जी के पास काला धन जो आप कह रहे हैं सबसे अधिक धन की सहायता शर्मा जी आप को ही करते रहे हैं क्या उस समय वह धन काला नहीं था, अब हो गया है।

श्री सरदारी लाल जी की 1994 में दी गई रिपोर्ट

विषय : नवांशहर के 5 मरले प्लाट की भूमि बेचने सम्बन्धी रिपोर्ट

अन्तरग सभा की दिनांक 8-5-94 की हुई बैठक में नवांशहर की 5 मरले भूमि के प्लाट को बेचने तथा उसकी राशि सभा के खाते में जमा न होने की चर्चा के बाद मुझे (सरदारी लाल) को इसकी पूरी जांच करने के लिए नियुक्त किया गया था और साथ ही अगली अन्तरंग सभा की बैठक मे जांच कर अपनी रिपोर्ट पेश करने को कहा गया था। सो उस बैठक की कार्यवाही जो कि इस पत्र के साथ सलंग्न है कि तहत में अपनी रिपोर्ट रूप से प्रस्तुत कर रहा हूं।

अन्तरंग सभा के निर्णय के अनुसार मैं नवांशहर में व्यक्तिगत रूप से जाकर वहां इस केस से सम्बन्धित लगभग सभी व्यक्तियों को मिला ... [illegible] विवरण व उनके लिखित ब्यान, इस पत्र के साथ ही ... किये जा रहे हैं।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

(पृष्ठ 4 का शेष)

भारत के विद्वान् "स्वर" कहते हैं, जैसे अ, आ, इ ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ए ऐ, ओ, औ, अं अ: कहा गया है । फिर मन मे आया कि भगवान राम को भी 14 वर्ष का वनवास हुआ था फिर मन में आया कि पाण्डवो को भी 14 वर्ष का वनवास भुगतना पडा और भगवान कृष्ण जी ने विवाह के पश्चात् रुकमणी से सलाह करके बारह वर्ष फिर ब्रह्मचर्य व्रत का तप किया था और विवाह के 14 वर्ष के बाद "प्रद्युम्न" पुत्र रत्न को जन्म दिया था । आर्य समज के मूर्धन्य विद्वान् प चमूपति जी एम ए ने एक पुस्तक लिखी है "चौदहवीं का चाद" मैं समझता हू कि 14 शब्द मे कोई न कोई विशेष रहस्य अवश्य है जिस पर चिन्तन करना हम सबका कर्तव्य है । जब महर्षि दयानन्द "शिव" बनकर निकले तो उन्होंने लम्बी लम्बी समाधिया लगाई और कल्याण की भावना से पहले भक्ति के मार्ग को सुलझाया भक्त और भगवान के बीच मे सदैव ऐजण्टो को निकाल दिया भक्त और भगवान का सम्बन्ध पिता पुत्र का रिश्ता बताया । भगवान एक ही है और कण कण मे व्यापक है । तथा आत्मा और परमात्मा का निवास स्थान हृदय देश ही है अत आत्मा को परमात्मा से युक्त करो 'इन्द्रस्य युज्य सखा' सामवेद मन्त्र 1671 के आधार पर समझाया। यही बात गीता 18 61 मे भगवान श्री कृष्ण कहते हैं "ईश्वर सर्वभूतानाम् हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति" अर्थात् ईश्वर का मिलने का स्थान हृदय देश ही है अत हृदय देश मे ध्यान करना चाहिए। हृदय देश हृदय से ब्रह्मरन्ध्र तक कहा गया है।

6 यदि भगवान ने हमे खाने के लिए ही पैदा किया होता तो हाथी जसा बना देते यदि देखने के लिए पैदा किया होता तो गीद या चील बना देते । यदि सुनने के लिए पैदा किया होता तो मयर और हिरण बना देते । यदि सूघने के लिए ही पैदा किया होता तो साप ऊट और कुत्ता बना देते । मनुष्य तू विचार यदि भगवान सारी सृष्टि का ज्या का त्या तो बना देते और तुझे न बनाते तो भगवान का इस सृष्टि का कौन महत्व समझता । बडे भाग्य मनुष्य तन पावा गोस्वामी तुलसीदास । अत मनुष्य का भगवान का मनन करना चाहिए। पुरुष का पुरुषार्थ करते हुए परमात्मा का ध्यान भी करना ही चाहिए बन्दा वही जो बन्दगी (उपासना) करता है । उसकी सारी सृष्टि हमारे लिए ही है क्योकि पिता का सब माल पुत्र का ही होता है । पिता ने पुत्रो से कुछ छपा कर नहीं रखा है ओर न ही पिता रखा करता है । अत उसका ध्यान धन्यवाद अवश्य करना चाहिए । क्याकि वेद मन्त्रो का गान भगवान का ध्यान केवल मनुष्य ही कर सकता है।

7 महर्षि ने भारत के प्रत्येक नागरिक को कल्याणकारी मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा दी अत आर्य समाज के छठे नियम म शारीरिक आत्मिक ओर सामाजिक उन्नति का "उपकार" बताया हमने शारीरिक और सामाजिक उन्नति तो की परन्तु "आत्मिक" उन्नति करनी भूल गए। अठारह अठारह घण्टे की समाधि लगाने वाले महर्षि दयानन्द जी महाराज को पुस्तक "आर्याभिविनय" जो भक्ति का समुद्र है पढनी चाहिए इस पुस्तिका मे महर्षि जी ने भगवान को इतने नामो से सम्बोधन किया है जितने सारे ऋषि भी मिलकर नहीं कर सके हैं उन नामो मे ऋषि की भक्ति की झलक और चमक है, तथा अनुभूति की धमक है। आप "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" के "उपासना" विषय को पढिये, जिसमे वे लिखते हैं कि "भगवान की भक्ति करते समय अपनी अवस्था ऐसी बना लेनी चाहिए जैसे एक नदी की समुद्र मे मिलते समय होती है" अर्थात् नदी जहा से चलती है शुद्ध होती है परन्तु समुद्र में मिलते समय गन्दा नाला हो जाता है, परन्तु समुद्र मे मिलते ही जल शुद्ध हो जाता है। अर्थात् भक्ति से जीवन शुद्ध करना चाहिए । आगे लिखते हैं कि भगवान की भक्ति मे ऐसे ही गोते लगाने चाहिए जिस प्रकार एक गोता खोर बार-बार गोते लगाकर जल की शीतलता एव पवित्रता का आनन्द लेता है।

9 हमारा ब्रह्मरन्ध्र ही "शिवालय" है सिर पर शिखा ही मन्दिर की "ध्वजा" है और पार्वती हमारी सस्कृति का नाम है तथा हृदय मे योगियो का अनाहद नाद ही शख घडियाल की ध्वनि है । ओ ही "शिव" है और आत्मा ही उसकी पूजा है। जीवन को शीतल एव पवित्र रखना अर्थात् क्रोध रहित एव विषय वासना रहित विचार ही शिवलिग "ब्रह्मरन्ध्र" पर जल चढाना है और सकल्प पूर्वक भगवान का ध्यान करना ही "व्रत" रखना है । शिव की उपासना करना ही "शिव" बनना है अन्यथा मनुष्य "शव" है ।

9 इसमे सन्देह नहीं जिन रात्रियो मे भक्त भगवान का भजन करता है वे सब शिव रात्रिया या शुभ रात्रिया ही होती है शिव रात्रियो को तो भोग रात्रिया कहा गया है। इसी भाव को भगवान कृष्ण गीता मे यू कहते हैं "या निशा सर्व भूतानाम् तस्याम् जागृति सयमी" अर्थात् जो ससारिक लोगो के लिए रात होती है वह योगियो के लिए दिन होता है। अर्थात् शान्त वातावरण मे योगी भगवान के ध्यान मे मग्न होकर आनन्दित होते है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी सन्ध्या के अन्तिम "नमस्कार मन्त्र" से हाथ जोड कर कल्याणकारी भगवान से शरीर के लिए "सुख" मन के लिए "शान्ति" और आत्मा के लिए "आनन्द" देने की प्रार्थना करके हमे उपासना करने के लिए जागृत किया है। अन्त मे कहने को मन करता है-

यू तो हर रात आती है, हमको सुलाने के लिए।
परन्तु शिवरात्रि की रात आई थी, हमको जगाने के लिए॥

(पृष्ठ 6 का शेष)

इस केस से सम्बन्धित दूसरे पक्ष श्री अश्विनी कुमार जी शर्मा (महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब) से भी कई बार मौखिक रूप से तथा फिर रजिस्टर्ड पत्र सख्या 202 दिनाक 22-6-94 (जिसकी रसीद भी साथ सलग्न है) के द्वारा इस केस के बारे अपना पक्ष लिखित रूप से भेजने का अनुरोध किया था परन्तु मैं बडे अफसोस के साथ लिख रहा हू कि श्री अश्विनी कुमार (महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब) ने जो कि इस उपरोक्त कस मे एक पक्ष है के कानो पर जू तक नहीं रेगी और आज तक मुझे कुछ भी लिख कर नहीं दिया। उल्टा मुझे यह कहा गया कि तुम को नवाशहर की 5 मरले प्लाट की भूमि की हुई बिक्री के सम्बन्ध मे जाच करने का कोई अधिकार नहीं है।

1 नवाशहर के प देवेन्द्र कुमार जी के लिखित ब्यान के मुताबिक -

"मै देवेन्द्र कुमार भूतपूर्व प्रधान आर्य समाज नवाशहर श्री सरदारी लाल जी आर्य रत्न उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के सम्मुख ब्यान दता हू कि जहा तक नवाशहर मे बेची गई सभा की भूमि का सम्बन्ध है इसके बारे मुझे तथा आर्य समाज नवाशहर के किसी भी अधिकारी को किसी प्रकार की जानकारी सभा या सभा के किसी अधिकारी या कर्मचारी सभा ने नहीं दी । जहा तक परम आदरणीय दिवगत श्री वीरेन्द्र जी के साथ मेरे इस भूमि के विषय मे कोई बात करने का सम्बन्ध है जब मुझे इस भूमि के बारे मे मालूम ही नहीं था तो मेरा उनस इसकी विक्रय करने के सम्बन्ध मे बात करने का कोई प्रश्न ही नही उठता । जहा तक आर्य समाज नवाशहर पर इस भूमि की विक्रय राशि लेने का सवाल है बेची गई जमीन की मालिक आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब थी न कि आर्य समाज नवाशहर लिहाजा इसकी विक्रय राशि वैधानिक रूप से सीधे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के खाते मे ही जमा हानी चाहिए थी। आर्य समाज नवाशहर को यह राशि मिलने का प्रश्न ही नही उठता ।"

2 इस केस मे चर्चित नवाशहर के ही दूसरे व्यक्ति श्री वीरेन्द्र सरीन के लिखित ब्यान के मुताबिक -

"नवा शहर मे बेची गई सभा महामन्त्री द्वारा जमीन के बारे मे लिखा गया मेरा नाम एक दम सफेद झूठ है। अपने स्पष्टीकरण के बारे मे निम्नलिखित यह बाते कहूगा कि -

(क) 17 12 93 से पहले मुझ इस जमीन के बारे में कुछ भी जानकारी नही थी।

(ख) मैं अकेला या सुरेन्द्र मोहन के साथ महामन्त्री जी से नहीं मिला ।

(ग) जब हमे जमीन के बारे मे जानकारी नहीं थी तो स्वर्गीय श्री वीरन्द्र जी से इसके बारे मे मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता।

3 नवाशहर के ही श्री सुरेन्द्र मोहन नेजपाल मन्त्री आर्य समाज नवाशहर क ब्यान के मुताबिक -

"अक्तूबर 93 के अन्तिम सप्ताह मे पिछले वर्षों की तरह जरूरतमन्द लोगा का कम्बल बाटने हेतु चन्दा एकत्रित करने के लिए मैं और श्री केशवानन्द कालिया उप मन्त्री आर्य समाज नवाशहर घूम फिर रहे थे। हमारे एक पुराने दानी सज्जन ने हमे चन्दा तो दे दिया लेकिन इसके साथ ही साथ उन्होने पायल की जमीन की घटना का जिकर किया। इसके साथ ही उन्होने एसी आशका की कि नवाशहर मे भी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के एक प्लाट की रजिस्ट्री विगत वर्षों मे एक प्रापर्टी डीलर द्वारा हुई है । उस समय तो हम दोनो ने इस सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की ।"

मैंने इस सम्बन्ध मे पडित देवेन्द्र कुमार जी से बात की । उन्होने कहा कि मुझे इस बारे मे कोई जानकारी नहीं है परन्तु बाद में मैंने अपने स्तर पर इसकी खोज शुरू की । आखिरकार आशंका तब सिद्ध हुई जब हमें इस तथाकथित प्लाट की रजिस्ट्री की नकल तहसील आफिस से 17-12-93 को प्राप्त हो गई।

रजिस्ट्री की नकल प्राप्त करने के बाद मैंने मन्त्री आर्य समाज नवाशहर के नाते महामन्त्री महोदय को 18-12-93 को इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने हेतु पत्र लिखा। महामन्त्री जी ने उत्तर दिया कि जमीन बेचने के लिए तो मैंने खुद मुख्तियार नामा दिया है, परन्तु मुझे इसकी रजिस्ट्री होने की जानकारी नहीं है। बाद में महामन्त्री जी ने यह भी स्वीकार किया कि 15000/- रुपए की रकम कहीं भी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के खाते मे दर्ज नहीं है। जबकि 10-9-90 को मुख्तियार नामा दिया जाता है और 11-9-90 को उसकी रजिस्ट्री हो जाती है। इसके बाद हमने इन्कवारी की माग की । इस माग से हमे क्या मिला वह आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के पदाधिकारी स्वय जानते हैं।

4 इस केस से सम्बन्धित नवाशहरह के ही एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रत्यक्षदर्शी गवाह श्री राकेश कुमार भुच्चर सुपुत्र डा रमेश भुच्चर के लिखित बयान के अनुसार :

मैं अपने स्वर्गीय पिता जी के साथ 10-9-90 को जालन्धर सभा के दफ्तर मे श्री अश्विनी कुमार शर्मा सभा महामन्त्री जी को मिला था और इनके साथ पाच मरले जगह वाक्यो नवाशहर का सौदा तय किया था और उसी समय 15000/- (पन्द्रह हजार) नकद दे दिए थे और महामन्त्री जी ने उसी दिन एक मुख्तियार नामा मेरे पिता जी के नाम द दिया था । इस मुख्तियार नामे के आधार पर 11-9-90 को खरीददार के नाम पर सब रजिस्ट्रार के सामने रजिस्ट्री करा दी गई। मेरे पिता जी रमेश चन्द्र जी की अचानक हृदय गति रुक जाने से 5-12-92 को मौत हो गई थी ।

उपरोक्त सभी लिखित बयानात तथा उपलब्ध विवरणो तथा उपरोक्त 5 मरले प्लाट की भूमि की प्राप्त रजिस्ट्री के आधार पर जाच करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुचा हू कि 5 मरले प्लाट की भूमि जिसका मुख्तियार नामा श्री अश्विनी कुमार शर्मा महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने 10-9-90 को श्री रमेश चन्द्र भुच्चर निवासी नवाशहर को लिख कर दिया था और बदले में रुपए 15000/- नकद प्राप्त किए। सभा का रिकार्ड देखने के बाद तथा स्वय महामन्त्री के दिनाक 24-12-96 को मन्त्री आर्य समाज नवाशहर को लिखे पत्र के मुताबिक राशि 15000/- सभा के खाते मे जमा नहीं हुई है यह 5 मरले का प्लाट आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के नाम था और उसकी राशि भी आर्य समाज नवा शहर के खाते में न आकर सीधे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के खाते मे जमा होनी चाहिए थी जो कि नहीं हुई ।

यह एक ऐसा गम्भीर प्रश्न व आरोप है जो कि सीधा श्री अश्विनी कुमार शर्मा (महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब) पर लगता है। जो कि अत्यन्त ही खेद का विषय है । इस सारे केस से आर्य समाज का सिर शर्म से झुक जाता है। इस प्रकार के गम्भीर आरोप सभा महामन्त्री पर लगे, इससे ज्यादा आर्य समाज का दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? मेरे विचार के अन्दर यह गबन का केस अमानत मे ख्यानत है। अत: अन्तरग सभा के समस्त माननीय सदस्यो से मेरी प्रार्थना है कि वह भविष्य मे इस केस के बारे मे वैधानिक कार्यवाही करने के बारे मे गम्भीरता से विचार करें ताकि ऐसे केसों की पुनरावृत्ति न हो सके तथा ऐसे भ्रष्ट अन्सरो को जो कि आर्य समाज की सम्पत्ति को इस प्रकार निर्दयता से बेच-बेच कर हड़प करते जा रहे हैं को नत्थ डाली जा सके तथा आर्य जनता को धोखे मे रख कर उसकी आखों में धूल झौंकने से रोका जा सके।

—सरदारी लाल आर्य रत्न

उपप्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, जालन्धर

नोट :– यह रिपोर्ट हमने आर्य जनता की जानकारी के लिए यहां दी है आर्य जनता सोचे सरदारी लाल अब क्या कर रहा है।

(क्रमश:)

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन.पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष : ☎ :292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 25 फरवरी 2001 दयानन्दाब्द 177

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

❑ *चन्द्रगुप्त आर्य*

आप निश्चय ही इस शीर्षक को देख कर चौंक गए होगे, नहीं तो विचार कर रहे होगे लेखक की भूल पर या फिर उसके अज्ञान पर कि उसे यह पता नहीं कि हमारा नारा क्या है 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' ठीक है न । आप सही है और शायद मैं भी सही साबित होऊंगा यदि अपनी बात समझा सका तो ।

आर्य परिवार के एक सदस्य होने के नाते बचपन से यह सुनते आया हू कि देश की आजादी के पहले कहते है कि आर्य समाज के सदस्य की इतनी प्रतिष्ठा थी कि न्यायालय मे मजिस्ट्रेट निःसंकोच उसकी गवाही पर विश्वास करता था। सच ही यह आर्य समाज के सदस्यों के उच्च चरित्र को दर्शाता है किन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में इसका क्या महत्त्व है?

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द की अपार सफलता मे एक बडा कारण यह रहा कि उन्होने न केवल दार्शनिक अपितु सामाजिक स्तर पर भी मनुष्य के दर्द को पहचाना । समाज शास्त्री भी इस पक्ष मे उनका वह सम्मान करते हैं जो अन्य सुधारको का नहीं। आर्य समाज के दस नियमो में से चार अर्थात् चालीस प्रतिशत समाज या मनुष्य के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है । इसके अतिरिक्त वर्ण व्यवस्था को जन्म से नहीं अपितु कर्म से मानने को ही वेद सम्मत बताया। योग्यता व कर्म के आधार पर जन्म के वर्ण से अपना वर्ण भिन्न हो सकता है, यह मान्यता मानवता का सम्मान करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक है जिससे कि अनेक कुरीतियां समूल नष्ट हो सकती हैं । जो मानवता का सम्मान करते हैं, मत-मतान्तर की संकीर्ण वीथियो में नहीं विचरते वे सत्य के पुजारी होते हैं और उन्हे ईश्वर का समर्थन प्राप्त होता है । यही कारण है कि मूर्ति पूजा के घोर आलोचक होते हुए भी महर्षि दयानन्द को अपने प्रवचन मंदिरों मे रखने में कोई रोक या डर नहीं था। धर्मान्तर के उत्कट विरोधी शुद्धि सभा के संस्थापक आर्य सन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द जामा मस्जिद के चबूतरे से जन सभा को सम्बोधित कर सकते थे । उनमें यह नैतिक बल क्योकर आया ? अपने इष्ट के प्रति ईमानदारी से। सच्चे आर्य जिस काम को करने के लिए जनता से कहते हैं उसे पहले स्वयं करते हैं । आपने अनेक बार यह दृष्टान्त सुना होगा कि एक सन्यासी के पास एक दुःखी मां अपने बच्चे की गुड खाने की बुरी आदत को छुड़वाने की प्रार्थना लेकर पहुची तो उस सन्यासी ने उसे कुछ दिन बाद बुलाया क्योकि वे स्वय गुड खाने की आदत मे पडे हुए थे, और जब उन्होने वह आदत छोड दी तब ही बच्चो को गुड छोड़ने की प्रेरणा दी ।

जब तक हम 'मनसा-वाचा-कर्मणा' एक नहीं होते, तब तक हमारे चरित्र का, कथन का कर्म का कोई भी सार्थक प्रभाव नहीं पड सकता । हमारी इस कमजोरी की वजह से कई बार हमारे अपने भी हमारे साथ नहीं रहते । आर्य समाज के प्रांगण में भी यह कमजोरी भर गई लगती है । सत्य का, अच्छे व्यवहार का, दया का, सात्विकता का उपदेश सभी देते हैं, पालन बिरले ही करते है । फल यह होता है कि उपदेश का प्रभाव समाप्त हो जाता है । यदि कोई सन्यासी सादा जीवन, सादा भोजन, उच्च विचार का उपदेश देता हो और अपने भोजन के लिए मालपुआ, बादाम-मिश्री और श्रीखंड-पूरी की मांग करता है हो क्या उसका अच्छा प्रभाव पडेगा ? आर्य समाज के लंगर मे हम प्याज-लहसुन का खाना बनावें और स्टेज पर तामसिक भोजन त्यागने का पाठ पढाएं तो निश्चय ही श्रोता उस पाठ को घर जाने के पहले ही भूल जाएंगे । ऐसे ही एक ऋषि लंगर के अवसर पर इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं कुछ अतिथियों को पूछते सुना है "आपकी सब्जियो मे प्याज लहसुन तो नहीं है?" सकारात्मक उत्तर मिलने पर उन व्यक्तियो ने भोजन नहीं किया। क्या आर्य समाज के लिए यह सम्मान की स्थिति है? डर है कहीं कभी तामसिक भोजन भी हमारी पाकशाला मे न पहुंच जाए ।

आर्यो के लक्षण क्या हैं ? यम-नियम का पालन कितने सदस्य करते हैं ? या कितने इससे परिचित भी हैं? हवन, संध्या, स्वाध्याय करना कितने सदस्य अपना कर्तव्य मानते हैं ? ऋषिकृत कितने ग्रन्थ उनके निजी पुस्तकालय मे हैं ? क्या वेद, मनुस्मृति, सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ वे अपने घर मे रखते-पढते हैं ? निश्चय ही इन प्रश्नो के उत्तर हमे गौरवान्वित नहीं करेंगे । तप, त्याग सेवा, परोपकार, राष्ट्रभक्ति और सदाचार के साक्षात् स्वरूप होते थे आर्य समाज के सदस्य अतः उस समय यदि कोई मजिस्ट्रेट उनकी गवाही को सच मानता था तो आश्चर्य किस बात का ? खेद है कि आज कुछ थोड़े से सदस्यो को छोड़कर एक बड़ी सख्या ऐसे लोगो की हो गई है (वे आर्य समाज के सदस्य तो हैं ही उनमे अनेक पदाधिकारी भी हैं) जिनके जीवन स्वार्थ-परता, पद लोलुपता जातिवाद, प्रान्तवाद, गुटबाजी, विवाद, वितंडावाद से भरे हुए हैं। बाहर के समाज की अधिकाश कुरीतिया उनमे भी व्याप्त है । आम प्रचलित कदाचार, कपट, झूठ छलना आदि से उन्होंने सहज समझौता कर लिया है । फिर क्योंकि वे गैर आर्य समाजियो को प्रभावित कर पायेगे ? परिणाम सबके सामने है । आर्य समाजो की मदस्य सख्या इस बात का आईना है । उगलियो पर गिने जा सकने वाली सदस्य संख्या, नए नेतृत्व की कतई कर्म सम्पत्तियों का वाणिज्यीकरण, विद्वता का अभाव ये सब ऊपर कही गई बातो के परिणाम हैं ।

इस पृष्ठभूमि मे आप ही बताइये कि हमारा नारा "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" कितना प्रभावी हो सकता है ? जब हम स्वयं 'आर्य' की कसौटी पर खरे नहीं उतर सकते तो क्या हम दूसरो को आर्य बना पायेगे ? फिर विश्व को आर्य बनाने की बात करना तो अपने आपको धोका देना ही है । जिन्होने हमे यह नारा दिया था वे तो अब नहीं रहे और हम स्वयं इस नारे को बोलने के योग्य है नहीं, तो फिर क्या करेंगे ? क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम पहले स्वयं तो आर्य बन जाए उसके बाद ही यह नारा लगाए । क्या आप अब भी सोचते है कि "कृण्वन्तो माम् आर्यम्" कहने मे मैं गलती पर हू ? हमारी प्रार्थना होनी चाहिए.

"सब वेद पढ़ें, सुविचार बढे,
बल पाय चढ़ें नित ऊपर को।
अविरुद्ध रहें, ऋजु पथ गहें,
परिवार कहे वसुधा भर को।
ध्रुवधर्म धरे, पर दुःख हरे तन
त्याग करे भवसागर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता हम
आर्य करें निज जीवन को।"

इसलिए मेरी प्रार्थना है कि हे परमेश्वर मुझे आर्य बनाओ।

हमें बोध कैसे हो?

□ प्रो० यशपाल शास्त्री, आचार्य श्री गुरु विरजानन्द गुरुकुल, करतारपुर

किसी समय आर्य समाज द्वारा किए जा रहे मूर्ति पूजा के खण्डन का प्रतिकार करने मे असमर्थ हुए हमारे पौराणिक भाईयो ने कहा था कि आर्य समाज प्लेग है, इससे बचो । अपने प्रतिपाद्य की सिद्धि के लिए उन्होने दो तर्क दिए थे–(1) भारत मे प्लेग का प्रारम्भ मुम्बई से हुआ और आर्य समाज का प्रारम्भ भी मुम्बई से हुआ। (2) प्लेग चूहो से शुरू होती है। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द का बोध भी चूहो से शुरू हुआ ।

उस समय इन चुटकुलो जैसे तर्को का उत्तर उसी शैली में दिया गया था । प्रत्युत्तर न सूझ पाने की स्थिति मे हमारे प्रतिवादियो को केवल यह कहकर संतोष करना पडा था कि "वे चूहे तो भगवान् भोलानाथ के पुत्र गणेश जी की सवारी के थे अत: उनकी शरारत क्षम्य थी।"

मूल शंकर को बोध हुआ । इस बोध का आलोक स्वामी श्रद्धानन्द, ला लाजपतराय, पं. गुरुदत्त, ला साईंदास भाई परमानन्द, ला लालचन्द, म राजपाल, पं. चमूपति आदि ने देखा । इनके उत्तराधिकारी राम प्रसाद बिस्मिल, गणेश शकर विद्यार्थी, चन्द्रशेखर आजाद, स भगत सिंह आदि अपने जीवन को स्वाधीनता के लिए समर्पित कर बैठे । दामोदर सातवलेकर तथा वीर सावरकर ने प्रथम तो वेदो का गहन अध्ययन करते रहे तथा द्वितीय देश एवं जाति के स्वातन्त्रय एवं सुरक्षा हेतु काले पानी को अपनी लालिमा प्रदान करते रहे।

आज आर्य समाज के साधारण सदस्यो से लेकर अधिकारियों तक केवल गिने-चुने महानुभावों पर ही इस आलोक किरण का कुछ प्रभाव देखा जा सकता है अन्य जितने भी व्यक्ति है वे तो आर्य समाजी कहलाकर भी उस बोध से अबोध बने रहने मे ही अपना कल्याण समझ रहे हैं। श्री श्याम जी पराशर जैसे सन्त जिनके पिता तथा ताऊ का सारा परिवार धर्म तथा राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करता रहा जिनके यहां होशियारपुर मे रास बिहारी बोस हलवाहक के रूप में रहकर क्रान्तिकारियो को दिशा निर्देश देते रहे और अंग्रेजों की पकड़ से यहां रहते हुए बचे रहे, जिनके पौराणिक भाषणों मे भी आर्य समाजी स्वर स्पष्ट झलकता है उन्हे गैर आर्य समाजी बताने मे ये लोग सबसे आगे थे। श्याम जी पाराशर अब शरीर से यहां नहीं रहे, वे नौ वर्ष पूर्व दिवंगत हो चुके हैं । इनका साहित्य जब कभी समूची ग्रन्थ मालाओ के रूप मे उपस्थित होकर मूल्यांकित होगा तो जनमानस को पता लगेगा कि मूलशंकर के बोध की आलोक किरण कहां तक और कितने तीखे रूप मे पहुंची है ।

मूल शंकर अबोध था, उसे बोध हुआ । हम अपने आपको पहले से ही प्रबुद्ध माने बैठे हैं फिर सामान्य बोध क्या करेगा? हमे उसकी जरूरत भी नहीं । सम्मान, पैसा, रुतबा इन्हीं का समन्वित नाम हमारी दृष्टि मे सम्यक् बोध है, सो हमारे पास है ।

शिवरात्रि मूलशंकर की बोधरात्रि नहीं थी, वह बोध पाने के लिए उपजी हुई तीव्र प्यास की रात्रि थी । इस रात उनके दिल में सच्चे शिव को जानने की भूख पैदा हुई थी । जिज्ञासा के बिना ज्ञान पैदा नहीं होता । आप गाय या बैल को तालाब के किनारे खड़ा कर दीजिए पर वह उस पानी को पिएगा तभी जब उसको प्यास होगी ।

हमने अपने बोध पाने के मार्ग को तो प्रबुद्ध मान कर अवरुद्ध किया और अपने बच्चों के लिए इस रास्ते में भारी भरकम पाठयक्रमों की दीवारें खड़ी कर डालीं । उन्हें हम समाज में साथ नहीं लाते, न उनकी पढ़ाई का समय बर्बाद हो जाएगा। सत्संगों में पहुंचना हमारे दृष्टि-कोण से समय की हत्या बन गया है । हमारे सिक्ख भाईयों के बच्चे नियम से गुरुद्वारा जाते हैं । वहां गुरु वाणी का श्रवण करते हैं, अच्छे-अच्छे राग और उपदेश सुनते हैं, राजनीति की बातें भी सुनते हैं तो क्या वे हमारे उन बच्चों से पिछड़े हुए हैं जिन्हें पढ़ाई के लोभ में हमने आर्य समाज के अथवा दूसरी समाजों के धार्मिक सत्संगों में जाने से रोक दिया है ? हमारे अखाड़े सूने पड़े हैं, खेलों में हमारा पिछडापन जग जाहिर है । बौद्धिकता में हम कितने आगे हैं इसका माप इस विशाल देश को मिलने वाले दो नोबल प्राईजों से माप लें, जबकि हमारी राजधानी से भी छोटी आबादी वाले कितने ही देश दशाधिक नोबल प्राइज पा चुके हैं। हम केवल रविन्द्रनाथ ठाकुर और चन्द्रशेखर अय्यर के नामो से ही अपने आपको कृतकृत्य मान रहे हैं ।

स्वामी दयानन्द को बोध तो दण्डी स्वामी विरजानन्द की कुटिया मे जाकर मिला था किन्तु इस बोध के लिए जिज्ञासा शिवरात्रि के दिन पैदा हुई थी और इतने उत्कट रूप मे पैदा हुई थी कि इस बीच आने वाली अमित अड़चने, संकट पूर्ण स्थितियां और विविध कठिनाईयां भी उन्हें विचलित न कर सकी नचिकेता को ज्ञान यम के पास जाकर मिला किन्तु उसके अंकुरण की पृष्ठभूमि पिता द्वारा दान दी जा रही बूढ़ी गायों को देखकर बन चुकी थी, संसार का इतिहास साक्षी है कि ज्ञान के अंकुरण की अवस्था शैशव अथवा वय: सन्धिकाल हुआ करती है ।

वृक्ष से धरती पर फल को गिरते देखकर धरती के गुरुत्वाकर्षण को समझने वाला न्यूटन बालक था। रेलवे इंजन के अविष्कारक जार्ज स्टीफेंसजन ने केतली से उठने वाली भाप द्वारा उछलने वाले ढक्कन का देख कर भाप की शक्ति का जब अन्दाजा लगाया था तब वह भी बच्चा ही था, धर्म की वेदी पर हंसकर आत्मोत्सर्ग करने वाले हकीकत राय तथा अपने आपको हंसते-हंसते दीवारों में चिनवा लेने वाले गुरु गोबिन्द सिंह के लाडले, बच्चे ही थे, चरित्र के क्षेत्र में रूप, बसन्त और कुणाल, भक्ति के क्षेत्र में ध्रुव और प्रहलाद, वीरता के क्षेत्र में लवकुश और अभिमन्यु, प्रेरणा के क्षेत्र में राणा प्रताप की बच्ची चम्पा तथा गुरु तेगबहादुर गोबिन्द राय ये सब बच्चे थे। शिवरात्रि को बोधरात्रि बना देने वाली चूहों की घटना से जिसका हृदय विद्रोह कर उठा वह मूलशंकर भी बालक था ।

मैं और आप न बच्चे हैं और न चढ़ी हुई जवानी मे, अत: कुछ कह नहीं सकते ऐसी बात नहीं । कर्त्तव्य के लिए, उद्देश्य प्राप्ति के लिए हमें भी उठना होगा, जागना होगा किन्तु उसकी सिद्धि के लिए माध्यम ढूंढना होगा ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत ।

उठो जागो, वर जनो (वर की आयु पा रहे नवयुवको) को पकड़ो और फिर उनके माध्यम से दूसरो को भी जगाओ।

ज्ञान और साधना को अच्छा समझ कर भी अपने पुत्र और पुत्रियों को तो आप मार्ग में डालना चाहेंगे नहीं, तो दूसरों पर प्रयोग कर लीजिए पर यह निश्चित समझिए कि अब आपके अपने बस में कुछ लोकोत्तर काम कर पाना नहीं है । आप पैसे बना सकते हैं । हुकम चला सकते हैं। दूसरों को नौकर रख सकते हैं और भी न जाने क्या-क्या कर सकते हैं पर बोध पाना आपके लिए यही है कि किसी अबोध को प्रबुद्ध कीजिए । अवस्था और अनुभव व्यक्ति को समझौता वादी बना देता है । वह बुराईयों से टक्कर लेने की क्षमता न रहने से उनके साथ समझौता करने लगता है। खण्डन से कतराने लगता है। मण्डन के गीत गाने लगता है। अपने आपको अधिक दिखाने के लिए उन बातों और आचरणों का भी समर्थन करने लगता है जिनको कभी सह न पाता था, मांस, मदिरा यहां तक कि अनुचित यौन सम्बन्धों को भी व्यक्तिगत मामला मानने लगता है । इसके विरुद्ध बोलना बन्द कर देता है, सीधी बात को भी टेढ़े ढंग से कहना पसन्द करने लगता है जबकि बच्चा और युवा ऐसा समझौता किसी भी कीमत पर करने को राजी नहीं हुआ करता। वह किसी गलत को सही मान रहा हो या सही को गलत मान रहा हो, यह बात दूसरी है, पर अपनी दृष्टि के

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय.....✍

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के 17-12-2000 के चुनाव को सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली ने वैध करार दिया

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली की अन्तरंग सभा की एक बैठक दिनांक 17-2-2001 को आर्य समाज 15 हनुमान रोड नई दिल्ली मे स्वामी ओमानन्द जी सभा प्रधान की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई । इस बैठक में सारे भारत वर्ष की भिन्न-भिन्न प्रदेशों की प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिनिधि, अन्तरंग सदस्य व प्रतिष्ठित महानुभाव पधारे हुए थे । इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुद्दा सारी अन्तरंग सभा में छाया रहा। अश्विनी कुमार शर्मा अपने आधा दर्जन साथियों को साथ लेकर इस बैठक के अवसर पर दिल्ली पहुंचा और दूसरी ओर से सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा, कार्यकर्त्ता प्रधान डा. के.के. पसरीचा, उप प्रधान चौ० ऋषिपाल सिंह एडवोकेट, प्रिं. स्वतन्त्र कुमार, श्री हरबंस लाल सेठी एडवोकेट, सुदर्शन कुमार शर्मा, श्री देवेन्द्र नाथ रजिस्ट्रार। कोषाध्यक्ष श्री प्रेम भारद्वाज, मन्त्री श्री मुलखराज आर्य, श्रीमती राजेश शर्मा, श्री ओ पी टण्डन, श्री करतार नाथ अधिष्ठाता आर्य वीर दल तथा जिला जालन्धर, जिला लुधियाना, नवां शहर, जिला गुरदासपुर, पठानकोट। जिला फरीदकोट, मोगा, जिला संगरूर, तपा आदि पंजाब के अनेक नगरो से एक सौ से अधिक आर्य महानुभाव स्त्री-पुरुष दिल्ली पहुंचे हुए थे ।

श्री पं हरबंस लाल शर्मा का स्वस्थ पिछले कई दिन से ठीक नही चल रहा था। डाक्टरो ने उन्हे दिल्ली जाने से मना किया था । परिवार के सदस्य भी नहीं चाहते थे कि पण्डित जी अस्वस्थ अवस्था में दिल्ली का 7 घण्टे का सफर करे परन्तु पण्डित जी आग्रह करके रोकने पर भी न रुके और यह कहते हुए दिल्ली पहुंचे कि मेरा इस बैठक में जाना अति आवश्यक है । जब पण्डित जी 15 हनुमान रोड नई दिल्ली आर्य समाज मे 17-2-2001 शनिवार को दोपहर बाद इस बैठक में भाग लेने के लिए पहुंचे तो पजाब से वहां पूर्व से पंजाब सभा के पहुचे सभी कार्यकर्त्ताओं और अधिकारियों में खुशी की लहर दौड़ पड़ी और सभी का उत्साह बढ़ गया ।

जब अश्विनी कुमार शर्मा अपने साथियों के साथ 15 हनुमान रोड पर बैठक स्थल पर पहुंचा तो पंजाब से गए लोगो ने अश्विनी कुमार मुर्दाबाद, अश्विनी कुमार शर्मा चोर है, अश्विनी कुमार शर्मा ठग है । सभा की बेची गई भूमियों के पैसे वापिस करो के नारे लगाने आरम्भ कर दिए। अश्विनी कुमार शर्मा को सार्वदेशिक सभा के गत चुनाव मे उप मन्त्री मनोनीत किया गया था। गत दिनों सभा प्रधान जी ने 21-8-2000 को अश्विनी कुमार को उसकी सभा विरोधी गतिविधियो के कारण सभा से निलम्बित कर दिया था और 26-9-2000 को सार्वदेशिक सभा के प्रधान पूज्य स्वामी ओमानन्द जी ने पंजाब सभा की बिगड़ती हुई स्थिति को देखते हुए पंजाब सभा की एक तदर्थ समिति बना दी थी। इसके बाद 17-12-2000 को सभा का विधिवत चुनाव सार्वदेशिक सभा की देख रेख में हो गया था। आर्य प्रतिनिधि सभा से 21-8-2000 के बाद से अश्विनी कमार शर्मा का पंजाब सभा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा । इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने अपना एक प्रस्ताव पारित करके अश्विनी कुमार शर्मा का नाम सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा से वापिस ले लिया था और उनके स्थान पर चौ० ऋषिपाल सिंह एडवोकेट का नाम सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा के लिए भेज दिया था। पंजाब सभा ने अपने 6 प्रतिनिधि भी सार्वदेशिक सभा से उनकी सभा विरोधी गतिविधियों के कारण वापिस ले लिए थे और उनके रिक्त स्थानो पर नए प्रतिनिधि भेज दिए थे परन्तु सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री वेदव्रत जी शर्मा को अश्विनी कुमार शर्मा ने गुमराह किया हुआ था और वह अश्विनी कुमार के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर रहे थे ।

इस अन्तरंग सभा में अश्विनी कुमार अन्दर जाना चाहते थे परन्तु पंजाब सभा से पधारे महानुभावों ने इसका कड़ा विरोध किया कि जिस व्यक्ति को पंजाब सभा निकाल चुकी है । जिसने पंजाब सभा की छवि खराब की है जिसने सभा मे कई प्रकार की हेराफेरियां की हुई हैं उसे आप अन्तरंग सभा में नहीं बुला सकते । आखिर में श्री वेदव्रत शर्मा को भी अन्य अन्तरंग सदस्यों के कहने पर पंजाब सभा के अधिकारियो की बात माननी पड़ी और अश्विनी कुमार शर्मा को 17-2-2001 की सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा मे बैठने नहीं दिया गया । इस पर अश्विनी कुमार शर्मा और उनके साथी श्री सरदारी लाल जी आदि वहां से भाग खडे हुए और किसी को पता नहीं चला कि वह कहा गए।

इसके बाद अन्तरंग सभा में श्री हरबंस लाल जी शर्मा, डा० के के पसरीचा, चौ. ऋषिपाल सिंह एडवोकेट , प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी, श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा, श्री सुदर्शन शर्मा ने पंजाब सभा की सारी स्थिति अन्तरंग सभा के सदस्यों के सामने स्पष्ट की जिस पर पूज्य स्वामी ओमानन्द, प्रो. शेर सिंह जी, स्वामी इन्द्रवेश जी, प्रो सत्यवीर जी शास्त्री, श्री बांसल एडवोकेट, श्री प्रकाश वीर शास्त्री, श्री सूबे सिह, कैप्टन देवरत्न आर्य, स्वामी सुमेधानन्द जी आदि महानुभावो ने अपने-अपने विचार आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के सम्बन्ध मे प्रस्तुत किए इस पर अन्तरंग सभा ने सर्व सम्मति से पारित किया कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का जो चुनाव 17-12-2000 को सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर मे सम्पन्न हुआ है वह वैध है। अन्य एक प्रस्ताव मे चौ ऋषिपाल सिंह जी एडवोकेट को अश्विनी कुमार शर्मा के स्थान पर सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा मे ले लिया गया।

सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा के इस निर्णय से पंजाब की आर्य जनता मे खुशी की लहर दौड गई अब पजाब की सभी आर्य समाजे एव शिक्षण संस्थाएं श्री पं. हरबस लाल जी शर्मा के नेतृत्व में आर्य समाज का कार्य तथा वेद प्रचार का कार्य बडे उत्साह से कर रही है।

मुझे प्रसन्नता है कि अब पजाब की आर्य जनता मे एक उत्साह पैदा हो गया है और वह पंजाब सभा को नुकसान पहुंचाने वाले किसी भी व्यक्ति को माफ नहीं करेगी । जब लोगो को यह सूचा मिली कि अश्विनी कुमार शर्मा अपने कुछ साथियो को लेकर सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा व साधारण सभा मे भाग लेने के लिए 17 व 18 फरवरी को दिल्ली जा रहा है तो सैंकड़ो की तादाद मे आर्य बन्धु व बहनें अपने-अपने वाहन लेकर 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली मे बैठक आरम्भ से पूर्व पहुंच गए और अश्विनी कुमार शर्मा को सार्वदेशिक सभा की बैठक मे भाग नहीं लेने दिया । वहा लोगो मे अश्विनी कुमार शर्मा के विरुद्ध बहुत रोष पाया गया। पजाब की आर्य जनता अब अश्विनी कुमार शर्मा को किसी भी रूप मे आर्य समाज मे देखना नही चाहती क्योकि इस व्यक्ति ने आर्य समाज तथा सभा की छवि को अपने घिनौने कार्यों से धूमिल किया है।

अब धीरे-धीरे करके पंजाब के सभी बुद्धिमान लोग अश्विनी कुमार शर्मा को पहचान गए हैं उन्हे पता चल गया है कि इस व्यक्ति ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को कितनी हानि पहुचाई है और अब भी यह कितनी हानि पहुंचा रहा है । इसलिए बुद्धिमान लोग व ईमानदार लोग इसका साथ छोड़ रहे हैं। इसने लोगो को गुमराह करने मे कोई कसर नहीं छोड़ी और बहुत से लोग इसके कहने से गुमराह भी हुए । कई अच्छे व्यक्ति भी किन्हीं कारणो से इसके बहकावे मे आकर इसके साथ चल पड़े थे परन्तु ज्यो-ज्यो लोगों को अश्विनी कुमार शर्मा की असलियत का पता चल रहा है त्यो-त्यो लोग इसे छोडते जा रहे है।

जब सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा मे अश्विनी कुमार शर्मा की स्थिति स्पष्ट की गई और उन्हे बताया गया कि इस व्यक्ति ने पंजाब सभा में बहुत बड़े-बड़े घोटाले किए हैं तो सभी हैरान रह गए। इसके द्वारा बेची गई भूमियों की पड़ताल की जा रही है। शीघ्र ही सारी जानकारी आर्य जनता को दी जा रही है। बहुत बडे-बड़े घोटाले सामने आ रहे हैं जिन्हें जानकर जनता चकित रह जाएगी । अश्विनी कुमार शर्मा के विरुद्ध कार्यवाही आरम्भ हो चुकी है।

—ऋषिपाल सिंह एडवोकेट, सभा उपप्रधान

ऋषि दयानन्द को संखिया (कांच) विष दिया गया था

❐ ले० श्री आदित्यमुनि वानप्रस्थ, एच-128 राजहर्ष कालोनी, कोलार रोड, भोपाल-23

'आर्य सेवक' के अक्तूबर, 2000 अक मे डॉ शिवपूजन सिंह कुशवाह शास्त्री का एक लेख ऋषि को विष दिए जाने के सम्बन्ध मे प्रकाशित हुआ है । इसमे अनेक स्थानों पर ऋषि को कांच पीसकर दूध मे मिलाकर पिला देने का उल्लेख हुआ है । डॉ भवानीलाल भारतीय ने भी अपने नवजागरण के पुरोधा: दयानन्द सरस्वती ग्रन्थ में लिखा है कि "निष्कर्षत: हम कह सकते है कि स्वामी दयानन्द को दूध के साथ विष 21 सितम्बर 1883 की रात्रि को धौड मिश्र (शाहपुरा निवासी) नामक रसोइए ने दिया। यह विष सखिए का था। सम्भवत: उसमें पिसा हुआ कांच भी हो।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती और 'आर्य जगत् (साप्ताहिक), नई दिल्ली' के सम्पादक का मत है कि 'तब तो हद हो ही गई, जब यह कहानी गढी गई कि 'जगन्नाथ ने काच पीसकर दूध मे मिलाकर दयानन्द जी को पिला दिया, जिसके फलस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई।' दयानन्द जी को इस कुकृत्य का पता चला गया और उन्होने दयाधर्म का पालन करते हुए उसे न केवल क्षमा कर दिया, अपितु रुपयो की थैली देकर उसे नेपाल भाग जाने की सलाह दी । यह कहानी बिल्कुल झूठी है । जगन्नाथ नाम का कोई रसोईया दयानन्द जी के पास नहीं था । कांच कितना ही पीसने पर भी दूध मे घूलता नहीं।" स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने यह भी लिखा है कि "ऋषि दयानन्द की हत्या का मुख्य अभियुक्त निश्चित रूप से अलीमर्दान खां ही ठहरता है जिसने उन्हे चिकित्सा के बहाने केलोमल (पारद-लवण) दिया था। औषधि के नाम से जानबूझकर दिया गया यही विष स्वामी जी की मृत्यु का कारण बना ।"

इस प्रकार स्वामी विद्यानन्द जी भी ऋषि को विष दिया जाना तो स्वीकार करते ही हैं, भले ही वह उनके पाचक द्वारा न दिया जाकर चिकित्सक अलीमर्दान खां द्वारा दिया गया हो परन्तु यह ठीक ही है कि दूध मे पिसा हुआ कांच नहीं दिया जा सकता क्योंकि वह उसमें सर्वथा अघुलनशील है और यदि किसी प्रकार दिया भी जाता तो पेट की आंतो से पहले वह जिव्हा को जख्मी करता जिसका पता स्वामी जी को तत्काल ही लग जाता और बाद में आंतों में घाव होने की वजह से दस्तों के साथ खून भी निकलता, जैसा कि वस्तुत: हुआ नहीं ।

तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कांच (Glass) पीसकर दिए जाने की यह बात कहां से कैसे चल पड़ी ? इस विषय में मुझे "आर्य जगत्" के स्वर्गीय सम्पादक पं क्षितीज जी वेदालंकार ने बताया था कि मारवाड (राजस्थान) में संखिया को कांच भी कहते हैं। इसलिए जब स्वामी जी को सखिया पीसकर दिया गया तो वहां के कुछ लोगों में इसके पर्यायवाची शब्द कांच को पीसकर दिए जाने की बात को सुनकर वास्तविकता से अनभिज्ञ लोगो ने इसे काच (Glass) पीसकर दिया जाना समझ लिया जबकि यह कांच (Glass) नहीं, अपितु कांच (सखिया) ही था जो पीसकर दूध मे घोलकर दिया जा सकता है क्योकि वह उसमे घुलनशील है ।

अब स्वामी जी के पाचक के नाम को लेकर यह विवाद सामने आता है कि उसका नाम जगन्नाथ था, व श्री कृष्ण अथवा धौड मिश्र (धूला जोशी) था। इस विषय मे शाहपुर निवासी श्री सोहनलाल शारदा ने अपने एक लेख मे लिखा था कि शाहपुराधीश ने जो रसोइया स्वामी जी को दिया था, उसका नाम धूला जोशी था जिसका ही अपभ्रंश धौड मिश्र (मिश्र भोजन बनाने और परोसने वाले को कहा जाता है) होकर प्रचलित हो गया। जब दयानन्द ने इस पाचक के नाम पर शाहपुराधीश के सामने धूला (मिट्टी) के रूप में व्यंग किया तो शाहपुराधीश ने उसका नाम बदलकर श्री कृष्ण रख दिया लेकिन दयानन्द जब उसे श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण पुकार कर आदेश देने लगे तो उन्हे ध्यान आया कि कहां तो महाभारत के प्रतापी भगवान् श्री कृष्ण के कहा यह दीन-हीन पाचक श्रीकृष्ण । इसलिए उन्होंने उसका नाम अपने उपयोग के लिए सम्भवत: पुन: बदलकर जगन्नाथ रख लिया जो जोधपुर के प्रवास के समय प्रचलित हो गया। अत: धूला जोशी उर्फ श्री कृष्ण, उर्फ जगन्नाथ ने ही 21 सितम्बर, 1883 को सोते समय ऋषि को दूध मे संखिया (कांच) पीसकर दिया था जिसके लक्षण उनके शरीर पर प्रगट हुए थे और जिसे चिकित्सकों ने तब प्रमाणित भी किया था तथा ऋषि ने भी मंत्री आर्य समाज, अजमेर को कहला भेजा था कि उन्हे सखियां दिया गया है ।

अब स्वामी विद्यानन्द जी की यह आपत्ति शेष रह जाती है कि स्वामी जी द्वारा जगन्नाथ को रुपए देकर जोधपुर राज्य की सीमा से पार जाकर नेपाल मे शरणागत हो जाने का परामर्श देना एक वास्तविक घटना कैसे हो सकती है ? क्योकि इस घटना का उल्लेख जिन स्वामी सत्यानन्द जी ने 'श्रीमद्दयानन्द प्रकाश' में किया है, उसके अध्ययन से तो यही प्रतीत होता है कि उक्त वार्तालाप के समय स्वामी जी और जगन्नाथ के अतिरिक्त वहां कोई तीसरा व्यक्ति था ही नहीं और स्वामी जी ने जगन्नाथ को वचन दिया था कि यह रहस्य उनके हृदय-सागर से कभी प्रकाशित न होगा और जगन्नाथ स्वयं अपने पैरो पर ऐसा बताकर कुल्हाडी क्यो मारता ? अत: जब इसे बताने वाला वहा कोई तीसरा था ही नहीं, तो स्वामी सत्यानन्द को यह घटना किसने बताई ? 'श्रीमद्यानन्द प्रकाश' से स्पष्ट है कि स्वामी सत्यानन्द ने यह घटना राजकोट के एक महाशय के सद्धर्म-प्रचारक समाचार पत्र को दी गई सूचना के आधार पर लिखी थी । इसमे इतना हो सकता है, कि स्वामी सत्यानन्द जी ने अपनी भावपूर्ण लेखन शैली के अनुरूप घटित घटना के परिप्रेक्ष्य मे दयानन्द और जगन्नाथ के मध्य हुए वार्तालाप को अपनी ओर मे बनाकर भावपूर्ण ढंग से लिख दिया हो अथवा वह भी सद्धर्म-प्रचारक में ज्यो की त्यो छपा हो परन्तु अब पूरी घटना को इस आधार पर मनघड़न्त कहना सर्वथा अनुचित ही होगा क्योकि इसे न केवल स्वामी सत्यानन्द जी ने ही लिखा है अपितु पं चमूपति एम ए ने भी अनेकत्र लिखा है।

दीवारों के भी कान होते हैं । स्वामी दयानन्द और जगन्नाथ के मध्य हुए वार्तालाप को हो सकता है कोई तीसरा छिपकर सुन रहा हो जिसने उसे बाद में प्रगट कर दिया हो। इसलिए यह जरूरी नहीं है कि इस घटना को स्वयं दयानन्द और जगन्नाथ ही बतावें । जब स्वामी जी अधर मे समाधि लगाए हुए थे, तो उसे भी तो प्रयाग के पं ठाकुर प्रसाद ने कि..ड़ों के छिद्रों से चुपके से देख लिया था । तब क्या पता राजकोट के उस महाशय ने यह वार्तालाप छिपकर सुन लिया हो जो उस समय किसी कारण जोधपुर में पहुंचा हुआ हो ।

घटनाओं के विवरण हमेशा प्राप्त सूचनाओं पर पूर्वापर विचार करके ही परिस्थितियों के अनुरूप लिखे जाते हैं । इसलिए उनको तर्क के आधार पर गलत बता देना हमेशा सही नहीं होता है । यथा-स्वामी जी ने अपने आत्म चरित्र में लिखा है कि यहां अपने पिता का नाम और निज निवास-स्थान का प्रसिद्ध नाम इसलिए मैं नहीं लिखता कि जो माता-पिता आदि जीते हों, तो वह मुझ को ढूंढने में श्रम और धन आदि का व्यय करें ऐसा मैं नहीं चाहता। इसमें यह तर्क किया जा सकता है कि जब स्वामी जी ने अपने प्रारम्भिक जीवन की सभी घटनाएं संक्षेप मे लिख ही दीं और यह भी लिख दिया कि उन्होंने कब गृह-त्याग किया था और सिद्धपुर के मेले में वे पिता जी द्वारा कैसे पकडे गए थे तथा उनके बन्धन से पुन: कैसे मुक्त हो गए थे, तो क्या इन सब विवरणो को पढकर उनके माता-पिता को यह निश्चय नहीं हो सकता था कि इन पंक्तियो का लेखक उनका पुत्र ही है, जो अब स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हो चुका है । अत: उनके माता-पिता तो उनके पास इतनी जानकारियों के आधार पर (यदि वे तब तक जीवित होते और उन्हें यह विवरण पढ़ने को मिले होते) पहुंच ही सकते थे । अत: स्वामी जी का पूर्वोक्त लेख वास्तविकता का द्योतक नहीं है। वास्तविकता तो यही प्रतीत होती है कि स्वामी जी को पता था कि उनके माता-पिता अब इस दुनिया मे नहीं हैं और वे चाहते थे कि कोई व्यक्ति उनके निवास स्थान और माता-पिता का अनुसधान करते हुए उन तक न पहुंच सके, जैसे कि सन्यासियों की प्राय: इच्छा होती है । इसीलिए पं लेखराम और बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को इन बातों का पता करने में काफी कष्ट उठाने पड़े, तब कहीं जाकर स्वामी जी का जन्म-स्थान टंकारा और उनके पिता का नाम कर्षन जी तिवाडी निश्चित किया जा सका जिन्हें कुछ लोग अभी तक विवादस्पद बनाए हुए हैं ।

पं. मोतीलाल नेहरू, गायत्री मंत्र और महर्षि दयानन्द

❑ मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति, सुकिरण अ/१३, सुदामा नगर, इन्दौर-४५२००७ (म.प्र.)

इस बृहत्तर हिन्दू समाज (मूलत: आर्य जाति) में एक भ्रान्त धारणा कुछ विद्वेषियो द्वारा फैलाई गई है । इन विद्वेषियों द्वारा अनेकों बार कहा गया है कि महर्षि तथा आर्य समाज के लोग 'गायत्री मंत्र' को महत्व नहीं देते हैं तथा गायत्री मत्र का जाप निरर्थक बताते रहते है । इन भोले हिन्दुओ को यह पता नहीं है कि इस गायत्री मत्र का प्रचार आर्य समाज तथा महर्षि दयानन्द ने इतना अधिक किया है जितना 'गायत्री मंत्र' के नाम पर गायत्री मूर्ति बना कर उसके साथ अपनी और अपनी पत्नी की पूजा कराने वाले गायत्री पंथ भी नहीं कर सका है ।

महर्षि दयानन्द ने सामान्य तथा नैमित्तिक यज्ञ के पश्चात् शेष बचे आज्य (घृत) तथा सामग्री से गायत्री मत्र द्वारा ही शेष आहुति डलवाने की व्यवस्था की है । महर्षि की दृष्टि मे :

(1) ओ३म् भूर्भुव: स्व: । तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात् ।

(2) ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आ सुव । तथा

(3) स्तुता मया वरदा वेद माता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम् ।

आयुप्राणम् प्रजाम् पशुम् कीर्ति ब्रह्मवर्चसम् द्रविणम् मह्यम् दत्वा व्रजत् ब्रह्म लोकम्॥

उपरोक्त तीनों मंत्र महर्षि को अत्यन्त प्रिय थे । इतना ही नहीं, महर्षि दयानन्द के प्रामाणिक जीवन चरित्र के अनुसार जब ऋषि ने अपना अन्तिम समय (मृत्यु) जान लिया तब उन्होंने बाईं करवट ली और गायत्री मंत्र का जाप करने लगे थे। हां, गायत्री मंत्र का जाप करने की विधि अर्थसहित मनन आदि करने की विधि विशिष्ट प्रकार की होती है।

पौराणिकों की भांति जप, अनुष्ठान तथा मोटी दक्षिणा आदि का प्रलोभन नहीं। आर्य समाज भक्त और भगवान के बीच में पुरोहित, पंडे या पुजारी की मध्यस्थता बिल्कुल नहीं मानता। पिता और पुत्र के मिलन, माता और संतान के मिलन मे कोई मध्यस्था या माफिया की आवश्यकता नहीं है। जप, स्तवन आदि स्वय यजमान बन कर परमात्मा की स्तुति, प्रार्थनोपासना करना अनिवार्य है । इस प्रकार गायत्री मंत्र के जाप का फल जाप करने वाले को होता है। पुरोहित पडे से या किराये पर जप करवाना घोर पाखण्ड और अधविश्वास है।

महर्षि दयानन्द गायत्री मंत्र सबको सिखाया करते थे। संस्कारविधि मे महर्षि दयानन्द लिखते हैं-सन्यस्त होने के पश्चात् स्वाध्याय निरन्तर होते रहना चाहिए। ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि में प्रमाद न हो तथा स्वाध्याय में अनाध्याय न हो । इन समस्त प्रमाणो से सिद्ध होता है कि महर्षि दयानन्द और उनके गुरु विरजानन्द गायत्री मंत्र पर अगाध श्रद्धा रख सबको गायत्री का जाप करने का उपदेश दिया करते थे । उनके इस कार्य का सटीक उदाहरण इस प्रकार है-

जिन दिनो स्वामी श्रद्धानन्द गुरुकुल कांगड़ी के सर्वेसर्वा थे, तब एक बार गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर उन्होंने पं जवाहरलाल नेहरू के पिता श्री पं मोतीलाल जी नेहरू को मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया। पं मोतीलाल जी नेहरू ने अपनी स्वीकृति दे दी तथा निश्चित समय पर गुरुकुल पधार गए । निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार उन्हें मंच पर व्याख्यान के लिए आहूत किया गया। उन दिनो गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव जन आकर्षण का केन्द्र होता था। सभा में बहुत बडी संख्या श्रोताओं की थी । माननीय प्रमुख वक्ता पं. मोतीलाल जी नेहरू ने मंच पर खडे हो कर सर्वप्रथम गायत्री मंत्र का विधिवत् उच्चारण किया, तत्पश्चात् उन्होंने अपना सारगर्भित भाषण दिया। हम यहां उनके भाषण का उल्लेख या समीक्षा करना नहीं चाहते, अपितु उन्होने गुरुकुल मंच से 'गायत्री मंत्र' के शिक्षक गुरु महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में जो सत्य घटना सुनाई, उससे उपस्थित सभी श्रोतागण भाव-विभोर हो उठे ।

पं. मोतीलाल नेहरू ने एक अति महत्वपूर्ण रहस्य का उद्घाटन किया। उन्होंने कहा :

यह बात उन दिनो की है, जब महर्षि दयानन्द आगरा मे आगरा के महाविद्यालय के निकट प्रागण मे स्थित एक बगीचे मे ठहरे हुए थे। हम 15-20 युवक प्रतिदिन दोपहर पश्चात् फुटबाल खेलने जाया करते थे । सायकाल खेल समाप्ति के पश्चात् एक दिन मैं अपने कुछ साथियो के साथ बगीचे मे ठहरे सन्त (महर्षि दयानन्द) की कुटिया मे चला गया और श्रद्धासहित प्रणाम कर सामने बैठ गया । हमारे आगमन की सूचना पाकर स्वामी जी भी बाहर रखे तख्त पर आकर विराजमान हो गए । हम सब लोगों ने उनसे कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की । उन्होने कहा-मैं उपदेश देने से पूर्व आप लोगो से कुछ चर्चा करना चाहता हू । युवको के समूह मे मैं ही सबसे आगे बैठा था । स्वामी जी ने मेरा नाम, धाम और काम पूछा। मैंने सब कुछ सही-सही बता दिया। उन्होंने प्रत्युत्तर मे कहा-

'युवक तुम ब्राह्मण बालक प्रतीत होते हो ?'

मैंने कहा-'हां स्वामी जी, मैं कश्मीरी ब्राह्मण हूं और यहां पढने आया हूं ।'

स्वामी जी ने प्रति प्रश्न किया-ब्राह्मण बालक होने के कारण क्या तुम्हे 'गायत्री मंत्र' याद है ?

यह प्रश्न सुन कर मैं निरुत्तर हो गया । यद्यपि मेरा पूर्व मे यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका था और पुरोहित जी ने सम्भवत: गायत्री मंत्र उच्चारित भी कराया था किन्तु न तो मुझे याद रहा और न पुरोहित जी ने इसके विषय में कभी मुझसे पूछा ।

स्वामी जी से नम्रतापूर्वक सिर झुकाते हुए शर्मीले ढंग से कह दिया-नहीं, स्वामी जी मुझे गायत्री मंत्र नहीं आता । मैं पूरी तरह भूल गया हूं ।

पूजनीय स्वामी जी यह सुनकर मुस्करा दिए । उन्होने एक बार हम सब युवको को दृष्टि भर कर देखा और फिर कुछ सोचा । उन्होने मुझसे पूछा-क्या तुम गायत्री मंत्र सीखना चाहते हो ? मैंने तत्काल उत्तर दिया हां, स्वामी जी महाराज, मुझे गायत्री मत्र की दीक्षा देने की कृपा करे।

पं मोतीलाल नेहरू यह कहते हुए श्रद्धावश थोडे भावुक हो उठे । श्रद्धालु की भावना का सत्कार करते हुए उन्होने आगे कहना शुरू किया । इसके पश्चात् ऋषिवर दयानन्द ने मुझे पद्मासन लगा कर बैठने के लिए कहा । मै तत्काल उचित स्थान पर आसन लगा कर उनके सम्मुख बैठ गया। स्वामी जी के मुख मडल का इतना तेज था कि उनसे आख से आख मिला कर बैठना अति कठिन था फिर उन्होने मुझे नमस्ते की मुद्रा मे नेत्र बद कर, दोनो हाथ जोड कर हृदय के निकट लाने के लिए कहा । मेरे द्वारा यह सब करने के पश्चात् ऋषि ने गायत्री मत्र धीरे-धीरे बोल कर उसे दोहराने के लिए कहा । मैने वैसे ही किया। उन्होंने मुझे गायत्री मत्र के अर्थ को भी समझाया । मुझे स्मरण है कि मै स्वामी जी के निकट लगातार 3-4 दिन तक आता रहा और उन्हें मौखिक रूप से गायत्री मत्र सुनाता रहा । मेरे इस क्रम का मेरे साथियो पर बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा फिर एक दिन एकाएक स्वामी जी कही अन्य नगर हेतु प्रस्थान कर गए । इसलिए मैं महर्षि दयानन्द को अपना दीक्षा गुरु मानता हूं ।

महर्षि दयानन्द और गायत्री मंत्र की इस रहस्यपूर्ण वार्ता को सुन कर मंच पर उपस्थित सब विद्वान् तथा विशाल जनसमुदाय के लोग जरा जोश मे आए और उन सभी ने मिल कर 'महर्षि दयानन्द की जय' का उद्घोष किया। इस उद्घोष लगाने वालो मे पं मोतीलाल नेहरू स्वयं भी थे।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द गायत्री मंत्र को सदैव अति महत्व दिया करते थे । किन्तु उसके चमत्कारवाद तथा किराये से जप अनुष्ठान कराए जाने का सदैव विरोध किया करते थे । उन्होने अपने समस्त ग्रन्थो मे यत्र-तत्र प्रसगानुसार गायत्री मत्र की व्याख्या की है । इन्हीं भावनाओ के अनुरूप आर्य समाज 'गायत्री मत्र' को स्वीकार करता है, जो कि स्तुत्य है।

गुजरात के भूकम्प राहत कार्यों की संक्षिप्त रिपोर्ट

❒ *कैप्टन देवरत्न आर्य (उपप्रधान : सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली)*

गुजरात मे आए भूकम्प ग्रस्त क्षेत्रो मे सहायतार्थ आर्य समाज के कार्यो के अवलोकन हेतु विभिन्न गावो मे गया । भुज एव गान्धीधाम क्षेत्रो मे आर्य समाज गान्धीधाम के सक्रिय कार्यकर्त्ता एव मन्त्री श्री वाचोनिधि एव प्रधान श्री पुरुषोत्तम जी पटेल व अन्य सदस्यो के माध्यम से जो सहायता कार्य भूकम्प क्षेत्रो मे हुआ है वह आर्य समाज के इतिहास की एक प्रमुख घटना है, व स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। आर्य समाज गान्धीधाम के अधिकारियो के साथ मैंने अनेक भूकम्प पीडित क्षेत्रो का दौरा किया और सहायता कार्यो का अवलोकन किया।

लगभग 25000 की आबादी वाला रतनलाल गांव जो गान्धीधाम से 35 किलोमीटर दूर है, पूर्णतया नष्ट हो गया है । वहा मलवे के ढेर के अतिरिक्त कुछ भी देखने को नहीं मिला । अनेक गैर सरकारी सस्थाए वहा राहत कार्य मे लगी हुई है । इस गाव में गुरुकुल गौतम नगर दिल्ली के ब्रह्मचारियो ने जहा आर्य समाज गान्धीधाम की ओर से दवाईया, अनाज, कम्बल आदि राहत सामग्री का वितरण किया वहा मलवे मे से शवो को निकालने का अद्वितीय कार्य किया। शवो का अग्नि संस्कार किया और उस पर कई बोरी हवन सामग्री डाली ताकि पर्यावरण को कोई हानि न पहुंचे व बदबू आदि समाप्त हो जाए ।

इसी प्रकार टप्पर, दुधई, वरसामेडी, पसुडा, सुखपर, लुडवा, भीमासर, आधोई, शिकारपुर, जगी, ललियाना, बोध आदि गांवो मे राहत सामग्री का वितरण किया गया ।

आर्य समाज गान्धीधाम ने अपने राहत कार्यो को चार भागो मे बाटा–मुद्रा विभाग, गाधीधाम विभाग, अजार विभाग और भुज विभाग। सम्पूर्ण भारत वर्ष से प्राप्त सहायता सामग्री को इन विभागो मे उनकी आवश्यकतानुसार बांटा जाता रहा ।

इसमे सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र भजाऊ और अंजार था । हम अंजार क्षेत्र में गए लगभग सभी भवन मिट्टी के ढेर मे परिवर्तित हो चुके थे । पूरा सरकारी तन्त्र वहां मुस्तैदी से कार्यरत् था। रियलान्स कम्पनी ने इस गाव से मलवे के ढेर हटाने का उत्तरदायित्व लिया। अनेक मशीने व ट्रक गांव से मलवे उठाने का कार्य कर रही थी।

आर्य समाज ने अंजार मे अपना केन्द्र खोला हुआ था जिसमें आर्य समाज अंजार के सदस्य भी अपना सक्रिय योगदान कर रहे थे ।

दिल्ली, पानीपत, पोरबन्दर, धगन्धा आदि में आर्य वीरदल के लगभग 100 आर्य वीर इन गांवो मे शव ढूंढने और उन्हें दफनाने मे लगे हुए थे । अनेक जीवित व्यक्तियों को बचाने का श्रेय भी उन्हे मिला। इसका नेतृत्व किया– श्री वीरेन्द्र, श्री राजसिंह, श्री विनय आर्य, श्री सुखवीर सिंह, श्री अजय आदि ने । आचार्य आर्य नरेश भी इनके साथ इस कार्य मे लगे रहे । अनेक सहायता सामग्री विशेषकर तम्बू, कम्बल, अनाज दवाईयां आदि वितरित की गई। आर्य वीर दल के नवयुवको ने जिस निर्भीकता एवं उत्साह से यहां कार्य किया– आर्य समाज के लिए यह गर्व की बात है ।

हम वहां से ही अंजार क्षेत्र के एक गाव सिनोग्रा में गए। आर्य समाज जोधपुर के आर्य जनों ने जो कार्य वहां किया उसको देखकर हम और भूकम्प पीड़ित नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सके । लगभग एक एकड़ भूमि में उन्होंने अपना कैम्प सिनोग्रा ग्राम में बनाया हुआ था। राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री अशोक गहलोत की पूज्या माता जी के नाम से स्थापित न्यास की ओर से सहायता सामग्री आई । कैम्प के बीच मे उन्होने यज्ञशाला बनाई है जहां इस गाव के पर्यावरण को शुद्ध करने के लिए यज्ञ होता रहता था । इस दल का नेतृत्व कर रहे है–श्री राजेन्द्र सिंह सोलंकी एवं श्री राम सिंह आर्य जोधपुर के आर्य जन इस गांव में निम्न सामग्री लेकर आए हैं ।

(1) डाक्टर गतपत सिंह एम.डी. व एक कम्पाऊन्डर (2) 100 टेन्ट, खूटी और रस्सी सहित, (3) 1000 कम्बल, (4) 1000 चादर, (5) 1000 स्टील प्लेट, ग्लास व 2000 कटोरी (6) 4 जे.वी.सी. (मलवा साफ करने के लिए) (7) 4 डमपर (8) 15000 मिनरल वाटर की बोतलें ।

इन्होंने 1000 परिवारों में 1 कम्बल, 1 चादर, 1 थाली, 1 ग्लास और 2 कटोरी के सेट करके वितरित किए । जे. व्ही, सी. व डमपर के माध्यम से अनेक शवो को निकाला । इस दल मे 15 से अधिक व्यक्ति काम कर रहे हैं । जिसमें डाक्टर, एडवोकेट जैसे उच्च शिक्षित व्यक्ति शामिल हैं । साथ ही 30 आर्य वीर भी ।

इसके पश्चात् हम भुज क्षेत्र मे गए। वहां जो भूकम्प से तबाही हुई उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । पूरा गांव मलवे के ढेर मे परिवर्तित हो गया है । लगभग 100 आर्य वीर इस क्षेत्र मे काम कर रहे थे । सैंकड़ों लाशों को मलवे से निकाल चुके थे, व कई जीवित व्यक्ति भी इन्होने निकाले। आर्य समाज भुज के कार्यकर्त्ता रात-दिन सहायता कार्य में लगे हुए थे वहां वायु शुद्धि और मन शुद्धि हेतु सारे समय यज्ञ होता रहता है । लगभग 4000 व्यक्तियों की मध्याह्न एवं रात्रि को भोजन व्यवस्था चल रही है, जिसमें सब धर्मों और मजहब के लोग लाभ प्राप्त कर रहे हैं । भुज आर्य समाज के प्रधान डा. बी.एच. पटेल एव अन्य आर्य जन 24 घण्टे भुज आर्य समाज के प्रांगण में अपनी सेवाएं दे रहे हैं । डा. योगेश वेलाणी ने एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया । भूकम्प के पश्चात् उन्होने अपनी दवाओ की दुकान को जन साधारण के लिए निःशुल्क खोल दिया । जिस जो भी दवा चाहिए वहां से प्राप्त कर सकता था।

समस्त गुजरात क्षेत्र मे आर्य समाज की भारत की विभिन्न आर्य समाजों और गैर आर्य समाजी संस्थाओं द्वारा लगभग 100 ट्रक सामग्री प्राप्त हो चुकी है । मुम्बई से पांच टन प्लास्टर आफ पेरिस, 40 कारटून विभिन्न दवाओं के, लगभग 5000 कम्बल, 1500 सामूहिक आवास के बडे टेन्ट, 400 कपड़े के बाक्स जो इंगलैण्ड से प्राप्त हुए, वितरण के लिए भेजे गए । यह सामग्री आर्य विद्या मन्दिर मुम्बई के छात्रों व रामानन्द आर्य डी.ए.वी. कालेज के छात्रों तथा आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई की ओर से एकत्रित की गई थी । गुजरात भर की आर्य समाजों विशेषकर राजकोट, पोरबन्दर, जामनगर, सांबरिला सैजपुर–अहमदाबाद, धारान्ध्रा, टंकारा आदि स्थानों से कार्यकर्त्ता राहत सामग्री लेकर आए । ब्र. धर्मबन्धु के नेतृत्व में अनाज, कम्बल, टेन्ट बांटे गए। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली द्वारा लगातार जीवन्त सम्पर्क रख कर टेन्ट, कम्बल, खाद्य सामग्री, हवन सामग्री भिजवाई ।

प्रसन्नता की बात है कि अनेक गैर आर्य समाजी संस्थाओं ने आर्य समाज पर विश्वास और भरोसा कर उनके द्वारा एकत्रित राहत सामग्री को आर्य समाजों में हा वितरण के लिए भेजा ।

आर्य समाज पानीपत, बैंगलूर, रानीबाग, हैदराबाद, ब्यावर, अजमेर, धारान्ध्रा आदि स्थानों से आर्य समाज के स्वयं सेवक राहत सामग्री लेकर आर्य समाज गान्धीधाम पहुंचे । सेना के ब्रिगेडियर श्री मलिक की धर्मपत्नी यहां एक सप्ताह रही और राहत कार्यों में जुटी रही, इस सहायता कार्य में देश के विभिन्न विशिष्ट नेता विद्वान् व कार्यकर्त्ता यहां पहुंच गए थे । जिसमें मुख्य हैं स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती, स्वामी सुमेधानन्द जी सरस्वती, स्वामी इन्द्रवेश जी, आचार्य आर्य नरेश, श्री जगदीश जी आर्य (दिल्ली), ब्र राजसिंह जी, ओम प्रकाश झंवर, श्री कल्याणदेव आर्य, आचार्य ज्ञानेश्वर जी, ब्र. धर्मबन्धु जी आदि। गुरुकुल गौतम नगर से 20 ब्रह्मचारी, झज्जर के ब्रह्मचारी– सार्वदेशिक आर्य वीर दल व अन्य प्रदेशों के लगभग 150 आर्य वीर पूरे भारत से पधारे। देश-विदेश से दूरभाष पर सहायता की पूछताछ कर तुरन्त सहायता भेजी गई । सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली द्वारा श्री विमल वधावन जी सतत् सम्पर्क में रहे।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

(पृष्ठ 2 का शेष)

गलत का विरोध करने और सही का पक्ष लेने में वह कभी पीछे नहीं हटता, कभी नहीं कतराता ।

आप शिवाजी को खोजिए और स्वयं समर्थ रामदास बन जाइए । दयानन्द को खोजकर विरजानन्द का स्थान ले लीजिए। विवेकानन्द को बनाने वाले राम कृष्ण परमहंस बन जाइये । यह सब आज भी हो सकता है। भीष्म प्रतिज्ञा करने वाले देवव्रतों से यह युग भी खाली नहीं है ।

महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता सेनानियो की दीक्षा के लिए वर्धा में, साबरमती में आश्रम की स्थापना की थी। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत युवा वहां पहुंचने लगे थे, किन्तु गांधी जी से गलती हुई । वे अपने शिष्यों को परख न सके। केवल धन के त्याग और भोली सूरत देखकर जवाहर लाल को उत्तराधिकारी बना बैठे । काश, उन्होंने जय प्रकाश, पटेल या लोहिया को यह दर्जा दिया होता तो देश आज न होता बल्कि भारत स्वरूप कुछ और ही होता । ध्यान रहे दोनो युगो के भीष्म अभी जवानी की ड्यौढ़ी पर पूरी तरह पांव नहीं रख पाए थे।

ऊपर दो देवव्रतों और महात्मा गांधी का नाम लिया गया है। महात्मा गांधी के इन आश्रमों में उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पर आधारित सत्याग्रह, असहयोग और अवज्ञा आन्दोलन का सही प्रशिक्षण पाने की इच्छा से भारत के सभी भागों से देशभक्त युवा एवं युवतियां पहुंचकर वहां रह रहे थे। इन युवाओं में जय प्रकाश और प्रभा जी भी थे। देश को स्वतन्त्र कराने के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर डालने की अदम्य भावना अग्नि की भांति इन दोनों के हृदय मे प्रज्वलित थी। ग्रामादि क्षेत्रो में युवक एवं युवतियों को साथ-साथ स्वाधीनता का कार्य करते देख लोग बात न बनाये, गलत धारणा का शिकार न हो जाये, यह सोचकर इन्होंने गांधी जी के प्रवास की पूर्णता की प्रतीक्षा न करके विवाह कर लिया।

महीने दो महीने बाद जब गांधी जी आश्रम वापस आए तो इस समाचार को सुनकर बहुत लाल पीले हुए बोले, "मैंने यह आश्रम राष्ट्रधर्म की साधना के लिए खोला है। यह मैरिज ब्यूरो नहीं है। पहले यहां की मर्यादा को सुचेता और कृपलानी ने तोडा । अब उसे दोहराकर इस आश्रम" को तुमने बदनाम किया है । गांधी जी इतने अशान्त थे कि उन्होंने जय प्रकाश और प्रभा जी की कोई सफाई सुनना स्वीकार नहीं किया। परिणाम स्वरूप ये दोनों सारी रात सो नहीं पाये, रात भर सोच-विचार करते रहे। रात भर के विचार मन्थन को अटल संकल्प के रूप में सवेरे गांधी जी को सुनाया, 'बापू, आपने हमे समझने में गलती की है, फिर भी आपकी नाराजगी सहे जाना हमारे लिए असम्भव है। अत: हमने निश्चय किया है कि विवाहित होते हुए भी हम आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करेगे,' अपने इस निश्चय को इस युवा दम्पति ने आमरणान्त निभाया। सदा साथ रहते हुए निभाया । महाभारत कालीन भीष्म के साथ इस चरित्र को भी तोल देखे, पति के व्रत का अनुसरण करने वाली प्रभा जी ने पतिव्रत्य को सच्ची सार्थकता प्रदान की थी। 'पुण्य वरान् निबोधत' का फल महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता की पदवी के रूप में प्राप्त हुआ ।

बात गुरु की थी 'हमें बोध कैसे हो ?' इन उदाहरणों के आलोक में यह कहना होगा कि अपने बच्चों पर इतनी सख्त दफा एक सौ चवालीस न लगाओ कि वे चौबीसों घण्टे आपको अपनी पाठ्य पुस्तकें ही पढते दिखाई दें। आपका दबाव उन्हे पाठ्य के प्रति इतनी ऊब पैदा कर देगा कि वे पाठ्य पुस्तको के मध्य कुछ ऐसा रखकर पढेगे जो सर्वथा अनभीष्ट है। उन्हे अपने सा[illegible] आर्य समाज मे लाईये, यदि आर्य समाज में परिवार को साथ लाने मे शर्म लगती है तो उन्हे किसी और आर्य समाज के सत्संग मे भेज दीजिए पर भेजिये सत्सग मे, क्लीब पैदा करने वाले क्लबो में नही। पाठ्य पुस्तको के अतिरिक्त अच्छे ग्रन्थो को पढने की प्रेरणा दीजिए । इस प्रकार उनका बोध ही आपको सही रास्ता दिखाएगा । बुद्ध बना गौतम सिद्धार्थ शुद्धोदन को धर्म की दीक्षा देगा । बालक गोबिन्द रा[illegible] पिता तेग बहादुर को धर्म प[illegible] बलिदान होने की प्रेरणा देगा । बालक नचिकेता पिता को यज्ञ का फल प्राप्त करायेगा ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती : पश्चिम की दृष्टि में का भव्य प्रकाशन

जोधपुर-आर्य जगत् को यह जान कर हर्ष होगा कि आर्य समाज की 125वीं स्थापना तिथि पर आर्य समाज के मूर्धन्य लेखक, गवेषक तथा विद्वान् डा. भवानी लाल भारतीय द्वारा संकलित और सम्पादित **स्वामी दयानन्द सरस्वती : पश्चिम की दृष्टि में** शीर्षक का भव्य प्रकाशन अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन मुम्बई के अवसर पर किया जा रहा है । इसमें ग्रेट, ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, नर्वे, मैक्सिको, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि पाश्चात्य देशो के 63 विद्वानों, लेखकों, पत्रकारों, शोधार्थियों, प्राध्यापकों, राजनेताओं तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के दयानन्द विषयक उद्गारों तथा उनकी समतियो को संकलित किया गया है । यह ऐतिहासिक ग्रन्थ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें समग्र पश्चिम के मनीषियों, चिन्तकों तथा विचारकों के दयानन्द सम्बन्धी विचारों को समावेश किया गया है । इस ग्रन्थ के अध्ययन से पाठकों को पता चलेगा कि यूरोप, अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया महाद्वीपों के प्राच्य विद्या विद् विद्वान्, पत्रों के सम्पादक, भारत में कार्यरत अंग्रेज नौकरशाह, यहां तक कि ब्रिटिश भारत का गुप्तचर विभाग ऋषि के बारे में क्या सोचा करता था ? अग्रिम ग्राहक 100 रुपए निम्न पते पर भेज कर अपनी प्रति आरक्षित करा ले। उनसे डाक व्यय नहीं लिया जाएगा ।

-डा. भवानी लाल भारतीय,
8/423 नन्दनवन जोधपुर, दूरभाष 0281-755883

(पृष्ठ 6 का शेष)

मुम्बई से श्री ओंकारनाथ जी आर्य व चेम्बूर आर्य समाज के मन्त्री श्री चन्द्रभूषण गिरोत्रा भी सतत् सम्पर्क कर राहत सामग्री को भेजते रहे।

दिनाक 7-2-2001 को जन सेवा दल पानीपत 4 ट्रक राहत सामग्री लेकर आर्य समाज गान्धीधाम पहुचा । आठ सदस्यो का यह दल श्री कलाश ग्रोवर के नेतृत्व मे, आटा, दाल, गुड भुने चने, चावल, कम्बल, टन्ट नई साडिया, साबुन, टूथ पेस्ट, सब्जिया आदि वितरण के लिए लेकर आया। इन ट्रको मे लगभग 5 लाख रुपए का सामान था । इस दल को जब राहत कार्य के लिए कहा गया तो उन्होने कहा हमे तो सडी लाशों को निकाल कर दाह सस्कार का काम ही दीजिए ।

आर्य समाज गान्धीधाम को दिल्ली से लगभग 10 टन हवन सामग्री प्राप्त हुई, जिसे उन्होंने सभी श्मशान भूमियों पर भेज दिया। इस आदेश के साथ की प्रत्येक दाह संस्कार पर डाल दिया जाए और पर्यावरण को दूषित होने से बचाया जाए ताकि महामारी न फल सके ।

कस्टम लेडीज एसोसिएशन की महिलाओ ने एक ट्रक सामान जिसमे प्लास्टिक की बाल्टी, टेन्ट व जावनोपयोगी सामान आर्य समाज गान्धीधाम को वितरण हेतु दिया । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 6 विद्यार्थी आर्य समाज भवन में ठहरे व राहत कार्यों में भाग लिया। भौरुका रोड लाईन्स के मालिक श्री नरेश अगवाल ने एक ट्रक सामग्री, एक लाख नकद भेजा और कहा मे पाच लाख तक राहत सामग्री आपको भेजूगा । गान्धीधाम आर्य समाज के पास लगभग 100 ट्रक राहत सामग्री सारे भारत वर्ष से पहुची ।

इकॉनामिक ट्रान्सपोर्ट आर्गेनाईजेशन ने सम्पूर्ण भारत से बिना किराया लिए राहत सामग्री गान्धीधाम भेजी ।

कैप्टन देवरत्न आर्य ने आर्य मडिकल रिलीफ मिशन की वातानुकूलित एक्स-रे वाहन को पूरे कच्छ मे 500 एक्स-रे फिल्म के साथ भेजा जिसने गावो मे जाकर उन फैक्चर पीडित व्यक्तियो के एक्स-रे निकाले जो अस्पताल तक नहीं जा सकते थे ।

अजमेर से श्री दत्तात्रेय वाब्ले ने एक ट्रक माल भेजा व पुर्नवास योजना हेतु एक लाख रुपए दिए । वैदिक विद्वान्, स्व आचार्य भद्रसेन जी की स्मृति में चल रही नई रुग्ण वाहिका अजमेर से अंजार गांव पहुंची और श्री सोमरत्न आर्य के नेतृत्व में कार्य करती रही ।

आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई द्वारा किए जाने वाले राहत कार्यों से प्रभावित होकर आगरा निवासी आर्य समाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता श्री उमेशचन्द्र जी गुप्त कोषाध्यक्ष आर्य उप प्रतिनिधि सभा जनपद आगरा ने विभिन्न आर्य समाजों एवं सेवा भावी सज्जनो से 50,000 एकत्र कर मुम्बई भेजे । जिसका उपयोग भी भूकम्प पीडितो के लिए किया जा रहा हैं ।

इस हृदय विदारक दृश्यों को जहा देखकर मन में दु:ख और शोक होता रहा वहां भारत वर्ष की समस्त आर्य जनता ने जिस समर्पण एव साहस के साथ सामग्री भेजकर जो उत्साह दिखाया उससे मन बड़ा प्रफ्फुलित हुआ । ''ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है'' इसका सार्थक व व्यवहारिक रूप कच्छ में देखकर यही विचार आया कि दयानन्द की आर्य समाज का भविष्य बहुत ही उज्जवल है, जिसके हम सब अनुयायी है ।

आर्य समाज के इन कार्यो को देखकर गुजरात सरकार ने एक अध्यादेश जारी कर गान्धीधाम पुराना नगर एवं गलपादर गाव को दत्तक गांव के रूप में देकर उसकी आवश्यकता और पुनर्वास का दायित्व आर्य समाज गान्धीधाम को सौंप दिया ।

आर्य जगत् के लिए प्रसन्नता की बात है कि भारत सरकार ने इस क्षेत्र के विकास के लिए जिन गैर सरकारी सस्थाओं के माध्यम से कार्यवाही करने का निर्णय किया, उनमें आर्य समाज गान्धीधाम का नाम सर्वोपरी था। श्री अरुण जेतली जहाजरानी मन्त्री भारत सरकार ने स्थानीय सरकारी विभाग की सिफारिश पर आर्य समाज गान्धीधाम को अनाथालय एवं स्कूल निर्माण हेतु पाच एकड़ भूमि देने का प्रस्ताव किया, जिसे आर्य समाज ने स्वीकार कर लिया है एवं उसकी प्रोजैक्ट रिपोर्ट तैयार की जा रही है। स्मरण रहे आर्य समाज गान्धीधाम ने संस्कार केन्द्र नाम से एक केन्द्र खोला है, जिसमें 30,000 वर्ग फूट का निर्माण कार्य हो चुका है । यह लगभग 60 प्रतिशत बनकर तैयार है और इस केन्द्र का शिलान्यास गुजरात के माननीय राज्यपाल श्री सुन्दर सिंह जी भण्डारी के करकमलों से सम्पन्न हुआ है ।

आर्य समाज गान्धीधाम व भुज के अधिकारियों की जितनी प्रशंसा की जाय कम है । उन्होंने भारत वर्ष से आये कार्यकर्त्ताओं के साथ सैंकड़ों शवों को मलवे से निकलवाया और जगह-जगह पर यज्ञ कराये।

सर्दी भरी रातों में बाहर निकल कर सडक के किनारे जो व्यक्ति बिना कम्बल के कापने हुए सो रहे थे उन पर चुपचाप कम्बल ओढाये, 24 घण्टे रसोई चलाई, गैस कटर से लोहे की छडे काटकर जीवित व्यक्ति निकाले, बाहर से आने वाले ट्रकों का मार्गदर्शन किया। पशुओ के लिए चारा, अन्त्येष्ठी के लिए लकड़ी, हवन सामग्री की व्यवस्था की । अस्पताल व डाक्टरों को दवाईयां और प्लास्टर आफ पेरिस पहुंचाया एवं समस्त गुजरात के भूकम्प ग्रस्त इलाकों का दौरा कर उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न किया।

अब समय आ गया है कि हम समस्त विश्व को कच्छ में किए गए आर्य समाज के परोपकारी कार्यों से परिचित करा कर आर्य समाज के परोपकारी ऐतिहासिक इतिहास की रचना करें और इस कार्य हेतु हमारा अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन जो दिनाक 23 से 26 मार्च 2001 तक होने जा रहा है, उसमें इसका स्वरूप रखें ताकि आम जनता तक हमारे किए हुए कार्य पहुंच सकें ।

आर्य समाज, सैक्टर 22-ए चण्डीगढ़ का चुनाव

आर्य समाज सैक्टर 22-ए, चण्डीगढ के दिनाक 28-1-2001 को वर्ष 2001-2002 के लिए हुए चुनाव मे निम्नलिखित पदाधिकारी एव सदस्य चुने गए।

पदाधिकारी .-1 श्री राम रत्न महाजन-प्रधान । 2 श्री केवल कृष्ण महाजन-उप प्रधान (संगठन) । 3 श्री देसराज थापर-उप प्रधान (सगठन, यात्री निवास) । 4 श्री वेद प्रकाश आर्य-उप प्रधान (औषधालय)। 5 श्री बुधराम आर्य-महामन्त्री । 6 श्री साधुराम शर्मा-मन्त्री (सगठन, वेद प्रचार)। 7 श्री ईश्वर कुमार-मंत्री (जन सम्पर्क) । 8 श्री राजेन्द्र कुमार चौहान-मत्री (वेद प्रचार) । 9 श्री केवल कृष्ण महाजन-कोषाध्यक्ष । 10. श्री अतर सिह-उप-कोषाध्यक्ष। 11 श्री राम कुमार गुप्ता-पुस्तकाध्यक्ष।

अन्तरंग सदस्य :-1 श्री निर्मल खोसला, 2 श्री गुरबक्श राय भल्ला। 3 श्री नारायण सिंह सैनी, 4 श्री ओम् प्रकाश सभरवाल। 5 श्री मस्त राम पाल । 6 श्री शम्भु राम चौहान । 7 श्री राकेश आर्य ।

आर्य समाज सिरकी बाजार, भठिण्डा की गतिविधियां

आर्य समाज मन्दिर सिरकी बाजार शैडवाली गली भठिण्डा की ओर से मकर सक्रान्ति का पर्व मनाया गया, दिनाक 14 1 2001 दिन रविवार को शास्त्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में, कोषाध्यक्ष श्री कृष्ण लाल जटाना के निवास धोबी बाजार में हवन यज्ञ व सत्संग का कार्य 3-30 बजे से 5 बजे सायं तक सम्पन्न हुआ जिसमे स्त्री आर्य समाज, तरसेम आर्य (गोनियाना) मेहता जी, बलदेव आर्य, कल्प वासुदेव, भगवान दास, विद्याधर, आर्य समाज के मन्त्री श्री बिहारी लाल व सभी आर्य प्रेमियों ने भाग लिया । 21-1-2001 को श्री धर्मपाल आर्य के घर लक्ष्मी गली अमरीक रोड भठिण्डा मे श्री वीरेन्द्र शास्त्री की अध्यक्षता में हवन-यज्ञ सम्पन्न हुआ ।

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा में प्रात: प्रतिदिन दैनिक हवन 6.30 बजे से 7.50 बजे तक होता है । आदर्श सिलाई व कढ़ाई केन्द्र साय 3.30 बजे से 5 बजे तक फ्री गरीब कन्याओ की सहायता के लिए चलता है।

दिनांक 4 2 2001 दिन रविवार आर्य समाज सिरकी बाजार शैडवाली गली भठिण्डा की ओर से प्रधान बलदेव राज आर्य के निवास स्थान पर शास्त्री वीरेन्द्र जी की अध्यक्षता में यज्ञ सम्पन्न हुआ । जिसमे बलदेव आर्य सपत्नाक, प्रवीण आर्य सपत्नीक, नवनीत गुप्ता, डा मनोहर लाल मुख्य यजमान रहे । स्त्री आर्य समाज, आर्य वीरदल, कल्पवासुदेव मन्त्री कृष्ण लाल, विद्याधर व सभी आर्यों ने बडे उत्साह से हवन यज्ञ व भजन संगीत का आनन्द लिया ।

नोट :-आप अपने घरों पर यज्ञ अवश्य करवाए । यज्ञ का सारा सामान चादरें, दरियां और माईक सब आर्य समाज की तरफ से फ्री होगा केवल प्रसाद आपका होगा । **-कल्पवासु देव मन्त्री**

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम् | यजुर्वेद

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष : ☎ :292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 4 मार्च 2001 दयानन्दाब्द 177

प्रमाण पत्र

क्रमांक 3/1/2001 दिनाक 18-2-2001

प्रमाणित किया जाता है कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली की अन्तरंग सभा की बैठक दिनांक 17-2-2001 को आर्य समाज 15 हनुमान रोड, नई दिल्ली में सम्पन्न हुई जिसमें सर्व सम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजिस्टर्ड) गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर का जो चुनाव 17-12-2000 को हुआ वही वैध है । इसी को सार्वदेशिक सभा मान्यता प्रदान करती है । इस चुनाव में श्री हरवंश लाल शर्मा प्रधान निर्वाचित किए गए है । इसके साथ ही जो तथाकथित चुनाव 24-12-2000 को किया गया, कहा जा रहा है उसको स्वीकार न करते हुए निरस्त करती है ।

—ओमानन्द सरस्वती

सुगन्धिमय जीवन बनाओ

□ *ले० श्री देवी दयाल शर्मा, "शर्मा निवास" 120 माडल टाउन, स्ट्रीट नं. 4, अमृतसर*

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
~~उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्~~ ॥
त्र्यम्बकं यजामेह सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय माऽमृतात् ।
(मृत्यु पर विजय Triumph over death) यजुर्वेद 3/60

व्याख्या :—अपना जीवन सुगन्धिमय बनाओ

प्राकृतिक और ठोक समय के अनुमार मृत्यु के आगमन की उपमा एक पके हुए खरबूजे फल से, वेद ने दी है, जो लता के बन्धन से अपने आप जुदा होता है, हम भी यही चाहते हैं कि हमारी मृत्यु खरबूजा फल की तरह बडे शान्तमय वातावरण में हो और खरबूजे की तरह हमारा जीवन रस व सुगन्धि से भरपूर हो ।

खरबूजा फल अपनी बढ़ती की, विधिवत, पूरी शक्ति और पूरी खुराक लता की बेल से ही लेता है और जब यह पूर्ण रूप से पक जाता है तो अपने आप लता के बन्धन से पृथक हो जाता है और खाने वाले को अपनी सुगन्धि और मिठास देता है । यदि कोई इसको लता के बन्धन से जबरदस्ती तोड़ दे, तो इमकी मिठास और इसकी भीनी-भीनी सुगन्धि जो ~~इस से निकलती है सब समाप्त हो~~ जाती है और खरबूजा फल भी अध पका रह जाता है। यही अवस्था हमारे शरीर और आत्मा की होती है। हमारी तो वास्तविक इच्छा यह है कि जब हमारा आत्मा ईश्वर की व्यवस्था से भौतिक शरीर से पृथक होने लगे तो हमे मृत्यु का क्षण मात्र भी भय न रहे और हम शान्ति पूर्वक प्राकृतिक मृत्यु को प्राप्त हों ।

प्राकृतिक मृत्यु को प्राप्त करने के लिए हमें कठोर परिश्रम और यत्न करना पड़ेगा । इस सन्दर्भ में हमें महर्षि पातञ्जलि जी के बनाए हुए अष्टांग योग का आश्रय लेना पडेगा और जब तक इसका अभ्यास पूर्ण रूप से नहीं किया जाता, प्राकृतिक मृत्यु को प्राप्त करना एक स्वप्न सा रह जाएगा ।

हजारों आदमी ईश्वर के सर्वोत्तम नियमों को भंग करके वास्तविक और प्राकृतिक मृत्यु को प्राप्त करना चाहते हैं। यह कैसे हो सकता है ऐसे मनुष्यों को तो अप्राकृतिक मल्किल मौत खा जाएगी । स्मरण रहे कि एक सच्चा योगी (A True Meditationist) जिसने परमात्मा के दिए हुए भौतिक शरीर रूपी रथ को संभाल कर रखा है और नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करता है वही मृत्यु पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर सकता है। "Triumph over Death"

मैं इस उपलक्ष्य में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का हवाला देता हूं जिन्होंने मृत्यु के समय बडे मार्मिक शब्द कहे "बहुत दयालु और कृपालु ~~भगवन, आपकी प्रार्थना, स्तुति~~ और उपासना को बन्द करके, एक पूर्ण योगी की तरह बाहर जाने वाले श्वास को रोका और फिर बल पूर्वक यत्न करके श्वास को बाहर निकाला।" 30 अक्तूबर 1883 को सारे ससार को अविद्या के अन्धकार से और दकियानूसी विचार जो लोगों के मस्तिष्क में भरे हुए थे को दूर करके अपना भौतिक चोला छोड़ कर इस आल्मेजावदानी से रहलित कर गए। उनका नियम पूर्वक जीवन, परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हुए एक चमकती हुई जिन्दा मिसाल है। समाधी योग से उन्होंने अपने शरीर को वज्र के सामान पुष्ट किया और अपनी आत्मा को वेदों का अध्ययन करने से बहुत ऊंचा उठाया। दुनिया के [illegible] सदेश देने के [illegible] इन्होंने [illegible] प्रकार से कष्ट [illegible] दुःख आदि झेले उनकी उपमा संसार में कहीं नहीं मिल सकती। वास्तविकता यही है कि जब तक मानव, प्रकृति के कानून अनुसार, अपना जीवन न चलाए, न व्यतीत करे, मृत्यु पर पूर्ण रूप से विजय पाना असम्भव है । ऐसा उपाधिधारी विद्वानों का मत है हे परमेश्वर हम आपकी पूजा करते हैं आप के तुल्य और आप से भिन्न, किसी को भी स्वीकार न करें, एक सैकेण्ड के लिए भी हम आप को न भूलें । आप अद्भुत गुणों से और गुप्त शक्तियों से सम्पन्न हैं । न ही कोई आप के समानान्तर है और न ही कोई आप से बडा है । आप देवों के भी देव हैं। हम इस संसार में आप की महती कृपा से प्रेम पूर्वक रहें आप की ही, केवल स्तुति, प्रार्थना उपासना करे। आप हमारे परम पिता परम दाता और सब को अधिक से अधिक लाभ देने वाले हैं। सब को स्नेहभरी और दैवी दृष्टि से देख रहे हो । आप की पूजा करक हमारी आत्मा और भौतिक शरीर शक्तिशाली बन जाएगा । हमारा शरीर सुगन्धि युक्त और सुन्दर बन जाएगा । हमारे लिए कितनी प्रसन्नता का विषय होगा जब हम 100 वर्ष की आयु रोगरहित होते हुए भोग कर, इस समय से कूच करेंगे । उस समय हमें मौत का भी तनिक डर नहीं होगा । आप तीनों लोक। को दैवी नेत्र से देख रहे है, नही अनन्त लोकों को इसी नेत्र से देख रहे हो आप इन सब लोकों की रचना करने वाले हैं, पालन-पोषण करते हैं और फिर सहार भी आप ही करते हैं। वेद ने कहा है कि आप परम पिता ही नहीं परम माता भी हैं।

ओ३म् त्वं हि न पिता वसो त्वं माता शतक्रतो
वभूविथ ।अधा ते सुम्नमीमहे।
ऋग्वेद 8/98/11

सब को ठिकाना देने वाले सचमुच आप हमारे परम पिता हो नहीं, आप हमारी परम माता भी हैं तू हमारी परम माता है इस लिए हम तुम्हारा उत्तम हृदय (Good Wishes) चाहते हैं। स्वर्गीय डा राधा कृष्ण जी, (भूतपूर्व राष्ट्रपति) अपनी गीता में लिखते है परमात्मा हमारा पिता है ओर प्रकृति माता है। प्रकृति परमात्मा का स्वभाव भी ह । इसलिए परमात्मा हमारी माता भी है। (God is our father and Prakriti is our mother, As Prakriti is the nature of God, therefore God is also our mother) (शेष पृष्ठ 7 पर)

सचेत होकर जागें और सोचें

❒ ले० राजेन्द्र आर्य, हांसी (हरियाणा)

किसी गांव का एक चौकीदार रात को पहरा देते हुए गांव वालों को जोर-जोर से सम्बोधित कर रहा था "पाच हजार साल से ज्यादा सोने वालो जागो" राते के अन्धेरे मे, उस चौकीदार की यह धीर और गम्भीर ललकार जब चारो दिशाओं मे गूंजी तो लोग समझ नहीं पाए कि चौकीदार ऐसी आवाज क्यों देता है ? कुछ दिनो तक चौकीदार इसी प्रकार आवाजें दे देकर लोगो को सचेत करता रहा । कुछ दिनों के बाद कुछ जिज्ञासु मननशील महानुभाव उस चौकीदार से पूछते हैं कि तुम "पाच हजार साल से ज्यादा सोने वालो जागो" का जो उद्घोष करते हो, इससे आपका अभिप्राय क्या है ? आपकी वाणी मे क्या भेद छिपा है? जिस कारण इस प्रकार से जगाने की निरन्तर प्रेरणा दे रहे हो । तब चौकीदार बडे ही निष्काम भाव से शान्त होकर उन जिज्ञासु महानुभावो के हाथो मे **सत्यार्थ प्रकाश** की एक-एक पोथी थमा देता है और उन सभी सज्जनों से हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक आग्रह करता हुआ कहता है कि इस पुस्तक को पढ कर देख लो, आप लोगों को सब कुछ समझ मे आ जाएगा गलती या भूल हमारी यही रही है कि लगभग 125 वर्षों से इस जल रहे प्रकाश स्तम्भ से कुछ भी प्रकाश नही ग्रहण कर सके ज्ञान नही सीख सके । उस एक अनपढ ज्ञानी और विद्वान् चौकीदार ने कितने ही लोगों को मुक्ति युक्त प्रेरणा देकर जगाने का प्रयास लिया। वास्तव मे वह चौकीदार बधाई का पात्र है सिर उसके कर्म के सामने स्वत: ही झुकता है ।

महाभारत के बाद से, पिछले पाच हजार से अधिक वर्षो से यह देश सचमुच ही सोया हुआ था । जिस बालक मूलशकर से शिवरात्रि के दिन टकारा के शिव मन्दिर मे रात्रि भर जाग कर सच्चे शिव (सत्य ज्ञान प्रकाश) को पाने का सकल्प किया, वह सकल्प धीरे-धीरे हजारों वर्षो से निद्राधीन देशवासियो को जगाने का शिव सकल्प बन गया। चिरकाल से सोये हुए कुम्भकर्णों (आर्य हिन्दु जाति) को जगाने के लिए कितने ढोल, दुदर्भि नगाडो से युक्त पता नहीं कितने चौकीदारो की जरूरत पडेगी । यह देश ऐसे विचित्र कुम्भकर्णो से भरा पडा है कि उनकी नींद नही खुलती । अपने चारो ओर नजर दौडाता है, देखता है कि धीरे-धीरे दिन बढता जा रहा है परन्तु उसकी आंखों में से नींद की खुमारी (अपने समाज की अधोगति) नहीं जाती अर्थात् जानकर भी आंखें बन्द कर लेता है। जिन लोगों को स्वार्थ इस बात से बन्धा हुआ कि इस देश के निवासी सदा सोते ही रहें जिससे कि वे सदा ही इस समाज में द्वेष, घृणा फैला कर लूटते रहें, उन स्वार्थी लोगो की सूची लम्बी है, जिन्होंने अब तक जो इस समाज को अपना ग्रास बनाते रहे हैं । निश्चित रूप से विदेशी और विधर्मी आक्रमणकारी तो चाहते ही थे कि ये चिर-पुरातन, अमित वैभव सम्पन्न और गौरवशाली भारतवासी कभी भी न जागे परन्तु दुख इस बात का है कि इस देश के धर्म आचार्यो ने नाना प्रकार के अन्धविश्वासों, कुरीतियों, पाखण्डो, दुराचारों और वेद विरुद्ध मन्तव्यो का प्रचार कर करके सभी प्रकार के हथकण्डों को अपना कर (भय दिखाकर या लालच देकर) इस देश को आलसी, नपुंसक, कुकर्मी और राष्ट्र व समाज विरोधी बनाने मे कोई कसर नही छोडी । आज भी ऐसे स्व प्रचारित धर्म धुरियो तथा कथित भगवानो, परमहसों, परम पूजनीय आचार्यो, गुरुओ, सन्तों मठाधीशो की कमी नही है जो न केवल अनपढ जनता के बल्कि उच्चकोटि के शिक्षाविदो को डके की चोट से यह पाठ पढाते हैं कि तुम्हें अपने आप कुछ भी कार्य करने की आवश्यकता नहीं है । जब अधर्म बढ़ जाएगा तब भगवान हम जैसों के रूप मे स्वयं अवतार लेकर आयेगे और समस्त पापियों का संहार कर देगे। गीता के प्रसिद्ध श्लोक "यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत धर्म सस्थापनार्थाय सभवानि युगे युगे॥" को समझने मे ही हमारी मूल में भूल है । पाखण्डियो ने इसे श्लोक का अर्थ ही स्वार्थ वशीभूत होकर गलत ढंग से प्रचारित किया । इसी श्लोक के गलत अर्थ ने भारत में अवतारवाद को जन्म दिया और अवतारो की लाईन इतनी लम्बी बना दी कि वर्तमान मे यह प्रतिक्षण बढ रही है। गिनती के अक खत्म हो जाएंगे परन्तु इनकी उत्पत्ति होती रहेगी। इसी कारण से कोई ढोगी इस मन्त्र का गलत अर्थ समझा कर अपने आप को कृष्ण जी का, राम जी का, शिव का प्रतिरूप बताते हैं । इसका परिणाम यह हो रहा है कि जो कुछ लोग आंख मल कर उठने का प्रयत्न करते भी हैं परन्तु इस प्रकार से मार्ग दर्शकों व उपदेशकों के चुंगल में आज का तीव्रगामी शिक्षित जन अधिक फंसता जाता है ।

ईश्वर से लोगों को दूर करने का पाप उन्हीं लोगों ने किया जिन्होंने यह अर्थ बता कर कि ईश्वर संसार से दूर है का प्रचार किया । हंसी आती है कि सभी भगवान भारत में ही जन्म लेते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि भारत में पाप ज्यादा होते हैं अर्थात् जहां भगवान ज्यादा वहीं पाप ज्यादा। यह तो भगवान और पुण्य भारत का अपमान हम स्वयं ही कर रहे हैं। जरा सोचो ! हमारा न एक इष्ट, न एक पन्थ, न एक ग्रन्थ, न किसी एक पर विश्वास व आस्था अपितु इस प्रकार की आपसी फूट विघटन पैदा कर रही है और हमारे विशाल हिन्दु समाज को नित्यप्रति पतनोन्मुख बना रहा है। इसी के कारण विशेष कर हिन्दुओं मे अनेक सम्प्रदाय बनते जा रहे हैं । अब तक कितनी बार और कब-कब परमात्मा ने अवतार लिया है यह कोई भी अवतारवादी नहीं बताता और न कभी बता सकेगा-गम्भीरता से सोचो-

वर्तमान मे फैले इन अन्धविश्वासो और पाखण्डो को पोषित करने मे तत्कालीन राजनेताओ की अहम् भूमिका कर रही है केवल मात्र अपनी सत्ता (पद व कुर्सी) को बचाने की जोड-तोड़ की व फूट डाला और सत्ता हथियाओ की नीति रही है। धर्म और नैतिकता को राजनीति से अलग करने की सोच ने देश को भ्रष्टाचार और नपुंसकता के गढ्ढे मे धक्केल दिया । आज के तथाकथित राजनेता धर्म और नैनिकता के नियमो के पालन किए बिना (उन्हें ज्ञान ही नहीं) ये सारे बह्माड को दूषित कर रहे हैं राजनीति धर्म और नैतिकता के नियमो पर आधारित होनी चाहिए। महर्षि देव दयानन्द के अनुसार जब तक राजनेता, राजकर्मचारी एवं नागरिक धार्मिक, सहिष्णु, सयमी, समय अनुसार शान्त और कठोर नहीं होंगे तो उनके द्वारा जनहित, समाजहित और राष्ट्रहित की बात न तो सोची जा सकेगी न ही उनमें करने की क्षमता होगी। भारत में इस सोच का जन्म व पालन-पोषण का श्रेय कांग्रेस राजनेताओं को जाता है जिन्होंने अपने स्वार्थ हेतु राष्ट्र को दल बदलके कीचड में धकेल दिया । इससे अछूता आज का कोई नेता नहीं दिखाई देता! महात्म गांधी से लेकर उस काल के सभी कांग्रेसी राजनेताओ व वाम मार्गी कम्यूनिस्टों ने विशेषकर हिन्दुओं की भावनाओं को आघात पहुंचा कर खिलवाड करते रहे । इन्होंने ही वीर सावरकर, चन्द्रशेखर आजाद, स्व श्रद्धानन्द, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस तक के कार्यों व विचारों को स्वतन्त्रता आन्दोलन के बाधक और गद्दार तक कहने का साहस और घृणित कार्य किया। उनकी छवि को धूमिल करने और बदनाम करने के पीछे उन कांग्रेसियों की केवल सत्ता की भूख ने किया और रास्ते से राष्ट्र के सच्चे सपूतो को हटाने का प्रयास निरन्तर किया यह कटू सत्य है । इसी का परिणाम है कि हिन्दुओं में अपने वैदिक धर्म, अपनी संस्कृति, अपने देश, अपनी भाषा, अपनी पहचान, वेष-भूषा और अपनी अस्मिता को सुरक्षित बनाए रखने की शक्ति ही क्षीण हो रही है इसका श्रेय भी राजसत्ता और धन के भूखे राजनीति करने वाले भेडियो को ही जाता है। आज भारत में स्वयं हिन्दु ही अपने देश में सबसे अधिक उपेक्षित है ।

अन्त मे मैं यही कहूगा कि अभी भी समय है इस स्थिति से उबरने का । यह काम और कोई बाहर से आकर नहीं करेगा । हमे ही इस उत्तरदायित्व को सम्भालना होगा। इसके लिए केवल दयानन्द के आर्य पथिक की ओर सकेत करता हुआ एक कवि (राम आर्य व्यथित) गुनगुनाता है :-

देश का भविष्य कहो कौन अब बनायेगा,
धरती को आतताईयो से कौन बचाएगा ॥
आज देश द्रोहियो के झुण्ड क्यो उछल रहे,
अपने ही देश में (घरो में) कितने मान सिह पल रहे ॥
भाई-भाई मे विनाश के बीज कौन बो रहा।
शक्ति सिह आओ तुम्हारी देश बाट जोह रहा।
कौन स्वाभिमान फिर प्रताप का बन जाएगा।
आर्य वीर नौजवान यह कदम उठाएगा-
छूआ-छूत आज भी समाज से मिटी नहीं।
जन्म वर्ण भेद की मान्यता मिटी नहीं।
उच्च वर्ग-निम्न वर्ग का अजीब भेद है।
स्वर्ण-अस्वर्ण का अजीब भेद है ।
देश में विद्वेष की लहर छटी नहीं ।
कौन कर्मवाद का समाज फिर बनाएगा।
कौन राष्ट्रवाद दयानन्द का बनाएगा-
आर्य वीर नौजवान यह कदम उठाएगा

उपरोक्त कवि की भावनाओं को अपनाकर सर्व प्रथम अपने जीवन से दुर्गन्धी को निकाल कर अपना उदाहरण पेश करना होगा, फिर पुन: यह समाज जाग्रत होकर ऊंचा उठेगा। आर्यों के प्रति देश के सुध, बुद्ध, मनीषियो का अटल विश्वास है कि वे (आर्य) आगे बढेंगे तो काम पूरा ही करेंगे । इसी उद्देश्य की सफलता और सजगता को प्रेरणा दी है एक कवि ने :-

जाग जरा :-

"न समझोगे तो मिट जाओगे, ऐ हिन्दुस्तान वालो
तुम्हारी दास्तां तक भी, न होगी दास्तानों में"

संग्रहकर्ता एवम् लेखक
--राजेन्द्र आर्य, हांसी (हरियाणा)

सम्पादकीय.....

"आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के चुनाव का पटाक्षेप"

भूतपूर्व प्रधान, आर्य समाज (वेद मन्दिर) भार्गव नगर जालन्धर के श्री सरदारी लाल जी चाहे बहुत पढ़े न भी हों जैसा कि उनके हिन्दी हस्ताक्षरों से प्रतीत होता है, परन्तु वह धार्मिक भावनायें अपने ह्रदय में अवश्य संजोए रहते हैं । दिनांक 17-3-96 अंक नं 158 "धर्म मर्यादा" के पृष्ठ 3 पर "भ्रान्ति निवारण या झूठ का पलन्दा" शीर्षक से, श्री कर्मचन्द माली को फटकारते हुए और चेतावनी देते हुए लिखते हैं "अश्विनी कुमार शर्मा पहले भी कई गलत कारवाईयां करता रहा है और करता रहेगा जो कि आर्य जनता बड़ी अचछी तरह से जानती है। मगर एक बात के साथ मैं अपनी बात समाप्त करना चाहता हूं कि अगर इसके बाद भी तथाकथित महामन्त्री (अश्विनी कुमार शर्मा) व उसके उप प्रधान (कर्मचन्द माली) अपनी शरारतों से बाज़ न आये तो हमारी आज की इस बात को ट्रेलर मात्र समझा जाये । आपका असली चेहरा आपको दिखा दिया जाएगा।"

इसी लेख में सरदारी लाल जी लिखते हैं कि :-

"वास्तविकता यह है कि 15-16 मास के समय से ही कर्मचन्द माली व अश्विनी कुमार शर्मा तथाकथित महामन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की "प्यार" की पींघें चढ़ रही थीं। फिर चुनाव आया। अश्विनी कुमार शर्मा ने माली जी को उप प्रधानगी का दाना डाला। बस फिर क्या था-अन्धे को क्या चाहिए, दो आंखें, और हो गया भरत-मिलाप। अश्विनी कुमार ने कहा कि "बापू मैनूं सिर्फ तूं चाहीदा, मैं किसे होर नूं की जाणदा" और बापू जी फूल कर कुछ ज्यादा ही चौड़े हो गए।"

अब विचारणीय विषय यह बनता है कि वही श्री सरदारी लाल जी अपने उपरोक्त वचनो को अपने ऊपर घटा कर देखे और स्वयम् निर्णय करें कि अब वह क्या कर रहे हैं ? बहेलिये ने कर्म चन्द माली जी को उप-प्रधानगी का 'दाना' डाला और फसा लिया और अब 'प्रधानगी' के दाने मे उसी बेहिलये ने सरदारी लाल जी को फसा लिया, जो "बारह मीटर की पगड़ी" भी नहीं बाधते ।

श्री सरदारी लाल जी भ्रान्तियां दूर करते-करते स्वयम् मार्ग से भटक गए और उसी बहेलिये द्वारा बिछाये गए जाल मे फस कर भ्रान्तिाय फैलाने लगे ।

अश्विनी कुमार शर्मा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम पर एक परिपत्र छाप रहा है। वह इतना चालाक है कि वह उसमें जो कुछ भी लिख रहा है श्री सरदारी लाल जी के नाम से लिख रहा है। उसे पता है कि यदि कल को कोई केस बनेगा तो वह उस पर न बन कर श्री सरदारी लाल पर बनेगा। उसने श्री डा के के पसरीचा पर भी एक झूठा केस इस्तगामा श्री सरदारी लाल द्वारा करवाया हे । उसे पता है कि यह इस्तगामा झूठा है और इसके खारिज हो जाने पर श्री डा के के पसरीचा श्री सरदारी लाल पर मान हानि का मुकद्दमा करेंगे और इसमे श्री सरदारी लाल को सजा भी हो सकती है व हरजाना भी देना पड सकता है और लाखों रुपए का मुआवजा भी मागा जा सकता है और यह अवश्य होगा क्योकि यह केस शीघ्र खारिज होने वाला है।

इसी प्रकार 23-2-2001 को उसने जो सार्वदेशिक सभा के प्रधान पूज्य स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती के विरुद्ध व प्रो शेर सिंह जी के विरुद्ध लिखा है वह भी अश्विनी कुमार ने श्री सरदारी लाल के नाम से लिखा हे। इसका एक यह भी कारण है कि अश्विनी कुमार जानता है कि श्री सरदारी लाल सदा उसका विरोधी रहा है कहीं वह हाथ से न निकल जाए इसलिए उसे शिंकजे मे रखे ताकि वह अपनी पुरानी गतिविधियो मे न लग जाए ।

मैंने और श्री मुलख राज जी आर्य ने आर्य मर्यादा के गत अंक में श्री सरदारी लाल के दो लेख छापे हैं जो उसने अश्विनी कुमार के विरुद्ध पहले लिखे थे। पजाब की आर्य जनता भी यह जानती है कि श्री सरदारी लाल गत कई वर्षों से अश्विनी कुमार शर्मा का विरोध कर रहे हैं। कई लोग तो आश्चर्य व्यक्त कर रहे हैं कि श्री सरदारी लाल जैसा व्यक्ति अश्विनी कुमार जैसे गलत व्यक्ति के साथ क्यो खडा हुआ है।

गत रविवार को भार्गव नगर आर्य समाज के उत्सव पर श्री अश्विनी कुमार शर्मा के कुछ साथी इकट्ठे हुए थे । मुझे दुख के साथ लिखना पडता है पता नहीं क्यो इस जुण्डली मे स्वामी आनन्दवेश जी और स्वामी सदानन्द जी भी जुड गए हैं। गत दिनो मेरे पास कई फोन स्वामी आनन्दवेश जी के बारे मे और स्वामी सदानन्द के बारे मे आए हैं । मैंने उन्हें कहा कि आप लिख कर सारी बातें हमें भेजें कि यह दोनो हमारे सन्यासी क्या हैं और कैसे हैं ? भार्गव नगर में कई लोग आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के विरुद्ध बोलें हैं। जिसकी रिपोर्ट लिखित रूप में हमारे पास आने वाली है। पूरी रिपोर्ट आने पर उनके विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी। अश्विनी कुमार शर्मा जो परिपत्र आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम पर छाप रहा है इसके विरुद्ध भी कानूनी कार्यवाही सभा की ओर से की जा रही है।

इस परिपत्र मे इस बार श्री सरदारी लाल ने सार्वदेशिक सभा के विरुद्ध भी कई बातें लिखी हैं और पूज्य स्वामी ओमानन्द जी और प्रो शेर सिह जी पर भी छींटाकसी की गई है । इसमें गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की पीठ की भी चर्चा की गई है। गुरुकुल कागड़ी को अश्विनी कुमार शर्मा और इसके साथियों ने बर्बाद कर दिया है आर्य बन्धु कभी गुरुकुल कागड़ी जाकर तो देखें वहां क्या हो रहा है ? शीघ्र ही आर्य प्रतिनिधि पजाब का एक शिष्ट मण्डल हरिद्वार भेजा जा रहा है वहां की दयनीय स्थिति की सारी रिपोर्ट हम शीघ्र ही आर्य जनता की जानकारी के लिए आर्य मर्यादा में प्रकाशित करेगे।

पूज्य स्वामी ओमानन्द जी भारत वर्ष के एक प्रसिद्ध सन्यासी हैं उनके ऊपर यदि श्री सरदारी लाल या अश्विनी कुमार शर्मा कोई दोष लगाएगे तो यह उनकी बहुत बड़ी गलती होगी। गुरुकुल झज्जर मे आज कल स्वामी जी कैंसर का आयुर्वैदिक पद्धति से इलाज कर रहे हैं और सप्ताह मे दो बार यह निशुल्क कैंसर के रोगियो का निरीक्षण कर रहे हैं इस दिन गुरुकुल में बहुत भीड होती है। अब वह इस ला-इलाज बिमारी का एक हस्पताल भी गुरुकुल झज्जर में बनवा रहे हैं। कन्या गुरुकुल नरेला के पास जितनी भूमि है वह सब स्वामी जी की पैत्रिक भूमि है जो करोडो रुपए की है वह उन्होने गुरुकुल को दान मे दे दी थी। गुरुकुल झज्जर की भी करोडो की सम्पत्ति स्वामी जी ने अपने परिश्रम से बनवाई । यह दोनों गुरुकुल स्वामी जी की महान देन हैं । सारे हरियाणा मे स्वामी जी का अपना विशेष स्थान है और केवल हरियाणा ही नहीं सारे भारत मे उनका बहुत मान किया जाता है ऐसे महान व्यक्ति के विरुद्ध श्री सरदारी लाल जैसे व्यक्ति का लिखना कोई बरदाश्त नहीं करेगा

श्री सरदारी लाल तथाकथित सभा प्रधान ने यह परिपत्र 23 फरवरी 2001 को निकाल कर यह भी भ्रम फैलाने का प्रयास किया है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का कोई कथित चुनाव 24-12-2000 संवैधानिक है और उसकी पुष्टि के सम्बन्ध में एक सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा की कार्यवाही दिनाक 9-12-2000 का जिक्र भी किया है जो एक प्रलाप मात्र है। यह प्रस्ताव एक प्रकार से "बासा" हो चुका है, और ताजा प्रस्ताव 17-2-2001 के कारण महत्वहीन भी हो जाता है। जिससे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने 17-12-2000 के आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के चुनाव को सर्व सम्मति से पारित कर के और कथित 24-12-2000 के किसी चुनाव को अमान्य करके निरस्त कर दिया हैं और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के पूज्य प्रधान स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती ने एक "प्रमाण पत्र" द्वारा प्रमाणित कर दिया हैं । "प्रमाण--पत्र" इस कारण दिया गया कि सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा दिनाक 17-2-2001 की विधिवत कार्यवाही तो आगामी अन्तरग सभा मे लिख कर सम्पुष्ट होगी जिसमे कई मास भी लग सकते है और इस दौरान शरारती तत्व भ्रम फैलाकर आर्य जनता को भ्रमित कर आर्य समाज को हानि पहुचा सकते हैं (जैसा कि इस 23-2-2001 के परिपत्र से भी पता चलता है) अत कुशल नेतृत्व ने जो "प्रमाण-पत्र" दिया है वह यहा आर्य जनता के अवलोकनार्थ दिया जाना मैं आवश्यक समझता हू ।

प्रमाण पत्र

(सख्या 3/1/2001, दिनाक 18-2-2001)

"प्रमाणित किया जाता हैं कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा 3/5 महर्षि दयानन्द भवन नई दिल्ली की अन्तरंग सभा की बैठक दिनाक 17-2 2001 को आर्य समाज 15 हनुमान रोड नई दिल्ली मे सम्पन्न हुई जिसमे सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब (रजिस्टर्ड) गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर का जो चुनाव 17-12-2000 को हुआ वही वैध है । इसी को सार्वदेशिक सभा मान्यता प्रदान करती हे । इस चुनाव मे श्री हरबस लाल शर्मा प्रधान निर्वाचित किए गए हैं । इसके साथ ही जो तथकथित चुनाव 24-12-2000 को किया गया कहा जा रहा हे उसको स्वीकार न करेत हुए निरस्त करती हैं । तिथि 18-2-2001 हस्ताक्षर ओमानन्द सरस्वती" प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली।

(शेष पृष्ठ 4 पर)

(पृष्ठ 3 का शेष)

आर्य जनता को इस उपरोक्त ' प्रमाण पत्र'' से सारी वास्तविकता का ज्ञान हो गया होगा और इस प्रस्ताव से पंजाब सभा के बारे जो अनार्य तत्व या यू कहिये कि श्री चन्द्रमोहन सम्पादक वीर प्रताप जी के लेखनानुसार ''जिन का कोई व्यवसाय नही, जो अपना काम काज छोड़ चुके है, आर्य समाज ही उन की रोजी रोटी है'' का पटाक्षेप हो गया । एक भ्रान्ति और फैलाई गई थी जो आदरणीय सुमेधानन्द जी सरस्वती (राजस्थान) कार्यकारी प्रधान सार्वदेशिक सभा के सम्बन्ध मे थी कि 4-12-2000 को उन्हे प्रशासक नियुक्त किया गया था। इस सदर्भ मे मेरा आर्य जनता से यही निवेदन है कि वह स्वयम् स्वामी सुमेधानन्द जी के प्रशासक पद से 'त्याग-पत्र' दिनाक 14-12-2000 को पढ ले और सत्य को ग्रहण कर के असत्य मे भ्रमित न हो। स्वामी सुमेधानन्द जी का पत्र स्वामी ओमानन्द जी महाराज के नाम--

(दिनाक 14-12-2000)''

सेवा मे,

श्रद्धेय श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती,
प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन राम लीला मैदान,
3/5 आसफ अली रोड नई दिल्ली-2

मान्यवर ! सादर नमस्ते ।

निवेदन है कि आप ने पत्र दिनाक 4-12-2000 के माध्यम से आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का निर्वाचन कराने एव सचालन कराने हेतु मुझे पजाब सभा का प्रशासक नियुक्त किया था। इस पत्र के जारी होने के बाद आप ने एक अन्य पत्र दिनाक 5-12-2000 को पजाब सभा के सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण के रूप मे जारी किया था। यह दोनो पत्र ही दोनो पक्षों की ओर से न्यायलय से प्रस्तुत हुए । इसके बाद दिनाक 9-12-2000 की अतरग सभा की बैठक मे जिस समय यह विषय प्रस्तुत हुआ था उस समय मैने पजाब सभा का प्रशासक बनने से मना किया था परन्तु आपके तथा अन्य सदस्यो के बार-बार कहने पर मैने अपनी स्वीकृति दे दी थी।

मै दिनाक 10-12-2000 को आर्य समाज के काम से महाराष्ट्र चला गया था। आज दिल्ली पहुचने पर मुझे कुछ पत्र दस्तावेज प्राप्त हुए जिनसे जानकारी मिली कि श्री अश्विनी कुमार शर्मा एडवोकेट ने एक पत्र दिनाक 7-12-2000 को पजाब की आर्य समाजो को भेजा है जिसमे स्पष्ट कहा गया है कि सार्वदेशिक सभा के किसी भी अधिकारी के आदेश को न माने तथा दिनाक 24-12-2000 को होने वाले निर्वाचन मे अवश्य पहुचे । यही पत्र उन्होने दिनाक 9-12-2000 की अतरग की बैठक के बाद दिनाक 13-12-2000 को फैक्स से भेजा है।

दूसरी तरफ एक पत्र दिनाक 13-12-2000 का लिखा श्री ऋषिपाल सिह एडवोकेट का है जो आप के नाम सम्बोधित है जिसके साथ जालन्धर के न्यायलय का आदेश दिनाक 8-12-2000 भी सलग्न किया गया है। इस पत्र से ज्ञात होता है कि प हरबस लाल शर्मा का पक्ष दि 17-12-2000 को निर्वाचन कर रहा है । उनका कथन है कि न्यायलय ने तदर्थ समिति को वैध मान लिया है तथा तदर्थ समिति को ही निर्वाचन करने हुते वेध माना है।

उपरोक्त तथ्यो एव परिस्थितियों को देखते हुए मै आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रशासक बनने मे असमर्थ हू । सभा के अन्य कार्यों मे मेरा सहयोग पूर्ववत रहेगा। —भवदीय

स्वामी सुमेधानन्द, *कार्यकारी प्रधान*
सा आ प्र सभा दिल्ली

आर्य सज्जनो किसी प्रकार के भ्रम की अब कोई गुजाईश नहीं है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की दो समानन्तर प्रतिनिधि सभाये 7-6-1992 से श्री वरिन्द्र जी की अदूरदर्शिता के कारण चल रही थी जो आर्यों की सर्वोच्च सस्था के कुशल नेतृत्व मे इस 17-12-2000 के सवैधानिक घोषित वैध चुनाव से एक होकर अब प्रगति पथ पर अग्रसर है। वैसे भी श्री हरबस लाल जी शर्मा, श्री वीरेन्द्र जी के निधन 31-12-1993 के पश्चात से सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन किशनपुरा चौक जालन्धर पर निरन्तर काबिज है और अब भी 17-12-2000 के निर्वाचन मे भी दोनो सभाओं के एक होने के पश्चात् की सर्व सम्मति से प्रधान चुने गए है, इसलिए सार्वदेशिक सभा की कार्य कुशलता से पजाब का आर्य समाज पुन क्रियाशील हो गया है और सुचारू रूप से आर्य समाजे और आर्य शिक्षण संस्थायें अपना कार्य अनुशासन मे रह कर करने लगी है। सभी आर्यों का सहयोग मिलने लगा है। आओ मिलकर देव दयानन्द के स्वपनों को साकार कर दिखाये । अब कोई विवाद नहीं रहा ।

—ऋषिपाल सिंह एडवोकेट,
सभा उप प्रधान

ऋषि दयानन्द के प्रति

❑ आचार्य रामदेव शास्त्री वेदालंकार (जयनगर)

बहुत दिनों के बाद यहां पर
एक तपस्वी आया था ।
जिसने स्वार्थ मिटाकर अपने
सौरभ को सरसाया था।
भारत-बगिया में पतझर थी,
नवोल्लास का नाम नहीं था।
रक्तबिन्दु निज देकर उसने
इसे पुनः हरसाया था ॥
बहुत दिनों के बाद यहां पर
एक तपस्वी आया था॥१॥
लोभ-मोह के जाल बिछे थे
स्वामी को विचलित करने को।
शैल-सरीखे धीर धनी ने
भूला पथ दिखलाया था॥
जड़ता का साम्राज्य यहां
अज्ञान-तिमिर जो छाया था।
ज्ञान-रश्मि को देकर उसने
सबको मार्ग दिखाया था॥
पराधीनता की जंजीरें,
आंग्ल देश की चकाचौन्ध थी।
स्वतन्त्रता का महामंत्र दे,
देश-प्रेम दरसाया था॥
बहुत दिनों के बाद यहां,
एक तपस्वी आया था॥२॥

प्रभु जी हमारे अवगुण दूर करो

पं. वेद प्रकाश शास्त्री, 4-ई, कैलाश नगर, फाजिल्का, पंजाब

प्रभु जी हमारे अवगुण दूर करो।
अज्ञान अविद्या अरु पापों का, निश्चय ही नाश करो।
सद्‌गुण सद्‌विचार दे करके, सद्‌भावों से भरपूर करो।
सत्संगति नित्य करें हम, दुष्टजनों से दूर करो॥1॥
स्वस्ति पथ पर चल कर हम, जीवन का निर्माण करें।
सेवा भाव से भर कर हम, जन-जन का कल्याण करें।
राग-द्वेष-अहंकार हटाकर, सबमें सद्-उपदेश भरो॥2॥
प्रेम एकता समता का नित, जग में हम विस्तार करें।
आलस-प्रमाद-अविद्या त्यागें, दुर्व्यसनों का हम संहार करें।
सत्कर्म नित्य करें हम, दुष्कर्मों को शीघ्र हरो॥3॥
स्वार्थ से हटकर हम, करे नित्य पर-उपकार
शक्ति-भक्ति में खर्चें, दुर्भावों का हो संहार ।
हे मेरे भगवन् प्यारे, सद्‌बुद्धि का तुम दान करो॥4॥
चंचल मन टिक जाए, हम काम करें निष्काम।
काम-क्रोध-लोभ-मोह का, कर दो काम तमाम ।
'वेद' की विनय यही है, प्रभु भवसागर से पार करो॥5॥

अलावलपुर में ऋषि बोध उत्सव

दिनांक 21-2-2001 को महर्षि दयानन्द माडल स्कूल आर्य समाज मन्दिर अलावलपुर में 'ऋषि बोध उत्सव' बड़ी श्रद्धा से मनाया गया। जिसमें प्रधान श्री कृष्ण शरण जी गुप्ता, म्यूनिसीपल कमेटी अलावलपुर की प्रधान श्रीमति संतोष चौधरी व उनकी सुपुत्री साधना, वैद्य टेकचन्द जी वालिया, प्रिंसिपल श्री धर्मपाल जी, स्टाफ व बच्चों ने भाग लिया।

सबसे पहले हवन यज्ञ किया गया । तत्पश्चात् स्कूल के बच्चों आंचल, अदिति, प्रिया, सुनील, पलक, रागिनी, मयक, अंजलि और कनिका ने स्वामी दयानन्द जी पर भजन व कविताएं बोली। इसके बाद प्रिंसिपल साहिब ने बच्चों को इस दिन का महत्व समझाया। इस अवसर पर श्रीमती संतोष चौधरी विशेष अतिथि थीं। **—कृष्ण शरण गुप्ता, प्रधान**

"भूकम्पन्, तूफान और इन्सान"

ले० आचार्य आर्य नरेश, वैदिक गवेषक उद्गीथ स्थली हिमाचल

आज से लगभग एक वर्ष पूर्व जब मैं गुजरात के कच्छ प्रदेश में भ्रमण करते वेद प्रचार कर रहा था तब मैंने प्रभु व धर्म प्राप्ति के प्रति कम श्रद्धा रखने वालों को झकझोड़ते हुए कहा था-प्रियवरो! यह कभी मत सोचना कि भूकम्प या तूफान केवल किल्लारी (महाराष्ट्र) या उड़ीसा में ही आता है । यहां भी आ सकता है। मनुष्यके जीवन का तो पल भर का भी कोई भरोसा नहीं है । जिस शरीर समय, या धन को हम अपनी बपौती समझ कर केवल लौकिक सुखो या पारिवारिक जनो के लिए ही लगाते जीवन को पूर्ण कर देते हैं, यह वास्तव मे हमारी सम्पत्ति नही अपितु ईश्वर की धरोहर है । केवल मनुष्य जीवन ही एक ऐसा सुअवसर है कि जिसमे हम अपने आत्मा के कल्याण हेतु ईश्वर की साधना तथा समाज की सेवा का कार्य कर सकते हैं। अत: जब तक मृत्यु दूर है और भगवान की कृपा से हमे यह सुन्दर संसार के सुख साधन प्राप्त है हमे साधना व सेवा हेतु समय निकालने में कुताही नही करनी चाहिए । क्या भरोसा कुछ क्षणो के पश्चात् यह सुन्दर काया व माया मिट्टी हो जाए और ओम् का ध्यान, वेद का ज्ञान, यज्ञ का अनुष्ठान्, सस्कारी सन्तान तथा देश हित बलिदान करने का यह सुन्दर अवसर समाप्त हो जाए । सो स्वार्थ छोड़ो और कुछ परमार्थ मे लगे । प्रभु या धर्म के कार्यो के प्रति कभी भूल कर भी यह न कहे कि हमारे पास समय नहीं अथवा धन नहीं । अब दिल्ली, मुम्बई, कानपुर, लखनऊ या हैदराबाद वाले भी सावधान हो जाएं झटके तो आ रहे हैं। पर कहीं धर्म हत्या से सम्पूर्ण जीवन का ही झटका (हत्या) न हो जाए।

ईश्वर की प्रकृति का एक झटका :—प्रातःकाल का सुहावना समय था देश अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ 26 जनवरी का उत्सव मनाने हेतु तैयार था । बच्चे युवा व वृद्ध सभी नए-नए वस्त्रों को पहन कर परेड़ मे जाते हुए सजे हुए थे। बहुत से लोग उस दिन भारत के गुजरात प्रान्त में स्थित भुज आर्य समाज के वार्षिकोत्सव हेतु घरो से आ रहे थे। इस समाज की स्थापना लेखक द्वारा आज से लगभग दस वर्ष पूर्व की गई थी । कच्छ में अमृत फार्म के पश्चात् यह हमारे द्वारा स्थापित दूसरा आर्य समाज था । लगभग नौ बजे भयकर हवाई जहाज की सी घूं आवाज हुई, धरती बुरी तर से लगभग आधा मिनट कांपी, चारो तरफ धूल उड़ी अंधेरा सा छा गया और इतने मे हजारो अनमोल जाने और खरबो रुपयों का धन धरती में मिलकर मिट्टी हो गया ।

आर्य समाज भुज मे व गणतन्त्र दिवस उत्सव हेतु आए हुए सभी आर्य जन मृत्यु की गोद मे जाने से बच गए । अजार के चार सौ विद्यार्थी बच्चे जो कि परेड हेतु सज-धन कर अभी नगर की एक गली मे निकल ही रहे थे कि भूकम्प से दोनों ओर बड़ी-बड़ी बिल्डिगे पहाड के सामन टूटकर उनके ऊपर गिरीं और और वे सदा के लिए शान्त हो गए। सम्भवत: अब अजार में विद्यालय जाने वाले गिने चुने ही छोटे बच्चे बचे होगे। स्व श्री लाल जी भाई परिवार के दो सदस्य जो कि कारणवश अपने घर पर यह समझ कर पहुचे कि अभी उत्सव प्रारम्भ होने मे देरी है वह भी कुछ ही क्षणो मे भवन के साथ बजरी मे समा गए । इन दो आर्य जनो को छोड़कर और कहीं भी किसी आर्य सज्जन की मृत्यु का कोई समाचार नहीं मिला ।

भूकम्प ग्रसित क्षेत्र का निरीक्षण करने पर पता चला कि भुज, अजार, गाधीधाम व भचाऊ आदि मे सर्वाधिक जान माल की हानि हुई । लगभग एक लाख लोगो के मरने की आशंका है । भुज, गांधीधाम व भचाऊ लगभग पूरे नगर ही मिट्टी व बजरी के ढेर बन चुके हैं । हजारो लोग आज भी बिल्डिगो के मलवे मे दबे हुए हैं। भूकम्प के चोथे दिन भी जीवित व्यक्ति निकल रहे थे। कुछ लोगों की आवाजे जो कि बचाने हुए प्रात: काल सुनाई देती थी वो दोपहर तक शान्त हो गईं। मूल्यवान कारें, कोठियां, जेवर, नगदी आराम दायक गुदगुदे पलग एवं ए.सी. सभी दबे पड़े हैं । करोड़पति लोग या साधारण लोग आज भी एक साधारण भिक्षुक के सामान सड़कों पर ही सोकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। भूकम्पन् के निरन्तर झटके आ रहे है । अत: यदि कोई ऐसा भी व्यक्ति है जिसका कि घर टूटा नहीं वह भी बाहर धरती पर ही सो रहा है। जैसे-जैसे दिन व्यतीत हो रहे है ८बी लाशो के कारण बदबू उठ रही है। गौए अपने प्यारे पालन करने वालों को भूख प्यास से व्याकुल होकर ढूढ रही हैं।

मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन मे ऐसी विनाश लीला पहले कभी नहीं देखी । करोडो रुपए से बनी छह-छह व सात-सात मंजिली इमारतें पलभर मे मिट्टी व रोढ़ी के ढेर बन गए। छह मजिले भवनो की दो या तीन मजिले तो धरती मे ऐसी समा गई है कि पता भी नहीं चलता कि यह थीं भी या कि नहीं। अच्छे-अच्छे नास्तिक भी अब यह कहने लगे कि अब हमे विश्वास हो गया है कि 'ईश्वर' जरूर है । उसका एक छोटा सा झटका बड़े से बड़े अभिमानियो को भी सबक सिखा रहा है। कहते है कि जब पाप बढ़ता है तो धरती हिल जाती है। प्रभु को भुलाकर अपने स्वार्थ के कारण प्रकृति को विकृत करने वाले हमारे 'पापो' ने ही हमे सजा दी है । कक्षा में गलती कोई एक करता है पर सजा पूरी कक्षा को भोगनी पडती है । कभी-कभी तो एक शरारती बच्चे के पास बैठे हुए अनेक शरीफ बच्चे पिट जाते हैं । गुजरात मे भी कुछ ऐसा ही है। गुजरात के लोग प्राय: शाकाहारी व पुरुषार्थी, दानी व धर्म प्रेमी हैं लेकिन मास-अण्डे शराब हेतु प्राय: हत्याये की औरो ने और फल पाया गुजरात ने ।

मुझे गत पन्द्रह वर्षो मे 'कच्छ' मे वेद प्रचार करने का सोभाग्य प्राप्त हो रहा है । वहा आर्य जनो व श्री वाचोनिधि जी की सहायता से पाच आर्य समाजो का निर्माण हुआ है। यह पहला मनहूस वर्ष था कि मैं किन्हीं कारणो से यहा प्रचार हेतु जा नहीं पा रहा था पर जाना पड़ा और वहा हुई इस विनाशलीला को देखकर हार्दिक दुख हुआ । वार्षिकोत्सव हेतु बना आर्य समाज का पण्डाल प्रथम दिन से ही राहत शिविर के रूप में बदल गया और दिन-रात हजारो लोगों को भोजन के साथ-साथ आवास भी दे रहा है । आर्य समाज के युवाजन दिन रात सेवा मे लगे हैं । डा वी एच पटेल के सुयोग्य सुपुत्र व श्री महेश भाई आर्य ने अपनी लाखो की दवाईयां कैमिस्ट शाप से नि:शुल्क बाट दी। डा योगेश जी चिकित्सा कर रहे हैं । डा वी एच पटेल माता गोमती बेन, श्रीमती प्रभा बेन तथा अन्य सभी आर्य जन दिन रात सेवा मे जुटे है। श्री दिलीप भाई भी एक भण्डारा व भूकम्प राहत शिविर चला रहे है। आर्य समाज झण्डा चौंक गाधी धाम के युवा अधिकारी श्री पुरुषोत्तम भाई पटेल माता गुलाबदेवी, श्री शर्मा जी, कक्कड भाई पूर्ण पुरुषार्थ कर रहे है। आर्य प्रतिनिधि सभा गुजरात के सुयोग्य युवामन्त्री बैंक अधिकारी श्री पं वाचोनिधि आर्य तथा विरक्त युवा ब्र धर्मबन्धु जी दिन रात एक करके हजारो के भोजन बिस्तर तथा ग्रामो मे भी ओषधियो का वितरण कर रहे हैं । मनुष्यो के साथ-साथ यह लोग गोओ के लिए भी चारे की व्यवस्था कर रहे हैं । श्री वाचोनिधि का छोटा भाई भी अनथक पुरुषार्थ करत दिखाई दिया । उधर टंकारा मे विद्यालय का परिसर पूरे ग्रामवासियो को भोजन व निवास प्रदान कर रहा है। मान्य आचाय विद्या देव जी व उनके साथी दिन-रात सेवा कर रहे है । हमे यहा पहुचकर पता चला कि यहा लोगो को इस समय मुख्य रूप मे बाहर सोने हतु टैट, गद्दो, हाथ के रबड वाले दस्तानो, बिमारी से बचाव हेतु नाक व मुह व लगाने वाल मास्क तथा स्ट्रैचरो की आवश्यकता हे तथा गोओ हेतु चारे की भी तुरन्त आवश्यकता ह सो सार्वदेशिक सहित सब को इन्हीं चीजो को भेजने की सूचना दी गई । मुम्बई मे आय समाज के सुयोग्य मन्त्री श्री गिरोत्रा जी

(शेष पृष्ठ 6 पर)

गुरुकुल आश्रम आमसेना का 33वां वार्षिक महोत्सव सम्पन्न

गत दिनांक 9-10-11 फरवरी को गुरुकुल आश्रम आमसेना का 33वां वार्षिक महोत्सव एवं स्व. श्री चौ. शीशराम जी आर्य का पुण्य स्मृति दिवस उत्साहमय वातावरण मे श्री कै. रुद्रसेन जी सिन्धु की अध्यक्षता मे मनाया गया।

इस अवसर पर विभिन्न गुरुकुलो के ब्रह्मचारियो की वेद वेदाग की कण्ठस्थ शास्त्र स्मरण प्रतियोगिता का आयोजन भी था । इसमे विभिन्न गुरुकुलों के 35 से अधिक छात्र-छात्राओ ने भाग लिया। महोत्सव में सारे देश के प्रसिद्ध विद्वान् जैसे प. आचार्य सुदर्शन जी शास्त्री (रोतक) प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु जी (अबोहर), स्व. ! इन्द्रवेश जी (पूर्व सासद हरियाणा) श्री रवि हरिश्चन्द्र जी आर्य (जनरल मैनेजर वैद्यनाथ कम्पनी नागपुर) स्वामी श्रद्धानन्द जी (प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा महाराष्ट्र), प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री ओम प्रकाश जी वर्मा (यमुनानगर), प. सुरेन्द्र पाल जी (नागपुर), डा. सु. ब काले (मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा महाराष्ट्र), अंचल के युवा उत्साही विधायक श्री बसन्तकुमार जी पण्डा (नवापारा) डा कुशलदेव जी शास्त्री (महाराष्ट्र) डा कृष्णदेव जी सरस्वती (प्राचार्य शासकीय महा विद्यालय सिमगा), श्री योगेन्द कुमार जी शास्त्री आदि अनेक उच्चकोटि के विद्वान् व वक्ताओं के प्रभावशाली उपदेश हुए । उत्सव के दोनो दिन कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियो के एव गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के अत्यन्त आकर्षक व्यायाम प्रदर्शन ने जन समुदाय को मोहित कर दिया ।

कच्छ प्रदेश में आर्य समाज द्वारा पर्यावरण की शुद्धि तथा आत्मिक शान्ति हेतु वैदिक महायज्ञ

गत दिनाक 14 फरवरी उद्‌गीथ साधना स्थली हिमाचल से पधारे पूज्य आचार्य श्री आर्य नरेश जी वैदिक गवेषक की अध्यक्षता मे सम्पूर्ण अजार के निवासियो के दिवगत हुए लोगो के परिवारो के प्रति आत्मिक शान्ति तथा अनेक नगरवासियो व अन्य प्राणियो के भूकम्प से दब जाने के कारण वातावरण की शुद्धि हेतु महायज्ञ का आयोजन सम्पूर्ण दिवस आक्रोशरी मे किया गया ।

आज दिन तक आचार्य श्री आर्य नरेश जी की अध्यक्षता मे लगभग 15 आर्य वीरो की एक टीम द्वारा गाधी धाम अन्जार तथा भुज आदि क्षेत्रो के लगभग 15 ग्रामो मे यज्ञ किए जा चुके हैं । भूतपूर्व विज्ञान विद्यार्थी व सिविल इन्जीनियर रह चुके आचार्य श्री ने बताया कि भूकम्पो से बचने का एक मुख्य उपाय यज्ञ-हवन है । जो.. एक एर्न्टीसैप्टिक तथा डिस्इन्फैक्टिव वैज्ञानिक प्रक्रिया है सामग्री मे चावल तथा शक्कर गुड मिला कर हवन करने से जो "फार्मेल्डी हाईड" गैस बनती है वह बहुत ही शीघ्र पर्यावरण में फैल कर रोग के किटाणुओं को नष्ट कर देती है। इस यज्ञ को करने हेतु भारत के विभिन्न प्रान्तो से आर्य वीर तथा आर्य समाज के बुद्धिजीवी जन यहा पधारे थे ।

'यज्ञ का पर्यावरण पर प्रभाव' इस विषय पर पी एच डी कर रह विद्यार्थी को सहयोग देने मे आचाय जी ने बताया कि यदि धरती को भूकम्पो तथा तूफानो एव महामारियो से बचाना है तो भारत के प्रत्येक नागरिक को प्राचीन काल की तरह ही प्रतिदिन प्रत्येक घर म हवन करने होगे । यज्ञ-हवन जहा वातावरण को शुद्ध करके उसके समत्व की रक्षा करता है वहा प्राणियो के प्रति प्यार की भावना को बढ कर 'हिसा' का भी निवारण करता है । गत दिनो भारतीय तथा रुसी वैज्ञानिकों द्वारा की गई खोजो मे यही सिद्ध हुआ है कि भूकम्पो के अधिक आने के कारण प्राणियो के मरने से फेल प्रदूषण को यज्ञ से निकलने वाली सूक्ष्म तरंगो से दूर किया जा सकता है। अत: उन्होने कहा कि हवन कराओ और भूकम्प हटाओ । आचार्य श्री नरेश जी आर्य समाज के संस्थापक महर्षि देव दयानन्द के परम अनुयायी हैं ।

—मन्त्री, आर्य समाज गांधीधाम

(पृष्ठ 5 का शेष)

से जैसे ही फोन पर मेरी बात हुई उन्होंने सबके सहयोग से विमान द्वारा स्ट्रैचर, मास्क तथा ग्लब्स भेजने का विशेष कार्य किया । श्री कैप्टन देव रत्न जी व श्री ओंकार नाथ जी से भी दूरभाष पर बात हुई उन्होंने अपना पूर्ण सहयोग देने की बात की। सार्वदेशिक सभा ने तुरन्त बैठक बुलाई और हमारी सूचना के अनुसार उपरोक्त सामान तुरन्त भेजने का निर्णय लिया । श्रीधन परिवार व प्रधान शिवा जी कालोनी रोहतक ने दिल खोल कर सहायता दी ।

इस सारे सामान के साथ-साथ आज सबसे बडी आवश्यकता 'कच्छ' मे वायु-प्रदूषण को रोकने की है सो उसके लिए हमने विभिन्न संस्थाओ को हवन-सामग्री की भी एक बहुत बडी मात्रा हवन कुण्डों सहित भेजने का आग्रह किया है । सभी आर्य सज्जनो से हमारा अनुरोध है कि वे एक तो लाशो के संस्कार मे अधिक सामग्री जलायें । दूसरे विभिन्न नगरो तथा ग्रामो मे यदि उन्हे अन्य मन्त्र न भी आते हो तो केवल गायत्री मन्त्र बोलकर ही हवन करना शीघ्र प्रारम्भ कर दे । जिससे कि भूकम्प से बचे हुए लोग भावी बिमारी फैलने के भय से बच सके । धर्म की रक्षा हेतु इस समय यह भी अनिवार्य है कि पूरे देश या विदेश के सम्पन्न जन ग्रामो व नगरो मे रह रहे लोगो के रहने हेतु शीघ्र घर बनवाने का प्रयास करे । जिससे कि सहायता की आड मे धर्म परिवर्तन करने वाले उन विदेशी पादरियों से बचा जा सके जो इस समय प्राय: वहां दिखाई नहीं देते ।

प्रियवर ! मानव जीवन का मुख्योद्देश्य सेवा और साधना है । जिसे यज्ञ और योग अथवा ओम् स्वाहा भी कह सकते हैं । जीवन का गहन रहस्य यह है कि संसार मे जन्म लिए बिना मुक्ति की तैयारी नहीं हो सकती और ससार मे अनुशासन तथा त्याग पूर्वक चलते हुए उसे छोड़े बिना भी मुक्ति नहीं हो सकती । इसलिए मुक्ति हेतु संसार मे जन्म लेना तथा इस प्रभु की पाठशाला में स्वार्थ रहित कर्म करते 'यज्ञ' के समान सब को अपना समझ कर दु:ख-दर्द में सहयोग देते हुए सफल हो सकता है। यही जीवन का सार है । यही बात हम सब प्राणियो का पिता 'परमेश्वर' अपने वेद ज्ञान मे उपदेश करता है- "यदङ्ग दाषुशे तमग्ने भद्र करिष्यसि" कि मैं उसी व्यक्ति को अपना मानता हूं अर्थात् अपना पूर्ण प्यार व आनन्द देता हू जो कि मेरी तरह ही अपना सब कुछ जरूरत पडने पर दूसरो के लिए न्यौछावर कर देता हैं। अत: यदि हम जीवन मे स्वार्थ व हिसा का त्याग कर परमार्थ हित जीवन व्यतीत करने लगे तो इस प्रकार से हम अनेको भूकम्प, तूफान, अकाल या अतिवृष्टि जैसी विपदाओ और युद्धों व दुखो से बच कर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं ।

शोक समाचार

आर्य समाज भुच्चो मण्डी के संस्थापक महाशय अमरचन्द जी का देहान्त दिनाक 30-1-01 को हो गया । अत्येष्ठि सस्कार पूर्ण वैदिक रीति से करवाया गया। वह एक बहुत ही नेक व्यक्ति थे । इनका जीवन बहुत सादा था । वे कई वर्षो आर्य समाज भुच्चो मण्डी के प्रधान भी रहे। उन्होने तन, मन और धन से आर्य समाज की सेवा मे अपना सारा जीवन व्यतीत किया। हर वर्ष आर्य समाज भठिण्डा द्वारा मनाए जाने वाले ऋषि बोधोत्सवों मे वह अपने साथियो समेत सम्मिलित होते थे। वह इस क्षेत्र के आर्य समाज की धरोहर माने जाते थे।

इनके निमित्त श्रद्धाजलि समारोह का आयोजन भुच्चो मण्डी मे दिनाक 4 2 01 को किया गया । इस सभा मे इस क्षेत्र के माननीय मानसा राम जी स्वतन्त्रता सेनानी, लाला वजीर चन्द जी मंगला प्रधान [illegible] आर्य सभा, श्री पी डी गोयल प्रधान आर्य माडल हाई स्कूल, चौ बाबू राम गर्ग प्रधान गुरुकुल शिल्प विद्यालय, आर्य समाज भठिण्डा के पुरोहित पं. श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री "वैदिक प्रवक्ता" ने अपनी एवं अपनी संस्था की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की । आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से श्री प्रेम भाटिया, मन्त्री जी ने श्रद्धांजलि भेंट की।

—प्रेम भाटिया

दयानन्द पब्लिक स्कूल में समारोह

दयानन्द पब्लिक स्कूल, दीपक सिनेमा रोड लुधियाना में 18-2-2001 को महर्षि दयानन्द जी का जन्म दिवस प्रातः 9-30 बजे से बाद दोपहर 2.00 बजे तक बड़े समारोह से स्कूल में मनाया गया । कारवाई हवन-यज्ञ से आरम्भ हुई । मुख्य यजमान श्री वेद भूषण तथा उनका सारा परिवार था। इसके अतिरिक्त श्री अश्विनी कुमार मलिक, श्री पूर्णचन्द वधवा सपरिवार, श्री कुलदीप सूद सपरिवार, श्री मनोहर लाल गोयल सपरिवार, श्री जोगिन्द्र कुमार लेखी सपरिवार एवम् आठवीं तथा दसवीं के सारे छात्र यजमान बने थे । यज्ञ आर्य समाज किदवई नगर के पुरोहित श्री भरत सिंह आर्य मस्ताना ने कराया । यजमानों को आशीर्वाद महात्मा सुमना जी यति ने दिया । ज्योति श्री वेदभूषण जी मदान मलिक वी के स्टील ने प्रचण्ड की। ओ३म् का ध्वज श्री सेठ रामेश्वर दास मालिक महाराज पैलेस ने लहराया । यज्ञ के बाद समारोह की कारवाई श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता, प्रधान प्रबन्ध समिति ने की । समारोह का उद्घाटन करते हुए स्कूल के प्रबन्धक श्री आशानन्द आर्य ने सब जनता को आज के शुभ दिन पर बधाई देते हुए कहा कि भारत में महिलाओं तथा पिछडे वर्ग को समान अधिकार देने के लिए सबसे पहले महर्षि दयानन्द जी ने आवाज उठाई थी । उन्होंने देश में अज्ञान अन्याय और अविद्या समाप्त करने के लिए संघर्ष किया । हम उनके अनुयायियों को उनके अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए पूरा यत्न करना चाहिए । इसके पश्चात् स्कूल की छात्रा राजदीप ने गायत्री मन्त्र की सुन्दर व्याख्या की । राहुल ने कविता पढी। कुमारी सुनीता ने ऋषि दयानन्द के जीवन पर भाषण एवम् रेखा आर्य ने गीत प्रस्तुत किया । इस कार्यक्रम को जनता ने बहुत पसन्द किया और बच्चों को काफी पारितोषिक दिए । डा राम अवतार जी एम ए पी एच डी जालन्धर ने अपने ओजस्वी विचार दिए । महात्मा प्रेम प्रकाश जी धूरी वालो ने स्वामी दयानन्द जी के जीवन की कई घटनाएं सुनाईं । श्री योगराज जी शास्त्री, पुरोहित आर्य समाज हबीबगंज ने ऋषि जी के जीवन पर मधुर गीत गाकर जनता को आनन्दित किया। श्री ब्रह्म पाल जी सूद ने भी अपने विचार रखे । हाजरी इतनी अधिक थी कि हाल में तिल रखने का स्थान नहीं था। इस अवसर पर जनता ने ऋषि लंगर के लिए दिल खोलकर दान दिया। नए हाल के लिए श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता ने दो पंखे सेठ रामेश्वर दास जी ने दो पंखे, श्रीमती विनोद गांधी जी ने दो पंखे, श्री वेदभूषण जी मदान ने चार पंखे दान दिए । ऋषि लंगर सायं पांच बजे तक चलता रहा । रात्रि को दीपमाला की गई । इस कार्यक्रम को सफल बनाने मे स्कूल की प्रिंसीपल, स्टाफ, छात्र-छात्राओं ने श्रद्धापूर्वक योगदान दिया । प्रबन्ध समिति के सदस्य श्री बृजमोहन अरोडा, श्री ओम प्रकाश गुप्ता जवाहर नगर, श्रीमती विनोद गांधी, श्री सतपाल नारग ने बहुत परिश्रम किया ।

—सुनीता मलिक

आर्य समाज हबीब गंज लुधियाना में ऋषि बोधोत्सव

आर्य समाज हबींब गंज मे ऋषि बोधोत्सव 21-2-2001 मे बडे हर्षोल्लास से सम्पन्न हुआ । उत्सव का आरम्भ यज्ञ के द्वारा हुआ । यज्ञ के ब्रह्मा पं योगराज जी शास्त्री जी थे । उन्होने बडे ही सुन्दर ढंग से यज्ञ सम्पन्न करवाया । यजमान पद को माननीय श्री वेद भूषण जी मदान, मालिक बी के स्टील कम्पनी ने सुशोभित किया। इस अवसर आर वी प्राईमरी स्कूल के बच्चो तथा अध्यापिकाओ ने बढ-चढ कर भाग लिया. इनके अतिरिक्त अनेको महानुभावो ने इस समारोह मे उपस्थित हो कर ऋषि गुणगान किया । अन्त मे आर्य समाज के प्रधान श्री आशानन्द जी आर्य ने भी अपने विचार व्यक्त किए । इस अवसर पर स्त्री आर्य समाज की प्रधाना श्रीमती विनोद गान्धी, श्रीमती लीला कपूर, श्री रमन जी एवं नौजवान सभा के प्रधान श्री सदीप कुमार भी उपस्थित थे ।

—जनकराज भगत, मन्त्री

(पृष्ठ 1 का शेष)

वेद ने निश्चय तौर से मानव मात्र को सूचित किया है कि ईश्वर सब लोक लोकान्तरो की परम माता भी है। जो मानव उसकी वश करने वाली शक्ति को देखते है, वह भयभीत हो जाते हैं। लेकिन जिन मानवो के भीतर के नेत्र खुल गए हैं, वह उससे बडी शक्ति प्राप्त करते हैं और हर समय प्रसन्न रहते हैं और शान्ति के सागर मे डुबकिया लगाते रहते हैं और आनन्द की लहरो मे झूमते हैं ।

एक परम मा, तू हमे इस संसार मे अपनी दाहनी गोद में निवास देती है परन्तु हम इतने बुद्धिहीन और शक्ति रहित हैं कि हम इस बात को समझ नहीं सकते और न ही आपके स्वभाव (Nature) को और न ही आपके दिए हुए सुख को जो सब से बड़ा साधन है। हे परम माता हमे इतना शक्तिशाली और ज्ञानवान कर दो कि मृत्यु शैय्या पर लेटे हुए, यह अनुभव न करे कि आप की सुखदायक गोद से हम पृथक हो रहे हैं।

ओह, हमारी सब से प्रिय माता, हमे मृत्यु के भय से निर्भीक बना दीजिए, परन्तु शान्ति दायक गोद से जुदा ना कीजिए । हमारी पुनः पुनः यही प्रार्थना है कि जब आप का निर्दोष हो, संसार को छोड़ते समय, खरबूजा फल की तरह हमारे सात्विक और पवित्र कर्मो की सुगन्धि और मिठास इस ससार मे फैले फिर से हम आप से अत्यन्त दीन भाव से वर मांगते हैं ।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष सम्पादक प्रकाशक मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौंक किशनपुरा जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष : ☎ :292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 11 मार्च 2001 दयानन्दाब्द 177

भूकम्प पीड़ित 100 अनाथ बच्चों को आर्य प्रतिनिधि सभा ने गोद लेने का निर्णय लिया

सभा से सम्बन्धित सभी स्कूल कालेजों में नैतिक शिक्षा व धर्म शिक्षा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाए

प्रत्येक शिक्षा संस्था में शनिवार को यज्ञ अवश्य किया जाए

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की व आर्य विद्या परिषद् पंजाब की एक आवश्यक बैठक दिनांक 1-3-2001 को सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर में सम्पन्न हुई । इस बैठक मे सभा सम्बन्धित लगभग सभी स्कूल कालेजों के प्रिंसिपल, प्रधान, सैक्रेटरी और मैनजर भी इस बैठक में पधारे । एक सौ से अधिक महानुभावो ने इस बैठक में भाग लिया ।

लगभग सभी सभा अधिकारी इस अवसर पर सभा कार्यालय मे उपस्थित थे । सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा की अध्यक्षता मे कार्यवाही आरम्भ हुई । श्री डा. के.के. पसरीचा सभा कार्यकर्त्ता व वरिष्ठ उप प्रधान ने कहा कि सभा की शिक्षा संस्थाओं में धर्म शिक्षा का प्रबन्ध होना आवश्यक है । धर्म शिक्षा की परीक्षाएं भी आरम्भ होनी चाहिएं जैसे पहले सभा की ओर से होती थी। डाक्टर जी ने यह भी सुझाव दिया कि प्रत्येक शिक्षा संस्था मे सप्ताह में एक बार किसी विद्वान को बुला कर प्रार्थना के बाद उनका उपदेश करवाया जाए । श्री डाक्टर जी ने सुझाव दिया कि भूकम्प पीड़ित 100 अनाथ बच्चों को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गोद लेकर उनकी शिक्षा के उचित प्रबन्ध करे । सभी ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया।

सभा प्रधान श्री पं हरबंस लाल जी शर्मा ने कहा कि धर्म शिक्षा को अनिवार्य विषय के रूप मे पढ़ाया जाए उन्होंने कहा कि हम वेद प्रचार के कार्य को बढ़ा रहे हैं सभा में कई नए उपदेशकों, भजनोपदेशकों को रखा जाएगा । प्रत्येक स्कूल में उपदेश के लिए विद्वान् भेजे जाएंगे । उन्होंने आगे कहा कि एक सौ अनाथ बच्चों का सभा की ओर से पूरा प्रबन्ध किया जाएगा ।

श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद ने कहा कि धर्म शिक्षा परीक्षा मे प्रथम द्वितीय तृतीय आने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कार भी दिए जाएं और दूसरी सुविधाएं भी दी जाएं ताकि अधिक से अधिक विद्यार्थी धर्म शिक्षा में रुचि ले । उन्होने सुझाव दिया कि सभा को और सब शिक्षा संस्थाओं को मिल कर एक सौ अनाथ बच्चो को गोद ले लेना चाहिए।

प्रिंसिपल स्वतन्त्र कुमार जी सभा उप प्रधान ने कहा कि अब काला अध्याय समाप्त हो चुका है अब शिक्षा संस्थाओं के सुधार के लिए व धर्म शिक्षा के लिए कार्य आरम्भ कर देना चाहिए । उन्होंने कहा कि प्रत्येक पर्व को संस्थाएं मिल कर मनाएं । हम पठानकोट मे सम्मिलित रूप से किसी एक संस्था में प्रतिवर्ष आर्य समाज के पर्व सम्मलित रूप से मनाते हैं विद्यार्थियों को भी आर्य समाजों के पर्वों के बारे में पता चल जाता है। उन्होंने कहा कि अनाथ बच्चो की जिम्मेदारी सभा व शिक्षा संस्थाएं मिल कर उठाएं ।

श्री प्रेम भारद्वाज जी सभा कोषाध्यक्ष ने कहा कि नवांशहर की शिक्षा संस्थाओं की स्थिति में अब काफी सुधार है सभी शिक्षा सस्थाए ठीक ढंग से चल रही हैं हमारे प्रिसिपल यहा बैठे हुए हैं । हमारा क्राफ्ट स्कूल भी ठीक ढग से चल रहा है हमे अश्विनी कुमार शर्मा ने गत वर्ष कहा कि हम इसमे दाखला फीस बढा दे परन्तु प हरवश लाल जी शर्मा सभा प्रधान ने उसी समय इसका विरोध किया था कि हम दूसरों की देखा-देखी गलत कार्य नहीं करेंगे।

उन्होने आगे कहा कि हमे पोस्टें बिकने नहीं चाहिए मैरिट पर अध्यापक व प्राध्यापक अपनी शिक्षा संस्थाओं में रखने चाहिए । हमारी संस्थाए बदनाम हो चुकी हैं आज हमे सावधान हो जाना चाहिए।

श्री सुरेन्द्र नाथ जी मुरगई सभा महामन्त्री ने कहा कि जितनी संस्थाएं सभा से जुड़ी हैं उनमें कुछ तो धर्म शिक्षा का कार्य होता ही है। सरकारी स्कूल कालेजो से हमारे स्कूल-कालेज आज भी बहुत अच्छे हैं । हमारी शिक्षा संस्थायें सरकारी स्कूल-कालेजो से अलग सी दिखाई देनी चाहिएं। जब मैं लाहौर में पडता था तो वहा प्रत्येक विद्यार्थी के लिए सन्ध्या करना जरूरी था। धर्म शिक्षा की पढाई अनिवार्य थी आज भी ऐसा होना चाहिए। उन्होने आर्य मर्यादा मे स्कूल-कालेजो के अधिकारियो से विज्ञापन भेजने की भी अपील की।

चौ. ऋषिपाल सिह एडवोकेट सभा उप प्रधान ने कहा कि हमे अपने स्कूल कालेजो में विद्यार्थियो पर आर्य समाज के संस्कार अवश्य डालने चाहिएं । हमें बुराई से सुलह नहीं करनी चाहिए बल्कि बुराइ को जड़ से उखाड़ फैंकना चाहिए । उन्होने कहा कि हमारा अश्विनी कुमार शर्मा से कोई समझौता नहीं हो सकता उसने सभा को बहुत हानि पहुंचाई है । हमने आर्य समाज की स्थिति सुधारनी है पुराने जमाने की तरह आर्य समाज का नाम सारे संसार मे फैलाना है । उन्होने आर्य मर्यादा में विज्ञापन भेजने के लिए तथा लेख व कविताएं भेजने के लिए सभी को सलाह दी ।

श्री धर्मपाल जी सहगल एडवोकेट सभा उप प्रधान ने कहा कि हमे अपनी शिक्षा संस्थाओं की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और इन मे धर्म शिक्षा का पूरा-2 प्रबन्ध करना चाहिए । पूर्ववत प्रत्येक संस्था मे यज्ञ आदि करवाने की व्यवस्था होनी चाहिए । हमे नगर के प्रत्येक मोहल्ले में पारिवारिक सत्सग व यज्ञ आदि का आयोजन करना चाहिए। इससे लोग आर्य समाज के साथ जुडेंगे ।

श्री कुलवन्त राय जी अग्रवाल प्रधान आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल भठिण्डा ने कहा कि आज हमे संकल्प लेना चाहिए कि हम अपनी शिक्षा संस्थाओं से बुराईयों को बाहर निकालेगे। उन्होने आगे कहा कि शिक्षा-संस्थाओं की उन्नति के लिए प्रिंसिपल और प्रबन्ध समितियो के अधिकारियों में तालमेल होना अवश्यक है । (शेष पृष्ठ 2 पर)

(पृष्ठ 1 का शेष)

श्रीमती राजेश शर्मा सभा मन्त्री ने कहा कि हमे पहले अपने दूरितों को दूर करना चाहिए और फिर भद्र को वहा स्थापित करना चाहिए। जब तक दूरित दूर नहीं होंगे तब तक भद्र नही ठहर सकेंगे। पहले हमे अपनी शिक्षा सस्थाओ की बुराईयो की ओर भी ध्यान देना चाहिए जहा जो कमी है उसे दूर करे जहा कोई बुराई है उसे सुधारे ।

श्री वासुदेव जी प्रधान आ सी सै स्कूल धूरी ने कहा कि शिक्षा सस्थाओ मे प्रबन्धक आदि अधिकारी स्थानीय आर्य समाजो के सदस्यो को बनाया जाए। शराबी कबाबी व्यक्ति को किसी प्रबन्ध समिति मे न लिया जाए ।

श्रीमती देवेच्छा प्रिसिपल डी ए एन कालेज आफ ऐजुकेशन नवाशहर ने कहा कि हमे धर्म शिक्षा पाठ्यक्रम को दो भागो मे बाटना चाहिए। स्कूल स्तर और कालेज स्तर का अलग-अलग पाठ्य क्रम बनाना चाहिए । धर्म शिक्षा की परीक्षाए ली जाए और पारितोषिक देने के लिए सभा अधिकारियो को स्कूल-कालेजो मे बुलाना चाहिए इससे स्थानीय अधिकारियो ओर बच्चो को बल मिलेगा ।

श्री प्रिसीपल भारद्वाज डी एम कालेज मोगा ने अपने सुझाव रखते हुए कहा कि आज के वातावरण मे नैतिक शिक्षा विद्यार्थियो को दी जानी बडी आवश्यक है।

श्री चमन लाल जी मेहत्ता भठिण्डा ने कहा कि स्कूल कालेजो मे अध्यापक-प्राध्यापक जब रखे जाए तो हमे ध्यान देना चाहिए कि क्या वह आर्य समाजी विचारधारा के हैं ? अक्सर हम ऐसा नहीं करते ।

श्री प्रिसीपल वी के मेहता आर्य कालेज लुधियाना ने कहा कि धर्म शिक्षा को स्कूलों मे तो लागू किया जा सकता है परन्तु कालेजो मे इसका आरम्भ करना कठिन है आज टेलीविजन ने सारा वातावरण बिगाड रखा है। यदि स्कूल स्तर पर धर्म शिक्षा अनिवार्य होगी और वह विद्यार्थी जिन्होने धर्म शिक्षा स्कूल में पढी होगी वह कालेज में भी धर्म शिक्षा मे रुचि लेगे. । अन्य विद्यार्थी इसमे रुचि नहीं लेंगे। इस विषय मे सुझाव तो कई बार दिए जाते हैं परन्तु उन्हें क्रियान्वित नहीं किया जाता। इसलिए यहां जो सुझाव दिए जा रहे हैं उन्हें क्रियान्वित भी किया जाए । पहले बच्चो को घर मे संस्कार दिए जाए फिर स्कूल मे दिए जाएं इसके बाद कालेज मे वह विद्यार्थी स्वयं रुचि लेगे। घर मे तो हमारे बच्चे हमारे अनुशासन से बाहर हो रहे हैं फिर हम कालेज मे उन्हे कैसे अनुशासन मे रखे। जो बच्चे माता-पिता की बात नहीं सुनते वह अध्यापको की बात कैसे सुनेगे उन्होने सुझाव दिया कि आर्य समाज को शिक्षा विभाग के पाठ्यक्रम मे भी सुधार करवाना चाहिए उसमे महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज की शिक्षाए भी सम्मिलित करवानी चाहिएं । सरकारी पाठ्य क्रम मे भी नैतिक शिक्षा सम्मिलित करवाई जा सकती है ।

श्री प्रिसीपल के एल गर्ग मोगा ने कहा कि चारो वेद प्रत्येक स्कूल कालेज की लायब्रेरी मे होने चाहिएं ताकि कोई भी यदि वेदो के बारे जानना चाहे तो वह जान सके ।

श्री प्रिं. बी पी अरोड़ा मोगा ने सुझाव दिया कि कि अच्छे-अच्छे विषय लेकर जिला स्तर पर स्कूल कालेजो मे भाषण प्रतियोगिताएं करवाई जाए और उसके बाद प्रान्तीय स्तर पर करवाई जाएं और प्रथम, द्वितीय, तृतीय आने वाले विद्यार्थियो को पारितोषिक देकर प्रोत्साहन दिया जाए ।

प्रिंसीपल सी मारकण्डा तपा मण्डी ने कहा कि पंजाब में स्कूल कालेजो से संस्कृत भाषा समाप्त की जा रही है । उसकी पोस्टे भी समाप्त की जा रही हैं । इसके साथ ही संस्कृत के विद्यार्थियों से अलग से दाखिला फीस ली जा रही है। पंजाब सरकार संस्कृत भाषा के साथ सौतेली मां सा व्यवहार कर रही है जबकि हमारे सारे धार्मिक ग्रथ संस्कृत मे हैं इसलिए कम से कम सभा से सम्बन्धित सभी स्कूल-कालेजो मे सस्कृत की पोस्टे कायम की जाएं, सस्कृत अध्यापक रखे जाएं और अधिक से अधिक विद्यार्थियों को सस्कृत पढाई जाए । पंजाब सरकार से भी माग की जाए कि वह संस्कृत के विद्यार्थियो से अलग से दाखला फीस न ले। उन्होने आगे सुझाव दिया कि हमें कवि सम्मेलन भी बुलाने चाहिएं ।

श्री प्रिसीपल ओ.पी टण्डन सभा मन्त्री तथा श्री हरबंस लाल जी सेठी एडवोकेट सभा उपप्रधान ने भी अपने सुझाव दिए । श्री प्रेम भाटिया जी सभा मन्त्री भठिण्डा ने सुझाव दिया कि आर्य समाज के विद्वानो के स्कूल-कालेजों में व्याख्यान समय-समय पर करवाए जाएं । युवा शक्ति को हमें आर्य समाज की ओर आकर्षित करना चाहिए।

प्रिंसिपल स्वतन्त्र कुमार जी ने सुझाव दिया कि हमे माडल, स्कूल, पब्लिक स्कूल, एडड तथा अनएडड स्कूलों के अलग-अलग विभाग बना कर उनके प्रिंसिपलों की कमेटियां बना देनी चाहिएं । स्कूलों का वातावरण आर्य समाजी ढग से बना देना चाहिए । स्कूल की दीवारो पर वेद मन्त्र लिखे हो वेद की सूक्तिया लिखी हो, आर्य समाज के महापुरुषो के चित्र स्कूलो, कालेजो में लगे हो ताकि बाहिर से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को पता चले कि यह आर्य समाज की सस्था है। प्रत्येक शिक्षा सस्था मे प्रति शनिवार या महीने के आखरी शनिवार को अवश्य ही विद्यालयों मे यज्ञ किया जाए प्रत्येक लाईब्रेरी में आर्य साहित्य अवश्य रखा जाएं । भाषण प्रतियोगिता, प्रश्नोत्तरी, गीत प्रतियोगिताए रखी जाए । आर्य वीर दल का गठन किया जाए और योग साधना शिविर ग्रीष्म अवकाश के अवसर पर स्कूल कालेजों मे लगाए जाए । प्रत्येक संस्था के प्रिंसिपलों को इसमें रूचि लेनी चाहिए।

इस अवसर पर लुधियाना की सभी शिक्षा संस्थाओं के प्रिंसिपल, मोगा, नाभा, पटियाला, धूरी, बरनाला, तपा (संगरूर) तथा जिला गुरदासपुर की तथा जालन्धर शिक्षा संस्थाओं के प्रिंसिपल व अधिकारी उपस्थित थे।

–धर्मदेव आर्य,
सभा कार्यालयाध्यक्ष

सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा द्वारा 17-12-2000 का पंजाब सभा का चुनाव स्वीकार

क्रमांक 941/2001 दिनांक : 27-2-2001

श्री पं हरबंस लाल शर्मा जी, सप्रेम नमस्ते !

आपने मुझसे कहा था कि हमें सार्वदेशिक सभा की अतरंग की बैठक दिनांक 17-2-2001 में आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के निर्वाचन के सम्बन्ध में लिए गए निर्णय की प्रति भेज देवें ।

आपके पास सभा प्रधान श्री स्वामी ओमानन्द जो व मन्त्री श्री वेदव्रत जी शर्मा द्वारा हस्ताक्षरित प्रति भेज रहा हूं । आशा है आपके निर्देशन में सभा का कार्य सुचारू रूप से चलेगा । सधन्यवाद ।

सेवा में,
श्री पं. हरबंस लाल शर्मा, प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

सुमेधानन्द सरस्वती,
कार्यकारी प्रधान,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा में दिनांक 17-2-2001 को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सम्बन्ध में लिए गए निर्णय की प्रमाणित प्रति

क्रमांक 940/2001 दिनाक : 27-2-2001

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अतरग की बैठक दिनाक 17-2-2001 में सभा प्रधान श्री स्वामी ओमानन्द जी की अनुमति से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन किशनपुरा चौक, जालन्धर के निर्वाचन से सम्बन्धित विषय प्रस्तुत करते हुए सभा के उप-प्रधान प्रो शेर सिंह ने कहा कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का जो निर्वाचन दिनाक 17-12-2000 को सम्पन्न हुआ, और जिसमे श्री हरबस लाल शर्मा को प्रधान चुना गया उसे ही स्वीकृत करना चाहिए । विस्तृत विचार-विमर्श के पश्चात् उक्त निर्वाचन को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया।

वेदव्रत शर्मा, मन्त्री **ओमानन्द सरस्वती**, प्रधान

सम्पादकीय.....

"आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महत्वपूर्ण निर्णय"

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का जो 17-12-2000 को चुनाव हुआ है उसके पश्चात् से सभा का कार्य निरन्तर तेजी से आगे बढ़ता जा रहा है। गत दिनों 21-1-2001 को सभा की अन्तरंग सभा मे कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए थे उसके पश्चात् 1-3-2001 को आर्य विद्या परिषद की कार्य समिति में कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए गए हैं जैसा कि पंजाब के सभी आर्य बन्धुओं को आशा थी कि 17-12-2000 के बाद सभा का कार्य सुचारू रूप से चलेगा यह आशा आर्य बन्धुओं की पूरी हो रही है। गत दिनों सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली ने पंजाब सभा के 17-12-2000 के चुनाव को मान्यता प्रदान कर दी है। श्री अश्विनी कुमार शर्मा को सार्वदेशिक सभा से निष्कासित कर दिया गया है । यह निर्णय दिनांक 17-2-2001 की सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा में लिया गया है। इस समाचार से पंजाब की आर्य जनता में खुशी की लहर दौड़ पडी। अब पंजाब की सभी आर्य समाजें तथा शिक्षा संस्थायें इकट्ठी हो रही हैं। इसका एक उदाहरण 1-3-2001 को आर्य विद्या परिषद पंजाब की कार्य समिति की बैठक मे उस समय देखने को मिला जब मोगा तथा बरनाला की सभी शिक्षा संस्थाओं के प्रिसिपलों ने इस बैठक में भाग लिया और मोगा तथा बरनाला आर्य समाज के महानुभावों ने लिखित रूप से दिया कि वह 17-12-2000 के सभा के चुनाव को वैध मानते हैं मुझे तथा अन्य सभी सभा अधिकारियों को अपना पूरा-पूरा सहयोग देने के लिए भी लिख कर दिया । यहा विचारणीय बात यह है कि मोगा तथा बरनाला आर्य समाज के सदस्य इस से पूर्व अश्विनी कुमार शर्मा को अपना सहयोग दे रहे थे परन्तु उन्होंने अब निर्णय किया है कि अब वह सभा के संगठन में रह कर कार्य करेंगे । दो-चार आर्य समाजों को छोड़ कर शेष सभी आर्य समाजें अब सभा के सगठन में आ गई हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व आर्य विद्या परिषद पंजाब की इस कार्य समिति की बैठक में सभी शिक्षा संस्थाओं के अधिकारियों, प्रिसिपलों तथा सभी सभा अधिकारियों ने मिल कर कई महत्वपूर्ण निर्णय लिए हैं । इनमें मुख्य रूप से निम्न निर्णय लिए गए हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब भूकम्प पीड़ित गुजरात के 100 अनाथ बच्चों को गोद लेगी और उनके आवास, भोजन, वस्त्र व पढाई की पूर्ण जिम्मेदारी अपने ऊपर लेगी । इसमें आए हुए सभी स्कूल कालेजों के प्रिंसिपलों तथा उनकी प्रबन्ध समितियों के सदस्यों ने सभा को अपना पूरा-पूरा आर्थिक सहयोग देने का निश्चय किया है ।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने निश्चय किया है कि सभा से सम्बन्धित प्रत्येक स्कूल कालेज में नैतिक शिक्षा-धर्म शिक्षा देने का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया जाएगा ।

प्रत्येक संस्था में पूर्व की भान्ति प्रति शनिवार को यज्ञ किया जाएगा और इस अवसर पर विद्वानों को बुला कर विद्यार्थियों को यज्ञ के लाभ तथा आर्य समाज के सिद्धान्तों की जानकारी दी जाएगी ।

यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक स्कूल-कालेज की लायब्रेरी में चारों वेद तथा आर्य समाज का साहित्य अवश्य रखा जाएगा तथा स्वाध्याय के प्रति विद्यार्थियों में रूचि पैदा की जाएगी ताकि वह इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करें ।

यह भी निश्चय किया गया कि धर्म शिक्षा की व नैतिक शिक्षा की ऐसी पाठ्य पुस्तकों का भी निर्माण किया जाएगा जिनमें आर्य समाज के सिद्धान्तों का समावेश होगा । यह भी निश्चय हुआ कि आर्य समाज के सिद्धान्तों के अनुसार भाषण प्रतियोगिताएं, स्कूल-कालेज स्तर पर, फिर जिला स्तर पर, फिर प्रान्तीय स्तर पर रखी जाएंगी । जो विद्यार्थी इन प्रतियोगिताओ मे भाग लेंगे उन्हें पारितोषिक देकर प्रोत्साहित किया जाएगा । आर्य समाज के सिद्धान्तों पर प्रश्नोत्तरी भी स्कूल कालेजो में रखी जाएगी । योगा के शिविर समय-समय पर स्कूल-कालेजो मे लगाए जाएंगे । उनमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय आने वाले विद्यार्थियो को भी पारितोषिक दिए जाएंगे ।

यह भी निश्चय हुआ कि संस्कृत भाषा की उन्नति को मध्यनजर रखते हुए स्कूलों मे संस्कृत अध्यापकों की पोस्टे कायम की जाएंगी जिन स्कूलो में पोस्टे नहीं है उनमे स्कूलों की तरफ से सस्कृत अध्यापक रखे जाएंगे और संस्कृत के विद्यार्थियों को भी प्रोत्साहन दिया जाएगा ।

यह भी निश्चय हुआ कि पंजाब सरकार व पंजाब के शिक्षा विभाग से मांग की जाएगी कि वह सस्कृत के पठन-पाठन मे पैदा की गई रुकावटो को स्वय दूर करे । यदि इसके लिए सरकार से संघर्ष की आवश्यकता पड़ी तो वह भी करने के लिए हम तैयार हैं । परन्तु हमने इससे पहले अपनी शिक्षा सस्थाओ में स्वयं संस्कृत की पढ़ाई आरम्भ करनी है ।

सभी स्कूल-कालेजों के वातावरण को आर्योचित बनाया जाएगा ताकि जो भी व्यक्ति सभा से सम्बन्धित शिक्षा सस्था में नया जाए वह उसके वातावरण को देखकर उससे प्रभावित हो ।

प्रत्येक स्कूल कालेज में वैदिक विद्वानों को प्रचारार्थ भेजा जाएगा और उनके विद्यार्थियों में प्रवचन कराए जाएंगे और वाक् वर्धिनी सभाओं का भी पूर्ववत् आयोजन किया जाएगा ताकि विद्यार्थी भी भाषण कला में निपुण हों ।

आर्य शिक्षा संस्था में पढ़ने वाले प्रत्येक बच्चे को आर्य समाज तथा इसके संस्थापक महर्षि दयानन्द का परिचय दिया जाएगा । प्रत्येक विद्यार्थी में देश भक्ति की भावना पैदा की जाएगी । देश के अन्य महापुरुषों के जीवनों पर भी प्रकाश डाला जाएगा । विद्यार्थियों को उनका कर्त्तव्य क्या है ? देश के प्रति समाज के प्रति और राष्ट्र के प्रति यह समझाया जाएगा । स्कूली शिक्षा के साथ-साथ उन्हें इन्सानियत की शिक्षा और धार्मिक शिक्षा भी दी जाएगी ।

वेद प्रचार के कार्य को आगे बढाया जाएगा। सभा के उपदेशकों को स्कूलों, कालेजों में तथा छोटे-छोटे कस्बो व नगरों में भी वेद प्रचारार्थ भेजा जाएगा । बडे-बडे यज्ञो व पारिवारिक सत्संगों का आयोजन किया जाएगा ताकि अधिक से अधिक लोगो तक वेद का सन्देश पंहुचाया जाए।

आर्य समाज की स्थापना के 125वे वर्ष को मनाते हुए वेद के प्रचार व प्रसार के लिए कई महत्वपूर्ण कदम आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से शीघ्र उठाए जाएंगे । शीघ्र ही इसके लिए एक योजना बना कर आर्य समाजों व आर्य शिक्षा सस्थाओ तथा आर्य जनता को भेजी जाएगी।

—**हरबंस लाल शर्मा**, सभा प्रधान

आशावादी बनने के लिए क्या करें ?

सर्वप्रथम तो हम आशावाद के सम्बन्ध मे अपना कुछ भ्रम दूर कर ले। एक मनोवैज्ञानिक का कथन है कि "आशावाद निरन्तर उल्लासित रहने का नाम नही है और न ही यह निराशा से बचने में भाग्यशाली होने का नाम है।" आशावाद धन सम्पत्ति से परिपूर्ण और सतुष्ट होने का नाम भी नहीं है । वास्तविकता तो यह है कि बिना कारण बिना उद्देश्य के सम्पन्नता भी निरर्थकता का बोध कराती है । इसमे से ज्यादातर लोग इतनी सुख-सुविधा के बीच रहते है जिसकी पचास वर्ष पहले कल्पना भी नही की जा सकती थी ! पर चूकि हम ये मान कर चलते है कि आज उपलब्ध सभी सुविधाओ के हम अधिकारी है । इसलिए जब वे हमे नहीं मिलती तो हम अपने आपको औरो द्वारा ठगा गया अनुभव करते है। फिर आशावाद क्या है? एक अन्य मनोवैज्ञानिक का कहना है कि "अपनी विफलनाओ के विषय मे निरन्तर आत्मवलोकन करते रहना ही आशावाद है।" यह निम्नलिखित प्रकार से कार्य करता है :

निराशावादी यह मान कर चलता है कि दुर्घटनाओ मे से स्थायी दुर्भावना परिस्थिति से उपजती है जैसे–मैं खेल मे इसलिए हार गया क्योकि मै एक रद्दी खिलाड़ी हू ।

निराशावादी अपने जीवन के एक क्षेत्र की निराशा को अपने अन्य सभी क्षेत्रो पर हावी होने देता है । मान लीजिए किसी निराशावादी व्यक्ति की नौकरी छूट गई है अब वह व्यक्ति नौकरी छूटने की चिता के साथ इस चिंता मे भी घुलने लगता है कि उसकी पत्नी व बच्चे उसे हेय दृष्टि से देखेगे तथा उसका घर बर्बाद होने वाला है। दूसरी तरफ आशावादी व्यक्ति विफलता के पीछे अपना पूरा जीवन नष्ट नहीं करता है वह सोचता है कि चलो ईश्वर को शायद यही मजूर था। कोई बात नही कम से कम मेरा परिवार तो मेरे साथ है । मैं और मेरी पत्नी एक दूसरे के कितने निकट हैं और मेरे बच्चे अपनी कक्षाओ मे सबसे आगे रहते हैं ।

किसी भी गडबड़ की स्थिति में निराशावादी व्यक्ति अपने आपको ही दोषी ठहराता है । वास्तव मे इन सारी बातो का एक ही लक्ष्य है वह है आत्मनुशान । आशावादी व्यक्ति यह मान कर चलता है कि उसकी अपनी जिन्दगी की बागडोर उसके अपने हाथ में है । जबकि निराशावादी अपने को परिस्थितियो के सम्मुख असहाय तथा निराश अनुभव करता है। आशावादी व्यक्ति सामाजिक जीवन मे भी अधिक सफल रहते हैं, जबकि एक निराशावादी व्यक्ति अपने सम्बन्धो को प्राय: मात्र इस कारण से कमजोर होने देता है क्योंकि उनके अन्दर आपसी समस्याओं को मिलजुल कर सुलझाने की भावना नहीं होती है । यह जानने के बाद इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं लगता कि निराशावादी व्यक्ति मानसिक अवसाद से अधिक ग्रसित होते है । इतना ही नहीं उन्हे सर्दी-जुकाम से लेकर कैंसर और **हृदय रोग** जैसे गंभीर शारीरिक रोगों के होने की संभावना होती है। **सेलिंगमैन** इस स्थिति की व्याख्या यू करते हैं "एक आशावादी दृष्टिकोण मनुष्य को स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुशासित जीवन जीने मे सहायता करता है। अस्वस्थ होने की स्थिति मे आशावादी व्यक्ति शीघ्र चिकित्सक से सलाह ले कर स्वस्थ हो कर अपने कार्य मे जुट जाना चाहता है। इस बात के भी ठोस प्रमाण हैं कि आशावादी दृष्टिकोण से रोगो के प्रति शरीर की प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है।"

मनोचिकित्सक यह मानते हैं कि आशावाद और निराशावाद के बीज हममें बचपन मे ही पनपते हैं, इस शिक्षा में माता-पिता हमारे पहले आदर्श होते हैं । घर की छोटी छोटी समस्याओं पर हमारे अभिभावक जिस तरह प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं उसका हमारे दृष्टिकोण से बनने में बहुत बड़ा योगदान रहता है । हमारे दृष्टिकोण के बनने में दूसरा योगदान उन आलोचनाओं का होता है, जो हमें एक विद्यार्थी के रूप में झेलनी पड़ती हैं । मान लीजिए एक बच्चा गणित की परीक्षा में फेल हो गया, अब यदि उससे कहा जाए तुमने क्षेत्रफल के पाठ पर ध्यान नहीं दिया था तो उसे यह लगेगा कि उसकी असफलता का कारण अस्थाई है। पर यदि उसे कहा जाए तुम्हारे दिमाग मे भूसा भरा हुआ है तो वह समझेगा कि उसके अन्दर यह एक स्थाई कमी है और अनजाने ही वह निराशावादी के पथ पर चल पडेगा। सौभाग्य से हम बचपन मे सीखे हुए निराशावाद को भी बढ़ावा दे सकते हैं फिर चाहे आप स्थायी तौर पर नकारात्मक सोच वाले हो या फिर कभी-कभार निराश होने वाले अपने अन्दर एक सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने के लिए, दस सूत्री कार्यक्रम का प्रयोग करे :

1. वैचारिक अशुद्धियों को ढूंढ निकालें : मान लीजिए आप अपने काम पर देर से पहुचते है अब अपने आपको इस देरी के लिए प्रताडित करने या अपने आपको अपने कार्यालय का सबसे निकम्मा व्यक्ति सिद्ध करने के बजाय यह याद करने की कोशिश करें कि क्या आप वास्तव में नित्य ही विलम्ब से ही आते हैं। शायद नहीं और अपने सहकर्मियो को देखे जो आपसे भी विलम्ब से आते हैं।

2. सदैव स्वयं को दोष न दें ।

3. परिणामों को ठीक से तोलें ।

4. चिंता में घुलने की अपेक्षा समाधान सोचें ।

5. अपनी विजय की कल्पना करें : किसी भी प्रयोग मे वे अन्वेषक अधिक सफल रहते हैं जो अपनी सफलता की कल्पना करते हैं ।

6. आशावादी के समान व्यवहार करें : यदि किसी कारणवश आपके व्यवसाय, नौकरी या विवाह में कोई विलम्ब हो रहा हो, तो अन्दर से आशा को जीवित रखने के साथ-साथ बाहर से भी आशावादी बने रहें।

7. अपनी सफलताओं को याद रखें : आप अपनी सभी उपलब्धियो की एक सूची बनाए, फिर उनमे से प्रत्येक को अपने प्रयासो के परिणाम के रूप मे आकलन करे ।

8 उपलब्धियों का जश्न मनायें : अपनी उपलब्धियो को परिवार के साथ बांटे अपनी उपलब्धि में गर्व का अनुभव करने से आपके आत्म विश्वास मे वृद्धि होती है।

9. बुद्धि तथा विवेक के लक्ष्य चुनें : पहले ये निश्चिय कर ले कि लक्ष्य आपका अपना है यदि आपके पिता आपको पारिवारिक व्यवसाय मे देखना चाहते है किन्तु आपकी रुचि पुस्तको मे है, तो उन्ही से सम्बन्धित कार्य चुनें निराशा से बचने के लिए जीवन में कई क्षेत्रो जैसे, परिवार, मित्र, व्यवसाय या नौकरी मनोरंजन इत्यादि में मन लगाए ।

10. सुस्पष्ट रहें : किसी भी महत्वाकांक्षी किन्तु अस्पष्ट योजना की अपेक्षा कोई छोटी किन्तु स्पष्ट योजना मे सफल होने की सम्भावना अधिक रहती है।

चौ० ऋषिपाल सिंह को हार्दिक बधाई

आ नो भद्रा क्रत्वो यन्तु विश्वतः

आर्य समाज,गोनियाना मण्डी
22-2-2001

श्रद्धेय चौंधरी जी,

नमस्ते । सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा का सदस्य चुने जाने पर आप को हार्दिक बधाई । आशा है अब पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा की गाड़ी पटरी पर वापिस आ जाएगी । मैं तो आजकल सभा प्रधान जी के आदेशानुसार आर्य समाज "जैतो" को पुनरजीवित करने में लगा हुआ हूं। वहां पिछले दिनों कई चक्र लगाने पड़े हैं। वहां के आर्यों ने मार्च महीने में यज्ञशाला का निर्माण कर यज्ञ हवन कराने का वचन दिया है पर कठिनाई यह है कि आर्य समाज के प्रधान और मंत्री दोनों ही काफी दिनों से बाहर रहने लगे हैं। सब आर्य जनों को नमस्ते।

भवदीय,
तरसेम कुमार आर्य, मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का 17-12-2000 को जो चुनाव हुआ वह वैध है नं.-2

गत अंक में मैंने सरदारी लाल आदि की दी रिर्पोट जनता के सामने रख दी थी । अब जो जमीनें अश्विनी कुमार शर्मा ने हरिद्वार में बेची हैं उनकी सूचि यहां दे रहा हू कि किस तिथि को किस को बेची और कितने की रजिस्ट्री करवाई गई।

(Private and Confidental)

Big Land Sale Scandals Worth Rs 15, 84, 5-37-00
in
Arya Pratinidhi Sabha Punjab, Jalandhar
To

All the Members of the Antrang Sabha of Arya Pratinidhi Sabha, Punjab, Jalandhar

Details of Sales Deeds executed by Shri Avirudh Kumar of Hardwar on behalf of Arya Pratinidhi Sabha Punjab on the basis of a power of Attorney given to him by **Shri Ashwani Kumar, Secretary** Aray Pratinidhi Sabha

In each case it is mentioned that there is no agreement to sell, the transaction is in cash, the witnesses are the same, plots are ill-defined and contrary to situationon the spot

In favour of Raghavendra Kumar S/o Sita Ram R/o ..oti Bazar Hardwar

10-10-91	2622 Sq Ft	Rs 1, 94, 945-00
?3-10-91	2601 Sq Ft	Rs 1, 93, 383-00
24-10-91	2545 Sq Ft	Rs 1, 89, 220-00
25-10-91	2524 Sq Ft	Rs 1, 87, 658-00
26-10-91	2138 Sq Ft	Rs 1, 58, 959-00
28-10-91	2552 Sq Ft	Rs 1, 89, 740-00
29-10-91	2375 Sq Ft	Rs 1, 76, 580-00

In Favour Rajiv Kumar S/o Krishan Kuamr R/o Mohalla Chaklan, Jawalapur

30-10-91	1575 Sq Ft	Rs 1, 30, 000-00
02-11-91	1050 Sq Ft	Rs 90, 000-00
02-11-92	996 Sq Ft	Rs 74, 052-00

Still Bigger Sandals Involving General Secretary Are in the Offing

What the Members of the Antrang Sabha Will do ?

It is Being Awaited By All sincere Arya Jan

ARYA JAN

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली की अन्तरंग सभा की मीटिंग 17-2-2001 और जनरल सभा मीटिंग 18 फरवरी 2001 को हुई है सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग मे आर्य प्रतिनिधि सभा को जिसके प्रधान हरबस लाल जी शर्मा हैं उसको मान्यता दी गई है क्योंकि सार्वदेशिक सभा ने जो चुनाव 17-12-2000 को गुरुदत्त भवन चौक किनशपुरा में हुआ है उसको स्वीकार कर लिया है। सार्वदेशिक सभा ने जो अश्विनी कुमार शर्मा को सार्वदेशिक सभा का उपमन्त्री बनाया हुआ था उसको निकाल करके उस के स्थान पर चौधरी ऋषिपाल सिंह जी एडवोकेट को उपमन्त्री बना दिया है अब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को हर प्रकार से मान्यता मिल चुकी है जो कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का नाम प्रयोग किया जा रहा है उस पर केस करने का भी विचार हो रहा है और साथ में हरिद्वार में जो जमीनें अश्विनी कुमार शर्मा ने बेची हैं और हरिद्वार मे जो रजिस्ट्रियां करवाई हैं और उनका पैसा सभा मे जमा भी करवाया है वह रजिस्ट्रियां हरिद्वार में हुई हैं। यह रजिस्ट्रियां हरिद्वार से नवांशहर मंगवाई गई थी इनकी कापी भी सरदारी लाल जी से हमने प्राप्त की थी और सरदारी लाल जी ने मुझे कई बार कहा था कि अश्विनी कुमार लाखो रुपया खा गया है जिस के बारे मे कुछ भी नही हो रहा। जिसकी अब सारी जाच करवाई जा रही है। अब मुझे अश्विनी कुमार ने कहा था कि इन मघो का क्या है इनको जब मर्जी तीन-चार हजार रुपया देकर इनको खरीदा जा सकता है। यह बात मैंने सरादरी लाल जी को बताई तो सरादरी लाल जी ने मुझे उत्तर दिया कि अश्विनी कुमार शर्मा को झूठ बोलने की आदत है मैने भी यही बात सरदारी लाल को कही थी कि अश्विनी शर्मा सौ बाते करे तो उसकी बाते झूठी होती हैं । ऐसी बाते अश्विनी कुमार शर्मा के बारे मे कहने वाला सरदारी लाल जो आज अश्विनी शर्मा के गुण गाते हुए वह कह रहा है कि अश्विनी कुमार शर्मा को झूठे केसो मे फसाया जा रहा है। इस से यह पता चलता है कि जो बाते मुझे कही थी उन बातो पर अब जनता ही विचार कर ले । इन सारी बातों पर विचार करने पर यह पता चलता है कि सरदारी लाल ने अपने हाथो से अश्विनी शर्मा के विरुद्ध नवा शहर की रिपोर्ट देते हैं और डा पसरीचा के साथ सभा मे जाकर खाली चैक 31 और खाली वाऊचर जिन पर आम प्रकाश पासी के हस्ताक्षर किए हुए थे केवल एक हस्ताक्षर जो अश्विनी ने आप करने थे ओर उसके बाद लाखो रुपया बैक से निकाल सकता था यह चेक ओर वाऊचर डा पसरीचा ने ओर श्री सरदारी लाल जी इन दोनो ने ही अपने कब्जे मे लिए थे और आज वही सरदारी लाल कह रहा है कि अश्विनी कुमार शर्मा को झूठे केसो मे फसाया जा रहा है। सरदारी लाल जी की नजरो मे जो गबन किए गए हैं वह मामूली बात है परन्तु जो केस कार्ट मे किए हुए है वह अश्विनी कुमार शर्मा पर हे प हरबस लाल जी शर्मा को तो मामूली बात के लिए साथ रखा हुआ है वह तो एक मामूली बात थी जिसके लिए मुझे घसीटा है । वैसे भी शर्मा जी का केस तो समाप्त है परन्तु अश्विनी कुमार शर्मा ने जो कोर्ट मे जो 420 बात की थी उसके विरुद्ध कोर्ट मे 420 का केस दर्ज करवाया जाएगा । जो लाखो रुपया खा गया यह अश्विनी के बारे कहते थे अब उनके लि॰ यह मामूली बात हो गई ओर अब उसके गुणगान गा रहे हे। अश्विनी कुमार शर्मा ने सार्वदेशिक सभा के मत्री वेदव्रत शर्मा को अपनी मुट्ठी मे रखा हुआ था वह बात भी अब समाप्त हो गई है सार्वदेशिक सभा प्रस्ताव स्वीकार करके मान्यता दे दी है इसलिए मै सरदारी लाल जी से प्रार्थना करना चाहता हू कि आप सारी बातो पर विचार करके ठीक रास्ते पर चलें।

-मुलखराज आर्य, सभा मन्त्री

आर्य समाज ऋषिकुंज पक्का बाग जालन्धर में समारोह

दिनाक 17-2-2001 को स्त्री आर्य समाज ऋषिकुंज पक्का बाग जालन्धर मे महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जन्म दिवस बडे हर्षोल्लास मे मनाया गया। श्रीमती सुदर्शन चोपडा जी की अध्यक्षता मे समारोह प्रारम्भ हुआ । स्थानीय आर्य समाजो के भाई बहनो ने उत्सव मे सम्मलित हो कर एकता का परिचय दिया । मुख्यातिथि श्रीमती कृष्णा ज्योति जी ने बहनो से पूछे गए वैदिक प्रश्नोत्तरी के उत्तरों को सुनकर इस अनूठे कार्यक्रम की भूरी-भूरी प्रशसा की । डी ए वी. कालेज के प्रोफेसर श्री के.के घई तथा दयानन्द मठ जालन्धर से पधारे श्री यश जी ने महर्षि के जीवन के कुछ उदाहरण दे कर आज की विषम परिस्थितियो मे उनकी उपयोगिता बताई । अन्त मे श्रीमती सुदर्शन जी चोपडा ने अपने अध्यक्षीय भाषण के दौरान बड़े ही भाव विभोर हो कर जब यह कहा कि आज पक्क बाग की आर्य समाज मे आकर उन्हे ऐसा लग रहा है जैसे वह अपने ससुराल आई हो । यह सुन कर बहनो ने करतल ध्वनि से इसका अनुमोदन किया। प्रसाद-वितरण के पश्चात धन्यवाद लेते देते समारोह समाप्त हुआ।

-कमला शर्मा, प्रधाना

भठिण्डा में महर्षि दयानन्द जन्म दिवस व ऋषि बोधोत्सव

आय समाज भठिण्डा के महर्षि दयानन्द सत्सग भवन में महर्षि दयानन्द जन्म दिवस ऋषिबोधोत्सव (महाशिवरात्रि) पर्व दिनांक 18 फरवरी से 21 फरवरी 2001 तक बडी धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। निधारित कायक्रमानुसार प्रात: 8 बजे 18 फरवरी को आदरणीय श्री सोम प्रकाश जी गायल के कर-कमलों द्वारा ओ३म् ध्वज फहराया गया। तालियों का गडगडाहट के साथ ही ध्वज गीत आर्य माडल हाई स्कूल के बच्चों द्वारा गायन स वातावरण अत्यन्त मनमोहक हो गया। इसके साथ ही आज के मुख्य अतिथि का आय जनो एव शहर के जाने माने सज्जनों द्वारा माल्यार्पण किया गया। तत्पश्चात् आय गर्ल्ज सी सै स्कूल भठिण्डा की छात्राओं ने स्वागत गान किया। इसमे प्रसन्न होकर बहुत सज्जनों ने छात्र-छात्राओं को नकद राशि प्रदान कर प्रोत्साहित किया। आज के मुख्य यजमान श्री सुरेश लाटिका एम इ एस एव श्रीमती एस एल लाटिका प्रधानाचार्या डी ए वी सी से स्कूल भठिण्डा का भी माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया गया। मुख्य अतिथि का परिचय प्रा ओ पी मगला एव श्री पी डी गायल प्रधान आर्य माडल हाई स्कूल ने दिया। ऋग्वद शतकम् महायज्ञ पूज्य स्वामी सम्पूर्णानन्द जी सरस्वती के ब्रह्मत्व म एव "वेदिक प्रवक्ता" प श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। हष भी बात यह हे कि पूज्य स्वामी माधवानन्द जी सरस्वती भी आर्य जना का आशीवाद देने हेतु पधारे। आर्य जगत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री विजय आनन्द जी 'आय गायक' ने अपने मधुर कण्ठ से आर्य समाज के सस्थापक युग प्रवतक महर्षि दयान्नद सरस्वती जी की उपमा में गायन करके उपस्थित आर्य जनो को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

महपि दयानन्द जन्म दिवस के शुभ अवसर पर आर्य समाज एव आर्य समाज स सम्बन्धित शिक्षण सस्थाओ के मुख्य द्वारो को बिजली की लडियो स सजाया गया। वातावरण इतना मनमोहित था कि भठिण्डा के नगर वासियो ने इसकी भरपूर प्रशस्ा की।

कायक्रमानुसार प्रात. एव साय काल 'ऋग्वेद शतकम्' महायज्ञ यज्ञमय शान्त वातावरण म होता रहा। पूज्य स्वामी सम्पूर्णानन्द जी ने अपने उपदेश म सवप्रथम यज्ञापवीत क सम्बन्ध मे कहा कि प्रत्येक मनुष्य के ऊपर तीन ऋण हात हे वह ह देव ऋण ऋषि ऋण एव पितृ ऋण। इन तीनों ऋणो से उऋण होन क लिए भी यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए, और यज्ञ करने का अधिकार भी यज्ञापवीत धारण करने के पश्चात् ही मिलता है। आगे उन्होंने कहा इस पृथ्वी का आधार क्या हे? पृथ्वी सत्य के कारण टिकी है, सत्य क द्वारा यह सृष्टि चल रही हे। जीवन को सच्चा बनाओ और वेदों का तथा सत्साहित्य का स्वाध्याय करो। यज्ञ की अग्नि का उदाहरण देते हुए स्वामी जी न कहा मनुष्य को ऐसा श्रेष्ठ कर्म करना चाहिए, जो स्वयं को ऊचा उठाए और दूसरो को भी श्रेष्ठ मार्ग दिखाए। उन्होने आगे कहा कि यदि अदर प्रदूषण हा तो बाहर स्वय ही प्रदूषण एवं अव्यवस्था हो जाती है। 'यथा पिण्ड तथा ब्रह्माण्डे'। मन को एक दिशा में लगाओ। वेद में कहा है 'एक मना जुषम्व' पूज्य स्वामी माधवानन्द जी ने कहा यज्ञ और सत्य एक दूसर के पूरक हे। जहा यज्ञ हे वहा सत्य है और जहां सत्य है वहीं यज्ञ ह। मनुष्य का पृथ्वी के समान क्षमाशील, समुद्र के समान गम्भीर एवं गौ के समान दानशाल होना चाहिए। आगे स्वामी जी ने वाणी की देवी सरस्वती की उपमा देत हुए कहा ब्रह्म समझ कर जो वाणी को उपासना करता है उसे सिद्धि मिलती ह। "सत्य वद धर्मचर' इत्यादि।

विशेष आकर्षण–

दिनाक 20 फरवरा को हवन यज्ञ के पश्चात् निर्धारित समय पर शोभा यात्रा का आरम्भ डा ए वी कालेज भठिण्डा के प्रधानाचार्य आदरणीय श्री सुभाष मटिया जा क कर कमलो द्वारा ओ३म् ध्वज से किया गया। यह शोभा यात्रा स्वामा सम्पूर्णानन्द जा एव स्वामी माधवानन्द जी के नेतृत्व में सचालन की गइ। शोभा यात्रा मे भठिण्डा आर्य समाज एवं समस्त आर्य शिक्षण स स्थाओं आय गर्ल्ज सी से स्कूल आर्य माडल हाई स्कूल, डी ए वी कालज डा ए वी सी से स्कूल महात्मा हसराज आर्य सी सै स्कूल, गुरुकुल आय माडल स्कूल एव महिला आय समाज द्वारा भव्य झांकियां निकाली गइ। विद्यार्थियो के हाथ में ओ३म् ध्वज थे। इस शोभा यात्रा में भठिण्डा के आर्यजनो, नगर निवासियों समस्त आर्य शिक्षण संस्थाओं के छात्र-छात्राओं प्रधानाचार्यो श्रीमती शान्ति जिन्दल, श्री हुकम चन्द जी गोयल श्रीमती विनोद देवगण आदि तथा प्राध्यापकों ने साथ चलकर शोभा यात्रा की शान बढाइ। शोभा यात्रा में हवन यज्ञ के मन्त्रों एवं स्वामी दयानन्द जी की उपमा मे लगाए गए जयघोष से आसमान गूंज उठा।

भठिण्डा शहर के निवासियों ने स्वामी सम्पूर्णानन्द जी एवं स्वामी माधवानन्द जी का माल्यार्पण कर भरपूर स्वागत किया एवं आशीर्वाद प्राप्त किया शहर निवासियों ने इस शोभा यात्रा में चल रहे सज्जनों को फल एवं मिष्ठान्न वितरण किया। बाजारों में नगर निवासियों ने इस शोभा यात्रा के शुभ आगमन का भरपूर स्वागत किया। शोभा यात्रा के आर्य समाज चौक में वापिस लौटने पर आर्य समाज भठिण्डा द्वारा सभी सज्जनों एवं विद्यार्थियों को प्रसाद के रूप में लड्डू वितरण किये गए।

दिनांक 21 फरवरी को पूर्णाहुति समारोह निर्धारित समय पर सम्पन्न हुआ। पूर्णाहुति समारोह के मुख्य अतिथि आदरणीय श्री सुरजीत कुमार जी ज्यानी वनमंत्री पंजाब जब आर्य समाज भठिण्डा के द्वारा पर पधारे तो भठिण्डा आर्य समाज के पदाधिकारियों, आर्य जनों एवं नगर निवासियों ने माल्यार्पण कर उनका भरपूर स्वागत किया। उनके साथ पधारे श्री मोहन लाल जी गर्ग चेयरमैन नगर सुधार ट्रस्ट एवं श्री गुलजार सिंह जी का भी माल्यार्पण द्वारा उनके साथ ही स्वागत किया गया।

सत्सग भवन में पधारने पर आकर्षण की बात यह थी कि मन्त्री जी ने स्टेज पर स्वामी जी के बराबर बैठने की बजाय उनके चरणों में आम जनता के साथ बैठना अपना सौभाग्य समझा। श्री विजय आनन्द जी 'आर्य गायक' ने मंत्री जी के स्वागत में अपने सुमधुर कण्ठ से स्वागत गान किया। श्री पी डी गोयल ने मन्त्री जी का परिचय देते हुए कहा कि वह एक देश भक्त हैं और मजदूरों के साथी हैं। श्री गुलजार सिह ने अपने वक्तव्य में कहा कि जो हमारे भारत की राजनीति है इसको धर्म से अलग नहीं किया जा सकता।

मुख्य अतिथि श्री सुरजीत कुमार जी ज्यानी ने अपने भाषण में देश वासियों को आह्वान किया कि हम जो कुछ भी अच्छी बातें सुनते हैं, उसे अपने जीवन में धारण करें तभी हम सब का कल्याण होगा। राष्ट्र प्रेम ही सब से बडा प्रेम है।

उन्होंने इस अवसर पर प्रसन्न होकर आर्य समाज, भठिण्डा को 51000/- इकावन हजार रुपए अनुदान राशि प्रदान करने की घोषणा की। तुरन्त ही श्री बिहारी लाल मंगला ने यह राशि आर्य समाज को प्रदान करने पर मन्त्री महोदय का कोटि-कोटि धन्यवाद किया।

श्री प्रेम भाटिया प्रधान जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में सर्वप्रथम पूज्य स्वामी सम्पूर्णानन्द जी, स्वामी माधवानन्द जी, श्री विजय आनन्द जी 'आर्य गायक' को अपना अमूल्य समय निकाल कर यहां पधारने एव अपने उपदेश, भजनोपदेश द्वारा आशीर्वाद देने पर इन सब का आभार प्रकट किया। उन्होंने आदरणीय मंत्री जी तथा उपस्थित नगर निवासियों और समस्त आर्य जनों, मातृशक्ति एवं शहर की निकटतम मण्डियों से इस पव पर पधारे आर्य जनों का भरपूर धन्यावाद किया। प्रधान जी ने अपने भाषण में मन्त्री महोदय से यह भी प्रार्थना की कि जैसे अन्य महापुरुषों के जन्म दिवस पर सरकारी अवकाश होता है, वैसे ही महर्षि दयानन्द सरस्वती (जो कि आर्य समाज के संस्थापक, वेदों के पुनरुद्धारक एवं भारत की आजादी के अग्रगण्य थे) उनके जन्म दिवस पर भी सरकारी अवकाश प्रदान कराने की प्रार्थना की। इसके अतिरिक्त भारत की बढती जनसंख्या एवं भ्रष्टाचार पर चिंता प्रकट की। उन्होंने अपने सहयोगी मंत्री श्री बिहारी लाल मंगला का भी हार्दिक धन्यवाद किया कि उन्होंने इस सारे कार्यक्रम के आयोजन में भरपूर परिश्रम कर एवं सारे कार्यक्रम को सुचारु ढंग से संचालित किया। उनका मैं एवं आर्य समाज धन्यवाद करता है। प्रधान जी ने ऋषि लंगर के प्रबन्ध में एवं झांकिया तैयार करने में श्री नवनीत कुमार श्री गौरी शकर, श्री रणधीर सिंह, श्री महेन्द्र पाल अरोड़ा, श्री श्याम लाल गुप्ता एवं आर्य वीर दल भठिण्डा के विशेष योगदान की सराहना की।

ला वजीर चन्द जी प्रधान जिला आर्य सभा इस कार्यक्रम में उनका स्वास्थ्य बहुत खराब होने के कारण सम्मिलित नहीं हो पाए, सभी सज्जनों द्वारा उनके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ की कामना की गई। समारोह में श्री बाबू राम गर्ग, श्री कुलवन्त राय अग्रवाल, प्रो. ओम् प्रकाश मंगला, श्री चमन लाल [illegible], श्री अशोक कुमार अग्रवाल, श्री नन्दलाल, श्री विनोद कुमार गर्ग, श्री नरसेम कुमार आर्य, श्रीमती इन्दा छाबड़ा आदि उपस्थित थे एवं बहुत प्रसन्नचित दिखाई दे रहे थे। कर्मचारियों में से श्री विजय कुमार लेखाकार आर्य माडल हाई स्कूल का काम सराहनीय रहा। अन्त में ऋषि लंगर व्यवस्थित रूप से वितरण किया गया। ऋषि लंगर को लोगों ने आनन्दपूर्वक ग्रहण किया एवं स्वादिष्ट बताया। –प्रधान, आर्य समाज भठिण्डा

आठ गुण धरती को धारण करते हैं

पं० [illegible] आर्य समाज [illegible], दयानन्द भवन, जबलपुर म.प्र

सत्य बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ पृथिवी
धारयन्ति सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोक पृथिवी न कृणोतु॥
–अथर्व. 12 1 1

अर्थ–निम्नलिखित 7 गुण धरती को धारण करत हैं ।

(1 सत्य (2) वृद्धि 3) ऋत सृष्टि का नियम (4 दण्ड व्यवस्था (5) कम का अधिकार (6 कष्ट सहन सामर्थ्य (7) वेद ज्ञान 8) यज्ञ इन गुणो स युक्त राष्ट भूत ओर भविष्यत् काल का हमारा पालन करन वाली शक्ति क द्वारा हमारे जीवन को समृद्ध बनाय। य सभी 8 गुण मनुष्य क मानसिक शारीरिक एव आत्मिक सम्बन्ध रखते हैं ।

1 सत्य –जिस देश के नागरिक सत्य का चिन्तन सत्यवाणी कथन एव सत्याचरण हैं वह दश एश्वयहीन होने [illegible] श्री सम्पन्न हा जाता हे । क व्यापार शिक्षा वकालत एव राजनीति क्षेत्र मे सत्य की परम आवश्यकता ह। असत्य के आधार पर चलने वाले सभी कार्यों का परिणाम दुखद होता है ।

2 बृहद –दूसरा गुण वृद्धि का ओर । हमारा सत्य वृद्धि की ओर होवे। असत्य से सर्वथा । दूर । राष्ट्र के हर कोने मे सत्य व्यवहार हो वास्तव मे यह धरती सत्य के द्वारा ही ऊपर उठी हुई है नीचे गिरती नही सत्येनोत्तभिता भूमि –ऋग्वेद (10 75 1) अर्थात् सत्य धर्म का अधिकाधिक प्रचार ।

3 ऋतम् –ससार मे एक अटल नियम काम कर रहा है। अग्नि मे ताप वायु म गति स्पर्श जल मे शीतलता भूमि मे अकुरण आदि ये असख्य नियम विश्वस्रष्टा क निमय के अनुसार सृष्टि क इन्हीं नियमो क धारा मे अनुकूल चलने का नाम हे इश्वराज्ञा पालन । सृष्टि क इन नियमो के विपरीत चलने का नाम है ईश्वराज्ञा भग करना । स्रष्टा का नियम प्राणिमात्र के कल्याण हेतु है। राष्ट्र मे सृष्टिकर्त्ता के नियम के अनकूल कर्म होवें ।

4 उग्रम –एक कल्याणकारी नियम के प्रचार के लिए उसके मार्ग मे कोई बाधा न आव या उस नियम के पालन मे लापरवाही न बरती जावे या उस नियम की उपेक्षा न हा। यदि किसी कारण स राष्ट्र मे कल्याणकारी नियम का पालन नहीं हो पा रहा तो उग्रतेजस्विता दण्डविधान की ईश्वरीय ओर सामाजिक तथा राष्ट्रीय व्यवस्था रह

5 दीक्षा –राष्ट्र के नागरिक का सकल्प पवित्र हो कम पवित्र हा दश मगलकारी हो एसे पवित्र कर्मों क लिए नागरिक सदा कटिबद्ध रहे। यही दीक्षा हे ।

6 तप –उत्तम उद्दश्य की सिद्धि हेतु अच्छ कर्म पूरा करन हतु दु ख सुख मान अपमान आदि सहन करन हतु सदेव तेयार रहन क नाम तप ह

7 ब्रह्म –वद परमात्मा आदि क प्रति श्रद्धा भाव । वस्तुत राष्ट्र रूपी शरीर का नत्र वद ज्ञान ह। जिस राष्ट्र मे उत्तम ज्ञान के प्रचार करन हेतु उत्तम शिक्षा उत्तम विद्या उत्तम ज्ञान का प्रदान करन वाले शिक्षाविद् प्राध्यापक आचार्य ब्राह्मण वेज्ञानिक एव ऋषि होते हे वह राष्ट्र समृद्धि का ओर जाता है ।

8 यज्ञ – यज्ञा व श्रष्ठतमम कर्म । यज्ञ हा ससा का श्रष्ठतम् कम ह यज्ञ क अन्तर्गत दव अथात् विद्वाना का सत्कार अग्नि वायु जल पृथिवी आदि का शाधन सुरक्षा यज्ञ क द्वारा पयावरण का शाधन पवित्रता सुरक्षा सगतिकरण आर दान य यज्ञ क स्वरूप हे त्याग मानना हा यज्ञ क पवित्र गुण [illegible]

य 8 दिव्य गुण जब [illegible] क सा रखत [illegible] ना वहा [illegible] स पृथिवा न [illegible] हमार भूतस्य भूतकाल भव्यस्य आर भविष्यत काल का पत्नी [illegible] पृथिवा हमार [illegible] जीवन का (ऊरम् [illegible] कृणात् बनाए

होली का पावन पर्व कैसे मनायें ?

लेο आचाय रामसुफल शास्त्रा वैदिक प्रवक्ता लाल सड़क हासी

हाला का पवन पव फाल्गुन मास क अन्त म पूणिमा क दिन समूच भारत वष म बड धूमधाम एव हर्षोल्लास क साथ मनाया जाता हे जिसक दूसर दिन का हम फाग के रूप मे मनात है ओर सरकारी तौर पर इस दिन छुट्टी भी की जाता है। इस पावन पव क शाब्दिक एव रहस्य रूप अथ को न समझन स एक पश्न उठता हे कि होली का पावन पव केसे मनाये।

यह पव बड़ा हा महत्वपूर्ण एव पारस्पारिक सामजस्य का द्योतक हे जो लाग इस पव का पावन बला पर रग व कीचड आदि डालत हे । यह परिपाटी अच्छी नही है । हा गुलाल आदि को तिलक के रूप मे लगाना ठीक है । प्राय यह देखा जाता है कि इस दिन लोग रग व कीचड डालने के कारण परस्पर झगडते भी रहत हैं ।

होला का शाब्दिक अथ है होली सो होली अर्थात् परस्पर वर्ष भर मे कोई किसी प्रकार की ऊच नीच या लडाइ झगड की बात हो जाए तो उसे भूलकर परस्पर सौहार्द एव भाईचारा को भावना कायम करे।

हमारी प्राचीन भारतीय सस्कृति के प्रेरणा स्रोत ऋषि एव मुनियों ने प्राचीन काल म प्रत्येक पर्वो के अथ एव महत्व का दर्शाते हुए साधारण मनुष्यो का माग दर्शन किया था। उन्होने इस पर्व का वष का अन्तिम पर्व निश्चित करते हुए मनुष्या को अपने जीवन का कमी एव बुराइयो को दूर करक सन्मार्ग पर अग्रसर होने का सदुपदेश दिया। अत हम सभी को होली के पावन पर्व पर धामिक एव सामाजिक सेवा को भावना को उजागर करने वाले कृत्य करने चाहिए तथा पारस्परिक मतभेदो को भुलाकर सद्भाव स्थापित करनी चाहिए । यही इस पर्व को मनाने का मुख्य उद्देश्य एव वास्तविक तरीका है।

न्यायालय में अधिवक्ता (एडवोकेट) धोती पहनकर बहस कर सकता है

नई दिल्ली-22 फरवरी, राजस्थान उच्च न्यायलय मे न्यायाधीश राजाराम यादव के मामने श्री वेदपाल शास्त्री एडवोकेट रघुवीर सिह बनाम राज्य के मामले मे जमानत के लिए दिनाक 15 फरवरी को उपस्थित हुए। श्री शास्त्री जी धोती पहने हुए थे इस पर न्यायाधीश राजाराम यादव ने धोती पहनकर पैरवी करने पर आपत्ति की। इस पर श्री शास्त्री ने कहा कि मे सदैव धोती पहनता हू मैने कभी पेंट नही पहनी है तथा धोती भारतीय वेश-भूषा है इसे पहनकर बहस की जा सकती है, मे पहले भी विभिन्न न्यायालयो मे उपस्थित होता रहा हू। इस पर न्यायाधीश ने कहा कि पहले यही मुद्दा तय किया जाएगा कि न्यायालय मे धोती पहनकर अधिवक्ता पैरवी कर सकता हे या नही. इस मामले पर तीन दिन बहस चली ।

धोती को न्यायालय मे पहनी जाने वाली वेश-भूषा मानने के समर्थन में विभिन्न दृष्टात व नजीरे पेश की गई। इस प्रकरण पर सोमवार को हुई सुनवाई के बाद न्यायालय ने मगलवार को निर्णयात्मक सुनवाई के आदेश दिए थे ।

मामले की अन्तिम सुनवाई के दौरान अधिवक्ता वेदपाल शास्त्री व उनकी ओर से पैरवी करते हुए अधिवक्ता आर के माथुर, धर्मवीर ठोलिया, सत्येन्द्र कुमार गुप्ता वा पी सी जैन वकीलों ने न्यायालय में पहनी जाने वाली पोशाक के बारे में विस्तृत चर्चा की । अधिवक्ताओं ने इस मुद्दे पर उच्च न्यायालय नियम दीवानी व फौजदारी कानून सहित अधिवक्ता अधिनियम के बारे में बताया कि अचकन, चूडीदार पाजामा समेत काले कोट व सफेद टाई के धोती व सफेद कमीज भी न्यायालय की वेशभूषा है।

दलीलें सुनने के बाद न्यायाधीश राजाराम यादव ने अधिवक्ता अधिनियम में वकीलों को न्यायालय मे पहनने वाली वेश-भूषा रूप मे भारतीय सस्कृति में पोशाक मे विशेष स्थान रखने वाली धोती को स्वीकृति दे दी ।

उल्लेखनीय है कि श्री वेदपाल शास्त्री एडवोकेट गुरुकुल झज्जर हरियाणा के स्नातक हैं। श्री शास्त्री जी ने राजस्थान उच्च न्यायालय मे कुछ वर्ष पूर्व चले "महर्षि मनु" की प्रतिमा (स्टेच्यू) के मामले मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

–स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती,
कार्यकारी प्रधान, सार्वदेशिक सभा

हांसी में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जन्म दिवस मनाया गया

हासी:-स्थानीय आर्य वीर दल के तत्वावधान मे जगत गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म दिवम बडे ही हर्षोल्लास के साथ दयानन्द माडल स्कूल मालिया मण्डी हासी के प्रागण मे मनाया गया।

इस शुभावसर पर हासी नगर के सुप्रसिद्ध वेदिक विद्वान् एव आर्य वीर दल हासी के सचालक आचार्य राममुफल शास्त्री जी ने हवन यज्ञ के माध्यम से महर्षि दयानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हमे स्वामी जी के बताय रास्ते पर चलना चाहिए तथा श्री शास्त्री जी ने कहा कि नारी जाति पर स्वामी के विशेष उपकार हैं जिन्हें समस्त नारी जाति को मानना चाहिए।

इस आशय की जानकारी देते हुए प्रैस सचिव राजेश शर्मा ने बताया कि कार्यक्रम अध्यक्ष चौ भीम सिह आर्य महामन्त्री आर्य समाज सीसर खरबला ने आर्य वीरदल को हर सम्भव सहयोग देने का आश्वासन दिया तथा मुख्य यजमान के रूप में उपस्थित विद्यालय की प्रिंसिपल श्रीमती कान्ता कुकरेजा ने भी आर्य वीर दल को भरपूर सहयोग देने को कहा।

मन्त्री. आर्य वीर दल, हांसी

श्री रेवती रमन को पुत्री शोक

आर्य समाज बस्ती गुजां जालन्धर कार्यकर्त्ता (सदस्य) श्री रेवती रमन अग्रवाल की युवा सुपुत्री कु. शैली अग्रवाल का अचानक 27-2-2001 को निधन हो गया। यह लड़की बहुत योग्य, बुद्धिमान थी । एम. काम पास थी। इसने परिवार मे सबका मन मोह लिया था परन्तु मौत के आगे किसी का बस नहीं चलता। बहुत छोटी अवस्था मे वह हमे छोड़ कर चली गई है। मैं परम पिता परमत्मा से प्रार्थना करता हू कि वह उस पवित्र आत्मा को सद्‌गति प्रदान करे और श्री रेवती रमन व सारे अग्रवाल परिवार को इस वियोग को सहन करने की शक्ति प्रदान करे। *–सुरेन्द्र नाथ सुरगई, सभा महामन्त्री*

आर्य समाज सुल्तानपुर लोधी में ऋषि बोधोत्सव

आर्य समाज सुल्तानपुर लोधी मे ऋषि दयानन्द बोध दिवस पर्व तिथि 21-2-2001 को बडे हर्षोल्लास व धूम-धाम से मनाया गया । उत्सव का शुभारम्भ प्रात: 9 बजे हवन यज्ञ के द्वारा हुआ । यज्ञ के ब्रह्मा प लाल बिहारी त्रिपाठी जी थे। उन्होने बड़े ही सुन्दर विधि-विधान के साथ यज्ञ सम्पन्न करवाया मुख्य यजमान पद को माननीय श्री डा नरेश कुमार जी चावला कार्यकर्त्ता प्रधान सपत्नीक (श्रीमती विश्वरूपा चावला जी) श्री डा रवि प्रकाश जी सपत्नीक (श्रीमती विजय रानी कुमार) ने सुशोभित किया । इस सुअवसर पर आर्य समाज व आर्य माडल हाई स्कूल की प्रबन्धक समिति अन्य सदस्यगण व स्त्री आर्य समाज की प्रधाना श्रीमती लता पसरीचा व मत्राणी श्रीमती शाति चावला, कोषाध्यक्ष व अन्य सदस्याओ महिलाओ आबाल वृद्ध बच्चो ने भाग लिया । आर्य माडल हाई स्कूल के प्रिंसीपल जी अध्यापकगण तथा छात्र-छात्राओ ने भी बढ़-चढ कर भाग लिया । अनेको महानुभावो ने इस समारोह मे भाग लेकर ऋषि महिमा का गुणगान किया। जिसमे श्री सदानन्द जो वैद्य, श्री सागर चन्द ठुकराल, श्रीमती विश्वरूपा चावला व श्रीमती लता पसरीचा जी के ऋषि जीवन व प्रभु भक्ति के सुमधुर भजन हुए। जिसे सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो गए। श्री द्वारका दास जी चावला चेयरमैन एकाउन्टस कमेटी ने महर्षि दयानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डाला और अपने विचार वयक्त किए । अपने विचारों मे उन्होंने ऋषि दयानन्द रचित सभी ग्रन्थो को विशेषकर अमरग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश को पढने पर जोर दिया । उपस्थित सभी आर्य बहनो भाईयों को सम्बोधित कर उन्होने कहा कि जब तक सत्यार्थ प्रकाश कोई नही पढ़ेगा तब तक पाखण्डों से दूर नही हो सकता । ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ रचकर जो उपकार हम पर किए, 16-16 बार जहर पीकर हमें वेद पथ पर चलाया उसे हम भुला नहीं सकते। अन्त मे इस उत्सव के समापन पर आर्य समाज के पुरोहित जी ने अपने विचार व्यक्त किए व ऋषि महिमा पर एक गीत प्रस्तुत किया जिसे श्रोताओ ने बडे ध्यान से श्रवण किया । इस महत्वपूर्ण दिवस पर आर्यों को आत्म निरीक्षण का दिन बताया तथा वैदिक धर्म पर चलने का सकल्प धारण करने को कहा। पुरोहित जी ने उपस्थित सभी महानुभावो का हृदय से धन्यवाद किया तथा यजमानो को आशीर्वाद दिलवाया । उक्त सारा कार्यक्रम डा नरेश चावला जी कार्यकर्त्ता प्रधान की अध्यक्षता मे बहुत सराहनीय रूप से दोपहर 12 बजे सम्पन्न हुआ । आनन्द विभोर हो सभी ऋषि भक्तो ने यज्ञशेष लेकर व मिष्ठान्न आदि का प्रीति भोज कर अपने-अपने घर को प्रस्थान किया।**–मन्त्री, चमन लाल सेठी**

आर्य समाज पठानकोट में ऋषि बोधोत्सव सम्पन्न

आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट में 19 से 25 फरवरी तक ऋषि बोधोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया । मृत्युंजय महा यज्ञ का आयोजन किया गया । पात्र हवन कुण्डों पर कई-कई यज्ञमान परिवार बैठ कर यज्ञ करते रहे । बडा शोभनीय वातावरण बना रहा । यज्ञ श्री पं विनोद जी शास्त्री करवाते रहे और श्रद्धेय महात्मा प्रेम प्रकाश जी वान प्रस्थी के उपदेश होते रहे तथा श्री जगत वर्मा भजनोपदेशक के भजन होते रहे ।

प्रतिदिन पारिवारिक सत्संग व यज्ञ भी सायं काल 3 से 5 बजे तक परिवारों में होते रहे । प्रथम सत्संग श्रीमती सुनीता के परिवार में, दूसरा सत्संग ठा सत्य प्रकाश सिंह के परिवार में, तीसरा सत्संग श्री विनोद मल्होत्रा एडवोकेट के परिवार में, चौथा सत्संग श्री राकेश महाजन के परिवार में, पांचवां सत्सग श्री सुभाष मित्तल के परिवार में और छटा सत्सग श्री प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी के परिवार में हुआ। इन सत्संगों में भारी सख्या में लोगों ने भाग लिया और इनका बहुत प्रभाव रहा ।

25-2-2001 को आर्य समाज मे विशेष समारोह हुआ जिसमे श्री डा राजेन्द्र आचार्य (कुरुक्षेत्र) महात्मा प्रेम प्रकाश (धूरी) श्री जगत वर्मा सभा भजनोपदेशक के उपदेश व भजन हुए । इस कार्यक्रम मे पठानकोट की सभी शिक्षा सस्थायें स्टाफ, प्रिंसिपल तथा नगर के गणमान्य लोगों ने भारी संख्या में भाग लिया ।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एल. पी. 17504/58

ऋग्वेद कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
जालन्धर

दूरभाष : ☎ :292926

सामवेद अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि संवत 1960853101, 18 मार्च 2001 दयानन्दाब्द 177

न्याय, दया और प्रेम-ईश्वरीय दैवी प्रकाश है

❑ *ले. श्री देवी दयाल शर्मा, "शर्मा निवास" 120, माडल टाऊन, स्ट्रीट नं.-4, अमृतसर*

व्याख्या :–मानव कभी भी शान्ति प्रिय नहीं हो सकता, जब तक वह आस्तिक भावों को नहीं अपनाता और ईश्वर पर पूर्ण रूप से विश्वास नहीं रखता और ईश्वर को न्याय का सागर स्वीकार नहीं करता। आस्तिक बनने के लिए, ज्ञान को अपनाने के लिए, न्याय पद चलने के लिए, दया और प्रेम की गंगा बहाने के लिए, पहले हमें अपने अन्दर को साफ करना पडेगा। यह दीवार का White Washing (सफैदी) या Distemper (डिस्टैंपर) नहीं, जिसका बाहर का भाग Attraction (मन को लुभाने वाला हो) वाला हो यह जूते का पालिश (Polish) नहीं है जो बाहर से चमकता हो। हमें वो सच्चा और सुच्चा सोने (gold) का टुकड़ा बनना पडेगा ना कि मुल्लम्मा, दैवी प्रकाश तो हमारे भीतर तभी होगा जब हम पूर्ण रूप से असत्य का त्याग करेंगे और सत्य का केवल आश्रय लेंगे। दैवी प्रकाश को प्राप्त करने के लिए, हमें अन्धकार का नाश करना होगा। न्याय दया और प्रेम को मन से अपनाना होगा। जब मानव, मन की पवित्रता को प्राप्त कर लेता है तब वह बुरे आदमियों की संगति नहीं करता और उनके साथ मिलने-जुलने से परहेज करता है। उस समय मानव, दैवी दण्ड को अपने हाथों में नहीं लेता। वह फिर सब ईश्वर पर छोड़ देता है और वह फिर इस परिणाम पर पहुंचता है कि यदि कोई मनुष्य उसके साथ घृणा करे तो उसे, उस मानव से बदला नहीं लेना है।

दूसरे का बुरा करने वाले मनुष्यों को केवल परमात्मा ही दण्ड देने का अधिकार रखता है और जो मानव अन्दर से और बाहर से पवित्र है और जो दूसरों का सर्वदा भला ही चाहते हैं, उनको ईश्वर सुख, शान्ति और आनन्द, प्रदान करता है।

दुर्भाग्यवश, यदि हम ईश्वरीय दण्ड को अपने हाथ में लेते हैं और दूसरे मानव को यह समझ बैठे हैं कि यह हमारा शत्रु है और उसके साथ दण्ड का दुरुपयोग करते हैं और फिर पछताते हैं कि वह मानव तो वास्तव में हमारा मित्र था जिसको हमने अपना शत्रु समझा। सो बदला लेने की भावना मन से निकाल करके हमें अहिंसा के भावों से मन को भरना चाहिए और अपने जीवन के लक्ष्य (goal) को पूरा करने के लिए सात्विक और पवित्रतम विचारों को ही आमन्त्रित करना चाहिए यदि हम शाश्वत शान्ति (Eterual Peace) चाहते हैं तो हमें हर एक के साथ मित्रता और प्रेम प्रकट करना चाहिए। वेद आदेश करता है "मित्रस्य चक्षुशा समीक्षामहे"

"Treat Every body like a friend"

हम लोगों को ईश्वर से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हम सब को सुबुद्धि प्रदान कीजिए कि जिससे हम निश्चयरूप से सत्य-असत्य का निर्णय निःसंकोच कर सकें। हम सब को याद रखना चाहिए कि परमात्मा सब को स्नेहमयी दृष्टि से देख रहा है परन्तु उस की स्नेहमयी दृष्टि में दुष्टता दूर करने में उसका दण्ड भी छुपा हुआ है जो आम लोगों को नजर नहीं आता और दुष्टों को सत्य मार्ग पर चलाने के लिए कड़ी सज़ा देता है। बुरा करने वाले दुष्टता को छोड देते हैं, तो परमात्मा उनसे वैसा ही प्यार करता है, जितना कि पवित्र आत्माओं के साथ करता है। परमात्मा किसी का भी परित्याग नहीं करता। वह हर मानव के भीतर, संसार की सब वस्तुओं के अन्दर साधिकार बसा हुआ है। यह परमेश्वर की सब से बडी दैवी विशेषता है जिस तरह संसारी माता-पिता अपने बच्चों को सत्य मार्ग पर चलाने के लिए कड़ी से कड़ी सजा देते हैं उसी तरह परम पावन प्रभु भी दुष्टों के साथ करता है।

हे ! अग्निस्वरूप परमेश्वर, आप हमारे परम पिता हैं और हम आप के अमर पुत्र हैं। केवल मात्र आप ही हैं जो हमारी शुभ कामनाओं के पूर्ण करने वाले हैं। आप ही हमारे रक्षक हैं और आप ही हमें दुखों से बचाने वाले हैं परन्तु बुद्धिहीनता के कारण हम आपको भुला देते हैं और बिना किसी उद्देश्य के इधर-उधर भागते फिरते हैं।

हे ! अनन्त प्रकाशमान् प्रभु। हम सबको सत्य मार्ग अर्थात् वेद मार्ग पर चलाईये जिससे हमारा जीवन लौकिक और परलौकिक जगत मे सुखमय व्यतीत हो। हमको प्रकाशयुक्त बुद्धि प्रदान कीजिए ताकि हम आपका आश्रय, भलाई और सहायता प्राप्त कर सकें

हे ! सर्वशक्तिमान् प्रभु (Onimipotent Supreme) हम आप के अमर पुत्र आपका प्रेम पाने योग्य रीति से बिना किसी रुकावट के आप को मिल सकें जैसे पिता पुत्र सीधे आपस मे मिल लेते हैं, मध्यस्थ की बिल्कुल आवश्यकता नहीं रहती। हमको तीक्ष्ण बुद्धि प्रदान कीजिए, ताकि हम जांच सकें, असत्य क्या है ? और सत्य कहा छुपा हुआ है ? गलत कौन सी बात है और ठीक कौन सी बात है ? पवित्रता क्या है और अपवित्रता क्या है ? कौन सा पदार्थ भक्षीय है और कौन सा अभक्षीय है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने अमर ग्रथ सत्यार्थ प्रकाश मे लिखा है कि जब मनुष्य शुभ कर्म करता है तो उसके हृदय मे हर्षोल्लास की लहरें उठती हैं, सुख, शान्ति और आनन्द से मन भरपूर हो जाता है। यह मन की आवाज नहीं है, यह तो ईश्वरीय ध्वनि उस के मन मे वास करती है और जब पाप कर्म करता है, तो लज्जा, भय और शका का शासन उसके मन पर सवार हो जाता है और उस का मन बेचैन हो जाता है।

(Unrestfulness and peacelesness reign over the mind of an evil does)

• यह सर्वदा स्मरण रहे कि परम पावन प्रभु सब को सत्य मार्ग प्रदर्शित करता है। यह सब हमारे ऊपर बात रह जाती है कि उस दैवी ध्वनि को स्वीकार करें या इन्कार करें। इसलिए हम सब वेदानुकूल कर्म करते हुए सौ साल जीने की उत्कट इच्छा रखें और जो वेदप्रतिकूल कर्म (Undouble Acts) हैं उनका कभी स्वप्न न लें। एक बडे विद्वान् दार्शनिक ने बडे विद्वतायुक्त शब्दों में कहा है–

"प्रेम और दया बहुत ज्यादा शक्तिशाली है, घृणा और दयाहीनता से"

"Love and mercy are, ultimately, more powerful than hatred and crultg"

एक और दार्शनिक ने नीचे लिखे शब्दो में परमात्मा की अति स्तुति की है और लोगों का मार्गदर्शन किया है।

तू ज्ञान का सागर है, तू दया का सागर है, तू प्रेम का सागर है।

॥ ओ३म् शम्॥

राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता में स्वामी दयानन्द का महत्त्व

❑ डा. भवानी लाल भारतीय

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत र्षे दयानन्द द्वारा प्रतिपादित ारों की भारत की राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ करने तथा देश की ग्रण्डता की रक्षा मे क्या योगिता है, इस पर विचार करने पूर्व यह जान लेना आवश्यक कि किसी राष्ट्र की एकता तथा ग्रण्डता से हमारा क्या अभिप्राय । यदि हम संसार के सर्वाधिक ीन ग्रन्थ वेदों का अवलोकन तो हमे विदित होता है कि दक वाङ्मय में सर्वप्रथम राष्ट्र विस्तृत चर्चा उपलब्ध होती अथर्ववेद के 12वें काण्ड का म सूक्त जो भूमिसूक्त या ृभूमि की वन्दना के नाम से ना जाता है, हमारे समक्ष राष्ट्र परिपूर्ण तथा सुविचारित ल्पना प्रस्तुत करता है। इसे आप का राष्ट्रीयगीत भी कह सकते है। वेदों मे राष्ट्र के प्रति जैसी रणा व्यक्त की गई है तथा सके प्रति नागरिकों के जिन र्तव्यो का निर्धारण किया गया उसे इन 36 मन्त्रो में सुस्पष्ट ग से परिभाषित किया गया है । स सूक्त के सभी मन्त्र इतने म्भीर तथा व्यापक हैं कि किसी भी देश का वासी इनके अर्थों का चिन्तन कर एक सच्चा और अच्छा नागरिक बन सकता है । यहां यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यद्यपि एक हा देश के निवासियो के आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, भाषा अदि में भिन्नता हो सकती है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इन्ही विभिन्नताओं के कारण राष्ट्र और धरती की एकता और अखण्डता पर आंच आये ।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।

यह धरती नाना प्रकार की बोलियो को बोलने वालों तथा नाना पेशो से जीविका चलाने वाले लोगों को इस प्रकार धारण करती है मानो वे एक ही घर के लोग हों । भाषा तथा व्यवसायगत भेद पृथ्वी के नागरिकों में भिन्नता तथा अनेकता नहीं लाते। स्वामी दयानन्द ने वेद प्रतिपादित इसी तथ्य को हृदयंगम किया था और वे पृथ्वी के समस्त नागरिकों को एक ही परिवार का सदस्य मानते थे। इसलिए उन्होंने अपने द्वारा स्थापित आर्य समाज का उद्देश्य किसी देश, सम्प्रदाय तथा वर्ग, वर्ण का कल्याण करना नहीं बताया अपितु संसार के उपकार को ही इस संस्था का लक्ष्य ठहराया था।

राष्ट्र की परिभाषा अनेक प्रकार से की गई है किन्तु अधिकांश विचारकों की राय में राष्ट्र उस भौगोलिक इकाई का नाम है जिसकी निवासियों के इतिहास, संस्कृति, परम्परा, जीवन-दर्शन तथा आचार व्यवहार में एक-रूपता दिखाई देती है। यों तो कोई भी राष्ट्र-धरती का एक टुकड़ा ही होता है जिसमें नदी, पर्वत, नाले, झरने, वन, मैदान आदि के अतिरिक्त मनुष्यों द्वारा निर्मित बस्तियां भी होती हैं किन्तु उस भू-भाग की सांस्कृतिक एकता ही व मूलभूत तत्व है जो इस भूखण्ड को राष्ट्र की संज्ञा प्रदान करता है। इस प्रसंग में पृथ्वीसूक्त का निम्न मन्त्र मननीय है-

शिला भूमिरश्मा पाँसुः सा भूमिः संधृता धृता ।

-अर्थात् प्रत्यक्षतया तो यह धरती विभिन्न चट्टानों, मिट्टी के कणों, प्रस्तर खण्डों तथा बालूरेत का ही समृष्टि-रूप है किन्तु यही भूखण्ड देशवासियों द्वारा सुसंस्कृत बनाकर सम्यक्तया धारण किया जाता है तो उसके साथ देश की गोरवमीय संस्कृति तथा इतिहास के गरिमामय प्रसंग जुड़ जाते हैं तो प्रस्तरमयी शिलाओं तथा धूल के कणों वाली यह धरती हमारे लिए वन्दनीय तथा रक्षणीय राष्ट्र बन जाता है । इसी वैदिक तथ्य को अनुभव कर ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में सर्वत्र स्वदेश आर्यावर्त का कीर्ति गान किया है तथा इसके विगत ऐश्वर्य, वैभव तथा गौरव का उन्मुक्त कण्ठ से गान किया है। देशवासियों को स्वराष्ट्र के प्रति कर्त्तव्योन्मुख किया है। उनके अनुसार जिस देश के अन्न जल से हमारा पालन हुआ है, क्या उसके प्रति हमारा कोई दायित्व और कर्त्तव्य नहीं है ? स्वदेश में स्वराज्य की स्थापना को अपना पावन कर्त्तव्य बताते हुए उन्होंने लिखा था, "चाहे कोई कितना ही करे किन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है । किन्तु विदेशियों का राज्य कितना ही मतमतान्तर के आग्रह से शून्य, न्याय-युक्त तथा माता-पिता के समान दया तथा कृपा-युक्त ही क्यों न हो, कदापि श्रेयस्कर नहीं हो सकता।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राष्ट्र की सुस्पष्ट धारणा से पुराकालीन आर्य लोग सर्वथा परिचित थे। इस प्रसंग में यह लिखना भी आवश्यक है कि हमारे विदेशी शासकों ने इस तथ्य को कभी स्वीकार हीं किया कि भारत सुसंगठित तथा सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरोया एक राष्ट्र है। इस विचारधारा के देश के नागरिकों में प्रचारित करने के पीछे उनका एक गुप्त एजेण्डा था। उनके निहित गोपनीय स्वार्थ थे। वे नहीं चाहते थे कि भारत के निवासी अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को पहचाने तथा एकता के सूत्र में बन्धकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सामूहिक उपयोग करें । अपने इसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए वे यहां के निवासियों को सदा यही पाठ पढ़ाते रहे कि भारत के आदिम निवासी तो कोल, भील, द्रविड़ जातियों के लोग थे जो कबीलों में रहते थे और उन्नतिशील आर्यों से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं था। स्वामी दयानन्द ने पश्चिमी लोगो द्वारा प्रतिपादित इस मिथ्या धारण को तोड़ा तथा इस बात का बलपूर्वक खण्डन किया कि आर्य लोग ही आर्यावर्त के आदि निवासी थे। उनके बसने के पहले इस देश में अन्य किसी जाति का निवास नहीं था। उन्होंने आर्यों और द्रविड़ों में धर्मगत भेद को नहीं माना उन्होंने अंग्रेजों द्वारा लिखे गए इतिहासों से उत्पन्न भ्रान्तियों का प्रबल खण्डन किया और भारत के वास्तविक इतिहास के अनेक गौरवपूर्ण प्रसंगों को उजागर किया।

यदि हम आर्यों के विगत इतिहास को देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि इस देश के विदेशी दासता के काल को छोड़कर अत्यन्त प्राचीनकाल में देश की एकता को मजबूत करने के प्रयत्न यहां सदा होते रहे हैं। महाभारत-काल को ही देखें । उस समय इस देश को विखण्डित करने के अनेक कारण उत्पन्न हो गए थे। अन्यायी, अत्याचारी, पराये स्वत्व को छीनने वाले क्षुद्रमनस्क शासकों ने पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के वशीभूत होकर हमारी प्रजा अत्यन्त पीड़ा तथा त्रास का अनुभव कर रही थी। इस समय कृष्ण जैसे महामनस्वी, नीतिज्ञ तथा प्रज्ञापुरुष ने आर्य राष्ट्र के संरक्षण तथा नवनिर्माण की कल्पना को साकार किया। उन्होंने ही धर्मराज युधिष्ठिर को आर्यावर्त्त का एकछत्र सम्राट् घोषित कराने का पुरुषार्थ किया तथा आसेतु हिमाचल भारत को एक अखण्ड राष्ट्र बनाया। महर्षि दयानन्द ने उस युग पुरुष को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करत हुए सर्वथा उपर्युक्त ही लिखा था "देखो महाभारत में कृष्ण का जीवन अत्युत्तम रीति से वर्णित हुआ है । उन्होने जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कोई अधर्म का काम नहीं किया था।"

इसी प्रकार समय-समय पर देश की आजादी तथा अखण्डता को सुरक्षित रखने के लिए महामति चाणक्य तथा समर्थ रामदास जैसे मनस्वी पुरुषों ने सम्राट् चन्द्रगुप्त तथा हिन्दू पद पादशाही के आदर्श को क्रियान्वित करने वाले शिवाजी महाराज को प्रेरित किया । उधर महाराणा प्रताप, वीर दुर्गादास तथा दशम गुरु गोबिन्दसिंह ने अत्याचारी केन्द्रीय शासकों से अपने राज्यों को स्वाधीन रखने के लिए सर्वोच्च वीरता तथा त्याग के अप्रतिम आदर्श रखे । ऋषि दयानन्द ने इन सभी इतिहास पुरुषों के राष्ट्रीय एकता में योगदान को आदर के साथ स्मरण किया है।

(शेष पृष्ठ 4 पर)

सम्पादकीय.....✍

आर्य समाजें वेद प्रचार की ओर ध्यान दे

आर्य समाज का मुख्य कार्य वेद प्रचार है परन्तु आज हम इस कार्य में पिछड़े से रहे हैं । महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने जहां आर्य समाज के जिम्मे समाज सुधार का कार्य लगाया था वहां वेद का प्रचार और प्रसार करने का भी आदेश दिया था। इसीलिए उन्होंने आर्य समाज के नियम बनाते समय तीसरे नियम में लिखा था "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है" महर्षि दयानन्द ने वेद प्रचार के कार्य को धर्म के साथ जोड़ दिया है और वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म बताया।

आज हमने विचार करना है कि इस परम धर्म का हम कहां तक पालन कर रहे हैं । मैं विशेष कर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित आर्य समाजों के अधिकारी महानुभावों से व पंजाब के अन्य आर्य महानुभावों से कहना चाहता हूं कि आज हमारा यह कार्य कुछ ढीला सा चल रहा है । एक समय था हमारे पास सभा में सैंकड़ों उपदेशक थे और वह रात दिन वेद प्रचार के कार्य में जुटे रहते थे। जब मैं आर्य समाज में आया था तो वह दृष्य मैंने अपनी आंखों से देखा था। मेरा जन्म एक कट्टर पौराणिक परिवार में हुआ है परन्तु जब हमारा परिवार आर्य समाज के सम्पर्क में आया और आर्य समाज की कार्य पद्धति को देखा, आर्य समाज के परोपकार के कार्यों को देखा तो सारा ही परिवार आर्य समाज के रंग में रंग गया । हमने देखा कि आर्य समाज के उपदेशक सिर पर बिस्तर उठा कर आर्य समाज का प्रचार करने के लिए रात-दिन स्थान-स्थान पर दौड़ते रहते थे । गांव में, देहात में, शहर में, नगर में जहां भी उन्हें बुलाया जाता था वह वहां जाते थे और जहां नहीं बुलाया जाता था वहां भी वह पहुंच कर अपने उपदेश की स्वयं ही व्यवस्था कर लेते थे। न उन्हें यह चिंता होती थी कि कोई उनके लिए तख्तपोश बिछाएगा मंच लाऊड स्पीकर लाएगा । वह स्वयं ही मुनादी करते थे और स्वयं ही उपदेश देना आरम्भ कर देते थे। वह युग एक देखने वाला युग था जिसमें पं. लेखराम जी जैसे दीवाने उपदेशक भी थे जिन्हें आर्य समाज के प्रचार की धुन के सिवाए और चिन्ता ही नहीं थी। कई बार उन्हें अपने कपड़े तक भी धोने का अवसर नहीं मिलता था वह इतने वेद प्रचार के कार्य में व्यस्त रहते थे। वेद प्रचार के लिए पायल में गाड़ी न रुकने पर जीवन की चिन्ता न करते हुए छाती से बिस्तर बांध कर चलती गाड़ी से छलांग लगा देना, लहु-लुहान हो जाना परन्तु इसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी यदि चिन्ता थी तो केवल वेद प्रचार की थी। एक ही पुत्र है वह भी बिमार है वेद प्रचार का प्रोग्राम आ गया। बीमार बच्चे को मां और पत्नि के हवाले छोड़ कर चल पड़े । यह तो अमर शहीद पण्डित लेखराम जी की कहानी है परन्तु और भी अनेकों उपदेशक पण्डित लेखराम जी की तरह दीवाने बन कर वेद प्रचार का कार्य स्थान स्थान पर जाकर करते थे। आर्य समाजों के अधिकारी व आर्य महानुभाव भी उपदेशकों का पूरा सम्मान करते थे ।

आज स्थिति कुछ बदल चुकी है दोनों तरफ कुछ कमी आ गई है । आज हमें वह पुराने लग्नशील उपदेशक तो नहीं मिलते परन्तु जो मिलते हैं उनसे भी हम पूरा लाभ नहीं उठाते । मैंने ऊपर लिखा है कि हमारी सभा में सैंकड़ों उपदेशक थे परन्तु अब थोड़े से उपदेशक हैं मैंने सभा कार्यालय से उनके प्रोग्राम के बारे में पता किया तो पता चला कि आर्य समाजों से उनके लिए भी प्रोग्राम ही नहीं रहे और उपदेशकों के पास पिछले काफी समय से कोई कार्य क्रम नहीं है। सभा से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों के अधिकारी महानुभावों को सोचना चाहिए कि आज हमारा वेद प्रचार का कार्य क्यों कम होता जा रहा है । मैंने पिछले दिनों जब कार्यालय में और उपदेशक रखने की बात कही तो मुझे बताया गया कि जो हमारे पास पहले उपदेशक हैं उनके पास भी पूरा कार्यक्रम नहीं है और नए उपदेशक रख कर उन्हें कहां भेजेंगे। मैं समझता हूं यह स्थिति अच्छी नहीं । हम नए उपदेशक रखना चाहते हैं परन्तु आर्य समाजें अपने कार्यक्रम नहीं रख रही।

पंजाब सदा से वेद प्रचार के कार्य में आगे रहा है । पंजाब आर्य समाज का प्रचार अन्य प्रदेशों से अधिक हुआ है परन्तु अब रहा है इसकी मुझे बहुत चिन्ता है कि ऐसा क्यों हो रहा है। पंजाब आर्य बन्धु वेद प्रचार के लिए आगे क्यों नहीं आ रहे ।

इस लिए पंजाब की प्रत्येक आर्य समाज के अधिकारियों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए । पंजाब की कोई भी आर्य समाज ऐसी न होनी चाहिए जिसमें साप्ताहिक सत्संग में होता है । बल्कि सभी आर्य समाजों में दैनिक यज्ञ-हवन-सत्संग अवश्य होना चाहिए। कम से कम सप्ताह में एक बार तो अवश्य हो । वर्ष भर में आर्य समाज आने वाले सभी पर्व अपनी आर्य समाज में मनाए जाने चाहिएं । प्रत्येक पर्व पर विशेष कार्यक्रम वेद प्रचार का रखा जाए । वर्ष भर में वेद सप्ताह वार्षिक उत्सव के दो कार्यक्रम तो विशेष होने चाहिएं । पंजाब की कई आर्य समाजें ऐसी हैं जिनके उत्सव होते हैं जिनमें वेद सप्ताह भी होते हैं, आर्य समाज के पर्व भी मनाए जाते हैं परन्तु ऐसी चन्देक आर्य समाज हैं जिनमें ऐसा होता है । मैं चाहता हूं कि ऐसा सभी आर्य समाजो मे हो । मुझे बताया गया है कि कुछ आर्य समाजें तो ऐसी भी हैं जिनके कई-कई वर्षों से वार्षिक उत्सव ही नहीं हुए। कई आर्य समाजे बन्द पडी हैं उनमें दैनिक व साप्ताहिक और मासिक यज्ञ भी नहीं होते हैं । यह हमारे लिए चिन्ता की बात है । इन आर्य समाजों की ओर सभी आर्य समाजी कार्यकर्त्ताओं को ध्यान देना चाहिए ताकि उनमें भी कार्यक्रम आरम्भ किए जा सकें।

आज हमारा सारा ध्यान स्कूल-कालेजों मे लगा हुआ है । जहां स्कूल-कालेज हैं वहां भी अधिकारों को लेकर झगडे चल रहे हैं वहां लोग अधिकारी तो बनना चाहते हैं । अपना पूर्ण अधिकार स्कूल-कालेज पर जमाना चाहते हैं परन्तु आर्य समाज के प्रचार व प्रसार के लिए कोई कार्य करने के लिए तैयार नहीं। अधिकार सभी को चाहिए परन्तु अपना कर्त्तव्य पालन कोई करना नहीं चाहता, यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है। इस बात का मुझे बहुत दुःख है कि यह क्या हो रहा है ? जो शिक्षा संस्थाएं कभी आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में सहायक थी आज वही शिक्षा संस्थाएं आर्य समाज के लिए सिर दर्द बनती जा रही हैं । आज जहां इन शिक्षा संस्थाओं की ओर ध्यान देकर इन्हें सुधारने की आवश्यकता है, वहां वेद प्रचार की ओर विशेष ध्यान देने की भी आवश्यकता है।

मेरी पंजाब की सभी आर्य समाजों के अधिकारियों से प्रार्थना है कि वह अपनी आर्य समाजों में वेद प्रचार के लिए कार्यक्रम रखे, वेद सप्ताह रखें, वार्षिकोत्सव करें, पारिवारिक सत्संग के कार्यक्रम बनाएं।

सभा के पास जो उपदेशक हैं आज उनके पास कोई कार्यक्रम नही है यदि जो आर्य समाजें अपने उत्सव नहीं रख सकती वह पारिवारिक सत्संगों का आयोजन करें । एक सप्ताह का कार्यक्रम सात परिवारों मे क्रम से बना लें सभा से उपदेशक ले लें उन से परिवारों मे यज्ञ व उपदेश करवाएं। किसी एक दिन किसी सार्वजनिक स्थान पर कार्य क्रम रखें उसमें सभी लोगों को आमन्त्रित करें। ऐसे अवसर पर सभा के अधिकारी भी बुलाए जा सकते हैं। मैं सभा अधिकारियों से भी प्रार्थना करूंगा कि वह समय निकाल कर आर्य समाजों के प्रोग्रामों पर जाएं और वहां जाकर आर्य समाज के अधिकारियों का उत्साह बढ़ाएं । ऐसा करने से आर्य समाज का उत्थान होगा। वेद का प्रचार व प्रसार बढ़ेगा और उपदेशको का सद् उपयोग होगा।

इसलिए पंजाब की सभी आर्य समाजों के अधिकारी मेरी इन बातो पर विचार करें जो मैंने ऊपर कही हैं और वेद के प्रचार व प्रसार के लिए सभा को अपना पूरा-पूरा सहयोग दें। अपने उत्सवों आदि के कार्यक्रम बनाकर सभा कार्यालय को शीघ्र लिखें ताकि हम उनके उत्सवों आदि का प्रबन्ध कर सकें ।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

(पृष्ठ 2 का शेष)

यो तो इस्लामी आक्रमणकारियों के समय से ही देश की एकता तथा अखण्डता को क्षति पहुंचने लगी थी क्योंकि इन विदेशी हमलावरों की असहिष्णुनीति के कारण यहां के निवासी हिन्दुओ में असुरक्षा के भाव पेदा हो गए थे। जो हिन्दू अपने मत का त्याग कर इस्लाम को स्वीकार कर लेते उन्हे सुरक्षा की गारंटी दी जाती जबकि स्वधर्म पर स्थित रहने वालों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनने के लिए मजबूर किया जाता। उन्हें जजिया नाम का कर देना पड़ता तथा अपनी मर्जी के अनुसार पूजा उपासना के उनके मौलिक अधिकार भी छीने जाने लगे। इन्हीं तथ्यो को दृष्टि में रख कर स्वामी दयानन्द ने मध्यकाल के असहिष्णु इस्लामी शासको की कठोर साम्प्रदायिक नीतियो का विरोध किया । अपेक्षाकृत उन्होंने अंग्रेजी राज्य की इस लिए सराहना की है कि इस राज्य में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा के अनुकूल धर्मपालन करने की स्वतन्त्रता है तथा राजनेतिक पराधीनता होने पर भी देशवासी बहुत कुछ सुरक्षित जीवन बिता रहे है।

शताब्दियो के पश्चात् राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता को साकार करने का एक अवसर हमे तब मिला जब यूरोपीय जातियो के सम्पर्क मे आकर भारत में नवजागरण की स्फूर्तिमयी लहर उत्पन्न हुई। राजा राममोहनराय को नवजागरण का अग्रदूत कहा गया है। उन्होने धर्म के क्षेत्र मे वैदिक एकेश्वरवाद की पुन: स्थापना की। उन्होने मध्य कालीन पौराणिक विश्वासो से उत्पन्न बहुदेववाद का प्रबल खण्डन किया तथा वेदो में निहित एकेश्वर सिद्धान्त को ही आर्यो का मूलभूत सिद्धान्त ठहराया। आलोचको का तो कहना है कि राममोहन राय द्वारा एकेश्वरवाद का प्रतिपादन एक मजबूरी थी क्योंकि उन्हें ईसाइयत तथा इस्लाम में स्वीकृत एकेश्वरवाद की प्रतिद्वन्द्विता में हिन्दू एकेश्वरवाद को सिद्ध करना था किन्तु यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या तथा अन्यायपूर्ण है। ईसाइयत में तो पिता, पुत्र तथा पवित्रात्मा का त्रैत स्वीकार किया गया है जबकि इस्लाम में अल्लाह की एकता पर जोर देने के साथ-साथ मोहम्मद के पैगम्बर होने की स्वीकृति आवश्यक समझी गई है। यथार्थत: राममोहन राय ने जिस एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया था, वह वैदिक, औपनिषिदक तथा वेदान्त दर्शन पर आधारित एक सर्वोच्च सच्चिदानन्द सत्ता को स्वीकार करना ही था किन्तु वह शंकर के सर्वेश्वरवाद तथा अद्वैतवाद से सर्वथा भिन्न था । ऋषि दयानन्द ने भी उपर्युक्त प्रकार के एकेश्वरवाद को आर्य दर्शन के सर्वथा अनुकूल ठहाराया तथा इसे देश की एकता के लिए अनिवार्य बताया ।

राममोहन राय के प्रारम्भिक प्रयत्नों के पश्चात् महर्षि दयानन्द ने ही देश की स्वतन्त्रता, एकता तथा अखण्डता के स्वर्णिम सूत्रों को प्रस्तुत किया । उन्होंने स्वधर्म, स्वदेशी, स्वसंस्कृति तथा स्वभाषा की एकता को राष्ट्रीय एकता के चार मजबूत स्तम्भ माना। उदयपुर प्रवास के समय पं. मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या द्वारा पूछने पर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि जब तक इस देश के निवासियों मे भाषागत, उपासनागत तथा विचारगत एकता नहीं होगी तब तक समग्र राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता स्वप्नवत् अयथार्थ ही रहेगी। स्वामी दयानन्द के इस मन्तव्य का चिन्तन तथा तदनुकूल आचरण आज की प्रबल आवश्यकता है।

यह कविता मेरे एक वेद प्रेमी मुस्किल शिष्य ने लिखी है।

नव्य भव्य दिव्य दयानन्द

आडम्बर अरू ढोंग घने थे,
चहुंदिशि में घन ज्यों छाये ।
संक्रामक उस युग में श्रीमन्,
विश्वप्रभा बनकर तुम आये॥
संत नहीं तुम महा संत थे,
आर्यधर्म के अतुल चितेरे ।
समाज व्याप्त आडम्बरों पर,
किये कठोर प्रहार घनेरे ॥
संस्कृति के महा उद्धारक,
आर्य धर्म के सच्चे पालक ।
वेद उपनिषद व्याख्या कर्त्ता,
वेद विधिके सुसंचालक ॥
दुर्गुण जो भी समाज व्यापत
थे, इहलीला कर डाली उनकी ।
मंगलकारी हृदय प्रबल था,
भाव-वीथिका अपनी धुन की॥
आर्षग्रंथों के व्याख्याता,
वेदपरक विषयों के ज्ञाता ॥
संत शिरोमणि समाज सुधारक,
वेद वाङ्मय विदित विधाता ॥
सत्यार्थ प्रकाश के प्रति पृष्ठ
में, सत्यता का घोर विवेचन ।
अध्ययन उपरान्त देख लो,
आल्हादित होता कैसा मन ॥
महा मनीषि गौरिक अंचल,
अभिनव था व्यक्तित्व तुम्हारा ।
बल विक्रम के महा धनी तुम,
हुआ प्रभावित जग बह सारा॥
वेदों का जो सत्य रूप है,
उसको तुमने किया उजागर ।
यथार्थ रूप परिलक्षित करता,
प्राची में ज्यों उदित विभाकर ॥
शास्त्रार्थ भी किए बहुत से,
लेकिन मूंह की कभी न खाई।
जिसने भी ललकारा तुमको,
हुआ पराजित पीठ दिखाई॥
वेदों के विद्वान भयंकर,
उपनिषदों के महा अध्येता ।
वैयाकरण श्रेष्ठ निज युग के,
अप्रितम शास्त्रीय वेत्ता ।
वेद जगत में सदा रहेगा,
युगों-युगों तक नाम अमंद ।
श्रद्धा सुमन स्वीकार करो मम्,
नव्य भव्य दिव्य दयानन्द ॥

चम्बा में (ऋषि बोधोत्सव)

आर्य समाज चम्बा में 21-2-2001 को शिवरात्रि (ऋषि बोधोत्सव) बड़ी धूमधाम से मनाया गया। परम्परा से हट कर इस बार भाषण, प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसके विषय ऋषि से सम्बन्धित थे। इस में स्थानीय सभी स्कूलों के विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। विद्यार्थियों को स्मृति चिन्ह और पारितोषिक पूज्यपाद स्वामी सुमेधानन्द जी द्वारा दिए गए। डा. विमला प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र के विद्यार्थियों एवं गरीब बच्चों को वर्दियां भी वितरित की गई। आर्य समाज चम्बा में इस बार ऋषि लंगर का आयोजन न कर एकत्रित राशि रु. 15350/- प्रधान मन्त्री राहत कोष (भूकम्प पीड़ित) में और 5000/- टंकारा ट्रस्ट टंकारा (राजकोट) द्वारा स्थापित भूकम्प पीड़ितों के लिए राहत कोष में भेजा गया।

इससे पूर्व 11-2-2001 को आर्य समाज चम्बा में चल रहे आर्य पब्लिक स्कूल का वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह पूज्यपाद स्वामी सुमेधानन्द जी की अध्यक्षता में मनाया गया।

-शाम लाल सलहोत्रा,मन्त्री

आर्य समाज गोनियाना मण्डी (जि. भटिण्डा) द्वारा वेद प्रचार

बसन्त पंचमी के शुभ दिन पर श्री बलदेव कृष्णा सिंगला एम.सी. के नव निर्मित मकान का गृह प्रवेश संस्कार यज्ञ हवन द्वारा किया गया। यज्ञ हवन श्री वीरेन्द्र शास्त्री जो पुरोहित आर्य समाज सिरकी बाजार-भठिण्डा ने सम्पन्न कराया। इस के पश्चात् श्री कृष्ण लाल जटाना ने सुन्दर भजन सुनाये एवं तरसेम कुमार आर्य अन्तरंग सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब) ने यज्ञ हवन के लाभों पर सरल प्रवचन दिया। यज्ञ हवन में श्री गोबिन्द राम जिन्दल प्रधान नगर पालिका तथा अन्य नगर पालिका सदस्य और मान्य गण उपस्थित थे । सभी का जल पान से स्वागत किया गया । वेद प्रचार के लिए भी दान दिया गया ।

-सर्वजीत सिंह, उपमंत्री

आर्य कन्या गुरुकुल शास्त्री नगर-लुधियाना की प्रवेश सूचना

पंजाब का एक मात्र कन्या गुरुकुल चतुर्थी से अष्टम श्रेणी तक 14 नवम्बर से वैदिक तथा धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ पंजाब बोर्ड के समस्त विषय पढ़ा कर उन्नति पथ पर अग्रसर हो रहा है।

अगला सत्र पहली अप्रैल को प्रारम्भ हो रहा है जिसके लिए प्रवेश पत्र सभी मंगाए जा सकते हैं । कन्याओं का साक्षात्कार पहली अप्रैल तथा वेदारम्भ संस्कार 8 अप्रैल 2001 रविवार को होगा ।

इच्छुक सज्जन केवल चतुर्थ-पंचम तथा षष्ठी कक्षा के लिए संपर्क करें। **-सत्यानन्द मुंजाल, कुलपति, -चन्द्रप्रभा शास्त्री, आचार्या**

"अति सर्वत्र वर्जेत"

□ पं. वेद प्रकाश जी टेंवाडू वाले, 73/5 भार्गव नगर, जालन्धर

यह छोटा सा सूत्र हमारे जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म तरंग को छू लेता है। सूत्र चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, अगर उसका भाव शुद्ध है तो वह सूत्र मानव की संवेदनशीलता को प्रभावित करता ही है। उपरोक्त सूत्र की महत्ता का पता इस बात से भी लगता है कि इसे मानव जीवन के संदर्भ में बार-बार दोहराया गया है, कोई एक या दो बार नहीं बल्कि करोड़ों-करोड़ों बार हमें यह सुनने को मिला है। भारत के लगभग सभी सन्तों के मुख से यह निकला है। जब इस सूत्र को ऋषि से लेकर साधारण जन तक सभी ने दोहराया है तो इसका मूल्य कम कर के नहीं आंका जा सकता। वैसे भी सत्य तो सत्य ही है, दोहराते रहने से सत्य बदल नहीं जाता।

समाज नियमों के सहारे चलते है जिस दिन नियम खत्म हो जाएंगे उसी दिन हम एक-दूसरे को पहचान भी न सकेंगे। नियम तोड़ना बड़ा आसान है, जोड़ना अत्याधिक कठिन। सदियों-सदियों से हमारे पूर्वजों ने समाज तथाजीवन को चलाने के ऐसे-ऐसे सुन्दर नियम बनाए जिसे पालन कर इन्सान अपने जीवन को ही नहीं बल्कि पूरे विश्व को एक सूत्र मे पिरो सकता है यह बात अलग है कि आदमी नियमों का पालन करे व्यवस्थित जीवन, समाज तथा राष्ट्र स्वर्ग है और अव्यवस्थित सिवाय नर्क के और कुछ नहीं। आज,जो पूरे विश्व की स्थिति है मर्यादाओं का पालन न करने की वजह से है। यह सूत्र सिर्फ उन्हीं लोगों के लिए है जो हर क्षेत्र में नियमों को तरोड़ते-मरोड़ते चले जाते हैं।

इस सूत्र में जो महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि अति अन्त नहीं है हां अति का परिणाम अवश्य अन्त हो सकता है। परिणाम पर जाने की आवश्यकता नहीं है आप थोड़ा अति शब्द को समझने का प्रयत्न करें। अति का मतलब है जो आप करना चाहते हैं (चाहे वह बुरा हो या अच्छा) थोडा ज्यादा। कभी-कभी इतना ज्यादा कि मुंह से आवाज निकल जाए कि यह तो अत्याधिक हो गया अब नहीं। थोड़ा रुकना चाहिए। यहां एक बात समझ लो कि समझदार व्यक्ति तो रुक भी जाएगा परन्तु बुद्धू लगातार अति पर अति करता चला जाएगा जिसका परिणाम अन्त हो सकता है परन्तु आते ही अन्त कहना ठीक नहीं। अति सीमाओं में बंधी हुई है और अन्त सभी सीमाओं की समाप्ति की घोषणा करता है। इस सूत्र में जो अति को त्यागने की बात कही गई है बिल्कुल ठीक कही गई है थोड़ा इसे ओर समझ लें जैसे आपको भूख लगी हो आप खाना खाने लगे तो आप खाना सिर्फ उतना ही लेंगे जितनी भूख होगी और अगर गल्ती से थोड़ा ज्यादा भी खा ले तो कोई बात नहीं उसे पचाया जा सकता है परन्तु आप इतना अधिक जबरदस्ती खा लें जिससे आप की आंतिड़यां ही फट जाएं तो यह अति का परिणाम देखने की बात होगी परन्तु भूख से थोड़ा ज्यादा खाने को अति कहा जा सकता है यह अति सीमा में बंधी होगी।

जब इन्सान अति करता है तो अति से होने वाले दुष्परिणामों के विषय में विचार नहीं करता क्योंकि अति की कुछ हद तक जाकर सीमा समाप्त हो जाती है। अब देखिए पानी समुद्र के किनारों तक रहे तो ठीक और अगर किनारे तोड़ कर पानी बाढ़ बन कर बहने लगे तो वह जान और माल की अत्याधिक क्षति कर सकता है। अब दूसरी घटना लीजिए लंका का राजा रावण जिसके पास स्त्रियों की कोई कमी न थी। धन के भी अम्बार लगे हुए थे बड़े से बड़ा योद्धा उसकी सभा में विराजमान रहता था और खुद उस के विषय में कहा गया था कि काल को उसने बांध कर रखा हुआ था परन्तु जब बुद्धि भ्रष्ट हुई तो घर से अति करने निकल पड़ा। श्री राम जी की धर्मपत्नी माता सीता को उठा लाया वो भी छल से और फिर अति के ऊपर अति की कि अब मैं सीता को नहीं लौटाऊंगा आखिरकार भयंकर युद्ध हुआ। लाखों-लाखों जिन्दगियां मौत के अन्धेरे कूएं में समा गई फिर इतिहास का पन्ना पलट कर देखा गया तो हिटलर पढ़ने को मिल गया। जर्मनी की धाक पूरे विश्व में बिठाने की खातिर विश्व युद्ध छेड़ दिया आखिरकार परिणाम वही हुआ जो होना था। जब-जब भी इन्सान में मर्यादाओं में रह कर कार्य नहीं किया तब-तब ही विनाशलीला का दृश्य हमें देखने को मिला है।

प्राचीन काल में हमने कुछ ऐसी परम्पराओं को जन्म दिया जिसकी वजह से सदियों तक उन गलत परम्पराओं की त्रासदी का दुःख हमें झेलना पड़ा। सती प्रथा तथा विधवा विवाह जैसी परम्पराओं ने हमारे समाज की नींव को ही हिला कर रख दिया था। बाल-विवाह ने तो रही-सही कसर ही पूरी कर दी। मानव ऐसी-ऐसी क्रूरता भरे खेल खेलता रहा जिसकी वजह से लाखों-लाखों जिन्दगीयां तबाह हो गई। इसके पश्चात् क्रूरता की हद पार करते हुए मानव ने बलि की प्रथा को जन्म दिया। यह सारी की सारी अति समाज के माथे पर एक कलंक साबित हुई। सब अतियों से बचाने हेतू ताकि मनुष्य इसके अन्त तक न चला जाए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने उपरोक्त सभी गलत परम्पराओ का विरोध किया तथा मानव को जगाने के लिए शिक्षा पर जोर दिया जो समय पाकर आन्दोलन का रूप धारण कर इस सब परम्पराओं को समूल नाश करने की ओर चल पड़ा, जिसके परिणाम स्वरूप आज सती प्रथा समाप्त हुई। बाल विवाह खत्म हुआ, विधवा-विवाह का शुभारम्भ हुआ तथा शिक्षा के प्रचार हेतु जगह-जगह स्कूल और कालेजों का तांता सा लग गया। हम ऋणि हैं महर्षि दयानन्द के जिसने समाज में रहते हुए मर्यादायों का पालन करने की हमें सलाह दी सिर्फ सलाह ही नहीं दी बल्कि पूरा अमल करने को हमें प्रेरित किया।

एक क्षेत्र ऐसा भी है जहां पर अति का अपना एक अलग रूप है वहां पर आप कितना भी आगे बढ़ते जाएं कोई हानि नहीं होगी बल्कि परमानन्द की प्राप्ति होगी। आप मेरा आशय समझ गए होंगे हां मैं प्रेम की बात कर रहा हूं यह एक संसारी चीज है जिसे आप जितना भी ज्यादा खर्च कर लें यह कम नहीं होगी बल्कि और ज्यादा बढ़ जाएगी। जब-जब किसी ने प्रेम को ठीक से पहचाना तब-तब ही उसने प्रेम के अतिरिक्त कोई और कुछ किया ही नहीं। आप प्रभु से प्रेम करे, चाहे कितनी भी भक्ति कर लें चाहे आप लगातार करते चले तब भी आप को प्रेम का ऐसा आभास होगा कि अभी आपने कुछ किया ही नहीं बल्कि और अधिक करने वाला है।

प्रेम में द्वैत की भावना खत्म हो जाती है। दूसरा तो सोचता है मन जब मन ही मन इस विषय मे नहीं सोचेगा तब द्वैत कहां रह पाएगा। जहां द्वैत है वहां प्रेम नहीं बल्कि शत्रुता जरूर पनप सकती है अभी संसार में जो आप प्रेम देख रहे हैं यह नकली प्रेम है। यह एक प्रकार का समझौता है जिसके सहारे हम सारी उम्र निकाल देते है। जहा सी भी ठेस लगने पर प्रेम का असली रूप दिखाई देने लगता है। देखिए महर्षि दयानन्द जी ने जहर देने वालों को भी माफ कर दिया। यह प्रेम की सर्वाधिक ऊंची अवस्था है। आदमी की विवशता देखिए सामाजिक जीवन में अति की कंजूसी चाहिए तो आदमी कजूसी नहीं ज्यादा अति करता है, जबकि धार्मिक जगत मे अति चाहिए तो आदमी कंजूसी करता है। इसलिए यह जो सूत्र है इसको समझने के लिए प्रेम सबसे अच्छा मार्ग है। वर्ना इस सूत्र को पढकर आदमी भटक सकता है। मुझे नहीं पता कि मानव क्यो अपनी बर्बादी की तस्वीर को जन्म देता है। मानव कोई मोम का पुतला तो नहीं जिसे आग के समक्ष पिंगलना ही है बल्कि इसके अन्दर तो बहुत ही संवेदनशील तरंगें हैं जिसके सहारे यह बुद्धिमान कहलाता है और बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी अति को समझने में भूल नहीं कर सकता बल्कि वह तो जानता है कि कहा अति करनी है और कहा नहीं करनी। काफी लम्बे समय से इस सूत्र के साथ अन्याय होता आया है अब यह सिलसिला रुकना चाहिए। इसलिए आदमी अति के परिणामों को समझ जाए तो अच्छा है क्योंकि सामाजिक जीवन मे फिर दोबारा गलती के लिए समय नहीं मिलेगा। धार्मिक जगत मे अति का महत्व है परन्तु अति को खिलवाड़ समझने का महत्व नहीं। इसलिए इस सूत्र का महत्व अत्याधिक बढ़ गया है खासतौर पर आज के युग मे तो यह चाहिए ही चाहिए क्योंकि कहीं तो रुके, अन्यथा कहीं अति करते-करते सारे संसार को ही न नष्ट कर दे।

आर्य समाज तपा की गतिविधियों में तेजी

तपा मंडी-आर्य समाज तपा ने गत कई मास से वेद प्रचार हेतू अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया तथा आर्य समाज की गतिविधियो में तेजी लाई। डा. राज कुमार शर्मा अध्यक्ष आर्य समाज तपा ने अनेक हवन यज्ञो का आयोजन किया । एस.एन. आर्य हाई स्कूल तपा मे पहला हवन यज्ञ श्री जवाहर लाल बांसल सचिव प्रबन्धक समिति ने करवाया । वह हवन यज्ञ के यजमान भी थे। आर्य समाज बरनाला के पुरोहित डा. योगीराज शास्त्री जी ने वेदमंत्रों के उचारणो से हवन यज्ञ शुरू किया। उन्होंने आर्य समाज के सिद्धान्तों तथा आर्य समाज के दस नियमों की जानकारी दी । दूसरा हवन भी आर्य हाई स्कूल मे ही सम्पन्न हुआ जो स्कूल के अध्यक्ष श्री जीवन बांसल ने अपने स्वर्गीय पिता ला गिरधारी लाल बांसल की स्मृति मे रखवाया था। डा. राज कुमार शर्मा ने आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द जी की जीवनी पर प्रकाश डाला। उन्होंने स्कूल के जरूरतमंद छात्रों में जरसिया भी वितरित कीं । एक अन्य हवन यज्ञ डा नरेश गोयल तथा उनकी धर्म पत्नी द्वारा एस एन. आर्य हाई स्कूल मे ही करवाया गया । श्री जवाहर लाल बांसल के सुपुत्र श्री रोहित बासल ने भी आर्य समाज के तत्वावधान मे हवन यज्ञ करवाया। पुरोहित डा योगीराज शास्त्री ने यजमान रोहित बांसल को जनेऊ पहनाया तथा उसके महत्व के बारे में जानकारी दी । स्कूल के सभी छात्र, अध्यापक तथा प्रबन्धक समिति के सदस्य इस हवन यज्ञ पर उपस्थित थे । स्कूल के सभी छात्रों के लिए भंडारा लगाया गया तथा श्री जवाहर लाल बांसल की ओर से सभी छात्रों को कापियां तथा पैंसिलें भी वितरित की गईं । आर्य समाज तपा की ओर से बाबा सुखानन्द आर्य पब्लिक स्कूल में भी हवन यज्ञ तथा वेद प्रचार का दिवस मनाया गया । मुख्य यजमान स्कूल के चेयरमैन श्री बिहारी लाल शर्मा थे । एस.एन. आर्य हाई स्कूल तपा के मैनेजर श्री तेजपाल पक्खो तथा सतपाल मौड़ द्वारा गरीब छात्रों में ग्यारह हाजर रूपये के मूल्य के बूट तथा जूराबें वितरति की गईं। एस.एन. आर्य हाई स्कूल तपा के मुख्य अध्यापक श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा ने अतिथियो का धन्यवाद किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अंतरंग कमेटी के सदस्य श्री सी. मारकंडा ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जो श्री हरबंस लाल शर्मा की अध्यक्षता में काम कर रही है की वर्तमान स्थिति की जानकारी दी उन्होंने राज्य की सभी आर्य समाजों से अनुरोध किया कि वह अपना समर्थन श्री हरबंस लाल शर्मा को ही दें।

–सी मारकंडा, पूर्व मंत्री, आर्य समाज तपा मंडी

भगवान को दोस्त बना लो

हे प्रभू आप हमें ऐसा बल और शक्ति दें कि हम नियमपूर्वक जीवन बिताने वाले बनें । आदमी धोखा दे सकता है, लेकिन अपने काम को दोस्त बनाओगे, भगवान तुम्हारी सहायता करेगा और भगवान तुम्हारा दोस्त बन जाएगा, जो कर्म नहीं करता, भगवान का दोस्त नहीं बनता, भगवान के शब्दकोश में बेईमानी शब्द नहीं है । यह तो इसानों की बुरी नीयत ने ऐसे शब्दों का अविष्कार किया है। लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए झूठे वचनो, शब्दों के माया जाल का सहारा लेते हैं, और जब माया जाल हटता है तो वे रोते हैं, कि धोखा हो गया, एक भगवान से दोस्ती कर लोगे, तुम्हें कभी किसी सहारे की जरूरत नहीं पड़ेगी और न ही किसी और दोस्त की जरूरत पड़ेगी ।

–चमन लाल मेहत्ता, भठिण्डा

भूल सुधार

आर्य मर्यादा के पृष्ठ 5 पर 11 मार्च 2001 के अंक में मेरे लेख में प्रथम कालम में नीचे से तीसरी लाईन में **नहीं** के स्थान पर भूल से **भी** छप गया है।

"अश्विनी कुमार ने जो रजिस्ट्रीयां करवाई हैं उनका पैसा सभा मे जमा **नहीं** करवाया है यह रजिस्ट्रीयां हरिद्वार में हुई हैं।" ऐसा पढा जाए

–मुलखराज आर्य, सभा मन्त्री

हांसी में तीसरे आर्य समाज की स्थापना

स्थानीय खरड़ चुन्गी (भाटिया कालोनी) हांसी की ज्योति फैक्ट्री के प्रांगण में स्वामी कीर्ति देव जी महाराज की अध्यक्षता में एक विशेष वैदिक सत्संग का आयोजन किया गया जिसमें सर्वप्रथम पं. विजयपाल शास्त्री (प्रभाकर) जी द्वारा यज्ञ किया गया।

इस शुभ अवसर पर तीसरे आर्य समाज खरड़ चुन्गी हांसी की विधिवत स्थापना की गई जिसके प्रधान श्री पुरुषोत्तम लाल जी गिरधर सर्वसम्मति से चुने गए । शेष कार्यकारिणी का गठन करने का अधिकार प्रधान जी को दिया गया।

इस शुभ अवसर पर श्री रूपचन्द जी आर्य व श्रीमती कमलेश रानी गिरधर ने बहुत ही सुन्दर गीत सुनाये जो ईश्वर भक्ति से ओतप्रोत थे तथा स्वामी कीर्तिदेव देव जी महाराज ने उपदेश दिया ।

आर्य समाज खरड़ चुंगी का मासिक सत्संग हर महीने के अंतिम रविवार को दोपहर बाद 3 बजे से 5 बजे तक हुआ करेगा ।

–राजेश शर्मा

आर्य समाज मानसा का चुनाव

गत दिनों आर्य समाज मानसा तथा आर्य हाई स्कूल मानसा का चुनाव सर्व सम्मति से सम्पन्न हुआ । जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गए।

1 प्रधान :–श्री हंसराज आर्य, 2. उप प्रधान :–श्री सुखेन्द्र गुप्ता । 3 मन्त्री :–श्री कृष्ण कुमार बांसल, 4 कोषाध्यक्ष :– श्री देव बांसल, 5. मैनेजर (स्कूल) :– श्री प्रमोद प्रकाश, 6. सरप्रस्त :– श्री ठाकुर दास।

आर्य समाज मानसा में सभी पर्व मनाए जाते हैं। 13-1-2001 को मकर संक्रान्ति पर्व तथा 18-2-2001 को महर्षि जन्म दिन तथा 21-2-2001 को शिवरात्रि पर्व मनाया गया। **–कृष्ण कुमार, मन्त्री**

आर्य समाज सिरकी बाजार बठिण्डा में ऋषिबोध पर्व

आर्य समाज सिरकी बाजार बठिण्डा में ऋषिबोध पर्व दिनांक 20, 21-2-2001 को महर्षि दयानन्द जी महाराज का बोधपर्व, महा-शिवरात्रि पर्व बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। जिसमें अनेक विद्वानों एवं शहर के गणमान्य लोगों ने भाग लिया। सर्वप्रथम आर्य समाज रामनगर रोहतक रोड जीन्द से पधारे हुए धर्माचार्य पं. सुनील कुमार शास्त्री जी के ब्रह्मत्व में हवन यज्ञ किया गया। जिसमें सपत्नीक मुख्य यजमान शहर के जाने माने व्यक्तित्व श्री विजय कुमार जी वर्मा (मोगा वाले) XEN टेलीफोन विभाग बठिण्डा, इन्हीं के साथी श्री महेन्द्रपाल जी, श्री बलदेव जी, श्री भगवान दास जी, श्री रविन्द्र कुमार जी, विद्याधर जी, श्री राजेन्द्र जी जिन्दल रहे। हवन की सुन्दर व्यवस्था पं वीरेन्द्र जी शास्त्री ने की । यज्ञोपरान्त आर्य जगत् के मान्य विद्वान् प्रो. राजेन्द्र जी जिज्ञासु का सारगर्भित प्रवचन हुआ। बोधपर्व मनाते हुए पूज्य सन्यासी माधवानन्द जी सरस्वती ने जागते रहने को कहा। फिरोजपुर से पधारे श्री विजयानन्द जी 'आर्य गायक' की भजन मंडली ने समां बांध दिया। शहर के गणमान्य सर्वश्री पी.डी. गोयल, प्रेम भाटिया, बिहारी लाल मंगला, डा. स्वच्छ सचदेवा, चौ बाबूराम, श्री अशोक अग्रवाल, माता निर्मला, इन्द्रा छाबड़ा, वीरप्रभा, प्रो सुखेजा, श्री धर्मपाल जी रेल्हन सपरिवार आदि-आदि महानुभाव सम्मिलित हुए । आर्य समाज सिरकी बाजार ने योगाश्रम चलाने की घोषणा की। मंच संचालन श्री कृष्ण लाल जं आर्य ने किया । आई हुई संगत को कड़ाह (हलवा) का प्रशाद भरपूर मात्रा में बांटा गया। शान्तिपाठ के उपरान्त कार्यक्रम सम्पन्न हुआ ।

–कल्प वासुदेव, मन्त्री

जालन्धर में पं. लेखराम दिवस मनाया गया

आर्य समाज ऋषि कुञ्ज पक्का बाग जालन्धर में 6-3-2001 को पं. लेखराम शहीदी दिवस मनाया गया। यज्ञ के यज्ञमान ठेकेदार बलवन्त राय जी उप प्रधान थे। श्री पं सुभाष चन्द जी पुरोहित ने पं. लेखराम जी के तप, त्याग और कर्मठता पर अपने विचार प्रस्तुत किए ।

पण्डित लेखराम जी ने कहा था कि आर्य समाज में तहरीर और तकरीर का काम बन्द नहीं होना चाहिए।

–करतारनाथ आर्य ठेकेदार–मन्त्री

वैदिक ज्ञान ही सुख का मार्ग

□ पं. [illegible], पुरोहित आर्य समाज मन्दिर [illegible], फिरोजपुर शहर

आज के इस भौतिक काल में जहां आज धन व बनावटी जीवन को विशेष महत्व दिया जा रहा है, वहीं पर आत्मिक जीवन को मनुष्य नीचे की ओर गिराता जा रहा है । इसका मूल कारण है अज्ञानता ।

अज्ञानता के वश मे ही मनुष्य-मनुष्यता से पशुता की ओर जा रहा है। अगर हमें और आपको को इस अन्धकार रूपी अज्ञानता से प्रकाशमय ज्ञान की ओर बढ़ना है तो इसका एक ही रास्ता है और वो है वेद व उसका ज्ञान । क्योंकि वैदिक ज्ञान ही हमको पशुता से मनुष्यता की ओर व मनुष्यता से देवत्व की ओर ले जाएगा और फिर हम इस जीवन का सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सकते हैं ।

वेद की छत्रछाया अर्थात् वेद ज्ञान के द्वारा ही "स्वस्ति नो अभयं य न:" हमें सुखी तथा निर्भय बनाता है । वेद ही एक ऐसा प्राचीन महान ग्रन्थ हैं । जिनके द्वारा हम अपने आत्मा, बुद्धि व मानसिकता का विकास कर इस जीवन को उन्नत कर सकते हैं ।

वेद किसी जाति विशेष सम्प्रदाय के लिए नहीं बल्कि वेद व उसका ज्ञान सार्वभौमिक (Universal) सबके लिए है । परम पिता परमात्मा के द्वारा लगाए गए इस वेद रूपी उद्यान (बाग) में सुखदायी व अमृतमयी मन्त्र रूपी फल व पुष्प हैं । जिनके ग्रहण करने से मनुष्य का जीवन ईश्वर कृपा से सुगन्ध व आनन्द से भर जाता है फिर मनुष्य उस आनन्द व सुगन्ध को फर सब में बांटकर देवकोटि में प्रवेश कर जाता है । "केतुं कृण्वन्नकेतवे" अज्ञानियों की अज्ञानता को मिटा ज्ञान का प्रकाश फैला औरों का जीवन भी धन्य करता है । यही तो हमको वेद ज्ञान सीख देता हैं। यही तो "मनुर्भव" मनुष्य बनने का साधन है ।

इसी वेद ज्ञान के द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सच्चे शिव को प्राप्त किया । इसी वेद ज्ञान के द्वारा पुरुषोत्तम श्री राम ने अपने मनुष्य जीवन को देव जीवन में परिवर्तन कर राक्षसों का संहार किया। इसी वेद ज्ञान से योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपने मनुष्य जीवन में सोलह कलाओं को सिद्ध कर दुष्टों का विनाश किया और गीता का पवित्र ज्ञान संसार को दिया । इसी वेद ज्ञान के द्वारा बिगड़ा हुआ शराबी कवाबी मुन्शी राम, स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से चर्चित हुए । जब तक धरती पर गुरुकुल रहेगे तब इस महापुरुष का नाम सूर्य की भांति चमकेगा । इन महापुरुषों व पवित्र आत्माओं का आज हम हजारों लाखों वर्षों के बाद भी स्मरण करते हैं ।

आज अगर हम अपने आपको महर्षि दयानन्द, महर्षि पुरुषोत्तम श्री राम, योगीराज श्री कृष्ण के सच्चे अनुयायी मानते हैं तो आईये हम वैदिक ज्ञान के पथ पर चल "असतो मा सद्गमय" अज्ञानता को समाप्त ज्ञान का प्रकाश फैलाने कोशिश करें । जिससे हम अपने इस जीवन को अपने महान पुरुषों के बतायें मार्ग पर चला कर अपने परिवार, समाज व राष्ट्र को उन्नत करें ।

इन्हीं सब धारणाओं को हृदय में संजोकर हमने एक छोटा सा प्रयास 1 दिसम्बर 2000 से चतुर्वेद पारायण महायज्ञ की शुरूआत की है । क्रमानुसार प्रथम ऋग्वेद के द्वारा इस महान कार्य को प्रारम्भ किया है जिसकी पूर्णाहुति 8 अप्रैल 2001 को होगी फिर 9 अप्रैल से ही यजुर्वेद के द्वारा इस महायज्ञ को जारी रखेंगे ।

इस पवित्र कार्य मे दिन प्रतिदिन यहां के स्थानीय आर्यजन बढ़-चढ़ कर भाग ले रहे हैं । रोज नये-नये यज्ञमान बनते हैं । सभी पवित्र आत्मा इस कार्यक्रम में तन-मन-धन से सम्पूर्ण देकर हमें प्रोत्साहन दे रहे हैं। प्रात: 6.15 बजे से 7.30 बजे तक समय अमृत व आनन्द से भरा गुजरता है क्योंकि इस समय में परम पिता की पवित्र वाणी वेद मन्त्रों की गूंज कानों मे पडती है। इस महायज्ञ के अन्तर्गत जितने भी हमारे आर्य पर्व आये हैं उन्हे भी हमने यहां पर बडे ही हर्षोल्लास के साथ मनायें । इसी तरह भविष्य मे भी आर्य पर्वो का उत्साह पूर्वक मनायेगे।

! ओ३म् शम् !

फगवाड़ा में ऋषिबोधोत्सव सम्पन्न

"मन द्वारा शरीर के अन्दर झांकते हुए आत्मा एवं परमात्मा से मिलन योग है, जो बहिर्मुखी इन्द्रियों द्वारा सांसारिक पदार्थों को पाना भोग।" आर्य समाज गौशाला रोड फगवाड़ा द्वारा शिवरात्रि के उपलक्ष्य में आर्य माडल सी.सै. स्कूल में आयोजित 'ऋषिबोधोत्सव' के अवसर पर नगर के प्रमुख विचारक एवं आर्य समाज तथा गायत्री सत्संग सभा के महासचिव बाल कृष्ण सभ्रवाल ने उक्त विचार दिए ।

इस अवसर पर संस्कृत के विद्वान् प्रो. सत्यदेव सरल ने कहा कि कारण के जानने की उत्कंठा व्यक्ति को साधारण से महान बना देती है। संक्षिप्त मगर अर्थपूर्ण सम्बोधन में आर्य समाज के प्रधान डा कैलाश नाथ भारद्वाज ने कहा कि आर्य समाज कोई अलग से धर्म नहीं है, बल्कि आर्य समाज तो एक सामाजिक व धार्मिक लहर है, जिसके निश्चित प्रभाव समाज में साफ़ दृष्टिगोचर हो रहे हैं । इससे पूर्व आयोजित हवन यज्ञ में प्रिंसिपल कीमती लाल सोबती, एडवोकेट लाकोश नारंग, मनोहर लाल चोपड़ा, वी.आर. सोंधी, सुभाष जैन, प्रिंसीपाल विश्व मोहनी, डा. विश्व बन्धु सुधीर, हरिवंश महता, बलराज खोसला, डा. योगिन्द्र पाल शर्मा व डा. यश चोपड़ा सहित नगर के अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों ने भाग लिया ।

-डा. यश चोपड़ा

तलवाड़ा में महर्षि दयानन्द जी का जन्म दिवस और बोधोत्सव

महर्षि दयानन्द जी का जन्म दिवस 17-2-2001 को आर्य समाज तलवाड़ा में श्रद्धा और उल्लास के साथ मनाया गया इस पवित्र अवसर पर सायं 5.30 बजे से 6.30 बजे तक यज्ञ किया गया। उसके उपरान्त स्त्री समाज के सदस्यो ने और समाज के सदस्यों ने ऋषि जीवन से सम्बन्धित प्रेरणादायक बहुत सुन्दर भजन पेश किए उसके उपरान्त श्री अमर नाथ जी आर्य और श्री मनोहर लाल जी आर्य ने ऋषि के जीवन पर और उनके किए गए समाज सुधार के कार्य पर विचार दिए।

इसके बाद प्रतिभोज किया । सभी सदस्य भोजन तैयार करके घरो से ले कर आये थे सभी ने मिल कर प्रेम से और उत्साह से इसमे भाग लिया और संगठन का परिचय दिया।

18-2-2001 को सुबह 8.30 बजे से 10 बजे तक गुजरात के जो भाई हम से जुदा हो चुके हैं प्रकोप के कारण उनकी आत्मिक शान्ति के लिए यज्ञ किया गया जिसमे शहर के बुद्धिजीवियों ने भाग लिया, महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल का स्टाफ और छात्र, छात्राओं ने भी भाग लिया और श्रद्धा से यज्ञ किया । यज्ञ के उपरान्त आये हुए सभी सदस्यों को चाय प्रशाद और खानपान आर्य समाज की ओर से दिया गया। महात्मा हसराज पब्लिक स्कूल के बच्चों ने ऋषि जीवन पर चर्चा की भाषण दिए, और बहुत सुन्दर भजन पेश किए । प्रत्येक बच्चे को आर्य समाज की तरफ से सम्मानित किया गया, श्री अमर नाथ जी, पं. परमानन्द जी, किशोरी लाल जी, मधु भाटिया, माता राजरानी, श्री मनोहर लाल जी ने स्वामी जी द्वारा किए गए कार्यों, समाज सुधार, स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज के योगदान पर विचार दिये गए। 19-2 से 21-2-2001 तक प्रतिदिन सुबह 6 से 6.30 बजे तक दैनिक शान्ति यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें बहुत से परिवारों ने श्रद्धा से भाग लिया इस पूर्णाहुति ऋषिबोधोत्सव पर सायं को 6.30 बजे डाली गई ।

इसके बाद सुन्दर भजन गाये गये । श्री अमरनाथ और श्री मनोहर लाल द्वारा जो ऋषि ने धर्मक्षेत्र, समाज सुधार, शिक्षा, सती प्रथा, विधवा विवाह जैसे अनेक जागृति के कार्य स्वामी जी ने किए उन पर प्रकाश डाला गया । श्री जगमोहन, कंवर किशोरी लाल, पं. परमानन्द जी, स्त्री समाज के सदस्यों द्वारा भजन भी पेश किए गए। 17 तारीक से लेकर 21-2-2001 ऋषि बोधोत्सव तक आर्य समाज मन्दिर को बिजली की लाईटों, लड़ियों से सजाया गया था। अन्त में सभी ने मिल कर प्रीतिभोज किया ।

—मनोहर लाल आर्य, मन्त्री

गुरदासपुर में शिवरात्रि उत्सव

21-2-2001 को आर्य समाज (गु.वि.) गुरदासपुर में श्री सत्यपाल नन्दा जी की प्रधानगी में शिवरात्रि उत्सव बड़े हर्षोल्लास से सवेरे 8 बजे से 12 बजे तक मनाया गया जिसमें स्कूली बच्चों के अतिरिक्त दयानन्द मठ दीनानगर के विद्वानों ने आर्य समाज के उत्थान के लिए लोगों को प्रेरित किया । इसके इलावा श्री जगदीश अरोड़ा जी, श्री कुन्दन लाल शास्त्री ने अपने प्रवचनो से मन्त्र मुग्ध कर दिया। श्री अनिल नन्दा एडवोकेट ने अपने भजनों से आए हुए लोगों का मन मोह लिया । दोपहर 12.30 बजे श्री जितेन्द्र त्रेहन जी और ज्योति नन्दा द्वारा ऋषि लगर लगाया गया ।

—गुरबचन, मन्त्री

आर्य समाज माडल टाऊन जालन्धर में माघ मास में गायत्री महायज्ञ सम्पन्न

स्त्री आर्य समाज माडल टाऊन जालन्धर में कष्ट निवारक, पुण्य फलदायक माघ महीने में गायत्री महायज्ञ दि. 13-1-2001 से 12-2-2001 तक श्रद्धा व उत्साह पूर्वक आयोजित किया गया । "गायत्री गायत्रं त्रायते" की भावना को हृदय में रख कर प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी यज्ञ अनुष्ठान किया गया जिसमें 122 महिलाओं ने यजमान के पद को सुशोभित किया। पीले वस्त्र धारण किए यज्ञशाला को शोभा देखते ही बनती थी ।

उक्त अवसर पर यज्ञ के पश्चात् भजन तथा वेदोपदेश के लिए प्रख्यात विद्वानों के प्रवचन तथा श्रीमति रश्मी घई, श्रीमती सरला सेतिया व श्रीमती रमेश जी के भजन होते रहे।

पूर्णाहुति सोमवार 12-2-2001 को बड़ी श्रद्धा से डा. माधुरी योगमती अमृतसर ने सम्पन्न करवाई । स्त्री सम्मेलन की अध्यक्षा सु. श्री कृष्णा पसरीचा जो कि 88 वर्ष की हैं ने थी। सुश्री स्वराज मोहन मुख्यातिथि के रूप में मंच को सुशोभित कर रही थी वह आर्य समाज की गतिविधियों से प्रसन्न होकर 2100 रु. समाज को दे कर गई ।

इस बार डा. आचार्य महावीर मुमुक्षु जी (मुरादाबाद) ने बहुत ही सुन्दर ढंग से जनता का मार्गदर्शन किया फिर श्री राजु वैज्ञानिक दिल्ली तथा अन्त में श्री सुशील कुमार (जालन्धर) व डा. माधुरी योगमती ने अमृतसर आ कर जनता को अपने वैदिक उपदेशों से कृतार्थ किया। यज्ञ के ब्रह्मा आर्य समाज के विद्वान् पुरोहित श्री पं. सत्यप्रकाश जी शास्त्री थे। मंच का संचालन श्रीमती सुशीला भगत ने किया। मास भर में आने वाले सारे राष्ट्रीय पर्व बड़े उत्साह व उल्लास से मनाए गए गुजरात मे भूकम्प पीड़ितों के लिए 51000 रु. का ड्राफ्ट टंकारा में भेजा गया। ऋषि लंगर का सभी ने आनन्द उठाया। सारा प्रोग्राम बहुत सुचारू रूप से हुआ । जिसकी सबने भूरी-भूरी प्रशंसा की।

इसी दौरान विवाह के उपलक्ष्य में निर्धन कन्या किरण सपुत्री प्रीतम लाल भार्गव कैम्प की शादी में 3100 रु. नकद 11 सूट, साड़ियां, बर्तन, बिस्तर आदि वस्तुएं दी गई। **—सुशीला भगत**

प्रचारक प्रशिक्षण शिविर

देश, धर्मप्रेमी, सेवाभावी, श्रद्धालु, नवयुवक जो बेरोजगार है उन्हें वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में लगने के लिए तथा संस्कार करने, योगासन, प्राणायाम आदि का प्रशिक्षण देने के लिए आगामी 16 मई से 31 मई 2001 तक प्रचारक प्रशिक्षण शिविर गुरुकुल आश्रम आम सेना में लगाया जा रहा है। इस शिविर में भाग लेने वाले युवकों को जहां अपने जीवन निर्माण की प्रेरणा मिलेगी वहां वे योगासन आदि सिखाकर संस्कार आदि करके अपनी आजीविका भी कर लेगे ।

इस शिविर में दैनिक सन्ध्या, यज्ञ, मन्त्रपाठ, प्रारम्भिक संस्कृत शिक्षा वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का तुलनात्मक ज्ञान, क्रियात्मक संस्कारों का शिक्षण, बोलने अथवा व्याख्यान देने की कला, संगीत ज्ञान, प्रारम्भिक चिकित्सा एवं आकस्मिक चिकित्सा, योगासन, व्यायाम, प्राणायाम तथा आर्य वीर दल का प्रशिक्षण दिया जाएगा । भोजन एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था गुरुकुल की ओर से होगी। शिक्षार्थी की आयु कम से कम 18 वर्ष हो वह हिन्दी भाषा बोल एवं पढ़ सके तथा नियमित दिनचर्या का पालन कर सके। आने वाले नवयुवक किसी आर्य समाज के अधिकारी या गुरुकुल से परिचित सज्जन का पत्र लेकर आयें । अप्रैल के अन्त तक अपने आने की सूचना अवश्य भेज दें। इस शिक्षण में जो छात्र योग्य रहेंगे, उन्हें प्रचार आदि कार्यों में भी लगाया जा सकता है ।

आने वाले शिविरार्थी अपने साथ ऋतु अनुकूल वस्त्र एवं थाली, लोटा, कटोरी, कापी पेंसिल, सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, व्यवहार भानु आदि पुस्तकें साथ लावें ।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि न एन पी 17504/58 हिसार (पुस्तकालय)

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष ☎ 292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

सृष्टि सवत 1960853102, 25-26 मार्च 2001 दयानन्दाब्द 178

नव संवत्सर नव वर्ष मंगलमय हो

चैत्र सुदी प्रतिपदा सं. 2058, 26 मार्च सोमवार 2001

आर्य समाज के पावन स्थापना दिवस तथा नव पर्व विक्रमी नव वर्ष सम्वत् 2058 सृष्टि सम्वत् 1960853102 दयानन्दाब्द 178 के शुभारम्भ पर

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर

की ओर से

हम सम्पूर्ण आर्य जगत के सभी आर्य बहनो तथा भाईयो को हार्दिक शुभकामनाए भेट करते हुए नव वर्ष की बधाई प्रदान करते है और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि सवत्सर 2058 सब के लिए निरोगता, स्वस्थ, सभी प्रकार की स्मृद्धि और [illegible] प्रदान करने वाला हो ।

हरबंस लाल शर्मा सभा प्रधान	**डॉ. के.के. पसरीचा** सभा वरिष्ठ उपप्रधान व कार्यकर्त्ता प्रधान	**ऋषिपाल सिह एडवोकेट** सभा उप प्रधान	**हरवश लाल सेठी एडवोकेट** सभा उप प्रधान
सुदर्शन शर्मा सभा उप प्रधान	**धर्मपाल सहगल एडवोकेट** सभा उप प्रधान	**स्वतन्त्र कुमार** सभा उप प्रधान	**आशानन्द आर्य** सभा उप प्रधान
सुरेन्द्रनाथ मुरगई सभा महामन्त्री	**आनन्द किशोर पसरीचा** सभा वरिष्ठ मन्त्री	**मुलखराज आर्य** सभा मन्त्री	**प्रेम भाटिया** सभा मन्त्री
जगदीश अग्रवाल सभा मन्त्री	**सर्वजीत शर्मा, एडवोकेट** सभा मन्त्री	**ओ पी टण्डन** सभा मन्त्री	**राजेश शर्मा** सभा मन्त्री
प्रेम भारद्वाज सभा कोषाध्यक्ष	**रामरत्न महाजन** अधिष्ठाता साहित्य विभाग	**देवेन्द्र नाथ शर्मा** प्रस्तोता रजिस्ट्रार	**करतारनाथ आर्य** अधिष्ठाता आर्य वीर दल

जनकराज महाजन
अधिष्ठाता वेदप्रचार

अन्तरग सदस्य, देशबन्धु चोपड़ा, भीमसेन नारायण दत्त, वेद प्रकाश, सर्वेश महाजन वासुदेव आर्य पुरुषोत्तम प्रियतम देव, वेदपाल दूदेजा, वेद प्रकाश वेदी, शादी लाल महेन्द्रु, इन्दुमती गौतम, संतोष अम्बा योगेश सूद जवदीप भारद्वाज मनोहर लाल सेठी, तरसेम कुमार आर्य, कुलवन्तराय अग्रवाल, बुद्धराम आर्य, चन्द्र किशोर आर्य मनोज आर्य सुधीर कुमार शर्मा अशोक पुरुथी एडवोकेट, जगदीश,सी एल. मामकण्डा, सुभाष मित्तल, नरेश कुमार शर्मा, राजीव मुरगई अशोक आर्य स्वर्ण मसीन ।

—धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

26 मार्च आर्य समाज स्थापना दिवस के अवसर पर—

आर्य समाज स्थापना का उद्देश्य

□डॉ० महेश जी विद्यालंकार, दिल्ली

महर्षि दयानन्द का स्वप्न और उद्देश्य था-देश-देशान्तरो मे सर्वत्र वेदिक धर्म की पुनर्स्थापना तथा प्रसार-प्रचार हो। वे भारतीयों को स्वत्व स्वधर्म स्वसंस्कृति स्वदेश, स्वभाषा आदि का बोध कराना चाहते थ। वैदिक धर्म की जगह नाना पंथो, सम्प्रदायों, महन्तों गुरुओ आदि ने ल ली थी। वेद ज्ञान विस्मृत हो गया था वेदिक धम को लोग भूल गए थे। ईश्वर की जगह अनेक देवी-दवताओ तथा गुरुओ की पूजा हो रही थी। घोर अज्ञान, पाखण्ड, गुरुडम अन्धविश्वास आदि फैला हुआ था। ऐसी विषम परिस्थितियो मे ऋषि दयानन्द ने समस्त अवैदिक मिथ्या बातो को मिटाने और हटाने के लिए क्रान्तिकारी विचारधारा की ज्वाला प्रज्जवलित की जो आर्य समाज कहलाया। इसलिए आर्य समाज वेचारिक चिन्तन और क्रान्ति है तक-युक्ति पूण वैज्ञानिक सोच एव जीवन पद्धति है।

आर्य समाज ऋषि दयानन्द की विचारधारा सिद्धान्तों, आदर्शो विरासत और वसीयत का उत्तराधिकारी हे। जिन उद्देश्यो आदर्शो की पूर्ति के लिए ऋषि ने अपना सपूर्ण जीवन आहुत कर दिया। जहर पीया पत्थर खाये अपमान सहा सघर्ष किया और सत्य पर शहीद हो गए। उन्ही विचारो मन्तव्यो एव आदर्शो के प्रचार-प्रसार के लिए आर्य समाज सभा सगठन सस्थाएं गुरुकुल डी ए वी आदि बनाये गए थे। सत्य है कि ऋषि द्वारा प्रज्जवलित "ज्ञानदीप" के प्रकाश को सर्वत्र फलाना इन सभी सस्थाओ का परमधर्म है। किन्तु---परन्तु---लेकिन मूल म भूल हो रही है। आर्य समाज की स्थापना के बाद स्वामी जी को बहुत थोडा समय मिला, वे असमय म हमसे विदा हो गए। ऋषि के व्यक्तित्व एव कृतित्व से प्रभावित पागल दीवाने जनून वाले अनुयायियो ने अपना घर बार आग जवानी देकर आर्य समाज को राष्ट्रीय सामाजिक धामिक शक्षणिक आदि क्षेत्रो मे बुलन्दियो पर पहुचा दिया। आर्य समाज क आरम्भिक काल के लोगो मे तप त्याग सेवा साधना आदश ऋषिभक्ति एव बलिदान क उदाहरण पढते और सुनते ह तो हृदय श्रद्धाभक्ति से नत हो उठता है। भाव-विभोर होकर आखें छलकने लगती है। आह! आर्य समाज का अतीत कितना सर्वोत्तम मोहक प्रेरक एव आकषक था। अतीत का जितना भी गुणगान करें थोड़ा है। वतमान पर जितनी चिन्ता और प्रश्नचिन्ह लगायें, उतने थोड़े हैं। आर्य समाज का मुख्य कार्य वेद प्रचार, मानव निर्माण, चरित्र निर्माण और सत्यधर्म प्रचार करना था। वेद ज्ञान जैसा श्रेष्ठ ईश्वरीय ज्ञान और किसी के पास नहीं है। ऋषि जैसा सच्चा मार्ग दर्शक किसके पास नहीं है? आर्य समाज जैसी जीवन्त संस्था कहा हे? फिर भी हमारी यह दीन-हीन दशा? दुनियां की सर्वोत्तम विचारधारा का धनी आर्य समाज है। इतना सीधा सच्चा एवं साल जीवन तथा जगत का चिन्तन किसी के पास नहीं है। इसके पास जीवन को स्वर्ग बनाकर जीने के विचार एवं प्रेरणाएं हैं। सच्चाई तो यह है कि वेद प्रचार आर्य समाज की वसीयत और विरासत है। आर्य समाज एक वाक्य से ही दुनियां में अमर रह सकता है। वह है "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" और कोई नहीं मानता हे। वेद मन्दिर, वेद कथा, वेद सम्मेलन, कोई नही कराता है। प्रात:काल दुनियां के किसी मन्दिर में पवित्र वेदमन्त्रों और विधि विधान युक्त यज्ञ होता नहीं मिलेगा? वेद सबके हैं, सबके लिए हैं, और सबको पढने का अधिकार है और कोई नहीं करता है। नारी वेद पढ सकती हे, पढ़ा सकती है, और यज्ञ की ब्रह्मा बन सकती है, और कोई अधिकार नहीं देता है। ऋषि ने वेदोद्धार के लिए आर्य समाज बनाया था। आज दुनियां में 99 प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिन्होने न वेद देखे हैं, न पढे हैं, न सुने हैं। उन तक वेद ज्ञान पहुंचाना आर्य समाज ने स्थापना पर सकल्प लिया था। तभी नारा दिया था-वेद की ज्योति जलती रहे? ज्योति जलने के लिए तेल और बत्ती की जरुरत होती है। आज तेल और बत्ती की तलाश है।

"स्थापना दिवस" प्रतिवर्ष हमे जगाने और सभालने आता है। क्या खोया? क्या पाया? कहां के लिए चले थे? कहां पहुंच रहे हैं? वर्तमान आर्य समाज की त्रासदी एवं विडम्बना यह हे कि जो होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। जो नही होना चाहिए वह हो रहा है। जिन बातों का ऋषि ने निषेध किया था, वही अधिकांश में हो रही हैं। आम सभा संगठन, सस्थाओं आदि की मीटिंगों में वेद प्रचार, मिशन, ऋषि सिद्धान्त, आर्य समाज के प्रचार-प्रसार आदि की किसी को पीड़ा चिन्ता व बेचैनी नहीं होती? व्यर्थ के स्वार्थ विवाद और झगड़ों में समय, शक्ति व धन व्यय हो रहा है। ऋषि ने एक स्थान पर कहा था-"यदि आर्य समाज अपने उद्देश्य को लेकर नहीं चला, तो वह भी एक सम्प्रदाय बन कर रह जाएगा और सब गड़बड़ हो जाएगा", सत्य में यही हो रहा है। आज योग्य विद्वान्, वक्ता, पुरोहित, सन्यासी, प्रचारक आदि बड़ी तेजी से घट रहे हैं? संस्थाओं, सभाओं संगठनों आदि को संभलने वाले दयानन्दी लोग नजर नहीं आते। आर्य समाज में भ्रष्टाचार अपनी पकड़ मजबूत कर गया है। इन बातों की किसी को परेशानी व चिन्ता नहीं हो रही है? अतीत के सहारे आर्य समाज कब तक खड़ा रह सकेगा? वर्तमान से भविष्य बनता है। वर्तमान में कहीं से किसी प्रेरणा, आदर्श, त्याग बलिदान सेवा आदि की सुगन्ध नहीं मिलती है। सबने अपने आश्रम, संस्था तथा संगठन बना लिए हैं। इससे धन बल और जनबल दोनों बंट रहे हैं? सभी अपने-अपने आश्रमों एव संस्थाओं के रास्ते बता रहे हैं। आर्य समाज और दयानन्द का कोई रास्ता नहीं दिखा रहा है? कहां रहेगा आर्य समाज? कैसे बचेगा?

समाज मन्दिर को स्कूल, बारात घर, औषधालय और प्रेम विवाह आदि केन्द्र बना रहे हैं। असली काम छूट गया। समाज मन्दिरो में वेदाध्ययनशाला कोई नहीं खोल रहा है। वेद प्रचार घाटे का सौदा है। कोई नहीं करना चाह रहा है। इससे जनता से संपर्क कट गया है। स्कूलो व दुकानो से आमदनी आनी शुभ हुई। एफ.डी बनी। झगडे आरम्भ हुए। पहले व्यक्ति धर्म प्रचार, दान, चन्दे आदि के पैसे को अपने स्वार्थहित प्रयोग करते डरता था। अब धड़ल्ले से वेद प्रचार के पैसों को खा पीकर बराबर किया जा रहा है। यह हमारे नैतिक पतन का प्रमाण है। जो आर्य समाज गर्व से दूसरों की शुद्धि करता था, आज उसे सबसे पहले अपनी शुद्धि की जरूरत हो रही है। दुनिया यह देखती है कि व्यक्ति करता क्या है? आज हमारी करनी और कथनी में विरोधाभास आ गया है। इसीलिए जनता हमसे प्रभावित नहीं हो पा रही है। पब्लिक स्कूल खोलने का उद्देश्य रहा कि स्कूलों के माध्यम से बच्चो और अध्यापकों में वैदिक विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार होगा। मगर पब्लिक रह गई, स्कूल-स्कूल रह गए। वे स्कूल हमारे किस काम के हैं, जहा वैदिक विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार नहीं है। जहां बच्चे और अध्यापक आर्य समाज जी नहीं बन रहे हैं।

आर्य समाज के पास व्यक्ति निर्माण और चरित्र निर्माण का जीवन दर्शन है निराश, हताश व पतित व्यक्ति को भी इस चिन्तन में ऊपर उठने का सन्देश व आशा की किरण है। चरित्र निर्माण आर्य समाज का आकर्षण था। इतिहास साक्षी है। यहां दुर्व्यसनी भोगी विलासी मुंशीराम से श्रद्धानन्द और डाकू से सन्त बनाए गए हैं। न जाने कितने लालाओं को महात्मा बनाया गया है। न जाने कितने अमीचन्दों को हीरा बना दिया गया है। न जाने कितने मुरदा आस्तिक बनकर, आर्य समाज के दीवाने होकर, अपना जीवन सफल कर गए। आर्य समाज का अतीत तो प्रेरणाओं और प्रेरक सन्देशों से भरा पड़ा है दुःख है कि कोई अतीत से सीख व आदर्श नहीं ले पा रहा है।

सच्चाई और ईमानदारी से यदि ऋषि दयानन्द और आर्य समाज को पल्लवित, पुष्पित एवं सुगन्धित देखना चाहते हैं तो हम सबको आर्य समाज की स्थापना के मूलोद्देश्यों को हृदयङ्गम करना होगा। ऋषि के बताए मूल मन्त्र "कृण्वन्तो स्वयं आर्य्यम्" को अपनाना होगा। पहले स्वयं आर्य बने। पहले स्वय सुधरें, फिर दूसरों का सुधार करें। हम खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, आदि से आर्य बनें और दिखाई भी दें। आचार संहिता को कठोरता से पालन करना होगा। चुनावी हथकण्डों और दगल से आर्य समाज को बचाने की शीघ्र आवश्यकता है। बड़ी तेजी से जीवन मूल्यों का क्षरण हुआ है। कठोरता और दृढता से यह नियम लागू करना होगा। एक व्यक्ति, एक पद, अधिक से अधिक तीन साल, उसके बाद स्वयं हट जाए नहीं तो जनता ईमानदारी से हटा दे तभी आर्य समाज बच सकता है। जो वर्तमान मे सर्वत्र स्थिति बन रही है। सभी परिचित हैं। कब्र मे पैर हैं। चला जाता नहीं दिखाई देता नहीं बोला भी नहीं जाता, फिर भी कई-कई पदों के लिए बैठे हैं बड़े-बड़े सन्यासी भी दंगल में हैं। इन सबके पीछे कारण है कि आज हमारे जीवनों मे धार्मिकता और आध्यात्मिकता नहीं है। यदि होती तो झगड़े विवाद, पद लोलुपता आदि नहीं होती।

संक्षेप में यही निवेदन है कि आर्यो! उठो! जागो! अपने को संभालो। अभी भी समय है। दुनिया हमारी ओर देख रही है। मूल को पकड़े। आर्य समाज हमारी मां है। मां की दुर्गति मत करो। मा के साथ व्यापार मत करो। मां को बेचो नहीं? उस मां ने हमें जीवन दिया है। जीवन दृष्टि और विचार दिए है। हम भाग्यशाली हैं हमें ऋषि दयानन्द जैसा मार्गदर्शक मिला है। स्थापना दिवस प्रेरित कर रहा है। कुछ करो। कुछ बनो। व्रत व संकल्प पर्व है। स्वार्थ को छोड़ना है, परमार्थ को पकड़ना है। सेवा और त्याग को ही आगे रखना है। मिशन के लिए कुछ करना है। उठते, बैठते, जागते एक ही भाव रखना है इदं आर्य समाजाय, इदं न मम, तभी आर्य समाज स्थापना दिवस सफल एवं सार्थक होगा।

सम्पादकीय.....

गुरुकुल कांगड़ी के चांसलर बने सभा प्रधान पं. हरबंस लाल जी शर्मा

आर्य जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के यशस्वी प्रधान प हरबस लाल जी शर्मा को गुरुकुल कागडी विश्व विद्यालय हरिद्वार का कुलाधिपति (चासलर) सर्व सम्मति से 19 3 2001 को चुन लिया गया है ।

जैसा कि आर्य जनता को पता है कि 17 12 2000 को आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का त्रिवार्षिक चुनाव सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर मे सम्पन्न हुआ था जिसमें पजाब की सभी आर्य समाजों के प्रतिनिधियो ने सर्वसम्मति से श्री प हरबस लाल जी शर्मा को आगामी तीन वर्ष के लिए सभा का प्रधान चुन लिया था और इस पर आए हुए सभी सदस्यों न पण्डित जी का भव्य सम्मान किया था। सारी आर्य जनता को पता है कि बड हर्षोल्लास के साथ यह चुनाव विधिवत सम्पन्न हुआ था ।

इसके पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का जो विवाद पिछले कुछ समय स चला आ रहा था वह समाप्त हो गया था। क्योंकि यह निर्वाचन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के पर्यवेक्षक प्रा सत्यवीर जी शास्त्री के पयवक्षण मे और आर्य जगत के प्रसिद्ध सन्यासी पूज्य स्वामी इन्द्रवेश जी की अध्यक्षता मे हुआ था। इसके पश्चात् पजाब में कोई विवाद शष नहीं रहा था परन्तु फिर भी अश्विनी कुमार शर्मा और उनके चन्दक साथियो ने आय प्रतिनिधि सभा पजाब के विरुद्ध अपनी कायवाहिया समाप्त नहीं कीं । वह कुछ न कुछ सभा का हानि पहुचाने का प्रयास करत रहते हैं और आर्य जनता को गुमराह करते रहत हैं। गत दिनों इन्होने सार्वदेशिक सभा क यशस्वी प्रधान पूज्य स्वामी ओमानन्द जी क विरुद्ध भी कई प्रकार की अनर्गल बाते की हैं परन्तु अब सभा लाग श्री अश्विनी कुमार शर्मा और श्री सरदारी लाल को अच्छी प्रकार जान गए हैं । अब इन से कोई भ्रमित नहीं होता ।

जैसा कि आर्य जनता को पता है कि 17 2 2001 को सार्वदेशिक सभा की अन्तरग सभा ने एक प्रस्ताव पारित करके सभा के 17 12 2000 के त्रिवार्षिक चुनाव को मान्यता प्रदान कर दी है और अब सारी स्थिति स्पष्ट रूप से आय जनता के सामने आ गइ है ।

अब गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय हरिद्वार के कुलाधिपति का निर्वाचन होना था । यह निर्वाचन पूर्व निश्चयानुसार आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब आय प्रतिनिधि सभा हरियाणा और आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के तीनो प्रधान मिल कर करते हैं । 19 3 2001 को कुलाधिपति क निवाचन क लिए आर्य समाज 15 हनुमान रोड नई दिल्ली मे एक नियमानुसार बैठक बुलाई गइ था। जिसम हरियाणा सभा के प्रधान पूज्य स्वामी ओमानन्द जी दिल्ली सभा क प्रधान श्री वेदव्रत शर्मा और पजाब सभा के प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा सम्मलित हुए। इसमे सर्वसम्मति श्री प हरबस लाल जी शर्मा को गुरुकुल कागडी विश्व विद्यालय का कुलाधिपति (चासलर) चुन लिया गया। इस अवसर पर पजाब से दिल्ली पहुचे सभा उप प्रधान श्री प्रि स्वतन्त्र कुमार जी उप प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा रजिस्ट्रार श्री दवेन्द्र नाथ शर्मा श्री सुधार शर्मा अन्तरग सदस्य तथा एडवोकट मेनन श्री विशिष्ट जी तथा अन्य उनक साथी बरनाला से तथा श्री रुपिन्द्र लाल अशोक गुप्ता एडवोकट श्री ज्ञान मित्रसूद श्री अश्विनी कुमार शमा सुपुत्र श्री वैद्य तीर्थ राम श्री सत्यदव सूद मोगा श्री अशोक नन्दा जालन्धर खुशी से उछल पडे और सभा न पण्डित हरबस लाल जी का भव्य स्वागत किया ।

इस अवसर पर हरियाणा सभा तथा दिल्ली सभा स भी कई महानुभाव वहा पहुच हुए थ। इन सभी ने भी पण्डित जी का स्वागत किया व सम्मान किया ओर पूज्य स्वामी ओमानन्द जी ने भी अपना आशीवाद दिया

पिछले लगभग 15 20 वर्ष के पश्चात् यह पहला अवसर है जबकि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान का गुरुकुल कागडी विश्व विद्यालय का कुलाधिपति (चासलर) चुना गया ह ।

यह पजाब सभा की एक बहुत बडी विजय है और पजाब के लिए गौरव की बात है कि पजाब सभा के प्रधान को यह मान मिला है।

इस समाचार से सारे पजाब स हमे और पण्डित जी को निरन्तर दो दिन से बधाई के टेलीफान आ रहे हैं । इसक लिए मैं उन सभा महानुभावों का अपनी ओर से तथा प हरबस लाल जी शर्मा का ओर से धन्यवाद करता हू ।

–के के पसरीचा सभा कार्यकर्त्ता प्रधान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित आर्य समाजों तथा शिक्षा सस्थाओ के अधिकारी महानुभावो की सेवा मे

जैसा कि आप को पूर्व सूचना मिल चुकी है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के 17–12 2000 के निर्वाचन का सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली द्वारा विधिवत् मान्यता मिल चुकी है ओर यही सभा नियमित रूपेण अपना कार्य गुरुदत्त भवन किशनपुरा चोक मे कर रही है। आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब केवल एक ही हे ओर उस सभा के प्रधान पडित हरबस लाल जी शर्मा एव कार्यकत्ता प्रधान डा क के पसरीचा हैं । विभिन्न पत्रो द्वारा श्री अश्विनी कुमार शमा एडवाकेट जालन्धर जो कई घोटाला मे सलिप्त हैं ओर सभा म हुए बडे बडे घोटाला की इनके विरुद्ध जाच चल रहा हे मरा शिकायत पर उनके विरुद्ध F I R रजिस्टर्ड हुई है ओर उन्हे जेल जान स बचन के लिए उच्च न्यायालय की शरण मे जाना पडा । इसलिए वह अपना रक्षा के लिए विभिन्न योजनाए बनाते रहत हैं । उन योजनाओ म एक योजना यह भी है कि पजाब की विभिन्न आर्य समाजो मे तथा शिक्षण सस्थाओ में यह प्रचार किया जा रहा है कि उन्होने 24 12 2000 को आर्य प्रतिनिधि सभा का कोई तथाकथित निवाचन करवाया था । जो कि बिल्कुल असत्य एव शत प्रतिशत झूठ है । उन्होने 17 12 2000 के सभा के निर्वाचन को रुकवाने के लिए अदालत से स्ट नेन का प्रयत्न किया यहा उन्हे सफलता नहीं मिली फिर उन्होने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि से निर्वाचन रुकवाने का कोशिश की यहा भी व असफल रहे फिर 24 12 2000 का इधर उधर से कुछ एक लोगो को एकत्रित करके तथाकथित निर्वाचन करने का ढोंग किया अब वह यह गलत प्रचार कर रहे हैं कि उनकी सभा का रजिस्ट्रार आफ फर्मज एड सोसायटीज चण्डीगढ द्वारा मान्यता मिल चुका है यह बिल्कुल झूठ है। उन्हें कोई मान्यता प्राप्त नहीं हुइ ह इन्होन कवल प्राथना की है और यह इनके पत्रो का केवल प्राप्ति रसीद ह । इन्होन जो तथाकथित अन्तरग की सूचा बनाइ हे उनमे स बहुत स महानुभावो न हम लिखित रूप से दिया हे कि उनका श्री सरदारी लाल तथा अश्विनी कुमार शमा ग्रुप के साथ काइ सम्बन्ध नहीं है।

इसलिए आप सबके ध्यानार्थ पुन लिखा जा रहा ह कि आप ऐसे लोगो क झूठे प्रचार से किसी भी भ्रान्ति म न आय आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब गुरुदत्त भवन चोक किशनपुरा जालन्धर प हरबस लाल शर्मा सभा प्रधान की अगुवाई मे दिन प्रतिदिन प्रगति के पथ पर अग्रसर हे। सभी शिक्षण सस्थाए उनकी अगुवाइ म कायरत ह आपकी सूचना क लिए पुन लिखा जा रहा हे कि आप उन्हा आदेश पत्रो का मान जिन पर सभा प्रधान प हरबस लाल शर्मा कायकर्त्ता प्रधान डा क के पसरीचा महामन्त्री श्री सुरेन्द्र नाथ मुरगई रजिस्ट्रार श्री दवेन्द्र नाथ शर्मा के हस्ताक्षर हो

–सुरेन्द्र नाथ मुरगई सभा महामन्त्री

दहेज प्रथा एक अभिशाप है

❒ श्री असीम वेदालंकार, गुरुकुल करतारपुर

हमारे देश मे अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियां हैं । जिनके कारण समाज की नींव हिल रही है। भारत का सामाजिक ढांचा बिल्कुल कमजोर होता जा रहा है । उन कुरीतियो मे से दहेज भी एक कुरीति है । केवल कुरीति ही नहीं अपितु यह समाज के लिए अभिशाप है, कलंक है परन्तु क्या इस कलक को मिटाना हम सबका कर्त्तव्य नहीं है। क्या इस कलंक से भारत की बेटियो की रक्षा करना हम सबका कर्त्तव्य नहीं है।

ध्यान रखियेगा दुनिया मे ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका समाधान न हो, दुनिया मे ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसकी जंजीर से मुक्त न हो सके । आपको मालूम होना चाहिए । दहेज एक दानव है । दहेज शब्द से हमे कुछ पता नहीं चलता है परन्तु थोड़ी देर इस पर विचार करे । दहेज प्रथा के विषय मे एक दो घटनाए अपने मन मे सोचें तो ऐसा ही प्रतीत होगा जैसे एक दानव समाज तोडने के लिए हमारी ओर आ रहा है । जब समाज टूट जाएगा तो हमारा देश भी टूट जाएगा । जैसे प्रलय के समय शिव ताण्डव नृत्य करने लगते हैं, वहीं ताण्डव नृत्य दहेज प्रथा रूपी दानव कर रहा है।

क्योंकि दहेज के कारण ही युवतियो को कठोर यातनाएं सहन करनी पडती हैं। दहेज के कारण ही नारियो को अपमान सहन करना पड़ता है । वास्तव मे दहेज का अर्थ है-दहनार्थ एजयति इति दहेज: अर्थात्-अग्नि मे जलाने के लिए तो प्रेरणा दी जाती है उसे दहजे कहा जाता है । यह वाक्य सार्थक है क्योकि दहेज के कारण ही नारी को आत्म हत्या करनी पडती है। हम प्राय: समाचार पत्रो मे पढते हैं-अमुक शहर मे नवविवाहिता कन्या ने अपने शरीर में मिट्टी का तेल छिडककर आग लगा ली । हम समाचारो मे देखते हैं-दहेज पूरा न करने के कारण वधू को यातना दी गई थी जिनसे तग आकर अन्त मे उसने आत्म-हत्या कर ली ।

आपको मालूम होना चाहिए हमारा देश एक प्रकार से अमीर है और गरीब भी है । मै उन अमीर व्यक्तियो की बात नहीं कर रहा हू । जो बगला बनाकर आराम का जीवन बीता रहे हैं । मैं उनकी बात नहीं कर रहा हू जो आराम से कार मे बैठकर घूमते हैं । मैं उनकी बात नहीं कर रहा हू जो मन मर्जि का भोजन करके आराम का जीवन बिता रहे हैं । मैं बात कर रहा हू उन गरीबों की जिनको दोनों समय रोटी नहीं मिलती । मैं बात कर रहा हू उनकी जिनके तन पर वस्त्र नहीं होता है । आपको ध्यान होना चाहिए-मध्य प्रदेश के जंगली क्षेत्रो जहां मां और बेटी के बीच एक ही कपडा होता है । जब मा उस कपडे को पहनकर काम करने जाती है, तो बेटी घर मे तन छुपाती है । दूसरे समय बेटी उस कपडे को पहनकर काम करने जाती है तो मां को तन छुपाना पड़ता है ।

ऐसी गरीबी हमारे देश मे है । ऐसी स्थिति मे मां अपनी बेटी की शादी के लिए दहेज कहा से इकट्ठा करेगी । ऐसी स्थिति में अगर मां बेटी की शादी न करा सकी तो उसकी जिन्दगी का क्या होगा । हमे यह विचारना होगा हमे ताण्डव नृत्य करता हुआ दहेज प्रथा रूपी दानव का अन्त करना होगा । इसके लिए कदम उठाना होगा ।

दहेज दानव को रोकने के लिए नेता लोग बडी-बड़ी बात करते हैं, सगठन बनाने की बाते करते हैं फिर भी दहेज दानव का अन्त नहीं हो पा रहा है ।

क्या आपने कभी इसके कारणों को जानने का प्रयत्न किया है ? आपको मालूम होना चाहिए जो नेताओ ने मंच पर दहेज के विषय में बडी-बडी बाते करते है, वे अपने बेटों की शादी में दहेज लिया करते हैं वे लोग सकल्प मे सन्तुष्ट नहीं होते उनको दहेज में मोटी रकम चाहिए। दहेज न मिलने पर विवाह के शुभ अवसर के बीच मे ही रोक कर लड़की के भाग्य पर पानी फेरा जाता है ।

रवींद्र नाथ ठाकुर ने एक नाटक लिखा है-एक गरीब पिता अपनी बेटी का विवाह एक जमीदार के लडके से करना चाहता था परन्तु जमींदार ने उससे दहेज के रूप मे 10 हजार रुपए मांगे । एक गरीब व्यक्ति भी बेटी के मुख के लिए अपनी जान देने को तैयार रहता है। अत: वह अपनी बेटी को एक सुखी परिवार मे ही सौंपना चाहता है । वह विवाह के शुभ दिन उपस्थित हो गया परन्तु दहेज संग्रह न कर सका । पिता ने पांवों में गिरकर शुभ विवाह का कार्य सम्पन्न होते ही दहेज चुका देने का वायदा किया । विवाह का कार्य सम्पन्न हो गया परन्तु एक गरीब इतने रुपए कहा से संग्रह करेगा । जब तक दहेज नहीं मिला उस नवविवाहिता वधू को कठोर यातनाएं दी गई । पिता मिलने के लिए आते तो मिलने नहीं दिया जाता। अन्त में बेटी ने पिता को चिन्ता से मुक्त कराने के लिए आत्महत्या कर ली वास्तव में अगर इस नाटक को टी.वी. पर देखें तो मेरा ख्याल है कि पत्थर का दिल भी रो पड़ेगा। हमारे सामने ऐसी घटनाएं नहीं घटती मात्र सुनते हैं । तभी उसका असर हम पर नहीं पड़ता है पर जब ऐसी घटनाएं पढ़ने को मिलती हैं तो आंखों मे आंसू आ जाते हैं, विचार प्रकट होता है हमें इसके खिलाफ कुछ करना चाहिए ।

मुझे आश्चर्य होने लगता है-आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी ने दहेज का विरोध किया है परन्तु आर्य सभाज के विचारो से ओत-प्रोत विद्वान् भी अपने पुत्रों की शादी में दहेज लेते हैं। अन्य कोई इस बात का पालन करे या न करे, कम से कम आर्य समाज के विद्वानों को तो इस का पालन करना चाहिए ।

जिन्होंने जहर पीकर हमे अमृत पिलाया है जिन्होंने एक माता की भांति सर्दी-गर्मी सहन करके हमारे लिए राह बनाई है । हम उनके नाम पर खा-पीकर अन्त में यही परिचय देते हैं तो हमे धिक्कार है । चाणक्य ने कहा है-"धिक् तान् धिक् तानधिगेताड कथयति कीर्तनस्थो मृदङ्गे" अर्थात् जो अपने स्वार्थ के लिए उदर पूर्ति करते हैं, उन्हे धिक्कार है । जो उदर पूर्ति के लिए दहेज लिया करते हैं उन्हें धिक्कार है अगर इस दानव को आर्य समाज रोकना चाहे तो रोक सकता है परन्तु जल्दी कदम उठाना होगा ।

जिस घर में, समाज मे, राष्ट्र में नारी का सम्मान होता है-वह घर, समाज, राष्ट्र, स्वर्ग बन जाता है और जहां नारी का अपमान होता है-वह घर समाज, राष्ट्र नष्ट हो जाता है। इतिहास पलटकर देख सकते हैं-एक द्रोपदी का अपमान होन से कौरवो का नाश हो गया। एक सीता का अपमान होने से लका नष्ट हो गई । अत: नारी को सम्मान देना चाहिए और दहेज दानव का वध करना चाहिए ।

परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है-शास्त्रों मे नारी का सम्मान करने की बात कही गई है, दयानन्द जी ने भी नारी को ऊंचे उठाने की बात कही है । आज कल के नेता लोग भी नारी को ऊपर उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं फिर भी नारी को दहेज रूपी दानव के कारण यातना सहन करनी पड रही है और आत्म हत्या करनी पड़ रही है। इस प्रकार नारी का अपमान क्यों हो रहा है ?

आपने कभी इस पर विचार किया है ? मैं मानता हूं नेता लोग बडी-बडी बातें करते हैं परन्तु नेता लोग कम से कम 50 प्रतिश वायदा निभाते है। मैं मानता हूं कि आर्य समाज के विद्वान् दहेज लिया करते हैं, परन्तु सभी ऐसे नहीं होते । यहां प्रश्न उठता है-इसके लिए फिर जिम्मेवार कौन है ?

आपको मालूम होना चाहिए-इस दहेज दानव को आश्रय देने वाली स्वय नारी है । क्योकि अधिकांशत: घरो में देखा जाता है-सास और ननद दोनो बहू को अधिक यातनाएं देती हैं । उसे कठोर यातना देकर मार डालती हैं या आत्महत्या करने में मजबूर कर देती हैं अगर ऐसी यातना ननद् और सास सहन करती शायद तो वधू को इस प्रकार दु:ख सहन नहीं करना पडता ।

इस प्रकार समाज में देखा जाता है पुरुषों की अपेक्षा नारी ही दहेज दानव को आश्रय दे रही है । जिस नारी के सम्मान के लिए महर्षियों ने आवाज उठाई, वह नारी स्वयं दु:ख अपमान को बुला रही है ।

जिस दिन नारी अपनी जाति का कष्ट जान लेगी और इसके खिलाफ अर्थात् दहेज के खिलाफ आवाज उठाएगी, उस दिन दहेज दानव को पांव रखने की जगह नहीं मिलेगी तभी दहेज दानव का अन्त होगा तब हमारे समाज, राष्ट्र का कल्याण होगा ।

वैदिक 'कुम्भ-स्नान'

ले. आचार्य आर्य नरेश, वैदिक गवेषक उद्गीथ साधना स्थली हि.प्र.

कुम्भ-ज्ञान संगठन स्वच्छता तथा त्याग का प्रतीक है । वेदादि शास्त्रों के प्रमाण से 'ज्ञान' का वास्तविक अभिप्राय है स्वत: प्रमाण शाश्वत् ईश्वरीय "वैदिक ज्ञान" । जो कि परमात्मा के समान ही नित्य अनादि सर्वहितकारी और त्रुटि रहित है । इसी वेद ज्ञान को पाकर 'आत्मा' इस संसार रूपी पाठशाला से सेवा व साधना के दो पक्षों द्वारा उत्तीर्ण होकर 'मोक्ष' को प्राप्त करता है या फिर संसार रूपी सागर से पार उतरने का यही सच्चा 'तीर्थ' अथवा कुम्भ स्नान है ।

महर्षि देव दयानन्द सरस्वती स्वलिखित क्रान्तिकारी वैदिक संस्कृति के विशिष्ट रक्षक ग्रन्थ-सत्यार्थ प्रकाश के स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं कि 'तीर्थ उसे कहते हैं, जिससे दु:खसागर से पार उतरे कि जो सत्य भाषण, (वेद) विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ (और) विद्यादानादि शुभ कर्म है उसी को तीर्थ समझता हूं । इतर जलस्थलादि को नहीं ।

एक समय था जब कि आर्यावर्त्त के महान योद्धा और विद्वान्जन सच्चे ब्राह्मण 'राष्ट्र' को दु:खों से पार करने हेतु पूरे देश के लोगो को एक स्थान पर एकत्रित करके वैदिक-सत्सग और सत्योग साधना का उपदेश करते थे। ऐसे 'ज्ञान-कुम्भ' मे स्नान करने हेतु देश मे ही नहीं अपितु विदेश से भी लोग सम्मिलित होते थे। ऐसे अवसरों पर बहुत बड़े-बड़े यज्ञो का भी आयोजन किया जाता था। जिससे कि ज्ञान प्राप्ति तथा सत्कर्म सिद्धि की आधार शिला 'वातावरण' की शुद्धि हो सके। इन शुभ अवसरो को ज्ञोड़ के कारण. 'पर्व' तथा ज्ञान का स्नान होने से 'उत्सव' कहा जाता था। उत्-अर्थात् उत्कर्ष हेतु 'उत्कृष्ट' प्रकार का तथा 'सव' का अर्थ स्नान होता है। ज्ञान का उत्कृष्ट स्नान ही वास्तव में मानव को देव बना सकता है । ज्ञानवान व्यक्ति ही अनिष्ट कर्मों 'पापों से बचता वेदानुसार श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान करता इस लोग और परलोक को सुधार सकता है । दु:खों से बचने का यही सच्चा सनातन कुम्भ स्नान है। मुम्बई में होने जा रहे आर्य सम्मेलन को महाकुम्भ कह सकते हैं वहां ऋषि दयानन्द की वैदिक नीति पर चलने का संकल्प करें और समाज के कार्यकर्त्ताओं का सत्कार करें।

जो अनाडी (अनार्य जन) मात्र जल के स्नान के द्वारा ही दु:खो की निवृत्ति और मुक्ति की सिद्धि होना मानते हैं वे वास्तव में सत्य-सनानत वैदिक-धर्म के क,ख,ग को भी नहीं जानते । वैदिक संस्कृति बार-बार यह उपदेश देती है। 'ऋतेज्ञानान् न मुक्ति' अर्थात् ज्ञान के बिना कर्म करने मे मुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि अन्यत्र भी कहा गया है-"अद्‌भिर्गात्राणि शुद्ध्यति मन: सत्येन शुद्धयति" अर्थात् 'जल' से तो केवल बाहर के शरीर के अंङ्गो या चमड़ी अथवा वस्त्रो की ही शुद्धि होती है 'मन' जो कि सब कर्मों का आधार है उसकी शुद्धि तो 'सत्य' से ही सम्भव है और विद्या तथा तप से आत्मा की शुद्धि होती है। 'विद्यातपोभ्या भूतात्मा' पाठ का यही उपदेश है । अत: सनातन शास्त्र भी यह शिक्षा दे रहे हैं कि सच्चे तीर्थ या स्नान अथवा 'महाकुम्भ' जल नहीं अपितु 'ज्ञान' ही है। क्योंकि यदि 'जल' के स्नान से ही संसार सागर से मुक्ति और कष्टो अथवा दु:खो से निवृत्ति होने वाली होती तो मछली कछुआ मगरमच्छ जल मे रहने वाले सर्प तथा जल के समीप रह कर नित्य मछली पकड़ने हेतु जल मे डुबकी मारने वाले मच्छुआरे कभी के मुक्त हो गए होते । यदि नदियो तथा कथित तीर्थो और इन नामलेवा कुम्भो मे ही स्नान करने से भारतवासियों का कुछ कल्याण सम्भव होता तो अब तक सम्पूर्ण भारत स्वर्ग बन् गया होता यहां कही भी देश मे चोरी, सीना जोरी, मिलावटखोरी. रिश्वतखोरी, शराब, मांस, अण्डे व धूम्रपान का गदा वातावरण दिखाई न देता । कोई भी भारत का नागरिक रोगी व भोगी बनकर हस्पतालों या न्यायालयो का चक्कर न काट रहा होता ।

आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस तथा कथित 'महाकुम्भ' को महाकल्याणकारी समझा जा रहा था वहां उसके स्थल पर अनेक सूचना पत्रों पर यह लिखा गया था कि इस 'संगम' के पानी को न पीयें । पीने के लिए टूटी के शुद्ध जल का प्रयोग करें । पाठकवृन्द! इस सूचना से यही सिद्ध होता है कि जो जल अशुद्ध होने से पीने के ही योग्य नहीं वह भला 'मन' को तो कैसे निर्मल कर सकता है ? अत: ऐसा जल अशुद्ध होने से न तो शरीर के लिए और न हीं आत्मा के लिए ही कल्याणकारी है। क्योंकि खान-पान से ही अन्त:करण और उससे ही जीवन की सद्‌गति सम्भव है पर जब अन्त:करण ही अपवित्र हो गया तो फिर 'आत्मा' के कल्याण का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इसलिए उपरोक्त चर्चा से यही सिद्ध होता है कि सच्चा 'महाकुम्भ' जल के स्नान का नाम नहीं अपितु ज्ञान के स्नान का नाम है।

शारीरिक-निरोगता और बौद्धिक सचेतता, ये दोनों ही संसार सागर से पार उतरने के दो प्रमुख साधन हैं पर अत्यन्त दु:ख से लिखना पड रहा है कि इस तथाकथित 'महाकुम्भ' में इन दोनो हो का प्राय: अभाव था। (इलाहाबाद) प्रयाग का वातावरण ठीक इससे विपरीत था। 'प्रयाग' जिसका यौगिक अर्थ भी प्रर्कष, याग = महायज्ञ अर्थात् विशेष महायज्ञ है। वह इन दिनो 'उर्त्कषता' का स्थान न बनकर अपकर्ष का स्थान बन चुका था। चाहिए तो यह था कि वहां प्रत्येक स्थान पर टैटो, शामियानो या झोपडियो अथवा पण्डालो में बैठे लोग 'यज्ञ हवन' करते दिखाई देते पर देखा यह गया है कि वहा स्थान-स्थान पर लोग बिना हिसाब के बीडी-सिगरेट ही नही पी रहे थे अपितु उनकी खपत को पूर्ण करने हेतु स्थानीय 'कुम्भ' सभा या सरकारी तन्त्र ने भारत भर की बर्बादी के प्रमुख साधन और पर्यावरण के विनाश के प्रमुख भागीदार बीडी-सिगरेट की कम्पनियो को बडे-बडे 'स्टाल' आवटित किए हुए थे। क्या धूम्रपान करने वाले अशुद्ध तन और धूम्रपान के धूंए से ठसा-ठस पूर्ण अशुद्ध वातावरण कभी मुक्ति सिद्धि या भक्ति का स्थान हो सकता है ? यदि नहीं तो फिर हमे यही कहना चाहिए कि वर्तमान के ये ज्ञान और शुद्ध वातावरण के बिना तथाकथित 'कुम्भ' दुखो से मुक्ति नहीं अपितु दुखो से बाधने के ही मुख्य स्थल हैं ।

यदि किसी को सच्ची मुक्ति शान्ति और धर्ममार्ग मे प्रवृत्ति करनी है तो उन्हे चाहिए कि वे इन तथा-कथित पाखण्डों से बच कर यज्ञमय वैदिक सत्सग मे स्नान करे । कुछ त्याग करने की ही इच्छा है तो हवन मे आहुति डालकर अण्डा, मास, मछली, शराब, सिग्रेट, बीडी और बुरी आदतो का त्याग करे। कुछ प्रसाद ही ग्रहण करना है तो सयम, ओम् जप, यज्ञ, वेदपाठ और परोपकार का प्रसाद ग्रहण करके जीवन को सार्थक बनाएं । यदि ऐसे अवसरो पर देश भर के विद्वान् या महात्मा पुरुष स्थान-स्थान पर यज्ञ हवन व वेदकथा करने का कार्य करे तो यह कुम्भ वास्तव मे वैदिक कुम्भ बन कर सब को जीवन देने वाले बने। तथा महा यज्ञो की पूर्ण-आहुति हवन कुण्डो पर रखे गए मटको को औषधालय पावन जलो से स्नान करके 'महाकुम्भ' स्नान को भी चरितार्थ करे।

अत: सच्चा कुम्भ स्नान वहां है जहां विशाल जन-समुदाय भारत की प्राचीन आर्य सस्कृति के प्रति श्रद्धा रखता हुआ वेद की ज्ञान धाराओ से स्नान करता परस्पर एक दूसरे की सेवा व सत्कार करता, अपनी पवित्र सम्पदा द्वारा खरीदी गई, धृत सामग्री से हवन करता, ध्यान योग से परमात्मा के आनन्द मे डुबकी लगाता हुआ ऐसे महान "ज्ञान यज्ञो" से देश धर्म व असहायो तथा 'गौ' आदि प्राणियो की रक्षा करने का व्रत लेकर जाता है। अर्थात् ऐसे वैदिक महाकुम्भ स्नान से सम्पूर्ण राष्ट्र ही शुद्ध पवित्र तथा शान्त वातावरण को प्राप्त करता है।

चण्डीगढ़ में महोत्सव

आर्य समाज सै 9 सी चण्डीगढ़ मे दिनांक 26-3-2001 से 1-4-2001 तक आर्य समाज स्थापना दिवस व राम नवमी पर्व मनाया जा रहा है जिसमें स्वामी विश्वानन्द जी के उपदेश व श्री जगत वर्मा भजनोपदेशक के भजन होगे । —सावित्री सेठी, प्रधाना

युग पुरुष महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

❒ श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक अध्यक्ष-वैदिक संस्थान नजीबाबाद (उ.प्र.)

सायंकाल का समय था और दीप मालिका का दिवस-लगभग साढे पाच बजे थे उस समय प्रत्येक घर दीपकों से जगमगाने लगा था। उधर अजमेर स्थित राजा साहिब भिनाय की कोठी में एक महान दीप-ऐसा महान, जिसने सहस्त्रों शताब्दियों से बुझे हुए ज्ञान दीप वेद-ज्ञान को अपनी सम्पूर्ण योग्यता और सामर्थ्य से भूमण्डल मे प्रकाशित कर दिया था, निर्दयी काल के प्रबल झोंके से बुझ रहा था। बुझा तो वह दीप किन्तु ससार को ज्योति प्रदान कर-वह ज्योति जो न केवल युग-युग तक अपितु प्रबल काल तक अपनी प्रखर रश्मियों से सम्पूर्ण विश्व को, विश्व ब्रह्माण्ड और विश्व मानवता को न केवल प्रकाश प्रदान करती रहेगी अपितु देदीप्यमान बनाये रखेगी।

ससार के सभी झन्झावात-केवल मोह माया के अपितु मत-मतान्तरों के भी उसे बुझाने दौडे, परन्तु वह अडिग, निश्चल और अटल हिमालय की भांति खडा रखा और खडा रह कर विश्व मानवता के हित में उक्त ज्योति की प्रखर और जाज्वल्यमान उद्दीप्त रश्मिया बिखेरता रहा। प्रत्येक पग पर उस तप: पूत ने यह प्रमाणित किया कि-

निन्दन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः तमाविशतु गच्छतु वा येष्टम्॥
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायपथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ (भर्तृहरि शतक)

नीति निपुण लोग निन्दा करे अथवा स्तुति, लक्ष्मी (धन) आये या जाये, चाहे आज ही मृत्यु हो जाए युगों के पश्चात, किन्तु धैर्यवान लोग न्याय के पथ से विचलित नहीं होते ।

इस युग-पुरुष महान तपस्वी वैदिक ऋषि को हम युग-प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से स्मरण करते हैं । न केवल आज ही स्मरण करते है अपितु "यावच्चन्द्रदिवा करौ" जब तक चन्द्रमा और सूर्य आकाश में स्थित हे-प्रबुद्ध जन सर्वदा उनके नाम पर श्रद्धावसेत होकर शिर को झुकाते रहेगे।

इतिहास के पृष्ठों में जहा तक दृष्टि जाती है, महर्षि दयानन्द हमें प्रथम महापुरुष दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्होंने यह घोषणा की कि "जो पदार्थ जैसा हो उनको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है" यह घोषणा उन्होंने पूर्वाग्रह रहित होकर की । सत्य को स्वीकार करने तथा किसी भी विषय में पक्षपाती न होने की उनकी मनोवृत्ति का भी उनकी इस घोषणा से परिचय मिलता है । अपनी इस पक्षपात रहित मनोवृत्ति का परिचय उन्होंने आर्य समाज की स्थापना करते हुए उसके चौथे नियम की यह भाषा बनाकर प्रकट कर दिया कि "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।" सत्याग्रही उसी व्यक्ति को कहा जाना चाहिए, जो सत्य के लिए आग्रह करे, जो अपनी मनमानी बात चाहे वह कितनी भी असत्य तथा सर्वथा अन्याययुक्त क्यों न हों-----मनवाने के लिए अड़ा रहे, वह तो दुराग्रही ही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्पूर्ण जीवन का आद्योपान्त और उनके ग्रन्थों का भी अध्ययन करने के उपरान्त हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं और पूर्ण दायित्व के साथ कह सकते हैं कि दुराग्रह तो उन्हें छू भी नहीं गया था। अपने और पराये का भेदभाव उनके में था ही नहीं। पक्षपात उनके विचारों और जीवन में लेश मात्र, नाममात्र को भी नहीं था।

इन सब का कारण यदि खोजा जाय तो इसके अतिरिक्त दूसरा नहीं मिलेगा कि उन्होंने वेदों का न केवल अध्ययन ही किया था अपितु गहन अध्ययन किया था। वेद को संसार के किसी माप-दण्ड, किसी भी विद्वान् के दृष्टिकोण से नहीं अपितु वेद के ही मापदण्ड और वेद क ही दृष्टिकोण से समझा था। वर्तमान युग के वेदवेत्ता कहलाने वालों में महर्षि दयानन्द की यही विशेषता है, यही उनका ऋषित्व है और इसके कारण यह घोषणा करने में समर्थ हो सके कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" और क्योंकि उन्होंने वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक समझा और घोषित किया एतदर्थमेव "वेद का पढना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परधर्म बताया। इससे कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इन्कार नहीं करेगा और जो "सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" ससार का कोई भी आर्य-पुरुष, कोई भी श्रेष्ठ व्यक्ति उस पुस्तक के पढने-बढाने और सुनने-सुनाने को परम धर्म, सर्वोच्च कर्त्तव्य मानने में हिचकिचा नहीं सकता।

ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया "ऋषि" स यो मनुर्हितः अर्थात-ऋषि वही होता है, जो मनुष्य मात्र का हितकारी होता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती मनुष्य मात्र के हितकारी थे, इस बात से केवल वही व्यक्ति नकार कर सकता है, जो किसी प्रकार के पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो। इससे बढ़कर महर्षि की मनुष्य मात्र की हितकारिणी प्रकृति का और क्या परिचय दिया जा सकता है कि उन्होंने अपने द्वारा संस्थापित संस्था आर्य समाज का एक नियम ही यह बना किया कि "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।" संसार में प्रत्येक व्यक्ति का उपकार निहित है ही ।

तथ्य यह है कि ऋषिवर देव दयानन्द की मनुष्य मात्र की हितकारिणी वृत्ति का कारण भी उनका गहन वेदाध्यन ही है। वेद में क्योंकि किसी वर्ग, किसी क्षेत्र आदि का वर्णन नहीं है। हमारा अभिप्राय यह है कि वेद न तो पक्षपात युक्त ग्रन्थ है तथा न देश या जाति विशेष के लिए अपितु वेद तो मनुष्य मात्र के लिए है, सार्वभौम है और सार्वकालिक है तथा मतमतान्तर के आग्रह से रहित है। वेद मनुष्य को न तो मुसलमान बनाना चाहता है, न हिन्दू, न फारसी, न जैन, न बौद्ध, न ईसाई और न मुसाई। वेद तो मनुष्य को मनुष्य देखना चाहता है। और मनुष्यता ही संसार में सर्वजनीन सत्य है । वेद तो स्पष्ट शब्दों में "मनुर्भव" मनुष्य बनाने का निर्देश करता है।

वह जो मनुष्य बनाने का सन्देश है, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस को वेद से प्राप्त किया और यही सूत्र लेकर संसार के उपकारार्थ आर्य समाज की स्थापना की तथा स्व-जीवन को भी इसी कार्य में होम दिया। जीवन भर वेद ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया और अपने उत्तराधिकारी के रूप में आर्य समाज को वेद-आलोक प्रसार का दायित्व समर्पित कर दीपावली की सायंकाल को धीरे-धीरे टिमटिमाते दीपकों के प्रकाश में आधुनिक युग का प्रवर्तक और युग पुरुष संसार से विदा हो गया। महाकवि नाथूराम शर्मा "शंकर" के शब्दों में---

शंकर दिया बुझाय दिवाली को देह का।
कैवल्य के विशाल वल्य में मिला गया॥

अनेक दीप जलाये उस युग पुरुष ने अपनी घोर तपस्या तथा कठोर साधना से। आज यद्यपि समाज में कहीं दिखाई नहीं देता किन्तु संसार का कोई ऐसा तंत्र नहीं, जहां उसकी छाप, उसकी जीवन ज्योति अपनी जाज्वल्यता और देदीप्यता का परिचय न दे रही हो । इत्यलम्।

भठिण्डा में होल्कोसस्येष्टि यज्ञ

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा में होल्कोसस्येष्टि यज्ञ-होली का पावन पर्व 9-3-2001 को हर्षोल्लास के साथ प्रधान श्री बलदेव राज आर्य की अध्यक्षता में मनाया गया । विशेष यज्ञ धर्माचार्य श्री सुनील शास्त्री ने करवाया । यज्ञ के यजमान श्री कृष्ण लाल जटाना ने एक भजन सुनाया, और पुरोहित जी ने होली के वास्तविक स्वरूप का वर्णन किया ।

11-3-2001 रविवार को श्री वीरेन्द्र गोयल भारत नगर भठिण्डा के नव गृह-प्रवेश के अवसर पर बृहद यज्ञ व पारिवारिक सत्संग हुआ जिसमें मा. तरसेम कुमार आर्य (गोनियाना मण्डी) श्री चिरंजीलाल आर्य, श्री बलदेव राज आर्य, श्री कल्प वासुदेव श्री कृष्ण लाल जटाना, तथा आर्य समाज रामां मण्डी, गिदड़वाहा तथा नगर आर्य समाज के आर्य बन्धुओं तथा गणमान्य लोगों ने भाग लिया । यज्ञ श्री पं सुनील कुमार धर्माचार्य ने करवाया।

-कल्पवासुदेव, मन्त्री

पठानकोट रेलवे स्टेशन पर यज्ञ

जिला गुरदासपुर से अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन मुम्बई में 152 महानुभाव रेलवे स्टेशन पठानकोट से महर्षि दयानन्द व आर्य समाज का जयनाद करते हुए रेल में सवार हुए। इससे पूर्व स्टेशन पर यज्ञ किया गया जिसमें स्टेशन मास्टर जो सहित रेलवे गाड़ी के ड्राईवर, गार्ड तथा अन्य बहुत से लोग सम्मिलित हुए । दृश्य देखने वाला था। सारा रेलवे स्टेशन आर्य समाज के रंग में रंग हुआ था। ओ३म् के झण्डों से गाड़ी व स्टेशन सजा हुआ था। -स्वतन्त्र कुमार

श्री वीरेन्द्र कुमार जी आर्य नहीं रहे

आर्य समाज संगरूर के वरिष्ठ सभासद नगर के प्रसिद्ध समाज सेवक श्री वीरेन्द्र कुमार जी आर्य का दिनांक 1-3-2001 को प्रातः 8-45 बजे देहावसान हो गया वह 73 वर्ष के थे । वह कुछ समय से बीमार थे उनके परिवार ने उनकी बहुत सेवा की वह एक नेक इन्सान धार्मिक विद्वान् एव कर्मठ व्यक्ति थे। उनका जीवन बहुत सादा था। वह आर्य समाज संगरूर के कई वर्ष वरिष्ठ उप प्रधान रहे वह दूसरों को भी आर्य समाज के प्रति प्रेरणा देते रहते थे नगर के अन्दर उनका विशेष स्थान था जिसका प्रमाण इस बात से दिया जा सकता है कि वर्ष 1953 मे वह निर्विरोध नगर के एम सी चुने गए थे उनका कई सामाजिक संस्थाओ के साथ सम्बन्ध था उनके निधन से आर्य समाज को व उनके परिवार की बहुत बडी क्षति हुई है इसके इलावा नगर वासियों उनके मित्रो एवं अनेक सामाजिक संस्थाओ की हानि हुई जिसकी भरपाई नहीं हो सकती । श्री वीरेन्द्र जी दैनिक यज्ञ प्रेमी थी जब तक उनकी सेहत ठीक रही वह दैनिक यज्ञ करने के लिए आर्य समाज मन्दिर में जाते रहते थे उनको निम्न भजन बहुत प्यारा लगता था वह स्वयं भी कई बार इसे गाया करते थे।

ईश्वर तुम्हीं दया करो
तुम बिन हमारा कौन है।
दुर्बलता दीनता हरो
तुम बिन हमारा कौन है।

उनकी अंत्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से श्री पं. रामसागर जी शास्त्री एव श्री पं. राजेन्द्र जी आर्य द्वारा वेदमंत्रों द्वारा किया गया इस अवसर पर श्रद्धेय महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी उपस्थित थे महात्मा जी ने इस अवसर पर विशेष प्रवचन दिया अंत्येष्ठि संस्कार में नगर की सभी धार्मिक सामाजिक एवं राजनीतिक सस्थाओं ने भाग लिया सभी उनके गुणो की चर्चा कर रहे थे।

हम आर्य समाज सगरूर की ओर से उस पवित्र आत्मा की शान्ति व सद्‌गति के लिए प्रार्थना करते हैं परम-पिता परमात्मा उनके वियोग से उनके शोक सन्तप्त परिवार को यह असहनीय दुख को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

तू नहीं पर याद तेरी हर किसी के दिल में है ।

बुझ गई कब की शमां पर रोशनी महफिल में है।

4-3-2001 को श्रद्धांजलि सभा में नगर के कई गणमान्य सदस्यों ने उन्हे अपनी श्रद्धांजलि भेट की विशेष रूप से श्री राम शरण आय, श्री राम स्वरूप, श्री जगदीश राय, श्री सुभाष ग्रोवर, श्री राधेश्याम मोहिल, श्री बाल किशन, श्री सोम प्रकाश, श्री नानक चन्द श्री लक्ष्मण दास, श्री देवराज, श्री प राम सागर शास्त्री तथा अन्य बहुत से महानुभावों से उन्हें श्रद्धाजलि अर्पित की। **–राम शरण आर्य**

अलावलपुर में "रेखी हेलर" टच थैरपी फ्री कैंप लगाया गया

आर्य समाज के प्रधान श्री कृष्ण शरण गुप्ता जी अलावलपुर और वैद्य श्री टेकचन्द जी के द्वारा दिनाक 4-3-2001 रविवार को श्रीमद् दयानन्द धर्मार्थ आयुर्वैदिक औषधालय अलावलपुर मे डा बलवीर सिह रेखी हेलर द्वारा कैंप सुबह 9 बजे से 5.30 बजे तक लगाया गया । इस कैंप मे डा बलवीर सिंह रेखी हेलर द्वारा 45 से 69 रोगियो की जांच पड़ताल की गई और इलाज किया गया। मरीजो की सख्या अधिक होने के कारण डा साहिब ने बगैर रोटी, पानी और चाय के लिए मरीजो का इलाज किया। यह कैंप मरीजो से फीस लिए बगैर ही लगाया गया । मरीजो को हर प्रकार की सुविधा प्रदान की गई। इस कैंप मे श्री ज्ञानचन्द अग्रवाल जी जालन्धर से सहयोग के लिए आए । श्री हंसराज कपिला जी, श्री रविदत्त गुप्ता जी, श्री सुरिन्द्र शगारी जी, श्री सुभाष चन्द्र अग्रवाल स्वीट शाप अलावलपुर श्री सुखदेव शास्त्री जी, श्री परमानन्द कक्कड जी और पाखर राम जी जो कि सीनियर सैंकेडरी स्कूल दोलीके दूहडे मे कर्मचारी हैं का भी सहयोग रहा, इस केंप के आयोजन मे आर्य समाज के प्रधान कृष्ण शरण गुप्ता जी ओर वैद्य टेक चन्द जी का पूरा सहयोग रहा।

100 ईसाई परिवार वैदिक धर्म में दीक्षित

आन्ध्रप्रदेश की सीमा से लगा हुआ उडीसा का कोरापुट जिला ईसाईयो से आक्रान्त एव आदिवासी बहुल क्षेत्र है । यहा के भोले-भाले लोगो को ईसाई पादरी जी जान से ईसाई बनाने मे जुटे हुए है । इस विषम परिस्थिति को देखकर गत 3-4 वर्ष से हमने प्रचार एव पुनर्मिलन का कार्य शुरू किया है। श्री स्वामी धर्मानन्द जी की प्रेरणा पर इसी शृखला मे ग्राम कुदली जिला कोरापुट मे गत 23, 24, 25 फरवरी 2001 को यजुर्वेद पारायण महायज्ञ के अवसर पर 100 से अधिक ईसाई परिवारों ने वैदिक धर्म ग्रहण किया। यह वनवासी आर्य महासम्मेलन उत्कल आर्य पतिनिधि सभा के प्रधान श्री स्वामी व्रतानन्द जी की अध्यक्षता मे श्री प विशिकेसन शास्त्री जी ने सम्पन्न कराया । इस अवसर पर स्वामी देवानन्द जी, (हालैण्ड) प हरिबन्धु महापात्र श्री नारायण शास्त्री, श्री प्र गणनाथ जी एव श्री प ब्र विनय कुमार आदि ने भी जनता को सबोधित किया। इस महायज्ञ मे 7,8 हजार लोगो ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भाग लिया। इस कार्यक्रम के आयोजन मे स्थीय विधायक श्री जयराम पागी और सभा के प्रचारक श्री करूणाकर आर्य का सराहनीय प्रयास रहा ।

–स्वामी व्रतानन्द सरस्वती, प्रधान

पार्कलेन लुधियाना में सत्संग

11 मार्च 2001 से नई स्थापित आर्य समाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना की ओर से 25 मार्च 2001 को सायं 5.30 बजे श्री धवन साहिब के घर पर पार्कलेन में तीसरा सत्संग होगा ।

गोनियाना मण्डी में शिवरात्रि पर यज्ञ हवन

शिवरात्रि के उपलक्ष्य मे कैनाल रेस्ट हाऊस गोनियाना मण्डी मे सिचाई विभाग के लोग कर्मचारियो की ओर से यज्ञ हवन कराया गया। यज्ञ हवन श्री तरसेम कुमार आर्य सदस्य अन्तरंग सभा आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब द्वारा सम्पन्न कराया गया। श्री तारा चन्द शर्मा सपत्नीक यजमान के आसन पर विराजमान हुए। सिचाई विभाग के समूह कर्मचारियो के अतिरिक्त उनके सभा परिवार वाले तथा रिश्तेदार भी इस अवसर पर उपस्थित थे। इसके इलावा नगर कौंसल के प्रधान श्री गोबिन्द राय जिंदल तथा अन्य गणमान्य लोग भी बड़ी संख्या मे पधारे। आर्य समाज के प्रधान महाशय चिरंजी लाल जी ने यज्ञ हवन के लाभ बताते हुए सभी कर्मचारियो तथा उनके परिवार वाल्नो को बधाई दी। यज्ञ की समाप्ति पर, खीर पूडी का लगर लगाया गया।

सर्वजीत सिंह, उपमन्त्री

आर्य समाज बंगा द्वारा दसवीं कक्षा में संस्कृत भाषा पढ़ने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहन

दिनाक 5-3-2001 को प्रात: 10 बजे हिन्दू सीनियर सैकेंडरी स्कूल बगा के प्रागण मे दसवी और बारहवीं कक्षा की विदायगी समारोह पिछले वर्षो की भाति श्रेष्ठतम् कर्म "अग्निहोत्र" करके मनाया गया। यज्ञ के ब्रह्मा श्री श्याम लाल आर्य और दोनो कक्षाओ के इन्चार्ज श्री रामदास एम ए बी एड और श्री हरबस लाल तनेजा सेवानिवृत प्रिंसीपल दोआबा सीनिय सैकेण्डरी स्कूल नवाशहर बने। स्कूल के सभी छात्रो और अध्यापक वर्ग ने बडे उत्साह और हर्षाल्लास से यज्ञ मे भाग लिया। पूर्णाहुति के पश्चात श्री शादी लाल महेन्दु प्रधान आर्य समाज बगा, श्री जनकराज महाजन प्रिंसीपल हिन्दू सीनियर सेकेण्डरी स्कूल बंगा और इलाके के प्रसिद्ध समाज सेवी प वीरूराम पाठक पी सी एस ने संस्कृत भाषा और भारतीय सस्कृति पर अपने विचार प्रकट किए जिसका बडा अच्छा प्रभाव रहा। इसके पश्चात् दसवी कक्षा मे सस्कृत पढने वाले 14 (चौदह) छात्रो को एक सौ रुपया प्रति विद्यार्थी के हिसाब से प वीरू राम पाठक ने अपने कर कमलो द्वारा प्रोत्साहन राशि प्रदान की। यह राशि आर्य समाज बंगा द्वारा प्रदान की गई। शान्ति पाठ के पश्चात् सभी विद्यार्थियों को मिठाई बांटी गई। उस आयोजन मे श्री जगदीश लाल आर्य, सदस्य आर्य समाज बगा योगदान विशेष सराहनीय रहा।

-शादी लाल महेन्दु, प्रधान

चौ० ऋषिपाल सिंह एडवोकेट को पत्र

आदरणीय चौ. ऋषिपाल सिंह जी, सादर नमस्ते !

ईश कृप्या एवं कुशल तत्राऽपि भवेत्। निवेदन यह है कि श्री अश्विनी कुमार को आर्य समाज से निष्कासित करने का समाचार पाकर मुझे प्रसन्नता हुई है। यह आपकी विजय है। आप तो श्री मुलखराज जी के साथ मिलकर यह अभियान पहले ही चला रहे थे।

फिर भी, यह निवेदन मुझे करना है कि अभी यह काम अधूरा है। वास्तविक व पूर्णतः यह कार्य तब माना जाएगा, जब न्यायालय द्वारा श्री अश्विनी कुमार को दण्ड दिलाके दिखाएंगे। पूरा ध्यान इस ओर देकर केस मजबूती से तैयार कराएं ताकि ऐसी सफलता मिले।

विनीत

इन्द्रजित देव, यमुनानगर (हरियाणा)

वह पावन दिन आया

ले. स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, दिल्ली

प्रति पदा चैत्र का वह पावन दिन आया।
हो गये सवा सौ साल ऋषि ने आर्य समाज बनाया ॥
बम्बई नगरी में सर्वप्रथम स्थापना करी।
काकड़वाडी में आर्य समाज की नीव धरी।
सत्य मार्ग दरशाया-आर्य समाज बनाया ॥1॥
एक दीप जल गया लाखो दीप जगमगाये।
देश और विदेश दूर अविद्या भगायें ॥
पाखण्ड मार भगाया-आर्य समाज बनाया ॥2॥
वेद विद्या ज्ञान का आकर के बजाया साज।
ऋषि का लगाया पौधा हरा-भरा है यह आज।
लहर लहर लहराया-आर्य समाज बनाया ॥3॥

नव वर्ष-सप्तकम्

रचयिता डा. देशबन्धु जी रंजन, गुरुकुल करतारपुर

1 नवं सवंत्सर पुण्य, नव र त्सर शुभम्।
नवं सवत्सरं सौख्य, भूयात् वर्षमिद सदा॥
2 नवानि उपलब्धानि, प्राप्यन्तु वर्षनूतने।
नूतनानि सुकर्माणि, कुर्वन्तु मम बान्धवा:॥
3. गृहे पुण्यं बहिर्पुण्यं, दिशि पुण्यं च सर्वत:।
अस्मिन् पुण्ये नवे वर्षे, वसन्तु सुखिनो जना:।
4 नवे वर्षे नवे मासे, नवे च दिवसे सदा।
सर्वदा मंगलं भूयात्, अस्मिन् भारत भूतले ॥
5 भारते सुखादं वर्षेत्, वर्षेच्च शुभदं मुदा।
समस्तेऽपि व विश्वे च, अस्माकं भ्रातु भारती॥
6. नवे संवत्सरे प्रीति:, नवे संवत्सरे गति:।
नवे कार्ये समालीन, भवेच्च शरद: शतम् ॥
7 नवे संवत्सरे वर्षे, कामना सर्वदा भवेत।
सौख्यदं दायकं धर्म, समागच्छेच्च मे मतौ ॥

आर्य समाज फाजिल्का में ऋषिबोधोत्सव

आर्य समाज फाजिल्का के तत्वावधान मे ऋषि बोधोत्सव मनाया गया और इसके साथ ही गुजरात भूकम्प की दिवगत आत्माओ की आत्मिक शान्ति हेतु 21-2-2001 से 24-2-2001 तक सायकाल चतुर्वेद शतकम् यज्ञ आर्य समाज के पुरोहित श्री निवेदन कुमार द्वारा सुचारू रूप से आयोजित किया गया।

25-2-2001 को यज्ञ की पूर्णाहुति के उपरान्त भिन्न-भिन्न स्कूलों द्वारा ऋषि बोधोत्सव पर प्रकाश डाला गया, इन मे विशेषत: डी ए वी माडल स्कूल, डी.सी माडल स्कूल, स्वामी दयानन्द माडल स्कूल का योगदान रहा।

बच्चों के सांस्कृतिक कार्यक्रम उपरान्त भिन्न-भिन्न संस्थाओं के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा गुजरात भूकम्प की दिवंगत आत्माओं के प्रति श्रद्धाजलि दी गई एवं उपस्थित सज्जनों मे यथा शक्ति भूकम्प पीड़ितों के लिए सहायता भेजने के लिए पेरित किया गया।

-विनोद गुप्ता, मन्त्री

शोक समाचार (होशियारपुर)

बड़े ही खेद से यह सूचित किया जाता है कि आय समाज कमालपुर (होशियारपुर) के प्रधान श्री प्राणनाथ जी कांसरा का 27-2-2001 को अचानक निधन हो जाने से होशियारपुर के आर्य जगत को बहुत क्षति पहुंची है। श्री कांसरा जी ने इस नव निर्मित [illegible] के लिए बहुत योगदान दिया था। आर्य समाज कमालपुर दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए परम परमात्मा से प्रार्थना करती है और कांसरा परिवार को इस असहनीय दु:ख को सहन करने के लिए बल की प्राप्ति के लिए प्रार्थी है। यह शोक प्रस्ताव आर्य समाज कमालपुर की 4-3-2001 को हुई अंतरंग सदस्यों की बैठक में पास किया गया।

-यशपाल बालिया, मन्त्री

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

एन. पी. 17504/58



ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद

साप्ताहिक

दूरभाष : ☎ :292926

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—53 अंक : 1 सृष्टि संवत 1960853102, 1 अप्रैल 2001 दयानन्दाब्द 178

ईश्वर की सत्ता

❐ ले० आचार्य सुनील कुमार 'प्रेम' पुरोहित आ.स. सी. भठिण्डा

आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व हमारे देश का नाम आर्यावर्त्त एव यहा रहने वाले आर्य थे तथा वे एक ही तरीके से ईश्वर की उपासना किया करते थे । तब आधुनिक समय की भाति मूर्ति पूजा प्रचलित नहीं थी। सब लोगों में धर्म, ईश्वर देश आदि के प्रति प्रेम हिलोरे मारता था परन्तु आधुनिक समय में समाज मे अनेक कुरीतियां बड़े जोर-शोर से पनप रही हैं । सब लोग अपने को दुनिया में ईश्वर प्रसिद्ध कराना चाह रहे हैं तभी तो ईश्वर को धार्मिक नेताओ, गुरूओ धर्म के ठेकेदारो ने हौवा बना दिया।

जिससे ईश्वर को समझना कठिन हो गया है, आज अनेक मान्यताएं ईश्वर के बारे में कोई कहता है ईश्वर है, कोई मजा करता है तो कोई उसे चौथे अथवा सातवें आसमान पर या दोनों हाथों को खोल कर बीच रहे आकाश को ही ब्रह्म बतलाते हैं, कोई कहता है मन्दिर में रखी हुई राम, कृष्ण, राधा, सीता, मीरा, नानक, वीर गोगा, हनुमान, लक्ष्मण, दुर्गा, खाटू स्याम जी की मूर्तिया ही भगवान हैं । वो कोई नंगली निवासी भगवान की जय कहता है। इन पर विचार करने से इनमें कहीं ना कहीं अवश्य भेद नजर आता है जिससे स्पष्ट है कि यह सब बातें असत्य अर्थात् अधम पर टिकी हुई हैं। इनसे सच्चाई कोसो दूर है। वास्तविक विचार करने पर बुद्धिगम्य होता है कि किसी भी चीज को कोई न कोई अवश्य बनाता है, अपने आप नहीं बनती जैसे घडे को देखने पर कुम्हार, जूते को देखने पर चर्मकार, घडी को देखने से घडी साज, मोटर को देखकर मोटर बनाने वाला, लोहे के सामान को दखने पर लोहकार, कपडे को देखने से बुनकर, फर्नीचर को देखने से बढई, मकान को देखने स मिस्त्री आदि परोक्ष मे दिखाई देते हैं वैसे ही इस सारी सृष्टि को देखने से इसके महान् सृष्टा का होना आवश्यक है । जैसे उपरोक्त कारणों को करने वाला भिन्न-भिन्न व्यक्ति है इससे विपरीत ससार का सृष्टा एक ही है वह भी इतना शक्तिशाली जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इतना तो हो ही सकता है वह कुम्हार घडीसाज आदि से बिल्कुल अलग, इससे बेहतर व बड़ा होगा क्योंकि पेड़, पौधे, वनस्पति आदि का निर्माता कोई मनुष्य दिखाई न देता अत. सिद्ध है कि वह आदि व महान शक्ति ईश्वर ही बडी शक्ति है जिससे वेद मे 'ओ३म् खं ब्रह्म' कहा है। इसके अलावा-गेहूं, चावल धान्यादि, आम, सेब फलादि, सोमलतादि औषधियाँ, हिमालय आदि पर्वत, सूर्य-चन्द्रादि प्रकाशक पदार्थ भूमि आदि वासस्थान और अनेक प्रजाति एव लोक-लोकान्तरो को अवश्य ही किसी न किसी ने बनाया होगा। अत: उपरोक्त कारणों को देखने से एक ऐसी शक्ति उभरती है जो घड़ी साजादि से भिन्न ताकतवर, असीम, व्यापक, बुद्धिमान, आद्यशक्ति है जिसमें अनेक गुण, कर्म व स्वभाव अन्तर्निहित होगे जिसे हम ईश्वर, अल्लाह, खुदा, गॉड कह सकते हैं। ऐसा ही ईश्वर सृष्टि उत्पत्ति, पालन, अन्त में सहार कर सकता है। वेदादि सत्यशास्त्रो की बातों पर विचार करने से भी यही आता है कि एक आदि व अनादि शक्ति है जो ससार की स्थिति करती है ऐसी शक्ति को ही हम ईश्वर कहते हैं उसका स्वरूप सत्‌चित् आनन्द का स्वरूप है उसी ईश्वर मे सब लोक-लोकान्तर समाये हुए हैं जैसा कि प्रमाण है हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

यजुर्वेद 13/4

ईश्वर भूमि और सूर्यादि को धारण करता है हमें योग्य, योगाभ्यास और अतिप्रेम से उसकी भक्ति करनी चाहिए-ईश्वर की एक ही सत्ता का बतलाता वेद का प्रमाण ईशावस्यमिद सर्वम् यत्किञ्च जगत्या जगत्। तेन त्यक्तेन भुजीथामा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

यजुर्वेद 40/1।

ईश्वर ने अपनी सत्ता से सारे ससार को ढक रखा है । इस प्रकार के अनेक प्रमाणों से वेदादि सत्य शास्त्र भरे हुए है जिनको लेखनी लिख व वाणी कह नहीं सकती अभी तक उपरोक्त कथन से आप जान गये होगे कि निश्चय से ईश्वर एक है उसकी मूर्ति नहीं बन सकती न वह अवतार लेता है उसका नाम ओ३म् है 'ईश्वर प्रणिधानाद्वा' अत. हमें एक ही सर्वव्यापक ईश्वर की ही पूजा करनी चाहिए, जिसे हमने भगवान व अवतार माना ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, योगीराज कृष्ण, क्रान्तिकारी सुधारक ऋषि दयानन्द, सन्तकबीर, तुलसीदास बाबा नानक देव आदि और भी इस परमात्मा के भक्त लोग भी ईश्वर की ही उपासना करते थे। तुलसीदास जी कृत रामायण में परमेश्वर के लिए आता है कि: (1) सन्ध्या करन चले दोऊ भाई। (2) पहले बनी प्रारब्ध, पाछे बना शरीर । तुलसी दास अचरज है, मन न बाधते धीर (3) बिनुपग चले सुने बिनु काना। कर बिन करम करे विधिनाना।

कवि सूरदास जी बिन ईश्वर कोऊ नाहि अपना-जस की रति रहि जैहे । सो तो सूर दुर्लभ देवन को, सतसगति में पैहें।

बाबा नानकदेव के साहिब से मृग तृष्णा ज्यों जग रचना, यह देखो हदे विचार कहू 'नानक' भज ईशनाम, नित जा ते हो उद्धार

अलख अपार अगम अगोचर नविस काल न करमा।

जोति अजोनी अजोनी समझो [illegible] न भरमा ॥

ऐसी ही अकबर का चुभता शेर जी उठा मरने से वह, जिसकी खुदा पर भी नजर।

जिसने दुनिया ही को पाया था वह सब खो के मर गया। जगत्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती-जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता व चोरी आदि बुरा व परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण मे आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शका और लज्जा तथा अच्छे काम करने से अभय, नि:शंकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है। अब प्रश्न होता है कि जब वह प्रभु सर्वव्यापक है तो उसकी प्राप्ति का क्या साधन है-ईश्वर प्राप्ति का साधन ईश्वर की आज्ञाओ का पालन करना ही है। ईश्वर प्राप्ति का सरल साधन योग आदि के आठ अग है जिन्हे महर्षि पातञ्जलि ने योगदर्शन मे कहा है। उसके अनुसार क्रिया कलाप करने से ईश्वर साक्षात्कार सभव है।

मानव के पास स्थूल पदार्थों के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सबसे बडा साधन उसकी बुद्धि है, ईश्वर की प्राप्ति मे असमर्थ है यह बुद्धि परन्तु बुद्धिमान लोग जब ईश्वर का वर्णन करते हैं तो ईश्वर का भक्त उनकी बातें सुनकर प्रसन्न होता है। सासारिक पदार्थों का सार तो बुद्धि व विद्या से जाना जा सकता है किन्तु उस सत्ता को समझने मे असमर्थ है। उस पावन सत्ता का सान्निध्य लाभ करने के लिए चातुरी अर्थात् चालाकी, अभिमान रहित होना, ईर्ष्या, द्वेष छोड़ना, सबमे अपने आप को देखना, अपने अन्दर वह दृष्टि उदय करनी होगी और वे नेत्र प्राप्त करने होगे जिनसे इस ज्योति की आभा देखी जा सके। तब हम समझेगे हम उस पावन सत्ता से दूर नहीं है वह सत्ता हमसे दूर नहीं । आवश्यकता तो परिचय, परिचय के लिए शुद्ध भावना की है और यह शुद्ध भावना अपने अन्दर खोजे। मानव का अपना हृदय रूपी दर्पण शुद्ध और स्वच्छ हो जाये तो वह ही पथ प्रदर्शक बन जाता है। हम ईश्वर की आज्ञाओ का पालन करे तो अवश्य ही इस भवसागर से और ससार के जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त कर सकते हैं बस एक यही रास्ता है प्रभु को मानकर, समझकर यह कह दो-

हे ईश्वर दयानिधे-मैं आपका हूं आप मेरे हैं मुझे हे प्रभु उत्तम ज्ञान देकर, उत्तम पदवी हेतू उत्तमोत्तम प्रेरणा दो जिससे आपका नाम लेकर मोक्ष प्राप्त कर सकूं । प्रभु जैसे गुणों को अपना कर ही व्यक्ति महान बनता है अत प्रभुदेव से प्रार्थना करो मुझे मेरे प्रभु अपने गुण दो जिससे मेरा अन्त:करण पवित्र हो। इस प्रकार योगादि व प्रार्थना करत हुए कहो-

हे ईश्वर दयानिधे । भवत्कृपयानेन जपोपासनादि कर्मणा धर्मार्थ काममोक्षाणा सद्य सिद्धिर्भवेन्न ।

कोई है दूसरा, जो खाक के पुतले मे जान डाले ।
यह कुदरत भी किसी को है कि सब मखलूक को पाले ।
कोई इन्सान दो साअत, तो अपनी नब्ज ठहरा ले ।
इबाने तौसेन उभरे गुजशना, फिर तो पलटा ले ।
अदम से ला नहीं सकता इन्सान एक जर्रा भी ।
बना सकता नहीं कोई, बशर छोटी सी चिड़िया भी।

इत्योशम्

"नारी तेरे रूप अनेक"

लेखिका० श्रीमती निर्मला "वसु" पानीपत

परमपिता परमात्मा की सर्वोत्तम रचना है नारी । वेद में अनेक नामो से पुकारा गया है, यथा- ब्रह्मा, स्योना, शिवतमा गृह साम्राज्ञी आदि । वैदिक काल मे नारी का स्थान पुरुषो की अपेक्षा सदैव ऊचा रहा है। वैदिक कवि भी उत्तमोत्तम अलकारो से नारी की महिमा एवम् गुण, रूप का वर्णन करते नहीं अघाते। नारी को महिला भी कहते है, महान गुणो से युक्त इला (वाणी)

आईये नारी के कुछ विशेष गुणो पर एक नजर डाले । क्षेत्र चाहे शिक्षा का हो, सामाजिक उत्थान का हो, अथवा युद्ध के मैदान मे शत्रु से दो दो हाथ करने का हो नारी कभी पीछे नहीं रही । मंडनमिश्र की सहधार्मिणी भारती देवी का विद्वत्ता पूर्ण शास्त्रार्थ कौन भूल सकता है । विद्योत्तमा का मूर्ख कालीदास को महाकवि बनाना साहित्य की महान सेवा है । रत्नावली के उपदेश से ही तुलसीदास महाकवि बन कर युग युगान्तर तक प्रसिद्धि को प्राप्त कर गए। इसी प्रकार सुलभा गार्गी, मैत्रेयी, अनसूया आदि कितनी देवियो के नाम गिनाए जा सकते है।

युद्ध के मैदान मे नारी रत्न झासी की महारानी लक्ष्मीबाई का युद्ध कौशल देख कर अग्रेज भी दातो तले उगली दबाते थे। जालिम अग्रेजो ने इस वीरागना को परेशान करने के लिए अनेक जाल बिछाये। रानी अपने नन्हे शिशु को पीठ पर बाध कर दोनो हाथो मे नगी तलवार लिये मुह से घोडे की लगाम थामे जिधर से भी गुजरी शत्रु गाजर मूली की तरह कट कर गिरने लगे। शत्रु ने भी उसका लोहा माना है । इसी प्रकार दुर्गावती रणचण्डी बन कर शत्रु के रक्त से धरती को तृप्त करती थी। चितौड की महारानी पद्मिनी अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा बदी बनाये गए महाराजा भीमसिह को अपने बुद्धि कौशल द्वारा इस प्रकार मुक्त करा लाई कि 'खिलजी' हाथ मलता ही रह गया। इतना ही नहीं, अपनी हजारो सहेलियो के साथ जिदा चिता में जल कर उसने खिलजी के नापाक इरादो पर पानी फेर दिया। इस प्रकार इस देवी ने अपने सतीत्व एवम् देश की आन बान और शान को अक्षुण्ण बनाये रखा ।

हमारा वर्तमान इतिहास अकबर को अकबर महान् कहता है जो अपने राज्य में मीना बाजार लगा कर हिन्दूओ की स्त्रियों का अपहरण किया करता था । अकबर का दुर्भाग्य ही कहिये कि एक दिन किरणमयी को अपहृत कर उसके सामने लाया गया, बस क्या था, सिंहनी बिफर गई और कटार तान कर अकबर के सीने पर चढ़ बैठी । अकबर ने पैर पकड़ माफी मांगी और मीना बाजार बन्द करने की सौगन्ध खायी तब कहीं जाकर उसे प्राणदान मिला ।

हाडी रानी का अपना शीश काट कर पति को राष्ट्र रक्षा के लिए प्रेरित करना, अपने आप मे अनोखा बलिदान है ।

राष्ट्र रक्षा के लिए कुंवर उदयसिह को बनवीर के घातक षड्यन्त्र से बचाकर सुरक्षित स्थान पहुंचाना और बदले में अपने पुत्र की अपनी आखो के सामने निर्मम हत्या देखकर भी उफ तक न करने वाली, है धन्य पन्ना धाई । ऐसा बलिदान विश्व मे अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा ।

भक्ति के सागर में गोता लगाकर भव बन्धन से मुक्त होने वाली मीरा को कौन नहीं जानता, उनके बनाये पद आज भी बड़ी श्रद्धा से गाये जाते हैं । यह तो कुछ अतीत के उदाहरण हैं, अब वर्तमान को भी देखे-

भूत भी महान था, भविष्य भी महान है, यदि सावधान वर्तमान मे इन्सान है । इस पंक्ति को चरितार्थ करते हुए आज की नारी हर क्षेत्र मे पुरुषो के साथ कंधे से कधा मिलाकर उन्नति के नये आयाम स्थापित कर रही है। कुछ समय की बात है, भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री-स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बंगला युद्ध के समय साहस एवम् सूझबूझ का परिचय देते हुए जनरल नियाजी को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य कर दिया, जिससे पाकिस्तान को भारी क्षति हुई और पृथक बंगला देश बना । महाकवि सुभद्रा कुमारी चौहान की ये पंक्तिया "अबला नारी हाय ? तुम्हारी यही कहानी, आंचल में है दूध, आंखों में पानी।" कहा तक सही है कह नहीं सकते किन्तु आज की नारी अबला नहीं सबला है, आंचल में दूध के साथ ममत्व, वात्सल्य और उदारता, करूणा भी है। समझ में नहीं आता पुरुष इनके आंचल तले, अमृत का पान करके क्यों कृतघ्न बन जाते हैं ? और अपने दुर्व्यवहार से सबला को अबला बना देते हैं ?

खेद के साथ लिखना पड रहा है कि आज नारी की नारी ही सबसे बडे शत्रु बनती जा रही है । दहेज की अग्नि मे स्वयं झुलसकर नारी नहीं चाहती कि घर में पुत्री पैदा हो। सुनते हैं कि इसके लिए वह अल्ट्रा साउंड केन्द्रों मे जाकर यह परीक्षण करवाती है, और कन्या होने पर नन्हे से जीव को समाप्त कर दिया जाता है । कन्या के पालन-पोषण में लड़कों की अपेक्षा कम ध्यान दिया जाता है। विवाहोपरान्त कन्या जब ससुराल जाती है तो सास, ननद और जिठानी प्रतिद्वंदी के रूप में सामने आती हैं, और यदि साथ में भरपूर दहेज न लाई तो फिर उस बेचारी का अस्तित्व समाप्त ही समझो । दहेज का दानव सुरसा के मुंह की भांति दिनोदिन बढता ही जा रहा है और इसका जिम्मेदार केवल महिला वर्ग है। पुरुषों को दहेज आदि से कुछ लेना देना नहीं होता क्योंकि उन्हें भी महिलाएं उकसाती हैं। आईये ! हम सब मिल कर उपरोक्त दोनों बीमारियों को जड़ से नष्ट कर दे, और भगवान मनु के "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्त रमन्ते तत्र देवता:" और "मातृमान् पितृमान् आचार्यमान् पुरुषोवेद" इस शतपथ ब्राह्मण के वाक्य अनुसार मातृशक्ति का सम्मान करें।

आर्य समाज ने नारी जागरण में अभूत पूर्व योग्दान दिया है । शिक्षा का अधिकार, यज्ञादि शुभ कर्म और वेद के पठन-पाठन का अधिकार, विधवा विवाह को पूर्ण समर्थन, आर्य साहित्य आर्य समाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती की अनुपम देन है जिससे नारी जाति कभी उऋण न हो सकेगी । परिणाम विश्व के सामने है-भारत की प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी, पाकिस्तान की प्रधान मंत्री श्रीमती बेनजीर भुट्टो, ब्रिटेन की पूर्व प्रधानमत्री-श्रीमती मार्गरेट थैचर और श्रीलंका की प्रधानमत्री-श्रीमती भंडर नायके महत्वपूर्ण पदो पर आसीन हुई थीं। क्या यह ईसाइ और मुस्लिम संस्कृति पर आर्य संस्कृति की विजय नहो है ?

अनर्थ ! अनर्थ !! अनर्थ !!!

बडे ही दु:ख के साथ कहना पड़ता है, कि अहिंसा के पुजारी महात्मा गौतम बुद्ध जी की प्रतिमाओं को अफगान सरकार ने तोड़ दिया अर्थात् तालिबान सरकार मानवता की शत्रु है । प्रमाणित हो गया है कि इस्लाम मत में घृणा ही घृणा है । प्रतिमाओं को देरी से तोड़ने की भूल जो मौलवी साहिब जी ने की थी। उसकी सजा भी भूल करने वालो को नहीं, निरापराध 100 गौओं को दी गई है। स्पष्ट: प्रमाणित हो गया है कि इस्लाम मत में न्याय का कोई भी स्थान नहीं है। आर्य समाज इस काले कर्म की घोर निन्दा करता है।

-महात्मा प्रेम प्रकाश वानप्रस्थी, आर्य कुटिया धूरी

लुधियाना में नई आर्य समाज की स्थापना

श्री नरेन्द्र भल्ला जी ने बताया कि पार्क लेन सिविल लाईन लुधियाना में एक नई आर्य समाज की स्थापना गत माह की गई थी। जिसके साप्ताहिक सत्संग परिवारों में निरन्तर हो रहे हैं। आर्य समाज पार्क लेन लुधियाना के सभी सदस्य पुराने आर्य समाजी परिवारों से हैं और सभी इस आर्य समाज को अपना पूरा-पूरा सहयोग दे रहे हैं। सत्संगों की उपस्थिति निरन्तर बढ़ती जा रही है । प्रथम अप्रैल 2001 रविवार को सायं 5-30 बजे म.न. बी-1/500 पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना में इसका अगला पारिवारिक व साप्ताहिक सत्संग होगा । श्री नरेन्द्र भल्ला जी ने लुधियाना की आर्य जनता से अपील की है कि सभी आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्संग प्रात: होते हैं। हमने सत्संग का समय सायं काल रखा हुआ है इसलिए सभी आर्य बन्धु इस पारिवारिक व साप्ताहिक सत्संग में पहुंच कर हमारा उत्साह बढ़ाएं व धर्म लाभ उठाएं ।

सम्पादकीय.....

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के चांसलर

एक महान् व्यक्तित्व के धनी पं. हरबंस लाल जी शर्मा

अब 19-3-2001 से इन्हें गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय हरिद्वार का चांसलर चुन लिया गया है

श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा एक महान व्यक्तित्व के मालिक हैं । सारे आर्य जगत में श्री शर्मा जी का अपना एक विशेष स्थान है। यहां तक कि देश-विदेश के बहुत से आर्य महानुभाव इन्हें अच्छी प्रकार से जानते हैं । श्री शर्मा जी बहुत ही मधुर भाषी, मिलनसार, सदाचारी, समाज सेवी, धार्मिक और कर्मठ व्यक्ति हैं। सेवा की भावना इनमें कूट-कूट कर भरी हुई है । जब से यह आर्य समाज के साथ जुड़े हैं तब से निरन्तर आर्य समाज की उन्नति के लिए कार्य करते आ रहे हैं ।

इनका जन्म 2 फरवरी 1920 में रुड़का कलां जिला जालन्धर में एक पौराणिक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनके पिता श्री पं. कर्मचन्द जी शर्मा और माता श्रीमती लाल देवी जी बड़ी ही धार्मिक विचारों के थे। इनके पिता चार भाई थे। श्री पं. कर्मचन्द जी शर्मा, श्री पं. किशन चन्द जी शर्मा, श्री पं. मुरारी लाल जी शर्मा और श्री प. मोहन लाल जी शर्मा । यह चारों भाई जब कराची मे रहते थे तो वहां इनका सम्बन्ध आर्य समाज से जुड़ गया। सभी भाई आर्य समाज की विचारधारा के रंग में ऐसे रंगे कि सभी आर्य समाज के दीवाने हो गए । कराची में इनके घर को आर्य समाज का घर कहा जाता था। आर्य समाज मे जो भी साधु, सन्यासी व विद्वान् आता था वह इनके घर में अवश्य आता था। यह परिवार विद्वानो की दिल खोल कर सेवा करता था।

माता-पिता तथा सारे परिवार का प्रभाव श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा पर भी पड़ना आवश्यक था। इन के मन में भी बालकपन से विद्वानों की सेवा की भावना पैदा हो गई और इन्होंने भी आर्य समाज के कार्यों में रुचि लेनी आरम्भ कर दी यह अपने पिता के सबसे बडे सुपुत्र हैं।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है कि उच्चकोटि के आर्य विद्वान् इनके परिवार मे प्रारंभ से ही आते थे। इनका यज्ञोपवीत संस्कार आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं. लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति ने कराया था और इनका विवाह संस्कार भी पं. लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति ने ही पूर्ण वैदिक रीति से ग्राम ललतोकलां जिला लुधियाना में करवाया था। इस गांव में यह पहला विवाह संस्कार था जो वैदिक रीति से हुआ था और इस संस्कार का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा था क्योंकि पण्डित लोकनाथ जी उस समय के उच्चकोटि के विद्वान् थे।

इनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजकुमारी जी भी इन्हीं की तरह बहुत धार्मिक विचारों की हैं और इस आर्य समाजी परिवार के साथ जुड़ कर यह और भी धार्मिक बन गई हैं! इनके पिता श्री पं. कर्मचन्द जी कराची मे रहते थे इसलिए इन्होने भी कराची में सर्विस कर ली और यह रायल एयर फोर्स में भर्ती हो गए और इसमें इन्होंने 10 वर्ष तक नौकरी की परन्तु कुछ समय बाद कराची से इनका तबादला लाहौर मे और फिर कानपुर में हो गया परन्तु इन्होंने कानपुर आने पर नौकरी छोड दी। नौकरी छोड़ने का पता जब इनके अंग्रेज अफसर को चला तो उन्होंने इस नौकरी के लिए इन्हें लन्दन आने के लिए पत्र लिखा सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करने की बात की परन्तु इन्होंने लन्दन जाने से इन्कार कर दिया और जालन्धर में ही साईकिल पार्टस का एक कार्य आरम्भ कर दिया। बाद में यह विजय साईकिल के नाम से प्रसिद्ध हो गया और कुछ ही दिनों में इस छोटे से उद्योग ने बहुत बडा रूप धारण कर लिया । यह सब इनकी लग्न, ईमानदारी और मेहनत का फल था। बाद में विजय साईकिल्ज स्टील व एच. आर. इन्टर नैशनल उद्योग चमक उठा । अब इस उद्योग को बढाने में इनके तीनों सुपुत्र श्री सुदर्शन कुमार शर्मा, श्री सुरेश शर्मा और श्री नरेश शर्मा भी इनके सहयोगी बन गए। तीनों युवा बेटो ने अपने पिता के कार्य में अपना पूरा-पूरा सहयोग देना आरम्भ कर दिया और यह कारोबार दिन-दूनी रात-चौगूनी बढने लगा और आज तक लगातार बढता ही जा रहा है।

पण्डित हरबस लाल जी के तीन सुपुत्र और एक सुपुत्री श्रीमती सरला शर्मा जी है । इनके दामाद श्री इन्द्रजीत जी शर्मा भी बहुत ही लग्नशील व धार्मिक व्यक्ति है । इनकी पुत्र वधुवे श्रीमती गुलशन शर्मा, श्रीमती ज्योति शर्मा, श्रीमती रीटा शर्मा भी बहुत धार्मिक हैं। यह सारा परिवार ही आर्य समाज के रंग मे रगा हुआ है ।

श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा पिछले 16 वर्षो से गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट गुरुकुल करतारपुर (जालन्धर) के लगातार प्रधान चलें आ रहे हैं और इनके प्रधानत्व में इस गुरुकुल ने बहुत उन्नति की है और सारे देश में एक महान ख्याति प्राप्त की है । आप पिछले कई वर्षो से गुरुकुल कांगडी विश्व विद्यालय की वित्त समिति व सिनेट के सदस्य चले आ रहे है और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के उप प्रधान चले आ रहे हैं। आर्य सी. सै. स्कूल बस्ती गुजा जालन्धर के पिछले 22 वर्ष तक आप प्रधान रहे है और इनके प्रधानत्व मे यह स्कूल निरन्तर उन्नति करता रहा । आप आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के पिछले 15 वर्ष से अधिकारी चले आ रहे है और गत 7 वर्ष से निरन्तर इस सभा के सर्वसम्मति से चुने गए प्रधान चले आ रहे है । पंजाब की आर्य जनता ने आपको प्रत्येक बार सर्वसम्मति से प्रधान चुना है। गत 17-12-2000 को आपको फिर आगामी तीन वर्ष के लिए इस सभा का प्रधान चुन लिया गया है । इनकी देखरेख में पंजाब में लगभग 150 आर्य समाजे, लगभग 70 स्कूल और लगभग 20 कालेज चल रहे हैं । जिनका प्रबन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब कर रही है।

श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा एक महान दानी व्यक्ति है इन्हे लोग पजाब के भामाशाह कहते है। सामाजिक कार्यो के लिए व धार्मिक कार्यों के लिए तो यह दान देते ही रहते है परन्तु यदि देश पर भी कभी आपत्ति आई और देश को धन की आवश्यकता पड़ी तो आप इसमे भी पीछे नही रहे । कारगिल युद्ध के समय और अब गुजरात मे आए भूकम्प राहत कोष के लिए इन्होने प्रधानमन्त्री राहत कोष मे लाखो रुपया दान दिया है ।

पजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-काश्मीर, हरियाणा, दिल्ली राजस्थान, उत्तर-प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, तथा अन्य प्रान्तो के सभी आर्य बन्धु इन्हें भली भान्ति जानते है । यह पिछले दिनों लदन, पैरिस, हालैड, स्वीजरलैड, वेल्ज और स्काटलैड तथा दूसरे कई देशों मे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राजकुमारी जी सहित घूम कर आए है वहा विदेशो मे कई आर्य समाजो के उत्सवों व सम्मेलनों मे भाग लिया ।

गुरुकुलों के प्रति इनकी विशेष श्रद्धा रही है । शायद ही ऐसा भारत का कोई गुरुकुल होगा जिसको इन्होने सहायता राशि न भेजी हो । यज्ञ के प्रति इनकी विशेष श्रद्धा है इन्होने अपने घर में 406-एल माडल टाऊन जालन्धर में एक बहुत सुन्दर यज्ञशाला का निर्माण करवाया है । यह यज्ञशाला कई आर्य समाजो की यज्ञशालाओं से भी सुन्दर है । इनकी गऊओ के प्रति विशेष श्रद्धा है जहां यह गौशालाओं को दान देते रहते है वहा अपने घर पर भी गौशाला बनाई हुई है और अच्छी नसल की गऊऐ रख कर उनकी सेवा करते रहते हैं। इनके इन सभी कार्यो मे इनका सारा परिवार पूर्ण सहयोगी है । इस परिवार की जितनी भी सराहना की जाए कम है ।

—धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

हम ही सो गए दास्तां कहते-कहते

❑श्री राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति, मुसाफिरखाना, सुल्तानपुर (उ.प्र.)

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे 'आर्य समाज' सदृश क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रादुर्भाव एक ऐतिहासिक घटना थी। सदियो से सोये राष्ट्र की आत्मा को जिस युगपुरुष ने झकझोर कर जगाया, वह था-युग-निर्माता "महर्षि दयानन्द सरस्वती"। जिस समय भारत का यह महान् सन्यासी कर्मक्षेत्र मे कमर कस कर उतरा, वह भारतीय इतिहास की पतनावस्था का कलकित समय था। सारी धरती पर चक्रवर्ती शासन करने वाले आर्य विदेशियो से पादाक्रान्त थे। भारतभूमि पर क्रन्दन हो रहा था। विधवाए एवम् अनाथ बच्चे चीत्कार कर रहे थे, साक्षात् दानवता का तांडव नर्तन हो रहा था, गुलामी की जजीरो मे जकडी भारत माता कराह रही थी। वेद-ज्ञान की पावन शिक्षा देने वाला आर्यावर्त्त अज्ञानान्धकार की तमिस्रा मे डूबा हुआ था। अन्धविश्वासो एव पाखण्डो ने सामाजिक एवं धार्मिक दशा अत्यत शोचनीय बना दी थी। समाज मे जाति-पाति छुआछूत का बोलबाला था। वर्णाश्रम व्यवस्था क्षत-विक्षत हो चुकी थी।

राष्ट्र की इसी भयावह वेला मे युग प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने युग की प्रबल धारा को मोडने का संकल्प लिया और वेदो द्वारा राष्ट्र के अभ्युदय के लिए अपना तन-मन-धन समर्पित कर अन्त मे अपना प्राण सुमन भी अर्पित कर दिया। मानवता की साक्षात् मूर्ति सा दयानन्द अकेला अनेकानेक सघर्षो से जूझता रहा, लेकिन तूफानो से लडने वाले इस अपराजेय योद्धा ने कभी हार नहीं मानी। अपनी विलक्षण प्रतिभा अकाट्य तर्कशक्ति भव्य व्यक्तित्व, अनुपमेय निष्ठा तथा उदात्त विद्वत्ता के बल पर स्वामी ने लगभग सारे भारत की परिभ्रमण कर वेदो का प्रचार किया। स्वामी जी ने सोते हुए देश को जगाया तथा सारे भारत में क्रान्तिकारी राजनीतिक, धार्मिक, व सामाजिक, पुनर्जागरण किया सारा राष्ट्र अंगडाईयां लेकर उठ बैठा, और भारतीय समाज पर छाये हुए, अज्ञानांधकार का पर्दा उठ गया। नयी चेतना, नए साहस, नवस्फूर्ति तथा नवल शक्ति से विभूषित होकर हमने विदेशी शासन से लोहा लेने का निर्णय किया। वेद-प्रचार, समाज-सुधार, मानवता तथा उत्थान तथा समस्त संसार के कल्याण के लिए महर्षि दयानन्द ने सन् 1875 मे "आर्य समाज" जैसी क्रान्तिकारी संस्था की स्थापना की। निःसंदेह आर्य समाज ने अपने अनेक कार्यक्रमो का कार्यान्वयन करके भारत के इतिहास मे स्वर्णिम पृष्ठो का सृजन किया। भारत की स्वाधीनता के महान आन्दोलन में आर्य समाज ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आर्य समाज के सैंकडों सैनिको ने मां की बलिवेदी पर अपने पुष्प समर्पित किए। श्याम जी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, सरदार भगत सिह, रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, गेदालाल दीक्षित, और सावरकर आदि क्रान्तिकारी अमर सपूतों ने आर्य समाज के प्रांगण में ही राष्ट्रभक्ति एवं शहीद होने की प्रेरणा प्राप्त की थी। समाज सुधार के क्षेत्र मे, शिक्षा के क्षेत्र मे, धार्मिक पुनर्जागरण के क्षेत्र मे, नारियों के उत्थान के क्षेत्र, वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र मे, राष्ट्रभाषा के उत्थान के क्षेत्र मे भी आर्य समाज ने अविस्मरणीय योगदान दिया। परिणामस्वरूप राष्ट्र के कण-कण मे नवस्फूर्ति का संचार हुआ, अपने सस्थापक यशस्वी स्वामी दयानन्द सरस्वती के कार्यों तथा उनके मार्ग का विस्तार करते हुए आर्य समाज ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक "गुजरात से लेकर पूर्वांचल के विस्तृत क्षेत्र में ही नहीं" बल्कि विश्व के अन्यान्य देशों में वेदो के प्रचार का कार्य अपने हाथों मे लेकर वैदिक धर्म की दूंदुभि बजाई। भारत को स्वाधीनता प्राप्त होने के पूर्व तक आर्य समाज ने अपने महान् संस्थापक के आदर्शों के समानुरूप ही सराहनीय कार्य किया।

लेकिन आज दुःख इस बात है कि आर्य समाज मे भी वे सभी बुराईयां आ गई हैं जो सारे समाज में फैली हुई हैं। आर्य समाज भी आज गुटबन्दी वैमनस्य, पदलिप्सा, अकर्मण्यता, मुकदमेबाजी का केन्द्र बना हुआ है। आर्य समाज के सैनिक मात्र लकीर के फकीर बन रहे हैं। आज जबकि सारा हिन्दुस्तान दानवता की दावाग्नि में धूं-धूं जल रहा है, वैदिक धर्म-संस्कृति व सभ्यता दाव पर लगी हुई है, महर्षि दयानन्द के स्वप्न विलुप्त से हो गए हैं। अबलाओ का करुण क्रन्दन दिग् मंडल को प्रकम्पित कर रहा है। जातिवाद, स्वार्थवाद, मत्तावाद का बोलबाला है, ऐसी भयानक परिस्थिति में आर्य समाज के और महर्षि दयानन्द के सच्चे सैनिक सो रहे हैं। जिन परिस्थितियो के फलस्वरूप आर्य समाज की स्थापना की गई थी, वे परिस्थितियां अपना मूंह बाए हुए आज हमें निगल जाने को आतुर हैं, मानवता का अस्तित्व समाप्त हो चुका है, सामाजिक दशा दयनीय बन चुकी है, सारे राष्ट्र मे अव्यवस्था, अराजकता, घूसखोरी, अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न, भ्रष्टाचार, अपहरण, बलात्कार, कत्ल, डकैती का तांडव नर्तन हो रहा है। यदि आर्य समाज आज भी न चेता तो क्या होगा, मानवता का ? कहा नहीं जा सकता। इतिहास एवं समय आज की इस कठिन परिस्थिति में आर्य समाज के अनुयायियों को पुकार रहा है तथा ललकार रहा है। महर्षि दयानन्द द्वारा मानवता के उद्धार हेतु किए गए अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए। क्या हम आर्य समाज के सेवक और दयानन्द के सैनिक उस प्रकार ललकार को सुनकर अपने कर्त्तव्य पथ पर डट सकेगे ? क्या हम वैदिक धर्म की ध्वजा महिमण्डल में लहराने का संकल्प ले सकेंगे ? यदि हां। तो अभी आईए हम प्रतिज्ञा करें-अपने महान् गुरु स्वामी दयानन्द सरस्वती के पद् चिन्हों पर चलने की।

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा का संकल्प

आर्य समाज का मुख्य कार्य वेद प्रचार है। महर्षि जी ने आर्य समाज को केवल और केवल समाज सुधार व वेद के प्रचार एवं प्रसार हेतु बनाया था। आर्य समाज को बने 26-3-2001 को 125 वर्ष हो गए हैं। आर्य समाज का 125 वर्षीय इतिहास बडा ही स्वर्णिम होना था लेकिन हम आर्यों के आलस्य एवं स्वार्थ के कारण आर्य समाज पिछड़ गया। 18-3-2001 को लिखे सम्पादकीय द्वारा श्री पूज्य हरबंस लाल जी शर्मा सभा प्रधान जी के विचारों को समक्ष रखते हुए आर्य समाज सिरकी बाजार ने अंगडाई लेकर वेद प्रचार व प्रसार हेतु कमर कस ली है। आर्य समाज के सभी कार्यकर्त्ता तन-मन-धन से ऋषि ऋण को चुकाने का प्रयास कर रहे हैं। बठिण्डा की जीवित जागृत यह आर्य समाज वेद एवं ऋषि मिशन के लिए समर्पित है इसके कार्यकर्त्ताओं का संकल्प है कि इसे खूब बढाना है।

मान्य सभा प्रधान महोदय जी की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए आर्य समाज ने शहर में प्रति रविवार साप्ताहिक सत्संग, पारिवारिक सत्संग प्रातः एवं सायं चलाने का सकल्प लिया है। स्वयं आर्य समाज में प्रतिदिन योग्य पुरोहित जी द्वारा 6.30 बजे से 7.30 बजे तक हवन यज्ञ कराया जाता है। हमारा संकल्प है कि पारिवारिक सत्संग निरन्तर चलते रहें और अबाध गति से चलते भी रहेंगे। इस कार्यक्रम में श्री कृष्णलाल जी जटाना जो ऋषि मिशन के लिए समर्पित हैं प्रयास करते रहते हैं।

इन साप्ताहिक व पारिवारिक धार्मिक सत्संगों हेतु मन्दिर की ओर से दरी, चादर, लाऊड स्पीकर, घृत, हवन सामग्री समिधा आदि की उपलब्धता निःशुल्क कराई जाती है। अगर कोई प्रसाद आदि की व्यस्था नहीं कर पाता तो आर्य समाज प्रसाद की सुन्दर व्यवस्था रखता है। —बलदेव राज आर्य

भारत के सपूतों को श्रद्धांजलि

आज दिनांक 23-3-2001 को आर्य समाज सिरकी बाजार, शैडवाली गली भठिण्डा में शहीदी दिवस मनाया गया। सर्वप्रथम आचार्य सुनील कुमार शास्त्री जी के ब्रह्मत्व में हवन यज्ञ किया गया। यज्ञ की यज्ञमान श्रीमती कृष्णा देवी पत्नी श्री भगवान जी रहीं। आये हुए लोगों ने बड़ी श्रद्धा से हवन यज्ञ सम्पादित किया। यज्ञोपरान्त श्रीमती मंजू देवी ने एक गीत ऋषि भक्त हो तो ऋषि ऋण चुकाओ —गाया। आचार्य जी ने अपने प्रवचन में इन तीनों वीरों के बारे में विस्तार से चर्चा की और कहा कि यह तीनों वीर भारत पुत्र थे हमें इनके लिए आदर भाव प्रकट करना चाहिए जिन्होंने अपनी भारत माता को जकड़ी बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए 23 मार्च 1931 को शाम 7 बजकर 33 मिनट पर अपने जीवनों की आहुति दे दी थी। वीर शिरोमणि सरदार भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव में चोली-दामन का साथ था। आर्य समाज माता के ये लाडले पुत्र इतिहास में अमर रहेंगे। —कल्प वासुदेव

धर्म के ह्रास को रोकने के लिए मिलकर विचार करना होगा : डा. देवव्रत

प्रो. आचार्य रामगोपाल शुक्ल

डा. देवव्रत बताते हैं कि आज भौतिक संसाधनों के नित्य नए अविष्कार बढ़ते जा रहे हैं किन्तु अन्दर ही अन्दर स्थिति भयंकर होती जा रही है। श्रद्धा, संशय, असन्तोष, खिन्नता, उद्विग्नता बढ़ती जा रही है। सुख की प्राप्ति व दुख की निवृत्ति के लिए जो उपाय किए जा रहे हैं, वे सब अपूर्ण और वास्तविकता से दूर हैं। मानव जीवन की उन्नति के उचित उपायो को न अपनाने से सतत प्रयत्नशील होते हुए भी असफल हो रहे हैं । यह ऐसी ही स्थिति है जैसे मुरझाए पौधे को हरा-भरा बनाने के लिए कोई जड़ों मे पानी न देकर, शाखाओं व पत्तियों को सींच रहा हो । आत्मकल्याण का सही मार्ग क्या है ? क्या कारण है कि चारो तरफ धर्म प्रचार होने के बावजूद अनुयायियों के जीवन मे धर्म नहीं दिखाई पड़ रहा है ? इन ज्वलन्त प्रश्नो का सिलसिलेवार उत्तर दे रहे हैं। सार्वदेशिक आर्य वीरदल के प्रधान संचालक एवं गौतम नगर गुरुकुल के प्राचार्य डा. देवव्रत।

आज के वातावरण में आत्म-कल्याण का सही रास्ता क्या है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पुरुषार्थ चतुष्टय द्वारा ही मानव आत्मकल्याण के साथ-साथ परमात्म साक्षात्कार भी कर सकता है । इसलिए पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति करना ही मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए । आज की बढती पाश्चात्य संस्कृति की विधा के अनुसार धर्म और मोक्ष का परित्याग पर केवल अर्थ और काम को ही जीवन का उद्देश्य माना जा रहा है। जिसका परिणाम सर्वत्र अशान्ति, अराजकता, लम्पटता, उच्छृंखलता के रूप मे दिखाई दे रही है । इस सिद्धान्त से आत्म-कल्याण तो क्या होगा, मानव पतन के गर्त में चला जाएगा।

धर्म के नाम पर बड़े-बड़े आयोजन किए जा रहे हैं परन्तु अनुयायियों के जीवन में धर्म के आचरण का अभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। इसका कारण क्या है ?

अधिकांश धार्मिक अनुष्ठान दिखलावे या अर्थ प्राप्ति के लिए किए जा रहे हैं । इनमें देवी-देवताओ की पूजा अथवा किसी धर्माचार्य की महिमा का ही मण्डन प्राय: किया जाता है। आचार-विचार को उत्तम बनाने वाले कार्यक्रम कम ही देखने मे आते हैं । जब धार्मिक नेताओं की कथनी और करनी मे अन्तर हो तो उनके अनुयायियो पर उनके आदेश पर असर कहां दिखाई पड़ेगा । लोभी गुरु और लालची चेला देश और समाज का उद्धार नहीं कर सकते हैं । अत: धर्म के ह्रास को रोकने के लिए सभी धर्माचार्यों को मिल कर विचार करना चाहिए और जो बाते उत्तम और सर्वमान्य हो, उन्हें स्वीकार करते हुए सभी उनके प्रचार-प्रसार में जुट जाएं । जब तक विद्वानो के विचारो में एकता नहीं आएगी तब तक जनता जनार्दन कभी इधर तो कभी उधर जाकर भ्रमित होती रहेगी। अपने कार्य को निष्ठा से करना, वैयक्तिक धर्म, सामाजिक धर्म, राष्ट्र धर्म एवं मानव धर्म का सम्यक् ज्ञान और तदनुसार आचरण किया जाए तो सर्वत्र सुख और शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाएगा।

अशान्ति का मूल कारण क्या है ?–असन्तोष ही मूल कारण है। किए हुए पुरुषार्थ में ही सन्तुष्ट रहना सन्तोष कहलाता है । इसके विपरीत काम और भोग-विलास के संसाधनो को जुटाने की प्रवृत्ति, भोगो को भोगने की तृष्णा, सबसे अधिक धन कमाने और सम्पत्ति का संग्रह करने की इच्छा, मान-सम्मान आदि अनेक वृत्तियां मन को चंचल और अशान्त बना देती हैं । इस अशान्ति से बचने के लिए यज्ञ मे आहुति देकर संयमित और धर्ममय जीवन-व्यतीत करना ही एकमात्र उपाय है।

क्या हवन यज्ञ करने मात्र से ही सामाजिक एवं धार्मिक दायित्वों की पूर्ति हो जाती है?– प्रत्येक शुभ कार्य और संस्कार यज्ञ से प्रारम्भ किए जाते हैं परन्तु इतने करने मात्र से ही सामाजिक एवं धार्मिक दायित्व पूर्ण नहीं हो जाते। हवन यज्ञ तो अच्छे कार्यों का प्रतीकमात्र है। जैसे समिधा, घृत, सामग्री आदि उचित अनुपात सहित यज्ञ कुण्ड में विधिवत जलाई जाए तो सर्वत्र सुगन्ध फैल जाती है और दुर्गंधरहित जलवायु भी शुद्ध होती है। वैसे ही परस्पर सभी लोग मिलकर समाजोद्धार के कार्य करें तो उसका फल अधिक मिलेगा। इसी भांति यज्ञीय भावना से ओत-प्रोत होकर धर्म का आचरण करने पर शीघ्र सफलता प्राप्त होती है । जैसे यज्ञ मे आहुति देकर बोलते हैं कि **इदन्न मम्** अर्थात् यह यज्ञ मै परोपकार के लिए कर रहा हू । अपने लिए नहीं, का भाव बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार सामाजिक कार्यों मे स्वार्थ का परित्याग कर सबकी उन्नति में अपनी उन्नति की प्रमुखता दी जानी चाहिए । परोपकार के सभी कार्य यज्ञ के अन्तर्गत आ जाते हैं ।

ओंकार मिश्र प्रणव, शास्त्री नहीं रहे

आर्य जगत के महोपदेशक, कवि लेखक आचार्य श्री ओकार मिश्र प्रणव शास्त्री का दिनांक 4 मार्च को आकस्मिक निधन हो गया। श्री प्रणव जी विगत दो वर्ष से हृदय रोग से पीड़ित थे। मृत्यु से एक दिन पूर्व अचानक तबीयत बिगड़ने पर उन्हें आगरा के राम रघु हास्पीटल मे भर्ती किया गया जहा गहन चिकित्सा के दौरान 4 मार्च की प्रात: 7.30 बजे उनका देहान्त हो गया। वे 83 वर्ष के थे। उनका अन्तिम संस्कार श्मशान घाट पर वैदिक पद्धति से सम्पन्न हुआ। प्रणव जी ने अपने पीछे पत्नी श्रीमती सरोज मिश्रा, पांच पुत्रियो श्रीमती मञ्जुला, इन्दिरा, जया, सुरश्मि, कु इला तीन पुत्रो हर्षवर्धन शास्त्री, देवनिधि मिश्र, विश्वनिधि मिश्र और पुत्र वधुओ श्रीमती कुसुम मिश्रा, चित्रा मिश्रा, एव साधना मिश्रा के भरे-पूरे शोकाकुल परिवार को छोड़ा है। उनके ज्येष्ठ पुत्र हर्षवर्धन शास्त्री भोपाल वाला आर्य हायर सेकैण्डरी स्कूल श्री गगा नगर (राजस्थान) मे संस्कृत के प्राध्यापक हैं, दूसरे देवनिधि मिश्र फरीदाबाद मे इलैक्ट्रानिक व्यवसाय करते हैं तथा कनिष्क पुत्र रगकर्मी विश्वनिधि मिश्र प. ग्यासी राम शर्मा इण्टर कालेज, आगरा मे हिन्दी के प्राध्यापक हैं ।

स्व प्रणव जी ने 1940 से 1949 तक महाविद्यालय गुरुकुल धाम जेहलम पंजाब मे व्याकरणोपाध्याय, सन् 1948 से 1949 तक आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश लखनऊ मे उपदेशक, 1949 से 1980 तक डी ए वी इण्टर कालेज, फिरोजाबाद मे संस्कृत पद पर कार्य करते हुए अनेक ग्रन्थो की रचना की जिनमे प्रमुख 'बोस बावनी', 'अमर ज्योति', 'ज्वाला', 'धारणा' 'विजय बावनी', 'सुमङ्गली', 'मधुमती', 'गृहस्थ का महत्व' 'ऋतु-विहार', 'प्रणव तरङ्गिनी', 'खिले फूल आक ढाक के', 'वेद वैचित्र्य' आदि हैं। आपका 'वेद-वैचित्र्य' ग्रन्थ आर्य जगत मे मील का पत्थर है। इनके अतिरिक्त आर्य पत्र-पत्रिकाओ मे समय-समय पर उनके अनेक लेख, काव्य रचनाए प्रकाशित होती रही हैं। आर्य समाज के सिद्धान्तो एवं आदर्शो का आजीवन प्रचार-प्रसार करने हेतु स्व 'प्रणव' जी को आर्य समाज सान्ताक्रुज, मुम्बई द्वारा वेदोपदेशक पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है।

स्व 'प्रणव' जी के निवास शास्त्री सदन, राम नगर (कटरा) राम बाग आगरा पर शान्ति यज्ञ का आयोजन 7 मार्च को किया गया । इस अवसर पर आर्य समाज के अनेक विद्वानों, पदाधिकारियो साहित्यिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक संस्थाओ से सबधित आचार्य अर्जुन देव 'स्नातक', ओम प्रकाश शास्त्री, शिवदत्त शर्मा वैद्य, रमेश चन्द्र, अचल शर्मा एडवोकेट, विनय पतसारिया, उमेश 'अमल' उत्तर प्रदेश रत्न उद्योगपति बाल कृष्ण गुप्ता, रञ्जन लाल शर्मा, प्रेम प्रकाश शास्त्री, पं राज नारायण शर्मा, पुरुषोत्तम देव शर्मा, बलराज सिह परमार, हरिगोपाल सिह चौहान एडवोकेट, विजयपाल सिह चौहान एडवोकेट, ललित मोहन दुबे, प्रेमदत्त शास्त्री, प्रेम नारायण शर्मा, राम प्रकाश शास्त्री, सत्य प्रकाश शास्त्री, मुन्नी लाल शर्मा, आदि अनेक व्यक्तियो ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

जीवात्मा का परिमाप

लेo श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक', मु.पो. मुरारई, जिला-वीरभूमि (पं. बंगाल)

अथर्वेदीय प्रश्नोपषिद् में आत्मा का परिमाण बताया गया है कि बाल के अगले हिस्से के सौ टुकडे कर दिए जाये, उस सूक्ष्म सौंवे हिस्से के भी सौ हिस्से कर दिये जाय उस सूक्ष्म भाग के समान जीव है ।

किन्तु इनसे भी सूक्ष्म यदि उस बाल के अग्रभाग को लाखवे हिस्से के सूक्ष्म भाग को जीवात्मा का परिमाण कहे तो भी साइन्स के यन्त्रों से पकडा जा सकता है।

क्योकि आधुनिक विज्ञान ने इलेक्ट्रोन को यन्त्रो से पकड़कर दिखा दिया है। जबकि परिमाण में इलेक्ट्रोन 1सी मी के 25 खरब 40 अरब वे भाग से भी सूक्ष्म हैं। ध्यातव्य है कि आधुनिक विज्ञान के अनुसार एक इलेक्ट्रोन का अर्द्धव्यास 1 सी एम का 10 पदम् वा भाग है और इसे आधुनिक वेज्ञानिक यन्त्रो से मापा जा सकता है एव पकडा जा सकता है । यहा मेरी समझ मे यह नही आया कि आधुनिक विज्ञान जब 1 सी एम के 10 पद्मवे भाग को माप एव पकड सकते है तो 1 सी एम 1 अरबवे भाग के व्यास वाले आत्मा नामक (अणु) द्रव्य को क्यो नहीं पकड सकते है ?

हा–ऐसा हो सकता है कि **बालाग्र शतभागस्यशतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेय· स चानन्त्याय कल्पते ॥5-9॥**

अर्थात् इतना सूक्ष्म केवल शरीरधारी जीवाणु हो सकते है, आत्मा नही । आत्मा तो यन्त्रो के माप से परे है, वह कितना सूक्ष्म है इसके बारे मे आनन्द स्वामी लिखते है कि यह जीवात्मा एटम से करोडो गुणा सूक्ष्म और उससे करोडों गुणा शक्तिशाला है तभी तो वह चेतन इन अत्यन्त जड सूक्ष्मो को अपनी बुद्धि साधनो द्वारा पकडकर अस्तित्व म उनसे दूरदर्शन ओर कम्प्यूटर आदि से कार्य करवा रहा है ।

ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि **जीव एक सूक्ष्म पदार्थ है जो एक परमाणु में भी रह सकता है, उसकी शक्तियां शरीर में प्राण, बिजली और नाड़ी आदि के साथ संयुक्त होकर रहती हैं, उनसे सब शरीर को वर्तमान जानता है।**

(सत्यार्थ प्रकाश, द्वादश समुल्लास)

यह इलेक्ट्रोन, परम अणु के ही टुकड़े हैं जिन्हें हम सूक्ष्मांश कह सकते हैं उनमें भी वह आत्मा प्रवेश कर जाता है क्योंकि शरीर रचने के जो परमाणु के अंश होते हैं वह इलेक्ट्रोन से भी सूक्ष्म होते हैं और उन्हीं के द्वारा धातुओं का निर्माण होता है । यहां एक और बात की जानकारी हो जानना ठीक है कि प्रत्येक वस्तु के परमाणु भिन्न-भिन्न होते हैं । यदि भिन्नता न हो तो यह बहुरूप संसार को रचना ही न हो ।

इसी प्रकार जहा ज्ञातृत्व, कर्त्तव्य और भोक्तृत्व के गुण हों वहां जीवात्मा को समझना चाहिए अर्थात् जीवात्मा वह बीजात्मक है जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल शरीर का निर्माण होता हैं।

वैदिक सम्पत्ति मे प रघुनन्दन लिखते हैं कि-**कुछ सूक्ष्म जीव ऐसे हैं जो सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से देखे जाते हैं इनमें शरीर जैसी कोई गठन होती ही नहीं। ये तो पतला किया हुआ सरेश का एक परमाणु जैसे ही है। परन्तु इनमें भी जीवन-शक्ति के समस्त गुण विद्यमान हैं । ये अपने ही जैसे प्राणी से उत्पन्न होत है, भोजन पचा सकते हैं और हलचल कर सकते है । यही नहीं किन्तु ये अपने घुसने की छींट, जो बिल्कुल ही क्लिष्ट रचनायुक्त होती है, बना लेते हैं । जीवात्मा का यह एक कण प्राकृतिक शक्तियों को इस प्रकार काबू में करके ऐसी गणितयुक्त रचना (छींट) बना सकता है. यद्यपि खुद रचना रहित और अवयवहीन है। पृ. 150।**

अतः वह सूक्ष्मशक्ति जड नहीं, जीवन कण है जो बदलता नहीं (क्योकि वह मिश्रित पदार्थ नहीं, अमिश्रित द्रव्य है) प- कारण और सूक्ष्म शरीर के द्वारा सभी जीवधारियो की रचना पूर्व स्वभाव के अनुसार ईश्वरीय नियम में रहता है।

श्वास-प्रश्वास प्राण नहीं है जैसाकि कुछ व्यक्ति समझते हैं किन्तु जिसके द्वारा श्वास-प्रश्वास चलता है, वही प्राण है । प्राण को धारण करने वाला आत्मा है और इन्हीं तीनों के द्वारा शरीर के सारे उपकरण सक्रिय रहते हैं ।

जब किसी व्याधि के कारण उपकरण काम नहीं करते अथवा नष्ट होने लगते हैं तब प्राणायाम की क्रिया बन्द होने लगती है और तब उस समय आत्मा जब अपने सूक्ष्म शरीर को समेटता है तब प्राण भी उसके साथ हो जाता है, क्योकि पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पाच सूक्ष्मभूत, मन तथा बुद्धि ये सब आत्मा में लीन हो जाते हैं और तब यह शरीर निर्जीव अर्थात् नष्ट हो जाता है । आत्मा इस शरीर मे सूर्य के समान है, इसका उदय, अस्त होना स्वाभाविक है। उदय और अस्त, जन्म और मृत्यु के समान है, किन्तु सूर्य जैसा का वैसा ही वर्तमान रहता है। कुछ लोगों का कहना है कि जब आत्मा मे ज्ञान है तो बालक जन्मते के साथ क्यो नहीं ज्ञानी होता। इसका उत्तर सीधा है--जैसे सूर्य रूपी आत्मा वही रहता है-परन्तु जिस प्रकार सूयादय के समय सूर्य में तीव्रता नहीं होती केवल लालिमा रहती है उसी प्रकार बालक जन्म के साथ उसके ज्ञानतन्तु, अविकसित होने से वह ज्ञानी नहीं रहता परन्तु जैसे-जैसे सूर्य ऊपर आता है, वैसे-वैसे प्रकाश की तीव्रता बढती जाती है उसी प्रकार जैसे-जैसे बालक का ज्ञानतन्तु सबल होता जाता है वैसे-वैसे आत्मा का ज्ञातृत्व गुण उसे प्रकाशित करने लगता है। किन्तु जिस प्रकार बिना क्रिया के सूर्य का प्रकाश बढ़ता नहीं है उसी प्रकार बालक में ज्ञानका बीज होते हुए भी बिना विद्याध्ययन के उसकी विद्या नहीं बढ सकती । यह आत्मज्ञान बहुत कठिन विषय है। इस आत्मा को देखने और जानने के लिए योगाभ्यास करना होता है। आत्मदर्शियो का कहना है कि वह एक प्रकाश जैसा दिखता है। **वह अन्दरुनी बिजली के समान है। बाहर की बिजली से ज्ञाननेत्र खुल जाता है, हृदय और मस्तिष्क को प्रकाशित कर देता है जिसके दर्शन से आनन्द ही आनन्द अनुभव होने लगता है ।**

अन्तिम सूक्ष्म सर्वव्यापक सबका प्राणाधार परमात्मा है, उसी के आधार पर सूर्य में तेज और चन्द्रादि में प्रकाश वर्तमान है। उसी की प्रेरणा-प्रभाव से सारे ब्रह्माण्ड क्रियाशील हैं और सब सृष्टि एक-दूसरे के पराधीन है किन्तु इस पराधीनता का अन्तिम खोज और सीमा उस ज्ञानस्वरूप का वैज्ञानिक नियम है जो उस परमेश्वर के द्वारा उद्भव होता है । उसकी रचना विचित्र है उसी के नियम में सब उत्पादन कारण सूक्ष्म से विराट रूप धारण कर रहे हैं और उसी से अन्तरिक्ष मे विचित्र क्रिया चल रही है। दूरदर्शन पर दिखाया गया है कि कुछ छिटके हुए अन्य पिण्डों की-गति विपरीत हो जाने पर सूर्य के समीप आ जाने से उसमें प्रवेश कर जाते हैं, इससे सूर्य में कोई अन्तर नहीं आता । जड पिण्डो से अन्य पिण्डों की उत्पत्ति और परिवर्तन होते रहते हैं । मध्याकर्षण के मध्य में भासमान होता है, ऐसा लगता है कि ब्रह्म की सृष्टि मे ब्रह्माण्ड का कोई गुरुत्व नहीं है। ऊपर मध्याकर्षण में आक्सीजन नहीं है किन्तु कई प्रकार के गैस हैं, जिसमें जीवन नहीं रह सकता। यह कैसी विचित्र रचना है कि जीवन धारण के लिए हमारे विश्व सृष्टि में समुद्र को उत्पन्न किया, पुनः सूर्य अपने तापमान क्रिया से प्राणप्रद वायु और वरुण की उत्पत्ति कर दी जिससे जीवन का प्रादुर्भाव हो सके। यह सब उसकी कृपा दृष्टि का फल है, इसलिए वह सर्वरक्षक कहा गया है, वह महान से भी महान है। वह सबके हृदय और मस्तिष्क मे प्राण और चेतना देकर अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर रहा है कि तुमसे परे भी कोई है जिसने समुद्रादि में विचित्र जीव-जन्तुओं की रचना की है । वह कितना ज्ञानियों का ज्ञानी है कि पहले भोग्य उसके बाद भोक्ता की सृष्टि की, क्योंकि बिना भोग्य के भोक्ता जीव की उत्पत्ति कैसे होती। इसलिए उस सब सृष्टि और विद्याओं का आदिमूल और आविष्कारक परमेश्वर को कहा गया है।

अतः जीवों की उत्पत्ति जीवात्मा से हो रही है, क्योंकि

(शेष पृष्ठ 7 पर)

(पृष्ठ 6 का शेष)

बिना जीवोत्पाद उपादान रूपी आत्मा के जीवधारियों का जन्म नहीं हो सका। इसलिए उस अत्यन्त सूक्ष्म को जीवात्मा कहते हैं। उसका परिमाण परमात्मा से स्थूल और परमाणु से अत्यन्त सूक्ष्म और शक्तिशाली है।

आत्मा को वेदों में अनेक स्थानो मे ज्योति कहा है । यथा- **ध्रुव ज्योति निर्हित दृश्येकर्म्** (ऋ 6 9 5)=दर्शन के लिए सुखकारी अविनाशी ज्योति (शरीर मे) है अत निरुक्तनय से आत्मा देव है। मन और इन्द्रियो को यजुर्वेद (34 1) में ज्योति कहा है-ज्योतिषा ज्योतिरेकम्=जो (मन) ज्योतियो मे प्रधान ज्योति है अत मन तथा इन्द्रिया भी देव हैं । इस दृष्टि से मन्त्र का भाव हुआ-**आत्म देव के प्रयाण के पीछे सभी देव चले जाते हैं, मानो इसने सब पार्थिव लोको को माप रखा है और वही इनका गतिदाता है। जीवित तथा मृत शरीर के देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है । आत्मा के निकल जाने पर आख नाक कान आदि सभी इन्द्रिया चली जाती हैं। अब आखें देखने का कार्य नहीं करती। कान सुनते नहीं नाक सूघती नहीं, रसना स्वाद नहीं लेती। स्पर्श अब सर्दी-गर्मी का पता नहीं देता ।**

अत उसे शरीर से पृथक होते हुए किसी ने नहीं देखा और न कोई यन्त्र उसे पकड सका। डाक्टर ने जवाब दे दिया कि शरीर के सभी उपकरण बन्द हो गए। वह कैसा अदृश्य जीवन शक्ति था जिसे आज तक वैज्ञानिको के पास ऐसा कोई यन्त्र ही नहीं अविष्कार हुआ कि उसे पकड कर मृत को जीवित किया जा सके । किन्तु कुछ ऐसी घटनायें हुई हैं कि मृत घोषित व्यक्ति पुनर्जीवित हो गया जब ऐसा होता तो डाक्टर लोग प्रकृति की देन कह देते हैं । इससे प्रमाणित हो जाता है कि वह जीवात्मा था जो शरीर को पुन प्राप्त हो गया। इस सम्बन्ध मे वेद ने पहले ही कह दिया कि-

पुनर्मन पुनरायुर्मऽआगन्पुन प्राण पुनरात्मा मऽआगन पुनश्चक्षु पुन श्रोत्र मऽआगन् । वैश्वानरो ऽ अदब्धस्त नूपाऽअग्निर्न पातु दुरितादवद्या। (यजुर्वेद 4 15)

अर्थात् मुझे पुन मन तथा आयु प्राप्त हो पुन प्राण तथा आत्मा प्राप्त हो पुन नेत्र और श्रोत्र प्राप्त हो । पुन जठराग्नि शरीर का रक्षक और अविचल होकर हमारी रक्षा करे तात्पर्य यह है कि यदि आत्मा किसी भी कोश मे विद्यमान है तो प्रयत्न करने पर मृत घोषित मानव पुन जीवित हो सकता है। यदि आत्मा का परिमाण न होता तो उसे जागृत स्वप्न सुषुप्ति प्राप्त न होती और सबसे बडी बात यह है कि प्राणियों का जन्म ही नहीं होता। इसलिए उसका परिमाण है तभी उनका जन्म होता है और पूर्व कर्मानुसार सस्कार स्वभाव के साथ आयु और भाग का कारण शरीर गठन के साथ लाता है।

जिस प्रकार बिना दृष्टि शक्ति के आख रहते देख नहीं सकता उसी प्रकार बिना आत्मा के शरीर रहते उसके स्नायु सक्रिय नहीं हो सकते

उस महान् सूक्ष्म शक्तिशाली आत्मा को जानन के लिए इस नाचते हुए ससार मे लिप्त मन उसे नहीं समझ सकता । विषय वासना में फसा हुआ मन उसे नहीं जान सकता। धनी लाग भी उसे नहीं जान सकते। अत परिवतनशाल मन उसे नहीं देख सकता उस आत्मा को वही देख सकता है जिसन **यम नियम** का पालन करते हुए अष्टागयोग द्वारा अपन मन बुद्धि अनुभव को हृदय अथवा भृकुटा किसी एक स्थान मे किसी विशष मन्त्र द्वारा उसक जप ज्ञान मे उन तीनो को केन्द्रित करने लगता है तभी जब चित्त एकाग्र हाने लगता है ता उसके साथ प्राण भा स्थिर होने लगता है क्योकि उन दानो मे से किसी एक को राकन स उसका साथी भी रुकने लगता है और जब दोनो दैवी शक्तिया आपस मे मिलता हैं ता उसे उस इन्द्र आत्म ज्योति का दशन हान लगता है । यह ध्यान बडी साधना की चीज है । ध्यान क्या है उस हम पुन बता रहे है। **ध्यान निर्विषय मन ।** (साख्य दशन 6 25) मन की वह दशा जब उसमे आख नाक आदि इन्द्रियों से प्रतीत होने वाल विषय न हो वह ध्यान है। आख नाक कान आदि इन्द्रिया मूद दा इनका व्यवहार राक दा मन का भा रिक्त कर दा तब उस हृदय गुहा मे रहन वाले अधूम अग्नि (आत्मा) क दशन हाग

जनजाति बाहुल्य डूगरपुर जिले के गांवों में हुआ वेद प्रचार

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर द्वारा सचालित वेद प्रचार मण्डल के तत्वावधान मे श्री दयानन्द सत्यार्थी उपदेशक एव श्री शिवपाल आर्य भजनोपदेशक द्वारा 17 फरवरी से 7 मार्च तक जिला डूगरपुर के सगैदा बुचिया खडगदा सागवाड गामडा वामनिया घटाद नन्दोर जेठाना आदि ग्रामो में महर्षि का सन्देश देकर वेदो की गूज मचाई । इस प्रचार मण्डली ने उक्त ग्रामो के विद्यालयो मे छात्र छात्राओ को प्रथम बार दयानन्द का सदेश पहुचाया । कुछ ग्रामो में श्रद्धालुओ ने अपने परिवारों या सामुदयिक स्थानो पर यज्ञ एव भजनोपदेश आयोजित करवाये। रात्रि वेला मे सभी ग्रामो मे प्रचार मडली के द्वारा सार्वजनिक स्थानो पर भजन प्रवचन एव दयानन्द जी की जीवनी का वीडीओ चलचित्र प्रदर्शित किया। वेद प्रचार वाहन के माध्यम से लगभग 3000/ रुपए का वैदिक साहित्य विक्रय किया गया । विभिन्न ग्रामो के नौ व्यक्तियो ने वेद प्रचार मडल की सदस्यता ग्रहण की। —स्वामी तत्वबोध सरस्वती

पुरोहित की आवश्यकता

आर्य समाज जी टी रोड फिरोजपुर छावनी को एक सुयोग्य पुरोहित की आवश्यकता है। वेतन योग्यता अनुसार दिया जाएगा । सम्पर्क करें —मनोज आर्य मन्त्री

रामायण इतिहास है कपोल कल्पना नहीं

□ श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक, अध्यक्ष वैदिक संस्थान, नजीबाबाद

25 जनवरी 1975 ई को कलकत्ता नगर मे एशियाटिक सोसाइटी द्वारा आयोजित सभा मे भाषण करते हुआ डा श्री सुनीति चटर्जी ने कहा कि "कवि बाल्मीकि ने बोद्ध साहित्य के दशरथ-जातक से प्रेरणा प्राप्त कर राम की कथा लिखी थी।" आपने अपने भाषण मे यह भी कहा है कि "ईसा के जन्म से 500 वर्ष पूर्व रामायण लिखी गइ और ईसा की मृत्यु के बाद दूसरी शताब्दी मे रामायण को वर्तमान रूप मिला ।"

आपने और भी अनेक अनर्गल बाते कहीं । बौद्ध साहित्य के उदाहरण से आपने दशरथ को वाराणसी का राजा और सीता को राम की बहन बताया तथा यह भी कहा कि दशरथ की दो रानिया कौशल्या और कैकेई थी। आपका कहना है कि बाल्मीकि ने रामायण को विस्तृत रूप दिया । हमारा यह कहना है कि बौद्ध मत केवल 2500 वर्ष का है और रामायण-

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपस क्षयात् राम दाशरथि प्राप्य सगण: क्षयमीभिवान्॥ वायु पुराण उत्तरार्द्ध अध्यान 9, श्लोक 48

अर्थात् 24वे त्रेतायुग मे रावण का सामर्थ्य क्षीण हुआ और तब दशरथ-पुत्र राम को प्राप्त होकर वह बन्धु-बान्धवो सहित मारा गया।

इस श्लोक के अनुसार रामायण 24वे त्रेतायुग की घटना है । जब 28वीं चतुर्युगी है । इस प्रकार इस 28वीं चतुर्युगी के त्रेतायुग तक रामायण काल को चार चतुर्युगी पूरी-पूरी बीत गयीं । यदि हम यह मान लें कि रामायण की घटना 24वीं चतुर्युगी के त्रेतायुग के इतने अन्त में हुई थी कि तब उसका एक दिन भी शेष नहीं रह गया था, तब भी उस चतुर्युगी से अब तक चार द्वापर, चार कलियुग, चार सतयुग और त्रेतायुग लगा कर चार तो पूरी चतुर्युगी और इस चतुर्युगी (28वीं) का द्वापर सम्पूर्ण तथा कलियुग का अब तक का समय रामायण काल का बीत चुका।

काल गणनानुसार कलियुग 4 32, 000 सहस्त्र वर्ष का होता है और क्रमश· द्वापर इससे दो गुणा, त्रेता तीन गुना और सतयुग चार गुणा होता है। इस प्रकार चार युगो का काल 43 20 000 सहस्त्र वष को चार से गुणा करने पर चार चतुर्युगियो का काल ,72 80 000 सहस्त्र वष होता है। यह अवधि इस चतुर्युगी के त्रेता के अन्त के साथ पूरी हा चुकी । इसमे इस अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के त्रेता के पश्चात् का काल अर्थात् द्वापर के 8,64,000 सहस्त्र वर्ष तथा कलियुग के अब तक के बीते हुए 5100 वर्ष और जोड़ देने पर 1,81,49,100 वर्ष रामायण काल को बीत चुके हैं।

बौद्धमत ही अब केवल 2500 वर्ष का है तो बौद्ध साहित्य तो इससे पहला हो ही नहीं सकता । इस दृष्टि से दशरथ-जातक आज तक लगभग दो सहस्त्र धर्म का होगा । इस दो सहस्त्र वर्ष के कथानक के आधार पर रामायण को लिखा बताना नितान्त हास्यास्पद है ।

भारतीय इतिहास के वास्तविक ज्ञान के अभाव के कारण ही श्री चटर्जी ने यह भी कहा कि रामायण ईसा के जन्म के पाचसौ वर्ष पूर्व लिखी गई और ईसा की मृत्यु के बाद दूसरी शताब्दी में उनको वर्तमान रूप दिया गया। क्योंकि बौद्धमत को 2500 वर्ष बीते हैं और ईसा को 1999 वर्ष और आपने बौद्ध साहित्य का दशरत-जातक पढ़ लिया, जब रामायण का आधार उसी को बना बैठे और इसी दृष्टि से आपने रामायण को बौद्धमत के बाद का समय लिया, परन्तु यह नितान्त भ्रान्ति है । वास्तविकता वही है जो हमने ऊपर प्रस्तुत की है । आश्चर्य की बात तो यह है कि आपके मस्तिष्क में यह नहीं आया कि रामायण की घटना की तोड-मरोड कर दी यह कथा "दशरथ जातक" नाम से बौद्ध साहित्य मे लिखी गई है ।

श्री चटर्जी के अनुसार बाल्मीकि कवि ने बौद्ध साहित्य की इस कहानी को विस्तार दे दिया है । हम श्री चटर्जी से कहना चाहते हैं कि वह रामायण को ध्यान पूर्वक पढ़ें । बाल्मीकि रामायण का प्रारम्भ ही बाल्मीकि और नारद संवाद से होता है । महर्षि बाल्मीकि के आश्रम मे देवर्षि नारद आए तो उनसे बाल्मीकि ने पूछा-

कोन्वस्मिन्साम्प्रत लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान्।

धर्मज्ञश्च कृताज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रत:॥

अर्थात् इस समय संसार मे गुणवान, शूरवीर, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ-प्रतिज्ञ कौन है ? इसी प्रकार से अन्य कुछ बाते भी पूछी जो रामायण में इससे आगे के श्लोकों मे वर्णित है । महर्षि-नारद ने ना केवल इन समस्त गुणो से युक्त राम को बतलाया अपितु उनकी अन्य भी अनेक प्रकार से प्रशसायें की ।

उक्त श्लोक के "अस्मिन् साम्प्रत लोके" यह शब्द ध्यान देने योग्य है । साम्प्रत-अस्मित् लोके इस समय इस समार मे इन शब्दो मे बाल्मीकि जी ने अपने और नारद जी के संवाद के समय समाचार पूछा । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि राम उस समय थे। यह ऐतिहासिक वर्णन है न कि काल्पनिक और बाल्मीकि नारद सम्वाद का सन्द ऐतिहासिकता का प्रबल प्रमाण है ।

नारद जी के जाने के बाद महर्षि बाल्मीकि स्नान के लिए तमसा नदी के तट पर पहुंचे । वहाँ उन्होंने क्रौन्च पक्षी के जोड़े को काम-क्रीड़ा करते देखा साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि एक व्याध ने उस जोड़े पर निशाना लगाया तथा जोड़े में से नर-पक्षी मर गया, जिससे क्रोश्च विह्वल हो गई तब बाल्मीकि के मुह से यह श्लोक निकला-

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम: शाश्वती: समा·। यत्क्रौच्च मिथुनादेकमवधी· काममोहितम्॥

अर्थात् हे निषाद ? तूने इस कामोन्मत्त नर-पक्षी को मारा अत: तुझे बहुत काल-पर्यन्त सुख, शान्ति प्राप्ति न हो । यही श्लोक महर्षि के रामायण को इसी (अनुष्टुम) छन्द में लिखने का आधार बना । इस विषय में भी बाल्मीकि रामायण का ही प्रमाण है । महर्षि बाल्मीकि का एक शिष्य जो उस समय उनके साथ में था, ने यह श्लोक कण्ठस्थ कर लिया । स्नान से लौटकर ऋषिवर अपने शिष्यों को कुछ कथाये सुना रहे थे, तभी वहा ब्रह्मा जी आए और उन्होंने बाल्मीकि से कहा कि जैसा आपने नारद जी से सुना है-राम चरित का वर्णन करो।

महर्षि ने राम के जीवन की घटनायें एकत्र की और तब उन्होंने श्लोकबद्ध इतिहास का रूप प्रदान किया । महर्षि बाल्मीकि द्वारा राम-जीवन की घटनाओ का एकत्र करना और महर्षि ब्रह्मा द्वारा उनसे राम चरित के वर्णन की माग करना भी रामायण के इतिहास होने का अकाट्य और प्रबल प्रमाण है । इसमें बाल्मीकि रामायण के ही निम्न श्लोक प्रमाण के लिए प्रस्तुत हैं ।

श्रुत्वावस्तु समग्र तद्धर्मार्थ सहित हितम्। व्यक्तम-वेषते भूयो यद्वृत तस्य धीमत·॥ तत: पश्यति धर्मात्मा तत्सर्व योगमास्थित । पुरा यत्र निवृत्तं पाणावामलक यथा॥ तत्सर्व तत्वतो दृष्टवा धर्मेण स महामति । जभिरामस्य रामस्य तत्सर्व कर्त्त मात·॥ प्राप्त राज्यस्य रामस्य बाल्मीकि भगवानृषि । चकार चरित कृत्सन विचित्र पदमर्थवत्॥

अर्थात् नारद जी से सुने हुए राम के चरित को महर्षि बाल्मीकि ने धर्म-अर्थ से युक्त सर्वजन हितकारी राम के जीवन की घटनाओं का उत्तम प्रकार से अन्वेषण किया। उसके पश्चात उन्होंने एकाग्रचित होकर उन सब चरितों को जो एकत्र कर लिए थे, हथेली पर रखे आवले की भाति देखा अर्थात् उनका एक बार गम्भीर दृष्टि से अध्ययन किया । उन सब वृतान्तों को ठीक प्रकार जानकर महामुनि बाल्मीकि सर्वप्रिय राम के चरित को श्लोकबद्ध करने को उद्यत हुए । राम के राज्य सिंहासन पर आरुढ़ होने के पश्चात् उन्होंने विचित्र पद से युक्त इस सम्पूर्ण ऐतिहासिक काव्य की रचना की ।

इन प्रमाणों के होते हुए रामायण की ऐतिहासिकता का विरोध करना और उसे बौद्ध साहित्य के आधार पर रचा गया तथा बाल्मीकि द्वारा विस्तार दिया गया ग्रन्थ बताना भ्रान्त विचार है। उपर्युक्त प्रमाणों का निष्कर्ष यही है कि रामायण 181, 49, 100 वर्ष पुराना इतिहास है और उसके मूल लेखक महर्षि बाल्मीकि जी ही थे ।

बौद्ध-साहित्य के अन्तर्गत "दशरथ-जातक" के आधार पर ही आपने दशरथ की दो रानियां कौशल्या और कैकेयी बताई। यद्यपि दशरथ की तीन रानियां कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी थी। दशरथ की राजधानी भी आपने वाराणसी को बताया किन्तु वह इतिहास प्रसिद्ध अयोध्या नगरी थी । आपने राम का वनवास में हिमालय पर जाना बतलाया-यद्यपि राम दक्षिण की ओर अयोध्या से प्रयाग, चित्रकूट आदि स्थानों पर होते हुए विन्ध्यांचल के क्षेत्र में जाकर पन्चवटी में कुटी बनाकर रहें। अपने सीता को राम की बहन बतलाया-जिनका राम से इतिहास प्रसिद्ध शिव-धनुष टूटने के कारण विधिवत् विवाह संस्कार हुआ था । यह सब भ्रान्तिया इसलिए हैं कि श्री चटर्जी ने रामायण नहीं पढ़ी । यदि पढ़ी है तो रामायण पढ़ कर भी रामायण के ही प्रमाणों के विरुद्ध इस प्रकार भ्रान्त बातें श्री चटर्जी ने जान-बुझ कर कही हैं तो हमें यह कहने में लेश भी सकोच नहीं कि चटर्जी विदेशियों को शीतयुद्ध की राजनीति के चुंगल मे फंस गए हैं और इस प्रकार पश्चिमीय महत्वकांक्षी दृष्टि कोण के लिए समझ-बूझ कर भारतीय इतिहास को भ्रष्ट करने और एकमेव भावी भारतीय सन्तति को पथ भ्रष्ट करने का गम्भीर तथा अक्षम्य अपराध कर रहे हैं ।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त अन्य अनेक अनर्गल बातें श्री चटर्जी ने अपने भाषण में कही हैं, जिनका वर्णन करके हम लेख का क्लेवर बढाना उचित नहीं समझते किन्तु इतना अवश्य चाहते हैं कि भारतीय जन मानस और भारत सरकार इस विषय में जागरूक रहें और सावधानी बर्तें, कहीं ऐसा न हो कि विदेशियों का शीतयुद्ध जो ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में सदा अपना साम्राज्य बनाए रखने और इतिहास में भारतीयों (आर्य जाति) को अर्वाचीन और पतित सिद्ध करने के लिए प्रारम्भ किया गया था-सफल हो जाए ।

इस समय भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का भय तो नहीं है, किन्तु गौरवपूर्ण जातीय इतिहास के भ्रष्ट होने से भावी सन्तति के भ्रष्ट होने का तो भय है हां । जो जाति ऐतिहासिक रूप से सब से प्राचीन जाति हो और संस्कृतिक रूप से इतिहास में सर्वोच्च स्थान रखती हो यदि स्व-इतिहास के भ्रष्ट होने से आत्म विस्मृत होकर यह पथ-भ्रष्ट हो गई तो यह न केवल भारत भारतीयता की ही अपितु मानवता की भारी क्षति होगी । कारण कि मानवता के सर्वोच्च मापबिन्दु और आदर्श इसी जाति के इतिहास और सांस्कृतिक परम्पराओं में निहित है।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपरा जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि न एन पी 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष ☎ 292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—53 अक 2 सृष्टि सवत 1960853102, 8 अप्रैल 2001 दयानन्दाब्द 178

सुख और दुःख—जीवन रूपी सिक्के के दो पहलू

❑ आचार्य डॉ. सजय देव, आर्य समाज मल्हारगज, इन्दौर, (म प्र)

जो कुछ हमें अच्छा लगता है वह हमें सुख देता है। इसके विपरीत जो हम अच्छा नहीं लगता वह दु ख का कारण बनता है। यह भी निश्चित है कि जीवन मे वही सब कुछ नहीं घटता जो हम चाहते हैं। जो कुछ हमारे न चाहने पर घटता है वही हमें दु ख देता है। लेकिन यदि हमे मनचाहा प्राप्त नही हुआ है तो बुद्धिमत्ता इसी मे ही है कि जो कुछ हमे प्राप्त है उसे मनचाहा बना लें। दार्शनिक ह्यूम के अनुसार वह सुखी है जिसकी परिस्थितिया उसके स्वभाव के अनुकूल है। लेकिन वह और भी सुखी है जो अपने स्वभाव को परिस्थितियो के अनुकूल बना लेता है।

मनुष्य जीवन घडी के पेण्डुलम की भाति सुख और दु ख के मध्य झूलता रहता है। उस पर कभी सुख की वर्षा होती है तो कभी दु ख उसे जकड लेते हैं। यह भी विचित्र बात है कि अधिक सुख की अभिलाषा हो दु ख का प्रमुख कारण है। जिस प्रकार बहुत सारे रग किसी चित्र को बदरग बना देते हैं उसी तरह बहुत अधिक सुख सामग्री जीवन को दुखी बना देती है।

वस्तुत जीवन एक वीणा की भाति है एव सुख और दु ख उसके दो राग हैं यह जीवन जीने वाले पर निर्भर करता है कि वह वीणा पर कौन सा राग बजाना चाहता है। यदि हम दु ख का राग अलाप रहे हैं तो दोष वीणा का नहीं हमारा है। महाकवि कालिदास का कथन है कि किसी को केवल सुख या एकमात्र दु ख नहीं मिलता। दु ख और सुख रथ के पहिये की भाति कभी ऊपर और कभी नीचे रहा करते है।

प्रत्येक व्यक्ति की यह आकाक्षा एव अभिलाषा होती है कि उसके पास सुख सुविधा के साधन हों तथा उसका जीवन सुख और चैन से व्यतीत हो। सब सामान रूप से सुखी हो यह समय और समाज की पुकार है। हम सब अपनी कल्पना के स्वर्ग को साकार कर अधिकतम सुख प्राप्त करना चाहते हैं। कौन ऐसा व्यक्ति है जो स्वर्ग की अवतारणा करके स्वर्णिम प्रभात के दर्शन करने का अभिलाषी न हो? व्यक्ति की स्थिति यह है कि जो कुछ हमारे पास नहीं है, हम उसके लिए लालायित रहते हैं, और जो कुछ उपलब्ध है उसका सम्यक् उपयोग एव उपभोग नहीं कर पाते हैं। तब क्या सुख चैन या स्वर्ग का जीवन अलभ्य है? स्वर्ग को बैकुण्ठ भी कहा गया है। अर्थात् जहा किसी तरह की कुठा न हो। तब क्या कुण्ठारहित जीवन कल्पना की वस्तु है?

सुखी एव प्रसन्न जीवन का आधार धन या पद नहीं है। इसे वर्तमान स्थिति से सगति रखते हुए सतुष्ट रहने एव उपलब्ध साधनो का सदुपयोग करने मे पाया जा सकता है। इन्हीं दो आधारो पर उच्चतर भविष्य के लिए प्रयत्न परिश्रम एव पुरुषार्थ भी सम्भव है। अपनी आजीविका के लिए कठिन सघर्ष करने वाले एव विषम परिस्थितियो से जूझने वाले अनेक लोगो के चेहरो पर सुख एव सतोष की आभा दिखाई देती है जबकि अपेक्षाकृत अधिक सुविधा सम्पन्न परिस्थितियो मे रहने वाले लोग दुखी और दुर्भाग्यपूर्ण जीवन जीते हैं। ऐसा क्यो? दरअसल सुखी एव प्रसन्न जीवन के रास्ते मे परिस्थितिया बिल्कुल भी बाधक नहीं हैं। मन स्थिति ही सन्तोष एव असन्तोष को जन्म देती है। सन्तुष्टि जहा वर्तमान परिस्थितियो को पूरी तरह स्वीकार करने का भाव उत्पन्न कराती है वही असन्तुष्ट मन सदा अपनी कमियो को देखकर उद्विग्नता पैदा करता है। सुख की खोज मे असन्तुष्ट मन की व्यथा प्रकट करते हुए टैगोर कहते है नदी का यह किनारा आह भरकर कहता है कि सामने के दूसरे किनारे पर ही सारे सुख है यह मैं अच्छी तरह जानता हू। सामने वाला किनारा पहले वाले से भी ज्यादा आह भरकर कहता है कि जगत् मे जितना सुख है वह सारा उस दूसरे किनारे पर है।

जो अपने वर्तमान से असन्तुष्ट है उसे दुर्भाग्य पूर्ण एव अभावग्रस्त समझते हैं उससे सामजस्य नहीं कर पा रहे हैं साधन एव सुविधाओ के लिए रोना रोते हुए व्यग्र रहते है। वे एक उच्चतर भविष्य के लिए प्रयत्न किस प्रकार कर सकते हैं? उज्जवल भविष्य के लिए सन्तुलित चित्तवृत्ति स्थिर बुद्धि प्रसन्न मन स्थिति एव उपलब्ध साधनो मे विश्वास की आवश्यकता होती है अभावात्मक सोच एव असीमित इच्छाए असन्तोष का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इच्छाओ के भवर मे फसा व्यक्ति अपने आस पास बिखरे सुखो को नही देख पाता और दुखी होता है। इच्छाए अनन्त हैं और उसी तरह दु ख भी अनन्त हैं। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा है कि जीवन मे केवल दो ही स्थल दु खपूर्ण होते हैं। पहला इच्छाओ की पूर्ति हो जाना और दूसरा इच्छाए अपूर्ण रह जाना वास्तव मे वे लोग बहुत सौभाग्यशाली हैं जो अपनी इच्छाओ एव सामर्थ्य के बीच व्याप्त खाई की चौडाई को शीघ्र जान लेते हैं अन्यथा चादर से अधिक पैर फैलाने वालो को दु खी रखा गया है स्वामी विवेकानन्द के अनुसार इच्छाओ का समुद्र सदा अतृप्त रहता है उसकी माग ज्यो ज्यो पूरी की जाती है त्यो त्यो वह अधिकाधिक गर्जन करता है

खुशिया अथवा सुख परमात्मा की ऐसी देन हैं जो सम्पूर्ण जीवन मार्ग पर बिखरे पडे है जो लोग मजिल पर पहुच कर खुशिया तलाशने को बेताब है वे निराश और दुखी होते हैं जीवन का हर पल खुशनुमा है इसे खुशी मे जीए जीवन का हर क्षण आनन्द से परिपूर्ण है इसका अमृतपान करे आनन्द के गीत गाए उल्लास से झूम और दु ख या गम को दफन कर दे

श्री प. मनोहर लाल जी आर्य को भ्रातृ शोक

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर के कार्यकर्त्ता श्री प मनोहर लाल जी आर्य के बडे भाई श्री चमन लाल जी का 22 मार्च 2001 को देहावसान हो गया प्रथम अप्रैल को अन्तिम शोक दिवस के अवसर पर डा श्रुति कान्त जी ने यज्ञ करवाया तथा यज्ञ के महत्त्व को बताया। आए हुए सैंकडो महानुभावो ने उन्हे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की और सद्गति के लिए परमात्मा से प्रार्थना की

ईश्वर का स्वरूप और स्वामी दयानन्द

लेखक—श्री मनमोहन कुमार आर्य, 196, ब्लाक-2 चुक्खूवाला देहरादून

महाभारत युद्ध के पश्चात् भारत (आर्यावर्त) सहित पूरे विश्व मे अज्ञान फैल गया और सर्वत्र नाना प्रकार के अन्धविश्वास, कुरीतिया तथा मत-मतान्तर उत्पन्न हो गए । ईश्वर का सत्य स्वरूप भी इस काल मे विकृत एवं विलुप्त हो गया। लगभग 2500 वर्ष पूर्व स्थापित बौद्ध व जैन मतो ने ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं किया और ईश्वर पूजा के विकल्प के रूप मे इन्होंने अपने महापुरुषों की मूर्तियो की पूजा आरम्भ कर दी। इनके प्रभाव से आर्य अथवा हिन्दू जाति ने भी मूर्ति पूजा को अपना लिया और ऐतिहासिक पुरुषो, राम व कृष्ण आदि की मूर्तियो की पूजा आरम्भ हो गई। कालान्तर मे स्वामी शंकराचार्य जी द्वारा शास्त्रार्थ में बौद्ध एवं जैन मतो को परास्त कर अद्वैत मत अर्थात् जगत मे केवल ईश्वर का ही अस्तित्व है, का प्रचार रहा इसमे भी नाना त्रुटियां रहीं।

महाभारत काल के लगभग 5000 वर्षो के पश्चात् स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले व्यक्ति थे जिन्होने अपने समय मे ईश्वर के अस्तित्व एव स्वरूप के विषय मे मिथ्या भ्रमो को दूर कर ईश्वर के सच्चे स्वरूप का प्रकाश एव प्रचार किया । अवतारवाद, मूर्तिपूजा एव ईश्वर की स्थान विशेष पर उपस्थिति आदि मान्यताओं के सर्वथा विपरीत ईश्वर के सच्चे स्वरूप का प्रकाश स्वामी जी ने आर्य समाज के दूसरे नियम मे किया है। इस नियम के अनुसार ईश्वर सत्य-चित्त आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा अनन्त निर्विकार, अनादि, अनुपम अजर, अमर अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। इसी नियम मे स्वामी जी उक्त स्वरूप वाले ईश्वर की उपासना आवश्यक प्रतिपादित करते हैं । अन्यत्र स्वामी जी ईश्वर को सयोग-वियोग से सर्वथारहित निरवयव, सर्वत्र एक रस एक समान, अखण्डित, अद्वितीय केवल एक स्वीकार करते हैं एव अपनी मान्यताओ के समर्थन मे अनेक तर्क एवं प्रमाण देते हैं यह उल्लेखनीय है कि स्वामी जी वेद को स्वत प्रमाण एवं अन्य शास्त्रों के वेदानुकूल वचनों को परत: प्रमाण स्वीकार करते हैं ।

अपने ग्रन्थों, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका एवं सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने चारों वेदों की रचना पर प्रकाश डालते हुए अकाट्य प्रमाण एवं तर्क प्रस्तुत कर इन्हें ईश्वर से उत्पन्न सिद्ध किया है। उनका एक तर्क यह है कि सृष्टि के आरम्भ में यदि परमात्मा बड़ी संख्या में मनुष्यो को उत्पन्न कर उनमें से आदि चार ऋषियों, अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को उनकी अन्तरात्माओं मे अपने अन्तर्यामी-स्वरूप से वेदों का अर्थ सहित ज्ञान न देता तो आज तक न तो मनुष्य किसी भाषा की रचना ही कर पाता और न ही किसी और प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर पाता जिसके परिणामस्वरूप सारी मनुष्य जाति सृष्टि की शेष अवधि तक के लिए ज्ञान शून्य एवं भाषा रहित होती। यह बात विगत अनेक वर्षों मे किए गए प्रयोगों एवं मानवीय स्वभाव के आधार पर अध्ययन के निष्कर्षो से स्पष्ट है । यह तो सभी जानते ही हैं कि आज की सारी भाषाये किसी अन्य या कई भाषाओं के मिश्रण व समय के साथ परिष्कृत होकर अस्तित्व में आई हैं । पीछे चलते-चलते निश्चित ही सस्कृत व वेद भाषा पर पहुंच कर भाषा की उत्पत्ति की यात्रा विराम लेती है जो निश्चय ही ईश्वर कृत है अन्यथा सृष्टि की प्रथम अथवा आदि भाषा मे निर्दोष अक्षरमाला, व्याकरण के नियमों, स्वरों व छन्दो में आबद्ध, सरल एवं अर्थगाम्भीरीय जैसे गुणों का होना मनुष्य की अल्पज्ञता एवं सीमित सामर्थ्य के कारण सम्भव नहीं है।

अपनी इसी मान्यता के कारण स्वामी जी आर्य समाज के तीसरे नियम में वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक प्रतिपादित कर वेद का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना सभी मनुष्यों के लिए अनिवार्य करते हैं। यहा यह भी स्पष्ट करना समीचीन होगा कि स्वामी जी की मातृ-भाषा गुजराती थी और उनका सारा अध्ययन संस्कृत भाषा में वेद एव इतर संस्कृत साहित्य पर आधारित था। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वामी जी के ईश्वर सहित अन्य सभी विषयों पर विचार वेदों एवं वैदिक साहित्य पर ही पूर्णत: आधारित थे। स्वामी जी के समवर्ती एवं पूर्ववर्ती वैदिक, पौराणिक, वेदान्ती एवं अन्य स्वदेशी व विदेशी मत के प्रवर्तकों की भांति उनके ग्रन्थों, प्रवचनों, शास्त्रार्थों आदि में व्यक्त विचारों में कहीं भी विरोधाभास नहीं है। स्वामी जी के जीवन का यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है ।

यद्यपि आर्य समाज के दूसरे नियम में ईश्वर के विषय में स्वामी जी की मान्यता व्यापक एवं प्राय: पूर्ण है फिर भी स्वामी जी के साहित्य में अन्यत्र उपलब्ध विचारों से उनकी इन मान्यताओं की पुष्टि, विशदीकरण एवं स्पष्टीकरण उपलब्ध होता है। "स्वमन्तव्या-मन्तव्यप्रकाश" स्वामी जी का एक लघु ग्रन्थ है जिसमें स्वामी जी वेदादि सत्यशास्त्रों एवं ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ, जिन्हें स्वामी जी भी स्वीकार करते थे, सर्व साधारण के लाभार्थ प्रकाशित किए। ईश्वर के सम्बन्ध में स्वमन्तव्यों का प्रकाश करते हुए स्वामी जी इस ग्रन्थ में लिखते हैं कि-"ईश्वर, कि जिसको ब्रह्मा, परमात्मादि नामो से पुकारते हैं, जो सच्चिदानन्द (सत्य-चित्त-आनन्द) आदि लक्षण युक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता, आदि लक्षण युक्त परमेश्वर है, उसी को मानता हूं।" यहां ईश्वर को सृष्टि का कर्ता, धर्ता एवं हर्ता तथा जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फल दाता कृतित्व दूसरे नियम में प्रयुक्त सृष्टिकर्ता एवं न्यायकारी विशेषणों का ही स्पष्टीकरण है ।

आर्योद्देश्यरत्नमाला स्वामी जी का एक अन्य लघु ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में, स्वामी जी ने ईश्वर से आरम्भ कर धर्म, अधर्म, पुण्य, सत्य भाषण, मिथ्या भाषण एवं नमस्ते आदि 100 विषयों को परिभाषित किया है। ईश्वर को परिभाषित करते हुए स्वामी जी ने लिखा है- "जिसके गुण-कर्म-स्वभाव और स्वरूप सत्य ही है, जो केवल चेतन मात्र वस्तु है तथा जो एक, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान, निराकार, सर्वव्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुण वाला है, और जिसका स्वभाव अविनाशी है, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका काम जगत की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना, तथा सर्व जीवों को पाप पुण्य के फल ठीक-ठाक पहुंचाना है, उसको "ईश्वर" कहते हैं ।"

स्वामी जी ने अपने विस्तृत वैदिक एवं इतर संस्कृत साहित्य के अध्ययन से जनसामान्य को सृष्टि में विद्यमान सत्य से परिचित कराने के लिए एक अनुपम ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की आर्य भाषा हिन्दी में रचना की है। 14 समुल्लास (अध्याय) वाले इस ग्रन्थ के पहले समुल्लास में स्वामी जी ने ईश्वर के विभिन्न एक सौ नामों की व्याख्या कर यह सिद्ध किया है कि ओ३म् के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु व शिव आदि नाम ईश्वर के गौणिक (गुण वाचक) नाम हैं। ओ३म् को स्वामी जी ईश्वर के निजनाम के अतिरिक्त सर्वोत्तम एवं प्रधान नाम बताते हैं। ओ३म् शब्द जो अ, उ, म, ३ अक्षरों के संयोग से बना है, स्वामी जी लिखते हैं कि आकार से विराट, अग्नि, विश्वादि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तैजसादि तथा मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक एवं ग्राहक है तथा प्रकरणानुसार यह सभी नाम परमेश्वर के हैं। ऐसा स्वामी जी का तर्क सम्मत मत है।

सत्यार्थ-प्रकाश के ही सातवें समुल्लास में स्वामी जी ने ईश्वर विषयक प्रश्न-उत्तर, ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना-उपासना, ईश्वरीय ज्ञान के प्रकार, ईश्वर का सगुण-निर्गुण कथन एवं वेद के विषयों पर विचार व्यक्त किए हैं। इस समुल्लास के आरम्भ मे स्वामी जी ऋग्वेद के 4 तथा यजुर्वेद का 1 मन्त्र उद्धृत कर लिखते हैं कि ईश्वर सब दिव्य गुण-कर्म-स्वभावयुक्त है और उसी में पृथिवी-सूर्यादि लोक स्थित हैं। ईश्वर आकाश के समान व्यापक, सब देवों (पृथिवी), अग्नि, जल, विद्युत, आकाश आदि 33 (देवों) का देव परमेश्वर है । उसको न जानने, न मानने और और ध्यान न करने वाले मनुष्य ही नास्तिक हैं और ऐसे मनुष्य दुखी होते तथा उसी परमेश्वर को जान कर सुखी होते हैं । स्वामी जी के अनुसार वेदों में कहीं नहीं लिखा है ईश्वर अनेक है,

(शेष पृष्ठ 4 पर)

सम्पादकीय.....



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार का उत्सव प्रति वर्ष वैशाखी के अवसर पर होता है इस वर्ष भी 10 से 12 अप्रैल तक हो रहा है । इस बार सबसे बड़ी बात यह है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा इस समय गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय के कुलाधिपति हैं। इसलिए पंजाब के सभी आर्य बन्धुओं के लिए यह बड़ी प्रसन्नता की बात है क्योंकि कई वर्षों के पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति बने हैं। इसलिए पंजाब की सभी आर्य समाजों के अधिकारियों को अधिक से अधिक संख्या में गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर पहुचंना चाहिए और वहां जाकर अपने प्रधान का स्वागत करना चाहिए।

10 अप्रैल को गुरुकुल में सैनेट की मीटिंग होगी और सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा शपथ ग्रहण करेंगे। इसके साथ ही सम्मान समारोह होगा। 11 अप्रैल को गुरुकुल का सारा स्टाफ पण्डित जी का सम्मान करेगा । 12 अप्रैल को गुरुकुल का विशेष समारोह होगा। इसलिए मेरी पंजाब की सभी आर्य समाजों के अधिकारियों से प्रार्थना है कि वह भारी संख्या में गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर अवश्य पहुंचे ।

जैसा कि पंजाब के सभी आर्य बन्धुओं को पता है कि गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने की थी और वह पंजाब के रहने वाले थे बल्कि पंजाब के ही नहीं विशेष रूप से जालन्धर के ही रहने वाले थे। इस लिए हमारा जालन्धर निवासियों का तो विशेष कर्त्तव्य बनता है कि हम सब गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय की उन्नति के लिए कार्य करें ।

इसलिए सभी आर्य बन्धुओं को सभा प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा सभा प्रधान जी को अपना पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिए । सभी आर्य बन्धु इस बार गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर अवश्य पहुंचे ।

-देवेन्द्र नाथ शर्मा, रजिस्ट्रार

हृदयोदगार

ज्ञान गुण सागर सुनागर प्रसन्न मन,
दयानन्द ऋषि के अनुयाई वैदिक धर्मा हैं ।
परम सुधारक विचार जन जन प्रिय,
हृदया औदार्य और श्रेष्ठ शुभ कर्मा हैं ॥
सत्य के पुजारी व्रतधारी प्रभु भक्त,
तन मन से रखते ऊंचे ही अरमां हैं ।
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के,
पुनः प्रधान चुने श्री हरबंश लाल शर्मा हैं ।

-स्वरूपानन्द सरस्वती
15 हनुमान रोड, नई दिल्ली

आर्य बन्धु ध्यान दें

हमारे पास कई आर्य समाजों से समाचार आ रहे हैं कि 26 मार्च को सभी स्थानों पर आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया गया है। हमारे लिए यह प्रसन्नता की बात है । इस बार मुम्बई में भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन 23 से 26 मार्च तक सम्पन्न हुआ जिसमें देश-विदेश के कई हजार आर्य बन्धु इस सम्मेलन में मुम्बई पहुंचे थे । पंजाब से भी बहुत से आर्य बन्धु वहां पहुंचे थे। सभा अधिकारी भी वहां गए थे। मैं सभी का धन्यवाद करता हूं जिन्होंने पंजाब से मुम्बई पहुंच कर पंजाब का नाम रोशन किया है । परन्तु हमें यह सम्मेलन कर लेने व आर्य समाज स्थापना दिवस मना कर ही चैन से नहीं बैठ जाना चाहिए बल्कि कुछ और अधिक करने के लिए तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए ।

प्रत्येक आर्य समाज की ओर से समारोह होने होने चाहिएं। प्रत्येक आर्य समाज अपने उत्सव की तिथियां निश्चित करे । पहले प्रत्येक आर्य समाज में उत्सव व समारोह सम्पन्न हों फिर जिला स्तर पर और फिर तीन-चार जिलों को मिलाकर और उसके बाद प्रान्तीय स्तर पर सम्मेलन किया जाना चाहिए।

इसलिए पंजाब की सभी आर्य समाजें व आर्य बन्धु इस ओर ध्यान दें और अभी से कार्य आरम्भ कर दें । मैंने पहले भी प्रार्थना की थी कि वेद प्रचार की ओर ध्यान दें पुनः भी मेरी सभी आर्य बन्धुओं से प्रार्थना है कि शीघ्र अति शीघ्र इस ओर ध्यान दें और बिना इंतजार किए अपना कार्य आरम्भ कर दें। मेरी सभा के सभी अधिकारियों व अन्तरंग सदस्यों से भी प्रार्थना है कि वह अपने-अपने क्षेत्र की आर्य समाजों के अधिकारियों से सम्पर्क करें और उनको वेद प्रचार के के कार्य के लिए प्रेरित करें ।

-हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

आर्य मर्यादा का शुल्क भेजें

जैसा कि पाठकों को पता है कि आर्य मर्यादा पर काफी देर तक संकट छाया रहा परन्तु अब कुछ ठीक कार्य हो रहा है और आर्य मर्यादा निरन्तर प्रकाशित हो रहा है। अभी भी हमें इस पर एक रुपए प्रति पोस्टेज लगाना पड़ रहा है। इससे पूर्व दो रुपए प्रति लगा कर भी हम ग्राहको को यह पत्रिका पोस्ट करते रहे है। इस प्रकार वर्ष भर में 52 सप्ताह होते है और हमने गत वर्ष में 60 रुपए ऊपर केवल पोस्टेज का खर्च किया है जबकि इसका शुल्क मात्र 50 रुपए है परन्तु हमें दुख के साथ लिखना पड़ रहा है कि बहुत से आर्य बन्धु ऐसे हैं जिन्होंने आर्य मर्यादा का पिछला शुल्क अभी तक सभा कार्यालय में नहीं भेजा ।

इसलिए मेरी आर्य मर्यादा के सभी ग्राहक महानुभावो से प्रार्थना है कि वह अपना पिछले वर्षों का शुल्क शीघ्र अति शीघ्र सभा कार्यालय में बैंक ड्राफ्ट या मनि आर्डर द्वारा भेजने का कष्ट करें ।

-के.के. पसरीचा, सभा कार्यकर्त्ता प्रधान

(पृष्ठ 2 का शेष)

परन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है । इससे एक से अधिक ईश्वर होने की सारी सम्भावनाओं पर स्वामी जी ने पूर्ण विराम लगा दिया है ।

स्वामी जी ईश्वर व देवता को पयार्यवाची न मानकर परस्पर पृथक मानते हैं और लिखते हैं कि वेदों के अनुसार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनजय और जीवात्मा तथा सवंत्सर के 12 महीने इन्द्र और प्रजापति यह कुल 33 पदार्थ दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण देवता हैं । ईश्वर इनका स्वामी और सबसे बडा होने के कारण चौंतीसवां उपास्यदेव है ।

सत्यार्थ प्रकाश के इसी समुल्लास मे स्वामी जी ने ईश्वर को प्रत्यक्ष कराया है । उनके अनुसार ईश्वर इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। आगें स्वामी जी ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात लिखी है। वह कहते हैं कि जब जीव चोरी आदि बुरा कार्य करता है तो उसी क्षण मे आत्मा के भीतर से बुरे काम करने मे भय, शंका और लज्जा और अच्छे कर्मों के करने मे अभय, निःशकता और आनन्दोत्साह उठता है । आत्मा में बुरे कार्य के प्रति भय, शंका व लज्जा तथा अच्छे कार्य के प्रति निर्भयता आनन्द व उत्साह परमात्मा के द्वारा उत्पन्न किया जाता है। आत्मा मे उत्पन्न यह भय एवं उत्साह आदि ईश्वर की उपस्थिति का प्रत्यक्ष प्रमाण है जो प्रत्येक व्यक्ति के नित्यप्रति के अनुभवो से सिद्ध है। स्वामी जी के अनुसार जीवात्मा द्वारा शुद्धान्तःकरण से योगी की भाति समाधिस्थ होकर आत्मा व परमात्मा का विचार करने से ईश्वर व जीवात्मा, दोनो ही प्रत्यक्ष हो जाते हैं एवं इस अवस्था के पश्चात् ईश्वर के अस्तित्व के प्रति शका का कोई स्थान नहीं रहता ।

मनुष्य शरीर मे आत्मा के स्थान को लेकर भी विद्वानों मे मतभेद है। अनेक विद्वान् आत्मा को मस्तिष्क मे मानते हैं । अपने योग व ईश्वर प्रत्यक्ष करने के अनुभव के आधार पर जीवात्मा का मनुष्य शरीर मे स्थान का समाधान महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के उपासना विषयक अध्याय में किया है। वह लिखते हैं-"कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त है, उसमें कमल के आकार वेश मे अर्थात् आकाश रूप एक स्थान है, और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान परमात्मा बाहर-भीतर एक रस होकर भर रहा है, वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच मे खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान व मार्ग नहीं है।"

ईश्वर के जो विशेषण स्वामी दयानन्द जी ने आर्य समाज के नियम में सूत्रबद्ध किए हैं उन पर उठ सकने वाली सभी शंकाओं को प्रश्न रूप में प्रस्तुत कर उनका समाधान सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में किया है । इसी प्रसंग में स्वामी जी ने ईश्वर स्तुति, प्रार्थना व उपासना का प्रयोजन एवं लाभ बताते हुए लिखा है कि स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण-कर्म-स्वभाव से अपने गुण-कर्म-स्वभाव का सुधरना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है। आगे चल कर स्वामी जी ने उपासना से लाभान्वित करने से कृतघ्नता के कलंक को बड़े ही मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत किया है जो स्वाध्यायशील पाठकों एवं साधकों को निरन्तर उपासना के प्रति सावधान एवं जागरूक रखता है। स्वामी जी के शब्द हैं-"जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष व दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं । इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे इसका फल पृथक होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायंगा और सबको सहन कर सकेगा । क्या यह छोटी बात है । और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिए दे रखे हैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर को न मानना "कृतघ्नता" और मूर्खता से कम नहीं है।" स्वामी जी ने अपने पूना प्रवचनों में कृतघ्नता को महा पाप की संज्ञा दी है। लोकोक्तियों में कृतघ्नता की निन्दा करते हुए यहां तक कहा गया है कि कृतघ्न मनुष्य का मांस, मांसाहारी पशु भी नहीं खाते ।

स्वामी जी ने ईश्वर विषयक जो विचार अपने ग्रन्थों व वार्तालाप एवं प्रवचन आदि में प्रस्तुत किए, उन्हीं के अनुरूप उनका जीवन भी था। ईश्वर व सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा एवं अद्भुत निर्भीकता का उदाहरण अगस्त 1876 के बांस बरेली के उनके व्याख्यान में उपस्थित हुआ। इस व्याख्यान में पादरी टी जे. स्काट, कमिश्नर मि. एडवर्डस तथा कलेक्टर मि. रीड सहित 15-20 अंग्रेजों की उपस्थिति में स्वामी जी ने पौराणिकों एवं ईसाईयों की कुंवारी स्त्री से सन्तान के जन्म होने के विश्वास की आलोचना की । इस व्याख्यान से क्षुब्ध बरेली के कमिश्नर ने, व्याख्यानों के संयोजक बाबू लक्ष्मी नारायण को बुलाकर, ईसाई मत की उक्त आलोचना के संदर्भ में उन्हें दंगे-फसाद होने का काल्पनिक हवाला देकर व्याख्यान बंद करवाने की चेतावनी दी । अगले दिन के व्याख्यान में बाबू लक्ष्मीनारायण ने कमिश्नर की उक्त आपत्तियों के दृष्टिगत स्वामी जी को व्याख्यान में नरमी बरतनें का निवेदन किया तो सारी स्थिति समझ कर स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में कहा-"लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो कलक्टर क्रोधित होगा, अप्रसन्न होगा, गवरनर पीड़ा देगा। अरे चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।" आगे उन्होंने कहा-"यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नाश कर दे किन्तु वह शूरवीर पुरुष मुझे दिखाओ जो मेरी आत्मा को नाश करने का दावा करे। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता तब तक मैं यह सोचने के लिए तैयार नहीं कि मैं सत्य को दबाऊंगा ।" कमिश्नर व कलेक्टर सहित 15-20 अंग्रेजों की उपस्थिति में स्वामी दयानन्द का सिंहनाद का वर्णन स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी आत्मकथा "कल्याण मार्ग का पथिक" में किया है । इस प्रसंग में वह लिखते हैं-"इससे सारे हाल में सन्नाटा छा गया । रुमाल का गिरना भी सुनाई देता था ।......उस शाम के व्याख्यान को कौन सुनने वाला भूल सकता है । मैंने बड़े-बड़े वाग्विशारदों के व्याख्यान सुने हैं परन्तु जो तेज आचार्य के उस दिन के सीधे-सीधे शब्दों से निकलकर सारी सभा को उत्तेजित कर गया उसके साथ किसकी उपमा दूं ।"

इसके अतिरिक्त जोधपुर यात्रा के प्रसंग में स्वामी जी द्वारा उंगलियों को मोमबत्ती बना कर जला देने पर भी सत्य ही बोलने तथा उनकी मृत्यु के पूर्ण घटनाक्रम में उनकी सहनशीलता, ईश्वर में अखण्डित निष्ठा एवं प्राण-त्याग में अपने सारे जीवन में ईश्वर की लीला को अच्छी लीला से संबोधित कर अपने उपास्य की इच्छा पूर्ण हो, कह कर प्राण त्यागने के दृश्य से यह सिद्ध है कि देश की स्वतन्त्रता, अंधविश्वास व कुरीतिया दूर कर ज्ञान व विज्ञान पर आधारित वैदिक मान्यताओ के अनुरूप देश व संसार के सुधार की कामना व सभी कार्य उनके ईश्वर के सच्चे स्वरूप को जान व मानकर प्राप्त शक्ति से संचालित थे।

लेख की अपनी सीमायें होती हैं। उसमें चाहकर भी अनेक प्रमुख बातों को छोड़ना पड़ता है । हर आत्मोन्नति अर्थात् जीवनोन्नति के इच्छुक पाठक को प्रेरणा करेंगे की वह एक बार अवश्य स्वामी जी के ग्रन्थों को निष्पक्ष होकर अध्ययन करें । नोबल पुरस्कार प्राप्त संत रोमा रोला द्वारा स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व के प्रति विचारो को प्रस्तुत कर लेख को विराम देते हैं। संत रोमा रोला ने लिखा है-"It was impossible to get the better of him for he possessed an unrivalled konwledge of sanskrit and the vedas while the burning vehemence of his words brought his adversaries to naught They likened him to a flood Never since Shankara had such a prophet of vedism appeared" अर्थात् उन (स्वामी दयानन्द) पर विजय पाना असम्भव था क्योंकि वे वैदिक वांगमय और संस्कृत के अनुपम भण्डार थे। उनके शब्दों की धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मसात हो जाया करता था। वे लोग जल की प्रबल बाढ़ के साथ दयानन्द की तुलना किया करते थे। शंकराचार्य के पश्चात् दयानन्द जैसा वेदवित् भारत भूमि में उत्पन्न नहीं हुआ ।

आर्यों का उत्कर्ष यज्ञ से

❒ आचार्य आनन्द "साहित्याचार्य" एम.ए. "व्याकरण"

आर्यों की संस्कृति यज्ञ शब्द में ही सन्निहित है । यह शब्द बहुत व्यापक एवं एकत्व भावना पैदा करने वाला है। किसी न किसी रूप मे हुआ है, साथ-साथ मनुष्य जीवन के प्रत्येक कार्य के साथ भी स्वाभाविक रूप से सम्पर्क है। दूरदर्शी माननीय आधारशिलाओ का केन्द्र यह यज्ञ ही है। यज्ञ शब्द को शब्दशास्त्रज्ञ आचार्य पाणिनी ने बहुत स्पष्ट कर "यज्ञदेवपूजासंगतिकरण दानेषु" से प्रतिपादित किया है। यज्ञ शब्द का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण और दान है। यज्ञ से मनुष्य को अभीष्टफल की प्राप्ति होती है । देवपूजा का तात्पर्य, माता, पिता, आचार्य, विद्वानों की सेवा, अग्नि, जल, वायु आदि देवों के तर्पण से है। संगतिकरण का अर्थ सज्जन, धार्मिक, परोपकारी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सत्पुरुषो के संग से है दान का तात्पर्य सामर्थ्यानुसार यथाशक्ति श्रेष्ठ कार्यों के सम्पादन हेतु सहयोग करने से है, किया हुआ कोई भी कार्य तभी यज्ञमय होता है जब ये भावनायें पूर्ण रूप से निष्कामात्मक हो जाती है । ऐसे संशोधित कर्म को ही शतपथकार ने "श्रेष्ठ तमं कर्म" की संज्ञा दी है । ऋषियो ने स्वार्थ रहित लोकहित के लिए किए गए श्रेष्ठ कार्य को ही यज्ञोपमा दी है। यज्ञ एक वैज्ञानिक कृत्य है जिसके सपादन से मनुष्य वास्तविक सुख को प्राप्त कर सकता है । शान्ति का आधार है यज्ञ । प्राचीनकाल मे यह प्रत्येक गृहस्थ के घर में हुआ करता था। मनुष्य के दैनन्दिन कृत्यों के साथ पञ्च महायज्ञ का समावेश किया गया है और इन पञ्च महायज्ञों को ही महायज्ञ की संज्ञा मिली है।

मनुष्य को नित्यकर्म के रूप मे इन यज्ञों को करना चाहिए । अन्य यज्ञ समय और द्रव्यगुण के अनुसार यथावसर होते हैं अत: इन्हें यज्ञ ही कहा गया है। मनुष्य को सन्मार्ग की ओर ले जाने वाले ये पञ्च महायज्ञ ही हैं। गृहस्थों को तो इन यज्ञों को करना अत्यावश्यक माना गया है । महाभारत काल में भी ये यज्ञ हुआ करते थे अत: दुर्योधन ने कहा है- "वेदोक्तैर्विविधैर्मखैरभिमतैरिष्टं धृता बान्धवा:" वेदोक्त विधि से विविध यज्ञों का अनुष्ठान करके मैंने अपने इष्ट बन्धु-बान्धवों का भरण पोषण किया है अत: इतिहासकारों ने आर्यों को अग्नि उपासक माना है । यह यज्ञ ही अग्नि है। महामना मनु ने भी कहा है "पञ्चैतास्तमहायज्ञान् यथाशक्तिं न हापयेत्" यथाशक्ति कोई भी गृहस्थ इन पञ्चमहायज्ञों को करने में आलस्य व प्रमाद न करें । ये यज्ञ ब्रह्मयज्ञ अर्थात् वेदों का स्वाध्याय, ईश्वर चिन्तन । देवयज्ञ अर्थात् घी और सामग्री से युक्त मन्त्रों के द्वारा आहुति देकर अग्नि, जल, वायु आदि देवो को तृप्त करना । बलिवैश्यदेवयज्ञ अर्थात् चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त समस्त प्राणियों के परिपोषण, उनके निमित्त अन्न का भाग रख कर स्वयं-ग्रहण करना । अतिथि यज्ञ अर्थात् घर में आये विद्वानो की सेवा, भोजन आदि से तृप्त कर उपदेश ग्रहण करना । पितृयज्ञ का अर्थ है जीवित माता-पिता की सेवा उनकी आज्ञा पालन ही ये पञ्चमहायज्ञ हैं उनसे ही मनुष्य वास्तविक सुख को प्राप्त करता है। इन यज्ञों को करने से अपूर्व सुख की प्राप्ति होती है घर मे झगड़ा नहीं रहता । सब एक दूसरे का सम्मान करते हैं । इन महायज्ञ को करने के साथ-साथ यथावसर अन्य यज्ञो का आयोजन सब को मिलकर करना चाहिए ताकि परस्पर स्नेह और सौहार्द की भावना जागृत रहे। अत: वेदों में कहा है।

"सभ्यचोग्निंसमपर्यत" हे मनुष्यो तुम मिलकर अग्नि की उपासना करो। यज्ञ का विधान प्रत्येक शुभ कार्यों के आरम्भ में करने का है अत: यह मानव जीवन भी यज्ञमय ही है। वेद मे कहा है-"प्राञ्चयज्ञं प्रणयता सखाय:" हे मित्रो ! प्रत्येक कार्य के शुरू में यज्ञ का विधान हो । अत: जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त यज्ञ का आयोजन संस्कारों द्वारा किया गया है । ये यज्ञ ही आगे बढाने वाले, विश्व कल्याण करने वाले सुख को देने वाले होते हैं । यजुर्वेद में कहा है "आयुर्यज्ञेन कल्पताम्" यह जीवन यज्ञ द्वारा ही सफल होता है । यज्ञ करने वाले स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं । इसलिए यज्ञ करना मानव मात्र के लिए अत्यंत अनिवार्य है । अपने द्वारा फैलाई गई गन्दगी का निवारण भी यज्ञ से होता है। प्राचीन वैदिक संस्कृति यज्ञ पर ही आधारित है अथर्ववेद की ऋचा में "अयज्ञियो दृतवर्चा भवति" यज्ञ न करने से वर्चस्व भी नष्ट हो जाता है । जबकि यज्ञकर्ता को प्रतिष्ठा, मान, सम्मान, यश और ख्याति वास्तविक रूप में प्राप्त होती है। मनुष्य तभी उन्नति को प्राप्त करता है जब वह परोपकारमय कार्य करता है, वही मनुष्य प्रशंसित होता है जो यज्ञीय जीवन से जीता है । इतिहास इसका प्रमाण है । इस संसार में जो कुछ भी उत्तम न्यायोचित कार्य परहित भावना से आवृत्त होकर हो रहे हैं वह सब यज्ञ ही हैं। आत्मविश्वास एव आत्मोन्नति का मार्ग यह यज्ञ ही है। जब तक इन यज्ञो के आयोजन होते रहते हैं तब तक अशान्ति व दु:ख मनुष्यों को नहीं होते हैं। आस्तिक विचार पूर्णरूप से दृढ़ हो जाते हैं व्यक्ति आत्मवत् सर्व भूतेषु का दृष्टिकोण अपना बना लेता है । परमात्मा को व्यापक मानकर प्रत्येक कार्य निस्वार्थ भावना से करने लग जाता है ।

इसलिए यज्ञ के बीच-बीच मे यह शब्द उच्चारण किया जाता है "इदं न मम" यह मेरा नहीं है जो कुछ है उस ईश्वर का ही है यज्ञकर्ता धीरे-धीरे यज्ञ करते अपने सुख को स्वयं ढूंढ लेता है और निरोग रहकर संसार का कल्याण करना ही उसका उद्देश्य बन जाता है । रोगो का निराकरण यज्ञ से करता हुआ शान्ति और सुख चहु ओर वह व्याप्त कर देता है । पर्यावरण को वह संतुलित कर यज्ञीय जीवन जीता है । क्योंकि गीता में भी कहा है-"यज्ञ: कर्म समुद्भव:" यह यज्ञ मानवीय कर्मठता का प्रतीक है । "नौ दृवा स्वर्ग्या यदग्रिहोत्रम्" यह अग्निहोत्र स्वर्ग की नौका है । "ना..' लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्य:" । विना यज्ञ के इस पृथ्वी पर मानव की स्थिति सभव नहीं फिर अन्यत्र की तो बात ही क्या ?

अत: आर्यो को चाहिए इस ज्ञान रूप अग्नि को अपने घरो मे अतिथि की तरह स्थापित कर घी और समिधा के द्वारा बढाना चाहिए। स्वयं सुखो का आस्वदान कर इस आत्मिक सुख को दूसरो को देने के लिए यत्न करना चाहिए। यही श्रेय है, यही शान्ति है और यही विश्वकल्याण है।

आर्य समाज चैनत ने महिला दिवस मनाया

हांसी-बरनाला रोड़ पर स्थित गाव चैनत के स्थानीय आर्य समाज के प्रधान मा. हरीराम जी सेवा निवृत हेडमास्टर की अध्यक्षता मे महिला दिवस मनाया गया। इस अवसर पर हासी नगर के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आचार्य प्रवर पं. रामसुफल शास्त्री ने मुख्यवक्ता एवं यज्ञ-ब्रह्मा के रूप मे अपने विचार रखते हुए कहा कि नारी जाति के उद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने महिलाओ की बहुत वकालत की थी। महाभारत काल के बाद नारी शिक्षा पर प्रतिबन्ध था, जिसे हटाने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना बलिदान तक दे दिया। श्री शास्त्री जी ने कहा कि महिलाओ का शिक्षित एव सुसभ्य होना समाज की प्रगति के लिए अति आवश्यक है।

इस मौके पर आर्य समाज घिराये के प्रधान श्री दयानन्द जी, कन्या गुरुकुल घिराये के प्रधान चौ. मनफूल सिह कुलपति श्री स्वामी जी महाराज, प्रधानाचार्य बहन सुनीता जी व अन्य गणमान व्यक्ति उपस्थित थे।

हांसी में गृह प्रवेश पर वेद प्रचार एवं यज्ञ

हांसी नगर के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं. रामसुफल शास्त्री वैदिक प्रवक्ता लाल सड़क हासी के गृह प्रवेश संस्कार पर वेद प्रचार का कार्य किया गया।

जिसमे 10 मार्च को होलिकात्सव के रूप में पं. विजय पाल शास्त्री पुरोहित आर्य समाज खरड़ चुंगी हांसी द्वारा यज्ञ एवं श्री देवसिंह जी ने ईश्वर भक्ति के गीतो के माध्यम से अपने विचार रखे।

11 मार्च रविवार को प्रात: 9 बजे गृह प्रवेश संस्कार के माध्यम से आर्य जगत् के उच्चकोटि के वैदिक विद्वान् प भरत लाल जी शास्त्री द्वारा यज्ञ का श्रेष्ठ कार्य किया गया। इस अवसर पर श्री सोहन लाल, पूज्य स्वामी कीर्तिदेव, हरियाणा के पूर्व मन्त्री श्री अतर सिह सैनी, श्री प्रवीण जी, श्री हरनारायण, चौ भीम सिंह आदि उपस्थित थे।

आर्य समाज : कल, आज और कल

❒ श्री भगवान देव "चैतन्य" (एम.ए. साहित्यालंकार)

महर्षि दयानन्द सरस्वती की विचारधारा में क्षेत्रवाद, मजहबवाद या सम्प्रदायवाद की सीमाएं न होकर एक ऐसी सार्वभौमिकता है जो मानवता के धरातल पर खडी होकर समूचे विश्व को श्रेष्ठ बनाने की क्षमता रखती है । ससार मे अनेक समाज सुधारक एव मनीषी हुए हैं, मगर महर्षि दयानन्द जैसी प्रखरता, सक्षमता और असीमता किसी भी दृष्टिगत नही होती है। महर्षि दयानन्द के उपदेशो और ग्रन्थो के अध्ययन से मालूम होता है कि उनका एक-एक शब्द कितना सारभृत, ग्राह्य और चिन्तन एव मनन करने के योग्य है । 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' उनका मात्र अपनी प्रसिद्धि के लिए उछाला गया नारा नही था बल्कि जो प्रशसा को जहरतुल्य समझता हो ऐसे मनीषी से इस प्रकार की अपेक्षा करना भी बहुत बडा अन्याय होगा । समूचे विश्व को आर्य बनाने के पीछे उनकी भावना एक ऐसे श्रेष्ठ मानव समाज का निर्माण करने की थी जो जीओ ओर जीने दो कि सिद्धान्त पर चलकर अपनी उन्नति करता हुआ भी समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति समर्पित हो। उनके स्वप्न साधारण नहीं थे-वे स्वयं असाधारण थे इसलिए उसकी एक एक बात इतनी गूढ हे कि उनकी गहराई तक जाने के लिए उन जैसे निश्छल ओर मानव हितैषी बनने की आवश्यकता है । उन्होने अन्य समाज सुधारको के समान ऊपर से ही लीपापोती नही की बल्कि दृढता के साथ उन सत्यो को उद्घाटित किया जो शाश्वत थे। भले हो प्रारम्भ मे वे साधारण मानव को अपनी पहुच से दूर लगे, मगर जिस किसी ने भी प्रयास किया उसने उस सत्यो को साक्षात् करके अपना ही नहीं बल्कि द्रढता के साथ उन सत्यो को उद्घाटित किया जा शाश्वत थे। भले ही प्रारम्भ में वे साधारण मानव को अपनी पहुच से दूर लगे, मगर जिस किसी ने भी प्रयास किया उसने उन सत्यो को साक्षात् करके अपना ही नहीं बल्कि समाज और राष्ट्र का भी कायाकल्प कर दिया । जहां महर्षि एक ओर शाश्वत सत्य के पक्षधर थे वहीं दूसरी ओर वे बहुमुखी प्रतिभा के भी धनी थे। यही कारण है कि कोई भी विषय उनसे अछूता नहीं रहा है। उन्होने मानव और मानव जीवन के छोटे से लेकर बड़े-बड़े क्रियाकलापों पर अपनी स्पष्ट विचारधारा उद्घाटित की है। उनके विचार इतने स्पष्ट और प्रखर थे कि समूचे विश्व को हिलाने की शक्ति रखते थे। उनका अधिकतम जीवन अध्ययन, स्वाध्याय और योगाभ्यास में ही निकल गया । अपने ढंग से कार्य करने का उन्हें बहुत ही कम समय मिल पाया, मगर इतने कम समय मे इतना "बहुत कुछ" कर पाना भी उन जैसे अद्भुत ब्रह्मचारी का ही करिश्मा था। उन्होंने व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व को वे सभी मूलमन्त्र दे दिए जिन पर चलकर व्यक्तिगत, सामाजिक राष्ट्रीय और समूचे विश्व की उन्नति संभव थी। जिसने जितना उनकी विचारधारा को पकड़ा उतना ही उसे मिला भी। उनका जीवन आदर्श जीवन था तथा वैसी ही थी उनकी विचारधारा भी । उनका विश्वास धर्म-मन्दिरों, मस्जिदो या ग्रन्थों मे नहीं बल्कि क्रियात्मकता में था। यही कारण है कि आर्य समाज की जब उन्होंने स्थापना की तो यह संस्था अपनी एक अलग ही पहचान रखती थी । यह संस्था सत्य, न्याय, सच्चरित्रता विश्वबन्धुत्व और राष्ट्र प्रेम की पर्याय मानी जाती थी। राष्ट्र और समाज मे आर्य समाज की स्थापना के बाद एक आमूलचूल परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई। पाखण्ड, आडम्बर और धूर्तता स्वत: ही कूच करने लगे। सदियों से प्रताड़ित तथा कथित हिन्दू अपनी रीढ़ मे अचानक सशक्ता की अनुभूति करने लगा और आर्यो के आर्य समाज ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया । सामाजिक आन्दोलन ही नहीं राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में भी चर्चित होने लगा। शिक्षा के क्षेत्र में नए आयाम खुले। पं. गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, पण्डित लेखराम, महात्मा हंसराज आदि महानुभावों ने सामाजिक और सरदार अजीत सिंह, भगत सिंह, लाला लाजपतराय, रामप्रसाद बिस्मिल और भाई परमानन्द आदि युवकों ने राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा अपने हाथ मे लिया । महर्षि दयानन्द की विचारधारा ने सारे विश्व को चौंका कर रख दिया । ये मनगढ़न्त बाते नहीं बल्कि ऐतिहासिक तथ्य हैं । स्वतन्त्रता आर्य समाज की देन है- इतिहास बोल रहा है। आर्य समाज और आर्य समाजी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था क्योंकि वह सत्यता, ईमानदारी, देशभक्ति और श्रेष्ठता का प्रतीक माना जाता था-यही काल आर्य समाज का स्वर्णयुग था।

स्वतन्त्रता के बाद आर्य समाज की [illegible]ता मे निश्चित रूप से शिथिलता आई है । इसके कई कारण हो सकते हैं । आर्य समाज का अधिकतर कार्य सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया। कुछ संविधान में अंकित हो गए। आर्य समाज की अधिकतर सम्पत्ति लाहौर में रह गई, आदि-आदि । लेकिन हमे इस कटु सत्य को भी स्वीकारना चाहिए कि ठीक स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय यदि कोई श्रेष्ठ व्यक्तित्व हमारे पास होता जो राजनीति की बागडोर अपने हाथ में ले सकता तो 'कृण्वन्तो भारतार्यम्' का सपना तो साकार हो ही जाता और राष्ट्र की वह स्थिति न होती जो वोट की राजनीति की गोटें खेलने वाले तथाकथित राष्ट्रनायको के कारण हो गई हैं । राजनीति मे अपनी पैठ होती तो निश्चित रूप से आर्य समाज का अभ्युदय होना था। दूसरी ओर सामाजिक क्षेत्र में ऐसा कोई व्यक्तित्व सामने नहीं आया जो आर्य समाज की प्रखरता की धार को पैनी बनाए रख सकता। हालांकि [illegible] से लोगों ने बहुत ही सराहनीय कार्य किए। कई दिशाओं में 'आर्य समाज ने उन्नति भी की है मगर एक जो आर्य समाज की एक शक्ति के रूप में खड़ा होना था-वैसा नहीं हो सका। दुःख की बात तो यह है कि स्थिति आज और भी अधिक विकट होती चली जा रही है। आज आर्य समाज के पास चल और अचल सम्पत्ति पहले से बहुत अधिक है, उच्चकोटि का साहित्य है, विद्वान् भी हैं, मगर सशक्त नेतृत्व, निश्चित कार्यपद्धति और सामूहिक अभियान की कमी है । हमारी शक्ति बिखरी हुई है। सबसे बडी बात यह है कि महर्षि दयानन्द ने आर्यों के लिए जिस आचार संहिता का प्रावधान किया था वही हमसे कहीं दूर बहुत दूर छूट गई है । व्यक्ति रूपी मूल इकाई का कायाकल्प करना महर्षि का सबसे प्रमुख ध्येय था । आज के आर्य सत्यता, ईमानदारी और न्याय के पर्यायवाची नहीं हैं । कथनी और करनी से समता नहीं रही है और संस्था के प्रति समर्पण की भावना में भी शिथिलता आई है। आज कितने आर्य हैं जो आर्य समाज के प्रचार के लिए अपने बेटे को मृत्युशैय्या पर छोडकर और चलती गाड़ी से पण्डित लेखराम के समान कूद पड़ने को तैयार हैं ? स्वामी श्रद्धानन्द के समान आदर्श शिक्षागुरु और गुरुकुल के लिए धन एकत्रित करने की प्रतिज्ञा करने वाले कितने लगे हैं ? पण्डित गुरुदत्त के सामान दीवानेपन की सीमा तक रातदिन कार्य करने वाले कितने हैं ? कितने हैं जो महात्मा हंसराज के समान अपना समूचा जीवन और सम्पत्ति तक को आर्य साहित्य प्रकाशन के लिए दांव पर लगा दें ? लाला लाजपतराय, भगतसिंह और बिस्मिल के समान राष्ट्र रक्षा के लिए आहुत हो जाएं ? हमें अपने-अपने गिरेबां में झांक कर अपने आपको टटोलने की आवश्यकता है कि हम महर्षि दयानन्द तथा उनके आर्य समाज के प्रति कितने समर्पित हैं। आज तो स्थिति यह है कि बहुत से लोग अपनी एषणाओं के कारण आर्य समाज के साथ जुड़े हुए हैं। चाहे वह एषणा पद प्रतिष्ठा की हो, नौकरी प्राप्त करने की हो या किसी अन्य ढंग से लाभ उठाने की हो। कोई पाठशालाएं

(शेष पृष्ठ 8 पर)

स्वामी दयानन्द के शिक्षा दर्शन पर शोधकार्य

पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में वैदिक अनुसन्धान पीठ के पूर्वाध्यक्ष प्रो डॉ अनिरुद्ध जोशी जी तथा डा वसुन्धरा रिहानी प्रवक्ता दयानन्द चेयर, निर्देशक के सफल सुयोग्य मार्गदर्शन में श्री रुद्रदत्त शर्मा शास्त्री ने 'स्वामी दयानन्द का शिक्षा-दर्शन' विषय पर शोध प्रबन्ध लिख कर प्रस्तुत किया । जिसे स्वीकृत कर 27 दिसम्बर 2000 को पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ मे आयोजित दीक्षान्त समारोह में भारत के उपराष्ट्रपति तथा विश्वविद्यालय के चांसलर श्री कृष्णकात जी ने पी एच डी. की उपाधि प्रदान की ।

वेदों में शिक्षा के जो मौलिक मूत्र यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं कालान्तर में उनका ही पल्लवन ब्राह्मण तथा उपनिषदादि ग्रन्थों मे हुआ है। स्वामी दयानन्द के शिक्षा परक मिद्धान्तों का आधार भी वेद तथा अन्य शास्त्रो में वर्णित शिक्षा विषयक मन्तव्यो को माना जा सकता है । स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों मे यत्र तत्र बालको की शिक्षा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण मूत्र दिये हैं जिनके आधार पर समग्र शिक्षानीति का निर्धारण किया जा सकता है उनके शिक्षा-दर्शन के प्रति कुछ लोगो की यह अवधारणा रही है कि वर्तमान परिवेश मे स्वामी दयानन्द के शिक्षा-दर्शन पर चलने से शिक्षार्थी सामाजिक स्तर पर पिछड़ जाता है । आर्ष पद्धति केवल कर्मकाण्ड परक है । जो छात्र गुरुकुलीय शिक्षा ग्रहण करते हैं वे व्यावहारिक ज्ञान से वंचित रह जाते हैं । उनकी शिक्षा रोजगार परक नहीं है । शोधकर्त्ता ने शोध के माध्यम से उपर्युक्त समस्त अवधारणाओं का तथ्यान्वेषण तथा युक्तियुक्त विश्लेषण भी किया है। सप्तपरिच्छेदों मे विभक्त इस शोध-प्रबन्ध में शिक्षा का महत्व, अर्थ, परिभाषा, प्राचीन, भारतीय शिक्षा-दर्शन की पृष्ठभूमि, भारतीय शिक्षा-दार्शनिक, शिक्षा की अनिवार्यता, उद्देश्य, काल, पात्र, दण्ड, अनुशासन, स्त्री-शिक्षा, शिक्षा के विकास मे माता-पिता, शिक्षक, शिष्य, समाज, राजा (शासक) के गुण तथा कर्त्तव्यो की मीमामा, पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली, शिक्षणालय, शिक्षण विधिया, जैसे विषयों पर प्राच्य और पाश्चात्य दोनो आशयों को प्रकट करते हुए स्वामी दयानन्द के बहु आयामी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। स्वामी जी के शिक्षा दर्शन के विकास मे आर्य समाज द्वारा सचालित गुरुकुल, उपदेशक विद्यालय, संस्कृत विद्यालय, दयानन्द एग्लो वैदिक स्कूल तथा कालेज, स्त्री शिक्षा के लिए स्थापित शिक्षण-संस्थाएं, बाल शिक्षा-मन्दिर, अन्य आर्य शिक्षण सस्थाएं, विश्वविद्यालय तथा शोध प्रतिष्ठान, विदेशों मे आर्य शिक्षण संस्थायों के योगदान का भी उल्लेख विस्तार से किया है।

शोध प्रबन्ध अपने मे अनेक नूतन विशेषताए सग्रहित किए हुए है । प्रकाशित होने पर सम्भवतः जन-मन का सुन्दर ढग से प्रेरणा स्रोत सिद्ध हो सकता है । इस छोटी सी अवस्था वाले हरियाणा के फरीदाबाद मण्डलान्तर्गत राजकीय माध्यमिक विद्यालय हरिजन बस्ती न 2 फरीदाबाद के सस्कृत अध्यापक तथा गुरुकुल गदपुरी के कोषाध्यक्ष श्री रुद्रदत्त शर्मा शास्त्री का प्रयास सराहनीय है। प्रभु से प्रार्थना है कि इन्हे दीर्घायु तथा उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करे।

—ओकार देव आर्य

आर्य समाज पार्कलेन लुधियाना का सत्संग

आर्य समाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना का साप्ताहिक सत्सग 8-4-2001 को साय 5.30 बजे श्री नरेन्द्र भल्ला के निवास स्थान बी I 503 पार्कलेन सिण्डीकेट बिल्डिग के सामने सिविल लाईन लुधियाना मे होगा ।

तपोवन में ग्रीष्मोत्सव 18 अप्रैल से 22 अप्रैल तक

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, देहरादून का ग्रीष्मोत्सव बुधवार 18 अप्रेल से रविवार 22 अप्रेल तक आयोजित किया जा रहा है। सामवेद परायण यज्ञ तथा योग-साधना-शिविर श्री स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती जी के निर्देशन मे चलेंगे ।

आचार्य श्री सत्यव्रत राजेश जी के वेद प्रवचन होंगे । प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक श्री सुचित नारंग तथा अन्य गायको द्वारा भक्ति सगीत प्रस्तुत किया जाएगा ।

—देवदत्त बाली, मत्री

ओंकार स्तुति

प. वेद प्रकाश शास्त्री, एम.ए. फाज़िल्का

आर्य समाज मन्दिरो और परिवारो में यज्ञ, सत्सग के पश्चात् प्राय "ओ३म जय जगदीश हरे . ।" आरती बोली जाती है। अनेक यज्ञविधि की पुस्तको मे भी सकलित है। यह सनातन धर्मी विद्वान श्री श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा रची गई है । यह आरती वस्तुत. अवैदिक है । इसके स्थान पर "ओकार स्तुति" प्रस्तुत की जा रही है जो वैदिक मान्यताओ के अनुसार है । जिसे सत्सग के पश्चात्-नि सकोच बोला जा सकता है। यज्ञ, सत्संग ओर सामाजिक पद्धतियो की पुस्तको मे भी सम्मिलित किया जा सकता है फिर भी विद्वानो की टिप्पणिया, प्रतिक्रियाएं, संशोधन सादर आमन्त्रित हैं ।

ओ३म् जय ओंकारा, स्वामी जय ओकारा ।
सृष्टि का है सर्जनकर्त्ता, तू ही है पालनहारा ॥ 1॥
जड चेतन को धारण करता, करे अन्तकाल सहारा ।
शक्ति असीम का तू स्वामी, भक्तन की अमृतधारा ॥2॥
भूतो भवद् और भविष्यद्, ओम् का ही विस्तारा ।
बाधित नही त्रिकाल से वह, बन्धन से मोचनहारा ॥3॥
जोडो अकार उकार मकारा, बन जाएगा ओंकारा।
उत्तम नाम यही है सबमे नित जाए उच्चारा ॥4॥
मात-पिता है तू बन्धु, भ्रात सखा अरु त्राता ।
सत्य शिव और सुन्दर, है सब सुख का दाता ॥5॥
दयादृष्टि सदा ही रखता करुणा नित है बरसाता ।
कण-कण में तू ही रमता, तारे चन्द्र भान चमकाता ॥6॥
चारो वेद ओम से प्रकटे ओम् का चहुं ओर पसारा ।
ज्ञान विज्ञान से है पूरन, भवसागर से तारनहारा ॥7॥
ओम् अक्षर है अविनाशी, सत्-चित्-आनन्दस्वरूपा ।
ऋषि मुनि हैं ओम् को गाते पाते हैं आनन्द अनूपा ॥8॥
शिवमगल हो जनजीवन, करें सभी पर उपकारा ।
कहे 'वेद' ओम् को ध्याओ, मनवांछित मिले अपारा ॥9॥

हरपाल नगर लुधियाना में 23वां वेद प्रायण महायज्ञ सम्पन्न

हर वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी हरपाल वैल्फेयर एसोसिएशन लुधियाना के तत्वावधान में 18 मार्च रविवार को गुलमोहर होटल के विशाल आगन में 23वां वेद प्रायण यज्ञ बडे उल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। यज्ञ प्रात:काल 9बजे आरम्भ हुआ तीन कुण्डो के गिर्द 12 यज्ञमान बैठे हुए थे इससे पूर्व श्री सतीश कुमार जी मालिक गणेश टिम्बर कम्पनी ने यज्ञ की ज्योति प्रज्वलित की। यज्ञ के ब्रह्मा श्री बालकृष्ण जी शास्त्री पुरोहित आर्य समाज जवाहर नगर थे। यज्ञ कराने के साथ वह वेद मन्त्रो की व्याख्या भी सुन्दर ढग से कर रहे थे। बीच में प्रसिद्ध गीत पार्टी अनिल गौतम पार्टी ने सुरीले भजन गाकर जनता को मन्त्र मुग्ध कर दिया। यज्ञ के प्रबन्धक श्री आशानन्द आर्य ने यमुनानगर से आये स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज एवं महात्मा प्रेम प्रकाश जी धूरी का पडाल में पहुचने पर हार्दिक स्वागत किया। स्वामी सच्चिदानन्द जी महाराज ने अपने भाषण में कहा कि यज्ञ करना सबसे श्रेष्ठ कर्म है कोई समय था जब इस देश का शासक गौरव से कह सकता था कि मेरे राज्य मे कोई ऐसा व्यक्ति या घर नही जहा यज्ञ न होता हो। आप वर्ष में एक बार बडे पैमाने पर यज्ञ करते हैं अच्छी बात है । यज्ञ का घर-घर में प्रचलन होना चाहिए।

एसोसिएशन के कोषाध्यक्ष श्री वेद प्रकाश गुप्ता ने कहा कि आज से 23 वर्ष पहले श्री आशानन्द जी आर्य की प्रेरणा से यह यज्ञ आरम्भ किया था जो अब एक विशाल रूप धारण कर गया है और हर वर्ष यज्ञ श्री आशानन्द जी की देख-रेख में होता है और मुझे आशा है कि यह यज्ञ इस एरिया में सदा चलता रहेगा ।

महात्मा प्रेम प्रकाश जी धूरी ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा कि महर्षि दयानन्द की अपार कृपा है कि उन्होंने पुन: भारत में वेद का यज्ञ करने की प्रथा डाली । उनके आने से पूर्व देवियों को वेद पढ़ने एव सुनने का अधिकार न था परन्तु स्वामी जी की अपार कृपा से अब देवियां न केवल वेद मन्त्र सुन रही हैं अपितु वेद पाठ कर रही हैं यदि आप सुख शान्ति चाहते हैं तो घर-घर यज्ञ का प्रचार करो उनके उपदेश का जनता पर काफी प्रभाव पड़ा। इस यज्ञ में नगर के कोने-कोने से सैंकडों श्रद्धालु आकर भाग लेते हैं पूर्णाहुति के पश्चात् लगर का अति उत्तम प्रबन्ध था जिसमें हजारों लोगों ने प्रसाद लिया। समारोह 3 बजे बाद दोपहर सम्पन्न हुआ । समारोह को सफल बनाने में जहां सब हरपाल नगर निवासियो ने योगदान दिया वहां श्री जगदेव लाल भण्डारी, श्री वेद प्रकाश गुप्ता, श्री बृजमोहन भण्डारी, श्री राजेन्द्र बेरी, श्री अनिल निझावन, श्री ओम प्रकाश गुप्ता ने अनथक परिश्रम किया।

—आशानन्द आर्य, यज्ञ प्रबन्धक

सत्यार्थ प्रकाश

कहते है कि समुद्र के मन्थन से 14 रत्न देवताओ ने प्राप्त किए थे मैं नही कह सकता इसमें कहा तक सत्यता है परन्तु यह बिल्कुल प्रत्यक्ष है सत्यता है कि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने लगभग 1400 पुस्तको का मन्थन करके केवल साढे तीन मास में सत्यार्थ प्रकाश के 14 समुल्लास "14 रत्न" ज्ञान के समुद्र को मन्थन करके निकाले और वह 14 रत्न सत्यार्थ प्रकाश 14 समुल्लास के रूप मे हमारे सामने हैं । कुछ लोग हमे नास्तिक कहते हैं, कुछ हम से इसलिए नाराज हैं कि हम उनके देवी-देवताओ का अन्य धर्म पुस्तको का सत्यार्थ-प्रकाश के द्वारा खण्डन करते है कबीर की कविता को पढने से पता चलता है कि उसने किसी का खण्डन अपनी कविता के द्वारा नहीं किया परन्तु फिर भी विद्वान लोग कबीर जी की कविता को बड़े आनन्द और प्रेम से पढते हैं । एक बात स्पष्ट है कि कबीर हो या अन्य कोई महापुरुष वह बुराई का सदैव से ही खण्डन करते आये हैं । आप किसी भी महापुरुष की जीवनी पढ़ें उस महापुरुष ने अपने जीवन के आरम्भ में सब बुराईयो का खण्डन किया होगा । यह बात अलग है कि समय के परिवर्तन के समय उनके अनुयाईयों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उसका दुरुपयोग किया ।

एक व्यक्ति मकान मे सोया पडा है उसके मकान को आग लग गई या चोर आ गये तो जो अच्छा पहरेदार होगा वह उस मकान मालिक को आवाजें दे कर जगाएगा यदि वह फिर भी न जागे तो वह दरवाजा तोड कर उसके अन्दर जाकर मकान मालिक को जगाने का यत्न करेगा यदि वह फिर भी ना जागे तो एक अच्छा और ईमानदार पहरेदार अपने मालिक की सम्पत्ति की रक्षा करेगा। (शेष फिर)

चमन लाल मेहता, मन्त्री

(पृष्ठ 6 का शेष)

खोलकर, कोई दुकानें खोलकर अपने-अपने स्वार्थों के कारण आर्य समाज मे बन्धे हुए हैं। प्रचारक और उपदेशक वर्ग तक तप, त्याग और जीवन को छोड़ कर विलासिता में डूबते जा रहे हैं । स्वाध्यायशीलता और उपासना आदि से कोसों दूर हो जाने के कारण प्रकाण्ड विद्वान् बनने की बात तो दूर रही इसके विपरीत साधारण से सिद्धान्तों की पहचान भी लोगों को नहीं रहीं। यही कारण है कि आर्य समाज का विस्तार रुक सा गया है । इसकी जो अपनी एक अलग पहचान थी वह समाप्त होकर यह संस्था भी अन्य संस्थाओं की लम्बी पंक्ति में एक हो गई है । आज आर्य समाज के सदस्य या अधिकारी बनने के लिए आचारसंहिता को ताक पर रख दिया जाता है । कर्मकाण्ड तक में एकरूपता नहीं रही है। इन उपर्युक्त कारणों से एक बहुत बडी चुनौती सामने आ गई है । इस घुसपैठ के कारण आज गुरुदत्त और हंसराज के डी.ए.वी की क्या स्थित है ? श्रद्धानन्द का गुरुकुल क्या है ? और अर्य समाजों की क्या दशा है ? यह सर्वविदित है। ये घुसपैठिए उपदेशकों के रूप मे, अधिकारियों के रूप में, नौकरियों के रूप में, दुकानें आदि हथियाने के रूप में और कहीं तो आर्य समाज की सम्पत्तियो को किसी न किसी तरह हथियाने तक के लिए आ रहे हैं । ऐसे घुसपैठिए अपना बहुमत स्थापित करके यदि एक आध कोई दयानन्दी हो भी तो उसे भी खदेड बाहर करते हैं। इसी कारण बहुत सी सम्पत्ति गैर आर्य समाजियों के हाथों चली गई है। कुछ लोग अपनी राजनीति खेलने के लिए भी आर्य समाज का प्रयोग करते हैं। इससे भी आर्य समाज का अहित हुआ है और भी बहुत से कारण हैं जो विस्तार भय से इस लघु लेख में नहीं दिए जा सकते हैं । आर्य समाज का स्वर्णकाल आज के तथाकथित आर्यों की सिद्धान्तहीनता, निष्क्रियता और अकर्मण्यता का शिकार हो गया है । आलस्य और प्रमाद के अजगर उसे निगल चुके हैं । शेष बचे दयानन्दियों या समर्पित कार्यकर्त्ताओं को भी ये जैसे-तैसे पीछे धकेलने में ही लगे हुए हैं । काम करो न करने दो के सिद्धान्त को प्रमुखता दे दी गई है । अपने व्यक्तिगत कार्य से ऊपर समाज के कार्य को प्राथमिकता देने वाले दीवानों की आज कमी है और यही बात अनार्यत्व को प्रश्रय दे रही है ।

इसका अर्थ यही नहीं है कि हम पुन: उस स्वर्णकाल को नहीं ला सकते हैं । इसके लिए सच्चे आर्यों को कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है । आचारसंहिता को दृढता से लागू करने पर बल देना होगा । संख्या में सदस्यों (सिद्धान्तहीनता) की भीड़ नहीं बल्कि सब वचन कर्म से मिशन के प्रति समर्पित कट्टर आर्यों की आवश्यकता है। तप, त्याग, स्वाध्याय और कर्मठता के बल पर ही हम महर्षि दयानन्द के सपनों को साकार कर सकते हैं । महर्षि दयानन्द जी ने हमें किन्हीं चमत्कारों पर आस्था रखने की शिक्षा नहीं दी है बल्कि निरन्तर कर्म पथ पर जीने से आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया है। अत: हम आज भी अपने संकल्पों को कार्यरूप देकर इस आर्य समाज को सत्य, निष्ठा, कर्त्तव्य परायणता, राष्ट्रभक्ति और सच्चरित्रता का पर्याय बना सकते हैं । आज भी हम में से ही कोई गुरुदत्त, श्रद्धानन्द, हंसराज तो कोई लेखराम, दर्शनानन्द या लाजपतराय और भगतसिह, बिस्मिल आदि बन सकते हैं । युवावर्ग को प्रोत्साहित करके आगे लाने की आवश्यकता है । बहुत से अच्छे कार्यकर्त्ता किन्हीं कारणों से निराश और हताश होकर अलग बैठ जाते हैं या अलग संगठन बना लेते हैं । इससे भी संस्था को बहुत हानि उठानी पड़ती है । संस्था में रहते हुए इसमें सुधार करने की आवश्यकता है। हमें यह ध्येय लेकर चलना होगा कि वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार के लिए आर्य समाज की एक मात्र मंच है और इसी के सवर्धन में समूची मानवता का हित है । महर्षि दयानन्द का आर्य समाज आज भी समाज, राष्ट्र और समूचे विश्व का नेतृत्व करने मे सक्षम है । मगर आर्यो को जरा करवट लेनी होगी और कमर कस कर दृढ़ता के साथ कदम आगे बढ़ाने होगे । यदि महर्षि का प्रत्येक सच्चा अनुयायी सकल्प ले लें कि उसे आर्य समाज का स्वर्णयुग पुन: वापिस लाना है तो अतिशीघ्र यह कार्य पूर्ण हो जाएगा क्योंकि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी तो स्वयं ही प्रखरता के प्रतीक हैं । मैं ऋषि भक्तों में विनम्र निवेदन करता हूं कि :-

अपने पुरखों की विरासत को सभालो वरना, अब की बरसात में यह दीवार भी बह जाएगी ।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि न एन पी 17504/58

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् — ओ३म् — ऋग्वेद — यजुर्वेद — सामवेद — अथर्ववेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष ☎ 292926

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—53 अंक 3 सृष्टि संवत 1960853102, 15 अप्रैल 2001 दयानन्दाब्द 178

विराट परम पुरुष के दर्शन

❒ ले० स्वामी इन्द्रदेव जी यति

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेत सलिलं सर्वमा इदम् ।

तुच्छयेनाभ्यपिहित यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम्।

ऋ 10-129 3

यह सब जगत् सृष्टि के पहले अन्धकार से आवृत्त रात्रिरूप मे जानने के योग्य आकाश रूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सामने एक देशी आच्छादित था पश्चात् परमेश्वर ने अपनी महिमा सामर्थ्य से कारण रूप से कार्यरूप कर दिया।

1 उस परमपुरुष परमेश्वर से विराट् उत्पन्न हुआ है ततो विराडजायत

2 परम पुरुष विराट् से ऊपर है। विराजोऽधि पुरुष

3 वह विराट से ऊपर प्रकाशमान् है । त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष

4 वह विराट् से बहुत बडा है । अतो ज्यायाश्च पुरुष

5 वह परम पुरुष अनन्त द्यौ वाला है। सहस्रशीर्षा पुरुष- शीर्ष्णो द्यौ समवर्तत

6 वह अनन्त चक्षु वाला है। सहस्राक्ष चक्षोश्च सूर्योऽजायत

7 वह अनन्त भूमियो वाला है । सहस्रपात् पदभ्या भूमि

8 वह सबको देखता है इसलिए वह पुरुष भी है। अवध्नन् पुरुष पशुम्

9 वह दशागुल (पाँच सूक्ष्मभूत) पाच स्थूलभूत अवयव वाले ब्रह्माण्ड) को भूमि के चारो ओर घुमाकर सब को अतिक्रमण करके ठहर रहा है ।

(स भूमि सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठ द्दशागुलम्)

ब्रह्माण्ड अनेको हैं एक ब्रह्माण्ड का वर्णन किया जाता है जिसे विराट पुरुष कहते हैं ।

1 जो हुआ और जो होगा और जो अन्न से अत्यन्त बढ़ रहा है और जो अमृतत्व का स्वामी है यह सब विराट पुरुष ही है।

पुरुष एवेद सर्वं यद्भूत यच्च भाव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेना तिरोहति॥

2 इस विराट् पुरुष की इतनी महिमा है।

एतावान् अस्य महिमा

3 इस विराट् पुरुष का एक पाद सर्वभूत (पाच सूक्ष्मभूत पाच स्थूल भूत) है। पादोऽस्य विश्वा भूतानि

4 इस विराट् के तीन पाद द्यौ मे हैं जहा अमृत है त्रिपादस्यामृत दिवि द्यौ में स्थित रहते हैं उनक दर्शन के लिए मूर्द्धज्योति (ब्रह्मरन्ध्र) मे सयम करना चाहिए। मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् यह योग सूत्र है ब्रह्मरन्ध्र से अन्दर अमृत टपकता है सयम द्वारा उसका पान करने से समस्त नाडी सस्थान स्फूर्ति प्राप्त करता है । यह अमृत रसायन और वृष्य है ।

5 इस विराट् पुरुष का एक पाद बार बार यहा उत्पन्न होता है। पादोऽस्येहाभवत्पुन

6 इस विराट् पुरुष से साशन (चेतन) अनशन जड) सब जगत् व्याप्त है ।

ततो विष्वङ् व्याक्रम व्यकामत् साशनानशने अभि ।

7 विराट् पुरुष मन शीर्ष मुख प्राण नाभि पद श्रोत्र इत्यादि अग वाला है ।

क विराट् की नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ।

नाभ्या आसादन्तरिक्षम्

ख श्रोत्र से प्राण और प्राण से वायु उत्पन्न हुआ

श्रोत्राद् प्राणश्च प्राणाद् वायुरजायत

ग मुख से अग्नि इन्द्र और जिह्वा से जल उत्पन्न हुआ

मुखादग्नि श्चेन्द्रश्च

घ वह विराट् पुरुष उत्पन्न होकर बढा अन्तरिक्ष वायु अग्नि जल के पश्चात् भूमि उसके बाद पुर बने ।

स जातोऽत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथोपुर,

ङ शिर से द्यौ बना जहा प्रकाश ही प्रकाश है शीर्ष्णोद्यौ समवर्तत द्यौ से नीचे अन्तरिक्ष है जहा प्रकाश और अन्धकार दोनो हैं जहा चन्द्रमा और सूर्य है

च विराट् के मन से चन्द्रमा और चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ

चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोश्च सूर्योऽजायत

छ विराट् के पैरो स भूमि बनी पद्भ्या भूमिर्

ज श्रोत्र से दिशाये और लोक उत्पन्न हुए

दिश श्रोत्रात् तथा लोका अकल्पयन्

जैसे चक्षु और पदो के मध्य म है वैसे ही सूर्य और भूमि के मध्य चन्द्रमा है जैसे चक्षु से ऊपर श्रोत्र है वैसे ही सूर्य से ऊपर लोक हैं जो मगल ग्रह शनि आदि हैं। बुध शुक्र दोनो सूर्य के चारो ओर घूम रहे हैं बुध शुक्र के साथ सूर्य मगलादि ग्रह और चन्द्रमा भूमि की परिक्रमा कर रहे हैं।

स भूमि सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशागुलम्

महा प्रलय मे सत्व रज तम की साम्यावस्था अव्यक्त रूप प्रकृति थी। उसमे महत उत्पन्न हुआ उसमें काल बुद्धि और प्राण समाविष्ट थे

महान् नाम महत्तत्वम् अव्यक्तादुदित मुने

कालो बुद्धिस्तथा प्राण इति त्रेधा च गीयते

अहिर्बुधन्य सहिता 7 8 6

प्राण से प्रयत्न और बुद्धि से ज्ञान उत्पन्न हुआ इन दोनो का नाम अहकार है अहकार से पञ्च तन्मात्र प्रगट हुए ज्ञान स ज्ञानेन्द्रिय और प्रयत्न से कर्मेन्द्रिय तथा इनका नियामक मन उत्पन्न हुआ इन सबका समूह विराट था जो कारण रूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था उसको इकट्ठा किया जो विराट कहलाया तन्मात्रो स स्थूल भूतो को उत्पन्न किया

सत्वरज स्तमसा साम्यावस्था प्रकृति

पञ्चतन्मात्राण्यु भयमिन्द्रिय पञ्चतन्मात्रे भ्य

स्थूल भूतानि पुरुष इति पञ्चविंशति गण

यह साख्य सूत्र है

तस्माद्वा एतस्म द्वाआत्मन आकाश सम्भूत आकाशाद्वायु वायोरग्नि अग्नेराप अद्भ्य पृथ्वी पृथिव्या ओषधय ओषधिभ्योऽन्नम अन्नाद्रेत स एव पुरुष

यह तैत्तिरीयोपनिषद का वचन है

1 विराट की नाभि मे शब्द तन्मात्र था उससे अन्तरिक्ष आकाश अर्थात् अवकाश की उत्पत्ति हुइ

2 श्रोत्रो से स्पर्श तन्मात्र था आकाश श्रोत्रो मे प्रवेश कर गया उससे और स्पर्श से वायु की उत्पत्ति हुई (क्रमश)

बलिदान दिवस 6 अप्रैल पर विशेष—

हुतात्मा महाशय राजपाल

ले० प्राध्यापक राजेन्द्र "जिज्ञासु", वेद सदन, अबोहर

आर्य समाज ने अपने विद्वानो हुतात्माओ व निर्माताओ का ठीक ठाक मूल्याकन नहीं किया । आज तो आर्य समाज की वेदी से राजनैतिक लोगो पर अधिक सुनने को मिलता है धर्म पर बलिदान



देने वाले पर पत्रो मे कितने लेख छपते है ? आर्य हुतात्माओं के जीवन व उपलब्धियो पर आर्य समाज मे कितने लेखको व अनवेषको ने साधना की है ? आर्य बन्धुओ ने इस विषय पर कभी विचार ही नहीं किया किसे चिन्ता है ?

स्मरण रखिये महाशय राजपाल जी मात्र एक प्रकाशक ही नहीं थे वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे वे एक मूक समाज सेवक थे जिन्होने विविध क्षेत्रो मे अपना ईश्वर प्रदत्त बुद्धि अखण्ड धर्म निष्ठा निष्काम धर्म सेवा जाति भक्ति व देश सेवा का अमिट छाप छोडी इस लेख म उनकी किस किस सेवा का चर्चा करू

मन धर्म की बलिवेदी पर नाम स उनका एक विस्तृत जीवन चरित्र लिखा ह इसमे बहुत सी सामग्री किसी कारण से छपने से रह गई इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् भी मेने महाशय जी के जीवन व बलिदान पर और भी नई खोज करने मे सफलता प्राप्त की है महाशय राजपाल जी के सम्बन्ध म निम्न तथ्य विशेष रूप से जानने योग्य है

1 व अमर धर्मवीर प लेखराम जी के ओजस्वी व्याख्यानो को सुनकर तथा पण्डित जी के निर्मल जीवन के प्रभाव से वैदिक धर्मी बने ।

2 मुनिवर गुरुदत्त जी विद्यार्थी को छोडकर उन्हें प्रथम व दूसरी पीढी के सभी आर्य नेताओं व विद्वानो के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता समझें या विलक्षणता । किसी भी सभा के अधिकारी न होते हुए भी आर्य समाज के सब कर्णधारों के नयनों मे समा गए। इस दृष्टि से मैं नाम गिनाने लगू तो यह लेख बहुत लम्बा हो जाएगा।

3 महाशय राजपाल जी ने मास भक्षण पर विधर्मियों से एक बहुत अच्छा शास्त्रार्थ किया। यह शास्त्रार्थ आर्य समाज के इतिहास में एक चिर स्मरणीय शास्त्रार्थ रहा।

4 महाशय जी ने स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज व प गुरुदत्त (प गुरुदत्त जी विद्यार्थी से भिन्न विद्वान् थे) जी के शास्त्रार्थ करवाए। स्वामी दर्शनानन्द जी के इस शास्त्रार्थ ने वैदिक धर्म की धाक जमा दी ।

5 महाशय राजपाल जी ने आर्य मित्र सभा नाम के सगठन द्वारा ऋषि मिशन की ऐसी सेवा की कि सारा आर्य जगत् वाह ! वाह ! कह उठा । धर्म की बलिवेदी पुस्तक मे इस सभा का नाम बाल सुधार सभा कैसे छप गया ? यह मुझे पता नहीं । मैंने तो आर्य मित्र सभा नाम ही लिखा था। मेरे से पहल के कुछ लेखको ने सुनी सुनाई बातों पर विश्वास करके बाल सुधार सभा नाम लिख दिया। मैंने महाशय जी के अपने लेख के आधार पर सभा का ठीक नाम दिया है। यह लेख मेरे पुस्तकालय मे है।

6 सत्यार्थ प्रकाश के चोदहवे समुल्लास पर मुसलमानो ने सर्वप्रथम मौलाना सनाउल्ला से एक पुस्तक लिखवाई थी। वे अमृतसर के थ और महाशय जी भी अमृतसर के थे। दोनो ही अपने नाम के साथ अमृतसरी लिखा करते थे । लाहोर आकर महाशय जी ने अमृतसरी लिखना छोड दिया। स्वामी योगेन्द्र पाल जी ने उन दिनो इस्लाम पर कई खोजपूर्ण पुस्तके लिखीं । आपने मौलाना की हक प्रकाश पुस्तक का भी बडा रोचक व युक्तियुक्त सप्रमाण उत्तर दिया। स्वामी योगेन्द्र पाल जी की ये पुस्तके अमर धर्मवीर राजपाल जी ने अमृतसर से प्रकाशित कीं ।

7 महर्षि दयानन्द जी का प्रथम विस्तृत व प्रमाणिक जीवन चरित्र प लेखराम जी ने लिखा था। वे धर्म की बलिवेदी पर शीश चढा गए। उनका जीवन चरित्र लिखा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज मे वे भी धर्म की बलिवेदी पर जीवन भेंट कर गए और स्वामी श्रद्धानन्द जी का सबसे पहला जीवन-चरित्र लिखा महाशय राजपाल जी ने । वे भी उसी डगर पर चलते हुए अपने प्रेरणा स्रोत प लेखराम जी से जा मिले । यह भी हमारी एक परम्परा है ।

8 महाशय राजपाल एक ऐसे प्रकाशक थे जिन्होंने सारे विश्व में वैदिक धर्म का सन्देश पहुचा दिया, परन्तु इसके साथ ही साहित्य की कई विधायें विकसित करके एक इतिहास बना गए । उन्होंने कई आर्य महापुरुषो की जीवनिया लिखी। उन्होने कई आर्य महापुरुषो व पूज्य विद्वानो के व्याख्यानों व लखों के सकलन तैयार करके छापे। अपनी उपलब्धियो व वीरतापूर्वक बलिदान से महाशय जी मर कर अमर हो गए।

9 उन्होने कई महत्वपूर्ण विषयों पर आर्य विद्वानो से अनुपम ग्रन्थ लिखवाए व छपवाए । वे आग्रह न करते तो जवाहिरे जावेद सरीखे अद्भुत ग्रन्थ कभी भी न छपते । उन्होंने सद्ग्रन्थो का सृजन करवाकर देश विदेश मे ऋषि मिशन की धूम मचा दी । स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा सस्कार विधि के उर्दू अनुवाद का प्रकाशन भी उनका ऐतिहासिक कार्य था । यह ग्रन्थ भी मैंने खोज लिया है ।

10 एक बार महाशय जी भी हार मान गए । वे चाहते थे कि मौलिक व स्तरीय ग्रन्थो का प्रकाशन किया जाए परन्तु आर्य जनता का भरपूर सहयोग न पाकर प गगा प्रसाद उपाध्याय जी के अद्वैतवाद ग्रन्थ का प्रकाशन वे चाहते हुए भी न कर सके । यह उनके जीवन की एक पराजय थी। सम्भवत वे दो तीन वर्ष और जीवित रहते तो इसे भी छपवाकर दिखा देते । मुकदमो मे फसे थे सो हार मानकर इस काम स पीछे हट गए । इसका उन्हे दु ख था।

11 महाशय जी ने समस्त हिन्दू जाति के लिए जीवन वारा । मुसलमानो ने एक पुस्तक छापी जिसका नाम था कृष्ण तेरी गीता जलानी पडेगा फिर उन्नीसवीं सदी का महर्षि छापी । प्रत्युत्तर मे छापा गया रगीला रसूल' । सरकार के गृह विभाग ने व मुसलमानों ने डेढ वर्ष तक तो आपत्ति न की । जब गाधी जी ने "रगीला रसूल" पर अपनी विपरीत सम्मति अपने पत्र मे छापी तो मुसलमानों का जनून भडक उठा। यही लेख महाशय जी की हत्या का मूल कारण बना ।

12. महाशय जी पर चार [illegible] के लिए बारी-बारी तीन हमले किए गए । आश्चर्य की बात तो यह कि ये तीनों ही अनपढ़ थे। [illegible] ने "रंगीला रसूल" कभी नहीं पढ़ा था । इन तीनों अनपढ़ हत्यारों पर मुसलमान आज तक सैकड़ों पृष्ठ लिख चुके हैं ।

13 इल्मदीन के छुरे से वीर राजपाल ने वीरगति पाई । जब हत्यारे इल्मदीन का भाई मौलाना आजाद को मिलने गया तो मौलाना आजाद ने मजहबी जोश में उसे छाती से लगा लिया । हत्यारे का भाई होने के कारण मौलाना ने उसका इतना सम्मान सत्कार किया। केस हारकर भी जनूनी जीत गए और महाशय जी की हत्या की गई।

14 महाशय राजपाल स्वतत्रता सेनानी थे। उनके द्वारा विद्रोह फैलाने वाले साहित्य छापने के कारण अग्रेजी सरकार ने काशी मे अभियोग चलाया । हर पेशी पर उन्हे काशी जाना पडता था उन्हे यातना देने का यह अच्छा ढग सरकार ने निकाला । भाई परमानन्द जी डा सत्यपाल जी लाला पिण्डीदास जी प विष्णुदास जी व डा सत्यपाल जैसे जाने माने विद्रोही नेताओ का साहित्य छाप छाप कर महाशय जी ने सरकार व मौत को ललकारा प चमूपति जी की राष्ट्रीय कवितायें भी अपने प्रताप से की ।

15 छुरा लगन पर अभियोग चलने पर दबाव पडने पर भी आपने रगीला रसूल के लेखक का नाम प्रकट न किया । इसी अद्भुत वीरता शूरता के कारण महामना मालवीय जी ने कहा था हुतात्मा राजपाल तो सच्चे महात्मा थे। आज तो पीला कपडा पहनकर कोई भी महात्मा कहलवाने का प्रमाण पत्र पा लेता है। राजपाल जी ने तो प्राण निछावर करके अमर पद पाया। परहित म जीवन वारा

तनिक सोचिए !

महाशय जी की स्मृति में आप लोगों ने क्या किया ? उनका दिवस किसी ने कभी किसी ने मनाया क्या ? मैंने तो उनके बलिदान दिवस पर कई छोटी बडी पुस्तकों को उनके बलिदान दिवस पर ही पूर्ण करके प्रैस में दिया । ऐसे अटल ईश्वर विश्वासी मृत्युजय पत्रकार साहित्यकार प्रकाशक शास्त्रार्थ महारथी देशोपकारक निर्भीक हुतात्मा महात्मा का अभिनन्दन ! शत् शत् वन्दन ।

सम्पादकीय.....

सभा प्रधान पं. हरबंस लाल जी शर्मा ने कुलाधिपति पद की शपथ ग्रहण की

जैसा कि पंजाब की आर्य जनता को पता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा को 19-3-2001 को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का कुलाधिपति चुन लिया गया था। इस समाचार से सारे पंजाब में एक प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी थी। चारों ओर से उन्हें सैंकड़ों बधाई के पत्र आए । पंजाब तथा पंजाब के बाहर से अनेकों आर्य समाजों के अधिकारियों ने उन्हें बधाई पत्र भेजे हैं । शुभ कामनाएं भेजी हैं और उनकी दीर्घायु की परमात्मा से प्रार्थना भरे पत्र भेजे हैं। इन बधाई पत्रों को पढ़कर पता चलता है कि आर्य जगत मे पण्डित हरबंस लाल जी शर्मा के गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का कुलाधिपति चुने जाने से कितनी खुशी छाई है।

गुरुकुल कागड़ी विश्व विद्यालय के सभी कर्मचारियों कार्यकर्त्ताओं व अधिकारियों ने पण्डित हरबंस लाल जी को बधाई भेजी तथा अब 9-4-2001 को उनके हरिद्वार पहुंचने पर उनका भव्य स्वागत किया। पण्डित जी के कुलाधिपति बनने की गुरुकुल के सभी कर्मचारियों को बहुत प्रसन्नता है। सभी ने उन्हे गुरुकुल की उन्नति में अपना सहयोग देने का वचन दिया। गुरुकुल में इससे एक उत्साह का वातावरण बना हुआ है। सभी लोगो को आशा है कि पण्डित हरबंस लाल जी शर्मा की अध्यक्षता में गुरुकुल कागड़ी विश्व विद्यालय बहुत उन्नति करेगा और उसका सारा कार्य सुचारू रूप से चलेगा ।

पण्डित हरबस लाल जी शर्मा पिछले लगभग 25 वर्षों से गुरुकुल से जुडे हुए हैं पिछले कई वर्षों से यह गुरुकुल के वित्ताधिकारी चले आ रहे है । इन्होने बहुत सा धन खर्च करके गुरुकुल कांगड़ी की पुण्य भूमि जहां पर प्रारम्भ में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने गुरुकुल खोला था उसमें जो पुराना भवन खड़ा था और गिरने जा रहा था उसकी मुरम्मत करवाई । आज वह भवन नया सा लगता है दीवारों पर से पुराना चुने से किया गया परस्तर दीवारों से उतारा गया उसके स्थान पर नया परस्तर किया गया। जिन भवनों की छतें गिर गई थीं और गिर रही थीं उन्हे पुनः बनवाया । भवन पर वर्षों बाद रंग रोगन हुआ था यह कार्य इन्होंने गत तीन-चार वर्ष पूर्व करवा दिया था।

यह पुण्य भूमि वर्तमान गुरुकुल से 10-12 किलोमीटर दूर कांगडी ग्राम के पास है। इसके दोनों ओर गंगा बहती है कई बार गंगा मे पानी बढ़ जाने के कारण इस पुण्य भूमि में जाना कठिन हो जाता है । प्रति वर्ष 12 अप्रैल को वहां उत्सव होता है परन्तु कई बार गंगा में पानी बढ जाने से वहां उत्सव नहीं हो पाता। इस भूमि के अतिरिक्त पण्डित हरबंस लाल जी ने गुरुकुल की उन्नति के लिए गत वर्षों में भी कई कार्य किए हैं । गुरुकुल में अनेकों प्रकार के पेड़-पौधे यह प्रति वर्ष लगवाते रहे।

अब पण्डित जी कई वर्षों के बाद इस गुरुकुल के कुलाधिपति बने है अब इनकी देख-रेख में यह गुरुकुल और अधिक उन्नति करेगा।

8 अप्रैल 2001 को पण्डित जी गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय में पधारे और 9 अप्रैल को सैंकड़ों लोगों की उपस्थिति में उन्होंने कुलाधिपति पद की शपथ ग्रहण की और विधिवत रूप से कुलाधिपति का कार्य सम्भाल लिया । इस अवसर पर सभी लोगों ने इनका भव्य स्वागत किया विशेष रूप से पंजाब से सभा के सभी अधिकारी वहां पहुंचे हुए थे। सभा कार्यकर्त्ता प्रधान व वरिष्ठ उपप्रधान श्री डा. के.के. पसरीचा, उप प्रधान चौ. ऋषिपाल सिंह एडवोकेट, उप प्रधान-श्री प्रिं. स्वतन्त्र कुमार जी, उप प्रधान श्री हरबंस लाल जी सेठी एडवोकेट, उप प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा, रजिस्ट्रार श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा, महामन्त्री श्री सुरेन्द्र नाथ मुरगाई, मन्त्री श्री मुलखराज आर्य, मन्त्री श्रीमती राजेश शर्मा, मन्त्री ओ.पी. टण्डन, मन्त्री श्री जगदीश अग्रवाल, कोषाध्यक्ष श्री प्रेम भारद्वाज, अधिष्ठाता साहित्य विभाग श्री रामरत्न महाजन तथा अन्य सभा अधिकारी व अन्तरंग वहां इस अवसर पर उपस्थित थे ।

पंजाब से सैंकड़ों स्त्री-पुरुष गुरुकुल मे पहुचे हुए हे आगामी अक में इसका पूर्ण विवरण दिया जाएगा। अभी हमे पूरा विवरण नही मिला कि कहां-कहां से पंजाब से आर्य बन्धु हरिद्वार पहुचे हैं ।

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की यह एक बहुत बडी सफलता है कि इस सभा के प्रधान गुरुकुल कागडी के कुलाधिपति बने हे। अब सभा का विवाद भी प्रायः समाप्त हो गया है और सभा का सारा काय सुचारू रूप से सभा प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा की अध्यक्षता में चल रहा है।

यह वर्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए बहुत शुभ हे ओर यह संवत् 2058 भी शुभ व मगलमय रहेगा ऐसी हमे पूर्ण आशा हे । इस वर्ष पंजाब सभा बहुत उन्नति करेगी ।

—धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

जीवन का उद्देश्य बनाएं

परमात्मा ने हमें यह अमूल्य शरीर व जीवन प्रदान किया है। मानव का चोला एक मूल्यवान चोला है। इसकी एक आंख की कीमत लाखों रुपये आंकी जा सकती है। आंख, नाक, कान, वाणी, हाथ पाव सभी तो कीमती है। इस मूल्यवान चोले को पाने के बाद भी हम अक्सर अन्य जीव जन्तुओं की तरह अपना जीवन व्यतीत करते जा रहे हैं। पेट भरना, बच्चे पैदा करना, उनका पालन-पोषण करना, परिवार की पालना करना, खाने पीने ओड़ने बिछौने का प्रबन्ध करना। साधन जुटाना बस यह हमारा उद्देश्य रह गया है। यह सब तो हम देखते हैं अन्य जीव-जन्तु भी करते हैं। वह भी खाने-पीने की व्यवस्था जुटाते हैं। बच्चे पैदा करते हे और उनका पालन पोषण भी करते हैं और अपनी जीविकोपार्जन भी करते रहते है परन्तु इससे अधिक वह कुछ नहीं कर पाते और न ही उनका कोई उद्देश्य होता है। केवल खाना-पीना व पेट भरना ही उनका उद्देश्य हे परन्तु इन्सान पशुओं आदि से ऊपर है इसके पास बुद्धि है जो परमात्मा ने विशेष रूप से इसे दी है। यह बुद्धि के सहारे से आज बहुत उन्नति कर रहा है, पक्षियो की तरह आसमान मे उड़ रहा है। जलचरो की भान्ति पानी (समुद्र) की गहराई को तैर कर नाप रहा है। चन्द्रमा तक की उडाने उड रहा है। धन के अम्बार लगा रहा है। कई लोगों ने तो इतना धन इकट्ठा कर लिया है कि उन्हें स्वयं पता नहीं उनके पास कितना धन है । विज्ञान चरम-सीमा पर पहुंच रहा है। नए-नए अविष्कार इन्सान रात-दिन कर रहा है।

परन्तु क्या इन्सान का यही उद्देश्य है जो कुछ यह कर रहा है ? नहीं ऐसा नहीं है । यदि ऐसा होता तो यह सब कुछ पाकर इन्सान सुखी होता परन्तु ज्यों-ज्यो विज्ञान बढ रहा है, इसका धन बढ रहा है त्यो-त्यो इन्सान दुःखी होता जा रहा है। इसका कारण है कि यह अपने मुख्य उद्देश्य से भटक गया है। वास्तविकता तो यह है कि इसने अपना मुख्य उद्देश्य ही नहीं बनाया।

इन्सान का मुख्य उद्देश्य उस सुख स्वरूप सुख के धाम परम पिता परमात्मा को पाना है । प्रत्येक इन्सान सुखी रहना चाहता हे परन्तु जहा सुख है वहा यह जाना ही नहीं चाहता। ससारिक पदार्थो मे क्षणिक सुख है परन्तु परमात्मा की भक्ति मे पूर्ण सुख है । सुख के धाम परमात्मा का पाना, उसे जानना, उसको पहचानना और उसे जान कर पहचान कर उसकी राह पर चलना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है। इस उद्देश्य को हम पहचानना चाहिए और इसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए, बिना उद्देश्य के इन्सान भटक जाता है और आज का इन्सान आज इधर-उधर भटक रहा है आखिर कब तक इन्सान भटकता रहेगा । इन्सान परमात्मा से दूर भागता जा रहा है और उस सर्वशक्तिमान्, अजर, अमर, सर्वज्ञ परमात्मा को भूलता जा रहा है। आज पाप करते समय इन्सान उस महान शक्ति से डरता भी नहीं। धन ने उसको अन्धा बना दिया है और सोचने की शक्ति छीन ली है। परमात्मा का नाम लेना आज एक आडम्बर समझा जाने लगा है। पुण्य कार्यों से इन्सान दूर भाग रहा है। पाप कर्मो मे रत्त होता जा रहा है। उसका यही कारण है कि आज तक इन्सान ने परमात्मा को पाने का उद्देश्य नहीं बनाया । इसलिए हमे अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य परमात्मा को जानने का बनाना चाहिए, उसकी भक्ति अराधना का बनाना चाहिए। ऐसा करने पर ही हमारा कल्याण होगा नहीं तो यों ही भटक-भटक कर जीवन व्यतीत हो जाएगा और अन्तिम समय पछतावे के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगेगा। आओ विचार करें हम क्या कर रहे हैं और कहां जा रहे हैं ।

—धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

संगति द्वारा वैदिक विचारधारा के प्रचारक : ओम प्रकाश वर्मा

लेo मनमोहन कुमार आर्य, चक्खुवालां, देहरादून

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 10 अप्रैल सन् 1875 को आर्य समाज की स्थापना मुम्बई मे ऐसे समय मे की थी जब वैदिक धर्म व सस्कृति अपने पतन की चरम अवस्था मे थी तथा अनेक शक्तियां इसे समाप्त करने के लिए इस पर आक्रमण किए हुए थे। महर्षि दयानन्द ने इन चुनौतियो को स्वीकार किया तथा अपने अपूर्व वैदिक ज्ञान के बल से आक्रमणकारी शक्तियों की चुनौतियो को परास्त कर दिया । महर्षि ने वैदिक मत को सबसे ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, तर्क की कसौटी पर खरा तथा मानव जीवन की उन्नति के लिए उपयोगी सिद्ध किया । सन् 1883 मे महर्षि की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियो ने शास्त्रार्थ, प्रवचन, भजनों द्वारा एवं विद्यालय-विधवानाथ आश्रमो की स्थापना, पाखण्ड-खण्डन, कुरीति निवारण व समाज सेवा के कार्यो से आर्य समाज का यश बढाया तथा वैदिक मत श्रेष्ठ सिद्ध किया। आर्य समाज के विगत् 125 वर्षो के इतिहास मे भजनोपदेशको की लम्बी शृंखला में एक यशस्वी नाम ओम् प्रकाश वर्मा है जो विगत 54 वर्षो से निरन्तर आर्य समाज व देश की सेवा कर रहे हैं और आयु के 72 वर्ष पूरे करके पूर्ण स्वस्थ है। केरल प्रान्त को छोड कर देश के प्राय: सभी नगरों व ग्रामों में पहुच कर अपने-अपने मधुर भजनों व सगीत द्वारा धर्म प्रेमी श्रद्धालु भक्तो के हृदय मे ईश्वर के स्वरूप, महिमा, ऋषि दयानन्द महिमा व वैदिक ज्ञान के अमृत तुल्य विचारों की ज्ञान गगा को प्रवाहित किया है। श्री ओम प्रकाश वर्मा का जन्म यमुना नगर (हरियाणा) के निकट अल्हार गाव मे एक आर्य समाजी परिवार मे 15 नवम्बर सन् 1928 को हुआ था। चार भाई व चार बहनो के परिवार मे आयु क्रम मे आपका पाचवा स्थान है । श्रीमति सुनहरी देवी आपकी जीवन संगिनी है तथा पांच सन्तानों में आपके दो पुत्र व तीन पुत्रियां हैं जो सभी विवाहित हैं। आपने मैट्रिक करने के पश्चात् हिन्दी प्रभाकर की परीक्षा पास की। पाठशाला में आप प्रार्थना गाया करते थे। कण्ठ मधुर था, अत: गुरुजनों ने प्रेरणा की कि संगीत सीख कर गायक बनों। परिवार भी इस कार्य में सहायक बना और आप सगीत सीखने श्री धूम सिंह जी के पास सिमौली (दौराला) पहुंचे । कुछ समय यहां रह कर इस शताब्दी के पांचवे दशक के मध्य में आपने भगत मंगत राम के 'गन्धर्व महाविद्यालय' में संगीत की शिक्षा चार वर्षों में प्राप्त की । संगीत की शिक्षा पूरी कर आप भजनोपदेशक के रूप में वैदिक विचारधारा का प्रचार करने संगीत की दुनिया में उतरे और आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब मे 'भजनोपदेशक' बन गए। सन् 1946 से 1966 तक के बीस वर्षों में उक्त सभा के अन्तर्गत पंजाब के नगरो व ग्रामो में प्रचार कर आपने सभा की सेवा का त्याग कर दिया और स्वतंत्र 'आर्य भजनोपदेशक' बन गए । इस अवधि में आप को प्राय: पूरे देश के नगरो व ग्रामों में जाने का अवसर मिला और आपने अपने सम्पर्क में आये व्यक्तियो पर वैदिक धर्म की गहरी छाप छोडी । ईश्वर ने आपको मधुर कण्ठ दिया है तथा भजनो का गायन एव प्रस्तुतीकरण इतना प्रभावशाली होता है कि किसी भी आर्य समाज के उत्सव की सफलता आपकी उपस्थिति से सुनिश्चित हो जाती है। आपके भजनों में जीवन उन्नति के दिव्य विचारों के साथ बुराईयो को छोड़ने की भी प्रेरणा रहती है जो श्रोतृ वर्ग पर अनुकूल प्रभाव डालती है। सम्पत्ति भजनोपदेशक के रूप में आप 56 वर्षों का सेवाकाल पूरा कर लेने के बाद भी कर्त्तव्य क्षेत्र में डटे हुए हैं । आपकी 72 वर्ष की आयु है तथा शेष समय भी वैदिक धर्म की सेवा में बिताने का आपका संकल्प है।

अनेक गुरुकुलों व आर्य संस्थाओं की स्थापना में आपने उल्लेखनीय योगदान दिया है । देश के शीर्षस्था सफल सिने कलाकार सुनील दत्त जी की वर्मा जी से युवावस्था में गहरी मित्रता थी। फिल्मों में सफलता मिलने के बाद सुनील दत्त ने वर्मा जी से मुम्बई चल कर फिल्मी गीत गवाने का प्रयास किया था । आर्य समाजी पिता की दृष्टि में ईश्वर, वेद व ऋषि दयानन्द के कार्य से बड़ा कोई कार्य नहीं था। इसलिए पिता की अनुमति नहीं मिली । वर्मा जी अनुभव करते हैं कि यदि वह मुम्बई चले गए होते तो सफल गायक होते ।

आर्य समाजो की दुरावस्था के कारण पूछने पर वर्मा जी कहते हैं कि आर्य समाजों में ऐसे तत्वों का प्रवेश हो गया है जो आर्य नहीं है तथा स्वार्थ, पद व लौकैषणा से ग्रसित हैं । उनका मानना है कि 'आर एस एस' की विचारधारा के लोगों का समाज में प्रवेश हो जाने से भी हानि हुई है । यह पूछने पर कि आर्य समाज का भविष्य कैसा है, उन्होंने कहा-"आर्य समाज का भविष्य उज्जवल है क्योंकि इसमें महर्षि दयानन्द का खून लगा है।" 72 वर्ष की अवस्था में किसी व्यक्ति द्वारा देश के कोने-कोने में जाकर आर्य समाज के विचारों का प्रचार करना वस्तुत: सराहनीय एवं प्रशंसनीय है ।

समर्पण प्रार्थना

हे विभो ! आनन्दसिन्धो ! मे च मेधा दीयताम् ।
यच्च दुरितं दीनबन्धो ! तच्च दूरं नीयताम् ॥ हे विभो......।
चञ्चलानि चेन्द्रियाणि मनसं मे पूयताम्।
शरणं याचे तावकोऽहं सेवकोऽनुगृह्यताम्॥ हे विभो.....।
त्वयि च वीर्यं विद्यते यत् तच्च मयि निधीयताम्।
या च दुर्गुणदीनता मयि सा तु शीघ्रं क्षीयताम्॥ हे विभो.....।
शौर्यं धैर्यं तैजसं च भारते चेक्रीयताम्।
हे दयामय अयि अनादि ! प्रार्थना मम श्रूयताम्॥ हे विभो.....।

भावार्थ :-हे सर्वव्यापक आनन्द के सागर प्रभुदेव ! मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान कीजिए। हे दीनबन्धो ! मुझ में जो बुरे गुण, कर्म, स्वभाव हैं, उन्हें कृपा करके दूर कोजिये । मेरी इन्द्रियां और मन अत्यंत चंचल तथा अपवित्र हैं, इनको पवित्र तथा स्थिर कीजिये । मैं आपकी शरण मे आया हूं आप दया कर मुझ सेवक को अपने आश्रय में रख लीजिये। हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ! आप में जो शक्तियां हैं वे मुझ में धारण कराइये तथा जो मेरे में दुर्गुण, दीनता, निर्बलता है, उसे शीघ्र ही दूर कीजिये । हे दयानिधान ! हमारे भारत देश के सभी निवासियो को शूरवीर, तेजस्वी, धैर्यशाली बनाइये । हे अनादि ! मेरी यह प्रार्थना सुनिये और मेरी कामना को शीघ्र ही पूरा कीजिये ॥

हम सपने साकार करेंगे

लेo आचार्य रामसुफल शास्त्री "वैदिक प्रवक्ता" लाल सड़का हांसी (हिसार)

जगत् गुरु ऋषि दयानन्द के हम अपने साकार करेंगे।

घर-घर ज्ञान की ज्योति जलाकर, वेद की पावन ध्वनि गुंजाकर ।
दु:खी और निर्धन लोगों को, प्रभु भक्ति की राह बताकर ।
मानव के अज्ञान तिमिर को अब हम जड़ से नष्ट करेंगे ॥1॥

दलित-पतित और दीन जनों को, प्रेम प्यार से हृदय लगाकर।
इन्हीं दिलों में बसते हैं प्रभु, ये बातें सबको समझाकर ।
जाति-पाति व ऊंच-नीच की तुच्छ भावना दूर करेंगे ॥2॥

गली-गली और नगर में जाकर वेद अमृत का पान करा कर।
एक ईश के सब बेटों को मानवता का पाठ पढ़ा कर ॥
वेद का पढ़ना परम धर्म है, ऐसी ही हम कहा करेंगे ॥3॥

सबके सब घर स्वर्ग बनेंगे, सत्संगति सद्ज्ञान को पाकर।
वेद-शास्त्र व सद्ग्रन्थों को गायेंगे सब गीत बनाकर ॥
"जीवन" तुच्छ बनेगा प्यारा, ऐसा बढ़िया काम करेंगे ॥4॥

'चित्र नहीं चरित्र पूजन आवश्यक': तत्वबोध सरस्वती

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, महिला आर्य समाज सज्जन नगर, आर्य समाज सज्जन नगर व आर्य समाज किरण मगरी के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 2-4-2001 को सायं 5.30 बजे रामनवमी का पावन पर्व न्यास परिसर में उत्साह पूर्वक मनाया गया। सर्व प्रथम न्यास की यज्ञशाला में वैदिक यज्ञ श्री ब्रह्मचारी श्री ओमदेव के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। इसके उपरान्त न्यास के सभागार में श्री अशोक आर्य के संयोजन व न्यास अध्यक्ष पूज्य स्वामी तत्वबोध सरस्वती की अध्यक्षता में सत्संग का आयोजन हुआ। सर्व प्रथम न्यास के उपमंत्री डा अमृत लाल तापड़िया द्वारा स्वामी तत्वबोध सरस्वती, स्वामी संकल्पानंद सरस्वती व वयोवृद्ध इतिहास वेता एडवोकेट स्वरूप सिंह चुण्डावत का माल्यार्पण के रूप में स्वागत किया गया। कोई भी पावन पर्व प्रभु भजन के अभाव में अधूरा ही माना जाता है। अतः सर्व प्रथम पं शिवपाल आर्य व गिरीश जोशी द्वारा प्रभु भक्ति व राष्ट्र भक्ति के सुमधुर गीत प्रस्तुत किए गए। पण्डित शिवपाल आर्य ने भजनोपदेश के रूप में आधुनिकता व रामकालीन सभ्यता व संस्कृति का तुलनात्मक दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि "राम की पितृ भक्ति आज्ञापालन, भ्रातृ भाव, त्याग, सदाचार एवं एक पत्निव्रत पालन के रूप में मर्यादित तपोमय जीवन का आदर्श आज भी अनुकरणीय है।" उन्होंने कहा है कि आज जो स्थान नाशिक के रूप में जाना जाता है कभी पंचवटी के नाम से जाना जाता था तथा अपने वनवास काल में वहीं श्री राम ने अपनी पर्ण कुटी का निर्माण किया था। वहा की सूर्पनखा वाली घटना का उल्लेख करते हुए श्री आर्य ने कहा कि "सूर्पनखा के प्रस्ताव को अस्वीकार करना राम व लक्ष्मण के एक पत्निव्रत पालन का अनूठा उदाहरण है।" ब्रहमचारी ओम देव ने कहा कि "मनुस्मृति में वर्णित धर्म के दस लक्षणों का अनुपालन राम के जीवन में स्पष्ट देखा जा सकता है, ईश्वर हमें शक्ति प्रदान करें कि हम राम के जीवन को प्रेरणा स्रोत मानकर धर्म का पालन कर सकें।" पण्डित हुकमीचन्द शास्त्री ने कहा कि "हम परस्पर मिलने पर अभिवादन स्वरूप राम-राम तो करते हैं किन्तु तदनुरूप आचरण नहीं करते। तदनुरूप आचरण ही रामनवमी का पर्व मनाने की सार्थकता है।"

वयोवृद्ध इतिहासवेत्ता एडवोकेट स्वरूप सिंह चुण्डावत ने कहा कि "अवतारवाद की कल्पना राम के बहुत बाद की है, स्वयं बाल्मीकि ऋषि ने राम को अवतार नहीं आदर्श पुरुष माना है। उनके आदर्शों का अनुपालन श्रेयस्कर है।" मुख्यवक्ता के रूप में बोलते हुए स्वामी संकल्पानन्द सरस्वती ने कहा कि भौतिक उन्नति के फलस्वरूप सर्वविध साधनों की विद्यमानता में भी आज मानसिक शान्ति का अभाव है। महापुरुषों के जीवन से मार्ग दर्शन प्राप्त कर जीवन को उन्नत बनाते हुए हम मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकें। इस अभिप्राय से ही महापुरुषों के जन्म दिन मनाये जाते हैं। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन मे स्वामी तत्वबोध सरस्वती ने कहा कि राम का नाम भक्ति भाव का द्योतक है। वे मर्यादापालक व रक्षक थे। आज आदर्श राज्य को रामराज्य के रूप में माना जाता है। वे आदर्श पुरुष थे। आज मनुष्य समाज महापुरुषों की चित्रों की पूजा तो करता है किन्तु उनके चरित्र को पुजा नहीं करता। सुखी व समुन्नत समाज हेतु उनके चित्र नहीं अपितु चरित्र की पूजा किया जाना अधिक लाभप्रद है। आज समाज राम के चित्र की पूजा कर रहा है। किन्तु चित्र पूजन के स्थान पर उनके आदर्शों के अनुकरण के रूप में उनके चरित्र पूजन की आवश्यकता अधिक है। यही पर्व मनाने की सार्थकता है।"

कार्यक्रम के अन्त में संयोजक श्री अशोक आर्य द्वारा भावी कार्यक्रमों की सूचना देने के उपरान्त शान्ति पाठ व प्रसाद वितरण सहित कार्यक्रम का समापन हुआ।

मुनीन्द्र सिंह भाटी,
न्यास प्रवक्ता

गुरुकुल आर्य माडल स्कूल भठिण्डा का वार्षिक परीक्षा परिणाम

गुरुकुल आर्य माडल स्कूल भटिण्डा के विद्यार्थियों की वार्षिक परीक्षा परिणाम के उपलक्ष्य में दिनांक 31-3-01 को प्रधान चौ बाबूराम गर्ग की अध्यक्षता में साधारण सभा का आयोजन किया गया। सर्व प्रथम पं. श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री के ब्रह्मत्व में हवन यज्ञ सम्पन्न हुआ। यज्ञोपरान्त श्री शास्त्री जी ने विद्यार्थियों को आशीर्वचन कहे।

स्कूल के प्रधानाचार्य श्री भगीरथ शर्मा जी ने परीक्षा परिणाम घोषित करते हुए स्कूल का वार्षिक परीक्षा परिणाम 100 प्रतिशत बताया। उन्होंने आगे कहा कि भारत एक आर्यावर्त देश है और इसके निवासी आदिकाल से ही आर्य कहलाए। भारत की संस्कृति सभ्यता, शिष्टाचार, रहन-सहन एवं खान-पान की सभी देश प्रशंसा करते हैं। संसार मे भारत ही एक ऐसा देश है, जो मानवता को जन्म देता है, जब कि अन्य देश केवल मनुष्यो को जन्म देते हैं।

इस संस्था को ला अमरनाथ जी, ला. केशवदेव जी, डा भगवन्त राय जी महाशय, महाशय किशोरी लाल जी, चौधरी मिड्डा मल आदि ने अपने-अपने समय में पूरा सहयोग दिया और स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा लगे वृक्ष को सभाल कर रखा।

श्री चमन लाल जी मेहता लम्बे अर्से से आर्य समाज की सेवा मे जुटे हुए हैं। आदरणीय प्रधान चो बाबू राम जी गर्ग मैनेजर श्री प्रेम भाटिया जी और अन्य सदस्यो का यही सपना है कि गुरुकुल आय माडल स्कूल का नाम उजागर हो।

स्कूल के मेनेजर श्री प्रेम भाटिया जी ने अपने सम्बोधन मे स्कूल के बच्चो को आशीर्वाद दिया एव आह्वान किया कि वह पढाई मे परिश्रम करे अपने माता-पित गुरुजन एव अपने बडो का सदा आदर करे।

प्रि श्रीमती शान्ति जिन्दल एव श्रीमती उषा अध्यापिका आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल ने बच्चो को आशीर्वाद दिया। **—प्रेम भाटिया, प्रधान**

बीकानेर में रामनवमी पर्व

चैत्र शुक्ला नवमी सं 2058 को आर्य समाज महर्षि दयानन्द माग बीकानेर मे मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्म दिवस राम नवमी का पव सोल्लासपूर्वक मनाया गया। प्रातः ब्रह्म यज्ञ व देव यज्ञ श्री उदयशकर व्यास के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ। श्री उदय शकर व्यास ने अपने प्रवचन में कहा कि श्री राम के बारे में प्रमुखतः दो ग्रन्थ वाल्मीकियकृत 'रामायण' तथा तुलसीदास कृत रामचरित मानस हैं। बाल्मीकिय रामायण मे वर्णित श्री राम का जीवन ही प्रामाणिक है क्योकि यह महर्षि प्रणीत आष ग्रन्थ है। श्री मणिलाल ने कहा कि कालिदास ने रघुवश महाकाव्य मे रघुवंश के 46 राजाओं का वर्णन किया है जिनमें 'राम' के जीवन को सर्वोत्तम माना है।

प्रधान एडवोकेट श्री शम्भूराम ने अपने उद्बोधन मे कहा कि "श्री राम" को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में मानने से ही समाज का उत्थान हो सकता है। राम को मूर्ति की स्थापना मंदिर मे करने से समाज मे यह मान्यता फैलती है कि राम तो अवतार थे उसका अनुसरण मनुष्य कैसे कर सकता है।

मंत्री श्री बलवीर आर्य ने कहा कि आर्य समाज व महर्षि दयानन्द के मतानुसार श्री राम परमात्मा नहीं वरन महापुरुष थे। वाल्मीकि श्री राम के समकालीन होने के कारण उनके द्वारा प्रणित होने से बाल्मीकि रामायण ही प्रामाणिक है।

—महेश सोनी, उपमन्त्री

जी हां! जन जन तक कैसे पहुंचे नाम आर्य समाज का?

आर्य बन्धुओं 126 वर्ष हो गए आर्य समाज की स्थापना को फिर भी सर्व सधारण में हम अपनी पहचान न बना पाये, तो दोषी कौन है? स्वयं विचारें। वैदिक सिद्धान्तों व आर्य समाज के दस नियमों का विश्व की कोई भी सस्था या मत सम्प्रदाय विरोध नहीं कर सकता, फिर भी आम जनता तक महर्षि दयानन्द व आर्य समाज का नाम न पहुंचने का कोई तो कारण है? इसमें मुख्य कारण सरकारी छुट्टी न होना भी है, जैसे राम नवमी, श्री कृष्ण जन्म अष्टमी या महावीर जयन्ती, ईद आदि की छुट्टी होती है इसका प्रभाव पडता है।

आज छुट्टी है किस कारण से है इसका छोटे बडे सभी के हृदय मन्दिर पर प्रभाव पड़ता है, जैसे 15 अगस्त की छुट्टी के कारण स्वतन्त्रता दिवस का और राम नवमी के दिन श्री राम के जन्म दिवस का पता चलता है कि आज छुट्टी है, स्कूल के बच्चे भी जानते हैं। ईद की छुट्टी मुस्लिम पर्व के रूप मे है।

आर्य समाज स्थापना दिवस या महर्षि जन्म दिवस की छुट्टी होन से मन पर प्रभाव पडता है।

सरकार झुकती है झुकाने वालो में बल चाहिए। विस्तार से लाभ क्या? हमे सरकारी अवकाश के लिए प्रयत्न करना चाहिए। महर्षि जन्म दिवस व आर्य समाज स्थापना दिवस पर अवकाश सरकारी होना चाहिए। **—राम पथिक भिक्षु,**
आर्य समाज अजनाला

श्री रामनाथ जी यात्री नहीं रहे

आर्य जनता को यह जानकर दुःख होगा कि आर्य समाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री रामनाथ जी यात्री वानप्रस्थी का उनके निवास स्थान बटाला मे 11-4-2001 को देहावसान हो गया।

श्री यात्री जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की वर्षो सेवा की है। वह एक अच्छे भजनोपदेशक थे और वानप्रस्थ लेने के पश्चात् तो वह भजनो के साथ-साथ उपदेश भी किया करते थे । पजाब का शायद ही कोई ऐसा नगर होगा जिसमे वह प्रचारार्थ न गए हो । वह पिछले कुछ समय से बीमार चले आ रहे थे और अपने बडे सुपुत्र श्री वीरेन्द्र भारती जी के पास रहते थे । उनके सुपुत्र वीरेन्द्र भारती जी का बटाला मे अपना विशेष स्थान है बल्कि बटाला ही नहीं जिला गुरदासपुर मे भी सभी लोग उन्हे अच्छी तरह जानते है ।

श्री रामनाथ जी यात्री के देहावसान से जो स्थान आर्य समाज मे खाली हुआ है उसकी पूर्ति होनी असम्भव है। पजाबी होने से उनका पजाबी भाषा पर अच्छा अधिकार था और पंजाब के ग्रामीण क्षेत्रो मे वेद प्रचार करने के लिए सभा को उनके जैसा और कोई भजनोपदेशक नहीं मिला और न ही आगे मिलने की आशा है ।

मै आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के सभी अधिकारियो व सभा कार्यालय के सभी कर्मचारियो की ओर से उन्हे अपनी श्रद्धाजलि भेट करता हू और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि वह उनके सत्कर्मो के अनुसार उनकी आत्मा को सब प्रकार की सुख और शान्ति प्रदान करे और उनके सारे परिवार को उनके चले जाने के वियोग को सहन करने की शक्ति प्रदान करें ।

अन्त मे मैं उन्हे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की ओर से व अपनी ओर मे श्रद्धाजलि भेट करता हू । –धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

श्री सुरेन्द्र शास्त्री को मातृ शोक

आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना के प्रसिद्ध कार्यकर्ता सुयोग्य विद्वान् श्री प सुरेन्द्र जी शास्त्री की माता श्रीमती सीता देवी जी का 88 वर्ष की आयु मे 4-4-2001 को देहावसान हो गया। 5-4-2001 को उनका अन्तेष्टि सस्कार पूर्ण वैदिक रीति अनुसार उनके गाव महुआ जिला चम्बा मे सम्पन्न हुआ।

माता जी बहुत ही धार्मिक विचारो की थी उनका सारा परिवार आर्य समाज के रग मे रगा हुआ है उनके चार सुपुत्र तथा तीन सुपुत्रिया है। वह अपने पीछे भरा परिवार छोड कर गई है । सभी बेटे उनका पूरा मान करते थे। उन्होने बडा सम्मानीय जीवन व्यतीत किया।

उनका अन्तिम शोक दिवस 14-4-2001 को दोपहर बाद 2 बजे से तीन बजे तक उनके पैत्रिक गाव महुआ जिला चम्बा हि प्र मे मनाया जाएगा ।

आर्य केन्द्रीय सभा सोनीपत का चुनाव सम्पन्न

आर्य केन्द्रीय सभा सोनीपत (हरियाणा) का चुनाव दो वर्ष के लिए श्री तेज करण मरदाना के सरक्षण मे सर्व सम्मति से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर निम्न पदाधिकारी चुने गए :–

सरक्षक :–श्री तेज करण मरदाना (माडल टाऊन) । प्रधान :–श्री वेदपाल आर्य (सैक्टर-14)। वरिष्ठ उपप्रधान :–श्री हरिचन्द स्नेही (शान्ति नगर)। उपप्रधान :–श्री प्रीतम हसीजा (सैक्टर-15)। महामन्त्री:– श्री सुरेन्द्र कुमार खुराना (खन्ना कालोनी)। सहमन्त्री :–श्री वेद प्रकाश आर्य (बडा बाजार)। सगठन मन्त्री :–श्री राजेन्द्र बत्रा (माडल टाऊन)। कोषाध्यक्ष :–श्री अशोक कुमार आर्य (सैक्टर-14)। लेखा निरीक्षक :–श्री चन्द्रभान हसीजा (ऋषि नगर)। वेद प्रचाराधिष्ठाता :–श्री कृष्णदेव कौटिल्य (माडल टाऊन) अन्तरंग सदस्य:–सर्व श्री वीर सैन श्रीधर, अशोक गोयल, मेवा राम मनचन्दा, नित्य प्रिय आर्य।

नोट :–समस्त आर्य समाजें पांच-पांच प्रतिनिधि साधारण सभा के सदस्य होंगे। संगठन को सुदृढ़ करने के लिए श्री वेदपाल आर्य ने अनुरोध किया तथा सभी प्रतिनिधियों का धन्यवाद किया। –हरिचन्द स्नेही

भटिण्डा में आर्य समाज स्थापना दिवस

'आर्य समाज चौक भटिण्डा के महर्षि दयानन्द सत्संग भवन में आर्य समाज स्थापना दिवस, नव संवत्सर एव शहीदी दिवस श्री प्रेम भाटिया जी प्रधान की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। सर्व प्रथम हवन यज्ञ आचार्य पं श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री 'वैदिक प्रवक्ता' के ब्रह्मत्व में निर्धारित समय पर सम्पन्न हुआ और यज्ञ के पश्चात् उन्होंने बहुत प्रभावशाली प्रवचन दिया और आर्य समाज की व महर्षि दयानन्द की महानताओं का वर्णन किया ।

आर्य गर्ल्ज सी.सै. स्कूल की अध्यापिका श्रीमती अरुणा अरोड़ा ने शहीद भगत सिंह तथा उनके साथियों की देशभक्ति की भावना को प्रकट किया ।

श्री महेन्द्रपाल जी अरोडा उपमन्त्री आर्य समाज ने देश भक्ति का गीत सुनाया। प्रमुख वक्ता के रूप में मा० श्री मक्खन लाल जी (कन्टोमेन्ट) भटिण्डा ने समस्त भारत वासियों को वैदिक संस्कृति अपनाने पर जोर दिया।

अन्त में श्री मक्खन लाल जी ने ये शब्द कहे–गमों की आंच पे आंसू उबालकर देखो, चढेगा रग किसी पर भी डाल कर देखो । तुम्हारे दिल का दर्द भी जरूर कम होगा, किसी के पाव का काटा निकाल कर देखो ।

"दयानन्द ने इस मुल्क को गहरी नींद से जगाया और [illegible] एवज में उनको बाहर [illegible] हो चाहे मुसलमां इस मुल्क [illegible] का, इसफ़ज़न से बोलो कि इस जमाने में दयानन्द [illegible] रहनुमा सबका" ।

मंच संचालन श्री बिहारी लाल मन्त्री जी ने सुचारू रूप से किया। मन्त्री जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा का गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार के कुलाधिपति बनने पर बधाई दी । आज की सभा के अध्यक्ष श्री प्रेम भाटिया प्रधान आर्य समाज ने मुख्यवक्ता श्री शास्त्री जी, मा श्री मक्खन लाल जी, श्रीमती अरुणा अरोड़ा जी, श्री महेन्द्र पाल जी का धन्यवाद किया कि उन्होंने अपना अमूल्य समय देकर सभा की शोभा को बढाया। उन्होंने उपस्थित सभी आर्य जनों का जिन में श्री पी.डी. गोयल प्रधान व श्री विनोद गर्ग प्रिंसीपल श्री हुकमचन्द गोयल मन्त्री आर्य माडल हाई स्कूल, प्रधान लाला कुलवन्त राय अग्रवाल, मैनेजर श्री अशोक कुमार अग्रवाल, प्रिंसिपल श्रीमति शान्ति जिन्दल आर्य गर्ल्ज सी.सै. स्कूल, चौ बाबूराम गर्ग प्रधान गुरुकुल श्रीमती इन्द्रा छाबड़ा व श्री गौरी शकर आदि और आर्य वीरदल के नवयुवकों का भी धन्यवाद किया । शान्ति पाठ के पश्चात् प्रसाद वितरण किया गया। –प्रेम भाटिया, प्रधान

आर्य समाज कमालपुर होशियारपुर में स्थापना दिवस

आर्य समाज मन्दिर कमालपुर होशियारपुर में आर्य समाज स्थापना दिवस की पूर्व सन्ध्या पर एक विशेष सभा का आयोजन किया गया। हवन यज्ञ के पश्चात् आचार्य भद्रसेन जी ने ऋषि दयानन्द के उद्देश्यो की ओर संकेत करते हुए कहा कि अब समय आ गया जब आर्यजनों विशेषकर युवकों को भारी जिम्मेवारी निभानी है । हवन यज्ञ के समय देव दयानन्द की धारणा को बताते हुए कहा कि अग्नि जब पूरी तरह से मच जाए तो उसमें आहुति डाली जाए जिससे कि सुगंधि सब जगह फैल जाए। यह सुगंधि धूप, अगरबत्ती की सुगंधि से कहीं आगे निकल जाती है। आज के परिपेक्ष मे आर्य समाज का कार्यक्षेत्र बढ़ गया। –यशपाल वालिया, मन्त्री

भटिण्डा में रामनवमी का पर्व

आर्य समाज (आर्य समाज चौक) भटिण्डा की यज्ञशाला में राम नवमी का पर्व मनाया गया। सर्वप्रथम पं. श्री गुरुप्रसाद जी शास्त्री ने हवन यज्ञ सम्पन्न करवाया। आज की मुख्य यजमान श्रीमती इन्द्रा छाबडा थीं । यज्ञोपरान्त कु. सुमेधा जी ने ईश्वर भक्ति का भजन "मेरा नाथ तू है-2 मैं नहीं अकेला मेरे साथ तू है" अपने मधुर कण्ठ से सुनाया उपस्थित आर्य जनों ने कु. सुमेधा का यह भजन सुनने पर तालियों की गूंज से धन्यवाद किया।

तत्पश्चात् श्री शास्त्री जी ने 'मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र जी' के जीवन पर प्रकाश डाला। इस पर्व पर आर्य समाज भटिण्डा, महिला आर्य समाज, वीरदल के पदाधिकारी एवं सदस्य उपस्थित थे। इस सभा में ला. कुलवन्त राय अग्रवाल, श्री पी.[illegible] गोयल, प्रो. ओम् प्रकाश मंगला, [illegible] प्रेम भाटिया की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। कु. सुमेधा ने अपने पदोन्नति की खुशी में प्रसाद वितरण किया। –प्रेम भाटिया, प्रधान

...षियों का संदेश

...विषयों को भोगकर, इन्द्रियों की तृष्णा को समाप्त करने वाला तुम्हारा विचार ऐसा ही है जैसा कि आग को बुझाने के लिए उसमें घी डालना ।

2 यह मानना तुम्हारा सबसे बडा अज्ञान है कि "मैं कभी मरूगा नहीं" "यह शरीर बहुत पवित्र है" "विषय भोगो मे पूर्ण और स्थायी सुख है" तथा "यह देह ही आत्मा है" ।

3 तुम्हारे मन मे अच्छे या बुरे विचार अपने आप नहीं आते । इन विचारो को तुम अपनी इच्छा से ही उत्पन्न करते हो क्योकि मन तो यन्त्र के समान जड वस्तु है उसका चालक आत्मा है ।

4 किसी के अच्छे या बुरे कर्म का फल तत्काल प्राप्त होता न देख कर तुम यह मत विचारो कि इन कर्मों का फल आगे नहीं मिलेगा। कर्म फल से कोई भी बच नहीं सकता क्योकि ईश्वर सर्वव्यापक सर्वज्ञ तथा न्यायकारी है।

5 ससार (-प्रकृति) ससार को भोगने वाला (जीव) तथा ससार को बनाने वाला (ईश्वर) के वास्तविक स्वरूप को जानकर ही तुम्हारे समस्त दु ख भय चिन्ताए समाप्त हो सकती हैं और कोई उपाय नहीं है।

6 "मनुष्य जीवन ईश्वर प्राप्ति के लिए मिला है" इस मुख्य लक्ष्य को छोडकर अन्य किसी भी कार्य को प्राथमिकता मत दो नहीं ता तुम्हारा जीवन चन्दन के वन को कोयला बनाकर नष्ट करने के समान ही है।

तुम्हारे जीवन की सफलता तो काम क्रोध लोभ मोह अहकार आदि अविद्या के कुसस्कारो को नष्ट करने मे ही है। यही समस्त दु खो से छूटने का श्रेष्ठ उपाय है ।

8 जब तक तुम ससार के सुखो के पीछ छिपे हुए दु खो को समझ नही लोगे तब तक वैराग्य उत्पन्न नही होगा । बिना वैराग्य के चचल मन एकाग्र नहीं होगा एकाग्रता के बिना समाधि नहीं लगेगी समाधि के बिना ईश्वर का दर्शन नहीं होगा बिना इश्वर दर्शन के अज्ञान का नाश नहीं होगा और अज्ञान का नाश हुए बिना दु खो की समाप्ति ओर पूर्ण तथा स्थायी सुख मुक्ति) की प्राप्ति नहा होगी ।

० तुम इस सत्य को समझ लो कि अज्ञानी मनुष्य ही जड वस्तुओ (भूमि भवन सोना चादी) तथा चेतन वस्तुओ (पति पत्नि पुत्र मित्र आदि) को अपनी आत्मा का एक भाग मान कर इनकी वृद्धि हाने पर प्रसन्न तथा हानि होने पर दु खी होता है ।

10 तुम्हारे लोहे रूपी मन को विषय भोग रूपी चुम्बक सदा अपनी ओर खींचते रहते हैं । ज्ञानी मनुष्य विषय भोगो से होने वाली हानियो का अनुमान लगाकर इनमे आसक्त नहीं हाते किन्तु अज्ञानी मनुष्य इनमे फसकर नष्ट हो जाते हैं ।

11 महान् ज्ञान बल आनन्द आदि गुणो का भण्डार ईश्वर एक चेतन वस्तु है जो अनादिकाल से तुम्हारे साथ है न कभी वह अलग हुआ न कभी होगा । उसी ससार के बनाने वाले पालन करने वाले सबके रक्षक निराकार ईश्वर की स्तुति प्रार्थना तथा उपासना तुम सब मनुष्यो को सदा करनी चाहिए ।

आर्य समाज पार्कलेन लुधियाना का पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज पार्कलेन (कुन्दनपुरी) लुधियाना की स्थापना के बाद पाच पारिवारिक सत्सग हो चुके है । पाचवा सत्सग 8 4 2001 को श्री नरेन्द्र जी भल्ला के निवास स्थान पर हुआ जिसमे सुयोग्य विद्वान् श्री वेद प्रकाश जी का प्रवचन व श्री योगराज शास्त्री के भजन हुए । बहुत बडी सख्या में आर्य बन्धुओ व बहनो ने इस सत्सग म भाग लिया । पारिवारिक सत्सगो के करने की सभी ने सराहना की। वेद प्रचार का यह एक अच्छा ढग है । आसपास क सारे मोहल्ले वाले इसमे सम्मिलित होते हैं ।

15 4 2001 रविवार का छटा पारिवारिक सत्सग श्री जी एम थापर पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना क निवास स्थान पर साय 5 30 बजे होगा। लुधियाना के आर्य बन्धु पहुच कर धर्म लाभ उठावे ।

अजनाला में रामनवमी पर्व मनाया गया

स्त्री आर्य समाज अजनाला (अमृतसर) कई वर्षो से चैत्र प्रतिपदा से राम नवमी तक विशेष यज्ञ करता आ रही है राम नवमी से पूर्व तथा दशहरा से पूर्व श्रद्धा निष्ठा से यज्ञ इस बार 26 3 स 2 4 2001 तक दोपहर को होता रहा तो प्रति शनिवार को भी व प्रति सक्राति को भी ओर अन्य पर्वो पर भी जैसे शिवरात्रि ऋषि जन्म दिवस आदि पर भी यज्ञ होता है। बल्लड वाल अजनाला के ग्रास की बन्द पडी आय समान में भी यज्ञ आरम्भ कर दिया गया हे प्रति एकादशी का कभी आर्य समाज म ता कभी किसी के घर मे यज्ञ सत्सग होता है 4 4 2001 का यज्ञ सत्सग मास्टर कृष्ण लाल क घर पर हुआ ।

यहा चुनाव के झगडे नही होते मिल जुल कर काम करने की सभी मे भावना हे । पुरुष रविवार का यज्ञ में आते है आय समाज अजनाला म प्रति रविवार को सत्सग होता है।

–श्री राम पथिक वानप्रस्थी

आर्य समाज स्थापना दिवस नव संवत् मनाया

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा में 26-3-01 प्रात: सर्वप्रथम धर्माचार्य प सुनील कुमार जी की देख-रेख मे हवन यज्ञ करवाया गया। यज्ञ के यज्ञमान श्री कृष्ण लाल जी जटाना रहे। सारे कार्यक्रम की अध्यक्षता मन्त्री कल्प वासुदेव ने की। श्रीमती मंजू शास्त्री ने ऋषि बारे एक गीत दुनिया ने-दुनिया ने जाना नहीं ऋषिराज को गाया। कार्यक्रम प्रभावशाली रहा। -कल्पदेव वासुदेव

लुधियाना में महर्षि दयानन्द जन्म दिवस

18-2-2000 रविवार को दयानन्द पब्लिक स्कूल मे बडे समारोह से मनाया गया । 18-2-2001 को दयानन्द पब्लिक स्कूल लुधियाना की प्रबन्ध समिति की एक विशेष बैठक प्रबन्ध समिति के प्रधान श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता की प्रधानता मे हुई । सर्व सम्मति से महर्षि दयानन्द जन्म दिवस 18-2-2001 को स्कूल के विशाल आंगन में बडे समारोह से मनाने का निश्चय किया गया था। पूर्व निश्चयानुसार प्रात: काल 9 बजे यज्ञ-भजन उपदेश रखे गए सारा दिन ऋषि लंगर रात्री को दीपमाला की गई इसे सफल बनाने के लिए एक कमेटी गठित की गई थी । स्कूल के स्टाफ व छात्रों में इसके लिए बड़ा उत्साह रहा ।

-आशानन्द आर्य, प्रबन्धक

साधना शिविर सम्पन्न

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित नि:शुल्क दस दिवसीय साधना-स्वाध्याय-सेवा शिविर दि. 23 फरवरी से 4 मार्च तक ऋषि उद्यान अजमेर में भली प्रकार सम्पन्न हुआ । शिविर में साधना के रूप मे प्रात: सायं एक-एक घंटा उपासना का क्रियात्मक अभ्यास तो रखा ही गया था, साथ मे सम्पूर्ण दिवस साधनामय बने एतदर्थ निश्चित समय मे मौन का अभ्यास भी करवाया गया और सयम, अनुशासन, अन्तर्मुखी वृत्ति, आत्मनिरीक्षण के द्वारा साधना को सर्वाङ्गीण परिपुष्ट करने का प्रयत्न हुआ। प्रात: 1 घंटे उपासना का क्रियात्मक प्रशिक्षण व सायं 1 घंटे उसी का व्यक्तिगत् प्रयोग करने का अवसर दिया गया। उपासना काल में निर्बाध आसन बनाये रखने का विशेष प्रशिक्षण दिया गया। शारीरिक साधना हेतु प्रात: एक घंटे सर्वाङ्गसुंदर व्यायाम एवं आसन सिखाये गए।

इसी प्रकार का अगला साधना शिविर 1 से 10 जून 2001 को इसी स्थान ऋषि उद्यान, अजमेर मे आयोजित होगा। शिविर की पूर्व संध्या अर्थात् 31 मई की शाम 4 बजे तक यहां पहुंचना आवश्यक है।

भठिण्डा में रामनवमी मनाई

गत दिनो आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा मे 'रामनवमी' का पावन पर्व मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम जन्म दिवान के रूप मे श्रद्धापूर्वक मनाया गया। सर्वप्रथम यज्ञ किया गया। यज्ञ के यज्ञमान श्री विद्याधर जी रहे। हवन यज्ञ श्रमती मजू शास्त्री पत्नी श्री आचार्य सुनील कुमार जी के ब्रह्मत्व मे हुआ। सारे कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री कृष्ण लाल जी जटाना ने की । श्रीमती बीना देवी ने एक भजन सुनाया पश्चात् अध्यक्ष महोदय ने श्री राम के बारे में विचार दिये। इस अवसर पर गोनियाना में भी आर्य समाज सिरकी बाजार द्वारा रामनवमी का पर्व मै आत्मा राम बनारसी दास की दुकान पर धूमधाम के साथ मनाया गया। जिसकी अध्यक्षता श्री चिरंजीलाल जी ने की। हवन यज्ञ आचार्य सुनील कुमार शास्त्री के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। -कल्पवासुदेव, मन्त्री

शोक समाचार

दिनाक 25-3-2001 को आर्य समाज कालांवाली में एक शोक सभा का आयोजन किया गया। हमारे आदरणीय श्री गुरुदत्त जी गिल्होत्रा, का दिनाक 25-3-2001 को लम्बी बीमारी के बाद निधन हो गया। उनकी आयु लगभग 80 वर्ष की थी। उन्होंने जीवन भर आर्य समाज की सेवा की और दयानन्द कन्या महाविद्यालय का काम पूरी निष्ठा से मैनेजर के पद पर रहते हुए करते रहे। उनकी सेवाएं आर्य समाज कालां वाली को हमेशा स्मरणीय रहेंगी। -ओम प्रकाश आर्य, मन्त्री, कालांवाली

बुढलाडा में वेद प्रचार

दिनांक 18-3-2001 दिन रविवार को आर्य समाज मंदिर बुढलाडा में प्रात: 9 बजे से 10 बजे तक साप्ताहिक सत्संग हवन यज्ञ हुआ। सत्संग के बाद श्री तरसेम कुमार आर्य (गोनियाना मंडी) ने आए हुए भक्तों को उपदेश किया कि व्यक्ति को किस प्रकार अपने कल्याण का रास्ता चुनना चाहिए और दो मार्गों का वर्णन भी किया "प्रेम मार्ग" व "श्रेय मार्ग" और कहा हमें श्रेय मार्ग पर ही चलना चाहिए उन्होंने एक मंत्र "स्वस्ति पंथामनु चरेम, सूर्या चन्द्रमसाविव पुनर्दधताघ्नता जानता सं गमेमहि" की व्याख्या सुनाई शान्ति पाठ के पश्चात जयघोष के नारों के साथ सत्संग सम्पन्न हुआ।

-द्वारका दास मंगला, प्रधान

यज्ञ हवन और वेद प्रचार

मार्च मास आर्य समाज गोनियाना मंडी मे वेद प्रचार और यज्ञ हवन के लिए बहुत अच्छा रहा। हर रविवार को साप्ताहिक सत्संग जोकि आर्य हाई स्कूल में किया जाता है के अतिरिक्त निम्न अनुसार यज्ञ हवन और वेद प्रचार का आयोजन किया गया।

एक मार्च को डाक्टर राजेंद्र भूषण M B B S M SD Medical Specialist-Civil Hospital Goniana Mandi ने अपने पुत्र रोहण भूषण के जन्म दिन के उपलक्ष्य में अपनी कोठी पर यज्ञ हवन और पारिवारिक सत्संग किया गया जिसमें हस्पताल के सभी कर्मचारी नगर के सभी डाक्टर तथा अन्य गणमान्य व्यक्ति शामिल हुए। सत्संग की समाप्ति पर सभी को मिठाई और चाय आदि से सत्कार किया गया।

4 मार्च को स्वतंत्रता सेनानी महाशय दुर्गादास जी पहली पुण्य तिथि पर उनके भतीजे श्री ओम प्रकाश के निवास पर यज्ञ हवन तथा पारिवारिक सत्संग हुआ जिसमे उनके पुराने साथी महाशय चिरंजी लाल जी प्रधान आर्य समाज गोनियाना मण्डी और मास्टर मनसा राम जी स्वतंत्रता सेनानी तथा प्रधान आर्य समाज जैतों मण्डी (जि. फरीदकोट) विशेष तौर पर शामिल हुए और महाशय दुर्गादास जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की तथा उनके जीवन की कई प्रेरणा घटनाएं सुनाईं।

7 मार्च को आर्य समाज गोनियाना मण्डी के संस्थापक डाक्टर बलबीर सिंह जी के पौत्र डाक्टर प्रमोद शर्मा ने अपनी नई फर्म "शर्मा मैडिकल हाल" का उद्घाटन यज्ञ हवन द्वारा कराया। यज्ञ हवन के पश्चात् महाशय चिरन्जी लाल जी ने अपना आशीर्वाद प्रदान किया।

16 मार्च को आर्य समाज गोनियाना के प्रधान महाशय चिरंजी लाल जी तथा मंत्री श्री तरसेम कुमार आर्य द्वारा गोनियाना से पन्द्रह किलोमीटर की दूरी पर स्थित गांव 'नथाना' के डाक्टर गुरशरण दत्त शर्मा के निवास पर उनके पुत्र के जन्मदिन के उपलक्ष्य में यज्ञ हवन तथा वेद प्रचार किया गया ।

18 मार्च को तरसेम कुमार आर्य अन्तरंग सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब) आर्य समाज बुढलाडा मंडी (जि मानसा) के सत्संग में शामिल हुए तथा उस समाज के सभी सदस्यों ने मतभेद भुला कर वेद प्रचार का कार्य में जुट जाने का अनुरोध किया ।

25 मार्च को श्री गोबिन्द राम जिंदल प्रधान नगर पालिका के घर पर उनकी माता की पुण्य स्मृति मे यज्ञ हवन का आयोजन किया गया और उसी दिन दोपहर को माता जी के शोक एवं श्रद्धांजलि समागम में श्री कृष्ण कुमार जटाना कोषाध्यक्ष आर्य समाज सिरकी बाजार भटिण्डा तथा वहां के पुरोहित श्री सुनील कुमार जी शास्त्री ने दिवंगत आत्मा को अपने श्रद्धा सुमन भेंट किए।

26 मार्च को 'आर्य समाज स्थापना दिवस' तथा नवं सम्वत् पुरानी दाना मण्डी के खुले आंगन में धूमधाम से मनाया गया।

-सर्वजीत सिंह, उपमंत्री

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष : :292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—54 अंक : 5 सृष्टि संवत 1960853102, 29 अप्रैल 2001 दयानन्दाब्द 178

महर्षि दयानन्द का राजधर्म विषयक चिन्तन

(सत्यार्थ-प्रकाश षष्ठ समुल्लास के आधार पर)

❑ ले० श्री डा० अमरनाथ जी आर्य, वरिष्ठ उपप्रधान आर्य समाज तलवाड़ा टाऊनशिप

आर्य-समाज का सुदर्शन-चक्र, सत्यार्थ-प्रकाश एक ऐसा युग-प्रवर्तक आर्ष-ग्रन्थ है, जिसने युग के चिन्तन में युगान्तकारी प्रभाव छोड़ा है । यह सच्छास्त्रों और वेद-प्रतिपादित विचारों का ऋषि-प्रणीत सार-संग्रह है-जिससे न केवल हिन्दु अपितु, अन्य मतमतान्तरों के धर्म-ग्रन्थों में भी सुधार आया है एव अनेक अवैज्ञानिक और काल्पनिक मान्यताओं और भ्रान्त-धाराओं के गढ़ पर वज्रपात हुआ और समाज विरोधी रीतियां एवं भ्रान्त रूढ़ियां धाराशायी हो गई हैं ।

सत्य का प्रकाशन जगत् का शाश्वत नियम है । अत: इसमें प्रीतिपूर्वक सत्य के प्रकाशन हेतु सद्-प्रयत्न किया गया है । विश्व-मानवता के कल्याण हेतु चिर-लुप्त सत्य को उजागर करना, तथा मिथ्या-धारणाओं का खण्डन और सत्य-मान्यताओं का मण्डन इसका उद्देश्य है। इसमें मत-मतान्तरों के अन्दर-विरोध को दर्पणवत दर्शाते हुए-अनार्ष-ग्रंथों के दोषों से बचने के सुनिश्चित उपाय सुझाए गए हैं जिनसे दोष-पूर्ण व वेद-विरुद्ध रीतियों के दुष्प्रभाव से बच कर सनातन-व्यवस्था के दर्शन किए जा सकते हैं ।

आर्ष-साहित्य मंत्रपूत ऋषियों के पावन हृदयो से समुद्भूत होता है, जिसमे भाषा सरल और भाव गम्भीर होते हैं । इससे दूषित-मनोवृत्ति का परिशमन और शुद्ध-भावों की एकरूपता जाग्रत होती है। इसके पठन-पाठन से सद्-विचारो के रत्न प्राप्त होते हैं । इनका सदाचारिक प्रभाव होता है जो आत्मिक तेज उत्पन्न करने में सक्षम होता है ।

वेद सत्य-विद्याओं के स्रोत हैं, जिनका उद्देश्य प्राणिमात्र का कल्याण और विश्व बन्धुत्व का प्रसार है । इन्हीं के प्रचार-प्रसार से आनन्द का अक्षय-स्रोत प्रवाहित होता है । अत: सत्य ज्ञान की धारा सम्पूर्ण जग में बहे, इसी उद्देश्य से ऋषि-दयानन्द ने युक्ति और प्रमाण सहित वेद-प्रतिपादित सत्यार्थ प्रकाश की रचना की थी, जिससे मानव-जाति के पतन को रोका जा सकता है ।

इसके चौदह समुल्लास मानो समृद्ध-मानवता के चौदह रत्न हैं । जो वेद और वैदिक वाङ्मय के आलोड़न से महर्षि ने प्रदान किए हैं । जिनके स्वाध्याय से भ्रान्तियां समूल नष्ट हो जाती हैं । इसी के षष्ठ समुल्लास में वेदोनुमोदित आदर्श आर्य-राजनीति के विषय में त्रिकालाबाधित विचार उद्धृत किए गए हैं । जिनके आचरण से धराधाम पर स्वर्ग को उतारा जा सकता है । उसी पर सोपान-क्रम से यहां कुछ विचार अभिप्रेत हैं :-

आदर्श राजनीति:—पशु-समाज से सभ्य मानव-समाज को आदर्श राजनीति ही पृथक् करती है। अत: राजनीति विशारद: दयानन्द सरस्वती के अनुसार राजा वही है जो प्रजा-रजनात् अर्थात् प्रजा का रजन करते हुए उसे धन-धान्य से सम्पन्न बनावे और तीनों तापों से बचाते हुए उसे मोक्षोन्मुख करता है। इसलिए उसके कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यो पर यहां शास्त्रो के आधार पर विशद विचार मन्थन किया गया है।

राजा का धर्म :—राजनीति अर्थात् (राजा-नीति) का प्रयोजन मानव को सुशिक्षित सुरक्षित और चरित्रवान बनाकर पुरुषार्थ में प्रवृत करना है यह नीति शब्द से स्पष्ट है । अत: राजा की प्रजा रजनात् नीति ही-राजनीति है, जिसका फल त्रिवर्ग की प्राप्ति माना गया है । अर्थात् पुरुषार्थ-सिद्धि में राष्ट्र-व्यवस्था का महान योगदान है, जो शान्त वातावरण प्रदान करती है। अस्तु, राजा-राजदीप्तौ और राजा-प्रजारंजनात् आदि शब्द ऐश्वर्य (अर्थ) व समृद्धि के ही सूचक हैं ।

वस्तुत: नियम-व्यवस्था ही राजनीति का प्रयोजन है । इसलिए ऋषि मानते हैं कि "राजाओं का प्रजा पालन-धर्म ही सत्य-धर्म है। वे अर्थ-परायण और सदाचारी रहें। क्योंकि राजा के आचरण का सीधा प्रभाव प्रजा पर पड़ता है। इसलिए कहा है-यथा राजा-तथा प्रजा । इसलिए आज राम और हरिश्चन्द्र आदि प्रजावत्सल राजाओं की धवल-कीर्ति मे इतिहास-पृष्ठ जगमगा रहे हैं।

राजा की दिनचर्या:—राजा का प्रजा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए शास्त्राकारों ने उनकी हर गतिविधि पर पैनी दृष्टि रखी है । वस्तुत: दिनचर्या से ही जीवनचर्या बनती है। इसलिए कहा है कि "राजा को ईश्वर का ध्यान अग्निहोत्र और विद्वानों का सत्कार आवश्यक है । नित्यकर्म और संध्योपानादि के पश्चात् सभा का कार्य करें और फिर आरोग्य-बलवर्द्धक और रसयुक्त अन्न ग्रहण करें एवं प्रजा के हित-चिन्तन में निरत रहे।"

सत्य और धर्म :—सत्य के प्रकाश के लिए ही धर्माचार्य: दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश की रचना की है । सत्य पर ही ससार आधारित है तथा सत्य का ही दूसरा नाम धर्म है । अत: इनका अनुपालन आवश्यक है क्योंकि ये राज्य के प्रमुख तत्व हैं । अत: ऋषिवर का मानना है कि "सत्य ही उत्कर्ष का साधन और जन्मान्तर में उत्तम जन्मों का कारण है । सत्य से ही धर्म बढता है और सत्यवादी को ही उत्तम मनुष्य मानते हैं ।"

धर्म :—"राजा एक पुण्यात्मा और भाग्यशाली मनुष्य होता है । वही प्रजा का विकास करता है । जबकि दुष्ट राजा प्रजा का नाश कर देता है। धर्म की स्थायी सम्पत्ति है जो मृत्यु के बाद भी साथ जाती है। इसलिए कहा है-धर्मो रक्षति रक्षत:।" अर्थात् रक्षित धर्म ही रक्षा करने वाले की रक्षा करता है, और नष्ट किया हुआ धर्म, नष्ट करने वाले को नष्ट कर देता है। अत: धर्म और आपद्-धर्म को समझ कर उनका समुचित पालन करते हुए राजा वेदानुसार यह समझे कि-वय प्रजापते: प्रजा अभूम:। अर्थात् हम प्रजापति-परमेश्वर की प्रजा हैं और परमात्मा हमारा राजा है । तभी सुखों की वर्षा हो सकती है । वस्तुत: त्रिवर्ग की प्राप्ति वाला राजा ही प्रजा का कल्याण कर सकता है।"

राज्य-प्रबन्ध:—प्रजावत्सल राजा की प्रशसा करते हुए शास्त्रो मे उनके विषय में अनेक जानकारिया मिलती हैं । स्वामी-दयानन्द का (**शेष पृष्ठ 8 पर**)

दुरित–दूरीकरण सप्तकम्
दुर्गति से बचने के उपाय

❑ ले० मनोहर विद्यालंकार, 522, कटराईश्वर भवन खारी बावली, दिल्ली-6

(1) दान का प्रवृत्ति, दुःख सताप पाप आदि दुरितो से रक्षा करती है।

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषु सूरयः सुव्रतासः । अन्यस्तेषा परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि संयन्तु शोका ॥ (ऋ 1-125-7)

ऋषि –औशिजोदैर्घतमसः कक्षीवान् । देवता–दानस्तुतिः । छन्द –त्रिष्टुप् ।

अर्थ–(पृणन्त दुरित एनः मा आरन्) दान देने वाले, दिक्कत, सकट और बुराई तथा कुमार्ग के फल पाप को न प्राप्त करे । (सूरयः सुव्रताम मा जारिषु) विद्वान् और व्रतपालक असमय मे जीर्ण न हो । (अन्य. कश्चिद् तेषा परिधिः अस्तु) कोई दूसरा ही अर्थात् परमात्मा या उनका धर्म उनका धारण करने वाला रक्षक बना रहे। वे कभी शोक सन्तप्त न हो इसके विपरीत (शोकाः) शोक सन्ताप (अपृणन्तमभिसंयन्तु) दान न देने वालो को चारो ओर से घेरे रहे। ऋषि दयानन्द ने इस मन्त्र के भावार्थ मे लिखा है–धार्मिक मनुष्यो को सुख और व्रत भञ्जक अधार्मिकों को सदा दुःख मिलते हैं ।

2) ना समझ लोगो की दुरितो से बचाने वालो की जातवेदा रक्षा करता है ।

ये पायवो मामतेय ते अग्ने पश्यन्तो अन्ध दुरितादरक्षन् । ररक्ष तान्सुकृतो जातवेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥

(ऋक् 1-147-3)

ऋषि – औचथ्योदीर्घतमाः । देवता–अग्नि । छन्द.–त्रिष्टुप् ।

अर्थ–(ये पायवः पश्यन्तः) हे अग्ने । जो शुभ अशुभ को देखने वाले, समाज के पालन मे प्रवृत्त तेरे साधक (मामतेय अन्धम्) मोह, ममता से अन्धे हुए लोगों को (दुरिताद् अरक्षणन्) दुराचरण, अन्याय आदि से तथा दिक्कत सकट में फस जाने पर, रक्षा करते है। (तान् सुकृतः) ऐसे सुकृती पुण्यात्माओं की (जातवेदाः रक्ष) सर्वज्ञ परमात्मा रक्षा करता है। ऐसे मनुष्यो को (दिप्सन्तः रिपव इत्) बाह्य तथा आभ्यन्तर, हिंसक शत्रु भी (न अह देभुः) उन्हें किसी प्रकार की पीडा या हिंसा नहीं पहुचा पाते हैं।

निष्कर्ष–यदि तुम दुरितो से बचना चाहते हो, तो भोले भाले नासमझ लोगो की, आपत्ति, संकट दरिद्रता में सहायता करो ।

(3) भगवान् जिसका रक्षक है, उसे कोई दुराचरण या पाप नहीं व्यापता ।

न तमहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः । विश्वाइदस्माद्ध्वरसो विबाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥

(ऋक् 2-23-5)

ऋषि :–गृहत्समद् भार्गवः शौनकः । देवता–ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः–जगतीः ।

अर्थ–हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्माण्ड और वेद के स्वामिन् ! (यम्) जिस व्यक्ति की (सुगोपा) सुनिश्चित रक्षक आप (रक्षसि) रक्षा करते हो और (अस्माद्) जिससे (विश्वा इत्ध्वरसः विबाधसे) सभी बाधाओं और हिंसाओ को दूर कर देते हो, (तम्) उसे (न अहंः) न कोई अपराध (न दुरितम्) न कोई दुराचरण (न द्वयाविनः) वचन में मधुर और कर्म मे कुटिल व्यवहार करने वाले (अरातयः) कुटिल शत्रु भी (न त कुतश्चन तितिरूः) उसे किसी प्रकार परास्त नहीं कर पाते हैं ।

निष्कर्ष–जिसका परमात्मा रक्षक है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। स्वामी दयानन्द ने इसके भावार्थ मे लिखा है–जो लोग परमात्मा की आज्ञा का पालन, आप्त विद्वानों की सगति, अपने आत्मा की पवित्रता को कायम रखते हैं, वे पापाचरणों से पृथक् रहते हुए धार्मिक होकर सदा सुख भोगते हैं।

4) जिसके जीवन में देव विराजते हैं, उसे कोई मनुष्य बाधा नहीं पहुचा सकता ।

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन। यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः॥

(ऋक् 7-82-7)

ऋषि :– मैत्रावरुर्णिर्वसिष्ठः । देवता–इन्द्रावरुणौ । छन्दः–जगती।

अर्थ–हे (इन्द्रावरुणौ देवौ) ऐश्वर्य दान और कष्ट निवारण के देवो। आप (यस्य अध्वर गच्छथः) जिसके जीवन यश में उपस्थित रहते हो (तम्) उसे (अंहः न) किसी तरह का कष्ट, रोग या पाप (न दुरितानि) न किसी तरह का दुराचरण और (न तपः) न कोई संताप (नशते) व्यापता है । और त्यं कामये जिसे सुखी रखना चाहते हो (त मर्त्यम) उस मनुष्य को (मर्तस्य परिह्वृतिः) किसी मर्त्य प्राणी द्वारा की गई कोई बाधा (न नशते) नहीं प्राप्त होती है, उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती है।

निष्कर्ष–जिसके जीवन में इन्द्र (ऐश्वर्य) और वरुण (संयम) विद्यमान है, उसे कोई मनुष्य किसी प्रकार की बाधा पीड़ा नहीं पहुंचा सकता।

5) अश्विनौ जिनके मार्गदर्शक हैं, उन्हें दुर्गति या भय कभी नहीं सताते ।

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् । यमश्विना सुहवा रुद्रवर्त्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥

(ऋक्. 10-39-11)

ऋषि :–काक्षीवती घोषा । देवता–अश्विनौ । छन्दः–जगती।

अर्थ–हे (अदिते) निरन्तर साथ रहने वाले (रूद्रवर्तनी) रोगों का निवर्तन करने वाले मार्ग-दर्शक तथा (सुहवौ) सुलभ एवं (राजानौ अश्विनौ) प्रदीप्त प्राणापानो । (यरथम्) जिसके शरीर रथ को (पत्न्या सह) पत्नी के साथ (पुरः कृणुथः) जीवन में अग्रसर करते हो (तम्) उस मनुष्य को (कुतश्चन) कहीं से किसी प्रकार का (अंहः) पापकर्म (दुरितम्) दुराचरण या (भयम्) भय (न अश्नोति) व्याप्त नहीं करता।

निष्कर्ष–प्राण साधक दम्पत्ती की कभी दुर्गति नहीं होती, वे किसी से डरते नहीं, और कभी दुराचरण या पाप नहीं करते।

6) सर्वमित्र, दुष्ट दमन और न्यायप्रिय शासन मे कोई पाप या दुराचरण नहीं करता है।

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्। सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥

(ऋक् 10-126-1)

ऋषि :–शैलूषिः कुल्मलबर्हिषो वामेदेव्योंऽहोमुग्वा । देवता–विश्वेदेवाः । छन्दः–उपरिष्टाद्‌वृहती।

अर्थ :–(यम्) जिस मनुष्य को (अर्यमा) शत्रुओं को वश में करने वाला परमात्मा, गुरु या आदित्य (मित्रः) मृत्यु से रक्षा करने वाला प्राण, अध्यापक या मित्र और (वरुणः) पापों से निवारण करने वाला जल, अपान या उपदेशक (सजोषसः) साथ मिलकर सहयोग करने वाले बन कर (द्विषः अति नयन्ति) द्वेष भावों और शत्रुओं से बचाकर अग्रसर करते रहते हैं, (देवासः) हे देवों, विद्वानों । (त मर्त्यम्) उस मनुष्य को (अंह.) रोग, दोष और (दुरित्तम्) दुराचरण या पाप (न अष्ट) नहीं प्राप्त होता है।

आधिभौतिक दृष्टि से मित्र, वरुण और अर्यमा-विधानपालिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका हैं। ये तीनों विभाग जिस राष्ट्र में एकमत होकर काम करते हैं, और अपनी प्रजा को आन्तरिक द्वेष भावना और बाह्य शत्रुओं से सुरक्षित रखते हैं, उस राष्ट्र में रोग, दोष तथा दुराचरण और पाप नहीं पनपते । वह राष्ट्र आगे ही आगे बढ़ता जाता है।

7) चिकित्सक स्वार्थी न हों तो प्रजा की औसत आयु बढ़ने लगती है ।

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम्। शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम्॥

(ऋक् 10-161-3)

ऋषिः– प्राजापत्योयक्ष्मनाशनः । देवता–इन्द्राग्नी राजयक्ष्मघ्नवा । छन्दः– त्रिष्टुप्।

अर्थ :–प्राजापत्यः यज्ञीय जीवन वाला वैद्य, सब प्रकार के रोगों को दूर करके रोगों को 100 वर्ष तक जीवित रखने की सामर्थ्य रखता है। वही वैद्य कह रहा है कि मै (एनम्) इस रोगी को (सहस्राक्षेण) इन्द्रियों को निराशा से उभार कर हासयुक्त बनाने वाली, (शतशारदेन) शत वर्ष तक जीवित रखने में समर्थ (शतायुषा हविषा) शतायु प्रदान करने वाली औषधियो की सहायता से (आहार्षम्) मृत्यु के पजे से बचाकर ले आया हूं । अब तो (इन्द्रः) सर्वैश्वर्य सम्पन्न भगवान् ही (इमम्) इसे (विश्वस्य दुरितस्य पारम्) सब प्रकार के रोगों, दुःखों और दुर्गतियों से पार करके (शत शरदः नयाति) 100 वर्ष की आयु तक ले जा सकता है ।

सप्तक सारांश

1 दान देने वाले दुर्गति और दुराचरणों से बचे रहते हैं ।

2 नासमझ और दुःखी जनों को दुर्गति और रोगों से बचाने वालो की सर्वज्ञ परमात्मा रक्षा करता है।

3. परमात्मा के संरक्षण में रहने वाले पापाचरण से बचे रहते है ।

4 जो ऐश्वर्यशाली होते हुए, संयमी जीवन बिताता है, उसे न देवता सताते हैं, न मनुष्य कुछ बिगाड सकते हैं ।

5 प्राण साधना करने वाले दम्पत्ति न पापाचरण करते हैं, न उन्हें रोग घेरते हैं, न किसी तरह का भय व्यापता है ।

6. जो राजा सब के साथ मित्रभाव रखता है, दुष्टो को दण्ड देता है, और सब के साथ न्याय करता है, उसकी प्रजा सदा खुशहाल रहती है, कोई दुःखी नहीं होता ।

7. जिस राज्य में चिकित्सा का सुप्रबन्ध होता है , चिकित्सक लोभी और स्वार्थी नहीं होते, उसकी प्रजा में शतायु पुरुषों की संख्या बढ़ जाती है।

सम्पादकीय.....

सरकार [illegible] के झुकाने वाला चाहिए

आय समाज न जब–जब अंगडाई ली तब–तब इसके सामने कोई नही टिक सका । अग्रेज सरकार भी आर्य समाज का लाहा मानती थी। हेदराबाद क सत्याग्रह देश के इतिहास मे अपना विशेष स्थान रखता है वहा आर्य समाज की शक्ति के सामने निजाम हैदराबाद को घुटने टेकने पडे थे और आज भारत सरकार ने हैदराबाद के सत्याग्रहियों को स्वतन्त्रता सेनानी घोषित किया हुआ है और उन्हे स्वतन्त्रता सेनानी होने की पुरी सुविधाए मिल रही है।

दिल्ली मे मिन्टो रोड पर 45 वर्ष पुराने बने आर्य समाज के मन्दिर को अवैध निर्माण कह कर शहरी विकास मन्त्रालय ने 14 अप्रैल को बुलडोजरो से तोड दिया था। आर्य समाज की धार्मिक पुस्तके व यज्ञ शाला को भी ध्वसत कर दिया था। इस पर आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं और नेताओ ने अगडाई ली । प्रधानमन्त्री को ज्ञापन दिया, उन्हें आर्य समाज की शक्ति का परिचय कराया और सघर्ष की चेतावनी देकर सघर्ष आरम्भ कर दिया । शिष्ट मण्डल गृहमन्त्री श्री अडवानी से भी मिला सारी स्थिति से सरकार को अवगत कराया । शिष्ट मण्डल केन्द्रीय शहरी विकास मन्त्री श्री जगमोहन और दिल्ली के उपराज्यपाल श्री विजय कपूर से भी मिला। इस शिष्ट मण्डल मे श्री प्रो शेरसिहजी, श्री वेदव्रत शर्मा, स्वामी इन्द्रवेश जी, स्वामी अग्निवेश जी, स्वामी सुमेधानन्द जी, श्रीमती शकुन्तला आर्या, चौ लक्ष्मीचन्द, श्री विमल वधावन, डा धर्मपाल जी, श्री अनिल आर्य, श्री ज्ञान प्रकाश जी चोपडा, श्री प्रेमपाल शास्त्री, प्रो सारस्वत मोहन मनीषी, आचार्य देवव्रत जी आदि नेताओं ने भाग लिया । इन सभी नेताओं के नेतृत्व मे हजारों आर्य वीरो, आर्य बन्धुओ व बहनों ने संसद मार्ग पर आर्य शक्ति का अभूतपूर्व प्रदर्शन किया । आर्य वीरों को चोटे भी आई कई प्रकार के कष्ट भी उठाने पडे परन्तु प्रदर्शनकारी आर्य बन्धुओं व बहनो मे एक विशेष प्रकार का जोश था जिसके आगे सरकार को भी झुकना पडा और सरकार को घोषणा करनी पडी कि उसी स्थान पर पुन आर्य समाज मन्दिर का निर्माण होगा ।

इस प्रदशन मे दिल्ली की सभी आर्य समाजो के आर्य बन्धुओ व बहनो ने अपना पूरा–पूरा सहयोग दिया । आर्य बन्धुओ ने दृढ़ निश्चय किया था कि हम यहा आर्य समाज मन्दिर पुन बनवा कर ही दम लेगे और यह सब आर्य वीरों ने कर दिखाया ।

22 अप्रैल 2001 को प्रात 9 बजे बृहद यज्ञ पूज्य स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती के ब्रह्मत्व मे आरम्भ हुआ। शिलान्यास समारोह की अध्यक्षता पूज्य स्वामी ओमानन्द जी प्रधान सार्वदेशिक सभा ने की । आर्य समाज के सभी नेताओं की उपस्थिति में इस मन्दिर के नव निर्माण के लिए शिलान्यास किया गया । यह आर्य समाज की शक्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण है । इससे पता चलता है कि आर्य समाज के नेता और आर्य समाज पूर्ण रूप से जागरूक है। आर्य बन्धुओ इसी प्रकार आगे बढो ।

–धर्मदेव आर्य, सम्पादक

सभा से सम्बन्धित आर्य शिक्षा संस्थाओं के अधिकारी महानुभावों की सेवा में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व आर्य विद्या परिषद् पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य शिक्षा संस्थाओ के अधिकारी महानुभावों की सेवा में प्रार्थना है कि वह अपनी-अपनी शिक्षा संस्थाओं के सम्बन्ध शुल्क की राशि और बाल कल्याण कोष की राशि प्रत्येक विद्यार्थी एक रुपए दर से शीघ्र अति शीघ्र सभा कार्यलय में भेजने का कष्ट करें। जिन शिक्षा संस्थाओ ने अपना गत वर्षो का सम्बन्ध शुल्क नहीं भेजा है वह पिछला शुल्क भी भेजने का कष्ट करें। यह कार्य शीघ्र अति शीघ्र होना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैंने एक पत्र दिनाक 21-4-2001 को सभी शिक्षा संस्थाओं के प्रिंसिपलों को भी भेजा है कि सम्बन्ध शुल्क शीघ्र भिजवाएं। कृप्या आप भी इस ओर ध्यान दें।

–के.के. पसरीचा
सभा कार्यकर्त्ता प्रधान

आर्य मर्यादा का शुल्क भेजें

मैंने पहले भी निवेदन किया था पुनः मेरी आर्य मर्यादा के ग्राहकों से प्रार्थना है कि वह अपना गत वर्ष का शुल्क शीघ्र अति शीघ्र सभा कार्यालय मे भेजें।

इस समय हम गत वर्ष से पहले दो रुपये और फिर एक रुपया पोस्टेज लगा कर सभी ग्राहको को आर्य मर्यादा साप्ताहिक भेज रहे है । वर्ष भर मे 52 सप्ताह होते हैं। गत वर्ष में हमने केवल डाक व्यय पर ही लगभग 60 रुपये प्रत्येक ग्राहक को आर्य मर्यादा साप्ताहिक भेजने में व्यय कर दिए हैं जबकि इसका शुल्क मात्र 50 रुपये है । अब भी हम एक रुपया पोस्टेज लगा कर अखबार भेज रहे है। वर्ष भर मे सभा ने आपसे छपाई आदि का कोई खर्च नहीं मांगा । आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एक धार्मिक संस्था है। इसको सहयोग देना आप सब का कर्त्तव्य है। इस लिए आप कम से कम 50 रुपए शुल्क भेजकर केवल मात्र अपना पोस्टेज (डाक व्यय) तो भेज दे अखबार तो आपको निःशुल्क ही आ रहा है।

इसलिए मेरी सभी ग्राहक महानुभावो से प्रार्थना है कि अपना पिछला शुल्क तथा इस वर्ष का शुल्क शीघ्र अति शीघ्र मनिआर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा सभा कार्यालय में भिजवा कर हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

–के.के. पसरीचा,
सभा कार्यकर्त्ता प्रधान

जैसी करनी वैसी भरनी

❑ ले० स्व महात्मा आनन्द स्वामी जी

कितना विशाल है आत्मा का जीवन कितना लम्बा कितना अनादि और अनन्त ओ मृत्यु से डरने वालो निरुक्त के इन शब्दो का देखो कि मृत्यु के सम्बन्ध मे तुम्हारा भय कितना निरर्थक है । मृत्यु के पश्चात् जीवन जीवन क पश्चात् मृत्यु । डरने की कोई बात नही भय की बात है तो जन्म और मृत्यु का यह चक्र जब तक यह चक्र चलता रहेगा तब तक दु ख स छुटकारा नहीं मिलेगा । इसीलिए निरुक्त क इस श्लोक का ज्ञान रखने वाले भक्त ने पुकार कर कहा

मतश्चाह पुनर्जाते जातश्चाह पुनर्मृत

नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥

आहारा विविधा भुक्त्वा पीता नानाविधा स्तना ॥

मातरो विविधा दृष्टा पितर सुहृदस्तथा॥

अवाड् मुख पीडयमानो जन्तुश्चैव समन्वित ।

बहुत बार मरा हू । मर कर फिर उत्पन्न हुआ हू । जन्म लेकर मरा हू सहस्रो लाखो शरीर मैंने देखे हे सहस्रो लाखो योनियो मे मे गया हू। कितने ही प्रकार के भोजन मेने खाए है। कितने ही स्तनो का दूध पिया है । कितनी ही पकार की कितनी ही माताये मैंने देखी हैं कितने ही पिता कितने ही मित्र कितने ही सम्बन्धी कितनी ही बार उल्टा लटकर लटका हू कितने ही सकटो का मेने सहा है परन्तु इन सकटो और आपत्तियो का अन्त ईश्वर से मल बिना कस होगा ? कभी हुआ हो होगा नहीं

यह है बार बार शरीर धारण करने वाली आत्मा की पुकार । परन्तु जब तक ऐसे कर्म विद्यमान ह जिनसे शरीर मिले तब तक जन्म का होना अवश्यम्भावी है । इन पन्ना सचित किए हुए कर्मो के अनुसार ही शरीर मिलता है परिवार मिलता हैं बुद्धि मिलती है कई अन्य वस्तुये मिलती हैं ।

कर्म के इस सिद्धान्त को जो लोग नहा मानते व प्राय कहते हैं कि यह सब कुछ स्वय ही हो जाता है । परन्तु कैसे हो जाता है मेरे भाई। एक बालक जन्म से अन्धा उत्पन्न हुआ । आप कहते हैं कि यह बात उसके माता पिता की भूल से हुई परन्तु यह भी तो सोचो कि इस बालक के समय माता पिता से भूल क्यों हुई ? प्रत्येक बात के पीछे मनुष्य का अपना कर्म कार्य कर रहा है ।

एक व्यक्ति का बहुत प्यारा बच्चा थाँ। एक सर्प ने उसे डस लिया। बच्चा मर गया । पिता दु ख से व्याकुल हो उठा। एक सपेरा बुलाया गया। उसने आकर साप को पकड लिया। पिता के सामने सर्प को करके वह बोला इसने तुम्हारे बच्चे को मार डाला है तुम इसे मार डालो। पिता ने सर्प की ओर देखते हुए कहा इसे मारने से क्या मेरा बच्चा जी उठेगा? सपेरे ने कहा बच्चा तो अब जी नहीं सकता। पिता ने कहा तो मैं इसे मारकर क्या करूगा तुम ही इसे ले जाओ जो हो वह करो।

सपेरा सर्प को लेकर वन में चला गया । उसे सामने रख कर पत्थर से उसका सिर कुचलने लगा तो साप ने कहा ठहरो ! सपेरे ने आश्चर्य से कहा क्यो ? सर्प बोला मुझे क्यो मारते हो ? सपेरे ने कहा तुमने एक बच्चे को डस कर मार दिया है । सर्प बोला मैंने उसको नहीं मारा। उसकी मृत्यु आ गई थी उसने मुझे कहा इसे डस लो। सपेरे ने मृत्यु की खोज की और अन्त मे उसके पास पहुच गया बोला मैं तुम्हे दण्ड दूगा । तुमने उस बच्चो को मारने की आज्ञा क्यो दी ? मृत्यु ने मुस्कराकर कहा इसलिए दी कि ऐसा करने का समय आ गया था। सपेरे ने समय को ढूढा बोला तुम्हे दण्ड दूगा। समय ने कहा तुम समझ नहीं सकते। इसके कर्मों का फल यही था। कर्म के फल को कोई रोक नहीं सकता। सपेरे ने कर्म को जा पकडा बोला तुमने यह बुरा कार्य क्यो किया? कर्म ने कहा मुझसे क्यो पूछते हो मरने वाले से पूछो । मैं तो जड हू करने वाला वह है। सपेरा बच्चे की आत्मा के पास पहुचा। उसने धीमे से कहा ये सब लोग ठीक कहते हैं । मैंने ही यह कर्म किया था जिसका परिणाम यह हुआ।

सो भाई मेरे ! इस बहम में न रहो कि कोई भी बात स्वमेव हो जाती है। जो कुछ होता है उसके पीछे भोगने वाले का कर्म [illegible] करता है।

वेदोपदेश.....

संतोषामृत पिया करें

❑ ले. ब्र० [illegible] आर्य

परि चिन्मर्त्तो द्रविणं ममन्यात्
ऋतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सवदेत श्रेयास्
दक्ष मनमा जगृभ्यात्॥

शब्दार्थ–(**मर्त**) मानव को (**चित्**) उचित है कि (**द्रविणम्**) धन को (**परि**) परिश्रम से (**ममन्यात्**) अर्जित करें। (**ऋतस्य**) ऋजुता और सन्तोष के (**पथ**) मार्ग का व्यवहार का (**नमसा**) विनयपूर्वक (**आविवासेत्**) आचरण करे । (**उत**) और (**स्वेन**) अपने (**क्रतुना**) पुनीत कर्म से (**सवेदत**) धन को प्रकट करे । (**श्रेयासम**) उत्तम कल्याणकारी (**दक्षम्**) व्यवसाय के व्यवहार को (**मनसा**) मनोयोग पूर्वक (**जगृभ्यात्**) ग्रहण करे ।

व्याख्या–प्रस्तुत मन्त्र में धनार्जन करते हुए उस धन को सन्तोष पूर्वक उपभोग करने का सत्परामर्श दिया गया है ।

को वादरिद्रो ? हि विशाल तृष्णा । श्रीमास्तु को ? यस्तु समस्ततोष ॥

अर्थात्–गरीब कौन है ? जिसकी तृष्णा बड़ी है । अमीर कौन है? जो सदा सन्तुष्ट रहता है। भगवान् के दिये धन से जिसे सतोष नहीं होता वह मन का दरिद्र है और यही दु ख दायिनी दरिद्रता है।

इश्वर के ससार मे कभी भी मर्यादा के भीतर रहकर खाने पीने पहनने ओढने शरीर की नाना प्राकृतिक इच्छाओ की पूर्ति के सभी साधन प्रचुरता से है। किसी को किसी वस्तु की कमी नहीं है। जीवन की आधारभूत चीजे विपुलता से बिखरी पडी हैं । जिनना जिस जिसके हिस्से मे है जितना जिसके भाग्य मे है वह उसे देर सबेर अवश्य प्राप्त होकर रहता है । कोई किसी के भाग्य के धन सतान सम्पत्ति भूमि ऐश्वर्य मान को उससे नहीं छीन सकता । शर्त यही है कि हम अपना कर्म करते रहें परिश्रम लापरवाही न करें आलसी न बने मुफ्त का धन लूटने की चेष्टा ना करें । अपना पेट भर लेने के पश्चात् बचा हुआ धन या वस्तुएं ईश्वर की है हमारी व्यक्तिगत पूजो नहीं है उन्हे समाज के अन्य जरूरतमन्द व्यक्तियों को दे देने (दान करने) में ही कल्याण है।

ससार विषय वासना में लिप्त व्यक्ति के दुखों का अन्त नहीं होता एक आवश्यकता पूर्ति के बाद दूसरी फिर तीसरी चौथी अनन्त तृष्णाए हजारो छोटी बडी अच्छी बुरी इच्छाए उसके शान्ति सुख और सन्तुलन को भग करती रहती है । इन्द्रियो को कभी सन्तोष नहीं मिलता। वासना कभी तृप्त नहीं होती। आसक्ति ही दु ख का मूल है। सग्रह से त्याग ही श्रेष्ठ है। सग्रह से आसक्ति बढती है । जीव ससार के माया मोह में और जटिलतर से बधता जाता है। इसलिए भर्तृहरि कहते हैं

धनवन्तमदातार दरिद्र चातपस्विनम् ।
उभावम्भसि मोक्तव्योगले बद्ध्वादृढाशिलाम्॥

अर्थात्–जो धनवान होकर दान नहीं करता और दरिद्र होकर कष्ट सहन रूप तप से दूर भागता है इन दोनो के गल मे बडा भारी पत्थर बाधकर जल मे छोड देना चाहिए।

ऋषिकुमार नचिकेता ने सत्य ही कहा है कि मनुष्य को धन से कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता। यदि हमने प्रभु के दर्शन पा लिये हैं आत्म साक्षात्कार कर लिया है तो असली धन हमने पा लिया है। मागने योग्यवर तो आत्मसाक्षात्कार है।

पहले तो धन के पैदा करने में कष्ट होता है फिर पैदा किए हुए धन की रखवाली मे क्लेश उठाना पडता है । इसके बाद यदि वह कहीं नष्ट हो जाए तो दु ख और खर्च हो जाए तो फिर दु ख होता है। धन अधिक होने पर तृष्णा और मोह तथा कम होने पर हृदय मे जलन उत्पन्न करता है। अन्त मे धन के त्याग में भी दु ख ही हाथ लगता है । आप ही सोचिये धन मे सुख कहा है ?

हमें यह भी भली भाति स्मरण रखना चाहिए कि ससार मे कभी किसी की इच्छा पूर्ण नहीं हुई है । तृष्णा बढती ही रही है। ईश्वर ने अपने परिश्रम की जो रोटिया हमे दी हैं वही हम ईमानदारी से लेते रहें सदा अपनी मेहनत की कमाई पर निर्भर रहे यही श्रेष्ठ सुख शन्ति का साधन है। आसक्ति का त्याग कर क्रोध को जीत कर स्वल्पाहारी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धि से इन्द्रियों को रोक कर ही हम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं ।

जो कुछ ईश्वर की देन के रूप में आपके पास है उसे मर्यादा के भीतर रहकर भोगे और सन्तोषामृत पान करते रहें। यही वेद का आदेश है।

वैदिक काल में नारी की स्थिति

लें० डा. भवानीलाल भारतीय

नारी विधाता की अद्भुत् सृष्टि है । भारतीय समाज ने अत्यन्त प्राचीन काल में वेद प्रतिपादिक आदर्शों और जीवन प्रणाली को स्वीकार कर अपना बहुविध विकास किया था। वैदिक काल में नारी को अत्युच्च स्थान प्राप्त था। वेदों के सहस्रो मंत्रों में नारी को गरिमामयी छावे को अंकित किया गया है। उषा, आप:, अदिति, सरस्वती आदि देवताओं को सम्बोधित करने वाले जो वैदिक मत्र मिलते हैं उनमे नारी महात्म्य का ही उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में स्त्री को यज्ञ में ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करने के योग्य बताया गया है। उसी वेद मे सरस्वती रूपा विदुषी नारी का आह्वान करने वाला निम्न मत्र द्रष्टव्य है-

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्य दात ॥

(10-17-7)

अर्थात् दिव्य गुणो की कामना करने वाली विदुषी देवी को हम आमंत्रित करते हैं । यज्ञो के अवसर पर सरस्वती रूपी सुपठित देवी को हम बुलाते हैं। उत्तम कर्म करने वाली सन्नारी को हम आहूत करते हैं । वह दानशील व्यक्तियो को उत्तम ज्ञान देती है । ऋग्वेद के दशम मडल का 85वा सूक्त नारी की महिमा का बहुविध आख्यान करता है। उसके वे मत्र जिनकी ऋषिका सूर्या सावित्री है, नारी गौरव को ही उपस्थापित करते हैं। वैदिककाल से लेकर अब तक आर्य जाति विवाह के अवसर पर इसी सूक्त के मंत्रों का प्रयोग करती आई हैं । इन मंत्रों का यहा सकेत मात्र से ही उल्लेख किया जाता है। प्रेतो मुञ्चामि (10-85-25), पूषात्वेतो नयतु (10-85-26), सुमंगलीरियं वधू (10-85-33), गृभ्णामिते सौभगत्वाय हस्तं (10-85-36), तुभ्यमग्रे पर्यवहन् (10-85-38), इहैव स्त मा वि यौष्टं (10-85-42), अघोरचक्षुर-पतिघ्न्येधि (10-85-44) आदि मत्र गृहस्थ में प्रविष्ट होने वाली नारी का गौरवमय रूप प्रस्तुत करते हैं। समञ्जन्तु विश्वेदेवा:, समापो हृदयानि नौ (10-85-47) मंत्र में द्विवचन का प्रयोग द्रष्टव्य है । उसमें वर और वधू द्वारा समान रूप से गृहस्थ के दायित्व को पूरा करने का संकेत है ।

पुन: श्वसुर गृह मे जाकर वधू किस प्रकार गृहस्थ परिवार की साम्राज्ञी बन जाती है, उसका संकेत भी इसी मंत्र (10-85-46) में मिलता है । ऋषि दयानन्द ने स्वरचित सस्कारविधि के विवाह प्रकरण में इस मंत्र को उद्धृत किया है-

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव ।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु ॥

इसका अर्थ करते हुए दयानन्द सरस्वती लिखते हैं-"हे वरानने, तू मेरे पिता जो कि तेरा श्वसुर है, उसमें प्रीति करके सम्यक् प्रकाशमान् चक्रवर्ती राजा की रानी के समान पक्षपात छोड़के प्रवृत्त हो। मेरी माता जो कि तेरी सास है उसमें प्रेमयुक्त होके उसी की आज्ञा मे सम्यक् प्रकाशमान् रहा कर । जो मेरी बहिन और तेरी ननन्द है उसमे भी प्रीतियुक्त और मेरे भाई तेरे देवर और ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ हैं, उनमे भी प्रीति से प्रकाशमान् अधिकार युक्त हो अर्थात् सबसे अविरोधपूर्वक प्रीति से वार्ता कर ।"

वेदो में नारी को गृहस्थ की गुरुतर धुरी का वहन करने की प्रेरणा तो दी ही है, समय आने पर उसे वीर भावनाओं से युक्त होकर प्रचण्ड कर्मों में लग जाने का भी आदेश दिया है, ऋग्वेद के दशम मण्डल का 159वां सूक्त शची पौलोमी को समर्पित है । इसकी द्रष्टा ऋषि (ऋषिका) भी एक नारी शची पौलोमी ही है। इसमें जिस वीर नारी का चित्रण किया गया है उसकी ओजस्वी वाणी को सुनें-

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भग: ।

अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहि ॥ (10-159-1)

सूर्य के उदय के साथ-साथ मेरे सौभाग्य की भी वृद्धि हो रही है। मैं अपने पतिदेव को प्राप्त करके विरोधियों को पराजित करने वाली तथा सहनशील बनू ।

पुन: वह कहती है-

अहं केतुरहंमूर्धाहमुग्रा विवाचनी

ममेदनु: क्रतुं पति: सेहानाया उपाचरेत् ॥ (10-159-2)

मैं केतु (ध्वजा) तुल्य हू समाज की मूर्धा स्थानीय हू, तेजस्विनी बनकर समाजों मे प्रभावशाली भाषण देने वाली हू। मेरा पति मेरी इच्छा, ज्ञान और कर्म के अनुकूल आचरण करता है। इस वीरप्रसू नारी की सन्तान भी वैसी ही तेजस्विनी है-

मम पुत्रा: शत्रुहणो ऽथोमे दुहिता विराट् ।

उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ में श्लोक उत्तम: ॥ (10-159-3)

मेरे पुत्र शत्रुओ का नाश करने वाले हैं मेरी पुत्री भी ज्ञानादि गुणों के कारण विशेष रूप से प्रकाशित होने वाली है । मैं स्वय भी काम क्रोधादि विकारो को जीतने वाली तथा बाह्य शत्रुओं का निग्रह करने वाली हू । मेरा आचरण और व्यवहार ऐसा है जिससे मेरे पिता को उत्तम यश प्राप्त होता है।

यजुर्वेद में भी नारी का गौरवगान करने वाले अनेक मत्र मिलते हैं। आठवें अध्याय का 43वां मत्र इस प्रकार है-

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति ।

एताते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥

इस मत्र का देवता (विषय) पत्नी है । यहा पत्नी के लिए जो विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, उनसे नारी की गरिमा और प्रतिष्ठा व्यक्त होती है । वह पत्नी अघ्न्या है, उसकी ताडना करना उचित नहीं, वह स्तुति करने के योग्य है (इडे), रमणीय है (रन्ते), कमनीय है, कामना करने के योग्य है-(काम्ये) स्वीकार करने योग्य है (हव्ये), अपने शील और आचार से द्युतिमान् है (ज्योते), अविनाशी आत्मा होने के कारण अदिति है (अदिते), विद्यायुक्त है-(सरस्वती), पूज्यतम है (महि), उत्तम कीर्ति तथा वेदवाणी युक्त है-(विश्रुति) ये सभी नाम या विशेषण पत्नी के लिए वेद ने प्रयुक्त किये। संसार के साहित्य में नारी की प्रशसा के लिए इतने शब्दो का प्रयोग एक साथ शायद ही कहीं हुआ हो ।

राष्ट्रगीत के तुल्य सम्मानप्राप्त यजुर्वेद के 22वे अध्याय के 22वे मंत्र मे जहा राष्ट्र मे ब्रह्मवर्चस्व को धारण करने वाले, ब्राह्मण, शूरवीर क्षत्रिय तथा दुग्धवती गौवो आदि की कामना की गई है वहा राष्ट्र की नारी को अनेक व्यवहारो में कुशल होने के कारण आदर्श कहा गया है।

अथर्ववेद मे 'शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा (11-1-17) कहकर नारी को शुद्ध, पवित्र तथा यज्ञ के तुल्य आदारास्पद कहा गया। इसी वेद के 14वे काड का प्रथम सूक्त तो स्त्रियोचित कर्त्तव्यो का उपदेश करने वाला विश्वकोश ही है । इस तथा आगे के दूसरे सूक्त के अधिकाश मत्र वैदिक विवाह विधि मे विनियुक्त हुए हैं। पत्नी को गृहाश्रम की महारानी बताते हुए उसकी उपमा उस सागर से दी गई है जो नदियो का स्वामी है-

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।

एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ 14-1-43

जिस प्रकार समुद्र ने नदियो का सम्राट् पद प्राप्त किया है उसी प्रकार हे वधू, तू पति के घर जाकर साम्राज्ञी बन।

सक्षेप से यह कहा जा सकता है कि वैदिक सहिताओ में नारी के गौरव तथा महत्व को सर्वत्र प्रस्थापित किया गया है तथा उसको गृहस्थाश्रम की एक धुरी माना गया है। नारी की गरिमा का प्रत्याख्यान करने वाला एक भी मत्र सहिताओ में नहीं है।

पुरुष ऋषियो की भाति स्त्री ऋषिकाओ ने भी वेदो के विभिन्न मंत्रों तथा सूक्तो का रहस्य जाना था, वे इन मन्त्रो का अर्थ चिन्तन कर ऋषिका पद को प्राप्त कर सकीं। ऋग्वेद के निम्न सूक्तो की द्रष्टी ऋषिकाओ की नामावली यहा दी जा रही है-

मण्डल 10 सूक्त 39 तथा 40 को घोषा काक्षीवती ने देखा । इस मण्डल के 95वे सूक्त के 16वे तथा 17वे मत्र को उर्वशी ने देखा (इसके रहस्य को जाना), 90वे मण्डल के 109वें मत्र की द्रष्टी जुहू ब्रह्मजाया थी। इसी मण्डल के 134वे सूक्त के छठे तथा सातवे मंत्र का विशेष ज्ञान गोधा ने किया।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

(पृष्ठ 5 का शेष)

154वें सूक्त को देखने का श्रेय यमी को है। 159वे सूक्त में नारी गौरव का गान करने वाली ऋषिका शची पोलोमी है । 189 वे सूक्त का ज्ञान सार्पराज्ञी ने प्रसारित किया। यह तो 10वे मडल की बात हुई । ऋग्वेद के अन्य मण्डलों को देखे तो ज्ञात होता है कि 5वे मण्डल के 28वे सूक्त का दर्शन विश्ववारा आत्रेयी ने किया था। अष्टम मण्डल के 91वे सूक्त की द्रष्टी अपाला आयेनी है। अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं ।

मत्र द्रष्टानारी ऋषियो (ऋषिकाओ) की एक सूची बृहद्देवता के 24वे अध्याय (श्लोक-84, 85, 86) मे निम्न प्रकार से उपलब्ध होती है-

घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत् ।

ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति ॥

इन्द्राणी चन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी ।

लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती ॥

श्री र्लक्ष्मी· सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा ।

रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिता ॥

ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रचार करने के कारण उपर्युक्त ऋषिकाओ को ब्रह्मवादिनी कहकर पुकारा जाता है

वेदिककाल के परवर्ती ब्राह्मण तथा उपनिषद काल में भी नारी का गौरव तथा महत्व अक्षुण्ण रहा। शतपथ ब्राह्मण तथा तदनुवर्ती बृहदारण्यकोपनिषद् मे वाचक्नवी गार्गी नामक ब्रह्मवादिनी नारी का आह्वान अनेकत्र आया है । राजा जनक की सभा मे उपस्थित विद्वत् समुदाय को जब महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने अपरिमित ब्रह्मज्ञान के द्वारा निर्वाक् कर दिया तो वचकु ऋषि की पुत्री गार्गी उठ खड़ी हुई और उसने महर्षि से पूछा-"अथ हैन गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छायज्ञवल्क्येति होवाच आदि" तदन्तर गार्गी वाचक्नवी ने याज्ञवल्क्य से गूढ दार्शनिक प्रश्न पूछे। विस्तृत विवरण के लिए बृहदारण्यकोपनिषद् (3-6-1) द्रष्टव्य है । पर्याप्त प्रश्नोत्तर करने के पश्चात् महर्षि ने परमात्मा की महिमा को निम्न प्रभावशाली शब्दों मे उद्घोषित किया-'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गिद्यावापृथिव्यौ विधतेतिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि धावापृथिव्यौ विधतेतिष्ठत एतरस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निर्मेषा मुहुर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्धमासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्ये आदि' अर्थात् हे गार्गी, उस अक्षर परमात्मा के अनुशासन को मानकर सूर्य और चन्द्रमा नियमित होकर स्थित है, इसी परमेश्वर की आज्ञा को स्वीकार करके द्युलोक और पृथ्वीलोक नियमित स्थित हैं। इसी अविनाशी अक्षर के आदेश से निमेष (पल), मुहुर्त, अहोरात्र (दिनरात), अर्द्धमास, मास, ऋतु, संवत्सर (वर्ष) आदि काल के अवयव नियमित हैं । महर्षि याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्मनिष्ठ से शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होकर गार्गी जैसी भारतीय विदुषी ने समस्त नारी जाति को गैरवान्वित किया था।

याज्ञवल्क्य की विदुषी पत्नी मैत्रेयी का आख्यान भी बृहदारण्योपनिषद् (2/4) में वर्णित हुआ है । मोक्षमार्ग में अपनी रुचि को दर्शाती हुई मैत्रेयी ने अपने पति को कहा था-

सा दोवाच मैत्रेयी येनाह नामृतास्यां किमहंतेन कुर्यां-

जिससे मैं अमृतत्व को प्राप्त नहीं कर सकूं उसे जानकर क्या करूंगी ? पत्नी की इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए महर्षि ने आत्मा विषयक अपना वह प्रसिद्ध उपदेश दिया जो न वा अरे पत्युः कामाय पति: प्रियोभवति आत्मनस्तु कामाय पति: प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पति: प्रियो भवति" आदि तथा आगे के वाक्यो मे वर्णित हुआ है । मैत्रेयी को ही सम्बोधित कर महर्षि याज्ञवल्क्य ने उपनिषद् के इस अमर वाक्य का उच्चारण किया था-'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेदं सर्वं विदितम् ।' निश्चय ही यह आत्मा (परमात्मा के लिए प्रयुक्त) ही द्रष्टव्य है, श्रोततव्य है, मनन करने के योग्य है, अतिशय ध्यान करने के योग्य है, इसके श्रवण, मनन दर्शन से सब कुछ जान लिया जाता है। उपनिषद्कालीन नारियो का अध्यात्म ज्ञान भारत की प्रोज्जवल निधि था।

(8/423 नन्दन वन जोधपुर)

जीवन पथ पर चलने वालो

ले० महावीर "नीर" विद्यालंकार कार्य, प्रधानाचार्य, गु०कां०विद्यालय विभाग हरिद्वार

जीवन पथ पर चलने वालो, मन का मत संतुलन बिगाड़ो,
आज अगर प्रतिकूल है कोई, कल अनुकूल तुम्हारे होगा।
आंधी और तूफान सदा हीं,
आया और जाया करते हैं
पतन और उत्थान सदा ही
हमको खुद परखा करते हैं ।
आज अगर प्रतिकूल समय है, कल अनुकूल तुम्हारे होगा
सुख और दुःख की राम कहानी,
आदि काल से चलती आयी ।
आशा की स्वर्णिम बातें भी
आदि काल से छलती आयी ।
आज अगर छल रहा तुम्हें है, कल अनुकूल तुम्हारे होगा ।
माना जीवन की गलियों में,
आज हंसी कम, रुदन अधिक है।
माना बगिया के फूलों को
झुलस रहा दुःख का मौसम है ।
आज अगर दुःख ओ' मातम है, कल अनुकूल तुम्हारे होगा।
माना पथ के चौराहे पर
आज कपट औ' झूठ बिक रहा ।
माना चांदी की झिलमिल में,
आज किसी का मान बिक रहा।
आज अगर धूमिल जीवन है, कल अनुकूल तुम्हारे होगा ।
माना अनुशासन की चादर
तार-तार हो रही हमारी ।
माना देख बिगड़ता मानव
रोते हैं अब धर्म पुजारी ।
आज अगर प्रतिकूल चरण है, कल अनुकूल तुम्हारे होगा ।
माना सुन-सुनकर स्वार्थों की,
ऊल-जुलूल बात कुछ जग में ।
माना अपने रूठ गए हैं
छोड चले एकाकी मग में
आज "नीर" प्रतिकूल है कोई, कल अनुकूल तुम्हारे होगा ।

लुधियाना में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना का पारिवारिक सत्संग 29-4-2001 को सायं 5-30 बजे जंजघर कपूर टैण्ट स्ट्रीट कैलाश चौंक सिविल लाईन लुधियाना में होगा ।

आर्य समाज भट्टियानि चौहट्टा उदयपुर का वार्षिक चुनाव

आर्य समाज भट्टियानि चौहट्टा उदयपुर का वार्षिक चुनाव श्री लक्ष्मी स्वरूप जो चुनाव अधिकारी की अध्यक्षता में 15-4-2001 को साप्ताहिक सत्संग के पश्चात् सर्वसम्मति से निम्न प्रकार हुआ ।

1. डा. प्रेम चन्द गुप्ता-प्रधान। 2 श्री हरिनारायण शर्मा-उपप्रधान। 3. श्री लालचन्द कालरा-उपप्रधान। 4 डा. श्री राम आर्य-मन्त्री। 5. डा. दीनदयाल शर्मा-संयुक्त मंत्री। 6. श्री शिव प्रकाश शास्त्री-उप मंत्री । 7. श्री हीरा लाल सांचोरा-प्रचार मंत्री । 8 श्री मिठा लाल चौधरी-कोषाध्यक्ष। 9. श्री शंकर लाल मरमट-पुस्तकालयाध्यक्ष । 10. श्रीमती स्नेहलता गुप्ता-संचालक पुस्तक बिक्री विभाग ।

अंतरंग सदस्य :-1. श्री फतेह लाल शर्मा, 2. श्री इन्द्रदेव पियुष, 3. श्री वासुदेव शास्त्री, 4. श्री नन्दलाल शर्मा।

सभी सदस्यों के निर्वाचन के बाद ऋषि लंगर तथा प्रसाद वितरण का आयोजन किया जिसमें सभी सदस्यों ने प्रीति भोज लिया ।

-हीरा लाल सांचोरा, प्रचार मन्त्री
महर्षि दयानन्द मार्ग, उदयपुर

लक्ष्मी की सही पूजा

डॉ० श्री खुशहाल चन्द्र आर्य

किसी चीज की पूजा करने का तात्पर्य होता है उस चीज का सदुपयोग करना अथवा उसकी प्राप्ति करना। यहा लक्ष्मी की पूजा का मतलब जिन कार्यों के करने से लक्ष्मी की प्राप्ति हो उन कार्यों को करना। जैसे सरस्वती की पूजा या प्राप्ति विद्या पढने से होती है वैसे ही लक्ष्मी की पूजा या प्राप्ति सच्ची लगन से मेहनत परिश्रम व पुरुषार्थ करन से होती है। लक्ष्मी को अर्जित करना हो तो आप बुद्धिपूर्वक लगन के साथ परिश्रम व मेहनत करो आपको लक्ष्मी अवश्य प्राप्त हो जाएगी। अधिकतर लोग लक्ष्मी की प्राप्ति भाग्य से मानते हैं। उनका कहना ह कि मेहनत और पुरुषार्थ से तो मनुष्य ज्यादा से ज्यादा पेट ही भर सकता है लेकिन लक्ष्मी तो जिसके भाग्य मे लिखी होती है उसी को मिलती है। यानि यह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है कर्म इसम आड नही आता। यह उनका कहना वैदिक सिद्धान्तो से सही नहीं ह। हमने कितने ही लक्ष्मिपतियो को देखा है जो पहले एक साधारण व्यक्ति ही थे फिर अपनी बुद्धिपूर्वक ईमानदारी के साथ मेहनत व पुरुषार्थ करने से धीरे धीरे लक्ष्मी पति बन गये। उदाहरण के तौर पर छाजूराम जो हरियाणा के एक छोटे से गाव अलखपुरा मे एक इतने गरीब जाट परिवार मे पैदा हुए थे जिनको बचपन मे पेट भरने के लिए दो समय की रोटी भी नसीब नहीं थी। उन्होंने बडी कठिनाई से तीन चार क्लास तक की पढाई गॉव की ही पाठशाला मे का और फिर चौदह पन्द्रह वर्ष की अल्पायु मे ही उनको मकान बनाने वाले मिस्त्री के नीचे ईंट व मिट्टी पकडाने का काम करना पडा। एक दिन बच्चा होने के नाते उसे मिस्त्री की कुण्डी (जिसमे पानी व मिटटी घुली हुई होती है) पकडाते समय कुछ घुली हुई मिट्टी नाचे गिर गई। मिस्त्री ने गुस्सा मे आकर ना आव न देखा ताव कर्णी जो उसके हाथ मे थी उस छोटे छाजूराम के माथे मे मार दी। उसके मारते ही छाजूराम के मन म अपने इस अपमानित जीवन से घृणा उत्पन्न हो गई और यह भाव जागृत हुए कि इस बेईज्जत जीने से तो कहीं बाहर जाकर भूखो मरना ही कहीं अच्छा है। वह काम से छुट्टी पाने के बाद अपनी मा के पास आकर दुखित भाव से बोले माता जी आप किसी प्रकार से भी पन्द्रह बीस रुपयो की व्यवस्था कर देवें मैं कलकत्ता जाऊगा और वहा जैसे मेरे गाव के वैश्यभाई रुपये कमाते हैं तो क्या मैं नहीं कमा सकूगा? ईश्वर ने मुझे भी तो बल व बुद्धि दी है मैं अपनी पूरी मेहनत और ईमानदारी से कलकत्ता जाकर काम करूगा तो ईश्वर मुझे भी अवश्य सफलता देगे। पहले तो माता ने अपने लाडले बच्चे को प्यार से गले लगाया और फिर बच्चे का दृढ निश्चय देख कर माता ने एक दो बर्तन बेच कर पन्द्रह बीस रुपये की व्यवस्था कर दी और अपने होनहार बच्चे को ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कलकत्ता के लिए विदा कर दिया। वह बच्चा इतना मेहनती बुद्धिमान सच्चा ईमानदार व कर्त्तव्य परायण निकला कि कलकत्ता आते ही किसी अग्रेज आफिसर को अपने विनम्र व्यवहार से खुश करके एक हैसियन जूट मिल मे चौकीदारी का काम शुरू कर दिया। उसी दिन से उनके जीवन का उत्थान होना आरम्भ हो गया। उसी आफिसर की सहानुभूति से वह हैसियन का अच्छा बडा दलाल बन गया और देखते ही देखते अपनी कार्यकुशलता के बल पर कलकत्ता के अच्छे धनी मानी लोगो मे अपना एक विशेष स्थान बना लिया। कलकत्ता महानगर मे खूब अच्छा व्यवसाय करके खूब धन कमाया गाडी ली कई मकान बनाये खूब प्रतिष्ठा प्राप्त की।

दान की प्रवृत्ति होने से उन्होने अनेको स्कूल कालेज पाठशाला अनाथालय व गऊशाला खुलवाकर बडा यश कमाया। यही कहानी सभी धनी लोगो के जीवन म घटित होती है। बिडला व डालमिया भी एक साधारण परिवार म उत्पन्न होकर अपने परिश्रम ईमानदारी लगन व पुरुषार्थ से भारत के शीर्ष धनाढ्य लोगो मे गिने गये।

जो व्यक्ति लक्ष्मी को भाग्य का बान मानत हे उनको यह मालूम होना चाहिए कि भाग्य भी तो इस जन्म व पूर्व जन्म मे किए हुए शुभ कर्मों का सचय हो हाता ह इसको अपने आप बन जाना मानना सिर्फ पुरुषार्थहीन लोगो की कोरी कल्पना मात्र है।

ईश्वर अपनी इच्छा से किसी को भाग्यवान् या भाग्यहीन नहीं बनाता। वह तो जीव के अच्छे व बुरे किये हुए कर्मो का फल दे देता है। सब विषयो से परे होन के कारण उसका न कोई इच्छा होती है और न किसी मे राग (लगाव) और न किसी से द्वेष होता ह। उसका हर काम न्याययुक्त और पक्षपात रहित होता हे। जीव जैसा भी कर्म शुभ या अशुभ करेगा उसी क अनुसार ईश्वर फल देगा गीता म भगवान् श्री कृष्ण ने बिल्कुल ठीक कहा है।

अवस्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम्।

आपको यह जानकर आश्चय भी हो सकता है कि वदिक सिद्धान्तो क अनुसार य ता व्रतानि पश्यशे ईश्वर भी अपने नियम व व्यवस्था स बन्धा हुआ है। वह जीव का अपनी इच्छा से कम या ज्यादा फल द ही नही सकता। यदि ऐसा न करे यानि अपनी इच्छा स किसी को कम और किसी को ज्यादा फल दव तो उसकी न्याय व्यवस्था मे दोष आ जाता ह। प्रसगवश यहा यह लिख देना भी उचित है कि हमारे कुछ पौराणिक भाई कह देते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान होने से वह अपने भक्तो को खुश करने के लिए या उनका दु ख हरण करने के लिए नौकर नाई आदि भी बनता है। यह भी असम्भव है इससे भी ईश्वर की न्याय व्यवस्था का आघात पहुचता है। वेदोद्धारक महर्षि

(शेष पृष्ठ 8 पर)

(पृष्ठ 7 का शेष)

दयानन्द ने सर्वशक्तिमान् का अर्थ यह बतलाया है कि ईश्वर अपने काम मे किसी दूसरे का सहयोग नही लेता वह सब काम अपनी शक्ति व सामर्थ्य से स्वय ही करता है । उसी विषय को आगे बढाते हुए मै लिखना चाहता हू कि भाग्य किसी का भी ईश्वर अपनी इच्छा से नही बनाता है। भाग्य मनुष्य अपने कर्मो से स्वय बनाता है और उसका फल ईश्वर की न्याय व्यवस्था के अनुसार जीव को स्वय को ही भोगना पडता है । कर्म करने मे जीव स्वतत्र है और फल ईश्वर अपनी न्याय व्यवस्था के अनुसार उसको देता है यानि जीव फल भोगने मे परतत्र है ।

लक्ष्मी या धन क्या चीज है ? म आपको एक उदाहरण देकर समझाने की कोशिश करूगा । जैसे एक मजदूर एक दिन मे पचास रुपये कमाता है। उसमे से वह पच्चीस रुपये खाने, पीने, पहनने व रहने मे खर्च कर देता है बाकी पच्चीस रुपये बचा लेता है । यही पच्चीस रुपए एक साल मे नौ हजार रुपए बन जाते है । इसी नौ हजार रुपयो को हम उसकी लक्ष्मी, धन या पूजी कहते हैं। सही रूप मे देखा जाए तो यह एक साल का सग्रह किया हुआ श्रम ही है। यदि वह अपनी पूरी कमाई पच्चास रुपये प्रतिदिन खर्च कर देता तो उसके पास नौ हजार रुपये नहीं बचे रहते ? यही बात व्यापार, नौकरी व खेती में लागू होती है। खर्च करने के बाद जो बचे हुए रुपये हैं, उसी को हम धन या लक्ष्मी कहते हैं। यह सगृहीत परिश्रम ही धन या लक्ष्मी होता है, इसके अलावा और कुछ नहीं । वैसे ही पूर्व जन्म में जीव जो शुभ या अशुभ कर्म करता है उसका फल कुछ तो उसी जन्म मे उसको मिल जाता है और कुछ शुभ या अशुभ कर्मो का फल उस जन्म मे जीव जो नहीं भुगत पाता वही सचित शुभ या अशुभ कर्म अगले जन्म में सौभाग्य या दुर्भाग्य के रूप मे जीव को भुगतने पडते हैं । यदि किसी मनुष्य के संचित शुभकर्म भुगतने बाकी रह जाते है तो वह सौभाग्यशाली कहलाता है और जिसके बुरे कर्म भुगतने बाकी हैं वह दुर्भाग्य वाला कहलाता है जो उसको इस जन्म मे भुगतने पड़ते हैं। यह शुभ या अशुभ कर्म जो हमारे ही किए हुए होते हैं उनका हमें जो प्रतिफल मिलता है वही हमारा भाग्य कहलाता है , इसीलिए यह भाग्य हमारे ही किए हुए कर्मो का फल हुआ न कि ईश्वर की इच्छा ।

वेद के इस मन्त्र मे कर्म का सिद्धान्त स्पष्ट हो जाता है ।

कृत में दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः ।

"ईश्वर जीव से कहता है कि तू दाहिने हाथ से कर्म व पुरुषार्थ कर तो बाये हाथ में विजय, सफलता या फल निश्चित है। मैं किसी से भी राग, द्वेष, अन्याय व पक्षपात नहीं करता ।

भठिण्डा में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज सिरकी बाजार शेड वाली गली भठिण्डा ने गत कई माह स पारिवारिक सत्सगो का कार्यक्रम आरम्भ किया हुआ है इसमे प्रथम अप्रैल को साय 4-30 श्री मोहन लाल जी गर्ग द्वारा अल्फा इण्डस्ट्रीज अग्रवाल कालोनी भठिण्डा मे पारिवारिक सत्सग का आयोजन किया गया जिसमे सभी भाईयो तथा स्त्री आर्य समाज की बहनो ने भाग लिया। यज्ञ के बाद उपदेश श्री आचार्य सुनील कुमार जी शास्त्री का हुआ ।

8 अप्रल को सत्सग डा मनोहर लाल बासल समीप आर्य समाज चौक के निवास स्थान पर हुआ । इस यज्ञ मे श्री बासल जी, उनके सुपुत्र अनिल कुमार, श्री सुनील कुमार, श्री विमल जी सपत्नीक यजमान बने। श्री आचार्य सुनील जी शास्त्री का उपदेश व स्त्री आर्य समाज की प्रधाना डा स्वच्छ सचदेवा के भजन हुए । इस अवसर पर नगर के गण-मान्य आर्य बन्धु व बहनें वहा उपस्थित थी।

एक अन्य प्रस्ताव के द्वारा आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा की कार्यकारिणी ने उपमन्त्री के रिक्त स्थान पर श्रीमती मजू शास्त्री को उपमन्त्री मनोनीत किया ।

आर्य समाज का सारा कार्यक्रम बडे सुचारू रूप से चल रहा है।

–कल्पवासुदेव, मन्त्री

आर्य समाज होशियारपुर का चुनाव

आर्य समाज कमालपुर, होशियारपुर का वार्षिक निर्वाचन दिनांक 15-4-2001 को सर्व सम्मति से तथा पं निरञ्जन देव जी इतिहास केसरी और आचार्य भद्रसेन जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ निम्नलिखित पदाधिकारीगण चुने गए।

1 सर्वश्री डा धर्मवीर कपूर–मुख्य सरक्षक । 2 श्री प्रो नवल किशोर शर्मा–प्रधान । 3 श्री प्रो यशपाल वालिया–मन्त्री । 4 श्री अश्विनी शर्मा–उपमन्त्री । 5 श्री जगदीश भाटिया । सहायक मन्त्री । 6 श्रीमती सुमेधा साहनी–उप प्रधान। 7 श्री आर के. मायर–मैनेजर। 8 श्री एस के सरीन–जनसेवा, अध्यक्ष। 9 श्री अमृत लाल चोपड़ा–निर्माण कार्य अध्यक्ष । 10 श्री इन्द्रदेव शर्मा–कोषाध्यक्ष । 11 प्रो प्रेमनाथ चोपडा–वद प्रचार अध्यक्ष । 12 श्री कैलाश चन्द्र शर्मा–पुस्तकाध्यक्ष। 13. श्री रवीन्द्र भारद्वाज–लेखा निरीक्षक ।

आर्य समाज नंगल टाऊनशिप का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज नगल टाऊनशिप का वार्षिक उत्सव 4 से 6 मई तक बडे समारोह पूर्वक हो रहा है जिसमें कई उच्चकोटि के विद्वान्, सन्यासी तथा भजनोपदेशक पधार रहे हैं।

–पृथ्वी सिंह चौहान, मन्त्री

(पृष्ठ 1 का शेष)

मानना है कि "वेदानुसार जब तक राजा धार्मिक रहते हैं, तभी तक राज्य बढ़ता है । जो राजा-राज्य पालन मे तत्पर रहते हैं-उन्हें उचित है कि जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो, वैसे नियम बनाए । जिस राजा के राज्य में चोर-लुटेरे और व्यसनी न हों, वही श्रेष्ठ राजा माना गया है।"

राज-सभा :–राज्य एक जटिल-तन्त्र है। इसे अकेला राजा नहीं चला सकता । इसलिए राजा को प्रभु-सत्ता सम्पन्न सभा और योग्य सचिव और सहायकों की आवश्यकता रहती है । अतः वेदों के अनुसार आदर्श राज्य संचालन हेतु तीन सदनीय सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा और राजर्य्य सभा का आयोजन होना चाहिए । क्योकि एक को स्वतंत्र राज्य-अधिकार नहीं देना चाहिए। इससे निरकुशता पनपती है।

सभा और समिति का उल्लेख वेदों में मिलता है । अत्यन्तोपयोगी होने के कारण उन्हे प्रजापति की दुहिताए कहा गया है, जो प्रजा के लिए सुख समृद्धि रूपी दूध दोहन करती हैं । समय आने पर सभा राजा-रानी और मंत्रियो को भी दण्ड दे सकती हैं। इन तीन सभाओ में बुद्धिमान और न्यायकारी सभासद् होने चाहिए । जो वेद-वेत्ता और जितेन्द्रिय हों तथा लोभी और मद्यादि का सेवन न करते हो । इन सभाओं का उद्देश्य अलब्ध की प्राप्ति और पुरुषार्थ की सिद्धि है, जिनमें निम्न सहायको की आवश्यकता रहती है :–

मंत्री :– स्वदेशोत्पन्न, शास्त्रवेत्ता और धार्मिक मत्री होने चाहिए।

सभापतिः–चतुर, राजनीतिज्ञ और भविष्य की बात जानने वाल दक्षदूत हों ।

मित्र :–सहानुभूतिपूर्ण सुहृदय मित्र की उपयोगिता सर्वविदित है। राजा, सुवर्ण और भूमि से वैसा नहीं बढता जैसा निश्छल प्रेमी और भविष्यत् की बातों को सोचने वाले समर्थ मित्रो से बढता है । मित्र कृतज्ञ और उपकारी होना चाहिए। अतः राजा को योग्य है कि वह बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति को शत्रु न बनाएं ।

राज-कोशः–ऋषि-दयानन्द एक भविष्य-द्रष्टा अर्थ-शास्त्री भी थे। उनका मानना है कि "राजा का कोश सुदृढ़, दुर्ग सुरक्षित और पुरोहित यज्ञ-विद्या-विशारद होने चाहिए । ऐसा राजा ही सदा सुख पाता है। उसे अपनी अर्थ-दशा सुधारने हुए समुचित अर्थ-सग्रह करना चाहिए किन्तु राजा, उसके सभासद और कोश अर्थ-दूषण से रहित होने चाहिए। क्योंकि अर्थ-दूषण अवनति की पहली सीढ़ी है ।"

(क्रमशः)

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि न एन पी 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष : ☎ 292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—54 अंक : 6 सृष्टि संवत 1960853102, 6 मई 2001 दयानन्दाब्द 178

अदान भाव और कुविचार मानवता के घातक हैं

❑ ले० श्री देवी दयाल जी, शर्मा, 120 माडल टाऊन, स्ट्रीट नं. 4 शर्मा निवास अमृतसर ।

ओ३म् मा प्रगाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

मान्तः स्थुर्नो आरातयः अथर्ववेद 12 2.59 (ऋग्वेद 10-53-3)

अर्थ :—परम पावन प्रभु, हम आपसे याचना करते हैं कि हम सत्यता के मार्ग का कभी परित्याग न करें । आपके परम आशीर्वादो की वर्षा हम सब पर होती रहे । अयाज्ञक विचारों से हम सदा दूर रहे । अदान भाव हमारे हृदय मे अपना वास कभी न करे'।

हे सारे जगत के स्वामी, हम आप से धन की मांग नहीं करते, हमारी तो आप से विनम्र पूर्वक यही प्रार्थना है कि हम सब को सदाचार के प्रभावशाली मार्ग पर चलाईये और हम कभी भी इस से विचलित न हो । हम बिना रोक टोक के इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि जो धन हम सच्चे और सुच्चे ढंग से कमाते है, वही हमारा असली धन है और जो धन हम बुरे तरीको से कमाते हैं, बेईमानी से कमाते है, उस धन मे ईश्वर की बरकते नहीं है । वह धन हमे किसी न किसी दिन छोड़ कर चला जाएगा । हम स्तोत्र रूप मे आप से प्रार्थना करते हैं कि हमे सत्य और असत्य का निर्णय करने वाली तीक्ष्ण बुद्धि प्रदान कीजिए कि हम को जो आपने धन दिया है उसको यज्ञ आदि शुभ कर्मो मे व्यय कर सके और उस धन को दीन दुखियो की सेवा मे लगा दे । गीता मे बहुत अच्छा कहा है कि जो देवताओ को रिझाए बिना अन्न पान करता है वह असली चोर है। (गीता 3/12)

इस वास्ते हमें तमीज करने वाली अकल दीजिए कि जिसके द्वारा हम हवन यज्ञ का कभी परित्याग न करे । शतपथ ब्राह्मण मे कहा है "यज्ञो वै श्रेष्ठतम् कर्म" यज्ञ से बढ कर और कोई श्रेष्ठ कर्म नहीं है । इस पर हमारा विश्वास दिन प्रतिदिन बढता जाए।

हम आपसे यह प्रार्थना नहीं करते कि आप हमारे शत्रुओ का नाश कर दीजिए । हम तो नत मस्तक हो कर यह बिनती करते हैं कि हमारे हृदय में कभी भी दुश्मनी का निवास स्थान न बने । अर्थात् सत्य पात्र को दान देने में कभी अदानी भाव पैदा ही न हो। यदि हम अपने मस्तिष्क को अदान भाव से भर लेगे तो हमारे से दैनिक यज्ञ नहीं हो सकेगा । दैनिक यज्ञ का तो क्या कहना, साप्ताहिक और मासिक यज्ञ भी नहीं हो सकेगा । सो हम फिर से याचना करते हैं कि कंजूसी भाव और स्वार्थतता, हमसे कोसो दूर रहे और मन हमारा सदा पवित्रता के भावो से भरपूर रहे और हमारा हृदय महान हो, देने मे ही अग्रसर हो, लेने की इच्छा का सदा अभाव रहे।

हमारी लेखनी, लिखने मे असमर्थ है जो परमात्मा की परोपकारिता, दयालुता और कृपालता हम पर हो रही है। उसकी गुप्त शक्ति और अदृश्य शक्ति संसार मे अद्भुत काम कर रही है जो उसने हम पर अपनी बरकतों की वर्षा की है और कर रहा है हम उसके बारे मे सोच ही नहीं सकते । हमारे पास इतनी सोच शक्ति नहीं है । किस-किस अदृश्य साधनों से वह हमारी शुभ कामनाओं को पूर्ण कर रहा है । हमारी समझ मे नहीं आता कि लोग क्यो अपना धैर्य खो बैठते हैं। खास कर जब उन्हे जरा सी मायूसी घेर लेती है । वह परमात्मा की अद्भुत देन (Wonderful Gifts) का तनिक विचार नही करते और बेवजह उसके प्रति अकृत्यज्ञता के भाव प्रकट करते हैं । परमात्मा ने जो अपने फराख दिल से हमे अनोखी बख्शीशे अदा की है उन मे से एक-एक का वर्णन करता हूं। कैसे, सुन्दर मानव शरीर की रचना की है और फिर इसके साथ सत्य, असत्य को परखने के लिए कैसी प्रतिभाशाली बुद्धि दी है, मन दिया है, ज्ञान-इन्द्रियां और कर्म इन्द्रिया दी हैं, धन दिया, सन्तान दी, भौतिक और अभौतिक विद्या से सम्पन्न किया। यदि हम उपर्युक्त उसकी देन से वचित हो जाते तो न जाने हमारा क्या हाल होता । मानव जीवन को चलाने के लिए उसकी इतनी देने हैं कि हम गिना नही सकते । जब हम गहरी सोच मे उसकी दैवी बखशिशो पर विचार करते हैं तो एक दम वाणी से शब्द निकलते हैं । अद्भुत है आपके दैवी कर्म (Divine Actions) और चकित करने वाली हैं आपकी छुपी हुई अनगिनत शक्तिया । मानव बुद्धि उस परम पावन प्रभु की दैवी उदारता चुम्बकीय (Magnanivity) देवी महानता और विशालता (Generosity and Benevolence) का अनुमान भी नहीं लगा र ी । जब तक कुविचार और ादान भाव का डेरा हमारे हृदय में जमा रहेगा, हम ईश्वर को पा नहीं सकते । एक जन्म क्या हजारो लाखो करोडो जन्मो मे भी, हम उसके दर्शन नहीं कर सकते। जब तक महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के बताए हुए पच महायज्ञ का नित्यप्रति अनुष्ठान नहीं करेंगे हम परमात्मा के नजदीक नहीं हो सकते। जितने हम दैवी साधनो का नितप्रति प्रयोग करते जाएगे, उतना ही परमात्मा हमे अपनाता जाएगा । याद रखो परमात्मा साधारण पुरुषो मे साधारण रूप से विराजमान है, उपाधिधारी विद्वानो की आत्माओ मे अद्भुत रूप से विराजमान है और यज्ञो मे विशेष रूप से विराजमान है और सत्पुरुषो की हमेशा सहायता करता है यह उसका सत्यव्रत है।

मैंने उपर्युक्त अच्छी तरह व्याख्या कर दी है कि परमात्मा बेशुमार भेंट (Gifts) अपनी इन्सान को दे रखी है यदि एक अग भी खराब हो जाएं या ईश्वर की ओर से न मिले तो जीवन रूपी रेलगाडी चल नहीं सकती और वह जीवन के कर्त्तव्य पूरा करने से महरूम हो जाता है। ससार मे वह पुरुष बडे ही भाग्यशाली है कि जिनके शरीर के सभी अग अपना अपना कर्त्तव्य (Function) पालन कर रहे है । इसलिए उन पुरुषो को दिन-रात ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिए। एक आदमी को देखिए जो बडा खूबसूरत, लम्बा और हर तरह से स्वास्थ्य युक्त है परन्तु चक्षुहीन है । आप नेत्रो की ईश्वरीय देन का मूल्य नही जान सकते है कि यह अग कितना कीमती है आप बाजार से कीमती से कीमती ऐनक खरीद सकते है परन्तु (Vision) बीनाई (नजर) मोल नहीं ले सकते। इसी तरह यदि आप बहरे (Deaf) और गूगे (शेष पृष्ठ ▲ पर)

सीता का दु:ख, हिन्दू नारी का दु:ख है ।

❑ ले० श्री सत्यदेव जी विद्यालंकार, भू.पू. आचार्य उपदेशक विद्या लंकार, टंकारा

महाकवि भवभूति ने अपने उत्तर रामचरित मानस नामक नाटक जो करुण रस प्रधान है उसमे एक समय जब सीता के पिता बाल्मीकि ऋषि के आश्रम मे थे, उन के दुख का इस प्रकार प्रकट किया है । मेरी पुत्री सीता गंगा के समान पवित्र है पर उसके दु:खमय जीवन को देख कर मैं प्राण त्याग करना चाहता हू। इसके लिए मैंने कठोर से कठोर व्रत किए पर प्राण नहीं निकले ।

सीता की कथा रामायण मे दु:ख और अपमान की कथा है । छोटी सी आयु मे विवाह हुआ तब राम सोलह-सत्रह वर्ष के थे । राजा दशरथ की भूल के कारण श्री राम के साथ,सीता को बनवास मे जाना पडा। वहां चित्रकूट मे रावण मरीच के द्वारा धोखा देकर सीता को आकाश मार्ग मे हर कर लका ले गया ।

एक इस बात का कारण नहीं समझ मे आता कि जब रावण आकाश मार्ग से लका गया तो श्री राम भी मरीच की ठगी को समझ कर आकाश मार्ग से अपने आश्रम क्यो नहीं आ गये । विचित्र बात है कि राक्षस रावण और वानर हनुमान आकाश मार्ग से जा सकते थे तो राम क्यो नही आकाश मार्ग से आ सकते थे । यदि रावण के पास कोई विमान था तो उसके पृथ्वी पर आकाश से उतरने और पुन: आकाश मे चढने की आवाज राम को व लक्ष्मण को सुनाई क्यो नहीं दी ।

जब सीता लका म रोती पीटती रावण के भय से कांपती इतने दिन गुजारती रही तो श्री राम ने अयोध्या सन्देश भेज कर, रघुवशी सेना बुलाकर रावण पर आक्रमण क्यो नही किया । वे कई मास वानरो को ही अपनी वीरता दिखाते और समझाते रहे।

वे दिन सीता ने कैसे गुजारे होंगे । यह कल्पना की बात है । नित्य-कर्म करना, वस्त्र बदलना, अभक्ष्य खाना, रावण की धमकियां और बलात्कार का डर सहना और रोज रोते रहना यह भयंकर दुख क दिन थे ।

जब अन्त मे रावण वध हुआ विभीषण और हनुमान सीता को पालकी में लेकर आये तो उस बेचारी को कितनी आशा होगी पर श्री राम ने कठोर भाव से कहा इसे पालकी से उतार दो फिर सीता से कहा तुमने रावण के अंगों का स्पर्श किया है । उसकी कैद में रही हो मैं तुम्हारा ग्रहण नहीं कर सकता । सीता ने दुखी होकर कहा मैं चिता में प्रवेश करुंगी श्री राम जी की अनुमति से सीता ने अग्नि प्रवेश किया । सब देवी देवता और ऋषि-मुनियो के अनुरोध को भी राम ने नहीं माना तब अग्नि देवता सीता को गोद मे लेकर प्रकट हुए। राम को सीता की पवित्रता की साक्षी दी तब राम माने पर आज कल अग्नि-देवता प्रकट होकर साक्षी नहीं देते और सैंकड़ो हिन्दू नारियां जल मरती हैं ।

अगली घटना इससे भी दारुण है । एक धोबी के ताने से और शहर के अपवाद से प्रभावित होकर श्री राम ने लक्ष्मण और सुमन्त को आदेश दिया । इसे नदी पार जंगल मे छोड़ आओ । जब लक्ष्मण ने सीता को बताया कि श्री राम ने तुझे यहां छोडने का आदेश दिया है । तब भी उस दुखिया ने राम के प्रति भक्ति ही दिखाई कोई कठोर वचन नहीं कहा । उसे रोती-पीटती देख कर समीप के वाल्मीकि आश्रम के दो विद्यार्थियो ने देखा तब बाल्मीकि जी आकर उसे अपने आश्रम मे ले गए।

गान्धी जी के साथ भी ऐसी ही घटना हुई थी । अपनी पत्नी की एक छोटी सी बात से क्रुद्ध होकर वे उसे, जब वो अफ्रीका मे थे खीच कर दरवाजे तक ले गए । उसे बाहर निकलने को कहा । रोती हुई पत्नी ने कहा तुम्हे तो शर्म नहीं है मुझे शर्म है मैं यहां किसके पास जाऊंगी । गान्धी जी बहुत लज्जित हुए, पर सीता मे यह हौसला नहीं था वह तो राम की भक्ति के ही गीत गाती रही ।

फिर जब श्री राम ने राजसूय यज्ञ किया और वहां लव-कुश ने बाल्मीकि रचित रामायण गा कर सुनाई तब सब देवी देवताओं ने सीता को पवित्र मान कर राम से ग्रहण करने का आग्रह किया तब राम अड़ गए और कहने लगे यह सब के सामने शपथ ले कि यह पवित्र है । वहां देवी-देवता भी उपस्थित थे । राम के दोनो पुत्रों के साथ बाल्मीकि भी थे। सब रामायण गान से मुग्ध थे। पर राम को क्षत्रियत्व का अभिमान था। राजा होने का अभिमान था। कहने लगे सीता सब के सामने पवित्रता की शपथ ले । श्री राम चन्द्र को यह ध्यान नहीं आया सीता उनके दो पुत्रों के साथ है वे क्या कह रहे हैं। सीता ने समझ लिया अब अन्त आ गया है । उसने सब के सामने शपथ ली यदि मैंने मन, वचन और कर्म से श्री राम के सिवाये किसी और का ध्यान किया हो तो पृथ्वी माता मुझे अपनी गोद में लेकर चली जाये । कवि ने लिखा है धरती फट गई, पृथ्वी माता सिंहासन के साथ प्रकट हुई और सीता को गोद में लेकर लुप्त हो गई ।

धरती के नीचे कोई सिंहासन नहीं है, यह सब कवि की कल्पना है । सीता समझ गई अब सब समाप्त हो गया । और सम्भवत: उसने किसी तरह अपने जीवन का अन्त कर दिया हो। इस सब को पढ़ कर सीता की शालीनता और श्री राम के नारी के प्रति कठोर व्यवहार का पता चलता है। यह सब कहां तक सत्य है इसका पता नहीं चलता । राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे उन्होंने यह सब किया इसका विश्वास नहीं होता । कई कपोल-कल्पनाएं भी हमारे ग्रन्थों में विरोधियों ने डाल दी हैं परन्तु रामायण को पढ कर सीता का दु:ख सहज ही समझा जा सकता है ।

कहा जाता है कि आगे चल कर श्री राम ने एक शूद्र का वध किया था। हिन्दुओं में नारी और शूद्रों के प्रति अपमान की भावना अब तक है । यह पाप हिन्दुओ को डुबोएगा। महात्मा बुद्ध , कबीर, गुरु नानक और ऋषि दयानन्द तक ने इस भावना का विरोध किया पर अभी तक हिन्दू जाती भेदभाव में बंटी हुई है ।

महाभारत के समय तो द्रौपदी और कर्ण का अपमान प्रसिद्ध ही है वह घोर पतित समय था ।

(पृष्ठ 1 का शेष)

(Dumb) के पास जाएं तो वह बतायेंगे कि परमात्मा ने कितने अमूल्य अंग हमें अदा किए हैं । यदि आप स्वास्थ्य से हाथ धो बैठे हैं तो बाजार से बडी कीमत (Tonics) शरीर को पुष्ट करने वाली दवाई तो खरीद सकते हैं परन्तु स्वास्थ्य नहीं खरीद सकते । सो हमें ईश्वर का कितना एहसानमन्द होना चाहिए जिससे हमें बगैर कीमत के ही यह बख्शीशें दी हैं। मानव की बुद्धि इतनी कठोर है कि वह ज्यादातर, राजसिक और तामसिक विचारों से भरी रहती है जो बुरे विचारो को जन्म देती है। अदान भाद और कुविचारों का शासन मानव के भीतर चलता रहता है। इसलिए सुविचारों का राज्य समाप्त हो जाता है और हम अभद्र की ओर चल पड़ते हैं और नाना प्रकार के दुख झेलते हैं। जब तक अभद्रता का राज्य हमारी बुद्धि पर सवार रहेगा हम भद्रता को गले का हार (Garland) नहीं बना सकते। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने वेद मन्त्र के भाव को समझने का इशारा किया है वह बहुत ही सार गर्भित हैं :- ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव, यद भद्रं तन्नासुव: । ईश्वर से प्रार्थना की है कि मेरे जितन अभद्र हैं वह दूर कर दीजिए और जितने भद्र हैं, वह हमें प्राप्त कराईय परन्तु याद रहे परमात्मा के नियम कल और सत्य से युक्त हैं । जो मानव उसके नियमों का मन, वचन और कर्म से पालन करने स अधिकारी बनता है। परमात्मा परम शासक भी है और परम अनुशासक भी है (Supreme Administrator and Supreme Diseiplinarian) परमात्मा का वही मित्र है जो उसके दोनों गुणो को जीवन में उतारता ह । नियम रहित पुरुष परमात्मा का दोस्त नहीं बन सकता क्योकि वह ईश्वर की आज्ञा का पालन नही करता ।

वेद विद्या का ही केवल एक मार्ग है जो मानवता को जिन्दा रखता है और केवल यही एक मूल कारण है जो परमात्मा के दैवी चमत्कार को दिखाता है ।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती न अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश म लिखा "वेदों की ओर चलो" (Back to The Vedas) और अपने जीवन को सार्थक बनाओ।

सम्पादकीय.....

पारिवारिक यज्ञों का शुभारम्भ

मैने गत दिनों पंजाब की आर्य समाजों के अधिकारियों से निवेदन किया था कि प्रत्येक आर्य समाज की ओर से पारिवारिक सत्संगों का आयोजन किया जाए ताकि आर्य समाज का सन्देश जन-जन तक पहुंचाया जा सके । मेरे इस निवेदन को कई आर्य समाजों ने अपनाते हुए अपनी आर्य समाजों की ओर से पारिवारिक सत्संग करने आरम्भ कर दिए हैं । मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि कई आर्य बन्धुओं ने मेरे इस विचार की सराहना करते हुए मुझे पत्र भी लिखे हैं और उन्होंने तुरन्त कार्य आरम्भ कर दिया है । आर्य समाज गोनियाना मण्डी (भठिण्डा) और आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा की ओर से पिछले कुछ समय से निरन्तर पारिवारिक सत्संग किए जा रहे हैं । इसी प्रकार स्त्री आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना की ओर से निरन्तर पारिवारिक सत्संग किए जा रहे हैं । नव निर्मित आर्य समाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना की ओर से भी निरन्तर प्रति रविवार को पारिवारिक सत्संग किए जा रहे हैं। आर्य समाज माडल टाऊन जालन्धर ने भी पारिवारिक सत्संग करने आरम्भ कर दिये हैं और भी कइ समाजें हैं जो पारिवारिक सत्संग कर रही हैं।

यह एक अच्छी शुरूआत है इससे वेद प्रचार के कार्य में निरन्तर वृद्धि हो रही है। मुझे बताया गया है कि इन पारिवारिक सत्संगों में भारी संख्या में स्त्री-पुरुष भाग ले रहे हैं और वह लोग भी आते हैं जो आर्य समाजी नहीं हैं । यहां तक कि हमारे सिख भाई तथा सनातनी भाई भी इन सत्संगों में आकर यज्ञ में अपनी आहुतियां डाल रहे हैं और बड़ी श्रद्धा से भाग लेते हैं। यह लोग आर्य समाज की विचारधारा को जानकर प्रसन्न होते हैं और बड़ी श्रद्धा से आर्य विद्वानों के उपदेश सुनते हैं। इसका कारण यह है कि जिस घर में सत्संग होता उस घर के सदस्यों के जो मित्र प्यारे होते हैं व जो उनके पड़ौसी होते हैं तथा जो उनके रिश्तेदार होते हैं वह भी परिवार का निमन्त्रण पाकर सत्संग में भाग लेते हैं । इन सत्संगों में आर्य समाज के सदस्य बहुत कम होते हैं परन्तु दूसरे लोग अधिक संख्या में होते हैं ।

हमें अब आर्य समाज की चार दीवारी से बाहर निकलना चाहिए क्योंकि आर्य समाज मन्दिरों में अब केवल वही लोग हमारे पास आते हैं जो आर्य समाजी हैं या जो आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित होते है। आम जनता हमारे पास आर्य समाज मन्दिर में नहीं आती । पहले हमारी आर्य समाजों के उत्सव व अन्य आयोजन सार्वजनिक स्थानो पर हुआ करते थे आम जनता आर्य समाज के विद्वानों के उपदेश व भजन सुनने के लिए आया करती थी और वह आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित होकर आर्य समाजी बन जाया करती थी। इसी कारण आर्य समाज इतना फैला है । अब आर्य समाज मन्दिर में कोई गैर आर्य समाजी नही आता, इसी कारण हमारी उपस्थिति दिन प्रतिदिन घट रही हैं । यह हमारे लिए एक चिन्ता का विषय है । नौ जवान पीढी का भी हमारे सत्संगों में अभाव है। हम स्वयं तो आर्य समाज के सत्संग में चले जाते है परन्तु अपने बच्चों को साथ लेकर नहीं जाते और न ही दूसरों को सत्संग में आने की प्रेरणा देते हैं ।

इसलिए सभी आर्य समाजों को इस ओर अवश्य देना चाहिए । हम अपने उत्सव आर्य समाज की चार दीवारी से बाहर, खुले मैदान में करें, सार्वजनिक स्थानों पर करें ताकि अधिक से अधिक लोग उसमें भाग ले सकें । हम अपनी आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्संग आर्य समाज के साथ-साथ परिवारों में भी करें और कम से कम महीने में एक सत्संग तो अवश्य ही परिवारों में रखें । ऐसे अवसर पर किसी अच्छे प्रभावशाली विद्वान का उपदेश करवाएं ताकि आई हुई जनता आर्य समाज के प्रति आकर्षित हो । आर्य समाज के पास ज्ञान का भण्डार है । चारों वेद, दर्शन शास्त्र, उपनिषदें, सत्यार्थ-प्रकाश व दूसरे धार्मिक ग्रन्थ हैं जिनमें जीवन निर्माण की भरपूर सामग्री है परन्तु हम भी वेदों को अलमारियों में बन्द करके बैठे हैं और हमारे विद्वानों के उपदेश भी आर्य समाज मन्दिर की चार दीवारी में ही घुट कर रह जाते हैं, वह आम लोगों तक नहीं पहुंच पाते । आर्य समाज को स्थापित हुए 125 वर्ष हो गए है परन्तु आज तक हम आर्य समाज और वेद का सन्देश देश-विदेश में घर-घर तक नही पहुंचा सके । "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का सन्देश आगे बढता हुआ दिखाई नहीं देता जब कि हमें इन 125 वर्षो मे इसे घर-घर पहुचाना चाहिए था।

आर्य समाज एक शक्तिशाली सस्था है और इसने जो कार्य किए हैं वह इतिहास मे स्वर्ण अक्षरों मे लिखे जाने वाले हैं । देश की आजादी से लेकर समाज कल्याण तक के अनेको कार्य आर्य समाज ने किए है आर्य समाज ने आम लोगो का व पिछडे हुए परिवारो व लोगो का जीवन स्तर ऊंचा किया है और आज भी आर्य समाज बहुत कुछ कर रहा है परन्तु उतना नहीं कर रहा जितना इसे करना चाहिए । इसी लिए मैं चाहता हूं कि पूर्व की भांति आर्य समाज का सन्देश जन-जन तक पहुंचे और सारे संसार में वेद का प्रचार व प्रसार हो इसके लिए प्रत्येक आर्य बन्धु व बहन को सहयोग देना होगा । सभी इसे अपना परम धर्म मान कर कार्य करें क्योंकि महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज के नियमो मे स्पष्ट लिखा है कि "वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।" इस परम धर्म का पालन करने के लिए सभी आर्य बन्धु आगे आएं और इसके लिए कार्य आरम्भ करे।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

करोड़ों का गोला बारूद अग्नि की भेंट

29 अप्रैल की रात्रि को पठानकोट आयुध भण्डार मे आग लग गई और इससे 15 करोड़ से भी अधिक मूल्य का गोला बारूद आग की भेंट चढ़ गया इससे पहले भी भरत पुर और जबलपुर में आयुध भण्डारों मे आग लग चुकी है । इस आग के लगने का कारण गर्मी का अधिक होना बताया जा रहा है। रक्षा विभाग की यह एक बहुत बडी क्षति है । पठानकोट आयुध भण्डार में लगी इस आग की जाच की जा रही है जिससे आग लगने के वास्तविक कारणों का पता चल सके।

हमारे देश में अब सरकारी वस्तुओं के रख-रखाव की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा । करोड़ों रुपये का अनाज प्रति वर्ष सरकारी गोदामों में सड़ जाता है परन्तु उसका वितरण ठीक ढग से नहीं किया जाता है और भी बहुत सी प्रकार की सामग्री ठीक रख-रखाव न रखने के कारण प्रति वर्ष नष्ट हो जाती है

इसलिए सरकारी प्रत्येक वस्तु के रख-रखाव की ओर सरकार को पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए और वस्तुओ को नष्ट होने से बचाना चाहिए । इन वस्तुओं के नष्ट होने से देश को बहुत बडी क्षति होती है । आयुध सामग्री की क्षति तो और भी बहुत बडी क्षति है । आयुध सामग्री का तो बहुत ही ध्यान रखना चाहिए परन्तु पठानकोट में जो घटना घटी है जिसमें करोड़ो रुपये की आयुध सामग्री जल कर राख हो गई है यह घटना असावधानी के कारण ही घटी है । यह तो स्वभाविक तौर पर सभी को पता है कि गर्मी अधिक पड़ने से ऐसी घटना घट सकती है तो ऐसी अवस्था में इसका पूर्व से ध्यान रखा जाना आवश्यक था फिर ऐसी घटनाएं पूर्व भी भरतपुर व जबलपुर में हो चुकी हैं उनसे भी प्रेरणा लेकर सावधानी रखनी चाहिए थी।

इस दुर्घटना में यह बचाव रहा कि जानमाल की कोई हानि नही हुई । परन्तु फिर भी सावधानी के रूप मे आयुध सामग्री ग्राम व शहरों से दूर रखी जाए । कई-कई मील तक आबादी नहीं होनी चाहिए। यह आयुध सामग्री की सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है और ऐसी दुर्घटना के समय भी बचाव हो सकता है। इसके लिए भी आवश्यक है इस अग्निकाण्ड के कारण कई आस-पास के गाव के लोग अपने घर बार छोड कर चले गए थे परन्तु आग पर काबू पा लेने के बाद वहअपने घरो को वापिस आ गए हैं ।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
पुनर्जन्म संबंधी अवधारणा

❑ ले० श्री मोहनचन्द जी

हिन्दी भाषियों की मासिक पत्रिका "कान्ति" वर्ष 9, अंक 7 नवम्बर 1999 के अक मे विशेष आयोजन के अन्तर्गत "स्वामी दयानन्द सरस्वती का पुनर्जन्म प्रकरण" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसके लेखक है डा मुहम्मद अहमद जो कि उपरोक्त पत्रिका के सम्पादक हैं । यह लेख श्री अर्जुन लाल नरेला एम ए (राजनीति शास्त्र, दर्शनशास्त्र) एडवोकेट 158, नया बाजार, नीमच-2 मध्यप्रदेश को उनके पत्र के स्वरूप लिखा गया है । श्री नरेला का पत्र नीचे दिया गया है ।

"आवागमन और पुनर्जन्म अक प्राप्त हुआ। महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का पुनर्जन्म प्रकरण ही पढकर शंका का समाधान हो जाता है । जो एक बार जन्म लेगा, वह बार-बार भी ले सकता है । कर्मो का फल ईश्वराधीन । जो जन्म न ले पाए उसे ही बुलाने वाला बुला सकता है। डाक्टर साहिब, अत्यधिक परिश्रम. (Study) (अध्ययन) के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद इतना अध्ययन तो हिन्दुओ का भी नही ।"

अर्जुन लाल नरेला
एम ए (राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र)
एडवोकेट. 154, नया बाजार, नीमच-2 मध्यप्रदेश ।

उपरोक्त लेख के प्रत्येक बिन्दु के सबध मे उत्तर इस लेख में दिया जा रहा है।

1 यहा लेखक को बडा भारी भ्रम हुआ है। स्वामी जी जो पुराणो को प्रमाण स्वरूप नहीं मानते उन्होंने यहा उनका प्रमाण नहीं दिया है । बल्कि स्वामी जी यहां महिलाओ का विवाह जल्दी नहीं करना चाहिए इसके विरुद्ध ऐसे निम्न लिखित दो श्लोको का खण्डन करते हैं जिसमे यह कहा गया है जो रजस्वला कन्या को देखते हैं वे माता-पिता आदि नरक को जाते हैं। जो रजस्वला होने से पूर्व कन्या का विवाह नहीं करते । सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास का पूरा प्रसंग निम्न प्रकार है :-

प्रश्न :-अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी दशवर्षा भवेत् कन्या तत उर्ध्वं रजस्वला ॥ 1॥

माता चैव पिता तस्या ज्योष्ठो भ्राता तथैव च ।

त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ 2॥

(उपरोक्त श्लोक पाराशरी स्मृति लघु पाठ अ 7 श्लोक 6, 7 तथा शीघ्र बोध 1/54, 65 के हैं)

अर्थ-कन्या की आठवें वर्ष गौरी नवमे वर्ष रोहिणी, दशवे वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा हो जाती है॥1॥

दशवे वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता-पिता और उसका बड़ा भाई ये तीनों देख के नरक में गिरते हैं ॥2॥

स्वामी जी ने इसके उत्तर में दो श्लोक बनाके कहा कि यह सद्योनिर्मित ब्रह्म पुराण का वचन है (वास्तव में यह उक्त पुराण का वचन नहीं) इस प्रकार दिया।

उत्तर-ब्रह्मोवाच-

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयं तु रोहिणी ।

त्रिक्षणा सा भवेद् कन्या ह्यत उर्ध्वं रजस्वला ॥1॥

माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका । सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥2॥

(यह सद्योनिर्मित ब्रह्म पुराण का वचन है)

स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश मे इस प्रसंग का उपसंहार करते हुए लिखते हैं कि उपरोक्त तुम्हारे और हमारे ये श्लोक मिथ्या हैं क्योकि जैसे ब्रह्मोवाच कह कर हमने श्लोक पराशर आदि के नाम से बना लिये हैं । क्योंकि आठ नौ वर्ष और दसवें वर्ष में विवाह निष्फल है । कम से कम 16 वर्ष की कन्या एवं 25 वर्ष के पुरुष का विवाह होना चाहिए क्योंकि इस समय पुरुष का वीर्य परिपक्व और शरीर बलिष्ठ तथा स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बल युक्त होने से सन्तान उत्तम होती हैं।

(2) इस बिन्दु के सन्दर्भ में लेखक महोदय भ्रान्ति के शिकार हुए प्रतीत होते हैं । स्वामी दयानन्द ने परलोक के सम्बन्ध में अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ आर्योद्देश्य रत्नमाला में निम्नलिखित परिभाषा दी है।

परलोक-जिसमें सत्य विद्या से परमेश्वर की प्राप्ति पूर्वक इस जन्म वा पुनर्जन्म और मोक्ष में परमसुख प्राप्त होता है उसको, परलोक कहते हैं ।

स्वामी जी ने यहां मनु, श्लोक "धर्म शनै सञ्चिनुयाद् का अर्थ" परजन्म लिखा है तो इसमे आपत्ति की क्या बात है । सब भूतों को पीड़ा न देकर परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ धीरे-धीरे धर्म का संचय करें ।

लेखक महोदय कहते हैं कि स्वामी जी ने यहां परलोक के बाद परजन्म लिखा है पुनर्जन्म नहीं । मनुस्मृति के उपरोक्त श्लोक परलोक की सफलता पर केन्द्रित है। हिन्दू धर्म मानव योनि को उत्तमोत्तम बताते हैं और मनुष्य योनि पाने को बड़ा भाग्य ठहराते हैं फिर आखिर किस परजन्म की बात हो रही है । यह परजन्म मनुष्य का पारलौकिक जीवन ही है। वेद और अन्य कुछ धर्म ग्रन्थ इसी तथ्य को मान्यता देते हैं आवागमनीय पुनर्जन्म को नहीं ।

हिन्दी विश्व कोश के अनुसार "पर" का अर्थ होता है पश्चात्, पीछे, इस जन्म-के पीछे जो जन्म होता है वह पर जन्म होता है । पुनर्जन्म का अर्थ होता है पुन: फिर, दोबारा, दूसरी बार, उपरान्त, पीछे, अनन्तर । इस प्रकार पुनर्जन्म का मतलब हुआ पीछे अनन्तर जन्म होना । इन शब्दों का सार्थक होना तब ही होता है जब एक बार जन्म होकर बार-बार जन्म हो यदि एक बार ही जन्म होकर उसके अनुसार उसको नरक या स्वर्ग मिलता हो तो ये शब्द निरर्थक हो जायेंगे ।

परलोक का अर्थ है (1) लोकान्तर, दूसरा लोक, स्वर्गादि । मृत्यु के बाद जिस लोक में गीत होते हैं उसे परलोक कहते हैं (2) इस लोक का विपरीत, स्वर्ग लोक (3) स्थान विशेष ।

पुनर्जन्म के संबंध में स्वामी दयानन्द सरस्वती की मान्यता और विचार पूर्ण तर्क संगत एवं उपयुक्त हैं । स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में पूर्वजन्म, परजन्म (पुनर्जन्म) के संबंध में नवम् समुल्लास (पृ. 386-391) पृ. 511-600 इसके अतिरिक्त उपदेश मञ्जरी (पूना प्रवचन) व्याख्यान संख्या 6 में बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। उनमें से कुछ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

सत्यार्थ प्रकाश

प्रश्न :-जन्म एक है, वा अनेक?

उत्तर :- अनेक ।

प्रश्न :-जो अनेक हों, तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातो का स्मरण क्यों नहीं ?

उत्तर :-जीव अल्पज्ञ है त्रिकालदर्शी नहीं इसलिए स्मरण नहीं रहता । भला पूर्व जन्म की बात दूर रहने दीजिए इसी देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना, पश्चात जन्मा, पांचवें वर्ष से पूर्व तक जो-जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और जागृत व स्वप्न मे बहुत सा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है तब जागृत आदि व्यवहार का स्मरण क्यो नहीं कर सकता ?

और तुमसे कोई पूछे कि बारह वर्ष पूर्व तेरहवें वर्ष के पांचवें महीने के नवमें दिन दश बजे पर पहले मिनट में तुमने क्या किया था? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, सिर किस ओर किस प्रकार था? (तो कुछ न बता सकोगे) ...और जो स्मरण नहीं होता इसी में जीव सुखी है । नहीं तो सब जन्मों के दु:खों को देख-देख दु:खित हो मर जाता है। (सत्यार्थ प्रकाश, नवम् समुल्लास)

इसके आगे इसी समुल्लास मे स्वामी जी ने एक अहम् सवाल का उत्तर दिया है लोग प्रश्न करते हैं जीव को पुराने कर्म का ज्ञान नहीं है अत: यदि उसे इस जन्म में उसके कर्मानुसार दण्ड दिया जाता है तो चूंकि उसे यह नहीं मालूम होता कि उसको किस पाप कर्म का दण्ड दिया गया है अत: उसमें सुधार नहीं हो पाता स्वामी जी ने कितने अच्छे ढंग से, इस समस्या का समाधान किया है ।

(क्रमश:)

महर्षि दयानन्द का राजधर्म विषयक चिन्तन

(सत्यार्थ–प्रकाश षष्ठ समुल्लास के आधार पर)

❑ ले० श्री डा० अमरनाथ जी आर्य, वरिष्ठ उपप्रधान आर्य समाज तलवाडा टाउनशिप

(गतांक से आगे)

कर-व्यवस्था:–राजकोष की आधार शिला उसकी कर-व्यवस्था है। "प्रजा की समृद्धि ही राजा की समृद्धि है । अत: उसकी कर प्रणाली बडी न्यायपूर्ण और सरल होनी चाहिए । जैसे जोक, बछड़ा और भवरा थोड़े-थोड़े भोग्य पदार्थ ग्रहण करते हैं, उसी भांति कर सग्रह भी संयमपूर्ण होना चाहिए ताकि किसी निरपराध से ज्यादती न हो जाए क्योंकि अन्याय और पक्षपात से राजा, प्रजा के पापों का भागीदार बन जाता है।"

कृषि-व्यवस्था:–कृषि के महत्व को उजागर करते हुए समाज-शास्त्री दयानन्द कहते हैं कि "राजाओ के राजा किसान हैं। अत: उनकी सुरक्षा व्यवस्था और विकास योजनाए राजा का कर्त्तव्य है।" क्योंकि कृषि जीवनाधार है ।

दण्ड और न्याय-व्यवस्था:–दण्ड-विधान और नीति, ऋषियों द्वारा नियोजित है, जिनका प्रयोजन समाज-सुरक्षा और सुख की स्थापना है। अत: धर्माचार्य: दयानन्द मानते हैं कि "न्यायकृत दण्ड का ही नाम राजा है। ऐसा करके ही राजा मोक्ष पाता है । उसकी दण्ड-व्यवस्था इतनी पारदर्शी और प्रभावी होनी चाहिए कि अपराधी को उचित दण्ड और योग्यों की प्रतिष्ठा हो सके । दुष्टो से कठोर और श्रेष्ठो से कोमल व्यवहार करना चाहिए इसके विपरीत महादु:ख का कारण बनता है। अत: स्तुति योग्यों की स्तुति और दण्ड योग्यो को दण्ड मिलना ही चाहिए। इसमें वह ऋषि मुनि और द्विजातियों की सहायता ले सकता है। इसलिए स्वधर्म मे स्थित राजा, न्याय-आसन पर बैठ कर सदा न्याय करे और यथायोग्य दण्ड दे । अर्थात् साधारण को थोड़ा और प्रतिष्ठित को अधिक दण्ड दे । ऐसा न करने से राजा और राज्य नष्ट हो जाते हैं।"

"इससे उसे यह लाभ होगा कि उसके विद्वानों का आदर सम्मान होगा और उस गुणग्राही राज्य में अनेक अन्य विद्वान भी आकर्षित होकर आएंगे।" अत: राजा पक्षपात रहित और न्यायप्रिय हो–इस लिए शास्त्रों में न्याय-व्यवस्था पर विशद-विचार मिलते हैं :–

"राजा न्यायधीश के समान पक्षपात रहित और चन्द्र के समान आनन्ददाता होना चाहिए । कड़े दण्ड से अन्य उपद्रवी डर कर बुरे काम छोड़ देते हैं । इसलिए दण्ड ही को धर्म कहा गया है । अस्तु, धर्म-युक्त और न्यायोचित दण्ड-व्यवस्था ही कीर्तिकर है ।" इत्यादि ।

सुरक्षा-व्यवस्था:–राजनीति-ज्ञाता दयानन्द का मानना है कि राज्य की सुरक्षा-व्यवस्था ही उसकी कवच है । "अत: धार्मिक बलवान राजा होना चाहिए। जिसके सधियान आदि सुरक्षा और कूटनीति के आठों अंग सुदृढ़ होने चाहिएं तथा छद्म-शत्रु को बड़ा शत्रु समझना चाहिए ।"

संचार-साधन:–संचार साधन राज्य के पैर है जिनके द्वारा वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करता है । "क्योंकि आवागमन के साधन और वाणिज्य व्यवस्था, लक्ष्मी और भाग्योदय के कारण बनते हैं ।" संचार-साधन उत्कर्ष के मुख्य कारण हैं । इस दृष्टि से हमारा अतीत समृद्ध दिखाई देता है । वेबर आदि विदेशी इतिहासकार भी मानते हैं कि सामुद्रिक व्यापार द्वारा भारत का सम्पर्क विदेशों से था। अत: स्वामी जी मानते हैं कि "जो कहते हैं कि पहले जहाज नहीं चलते थे वे झूठे हैं । देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों मे नौकायान द्वारा व्यापार होता था।"

वर्णाश्रम व्यवस्था:–भारतीय समाज-व्यवस्था में वर्णाश्रम का विधान इसकी प्रगतिशीलता का द्योतक है । जो संसार को भारत की मौलिक देन है । इनके विकास में जहां सामाजिक और धार्मिक कारण रहे होंगे, वहां आर्थिक कारण भी दिखाई देते हैं । अत: वर्णाश्रम एक ही व्यवस्था के दो पहलू हैं । वर्ण-व्यवस्था ने जहां समाज में अनुशासन प्रतिष्ठित किया, वहां आश्रम-व्यवस्था ने समाज के वैयक्तिक जीवन को सोद्देश्य बनाने मे अहं भूमिका निभाई है । अत: समाज-नियन्त्रण की ये प्रणालियां महान विचारकों के शुद्ध विचारो से प्रकट हुई है । ऐसे सार्थक और सोद्देश्य विभाग विवेकशील समाज में ही सम्भव थे।

अत: वर्णाश्रम-व्यवस्था सभ्य और सुनियोजित समाज की उपज है। वर्ण-व्यवस्था प्राकृतिक कर्म-विभाजन है। अत: सन्तुलित समाज के लिए चारो-वर्णों की प्रांसगिकता है। इसलिए समाज सुधारक दयानन्द मानते हैं कि :–

ब्राह्मण :–'विद्वान, वेदवेत्ता और राष्ट्र का नेतृत्व करने वाले होने चाहिए ।

क्षत्रिय :–विद्वान्, बलशाली और राष्ट्र-रक्षक होने चाहिएं । क्योंकि समुचित विकास हेतु सुरक्षा-व्यवस्था आवश्यक है ।

वैश्य:–विविध ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल सम्पन्न होने चाहिएं । जो प्रभूत धन कमा कर राष्ट्र-प्रांगण को धन-धान्य से भर दे ।

शूद्र (Man-Power) :–मानव धरती की शक्ति है । वह श्रम से अपने स्वर्ग का स्वयं निर्माण कर सकता है । इसलिए वैदिक-समाज अवधारणा श्रम के महत्व को स्वीकारती है । अत: तीनों वर्णों को कृषि आदि कार्यों मे उचित सहयोग देने हेतु बलशाली और वशवर्ती सहयोगी वर्ग की आवश्यकता अपरिहार्य थी । जिसकी पूर्ति शूद्र वर्ण ने की ।

आश्रम :–इसके साथ ही विद्या-सेवी ब्रह्मचर्य, सांसारिक-व्यवहार कुशल-गृहस्थ, चिन्तन-प्रधान वानप्रस्थ और आत्म-दर्शी सन्यास के विवरण भारतीय वाङ्मय के पृष्ठों पर नक्षत्रों की भांति यत्र तत्र चमकते दिखाई देते हैं ।

विवाह-संस्कार:–विवाह-संस्था सांस्कृतिक इतिहास की महानतम घटना है और संस्कृतिक-विटप का सबसे सुन्दर फूल । यह एक सामाजिक कर्त्तव्य है जो सुनियोजित और सुव्यवस्थित जीवन का सूत्रपात है । यह प्रसन्नता और प्रगति के लिए अनिवार्य है । यही सामाजिक सम्बन्धो का केन्द्र-बिन्दु है । अत: समाज शास्त्री दयानन्द मानते हैं कि "वेदो के अनुसार विवाह युवावस्था मे ही करना चाहिए । क्योंकि विवाह के उद्देश्य इसी आयु मे पूर्ण हो सकते हैं। शरीर और आत्म बल के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है । यदि ऐसा न हो तो, एक भी बलवान दुराचारी सभी को जीत सकता है ।"

"बिना शरीर और आत्म-बल के राज्य-पालन और उत्तम व्यवस्था नहीं हो सकती । इसलिए ब्रह्मचर्य द्वारा शरीर और आत्म बल को बढाना राजा और प्रजा का धर्म है।"

वेद प्रचार :–वेद-भाष्यकार दयानन्द कहते हैं कि 'राजाओं का वेद प्रचार रूपी अक्षय कोश है, वे उसकी वृद्धि करे । वेदो के पठन-पाठन हेतु गुरुकुलों की व्यवस्था करे तथा वेदों के विद्वानो और विद्यार्थियो को प्रोत्साहन दे।'

संस्कृत-भाषा वैभव .–वाल्मीकि-व्यास और कालिदास की लेखनियो से अलंकृत एव मास, भारवी और माघ द्वारा पोषित सस्कृत भाषा सस्कृति का सर्वोत्तम उपहार है । अत: भाषा विज्ञानी, दयानन्द ने संस्कृत भाषा के सामर्थ्य पर प्रकाश डालते हुए यहा कहा है कि "जो-जो ससार मे राजनीति इत्यादि विद्याएं हैं, वे संस्कृत से ही चलती हैं ।"

सार-मन्देश:–वेद-भूमि भारत मे वैदिक मर्यादाओ की जडे जनमानस मे बहुत गहरी हैं । उनके अनुसार आचरण से मनुष्यत्व एवं देवत्व की प्राप्ति हो सकती है , और मानवता अभ्युदय के शिखर तक पहुंच सकती है । इस प्रकार की अनेक समस्याए सत्यार्थ-प्रकाश में विवेचित है, जो भ्रान्तियो को भस्मी भूत कर, ज्ञान-प्रकाश के लिए रामबाण हैं। वेद-उद्धारक: दयानन्द का यहां यही सन्देश ज्ञात होता है।

भटिण्डा में महात्मा हंसराज दिवस

आर्य समाज (आर्य समाज चोक) भटिण्डा मे "महात्मा हसराज दिवस" के उपलक्ष्य मे श्री प्रेम भाटिया, प्रधान आर्य समाज की अध्यक्षता मे एक साधारण सभा का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम श्री प. गुरु प्रसाद जी शास्त्री 'वैदिक प्रवक्ता' के ब्रह्मत्व मे बृहद यज्ञ सम्पन्न हुआ। आज के मुख्य यजमान श्री रणधीर सिंह जी थे। यज्ञोपरान्त आर्य माडल हाइ स्कूल की अध्यापिका श्रीमती ... जी ने 'तुम मेरे जीवन के धन हो तुम ही प्राणाधार हो' ईश्वर भक्ति का यह भजन अपने मधुर कण्ठ से सुनाया।

तत्पश्चात् 'वैदिक प्रवक्ता' श्री शास्त्री जी ने प्रमुख वक्ता के रूप मे महात्मा हसराज जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा–मा हसराज जी त्याग और तपस्या की मूर्ति थे उन्होने पजाब मे बजवाडा ग्राम के एक साधारण परिवार मे ला चूनी लाल के गृह पर 19 अप्रैल 1864 ई को जन्म लिया, किन्तु अपनी लग्न और तप के द्वारा समाज मे अति उज्जवल मिसाल कायम की, जो हजारो लोगो को मार्ग प्रदर्शन करती रहेगी। मा हसराज आधुनिक पजाब के निर्माता थे। मनुष्य के जीवन में महापुरुषो के उदाहरण भी सहायक सिद्ध होते हैं, दयानन्द कालेज में पढने व पढाने वालो के लिए मा हंसराज से उत्तम उदाहरण नहीं मिल सकता। मा हंसराज ने कालेज की अन्तिम उपाधि बी ए उत्तीर्ण करने के पश्चात् 25 वर्ष तक डी ए वी स्कूल व कालेज के प्रिंसीपल का कार्य अवैतनिक किया। यह उनका अभूतपूर्व त्याग था। वे आर्य समाज के प्रचार कार्य, शुद्धि कार्य, भूकम्प, अकाल आदि पीडित क्षेत्रो मे भी सेवा के लिए पहुंचते थे। उनके जीवन से हमे भी प्रेरणा लेनी चाहिए।

मंत्री श्री बिहारी लाल मंगला जी ने कहा महात्मा जी का जीवन अत्यन्त साधारण था। वे कालेज के समय कोई व्यक्तिगत काम नहीं करते थे, व्यक्तिगत काम के लिए कालेज की कलम दवात, पैंसिल का प्रयोग भी नहीं करते थे।

इस सभा में चौ. बाबूराम गर्ग, प्रो ओ पी. मंगला, श्री चमन लाल मेहता, श्री विनोद गर्ग आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय रही। अन्त में श्री प्रेम भाटिया जी ने शास्त्री जी व सभी आर्यजनों का धन्यवाद किया। शान्तिपाठ के बाद सभा विसर्जन हुई।

–प्रेम भाटिया

आर्य समाज पीपाड़ के चुनाव सम्पन्न

आर्य समाज पीपाड शहर के वार्षिक चुनाव श्री पदम सिंह आर्य उपप्रधान की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें–

प्रधान–श्री शंकरलाल आर्य परिहार। उपप्रधान–श्री प्रकाशचन्द्र वर्मा। मंत्री–श्री चम्पालाल आर्य। उपमन्त्री–श्री घनश्याम आर्य पुरोहित। कोषाध्यक्ष–श्री शिव रत्न आर्य। लेखा निरीक्षक–श्री भंवरलाल भूतड़ा। वाचनालयाध्यक्ष–श्री ओंकार राम गहलोत। नगरनायक–श्री देवेन्द्र टाक। शाखा नायक–श्री अमर चन्द टाक। प्रचारमन्त्री–श्री जयकिशन सोनी। **–चम्पालाल आर्य मन्त्री**

लुधियाना में वैसाखी का त्यौहार

आर्य समाज सिविल लाईन, लुधियाना मे वैसाखी का पुण्य पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया गया। हवन यज्ञ के बाद मधुर धार्मिक भजन तथा अन्त मे सभा की प्रधाना श्रीमति सरला लूम्बा का प्रवचन तथा आशीर्वाद हुआ। तदनन्तर यज्ञ शेष वितरण हुआ। अन्जाने में ईसाई हो रही नई पीढी को वैदिक धर्म से जोड़ने के लिए प्रधान जी ने पारिवारिक सत्संग तथा बच्चों और युवा छात्रो को वेद मन्त्र सिखाने की योजना की रूप रेखा पर प्रकाश डाला। इस योजना को शीघ्र ही लागू करने का प्रयास किया जाएगा।

सिविल लाईन आर्य समाज का सत्संग प्रत्येक शुक्रवार को 41-ए टैगोर नगर में सायं 4 बजे आयोजित होता है।

–वैणी प्रसाद शास्त्री, वैद्य, मन्त्री

प्रवेश सूचना

महर्षि दयानन्द अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक विद्यालय टंकारा

जिला राजकोट, टंकारा ३६३६५० (गुजरात)

प्रथम पाठ्यक्रम–महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय रोहतक (हरियाणा) से मान्यता प्राप्त। मध्यमा, शास्त्री, आचार्य तक अध्ययन सुलभ है। वेद, दर्शन, उपनिषद्, संस्कृत, व्याकरण एवं साहित्य तथा सभी संस्कार स्वामी दयानन्द जी द्वारा लिखित सभी ग्रंथ, उपदेश, भजनोपदेश का प्रशिक्षण पाना अनिवार्य है।

योग्यता–सातवीं कक्षा पास प्रवेश के लिए आवेदन करें।

द्वितीय पाठ्यक्रम–पुरोहित, उपदेशक एवं भजनोपदेशक का प्रशिक्षण पाने वाले छात्र आवेदन कर सकते हैं।

योग्यता–न्यूनतम दसवीं कक्षा पास।

नोट :–दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों के प्रशिक्षण के लिए नि:शुल्क व्यवस्था है। आवेदन पत्र जमा करने की अन्तिम तिथि 31 मई 2001 है।

–आचार्य विद्यादेव

आर्य समाज सैक्टर 32 चण्डीगढ़ की गतिविधिया

आर्य समाज सै० 32 चण्डीगढ का उत्सव 21 से 27 मई 2001 तक समारोह से मनाया जा रहा है जिसमें कई उच्चकोटि के विद्वान्, महात्मा, सन्यासी व भजनोपदेशक पधार रहे हैं।

1. यहां पर प्रतिदिन प्रात: 6 से 7 बजे तक दैनिक सन्ध्या एवं यज्ञ होता है।

2 रविवार प्रात: 7 30 से 10 00 बजे तक साप्ताहिक सत्संग होता है।

3 स्त्री सत्संग प्रति बुधवार सायं 4 से 5.30 तक होता है।

4 यहां वैदिक संस्कार आदि कराने के लिए योग्य विद्वान् पुरोहित प कमलेश कुमार शास्त्री उपलब्ध हैं।

5 वैदिक रीति से यज्ञ के लिए हवन कुण्ड सामग्री, उचित मूल्य पर मिलती है।

6 यहां पर धर्मार्थ होम्यो औषधालय प्रात: 11.30 से 12.30 बजे एवं सायं 5 से 7 बजे तक चल रहा है जो बिल्कुल मुफ्त है। (सेवा डा ओ.पी सेतिया प्रात:काल एवं सरदार अवतार सिंह सायंकाल तथा आर्थिक सहायता श्रीमती पुष्पावती महाजन द्वारा)

7 रस्म पगड़ी चौथा, सामाजिक कार्यों केलिए हाल उपलब्ध है।

8 125 बर्तनो का सैट (थाली, गिलास, कौली) उपलब्ध हैं।

–आर.पी. वर्मा, महामन्त्री

अलावल पुर में रेकी हीलर टच थैरेपी का फ्री कैम्प

22-4-2001 को ऋषि दयानन्द आयुर्वैदिक औषधालय अलावलपुर में आर्य समाज के प्रधान श्री कृष्ण शरण गुप्ता की देख रेख में रैकी हीलर टच थैरेपी का लगातार 7वां फ्री कैम्प लगाया गया। डा बलवीर सिंह, डा मनजीत कौर और डा. रूबी ने लगभग 125 मरीजों का ईलाज किया जोड़ों के दर्द, गठिया, अधरंग, कैंसर टी.वी, दमा, चमड़ी के रोगों का इलाज किया। वैद्य टेकचन्द जी, प्रिं धर्मपाल जी, श्री रवि भण्डारी और श्री दर्शन लाल ने भरपूर सहयोग दिया।

महात्मा हंसराज दिवस

25 अप्रैल 2001 को बजवाड़ा होशियारपुर में महात्मा हंसराज जी का जन्म दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया। बहुत बड़ी संख्या में जालन्धर लुधियाना और होशियारपुर से स्त्री-पुरुषों ने इसमें भाग लिया। अलावलपुर से श्री कृष्ण शरण के नेतृत्व में दयानन्द माडल स्कूल के प्रिं धर्मपाल जी व उनके साथ अध्यापिकाएं व बच्चे भी बजवाड़ा पहुंचे। पंजाब, हरियाणा व दिल्ली से भी बहुत से महानुभाव वहां पहुंचे थे।

आर्य समाज सै-32 चण्डीगढ़ का चुनाव

1-4-2001 को आर्य समाज सैक्टर-32 का चुनाव सम्पन्न हुआ सभी अधिकारी सर्वसम्मति से चुने गए।

संरक्षक–श्रीमती सुभद्रा सतीजा–कर्नल धर्मवीर। प्रधान–डा. ओ.पी. सेतिया। उप प्रधान–राजकुमार आर्य एवं सत्यपाल कक्कड़। मन्त्री:–आर.पी. वर्मा। प्रचारमंत्री–प्रेमदत्त शर्मा, कोषाध्यक्ष–सुभाष गाबा। सम्पदा अधिकारी–राम दर्शन। उपमन्त्री–वेद भूल। लेखानिरीक्षक–सीता राम गोयल। स्त्री प्रभाग–श्रीमती चन्द्रकान्ता

–मन्त्री

गोनियाना मण्डी में ऋषि दयानन्द की जय जयकार

नव सम्वत् 2058 को मण्डी चौक मे आर्य समाज स्थापना दिवस को मण्डी निवासियों में पूरे उत्साह मे मनाया जिसें भुच्चो मण्डी आर्य [illegible] डाक्टर भारत भूषण अपने मंत्री के साथ शामिल हुए। सर्वप्रथम यज्ञ हवन पूरी श्रद्धा से मनाया गया। सारा वातावरण यज्ञमय हो उठा। यज्ञ हवन की सुन्दर व्यवस्था देख कर भिन्न-भिन्न लोगों ने आने वाले दिनों में अपनी-अपनी दुकान के सामने मण्डी चौक में यज्ञ हवन कराने की प्रार्थना की जिसे तुरन्त स्वीकार कर लिया गया।

प्रथम अप्रैल को माल रोड पर स्थित श्री अमृत लाल तेज राम की दुकान पर यज्ञ हवन का आयोजन किया गया। 2 अप्रैल को यहां की पसिद्ध फम आत्मारम बनारसी दास की दुकान के सामने यज्ञ हवन का आयोजन किया गया जिसमें नगर के गणमान्य पुरुषो के अतिरिक्त देवियों ने भी बडी सख्या मे शामिल होकर यज्ञ हवन की शोभा बढ़ाई। बाद में सभी का लड्डुओं के प्रसाद से सत्कार किया गया।

4 अप्रैल को श्री गोविन्द राम जिदल प्रधान नगर कौंसल ने अपने निवास पर यज्ञ हवन कराया। इस अवसर पर उनके सगे सम्बन्धी दूर दूर से पधार कर इसमें शामिल हुए।

8 अप्रैल को आर्य सीनियर सैंकेण्डरी स्कूल के प्रांगण में यज्ञ किया गया।

13 अप्रैल मेष संक्रान्ति (वैशाखी) को फर्म कुन्दर लाल कृष्ण कुमार की दुकान पर मण्डी चौक में यज्ञ किया गया। लाऊड स्पीकर की भी व्यवस्था की गई ताकि छुट्टी न होने के कारण और कामकाज का दिन होने के कारण जो दुकानदार यज्ञ हवन में शामिल न भी हो सकें, उन तक भी वेद मंत्रों की ध्वनि अवश्य पहुंचे। बाद में लड्डूओं का प्रसाद बांटा गया।

15 अप्रैल को रजनीश कुमार अजय कुमार ने अपनी फर्म(दुकान) के सामने यज्ञ कराया बाद में सभी का मिठाई और चाय के साथ सत्कार किया गया। लड्डूओं का प्रसाद भी अलग से बाटा गया।

इस तरह मण्डी वालों में एक होड़ सी लग गई है कि कहीं यज्ञ हवन कराने में उनका चौक पीछे न रह जाए। यह सब चिरंजीलाल जिदल प्रधान आर्य समाज तथा तरसेम कुमार आर्य, मंत्री आर्य समाज के प्रयत्नो का परिणाम है कि अब गैर आर्य समाजियों की भी यज्ञ हवन तथा वेद प्रचार में श्रद्धा उमड पड़ी है।

—सर्वजीत सिंह, उपमन्त्री
आर्य समाज, गोनियाना मण्डी

आर्य समाज बुडलाडा में वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज बुडलाडा के तत्वावधान में स्थानीय सेठ काला मल झांगा मल धर्मशाला में वेद प्रचार सप्ताह 8-4-2001 से 15-4-2001 तक प्रतिदिन रात्रि 8 बजे से 10 बजे तक श्री द्वारका दास मंगला प्रधान आर्य समाज बुडलाडा की अध्यक्षता में वैदिक सत्संग सोल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ।

सत्संग के मुख्यवक्ता वैदिक महोपदेशक आचार्य प श्री सुन्दर लाल जी शास्त्री (साहित्य रत्न, शिक्षा शास्त्री) व श्री सतीश सुमन व सुभाष राही भजनोपदेशक थे, जिन्होंने बडे ही सुचारू ढंग से भजन सुना कर लोगों को भजनोपदेश किया।

आर्य समाज के प्रधान श्री द्वारका दास मंगला के निवास स्थान पर 14-4-2001 को हवन यज्ञ व सत्सग प्रात: 8 से 10 बजे तक हुआ। पूज्य शास्त्री जी ने हवन यज्ञ के बाद कहा कि भारतीय संस्कृति का प्राण ही यज्ञ है, यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की नाभि है।

आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री दर्शन कुमार जी सिगला के निवास स्थान पर 15-4-2001 को प्रात: 8 से 10 बजे तक हवन यज्ञ व संत्सग बडे ही उल्लास से हुआ। वेद प्रचार के कार्यक्रम के अन्त मे प्रधान जी को ओर से आए हुए सभी अतिथियो के प्रति नगर के गणमान्य नागरिक माताओं, बहनों व बच्चो के प्रति आभार व्यक्त किया गया।

—द्वारकादास मगल।
मन्त्री

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर का उत्सव

आपको जान कर प्रसन्नता होगी कि आर्य समाज शहीद भगत सिह नगर जालन्धर का वार्षिक उत्सव 21 मई 2001 दिन सोमवार से 27 मई 2001 दिन रविवार तक मनाया जा रहा है। इस कार्यक्रम मे उच्च कोटि के महात्मा सन्यासी आ रहे हैं। कार्यक्रम प्रात: 7-30 बजे से 10 बजे तक और रात्रि 8 से 10 बजे तक प्रतिदिन होगा। 27 मई को दोपहर 2 बजे तक कार्यक्रम होगा। आप सब धर्म प्रेमियो से प्रार्थना है, कि इस कार्यक्रम मे सम्मलित होकर पुण्य के भागी बने। —रणजीत आर्य मन्त्री

भठिण्डा में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा के तत्वावधान में 26 4 2001 को श्रीमती भगवती धर्मपत्नी श्री लक्ष्मणदास अरोडा कचहरी के सामने भठिण्डा में पारिवारिक सत्संग सम्पन्न हुआ। श्री मंजीव छाबड़ा सप्तनीक, श्री वेद प्रकाश छाबडा, सपत्नीक तथा श्रीमती भागवन्ती एवं फरीदकोट से पधारी बेटी अर्चना यह सभी यज्ञ के मुख्य यज्ञमान थे। श्री आचार्य सुनील कुमार शास्त्री ने यज्ञ सम्पन्न कराया और उनका प्रभावशाली उपदेश हुआ। श्रीमती वीना तथा स्त्री आर्य समाज की महिलाओं ने प्रभावशाली भजन सुनाए। श्री कृष्ण लाल एवं श्री बलदेव राज जी ने भी अपने विचार रखे। अन्त में सभी को जलपान कराया गया।

26-4-2001 को ही आर्य समाज ने मन्त्री श्री कल्प वासुदेव के छोटे भाई श्री रमन कुमार जी का विवाह गिदडबाहा निवासी श्री अमृत पाल जी की सुपुत्री प्रवीण कुमारी के साथ पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। विवाह सस्कार बड़े प्रभावशालो ढंग से आचार्य सुनील कुमार जी ने कराया।

इसके साथ ही आर्य समाज सिरकी बाजार में महात्मा हसराज और पं गुरुदत्त विद्यार्थी का जन्म दिवस बड़े समारोह से मनाया गया। इस अवसर पर श्री शास्त्री जी ने इन दोनों महात्माओं के जीवन पर प्रकाश डाला।

—कल्पवासुदेव, मन्त्री

लुधियाना में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना के तत्वावधान में 6-5-2001 को पारिवारिक सत्संग श्रीमती सरला लूम्बा धर्म पत्नी श्री एस.पी. लूम्बा मं. नं. 618/1 अपोजिट दयानन्द मैडिकल कालेज चक्की वाली गली लुधियाना में 5-30 से 7-30 बजे तक होगा। —नरेन्द्र भल्ला

स्त्री आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना का चुनाव

स्त्री आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना का वार्षिक चुनाव माता सुमनायति जी की अध्यक्षता मे गत दिनो निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ। श्रीमती इन्दिरा शर्मा को सर्वसम्मति से प्रधान चुना गया और शेष पदाधिकारी चुनने का उन्हें ही प्रदान दिया गया तदानुसार निम्न अधिकारी चुन गए।

माता सुमनायति-संरक्षक। श्रीमती इन्दिरा शर्मा-प्रधान। श्रीमती जनकरानी आर्या-महामन्त्री। श्रीमती नीलम जी-कोषाध्यक्ष। श्रीमती पुष्पा जी गोगिया-सहायक कोषाध्यक्ष।

शेष पदाधिकारी पूर्ववत मनोनित किए गए।

श्री रामनाथ जी यात्री वानप्रस्थी दीर्घयात्रा को

पाठको को पता चल गया होगा कि मेरे हमनाम श्री रामनाथ जी यात्री कभी समाप्त न होने वाली दीर्घ यात्रा को चले गए है। वैसे तो जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु अवश्य होगी। जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म अवश्य होगा। जब से सृष्टि उत्पन्न हुई है तब से लेकर अब तक एक नही बचा है। यह रास्ता है सब का जाएंगे सभी इसी रास्ते से इसलिए जिन्दगी मे वैर न कर किसी से। यहा बडे बडे महाराज हुए बलवान हुए, विद्वान हुए, पर मौत के पंजे से केवल कोई दुनिया मे आकर बचा न रहा। यात्री जी और हम सब इकट्ठे सभा के द्वारा प्रचार कार्य करते रहे। पर एक एक करके सब मौत की गोद मे चले गए और जा रहे है। श्री यात्री जी एक अनथक प्रचारक थे तीन-तीन घंटे बोल लेते थे एक विशेषता उनके अन्दर एक बात की और थी कि यात्री उन्हीं की बोली मे आर्य समाज की बात समझा देते थे। श्री स्वामी सुधानन्द जी महाराज कहा करते थे कि यात्री जी ग्राम के बादशाह हैं। यदि कोई दूसरे देश में प्रचार करना चाहे तो उसे उन्हीं की भाषा मे प्रचार करना पड़ेगा तभी सफलता मिल सकती है। ईसाई यहां आते हैं यहा की बोलियां सीख कर आते हैं। पजाब मे ग्राम आर्य समाज से खाली पड़े हैं। हमारी मातृ भाषा आर्य भाषा हिन्दी है पर प्रचार उन्हीं की भाषा पंजाबी मे करना पड़ेगा तब ही सफलता मिलेगी। श्री यात्री जी हमारे मध्य मे नहीं रहे पर मैं हृदय से श्री यात्री को श्रद्धाजलि देता हूं। उनके वियोग से जो दुख उनके सगे ईष्ट मित्रो को हुआ है परमात्मा सब को धैर्य शान्ति प्रदान करे।

–रामनाथ आर्य, सिद्धान्त विशारद
आर्य महोपदेशक मोरिण्डा

महर्षि दयानन्द जी के नाम पर डाक टिकट

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा के सक्षिप्त विवरण एव निवेदन 2000-2001 मे अन्य लेखों के साथ अंकित एक लेख मे लिखा है कि महर्षि दयानन्द जी के नाम पर डाक टिकट का विमोचन माननीय प्रधानमन्त्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के कर कमलो द्वारा किया गया। आर्य जगत की यह ऐतिहासिक एवं महान उपलब्धी है।

आर्य जगत माननीय प्रधानमत्री श्री वाजपेयी जी का कोटि कोटि धन्यवाद करता है। इस महान् उपलब्धि में श्री ओंकार नाथ जी व श्री रामनाथ जी सहगल ट्रस्टी एव मन्त्री टंकारा ट्रस्ट का इस कार्य में बहुत योगदान है इनका भी बहुत-बहुत धन्यवाद, साथ ही अन्य महानुभावों का भी आर्य जगत बहुत बहुत धन्यवाद करता है, जिन्होंने इस कार्य के लिए अनथक परिश्रम किया है।

हम भटिण्डा एव इसके आसपास के समस्त आर्य जन परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह आर्य जगत के योग्य एवं अनुभवी महानुभावों को सुस्वास्थ्य एव दीर्घायु प्रदान करे, ताकि आर्य जगत को आगे बढाने में मार्गदर्शन मिलता रहे। **–प्रेम भाटिया**

स्त्री आर्य समाज लुधियाना की गतिविधियां

स्त्री आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना परिवारों में सत्संग को खूब बढ़ावा दे रही है। 9 अप्रैल को राजरानी चोपड़ा गऊशाला रोड के घर पर सत्संग हुआ। 30 अप्रैल को ओम प्रकाश पाहवा जी के घर मे यज्ञ हुआ। यदि कोई कमजोर वर्ग की महिलाएं आती हैं, स्त्री आर्य समाज उनकी यथाशक्ति सहायता करती है। पारिवारिक सत्संगो मे आर्य समाज का इतिहास, आनन्द स्वामी जी की पुस्तकें, कैसेट वितरित की जाती हैं। जहां भी सत्संग हो पार्क लेन सिविल लाईन वहां बढ़ चढ कर भाग लेती हैं। 24 तारीख को विक्रमजीत के घर में हवन हुआ जो कि सिविल लाईन शिव मंदिर के पास प्रेम गली में रहते हैं। **ग्रीन पार्क का सत्संग यथावत प्रति रविवार को सुन्दरता से चल रहा है 22 अप्रैल को विजय बूट हाऊस में सत्संग हुआ, 29 अप्रैल को 110 ग्रीन पार्क श्री नलिन जी शर्मा की कोठी में यज्ञ हुआ इस प्रकार प्रधान राय जी खन्ना साहिब की देख-रेख में यज्ञ चल रहा है समय 8.30 से 10 बजे तक रहता है। 25 फरवरी को सिविल लाईन के खुले पार्क में 11 यज्ञकुण्डों से यज्ञ हुआ। श्रद्धेय स्वामी सम्पूर्णानन्द जी करनाल वालो ने विशाल सभा को संबोधित किया। सुरेश मेहंदीरत्ता के सुन्दर भजन हुए, इस प्रकार स्त्री आर्य समाज पूरे बल से प्रचार कार्य मे संलग्न है।**

–जनक रानी, आर्य

चतुर्वेद पारायण महायज्ञ

आर्य समाज मन्दिर रानी का तालाब फिरोजपुर शहर में दिनांक एक दिसम्बर सन् 2000 से दैनिक सत्संग के अन्तर्गत चतुर्वेद पारायण महायज्ञ प्रारम्भ हो चुका है।

प्रथम ऋग्वेद की पूर्णाहुति व श्री रामनवमी के पावन पर्व के उपलक्ष्य मे आर्य समाज में वेद सप्ताह दिनांक 2 4 2001 से 8 4 2001 तक बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस कार्यक्रम में आर्य जगत के उच्च कोटि के विद्वान् व भजनोपदेशक श्री आशाराम जी व प्यारे लाल जी ने अपनी मधुर वाणी से यहां की आर्य जनता को प्रभावित किया।

प्रातःकाल ऋग्वेद महायज्ञ पं सुनील दत्तार्य पुरोहित जी के ब्रह्मत्व में होता रहा। यज्ञ के पश्चात् उक्त विद्वानों के द्वारा श्री राम कथा संगीत के द्वारा होती रही। शाम को पूरे सप्ताह पारिवारिक सत्संग होते रहे। लगभग सात परिवारों में सत्संग हुआ। संगीतमयी वाल्मीकि रामायण सुन कर लोग मन्त्र मुग्ध हो जाते थे। पूर्णाहुति पर सैंकड़ों लोगों ने अपनी श्रद्धामयी आहुति पवित्र अग्नि में देकर यज्ञ को पूर्ण किया। उसके बाद श्री ओम मुनि वानप्रस्थी जी के परिवार की ओर से चाय पान की व्यवस्था की गई। सत्संग मे सैंकड़ो लोगो को सम्बोधित करते हुए श्री ओम मुनि, श्री जीवन सिंह वेदी, व श्री महात्मा मोहन लाल जी ने यज्ञ पर व महर्षि दयानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए सभी का धन्यावाद किया। पश्चात् ऋषि लंगर आर्य समाज की ओर से रखा गया। बच्चों ने भी ईश्वर भक्ति व ऋषि दयानन्द जी के सुन्दर भजन रखे। बच्चों को समाज की ओर से प्रधान जी ने पारितोषिक दिया। जिस-जिस परिवार में सत्संग हुआ उन सभी परिवारो को आर्य समाज की ओर से महर्षि दयानन्द का सुन्दर चित्र भेंट किया गया। सभी स्थानीय जनता का पूर्ण सहयोग रहा। अब 9 अप्रैल से 29 अप्रैल तक यजुर्वेद, 30 अप्रैल से 13 मई तक सामवेद व 14 मई से 8 जुलाई 2001 तक अथर्ववेद इस प्रकार चतुर्वेद महायज्ञ पूर्ण करने का निश्चय किया है।

–अजय सोनी, मन्त्री

आर्य समाज फिरोजपुर छावनी का चुनाव

आर्य समाज जी.टी. रोड फिरोजपुर छावनी का वार्षिक चुनाव श्री सत्यपाल शर्मा प्रधान, आर्य समाज मन्दिर, बस्ती टैंकां वाली की अध्यक्षता में सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ। जिसमें श्री किशोर चन्द छाबडा जी को प्रधान और मनोज आर्य को महामन्त्री चुना गया। श्री अर्जुन सिंह चावला एडवोकेट आर्य समाज के संरक्षक होंगे। शेष पदाधिकारियों की घोषणा शीघ्र की जाएगी।

–मनोज आर्य, महामन्त्री

[illegible] से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय,
गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि नं एल बी 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

दूरभाष 292926

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–55 अंक : 10 सृष्टि संवत 1960853102, 17 जून 2001 दयानन्दाब्द 178

परमात्मा स्वयंभू है और संपूर्ण जगत का परम मंगल दायक है

☐ ले० श्री देवी दयाल शर्मा "शर्मा निवास", 120 माडल टाऊन स्ट्रीट न 4, अमृतसर

ओ३म् सहस्रशीषा पुरुष सहसाक्ष सहस्रपात ।
स भूमि सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्॥

–यजुर्वेद–31 1

मन्त्र का अर्थ –हे मनुष्यो । जिस पूर्ण परमात्मा मे हम सब मनुष्य आदि क असख्य सिर आखे और पग आदि अवयव हैं। जो पाच स्थूल और पाच सूक्ष्म भूतो से युक्त जगत को अपनी सत्ता से पूर्ण कर रहा है। जहा जगत नहीं भी है वहा भी पूर्ण हो रहा है। उस जगत के बनाने वाले परिपूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप को छोड कर किसी अन्य की मत पूजा करो मत मानों और मत जानो। वह एक है देवों का देव वह धर्म अर्थ काम मोक्ष को प्राप्त कराने वाला है।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की इस मन्त्र के बारे में सक्षिप्त व्याख्या – परमात्मा अति सूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत की रचना करने की क्षमता रखता है और विनाश करने मे समर्थ है। जो पुरुष उसको छोड कर अन्य की उपासना करता है उससे जगत में भाग्यहीन कौन पुरुष होगा।

व्याख्या –परमात्मा की शक्ति असीम है। उस पूर्ण परमात्मा के [illegible] असख्य पग हैं। वह सारे ससार में व्याप्त हो रहा है। हर वस्तु के अन्दर उसकी अद्भुत कारीगरी और कमालियत चमक रही है। प्राणियो और अप्राणियो की वह हर समय व्यवस्था करता है। वहा उपासना करने योग्य है और वेद द्वारा वही मानव का दैवी प्रकाश देने वाला है। उसको छोड कर जो किसी अन्य का पूजा करता है उस जैसा बदकिस्मत और कौन ससार में होगा परमात्मा अद्वितीय है। वह बडो से बड़ा है। वह शक्तिशालियो से शक्तिमान है। तपस्वियों का तपस्वी है वह सब के हृदयों को पूर्ण रूप से जानता है परन्तु उसको पूर्ण रूप से जानने वाला इस दुनिया से खाली है।

परमात्मा एक है परन्तु प्रश्न पैदा होता है कि उसके निकटतम हम कैसे जा सकते हैं। जब हम उसकी पूजा करते हैं तो उस की दैवी विद्या की सच्ची और सुच्ची धारणा भी हमारे सामने होनी चाहिए। इसको प्राप्त करने के लिए हमें वेद का सहारा लेना पडेगा और पतञ्जलि महर्षि के अष्टागयोग को भी समझना पडेगा तब हम उसके दर्शन कर सकते हैं।

परमात्मा सर्वव्यापक सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान है उसकी कोई प्रतिमा नहीं कोई सूरत नहीं कोई सीरत नही । मुण्डक उपनिषद और तल्वकार ऋषि का कहना है न आख उसको देख सकती है न ही वाणी उस का पूर्ण रूप से वर्णन कर सकती है। वह ईश्वर तो मन और बुद्धि की पहुच से भी परे है। उसकी अनुभूति तो योगी व विद्वान् लोग ही अपने आत्माओं मे दैवी प्रकाश प्राप्त करके जनता को ठीक मार्ग पर चला कर उसके दर्शन करा सकते हैं। डाक्टर राधा कृष्णन भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति लिखते हैं '[illegible] प्रभु को अपनी आत्मा में आत्मा द्वारा ही अनुभव करते हैं। जैसे ऊपर वर्णन किया गया है कि परमात्मा का कोई शरीर ही नहीं वह निराकार है। उसकी कोई मूर्ति नहीं एक दफा की बात है कि काशी मे (जिसको आजकल वाराणसी के नाम से पुकारते हैं) एक मीटिंग बुलाई जिसमें यह (Resolution) प्रस्ताव पास किया गया कि दयानन्द को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया जावे और उसको पराजित किया जाए क्योंकि वह मूर्ति पूजा का खण्डन करता रहता है। स्वामी दयानन्द जी सरस्वती को आमन्त्रित किया गया। काशी के पण्डित लोग भी ठिकाने पर पहुंच गए और उधर स्वामी जी महाराज भी समय और दिनाक के अनुसार वहा पर पहुच गए। स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने पहले प्रश्न का उत्तर विद्वान् पण्डितो से पूछा –

पहला प्रश्न – क्या आप वेदो को मानते हो?

उत्तर –सब विद्वान् पण्डितो ने कहा कि हम सब वेदो को मानते हैं और वह दैवी प्रकाशन हैं अर्थात् ईश्वर का इल्हाम है।

दूसरा प्रश्न –स्वामी जी ने पण्डितो को कहा कि यजुर्वेद का अध्याय 32 और मन्त्र तीसरा पढो। न तस्य प्रतिमा ऽस्ति यस्य नाम महद्यश । स्वामी जी महाराज ने अर्थ किया कि जो परमात्मा महान से महान यश वाला है उसकी कोई प्रतिमा नहीं न ही वह शरीर धारण करता है न ही उसकी कोई मूर्त है और न ही सीरत है। उन्होने फिर सब विद्वान् पण्डितो को चुनौती दी कि चारो वेदों में कोई ऐसा मन्त्र बताओ जो मूर्ति पूजा का हामी (Favour) करता हो जो मूर्ति पूजा की पुष्टि करता हो। सब विद्वान् पण्डित मायूसी मे पड गए और चारो वेदों में एक भी मन्त्र स्वामी जी के सामने पेश नहीं कर सके जो मूर्ति पूजा के हक में हो। मेरे प्यारे विद्वान् पण्डितो मुझे यह बताओ कि मैं अब आप का हुक्म मानू कि परम पावन प्रभु का हुक्म मानू। सब अवाक हो गए और अपनी अपनी पोथिया बगल मे दबाए अपने अपने घरो को चल दिए। आये थे दयानन्द को हराने के लिए और पराजित हो गए सबके सब । महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की वहा जय जयकार होने लगी। इस तरह की थी चमकती हुई महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की तीक्ष्ण बुद्धि।

परमात्मा सीमा रहित है। उसके निर्देश का पालन करना मानो पवित्रतम ओ३म् का जप करना है और अपने जीवन में सार्थक बनाना है। वह पूजा किया हुआ परम पावन प्रभु अपने भक्त की झोली भर देता है क्योकि सत्य पुरुषो का पालन करना और अपने भक्तो को परमानन्द प्रदान करना यह उसका सत्यव्रत हे। परमात्मा अजन्मा है और हमारे जेसा शरीर नही धारण करता है। सारा ससार उसका घर हे और वह सब मे प्रविष्ट हो रहा है। वह कभी अवतार नही लेता। दुष्टो की दुष्टता दूर करने के लिए वह कडे से कडा दण्ड देता है अपने अदृश्य हाथो से। वह सब चमकते हुए पदार्थ सूर्य चान्द सितारे बिजली आदि अपने गर्भ मे धारण किए हैं। जो कोई पत्थर या लकडी की बनी हुई मूर्ति को ईश्वर के स्थान मे पूजा करता हे वह मानव जीवन काल म बहुत कष्टो को भोगता है। वेद मूर्ति पूजा के हक मे नही है और जोर स खण्डन करता हे।

परमात्मा ही केवल ससार का नियन्ता हे। लोग जो काल्पनिक ईश्वर की पूजा करते ह। वह धोख मे हैं। जो अज्ञानी जन हे वह समझते हैं कि परमात्मा भी हिलता हे परन्तु वैज्ञानिक इस बात का प्रमाण दते हैं कि परमात्मा कभी नही हिलता हिले तो तब जब कोई (Space) स्थान इसके लिए हो वह तो हर जगह मोजूद हे वेद ज्ञानविहीन मनुष्य ओर जिनका मन दूषित हे पाप से भरा हुआ हे वह ईश्वर को लाखो करोडो वर्षो म भी नही प्राप्त कर सकते वह जन्म मरण के चक्कर स कभी छूट नही सकते

अन्त म हम ईश्वर स याचना करते हे कि हममे कोई मूर्ख ओर वेद विद्या शून्य पेदा न हो ससार मे आ करके हम आपके नियमो का पालन करे तथा धारण करे ताकि हमारा यह लोक ओर परलोक सुधर जाए। आप अपनी अपार कृपा से हमे भौतिक और अभौतिक ऐश्वर्य प्राप्त कराईये यही हमारी हार्दिक प्रार्थना है।

दर्शन-दिग्दर्शन

ले० श्री आचार्य भद्रसेन जी बी 2 92/7बी शालीमार नगर, होशियारपुर

गताक से आगे

यागदर्शन का समलोचनात्मक अध्ययन करने से भा यह बात स्पष्ट हाता ह कि याग की प्रक्रिया के द्वारा आत्मानुभूति होता है। तभी तो तदा द्रष्टु स्वरूपे ऽवस्थानम 1 3 अर्थात् योगविधि के अनुष्ठान स चित्त की वृत्तिया निरुद्ध हो जाती हैं तब चित्त क दृष्टा जीवात्मा का अपने स्वरूप मे निकाव होता है। द्रष्टा दृश्य शब्दो का योगदशनकार न विवेचन किया ह वहा जीव के अथ म ही द्रष्ट' शब्द निर्दिष्ट है। याग क चतुर्थ पाद का नाम केवल्य व कैवल्य शब्द केवल की स्थिति से तद्धित म बनता है अर्थात् अकेलेपन का (प्रकृति रहित) स्थिति तभी तो लिखा है पुरुषार्थ शून्याना गुणाना प्रतिप्रसव कैवल्य स्वरूपप्रतिष्ठा वा चित्तिशक्ति 4 34 अथात् कैवल्य का एक अर्थ जहा यह हे कि सत् रज आदि गुणा का क्रियाशाल न होना वहा केवल्य का दूसरा अर्थ हे चेतनशील का अपने आपे मे टिकना है।

मीमासा–

वैदिक वाड्मय मे मीमासा शब्द दा दशनो के साथ सयुक्त होता है। अत एव पूर्वमामासा तथा उत्तर मामासा के नाम से उनका क्रमश स्मरण किया जाता है ओर कुछ इन दोना के अध्यायो की गणना समवेत रूप म करते हे इन दोनो का समारम्भ जिज्ञासा मे हे जैमिनि दशन धम की जिज्ञासा का समाधान करता है तो वेदव्यास का वेदान्त ब्रह्म जिज्ञासा को शान्त करता है। इन दानो की विश्लेषण प्रक्रिया भी एक समान हे अत मीमासा शब्द यहा उधेड बुन विश्लेषण विवेचन जाच अर्थ म है तभी ता इनको वाक्यविद्या का आकर ग्रन्थ कहा गया हे जस कि एक यन्त्र का ठीक करन वाला यन्त्र के पुर्जो का खोल कर प्रथम त्रुटि (गडबड) का बोध करना (पता लगाता) है पुन उसको ठाक करके यन्त्र की सगति लगाता हे ऐस ही मीमासा मे अपने उपजीव्य शास्त्र के वाक्यो का विश्लपण करके श्रुति लिङ्ग प्रकरण आदि के आधार पर सगति दर्शायी जाती है।

वैदिक वाड्मय मे वेदो के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों का क्रम है आरण्यक अधिकतर ब्राह्मणो के ही भाग हैं। इसके अनन्तर उपनिषदो का परिगणना होती है। वेद ईश्वरीय नित्य ज्ञान और उनके व्याख्यान रूप ब्राह्मण हैं। तभी तो ब्राह्मणोऽपत्य ब्राह्मणम् अर्थात् ब्राह्मण शब्द ब्रह्म से अपत्य अर्थ मे अण प्रत्यय होने पर तद्धित मे बनता है। अत ब्रह्म वेद उसका प्रकाशक विस्तारक ब्राह्मण कहलाते है। ब्राह्मण ग्रन्थ रचनाकाल की दृष्टि से पूर्ववर्ती हैं तो उपनिषदे उनसे उत्तरवर्ती हैं। अत पूर्वमीमासा का ब्राह्मण ग्रन्थो के वाक्यो से सम्बन्ध है और वेदान्त मे उपनिषदो के वाक्यो की मीमासा है धार्मिक कर्मकाण्ड रूपी यज्ञ ही ब्राह्मण ग्रन्थो तथा पूर्व मीमासा दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य है तो ब्रह्म ईश्वर उपनिषद और वेदान्त का मुख्य विवेच्य विषय है। वेदो में मुख्य रूप से इन दोनो विषयो की विवेचना है। अत वेदो क व्याख्यान भूत ब्राह्मण ग्रन्थो तथा उपनिषदो मे इन दनो को अपना अपना व्याख्यात तत्व बनाया है।

पूर्व मीमासा मे वेद प्रति पादित धर्म कर्म यज्ञ की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिए ब्राह्मणों के परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले वाक्यो की मीमासा करके सगति दर्शायी गई है। हा दार्शनिक विवेचन की दृष्टि स इस दर्शन मे शब्द प्रमाण रूप वेद के स्वरूप का और कमर्फल व्यवस्था को हृदयगम कराने के लिए अपूर्व का विवेचन है। अपूर्व न+पूर्व से अपूर्व बनता है अर्थात् यज्ञ आदि धार्मिक कर्म करने पर उस का प्रभाव छाप सस्कार रूप अपूर्व उत्पन्न होता है तथा वह तब तक टिकता है जब तक उस धार्मिक कर्म का फल नहीं मिलता। क्योंकि किसी धार्मिक कर्म का उस कर्म की समाप्ति के साथ फल सामने नहीं आता है। अत धर्म से अदृश्य रूप में अपूर्व उभरता है और वह फल प्राप्ति तक टिकता है।

वेदान्त–

वेदान्त दर्शन के प्रथम सूत्र अथातो ब्रह्मजिज्ञासा 1 1 1 में ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा प्रकट की गई है। इसके समाधान के रूप में दूसरे सूत्र में जन्माद्यस्य यत 1 1,2 में कहा है कि इस दृश्य अदृश्य ससार का जन्म सचालन सहार जिसके निमित्त से होता है वही ब्रह्म है। तृतीय सूत्र– शास्त्रयोनि त्वात् 1 1,3 का भाव है कि ब्रह्म जहा जगत का कर्त्ता धर्ता सहर्ता है वहा वह वेद शास्त्र का प्रतिपादक भी है तथा सारे शास्त्र भी ब्रह्म को ही जगतकर्ता आदि रूप मे प्रतिपादित करते हैं। इन दोनो अर्थों के आधार पर चतुर्थ सूत्र तत्तुसमन्वयात् 1 1 4 मे कहा है वह कर्ता अपने कार्य मे अपनी कला के रूप म सर्वत्र समन्वित सर्वव्यापक है। हा इस सूत्र का तीसरे सूत्र के दूसरे अर्थ के अनुसार यह अभिप्राय भी है कि सारे शास्त्रों मे सर्वत्र जगत्कर्ता रूप में ब्रह्म का ही समन्वय समर्थन दर्शाया गया है।

इस भूमिका के पश्चात् बडे विस्तार के साथ अग्रिम सूत्रो मे दर्शाया है कि उपनिषद आदि मे जहा कही प्राण अन्न आत्मा आकाश आदि शब्दों द्वारा तत्तत्प्रकरण के अनुरूप भाव बोधार्थ वह वह शब्द ब्रह्म का ही वाचक है क्योकि यह जगत उत्पादन धारण आदि की क्रिया ब्रह्म के माध्यम से ही सम्पन्न हो सकती है। जब शास्त्रों मे सर्वत्र निर्दिष्ट क्रिया एक ही है तो उसका कर्त्ता भी सर्वत्र एक ही आदिष्ट होना चाहिए। तत् तत् स्थलों के विशेषणो से भी यही परिपुष्ट होता है क्योकि वे विशेषण ब्रह्म मे ही चरितार्थ होते हे। हा इस दर्शन के अन्तिम भाग मे ब्रह्म के स्वरूप का विवेचना के साथ जगत तथा जीव उसके शरीर आदि का भी विश्लेषण आया है।

वेदान्त शब्द मे वेद+अन्त का समावेश है अर्थात् वेद का जो मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म का ही इसमे वर्णन है। अत एव इस दर्शन को ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं। जिसके कर्ता वेद व्यास हैं। इस प्रकार इन वैदिक दर्शनो मे अनेक दार्शनिक तत्वो का विश्लेषण है।

शहीद भगत सिह नगर जालन्धर मे महिला सम्मलेन सम्पन्न

2 जून दिन शनिवार को 2 बजे से 5 बजे तक महिला सम्मेलन आर्य समाज शहीद भगत सिह जालन्धर मे श्रीमती प्रेम महाजन की अध्यक्षता में हुआ। इस महिला सम्मेलन का [illegible] श्रीमती कमला जी शर्मा ने किया जिस मे प जगत जी वर्मा राजेश आर्य तथा आर्य माडल स्कूल के बच्चो के भजन हुए और विद्वानों के उपदेश भी हुए। उपस्थिति काफी अच्छी थी। –रणजीत आर्य मन्त्री

आर्य समाज पार्कलेन लुधियाना का सत्संग

आर्य समाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना का पारिवारिक सत्सग 17 6 2001 को साय 5 30 बजे से 7 बजे तक श्री राम लाल जी जैन म न 475 पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना मे होगा। इन पारिवारिक सत्संगो मे उपस्थिति निरन्तर बढ रही है गत रविवार को 2000 से भी अधिक उपस्थिति थी जिसमे कई वकील एडवोकेट और जज भी सम्मिलित हुए। हमे प्रसन्नता है कि आम जनता हमे अपना पूरा पूरा सहयोग दे रही है। –नरेन्द्र भल्ला

श्री विनोद कुमार शर्मा टंकारा ट्रस्ट के ट्रस्टी मनोनीत

श्री विनोद कुमार शर्मा सुपुत्र श्री आचार्य सत्यदेव विद्यालकार जी पूर्व आचार्य महर्षि दयानन्द उपदेशक विद्यालय टकारा को दिनाक 25.3.2001 को टकारा ट्रस्ट के ट्रस्टियो की बैठक में सर्वसम्मति से टकारा ट्रस्ट का ट्रस्टी मनोनीत किया गया। श्री शर्मा यू एस ए में अपना व्यवसाय चलाते हैं और प्रतिवर्ष टकारा ट्रस्ट को रुपए 51 000/ की राशि दान स्वरूप भिजवाते हैं। इसके अतिरिक्त टकारा ट्रस्ट द्वारा चलाए जा रहे कार्यों में तन मन धन से सहयोग देते हैं। महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टकारा में आज जो निर्माण कार्य जोर शोर से चल रहा है, उसका श्रेय भी शर्मा जी को जाता है क्योंकि सर्वप्रथम श्री शर्मा जी ने अपनी पुण्य कमाई से एक अच्छी राशि भिजवा कर अपनी पूज्य माता जी की स्मृति मे निर्माण कार्य आरम्भ कराया था और तभी से यह निर्माण कार्य निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर है। टंकारा ट्रस्ट की वेबसाइट बनाने का श्रेय भी उन्हें को जाता है। –राम नाथ सहगल–मन्त्री

सम्पादकीय.....

जिला आर्य सभा पठानकोट का सराहनीय कार्य

मुझे प्रिंसीपल श्री स्वतन्त्र कुमार जी सभा उप प्रधान ने बताया कि 10-6-2001 रविवार को आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट मे जिला गुरदासपुर की सभी आर्य समाजो के अधिकारियो की एक बैठक सम्पन्न हुई। जिसमे बटाला, गुरदासपुर, धारीवाल, सुजानपुर, नरोट जैमल सिह, शाह पुर कण्डी, माडल टाऊन पठानकोट तथा आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट के अधिकारियो ने भाग लिया।

इस बैठक मे सभी आर्य समाजो के अधिकारियों ने अपनी-अपनी आर्य समाज की गतिविधिया बताई और आगामी कार्यक्रमो की योजना बनाई। सभी आर्य समाजो ने अपने-अपने उत्सव करने व वेद सप्ताह करने और आर्य समाज मे सभी पर्व मनाने की योजना बनाई।

जिला आर्य सभा के अधिकारियो ने मिल कर निश्चय किया कि जिला मे बन्द पडी आर्य समाजो को सक्रिय करने के लिए शीघ्र कार्यवाई की जाएगी। कुछ अधिकारियो को बन्द पडी आर्य समाजो मे जाने के निर्देश दे दिए गए है उन्हे कहा गया कि वह वहा के आर्य बन्धुओ से मिले और साप्ताहिक सत्सग आरम्भ करवाए। जिन आर्य समाजो की खस्ता हालत है, बिल्डिगे गिर रही है उनकी मुरम्मत करवाई जाए। बडी आर्य समाजो के अधिकारी छोटी आर्य समाजो के अधिकारियो को सहयोग दे और भी कई निर्णय लिए गए है।

मै जिला आर्य सभा के सभी अधिकारियो को विशेष रूप से जिला आर्य सभा के प्रधान श्री प्रि स्वतन्त्र कुमार जी को बधाई देता हू कि उन्होने वेद प्रचार की दिशा मे जिला गुरदासपुर मे एक सक्रिय कदम उठाया है और कार्य आरम्भ कर दिया है। मैने गत अक मे लिखा था कि बडी आर्य समाजे छोटी आर्य समाजो को आर्थिक सहयोग दे ताकि वह सक्रिय होकर कार्य करती रहे। जिला गुरदासपुर की आर्य समाजो ने इस दिशा मे कार्य आरम्भ कर दिया है।

मैने पहले भी लिखा है कि पजाब मे वेद प्रचार की अति आवश्यकता है और पजाब की सभी आर्य समाजो को इस दिशा मे कार्य आरम्भ कर देना चाहिए प्रत्येक जिला मे जहा-जहा जिला आर्य सभाए बनी हुई हैं वह जिला आर्य सभा के माध्यम से और जहा-जहा नहीं बनी हुई है वह अपनी जिला की आर्य समाजो के अधिकारियो की बैठक बुला कर वेद प्रचार की दिशा मे कार्य आरम्भ कर दे।

सभा के प्रत्येक अधिकारी व अन्तरग सदस्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इस कार्य मे रुचि ले और अपने-अपने जिले की आर्य समाजो के अधिकारियो से सम्पर्क करे उनसे मिले उनकी समस्याओ को सुने और उन्हे हल करे। जिस प्रकार जिला गुरदासपुर मे कार्य आरम्भ किया जा रहा है इसी प्रकार प्रत्येक जिले मे कार्य आरम्भ कर दिया जाए। आर्य समाजो के माध्यम से पारिवारिक सत्सग आरम्भ करे वार्षिक उत्सव करे, वेद सप्ताह मनाएं व जिला स्तर पर वर्ष मे एक बार जिला की सभी आर्य समाजों की ओर से किसी एक नगर मे एक विशेष सम्मेलन किया जाए जिसमे जिला की सभी आर्य समाजो के अधिकारी व सदस्य भाग ले वहा सभा के अधिकारियों को भी आमन्त्रित किया जाए।

इस प्रकार हमें अब बिना कोई इन्तजार किए अपना कार्य आरम्भ कर देना चाहिए इसलिए आर्य समाज के सभी कार्यकर्त्ता आगे आए और अपना कर्त्तव्य समझ कर कार्य करे।

-हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

दूरदर्शन और वेद प्रचार

आज के युग मे दूरदर्शन प्रचार का एक मुख्य साधन है। अक्सर देखा जाता है कि जिस वस्तु का प्रचार-प्रसार टेलीविजन के माध्यम से किया जाता है वही वस्तु लोकप्रिय हो जाती है। आज विज्ञान का युग है और इस विज्ञान के युग मे दूरदर्शन का अपना विशेष महत्व है। जहा दूरदर्शन से विदेशी सभ्यता का प्रचार व प्रसार किया जा रहा है और यह समझा जा रहा है कि इसका हमारी सन्तान पर बहुत बुरा प्रभाव पड रहा है आगे चल कर भी अधिक बुरा प्रभाव पडने की सम्भावना है, परन्तु यह जरूरी नही कि टैलीविजन द्वारा गल्त दृश्य ही दिखाए जा रहे है, कुछ दृश्य अच्छे भी दिखाए जा रहे है कई धार्मिक व ऐतिहासिक सीरियल भी दिखाए जा रहे है परन्तु सबसे बडी कमी यह महसूस की जा रही है कि वेद के प्रचार व प्रसार के लिए टेलीविजन से कोई प्रसारण नही किया जा रहा है। आर्य समाज के सिवाए ऐसी कोई और सस्था नही है जो वेद प्रचार के लिए कोई कार्य कर सके।

इसलिए आर्य समाज को भी वेद के प्रचार व प्रसार के लिए अब टेलीविजन को माध्यम बनाना चाहिए।

हमे प्रसन्नता है कि अब आर्य समाज ने इस ओर ध्यान दिया है। टेलीविजन पर एक आस्था चैनल चल रहा है। इस चैनल के माध्यम से कई मतावलम्बी अपनी-अपनी आस्थाओ का प्रचार व प्रसार कर रहे है। अब आर्य समाज ने भी इस विश्वविख्यात आध्यात्मिक चैनल आस्था के द्वारा आर्य समाज व वेद का प्रचार करने का निश्चय किया है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उप प्रधान कैप्टन देवरत्न आर्य ने बताया है कि 16-6-2001 से प्रतिदिन प्रात 6-40 पर स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती के वेद सम्बन्धी उपदेश प्रसारित किए जाएगे। इसी आस्था चैनल पर प्रत्येक शनिवार को साय 5-30 बजे सन्ध्या और प्रत्येक रविवार को प्रात 6-40 पर यज्ञ प्रसारित करने की योजना बनाई है। इसके साथ ही डा स्वामी सत्यम् जी स्वामी दीक्षानन्द जी, डा वागीश जी के अलग-अलग वेद विषयक प्रवचनो को अलग-अलग रिकार्ड किया जा रहा है। जिन्हे 10-10 कडियो मे प्रसारित कराने की योजना बनाई गई है।

यह एक सराहनीय कार्य है। आर्य समाज के जिन उच्चकोटि के विद्वानो, सन्यासियों, महात्माओं का सहयाग इस कार्य मे लिया जा रहा है। मै उन सब का धन्यवाद करता हू।

मै श्री कैप्टन देवरत्न जी व उन सभी विद्वानो तथा कार्य-कर्त्ताओ का भी धन्यवाद करता हू जो इस दिशा मे वेद प्रचार के लिए कार्य कर रहे है। यह एक बहुत ही आवश्यक कार्य था जिसकी ओर हमारा ध्यान बडी देर के बाद गया। अब यह सिलसिला निरन्तर चलता रहना चाहिए। दूरदर्शन के माध्यम से वेद का प्रचार व प्रसार सारे ससार मे बडी आसानी से हो सकता है। इसी के माध्यम से हम "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का उद्घोष सारे ससार मे फैला सकते है और इसके द्वारा सारे ससार को आर्य समाज का सन्देश पहुचाया जा सकता है।

-हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

कृपया डाक टिकट पूरे लगाएं

प्रथम जून से डाक व्यय बढ गया है। दो रुपए वाला पत्र व बुक पोस्ट तीन रुपए मे हो गया व तीन रुपए का लिफाफा चार रुपए मे हो गया है। कार्ड 50 पैसे मे हो गया है। हाथ से लिखा मैटर बुकपोस्ट नहीं होता, उसे चार रुपए के लिफाफे मे भेजे। कृपया टिकट पूरे लगाए, पत्र बैरिंग न भेजे।

-धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

कुपुत्रो जायेत क्वचिदऽपि कुमाता न भवति।

❑ ले० श्री सत्यदेव विद्यालंकार (भू.पू. आचार्य उपदेशक विद्यालय टंकारा)

यह विलक्षण बात है कि विवाह के बाद प्रायः बहु और सास में झगडा हो जाता है। माता और पुत्र के प्रेम मे एक भागीदार आ जाती है, कुछ कडवाहट तो स्वाभाविक हैं। घर मे रहने पर दो बर्तन तो टकराते ही हैं। प्रश्न यह है कि पुत्र क्या करे? वैवाहिक जीवन में माता-पिता, पुत्र-पौत्र सबकी विचित्र स्थिति हो जाती है।

यदि हम वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें तो स्वाभाविक महत्वपूर्ण कदम यह है कि मनुष्य को सबसे अधिक तो अपने सुख-दुःख का विचार करना पडेगा। उसके बाद प्रत्येक मनुष्य को अपनी पत्नी के सुख-दु ख का विचार करना होगा। इसके बाद बच्चों का स्थान आता है यह तीन बाते तो स्वाभाविक रूप से परिवार को संयुक्त रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके बाद माता-पिता भाई बन्धु मित्र इत्यादि आते हैं।

अब इस सारी बात को एक ओर दृष्टि से देखे। घर मे यदि माता रहेगी तो पति-पत्नी उच्छृङ्खल व्यवहार नही करेगे। "भोगे भोग भयम्" यह भतृहरि का अटल सिद्धान्त है। मैं एक बार लाहौर मे व्याख्यान के लिए गया। तबीयत खराब थी इसलिए खाने को खिचड़ी मागी। खिचडी तो मिली ही साथ ही बर्फ-मलाई आई। मैने पूछा यह किस लिए है। उत्तर मिला यह हमारे घर का पक्का नियम है कि खाने के बाद भलाई की बर्फ जरूर खाते है। वृद्धगण मलाई की बर्फ तो नहीं छोड सकते किन्तु उन्होंने नकली दात लगवा लिए हैं ताकि कोई रुकावट न हो।

प्राय यह देखा गया है कि विवाह के बाद पति-पत्नी माता-पिता के गाव को छोड कर शहर मे आ जाते हैं और स्वतन्त्र हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि पचास-पचपन की आयु के बाद आखो में मोतिया, हाई ब्लडप्रैशर, दिल की कमजोरी, हरणिया, मूत्र का कष्ट, बल्ड मे शूगर, कोई न कोई बिमारी अवश्य हो जाती है।

संयम से रहते हुए भी कोई न कोई रोग पकड़ लेता है। असयम का फल तो अवश्य मिलेगा।

पौत्रों पर भी माता-पिता की अपेक्षा दादा-दादी का प्रभाव अवश्य पडता है। मैं एक बार बम्बई गया था। हमारे परिवार के बहुत समृद्ध बच्चे आए और उन्होंने मेरे पैरों को सिर से स्पर्श किया।

मैं हैरान हो गया इतना बडा शिष्टाचार उनके पिता कहने लगे इन बच्चों की दादी ने इन्हें यह सस्कार दिया है बडो से ऐसे ही आशीर्वाद लिया जाता है। मेरा हृदय भी गद-गद हो गया। मैंने मन से उन्हें आशीर्वाद दिया। उनके पास तो सब कुछ था मैं उनको क्या देता।

मैं जब किसी के भी घर मे बूढे माता-पिता का अनादर देखता हू तो मुझे बहुत दुःख होता है। मेरे ऊपर गुरुकुल पद्धति के संस्कार हैं। मेरी ऐसी मान्यता है कि विधवा माता से दुर्बल और कोई नहीं होता। इनका अपमान अपने ही पुत्रो द्वारा किया जाना महान पाप है। इस पाप का फल ईश्वर भयंकर रूप से हेता है। मैं यहा अपने व्यक्तिगत अनुभव की बात कर रहा हूं कि मेरी माता जी अनपढ थी। पुराने विचारों की स्त्री थी परन्तु थी तो माता।

मैं उन दिनों क्वेटा में था। गुरुकुल में बहुत मलेरिया होता था। वातावरण में आद्रता थी। क्वेटा में स्वास्थ्य का केन्द्र था। मैं नौवीं या दसवीं में पढ़ता था। गुरुकुल से क्वेटा आने पर मुझे मलेरिया हो गया। एक गुरुकुल के स्नातक वैद्य थे। इलाज कर रहे थे पर बुखार ठीक नहीं हो रहा था। माता जी गाव में थी। पिता जी ने तार दिया जल्दी आ जाओ। वे तीसरे दिन आई। मैं बैठक में लेटा हुआ था बुखार तेज था उन्होंने कुछ नहीं किया मेरा सिर गोद में लेकर बैठ गई। अगले दिन बुखार बहुत कम हो गया। वैद्य जी अपनी दवाई की प्रशंसा कर रहे थे मैं चुप था। परमात्मा ने माता और पुत्र का क्या सम्बन्ध बनाया है यह उसी को मालूम है जिसने मातृसुख भोगा है या परमात्मा को जिसने माता और पुत्र दोनों को बनाया एक छोटी सी बात भी हुई मेरी पत्नी हाई ब्लड प्रैशर से पीड़ित थी उसने अपने सब गहने घर के कामों में खर्च कर दिए। मेरे पुत्र का विवाह था। वह उसमें जाना चाहती थी। पच्चीस हजार के कुछ गहने बनवाए। उसे पोते का विवाह देखने की प्रबल इच्छा थी परन्तु फिर भी न देख सकी। मेरी माता जी गांव में रहती थी। पता नहीं उन्हें क्या विचार आया विजय मेरे पुत्र के विवाह देखने का, कहने लगी गांव से बारात ले जाओ। विवाह जालन्धर में था। मैंने न कर दी वे चुप हो गई। पर हमारे पौत्र का विवाह बम्बई में हुआ पर हम वहां आ नहीं सके। पता नहीं भगवान ने ये क्यों किया ये भगवान ही जाने।

मैं यह बात इसलिए लिख रहा हूं मेरे मन में यह विश्वास हो गया है कि हमारे देश में दिन प्रतिदिन माता-पिता का सम्बन्ध शिथिल होता जा रहा है जो हमारी संस्कृति का दृढ आधार था। हमें यह सम्बन्ध मजबूत करना होगा। इसके लिए फैशन परस्ती छोड़ क्रियात्मक विचार लाने होंगे।

पठानकोट में जिला आर्य सभा की बैठक

आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट मे जिला आर्य सभा की बैठक 10-6-2001 को प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस बैठक में बटाला से श्री विजय अग्रवाल, श्री पलविन्द्र चौधरी व श्री कुन्द्रा जी पधारे और उन्होने अपनी आर्य समाज की गतिविधियां बताई। धारीवाल से पधारे श्री जगदीश महाजन ने बताया कि आर्य समाज धारीवाल ने वेद प्रचार का कार्य तेज कर दिया है। 3-6-2001 को उत्सव सम्पन्न हुआ सभा के उपदेशक पहुंचे थे। गुरदासपुर से पधारी श्रीमती सन्तोष अम्बा ने आर्य समाज गुरदासपुर की गतिविधियां बताईं। सुजानपुर से पधारे श्री वेद प्रकाश उप्पल ने आर्य समाज तथा सुजानपुर स्थित सभा की भूमि की जानकारी दी। शाहपुर कण्डी से पधारे श्री धर्मपाल जी व श्री गुरनाल जी ने शाहपुर कण्डी की आर्य समाज की गतिविधियां बताई। आर्य समाज माडल टाऊन, पठानकोट से पधारे श्री सुभाष मित्तल, श्री बाल कृष्ण जी, श्री रमेश महाजन, श्री कौशल जी मन्त्री ने अपने सुझाव दिए। आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट के अधिकारी श्री विनोद जी मल्होत्रा, श्री सत्य प्रकाश, श्री राकेश लाल, श्री रमेशनैय, श्री सुरेश महेन्दु, श्री पृथ्वीराज महाजन, डा वेद प्रकाश गुप्ता के अतिरिक्त स्त्री आर्य समाज की प्रधान श्रीमती कौशल्या नैय, श्रीमती सविता कालड़ा, श्रीमती वेद गुप्ता ने भी अपने सुझाव दिए।

आर्य समाज मेन बाजार की गतिविधियों का वर्णन करते हुए बताया कि इस आर्य समाज में गत तीन माह से विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसमे वैदिक सिद्धान्तो पर महीने के अन्तिम सप्ताह को रविवार को विशेष गोष्ठी की जाती है। जिसमें उच्चकोटि के विद्वान् श्री डा योगेन्द्र मुनि ने पुनर्जन्म पर अपने विचार रखे और शका समाधान किया। श्री डा राजेन्द्र जी विद्यालकार कुरुक्षेत्र ने आयु निश्चित है या नहीं? इस विषय पर अपने विचार रखे। श्री प विद्या भानू जी जम्मू, श्री पं निरन्जन देव जी इतिहास केसरी जालन्धर के भी उपदेश अन्य विषयो पर हो चुके हैं। लोगों पर इन गोष्ठियो का अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। पठानकोट की सभी शिक्षा संस्थाओ मे साप्ताहिक यज्ञ होते हैं। दयानन्द धर्मार्थ औषधालय में लगभग 300 मरीज प्रतिदिन आते हैं। सभी टैस्ट निःशुल्क किए जाते हैं। टी वी के मरीजो का निःशुल्क इलाज किया जाता है। 450 रु. प्रति माह की एक मरीज को निःशुल्क दवाई दी जाती है। यह सारा कार्य श्री पृथ्वीशाह जी महाजन की देख-रेख में चल रहा है। श्री लाल चन्द पुस्तकालय, श्री राकेश महाजन की देखरेख में चल रहा है।

इस अवसर पर श्री प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी की अपील पर बैठक में पधारे हुए महानुभावो ने गुरुकुल करतारपुर के लिए गेहूं की बोरियां देने की घोषणा की। पठानकोट मेन बाजार ने 10, मा टा. पठानकोट ने 5, बटाला ने-7, सुजानपुर-2 धारवाल-2 और गुरदासपुर आर्य समाज ने 3 बोरी देने की घोषणा की। यह बैठक हर प्रकार से सफल रही। सभी आर्य समाजों ने वेद प्रचार का कार्य करना आरम्भ कर दिया है।

महाभारत इतिहास है–काल्पनिक ग्रन्थ नहीं

□ ले० श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक अध्यक्ष–वैदिक संस्थान, नजीबाबाद (उ.प्र.)

सन् 1975 में डाक्टर डी.सी सरकार ने घोषणा की थी कि महाभारत हुआ ही नहीं। विचित्र बात यह है कि आपने-अपने जिस वक्तव्य में यह घोषणा की और महाभारत को काल्पनिक ग्रन्थ बताया, उसी वक्तव्य में यह भी कहा गया कि साधारण पारिवारिक झगडा था।

एक ओर तो किसी घटना के होने से नकार करना, उस घटना से सम्बन्धित ग्रन्थ को काल्पनिक बताना तथा दूसरी और गृह कलह या साधारण सा पारिवारिक झगडा बताकर उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेना-न तो बुद्धिमानी है और न इतिहासवेत्ता होने का प्रमाण हा इससे एक लाभ अवश्य हुआ है कि डा सरकार चर्चा का विषय बन गए। जो उन्हे नहीं जानता था। वह भी कम से कम उनका नाम तो जान ही गया। फिर चाहे आलोचनात्मक और भर्त्सनात्मक भाषा मे ही उन्हे स्मरण किया जाये। "बदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा" यदि इस विचार से कोई अपने आप को सन्तुष्ट करना चाहे तो उसे कोई रोक नहीं सकता।

इतिहास विषय पर लेखनी उठाने, मुख खोलने और खोज करने से पहले-इतिहास ग्रन्थ कौन हो सकता है? यह जान लेना आवश्यक है। जिसे इतिहास के लक्षण ज्ञात न हों, वह इतिहास ग्रन्थो को समझने की योग्यता नहीं रखता? इतिहासवेत्ता होना तो दूर की बात है।

जिस ग्रन्थ मे वंशावली दी हो, वह काल्पनिक कदापि नहीं हो सकता, वह इतिहास है। काल्पनिक ग्रन्थों, उपन्यासो आदि में वशावलिया नहीं होती तथा जिस ग्रन्थ का उसके पश्चात् लिखे गए ग्रन्थों में इतिहास के रूप मे वर्णन हो और जिसके उदाहरण दे-देकर ऐतिहासिक दृष्टि से ही उसे अन्य स्थानों में चित्रित किया गया हो, वह काल्पनिक ग्रन्थ नहीं हो सकता। महाभारत के विषय मे यह दोनों बातें शत-प्रतिशत ठीक हैं। महाभारत में वंशावली वर्णित है और महाभारत काल के पश्चात् के भारतीय साहित्य के सहस्त्रश: ग्रन्थों में चाहे वह ऐतिहासिक ग्रन्थ हों अथवा पुराणादि इतिहासातिरिक्त साहित्य । महाभारत को इतिहास के रूप में उद्धृत व वर्णित किया गया है। लेख का कलेवर अधिक न बढ़ जाए, इस कारण हम उन सब प्रमाणो को यहां प्रस्तुत नहीं कर रहे, जिन्हे हमारी उक्त बातों की सत्यता प्रमाणित करना हो, वह इन दोनों आधारों को महाभारत और उसके पश्चात् के पांच सहस्त्र वर्ष तक लिखे गए भारतीय साहित्य में देख लें।

इसके अतिरिक्त इतिहास की सत्यता स्थानो से प्रमाणित हुआ करती है। महाभारत से सम्बन्धित समस्त स्थान आज भी भारत भू पर विद्यमान हैं।

दिल्ली स्थित पाडवों का दुर्ग आज भी पाण्डवों द्वारा इन्द्रप्रस्थ बनाए जाने का परिचय अपने भग्न अस्तित्व द्वारा दे रहा है। कुरुवश की पुरानी राजधानी हस्तिनापुर उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद मे और उसके निकट ही गगा के दूसरे तट पर बिजनौर जनपद स्थित विदुरकुटी है। अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित द्वारा बसाया हुआ परीक्षितगढ़ और कौरवो द्वारा पांडवो का लाक्षागृह मे जलाए जाने का स्थान बरनावा मेरठ जनपद में अवस्थित है तो काशीपुर (जनपद उद्यमसिंह नगर) में द्रोण-सागर भी है और बिजनौर जनपद के नगर नजीबाबाद से उत्तर "मथुरा और हाल्ट" स्टेशन के निकट महाभारत कालीन मयूरध्वज राजा के दुर्ग के अवशेष अब भी हैं और तो और स्वयं महाभारत युद्ध का मैदान कुरुक्षेत्र भी हरियाणा प्रदेश मे दिल्ली-अमृतसर रेलवे लाईन पर करनाल और अम्बाला के मध्य मीलों तक विस्तृत रूप से आज भी अपनी उपस्थिति का परिचय दे रहा है। जहां कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, गुरुकुल कुरुक्षेत्र तथा रेलवे जक्शन बने हुए हैं।

आधुनिक युग के महान सुधारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने महान ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के अन्त मे आर्य राजाओ की एक लम्बी सूची दी है। इस सूची का प्रारम्भ उन्होंने महाराजा युधिष्ठिर के नाम से किया है। सत्यार्थ प्रकाश को स्वनामधन्य महर्षि ने डा. सरकार के जन्म से बहुत समय पहले लिखा है। सन् 1875 मे इस ग्रन्थ का प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ है। डा सरकार और उनके समर्थक ध्यान से इस ग्रन्थ के उक्त स्थल को पढ़े। अब सन् 2001 ईसवी मे इस ग्रन्थ को प्रकाशित हुए 125 वर्ष बीत रहे हैं। इस सूची मे महर्षि ने महाराज युधिष्ठर की तीस पीढियो का राज्य करना दर्शाया है। युधिष्ठर से लेकर क्षेमक पर्यन्त तीस राजाओ के नाम तो दिए ही हैं, साथ ही उनमे से प्रत्येक का राज्यकाल भी वर्ष, मास, दिन सहित प्रत्येक के नाम के साथ दिया है। इन सबका राज्यकाल 1770 वर्ष 11 मास 10 दिन का है। इनमें से अन्तिम तीसवे राजा क्षेमक को मार कर उसका प्रधान राज्याधिकारी विश्वा राजा बन बैठा था।

इस सूची से महाभारत का काल निर्णय करने में भी बडी सहायता मिलती है। यह सम्पूर्ण सूची महाराज युधिष्ठिर से महाराज यशपाल पर्यन्त 4157 वर्ष 9 मास 14 दिन के दीर्घकाल की है। यह यशपाल पृथ्वीराज चौहान की पाचवी पीढी मे वर्णित है। यदि यशपाल के राज्यकाल को बीते हुए एक सहस्त्र वर्ष भी मान लिया जाए तो भी महाभारत से वर्तमान काल पर्यन्त 5160 वर्ष के लगभग महाभारत का युद्ध हुए बीत चुके हैं।

हम समझते हैं कि डा सरकार के वक्तव्य से प्रसारित भ्रान्ति के निवारण के लिए यह इतनी पक्तिया ही पर्याप्त हैं। विचारक महानुभाव इतने से ही समझ लेगे कि अब मे लगभग 5200 वर्ष पूर्व कौरव-पाण्डवो मे युद्ध हुआ था और महाभारत नामक ग्रन्थ मे उसी का सत्य वर्णन है तथा महाभारत आर्य जाति का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर का 16वां वार्षिकोत्सव सम्पन्न

स्थानीय आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर का 16वा वार्षिकोत्सव व महायज्ञ बडी श्रद्धा व उत्साह से मनाया गया। इस समारोह में प जगत वर्मा ने भजनो द्वारा सभी का मन मोह लिया। एक भजन के बोले हैं:-"चल सत्सग में रंगजा रग में हंस, हस जीवन जी ले" और एक भजन-सबसे बडा ओम् का नाम भजन गा कर सबको मन्त्रमुग्ध कर दिया। श्री राजेश अमर प्रेमी द्वारा भजन "हम सब मिलकर आये दाता के दरबार में भर दे झोली", व सोनी शर्मा व भारती शर्मा ने "जीवन खत्म हुआ तो जीने का ढग आया," गा कर सब का मन मोह लिया। इस समारोह में स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज (राजस्थान) ने अपने उपदेश मे कहा कि दौलत से सब कुछ खरीदा नहीं जा सकता अगर ऐसा होता तो कभी देश के प्रधान मन्त्री को लोगो की अदालत में सिर झुका कर नहीं आना पडता। पं निरजन देव इतिहास केसरी ने अपने प्रवचन मे कहा कि अन्धविश्वास में कुछ नहीं जादू-टोना किसी भी किस्म की कोई चीज नहीं है। उनका दावा है कि उन्हें कोई भी कहीं भी ले जाए वे जाने को तैयार हैं। कब्र, पीर, फकीर कुछ नहीं है। जब तक मनुष्य स्वय कुछ नहीं करता उसका फल पाना व्यर्थ है और प्रवचन करने वालो मे प सुन्दर लाल शास्त्री भी थे । इसके बाद एक सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। प हरबस लाल जी शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा व सभा मन्त्री श्री मुलखराज आर्य जी को भी सम्मानित किया गया। अन्य सम्मान पाने वालो मे महामन्त्री श्री सुरेन्द्र नाथ मुरगई, चौ० ऋषिपाल सिह एडवोकेट, आचार्य नरेश, प्रो रामावातार, श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पजाब, डॉ॰ के के पसरीचा, श्री प्रियतम देव जी मोगा, श्री प्रेम भारद्वाज नवाशहर कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब। श्री सुदर्शन शर्मा उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब व श्री रणजीत आर्य, मन्त्री आर्य समाज, राजेश अमर प्रेमी को भी सम्मान चिन्ह दिया गया। ध्वजारोहण श्री सुदर्शन शर्मा द्वारा किया गया। अन्त मे प्रधान श्री ओम प्रकाश अग्रवाल, मन्त्री रणजीत आर्य ने आये हुए सभी बन्धुओ का धन्यवाद किया व शान्तिपाठ के पश्चात् सभी ने मिल कर ऋषि लगर का आनन्द लिया।

भावनाओं की चमत्कार क्षमता

❑ आचार्य डा. संजय देव जी, आर्य समाज मल्हारगंज इन्दौर-452002 (म.प्र.)

मनुष्य भावना प्रधान प्राणी है। जैसा मन मे सोचता है वैसे ही वह हो जाता है। शास्त्राकरों ने कहा है-

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति तत्कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते॥

मनुष्य जिसका मन से विचार करता है उसी को वाणी से कहता है, जिसको कर्म से करता है उसी को प्राप्त करता है। तात्पर्य यह है कि मन रूपी कल्पवृक्ष के द्वारा मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही हो जाता है। मन सदा सकल्प-विकल्प करता रहता है। सकल्प-विकल्प मन का स्वभाव है। हमारे सभी कार्य सकल्प से ही सिद्ध होते हैं। महर्षि मनु ने कहते है-

सकल्पमूल: कामो वै यज्ञा: सकल्पासम्भवा:।

व्रतानि यमधर्मांश्च सर्वे सकल्पजा स्मृता:।

मनुस्मृति-2.3

सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभापणादि व्रत तथा नियम रूपी धर्म-ये सब सकल्प से ही सबकी पूर्ति होती है।

जिन व्यक्तियो का चिन्तन निरन्तर ठीक दिशा मे चलता है, वे कुछ बनकर दिखा देते हैं, वे ही महापुरुप बनते हैं, जो देश-विदेश तक युग-युग पर्यन्त अमर हो जाते हैं तथा अन्यों के लिए एक आदर्श स्थापित करते है।

जो माताए अपने बच्चो को भूत आदि से डराती हैं, वे बड़े होकर भी डरपोक बने रहते हैं। 'अभिज्ञान शकुन्तल' मे शकुन्तला अपन बालक को सिहशावक से खेलना सिखाती है। वही बालक महापराक्रमी 'भरत' बनता है। माताओ को बचपन से ही अपने बालको मे अच्छे सस्कार डालने चाहिए। कई महिलाए साप, चूहे, काक्रोच आदि से डरती हैं। कोई पति के तथा बच्चों के गुस्से से डरती है, तो कुछ गुस्से से पति तथा बच्चो के जीवन को नरक भी बना डालती है। स्वस्थ तन-मन के व्यक्ति को परमात्मा को छोड़कर किसी से डर नहीं लगता। तभी गौतम बुद्ध अगुलीमाल को सुधार पाए, महर्षि नारद डाकू को महर्षि तथा कवि बना सके और दुर्दान्त अंग्रेजों के शासनकाल में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा क्रान्तिकारी ग्रन्थ लिखा जा सका।

किसी को मंच से डर होता है-वे भाषण, गायन, अभिनय आदि के क्षेत्रों में कुछ नहीं कर पाते हैं। ऐसे व्यक्ति को कलास में जाने से पूर्व जो पढाना होता है, उसे रटना पढ़ता है, ऐसे ही लोग अपना व्याख्यान, कविता, गीत प्राय: भूल जाते हैं। बिना डायरी के बोल नहीं पाते। ऐसे लोग चाहकर भी अपने क्षेत्र में विशेष उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सकते।

साहसी व्यक्ति ही क्रान्तिकारी तथा चिन्तक बनते हैं। भावनाओं का सन्तुलन बिगड़ने पर वे मुसोलिनी, हिटलर जैसे तानाशाह भी बन जाते हैं। देशभक्ति की ओर जाने वाले क्रान्तिकारी भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, तिलक, लाजपत राय, रामप्रसाद बिस्मिल, सावरकर, सुभाष आदि बन गए।

असफल प्राय: वे ही लोग होते हैं, जिन्हें अपनी हार का भय पहले से हो होता है। 'डरे वो मरे' उत्साह, आशा तथा परमात्मा पर विश्वास करके पुरुषार्थ पूर्वक किया हुआ कार्य निश्चित ही अपने क्षेत्र मे सर्वोच्च स्थिति प्रदान करता है।

भय का मुख्य कारण है कि हम अपने को अकेला समझ लेते हैं तथा यह सोचते रहते हैं कि 'अब क्या होगा।' हर वस्तु का बुरा पहलू ही देखना, सोचना जिनकी आदत होती है, उनकी कदापि उन्नति नहीं होती। भूतकाल मे एक बार कोई अप्रसन्नता या असफलता होने पर उससे अपना स्थाई नाता जोडकर बैठ जाने वाले जीवन में सफल नहीं हो सकते। रक्त संचार प्रक्रिया हमारे सोचने पर निर्भर करती है। उसी से हम स्वस्थ तथा अस्वस्थ होते हैं। मानसिक रूप के स्वस्थ लोगों के अध्ययन से पाया गया है कि जीवन से निराश व्यक्ति ही आत्महत्या की ओर प्रवृत्त होते हैं। ऐसे व्यक्ति को दुकानदार नकली दवाई भी जहर का नाम लेकर देदें तो उसके शरीर मे विष पैदा होने लगता है तथा वह नकली जहर से भी जहर के लक्षण अपने भय द्वारा पैदा कर घटा-बढ़ा सकता है। क्रोध के समय किया हुआ भोजन भी विष हो जाता है। इसी कारण हमारे यहा भोजन करते समय मौन तथा शान्त रहने की परम्परा डाली गई है।

किसी घर मे जब मौत होती है, उस दिन जिस व्यक्ति का पिता या माता से सबसे अधिक प्रेम होता है, उसकी भूख भी एक दिन तो कम से कम गायब हो ही जाती है। एक व्यक्ति को घर के चार लोग पागल कह कर उसमें पागलपन के लक्षण पैदा करते हैं, जबकि कुछ माताएं अपने बालक के गुणों को पहचान कर उसकी प्रशंसा करके उसे महान् बना देती हैं। ऐसे अनेक उदाहरण हर क्षेत्र के लिए दिए जा सकते हैं। ये उदाहरण भावनाओं के चमत्कार नहीं तो क्या हैं?

अपमान तथा अन्याय को बहुत से लोग सह नहीं पाते और नष्ट हो जाते हैं। जबकि कई लोग संघर्ष करके आगे बढ जाते हैं। चिन्ता, भय, घृणा आदि का असर बच्चो के पैदा होते ही प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए घर के हर बडे सदस्य को अपने परिवार का वातावरण अच्छा बनाने पर ध्यान देना चाहिए। क्रोध, हिसा आदि के माहौल मे पले बालक ही सबसे अधिक डरपोक या चोर-डाकू, अपहरणकर्त्ता, बलात्कारी, व्यभिचारी आदि बनते हैं। अच्छी सगति से ही ये लोग सुधर भी जाते हैं।

गुरु विरजानन्द दिवस "गुरु पूर्णिमा"

गुरु विरजानन्द दिवस (गुरु पूर्णिमा) पर्व 5 जुलाई-2001 को श्री गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट करतारपुर के प्रांगण मे आयोजित किया जा रहा है। वैदिक प्रवक्ता श्री महेश विद्यालकार दिल्ली मुख्य वक्ता होंगे। अन्य नेता व विद्वान् भी पधार रहे हैं। यज्ञ एवं पूर्णाहुति प्रात: 8 बजे, ध्वजारोहण प्रात: 9-30 बजे एव गुरु दक्षिणा सम्मेलन प्रात॰ 9-30 बजे से 1 बजे तक होगा। दोपहर 1 बजे ऋषि लगर की व्यवस्था की गई है। श्रद्धालु आर्यजन अधिक से अधिक सख्या मे पधारे तथा सत्सग का लाभ उठाए ।

–हरबंस लाल शर्मा (प्रधान)

दयानन्द पब्लिक स्कूल, लुधियाना में "बृहद हवन यज्ञ"

2-6-2001 शनिवार दयानन्द पब्लिक स्कूल, दीपक सिनेमा रोड, लुधियाना में बृहद हवन यज्ञ का प्रात: 9 बजे से 11 बजे तक आयोजन किया गया जिसमें बहुत से छात्र-छात्राए यज्ञमान बने। यज्ञ स्कूल के प्रबन्धक श्री आशानन्द जी आर्य ने सम्पन्न करवाया। उन्होंने मन्त्रों की विस्तार से व्याख्या करते हुए कहा कि जिस घर में यज्ञ होता है वह घर भाग्यशाली एवं धन धान्य से भरपूर होता है। जिला आर्य सभा की प्रधाना श्रीमती राजेश जी शर्मा ने कहा कि उपदेश को ध्यान से मनोचिन्तन करो और जो अच्छा लगे वह अवश्य ग्रहण करो। इस अवसर पर श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता, प्रधान प्रबन्धक समिति, श्रीमती विनोद गांधी जी, श्री सर्वजीत एडवोकेट नवदीप भारद्वाज, अजय बत्तरा, हर्ष आर्य, सरला लूम्बा ने भी बच्चो को आशीर्वाद दिया। यज्ञ शेष स्कूल के टीचर श्री हरनाम सिह ने श्रद्धा पूर्वक दिया। शान्ति पाठ के पश्चात् कारवाई समाप्त हुई।

-प्रिं. सुनीता मलिक

सन्यास की दीक्षा

दिनांक 20-5-2001 को श्री गौरी शकर वानप्रस्थी जी ने पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्द सरस्वती जी से सन्यास की दीक्षा दयानन्द मठ दीना नगर मे लेकर स्वामी सुकर्मानन्द सरस्वती नाम प्राप्त किया। स्वामी सुकर्मानन्द जी का जीवन संघर्ष का जीवन रहा है। इनकी आयु 75 वर्ष है इनके मन में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मिशन को साकार करने की बहुत तड़प है इनका जीवन एक आदर्श जीवन है। –योगेन्द्र पाल, मन्त्री

जोड़ना नारी का स्वभाव है—प्रीता भार्गव

उदयुपर, 1 जून 2001, आर्य समाज हिरण मगरी में प्रधान श्री जितेन्द्रपाल शर्मा द्वारा अपनी धर्मपत्नी की स्मृति में निर्मित वैदिक पाठशाला भवन का आज यहां वैदिक अनुष्ठान के साथ उद्घाटन हुआ। इस पाठशाला के लोकार्पण समारोह में अध्यक्ष पद से बोलते हुए सुप्रसिद्ध लेखिका प्रीता भार्गव जिला अधीक्षक, उदयुपर ने कहा कि समाज को जोड़ना स्त्री का स्वभाव है। त्यागमय, कल्याण की मूर्ति मातृ शक्ति तिनका-तिनका जोड कर परिवार, समाज के लिए निरन्तर जोडती ही रहती है। परिवार, समाज को बनाने के लिए नारी अपने आप को नष्ट कर देती है। पूरा जीवन समाज को बनाने में खपा देती है।

सृष्टि निर्मात्री माता, नारी की वर्तमान दशा पर चिन्ता व्यक्त करते हुए प्रीता जी ने कहा कि जो नारी सृष्टि का निर्माण करती है, समाज को बनाती है, जोडती है ऐसी मातृशक्ति को अंधकार में रखा जाए तो फिर हमे इस पर विचार करना होगा। इस विचार की अग्रणी कड़ी के रूप में आर्य समाज, वैदिक संस्कार रहा है। आज संस्कार युक्त, भय और लोभ मुक्त समाज की रचना हमें करनी होगी। भय और लोभ युक्त समाज अपराधी हो जाता है। हमें अपराध मुक्त समाज की रचना करनी होगी। इसके साथ ही एक भावपूर्ण लड़कियो के जीवन पर कविता प्रस्तुत की जिसे खूब पसन्द किया गया।

समारोह के मुख्य अतिथि एव अनुष्ठान के ब्रह्मा स्वामी संकल्पानन्द सरस्वती ने कहा कि मनुष्य के पास सब कुछ होते हुए भी यदि ज्ञान नहीं है तो सब बेकार है। ज्ञान प्राप्ति के लिए पाठशाला के निर्माण का जो पौधा लगाया है इसके लिए दानदाता परिवार बधाई के पात्र हैं। समाज में व्याप्त बुराईयों पर स्वामी जी ने चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि बाल विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीति आज भी समाज में व्याप्त हैं इस पर पूर्ण रोक लगनी चाहिए।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में श्री जितेन्द्रपाल शर्मा ने सभी का स्वागत किया। साथ ही पाठशाला मे विद्याध्ययन हेतु प्रवेश लेने वाली प्रथम पांच छात्राओं को नि:शुल्क शिक्षा हेतु पूरा आर्थिक सहयोग देने की घोषणा की। इसी प्रकार स्वामी संकल्पानन्द जी डा. के.एल. शर्मा, राधेश्याम जी महेता, सुश्री शारदा यादव, कुसुमलता शर्मा, इन्दु मेड़तवाल, मुनीन्द्र भाटी, देवेन्द्र कुमावत, दुवे सा श्रीमती दिव्या गौतम, कमलकान्त जी शर्मा आदि ने तीन से चार अकों तक की धनराशि पाठशाला शिक्षा हेतु दान के साथ वस्त्र, पुस्तके विद्यादान की घोषणाएं की।

कार्यक्रम का सचालन भूपेन्द्र शर्मा ने किया जो आज के मुख्य यजमान भी थे। श्री वासुदेव शास्त्री, विनोद राठोड, इन्द्रदेव पीयूष आदि ने भजनोपदेश दिए, यज्ञ के दूसरे मुख्य यजमान धर्मेन्द्र शर्मा ने "मां" शीर्षक से एक कविता सुनाई। गिरीश जोशी ने आर्य समाज का परिचय दिया तथा अन्त मे आर्य समाज हिरण मगरी के मत्री श्री डॉ० रवीन्द्र वर्मा ने धन्यवाद ज्ञापित किया। साथ ही दिनाक 3 6 01 से आयोजित वैदिक कन्या शिविर के आयोजन की जानकारी दी।

भटिण्डा में स्मृति यज्ञ

श्री अशोक कुमार अग्रवाल सुपुत्र श्री स्व लाला अमरनाथ जी अग्रवाल मैनेजर आर्या गर्ल्ज हाई स्कूल बठिण्डा के निवास स्थान अग्रवाल स्ट्रीट मे उनकी माता स्व श्रीमती विद्यादेवी जी की पुण्य स्मृति में हवन यज्ञ व सत्संग करवाया गया। आर्य समाज सिरकी बाजार के आचार्य श्री सुनील कुमार जी शास्त्री द्वारा हवन यज्ञ सम्पन्न करवाया गया। यज्ञोपरान्त आई हुई सगत के सम्मुख होते हुए आचार्य जी ने एक भजन "मैं नहीं मेरा नहीं" गाकर वैराग्य की अनुभूति करवाई तथा मृत्यु को महाभारत के अनुसार दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य बताया। श्री कुलवन्त राय जी अग्रवाल एव अन्य भाईयो ने ओ३म् की जय-जयकार की। आर्य समाज को दान दिया। शान्तिपाठ जयघोष के बाद परिवार की ओर से आए हुए लोगो को प्रसाद एव भोजन श्रद्धा से करवाया गया। —कल्पवासुदेव, मन्त्री

प्रवेश प्रारम्भ

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हाथरस में शिशु (नर्सरी) से अलंकार (बी.ए.) तक की नि:शुल्क शिक्षा एवं नि:शुल्क छात्रावास। सबका सीधा-सादा एक-सा रहन-सहन, प्रारम्भ से ही हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी की शिक्षा, वेद, दर्शन, धर्मशास्त्र, संस्कृत, व्याकरण के साथ-साथ गणित, गृहविज्ञान, सामाजिक, विज्ञान, मनोविज्ञान, कला, विज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान, सगीत, गायन एवं तबला वादन की भी शिक्षा, उत्तम परीक्षा परिणाम पूर्व परिणाम 95 प्रतिशत हाई स्कूल, इण्टर, बी.ए. समकक्ष परीक्षा का शत-प्रतिशत परिणाम। नगर से दूर प्राकृतिक वातावरण। देशी घी, दूध जलपान सहित भोजन व्यय शिशु से पंचम तक 280 रुपए मासिक तथा षष्ठ (कक्षा-6) से अलंकार तक 300 रुपए मासिक।

प्रवेश हेतु नियमावली मंगवायें।

—मुख्याधिष्ठात्री

विद्वान् पुरोहित की आवश्यकता

आर्य समाज सै. 16-डी, चण्डीगढ़ में एक विद्वान् पुरोहित की आवश्यकता है। प्रत्याशी विवाहित, आचारवान् एवं अनुभवी होना चाहिए। अपना पूर्ण विवरण लिख कर भेजें तथा एक जुलाई 2001 के रविवासरीय सत्संग में प्रात: 9 बजे साक्षात्कार हेतु पधारें। मार्ग व्यय स्वयं वहन करना होगा।

—विक्रम विवेकी, मन्त्री

मेरे 85 वर्ष पूरे हो गए

मेरे जीवन के इसी जून में 85 वर्ष पूरे हो गए हैं और 86वां वर्ष आरम्भ हो गया है। मेरा जन्म बदोमली (पाकिस्तान) शहर, जिला सियालकोट के समीप एक बहुत बडे कस्बे भीरोवाल में जून 1916 में हुआ था। जैसे कि हर व्यापारी अपने पूर्व वर्ष के हिसाब की पड़ताल करता है कि बीते बर्ष में क्या कमाया है या क्या गवाया है? इसी प्रकार हमे भी देखना होगा कि हमने अपने जीवन में क्या शुभ कार्य किया है? या इस वर्ष में क्या कार्य गलत किया है? इसी प्रकार अपने जीवन पर मैने विचार करते हुए 85 वर्ष पूरे कर लिए हैं। वेद के अनुसार मनुष्य की कम से कम 100 वर्ष की आयु निर्धारित है। जैसा कि वेद ने जीवन को चार भागो मे बाटा है। 25 वर्ष तक ब्रह्मचारी आश्रम, 50 वर्ष तक गृहस्थ आश्रम 50 से 75 वर्ष तक वानप्रस्थ, 75 से 100 तक सन्यास आश्रम। यदि हम अपने जीवन को 100 वर्ष तक नहीं ले जाते तो कुछ हममें ही कमी होगी। वेद गल्त नहीं कहता क्योकि हम वेद के अनुसार नहीं चलते इसलिए ही हम इस आयु तक नहीं पहुच पाते। वेद के अनुसार अभी मेरे 15 वर्ष शेष रहते हैं परन्तु जीवन यदि पहले समाप्त हो जाता है तो वह मेरी ही कोई गल्ती होगी क्योंकि मैं कहीं न कहीं वेद के विपरीत अवश्य हूंगा। हम प्रतिदिन ये प्रार्थना करते हैं कि मं 100 वर्ष तक अपना जीवन व्यतीत करूं। मैं 100 वर्ष तक कानो से सुनता रहू और 100 वर्ष तक आखो से देखता रहू और सारे शरीर के अग 100 वर्ष तक अपना कार्य करते रहें। प्रभु की कृपा से अभी तक मेरी आखे, मेरे कान तथा चलना, फिरना सब कुछ ठीक है। हम यह भी कहते हैं कि "अदीना स्याम शरद शतम" कि मैं किमी के भी अधीन न रहूं। अभी तक 85 वर्ष तक सब कुछ ठीक है इसलिए वेद की बात सत्य ही है। गल्त नहीं है। आशा करता हू कि आगे भी ठीक ही होगा। कई लोग 40-50 वर्ष के भी नहीं हाते ओर अपना जीवन समाप्त कर बैठते हैं क्योंकि वह वेद के विरुद्ध जाते हैं। इसलिए उन्हे अपना जीवन समाप्त करना पडता है क्योकि उनका खान-पान शुद्ध नहीं होता। उनका भोजन शुद्ध सात्विक नहीं होता। उनका भोजन स्वास्थ्य को खराब करने वाला होता है। जैसे कि मास, अण्डा, शराब, सिगरेट, चाय तथा सब नशीली वस्तुए प्रयोग करते हैं। ये भोजन तामसिक होता है। यह सब बाते वेद के विरुद्ध हो जाती हैं। इसलिए ही उनका जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। यदि आप अपने जीवन को वेद के अनुसार बना लें तभी आपकी आयु वेद के अनुसार होगी। यदि मैं शेष 15 वर्ष पूरे नहीं कर सकूंगा तो कहीं न कहीं मे अवश्य ही वेद के विपरीत गया हूगा क्योंकि मुझे ये तो कोई भी पता नहा हे कि मेरा शेष जीवन कितना है? इसलिए मैं अभी से अपने परिवार वालो के लिए घोषणा कर रहा हू कि मेरी मृत्यु के पश्चात् मृत्यु के समय जो दीया-बत्ती करते हैं वह प्रथा गलत है न की जाए, क्योंकि दिये की रोशनी बिजली के अनुसार जीरो है परन्तु जब जीव ने निकलना होता है तो किसी को भी पता नहीं लग सकता और वह दूसरे गर्भ मे चला जाता है इसलिए ये प्रथा गलत है। उस समय सबको गायत्री मत्र का ही जाप करना चाहिए। इसके पश्चात् संस्कार जा ह वह पूर्ण वैदिक रीति से होना चाहिए। स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि शव का जितना वजन हो उतना ही देसी घी और दुगनी हवन सामग्री होनी चाहिए परन्तु स्वामी जी ने जब यह लिखा था उस समय देसी घी ही होता था वनस्पति होता ही नहीं था और उस समय दूध और देसी घी आम होता था। उमकी कोई कीमत नहीं होती थी परन्तु आजकल देसी घी 110/- रुपए किलो ह। आम लाग क्या करते ह कि जब लोग सस्कार करते हैं तो थोडा सा वनस्पति घी ही मुख मे डाल देते हैं और 200 ग्राम सामग्री का डिब्बा खोलकर लकडियो पर डाल दिया जाता है और आग लगा दी जाती है। आज तो आर्य समाजी भी जो वैदिक रीति से सस्कार करते हैं वह भी 5 किलो हवन सामग्री ओर एक किलो देसी घी से सस्कार करते हैं यह भी गलत है। संस्कार के लिए जा वेद मत्र हें वह लगभग 125 के करीब हैं। यह ठीक है कि घी बहुत महंगा ह परन्तु फिर भी 10 किलो देसी घी से कम नहीं होना चाहिए और हवन सामग्री कम से कम 20 किलो अवश्य होनी चाहिए। जो सस्कार होता है उसमें सारे मत्र भी नहीं पढे जाते। पाठ सारे मत्रों का ही होना चहिए और एक यह रिवाज भी पडा हुआ है कि जब श्मशान घाट मे पहुंचते हैं तो पहले शव को बाहर रख लिया जाता है। जितनी भी बहुए होती हैं उनको कहा जाता है कि शव का चक्कर लगाकर पांवो की ओर जाकर माथा टेकें। कोई 5 रुपए कोई 10 रुपए वहा पर रख दिया जाता है। ये प्रथा भी वेद के विरुद्ध है क्योंकि मिट्टी की लाश है जो जीव था वह तो निकल कर उसी समय दूसरे गर्भ में जा चुका होता है। यदि ये पता लगाने के लिए बहुएं कितनी हैं तो उसके लिए तो यह होना चाहिए कि सब बहुएं वहां पर खड़ी होकर पांच बार गायत्री मंत्र का जाप करे और ये भी किया जाता है कि मरने वालों का लड़का या कोई भी सम्बन्धी शव के तीन चक्कर लगाकर घड़ा तोड़ता है। यह भी वेद के विरुद्ध है। उसके पश्चात् 4 दिन के बाद अस्थियां चुनी जाती हैं। वह अस्थियां हरिद्वार में जाकर गंगा में बहाई जाती हैं। यह भी गल्त है। अस्थियां आप जहां पर कहीं भी चलते पानी में बहाई जा सकती हैं। चौथे दिन लोग गरुड पुराण की कथा घरों में रखते हैं। यह भी वेद के विरुद्ध है। उसमें बहुत सी ऊट-पटाग बातें भरी हुई हैं। वेद के अनुसार तो संस्कार करने के पश्चात घर में आकर वहां पर हवन यज्ञ करना चाहिए। स्वामी जी ने तो सारी कारवाई चौथे दिन समाप्त कर दी जाए ऐसा लिखा है परन्तु लोग इसलिए अन्तिम शोक दिवस लम्बा ले जाते हैं कि सारे बाहर के रिश्तेदारों को पता लग जाए। इसलिए एक दिन रख लिया जाता है और हमें चाहिए कि प्रति दिवस से शोक दिवस तक घर में हवन यज्ञ रखा जाए और साथ यदि कथा रखना चाहते हैं तो एक पुस्तक मृत्यु और परलोक जो नारायण स्वामी जी की लिखी हुई है और वह वेद के अनुसार है। जिसमें बहुत बड़ी शिक्षा है। अन्तिम शिक्षा दिवस पर जो स्टेज पर मृतक का चित्र रखा जाता है और उस पर हार भी चढ़ाया जाता है। यह भी हमारे बहुत से आर्य समाजी भाई कर रहे हैं। इसलिए मैं अपने आर्य परिवारों से प्रार्थना करुंगा कि सारी बातें वेद के विपरीत हैं। यह नहीं होनी चाहिएं। जहा पर 100 वर्ष की आयु वेद ने निर्धारित की है। वहां पर हमारे कर्म भी परमात्मा ने देखने हैं कि हमने जो कर्म किए हैं उसके आधार पर ही हमें जीवन मिलेगा क्योंकि देखा जाता है कि कई जीवन का एक वर्ष भी व्यतीत नहीं करते क्योकि उस जीवन का तो जन्म मे कर्म करने का अभी समय ही नहीं मिला। इसके लिए यह है कि जीवन में कोई ऐसे कर्म किए होते हैं कि जन्म लेते ही उनकी मृत्यु हो जाती है कि हमारे बहुत से महापुरुष ऐसे भी होते हैं कि जो वेद के अनुसार ही चलते हैं। परन्तु उनकी हत्या कर दी जाती है। जैसे स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज उनको गोली मार कर उनकी हत्या कर दी गई थी। पं लेखराम जी को छुरा मार दिया गया था इसी प्रकार और भी कई महापुरुषो की हत्या कर दी गई। स्वामी जी महर्षि दयानन्द जी महाराज को जहर देकर उनकी हत्या कर दी गई थी। इसलिए वह 100 वर्ष का जीवन नहीं पूरा कर सके। इसका दण्ड हत्या करने वालों को परमात्मा ठनके किए हुए कर्म के अनुसार अवश्य देगा? इसलिए हम सब प्रतिवर्ष अपने-अपने जीवन की पडताल करें कि मैंने इस वर्ष क्या अच्छा काम किया है। क्या किसी को मैंने हानि तो नहीं पहुंचाई और आगे भी मैं अपने जीवन में किसी की भलाई ही करता जाऊं और अपने जीवन को यज्ञ के रूप में चलाऊं यही मेरा कर्त्तव्य है। पाकिस्तान से आने के पश्चात् मे जालन्धर मे आ गया तो यहा पर 1948 में मैं आर्य समाज अड्डा होशियारपुर जालन्धर का मैंबर बन गया और वहां पर प्रतिदिन हवन यज्ञ करता रहा। पाकिस्तान से आने के पश्चात् अपना तम्बाकू बेचने का कार्य आरम्भ कर दिया तो तीन-चार वर्ष मैं ये काम करता रहा परन्तु एक दिन मेरे मन में विचार पैदा हो गया कि मैं आर्य समाजी होते हुए और प्रतिदिन यज्ञ करते हुए जो मैं काम कर रहा हू वह गल्त है। इस काम को मुझे नहीं करना चाहिए तो मैंने उसी समय इस काम को छोड़ने के लिए निश्चय कर लिया जो कि काम बहुत चला हुआ था, इसको एक दम छोड़ दिया। मेरे रिश्तेदारों और भाईयो ने भी कहा कि इस चले हुए काम को मत छोड़ो परन्तु मैंने इस चले हुए काम को छोड दिया। इस काम को छोड़ने के पश्चात् मुझे नया काम करने के लिए बहुत संघर्ष करना पडा। उसके पश्चात् 1957 में आर्य समाज ने हिन्दी आन्दोलन चलने का ऐलान कर दिया तो मैं उस आन्दोलन में कूद पडा। उसमे भी मुझे रोका गया परन्तु मैंने अपने इरादे को नहीं छोड़ा। उस समय अभी मेरे दो बच्चे छोटे ही थे कोई भी काम करने वाला नहीं था। मैंने अपना कारोबार की दुकान बद कर दी और जालन्धर से एक जत्था लेकर मैंने चण्डीगढ़ में जाकर सत्यग्रह कर दिया और अपनी ग्रिफतारी देकर अम्बाला जेल में चला गया और पांच महीने दुकान बंद रही फिर मैं जेल से रिहा होकर अपने कारोबार में लग गया। उसके पश्चात् 1961 में जनगणना आ गई। उस समय मैं आर्य समाज का मत्री था। उस समय सार्वदेशिक सभा से हमें आदेश मिला कि जनगणना मे सब लोग हिन्दी लिखायें। उस समय हमने एक समिति बनाई और 5 फरवरी 1961 को सारे पजाब में एक मीटिंग रखी वह मीटिंग 5 फरवरी 1961 रविवार 1 बजे होनी थी परन्तु उस समय हमारी मीटिंग पर पजाब की कैरो सरकार ने पाबन्दी लगा दी तो उस समय हमने कैरों सरकार का मुकाबला करते हुए उस पाबदी को तोड़ा। हमारी ग्रिफतारी भी हुई और हम पर लाठी भी चलाई गई। उस समय पंजाब सरकार को झुकना पड़ा और जो पाबंदी एक महीने की लगाई गई थी वह पांच दिन में वापिस लेते हुए यह कहा कि यह पाबंदी लगाना हमारी गल्ती थी। आगे से ऐसी गल्ती नहीं होगी। इस प्रकार हमें और भी कई संघर्ष करने पड़े परन्तु हम हर संघर्ष में सफल होते रहे और मैं यह विश्वास दिलाता हूं कि आगामी जो भी आर्य समाज के लिए संघर्ष करना पड़ेगा वह मैं करूंगा।

—मुलखराज आर्य, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | 2277. श्री पुस्तकाध्यक्ष गुरूकुल कांगड़ी विश्ववि हरिद्वार (उत्तरप्रदेश)



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–55 अंक : 12 सृष्टि संवत 1960853102, 5 अगस्त तथा 12 अगस्त 2001 दयानन्दाब्द 178

योगीराज श्री कृष्ण का जन्म

धर्मवीर आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

भारत एक महान देश है। यह ऋषियों मुनियों का देश है। रणबांकुरो का देश है। नीतिवान व महान तपस्वियों का देश है। यहां एक से एक बढ़ कर महापुरुष हुए हैं उनमे योगीराज श्री कृष्ण का स्थान बहुत ऊंचा है। आज से पाच हजार वर्ष पूर्व इस महान पुरुष का भारत में भाद्रपद की अष्टमी को मथुरा में कस की जेल मे जन्म हुआ था क्योकि इसके माता-पिता वसुदेव व देवकी को इसके मामा कंस ने इसलिए कैद किया हुआ था कि कहीं इनकी सन्तान मुझे मौत के घाट न उतार दे। कहा जाता है कि ऐसी आकाशवाणी हुई थी कि देवकी सन्तान कंस का नाश करेगी और, इस आकाशवाणी को सुन कर कंस ने मृत्यु से बचने के लिए अपनी बहन देवकी और बहनोई वासुदेव को जेल में डाल दिया था ताकि वह उनकी सन्तान को पैदा होते ही मार सके ।

मेरे विचार मे आकाशवाणी कंस के मन व दिमाग की उपज थी। जब कंस ने अपने पिता उग्रसेन जी को राजगद्दी से उतार कर जेल मे डाल दिया और स्वय राजा बन बैठा तो इसका केवल बहन देवकी और उसके पति वसुदेव ने विरोध किया था और उसको ऐसा करने से रोका था। इस पर कंस को भय था कि यदि वसुदेव और देवकी आम जनता से मिलेंगे और दूसरे लोग इनके पास आकर बात करेंगे तो जनता मेरे विरुद्ध हो सकती है। इसलिए उन्हे जेल मे डाल दिया गया ताकि उन्हे कोई मिल न सके और वह भी किसी को न मिल सके। जेल में जो भी वसुदेव से मिलने आता था कस के गुप्तचर उसकी सारी रिपोर्ट कस को पहुचाते थे। कस का यह भी भय हो गया था कि यह दोनो तो मेरे विरोधी है ही इनकी सन्तान भी ऐसी ही होगी वह भी मेरा विरोध करेगी इसलिए इनका वंश ही आगे न चलने दिया जाए। क्योंकि पापी व्यक्ति अपने पाप को छुपाने के लिए किसी की भी हत्या कर सकता है। वह समझता है जिसने मुझे कत्ल करते हुए देख लिया है वह कभी मेरे विरुद्ध आवाज उठा सकता है। इसलिए कातिल उस व्यक्ति को भी मारने का प्रयास करता है। जिसने उसे कत्ल करते देख लिया हो कस ने देवकी और वसुदेव के सामने उग्रसेन को जेल में डाला था वह इस बात के साक्षी थे इसलिए उन्हें भी जेल में डाल दिया गया। कस को पता था जनता तो कुछ दिन के बाद भूल जाएगी कि उग्रसेन भी कभी हमारा राजा था परन्तु यह परिवार कभी नहीं भूलेगा इसलिए उसने वसुदेव और देवकी को मारा तो नहीं क्योंकि उसे पता था इनका वध करने पर जनता बगावत कर सकती है परन्तु उसने उन्हें जेल में डाल दिया और उनकी सन्तान को मारना आरम्भ कर दिया।

भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को रात्रि के 12 बजे श्री कृष्ण जी का जन्म जेल मे हुआ। कहा जाता है कि श्री कृष्ण के पैदा होते ही जेल में पहरेदार सो गए, जेल के दरवाजे स्वयंमेव खुल गए, दिव्य रथ उन्हे गोकुल की तरफ ले जाने के लिए स्वय आ गया, यमुना से पार जाना था। यमुना मे बाढ आई हुई थी वर्षा ऋतु जोरों पर थी। वर्षा भी हो रही थी परन्तु यमुना का जल श्री कृष्ण को देखते ही उनके पाव को छूते ही अपने आप नीचे उतर गया और बिना नौका के वासुदेव श्री कृष्ण को पैदल चल कर गंगा से पार गोकुल में ले गए और वहा उसे नन्द के घर छोड़ कर वहा से नन्द की लडकी को लेकर वापिस उसी प्रकार से जेल मे, मथुरा में आ गए। किसी को भी पता नहीं चला कि क्या हुआ। प्रात. कंस के पहरेदारो को बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी उन्होने कंस को बताया कि देवकी के बच्चा हुआ है। कस पूर्व भान्ति आया उसने देवकी से बच्ची ली और उसे पटक कर पत्थर की सिल पर दे मारा और उसकी हत्या कर दी।

इस सारी घटना से पता चलता है कि यह योजनाबद्ध कार्यक्रम था इसमें जेल के पहरेदारों का भी सहयोग था तथा नन्द व उनके साथियो तथा अन्य मित्रो का भी सहयोग था। मान लिया जाए जेल के पहरेदार सो गए हो परन्तु जेल का दरवाजा कैसे खुल गया। यमुना का पानी कैसे उतर गया, नन्द के घर में उसी समय पैदा हुई लड़की कहा से आ गई। यह सब योजनाबद्ध तरीके से कार्य हुआ। जनता कस के अत्याचारो से दु:खी थी । यह बात सारे मथुरा राज्य मे फैली हुई थी कि देवकी की सन्तान कंस का नाश करेगी। इसलिए देवकी की सन्तान को बचाने के लिए वसुदेव और नन्द दोनो ने सन्तान प्राप्ति के लिए एक ही समय में प्रयत्न किया क्योकि उस समय के लोग बहुत सयमी थे जब चाहते थे जैसे सन्तान चाहते थे जिस समय चाहते थे पैदा करते थे। यही कारण था कि नन्द के घर मे उसी रात्रि में सन्तान हुई। दैवयोग से लडकी पैदा हुई यदि लड़का भी पैदा हो जाता तब भी नन्द अपने लडके को वसुदेव को दे देते क्योकि वह उसका अभिन्न मित्र था और एक सच्चा मित्र अपने मित्र के लिए अपना सभी कुछ न्यौछावर कर देता है।

इसलिए जेल के पहरेदार स्वय सो गए थे या सोने का बहाना करके उन्होने जेल के दरवाजे खोल दिए ताकि वसुदेव श्री कृष्ण को लेकर गोकुल जा सके। मार्ग मे गोकुल तक श्री कृष्ण को ले जाने का सारा प्रबन्ध योजनाबद्ध किया गया था । यमुना पर पहले से नौका विद्यमान थी दोनो तरफ सवारी का पूरा प्रबन्ध था यदि ऐसा न होता तो दिन निकलने से पूर्व तक वसुदेव जेल में वापिस नहीं आ सकता । जाते समय श्री कृष्ण को देख कर तो यमुना का पानी स्वय उतर गया होगा परन्तु वापिस आते समय भी यमुना मे बाढ आई हुई थी तब लडकी को देख कर भी क्या पानी अपने उतर गया होगा। हमारे देश वासियो की एक आदत है कि यह कई बार किसी बात में अतिश्योक्ति कर देते है।

श्री कृष्ण का जन्म मथुरा मे जेल में हुआ परन्तु वह पला गोकुल मे नन्द के घर, माता यशोदा की गोदी मे। यह सब राज श्री कृष्ण के जवान होने तक छिपा रहा परन्तु जब श्री कृष्ण जी जवान हो गए और वह अपनी शक्ति का परिचय जहरीले सर्प को मार कर, कहीं गर्दभ को मार कर, कहीं गिरते हुए पहाड को थाम कर देने लगे तो गोकुल के लोग निश्चिन्त हो गए कि अब श्री कृष्ण का कोई कुछ नहीं बिगाड सकता। कस को भी पता चल गया कि मेरा काल गोकुल मे पल रहा है।

गोकुल मे श्री कृष्ण के साथ साथ वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहणी का पुत्र बलराम भी पल रहा था जो उस समय श्री कृष्ण का साथी था व उसका सगा भाई था। उस समय बहु विवाह की प्रथा थी । रजवाडे (छोटे राजा) कई-कई विवाह कर लेते थे। वसुदेव की भी दो पत्नियां थीं एक देवकी और दूसरी रोहिणी परन्तु रोहिणी को कंस ने जेल मे नहीं डाला था क्योंकि उसे केवल देवकी की सन्तान से भय था इसी लिए उसे जेल में रखा हुआ था।

श्री कृष्ण ने गोकुल मे रहते हुए सारे गोपालों की रक्षा का बीडा उठाया, उनके गोधन की रक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली, स्वय भी गवालो के साथ गौवे चराने जाते थे। शारीरिक शक्ति को अर्जित करने के लिए गौवो का घी, दूध, मक्खन खाते थे और गवालों को खिलाते थे अस्त्र शस्त्र चलाने का अभ्यास करते थे इसके साथ ही सन्दीपनी गुरु के आश्रम मे जाकर श्री कृष्ण और बलराम ने विधिवत शिक्षा ग्रहण की थी। दर्शन शास्त्रो और उपनिषदो की शिक्षा ग्रहण की, योग की शिक्षा ग्रहण की और गुरु के आश्रम मे तप और त्याग का जीवन व्यतीत किया था।

कस के अत्याचारो से मथुरा नगरी के लोगो को मुक्त किया और कस का वध करके अपने नाना उग्रसेन जिनको कस ने जेल मे डाल रखा था उन्हे और अपने माता-पिता को जेल से मुक्त करा कर उग्रसेन जी को मथुरा का राज्य सौंपा। वह चाहते तो स्वय मथुरा के राजा बन सकते थे परन्तु उन्हे राज्य का कोई लोभ नहीं था वह बहुत त्यागी और तपस्वी और महान हस्ती थे। उनके गीता के उपदेश से पता चलता है कि वह बहुत बडे ज्ञानी और महान विद्वान् थे ।

12 अगस्त रविवार को फिर प्रतिवर्ष की भान्ति श्री कृष्ण का जन्म दिन सारे भारत वर्ष व देश-विदेश मे मनाया जा रहा है आओ इस दिन उनके जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवन का निर्माण करे।

"पदार्थ विज्ञान के आधार पर"

कार्बनडाईआक्साईड और हवन-यज्ञ विज्ञान

❑ ले० आचार्य आर्य नरेश जी वे. गवेषक उद्गीथ साधना स्थली

यज्ञ पर उठने वाली आज सबसे बडी शंका यह है कि यज्ञ से कार्बन डाई-आक्साईड उत्पन्न होती है। इसके उत्तर में हम यह कहना चाहते हैं कि साधारणत: किसी वस्तु के जलने तथा यज्ञ की अग्नि में होने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं में परस्पर काफी अन्तर है। सामान्यत: जब भी हम किसी वस्तु को जलाते हैं तो वस्तु में कार्बन तो होता ही है और वह वातावरण की आक्सीजन के साथ मिलकर कार्बन डाई आक्साइड का निर्माण करती है जो कि प्रदूषण को फैलने के साथ-साथ 'ग्रीन-हाऊस प्रभाव' को भी बढाती है।

सामान्यत: यह भी माना जाता है कि यज्ञ मे समिधा (लकडी) के जलने से कार्बन-डाई आक्साइड उत्पन्न होती है। परन्तु यह धारणा सर्वथा गलत है। रसायन विज्ञान के माध्यम से यह बात सिद्ध होती है कि आम चीजों को जलाने और यज्ञ के अनुष्ठान मे काफी अन्तर है। यज्ञ में डालने वाले गोघृत, चावल और मीठे पदार्थों में बीटा कैरोटीन, और कार्बोहाईड्रेट होते हैं। जब हम इन्हे यज्ञ मे जलाते हैं तो ये पदार्थ कार्बन डाई आक्साइड गैस को रूपान्तरित (कान्वैट) करके नेसेन्ट (Nascent) हाईड्रोजन को निकालते हैं जो अत्यन्त प्रक्रियाशील (reactive) होती है और वह कार्बन तथा आक्सीजन के साथ मिल कर फार्मेल्डिहाइड, इथाइल एल्कोहल, और प्रोपिनोइक अमल बनाती है। यह तत्व हानिकारक नहीं है, अपितु विसंक्रमणकारी (disinfective) है और वातावरणीय प्रदूषण को नष्ट करते हैं। यहां फारमेल्डिहाइड के बनने से कार्बन व आक्सीजन के संयोग से बनी 'कार्बन-डाई आक्साइड' गैसे को वातावरण प्रदूषित करने से पृथक कर दिया जाता है। क्योंकि फार्मेल्डिहाइड अस्थाई यौगिक (Unstable Compound) है जोकि जल्दी ही उत्पन्न होकर वाष्प के रूप में उड़ जाता है। इसके विपरीत कार्बन डा. CO_2 है को भारी होने के कारण ब[illegible]न अधिक समय लगता है। जिससे कि यह गैस वैदिक यज्ञ करने पर रूपान्तरित होने से कोई हानि नहीं पहुंचाती, अपितु विसंक्रमणकारी (disinfective) प्रभाव ही उत्पन्न करती है।

यज्ञ में CO_2 गैस के द्वारा किसी भी प्रकार की हानि न होने का वैज्ञानिक कारण यह है कि यज्ञस्थली के चारों ओर पौधे रखने का विधान है। पौधों के रहने से सूर्योदय व सूर्यास्त के समय यज्ञ करने से प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) की प्रक्रिया से Co_2 पौधो द्वारा अवशोषित करके आक्सीजन मुक्त होती है। Co_2 पौधों द्वारा अवशोषित (Absorb) होकर कार्बोहाइड्रेटस का निर्माण करती है जो कि भोज्य पदार्थ के रूप में मनुष्यों के ही काम आता है।

सच्चाई तो यह भी है कि मनुष्यों द्वारा भी श्वास-प्रश्वास की क्रिया में कार्बन-डाई आक्साइड गैस पैदा होती है। पर साधारण बुद्धि के लोग यह नहीं जानते कि $C0_2$ गैस के स्थान पर कारखानो व वाहनों से निकलने वाली सल्फर डाई आक्साइड (So_2) और कार्बन मोनोआक्साइड (co) गैस कहीं अधिक हानिकारक है। वर्तमान के भूमण्डलीय वातावरण में चिन्ता का सबसे बड़ा विषय 'ओजोन' की परत में छिद्रो की निरन्तर वृद्धि है। इसके लिए मुख्य दोषी 'क्लोरो फ्लोरो कार्बन एटम्' (Fcl) है जो कि मुख्य रूप से स्प्रे, परफ्यूम, वातानुकूल उपकरणों तथा रेफ्रीजेटर में शीतकारक के रूप में प्रयुक्त गैसों से निकलते हैं पर यज्ञ करने से यह हानिकारक गैसें निर्माण होने के स्थान पर नष्ट होती है। यज्ञ के अनुष्ठान से वातावरण में उपस्थित अम्लीय वर्षा प्रदूषण (Acid-rain Pollution) नष्ट होकर प्राणीमात्र को जीवन मिलता है।

अत: इन उपरोक्त दोनों वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से यही सिद्ध होता है कि यज्ञ करने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती अपितु पदार्थों के सूक्ष्म रूप से जल कर विभक्त और भेदक रूप धारण कर लेने से वातावरण की शुद्धि, वनस्पतियों की वृद्धि, भूमि की उर्वरा शक्ति का विकास तथा मानव समाज के गम्भीर रोगों का [illegible] होता है। इतना ही नहीं अपितु यज्ञ द्वारा हिंसा एवं प्रदूषण का निराकरण होकर मानव मात्र को भूकम्पों, तूफानों तथा अकालों से बचाया जा सकता है।

125 वर्ष पूर्व महर्षि देव दयानन्द द्वारा दिए गए भारत के इस प्राचीन 'वैदिक-यज्ञ-विज्ञान' को आज अनेक देशो के लोगों ने स्वीकार ही नहीं किया अपितु वे प्रतिदिन यज्ञ करते हैं। वह अपनी चिकित्सा प्रणाली व कृषि उत्कृष्टता में भी इसका प्रयोग कर रहे हैं। भारत, चिली, पौलैण्ड, जर्मन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा हालैण्ड के वैज्ञानिक व बुद्धिजीवी जब इसका अनुकरण कर रहे हैं।

नोट :-विशेष जानकारी हेतु हमारी तुरन्त छपने वाली पुस्तक 'यज्ञ विज्ञान द्वारा कृषि, चिकित्सा और पर्यावरण शुद्धि' पढ़ने का कष्ट करें।

बलिवैश्व देव यज्ञ के महत्व के समझें

❑ मुनि रणजित, आर्य नगर योग धाम ज्वालापुर (हरिद्वार)

मनु प्रोक्त पंच यज्ञो मे एक बलिवैश्व देव या भूत यज्ञ भी है, जिसका विधि विधान महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि एव सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में इस प्रकार किया है कि जब भोजन सिद्ध हो जाए तब भात साक्षार लवण आदि रहित जो भी पदार्थ भोजन मे बना हो, उसमे से दस आहुतियां ओं अग्नये स्वाहा: आदि मन्त्रों को बोलकर पाकाग्नि मे देवें तथा ओं सानुगायेन्द्राय नम: आदि सोलह मन्त्रों को बोलकर सोलह भाग इन्हीं पदार्थों में से अलग निकालें। यदि कोई अतिथि उस समय उपस्थित हो तो उसे ये भाग दे देवे अन्यथा उन्हें भी अग्नि में डाल दें। फिर भोजन के सब पदार्थों में से छ: (6) भाग मनु प्रोक्त शुनाच: पतितानां च श्लोक के अनुसार कुत्ते, कौवे, चींटी आदि आश्रित एवं असहाय प्राणियों के नाम से निकाल कर उनको दे देवें। कोई सम्बन्धित प्राणी न हो तो उसका भाग अन्य प्राणी को भी दिया जा सकता है।

इस स्पष्ट विधान के होते हुए भी विद्वान्, अविद्वान् सब लोग जैसे-तैसे खाद्य पदार्थ की दस आहुतियां देव यज्ञ के पश्चात् उसी हवन कुण्ड में देते दिलाते हैं, जबकि यह बलिवैश्व देव की ऊपरलिखित कोई भी रेखांगित शर्त पूरी नहीं होती। न तो उस समय तक भोजन ही सिद्ध होता है, और न देव यज्ञ की अग्नि पाकाग्नि कही जा सकती है, तथा न ही अतिथि एवं आश्रित प्राणियों के लिए सोलह तथा छ: भाग निकाले जा सकते हैं। दूसरे इसी यज्ञ का जो एक लाभ यह भी लिखा है कि इससे पाकशाला की वायु शुद्ध होती है, वह लाभ भी हवन कुंड में आहुति देने से प्राप्त नहीं होता क्योंकि हवन कुंड पाकशाला में नहीं होता इसलिए हवन कुंड मे आहुति देने से पाकशाला की शुद्धि नहीं हो सकती। इतना ही नहीं कि हवन कुंड में इस यज्ञ की आहुतियां देने की मौखिक प्रेरणा भी दी जा सकती है।

अत: हमारा आर्य जनता से साग्रह नम्र निवेदन है कि हवन कुड में बलिवैश्व देव यज्ञ की आहुतियां देने वाली इस अवैदिक प्रथा को कठोरता या दृढ़ता पूर्वक समाप्त करके धर्म की उत्तम परम्पराओं की रक्षा करें और महर्षि द्रोह के पाप से बचकर उनके सच्चे अनुयायी आर्य बनें इसी में सबका कल्याण है।

आर्य समाज भठिण्डा का चुनाव

आर्य समाज चौक भठिण्डा का चुनाव ब्र० सूर्यदेव जी के पर्यवेक्षण में और श्री पी.डी. गोयल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। बहुसम्मति से श्री ओ.पी. मंगला प्रधान चुने गए और शेष पदाधिकारी मनोनीत करने का उन्हें अधिकार दिया गया।

वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है

—महर्षि दयानन्द

सम्पादकीय.....

कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाएं

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजो मे श्री कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व 12 अगस्त 2001 रविवार को मनाया जाए। इस पर्व को मनाते हुए योगीराज श्री कृष्ण के जीवन पर प्रकाश डाला जाए ताकि उनके वास्तविक स्वरूप को समझ कर लोग उनसे प्रेरणा ले सके।

जन्म दिन मनाना हमारी पुरानी परम्परा है। हम अपने बच्चो का भी जन्म दिन मनाते है। अपना जन्म दिन भी मनाते है और अपने महापरुषों का भी जन्म दिन मनाते है। महापुरुषो का जन्म दिन मनाना हमारे लिए सबसे अधिक प्रेरणादायक सिद्ध होता है। क्योकि उनके पद्चिन्हों पर चल कर ही हमारा और हमारे देश का कल्याण होता है।

योगीराज श्री कृष्ण जी भारतीय नक्षत्र के एक चमकते हुए सितारे है। भारतीय सस्कृति के स्तम्भ है। भारत की जनता की उनके प्रति अगाध श्रद्धा है। कुछ लोग तो उन्हे भगवान का अवतार भी कहते है परन्तु आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज उन्हे एक महापुरुष ही मानता है। एक ऐसा महापुरुष जिन्होने देश की रक्षा, सुरक्षा और सगठन के लिए महान कार्य किया है।

श्री कृष्ण जी का जब जन्म हुआ तो उस समय हमारा देश छोटे-छोटे टुकडों मे बटा हुआ था। पाच-पाच, दस-दस गावों के मुखिया भी राजा बने बैठे थे। कस, जरासध, शिशुपाल जैसे कई अत्याचारी राजा भी उस काल के अन्दर थे जो शक्ति के घमण्ड मे आकर कई प्रकार के अत्याचार जनता पर कर रहे थे। जरासन्ध ने तो कई छोटे-छोटे राजाओं को पराजित करके उनको अपना बन्दी भी बनाया हुआ था और वह उनकी सख्या एक सौ होने पर उन्हे कत्ल करना चाहता था। उधर इन्द्रप्रस्थ राज्य जो उस समय का सबसे शक्तिशाली राज्य था जो आपस की फूट का शिकार हो चुका था। दुर्योधन जैसा लोभी और लालची व्यक्ति उस कुल मे पैदा हो चुका था जो अपने भाईयों को सूई की नोक बराबर भी भूमि न देने की घोषणा कर चुका था। विदेशियों की घुसपैठ आरम्भ हो चुकी थी समुद्री रास्ते से वह भारत मे घुस रहे थे। देश मे अराजकता फैली हुई थी, अत्याचारी राजाओं पर किसी का कोई अकुश नही था। ऐसे समय में श्री कृष्ण जी का जन्म भारत मे हुआ।

श्री कृष्ण जी ने युवा अवस्था प्राप्त करते ही दुष्टो का सहार करना आरम्भ कर दिया था सबसे पहले उन्होंने अत्याचारी कस को भरी सभा मे मौत के घाट उतारा और उसकी जेल से अपने माता-पिता और अपने नाना उग्रसेन को मुक्त करवाया। इसके बाद बडी नीति और बुद्धिमत्ता से जरासन्ध का भी भीम के द्वारा वध कराया शिशुपाल का पाण्डवो के राजसूय यज्ञ के अवसर पर स्वय अपने सुदर्शन चक्र से वध किया। दुर्योधन की नीतियों का विरोध किया और युधिष्ठिर तथा सारे पाण्डवों को अपना सहयोग दिया। उनकी यह नीति भी दुष्टों का नाश व धर्मात्माओं को सहयोग देना थी। वह किसी बडे से बडे शक्तिशाली राजा के आगे कभी नही झुके और न ही धर्मात्माओं के आगे कभी बोले।

श्री कृष्ण जी का बाल्य काल गोकुल मे व्यतीत हुआ । साधारण गवालों के साथ वह मिल कर गौवे चराते रहे । उनमे छोटे बडे का भेद-भाव नही था वह सभी से प्यार करते थे। वह बच्चों मे बच्चे और बडों मे बडे बन जाते थे। उनकी वाणी मे बहुत मिठास थी उनके पास जाने वाला उनका होकर रह जाता था। वह दूसरो की रक्षा के लिए बडे से बडा संकट अपने ऊपर ले लेते थे। वह एक निर्भीक साहसी योद्धा थे। बांसुरी वादन का उन्हे बहुत शौक था उनकी बासुरी की आवाज सुन कर गौवे अपना घास चरना छोड देती थीं और एक जगह इकट्ठी हो जाती थीं।

श्री कृष्ण जी ने अपना निवास मथुरा को छोड कर समुद्र के किनारे द्वारिका में रखा था । यह नगर उन्होंने स्वय वहा बसाया था। यह इसलिए कि वह भारत वर्ष मे विदेश से आने वाले लोगो पर अपनी दृष्टि रख सके और कोई विदेशी भारत मे घुसपैठ न कर सके। उनका गुप्तचर विभाग बहुत ही निपुण था जो उन्हे सारे देश के समाचार देता रहता था कि इस समय भारत देश मे कहा क्या हो रहा है। वह देश को एक सूत्र मे बाधना चाहते थे इसलिए उन्होने इसके लिए पाण्डवो को चुना और उन्हे राजसूय यज्ञ करने की प्रेरणा दी ताकि यज्ञ के घोडे को छोड कर सभी छोटे-छोटे राजाओ को परास्त करके उनके राज्यो को इन्द्रप्रस्थ के राज्य मे सम्मिलित किया जा सके।

श्री कृष्ण जी ने कौरवो और पाण्डवो को एक सूत्र मे बाधने का बहुत प्रयास किया । वह युद्ध नही चाहते थे, शान्ति चाहते थे इसलिए वह पाण्डवो के राजदूत बन कर दुर्योधन के पास स्वय गए थे ताकि वह उन्हें समझा सके परन्तु कुबुद्धि दुर्योधन ने उनकी एक न मानी विनाश काले विपरीत बुद्धि वाली बात हुई आखिर कौरवो और पाण्डवो का युद्ध हुआ। इस युद्ध मे श्री कृष्ण ने अर्जुन का रथ चलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और इसमे अर्जुन का मार्ग दर्शन किया। युद्ध अर्जुन ने किया परन्तु नीति श्री कृष्ण की ही चलती रही और इसी से अर्जुन को सफलता मिली।

अर्जुन जब युद्ध करने से इन्कार कर देता है तो श्री कृष्ण ने अपनी बुद्धिमत्ता और अपनी योग्यता से उसे युद्ध के लिए तैयार किया। इस अवसर पर अर्जुन को दिया गया ज्ञान गीता के रूप मे प्रसिद्ध है। गीता का ससार की सभी भाषाओ मे अनुवाद हुआ है और देश-विदेश के लोग आज तक गीता को पढ कर सुन कर अपने-अपने जीवन का निर्माण कर रहे है। जो ज्ञान उन्होने केवल अर्जुन को समझाने के लिए युद्ध भूमि मे दिया था जब दोनो सेनाए आमने-सामने खडी थी वह ज्ञान आगे चल कर प्रत्येक मानव के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। आज गीता के प्रति सभी की आस्था है।

श्री कृष्ण मे मित्र भाव कूट-कूट कर भरा हुआ था। अर्जुन को उन्होने अपना सखा बनाया तो उसका पूरा-पूरा साथ निभाया और जो कुछ उनसे हो सकता था वह उसके लिए किया। उन्होने सुदामा को अपना मित्र बनाया तो सुदामा की दीन-हीन दशा को देख कर उनकी आखो से अश्रुधारा बह उठती है और अपने हाथो से उनके पावो को धोते है। उनके कुछ बिना मागे ही अपने व्यक्ति भेज कर उनका मकान भी बनवा देते है सारी खाद्य सामग्री भी भेज देते है। सुदामा विदाई के समय निराश था कि श्री कृष्ण के पास आया भी परन्तु मागा कुछ भी नही परन्तु जब अपने घर गया और सारी बात का पता चला तो वह कह उठा वाह मित्र ! दे भी सभी कुछ दिया परन्तु जिक्र तक नही किया कि मैने कुछ दिया है।

इस प्रकार हम सब जब कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाते है तो हमे योगीराज श्री कृष्ण जी की याद अनायास ही आ जाती है। 12 अगस्त रविवार को इस बार कृष्ण जन्माष्टमी है। इसलिए इस दिन सभी आर्य समाजों मे यह पर्व मनाया जाना चाहिए।

-हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

नवांशहर पहुंचे

आर्य समाज नवाशहर की ओर से आर के आर्य कालेज नवाशहर मे 12-8-2001 रविवार को श्री कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व प्रात 9 बजे से दोपहर एक बजे तक मनाया जा रहा है। इसमे नवाशहर की सभी शिक्षा सस्थाए व आर्य बन्धु व बहने तो भाग लेगी ही परन्तु इसके साथ पजाब की अन्य आर्य समाजों से भी आर्य जन इस अवसर पर नवाशहर पहुच कर इस कार्यक्रम को सफल बनाए। आर के आर्य कालेज नवाशहर की स्वर्ण जयन्ती भी मनाई जा रही है। इस कार्यक्रम मे भी उन्हे सभी का सहयोग मिलना चाहिए।

इसलिए नवाशहर के सभी बन्धु तथा बहने व पजाब की अन्य आर्य समाजो के अधिकारी व सदस्य इसमे अवश्य सम्मलित हों। **-हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान**

संसार की प्रथम आर्य समाज : कुछ रोचक तथ्य

❑ *डॉ० भवानी लाल भारतीय*

विश्व की प्रथम आर्य समाज मुम्बई के गिरगाव मोहल्ले की काकडवाडी गली मे स्थित है। यद्यपि इस आर्य समाज की स्थापना स्वय ऋषि दयानन्द ने 10 अप्रैल 1875 शनिवार को माणेक जी अदेर जी नामक एक पारसी सज्जन की वाटिका में की थी, किन्तु भवन का निर्माण 1882 मे हुआ, जबकि 27 फरवरी 1882 को सेठ गोकुलदास करमसी की 982 वर्ग फुट जमीन चौदह हजार रुपयो में मन्दिर निर्माणार्थ खरीदी गई। समाज भवन का शिलान्यास स्वय स्वामी जी ने किया।

96 सदस्य :–आरम्भ के वर्ष (1875-76) में इस समाज के कुल पजीकृत सदस्यो की सख्या 96 थी। जातिप्रथा हिन्दू समाज मे तब भी थी और आज भी है। इन सदस्यो की जातियो का विवरण भी उपलब्ध है जिससे जाना जाता है कि मुख्यतया ब्राह्मण और वैश्य वर्ग के लोगो ने ही आज से 125 वर्ष की पूर्व आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण की थी। ये लोग प्रधानतया समाज के मध्यम वर्ग के लोग थे। जब हम इन सदस्यो के जातिवार आकडे पर नजर डालते हैं, तो ज्ञात होता है कि 96 सभासदो में सर्वाधिक 36 ब्राह्मण थे। इससे यह ज्ञात होता है कि हिन्दू समाज का प्रमुख बुद्धि प्रधान घटक ब्राह्मण ही स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं की ओर प्रथमतया आकर्षित हुआ था।

भाटिया लोगों ने स्वामी जी को बुलाया :–ब्राह्मणो के पश्चात् आर्य समाज की सदस्या ग्रहण करने वालो मे वैश्य लोग थे, जिन्हे चार वर्गो मे बाटा जा सकता है। सर्वाधिक वैश्य गुजराती भाटिया थे। इन लोगो मे तब तक वल्लभ सम्प्रदाय की आस्था रही, किन्तु गोकुलिया गुसाई कहलाने वाले इस सम्प्रदाय के आचार्यो (ये महाराज कहलात थे) की चरित्र भ्रष्टता तथा व्यभिचार वृत्ति से दुखी इन भटिया लोगो ने ही सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द को मुम्बई मे आमंत्रित किया तथा वल्लभ सम्प्रदाय के पाखडो एव दुराचारो का भंडाफोड करवाया। इस प्रथम आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण करने वालो में भाटिया वर्ग के लोग 11 थे। सत्रह वैश्यो को वाणीया (बनिया) उल्लिखित किया गया है। कच्छ के वैश्यों में लोहाना जाति के तीन तथा भणशाली जाति के छह सदस्यों ने उस समय आर्य समाज मे नाम लिखाया। अन्य जातियों की जानकारी इस प्रकार है: बंगाली (जीविका निर्वाहार्थ जो मुम्बई मे आ बसे थे) 3, महाराष्ट्री प्रभु कायस्थ 1 खत्री 2 सोनी 1 मराठे 2 चौबे (उत्तरप्रदेश) 1, उदासी (साधु) 1, तथा अज्ञात जाति 2 ।

उपर्युक्त आरम्भिक 96 आर्य सदस्यो के पेशो की जानकारी भी प्राप्त होती है सर्वाधिक 17-17 लोग या तो नौकरी करते थे अथवा व्यापारी थे। अन्ना मार्तण्ड जोशी (मराठी ब्राह्मण), जो इस आर्य समाज के प्रथम उपमत्री थे, गवर्नमेट के केन्द्रीय प्रेस मे नौकरी करते थे। कल्याण जी नारायण जी ग्रीब्ज कॉटन एड कम्पनी मे कार्यरत थे। केशवलाल निर्भय राम (गुजरात वाणिक) जाफरसन सेन (सौलिसिटर) के कार्यालय मे लिपिक थे। झवेरीलाल घेला बाई हाईकोर्ट मे अनुवादक थे, जबकि प्रेमजी गोकुलदास जीवराज बाल स्पिनिंग मिल मे क्लर्क थे। मोतीलाल हिम्मतराम (गुजराती ब्राह्मण) मुम्बई बैंक मे कार्य करते थे। मुम्बई तब भी और आज भी देश का प्रधान व्यापारिक नगर रहा है। व्यापार व्यवसाय में दलालो की प्रधान भूमिका रहती है । इस आर्य समाज के सभासदो मे से 22 दलाली करते थे। यह एक अच्छा संकेत है कि इन सदस्यो मे 15 विद्यार्थी थे। कानजी भगवान सोनी एल्फिस्टन हाई स्कूल मे पढते थे। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा ऋषि के प्रखर शिष्य श्याम जी कृष्ण वर्मा उस समय इस समाज के सदस्य बन चुके थे। उम समय उनकी आयु 18 वर्ष की थी। और फोर्ट हाई स्कूल मे पढते थे। एल्फिस्टन कालेज से मैट्रिक कर आगे पढने वाले सदस्य छात्रो के नाम है–केशव मोरेश्वर वीरकर, गणेश श्री कृष्ण खापर्डे (कालान्तर मे प्रसिद्ध हिन्दू नेता) गोविन्द वासुदेव, तुलजाराम चुन्नीलाल। स्वामी जी के विश्वासपात्र भक्त तथा कालान्तर मे मुम्बई के गवर्नर की कौसिल के सदस्य रहे राव गोपालराव हरिदेशमुख के पुत्र मोरेश्वर गोपाल देशमुख ने जब 1875 में आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण की, उस समय वे ग्रान्ट मैडिकल कालेज के छात्र थे तथा आगे चलकर उन्होंने डाक्टर के व्यवसाय को अपनाया। पं श्याम जी कृष्ण वर्मा के साले तथा प्रसिद्ध सेठ छबीलदास लल्लूभाई के पुत्र रामदास भी इस समय एल्फिस्टन कालेज मे पढते थे। इस प्रकार विद्यार्थियों का आर्य समाज की ओर आकर्पित होना यह सूचित करता है कि तत्कालीन समाज का युवा वर्ग ऋषि की शिक्षाओं से प्रभावित था और आर्य समाज को स्वदेश का हितकारी मानता था।

आर्य समाज के इस प्रारम्भिक सदस्यो मे चार अध्यापक (मास्टर) हैं । सविता नारायण गणपति नारायण सस्कृत पढाने थे, जबकि गुजराती, बनिया प्राण जीवन दास कहानदास अग्रेजी के शिक्षक थे। अन्य व्यवसायो मे लगे सदस्य इस प्रकार थे–मणिकलाल घनश्यामदास जोहरी (झवेरी) का काम करते थे। हीरा के व्यवसाय मे लगे 5 व्यक्ति भी सभासद थे। पुरुषोत्तम भगवानदास मुनीम थे, जबकि नथू विक्रमजी किसी पत्र के रिपोर्टर (सवाददाता) थे। भास्कर गोविन्द नाडकर्णी को अधिपति (जमींदार) बताया गया है, जबकि समाज के प्रथम प्रधान गिरधरलाल दयाल दास बी ए एल एल बी वकालत करते थे। अन्ना मोरेश्वर कुन्ते एम डी थे और उन्होने डाक्टरी के व्यवसाय को अपनाया था। घोगालाल लक्ष्मीकान्त को मेहता बताया गया है। सम्भवत: वे लेनदेन के व्यवसाय करते होंगे। लक्ष्मण नारायण मुद्रक थे, किसी प्रेस के मालिक रहे होंगे। दुर्गाशकर भगवान दास को शास्त्री बताया गया है। शायद वे पौरोहित्य कर्म मे लगे रहे हो। आर्य समाज के इन सभासदो की सूची मे 31वीं सख्या पर स्वय ऋषि का नाम पडित दयानन्द सरस्वती स्वामी अकित है। इन्हे सन्यासी कहा गया है। ध्यातव्य है कि सूची के व्यवसाय के लिए गुजराती पर्याय शब्द 'धन्धो' का प्रयोग हुआ है। स्वामी जी का धधा 'सन्यासी' होना बताया गया है। छह सदस्यो के व्यवसाय का पता नहीं चलता।

शैक्षिक योग्यता · अब इन 96 सदस्यो की शैक्षिक योग्यता (गुजराती मे केलवणी) की ओर ध्यान दे। यह ज्ञात रहे कि विगत शती में भारत मे शिक्षा का स्तर बहुत ऊंचा नहीं था। विदेशी शासको ने पुरातन भारतीय शिक्षा व्यवस्था को तो नष्ट कर ही दिया था, नवस्थापित अंग्रेजी विद्यालय सामान्यजन को साक्षर भी नहीं बना सके थे। आर्य समाज के इन आरम्भकालीन सदस्यों में लगभग पचास प्रतिशत तो साधारण पडित थे, जिन्होने खानगी अभ्यास (ग्रामीण पाठशालाओ की पढाई) किया था। इनकी संख्या 45 थी। इसके पश्चात मैट्रिक तक पढे सदस्य 13 थे। अग्रेजी पढे लिखे सदस्य चौदह थे, जिनमे कल्याण जी नारायण जी को सस्कृत का भी ज्ञान था। डाक्टर आफ मैडिसिन की उपाधि वाले अन्ना मोरेश्वर ने चिकित्सक की योग्यता प्राप्त की थी तो रघुनाथ बापू दाणी मराठी माध्यम मे पढे डाक्टर थे। 4 सदस्य तो अभी स्कूलो मे पढ रहे थे। दलपतराम गोपालदास व तुलजाराम चुन्नीलाल एल्फिस्टन हाई स्कूल मे पढ रहे थे। गणेश श्री कृष्ण खापर्डे एल्फिन्स्टन कालेज की एफ ए कक्षा मे थे और उन्होंने सस्कृत विषय ले रखा था। श्याम जी कृष्ण वर्मा भी फोर्ट हाई स्कूल मे पढते थे। बाबा किशनदास वैरागी साधु थे, जो साधारण हिन्दी का ज्ञान रखते थे, किन्तु ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों मे आस्था रखने के कारण वे आर्य समाज मुम्बई की प्रथम अन्तरग सभा (व्यवस्थापक मण्डली) के सभासद थे। केवल सस्कृत पढे सभासदो की सख्या छह थी। राव गोपालराव हरि देशमुख के द्वितीय पुत्र रघुनाथ गोपाल देशमुख बी ए पास थे और किसी सरकारी दफ्तर मे अनुवादक थे। स्वामी जी स्वय इसी समाज के सभासद थे और उनकी योग्यता सस्कृत तथा वैदिक सस्कृत अकित है। आठ व्यक्तियो की योग्यता का उल्लेख नही मिलता।

अन्य जानकारी ·–यहा तक तो हमने आपको ससार के प्रथम आर्य समाज के आरम्भकालीन 96 सदस्यो की जाति, व्यवसाय तथा शिक्षा के बारे मे बताया। कुछ अन्य बाते भी जानने योग्य है। इस आर्य समाज के प्रथम प्रधान गिरधर लाल दयालदास कोठारी बी ए एल एल बी थे और पेशे से वकील थे। मत्री का पद पानाचद आनन्द जी पारेख को दिया गया था, जो व्यापारी थे। इस आर्य समाज के प्रथम वर्ष के कार्यकाल मे स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज का भविष्य, वैदिक आर्य इतिहास (सात खडो मे) तथा देशाभिमान जैसे विषयों पर प्रवचन किए। अन्य व्याख्याता थे गिरधर लाल दयालदास कोठारी, श्यामजी कृष्ण वर्मा, अन्ना मार्तण्ड जोशी, पानाचद आनन्द जी पारेख, प्राणजीवन दास कहानदास, (शेष पृष्ठ 5 पर)

क्या लेकर जाओगे ?

❑ देवी प्रसाद मस्करा

मनुष्य का जन्म मृत्यु के साथ हुआ है। जहां मृत्यु निवास करे उसे मृत्युलोक कहते हैं। उस मृत्यु लोक में सभी मरने वाले लोग रहते हैं। वे मृत्यु से इतने ज्यादा प्रभावित हैं कि दिन-रात मृत कालीन अर्थात् मरी हुई बाते किया करते हैं। आश्चर्य तो यह है कि मनुष्य बार-बार जन्म लेकर मृत्यु के मुख मे जाने का प्रयास करता रहता है, सबके शरीर पर मृत्यु बैठी मुस्करा रही है। फिर एक परिचित दूसरे परिचित से पूछता है। आप कुशल हो न ? दूसरा हा में जवाब देता है। मनुष्य का जन्म तो मृत्यु के साथ हुआ। परिवार वालो ने खुशी मनाई। उन्हे जन्म लेने वाला तो दिखलाई दिया परन्तु उसे साथ जन्म लेने वाली मृत्यु दिखलाई नही पडी। बस यही है जगत का अज्ञान । ज्ञानी पुरुष वही है जो इस मृत्यु से छुटकारा पाने का प्रयास करता है। इस बार तो मृत्यु ही सही पर आगे इस जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पा लूगा। ऐसी कल्पना और प्रयत्न ज्ञानवान पुरुष ही करते हैं। अज्ञानी तो बार-बार जन्म लेते और मरते हैं।

मनुष्य शरीर की आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु काम करता है, करना भी चाहिए। वह दौड धूप करता, चक्कर लगाता, बैंक जाता, लेनदेन करता और रुपए कमाता है। फिर जमीन लेता, मकान बनाता, फ्लैट खरीदता और फैक्टरी लगाता है। वह पोश इलाके मे रहता, कार मे घूमता और हजारो लाखो क्या करोडो रुपयो की बातें करता है। जब जमीन-जायदाद है, दोस्त-कुटुम्ब हे, रुपयो के खजाने हैं। दुनियां की सब आवश्यक चीजे उसके पास मौजूद हैं। परन्तु उसके पास सन्तोष रूपी धन नहीं है। वह अधिक काम करता, प्रत्येक क्षण का मूल्य वह रुपयो में आंकता है। इस तरह वह समय बचाता, व्यस्त रहता और रुपए बटोरता है। अब वह रुपयों का यों ही भूखा हो गया। पर रुपयों की भूख अब नहीं मिटती। इस लत ने उसे दबोच लिया। अत: वह काम करते रुपए कमाते, धन बटोरते थक जाता है, व्याकुल होता है और अन्त में रोगग्रस्त हो जाता है।

धन थोड़ा चित्त चौगुना, वित्त में चित्त न समाय।
न वित्त बढ़ै, न चित्त घटै, सोचत ही दिन जात॥

स्मरण रखिये–मृत्यु हमारे सिर पर खडी है। यह मालूम नहीं है कि किस दिन मृत्यु की कुटिल काली मूर्ति प्रकट हो जाए। किस क्षण ससार से चलने की तैयार हो जाए। कल की खैर नहीं, परसो की कौन कहे। वास्तव मे मानव जीवन एक बुलबुले के समान है, जो क्षणभर मे नष्ट हो सकता है। जब जाओगे तो क्या लेकर जाओगे ? जो कुछ जीवन मे हमने कमाया है, वह साथ नहीं जाएगा। बेक बैलेस कार, कोठी, जेवर यह सब सग्रह यही रह जाएगा। प्राण निकलते ही परिवार वालो से भी हमारा सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है मरने के पश्चात जो साथ जाता है, उसकी लोग चिन्ता नहीं करते। पजाब का महाराजा रणजीत सिह कोहेनूर हीरा यहीं छोड कर चले गए। अगुली मे जो अगुठी होती है उसको भी घरवाले निकाल लेते हैं।

अन्त समय मे परमेश्वर का स्मरण करने वाला मनुष्य परमेश्वर भाव को प्राप्त होता है, इसमे सन्देह नहीं है। परन्तु यह है बडा कठिन काम। अन्त समय मे शरीर शिथिल हो जाता है, मस्तिष्क कार्य नहीं करता, मन, बुद्धि, चित्त आदि सब ही क्षीण हो जाते हैं, सोच विचार करना भी असम्भव हो जाता है और किसी समय तो शरीर की पीडा भी असह्य हो जाती है। कई तो मूर्छित हो जाते हैं ऐसे समय में परमेश्वर का स्मरण करना कैसे सम्भव हो सकता हे ?

इसके उत्तर मे इतना ही कहना है कि मरने के समय मनुष्य कितना भी क्षीण हो, तो भी कुछ कहता ही है, अर्थात् ससार की बातो का स्मरण वह करता है। दिन रात सांसारिक बातो का ध्यान करने के कारण इसको सासारिक बातो का स्मरण मृत्यु के समय भी हो जाता है। यदि यह बात सत्य हे तो हमे एक विशेष महत्वपूर्ण नियम का पता लग गया कि, मनुष्य जिस बात का दिन रात ध्यान करेगा, उसका स्मरण उसको मृत्यु का समय होगा ही।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
त तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावित:॥ गीता 8-6

भावार्थ :–मनुष्य ईश्वर का नित्य स्मरण करता रहेगा तो, उसे अत समय मे भी ईश्वर का स्मरण होगा। जिसको ईश्वर का स्मरण होगा, वह नि:सन्देह ईश्वर भाव को प्राप्त होगा। जो मनुष्य जिस भावना का सदा स्मरण करता है, उसका मन सदा उसी भावना में सलग्न रहने के कारण देह छोडने के पश्चात् भी उसी भावना को प्राप्त होता है। अर्थात् जो शुभ भावना धारण करेगा उसको शुभगति होगी। अत· मनुष्य सदा शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप ईश्वर का स्मरण कर उसी मे मन बुद्धि को लगावे और उसी मे तन्मय रहे। ऐसा करने से वह उसी के स्वरूप को पा सकेगा, इसमे सन्देह नहीं है। इस सतत ईश्वर का ध्यान करन का नाम ही गीता का अभ्यास योग है।

जैसे लोहे को अग्नि मे रखने से वह कुछ समय मे अग्नि भाव युक्त होकर अग्निरूप हो जाता है। लकडी भी इसी तरह अग्निरूप धारण कर लेती है। लकडी प्रारम्भ मे जलती नहीं, परन्तु जिस समय वह अग्निरूप होती है उस समय अग्नि के सामान हो जाती है, अर्थात् अग्नि में सब गुण धर्म लकडी और लोहे मे आ जाते हैं। इसी तरह यह सिद्ध पुरुष भी परमात्मा के सब गुण धर्मों से युक्त हो जाता है अर्थात् वह परमात्मभाव धारण कर लेता है। यदि यह कहा जाए तो भी अनुचित न होगा कि इस समय वह परम-आत्मा ही बन जाता है। वह नर से नरोत्तम बन जाता हे।, अशिव से शिव हो जाता है, पुरुष से पुरुषोत्तम बन जाता है।

जब तक मनुष्य मे बल रहता है तब तक वह मृत्यु के नग्न सत्य को भूले रहता है। अज्ञानी मनुष्य जीवन की वास्तविक समस्याओ के प्रति कोई विवेकपूर्ण जिज्ञासा नही करता। सभी लोग सोचते हे कि वे अभी नहीं मरगे, यद्यपि प्रत्यक क्षण वे नेत्रो से मृत्यु का प्रमाण देखा करते है। पशुता ओर मानवता मे यही अन्तर हे। बकरी जैसे पशु के आगे डाली गई घास के पत्ते वह प्रेमपूर्वक खाती रहती है, उसको यह ज्ञान नही होता कि कुछ ही देर बाद उसके गले पर छुरी फिरने वाली है। यदि मनुष्य को यह ज्ञान नहीं कि कभी भी उसकी मौत आने वाली है, तो फिर उस मनुष्य मे ओर पशु मे अन्तर ही क्या रह जाता है। परीक्षित महाराज को चेतावनी दी गई थी कि सात दिनो के अन्दर उनकी मृत्यु हो जाएगी। इतना सुनते ही उन्होंने तत्काल महल का त्याग कर दिया । हमको निश्चित मृत्यु की तिथि की जानकारी नहीं रहती। यहा तक कि कोई महात्मा या महापुरुष भी यह गणना नहीं कर सका कि अगले पाच मिनटो मे उनकी मृत्यु होने जा रही है।

(पृष्ठ 4 का शेष)

लीलाधर हरि, आत्माराम कुवर जी, आत्माराम बापू दलवी, केशवराम निर्भयराम, वामन आबा जी मोडक, विष्णु परशुराम शास्त्री, महादेव मोरेश्वर कुन्ते तथा अन्ना मोरश्वर कुन्ते। विष्णु परशुराम शास्त्री पौराणिक विद्वान् थे, किन्तु स्वामी जी के प्रशसक थे। उन दिनो आर्य समाज के अन्य मतवालो के भी व्याख्यान होते थे। ब्रह्मसमाज के बापू नवीनचन्द्र राय तथा नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय महाशय का भाषण तो अंग्रेजी में मूर्ति पूजा निषध विषय पर हुआ था। प्रार्थना समाज के ग ब महीपतराम रूपराम ने भी मूर्ति पूजा पर व्याख्यान दिया था।

आरम्भकाल के आर्य सभासदो मे से कुछ के बारे मे विशिष्ट जानकारी इस प्रकार है ·

मूलजी ठाकरसी ने अपनी विदेश यात्रा के दौरान स्वामी दयानन्द का परिचय थियोसोफिकल सस्था के सस्थापको को एक जलयान मे दिया था। रामदास छबीलदास बाद मे बैरिस्टर बने। वे सस्कृत के उच्च कोटि क कवि थे। उनकी बहिन भानुमती का विवाह श्यामकृष्ण वर्मा मे हुआ था। लीलाधर हरि आर्य समाजी बनने के पहले कट्टर वेष्णव थे तथा वल्लभाचार्य मत के अनुयायी थे। इस सम्प्रदाय के पाखडो मे दुखी होकर वे ऋषि के अनुयायी बने। सेवकलाल कृष्णदास महर्षि के कट्टर भक्त थे तथा कालान्तर मे मुम्बई आर्य समाज के मत्री बने। इन्होने स्वामी जी के निकट रह कर उनसे न्यायदर्शन तथा पातजल महाभाष्य का विशद अध्ययन किया था। प श्याम जी कृष्ण वर्मा ने भी महाराज के चरणो मे बैठकर सस्कृत का अध्ययन किया था

–नन्दनवन, जोधपुर

लुधियाना में सभा प्रधान पं. हरबंस लाल जी शर्मा का भव्य स्वागत

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा गुरुकुल कागडी के कुलाधिपति बनने के बाद पहली बार लुधियाना मे आर्य समाज हबीब गज के उत्सव पर 29-7-2001 को आए थे। इस अवसर पर लुधियाना की सभी आर्य समाजो के अधिकारियों व प्रतिष्ठित महानुभावो ने लुधियाना पहुचने पर उनका भव्य स्वागत व सम्मान किया।

आर्य समाज हबीब गज लुधियाना की प्रसिद्ध आर्य समाज है। आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री आशानन्द जी आर्य इस आर्य समाज के प्रधान हैं। उनकी देखरेख मे इसका सारा कार्य चलता है 26 से 29 जुलाई तक इस आर्य समाज का उत्सव सम्पन्न हुआ। 29-7-2001 रविवार को विशेष समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रतिदिन पूज्य स्वामी माध्वानन्द जी, ब्र० मूर्यदेव जी, श्री प० विजय कुमार जी शास्त्री, श्री प योगराज जी शास्त्री के उपदेश व श्रीमती विनोद गाधी तथा दूसरी कई बहनो के भजन होते रहे। श्री सत्यपाल जी गोस्वामी डिप्टी स्पीकर विधान सभा पजाब ने इस अवसर पर अपने विचार रखे और एक लाख रुपए देने की घोषणा की है।

इस उत्सव मे जालन्धर नवाशहर, फगवाडा, रामा मण्डी, तलवाडा टाऊनशिप, गोनियाना मण्डी, जैतो मण्डी, सिरकी बाजार भठिण्डा, चौक भठिण्डा, सिकन्दरपुरा भठिण्डा, चावा पायल, साहनेवाल से भी कई महानुभाव सम्मिलित हुए। ध्वजारोहण आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के उपप्रधान श्री सुदर्शन शर्मा सुपुत्र श्री प हरबस लाल जी शर्मा ने किया। सम्मलन की अध्यक्षता सभा प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा ने की।

सभा प्रधान जी का स्वागत जिला आर्य सभा की प्रधान श्रीमती राजेश शर्मा, स्त्री आर्य समाज दा बा की प्रधाना तथा मन्त्री श्रीमती जनकरानी आर्या, वैकफिल्ड से श्रीमती सावित्री देवी, श्री हरीश सूद, साहनेवाल के प्रधान श्री वजीर चन्द जी, अशोक नगर से श्री राजेन्द्र बेदी, किदवई नगर से श्री बूटा राम जी, आर्य समाज साबुन बाजार के प्रधान श्री उष्णाक राय जी, मन्त्री श्री ओ पी टण्डन जी, श्री हरबस लाल जी सेठी, श्री नवदीप भारद्वाज, सिविल लाईन से श्री वैद्य वेणी प्रसाद जी, माता सरला लूम्बा जी, दयानन्द पब्लिक स्कूल की प्रिंसिपल सुनीता जी मलिक, गर्ल्ज स्कूल की प्रिसिपल कान्ता सूरी जी, फोकल प्वाईंट से श्री बलदेव राज, माडल टाऊन से श्री विजय कुमार स्याल, हबीबगज से नौजवान सभा के अधिकारी व मन्त्री श्री जनक राज भगत, श्री डा जगदीश जी, श्रीमती विनोद गाधी, श्री वेद भूषण मदान, ओम प्रकाश गुप्ता, आर्य समाज जवाहर नगर के मन्त्री श्री विजय सरीन जी प्रधान । श्री राम लाल गान्धी, तलवाडा से श्री मनोहर लाल आर्य, फगवाड़ा से श्री देशबन्धु चोपडा, भठिण्डा से श्री कृष्ण लाल, श्री चमन लाल मेहता, श्री राजेन्द्र जिन्दल तथा अन्य बहुत से महानुभावो ने सभा प्रधान श्री प हरबंस लाल जी शर्मा को माल्यार्पण करके उनका भव्य स्वागत किया।

इस अवसर पर नवाशहर से श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल, श्री प्रेम भारद्वाज तथा उनके साथी, आर बी स्कूल का सारा स्टाफ, दयानन्द पब्लिक स्कूल का सारा स्टाफ तथा बच्चे, आर्य सी सै स्कूल का स्टाफ तथा बैण्ड, गर्ल्ज स्कूल की प्रिंसिपल तथा स्टाफ, तथा जिला लुधियाना की लगभग सभी आर्य समाजों, स्त्री आर्य समाजो के अधिकारी व सदस्य इस उत्सव मे पधारे और उन्होने इसमे अपना पूरा-पूरा महयोग दिया।

इस प्रकार इस अवसर पर जहा सभा प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा का भव्य स्वागत किया गया वहा सभा उपप्रधान सुदर्शन शर्मा का भी स्वागत किया गया।

अन्त मे इस आर्य समाज मे साय काल तक ऋषि लगर चलता रहा जिसका सारा प्रबन्ध नोजवान सभा हबीबगज के कार्यकर्त्ताओ ने किया जिसमे भारी सख्या मे आर्य बन्धुओ व बहनो न भोजन किया। मै लुधियाना के उन सभी आर्य बन्धुओ व बहनो का धन्यवाद करता हू जिन्होने इस उत्सव को सफल बनाने के लिए हमे पूरा-पूरा सहयोग दिया मै उन आर्य बन्धुओ का भी धन्यवाद करता हू जो लुधियाना से बाहर की आर्य समाजो से दूर-दूर से यहा पधारे और हमारा उत्साह बढाया। मैं सभा प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा, सभा उप प्रधान श्री सुदर्शन जी शर्मा, सभा कोषाध्यक्ष श्री प्रेम भारद्वाज का विशेष रूप से धन्यवाद करता हूं। **–जनक राज भगत, मन्त्री**

आर्य विद्या परिषद पंजाब से सम्बन्धित शिक्षा संस्थाओं के प्रिंसिपलों व अधिकारियों की सेवा में

आर्य विद्या परिपद पजाब से सम्बन्धित शिक्षण संस्थाओं को सहर्ष सूचित किया जाता है कि राधा कृष्ण आर्य कालेज नवाशहर अनेक सोपानो को पार करता हुआ वर्तमान वर्ष स्वर्ण जयन्ती वर्प के रूप मे मना रहा है और उस स्वर्ण जयन्ती का शुभारम्भ श्री कृष्ण जन्माष्टमी से किया जा रहा है।

इसी उपलक्ष्य मे कालेज की ओर से अक्तूबर मे सोवनीयर प्रकाशित किया जा रहा है। सभी प्रधानाचार्यो से विनम्र निवेदन है कि अपनी अपनी सस्थाओ की ओर से उचित विज्ञापन प्रकाशित कराने हेतु शीघ्र भेजने की कृपा करे।

इस सम्बन्ध मे रेट निम्न प्रकार होगे। पूरा पृष्ठ 5000/- रुपए। आधा पृष्ठ 3000/- रुपए । चौथाई पृष्ठ- 1500/- रुपए। सबधित धनराशि प्रिसिपल आर के आर्य कालेज नवाशहर के नाम चैक/ड्राफ्ट के रूप मे भेजी जाए। साथ मे विज्ञापन सामग्री भी भेज देवे ताकि समय पर उसमे आपका विज्ञापन छप सके। हम चाहत हे कि सभा से सम्बन्धित सभी स्कूलों, कालेजो का आपस मे तालमेल बना रहे। **–देवेन्द्र नाथ शर्मा,** रजिस्ट्रार, आर्य विद्या परिपद, पजाब

आर्य समाज पार्कलेन लुधियाना में सत्संग

5 8 2001 को डा विजय सरीन जी महामन्त्री आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना के निवास स्थान 14 हाथी काम्पलैक्स पजाब यूनिवर्सिटी लुधियाना मे पारिवारिक सत्सग सम्पन्न हुआ जिसमे भारी सख्या मे स्त्री-पुरुपो ने भाग लिया।

12-8-2001 को श्री हसराज वर्मा म न बी-1/504 पार्क लेन सिविल लाईन मे साय 5 30 से 7 बजे तक पारिवारिक सत्सग होगा। **–नरेन्द्र भल्ला**

पुस्तक विमोचन

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब जालन्धर के भू पू महोपदेशक, शास्त्रार्थ महारथी, सम्पादक आर्य मुसाफिर, दनिक प्रताप व दैनिक वन्दे मातरम उर्दू महाशय चिरजी लाल जी "प्रेम" का पुनर्जन्म जा हा। एक लखक की रचना का पुन. प्रकाश मे आना उसका पुनर्जन्म ही होता ह और इसका पूर्ण श्रेय जाता है प्रसिद्ध यशस्वी आर्य माहित्य गवेपक श्रद्धेय श्री राजन्द्र "जिज्ञासु" जी को जिनके कठोर परिश्रम से महाशय जी की कुछ चुनी हुई कविताओ का सग्रह "**प्रेम तरग**" प्रकाश मे आ गया है। इम पुस्तक का विमोचन आर्य समाज गोबिन्दगढ जालन्धर के "वेद सप्ताह" के अन्तिम दिन 12 अगस्त 2001 रविवार प्रात 8 45 बजे हागा। आर्यो द्वारा पुस्तक की माग पहले ही आरम्भ हो चुकी हे। **–नरेश कुमार, मन्त्री**

दयानन्द पब्लिक स्कूल में वेद प्रचार

28-7-2001 दिन शनिवार को दयानन्द पब्लिक स्कूल लुधियाना मे वेद प्रचार के लिए ब्र० मूर्यदेव जी एव विजय कुमार शास्त्री जी को निमन्त्रित किया गया। पहले ब्र० सूर्यदेव जी न बच्चो को सम्बोधित किया। उन्होंने अपने ओजस्वी भापण मे बच्चो का मुग्ध कर दिया। उन्होंने सरल भाषा मे वेदो की महिमा एव धम क बारे मे विस्तार से बताया। धर्म के बारे मे बच्चो से प्रश्न भी पृछे एव बच्चों ने उत्साहपूर्वक और मूझबूझ का प्रयाग करते हुए उनके उत्तर दिए। उनके उत्तर मे प्रसन्न होकर ब्र० जी ने बच्चो को पारितोपिक बाटे और उन्होंने मुख्य अध्यापिका जी से प्रार्थना की कि इन्हे इस स्कूल मे धामिक शिक्षा और नैतिक शिक्षा का ज्ञान अधिक मिलना चाहिए। मैं यहा पर समय-समय पर आकर बच्चो से धार्मिक प्रश्न पुछूगा और इनको इनाम भी दिए जायेंगे । इसके पश्चात् श्री विजय कुमार शास्त्री जी ने बच्चों का सम्बोधित किया आर बच्चा को बडे प्यार मे एव विस्तार से ममझाया कि उनकी दिनचर्या कैमी होनी चाहिए। सुबह उठन पर माता पिता को प्रणाम स्नान आदि स निवृत्त होकर समय पर स्कूल जाना चाहिए उन्होंने बच्चा को बताया कि अगर आप मही मायनो मे शिक्षा लेना चाहते हो तो अध्यापक का सत्कार करो एव कक्षा मे केवल अध्यापक की बातो का ही मुना । इसके पश्चात् स्कूल के प्रबन्धक आशानन्द जी आय एव प्रधानाचार्य जी ने इनका धन्यवाद किया और बच्चा से प्रार्थना की कि वे शास्त्री जी क बताए मार्ग पर चलने का प्रण करे। इस अवसर पर स्कूल के प्रधान श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता जिला सभा क सैक्रेटरी श्री विजय सरीन एव श्रीमती विनोद गाधी जी भी शामिल थे। इन्होंने भी अपना बहुमूल्य समय देकर बच्चा का उत्साह बढाया ।

–प्रिं० सुनीता मलिक

गम्भीर आर्य विद्वान्, प्रभावशाली वक्ता, प्रचारक एवं आकर्षक व्यक्तित्व के धनी प्रो. अनूप सिंह

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश एव सस्कारविधि आदि ग्रन्थो मे एक प्रखर बुद्धि सम्पन्न, स्वस्थ एव आकर्षक व्यक्ति के निर्माण की प्रचुर सामग्री उपलब्ध कराई है जिसको आचरण मे लाकर मनुष्य गम्भीर विद्वान्, प्रखर वक्ता एव आकर्षक व्यक्तित्व का धनी हो सकता है। देहरादून निवासी प्रो अनूप सिह भी एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होने महर्षि दयानन्द के विचारो से प्रेरणा पाकर अपना निर्माण किया और अपने ओजस्वी व प्रभावशाली प्रवचनो से देश के अनेक भागो मे जाकर वैदिक धर्म का प्रचार किया। उनका जीवन युवको सहित सभी के लिए प्रेरणाप्रद था। अपने जनपद मे ही नही अपितु देश के अनेक भागो मे उन्होंने आर्य समाज के विद्वानो एव श्रोतृवर्ग मे अपने प्रशक बनाये।

प्रो अनूप सिह का जन्म उत्तर प्रदेश राज्य के जनपद मुज्फफरनगर के एक गाव भाजू (कस्बा शामली) मे श्री आशाराम जी के यहा 15 अगस्त 1944 को हुआ था। आपके पिता मिडिल स्कूल मे हेड मास्टर थे और लोगो की आयुर्वेदिक चिकित्सा भी किया करते थे। आपकी माता जी का नाम श्रीमती ज्ञानो देवी है जो स्वस्थ है एव परिवार के सदस्यो के साथ सामान्य जीवन व्यतीत कर रही है। अपने पिता की तीन सन्तानो मे आप सबसे बडी सन्तान थे। सबसे छोटे भाई काफी पहले दिवगत हो गए। शैक्षिक योग्यता के क्षेत्र मे आपने राजनीति शास्त्र से एम ए, बी टी (Bachlei of Teaching) एव विधी स्नातक की परीक्षाए उत्तीर्ण की थी। तीन वर्ष एस डी कालेज, मुजफ्फरनगर मे अध्यापन करने के पश्चात् सन् 1867 मे आप आर्य इण्टर कालेज, सुभाप नगर, देहरादून मे राजनीति शास्त्र मे प्रवक्ता बने और मृत्यु पर्यन्त यहा अध्यापन कार्य किया। इस विद्यालय मे आपको इसके स्वामी सेठ पन्ना लाल जी द्वारा लाया गया था। अब यह अपने क्षेत्र का प्रमुख विद्यालय है जहा सहस्रो बालक-बालिकाए इण्टर कक्षाओं तक अध्ययन कर रही हैं।

आपके विषय मे एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आपने कभी किसी बच्चे को ट्यूशन नहीं पढायी। पढाते समय आप विद्यार्थियो को सदैव हास्ययुक्त प्रेरणाप्रद प्रकरण सुनाया करते थे जिनमे चुटकले प्रचुर मात्रा मे होते थे। उनके स्कूल के एक विद्यार्थी दिनेश पाण्डेय सम्प्रति वैज्ञानिक-आईआईपी, देहरादून ने बताया कि स्कूल मे जिस दिन प्रात: प्रार्थना के पश्चात् प्रो अनूप सिह जी का प्रवचन होता था और वह व्यख्यान के लिए आगे बढते थे तो सभी विद्यार्थी रोमाचित हो उठते थे। उनके पूरे व्याख्यान को प्रसन्न मन एव दत्तचित्त होकर सुनते थे। विद्यार्थियो पर आपका ऐसा प्रभाव प्रत्यक्ष देखा गया है कि जब आपको कोई पुराना विद्यार्थी (स्त्री या पुरुष) आपको मिल जाता तो वह अति विनीत भाव से नतमस्तक होता था। सन् 1974 मे आपका विवाह जीव विज्ञान मे बी एस सी एव बी एड शिक्षित इन्दुबाला जी से हुआ। विवाह के पश्चात् आपने राजनीति शास्त्र मे एम ए किया। आपके दो पुत्र मनुसिह एव प्रशान्त सिह है जिन्होने इस वर्ष बारहवी एव दसवी की परीक्षाये उत्तीर्ण की है। दोनों पुत्र पिता की ही भाति कुशाग्र बुद्धि है तथा बहुत अच्छे अक लेकर उत्तीर्ण हुए है। बडे पुत्र तो हिन्दी व अग्रेजी भाषाओ मे व्याख्यान प्रतिस्पर्धा आदि मे प्रथम स्थान लेते रहे है।

विद्यार्थी जीवन मे ही आर्य समाज के सम्पर्क मे आकर आपमे आर्य समाज के प्रचार की लगन लग गई। आरम्भिक शिक्षा के पश्चात् मुजफ्फर नगर आकर आपने अध्ययन किया। यहा एक आर्य समाजी श्री गजेसिह आर्य के मकान मे आप अन्य विद्यार्थियो के साथ किराये पर रहे। श्री गजेसिह आर्य नित्य हवन किया करते थे। इन्ही से आपने हवन करना सीखा और आर्य समाज का सक्रिय सदस्य बनने की प्रेरणा प्राप्त की। सन् 1965 मे आप आर्य समाजी बने। नित्य स्वाध्याय आपके जीवन का अभिन्न अग बन गया। जिन दिनो आप बारहवीं कक्षा मे थे तभी से आपने प्रवचन करना आरम्भ कर दिया था। इस बात पर आप विशेष ध्यान देते थे कि श्रोताओ की रुचि व स्थिति का ज्ञान रख कर प्रवचन किया जाए। आपके गम्भीर-आध्यात्मिक प्रवचनो मे भी हास्य की प्रचुर सामग्री के साथ सरल उदाहरण होते थे जिससे श्रोता आपके प्रवचन मे न तो ऊबता था और नही थकता था। आपका स्वर ओजस्वी था और धारा प्रवाह बोलने के साथ अपने विचारो के समर्थन मे आप इतिहास सबधी तिथियो व मान्य ग्रन्थो के प्रमाण उद्धृत किया करते थे। यह क्रम विद्यालय मे शिक्षण कार्य जारी रखते हुए समय के साथ-साथ बढता गया और श्रोताओ मे आपकी माग भी बढने लगी। देहरादून के श्री ईश्वर दयालु आर्य का कहना है कि आप चलते फिरते एक सदभ ग्रन्थ की भूमिका निभाते थे। किसी बात का प्रमाण चाहिए अथवा कोई अधूरा सदर्भ हो तो उसको पूछने पर तत्काल पते सहित उसे पूरा बता दिया करते थे। आर्य समाज मे ऐसे बहुत कम लोग है जिनमे यह प्रतिभा होती है। श्री अनूप सिह जी मुजफ्फरनगर मे सन 1968 मे नई मण्डी आर्य समाज के मत्री भी रहे।

देहरादून मे आकर श्री अनूप सिह आर्य समाज धामवाला देहरादून के सदस्य बने और प्रचार की सभी प्रकार की गतिविधियो मे अग्रणी भूमिका निभाई। सन् 1975 मे आप इस समाज के मत्री रहे। आपके समय मे स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, स्वामी अमर स्वामी जसे चोटी के विद्वान् आर्य समाज मे कथाओ व साप्ताहिक सत्सगो मे व्याख्यान के लिए आते थे। आर्य समाज के सत्सग का सचालन करने का भी आपका अन्दाज निराला था। आपका आकर्षक व्यक्तित्व था जिसका भी श्रोताओं पर अनुकूल प्रभाव होता था। आपकी विद्वता एव व्यक्तित्व के प्रभाव मे ही सन् 1975 मे इन पक्तियो का लेखक आर्य समाज का अनुयायी बना। समाज के पुराने सदस्य, पूर्व मत्री एव अनूप सिह जी के मित्र श्री ईश्वर दयालु आर्य ने बताया कि सन 1969-70 मे उनके मत्रित्व काल मे एक बार अनूप सिह जी ने प्रवचन किया था। एक नवयुवक का प्रभावशाली प्रवचन सुन कर वह रोमाचित हो उठे थे और उन्होंने मन मे आशीर्वाद एवं शुभकामनाए देने के साथ अनुमान लगा लिया था कि आर्य समाज के प्रचार के क्षेत्र मे भविष्य मे वह एक वरदान सिद्ध होगे। ऐसा ही हुआ और अनूप सिह जी ने स्थानीय एव निकटवर्ती आर्य समाजो एव सस्थाओ के साथ देश के हैदराबाद, बगलौर, कलकत्ता, मुम्बई, पटना, लखनऊ, आगरा, जालन्धर, चण्डीगढ, दिल्ली, हरिद्वार, मसूरी, सुजानगढ (राजस्थान) आदि अनेकोनेक स्थानो पर जाकर वहा के आर्यो को उद्बोधन दिया। देहरादून मे श्री अनूप सिह आर्य समाज के ऐसे एकमात्र विद्वान थे जिनके प्रवचन विभिन्न गुरुद्वारो, रामतीर्थ मिशन सत्य साईबाबा एव अन्य मतो के अनुयायियो के सत्सगो, हिन्दी दिवस आदि सरकारी आयोजनो एव सामाजिक सस्थाओं के समारोहो मे भी हुआ करते थे और वह उन्हे ससम्मान बुलाया करते थे। अनूप सिह जी की विशेषता यह थी कि वह वेदेतर मतो के आयोजनो मे स्वामी दयानन्द का नाम एव कार्यो का उल्लेख पूरे जोश, विस्तार एव प्रभावशाली रूप मे करते थे। उन्हे इस बात की चिन्ता नही थी कि भविष्य मे वह उन्हे बुलायेंगे या नही। यही कारण था कि अनेक मतो के लोग उनके परिचित एव मित्र मण्डली मे थे।

श्री अनूप सिह जी 21 वर्ष की वय मे सन् 1965 मे आर्य समाज की कई बडी हस्तियो तथा महात्मा आनन्द स्वामी, योगधाम, हरिद्वार के सस्थापक स्वामी सच्चिदानन्द योगी आदि के योगगुरु स्वामी योगेश्वरानन्द के सम्पर्क मे आए और अपने गुणो एव प्रतिभा से उनके प्रिय विश्वासपात्र एव परामर्शदाता बन गए। स्वामी योगेश्वरानन्द योग निकेतन ऋषिकेश के अतिरिक्त कश्मीर, दिल्ली डाला आदि मे योगाश्रमो के सस्थापक एव सचालक थे जिनके यहा योग के अन्तर्गत समाधि तक का क्रियात्मक सफल अभ्यास कराया जाता था। भारत देश के योग प्रेमियो के अतिरिक्त विदेश के भी लोग बडी सख्या मे उनसे योग की शिक्षा लेते थे और उनमे से अनेको ने योग का समाधि तक का सफल अभ्यास किया। स्वामी योगेश्वरानन्द जी ने ईश्वर व योग सबधी उच्चकोटि के अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया जिससे आर्य समाजी लोग भी लाभ उठाते है। प्रो अनूप सिह स्वामी जी के सबसे प्रिय शिष्य थे। सभी आयोजनो मे अनूप सिह जी का प्रवचन स्वामी योगेश्वरानन्द जी से एकदम पहले हुआ करता था। उसके बाद स्वामीजी अपना प्रवचन करते थे और अनूप सिह जी द्वारा कही गई बातो का समर्थन किया करते थे।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

गम्भीर आर्य विद्वान....
(पृष्ठ 7 का शेष)

[illegible]
एव अभ्यास से सिद्ध तथ्यो के प्रतिकूल जान पडा जिसे बताने पर स्वामी जी ने उनके सभी ग्रन्थों में सशोधन करने का अनुरोध भी उनसे किया परन्तु किन्हीं कारणों से वह यह कार्य नहीं कर सके। अनूप सिंह जी का स्वामी जी के साथ निकट सान्निध्य रहा तथा वह गंगोत्री व गोमुख तथा डाला आदि अनेक स्थानों पर उनके साथ गए थे। योग निकेतन के विगत 25 वर्षो से अधिक अवधि मे सम्पन्न प्रत्येक वार्षिक उत्सव के आयोजनो में भी आप शामिल होते रहे परन्तु इस वर्ष बीमारी के कारण नहीं जा सके थे। विगत एक वर्ष की रुग्णावस्था मे भी आप दिल्ली, चण्डीगढ, मसूरी एवं लखनऊ आदि स्थानो पर आर्य समाज के प्रचार आदि कार्यो से जाते रहे। गुरुकुल गौतमनगर, दिल्ली के उत्सव में आपने असहनीय दर्द होते हुए भी प्रवचन किए जिसमे वक्ताओ एव श्रोताओ ने अनेक अवसरो पर करतल ध्वनि कर प्रशंसा की। इस अवसर पर मचस्थ भावविभोर हुए आयनिता श्री रामनाथ सहगल ने खडे होकर उन्हे गले से लगा लिया था।

श्री अनूपसिह एक कुशल लेखक भी थे। 10 मई, 1983 से प्रकाशित अनूप सन्देश (साप्ताहिक) उनका पत्र है जिसका वह सम्पादन करने के साथ सम्पादकीय एवं अन्य लेख आदि भी लिखते थे। गोरक्षा के आप प्रबल समर्थक थे और उनके पत्र मे इस सम्बन्ध मे प्रचुर सामग्री एव विज्ञापन हुआ करते थे। गोरक्षा प्रेम का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि दिल्ली के गोरक्षा सत्याग्रह मे आपने सक्रिय भाग लिया था और एक बार तो आपको गोली लगते-लगते बची थी। आपके पत्र मे क्रान्तिवीरो को विशेष स्थान प्राप्त था। उनकी जन्म एव पुण्य तिथियो पर विशेष लेख आप प्रकाशित करते थे। इसके साथ ही आपने आर्य समाज के पत्र पत्रिकाओ एव स्मारिकाओ मे भी विद्वतापूर्ण लेख लिखे जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे। आपके लेख आर्य समाज के पत्रों के अतिरिक्त रीडर्स डाइजेस्ट (Readers Digest), इलेस्ट्रेटेड वीकली (Illustarted Weekly) सण्डे आब्जर्व (Sunday Observer), आनन्द बाजार पत्रिका, धर्मयुग, पजाब केसरी, कादम्बिनी आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए। पंजाब केसरी में तो सम्पादकीय विभाग मे नियुक्ति का प्रस्ताव भी आपको प्राप्त हुआ था। आपने एक ट्रैक्ट, बाईबिल के गपोड़े भी लिखा है जिसे पढकर ही इस विषय सबंधी उनके गम्भीर ज्ञान का परिचय मिलता है।

राजनीति मे भी आपकी दिलचस्पी रही। एमरजैंसी के पश्चात् जब लोक सभा के चुनाव हुए तो अनूप सिंह जी को ही देहरादून मे जनता पार्टी का संयोजक बनाया गया। बड़ी-बडी चुनाव सभाये हुए जिसमें बडे-बडे नेता आया करते थे और इन सबका सचालन अनूप सिह जी किया करते थे। इस अवसर पर अनेक बार आपको जान से मार देने की चेतावनिया भी मिली थीं परन्तु इनसे आप कभी विचलित नहीं हुए। 20 वर्ष की आयु में ही आपने भारतीय जनसघ के प्रत्याशी के रूप मे मुजफ्फरनगर से विधयाक का चुनाव लडा था। उन दिनो बलराज मधोक पार्टी के अध्यक्ष थे। आप राजनीति के शीर्ष पुरुषो में बलराज मधोक का सम्मान करते थे। इसके पश्चात इस अवसर पर जब बलराज मधोक देहरादून पधारे तो आपने उनकी एक सभा देहरादून नगर के प्रमुख स्थान घण्टाघर पर करने की व्यवस्था की थी। सन् 1977 में देहरादून के शिक्षण निर्वाचन क्षेत्र से आपने एम एल सी. का चुनाव भी लड़ा था।

विश्व जागृति मिशन के सर्वेसर्वा सुधाशुं जी महाराज आर्य समाज के पुरोहित एवं भजनोपदेशक रहे हैं। आज वह सफलता की चोटी पर है। कई वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जनपद में आर्य समाज के एक आयोजन में सुधाशु जी भजनोपदेशक के रूप में एवं अनूपसिंह जी उपदेशक के रूप में पहुंचे थे। सुधांशु जी अनूप सिंह जी को गुरुजी कहते थे और उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। वहां उन्होंने श्रद्धावश अनूप सिंह जी के पैर छूए। इससे पूर्व तथा कुछ समय पश्चात् तक दोनो व्यक्तियों के सम्बन्ध इसी प्रकार के थे।

विगत एक वर्ष से अधिक समय से अनूपसिंह जी को कमर दर्द का रोग आरम्भ हुआ। इसको सामान्य रोग समझ कर कई महीनों तक इसकी उपेक्षा होती रही। धीरे-धीरे यह बढता गया और नई समस्याये
[illegible] उपचार आरम्भ हुआ और देहरादून के कई वरिष्ठ
एवं प्रमुख डाक्टरो से उपचार कराया गया परन्तु कोई भी चिकित्सक रोग को नहीं जान सका। दर्द के साथ भूख लगने पर भी भोजन न कर पाना जैसी शिकायतें पैदा हुई जो कई महीनो तक चली। इस बीच शरीर का भार 95 कि ग्रा से घट कर 60 किलो पर आ गया। अन्त मे 11 जून 2001 को चिकित्सक ने इन्हे दिल्ली के जीबी पन्त चिकित्सालय ले जाकर चिकित्सा कराने का परामर्श देकर अनुरोध किया। बृहस्पतिवार 14 जून को उन्हें दिल्ली मे पन्त चिकित्सालय मे भर्ती कराया गया। डाक्टरो ने उन्हे देख कर ही कैन्सर होने की सम्भावना व्यक्त की। अगले दिन एण्डोस्कोपी आदि परीक्षणो मे कैंसर रोग की पुष्टि हो गई। रक्त एव ग्लूकोस चढने से स्वास्थ्य मे कुछ सुधार प्रतीत हुआ परन्तु 21 जून को स्वास्थ्य बिगड गया और अपरान्ह 2 20 पर पत्नी, दोनो पुत्र एव अन्य पारिवारिक सदस्या तथा स्वामी अग्निवेश आदि मित्रो की उपस्थिति मे उन्होने अन्तिम श्वास ली।

जीबी पन्त चिकित्सालय मे चिकित्सा के दौरान आर्य समाज के प्रमुख लोगो मे स्वामी अग्निवेश, आचार्य हरिदेव, श्री धर्मपाल शास्त्री, रामनाथ सहगल, डा सत्यवीर त्यागी (श्री प्रकाशवीर शास्त्री के भाई) सहित अनेक लोगो ने उनके दर्शन कर उनका हाल चाल पता किया। स्वामी अग्निवेश जी 21 जून, 2001 को वैटिकन (रोम) से प्रात 4 00 बजे दिल्ली पहुचे थे। थोडे समय बाद ही वह चिकित्सालय पहुच गए। अग्निवेश जी अनूपसिह जी के बहुत पुराने व निकट मित्र रहे हैं। अनूप सिंह जी को कैन्सर के भयकर दर्द, जीर्ण व असहाय अवस्था मे देख कर स्वामी जी रो पडे। इस पर अनूप सिह जी स्वामी जी से बोले कि आप रो क्यो रहे हो, मैं तो अकेला ही ससार से जा रहा हू। कुछ देर बाद स्वामी जी ने अपने दोनो पुत्र सौंपते हुए आपने कहा कि मैं आपको दो संस्कारित पुत्र सौंप रहा हू। मृत्यु से बारह घण्टे पूर्व पत्नी के यह कहने पर कि आपको बहुत कष्ट है, बोले कि **मेरे गुरु को तो 18 बार विष दिया था उनको कितना कष्ट रहा होगा। यह तो उस कष्ट के सामने कुछ नहीं है।** मृत्यु से पूर्व आपने दिन पूछा। दिन अमवस्या का था। स्वामी दयानन्द जी ने भी अमावस्या के ही दिन प्राण त्यागे थे। यह एक अद्‌भुत सयोग है। दिन के 11 30 बजे बोलना बन्द किया। बोलन से पूर्व व बाद मे भी "ओ३म्" का उच्चारण करते रहे।

रविवार 1 जुलाई, 2001 को उनके निवास पर एक श्रद्धांजलि सभा हुई जिसे बधुआ मुक्ति मोर्चे एव सयुक्त राष्ट्र की दासता, नस्ल, रंग व जाति भेद विरोधी पीठ के अध्यक्ष स्वामी अग्निवेश, आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान प्रो कैलाशनाथ सिंह, डा जगवीर, श्री श्वेतार सिह आदि प्रमुख हस्तियो के साथ स्थानीय प्रमुख व्यक्तियो ने सम्बोधित किया। देहरादून के सभी वरिष्ठ पत्रकार, शिक्षक, आर्य समाज के नेता व सदस्य, पारिवारिक सदस्य एव श्री अनूप सिंह के इष्ट मित्र इस अवसर पर विशाल जनसमूह के रूप मे उपस्थित थे। इस अवसर पर अनूपसिह जी के 16 वर्षीय बडे पुत्र ने भी श्रद्धाजलि सभा मे भावुकता पूर्ण विचार प्रस्तुत किए जिसमे उसने कहा कि मै पिता की तरह तो नहीं परन्तु उनके दिए हुए संस्कारों के अनुरूप बनने का पूरा प्रयत्न करूगा और जितना सभव हो सकेगा, आर्य समाज का कार्य करूगा। अनूप सिंह जी के जीवन काल मे पुत्र व पिता का स्वप्न था कि यह बालक एक विदेशी भाषा सीखे। आज यह स्वप्न भी साकार हो गया है। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के 3 जुलाई को घोषित परीक्षा परिणाम मे यह बालक देश में द्वितीय स्थान पर आया है।

इस प्रकार आर्य समाज के एक विद्वान् एव प्रचारक की मृत्यु हो गई। उनके सहयोगी अनुभव करते है कि उनकी मृत्यु आर्य समाज की बहुत बड़ी क्षति है। एक कवि की निम्न पंक्तियां को उद्‌धृत कर लेख को विराम देते है :

क्रूर काल यह तेरा छल है, तेरा छल ही आज प्रबल है।
आर्त प्रार्थनाएं निष्फल हैं, सब पीड़ाएं आज सजल हैं॥
विधि ने हमको किया प्रवंचित, मूल्यवान निधि से हम वंचित।
रिक्त हमारे मन का आगन, सूना है संस्कृति का कानन॥

—मनमोहन कुमार आर्य 196, चुक्खु वाला

आर्य समाज और इस्लाम

❑ ले० श्री श्यामाम जी पौद्दार उप प्रधान आ. प्र. सभा रांची झारखण्ड राज्य

आर्य समाज न तो इस्लाम है और न ही इस्लाम को आर्य समाज कहा जा सकता है। दोनो ही दो पृथक-पृथक धर्म प्रसारक आन्दोलन हैं। इस्लाम जहां 14-15 सौ वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। वहा आर्य समाज को स्थापित हुए मात्र 126 वर्ष हुए हैं। इस्लाम जहा अपने आपको पूर्ण एवं पृथक धर्म होने का दावा करता है वहां आर्य समाज पृथक धर्म या मत होने का दावा कभी भी नहीं करता है बल्कि यह तो एक संस्था के रूप मे पूर्व प्रचलित वेदो के द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं के अनुरूप सत्य सनातन वैदिक धर्म को मानने का लोगो से आग्रह करता है। इस्लाम का सस्थापक ईश्वर और मनुष्य के बीच अपने आपको अन्तिम बिचौलिया (मिडीएटर) मानता है, पर इसके विपरीत आर्य समाज का सस्थापक ईश्वर और मनुष्य के बीच किसी को भी किसी भी रूप मे बिचौलिया होने की बात को अनावश्यक मानता है। अपनी स्थापना के पूर्व के समय को इस्लाम जहा जाहिलियत (अज्ञान-अन्धकार) का समय मानता है वहां आर्य समाज का मानना है कि जब इस्लाम के पूर्व सूर्य और चान्द जैसी दो बडी ज्योतिया पृथ्वी पर विद्यमान थीं और सृष्टि मे अनगिनत लोग भी रहते थे, तब ऐसा कैसे हो सकता है कि उस समय के लोग बिना किसी ईश्वरीय ज्ञान के रहे ?

क्या ईश्वर इतना मूर्ख था कि उसने इस्लाम के आने तक दुनिया के लोगों को मूर्ख या अज्ञानी बना रहने दिया ? आर्य समाज का मानना है कि इस्लाम के पूर्व भी दुनिया मे वेदों के रूप मे ईश्वरीय ग्रन्थ थे जो बिना किसी भेदभाव के समस्त मानव समाज को एक समान शिक्षा प्रदान करते थे और अभी भी कर रहे हैं।

यह ठीक है कि इस्लाम के सस्थापक ने अपने जन्म स्थान पर वहां के लोगों मे फैले अज्ञान को दूर करने और वहां के युद्धरत्त अरबी समाज को प्रभावित और नियन्त्रित करने मे असाधारण चतुराई का प्रदर्शन कर वहा के मानवो की अप्रतिम सेवा की थी पर अन्यत्र तो ऐसी स्थिति नहीं थी। इस्लाम मूर्ति पूजा का कट्टर विरोधी है। आर्य समाज भी इस्लाम की इस बात से पूर्ण रूप से सहमत है कि मूर्ति पूजा बहुत बुरी बात है पर वह यह भी मानता है इस्लाम भी जब तक खुदा और इन्सान के बीच मे हजरत मोहम्मद साहिब को भी बिचौलिया मानता रहेगा तब तक मूर्तिपूजा जैसी बुराई से मानव समाज छुटकारा प्राप्त नहीं कर सकता है। मूर्तिपूजा का विरोध करने के बावजूद इस्लाम मे कबर पूजा, भक्त मे हज यात्रियो द्वारा सगे अस्वद को चूमना, ताजिया पूजन आदि क्या मूर्तिपूजा नही है? आर्य समाज का यह भी मानना है कि कोई भी व्यक्ति कितना ही महान हो सकता है पर वह ईश्वर के तुल्य नहीं हो सकता है अत: उसकी पूजा या सम्मान करना भी व्यक्ति पूजा ही का एक रूप है। अत: आर्य समाज ऐसी किसी भी व्यक्ति की पूजा के विरोध मे है। आर्य समाज और इस्लाम मे सबसे बडा मतभेद यही है कि जहा आर्य समाज व्यक्ति के विचारो और कर्मो की स्वतत्रता का पक्षधर है वहा दुर्भाग्य मे इस्लाम का दृष्टिकोण ऐसा नही है। यदि वास्तव मे हम मानव समाज को समग्र उन्नति चाहते है तो हमे प्रत्येक मानव को [illegible] अन्तरात्मा के अनुसार विचार स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए। [illegible] सचमुच [illegible] बात है, विरोधी है जो मनुष्य को उसको अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता [illegible] नहीं करता है।

नवांशहर में कृष्ण जन्माष्टमी पर्व समारोह

पंजाब की सभी आर्य समाजों एवम् शिक्षण सस्थाओ के अधिकारियो से सविनय प्रार्थना है कि वे 12-8-2001 को आर्य सम्मेलन में और कृष्ण जन्माष्टमी पर्व मे सम्मिलित होने हेतु नवांशहर अपने प्रतिनिधि भेज।

आर्य समाज नवाशहर की ओर से आर के आर्य कालेज नवाशहर में प्रात: 9 बजे यज्ञ से कार्यक्रम आरम्भ होगा। 10 30 बजे से एक बजे तक श्री पं हरबंस लाल जी शर्मा सभा प्रधान की अध्यक्षता मे विशेष समारोह होगा और कृष्ण जन्माष्टमी पर्व मनाया जाएगा। सभी आर्य बन्धु व बहनें सम्मिलित होकर धर्म लाभ उठाएं और कार्यक्रम को सफल बनाएं। —सुरेन्द्र मोहन तेजपाल मन्त्री, प्रेम भारद्वाज प्रधान

डी.ए.वी. कालेज भटिण्डा में वेद प्रचार

दिनाक 23-7-2001 को डी.ए.वी. कालेज भटिण्डा के प्रागण मे बृहद यज्ञ सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री वैदिक प्रवक्ता इस यज्ञ के ब्रह्मा थे।

यज्ञ के मुख्य यजमान श्री सुभाष मडिया जी प्रधानाचार्य डी ए वी कालेज भटिण्डा थे। यह कार्यक्रम प्रो ओ पी मगला प्रधान आर्य समाज चौक भटिण्डा की देखरेख मे सम्पन्न हुआ।

यज्ञ के पश्चात् श्री आचार्य जी ने महात्मा हंसराज जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए वेदमत्रो की व्याख्या की और आज डी ए वी सस्था का भारत वर्ष मे ही नही अपितु विश्व के कोने-कोने में शिक्षा का केन्द्र बन गया है। इस सस्था ने बडे-बडे नेता और विद्वान् समाज को समर्पित किए हैं। विशेष बात यह है कि यह कालेज आर्य समाज भटिण्डा को प्रतिवर्ष दान के रूप मे रु पाच हजार प्रदान करता है। यह कालेज भी मडिया जी की सेवा से दिन दुगुनी और रात चौगुनी प्रगति कर रहा है।

वेद मन्दिर अवांखां का 67वां स्थापना दिवस

15 जुलाई 2001 से रविवार 22 जुलाई 2001 तक बडे उत्साह पूर्वक मनाया गया। इसमे विद्वानो एव प्रसिद्ध भजनोपदेशको द्वारा विभिन्न ग्रामो मे प्रचार किया गया। रविवार दिनाक 15-7-2001 को हल्ले चईए, सोमवार 16-7-2001 को गुरदासपुर मण्डी, श्री बिहारी लाल जी, श्री मुलखराज जी, श्रीमती रूपरानी जी एम एल ए, श्री जनकराज जी, प्रेमचन्द जी, श्री ओम प्रकाश जी, प्रदीप कुमार जी के यहा, मराडा मे प्रचार किया। 17-7-2001 मगलवार सरपच भैंसारी पिण्डोरी मे। अशोक जी सरपच, रामचन्द जी, कालेजपुर मे। बुधवार-18-7-2001 को श्री डा रूप लाल जी, श्री सरदारी लाल, हरबन्स लाल गाव बीरा लाडी, मे और भल्ला छोटा कालेजपुर मे।

गुरुवार-19-7-2001 को चौ प्यारा लाल, चौ वीर सिंह जी के गाव शाहपुर मे प्रचार किया। शुक्रवार-20-7-2001 को आवाखा गाव मे प्रचार किया। 21 7 2001 को व 22-7-2001 को वेद मन्दिर अवाखा मे स्थापना दिवस का मुख्य कार्यक्रम प्रात: 9 बजे से 1 बजे तक सम्पन्न हुआ।

इसमे स्वामी सदानन्द जी, स्वामी प्रकाशानन्द जी, स्वामी सुकर्मानन्द जी, श्री प सतीश जी "सुमन" एव प सुभाष जी ने भाग लिया। श्री योगेन्द्र जी शास्त्री, ब्र० जीतेन्द्र जी शास्त्री, श्रीमती रूपरानी जी, एम एल ए मुख्यातिथि श्री प्रधान राम लाल जी, श्री सूर्य प्रकाश जी, श्री तीर्थराम जी, श्री दीवान चन्द जी, श्री युद्धवीर जी, श्री रतन लाल जी, माता सतोष अम्बा जी, इन महानुभावो ने इस अवसर पर अपने विचार दिए।

इस प्रकार कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। प्रधान श्री राम लाल जी ने सभी वक्ताओ एव श्रोताओ का हार्दिक धन्यवाद प्रकट किया। अन्त मे ऋषि लगर का भी समुचित प्रबन्ध था।

—विजय शास्त्री

जिला आर्य सभा बठिण्डा का चुनाव सहर्ष सम्पन्न

जिला आर्य सभा भटिण्डा का चुनाव दिनाक 30 जुलाई 2001 को सर्वसम्मति के साथ सहर्ष सम्पन्न हुआ। यह सम्भव हुआ तब जब श्री पी डी गोयल एडवोकेट का नाम श्री [illegible] जी [illegible] मध्य रखा तो दोनो पक्षो ने [illegible] [illegible] बढ़कर इसका स्वागत [illegible] आर्य समाज के सर्वनि[illegible] निम्न हैं –

1 श्री वजीर चन्द मगला–सरक्षक । 2 श्री पी डी, गोयल (एडवोकेट)–प्रधान । 3 श्री बाबू राम गर्ग–वरिष्ठ उप प्रधान। 4 श्री प्रेम भाटिया, मास्टर मनसा राम–उप प्रधान। 5 श्री तरसेम कुमार आर्य–महामन्त्री। 6 श्री चमन लाल मेहता–मन्त्री। 7 श्रीमती सुशीला सुखीजा–मन्त्री। 8 श्री राजेन्द्र कुमार जिन्दल–कोषाध्यक्ष। 9 श्री कृष्ण लाल जटाना–प्रचार मन्त्री।

अन्य विशिष्ट सदस्य गण–श्री कुलवन्त राय अग्रवाल, श्री बिहारी लाल मगला, श्री अशोक अग्रवाल, श्री विनोद कुमार गर्ग, श्री विजय कुमार, ओ पी मगला, श्री भारत भूषण, श्री चौधरी रघुवीर चन्द, श्री कौशल पुरी आर्य, ब्रह्मचारी सूर्यदेव "वैदिक मिशनरी" श्री मोहन लाल बागला, श्री रुलदु सिह तथा सभी आर्य सामाजिक शिक्षण सस्थाओं के प्रधानाचार्य, मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सभी माननीय सदस्यगण श्री पी डी गोयल की अध्यक्षता मे आर्य समाज को जिला बठिण्डा में एक नई दिशा देने के लिए सदैव तैयार रहेगे। ब्र० सूर्यदेव वैदिक मिशनरी

गम्भीर आर्य विद्वान....
(पृष्ठ 7 का शेष)

इतना ही नहीं अनूप सिंह जी द्वारा स्वामी जी को उनके ग्रन्थों में कुछ वेद एव अभ्यास से सिद्ध तथ्यों के प्रतिकूल ज्ञान पड़ा जिसे बताने पर स्वामी जी ने उनके सभी ग्रन्थों में संशोधन करने का अनुरोध भी उनसे किया परन्तु किन्हीं कारणो से वह यह कार्य नहीं कर सके। अनूप सिंह जी का स्वामी जी के साथ निकट सान्निध्य रहा तथा वह गंगोत्री व गोमुख तथा डाला आदि अनेक स्थानो पर उनके साथ गए थे। योग निकेतन के विगत 25 वर्षो से अधिक अवधि में सम्पन्न प्रत्येक वार्षिक उत्सव के आयोजनो में भी आप शामिल होते रहे परन्तु इस वर्ष बीमारी के कारण नहीं जा सके थे। विगत एक वर्ष की रुग्णावस्था मे भी आप दिल्ली, चण्डीगढ, मसूरी एवं लखनऊ आदि स्थानों पर आर्य समाज के प्रचार आदि कार्यो से जाते रहे। गुरुकुल गौतमनगर, दिल्ली के उत्सव में आपने असहनीय दर्द होते हुए भी प्रवचन किए जिसमें वक्ताओं एव श्रोताओं ने अनेक अवसरो पर करतल ध्वनि कर प्रशंसा की। इस अवसर पर मचस्थ भावविभोर हुए आयनिता श्री रामनाथ सहगल ने खडे होकर उन्हे गले से लगा लिया था।

श्री अनूपसिह एक कुशल लेखक भी थे। 10 मई, 1983 से प्रकाशित अनूप सन्देश (साप्ताहिक) उनका पत्र है जिसका वह सम्पादन करने के साथ सम्पादकीय एवं अन्य लेख आदि भी लिखते थे। गोरक्षा के आप प्रबल समर्थक थे और उनके पत्र में इस सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री एव विज्ञापन हुआ करते थे। गोरक्षा प्रेम का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि दिल्ली के गोरक्षा सत्याग्रह मे आपने सक्रिय भाग लिया था और एक बार तो आपको गोली लगते-लगते बची थी। आपके पत्र मे क्रान्तिवीरों को विशेष स्थान प्राप्त था। उनकी जन्म एव पुण्य तिथियों पर विशेष लेख आप प्रकाशित करते थे। इसके साथ ही आपने आर्य समाज के पत्र पत्रिकाओ एव स्मारिकाओ में भी विद्वतापूर्ण लेख लिखे जो समय समय पर प्रकाशित होते रहे। आपके लेख आर्य समाज के पत्रों के अतिरिक्त रीडर्स डाइजेस्ट (Readers Digest), इलेस्ट्रेटेड वीकली (Illustarted Weekly) सण्डे आब्जर्व (Sunday Observer), आनन्द बाजार पत्रिका, धर्मयुग, पंजाब केसरी, कादम्बिनी आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुए। पंजाब केसरी में तो सम्पादकीय विभाग में नियुक्ति का प्रस्ताव भी आपको प्राप्त हुआ था। आपने एक ट्रैक्ट, बाईबिल के गपोड़े भी लिखा है जिसे पढ़कर ही इस विषय सबंधी उनके गम्भीर ज्ञान का परिचय मिलता है।

राजनीति में भी आपकी दिलचस्पी रही। एमरजैंसी के पश्चात् जब लोक सभा के चुनाव हुए तो अनूप सिह जी को ही देहरादून मे जनता पार्टी का संयोजक बनाया गया। बड़ी-बडी चुनाव सभाये हुए जिसमें बडे-बडे नेता आया करते थे और इन सबका संचालन अनूप सिंह जी किया करते थे। इस अवसर पर अनेक बार आपको जान से मार देने की चेतावनिया भी मिली थीं परन्तु इनसे आप कभी विचलित नहीं हुए। 20 वर्ष की आयु में ही आपने भारतीय जनसंघ के प्रत्याशी के रूप में मुजफ्फरनगर से विधयाक का चुनाव लडा था। उन दिनों बलराज मधोक पार्टी के अध्यक्ष थे। आप राजनीति के शीर्ष पुरुषो में बलराज मधोक का सम्मान करते थे। इसके पश्चात इस अवसर पर जब बलराज मधोक देहरादून पधारे तो आपने उनकी एक सभा देहरादून नगर के प्रमुख स्थान घण्टाघर पर करने की व्यवस्था की थी। सन् 1977 में देहरादून के शिक्षण निर्वाचन क्षेत्र से आपने एम.एल.सी का चुनाव भी लड़ा था।

विश्व जागृति मिशन के सर्वेसर्वा सुधाशुं जी महाराज आर्य समाज के पुरोहित एवं भजनोपदेशक रहे हैं। आज वह सफलता की चोटी पर है। कई वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जनपद में आर्य समाज के एक आयोजन में सुधांशु जी भजनोपदेशक के रूप में एवं अनूपसिंह जी उपदेशक के रूप में पहुंचे थे। सुधांशु जी अनूप सिंह जी को गुरुजी कहते थे और उनका अत्यधिक सम्मान करते थे। वहां उन्होंने श्रद्धावश अनूप सिंह जी के पैर छूए। इससे पूर्व तथा कुछ समय पश्चात् तक दोनों व्यक्तियों के सम्बन्ध इसी प्रकार के थे।

विगत एक वर्ष से अधिक समय से अनूपसिंह जी को कमर दर्द का रोग आरम्भ हुआ। इसको सामान्य रोग समझ कर कई महीनों तक इसकी उपेक्षा होती रही । धीरे-धीरे यह बढता गया और नई समस्यायें भी पैदा होती गई। उपचार आरम्भ हुआ और देहरादून के कई वरिष्ठ एवं प्रमुख डाक्टरो से उपचार कराया गया परन्तु कोई भी चिकित्सक रोग को नहीं जान सका। दर्द के साथ भूख लगने पर भी भोजन न कर पाना जैसी शिकायते पैदा हुई जो कई महीनो तक चली। इस बीच शरीर का भार 95 कि ग्रा से घट कर 60 किलो पर आ गया। अन्त मे 11 जून 2001 को चिकित्सक ने इन्हें दिल्ली के जीबी पन्त चिकित्सालय ले जाकर चिकित्सा कराने का परामर्श देकर अनुरोध किया। बृहस्पतिवार 14 जून को उन्हे दिल्ली में पन्त चिकित्सालय मे भर्ती कराया गया। डाक्टरो ने उन्हें देख कर ही कैन्सर होने की सम्भावना व्यक्त की। अगले दिन एण्डोस्कोपी आदि परीक्षणो मे कैंसर रोग की पुष्टि हो गई। रक्त एव ग्लूकोस चढने से स्वास्थ्य मे कुछ सुधार प्रतीत हुआ परन्तु 21 जून को स्वास्थ्य बिगड गया और अपरान्ह 2 20 पर पत्नी, दोनो पुत्र एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों तथा स्वामी अग्निवेश आदि मित्रो की उपस्थिति मे उन्होने अन्तिम श्वास ली।

जीबी पन्त चिकित्सालय मे चिकित्सा के दौरान आर्य समाज के प्रमुख लोगो मे स्वामी अग्निवेश, आचार्य हरिदेव, श्री धर्मपाल शास्त्री, रामनाथ सहगल, डा सत्यवीर त्यागी (श्री प्रकाशवीर शास्त्री के भाई) सहित अनेक लोगो ने उनके दर्शन कर उनका हाल चाल पता किया। स्वामी अग्निवेश जी 21 जून, 2001 को वैटिकन (रोम) से प्रात 4 00 बजे दिल्ली पहुचे थे। थोडे समय बाद ही वह चिकित्सालय पहुच गए। अग्निवेश जी अनूपसिह जी के बहुत पुराने व निकट मित्र रहे हैं। अनूप सिंह जी को कैन्सर के भयकर दर्द, जीर्ण व असहाय अवस्था मे देख कर स्वामी जी रो पडे। इस पर अनूप सिह जी स्वामी जी से बोले कि आप रो क्यो रहे हो, मैं तो अकेला ही ससार से जा रहा हूं। कुछ देर बाद स्वामी जी ने अपने दोनो पुत्र सौपते हुए आपने कहा कि मैं आपको दो संस्कारित पुत्र सौंप रहा हू। मृत्यु से बारह घण्टे पूर्व पत्नी के यह कहने पर कि आपको बहुत कष्ट है, बोले कि **मेरे गुरु को तो 18 बार विष दिया था उनको कितना कष्ट रहा होगा। यह तो उस कष्ट के सामने कुछ नहीं है।** मृत्यु से पूर्व आपने दिन पूछा। दिन अमवस्या का था। स्वामी दयानन्द जी ने भी अमावस्या के ही दिन प्राण त्यागे थे। यह एक अद्भुत संयोग है। दिन के 11 30 बजे बोलना बन्द किया। बोलने से पूर्व व बाद मे भी "ओ३म्" का उच्चारण करते रहे।

रविवार 1 जुलाई, 2001 को उनके निवास पर एक श्रद्धांजलि सभा हुई जिस बंधुआ मुक्ति मोर्चे एवं संयुक्त राष्ट्र की दासता, नस्ल, रग व जाति भेद विरोधी पीठ के अध्यक्ष स्वामी अग्निवेश, आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के प्रधान प्रो कैलाशनाथ सिह, डा जगवीर, श्री श्वेतार सिह आदि प्रमुख हस्तियो के साथ स्थानीय प्रमुख व्यक्तियो ने सम्बोधित किया। देहरादून के सभी वरिष्ठ पत्रकार, शिक्षक, आर्य समाज के नेता व सदस्य, पारिवारिक सदस्य एवं श्री अनूप सिंह के इष्ट मित्र इस अवसर पर विशाल जनसमूह के रूप मे उपस्थित थे। इस अवसर पर अनूपसिह जी के 16 वर्षीय बड़े पुत्र ने भी श्रद्धाजलि सभा मे भावुकता पूर्ण विचार प्रस्तुत किए जिसमे उसने कहा कि मैं पिता की तरह तो नहीं परन्तु उनके दिए हुए संस्कारों के अनुरूप बनने का पूरा प्रयत्न करूगा और जितना संभव हो सकेगा, आर्य समाज का कार्य करूगा। अनूप सिंह जी के जीवन काल मे पुत्र व पिता का स्वप्न था कि यह बालक एक विदेशी भाषा सीखे। आज यह स्वप्न भी साकार हो गया है। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के 3 जुलाई को घोषित परीक्षा परिणाम में यह बालक देश में द्वितीय स्थान पर आया है।

इस प्रकार आर्य समाज के एक विद्वान् एव प्रचारक की मृत्यु हो गई। उनके सहयोगी अनुभव करते हैं कि उनकी मृत्यु आर्य समाज की बहुत बडी क्षति है। एक कवि की निम्न पक्तियां को उद्धृत कर लेख को विराम देते हैं :

क्रूर काल यह तेरा छल है, तेरा छल ही आज प्रबल है।
आर्त प्रार्थनाएं निष्फल हैं, सब पीडाएं आज सजल हैं॥
विधि ने हमको किया प्रवंचित, मूल्यवान् निधि से हम वंचित।
रिक्त हमारे मन का आंगन, सूना है संस्कृति का कानन॥

—मनमोहन कुमार आर्य 196, चुक्खू वाला, देहरादून

आर्य समाज और इस्लाम

ले० श्री श्याराम जी पौद्दार उप प्रधान आ. प्र. सभा रांची झारखण्ड राज्य

आर्य समाज न तो इस्लाम है और न ही इस्लाम को आर्य समाज कहा जा सकता है। दोनों ही दो पृथक-पृथक धर्म प्रसारक आन्दोलन हैं। इस्लाम जहां 14-15 सौ वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था। वहा आर्य समाज को स्थापित हुए मात्र 126 वर्ष हुए हैं। इस्लाम जहां अपने आपको पूर्ण एवं पृथक धर्म होने का दावा करता है वहां आर्य समाज पृथक धर्म या मत होने का दावा कभी भी नहीं करता है, बल्कि यह तो एक संस्था के रूप में पूर्व प्रचलित वेदो के द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं के अनुरूप सत्य सनातन वैदिक धर्म को मानने का लोगो से आग्रह करता है। इस्लाम का संस्थापक ईश्वर और मनुष्य के बीच अपने आपको अन्तिम बिचौलिया (मिडीएटर) मानता है, पर इसके विपरीत आर्य समाज का संस्थापक ईश्वर और मनुष्य के बीच किसी को भी किसी भी रूप में बिचौलिया होने की बात को अनावश्यक मानता है। अपनी स्थापना के पूर्व के समय को इस्लाम जहां जाहिलियत (अज्ञान-अन्धकार) का समय मानता है वहां आर्य समाज का मानना है कि जब इस्लाम के पूर्व सूर्य और चान्द जैसी दो बडी ज्योतियां पृथ्वी पर विद्यमान थीं और सृष्टि में अनगिनत लोग भी रहते थे, तब ऐसा कैसे हो सकता है कि उस समय वे लोग बिना किसी ईश्वरीय ज्ञान के रहे?

क्या ईश्वर इतना मूर्ख था कि उसने इस्लाम के आने तक दुनिया के लोगो को मूर्ख या अज्ञानी बना रहने दिया? आर्य समाज का मानना है कि इस्लाम के पूर्व भी दुनिया मे वेदो के रूप मे ईश्वरीय ग्रन्थ थे जो बिना किसी भेदभाव के समस्त मानव समाज को एक समान शिक्षा प्रदान कर रहे थे और अभी भी कर रहे हैं।

यह ठीक है कि इस्लाम के संस्थापक ने अपने जन्म स्थान पर वहां के लोगों मे फैले अज्ञान को दूर करने और वहां के युद्धरत अरबी समाज को प्रभावित और नियंत्रित करने में असाधारण चतुराई का प्रदर्शन कर वहा के मानवो की अप्रतिम सेवा की थी पर अन्यत्र तो ऐसी स्थिति नहीं थी। इस्लाम मूर्ति पूजा का कट्टर विरोधी है। आर्य समाज भी इस्लाम को इस बात से पूर्ण रूप से सहमत है कि मूर्ति पूजा बहुत बुरी बात है पर वह यह भी मानता है इस्लाम भी जब तक खुदा और इन्सान के बीच मे हजरत मोहम्मद साहिब को भी बिचौलिया मानता रहेगा तब तक मूर्तिपूजा जैसी बुराई से मानव समाज छुटकारा प्राप्त नहीं कर सकता है। मूर्तिपूजा का विरोध करने के बावजूद इस्लाम मे कबर पूजा, मक्के मे हज यात्रियो द्वारा संगे अस्वद को चूमना, ताजिया पूजन आदि क्या मूर्तिपूजा नही है? आर्य समाज का यह भी मानना है कि कोई भी व्यक्ति कितना ही महान हो सकता है पर वह ईश्वर के तुल्य नहीं हो सकता है अत: उसकी पूजा या सम्मान करना भी व्यक्ति पूजा ही का एक रूप है। अत: आर्य समाज ऐसी किसी भी व्यक्ति की पूजा के विरोध में है। आर्य समाज और इस्लाम मे सबसे बडा मतभेद यही है कि जहां आर्य समाज व्यक्ति के विचारो और कर्मो की स्वतंत्रता का पक्षधर है वहा दुर्भाग्य मे इस्लाम का दृष्टिकोण ऐसा नही है। यदि वास्तव में हम मानव समाज की समग्र उन्नति चाहते हैं तो हमे प्रत्येक मानव को उसकी अन्तरात्मा के अनुसार विचार स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए। आर्य समाज सचमुच मे इस बात का विरोधी है जो मनुष्य की उसकी अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करता है।

नवांशहर में कृष्ण जन्माष्टमी पर्व समारोह

पंजाब की सभी आर्य समाजों एवम् शिक्षण सस्थाओ के अधिकारियो से सविनय प्रार्थना है कि वे 12-8-2001 को आर्य सम्मेलन मे और कृष्ण जन्माष्टमी पर्व में सम्मिलित होने हेतु नवाशहर अपने प्रतिनिधि भेज।

आर्य समाज नवाशहर की ओर से आर.के. आर्य कालेज नवाशहर में प्रात: 9 बजे यज्ञ से कार्यक्रम आरम्भ होगा। 10.30 बजे से एक बजे तक श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा सभा प्रधान की अध्यक्षता मे विशेष समारोह होगा और कृष्ण जन्माष्टमी पर्व मनाया जाएगा। सभी आर्य बन्धु व बहनें सम्मिलित होकर धर्म लाभ उठाएं और कार्यक्रम को सफल बनाएं।

—सुरेन्द्र मोहन तेजपाल मन्त्री, प्रेम भारद्वाज प्रधान

डी.ए.वी. कालेज भठिण्डा में वेद प्रचार

दिनाक 23-7-2001 को डी ए वी कालेज भठिण्डा के प्रांगण मे बृहद यज्ञ सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री वैदिक प्रवक्ता इस यज्ञ के ब्रह्मा थे।

यज्ञ के मुख्य यजमान श्री सुभाष मडिया जी प्रधानाचार्य डी ए वी कालेज भठिण्डा थे। यह कार्यक्रम प्रो ओ पी मगला प्रधान आर्य समाज चौक भठिण्डा की देखरेख मे सम्पन्न हुआ।

यज्ञ के पश्चात् श्री आचार्य जी ने महात्मा हंसराज जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए वेदमंत्रों की व्याख्या की और आज डी ए वी सस्था का भारत वर्ष मे ही नही अपितु विश्व के कोने-कोने में शिक्षा का केन्द्र बन गया है। इस सस्था ने बडे-बडे नेता और विद्वान् समाज को समर्पित किए हैं। विशेष बात यह है कि यह कालेज आर्य समाज भठिण्डा को प्रतिवर्ष दान के रूप मे रु पाच हजार प्रदान करता है। यह कालेज भी मडिया जी की सेवा से दिन दुगुनी और रात चौगुनी प्रगति कर रहा है।

वेद मन्दिर अवांखां का 67वां स्थापना दिवस

15 जुलाई 2001 से रविवार 22 जुलाई 2001 तक बडे उत्साह पूर्वक मनाया गया। इसमे विद्वानो एव प्रसिद्ध भजनोपदेशको द्वारा विभिन्न ग्रामों मे प्रचार किया गया। रविवार दिनाक 15-7-2001 को हल्ले चईए, सोमवार 16-7-2001 को गुरदासपुर मण्डी, श्री बिहारी लाल जी, श्री मुलखराज जी, श्रीमती रूपरानी जी एम एल ए, श्री जनकराज जी, प्रेमचन्द जी, श्री ओम प्रकाश जी, प्रदीप कुमार जी के यहा, मराडा मे प्रचार किया। 17-7-2001 मगलवार सरपच भैंसारी पिण्डोरी मे। अशोक जी सरपंच, रामचन्द जी, कालेजपुर मे। बुधवार-18-7-2001 को श्री डा रूप लाल जी, श्री सरदारी लाल, हरबन्स लाल गाव बीरां लाडी, मे और भल्ला छोटा कालेजपुर में।

गुरुवार-19-7-2001 को चौ प्यारा लाल, चौ वीर सिह जी के गांव शाहपुर मे प्रचार किया। शुक्रवार-20-7-2001 को आवाखा गाव मे प्रचार किया। 21 7 2001 को व 22-7-2001 को वेद मन्दिर आवाखा मे स्थापना दिवस का मुख्य कार्यक्रम प्रात: 9 बजे से 1 बजे तक सम्पन्न हुआ।

इसमे स्वामी सदानन्द जी, स्वामी प्रकाशानन्द जी, स्वामी सुकर्मानन्द जी, श्री प सतीश जी "सुमन" एव प सुभाष जी ने भाग लिया। श्री योगेन्द्र जी शास्त्री, ब्र० जीतेन्द्र जी शास्त्री, श्रीमती रूपरानी जी, एम एल ए मुख्यातिथि श्री प्रधान राम लाल जी, श्री सूर्य प्रकाश जी, श्री तीर्थराम जी, श्री दीवान चन्द जी, श्री युद्धवीर जी, श्री रतन लाल जी, माता सतोष अम्बा जी, इन महानुभावो ने इस अवसर पर अपने विचार दिए।

इस प्रकार कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। प्रधान श्री राम लाल जी ने सभी वक्ताओं एव श्रोताओ का हार्दिक धन्यवाद प्रकट किया। अन्त मे ऋषि लगर का भी समुचित प्रबन्ध था।

—विजय शास्त्री

जिला आर्य सभा बठिण्डा का चुनाव सहर्ष सम्पन्न

जिला आर्य सभा भठिण्डा का चुनाव दिनाक 30 जुलाई 2001 को सर्वसम्मति के साथ सहर्ष सम्पन्न हुआ। यह सम्भव हुआ तब जब श्री पी डी गोयल एडवोकेट का नाम श्री आनन्द जी आदि ने प्रधान पद हेतु रखा तो दोनो पक्षो ने तथा अन्य ने तालियां बजाकर इसका स्वागत किया। जिला आर्य सभा के नवनिर्वाचित पदाधिकारी निम्न हैं :-

1 श्री वजीर चन्द मगला-संरक्षक । 2 श्री पी डी, गोयल (एडवोकेट)-प्रधान । 3 श्री बाबू राम गर्ग-वरिष्ठ उप प्रधान। 4 श्री प्रेम भाटिया, मास्टर मनसा राम-उप प्रधान। 5 श्री तरसेम कुमार आर्य-महामन्त्री। 6 श्री चमन लाल मेहता-मन्त्री। 7. श्रीमती सुशीला सुखीजा-मन्त्री। 8 श्री राजेन्द्र कुमार जिन्दल-कोषाध्यक्ष। 9 श्री कृष्ण लाल जटाना-प्रचार मन्त्री।

अन्य विशिष्ट सदस्य गण-श्री कुलवन्त राय अग्रवाल, श्री बिहारी लाल मगला, श्री अशोक अग्रवाल, श्री विनोद कुमार गर्ग, श्री विजय कुमार, ओ पी मगला, श्री भारत भूषण, श्री चौधरी रघुवीर सिंह, श्री कौशल पुरी आर्य, ब्रह्मचारी सूर्यदेव "वैदिक मिशनरी" श्री मोहन लाल बागला, श्री रुलदु सिह तथा सभी आर्य सामाजिक शिक्षण सस्थाओं के प्रधानाचार्य, मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि सभी माननीय सदस्यगण श्री पी डी गोयल की अध्यक्षता में आर्य समाज को जिला बठिण्डा मे एक नई दिशा देने के लिए सदैव तैयार रहेगे। ब्र० सूर्यदेव वैदिक मिशनरी

ले चक्र सुदर्शन आ जाएं

❑ ले० पिशौरी लाल "प्रेम" ददाहू (रेणुका) सिरमौर हि.प्र.-173022

ऐ कृष्ण तू फिर एक बार यहा, भारत में जन्म लेकर आएं।
भारत की हालत देख तेरी, आंखो में आसु आ जाएं॥
तब घर-घर गऊवे पलती थी, और दूध की नदियां बहती थीं।
गऊओ के स्थान पर अब घर में कुत्ते मुर्गे पाले जाए॥
तब दूध, मलाई, मक्खन, घी और फल, सब्जिया खाते थे।
अब भाग, अफीम, सुल्फे, गांजे, सिगरेट के नशे मे खो जाएं॥
तब मास मदिरा का सेवन, करते थे केवल दानव ही।
अब तो मानव भी मास-मदिरा, अण्डे, मछली चट कर जाए॥
तब झूठ बोलना मुश्किल था, अब सत्य बोलना मुश्किल है।
जो झूठ बोलना जानते हैं, उनको सब सिर पर बिठलाए॥
तब कंस, दुशासन, दुर्योधन को, पापी समझा जाता था।
अब ऐसे भ्रष्टाचारी जग में, सच्चे नेता कहलाएं॥
तब चोरी करने वालो को, कठोर दण्ड दिया जाता था।
अब तो बलेकिये चोरों को, फूलो की माला पहनाए।
उपदेश तुम्हारी गीता का अब सुनने वाला कोई नहीं।
अब सिनेमा-थिएटर के गाने, गली गली फिरते गाएं॥
अब "प्रेम" की बंसी से कृष्णा, कम भ्रष्टाचार नहीं होगा।
यदि भ्रष्टाचार मिटाना है, ले चक्र-सुदर्शन आ जाएं॥

अनमोल वचन

❑ रचयिता आचार्य रामसुफल शास्त्री, लाल सड़क हासी (हिसार)

1 प्रतिदिन एक नेक काम करो, और खुश रहो।
2 जिस व्यक्ति में उत्साह नहीं है वह केवल पुतला मात्र है।
3 सुन्दर विचार जिसके पास हैं वह कभी अकेला नहीं है।
4 जिसके पास स्वास्थ्य है, उसके पास सब कुछ है।
5 जितने बड़े बनो, उतने ही नम्र बनो।
6. शान्ति के समान कोई तप नहीं है।
7 आलसी व्यक्ति कभी सफल नहीं होते।
8 वही काम करना ठीक है, जिसे करके पछताना न पडे।
9 हमे हमेशा नेक आदमी की राय माननी चाहिए।
10 विश्वास प्रेम की पहली सीढी है।
11 विश्वास पात्र मित्र जीवन की एक अमूल्य औषधि है।

केन्द्रीय आर्य सभा—यमुना नगर का चुनाव

आर्य समाज माडल टाऊन, माडल कालोनी, रेलवे रोड यमुना नगर आर्य समाज जगाधरी, जगाधरी वर्कशाप, वैदिक साधना आश्रम शादीपुर व वैदिक वृद्ध सन्यास आश्रम यमुना नगर के प्रधान, मन्त्री और उनके प्रतिनिधियो की बैठक दिनाक 22-7-2001 को केन्द्रीय आर्य समाज के पद अधिकारियो के द्विवार्षिक निर्वाचन हेतु सायकाल पांच बजे आर्य समाज माडल टाऊन में हुई जिसमें निम्नलिखित पद अधिकारी सर्व सम्मति से चुने गए।

1 सरक्षक :–श्री मनोहर लाल साहनी। 2 सह संरक्षक :–श्री ओम प्रकाश नरूला, श्रीमती कुसुम आर्या। 3 प्रधान :–श्री केशव दास आर्य। 4 वरिष्ठ उपप्रधान :- शूरवीर सेठ। 5. उपप्रधान .–श्री जयपाल सिह आर्य, श्री डा जय सिंह सैनी, श्री महेन्द्र कुमार सिंगला। 6 मन्त्री :–श्री रविन्द्र आहूजा । 7 उपमन्त्री :–श्री रूपचन्द आर्य, श्री बैज नाथ दुग्गल। 8 कोषाध्यक्ष :–श्री बाल कृष्ण मक्कड़। 9 सहकोषाध्यक्ष:–श्री वीरेन्द्र कुमार। 10 लेखा निरीक्षक :–हंस राज अजमानी। 11 पुस्तकाध्यक्ष :– श्रीमती निर्मल गुप्ता। 12. सत्संग संयोजक :–श्री डा. गेंदा राम आर्य।

–केशव दास आर्य

वेद ऋचाओं से अभिषिक्त

❑ रचयिता श्री राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति मुसाफिरखाना, सुल्तानपुर (उ.प्र.)

आज धरित्री पर फैला है, असुर वृत्तियों का अति जाल,
अट्टहास कर रहा चतुर्दिक, वसुन्धरा पर काल कराल,
नृत्य यहा पर सर्वनाश का, करता है निश्चिन्त मराल,
चिन्तनीय है बना जगति के, जन जन का मर्मांतक हाल।
वेदालोक पडा धूमिल है, सत्प्रवृत्तियां हुई मलीन,
शोषण-उत्पीडन का ताडव होता है भू पर गमगीन,
तडप रही है शुचिता-जल से निकली मानवता की मीन,
मनुज बना है, महा स्वार्थी, स्वार्थ वृत्तियो में है लीन।
आर्त-निनादो की ज्वाला मे, जलता है ऋषियो का देश,
घूम रहे हैं साधु वेश मे, दानव के दल यहा विशेष,
कांप रहा आतकवाद से वीरो का यह देश-स्वदेश,
बचा नहीं है कहीं यहा पर, मनुज वृत्तियो का अवशेष ।
पशुता निर्भय बढी जा रही, श्रेय मार्ग अवरुद्ध हुआ,
मानव ही है आज यहां पर, मानव धर्म विरुद्ध हुआ।
वेदो की ही वसुन्धरा पर, वैदिक धर्म अशुद्ध हुआ।
किया प्रयास बहुत हमने पर, अपना गेह न शुद्ध हुआ।
ऋषि-मुनियों की, मनीषियों की, धरा हुई है सत से रिक्त,
अनय-अभाव तथा अज्ञान, बढा है धरती पर अतिरिक्त,
स्वर्ण बने फिर से यह धरती, मनवता से हो सम्पृक्त,
तो फिर सारी वसुन्धरा हो, वेद ऋचाओ से अभिषिक्त ।

शोक समाचार

बड़े दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि आर्य जगत के सुप्रसिद्ध वक्ता स्वामी आत्मबोध सरस्वती पूर्व नाम (महात्मा आर्य भिक्षु) जी की धर्मपत्नि माता लीलावती जी का देहान्त दिनांक 23-6-2001 को हुआ। वह आर्य वानप्रस्थ आश्रम की 30 वर्षों से स्थाई सदस्या थी। पूर्ण वैदिक रीति से उनकी अन्त्येष्टि की गई जिसमे आर्य जगत के महानुभावो ने सम्मिलित होकर दिवंगत आत्मा को भावपूर्ण विदाई दी। तत्पश्चात् दिनाक 26-6-01 को उनकी स्मृति मे और आत्मिक शान्ति हेतु उनकी कुटिया पर शान्ति यज्ञ का आयोजन हुआ जिसमे आर्य जगत के सुप्रसिद्ध प्रवक्ताओ ने एवम् गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय के कुलपति डा धर्म पाल जी, उप कुलपति डा वेद प्रकाश शास्त्री जी, कुलसचिव डा महावीर प्रसाद जी एवम् योग विभाग के डा. जयदेव जी तथा गुरुवर रामनाथ जी जिले के आर्य समाजो के प्रधान श्री देवराज जी व आश्रम के सभी लोगो की ओर से आश्रम प्रधान श्री सुभाष चन्द्र जी एवम् अन्य अनेक विद्वानो ने दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि सुमन अर्पित किए। अन्त में श्री डा राम कृष्ण जी संस्थापक आर्य गुरुकुल, लखनऊ जो यज्ञ के ब्रह्मा भी थे, उन्होने दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि सुमन अर्पित किए।

चण्डीगढ़ में वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज सैक्टर-22 चण्डीगढ़ में वेद सप्ताह दिनांक 13 अगस्त से 19 अगस्त तक बड़े समारोह से मनाया जा रहा है जिसमें गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार से डा. जयदेव जी दर्शनाचार्य, जालन्धर से प्रो डा नरेश जी अध्यक्ष संस्कृत विभाग दोआबा कालेज, प्रो. डा. विक्रम जी विवेकी पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़, प्रसिद्ध भजनोपदेश श्री रुवेल सिंह जी अम्बाला से पधार रहे हैं। कार्यक्रम प्रात: साय दोनों समय चलेगा 19 अगस्त रविवार को विशेष समारोह प्रात: 9 बजे से दोपहर बजे तक चलेगा।।

–रामरत्न, महाजन, प्रधान

हम सोचें हम कहां जा रहे हैं

☐ लेखिका श्रीमती जनक रानी मन्त्री स्त्री आर्य समाज म.द. बाजार लुधियाना

ब्रह्म में विचरने वाला सच्चा निस्वार्थी बंधु ही उपकारी वाणी बोलने वाला ही सच्चा ब्राह्मण कहलाता है। हम वेद के अनुयायी हैं वेद हमें सिखाता है सच्चे बनना, यज्ञ करना, परोपकार करना। यज्ञ है उपकार देवों की पूजा, जो हवि (द्रव्य) हम यज्ञ में देते हैं, या यूं समझ लो वे देवताओं का हिस्सा कहलाता है उस हवि को खा जाना पाप है। यह असुरों का कार्य है, उस हवि को निज स्वार्थ हित खर्च कर डालना पाप है। यज्ञ क लिए संचित धन व द्रव्य यज्ञिक कार्यों में ही लगे।

इसी प्रकार राष्ट्र यज्ञ चलता है, जिसमें एक टैक्स देते हैं। टैक्स की हवि डालते हैं, हवि का एक अर्थ आदान प्रदान भी होता है भौतिक यज्ञ में जो हवि डाली जाती है वह सहस्त्र गुणा होकर मिलती है, इसी प्रकार राष्ट्र भी प्रजा की टैक्स रूपी आहुति से चलता है, उसके बदले में राजा प्रजा को अधिक लाभ दे यह सिद्धान्त है। प्रजा की रक्षा करे वह धन को कई प्रकार से प्रजा के सुख के लिए खर्च करे प्रजा के चरित्र की भी रक्षा करे। मान लीजिए एक राजा विलासी है वह तो धन का भूखा रहेगा उसके मन में पाप है। प्रजा के धन को खाता है। प्रजा पर अत्याचार होने लगते हैं प्रजा में असंतोष फैल जाता है। ऐसी अवस्था में प्रजा का नेता सत्य निष्ठ ब्रह्म में विचरने वाला ब्राह्मण उठता है। सच्ची और कडवी बात कहता है राजा उसे रोक देता है सोचता है यह ब्राह्मण मेरा क्या बिगाड़ सकता है लेकिन पवित्र वाणी को रोकने वाला राजा आत्म पराजित हो जाता है। ऐसे में प्रजा को अपने धर्म का पालन करते हुए राजा को चेतावनी देनी चाहिए। सत्यनिष्ठ की बात को न सुनना न सुनने देना भयंकर विनाश का कारण होगा। एक प्रकार से देश में दुगुर्णों का, पापों का विष फैलने लगता है, आज हम इसी विष का शिकार हो रहे हैं, हमें सोचना होगा पवित्र वाणी ही राष्ट्र को कल्याण का मार्ग दिखा सकती है, ऐसे महात्माओं, निस्वार्थ सेवियों का पालन करके हम राष्ट्र को निहाल कर सकते है। उनकी वाणी को न सुन कर हम पाप करते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा में ही समाज की रक्षा भी निहित है।

इस बात को न मानने वाला नेता समाज और राष्ट्र का उत्थान नहीं कर सकता हमें ऐसा उन्नत राष्ट्र यज्ञ करके ईमानदारी से अपने स्वार्थों को छोडकर सुन्दर समाज, सुन्दर देश का निर्माण करना होगा तभी हम राम राज्य की बात करने के अधिकारी बनते हैं, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का नारा लगाने के अधिकारी बनते हैं।

राखी का त्योहार

☐ ले. श्री प्रो. ओ.पी. मंगला प्रधान आर्य समाज बठिण्डा

राखी का त्योहार बहन और भाई के पवित्र प्यार का प्रतीक है। यह त्योहार भारत मे प्राचीन समय से ही बड़ी श्रद्धा पूर्वक मनाया जाता है। इस दिन बहन अपने भाई की कलाई पर राखी बांधती है। भाई प्रेम स्वरूप इस त्योहार पर बहन को उपहार देता है।

भारत में प्राचीन समय में मुगल शासक अकबर ने इस त्योहार को राष्ट्रीय त्योहार घोषित किया था। अकबर को इस त्योहार मे प्रगाढ आस्था थी। उस समय इस त्योहार को उल्लासपूर्वक मनाया जाता था तथा इस दिन मिठाईयां बांटी जाती थी। कई मुगल बादशाह इस दिन हिन्दू मन्त्रियों से राखी बंधवाया करते थे।

वर्तमान समय मे हमारे राजनैतिक नेता इस दिन बच्चो से राखियां बंधवाते हैं तथा प्रसन्नता पूर्वक मिठाईयां बांटी जाती हैं।

आर्य समाज में राखी का महत्व विशेष तौर पर वर्णीत है। चौमासे के दिनों मे वानप्रस्थी लोग शहरो मे आ जाते थे तथा राजाओ को राखी बांधते थे। राजा लोग उनके रहन-सहन का प्रबन्ध करते थे तथा वानप्रस्थी लोग राजा तथा प्रजा की रक्षा के लिए यज्ञ करते थे ताकि उन पर प्राकृतिक सकट न आए।

चितौड की रानी कर्णवती पर जब गुजरात के बहादुर शाह की सेना ने चढाई की तो रानी कर्णवती ने हिमायू बादशाह को राखी भेज कर अपनी तथा राजकुमार की सुरक्षा मांगी थी।

फिल्म ससार मे सगीतकार मदन मोहन स्वर सम्राज्ञी लता मगेश्कर से राखी बधवाया करते थे इस प्रकार राखी बहन और भाई के पवित्र प्यार प्रतीक त्योहार है।

आर्य समाज मो. गोबिन्दगढ़ जालन्धर में वेद सप्ताह

आर्य समाज मो गोबिन्दगढ जालन्धर में 4 अगस्त स 12 अगस्त तक वेद सप्ताह मनाया जा रहा है जिसमे श्री डा. उमेश जी आचार्य दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार, श्री निरञ्जन देव जी इतिहास केसरी, श्री प्रो राजेन्द्र जी जिज्ञासु अबोहर व श्री सतीश सुभाष भजन मण्डली के वेदोपदेश होंगे। कार्यक्रम प्रतिदिन प्रात: 6.30 से 8 बजे तक रात्रि 7 30 से 8.30 बजे तक चलेंगे। सामवेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति 12 अगस्त को 8 30 बजे होगी इसके बाद 10 बजे तक वेदोपदेश होंगे।

—नरेश कुमार, मन्त्री

आर्य समाज राजपुरा में वेद सप्ताह

आर्य समाज राजपुरा टाऊनशिप में 6 से 12 अगस्त तक वेद सप्ताह मनाया जा रहा है। कार्यक्रम प्रात: 6 से 8 30 बजे तक तथा सायं 3.30 से 5 30 बजे तक साम वेद परायण यज्ञ होगा। 12 अगस्त रविवार का कार्यक्रम 12.30 बजे दोपहर तक चलेगा। इस अवसर पर आचार्य देवव्रत गुरुकुल कुरुक्षेत्र एवं श्री सहदेव सिंह बेधड़क भजन मण्डली के उपदेश व भजन होंगे। —चन्द्र किशोर आर्य, मन्त्री

आर्य समाज मोगा में वेद सप्ताह

आर्य समाज मोगा में 4 से 12 अगस्त तक वेद सप्ताह मनाया जा रहा है। जिसमें श्री पं. सुन्दर लाल जी शास्त्री वेदोपदेश करेंगे। इसमें मोगा की जनता बढ़चढ़ कर भाग ले रही है। —प्रियतम देव-कार्यकारी प्रधान

आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना में परिवार मिलन समारोह

आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना में 22 7 2001 रविवार को परिवार मिलन समारोह आयोजित किया गया जिसमे लगभग सब सदस्य अपने परिवारो सहित सम्मिलित हुए। कायक्रम प्रात 8 बजे पवित्र यज्ञ से आरम्भ हुआ जिसके ब्रह्मा प बाल कृष्ण जी शास्त्री थे और श्री अनिल जा सपत्नीक यजमान बने। परिवार मिलन समारोह की महत्ता बतलाते हुए आर्य समाज के महामन्त्री श्री विजय सरीन ने कहा कि ऐसे कार्यक्रमो से एक दूसरे के परिवार के सदस्यो को मिलने का अवसर प्राप्त होता है। क्योकि ऐसे अवसर पर किसी विद्वान्, भजनोपदेशक को विशेषकर आमन्त्रित किया जाएगा जिससे यह कार्यक्रम सामान्य सत्सग से हटकर एक आकर्षक कार्यक्रम होगा जिसमें लोगों की रूचि बढेगी और धीरे धीरे साप्ताहिक सत्सगो में उपस्थिति बढने लगेगी। इस कार्यक्रम में श्री अनिल जी गौतम ने अपने मधुर स्वर में मनोहर भजन सुनाकर श्रोताओ को आनन्दित किया। आचार्य डा नरेश जी का आर्य समाज के प्रधान श्री राम लाल जी गाधा श्री सुनील जी सूद, श्री राम कृष्ण जी श्री अश्चर्ज लाल जी गुलाटी तथा स्त्री आर्य समाज की प्रधाना श्रीमती वीना जी गुलाटी न फूल मालाए अर्पित कर हार्दिक अभिनन्दन किया। आचार्य नेरश (दाआबा कालेज जालन्धर) ने अपने प्रवचन मे कहा जब कोई गुरु क पास या सत्सग मे ज्ञान प्राप्त करन क लिए जाता है तो उसमे तीन गुण होने आवश्यक हैं—श्रद्धा ज्ञान प्राप्त करने की तत्पर्ता लगन और अपनी इन्द्रियो का सयम मे रखने की विशेषकर मन का एकाग्र करन की क्षमता। सच्चे ज्ञान से ही मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। कार्यक्रम के पश्चात् सबने मिलकर प्रीति भोज किया। कार्यक्रम का सफल बनान मे उपर लिखित अधिकारियो के अतिरिक्त श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता (कोषाध्यक्ष) श्री बृज महन जी अरोडा (मन्त्री) श्री बृजेश जी पुरी श्री हरबस लाल जी सहगल श्रीमती सुदेश गुप्ता जी (मन्त्राणी स्त्री समाज) श्रीमती ममता शर्मा जी एव श्री विजय गुलाटी जी का विशेष सहयोग रहा। प्रभु कृपा से कायक्रम सफल रहा।

—विजय सरीन
महामन्त्री

ग्राम माजरी में सामवेद परायण यज्ञ सम्पन्न

रोपड से चण्डीगढ मेन रोड पर एक कस्बा है कुराली है वहा से 15 किलोमीटर पूर्व की ओर एक गाव माजरी सियालबा के नाम से मशहूर है अधिक्तर आबादी राजपूतो की है वैसे इस नगर मे सभी वर्ग के लोग रहते हैं। यहा एक खास पहचान का परिवार रहता है जिसको लोग बाबिया दा परिवार बोलत हैं। इनकी आज से पहले तीसरी पीढी जो वैदिक धर्म मे आई थी उस महापुरुष का नाम श्री लाभ सिह जी राठौर था इन के चार पुत्र तथा सात पुत्रिया है जोकि सभी वैदिक धर्म आर्य समाज को समर्पित हैं। ग्राम माजरी मे इनका एक तालाब के किनारे आम का बाग है उसी बाग मे ठीक तालाब के किनारे बडी सुन्दर यज्ञशाला आज से करीब पाच छ साल पहले बनाई गई है इस यज्ञशाला मे प्रतिदिन सन्ध्या यज्ञ हवन सारे परिवार जन मिल कर करते हैं और बडे ही सुन्दर ढग से स्त्री पुरुष मिल कर भजन गाते हैं। इस परिवार का एक खास नियम है कि जैसे यह सब मिल कर बारह परिवार हैं सो हर महीने के पहले रविवार को एक परिवार की तरफ से हवन यज्ञ समेत भण्डारा करने की बारी एक बार आती है साल मे एक परिवार की बारी एक बार होती हे वैसे यदि किसी परिवार मे किसी का जन्मदिन वगैरह या कोई और सस्कार होता हे ता बारी को बदल भी लिया जाता हे। श्री लाभ सिह जी क पुत्रो क नाम हैं सर्वश्री सुरेन्द्र सिह चक्रवर्ती श्री रविन्द्र सिह श्री जगदीप सिह तथा श्री चन्द्रहास सिह जी राठार है। श्री जगदीप सिह जी क सुपुत्र श्री धर्मदेव सिह जी जो कि गुरुकुल करतारपुर से पिछले साल बी ए की डिग्री प्राप्त करके आए हैं। आते ही इन्होने चण्डीगढ मे एम ए शुरू कर दी है इनका लक्ष्य सस्कृत में पी एच डी करने का है। इनकी माता श्रीमती चन्द्रकान्ता जो कि वास्तव मे देवी का स्वरूप हैं न 1 7 2001 से 8 7 2001 तक सामवेद परायण यज्ञ इस परिवार म करवाया। यज्ञ के साथ ग्राम वासियो के लिए प्रीति भोज (भण्डारा) का भी प्रबन्ध किया गया था जो कि दिन भर चलता रहा यह पारायण यज्ञ श्री रविन्द्र सिह जी राठौर की तरफ से किया गया है। इस यज्ञ की पूर्णाहुति पर मुझे भी बुलाया गया था सो मुझे इस यज्ञ मे सम्मिलित होकर बहुत ही प्रसन्नता हुई। वैसे तो मैं प्रचार करने के लिए माजरी अक्सर जाता रहता हू मगर इस बार प्रोग्राम बहुत ही सुन्दर और प्रभावशाली था। इसमे मेरे भी तीन प्रवचन हुए जिसे लोगो ने बहुत पसन्द किया। बहनो ने भी बडे अच्छे अच्छे भजन गाए और श्री धर्मदेव सिह जी को सभी ने बधाई और आशीर्वाद दिया अन्त में श्री धर्मदेव सिह आर्य की माता जी ने अपना बनाया हुआ भजन गाया जिस सुनकर धर्म देव सिह जी के बाबा स्वर्गीय श्री लाभ सिह जी की याद ताजा हो गई और इस गाने को वहा बैठे हुए सैंकडो नर नारियो न झूमते हुए स्वर मे सब ने मिल कर गाया। उस गीत क बाल थे

रग बरसे तुम्हारी बगिया मे पिता जी रग बरसे

—गुरदेव सिह वानप्रस्थी बलाचौर

डी एम कालेज आफ एजुकेशन मोगा का परीक्षा परिणाम

पजाब विश्वविद्यालय से सम्बन्धित डी एम कालज आफ एजुकेशन मोगा का बी.एड 2001 का परिणाम अभी घोषित हुआ है। मुझ यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि परिणाम शत प्रतिशत रह कर सभी विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। प्रथम बारह स्थानो मे तीन छात्र इस कालेज से सम्बन्ध रखते हैं जिन्होने क्रमश 8वा 10वा 12वा स्थान प्राप्त किया है। शिखा आठवें स्थान पर सुरभी दसवें स्थान पर और रितू बारहवे स्थान पर है

मैं अपनी प्रबन्ध कमेटी और सस्था के सभी प्राध्यापकों का हार्दिक धन्यवाद करता हू और इस उपलब्धि पर उन्हे बधाई देता हू।

—सिद्धेश्वर शर्मा, कार्यकारी प्रिंसिपल डा एम कालज ऑफ एजुकेशन, मोगा

आर्य समाज मन्दिर हांसी का चुनाव

सर्व सम्मति से दिनांक 8 7 2001 को आर्य समाज हासी का चुनाव श्री जबर सिह खारी भजनोपदेशक की अध्यक्षता मे निम्न प्रकार हुआ।

श्री चौ देवदत्त—प्रधान श्री सोहन लाल भयाना—उप प्रधान श्री राम सिह आर्य—उपप्रधान। श्री विजय कुमार अग्रवाल—उपप्रधान श्री सतीश कुमार आर्य मन्त्री। श्री पवन कुमार सैनी—उपमन्त्री। श्री प्रवीण कुमार सिंगला—कोषाध्यक्ष। श्री बृजमोहन सिंगला—भोजन व्यवस्थापक। श्री नन्द किशोर—भोजन व्यवस्थापक।

आर्य समाज मन्दिर मे 18 20 वर्षों से लगातार लगर चल रहा है जिसमें लगभग 35/40 व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करने आते हैं।

—सतीश कुमार, मन्त्री

... प्रैस मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय ... आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

दूरभाष ☎ 292926

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–55 अंक : 12 सृष्टि संवत 1960853102, 19 अगस्त तथा 26 अगस्त 2001 दयानन्दाब्द 178

मन की दुर्बलता मन की सबलता वीरता

❑ *ले० श्री देवी दयाल शर्मा, "शर्मा निवास, 120 माडल टाऊन, स्ट्रीट नं. 4, अमृतसर"*

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

जिन का मन काबू मे है, सफलीभूत वही वीर॥

जन्म के पापी वहीं हैं, जिन के मन कमजोर।

सफलता कभी न पा सके, यत्न करें लख जोर॥

मैंने उपर्युक्त चार स्तरे पद्य-काव्य के रूप मे बनाने का प्रयास किया है। पाठकगण इनको पढ़ कर जीवन मे उतारे।

जो मानव, दुर्बल मन वाला है, अविजय उसको चारो ओर से घेर लेती है और जिसका मन वीरता से युक्त है, सफलता उसकी कदम वामी करती है। कहा भी है –दुनिया मानती है जोरो को। लख लानत कमजोरो को॥

बहादुर आदमी की हर जगह मान प्रतिष्ठा होती है। उन के ऊपर लोग फूल बरसाया करते हे और जो कमजोर मन के है, कच्चे इरादे के हैं लोग उन को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यदि हमने इस दुनिया मे जीना है तो हमे अपना मन बहुत ही मजबूत करना पडेगा। जीवन के हालात जब अनुकूल न हो कष्ट पर कष्ट आता जाए, तो केवल बहादुर मन वाला ही उनका मुकाबला कर सकता है और उन दु:खों को निष्कन्टक और बाधारहित और विघ्नविहीन कर सकता है। वह उत्साहित पुरुष अपने आत्मबल से बडे से बडे कष्टो को सुख मे परिवर्तन कर लेता है। इस उपलक्ष्य मे वैदिक शिक्षा बड़ी लाभदायक होगी। इस मन्तव्य को पूरा करने के लिए वैदिक संस्कार हमारी रहनमाई करेंगे। बच्चे के चार मास पैदा होने से पहले। यदि दो सस्कारो का (1) पुसवन और (2) सीमन्तोनयन का अनुष्ठान किया जाए और स्त्री के गर्भवती होने से पूर्व, गर्भाधान सस्कार करवाया जाए तो सन्तान जो पैदा होगी वह बडी हृष्ट-पुष्ट, खूबसूरत, साहसी और वीरता से युक्त होगी। मन की कमजोरी का कहीं नामों निशान नहीं होगा। इसलिए महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने वेद के आधार पर सस्कार विधि लिखी है और इस पर बहुत बल दिया है। सच पूछिये, कमजोर मन वाले मनुष्य का जीवन कोई जीवन नही है। कदम-कदम पर मृत्यु उसको आ दबोचती है और इस तरह वह अप्रतिष्ठित मृत्यु को प्राप्त होता है। ऐसे मनुष्य को किसी विद्वान् वैदिक सन्यासी के पास जाना चाहिए और मन की दुर्बलता को दूर करने के लिए उस से राज (Secrets) पूछने चाहिए और फिर उसके निर्देश का पालन करना चाहिए। वेद के मन्त्र हमे बताते हैं कि किस तरह निर्भीकता प्राप्त करनी चाहिए अपने शत्रुओ मे।

सुना जाता है कि अमृतसर मे एक बडे वेद के ज्ञाता हुए हैं। (प्रकाड पण्डित) उनका नाम पण्डित आत्मा राम जी अमृतसरी था। उन्होने सस्कार विधि के आधार पर एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम सस्कार चन्द्रिका है। कहा जाता है कि उनके तीन लडके थे। उन तीनो का जन्म वैदिक सस्कारो से ओत-प्रोत था जब वह माता के गर्भ में थे वह जन्म से ही बडे शूरवीर, साहसी, सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट थे और विद्या के क्षेत्र में भरपूर उन्नति की और सरकारी सर्विस मे बड़ी अद्भुत उपाधियां और उपलब्धियां प्राप्त कीं। यह है हमारे वैदिक सस्कारों का चमकता हुआ प्रताप।

अब हम अर्जुन की कायरता के बारे में लिखते हैं जो बुजदिली के कारण रणभूमि को छोड कर भागना चाहता था परन्तु योगीराज कृष्ण की दैवी धर्मोपदेश (Divine Sermou) ने उसकी कायरता को वीरता मे तबदील कर दिया।

हमारे सामने एक बडा चमकता हुआ उदाहरण श्री गुरु तेग बहादुर जी का है। जिन्होने धर्म की खातिर अपने आप को कुर्बान कर दिया, बादशाह औरगजेब ने गुरु जी को बार-बार कहा कि वह इस्लाम धर्म स्वीकार करें परन्तु उन्होंने औरगजेब बादशाह की बात को काट दिया। औरगजेब ने हुक्म दिया कि उनका सिर काट दिया जाए। तारीख और समय इसके लिए मुकरर हो गए। उस तारीख से पहले औरगजेब ने फिर सदेश भेजा कि यदि वह मान जाए तो कह दो कि उनको कत्ल नहीं किया जाएगा। गुरु जी ने कहा (जिनका मन बडा बलवान था) कि अब यह प्रश्न ही पैदा नहीं होता। वह तो अपने सच्चे धर्म पर मर मिटेंगे। वह औरंगजेब के सामने बिल्कुल नहीं झुके। परिणाम स्वरूप, जल्लादों ने उनका सिर कलम कर दिया।

एक ओर उदाहरण बाल हकीकत राय का भी है। उनका वैदिक सस्कारो में पालन-पोषण हुआ था। वह स्यालकोट के रहने वाले थे जो अब पाकिस्तान में आ गया है। उन्होंने इस्लामी स्कूल मे विद्या प्राप्त की थी। जिस समय वह पढते थे, उनकी कक्षा के विद्यार्थी उनको इस्लाम धर्म कबूल करने के लिए उकसाया करते थे परन्तु बाल हकीकत राय नहीं मानते थे। पढ़ाने वाले उस्ताद (Teacher) भी उनको इस्लाम कबूल करने के लिए कहते ही रहते थे परन्तु वह कच्चे इरादे के नहीं थे। वह तो पक्के वैदिक धर्मी थे। वह टस से मस नहीं हुए। अन्त में उस पर काफर का फतवा लगा दिया गया और बादशाह ने हुक्म दिया कि इसका सिर उडा दिया जाए। वह हंसते-हसते जल्लादो के सामने आ गए। उन्होने कहा कि मेरी आत्मा अमर है। वैदिक धर्म की खातिर शरीर जाता है तो जाने दो। आखिर मे जल्लादो ने दो मिन्ट मे बाल हकीकत को खत्म कर दिया उनका मन वीरता से ओत-प्रोत था। अन्त समय जब आया तो उन्होने बडे जोर से वैदिक धर्म की जय बुलाई "वैदिक धर्म अमर रहे"।

चौथी मिसाल है, हमारे पूज्य पिता जी की है जो 93 वर्ष की आयु मे अपना भौतिक चोला छोड कर ईश्वर के चरणो मे लीन हो गए। वर्ष 1949 की घटना है कि हमारे गाव मे डाकुओं ने हमारे घर पर डाका डाल दिया। मेरे पिता जी के पास बन्दूक का लाईसैंस था जो कि सुरक्षा के लिए रखी हुई थी। उन्होंने डाकुओं का डट के मुकाबला किया और एक डाकु को बन्दूक की गोली से खत्म कर दिया बाकी डाकु सब दौड़ गए। इलाके के थानेदार ने सीनियर सुप्रीन्टेन्डेट पुलिस को वायरलैस द्वारा सूचित किया। सीनियर सुप्रीन्टेडेंट पुलिस हमारे घर आए और हमारे पिता जी की वीरता की भूरि-भूरि प्रशसा की। पजाब सरकार को हमारे पिता जी की बहादुरी का, उपहार दिलाने के लिए लिखा। हमारे पिता जी को पजाब सराकर ने नकद रुपए भी दिए और एक प्रशसा पत्र भी सरकार की तरफ से मिला। हमारे पूज्य पिता जी वैदिक धर्मी थे और बड़े ही पक्के इरादे के थे और नियम के पाबन्द थे। ससार में सफलता उनको ही प्राप्त होती है जिनके मन वीरता से भरपूर हैं।

"अखंड ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द"

❑ *लेखिका. डा. स्वच्छ सचदेवा प्रधान स्त्री आर्य समाज बठिण्डा*

हमारा भारत वर्ष चरित्र प्रधान देश है। यहां समय-2 पर अनेको ब्रह्मचारी हुए हैं, परन्तु मुख्यत: तीनों के नाम प्रसिद्ध हैं। प्रथम सतयुग में बालब्रह्मचारी हनुमान जी हुए हैं जिन्होने अपने भगवान राम के लिए ब्रह्मचर्य धारण किया था। त्रेतायुग मे भीष्म पितामह बाल ब्रह्मचारी हुए हैं जिन्होने अपने पूज्य पिता जी के लिए यह व्रत लिया था। कलयुग मे देव दयानन्द जी ने ससार के उपकार के लिए यह व्रत धारण किया।

स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे "हमारे यहा व्यक्ति चरित्र से पहचाने जाते हैं न कि वस्त्रो से" स्वामी दयानन्द की समस्त शिक्षाओ को लोगो ने मान लिया है। स्त्री शिक्षा को तो इतनी महत्ता शायद पहले कभी नही थी, बाल विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, मूर्ति पूजा, बलि प्रथा, अध विश्वास अब बहुत कम हो गए हैं। आज जिसकी आवश्यकता है वह है स्वामी जी द्वारा दर्शाया मार्ग ब्रह्मचर्य का। आज सिनेमा, टी वी और पाश्चात्य का प्रभाव, इसने ब्रह्मचर्य को बहुत ठेस पहुचाई है, लोग क्षणमात्र के शारीरिक सुख को ही सब कुछ मान बैठे है।

ब्रह्मचर्य के दो अर्थ है एक तो ब्रह्म मे विचरना दूसरा वीर्य रक्षा करना, जो व्यक्ति ब्रह्म अर्थात् ईश्वर भक्ति मे मग्न रहता है, खान-पान शुद्ध रखता है वह ही ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है। हर धर्म मे विषय वासना से दूर रहने की शिक्षा दी जाती है, लेकिन लोग इसके अधीन होकर अधोगति को प्राप्त कर रहे हैं। स्वामी जी से किसी ने पूछा कि आपको वासना सताती नहीं उनका उत्तर था कि मैंने इस ओर कभी ध्यान नहीं किया। उनके ब्रह्मचर्य के कुछ उदाहरण यहा प्रस्तुत कर रही हू-

1 स्वामी जी मथुरा में जमुना किनारे समाधि में मग्न थे किसी औरत ने साधु समझ कर स्वामी जी के पाव छू लिए, स्वामी जी ने कहा "माता तूने यह क्या किया" पश्चाताप के रूप मे उन्होने तीन दिन अन्न ग्रहण नहीं किया। न ही गुरु जी के पास गए।

2 दो बैल कीचड़ में धस गए थे, कोचवान उनको खूब पीट रहा था क्योंकि गाडी भी बैलों के साथ थी, स्वामी जी ने बैलो को बाहर निकाला और बैलों की जगह खुद जुए को कन्धो पर धारण कर गाड़ी को बाहर निकाला । यह था ब्रह्मचर्य का बल।

3 राव कर्ण सिह राधा और कृष्ण की रास लीला करवा रहा था स्वामी जी ने कहा राधा तुम्हारी मा है तुम अपनी मां को नचा रहे हो शर्म नहीं आती। कर्ण सिह ने तलवार निकाल ली, स्वामी जी चाहते तो उसी तलवार से उस पर वार कर सकते थे लेकिन नहीं उन्होने तलवार के दो टुकडे कर दिए।

4 राजा विक्रम सिह ने पूछा स्वामी जी ब्रह्मचर्य का क्या लाभ है, स्वामी जी चुप रहे, जब वह अपने चार घोड़ों वाली बग्गी पर जाने लगा तो घोडे टस से मस नहीं हुए, पीछे घूम कर देखा तो स्वामी जी ने एक हाथ से बग्गी को रोक रखा था। वह पाव पर गिर गया। कहने लगा मेरे प्रश्न का उत्तर मिल गया है।

5 जोधपुर मे स्वामी जी राजा को सस्कृत पढाया करते थे, एक बार स्वामी जी राजा से पूछने लगे कि तुम जो वेश्या रखते हो उनसे जो सन्तान होती है, उसके पिता कौन होते हैं वह कहने लगे "वह बच्चे हमारे ही कहलाते हैं" तो स्वामी जी ने कहा कि अगर लडकी पैदा हुई तो वह बडी होकर क्या बनती है, राजा कहने लगे कि वह तो वेश्या ही बनेगी। स्वामी जी ने झट से कहा कि क्या तुम चाहते हो कि "तुम्हारी बेटी वेश्या बने"। स्वामी जी ने उन्हें समझाया कि "किसान कितना ही मूर्ख क्यो न हो वह दूसरे के खेत मे अपने बीज कभी नहीं डालता।"

6 एक बार दो पहलवान स्वामी जी को उठाकर जमुना मे फैंकने को आये स्वामी जी ने दोनो को अपनी दोनों बगलों में दबोच कर जमुना में छलांग लगा दी, दोनो को खूब डुबकिया लगवाई और स्वय घंटों जल समाधि ले ली। अलखनन्दा बर्फ की नदी पार करना, मगरमच्छ का सामना करना यह भी हकीकत है। आज ब्रह्मचर्य के अभाव में अनेकों भ्रूण हत्याएं हो रही हैं, आज सैक्स का इतना बोलबोला है कि क्या बहन, बेटी, बहू तक लोगों ने नहीं छोड़ा, आये दिन सैक्स के कारण लडाई-झगड़े आत्म हत्याए बढ़ गई हैं, कुछ दिन पूर्व बठिडा में ही किसी व्यक्ति ने अपनी पत्नी की हत्या की साथ ही दो बच्चों को गला घोंट कर मार डाला और स्वयं फासी पर झूल गया कारण पत्नी पर शक था। सो आज स्वामी जी की शिक्षा पर चलने की हमें आवश्यकता है। उर्ध्व गामी वीर्य ही स्वास्थ्य और शक्ति दे सकता है। अधोगमि वीर्य के लिए तो व्यक्ति को गन्ने की तरह पिलना पड़ता है और फिर रस निकलने के बाद जो हालत गन्ने की होती है वही व्यक्ति की हो जाती है। सैक्स को हर जीव में विधाता ने पैदा किया है, लेकिन अपनी वंश वृद्धि के लिए। स्वामी जी ने कहा था कि आदर्श गृहस्थी अगर सीमा में रहकर गृहस्थ करता है तो वह भी ब्रह्मचारी की सज्ञा मे आता है। उसका सम्बन्ध मन से है अत: अपने मन को शुद्ध विचारो से भर दो ताकि गन्दे विचार उसको तग न करे। स्वामी जी की इस शिक्षा की आज अत्यन्त आवश्यकता है। काम पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध ही सारे झगडों की जड है। सो वासना को अपने अधीन रखना चाहिए न कि मनुष्य वासना के अधीन रहे। यही आज की आवश्यकता है।

कैसा यह स्वराज्य है आया ?

❑ *राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति, मुसाफिर खाना, सुल्तानपुर (उ. प्र)*

है अन्याय अनय का तांडव,
करता कण कण हाहाकार।
भारत की धरती पर होता,
असुर दलो का अत्याचार।
हत्या तथा डकैती का है,
निर्भय होता कारोबार।
रावण युग सा ही फैला है,
अनाचार व अतिव्यभिचार
उग्रवाद-आतंकवाद से, भारत का कण कण थर्राया,
रोज सहस्त्रों लोग मर रहे, कैसा यह स्वराज्य है आया?
गाव गाव मदिरा बिकती है,
होता नष्ट जनो का जीवन।
हुए अराजक युवक हमारे,
हुआ प्रदूषित उनका अभिमन,
चरित्रहीनता बढती जाती,
करते बच्चे आज व्यसन।
जीवन हैं बर्बाद कर रहे,
कायर तथा कर्महीन बन।
गावों से लेकर दिल्ली तक, फैली भ्रष्टाचार की छाया।
घूस ले रहे सब अधिकारी, कैसा यह स्वराज्य है आया ?
स्वतंत्रता के लिए असंख्यक,
युवको ने थे प्राण गवाए।
स्वतत्रता की बलिवेदी पर,
लाखों ने थे शीश चढ़ाए।
भगत-सुभाष तथा बिस्मिल ने,
बलि के पथ पर कदम बढ़ाए।
अमर शहीदों के शोणित से,
जननी के कण-कण हर्षाए।
आज हमारी करतूतो से, लहू शहीदों का शरमाया।
कर्णधार भी भ्रष्ट बने हैं, कैसा यह स्वराज्य है आया ?

सम्पादकीय.....

वेद प्रचार का कार्य आरम्भ

अगस्त के महीने से वेद प्रचार का कार्य आरम्भ हो गया है। गत दिनों कई आर्य समाजो में वेद सप्ताह सम्पन्न हुए हैं। आर्य समाज राजपुरा टाऊनशिप, आर्य समाज नवाशहर, आर्य समाज मोगा, आर्य समाज गुरदासपुर, आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर, आर्य समाज पायल, आर्य समाज हबीब गंज लुधियाना, आर्य समाज गोबिन्दगढ जालन्धर में वेद सप्ताह सम्पन्न हुए। इस अवसर पर सभा के अधिकारी व सभा के उपदेशक वेद प्रचारार्थ आर्य समाजो मे गए। श्रीमती राजेश शर्मा सभा मन्त्री व श्री आशानन्द जी आर्य सभा उप प्रधान कई आर्य समाजो मे गए। श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद तथा श्री सुदर्शन शर्मा सभा उप प्रधान, श्री प्रेम भारद्वाज सभा कोषाध्यक्ष, प्रि स्वतन्त्र कुमार सभा उप प्रधान और मैं स्वयं भी अस्वस्थ होने के बावजूद, आर्य समाज हबीबगज लुधियाना और नवाशहर की आर्य समाज में गया।

मेरी यह अभिलाषा है कि प्रत्येक आर्य समाज वेद प्रचार की ओर विशेष ध्यान दे, परिवारो तथा सार्वजनिक स्थानों व आर्य समाजों में वेद प्रचार के कार्यक्रम रखे जाएं। स्कूल कालेजों मे भी वेद प्रचार का कार्य हो, क्योकि वेद प्रचार के द्वारा ही समाज का कल्याण सम्भव है। देश की वर्तमान स्थिति को देख कर पता चलता है कि इस समय देश के सामने कई बडी-बडी समस्याए मूह बाये खड़ी हैं, आज भ्रष्टाचार चारों ओर फैला हुआ है, आतकवाद ने तो चारों तरफ अपना मूह खोला हुआ है और वह निर्दोष लोगो को अपनी लपेट में लिए जा रहा है। जम्मू-काश्मीर मे क्रूरता पूर्ण हत्याए की जा रही हैं। देवियों पर जो अत्याचार क्रूरता पूर्वक आतकवादियों ने किए हैं उन्हें सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आखिर आतक वादियो की भी बहनें होंगी, माताएं होगी यदि कोई उनके साथ ऐसा करे जैसा वह दूसरी महिलाओं के साथ कर रहे हैं तो उन्हे वह कैसा लगेगा, उन पर क्या गुजरेगी यह वह नहीं विचारते। जिस स्त्री जाति के लिए धर्म ग्रथ पुकार-पुकार कर कह रहे हैं "यत्र नारियस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता" अर्थात् जहां नारी का सत्कार होता है वहां देवता निवास करते हैं। वेद मे नारी की महिमा भरी पड़ी है। परन्तु लोगों को तभी इसका पता चलेगा जब वेद का प्रचार व प्रसार होगा। वेद में सब समस्याओं का समाधान है।

इसलिए वेद प्रचार की ओर हमें विशेष ध्यान देना चाहिए। सुख और शान्ति प्राप्त करने के लिए, मानव को मानव बनने के लिए, मानव को देव बनाने के लिए, मानव मात्र के कल्याण के लिए वेद का प्रचार आवश्यक है और इस समय आर्य समाज के सिवाय और कोई संस्था या मत अथवा मजहब कोई भी वेद का प्रचार नहीं करता। इसलिए आर्य समाज को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। —हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

श्री सोमनाथ जी मरवाह नहीं रहे

श्री सोमनाथ जी मरवाह एडवोकेट का आर्य समाजी क्षेत्र मे अपना एक विशेष स्थान था। वह चिरकाल से दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के साथ वर्षों जुडे रहे और चिरकाल तक आर्य समाज की सेवा करते रहे। वह पिछले कुछ समय से रुग्ण चले आ रहे थे परन्तु फिर भी इसकी परवाह न करते हुए वह निरन्तर कार्य कर रहे थे। 15 व 16 अगस्त 2001 की मध्य रात्रि में लगभग 1.30 बजे हृदय गति रुक जाने से दिल्ली के स्थानीय अस्पताल में उनका देहावसान हो गया वह 91 वर्ष के थे । उनका जन्म पूर्वी पजाब (अब पाकिस्तान) के जेहलम जिले मे हुआ था। देश विभाजन के पश्चात् वह दिल्ली मे आ गए और यहीं अपनी वकालत करने लगे दिल्ली में वकालत मे भी उन्होंने बडा उच्च स्थान प्राप्त किया। शायद ही कोई ऐसा आर्य बन्धु होगा जो उन्हे न जानता हो। उनके चले जाने से जो स्थान आर्य समाज में खाली हुआ है उसकी पूर्ति होना सम्भव नहीं है। उन जैसा सुयोग्य व्यक्ति आर्य समाज को मिलना कठिन है।

मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से व अपनी ओर से उन्हें श्रद्धांजलि भेंट करता हू और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि वह दिवंगतात्मा को उनके श्रेष्ठ कर्मानुसार सद्गति व सुख शान्ति प्रदान करे और उनके सारे परिवार को उनका वियोग सहन करने की शक्ति प्रदान करे। —हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

दिल्ली में संकल्प दिवस समारोह

आर्य समाज मिन्टो रोड नई दिल्ली के भवन को 14 अप्रैल 2001 को शहरी विकास मन्त्री श्री जगमोहन के आदेश से गिरा दिया गया था। आर्य समाज ने इस का विरोध किया था और सैंकडों आर्य समाजों ने इसके लिए रोष पत्र भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री लाल कृष्ण आडवानी गृह मन्त्री भारत सरकार तथा श्री जगमोहन को भेजे हैं पहले उसी स्थान पर पुन: आर्य समाज मन्दिर बनवाने का आश्वासन भारत सरकार ने दिया था परन्तु अब ऐसा करने से रोका जा रहा है। जिससे आर्य जगत में रोष बढ़ता जा रहा है। इससे स्पष्ट पता चलता है कि आर्य समाज को इसके लिए संघर्ष करना पड़ेगा। सार्वदेशिक सभा के आह्वान पर नई दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में गत दिनो आर्य समाज मिन्टो रोड के पुनर्निर्माण के लिए संकल्प दिवस समारोह मनाया गया। इस अवसर पर संकल्प पत्र भी भरवाए गए। आर्य मर्यादा के इसी अक मे वह सकल्प पत्र छापा जा रहा है ताकि आर्य जनता उसकी फोटो प्रति करा कर उसे भर कर सार्वदेशिक सभा व दिल्ली प्रतिनिधि सभा के कार्यालय में भेज सके। संघर्ष होना अनिवार्य लगता है । इसे टाला नहीं जा सकता। यह महाभारत के युद्ध की तरह होना अनिवार्य हो गया है। विजय इसमें आर्य समाज की ही होगी।

मेरी पंजाब की आर्य जनता से प्रार्थना है कि वह संकल्प पत्र भर कर अधिक से अधिक संख्या में सार्वदेशिक सभा तथा दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा 15 हनुमान रोड नई दिल्ली-1 के पते पर भिजवाएं। ताकि दिल्ली में सभी दिल्ली के अधिकारी जान सकें कि पंजाब की आर्य जनता का उन्हें इस आन्दोलन में पूरा-पूरा सहयोग मिलेगा।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

जिला आर्य सभा लुधियाना के महत्वपूर्ण निर्णय

लुधियाना में पिछले कुछ दिनों से आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार (दाल बाजार) के प्रधान श्री रोशन लाल जी अपने आपको जिला आर्य सभा का स्वयं भू तथाकथित प्रधान समाचार पत्रों में लिख रहे हैं जब कि गत दिनों जिला आर्य का कोई चुनाव नहीं हुआ। इसलिए 19-8-2001 को जिला आर्य सभा की अन्तरंग सभा की एक महत्वपूर्ण बैठक सायं तीन बजे दयानन्द पब्लिक स्कूल लुधियाना मे जिला आर्य सभा की प्रधान श्रीमती राजेश शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। इस बैठक में जिला आर्य सभा लुधियाना के आर्य समाजों से 19 अन्तरंग सदस्य उपस्थित हुए । श्रीमती राजेश शर्मा, श्री आशानन्द आर्य, श्रीमती सरला लूम्बा, श्री रणवीर भाटिया, श्री हरीश चन्द्र सूद, श्रीमती सुनिता मलिक, श्री विजय सरीन, श्री राजेन्द्र कौड़ा रायकोट, श्रीमती कान्ता सूरी, श्रीमती जनक आर्या, श्रीमती आशा शर्मा, श्री वजीर चन्द शर्मा, श्री भीमसेन (रायकोट), श्री नवदीप भारद्वाज, स्वामी सुमनायति, श्री अमरनाथ तागरा (समराला) श्री रमेश महाजन, श्रीमती नीना बेरी व विनोद गान्धी 19 अन्तरंग सदस्यों ने भाग लिया।

सर्वसम्मति से प्रस्ताव संख्या-1 मे पारित हुआ कि आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार (दाल बाजार) के प्रधान श्री रोशन लाल गत दिनों से अपने आपको जिला आर्य सभा का तथाकथित प्रधान लिख रहे हैं और आर्य समाज की गरिमा को व सगठन को धक्का पहुंचा रहें हैं, इसलिए आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना की सदस्यता जिला आर्य सभा से समाप्त की जाती है और इसके साथ ही उसके सदस्यों की सदस्यता भी समाप्त की जाती है।

दूसरे एक प्रस्ताव मे पारित किया गया कि जिला आर्य सभा के रिक्त स्थानों को भरने का अधिकार सर्वसम्मति से श्रीमती राजेश शर्मा प्रधान जिला आर्य सभा को दिया जाता है।

यह दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति पारित हुए और तुरन्त लागू कर दिया गए। —प्रधान जिला आर्य सभा

पं. नेहरुकृत्त डी.डी.–1 दूरदर्शन पर आ रहा भारत एक खोज, आर्यों का घोर अपमान ! प्रसार-भारती को खुली चेतावनी

❑ *आचार्य आर्य नरेश वैदिक गवेषक उद्गीय साधना स्थली हिमाचल*

प्रिय पाठकवृन्द ! हम अपने एक पूर्व लेख मे यह स्पष्ट कर चुके हैं कि प्रसार भारती दूरदर्शन चैनल मात्र प्रदर्शनकारी नेताओ या अभिनेताओ की बपौती नहीं है। इन को छोड कर इस देश मे अन्य भी करोडो लोग बसते हैं और उनमे अनेको ऐसे लोग हैं जो कि सच्चे देश व सस्कृति के भक्त तथा समाज के मूक सेवक है। आज यह भारत उन ही ईमानदार सैनिको, अध्यापकों, पुरुषार्थी किसानो व निष्काम समाज सेवी विद्वानो पर खडा है लेकिन यह अत्यन्त शर्म का विषय है कि राष्ट्र का इतना घोर पतन होने पर भी हम उन सच्चे व सीधे देशभक्त नागरिकों को प्रेरणा प्राप्त करने हेतू दूरदर्शन पर न दिखा कर मात्र धन व पद के लोभी नेताओं और अभिनेताओं की ही उठ बैठ को जनता का 90 प्रतिशत समय लूटकर दिखाते रहते हैं। इसीलिए आज सामान्य जनता सच्ची देश भक्त न बनकर धन व कुर्सी-आसन भक्त बन रही है।

गत दिनों में डी डी-1 पर नेहरु जी कृत्त भारत एक खोज के कुछ अश देखने को मिले। नेहरु जी कोई खोजी इतिहासज्ञ नहीं थे। उनको जो कुछ भी अधिकतर अग्रेजी में अग्रेजों द्वारा लिखा हुआ मिला लगभग उसी को अधार मान कर वे आर्यो के प्राचीन इतिहास से दूर हटकर लिखते चले गए प्राय: सभी विद्वान् भारतीय जानते हैं कि आर्यो का प्राचीन सच्चा इतिहास मनुस्मृति ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् और मिलावट रहित रामायण तथा महाभारत से पता चलता है । इस पर अनेको आर्य विद्वानो ने कलम उठाई है और सभी भ्रान्तियों को दूर करके इतिहास भी प्रकाशित किया है।

खेद का विषय है कि यदि नेहरु जी को सस्कृत व अच्छी हिन्दी का अभ्यास होता तो वे कदापि आर्यो को बाहर से आया हुआ न लिखते। नेहरु जी इतने पर ही चुप न हुए अपितु उन्होंने आर्यावर्त के मूल निवामी व ससार के सब से श्रेष्ठ व सभ्यजनो को दूसरे लोगों की चोरी करने वाले अर्थात् गौ आदि पशुओं को चुराने वाले, ताश (जुआ) खेलने वाले अजनबी व छोटे लोगों का राशन लूटने वाले तथा अन्य जाति वालों का पानी रोक कर उनकी खेती बाड़ी को उजाड़ने वाला भी बताया है। आचार की सभी सीमाओ को तोड़कर इस सीरियल में यहां तक बताया गया है कि आर्य लोग बहुत बडे झगड़ालू व घमण्डी थे। वे अपने सामने किसी और को बढता हुआ नहीं देख सकते थे । इसीलिए इस सीरियल मे आर्यो को दूसरे लोगो के उत्सवो को बिगाडने हेतु मारता-पीटता और उन्हे लूटता हुआ दिखाया गया है।

निकृष्टता की पराकाष्ठा तो इस सीरियल मे वहा होती है जहां आर्यो को दूसरे कुनबे वालो की बेटियों को भी भगाते हुए दिखाया गया है। अपनी स्थापना के 125 वर्ष मनाने वाला आर्य जगत् क्या चेतेगा और इस प्रकार के सीरियल तथा इसके मूलाधार ग्रन्थ को प्रतिबन्धित या झूठा सिद्ध करवाने का प्रयास करेगा।

प्रसार भारती से हमारा यह सशक्त अनुरोध है कि भारत को स्वतन्त्र करवाने वाले, छूआछूत को हटाने वाले नारी का सम्मान दिलाने वाले तथा अनाथों को जीवन-दान देने वाले श्रेष्ठजनो आर्यों को ठेस पहुचाने वाले इस सीरियल को अविलम्ब रोक दें। अन्यथा इसके परिणाम बहुत बुरे निकलेगे। जिन अज्ञानी लोगो की आर्यो के प्रति विपरीत मान्यताये हैं उन्हें हम शास्त्रार्थ हेतु खुली चुनौती देते हैं कि वे भारत के किसी भी नगर या उपर्युक्त स्थान पर प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाणो से इस विषय पर चर्चा करके निर्णय कर सकते हैं। मध्यस्थला हेतु भारत की प्राचीन, वैदिक सस्कृति व ग्रन्थों से परिचित किन्हीं तीन सेवा युक्त या सेवामुक्त जजो को नियुक्त किया जा सकता है।

1. विश्व भर के अब तक मान्यता प्राप्त वैदिक विद्वानों तथा स्वदेशी अथवा विदेशी पूर्वग्रह रहित इतिहासज्ञों का यही मत है कि आर्यो के बाहर से आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता वस्तुत: सच यही है कि आर्यों ने ही इस आर्यावत्त को (भारत को) बसाया था।

2 आर्य लोग शाकाहारी, शान्त व सेवा भावी व परोपकारी होते हैं। उनका धर्म ईश्वरीय वाणी है।

3. आर्य लोग वेदों के अनुसार एक सर्वव्यापक निराकार चेतन, सवर्ज्ञ व शक्तिरूप ईश्वर की उपासना करते थे व कराते हैं।

4. आर्य लोग एक पत्नीचारी, संयमी अग्निहोत्री तथा जन्म से जातियां वर्ण व्यवस्था को न मानकर गुण कर्म व स्वभाव से ही मानते हैं।

5. आर्य लोग वेदस्थ विभिन्न विद्याओ व कलाओं के ज्ञाता, पुरुषार्थी, अन्य को कुचलने वाले तथा पुरुषार्थी होते हैं। अत: वे मांस खाना, चोरी करना, हिसा करना, डाका डालना या लूटना महा पाप समझते हैं।

6 आर्य लोग अतिथि सेवा व गरीब अनाथ तथा असहाय की सेवा करना महायज्ञ समझते हैं। उपरोक्त सब बातें आज भी वेदों उपनिषदों व मनुस्मृति में लिखी हुई हैं। अत: आर्यों के विषय में अंग्रेजों द्वारा फैलाई गई भ्रान्तियों से युक्त झूठे ग्रन्थों तथा व्यक्तियों से सावधान रहे।

संकल्प-पत्र हस्ताक्षर अभियान, आन्दोलन प्रारम्भ करने का संकेत

. सार्वदेशिक सभा के आह्वान पर, दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में ध्वस्त आर्य समाज मिन्टो रोड स्थल पर संकल्प दिवस समारोह संम्पन्न हुआ जिसमें अनेकों नेताओं के भाषण हुए इस अवसर पर स्वामी अग्निवेश ने कहा कि यह हमारे सामने एक परीक्षा की घडी है इसमें यदि आन्दोलन से हम सफल होते हैं तो इसका अर्थ होगा कि एक तरफ इसी स्थल पर मन्दिर बनेगा तो दूसरी तरफ भाजपा की कब्र भी यहा खोदी जाएगी । डा वेद प्रताप वैदिक ने कहा आर्य समाज का सम्पर्क एक विशाल ताकत देता है, हम अब भी सरकार से बातचीत कर रहे हैं परन्तु इतना विश्वास अवश्य है कि चाहे बातचीत हो और चाहे आन्दोलन, हमे सफलता अवश्य मिलेगी। इसी प्रकार बहुत से आर्य नेताओं ने इस अवसर पर अपने विचार रखे।

इस संकल्प दिवस पर उपस्थित आर्य जनता से सकल्प-पत्र भी भरवाए गए। इस सकल्प-पत्र का नमूना नीचे प्रकाशित किया जा रहा है।

सभा मन्त्री श्री वेदव्रत शर्मा ने आर्य जनता से आह्वान किया है कि अधिक से अधिक संख्या मे संकल्प-पत्र भरवा कर सभा कार्यालय में भिजवाए।

ओ३म्

आर्य समाज मन्दिर, मिण्टो रोड, नई दिल्ली

के पुनर्निर्माण हेतु

संकल्प-पत्र

मैं... ... . . . आयु .

सुपुत्र/सुपुत्री/धर्मपत्नी/शिष्य/शिष्या . . ..

निवासी . .. .

. ...

दूरभाष . . . .

एतद् द्वारा **पूर्ण निष्ठा के आधार पर अपने रक्त एवं ईश्वर की साक्षी के साथ** यह **पवित्र संकल्प** व्यक्त् करता/करती हू कि केन्द्रीय सरकार के शहरी विकास मन्त्री श्री जगमोहन के आदेशानुसार 14 अप्रैल, 2001 को गैरकानूनी तरीके से ध्वस्त किए गए आर्य समाज मन्दिर, मिण्टो रोड, नई दिल्ली के भवन को उसी स्थल पर पुनर्निर्माण हेतु

तन से (आवश्यकता पडने पर शरीर बलिदान)
मन से (पवित्र एवं सुदृढ़ भावनाओ के साथ) एव
धन से (अधिकाधिक साधन सहयोग के साथ)

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के आह्वान पर दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान मे किसी भी-**कार-सेवा, सत्याग्रह, जेल भरो आन्दोलन** इत्यादि के लिए कर्त्तव्यबद्ध होकर हर सघर्ष मे शामिल रहूंगा/रहूंगी। **संकल्पकर्त्ता**

सच बोलना अपराध क्यों ?

❑ ले० श्री बिशम्बर नाथ अरोड़ा, प्रधान, आर्य समाज, कृष्ण नगर दिल्ली-51

भारत के राष्ट्रीय प्रतीक (चिन्ह) के नीचे मुण्डोकपनिषद् के तृतीय मुण्डक प्रथम खण्ड के छटे मन्त्र मे से 'सत्यमेव जयते' लिखा रहता है। इसका अर्थ है कि सत्य ही की जय होती है। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के दस मे से पहले पाच नियम मे सत्य को धर्म के बराबर दर्जा दिया है। अभिप्राय यह है कि हमारे पूर्वजो ने सत्य को महान समझा और आज की सरकार भी सत्य का महत्व समझती है परन्तु क्या व्यवहार मे सरकार हमे सत्य बोलने देती है ? आओ विचार करे ।

आज यदि कोई व्यक्ति, सस्था, समाचार पत्र, नाटक या भाषण द्वारा मुस्लिम या ईसाई युग का सच्चा-मच्चा इतिहास बताए या उस पर टिप्पणी करे तो उसे कहा जाता है कि यह साम्प्रदायिकता है, देश के लोगो को लडाने का षड्यन्त्र है और राष्ट्रहित के विरुद्ध है। आज सही इतिहास कहना, सुनाना अथवा समझाना (अर्थात् सच बोलना) अपराध सा बन गया है। ऐसा क्यों? क्योकि हर राजनैतिक दल (अब तो भारतीय जनता पार्टी भी) मुसलमानों और ईसाईयों के वोट बटोरना चाहता है हिन्दू चूंकि बंटे हुए हैं, इसलिए कोई भी दल इनकी परवाह नहीं करता। सभी दल चाहते हैं कि ऐतिहासिक सत्यों को भूल कर ऐसा इतिहास रचा जाए जो मुसलमानों और ईसाइयो को पसन्द हो पर क्या इतिहास से खिलवाड करना बेईमानीं न होगी? क्या भावी पीढ़ियो को झूठा और मन घडन्त इतिहास पढाना नैतिक पतन की पराकाष्ठा न होगी ? फिर 'सत्यमेव जयते' का क्या होगा ।

पहले पहल मुसलमानो ने आठवी सदी के पूर्वार्ध मे सिन्ध पर कब्जा किया। कुछ समय बाद उन्होंने बलोचिस्तान तथा पजाब पर भी अधिकार कर लिया। वह इसी क्षेत्र तक ही 1192 ई तक सीमित रहे। इस दौरान महमूद गजनवी ने 1008 और 1025 के दौरान 17 आक्रमण किए और 16 बार हमारी फूट, कायरता और अहिंसा भावना का लाभ उठा कर सफलता पाई परन्तु वह लूट मार कर के अफगानिस्तान लौट जाया करता था। सन् 1191 में अन्तिम हिन्द राजा पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गौरी को तरावडी में बुरी तरह से पराजित किया परन्तु नीति विरुद्ध दया दिखाई और उसके कुराण की कसम खाने पर उसे क्षमा कर दिया। अगले ही वर्ष उसने जयचन्द को अपनी ओर करके जबरदस्त आक्रमण किया और पृथ्वीराज को हरा कर, बन्दी बना कर साथ ले गया और बाद मे बर्बरता पूर्वक कत्ल करा दिया। सन् 1192 से 1757 तक भारत मुसलमानों का दास रहा (वैसे तो दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में 1857 तक मुगलों का शासन रहा) इस बीच छोटे-बड़े 35 मुस्लिम बादशाहो ने दिल्ली या आगरा से भारत के अधिकांश भाग पर राज्य किया। इस अवधि का इतिहास कालिमा और लज्जाजनक, मानवता हीन घटनाओं की कहानी है, उसे हम कहां छुपा दें। हिन्दू मुस्लिम एक हजार वर्ष से इकट्ठे रह रहे हैं। बड़े-बडे सन्तों सूफियों ने इनमें प्यार व भाईचारा कायम करने के यत्न किए किन्तु सब असफल रहे। इनके बीच की दूरी बढ़ती ही गई और बढती ही जाएगी क्योंकि सामान्यत: हिन्दू उदारचित, दयालु और सहिष्णु हैं जबकि साधारणत: मुसलमान जनूनी, तंगदिली क्रूर और असहनशील हैं। वे दंगे करने, लड़ने-मरने, आग लगाने और हत्या आदि करने मे देरी नहीं लगाते। मौलाना आजाद, किदवाई या डाक्टर जाकिर हुसैन जैसे मुस्लिम, जो उंगिलयों पर गिने जा सकते है, इस व्यापारीकरण का अपवाद मात्र हैं।

हिन्दू तगदिली होते तो भारत में जैन, बुद्ध, पारसी, ईसाई आदि को आरम्भ में कुचल देते लेकिन यहा सब पनपे हैं। मुसलमान भी पनपे हैं मगर प्यार से नहीं बल्कि शासन के नशे में चूर हो अत्याचार कर कर के। मैंने भारत का विस्तृत इतिहास बड़े ध्यान से पढ़ा है। और मैं चुनौती देता हू कि मुझे कोई एक भी मुस्लिम बादशाह दिखाएं (अकबर और टीपू सुल्तान समेत) जिसने मन्दिर न गिराये हों। अकबर ने भी जोधाबाई से विवाह होने तक मन्दिर गिराए। टीपू ने न केवल मन्दिर बल्कि चर्च भी गिरवाए। एक भी ऐसा बादशाह नहीं हुआ जिसने हिन्दुओ की शिक्षा पद्धति, सभ्यता, सस्कृति और धार्मिक मूल्यो की रक्षा की हो या हिन्दू नारियो के सतीत्व पर आंच न आने दी हो। हिन्दू नारियो को घरो में छुपना पडा, शिक्षा छोड़नी पड़ी, पर्दा अपनाना पडा क्योंकि कोई भी सुन्दर युवती सुरक्षित नहीं थी। बाल विवाह चालू हो गया, शिक्षा बन्द हो गई और पुरुष के दाए पहलु में सम्मानपूर्वक वेद मत्र उच्चारण करने वाली आर्य नारी घर का चूल्हा चौंका करने वाली बन गई। मुगल बादशाह सब से अच्छे माने जाते हैं पर इतिहास गवाह है कि गुरु अर्जुन देव की शहादत और गुरु हर गोबिन्द की लम्बी कैद जहांगीर के काल मे हुई। नन्हे बालक हकीकत राय की शहादत शाहजहां युग में हुई। औरंगजेब का पक्ष तो मुसलमान भी नहीं लेते। गुरु तेग बहादुर, भाई दयाला, भाई मतिदास और सतीदास तथा गुरु गोबिन्द सिंह के दो नन्हे पुत्र, बन्दा बहादुर और उसका पुत्र किस क्रूरता से कत्ल किए गए, यह संसार जानता है। सब बादशाहों ने जबरदस्ती हिन्दुओं को मुसलमान भी बनाया।

आज मुसलमानों के 55 देश हैं। इनमें से केवल मलेशिया और इन्डोनेशिया में इस्लाम प्रेम और प्रचार से फैला, शेष 53 देशों में अत्याचार और मार काट से। बोलो इन इतिहास के पन्नों को कहां फैंक दें ? सच्चाई तो सिर चढ़ कर बोलेगी। मुसलमान तो इतने सकीर्ण दृष्टिकोण के हैं (अपवाद छोड़ कर) कि सच्ची शिय्या को देख नहीं सकता। अपने ही भाई अहमदिया, इस्माईलिया, कादयानी, आगारखानी को नमाज पढ़तों को मारते हैं। ईरान-ईराक युद्ध, कुवायत का युद्ध, अफगानिस्तान का गृह युद्ध, चैचन्या का उपद्रव, कश्मीर का आतकवाद, सिन्क्यांग में विद्रोह-सब मुस्लिम समुदाय की करणी है। ये न स्वयं चैन से बैठते हैं न किसी को बैठने देते हैं। पाकिस्तान ने बंगालियों के साथ क्या किया ? मुहाजिरों के साथ क्या कर रहा है और अपने ईसाई व हिन्दू नागरिकों (केवल एक एक प्रतिशत) की क्या हालत बना रखी है। इतिहास इतिहास है, बताओ इसको कहा ले जाए ? अभी मैं अनेक और उदाहरण दे सकता हूं परन्तु लम्बा लेख छापना पत्रिकाओं के लिए सम्भव नहीं होता।

ईसाई-क्रूरता और नारी अपमान में तो मुसलमानों से चार अंगुली पीछे हैं परन्तु चालाकी, मक्कारी, शब्द ब्यूह, वचन भगता, स्वार्थ भावना और अवसरवादिता में उनसे कोसों आगे है । मुसलमान हाथ में तलवार लेकर और नारी अपहरण की धमकी दे कर धर्म परिवर्तन कराते हैं तो ईसाई सेवा करके और नौकरी, बेटी या धन का लालच देकर धर्म परिवर्तन कराते हैं। दाव लग जाए तो जोर-जबरदस्ती भी कर लेते हैं जैसे स्पेन, पुर्तगाल तथा बैल्जियम ने की। लक्ष्य दोनों का एक ही पहले धर्म परिवर्तन करवाओ फिर पृथकता के बीज बोओ और अन्तत: भारत से अलग होने की मांग का धन, धमकी, हथियारों तथा आतंकवाद द्वारा समर्थन करो। दो देश पाकिस्तान और बंगलादेश तो मुसलमान ले गए। नागालैण्ड और मिजोरम में ईसाई सक्रिय हैं-देखो कब कामयाब होते हैं।

हर भारत वासी जानता है कि अंग्रेज यहां व्यापारी बन कर आए। कैसे उन्होंने यहा की जाति प्रथा तथा फूट को हवा दी और कूटनीति से सारे भारत पर कब्जा कर लिया। इस ध्येय के रास्ते मे जो भी आया उसे ताकत से कुचल डाला। 1857 विजय के बाद का कत्लेआम, बगाल विभाजन, जलिया वाला बाग, भारत छोड़ो के बाद का दमन-चक्कर, क्रान्तिकारी युवकों तथा सुभाष का बलिदान, तिलक, लाजपत राय व अनेक गुमनाम भारतीय कुर्बानिया अभी इतनी ताजी हैं कि हम भुलाना भी चाहे तो भुला नही सकते। इतिहास जो बन जाता है, वही रहता है। इसलिए ऐ भारत के वर्तमान राजनेताओ, दूरदर्शी बनो। मुसलमानो या ईसाइयों के लिए, उन्हे खुश करने हेतु इतिहास न बदलो। वे आप में से किसी न किसी को तो वोट देंगे ही।

आर्य समाज मिन्टो रोड के लिए संघर्ष करने के लिए आर्य जनता तैयार

आर्य मर्यादा साप्ताहिक को प्राप्त रोष-पत्र

मान्य महोदय,

सादर नमस्ते । आपको पहले भी सार्वदेशिक सभा व दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से शिष्टमंडल मिल चुका है कि दिल्ली नगर निगम व शहरी विकास मत्री श्री जगमोहन के आदेश पर 14 अप्रैल, 2001 को जो आर्य समाज मन्दिर मिन्टो रोड दिल्ली ध्वस्त कर दिया गया है उसका निर्माण उसी स्थान पर करवाया जाए। पहले निगम अधिकारियो व श्री जगमोहन शहरी विकास मन्त्री ने इसके पुन: बनाने का आश्वासन दिया था परन्तु अब फिर वह अपने वायदे से पीछे हट गए हैं।

आपको विदित ही है कि आर्य समाज एक सार्वभौम संस्था है और आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं को विवश न किया जाए कि वह इसके लिए दिल्ली में आन्दोलन आरम्भ कर दें। इसलिए हमारी माग है कि आर्य समाज मदिर का पुन: उसी स्थान पर निर्माण कराया जाए। श्री जगमोहन को आर्य समाज मदिर तोडने के लिए दंडित किया जाए। यदि ऐसा न किया गया तो आर्य समाज दिल्ली में इसके लिए आन्दोलन करेगा और इसका सारा उत्तरदायित्व सरकार पर होगा।

सेवा में, श्री अटल बिहारी वाजपेयी **भवदीय,**
प्रधान मन्त्री भारत सरकार

प्रतिलिपि-मन्त्री सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली **श्री हरबंस लाल शर्मा, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब**

मान्य महोदय,

सादर नमस्ते !

रोष प्रस्ताव

आर्य समाज शहीद भगत सिह नगर जालन्धर की अन्तरग सभा दिनाक 8 7.2001 में सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया गया कि यदि भारत सरकार व दिल्ली नगर निगम आर्य समाज मंदिर मिन्टो रोड नई दिल्ली-2 को शिलान्यास वाले स्थान पर पुन: बनाने से रोकती है तो इसके लिए शीघ्र अति शीघ्र आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया जाए। यह अन्तरग सभा भारत के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी से मांग करती है कि वह श्री जगमोहन जी शहरी विकास मन्त्री दिल्ली के विरुद्ध कार्यवाही करे और आर्य समाज मंदिर मिन्टो रोड को गिराने के कारण उन्हे निलबित किया जाए क्योंकि उन्होंने एक मन्दिर को तोड़ने का आदेश दिया है जोकि अनुचित है। भवदीय

-रणजीत आर्य, मन्त्री आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर

सेवा में,
श्री अटल बिहारी वाजपेयी,
प्रधानमंत्री-भारत सरकार
7 रेस कोर्स रोड-नई दिल्ली

प्रतिलिपि :- 1 श्री लाल कृष्ण आडवानी गृहमंत्री भारत सरकार, नई दिल्ली। 2 श्री मुरली मनोहर जोशी मानव संसाधन विकास मंत्री, नई दिल्ली। 3 श्री जगमोहन जी शहरी विकास मत्री, नई दिल्ली।
4 स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती प्रधान सार्वदेशिक सभा-नई दिल्ली।
5 प्रधान जी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, चौक किशनपुरा जालन्धर।

मान्य महोदय,

सादर नमस्ते ।

रोष-प्रस्ताव

गत दिनांक 28-6-2001 को सायं 5 बजे आर्य समाज बंगा की अन्तरग सभा की एक मीटिंग श्री शादी लाल महेन्दु प्रधान आर्य समाज बगा की अध्यक्षता मे हुई जिसमे दिल्ली सरकार द्वारा आर्य समाज मन्दिर मिन्टो रोड दिल्ली को ध्वस्त करने की घोर निन्दा की गई और सरकार से माग की गई कि वह श्री जगमोहन शहरी विकास मंत्री को इस गलत कार्य करने के कारण बर्खास्त करे और जल्द से जल्द मंदिर को उसके पहले स्थान पर स्वयं अपने खर्चे पर बनवा कर दें।

आर्य समाज बंगा के आर्य भाई इस आन्दोलन में हर तरह की कुर्बानी देने के लिए तैयार हैं और इसकी सारी जिम्मेवारी भारत सरकार पर होगी। हम आशा करते हैं कि सरकार तुरन्त वास्तविक स्थिति को समझ कर योग्य कार्यवाही करके प्रशंसा का पात्र बनेगी।

इस कार्यवाही की प्रतिलिपि निम्नलिखित महानुभावों की सेवा में भेजी गई।

1 सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली । 2 आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, जालन्धर । 3 श्री अटल बिहारी वाजपेयी, प्रधानमत्री, भारत सरकार। 4 श्री लाल कृष्ण आडवानी गृह मत्री, भारत सरकार। 5 श्री जगमोहन शहरी विकास मंत्री, भारत सरकार।

-शादी लाल, प्रधान, आर्य समाज बंगा

माननीय श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी।

सादर नमस्ते।

सर्वप्रथम आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द अमृतसर की ओर से आपके स्वास्थ्य लाभ के लिए हार्दिक शुभ कामनाए। गत दिनों समाचार पत्रों के माध्यम से आर्य समाज मिन्टो रोड को गिराने का समाचार जानकर हृदय को गहरा आघात पहुचा है। आप जैसा महान व्यक्तित्व जिसकी पृष्ठभूमि का मूलाधार आर्य समाज हो, ऐसे व्यक्ति के नेतृत्व में चल रही सरकार ऐसा घृणित कार्य करे और आप हस्तक्षेप न करे यह कैसी विडम्बना है?

आपकी ही सरकार जगमोहन (शहरी विकास मंत्री) के इशारे पर यह घृणित दुष्कृत्य हुआ है। इसके पूर्व भी इन्हीं के द्वारा आपातकाल के दौरान ग्रीन पार्क दिल्ली में ही एक आर्य समाज के भवन को गिराया गया था और जब लोकतन्त्र की बहाली हेतु चुनाव हुआ था तब आपने इस विषय को विशेष मुद्दा बनाया था जिसके लिए तत्कालीन सरकार को क्षमा मांगनी पडी थी, किन्तु आज आपकी सरकार हो और ऐसा अक्षम्य अपराध फिर भी । आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप इस मामले में व्यक्तिगत रूचि लेकर उसी स्थान पर आर्य समाज भवन के निर्माण का तत्काल आदेश दें और भविष्य मे जो ऐसे दुष्कृत्य कार्य करके आपकी सरकार की छवि को धूमिल करने का प्रयास कर रहे हैं उन पर कड़ा अंकुश लगाया जाए।

"धर्मो रक्षति रक्षत:" की परम्परा के अनुसार। पुन: आर्य समाज मिन्टो रोड की स्थापना के लिए प्रतीक्षारत।

सेवा में, शुभाकाक्षी
श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी, **-सुभाष भाटिया, प्रधान**
प्रधानमत्री आर्य समाज बाजार श्रद्धानन्द,
7-रेस कोर्स रोड, नई दिल्ली अमृतसर

आर्य समाज पिम्परी में वेद प्रचार सप्ताह सम्पन्न

महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित श्रावणी वेद प्रचार कार्यक्रम के अन्तर्गत आर्य समाज पिम्परी पुणे में शनिवार दि 21 जुलाई से शनिवार 27 जुलाई 2001 तक वेद प्रचार कार्यक्रम हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। सभा की ओर से पूज्य स्वामी सकल्पानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर एव भजनोपदेशक प शिवपाल जी शास्त्री, एटा पं रामचन्द्र जी आर्य और कुमार संजीव ने वेद प्रचार किया। इन दिनों मे प्रतिदिन तीन-चार कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। पिम्परी पुणे क्षेत्र में पिपरीगांव, चिंचवड़गाव, सांगवी कालेवाड़ी, बिबवेवाडी, निगड़ी प्राधिकरण इत्यादि स्थानों पर कार्यक्रम आयोजित किए गए। आर्य समाज पिम्परी संचालित आर्य विद्या मंदिर के छात्रों के लिए प्रवचन हुए। वैदिक सस्कृति की महानता, वैदिक धर्म, ओंकार का स्वरूप गजानन का सत्यस्वरूप, ईश्वर उपासना इत्यादि विषयो पर मराठी एवं हिन्दी भाषा मे प्रवचन हुए। इस वेद प्रचार में प्रतिदिन सैंकड़ों धर्म प्रेमी लोगों ने लाभ लिया ।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने में आर्य समाज पिम्परी के प्रधान श्री कृष्णचन्द्र जी आर्य के नेतृत्व में श्री हरिगुणलाल गणेशवाणी, मत्री-मुरलीधर, सुंदराणी, हरिकृष्ण गुप्ता, जगदीश वासवाणी, प्रा. एकनाथ नाणेकर, उत्तमदांड में, दत्ता सूर्यवंशी, कुमार पारोल, स्वामी ओम प्रकाश चांडक, साईंनाथ पून्ने जयराम धरमदासाणी इत्यादि पदाधिकारी एवं आर्य वीर दल के कार्यकर्ताओं ने विशेष परिश्रम किया।

आर्य समाज हबीबगंज (अमरपुरा) लुधियाना का 27वां वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न

आर्य समाज हबीबगंज लुधियाना का 27वा वार्षिकोत्सव आर्य समाज के नव निर्मित हाल में दिनाक 26, 27, 28 तथा 29 जुलाई दिन वीरवार, शुक्रवार, शनिवार तथा रविवार को बडे समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस उत्सव पर पूज्य स्वामी माध्वानन्द जी सरस्वती हिसार, पडित विजय कुमार शास्त्री, ब्रह्मचारी सूर्यदेव, पडित योगराज शास्त्री, पडित भरत सिह जी, श्री सतपाल जी तथा श्री सुनील कुमार रावत जी ने अपने प्रवचनों तथा भजनो से वेद का सदेश जन-जन तक पहुचाया। 26 7.2001 को प्रात: 7 30 बजे यज्ञ के द्वारा कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा पंडित योगराज जी शास्त्री पुरोहित आर्य समाज हबीबगज थे। उन्होंने लगातार चार दिन बडे सुन्दर ढग से वैदिक रीति अनुसार यज्ञ सम्पन्न करवाया।

इन चार दिनों मे अनेको यजमानो ने यजमान पद को सुशोभित किया तथा बहुत ही श्रद्धा से यज्ञ किया । यजमानो की सूची इस प्रकार है। श्रीमती एव श्री वेद भूषण जी मदान, श्रीमती एवं श्री मुनीष जी मदान, श्रीमती एवं श्री मुनीष गाधी, श्री सदीप कुमार भगत प्रधान आर्य समाज नौजवान सभा हबीबगज, श्रीमती एवं श्री कंवलजीत जी मन्त्री नौजवान सभा, श्रीमती एवं श्री अजय मोंगा, श्रीमती एव श्री सोनू जी, श्रीमती एव श्री राजेन्द्र गोयल, श्रीमती कुसुम जग्गी, श्रीमती शकुन्तला कालडा, श्रीमती एव श्री देशबन्धु जी चोपडा मन्त्री आर्य समाज बगा रोड फगवाड़ा। इसके अतिरिक्त अनेकों महानुभावों ने इस कार्यक्रम में बढ-चढ कर भाग लिया। रात्रि के सत्संग में उपस्थिति इतनी होती थी कि हाल में बैठने का स्थान नहीं मिलता था।

शनिवार 28 तारीख को सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। जिसकी अध्यक्षता माननीय श्री सतपाल गोसाईं उपाध्यक्ष पंजाब विधानसभा ने की। उन्होंने आर्य समाज के हाल निर्माण के लिए एक लाख रुपए देने की घोषणा की। आर्य समाज के प्रधान श्री आशानन्द जी आर्य ने माननीय गोसाईं जी को शाल भेंट कर उनका सम्मान किया। आर्य समाज नौजवान सभा के सभी सदस्य, श्री रमन जी, श्री संदीप कुमार जी, श्री मुलखराज जी, जोनी, रामजी दास, सीतू, मनीत, हैप्पी, सोनू, विक्की, काला प्रदीप, श्री कवलजीत, गुल्लू, श्री कस्तूरी लाल, सजीव कुमार, आशु, नवीन, डा रमेश, काला, बलविन्द्र तथा लवली सभी को महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का चित्र प्रदान कर सम्मानित किया।

दिनाक 29 7.2001 को प्रात: यज्ञ की पूर्णाहुति 9.30 बजे डाली गई। जिस मे यजमानो के अतिरिक्त सैंकडो स्त्री-पुरुषों ने आहुति डाली। यजमानो को आशीर्वाद के पश्चात् सभा की कार्रवाई श्रीमती विनोद गांधी प्रधाना महिला विंग के सुरीले भजन से आरम्भ हुई। उसके पश्चात भरत सिह, सत्यपाल, श्री योगराज, श्रीमती शकुन्तला कालडा के सुन्दर भजन हुए, ठीक 10 40 पर सभा प्रधान एवं गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री हरबस लाल जी शर्मा आर्य समाज मदिर मे पहुचे । उनके साथ श्री सुदर्शन शर्मा उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब भी थे। वहां आर्य सीनियर सैकेंडरी स्कूल लुधियाना व आर्य गर्ल्ज सी. सै स्कूल लुधियाना के बच्चो ने बैंड धुने बजा कर उनका स्वागत किया। उसके पश्चात् आर्य नौजवान सभा के दर्जनो सदस्यों, दयानन्द पब्लिक स्कूल का स्टाफ एव छात्र-छात्राएं, महिला विग की बहनें, आर्य समाज के सदस्य श्री डा जगदीश चन्द्र गाधी एव वेद भूषण के नेतृत्व मे फूलों की वर्षा कर रहे थे। पूरे दो फर्लांग रास्ते पर अत्यन्त भीड़ थी । जब माननीय सभा प्रधान जी आर्य समाज के प्रधान श्री आशानन्द जी आर्य के साथ हाल मे पहुंचे तो सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट और जयकारों के साथ गूंज उठा। हाजरी इतनी थी कि निचला हाल व ऊपर वाला हाल ठसाठस भरा हुआ था। जनता बाहर आर्य समाज के प्रांगण में खड़ी थी। सबसे पहले श्री सुदर्शन कुमार शर्मा ने ओ३म् का ध्वज फहराया । समाज के प्रधान श्री आशानन्द जी आर्य, मन्त्री जनक राज भगत, वरिष्ठ उप प्रधान डा जगदीश चन्द्र आर.बी. स्कूल की प्रबन्ध समिति के प्रधान श्री वेदभूषण, आर्य नौजवान सभा के अधिकारियों, महिला विंग की प्रधाना श्रीमती विनोद गांधी, जिला आर्य सभा की प्रधाना श्रीमती राजेश शर्मा ने हार पहना कर उनका स्वागत किया। पडित योगराज जी शास्त्री ने ध्वज गीत गाया। उसके पश्चात् आर्य महा सम्मेलन की कार्यवाही पंडित हरबस लाल जी शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अध्यक्षता मे आरम्भ हुई। लुधियाना जिला की सभी आर्य समाजों, आर्य समाज हबीबगज, किदवई नगर, फोकल प्वाइंट, जवाहर नगर, फील्डगज, साबुन बाजार, सिविल लाईन, माडल टाऊन, अशोक नगर, दाल बाजार, आर्य समाज पायल, साहनेवाल, रणधीर सिंह नगर, रायकोट, आर्य समाज फगवाडा, रामा मंडी, गोनियाना मंडी, सिकरी बाजार बठिंडा, आर्य समाज चौक बठिडा, नवांशहर व आर्य समाज तलवाड़ा के अधिकारियो एव सदस्यों ने हार पहना कर सभा प्रधान जी का स्वागत किया। इस अवसर पर श्री विजय कुमार जी शास्त्री, ब्रह्मचारी सूर्यदेव, श्री योगराज जी शास्त्री एव कई विद्वानो ने विस्तार से आर्य समाज के प्रचार के लिए अपने विचार रखे। समारोह के सयोजक श्री आशानन्द जी आर्य ने आर्य समाज की गतिविधियो की जानकारी देते हुए कहा कि आज से 28 वर्ष पूर्व इस आर्य समाज की स्थापना हुई थी। इस आर्य समाज में एक स्कूल चल रहा है जिसमे सैंकड़ो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आर्य समाज द्वारा एक नि:शुल्क औषधालय भी चलाया जा रहा है । लुधियाना के प्रसिद्ध डा सुरेश जी राजपाल ए एम एस प्रात: 8 बजे से दस बजे तक मरीजो को देख कर दवाई देते हैं। वर्ष मे लगभग दस हजार मरीज लाभ उठा रहे हैं। सितम्बर मे हम यहा पर नि:शुल्क मैडीकल कैम्प लगा रहे हैं। पारिवारिक सत्सग का आयोजन भी आर्य समाज द्वारा किया जाता है। आर्य समाज के पुरोहित प्रचार मे जुटे हुए हैं। अन्त में सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी ने कहा कि ऋषि दयानन्द सरस्वती का हमारे ऊपर बड़ा ऋण है। हम सब मिल कर उनके कार्यक्रम को आगे ले जावें, सभा उन्हें अपना पूरा-पूरा सहयोग देगी। सभा प्रधान जी के जाने के पश्चात् कार्यवाही समाप्त हुई और 1.30 बजे से सायं 5.30 बजे तक ऋषि लगर चलता रहा जिसका सारा प्रबन्ध नौजवानों ने किया हुआ था। इस उत्सव पर सभा कोषाध्यक्ष माननीय श्री प्रेम भारद्वाज जी नवाशहर अपने साथियो के साथ विशेष रूप से पधारे हुए थे। इस समारोह को सफल बनाने में डा जगदीश चन्द्र, श्री वेदभूषण मदान, विनोद गाधी, जनक राज भगत सदीप कुमार, कमलजीत, रमन कुमार, योगराज शास्त्री, कुमारी रेखा आर्या, आर बी स्कूल स्टाफ ने अत्यन्त सराहनीय कार्य किया।

—आशानन्द आर्य, प्रधान

गोनियाना मण्डी में पारिवारिक सत्संग

प्रति रविवार को साप्ताहिक सत्सग के साथ-साथ आर्य समाज गोनियाना मण्डी के कार्यकर्त्ताओ का यत्न रहता है कि पारिवारिक सत्संग का कार्यक्रम भी चलता रहे। इसी सिलसिले मे 31 जुलाई दिन मंगलवार को श्री तरसेम कुमार आर्य के घर पर श्री ब्रह्मचारी सूर्य देव जी 'वैदिक मिशनरी' के ब्रह्मत्व मे यज्ञ-हवन तथा पारिवारिक सत्संग का आयोजन किया गया। मुख्य यजमान के आसन पर तरसेम आर्य के सुपुत्र डाक्टर राजेन्द्र भूषण एम बी बी एस एम डी विराजमान थे। इस अवसर पर श्री आर्य के तीनों भाई अपने-अपने परिवार जनो के साथ उपस्थित थे। यज्ञ हवन के पश्चात् ब्र सूर्यदेव जी ने बडा सुन्दर प्रवचन दिया जिसे सुन कर कई युवको ने आर्य वीर दल के लिए कार्य करने का सकल्प लिया। सत्सग के पश्चात् आर्य जनो को जलपान करवाया गया।

—सर्वजीत सिंह, मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सभा मंत्री पद पर रहे : पत्रकार और लेखक- पं. भीमसेन विद्यालंकार

❑ ले. डा. भवानीलाल भारतीय (सेवानिवृत प्रो. तथा अध्यक्ष दयानन्द शोध पीठ पंजाब विश्वविद्यालय)

आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता तथा शिक्षा शास्त्री महात्मा मुन्शीराम ने आज से 99 वर्ष पूर्व गगा के सुरम्य तट पर जब गुरूकुल कागडी की स्थापना की थी तो उनका एकमात्र लक्ष्य था पुरातन आदर्शो की उस शिक्षण सस्था के द्वारा देश के लिये योग्य नागरिक उत्पन्न करना था जो आगे चल कर धर्म, राष्ट्र और समाज की सेवा मे स्वय को समर्पित करे तथा अपने जीवन को सफल बनायें । आरम्भिक वर्षो में तो गुरुकुल से जो स्नातक निकले वे सचमुच महात्मा मुन्शीराम के आदर्शो को पूरा करने वाले ही थे किन्तु देश के स्वाधीन होने के पश्चात् जहा गुरुकुल के स्वरूप में भी बदलाव आया वहां उस कोटि के स्नातको का आना बंद सा हो गया जिनकी अपेक्षा आर्य समाज का थी। गुरुकुल कांगड़ी के पुराने स्नातको ने शिक्षा, साहित्य लेखन, पत्रकारिता, चिकित्सा, व्यवसाय आदि अनेक क्षेत्रो में सराहनीय कार्य किया तथा गुणवत्ता एव उपलब्धियों के अनेक मानदण्ड स्थापित किये।

ऐसे ही यशस्वी स्नातकों में एक थे प भीमसेन विद्यालंकार जो इस शताब्दी के आरम्भ मे 22 अक्तूबर 1900 को जम्मू में श्री बिशनदास के यहा जन्मे थे। शैशवावस्था में ही उन्होंने गुरुकुल कागडी मे प्रवेश लिया और 1921 मे विद्यालकार की उपाधि प्राप्त की। स्नातक बनने के पश्चात् प भीमसेन के हृदय मे ऋषि दयानन्द के जन्म स्थान तथा उनके द्वारा पवित्रकृत अन्य स्थानों को देखने की इच्छा हुई । फलत· वे अगस्त 1922 मे उस यात्रा के लिए निकले और 2 मास तक भ्रमण कर दयानन्द तीर्थ यात्रा पूरी की। इस अवधि मे वे मौरवी, टकारा, सज्जनपुर, आबू पर्वत, अजमेर तथा उदयपुर आदि स्थानो पर गए और ऋषि दयानन्द के जीवन के अनेक ज्ञात-अज्ञात प्रसगो की जानकारी ली। इस यात्रा मे उन्होने अपना नाम देवभिक्षु रखा था। 1930 मे पं भीमसेन ने गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया और लाहौर की आर्य समाज बच्छोवाली के सदस्य बने।

प्रारम्भ में पं भीमसेन ने अपनी सेवाये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को समर्पित की। वे आर्य समाज के प्रचारार्थ मद्रास भी गये। दो वर्ष तक उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी मे इतिहास व अर्थ शास्त्र का अध्यापन भी किया। पुन. प भीमसेन लाहौर चले गए और लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित नेशनल कालेज मे अध्यापन किया। ज्ञातव्य है कि सरदार भगत सिंह भी इसी कालेज के छात्र थे। यहा पं भीमसेन का परिचय और सम्पर्क सरदार भगत सिह तथा उनके क्रान्तिकारी साथी राजगुरु तथा सुखदेव से हुआ। 1924 में प इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा सम्पादित वीर अर्जुन में सहायक सम्पादक बन कर वे दिल्ली आ गये किन्तु एक वर्ष बाद पुन: लाहौर आ गए। यहां से 1926 में उन्होंने सत्यावादी नामक पत्र निकाला जो आर्थिक कठिनाईयों के कारण दीर्घ जीवी नहीं हो सका। पं. भीमसेन का देश के स्वाधीनता संग्राम में भी उल्लेखनीय योगदान रहा। 1930 के नमक संग्रह में आपने भाग लिया तथा जेल यात्रा की।

हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए पं मदन मोहन मालवीय तथा श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन के पुरुपार्थ से 1910 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हो गई थी, किन्तु पजाब मे उर्दू का ही वर्चस्व रहा और हिन्दी को लोग "जनानियो की भाषा" कहा करते थे। पंजाब में हिन्दी के प्रचार का श्रेय मुख्य रूप मे आर्य समाज को ही है। टण्डन चाहते थे कि पजाब में भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विधिवत् स्थापना हो ताकि राष्ट्रभाषा के प्रचार को बढ़ाया जा सके। टण्डन जी के अभिपाय को जान कर प भीमसेन जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का गठन किया जिसके द्वारा इस प्रान्त में हिन्दी प्रचार को बल मिला। उन्होंने पजाब केसरी तथा वन्देमातरम नामक पत्रों का सम्पादन भी किया।

आर्य समाज के लिए भी पं भीमसेन की सेवायें उल्लेखनीय हैं। 1933 से 1937 तक वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री रहे तथा गुरुकुल कांगड़ी के मुख पत्र मासिक अलंकार का 1933 से 1936 तक सम्पादन किया। देश विभाजन के पश्चात् वे अम्बाला आ गये और यहा उन्होंने आर्य प्रेस के नाम से अपना मुद्रणालय स्थापित किया। वे सभा के मुख पत्र आर्य के वर्षो तक सम्पादक भी रहे। प भीमसेन उच्चकोटि के इतिहासज्ञ तथा कुशल लेखक थे। उन्होंने राजपूत और मराठा युग के इतिहास पर रोचक ग्रन्थ लिखे हैं। इनके नाम हैं-वीर मराठे, वीर पूरबिये, वीर पजाबी तथा वीर शिवाजी। लाला लाजपत राय की आत्म कथा (प्रथम खण्ड) को हिन्दी में अनूदित करने का श्रेय भी आपको ही है। जब कानपुर के प्रसिद्ध राष्ट्रनेता श्री गणेश शकर विद्यार्थी को अंग्रेज सरकार ने दण्डित किया तो उस मुकद्दमें का विवरण अपने पत्र मे छापने के कारण आपको कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। 18 जुलाई 1962 को मात्र 62 वर्ष की आयु में इस कर्मठ लेखक, सफल पत्रकार तथा स्वाधीनता सेनानी का दिल्ली में निधन हो गया।

स्वामी दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य के कुछ उपयोगी अंश को आपने दयानन्दोपनिषद शीर्षक देकर ग्रन्थाकार रूप में छपवाया था उसमें जो मत्र तथा उनका भावार्थ दिया गया है वह निम्न प्रकरणों मे विभक्त किया गया है-ईश्वर स्वरूप निरूपण (21 मंत्र), जीव स्वरूप निरूपण (20 मत्र) स्त्री-पुरुष सम्बन्ध निरूपण (55 मत्र), अध्यापक-छात्र कर्त्तव्य (72 मंत्र), प्रकृति स्वरूप निरूपण (58 मत्र) सेना सगठन राजनीति विषयक (30 मत्र) मनुष्य कर्त्तव्याकर्त्तव्या निरूपण (53 मत्र) । इसी क्रम में वे यजुर्वेद भाष्य के मत्रो का भी सग्रह सम्पादित करना चाहते थे जो कार्य रूप मे परिणत नहीं हो सका। दयानन्दोपनिषद का प्रकाशन राजपाल एण्ड सन्ज लाहौर ने 1946 मे किया था।

आर्य समाज बठिण्डा का चुनाव

दिनांक 22-7-2001 को सायं 4 बजे आर्य समाज बठिडा का चुनाव सम्पन्न हुआ । बहुसम्मति से श्री ओ पी. मंगला प्रधान चुने गए। शेष पदाधिकारी उन्होंने निम्न प्रकार घोषित किए।

1. प्रधान-प्रो ओ. पी मगला। 2 वरिष्ठ उप-प्रधान-चौ. बाबू राम गर्ग। 3 उप प्रधान-श्री बिहारी लाल जी। 4 उप प्रधान-श्री जगदीश बांसल जी। 5. महामन्त्री-श्री प्रेम भाटिया जी। 6 उपमन्त्री-श्री महेन्द्र पाल अरोडा जी। 7 उपमन्त्री-श्री गौरी शकर जी। 8 कोषाध्यक्ष-श्री नवनीत कुमार जी। 9 प्रधान युवक समाज-श्री अशोक गर्ग जी। अंतरंग के सदस्य:-10 वजीर चन्द मंगला, 11. श्री पी. डी गोयल, 12 श्रीमति शान्ति जिन्दल जी, 13. श्री हुकम चन्द गोयल जी, 14 श्री विनोद गर्ग जी, 15 श्री नन्दलाल जी, 16. श्री रणधीर सिंह जी, 17 श्री विनोद कुमार गुप्ता जी, 18 श्री कुलवन्त राय अग्रवाल जी, 19 श्री अशोक अग्रवाल जी, 20. श्रीमती वीर प्रभा मोंगा जी, 21. श्रीमती इन्द्रा छाबड़ा जी । विशेष आमन्त्रित सदस्य-22 मास्टर सत प्रकाश जी. 23 श्री राजेन्द्र कुमार जी, 24 पवन कुमार बासल जी ।

-ओ.पी. मंगला, प्रधान

आर्य समाज राणा प्रताप बाग दिल्ली का चुनाव

आर्य समाज राणा प्रताप बाग ए 6/6 दयानन्द मार्ग दिल्ली-7 का चुनाव 1-7-2001 को सर्वसम्मति से हुआ जिसमें निम्न अधिकारी चुने गए।

1 प्रधान-श्री राकेश सजूसा, 2. मन्त्री-श्री रमेश डावर, 3. कोषाध्यक्ष-श्री ओम प्रकाश तनेजा। शेष पदाधिकारी मनोनीत करने का इन तीनों को अधिकार दिया गया। **-रमेश डावर**

सुख को प्राप्त करने की कुंञ्जी

ले० श्री वेद प्रकाश टंकारावाले. 73-5 भार्गव नगर, जालन्धर, पंजाब

ओ३म् विश्वानि देव सवितुः दुरितानि परासुव।
यद् भद्रंतन्न आसुव॥

यजु 30 म 3

भावार्थ .- सकल जगत के उत्पति कर्त्ता, समग्र, ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप,सब सुखो के दाता परमेश्वर। आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखो को दूरकर दीजिए, जो कल्याण युक्तगुण कर्म, स्वभाव और पदार्थ है वह सब हमको प्राप्त कराइए।

मेरे ख्याल मे यह एक पूर्ण प्रार्थना है, जब भी कोई पूर्ण प्रार्थना की जाती है तो उस प्रार्थना पर किसी भी प्रकार का प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता, हा उन प्रार्थनाओ पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है जिन की रचना मानव अपनी मनोकामना पूर्ण करने हेतु रचता है । ऐसी प्रार्थनाए अधूरी होती हैं और अधूरी प्रार्थनाओ का महत्व समयानुसार तबदील तथा समाप्त होता रहता है । उपरोक्त प्रार्थना मे वेद के ऋषि ने बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे तथा सरल भाव से मानव ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड को समझा दिया है कि अगर सम्पूर्ण पृथ्वी पर रहने वाले जीवो को सुखी रहना है तो दुःखो से दूर एव सुखों प्राप्ति का उपाय करना होगा।

सदियो सदियो से पृथ्वी पर रहने वाला प्रत्येक जीव सुखी रहने के सम्भव उपाय खोजता रहता है। चूकि दुःखी कोई रहना नहीं चाहता इसलिए सुख की खोज आवश्यक हो जाती है और मजे की बात तो यह है कि सदियो से सुख की खोज होने पर भी ससार मे सुख की मात्रा कम तथा दुख का भवर ज्यादा दिखाई देता हैं जितनी ही खोज सुख पाने की की जा रही है उतना ही मानव ज्यादा दुखी होता चला जा रहा है। जरा इस के कारणो पर विचार करना होगा।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख योजय एवते।

श्री मद्भगवतगीता के पाचवे अध्याय के 22वें श्लोक मे कहा गया है कि "इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले जितने भी सुख भोग हैं वे दुख के मूल हैं" । "वैशेषिक दर्शन" मे दुःख का कारण राग-द्वेष बताया गया है, जब कि योग दर्शन मे सुख प्राप्ति के साधन मन की एकाग्रता को कहा गया है। "न्याय दर्शन" में दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय ज्ञान को बतलाया गया है। महात्मा बुद्ध ने चार आर्य सत्य जो लिखे हैं उसमे दुःख को ही मानव की मुक्ति के रास्ते की बाधा माना गया है । गुरू नानक देव जी ने दुःखो को दूर करने का उपाय परमेश्वर नाम बतलाया है। "नानक दुखिया सब ससार, सो सुखी जो नाम आधार"।

भारतीय समाज रूढिवादी विचारधारा का पोषक है। यहा नया कुछ भी नहीं होने दिया जाता, नया विचार लाने वाले के विरूद्ध अनेको प्रकार की रुकावटे खडी की जाती रही है। जब कि सच्चाई यह है कि समय गुजर जाने के पश्चात हम ने उसी नये विचार को अपनाया है परन्तु बहुत देरी के बाद और देरी भी इतनी कि तब तक फिर नया विचार पैदा हा गया होता है । जैसे कोई अभी इस युग मे रट लगाने लगे कि मैं तो अपने सारे काम दिये की रोशनी से करूगा तो ऐसे व्यक्ति के दिमाग का सहज अनुमान लगाया जा सकता है जब कि आज बिजली प्रत्येक जगह पर मौजूद है । हमारा भी यही हाल है हम मानव के जीवन को सुखमय करने हेतु इसी बात पर जोर लगाते चले जा रहे हैं कि मानव को नशो से मुक्ति दिलाई जाए। हमने प्रत्येक बच्चे को सुनाया है कि बेटा शराब पीना बुरी बात है और बच्चा हमारी बात सुनी अनसुनी कर देता है शायद बच्चा भी हसता होगा कि यह किस प्रकार की बाते मुझे सिखा रहे हैं। बच्चा जानता है कि इस शराब की बजह से करोडो -करोडो मानवीय शरीर धरती की गोद मे चले गए हैं लेकिन बच्चा यह नहीं समझ पा रहा है कि जब यह नशे इतने बुरे हैं तो फिर इन सब कारखानो को बन्द कर देना चाहिए जिनमे यह जहर बनता है परन्तु ऐसा तो कहीं नहीं हो रहा है बल्कि भारत की तो बहुत सारी राज्य सरकारें अपना गुजारा इन्हीं नशो से होने वाली आमदनी पर करती हैं इसीलिए आज का नौजवान हमारी बात सुनना नहीं चाहता क्योंकि वह जानता है कि मा बाप इतना ही चाहते हैं कि हमारा बच्चा नशेड़ी न हो परन्तु उसी बच्चे को शराब की दुकान खोल कर खुद देते हैं। जितना दुर्व्यसन हमारे लिए है उतना ही दूसरे के लिये भी बुरा है इसी सच्चाई को हमे समझना होगा।

एक बात आप समझ ले कि बुराई-अच्छाई हमेशा से थी और आगे भी रहेगी यह अटल सत्य है क्योकि अगर बुराई हमारे समाज से खत्म हो गई होती तो प्राचीन से प्राचीनतम ग्रन्थों में इसका जिक्र नहीं होना चाहिए था और अगर हमारे झोपड़े में ही कुछ न हो तो चोर चोरी किस चीज की करेगा। चोरी करने के लिये घर मे कुछ होना जरूरी है । प्रत्येक युग मे बुराई का जन्म हुआ है और नये-नये रूप में जन्म हुआ है ।

आदमी का शरीर पाच तत्वो से बना है- पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश यही पाच तत्व हैं और इनका सूक्ष्म सम्बन्ध काम, क्रोध, मोह, लोभ, और अहकार से है। इन तत्वो में से जब भी किसी तत्व की मात्रा शरीर मे बढ जाती है तो फिर आदमी का स्वभाव उसी के अनुसार बदल जाता है याद रहे इन तत्वो का असर जिन्दा शरीर पर ही पडता है मुर्दे पर इन तत्वों का कोई असर नहीं होता है। आप कभी एकान्त मे बैठकर अपने पूरे जीवन का लेखा जोखा करें तो आप को पता चलेगा आप ने 90 प्रतिशत जीवन दुःख मे ही गुजारा है सिर्फ 10 प्रतिशत जीवन आपका सुखमय रहा है । इसका मतलब यह हुआ कि आप का 90 प्रतिशत जीवन का भाग खराब और 10 प्रतिशत ही ठीक है, इस 10 प्रतिशत के लिए ही आदमी सघर्ष करता है अगर मै 90 प्रतिशत जीवन के दुखो के अनुभवो को जोडू तो वह अनुभव ही 10 प्रतिशत सुखमय जीवन के लिए वरदान सिद्ध होंगे और जो लोग 90 प्रतिशत जीवन के दुःखो से डरकर गलत कामो से समझौता कर लेते हैं वही लोग 10 प्रतिशत सुखमय जीवन को भी नहीं पा सकते। ऐसे ही लोग मन्दिरो मे बैठकर प्रभु से सिर्फ शब्दो की प्रार्थना करते हैं कि प्रभु हमारे जीवन से दुःखों को दूर कर सुःखो को प्राप्त करवाइए। परमात्मा ऐसी प्रार्थना करने वालो पर हसता होगा कि कैसे बुजदिल लोग हैं । मैंने इनको जीवन में संघर्ष करने की सलाह दी और यह सघर्ष से डर कर मुझसे प्रार्थना करने लगे।

सुखी बसे ससार सब,
दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सब की
भगवन पूरी होये॥

सिर्फ अभिलाषा करने से कुछ नही होगा। दृढ सकल्प कीजिए। दुख के जो जो भी कारण हैं उन की दिशा मोड दिजिए। पिलाइए इस शरीर को प्रभु के नाम की शराब और इतनी पिलाइए की वह बाहर की शराब का नाम न ले सके। जिस चित्त मे प्रभु भक्ति की अविरल धारा बहेगी कोई बाहर का नशा न टिक पाएगा क्योकि प्रभु के नाम के सिमरण मे ही इतनी शक्ति है कि अन्य किसी चीज की वहा जरूरत नही पडेगी।

हम सभी जानते हैं कि सासारिक भोगो में सुख ढढना मानो दिवास्वप्न है। ससार के भोग नश्वर है परन्तु इन्हे त्यागना भी नहीं क्योकि परमात्मा ने यह हमारे लिए बनाये हैं तथा इस जिन्दा शरीर को इन की जरूरत पडती है परन्तु भोगीएगा इनको त्याग भाव से । वासनाएं कभी समाप्त नहीं होती। हा वासनाओ को भोगने की सीमा तय नहीं की जा सकती और सीमा तय कर ही लेना चाहिए कहीं तो मानव की तृष्णा का अन्त दिखाई दे ताकि मानव कभी तो कह सके कि अब बस करो मैं ज्यादा बोझ को सहन नहीं कर पाऊगा।

मिथ्या ज्ञान भी दु.ख का कारण है। इस मिथ्या ज्ञान से आदमी के अन्दर अहकार का जन्म होता है। इस अहकार की भी दिशा को मोडना श्रेयस्कर है। अहकार के बीच अगर आप ज्ञान का मिश्रण कर दे तो अहकार की दिशा स्वत ही सही मार्ग की ओर मुड जाएगी जिस से अच्छे और बुरे की पहचान की जा सकती है । इस सब के लिए आप के अन्दर दृढ शक्ति होनी चाहिए इरादे मजबूत होने चाहिए ताकि आप के अन्दर दुःखों से सघर्ष करने की शक्ति प्राप्त हो सके। जिस दिन भी आप दु.खो से सामना करने की हिम्मत जुटा लेंगे उसी दिन आप के अन्दर अच्छाई का जन्म हो जाएगा तथा सारे दुर्गुण अपने आप भाग जाएगे जिस से आप सुख का दरवाजा अपने आप खोल सकेगे।

श्री विश्वनाथ को "आजीवन उपलब्धि सम्मान"

❑ *राम नाथ सहगल (दिल्ली)*

श्री विश्वनाथ को "आजीवन-उपलब्धि सम्मान" से सम्मानित करते हुए "भारतीय प्रकाशन संगठन" गौरव का अनुभव करती है।

श्री विश्वनाथ ने साठ से अधिक वर्ष पूर्व पुस्तक प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था। लाहौर स्थित पजाब विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते समय वे परिवार द्वारा सचालित प्रकाशन-गृह "राजपाल एण्ड सन्ज" से जुडे थे। तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध मे जब विश्व बाजार जबरदस्त मंदी के दौर से गुजर रहा था, अपनी प्रतिभा और प्रबध-बुद्धि के बल पर, बहुत कम व्यय में उन्होंने चार भाषाओ में विविध विषयों की पुस्तके प्रकाशित की और अच्छी सफलता प्राप्त की।

उनकी अनेक पुस्तकें भारतीय स्वतत्रता आंदोलन का समर्थन करती थी, इस कारण अनेक पुस्तको पर तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था एव सस्थान से जुडे अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध मुकद्दमें इत्यादि चलाये गये। परन्तु इन सबसे अविचलित वे चालीस के दशक के अन्तिम वर्षों तक देश और समाज मे नई चेतना देने वाला साहित्य प्रकाशित करते रहे। तभी भारत का विभाजन हुआ और उन्हे लाहौर छोडकर दिल्ली आना पडा। दिल्ली आने पर साधनों के नितात अभाव की स्थिति मे उन्होंने प्रकाशन कार्य का पुनारभ किया था। सस्थान की प्रतिष्ठा ही इस समय उनका एकमात्र सबल और पूजी थी। स्वतत्र भारत मे भी प्रकाशन व्यवसाय का एक तरह से आरम्भ ही हो रहा था, और उन्होंने सूझबूझ ओर साहस से प्रकाशन के नए क्षेत्रों मे प्रवेश किया। उनके द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तके गुणवत्ता मे बहुत आगे थी और इंग्लैण्ड मे प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों से उनकी तुलना की जाती थी। उनके मार्गदर्शन और प्रयत्नों के परिणामस्वरूप संस्थान को विपुल सफलता तथा यश प्राप्त हुआ।

1958 में अपने भाई के सहयोग से उन्होंने देश के पहले विशाल पेपर बैक प्रकाशन संस्थान "हिन्दू पाकेट बुक्स" की स्थापना की। इसकी सफलता में उनका केन्द्रीय योगदान रहा और "क्लेरियन बुक्स" तथा "शिक्षा भारती" जैसे सहयोगी प्रकाशन भी इससे निकले। 1977 में आपने "विजय बुक्स प्रा लि" तथा "ओरियेंट पेपरबैक्स" की स्थापना की, जो आज अंग्रेजी भाषा में देश के एक अग्रणी संस्थानों मे गिने जाते हैं।

वे "फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स" के संस्थापक सदस्यों मे हैं और वर्ष 1981 तथा 1999 में इसके अध्यक्ष भी रहे हैं। वे "अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ" के भी अध्यक्ष रहे हैं। उन्होंने अनेक देशों में भारतीय प्रकाशकों के प्रतिनिधि मंडलों का नेतृत्व किया है, भारत सरकार द्वारा संगठित अनेक अध्ययन टीमों के सदस्य रहे हैं और अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और पुस्तक-मेलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

इस समय देश में 600 से अधिक शिक्षण संस्थाओं का संचालन करने वाली डी.ए.वी कालेज मैनेजिंग कमेटी के वे वरिष्ठ उपाध्यक्ष हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा, स्वास्थ्य, आदिवासी-सेवा आदि कार्यो में लगे एक प्रमुख न्यास, लाला दीवानचन्द ट्रस्ट, के वे अध्यक्ष हैं। "राजपाल एजुकेशनल ट्रस्ट के भी वे अध्यक्ष हैं। रोटरी के विविध सेवा कार्यों से भी वे वर्षों से जुड़े रहे हैं। वे रोटरी क्लब दिल्ली नार्थ के अध्यक्ष रहे हैं और रोटरी एजुकेशन फाउंडेशन के ट्रस्टी हैं।

श्री विश्वनाथ की साहित्यिक रुचिया भी विविध है और उन्होंने कई बहुप्रशंसित पुस्तकों की रचना की है। साहित्य और कविता से उनका विशेष लगाव है। इस समय वे "आर्यन हेरिटेज" और "नया साहित्य" के सम्पादक है।

श्री हरिदत्त जी शास्त्री दिवंगत

आचार्य हरिदत्त जी शास्त्री- प्राचार्य डी.ए.वी नैतिक शिक्षा संस्थान का दिनांक 3-8-2001 को हृदय गति रुक जाने से देहावसान हो गया। 1983 को पानीपत जिले के डिडवाडी नामक गांव में आपका जन्म हुआ था प्रारम्भिक शिक्षा गांव में प्राप्त करने के पश्चात् गुरुकुल घरोण्डा (करनाल) से आपने शिक्षा प्राप्त की और शास्त्री की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् आर्य समाज कालका में पुरोहित के पद पर 1961 से 65 तक कार्य किया। तत्पश्चात् 1969 से 1975 तक आर्य समाज माडल टाऊन लुधियाना में धर्माचार्य के पद पर, 1975 से 1980 तक गुरुकुल कुरुक्षेत्र मे आचार्य व 1980 से 1994 तक आर्य समाज करोल बाग दिल्ली में धर्माचार्य के पद पर कार्य किया।

आर्य समाज के आन्दोलनो मे आपने बढ-चढ कर भाग लिया। आपके निधन से आर्य समाज, डी.ए.वी एवं आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने एक कुशल वेद प्रचारक खो दिया है, जिसकी पूर्ति होना कठिन है।

दिनांक 6-8-2001 को आर्य समाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में सायं 4 से 5 बजे तक शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें सभी वक्ताओं ने आपके वेद प्रचार कार्य की सराहना करते हुए आपके निधन को आर्य समाज के लिए अपूरणीय क्षति बताया और आपको श्रद्धांजलिया अर्पित की।

श्रद्धांजलि अर्पित करने वाले आर्य समाज के नेताओं में मुख्य रूप से स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती, स्वामी स्वरूपानन्द जी सरस्वती, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्री वेदव्रत शर्मा, श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री, आर्य केन्द्रीय सभा के प्रधान डा शिव कुमार शास्त्री, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री प्रबोधन महाजन जी, सहमंत्री श्री हरवस लाल जी कपूर, उपप्रधान श्री शान्ति लाल जी सूरी, श्री रामनाथ सहगल, श्री महेश वेदालंकार, डी.ए.वी नैतिक शिक्षा संस्थान के आचार्य श्री धर्मवीर जी शास्त्री, श्री आर.आर भल्ला, श्री सुरेश वात्स्यायन (लुधियाना) प्रो. रत्न सिंह, आचार्य दिनेश चन्द्र शास्त्री, श्री यशपाल जी शास्त्री, आर्य युवक समाज के मंत्री श्री यशवीर आर्य एव डा लीखा जी आर्य समाज कीर्ति नगर आदि थे। सभी ने उन्हे भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

अलावलपुर में रक्षा बन्धन का पर्व मनाया गया

दिनांक 4-8-2001 को महर्षि दयानन्द माडल स्कूल (आर्य समाज मन्दिर) अलावलपुर में रक्षा बन्धन का दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर हवन यज्ञ भी किया गया, जिसमे प्रधान श्री कृष्ण शरण गुप्ता, वैद्य टेक चन्द वालिया, श्री रविदत्त भण्डारी, प्रिंसीपल धर्म पाल जी व स्टाफ तथा स्कूल के बच्चों ने भाग लिया। प्रिं धर्मपाल जी ने तथा प्रधान श्री कृष्ण शरण जी ने पर्व के महत्व को बच्चों को बताया।

आर्य समाज जालन्धर छावनी में रक्षा बन्धन पर्व तथा कृष्ण जन्माष्टमी पर्व मनाया गया

आर्य समाज जालन्धर छावनी में आर्य समाज के सभी पर्व बडे उत्साह से मनाए जाते हैं। इस बार 4 8.2001 को रक्षा बन्धन का पर्व प्रात: 7.30 बजे से 9.30 बजे तक बडे समारोह मनाया गया। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालयाध्यक्ष पं धर्मदेव आर्य का प्रभावशाली प्रवचन हुआ उन्होंने श्रावणी पर्व व रक्षा बन्धन पर्व पर अपने विचार प्रकट किए।

12.8.2001 रविवार को कृष्ण जन्माष्टमी पर्व प्रात: 7.30 से 10 बजे तक मनाया गया। इस अवसर पर विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया जिसके मुख्य यज्ञमान श्री नरेश जी, श्री धर्मेन्द्र अग्रवाल (बिजली बोर्ड वाले) प्रि प्रोमिला तलवाड, कुमारी जैन जी बने । सभी सदस्यों ने मिल कर यज्ञ मे आहुतिया डाली इसके पश्चात् दोआबा कालेज जालन्धर संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो. डा. नरेश जी का श्री कृष्ण जी के जीवन पर प्रभावशाली प्रवचन हुआ जिससे आर्य जनता बहुत प्रभावित हुई।

–जनकराज महाजन, प्रधान

ऋषि दयानन्द विषयक एक मिथ्या आलेख

ले. डा. भवानीलाल जी भारतीय 8/423 नन्दन वन जोधपुर

जयपुर से सर्वाधिक संख्या में छपने वाली राजस्थान पत्रिका राजस्थान के अतिरिक्त कर्नाटक, बगाल आदि राज्यों मे भी हजारो पाठको द्वारा पढे जाने वाला दैनिक है। इसके रविवारीय सस्करण मे एक पुरानी उर्दू पुस्तक का हिन्दी रुपान्तर' यादगार ए मुराद अली" नाम से छपता है। पुस्तक के लेखक मोहम्मद मुराद अली अजमेर के एक अखबारनवीस थे जिन्होने "राजपूताना गजट" नामक एक अखबार निकाला था। इसी पत्र मे सर्वप्रथम स्वामी दयानन्द के जोधपुर मे रूग्ण होने का समाचार प्रकाशित हुआ था। इसी समाचार को पढ कर आर्य समाज अजमेर का एक सभासद जेठमल सोढा महाराज के स्वास्थ्य वृतान्त को जानने के लिए जोधपुर आया था। उक्त उर्दू पुस्तक मुरादअली के सस्करणो का एक रोचक सग्रह है जिससे तत्कालीन अजमेर नगर की सामाजिक तथा शासकीय स्थिति की अच्छी जानकारी मिलती है।

5 जुलाई के अंक में मुराद अली की इस पुस्तक का जो अंश छापा गया है इसमें स्वामी जी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है वह सत्य रुप से दूर है। मुराद अली लिखते हैं कि अजमेर के हिन्दू लोग उनसे सख्त नाराज थे। यहां तक कि जब अजमेर मे इनका इन्तकाल हुआ तो तीन चार आदमियो के सिवाय उनके जनाजे को किसी ने हाथ नहीं लगाया। इस कथन मे कुछ भी सच्चाई नहीं है। स्वामी जी अजमेर मे एक बार नहीं अनेक बार आये थे और इस नगर के विभिन्न स्थानो पर इनके सैकडो व्याख्यान हुए थे। 1882 मे तो अजमेर में आर्य समाज की स्थापना हो चुकी थी और उसके सभासदो की सख्या नित्य प्रति बढ़ रही थी। यह दूसरी बात है कि स्वामी जी के विचारों मे आस्था न रखने वाले साम्प्रदायिक मनोवृति वाले तो उनसे सर्वत्र विद्वेष भाव रखते ही थे, इसमें आश्चर्य ही क्या ? पुन: यह कहना तो नितान्त मिथ्या है कि मृत्यु पर उनकी अर्थी को हाथ लगाने वाले (उठाने वाले) तीन चार से अधिक नहीं थे। ऋषि के जीवन चरितों से विदित होता है कि उनकी अन्त्येष्ठि मे सैकडों लोग शामिल थे। इनमें अजमेर के रेलवे कारखाने में काम करने वाले उत्तरप्रदेश के कर्मचारी ब्रह्म समाज के अनुयायी, रा ब भागराम, दी ब अमानचन्द, सरदार बहादुर भगत सिह इजानियर आदि प्रमुख थे। स्थानीय मारवाडी समुदाय भी पर्याप्त सख्या मे था। यह ध्यान देने की बात है कि स्वामी जी की बीमारी के समाचार को पाकर लाहौर, मेरठ फर्रुखाबाद आदि सुदूरवर्ती स्थानो के अलावा राजस्थान के ग्रामो एव नगरो से भी प्रचुर सख्या मे भक्तगण अजमेर आ गये थे। क्या इन लोगों ने अत्येष्ठि मे भाग नहीं लिया। दी ब हर विलास शारदा तो अपने सस्मरणो मे लिखते हैं कि जब दरगाह बाजार मे महाराज की शवयात्रा पहुची तो उन्होने गिन कर देखा कि विमान (अर्थी) को उठाने वाले लोगो की संख्या सोलह थी। अत: मुराद अली का उक्त कथन अविश्वसनीय है।

मुराद अली स्वामी जी के सुधार कार्य की प्रशंसा तो करते हैं किन्तु उनके गोरक्षा आंदोलन की निन्दा करते हुए लिखते हैं कि इससे हिन्दुओ के दिलो मे मुसलमान की दुश्मनी का बीज बो दिया। यह कथन भी सत्य से कोसों दूर है। हमे पुरातात्विक प्रमाणो से ज्ञात हुआ है कि मुन्शी मुराद अली स्वय गोरक्षा के समर्थक थे और उन्होने अपने पत्र राजपुताना गजट मे गोरक्षा के समर्थन मे लिखा भी था। अत: गोरक्षा आन्दोलन को हिन्दू मुसलमानो मे वैमनस्य फैलाने का कारण बताना निश्चय ही गलत है। हिन्दू मुसलमानो के पारस्परिक झगडो के कारण अनेक रहे है। यह भी सत्य है कि कट्टरपन्थी मुसलमानो ने गौवध की हानियो को कभी समझा ही नही, किन्तु इसके लिए ऋषि दयानन्द को दोष देना उचित नही है। स्वामी दयानन्द मानवतावादी, उदार सम्पन्न महापुरुष थे जिन्होने सच्चे साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए आजीवन प्रयास किया।

आर्य समाज भठिण्डा में श्रावणी उपाकर्म

आर्य समाज चौक भठिण्डा मे श्रावणी उपाकर्म (रक्षा बन्धन) का पर्व बडी धूमधाम से मनाया गया। सर्वप्रथम आचार्य श्री गुरु प्रसाद शास्त्री जी ने बृहद यज्ञ करवाया।

यज्ञ के पश्चात् कुमारी श्वेता ने भगवान तुम्हारी दुनिया का यह कैसा अजब नजारा है यह ईश्वर भक्ति का भजन मधुर कण्ठ से सुनाया। पश्चात् श्री शास्त्री जी ने श्रावणी उपाकर्म के महत्व को दर्शाते हुए कहा कि आज के दिन हमे वेदादि सत्य शास्त्रो का नियमित स्वाध्याय करने का संकल्प लेना चाहिए। साथ ही उन्होने यज्ञोपवीत की विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा कि मनुष्य के ऊपर तीन ऋण होते है। देव, पितृ और ऋषि ऋण। इन से उऋण होने का प्रत्येक मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए। साथ मे यह भी कहा कि रक्षा सूत्र बाधने का तात्पर्य यह है कि हमे केवल भाई बहन की ही नहीं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे की रक्षा करनी चाहिए एवं राष्ट्र रक्षा की भावना होनी चाहिए।

शान्तिपाठ के पश्चात् सभा विसर्जन हुई। आज का प्रसाद श्री पी.डी गोयल एडवोकेट, प्रधान जिला भटिण्डा की ओर से वितरण किया गया।

–प्रेम भाटिया, महामन्त्री

नवांशहर में वेद सप्ताह के यज्ञ की पूर्णाहुति व आर.के. आर्य कालेज की स्वर्ण जयन्ती समारोह सम्पन्न

12.8.2001 को आर के आर्य कालेज नवांशहर में आर्य समाज नवाशहर मे 5-8-2001 से 12-8-2001 तक चलने वाले वेद सप्ताह के यज्ञ की पूर्णाहुति डाली गई और इस यज्ञ के साथ ही आर के आर्य कालेज के स्वर्ण जयन्ती समारोह का शुभारम्भ हुआ।

यज्ञ आर्य समाज के पुरोहित जी ने करवाया। इस यज्ञ के ब्रह्मा आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के कार्यालयाध्यक्ष श्री धर्मदेव जी आर्य थे। उनकी देख रेख मे यज्ञ सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ के मुख्य यज्ञमान श्री प्रि आर के शर्मा सपत्नीक थे। कालेज के प्रधान श्री प्रेम भारद्वाज तथा अन्य कई महानुभाव यज्ञमान बने।

यज्ञ के पश्चात् मच से कार्यक्रम आरम्भ हुआ। इस अवसर पर आर के आर्य कालेज नवाशहर, बी एल एम गर्ल्ज कालेज नवाशहर, डी ए एन कालेज आफ ऐजुकेशन नवाशहर, दोआबा सी सैं स्कूल नवाशहर, डब्लयू-एल गर्ल्ज सी सैं स्कूल नवाशहर, डा आशानन्द आर्य माडल स्कूल नवाशहर के प्रिसिपल, स्टाफ तथा प्रबन्ध समितियों के सभी सदस्य वहा उपस्थित थे। आर्य समाज नवाशहर के सभी सदस्य भी वहा विद्यमान थे नगर के प्रतिष्ठित महानुभावों ने भी इस समारोह मे भाग लिया।

इस समारोह मे आर्य समाज फगवाडा, बंगा, रायकोट, पठानकोट लुधियाना, पटियाला, जालन्धर, धूरी व तपा के भी कई महानुभावो ने भाग लिया। जिला आर्य सभा लुधियाना की प्रधाना तथा आ प्र नि सभा पजाब की मन्त्री श्रीमती राजेश शर्मा और सभा उप प्रधान श्री आशानन्द जी आर्य विशेष रूप से कई महानुभावो के साथ यहा पहुचे थे, रायकोट श्री सतीश कौडा, धूरी से श्री वासदेव, तपा से श्री सी मारकण्डा, फगवाडा से प्रो सरल जी, बगा से श्री शादी लाल महेन्द्रु, पठानकोट से श्री प्रि स्वतन्त्र कुमार जी सभा उप प्रधान। जालन्धर से श्री हरबस लाल जी शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, चासलर गुरुकुल कांगड़ी, श्री देवेन्द्र शर्मा रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पजाब, श्री सुदर्शन कुमार शर्मा सभा उप प्रधान तथा अन्य कई महानुभाव यहा पधारे थे।

यह समारोह सभा प्रधान श्री हरबस लाल जी शर्मा की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ । गुरुकुल कांगड़ी के कुलाधिपति (चासलर) बनने पर वह पहली बार नवाशहर मे आए थे इसलिए यहा पहुचने पर नवाशहर की जनता व अन्य भिन्न-भिन्न नगरों से पधारे महानुभावों तथा सभी सस्थाओ के प्रिसिपलो ने उनका भव्य स्वागत किया। इस अवसर पर कृष्ण जन्माष्टमी पर्व की महत्ता बताते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालयाध्यक्ष प धर्मदेव जी ने श्री कृष्ण के जीवन के सम्बन्ध मे विस्तार से चर्चा की। कई विद्यार्थियो ने बहुत ही अच्छा कार्यक्रम प्रस्तुत किया। मच का सचालन श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल मन्त्री आर्य समाज ने किया। श्री प्रि हंसराज शर्मा, आर्ट एण्ड क्राफ्टस स्कूल की प्रिसिपल तथा प्रिं आर के शर्मा तथा कालेज के प्रधान श्री प्रेम भारद्वाज ने भी नवाशहर की शिक्षा सस्थाओ तथा आर के आर्य कालेज की उन्नति के सम्बन्ध मे आर्य जनता को बताया।

इस अवसर पर आर्य विद्या परिषद पजाब के रजिस्ट्रार श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा ने बोलते हुए कहा कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, आर्य विद्या परिषद पजाब सभा से सम्बन्धित सभी शिक्षा सस्थाओ की उन्नति के लिए निरन्तर कार्य कर रही है।

सभा ने आदेश दिया है कि प्रत्येक शिक्षा सस्थाओ मे धर्म शिक्षा नैतिक शिक्षा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जाए, प्रत्येक सस्था मे यज्ञ किए जाए और विद्यार्थियो को भारतीय संस्कृति की जानकारी दी जाए । हमारी शिक्षा सस्थाओ की पढाई का स्तर भी अन्य शिक्षा सस्थाओ से ऊचा होना चाहिए। उन्होंने कहा कि हम सभी शिक्षा सस्थाओ मे शुद्ध पवित्र वातावरण चाहते हैं किसी भी भ्रष्टाचारी को सभा बर्दाश्त नहीं करेगी। हमे आशा है कि नवाशहर की शिक्षा सस्थाए अब पहले से भी अधिक उन्नति करेगी क्योंकि अब इन्हे सुयोग्य कार्यकर्त्ता मिले हैं। हम सबको मिल जुल कर शिक्षा सस्थाओ की उन्नति के लिए कार्य करना चाहिए। अन्त मे सभा प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा ने श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर्व की व आर के. आर्य कालेज की स्वर्ण जयन्ती की सभी आए हुए महानुभावो को बधाई दी और नवांशहर की सभी शिक्षण संस्थाओं की उन्नति में सहयोग देने का आश्वासन दिया तथा अन्त में प्रिंसिपल आर के. शर्मा ने और श्री प्रेम भारद्वाज ने सभी का धन्यवाद दिया। अन्त में बृहद ऋषि लंगर हुआ जिसमे सभी ने प्रीतिभोज किया। —सुरेन्द्र मोहन

आर्य समाज मोगा में वेद सप्ताह

आर्य समाज मोगा में वेद सप्ताह बड़े समारोह पूर्वक 4 से 12 अगस्त तक मनाया गया। जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के उपदेशक श्री सुन्दर लाल जी शास्त्री के प्रवचन होते रहे। आर्य समाज के पुरोहित श्री दीवाकर भारती प्रो. बलविन्द्र कुमार और पं विकास जी का सहयोग यज्ञ के लिए मिलता रहा। यज्ञ मे प्रतिदिन कई-कई व्यक्ति यज्ञमान बनते रहे। 4-8-2001 को श्री जगदीश अग्रवाल, श्री जसवन्त राय, श्री ब्रह्मदेव सहगल, श्री प्रियतम देव तथा मनु शर्मा जी यज्ञमान बने, 5-8-2001 को श्री सत्यदेव जी सूद, श्री अमृत लाल अग्रवाल, ब्रह्मदत्त गोयल, मा कृष्ण कुमार, श्री मदन मोहन आर्य यज्ञमान बने। 6-8 को श्री अश्विनी कुमार शर्मा सुपुत्र श्री तीर्थराज वैद्य, श्री उपेन्द्र लाम्बा तथा श्री विजयसाथी जी यज्ञमान बने, 7-8 को प्रिं अमृत लाल, प्रो सुरेश मल्होत्रा, श्री जयन्त सूद, 8-8 को श्री विजय सिंगल, श्री ज्ञान मित्र सूद यज्ञमान बने। 9-8 को श्री ज्ञान प्रकाश सूद, श्री नरेश, श्री राजेश सूद, मा कृष्ण सूद, 10-8 को श्री सत्य प्रकाश उप्पल, श्री ताराचन्द, श्री जगदीश चन्द्र पुरी, मजू शर्मा, श्री पुरुषोत्तम पुरी, 11-8 को श्री विजय पाल कश्यप एडवोकेट श्री सरदारी लाल मल्होत्रा, श्री जितेन्द्र खुल्लर, श्री प्रवीण पुरी, श्री प्रितपाल कश्यप, श्री वीरेन्द्र कश्यप, 12-8 को श्री जितेन्द्र अग्रवाल, श्री पुरुषोत्तम, श्री विजयपाल, मधु वालिया, मधु शर्मा, ब्रह्मदेव सहगल, श्री प्रियतम देव, इनके अतिरिक्त और भी कई यज्ञमान बने यज्ञ के प्रति आम लोगो मे श्रद्धा है।

हमे इस वेद सप्ताह मे सभी सदस्यो का सहयाग मिला। श्री के के पुरी, श्री बोधराज मजीठिया, श्री सत्य प्रकाश उप्पल, डा विजय सिंगल, श्री जगदीश चन्द्र पुरी, श्री उपेन्द्र लाम्बा, श्री यशवन्त राय, श्री विजय साथी, श्री जगदीश अग्रवाल, श्री ज्ञान मित्र सूद श्री बलराज सचदेवा और प्रधान श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी का बहुत सहयोग मिला। इस अवसर पर लुधियाना से श्री हरबंस लाल सेठी तथा श्री ओ पी टण्डन भी 12-8-2001 को मोगा पहुचे थे।

कार्यक्रम बडा सफल रहा इसमे मोगा की सभी शिक्षण संस्थाओ के प्रिसिपलो, स्टाफ तथा प्रबन्ध समितियों के अधिकारियो व सदस्यो का हमे पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। श्री सुन्दर लाल जी शास्त्री के प्रचनो का भी बडा अच्छा प्रभाव रहा। मैं इस कार्यक्रम की सफलता के लिए सभी बन्धुओ व बहनों का धन्यवाद करता हूं जिन्होंने हमे इस कार्यक्रम को सफल बनाने मे अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया। —प्रियतम देव कार्यकर्त्ता प्रधान

गुरदासपुर में कृष्ण जन्माष्टमी पर्व

आर्य समाज (गु वि) गुरदासपुर में कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व आर्य समाज मर्यादा के मुताबिक तिथि 12-8-2001 को डा लुकेश गुप्ता की प्रधानगी मे सवेरे 8 बजे से 11 बजे तक मनाया गया। सुबह 8 बजे से 9 बजे तक हवन यज्ञ किया गया। जिसमे यज्ञमान डा लुकश गुप्ता व श्री चोपडा जी और श्री नरेन्द्र नन्दा एवं उनकी धर्मपत्नी ज्योति नन्दा थे। हवन यज्ञ श्री राम निवास शास्त्री जी ने बडे सुन्दर ढग से करवाया।

9 बजे से 11 बजे तक स्कूली बच्चो ने गीत, भाषण और कविताए आदि बोल कर आए हुए श्रोतागणो को मन्त्र मुग्ध कर दिया। दयानन्द मठ दीना नगर मे ब्र प्रभु जी ने श्री कृष्ण जी के जन्म सम्बन्धी बडे सुन्दर ढग से गीत एव व्याख्या के माध्यम विस्तार पूर्वक जानकारी दी।

श्री प्रेम चन्द जी पारस, श्री जगदीश अरोडा जी, श्री कुन्दन लाल शास्त्री जी ने भी बहुत अच्छे ढग से श्री कृष्ण जी की जीवनी सम्बन्धी आर्य मर्यादा मुताबिक व्याख्यान दिए।

श्रीमती सन्तोष अम्बा ज्योति नन्दा, और बाकी बहिनो ने बडी श्रद्धा के साथ सेवा की। श्रीमती ज्योति नन्दा ने लगभग 300 रुपए की धार्मिक पुस्तके अपनी आर से स्कूली बच्चो मे बाटी। श्री प्रेम प्रसाद सेवक और उनकी धर्मपत्नी गीता देवी ने श्रोताओ के बैठने की व्यवस्था बहुत अच्छे ढग से की हुई थी।

अन्त मे प्रधान डा लुकेश गुप्ता जी ने सब का धन्यवाद किया और युवा प्रधान ने घोषणा की कि अगले आने वाले पर्व जैसे दीवाली, शिवरात्रि बहुत ही अच्छे ढग मे मनाए जाएंगे। —गुरवचन-मन्त्री

पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना के तत्वावधान में 19 अगस्त रविवार को गूगे-बहरों के स्कूल टैगोर नगर लुधियाना मे बृहद यज्ञ व सत्संग किया गया। जिसमें भारी संख्या में लोगों ने भाग लिया।

26-8-2001 को श्री भाटिया जी प्रबन्धक पंजाब नैशनल बैंक डुगरी रोड लुधियाना स्थित निवास स्थान पर सायं 5 से 7 बजे तक पारिवारिक सत्संग होगा । आर्य बन्धु भाग लेकर विद्वानों के प्रवचन सुने और धर्म लाभ उठायें।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

(0 [illegible])
2277. श्री पुस्तकाध्यक्ष जी
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तरप्रदेश)

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | विश्वमार्यम् |



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—55 अंक : 12 सृष्टि संवत 1960853102, 2 सितम्बर तथा 9 सितम्बर 2001 दयानन्दाब्द 178

माता-पिता

❑ ले० महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी, आर्य कुटिया धूरी (संगरूर)

ओं त्वं हि नः पिता वसो, त्वं माता शत क्रतो वभूविथ।
अधाते सुम्नमी महे॥ ऋग्वेद।

परम पिता परमात्मा माता-पिता के समान जीव के हित चिन्तक स्नेही, पालक, पोषक और रक्षक हैं, क्योंकि वह पिताओ के पिता "पितामह:" हैं। वह रक्षक अपनी अनन्त शक्ति से मानो उस "बच्चे" को उठाकर अपनी गोद में बिठा लेते हैं, जो उसकी शरण में जाना चाहता है। जब बच्चा चोट खा कर माता की ओर देखता है, तब माता आगे आकर उसे गोद में बिठा लेती है और कहती है वाह रे मेरे लाल। तब बच्चा सच्ची सांत्वना पाता है और माता की गोद मे निंद्रा लेता है, निंद्रा का अर्थ है "सुख"। ठीक इसी भान्ति जब साधक दु:ख की अवस्था में "जगत्माता" की ओर देखता है, तो जगत्माता उसे प्रेम की लोरियों से सान्त्वना और पवित्र प्रेरणा देती है तथा सब प्रकार से रक्षा करती है।

2 परम पिता परमात्मा उसकी भी पालना करते हैं जिसके माता-पिता इस संसार में नहीं रहे, क्योंकि प्रभु सबके उत्पादक, पालक और पोषक हैं, बच्चा पैदा हुआ क्या खाये? माता के स्तनों मे बच्चे के साथ ही दूध आया। क्या वह बच्चे का ही पालक है। नहीं, उसे बच्चे की माता का भी पूरा ध्यान है, इसी लिए जहां बच्चे को सब अंग देकर पूर्ण बनाया, परन्तु दान्त नहीं दिये अहो ! कैसे वह हम सब को अपनी रक्षा मे लिए बैठा है, परन्तु हम उसकी ओर पीठ किए बैठे हैं। बन्धुओं ! यदि हम माता की ओर पीठ भी रखेंगे, तब भी वह माता हमें अपना ही समझेगी अयोग्य बच्चे को माता भोजन नहीं देती ?

3 माता पिता बच्चे के लालन-पालन में जो कष्ट उठाते हैं, वह वाणी और लेखनी से वर्णन नहीं हो सकता। बच्चा जब छोटा होता है, तो माता का संग नहीं छोड़ता, तब माता उसे ठीक समय खिलाती, पिलाती, गोद में रखती या सुरक्षित पालने में सुलाती है, तब किसी भी प्रकार का बच्चे को भय नहीं होता, परन्तु ज्यों ही बच्चा थोडा सा बडा हुआ, जगत के खेलों में फंसना आरम्भ हुआ, त्यों ही खेलते-खेलते दूर चला जाता है, दूर से आने में अनेक कष्टों और भूलों का होना स्वाभाविक है। देर से घर पहुंचने के कारण पिता बच्चे को मारता है और माता बच्चे से प्यार करती है। "इस मार और प्यार मे जो सार है" उसे कोई विरला ही पा सकेगा। बन्धुओ ! हम तो उस माता और पिता का वर्णन कर रहे हैं जिसे-

"**त्वमेव माता च पिता त्वमेव**" कहा गया है।

4 जो बच्चा माता की आज्ञा का पालन करता है, वह भगवान मनु के शब्दों अनुसार, आयु, विद्या, यश और बल को प्राप्त करता है, इससे अधिक चाहिए भी क्या ? आज्ञा पालन श्रद्धा और नम्रता द्वारा ही सम्पन्न होता है। ऐसे आज्ञा पालन बच्चे को माता पिता इजीनियर, डाक्टरी अर्थात् उच्च श्रेणियों की पढाई करवाते हैं, ताकि बच्चा अपना भविष्य उज्जवल बना सके, उसकी शिक्षा दीक्षा पर भारी व्यय करते हैं। यही तक नहीं, उसका समय-समय पर पथ प्रदर्शन भी करते हैं, बच्चे की जीवन रक्षा के लिए सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार भी रहते हैं, परन्तु आश्चर्य यह है कि माता-पिता का इतना प्रेम होते हुए भी, बच्चा माता-पिता से दूर रहना चाहता है, आज्ञा पालन में लज्जा मानता है। क्या यह बालक की कृतघन्ता नहीं ? क्या यह एक प्रत्यक्ष सत्य नहीं कि एक पिता दस बच्चों को पालता है परन्तु दस बच्चे एक पिता को नहीं पाल सकते ? क्या माता-पिता का ऋण उतर सकता है ? कदापि नहीं।

5 परमात्मा हमारे पिता और पृथ्वी हमारी माता है। भूमि पर अरबो वर्षों से मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट आदि सभी प्राणी सभी प्रकार की भोग्य सामग्री ले रहे हैं, माता वसुन्धरा आज भी दे रही है, आगे भी देती रहेगी। कहीं भूगर्भ में तेल हैं, कहीं धातुएं हैं, कही संगमरमर का पत्थर, कहीं चिकनी मिट्टी हैं, कही रेत के भण्डार, कहीं मीलों ऊंचा पर्वत, और कहीं मीलों गहरा समुद्र है, कहीं वाटिकाओं में फल सहित वृक्ष झूम रहे हैं और कहीं खेतियां लहलहा रही हैं, इन सभी स्थानों में अनन्त प्राणी वास कर रहे हैं और माता वसुन्धरा सभी के लिए यथा योग्य भोजन तैयार करती जा रही है। आश्चर्य तो यह है कि परमपिता परमात्मा ने कितना सुन्दर प्रबन्ध कर रखा है ? कितनी है विशाल शक्ति, कितने हें विशाल प्राणी, कितना है विशाल भोजन कितना है विशाल "दान" हम तो अनुमान भी नहीं लगा सकते।

6 बच्चा जब माता की ओर देखता है तो माता का अनुपम प्रेम कैसे प्रदीप्त होता है, क्या उस प्रेम को लिखा जा सकता है ? परन्तु बच्चा दु:ख की अवस्था मे ही माता की ओर देखता है, या स्मरण करता है, कष्ट की अवस्था मे कहा करता है, "हाय नी मां" अन्यथा सांसारिक खेलों या कार्यो में लगा रहता है, यदि प्रत्येक अवस्था में बच्चा माता की गोद में रहे, और उसकी दृष्टि के अन्तर्गत ही खेले-खाये और कार्य करे, तो माता की करुणा और प्रेरणा उसका मार्ग दर्शन करती रहती है। बच्चे के दु:ख का मूल कारण माता की दृष्टि से ओझल रहना ही है, पाठको ! क्या सांसारिक दु:खों से बचने का यह सरल उपाय नही कि हम "माता" (परमात्मा) की गोद को न छोड़े ?

श्री गुरु विरजानन्द स्मारक गुरुकुल करतारपुर का वार्षिक उत्सव

श्री गुरु विरजानन्द स्मारक गुरुकुल करतारपुर का वार्षिक उत्सव 8 अक्तूबर 2001 से 14 अक्तूबर 2001 तक बड़े समारोह पूर्वक हो रहा हैं। जिसमें कार्यक्रमानुसार अथर्ववेद पारायण यज्ञ प्रात: 6.30 बजे से 8.30 बजे तक और सायं 4 बजे से 6 बजे तक यज्ञ प्रवचन व मधुर संगीत होंगे। उत्सव मे निम्न विद्वान् पधार रहे हैं। यज्ञ ब्रह्मा सर्वश्री पं सत्यानन्द नोएडा, स्वामी आत्मबोध सरस्वती हरिद्वार, डा रवि प्रकाश आर्य देहली, डा राम प्रकाश चण्डीगढ, महावीर मुमुक्षु मुरादाबाद, मान्या बहन माधुरी योगमति अमृतसर, श्रीमती चन्द्र प्रभा आचार्या लुधियाना, तथा संगीताचार्य विजय आनन्द फिरोजपुर।

आप सभी आर्य बन्धु, माताए एवं बहनें सादर आमन्त्रित हैं। गुरु विरजानन्द की जन्म-स्थली गुरुकुल करतारपुर में रह कर, आये हुए उच्चकोटि के विद्वानों, महात्माओं के प्रवचन एवं संगीतकारो के मधुर संगीत सुनकर धर्म लाभ उठाएं। उत्सव में रहने व भोजन आदि का पूर्ण प्रबन्ध श्री गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट करतारपुर की ओर से होगा। ऋतु अनुसार बिस्तर साथ लावें।

—चतुर्भुज मित्तल, मन्त्री

आत्मा परमात्मा का अंश नहीं है

लेखक—श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक, अध्यक्ष वैदिक संस्थान, नजीबाबाद, (उ. प्र.)

15 जुलाई का 'सार्वदेशिक' साप्ताहिक मेरे सामने रखा है। इस के पृष्ठ 7 पर 'दुःख मिटाने का अनन्त सामर्थ्य' शीर्षक से श्री राम औतार अग्रवाल का लेख प्रकाशित हुआ है। यह लेख उन्होंने सार्वदेशिक में प्रकाशानार्थ भेजा भी नहीं है अपितु यह तो 'समाचार दैनिक जागरण ' से लेकर प्रकाशित किया गया है।

अन्य पत्र-पत्रिकाओं से लेख लेकर प्रकाशित किये जाते हैं, किये जाने भी चाहिएं किन्तु वह लेख ऐसे होने चाहियें, जिनको जन-जन तक पहुंचाया जाना उपयोगी हो। पाठको के ज्ञानचक्षु जिससे खुलें और वास्तविक सिद्धान्तों का जिससे प्रचार हो। यदि कोई लेख सत्य सिद्धान्तों के विरुद्ध हो, मात्र अशान्ति फैलाने वाला हो तो यह कदापि प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिये। किसी अन्य पत्र से उद्धृत करके तो क्या? सीधे पत्र-सम्पादक महोदय के नाम से भेजा गया हो, तब भी किसी आर्य पत्र मे नहीं छापा जाना चाहिए। जिस लेख की मैं चर्चा करने लगा हू उसका तो प्रथम परिछेद ही अनर्गल और सिद्धान्त विरुद्ध है। पाठकगण ध्यानपूर्वक पढे और मनन करे।

'परमात्मा हम सब को सदैव प्राप्त है, हम उन्हीं के अंश हैं, लेकिन ससार की ममता, कामना, अव्यक्ति के कारण हमे उनकी विस्मृति हो गयी है।'

प्रथम वाक्यांश को ही लीजिए 'परमात्मा हम सब को सदैव प्राप्त है।' प्राप्ति अपने से पृथक तत्व की होती है। इसका अर्थ है कि लेखक को यह स्वीकार है कि परमात्मा हमसे अर्थात् जीवात्माओं से पृथक तत्व है। हमारा परमात्मा से पृथक अस्तित्व है और परमात्मा का अस्तित्व हमसे पृथक है किन्तु वह हमसे पृथक तत्व होते हुए भी हमारे इतना निकट है कि वह हमसे पृथक कही या दूर नहीं है, सहज ही स्वभाव से, स्वाभाविक रूप से ही— अपने सर्व व्यापकत्व के कारण अर्थात् निमेष मात्र से हमारे पास है। परन्तु उपर्युक्त वाक्य के अगले भाग में कहा गया है कि 'हम उन्हीं के अंश हैं।' यह नवीन वेदान्तियों का मत हो सकता है अंशा-अंशी भाव का, वेद और वैदिक धर्मियों का नहीं। यह तो वेद विरुद्ध मान्यता है अतः अवैदिक है। जीवात्मा परमात्मा का अंश है ही नहीं, किसी प्रकार भी वह परमात्मा का अंश सिद्ध नहीं हो सकता। यदि जीवात्मा को परमात्मा का अंश मान लिया जाये तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि परमात्मा प्रकृति का बना हुआ कोई पदार्थ या तत्व है। अतएव भौतिक तत्व है। भौतिक पदार्थों में ही अंशा-अंशी भाव होता है। वही टूट कर पृथक-पृथक हो जाने के कारण एक दूसरे के अंश या भाग होते हैं। भौतिक पदार्थ जड़ होते है, चेतन नहीं होते। परमात्मा ही क्या ? हम जीवात्मा भी जड़ नहीं चेतन हैं। हां हमारी चेतना सीमित परिमित है, क्योंकि हम अल्प, परिमित, सीमित, परिच्छिन्न हैं।

परमात्मा यदि जड़ तत्व है तो वह सृष्टि की व्यवस्था न तो बना ही सकता है और न उसका संचालन ही कर सकता है। जीवो को उनके गुण कर्मानुसार फल तो क्या प्रदान करेगा, सृष्टि का निर्माण भी नहीं कर सकता। हां, सृष्टि का एक अंश सृष्टि के अन्य पदार्थो की भांति किसी निर्माता द्वारा निर्माण किया हुआ पदार्थ सिद्ध हो जाएगा। तब वह सृष्टि का कर्ता भी सिद्ध नहीं हो सकता। सृष्टि का कर्ता तो चेतन तत्व, सार्वांगपूर्ण चेतना वाला, सर्वज्ञ तत्व ही हो सकता है। यदि ऐसा नहीं तो वह हम सबको सदैव प्राप्त भी नहीं हो सकता। जैसा कि उपर्युक्त लेख के लेखक महोदय का मत है। कारण यह है कि भौतिक पदार्थ या तत्व तो हमें वही सदैव प्राप्त रहते हैं, जो हमारे शरीर के अंश 'अणु परमाणु' हैं, अन्य कोई भौतिक तत्व हमें [illegible] नहीं हो सकता। [illegible] तो चेतन स्वरूप और सर्वव्यापक होने के कारण ही सदैव प्राप्त है। इतना प्राप्त है, इतना निकट प्राप्त है कि न केवल हमारे शरीर में अपितु हम में, आत्मा में भी व्याप्त हो रहा है। यही परमात्मा की हमको सदैव प्राप्ति है।

आगे फिर लेखक महोदय लिखते हैं 'लेकिन संसार की ममता, कामना, आसक्ति, के कारण हमें उनकी विस्तृति हो गयी है।' यदि हम परमात्मा के अंश हैं तो संसार की ममता, कामना, आसक्ति के दोष परमात्मा में भी आरोपित होंगे तथा इन दोषों से युक्त हो जायेगा तो सर्वज्ञ नहीं रहेगा और सर्वज्ञता के अभाव में प्रलय काल अवस्थित सलिलावस्था, तरलावस्था वाली प्रकृति में प्रक्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकेगा और जड़ प्रकृति में स्वतः प्रक्षोभ उत्पन्न न होने से वर्तमान काल के आप्त और प्रमाण पुरुष महर्षि दयानन्द के शब्दों में सृष्टि की प्रथमावस्था 'नित्यायाः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थाः प्रकृतोत्पन्नानां परमसूक्ष्मणां पृथक पृथत्वर्त्तम्नानानां तत्व परमाणुणां प्रथम संयोगारम्भः' अर्थात् नित्य रहने वाली सत्व-रज-तम की साम्य अवस्था सलिला-तरलावस्था प्रकृति से उत्पन्न हुए परम सूक्ष्म तथा पृथक-पृथक वर्तमान हो जाने वाले तत्व परमाणुओं का जो सृष्टि बनने में प्रथम संयोग होना चाहिये, वह भी नहीं होगा, जिसके परिणामस्वरूप यह उतनी विशाल स्थूलाकार सृष्टि तो क्या? कोई स्वल्प सी वस्तु भी नहीं बन सकेगी।

लेख को अधिक विस्तार देना उचित नहीं समझता, अन्यथा इस विषय पर तो एक पृथक ग्रन्थ ही बन सकता है। मेरा उद्देश्य पाठकों को उपर्युक्त लेख के भ्रान्त विचारो से सावधान करना मात्र है और आर्य पत्रों के सम्पादक महोदयों से मेरा विनम्र निवेदन है कि इस प्रकार के लेखों को कदापि प्रकाशित न होने दें। अलमेतिविस्तारेण।

है भारत भूमि तुम्हें नमन

करते हम तेरा आराधन ! हे भारत भूमि! तुम्हें नमन॥
हिमाच्छादित गिरि मुकुट तेरा, नूपुर ध्वनि नदियों की कल-कल।
तू शस्य श्यामला, सुखदायी, वरद्हस्त तेरा कण-कण।
हे भारत भूमि। तुम्हें नमन. .
तेरी ही मिट्टी में खेलें, कहीं राम, कृष्ण, कहीं परम हंस।
महाराणा और शिवाजी ने, सर्वस्व किया तुमको अर्पण।
हे भारत भूमि ! तुम्हें नमन्....
सृष्टि विधान का सार यहां, प्राकट्य हुई यहां मानवता।
निष्काम कर्म और भक्ति का, यहां अविरल होता है संगम।
हे भारत भूमि ! तुम्हें नमन्....
इतिहास के स्वर्णिम् पन्नों में, है रत्न जड़ित तेरे रक्षक।
जो फांसी की डाली पे खिले, पुष्पों से सजा तेरा उपवन।
हे भारत भूमि ! तुम्हें नमन्....
जन्म भूमि और जननी की, महिमा है स्वर्ण से भी बढ़कर।
गुणगान सदा ही करती है, मलयाचल की यह त्रिविध 'पवन'।
हे भारत भूमि ! तुम्हें नमन्..

—रचयिता :—आचार्य पवन शर्मा
मानस कुटीर 767 कूचा करमों, करमों ड्योढ़ि अमृतसर।

मनसा में श्री कृष्ण जन्मोत्सव

आर्य समाज मानसा में 12-8-2001 को श्री कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व समारोह से मनाया गया। प्रधान श्री हंसराज जी, वाईस प्रिंसिपल श्री सुनील कुमार व श्रीमती सुनीता बाघला ने अपने विचार रखे और श्री कृष्ण जी के जीवन पर प्रकाश डाला। आर्य हाई स्कूल के बच्चों ने इसमें बढ़-चढ़ कर भाग लिया।

सम्पादकीय.....

श्राद्ध एवं तर्पण

हमारे देश में पिछले कई वर्षों से आश्विन कृष्ण पक्ष के इन पन्द्रह दिनों को श्राद्ध एवं तर्पण का नाम दिया गया है। इन 15 दिनों में मृत पितरों की आत्म पुष्टि के लिए ब्राह्मणों को भोजन आदि कराया जाता है तथा दान आदि दिया जाता है, चिरकाल से ऐसा चला आ रहा है। यह प्रथा कब से आरम्भ हुई इस का ठीक से अनुमान तो नहीं लगाया जा सकता परन्तु यह स्पष्ट है कि यह भी पौराणिक काल की प्रथा है। वर्ष भर में जिस भी तिथि को परिवार के किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है वही तिथि आश्विन कृष्ण पक्ष की तिथि उसके श्राद्ध की तर्पण की तिथि मान ली जाती है। उसी तिथि को उसका श्राद्ध किया जाता है। अब 3 सितम्बर से यह श्राद्ध आरम्भ हो चुके हैं और 17 सितम्बर अमावस्या तक चलेंगे।

महर्षि दयानन्द के आने से पूर्व हमारे देश में बहुत सी कुरीतियां चल रही थी महर्षि दयानन्द ने सभी के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई उनमें से एक श्राद्ध भी है। यह अवैदिक प्रथा है। देश में वेद प्रचार के अभाव में कई अवैदिक प्रथाएं आरम्भ हो गई हैं और उनमें से बहुत सी आज भी प्रचलित हैं। उनमें से एक यह श्राद्ध भी है। श्रत् का अर्थ सत्य है, श्रत् शब्द से ही श्रद्धा व श्राद्ध सिद्ध होता है। माता-पिता-गुरु आचार्य, दादा-दादी, नाना-नानी, तथा विद्वान् आदि पितर कहलाते हैं। इनको तृप्त करना, खुश करना तर्पण कहलाता है। इन जीवित पितरों की श्रद्धा पूर्वक सेवा का नाम श्राद्ध व तर्पण है। पितर शब्द का अर्थ, पालक, रक्षक और पिता होता है। पिता और पितर शब्द दोनों समानार्थक शब्द हैं। पितर शब्द का अर्थ शास्त्रों मे जीवित के लिए आया है। इस लिए जीवित माता-पिता, दादा-दादी आदि की सेवा करना, उनको पौष्टिक खीर आदि भोजन कराना, उन्हें उत्तम वस्त्र आदि देना उनकी अच्छे-अच्छे फल आदि पदार्थ खिलाना अर्थात् उनकी जी-जान से सेवा करने का नाम श्राद्ध व तर्पण है। यह केवल आश्विन के कृष्ण पक्ष के 15 दिनों में ही क्यों किया जाए ? जब तक वह हमारे बीच में है तब तक निरन्तर प्रतिदिन करना चाहिए, यह प्रत्येक पुत्र का कर्त्तव्य भी है।

मृतक श्राद्ध करना उचित नहीं है। क्योंकि वेदों के अनुसार दर्शन शास्त्रों, उपनिषदों तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों के अनुसार जो व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाता है वह अपने सचित शुभ कर्मों के अनुसार या तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है और यदि मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता तो पुन: जन्म लेकर इस संसार में शरीर धारण करके आ जाता है। प्रतिदिन अखबारों में सूचना छपती रहती हैं कि अमूक बच्चे ने अपने पिछले जन्म की सारी बातें बताई और पड़ताल करने पर वह सच पाई गई। अपने कर्मों के अनुसार पता नहीं हमसे बिछुड़ने वाला हमारा पितर कहा गया, किस योनी मे गया। जहा वह गया है वहां हम कोई चीज नही भेज सकते यह एक सच्चाई है। फिर मृत्यु को प्राप्त हुए पितरो के नाम से यह श्राद्ध क्यों करें ?

एक और प्रथा प्रचलित है कि इन श्राद्धों के दिनों मे कोई पवित्र कार्य नहीं किया जाता इन्हें अशुभ माना जाता है। इन दिनों विवाह, मुण्डन, गृह प्रवेश आदि संस्कार भी नहीं किए जाते क्योंकि इन दिनों को मृतक पितरो के साथ जोड़ दिया गया है जबकि परमात्मा की सृष्टि में कोई भी दिन अशुभ नहीं होता।

इसलिए हम सभी अपने जीवित माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी की सेवा का व्रत लें उनके भोजन, खान-पान, रहन-सहन का पूरा पूरा ध्यान रखें उनके प्रति परिवार के प्रत्येक व्यक्ति में श्रद्धा पैदा करें, बेटे-पोते सभी मिल कर उन्हें सम्मान दें, उनका आदर करें, उनकी सेवा करें। यही सच्चा श्राद्ध है। जब हम उनकी सेवा करेंगे तो वह हमे आशीर्वाद देंगे और उससे हमारा कल्याण होगा।

विद्वानों को भोजन कराना उनकी सेवा करना उनको वस्त्र आदि भेंट करना अच्छी बात है परन्तु इसके पीछे यह धारणा बनाना कि उनको खिलाया गया भोजन मृत पितरों को पहुंच जाएगा यह धारणा गलत है। जिस विद्वान को भोजन कराया गया उसकी ही तृप्ति होगी परन्तु किसी अन्य पितर की नहीं। ऐसे ही जो भोजन आदि जीवित पितरों को कराया जाता है उससे उनकी तृप्ति होती है अन्य किसी की नहीं। यह केवल आश्विन कृष्ण पक्ष में ही नहीं बल्कि सभी दिनों व महीनों में करना चाहिए। इसलिए इस अवैदिक प्रथा को छोड़ कर हमें वैदिक प्रथाओं को जारी करना चाहिए। **-धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष**

आर्य कालेज लुधियाना की प्रबन्ध समिति भंग

सभा प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा ने कार्यभार स्वयं सम्भाला

आर्य कालेज लुधियाना आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की एक प्रसिद्ध संस्था है परन्तु पिछले कुछ दिनों से इसमें कई प्रकार की अनियमितताएं चल रही थी। कुछ लोगों द्वारा निरन्तर इसे हानि पहुंचाई जा रही थी। लुधियाना से निरन्तर शिकायतें आ रही थीं कि इसकी प्रबन्ध समिति कालेज की गरिमा को नष्ट कर रही है। समाचार पत्रों में भी इन अनियमितताओं के बारे मे समाचार छप रहे थे। यह अनियमितताएं इतनी बढ़ गई थी जो कि एक उच्च संस्था के लिए असहनीय थीं। लाखों रुपए के सामान की खरीद-फरोक्त का प्रिंसिपल तक को कुछ पता नहीं था। कालेज के प्राध्यापको आदि के रिक्त स्थान मन-माने ढंग से भरे जा रहे थे। यहां तक कि सभा प्रधान व आर्य विद्या परिषद पंजाब के प्रधान व रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद् के आदेशो की अवहेलना की जाने लगी थी। आर्थिक अनियमितताएं तो बहुत ही बढ़ गई थीं। कालेज का हित चाहने वाले लुधियाना के लोगों की ओर से निरन्तर सभा प्रधान जी को शिकायतें आ रही थीं।

इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व आर्य विद्या परिषद पंजाब के प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा ने अपने अधिकारों का पूर्ण रूप से प्रयोग करते हुए आर्य कालेज लुधियाना की प्रबन्ध समिति भग करके उसे पूर्ण रूप से अपने अधिकार में ले लिया है। शीघ्र ही लुधियाना के जाने-माने आर्य नेताओ को प्रधान जी के सलाहकार के रूप में लिया जा रहा है ताकि इस कालेज का प्रबन्ध ठीक प्रकार से चलाया जा सके। व्यवस्था ठीक हो जाने पर नई प्रबन्ध समिति का गठन कर दिया जाएगा। इस समाचार को अखबार मे पढ़ कर बहुत से आर्य बन्धुओ ने सभा प्रधान जी को टेलीफोन करके इस कार्य की सराहना की। इस कार्यवाही को उचित ठहराते हुए सभा उप प्रधान श्री धर्मपाल जी सहगल एडवोकेट ने कहा कि आर्य कालेज लुधियाना मे अर्थ व्यवस्था मे जिन-जिन व्यक्तियो ने अनियमितताए की हैं उनकी पड़ताल करके उनके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए किसी भी दोषी को बख्शा न जाए।

सभा उप प्रधान प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी ने कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत्त आर्य कालेज लुधियाना आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की एक महान शिक्षा सस्था है जिसकी गरिमा को समाप्त नहीं होने दिया जा सकता। सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा ने यह कदम उठाकर सराहनीय कार्य किया है।

सभा कोषाध्यक्ष श्री प्रेम भारद्वाज ने कहा कि सभा प्रधान जी ने यह एक बधाई योग्य कार्य किया है। श्रीमती राजेश शर्मा सभा मन्त्री तथा अन्य कई अधिकारियों ने तथा लुधियाना के आर्य बन्धुओ ने तथा पंजाब के भिन्न-भिन्न शहरों के आर्य बन्धुओं ने इस कार्य की सराहना की और गत दिनों में कालेज में हुई अनियमितताओं की पड़ताल करके दोषियो के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने की मांग की।

सभा प्रधान जी ने आर्य कालेज के प्रिंसिपल श्री वी.के मेहता से अर्थव्यवस्था में हुई अनियमितताओं की रिपोर्ट मांगी है और उन्होने कहा कि आर्य कालेज की गरिमा को समाप्त नहीं होने दिया जाएगा। इस कालेज के उत्थान के लिए कार्य किया जाएगा । मैंने विवश होकर कालेज का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया है ताकि कालेज की बिगड़ती हुई स्थिति को सम्भाला जा सके और हो रही अनियमितताओं को रोका जा सके। व्यवस्था ठीक होते ही मैं इस कालेज का प्रबन्ध सुयोग्य आर्य बन्धुओ के हाथो मे सौंप दूंगा।

मैं समझता हूं कि सभा प्रधान जी ने लुधियाना की आर्य जनता की माग को स्वीकार करते हुए उचित समय पर यह उचित पग उठाया है। इससे कालेज की वर्तमान स्थिति में सुधार लाया जा सकेगा और कालेज की उन्नति के लिए कार्य किया जाएगा।

-देवेन्द्र नाथ शर्मा, रजिस्ट्रार, आर्य विद्या परिषद पंजाब

श्री बिहारी लाल जी मंगला नहीं रहे

आर्य समाज भठिण्डा के भू पू. मन्त्री व उप प्रधान श्री बिहारी लाल जी मंगला की एक दुर्घटना में 29-8-2001 को मृत्यु हो गई। उनका अन्तिम शोक दिवस 9-9-2001 को दोपहर एक बजे से दो बजे तक भाना मल ट्रस्ट भठिण्डा में मनाया जाएगा।

-प्रेम भाटिया, मन्त्री

स्वास्थ्य चर्चा

अपने स्वास्थ्य पर स्वयं विचारें तो सही

❑ ले० श्री राम पथिक भिक्षु आर्य समाज अजनाला अमृतसर।

आप जो कर सकते हैं वह तो कीजिये, बातें कम करे। बिना बातो के काम चलता ही नहीं और न जीवन यात्रा। स्वस्थ रहना जीव मात्र का जन्म सिद्ध अधिकार है। कहने को पशु पक्षी भोग योनि है तो मानव कर्म में पूर्णतया से स्वतत्र है परन्तु फल भोगने में तो परतन्त्र है, अतः मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ योनि है। विडम्बना है कि स्वतन्त्रता का हमने दुरुपयोग करके कुछ रोगो को स्वय बुलाया है परन्तु पशु पक्षी प्राकृतिक नियमों का पालन कर के स्वस्थ रहते हैं। जंगलो मे कहां हैं इन के दवाखाने। बस जो हमारे घरों में रहते हैं अथवा जिन्हे हम बांध कर रखते हैं इन्हे ही हम दवा देते हैं। आप का मन, जिह्वा, हस्त तथा रसोई घर पर काबू है तो आप का स्वास्थ्य आप के हाथ मे है। यदि आप संयम, परहेज, प्राकृतिक जीवन जीना सीख ले तो आप कभी रोगी बन ही नहीं सकते और यदि किसी कारण वश रोगी हो गये तो फिर विचारो कि ऐसा क्यो हुआ ?

यदि आप की सोच ठीक और कर्म ठीक है तो फिर रोगी कैसे ? जाऊं कि न जाऊ, खाऊं कि न खाऊं पहेली नहीं सच्चाई है, स्वस्थ रहना भी एक कला है और जीने की भी एक कला है। बस मन मे उस कला को अपनाने की देरी है। ठीक कहा है किसी मनीषी ने :-

जैसी करनी वैसी भरनी, कल आज नही तो कल।

जब आप के अन्तःकरण से आवाज आये कि जाना चाहिये तो जरूर जाना चाहिये, रुकना नहीं चाहिये। जैसे मल-मूत्र के त्याग की जब भी तनिक सी भी इच्छा हो तो सौ काम छोड़ कर जाये यह अच्छा रहेगा। लेकिन इन्सान सोचता है कि पहले यह-वह काम कर लें, इस उस से बात कर लें या उस की बात का उत्तर दे ले। यह तो अपना ही काम है बाद में ही कर लेगे। ऐसा सोचने से मल-मूत्र का वेग रोकने से रोग आ घेरते हैं।

याद रखें यदि आप ने तब देरी की तो भले ही तब महसूस न हो परन्तु पचास सौ बार करने के बाद एवं प्राकृतिक नियमों को भंग करने का दंड आप को भुगतना ही पड़ेगा और वह भी एक भयंकर रोग के रूप में। फिर एक रोग से कई रोग आ आते हैं। दवायें खाने से भी रोग जाता नहीं बढ़ता चला जाता है।

पहले के वैद्य एवं डाक्टरों आजकल के डाक्टर एवं वैद्यों मे बहुत बड़ा अन्तर है। साठ सत्तर वर्ष पूर्व के डाक्टर सेवाभाव से यह काम करते थे। इलाज व दवाईयां सस्ती होती थी लेकिन अब तो यह सब धन कमाने का साधन बन गया है। दवाईयां, विभिन्न टेस्ट व एक्सरे आदि कितने सस्ते या महंगे है यह आप स्वयं विचारें। साधारण से साधारण डाक्टर भी कुछ ही दिनों में लखपति बन जाता है। इस लिए दवाओं की अपेक्षा परहेज करे, सौ दवा एक परहेज :। पहले के डाक्टर परहेज पर बहुत ही बल देते थे लेकिन आज के डाक्टर मरीज को कहते हैं जो मर्जी खाओ पीयो बस उस के पश्चात कोई दवाई खा लो। खाऊं कि न खाऊं का अभिप्राय है, जब भी जो जहां भी खाने पीने का अवसर मिले तब एक दम खाने न लग जाए तब यह न भूलें कि आप सुखी रहेंगे ? गीता के छठे अध्याय के 27 व 21 श्लोक के भाव को सदा मन में बसाये रखें। तब क्या खाना पीना क्या और कितना खाना पीना है? तथा खाने का समय है या नहीं ? भूख है कि नहीं ? सामने खाने का जो पदार्थ है वह स्वास्थ्य वर्द्धक है या हानिकारक ? विस्तार से क्या ? बस तब अन्तःकरण की ध्वनि सुने जो सभी को आती है परन्तु हम लोभवश और कभी दबाव-वश जोर देने पर जैसे मां, बहिन, पत्नी, दोस्त आदि कहते हैं कि थोड़ा सा और खा लो यह तो बड़ी स्वादिष्ट वस्तु है, बहुत पौष्टिक है तो कभी इन्सान स्वाद वश अधिक खा लेता है। जी हां जब डकार आता है एवं तन की भूख मिटती है तो कभी न खाना चाहिये। उस समय चाहे कुछ भी हो जाये मन पर काबू कर लेना चाहिये।

मन जीते जग जीत, मन राजा है तो कर्म इन्द्रियां प्रजा हैं व मन ज्ञान इन्द्रियों का साथी है। गीता के 17/9 श्लोक का भाव है अधिक नमक, खट्टा, बासी, मिर्च मसाले वाले पदार्थ न खाएं। आयुर्वेद में अनेकों स्थानों पर ऐसे निर्देश हैं।

नशा चाहे कोई भी हो नहीं करना चाहिए क्योंकि वह स्वास्थ्य का नाश करता है। जरा ध्यान दें नशा शब्द के अन्त में लगी अ की मात्रा को मध्य में लगाने से नाश बनता है। अतः प्रत्येक नशा मानव का नाश करता है, यह स्वास्थ्य का नाशक है। सिगरेट, बीड़ी, शराब, चरस, भांग, अफीम आदि अनेकों नशे हैं। आप हैरान न हों चाय भी एक नशा है भले ही आप इस बात को माने या न मानें। क्योंकि चाय सर्वत्र सर्व लोकप्रिय हो रही है जबकि पहले आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व लस्सी, दूध, शरबत आदि से लोग अतिथि का सत्कार करते थे लेकिन अब चाय से सत्कार किया जाता है।

विचारें जरा ध्यान से

चाय जब इन्सान को समय पर न मिले तो बेचैनी महसूस होती है। कई लोग चाय न मिलने पर कहते हैं कि सिरदर्द हो रहा है, जिस्म टूटा जा रहा है इससे सिद्ध होता है कि चाय भी एक नशा है। विष समान है चाय। इसलिये इस का प्रयोग स्वस्थ्य घातक है। इसे वही छोड़ सकता है जिसने मन में सोचा हो कि इस नशे से छुटकारा पाना है। इसलिये संकल्प करें कि यदि आप ने स्वस्थ रहना है तो अपना डाक्टर स्वयं बनें तभी आप स्वस्थ रह सकते हैं। सत्य तो यही है कि आप को ही चाय पी रही है जबकि जो चाय पीता है वह यह नहीं मानता कि मुझे चाय पी रही है। वैसे ही सिगरेट, बीड़ी, भांग, शराब आदि नशे आप को पी रहे हैं न कि आप उन्हें पी रहे बस सोच है अपनी अपनी है।

खैनी, तम्बाकू, खुटका, गुटका, मस्ती, चुस्ती आदि पचासों नाम से पचास पैसे से पांच सात रुपए तक आम दुकान पर खुला बिकता है जब कि यह पहले नियम था लाईसैंस का। वैसे इससे युवा पीढ़ी खोखली हो रही है, दोषी कौन? समय रहते न सोचा गया तो क्या होगा ?

"दयानन्द पब्लिक स्कूल में कृष्ण जन्माष्टमी एवम् स्वतन्त्रता दिवस'

दयानन्द पब्लिक स्कूल लुधियाना मे 15 अगस्त 2001 को श्री कृष्ण जन्माष्टमी तथा स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष्य में बड़ा समारोह आयोजित किया गया। कार्यक्रम की शुरूआत यज्ञ से की गई। यज्ञ का संचालन श्रीमती सरला लूम्बा, श्री आशानन्द आर्य, एवं श्रीमती सी.के. अरोड़ा ने किया। यज्ञ में अध्यापक एवम् बच्चे यजमान बने। सभी बच्चों ने बड़ी लगन से हवन में भाग लिया। फिर 15 अगस्त के आजादी के पावन उत्सव पर श्री ओम प्रकाश गुप्ता जी ने झण्डा लहराया। स्कूल के बच्चों ने राष्ट्रगान प्रस्तुत किया। प्रधान जी के सम्मान के लिए स्कूल मैनेजर श्री आशानन्द आर्य, एवं प्रबन्ध समिति के सदस्यों ने श्री सतपाल नारंग, हर्ष आर्य, वैद्य वैणी प्रसाद, श्री नवदीप भारद्वाज, श्री अनिल सरीन, श्री सर्वजीत एडवोकेट, श्री उष्णाकराम, बृजमोहन अरोड़ा, श्री अनिल निझावन, श्री रामेश्वर दास, श्री मनोज नारंग, श्री कपिल नारंग ने पुष्प मालायें पहना कर श्री गुप्ता जी का सम्मान किया। इस शुभ अवसर पर स्कूल के बच्चों ने कार्यक्रम प्रस्तुत किया। जिसमें सबसे पहले दसवीं कक्षा की छात्राओं ने वन्देमातरम् गीत प्रस्तुत किया। छठी कक्षा की आरती और ऋचा ने देश के तिरंगे झण्डे की स्तुति में एक गीत गाया। पांचवी कक्षा की राजदीप, रजनी और लीना ने एक सुन्दर कविता बोली। सातवीं कक्षा के ऋषि ने देश भक्ति के गीत पर नृत्य प्रस्तुत किया। जिसे सभी ने बहुत सराहा। छठी कक्षा के आकाशदीप और राहुल ने देश भक्ति की कविता सुनाई। दसवीं कक्षा की शैली, मनप्रीत और पुष्पा ने देश भक्ति का एक गीत प्रस्तुत किया। सातवीं कक्षा की छात्राओं ने देश भक्ति के एक गीत पर बहुत ही सुन्दर नृत्य प्रस्तुत किया। जिसकी सभी ने बहुत प्रशंसा की। सातवीं कक्षा की किरण ने देश भक्ति का एक बहुत सुन्दर गीत प्रस्तुत किया। मंच का संचालन कुमारी ज्योति ने किया। अन्त में सभी बच्चों में लड्डू बांटे गए। जलपान के साथ कार्यवाही समाप्त हुई।

-सुनीता मलिक, प्रिंसिपल

आनन्द की अनुभूति कैसे प्राप्त हो

□ ले० श्री राजेन्द्र आर्य हांसी हिसार

परम पिता परमेश्वर ने समस्त मानव जाति एवं प्राणि मात्र के कल्याणार्थ चार महर्षियों के माध्यम से बिना किसी देश, वर्ण व जाति का भेद किये मानव जीवन के निर्माण और उसे आनन्दित व व्यवस्थित बनाये रखने के लिये वेदों का ज्ञान दिया । वेद कोई फूल रख कर माथा टेकने या मन्दिर-मन्दिर में या अलमारियों में रखने की पुस्तक नहीं है। वेदों को ज्ञान कोष कहा गया है, वेद में जीवन व्यवहार, नीतियों और चिर आनन्द को प्राप्त करने के अनूठे नुस्से बताये गये हैं। यजुर्वेद का एक बहुत सुन्दर सार गर्भित मन्त्र है बताता है-" ओ३म् क्या त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन (यजुर्वेद : 36-6) जैसा कि आप जानते हैं कि प्रत्येक मन्त्र का ऋषि और देवता होता है अर्थात् मन्त्र का भाव हमें क्या उपदेश देता है व किसी विशेष ज्ञान का बोध कराता है यह मन्त्र के देवता से पता चल जाता है, इस मन्त्र का देवता इन्द्र है अत: इसका अर्थ यह हुआ कि हे परमपिता परमेश्वर आप अपने इन्द्र रूप द्वारा इस विश्व में चहुं ओर से सुखों की, आनन्द की निरन्तर वर्षा करने वाले हो। आप जिस रक्षण आदि क्रिया से हमको सब ओर से आनन्दित करते हो और अमोघ शक्ति से सभी मानवों को कल्याण व सुख देते हो अर्थात् उनके प्रत्येक क्षण को सुखों से भर देते हो।"

इस मन्त्र का देवता इन्द्र है। इन्द्र का गुण है कि वह वर्षा करता है जो कि सर्व सुखों की जन्म दात्री है। भौतिक सूर्य को भी इन्द्र कहते हैं क्योंकि उसी के द्वारा वर्षा सम्भव हो सकती है। परन्तु यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि परमात्मा की वर्षा और सूर्य की वर्षा में बड़ा अन्तर है। सूर्य भौतिक है और यह वर्षा भी किसी भौतिक पदार्थ की ही कर सकता है। सूर्य सभी स्थानों से जल खींचकर ऐसे वातावरण में ले जाता है जहां जाकर वह जलकण हिमकण का रूप धारण करते हैं और बरसते समय वातावरण से पिघल कर पानी की बूंदों के रूप में बरसता है। दूसरी ओर परमात्मा के प्रसंग में यह जल और हिम भौतिक नहीं अभौतिक हैं। परमात्मा ही हम पर सुखों की सब ओर से वर्षा करता है। उदाहरण के रूप में पत्नी वही आनन्द की वर्षा कर सकती है जो अपने पति की आत्मा के भावों को अपने प्रेममय भावों से एक रस कर सके। शिष्य वही सही सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर सकेगा जब वह अपने गुरु आचार्य की आत्मा के भावों को श्रद्धा पूर्वक, गम्भीरता से मनन करता हुआ एक रस हो सकेगा। अत: आनन्द की वर्षा करने के लिये भक्त और भगवान् व सुपात्र प्राप्त कर्त्ता का संयोजन आवश्यक है। आनन्द प्रदान करने की शक्ति प्रभु के पास है और वह सुख व आनन्द केवल आत्मा की अनुभूति से ही प्राप्त किया जा सकता है। आत्मा में अनुभूति का अर्थ उस देवता (देने वाले) के प्रति सच्ची श्रद्धा, आस्था और विश्वास को अपने अन्दर पैदा करना है वही परमात्मा को समझ व ग्रहण कर सकता है। जो भक्त पूर्ण रूप से परमात्मा के अर्पण में होता है । परमात्मा की भक्ति में लीन होता है तभी भक्त के हृदय में आनन्द के कण प्रस्फुटित होने लगते हैं। एक और बात यहां बतानी जरूरी है कि मनुष्य के आत्म भाव जब तक इस सांसारिक सुख और आनन्द को ही मानते रहेंगे तब तक वे ईश्वरीय आनन्द के स्वरूप को नहीं समझ सकेंगे। पृथ्वी पर बने जलाषयों पर जब सूर्य की भीषण गर्मी पड़ती है तभी जलकण उपर उठकर वर्षा करते हैं इसी प्रकार इन्द्र के द्वारा दिये दण्ड को हम साकारात्मक आनन्द का स्रोत नहीं समझेंगे तब तक वह केवल दण्ड ही रहेगा। हम संसार मे मिलने वाले इन दु:खों के काम करने की प्रक्रिया को नहीं समझ पाते। यदि दु:ख न आये तो हम इस सांसारिकता से छूट नहीं सकते। हम देखते हैं कि यदि अपने स्नेही से हमारे प्रति दु:ख वा दुर्व्यवहार नहीं होता तो आत्मा उसके मोह से छूटेगी ही नहीं। इसलिये उनका दु:ख व दुर्व्यवहार बुद्धिमान व्यक्ति के लिये वरदान सिद्ध होता है। दूसरे शब्दो में दुर्व्यवहार रूपी ठोकर उसके प्रति मोह नहीं रहने देगी जब मोह भंग होगा तभी आनन्द सम्भव है। हम सभी यही सोचते हैं कि दु:ख आने पर हम प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो हमें संसार से उठा लो और जब सुखी होते हैं तब अधिक जीना चाहते हैं। स्पष्ट है भक्त लोग सुख की अपेक्षा दु:ख (त्याग-तपस्या) चाहते हैं ताकि जीवन में निखार आवे और बुराईयां जीवन से दूर रह जाएं। दु:ख आने से बन्धन की बेड़ियां टूटती हैं और वह तपस्या से शुद्ध कुन्दन (मानव) बन जाता है। उसके भाव सांसारिकता से उपर उठ जाते हैं और प्रभु मिलन की चाहना तीव्र होती जाती है। भगवान की ओर से होने वाली आनन्द की वर्षा का यही अनूठा तरीका है।

यहां एक गलत धारणा व सोच का जन्म होता है कि परमात्मा तो खुशामदी है जो उसकी स्तुति, व प्रार्थना करता है वही सुखी होगा हां इतनी बात अवश्य है कि जो परमात्मा की प्रार्थना करता है और परमात्मा के सानिध्य में रहता है उसमें आर्द्रता (स्नेह), नम्रता, सन्तोष, शालीनता, शीतलता अवश्य जाती है जो कि सुख व आनन्द का आधार है। ऐसे मनुष्य के भाव कोमल होते हैं उन्हें आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है। ऐसे भावों से जिसका हृदय भर जाता है वह सासारिकता के मोह बन्धन से छुटकारा पाकर परमात्मा के निकट सुगमता से पहुंच जाता है और परम आनन्द को प्राप्त करता है।

यमुना नगर में श्रावणी पर्व सम्पन्न

श्रीमद् दयानन्दोपदेशक महाविद्यालय वैदिक साधनाआश्रम शादीपुर, यमुनानगर में 05.08.2001 रविवार को श्रावणी पर्व बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। जिसमें नवीन ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ तथा उपनयन संस्कार श्री आचार्य वागीश्वर जी के ब्रह्मत्व में तथा आचार्य राज किशोर जी की देख-रेख में सम्पन्न कराया गया। ब्रह्मचारियों के अभिभावक तथा अन्य दर्शक बहुत बड़ी संख्या में पधारे हुए थे जो इस कार्यक्रम को देख अति प्रसन्न थे। इस अवसर पर आर्यजगत के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री कल्याण सिंह जी वेदी सहारनपुर, त्यागी तपस्वी सन्यासी श्री स्वामी सदानन्द जी फतेहपुर, श्री इन्द्रजीत देव जी यमुनानगर श्री शेर सिंह जी भजनोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा रोहतक, श्री अमर नाथ शर्मा संगीताचार्य सहारनपुर, श्री मनोहर लाल जी साहनी महामंत्री आर्य समाज माडल टाऊन यमुनानगर तथा विद्याल्य के ब्रह्मचारीगण द्वारा भजन एवं भाषणो को सुनकर लोगों ने खूब प्रशंसा की।

अंत में कुश्ती, कब्ड्डी आदि खेलों में मिलने वाली बडी, छोटी शील्डें श्री जयपाल सिंह आर्य प्रधान तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा ब्रह्मचारियों को वितरित की गई। इसके पश्चात् सभी ने ऋषि लगर में भोजन किया।

-गेंदा राम, मन्त्री

केन्द्रीय आर्य सभा-यमुनानगर की गतिविधियां

दिनांक 19.8.2001 दिन रविवार को पारिवारिक सत्संग का आयोजन श्री बाल कृष्ण मक्कड़, कोषाध्यक्ष केन्द्रीय आर्य सभा यमुनानगर के निवास स्थान 496- R माडल टाऊन यमुनानगर मे किया गया। मंच का संचालन श्री इन्द्रजीत देव द्वारा किया गया। उपयुक्त अवसर पर श्री छाजू राम शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक 'आत्म चिन्तन का वैज्ञानिक आधार' का विमोचन श्री मदन लाल वासुदेव प्रधान आर्य समाज माडल टाऊन यमुनानगर द्वारा किया गया। इस अवसर पर यमुनानगर जिला के 200 से अधिक सदस्यों, स्त्री-पुरुषों ने भाग लिया।

2-श्री मनोहर लाल दीवान अंतरंग सदस्य आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा दिल्ली का निधन दिनांक 17.8.2001 को हुआ। उनका अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से दिनांक 18.8.2001 को आचार्य राज किशोर जी की देख रेख में हुआ। शान्ति यज्ञ एवं श्रद्धांजलि समारोह का आयोजन दिनांक 20.8.2001 को दोपहर 2 से 4 बजे तक आर्य समाज माडल टाऊन यमुनानगर में हुआ जिसमें क्षेत्र के विद्वानों ने श्रद्धा सुमन अर्पित किए। दिवंगत व्यक्ति एक कर्मठ, कर्तव्य निष्ठ एवं धार्मिक समाज सेवी थे।

-केशव दास आर्य, प्रधान

हिसार कृषि विश्वविद्यालय में हिन्दी में काम होगा—कुल सचिव

स्वामी इन्द्रवेश अध्यक्ष हरियाणा राष्ट्रभाषा समिति दयानन्दमठ रोहतक

रोहतक—चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार के कुल सचिव महोदय ने कहा कि विश्वविद्यालय के प्रशासनिक कामकाज मे राजभाषा हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करने के हरसंभव उपाय किए जाएंगे। उन्होंने यह बात 24 अगस्त को हरियाणा राष्ट्रभाषा समिति, दयानन्दमठ रोहतक के एक शिष्टमंडल से साथ भेट के दौरान कही। समिति के शिष्टमडल ने कुलसचिव तथा अन्य वरिष्ठ अधिकारियो को स्पष्ट किया कि हरियाणा की राजभाषा 26 जनवरी 1969 से हिन्दी है तथा मुख्यमंत्री और मुख्यसचिव के भी हिन्दी मे काम करने के आदेश हैं। अत: विश्वविद्यालय के प्रशासन मे हिन्दी मे काम न होना अवैधानिक तथा अनुचित है। समिति ने यह भी स्पष्ट किया कि कृषि विज्ञान, पशुचिकित्सा-विज्ञान, गृहविज्ञान तथा बागबानी जैसे पाठ्यक्रमों की शिक्षा मे हिन्दी का विकल्प होना आवश्यक है। ऐसा ना होने से हिन्दी भाषी छात्रो के साथ भेदभाव हो रहा है। इस बारे मे राष्ट्रपति के आदेश भी हैं तथा पाठ्य पुस्तको मे भी उपलब्ध हैं। बातचीत के अन्तर कुलसचिव महोदय ने निम्नलिखित बिन्दुओं पर तत्काल कार्रवाई करने का आश्वासन शिष्टमडल को दिया :-

1. विश्वविद्यालय के समस्त बोर्ड तथा अधिकारियो के नामपट्ट द्विभाषी अर्थात् हिन्दी-अंग्रेजी दोनों मे बनवाए जाएंगे। हिन्दी को ऊपर बडे अक्षरों मे लिखा जाएगा।

2 अंग्रेजी के टाइपराईटर भविष्य मे नहीं खरीदे जाएंगे।

3. अंग्रेजी के वर्तमान टाईपिस्टों तथा आशुलिपिकों को हिंदी में काम करें का प्रशिक्षण दिया जाएगा। अंग्रेज़ी की टाइप मशीनों को हिन्दी में बदलवाया जाएगा।

4 अधिकारियों तथा कर्मचारियों को फाइलो पर हिन्दी में टिप्पणीयां तथा आदेश लिखने को प्रोत्साहित किया जाएगा।

5 छात्रों से सम्बन्ध रखने वाले सूचना पत्र, प्रोस्पैक्टस, आवेदन फार्म, अंकतालिका, प्रमाण-पत्र, परीक्षा समयसारिणी आदि हिंदी मे प्रकाशित किए जाएंगे।

6 पाठ्यक्रमो में हिन्दी की वैकल्पिक सुविधा के लिए एक समिति का गठन किया जाएगा। इस समिति मे हरियाणा राष्ट्रभाषा समिति की तरफ से डा. ओम प्रभात अग्रवाल को सम्मिलित किया जाएगा।

7. उपर्युक्त निर्णयों की घोषणा तथा शुभारंभ के लिए 14 सितम्बर 'हिन्दी दिवस' के अवसर पर विश्वविद्यालय मे एक समारोह आयोजित किया जाएगा।

कुलसचिव महोदय के साथ यह बातचीत अत्यन्त सौहार्दपूर्ण वातावरण में हुई। अधिकारियों ने शिष्टमंडल को पूरा सम्मान दिया। यह समिति सभी का आभार प्रकट करती है।

शिष्टमंडल में समिति के उपाध्यक्ष श्री महावीर शास्त्री धीर के अतिरिक्त संयोजक श्री श्याम लाल, प्रो. ओम प्रभात अग्रवाल, सहसंयोजक डा जगदेव सिंह, विद्यालंकार, छात्र प्रतिनिधि श्री मनोज, दूहअ हिसार के प्रतिनिधि श्री शिवनाथ राय तथा श्री रघुनाथ प्रियदर्शी सम्मिलित थे।

आर्य समाज सैक्टर 22-ए, चण्डीगढ़ में वेद प्रचार

चण्डीगढ़—आर्य समाज सैक्टर 22-ए, चण्डीगढ़ में हरिद्वार के मूर्धन्य विद्वान डी. जयदेव दर्शनाचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने श्रावणी उपाकर्म (वेद सप्ताह) के उपलक्ष्य में स्वाध्याय का महत्व और अनिवार्यता विषय पर बोलते हुए कहा कि जब तक हम वेदों का स्वाध्याय नहीं करेंगे तब तक हम आर्य समाज एवं संस्कृति को नहीं बचा सकते। उन्होंने हमारे समाज की माताओ की ओर विशेष रूप से संकेत करते हुए कहा कि आर्य समाज द्वारा दिए हुए पंचमहायज्ञों को अपने चूल्हे में जीवित रखें चाहे हमारी माताएं अनपढ़ ही क्यों न हों। जब तक हमारी माताएं आर्य समाज को नहीं अपनाती तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते एवं हमारी आर्य संस्कारों की परम्पराएं जीवित नहीं रह सकती।

उन्होंने आगे कहा कि जब तक हम स्वाध्याय नहीं करेंगे तब तक हम आर्य समाज को बचा नहीं सकते। उन्होंने आज की युवा पीढ़ी की ओर इशारा करते हुए कहा कि जब हम युवा पीढ़ी को देखते हैं तो पता चलता है कि हमारी युवा पीढ़ी आर्य समाज के संस्कारों के प्रति विमुख होती जा रही है। जब तक इस कार्य में युवा पीढ़ी आगे नहीं आएगी तब तक हम आर्य समाज को आगे लाने में असमर्थ हैं। उन्होंने कहा कि जब गुरुकुल से कोई स्नातक निकलता है तो गुरुकुल के आचार्य का अपने स्नातक से अन्तिम दिन शिक्षा के रूप मे यही उपदेश होता है कि स्वाध्याय से कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। जो कुछ भी अपने आचार्य, गुरु से ज्ञान के कण प्राप्त किए हैं उन्हें औरों में हमेशा बांटते रहना चाहिए। जब तक वह ऐसा (स्नातक) नहीं करेगा तब तक उसके लिए प्राप्त की गई शिक्षा निरर्थक है।

उन्होंने कहा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह बताया था कि राजा को विद्वान होना चाहिए यदि राजा विद्वान नहीं होगा तो राज्य के अन्दर पाखंड पैदा हो जाएगा। उन्होंने कहा कि बच्चे को स्कूल में भेजने से पहले व्यवहारभानु अवश्य पढ़ाई जाए। इसका तात्पर्य यह है कि हमें अपने से बड़ों गुरु व आचार्य से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए जब तक बच्चों को ऐसा पता नहीं होगा तब तक उसकी विद्या निरर्थक है। उन्होंने कहा कि कुअध्ययन मत करो, अच्छे ग्रन्थों का स्वाध्याय करो।

इस अवसर पर इतिहास केसरी पं. निरंजन देव ने स्वामी दयानन्द के वंश के बारे विस्तार से बताया और कहा कि पंजाब के लाहौर शहर में पहली आर्य समाज की स्थापना 24 जून सन् 1877 मे डा रहिम खान की कोठी पर हुई थी जिसके प्रथम प्रधान लाला मूल राज जी चुने गए थे। आर्य समाज के प्रधान श्री राम रत्न महाजन ने निरंजन देव जी को जिनकी आयु 81 वर्ष है जो आर्य समाज के प्रचार प्रसार का कार्य जीवन भर करते रहे हैं उनको एक शाल और 11000 रुपये की नगद पुरस्कार राशि से सम्मानित किया गया।

इसी अवसर पर महर्षि दयानन्द आदर्श विद्यालय के बच्चों ने अपने सुन्दर भजन 'वेदों का डंका बजा दिया ऋषि दयानन्द ने' से श्रोताओं को मन्त्रमग्ध कर दिया तथा श्री रवेल सिंह आर्य जी ने भी अपने भजनों से सारे पंजाब से आए लोगों को आनन्दित किया। अन्त में आर्य समाज के प्रधान श्री रामरत्न जी महाजन ने सभी का धन्यवाद किया अन्त में ऋषि लंगर भी लगाया गया। —साधु राम शर्मा मन्त्री

बरनाला में श्रावणी पर्व व श्री कृष्ण जन्मोत्सव

आर्य समाज बरनाला की ओर से श्रावणी पर्व (रक्षा बन्धन) आर्य समाज मन्दिर में हर्षोल्लास से मनाया गया। आर्य समाज के अध्यक्ष श्री अमृत लाल गुप्ता की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए इस कार्यक्रम में नगर की आर्य शिक्षण संस्थाओं की प्रबन्ध समितियों के अधिकारियों, सदस्यों, स्टाफ व विद्यार्थियों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। श्री कृष्ण जन्मोत्सव के उपलक्ष में आर्य समाज की ओर से गांधी आर्य सीनियर सैकेण्डरी स्कूल में समारोह आयोजित किया गया। दोनों कार्यक्रमों से पूर्व पुरोहित श्री संजय कुमार शास्त्री ने यज्ञ कराया। दोनों पर्वों के सम्बन्ध में शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों ने गीत संगीत, भजन, भाषण व अन्य आकर्षक आईटमें प्रस्तुत की। विद्वानों ने प्रवचन दिए व पर्वों के महत्व पर प्रेरणाप्रद बातें बताई। इस अवसर पर सर्वश्री भारत मोदी, जीवन मोदी, विजय गोयल, पवन सिंगला, केवल कृष्ण, बसन्त शोरी, देवराज मित्तल, प्रदीप कपिल, संजीव शोरी, राजिन्द्र गर्ग आदि नेताओं ने विशेष भूमिका अदा की। आर्य समाज के उप प्रधान श्री सतीश सिंधवानी ने श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर वर्तमान समाज की दुरावस्था से सम्बन्धित एक गीत प्रस्तुत कर उपस्थित लोगों का मन जीत लिया। उल्लेखनीय है कि आर्य समाज बरनाला वैदिक व राष्ट्रीय पर्वों के आयोजन में सदैव अग्रणी रहता है।

वैदिक दर्शन

❑ ले. आचार्य भद्रसेन जी बी.2 42/7 बी शालीमार नगर होशियारपुर

दर्शनाचार्य का जब नया सत्र सभारम्भ हुआ, तो वेदान्त दर्शन के पाठ्यक्रम में प्राध्यापक ब्रह्मानन्द जी ने दर्शन के अर्थ, परिभाषा के प्रसंग मे वेदान्त शब्द के अभिप्राय और सम्बन्ध को समझाते हुए ग्रन्थ का एक सामान्य परिचय दिया, कि वेदान्त शब्द वेद+अन्त दोनो के मेल से बनता है। वेद शब्द जहां ऋग्वेद आदि के लिए प्रयुक्त होता है, वैसे वेद शब्द ज्ञान के अर्थ में है, वहां अन्त शब्द सिद्धान्त, तत्व के अर्थ मे है। तभी तो महर्षि दयानन्द ने 'वेदान्तोपंगत फलम्' मनुस्मृति 2, 60 का अर्थ करते हुए लिखा है कि---'वही सब वेदान्त अर्थात् वेदो के सिद्धान्त रूप फल- [स्थूलाक्षर सस्करण स 3 पृष्ठ- 50]' अर्थात् वेद का जो मुख्य सिद्धान्त=प्रतिपाद्य विषय-ब्रह्म का जिसमे विचार है, यह वेदान्त दर्शन है। 'सर्वे वेदा यत्पद-मामनन्ति कठउप 2, 15 के अनुसार वेद का मुख्य प्रतिपाद्य ब्रह्म ही है। महर्षि दयानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश 3, 65 मे 'यस्तन्न वेद' के अर्थ में कहा है-'जिसमें सब वेदों का तात्पर्य है।' ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के वेदविषय विचार विषय: मे भी यही सिद्ध किया है, कि 'अत: परमोऽर्थो वेदानां ब्रह्मैवास्ति' इसके पश्चात् ब्रह्मदेव ने कहा-गुरु जी ! आपने बताया है, कि वेदान्त दर्शन मे ब्रह्म जिज्ञासा का समाधान है। यह ब्रह्म शब्द साहित्य में अन्यत्र भी आया है। अत: ग्रन्थ को शुभारम्भ से पूर्व उस-उस विषय के ग्रन्थों मे आए ब्रह्म के विवेचन से परिचित करा दें, तो हमारे लिए विषय बोध सरल हो जाएगा ?

प्राध्यापक-ब्रह्मदेव ! तेरी यह जिज्ञासा बहुत ही उपर्युक्त है। अत: आईए ! पहले इसी पर ही विचार करे। जैसे कि तुम सब जानते हो कि संस्कृत भाषा की दृष्टि से मूल शब्द है-ब्रह्मन्, जो कि बृहधातु से मनिन् प्रत्यय के होने पर सिद्ध होता है। अत: ब्रह्म शब्द का तात्पर्य है-बड़ा ब्रह्म प्रकाश-गुरु जी। कल के पाठ के पश्चात् मैं पुस्तकालय गया था, वहां मैंने एक नई पुस्तक बड़ी सुन्दर जिल्द वाली देखी। जब मैंने उसको खोलकर देखा, तो वह कोष था और उसमें ब्रह्म, ब्रह्मण शब्द के सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा, जगत के मूल तत्व, हिरण्यगर्भ, वेद, सत्य, प्रणव, योग, तप, तत्व, विप्र, ऋत्विक विशेष (ब्रह्मा) आदि अनेक अर्थ लिखे हुए थे ।

प्रा-इन सभी अर्थों पर जब हम विचार करते हैं, तो एक बात स्पष्ट होती है कि जो जिस प्रकरण, क्षेत्र, विषय में बड़ा है। उसको वहां तदनुरूप ब्रह्म कहा गया है। जैसे कि भारतीय साहित्य के वैदिक वाङ्मय में विशेष-विशेष यज्ञों को कराने वाले चार व्यक्ति (ऋत्विक) होते हैं-होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा। इन सब का मुखिया ब्रह्मा होता है, अन्य उसी की अनुमति से अपना-अपना कार्य करते हैं। ऋग्वेद के 10, 71, 11 में भी इसका ऐसा वर्णन है, और निरुक्त 1,3 मे इस मन्त्र की व्याख्या की है। यज्ञ प्रकरण में इस बड़प्पन के कारण उसको उस प्रकरण में ब्रह्मा (=बड़ा) बड़ा कहा गया है। ब्रह्मा के स्वरूप की चर्चा में मन के साथ उस का सम्बन्ध एवं तुलना दर्शाई गई है। जैसे कि 'मनसा एव ब्रह्मा यज्ञस्य अन्यतरं पक्ष संस्करोति गोपथ ब्राह्मण 3,2' शरीर की व्यवस्था मे आंख, कान आदि इन्द्रियों का जैसे मन नियन्त्रक होता है तभी तो मनुस्मृति 2, 92 मे कहा है । एकादशं मनोज्ञेयं स्वगुणेनो भयात्मकम्। यस्मिनिञ्जते जितावेतौ भवत: पञ्चकौ गणौपाच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियो के साथ ग्यारहवां मन है और यह अपने गुण के कारण ज्ञान तथा कर्म दोनों प्रकार का है । इस मनको जीते जाने पर ज्ञान-कर्म इन्द्रियों का समूह जीता जाता है। मन जैसी स्थिति ही यज्ञ में अन्य ऋत्विको की अपेक्षा ब्रह्मा की होती है। इसलिए इस विश्लेषण में मूलसूत्र है।-बड़ापन संसार मे जिस-जिस आधार पर जहां कहीं जो कोई बड़ा है, वह वहां ब्रह्म कहलाता है। अत: अकेले या समस्तपद के रूप में जहां जहां ब्रह्म शब्द प्रयुक्त हुआ है, वहां सर्वत्र यही भावना है।

1. ब्रह्मस्वरूप-गुरु जी, आपने इस विश्लेषण में ब्रह्म का जो मोटा सा अर्थ-बड़ा बताया है। उससे मुझे हिन्दी भाषा का एक पद्यांश स्मरण आ रहा है, यदि अनुमति हो तो मैं उस अंश को अभिव्यक्त कर दूं ?

प्रा-मैं भी यही चाहता हूं कि यह जिज्ञासा की भावना प्रस्फुटित हो, क्योंकि जिज्ञासा की स्थिति मे विचार चर्चा का विशेष आनन्द आता है। अत: वह पद्यांश अवश्य सुनाओ।

2. सब से बड़ा रुपय्या

ब्रह्मस्वरूप-सब से बड़ा रुपय्या न कोई भैय्या, न कोई मैय्या।

प्रा-हां, इसी सम्बन्ध में श्री गिरधर कविराय ने भी कहा है-

साईं सब संसार में पैसे का व्यवहार,

जब तक पैसा पास में तब तक ताको यार।

तब तक ताको यार-यार संग ही संग डोले ।

पैसा रहा न पास यार मुख से नही बोले॥

कह गिरिधर कविराय ! हा, कवि के समय यह बात तब कितनी स्पष्ट थी, यह तो वही जाने, पर आज तो यह बात शत प्रतिशत चरितार्थ हो रही है। आज तो उच्च पदों पर आसीन और करोड़ों मे खेलने वालों के नियानवें के जो घटनाचक्र सामने आ रहे हैं। उन्होने भर्तृहरि के भावों को पूर्णत: चरितार्थ कर दिया है-

निश्चय ही जग में गुण सारे कंचन मे करते हैं वास-**गोपाल**

'सर्वेगुणा: काञ्चनमाश्रयन्ति-नीतिशतक-41' बिना एक जिसके गुण सारे हैं, तृण के टुकडे सम व्यर्थ-**गोपाल**

'येनैकेन विना गुणास्तृणलव प्राया: समस्ता इमे।'

-नीतिशतक-39

ऐसी स्थिति मे ब्रह्मस्वरूप ! तेरी पंक्ति यथार्थ ही है, कि सब से बड़ा रुपय्या, क्योकि आज की दुनिया और जीवन मे धन ही परम ब्रह्म प्रतिभासित होने लगा है। तभी तो गोपाल प्रभाकर ने लिखा है-

अर्थ की धुरी पर, घूम रही है दुनिया

अर्थ के आकर्ष से बन्धे हुए सारे लोग

द्वार दरीचों से ताकते हैं दूसरों का अर्थ

पैसा जीवन है, संस्कृति है
आरम्भ है, इति है।
सुरक्षा है, गति है
सब कुछ है पास
इस पैसे के खम्बे पर ही खडे हैं
रिश्तो के मेहराब।

ब्रह्मेन्द्र-गुरु जी । एक दिन मैं रुपये की आत्मकथा पढ रहा था, उसमें भी इस का अच्छा विवेचन था। उसको भी इस प्रसंग में प्रस्तुत कर दिया जाए, तो प्रकरण की स्पष्टता के लिए उपयुक्त रहेगा?

प्रा -एक विचारक ने उस आत्मकथा को इस प्रकार लिखा है-

रुपए की आत्मकथा

हां, हा ! मैं रुपया हू, दुनिया मे सब से बडा, मुझ से बड़ा कोई नही। मेरी चमक-दमक के आगे सभी लोगो की आंखे चुंधिया जाती हैं, राजा क्या, रंक क्या, सभी मुझे प्यार करते हैं। मुझे पा कर कौन व्यक्ति खुशी से फूला नही समाता और बिछुड़ने पर कौन सर्द आहे नहीं भरता। मेरी चमक-दमक के कारण पिता-पुत्र का, पुत्र-पिता का, भाई-भाई का, शत्रु बन जाता है। मैं दुनिया में हर एक वस्तु को खरीदने की शक्ति रखता हू। एक भिखारी से लेकर भगवान के चरणो तक घूमता रहता हू। बाहर से इतनी शान होते हुए भी मेरी आन्तरिक कथा इतनी करुणाजनक है, कि उसे याद करके आज भी मेरी आंखे छल-छला आती हैं ।

सदियां बीत गईं, मैं लगातार पृथ्वी की गोद मे पडा रहा। एक दिन भयानक कोलाहल से मेरी नींद खुल गई । ज्यों ही मैंने दृष्टि घुमाई अनेक मजदूर कुदालिया लिए खडे थे । थोडी देर के पश्चात् दनादन मेरे ऊपर चोटे पडने लगी। कठिन परिश्रम के पश्चात् मजदूरो ने मुझे धरती मां की गोद से निकाल कर अलग कर दिया। मेरे ऊपर कई प्रकार की तहेजमी हुई थी। वहां से ट्रको मे भर कर शुद्ध करने के लिए ले जाया गया। रास्ते भर की यात्रा हमे बहुत आनन्द दायक लगी। यह आनन्द शीघ्र ही गाय्ब हो गया, जबकि हमे भट्ठियों मे डाला गया। इसके पश्चात् अनेक तेजाबो से हमारी शुद्धि की गई। अब मेरा रूप काफी निखर आया था। मुझे अपने ऊपर गर्व होने लगा। लोग अब प्यार से मुझे शुद्ध चादी कहने लगे।

मैं समझने लगा था, कि मेरे दुखो का अन्त हो गया। लेकिन यह मेरी भूल थी। अभी परीक्षा शेष थी। मुझे अन्य धातुओ सहित पिघला कर सांचों में ढाला गया।

(क्रमश:)

तलवाड़ा में स्वामी वेदानन्द जी का स्मृति दिवस मनाया गया

आर्य समाज मन्दिर तलवाड़ा में 18 और 19 अगस्त 2001 को पूज्य स्वामी वेदानन्द जी का स्मृति दिवस श्रद्धा से मनाया गया। स्वामी जी महाराज 17 अगस्त 1987 को श्री कृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर तलवाड़ा पहुंचे थे। रात्रि के 11.30 बजे तक उन्होंने प्रवचन दिया और आर्यों को कर्म करते रहने की प्रेरणा दी। ऐसे कर्म जो राष्ट्र, जाति, धर्म, और समाज को समर्पित हों। यह कोई नहीं जानता था कि वह युवा सन्यासी, दयानन्द का सैनिक, युवको का हृदय सम्राट सुबह को हमारे मध्य नहीं रहेगा। 18 अगस्त को स्वामी जी सुबह 3.30 बजे उठे । शौच वगैरा गये और हाल में जहा वह ठहरे थे चले गये। सुबह 5 बजे देखा तो वेद ज्ञान के ज्योति पुञ्ज स्वामी वेदानन्द जी ईश्वर को प्यारे हो चुके थे।

आर्य समाज तलवाड़ा जहां पर स्वामी जी ने जीवन के कुछ पल ही गुजारे, उस वेद वेदी पर ईश्वर की पवित्रवाणी वेदवाणी का ज्ञान देते हुए अपने प्राण दे दिये, उनको अपनी श्रद्धाजलि भेंट करने के लिये प्रति वर्ष आर्य समाज तलवाड़ा उनका स्मृति दिवस मनाता है। 18 अगस्त 1987 का दिन आर्य समाज के लिए ऐतिहासिक और प्रेरणा का दिन था।

18 अगस्त 2001 का पहले यज्ञ किया गया, उसके उपरान्त भजन हुए। प परमानन्द जी, डा वैद्यनाथ जी आर्य, श्री अमर नाथ जी आर्य वरिष्ठ उप प्रधान जी ने स्वामी जी को श्रद्धांजलि भेंट की। उनके बारे मे अपनी जिन्दगी की कुछ यादें ताजा की और श्रद्धा के फूल शब्दों के रूप मे अर्पण किये।

19 अगस्त 2001 को प्रात: आर्य समाज तलवाड़ा के आर्य बन्धु तथा स्त्री आर्य समाज तलवाड़ा की बहने महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल तलवाड़ा के छात्र और स्टाफ सभी ने मिल कर यज्ञ किया। बच्चों के लिये अलग से हवन कुण्ड लगाया गया था। सभी ने बहुत श्रद्धा से यज्ञ में आहुतियां डाली। यज्ञ के उपरान्त स्कूल की तरफ से सभी को प्रसाद व जलपान कराया गया। उसके उपरान्त स्कूल के छात्रों ने बहुत सुन्दर ईश्वर भक्ति और देश-प्रेम के भजन सुनाये। सभी बच्चों को आर्य समाज की तरफ से सम्मानित किया गया। प. परमानन्द जी और स्त्री आर्य समाज के सदस्यों ने भी भजन गाये। इसके उपरान्त श्री अमर नाथ जी आर्य और श्री मनोहर लाल जी आर्य ने श्रद्धांजलि भेंट की। स्वामी जी के बारे में कहा कि वह अध्यात्मवाद के महान् पण्डित थे। दर्शनों के ज्ञाता थे। उनका सारा जीवन वेद-ज्ञान को घर-घर पहुंचाने में समर्पित रहा। युवा अवस्था में ही सन्यास आश्रम को धारणा कर युवा संन्यासी बने। आर्य समाज के मंचों की वह शान बने थे। चलती फिरती आर्य समाज थे वह, अपने आप चाहे न भी कोई बुलाये आर्य समाजों में वेद प्रचार करने आ जाते थे। सबसे बड़ी आर्य समाज को उनकी देन युवा शक्ति थी, उन्होंने आर्य समाज में नया जोश, नया खून, नई शक्ति भरी ताकि आर्य समाज नौजवानों के बगैर सूना न हो जाए। आर्य युवक परिषद को पंजाब मे खड़ा किया और इसमे कार्य किया। साल में दो-दो, तीन-तीन कैम्प वह रोपड अपने आश्रम में लगाते थे। और युवकों को इकट्ठा कर वैदिक धर्म के दीवाने बनाते थे। उनके संसार से चले जाने से यह सारे कार्य रुके हुये दिखाई देते हैं। उनके लिये सच्ची श्रद्धांजलि यही है कि हम उनके बताये मार्ग पर चले और जो कार्य वह अधूरे छोड़ गये हैं उन्हें पूरा करें। —मन्त्री आर्य समाज

आर्य समाज मनीमाजरा का उत्सव

आर्य समाज दर्शनी बाग मनी माजरा (चण्डीगढ़ पिन-कोड़ 160101) का वार्षिक उत्सव 30 सितम्बर व प्रथम अक्तूबर 2001 को मनाया जा रहा है जिसमें कई उच्चकोटि के विद्वान् पधार रहे हैं। आर्य बन्धु पधार कर धर्म लाभ उठावें।

इस आर्य समाज के लिए पुरानी रोपड़ रोड़ पर दर्शनी बाग मनी माजरा में एक प्लाट क्रय करके आर्य समाज मन्दिर की स्थापना की गई है। इस आर्य समाज में साप्ताहिक सत्संग प्रात: 8.30 से 10.30 बजे तक प्रति रविवार को होता है और पुरोहित श्री शैलेश कुमार शास्त्री जी का उपदेश होता है। यह आर्य समाज बहुत सक्रिय है। परन्तु इसमें आपका सहयोग आवश्यक है। इस उत्सव में पधार कर हमें अपना सहयोग प्रदान करें।—कृष्ण चन्द्र आर्य, प्रधान

गोनियाना मण्डी में पारिवारिक सत्संगों द्वारा वेद प्रचार

गत मास में आर्य समाज गोनियाना मण्डी में रविवार को साप्ताहिक सत्संग के साथ-साथ पारिवारिक सत्संगों का कार्यक्रम जारी रहा। आर्य समाज गोनियाना मण्डी के तत्वावधान में निरन्तर पारिवारिक सत्संग हो रहे हैं।

31 जुलाई को डाक्टर राजेन्द्र भूषण मैडिकल अफसर सिविल अस्पताल गोनियाना के निवास पर ब्र. सूर्यदेव वैदिक मिशनरी द्वारा यज्ञ हवन कराया गया तथा वेद प्रचार किया।

फिर 13 अगस्त को सुरेश कुमार आर्य के घर पर ब्र. सूर्यदेव जी द्वारा यज्ञ हवन तथा वेद प्रचार किया गया। उपस्थिति बहुत अच्छी होने लगी है। 16 अगस्त को सर्वजीत सिंह ने अपने घर पर यज्ञ हवन श्री तरसेम कुमार आर्य द्वारा सम्पन्न करवाया। इन पारिवारिक सत्संग में गैर आर्य समाजी लोग भी श्रद्धा से शामिल होते हैं।

—चरन्जी लाल-प्रधान आर्य समाज

आर्य समाज जालन्धर छावनी में वेद सप्ताह

आर्य समाज जालन्धर छावनी में वेद सप्ताह 17-9-2001 से 23.9.2001 तक मनाया जा रहा है। श्री पं. सुन्दर लाल जी शास्त्री के उपदेश व श्री जगत वर्मा जी भजनोपदेशक के भजन होंगे। कार्यक्रम प्रतिदिन प्रात: 6 से 7.30 बजे तक तथा रात्रि 8.30 बजे से 10 बजे तक चलेगा। रविवार 23.9.2001 को प्रात: यज्ञ की पूर्णाहुति होगी कार्यक्रम प्रात: 10.30 बजे तक चलेगा। सभी बन्धु तथा बहनें यज्ञ-कथा में सम्मलित होकर धर्म लाभ उठावें।—जनक राज महाजन-प्रधान

अमृतसर में चरित्र निर्माण शिविर

महर्षि दयानन्द धाम में आर्य युवक परिषद अमृतसर की ओर से चरित्र-निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। शिविर का शुभारम्भ बृहद् यज्ञ के साथ हुआ। श्री अशोक जी बजाज, श्री नीरज पसाहन, श्री संजय मक्कड, कुमारी महक एवं पूनम ने यजमान पद को सुशोभित किया। यज्ञशाला को ओ३म् के झण्डो से सजाया गया था और सामूहिक वेद मन्त्रों के गायन से वातावरण मनमोहन बन गया। यजमानों को यज्ञ के पश्चात् साहित्य देकर सम्मानित किया गया। सबसे कम उम्र की बेटी ने गायत्री मन्त्र का अर्थ सहित गायन किया। महक, श्रीमती किरण अरोडा तथा श्रीमती जगदीश आर्य (आर्य महिला परिषद की प्रधान) ने सुन्दर भजनों का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। चरित्र-निर्माण कार्यक्रम मे प्रो. कुलदीप जी ने कहा कि चरित्र के निर्माण का आधार सुविचार है। सुविचारों की प्राप्ति के लिए आर्ष ग्रन्थो का अध्ययन करना चाहिए तथा प्रातःकाल सूर्य निकलने से पूर्व उठना चाहिए। उन्होने कहा कि वो समाज सुदृढ़ होगा वो राष्ट्र सुदृढ होगा जिसकी युवा शक्ति चरित्रवान होगी। आज युवकों में नशों की आदत बढ़ती जा रही है जिसके कारण समाज, परिवार और राष्ट्र बिखर रहे हैं।

आदरणीय प्रो. कुलदीप जी ने सभी युवकों का प्रातःकाल जल्दी उठने का, नशों से दूर रहने एवं स्वध्याय करने का संकल्प कराया। चरित्र-निर्माण शिविर की अध्यक्षता श्री ओम प्रकाश जी आर्य (अध्यक्ष-आर्य युवक परिषद, पजाब) ने की।

चरित्र निर्माण कार्यक्रम के पश्चात् प्रीतिभोज की व्यवस्था की गई। कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए डा. अन्जु आर्य, वन्दना पसाहन, रमेश शर्मा, विनोद मदान भूपेश आर्य और डा. नवीन आर्य ने विशेष सहयोग किया।

—ब्र० ओम प्रकाश, संगठन मन्त्री

पत्नी भी देवता है-ऋषि वचन

ले. श्री पं. सत्यदेव जी विद्यालंकार भू.पू. आचार्य उपदेशक विद्यालय टंकारा

ऋषि दयानन्द ने गृहस्थ प्रकरण मे एक अनोखा और पवित्र वचन कहा है। (यदि पत्नी के लिए पति देवता है तो पति को भी पत्नी को देवता ही समझना चाहिए।) नारी को देवता कहना सम्भवतः हिन्दू साहित्य मे यह पहला ही वचन है। भारत वर्ष के पिछले पाच हजार वर्ष के इतिहास में नारियो के सम्मान मे यह ऋषि का अद्‌भुत वचन है। प्राचीन काल से ही नारी को अधम, विकार का आधार गीता के शब्दो में पाप-योनि तथा सन्त तुलसी दास के शब्दो में ताड़न के अधिकारी यह कहा गया है । कई ग्रन्थो मे नारी के प्रति अपमानजनक शब्द मिलते हैं। परन्तु मेरे विचार मे आत्म-समर्पण पवित्रता सहनशीलता सहन-शक्ति इन सब के आधार पर नारी ही वस्तुत: देवता है। मैं इस के दो-तीन उदाहरण देना चाहता हू। मेरे सामने एक भयानक कष्ट एक परिवार में आया देवी की आयु चालीस वर्ष के लगभग थी। बडी लडकी कॉलिज में पढती थी पुत्र स्कूल मे। सुखी परिवार था। दो मन्जिला मकान था पति-पत्नी दोनों अध्यापक थे। अचानक पति को मुख के कैन्सर का कष्ट हो गया। कारण पान खा कर-मुख में रख कर चूसते रहता था। कैंसर अपने आप मे भयंकर रोग है और इलाज के लिए बहुत धन मागता है। कुछ मास इलाज के बाद मुख का एक भाग अलग करना पड़ा पर आशा हुई कुछ आराम है। थोड़े ही दिन बाद फिर कष्ट हुआ पहले ही अपरिमित धन खर्च हो चुका था फिर भी कहीं से कुछ प्रबन्ध करना पडा। फिर वही बात हुई। तीसरी बार फिर कष्ट बढ़ा घर की पूंजी लगभग समाप्त हो गई थी और पति देव बच न पाये।

देवी ने अपरिमित साहस के साथ चालीस वर्ष की आयु में अपने कार्य को आगे चलाया। इस की तुलना में एक प्रसिद्ध परिवार के सज्जन की चालीस वर्ष के लगभग ही पत्नी की मृत्यु हो गई उन के एक पुत्र और दो पुत्रियां थी। पर वे कहने लगे बिना विवाह के जीवन नष्ट हो जाएगा। विवाह हुआ नई पत्नी आई वह अपने साथ रिश्ते के दो बच्चे भी साथ लाई। घर मे रौनक तो हो गई पर पहले बच्चे अत्यन्त उपेक्षित हो गये। एक उदाहरण और देता हूं। अपने समीप ही एक सज्जन को तपेदिक था अधिक भयंकर हो गया तपेदिक के बीमारी से सब परहेज करते हैं। मैं पूछने जाता तो कहते मेरे से जरा परे रहो। उन की पत्नी ने अपने शरीर की लगभग उपेक्षा कर पूरी सेवा की। सारा सेवा कार्य वही करती थी और सम्बन्धी भी जरा बचते थे सहायता तो अवश्य करते। भरी जवानी मे पति देव का स्वर्गवास हो गया। इसे परमात्मा को कृपा कहो या देवी का मनोबल कुछ विशेष नुकसान नहीं हुआ। पति का चिन्ह उन का लड़का आजकल मिलटरी में एक ऊंचा अफ्सर है। तीसरा उदाहरण मैं बहुत सकोच से अपना ही देता हूं। मैं यह सदा अनुभव करता रहा कि मेरी पत्नी कष्ट सहन, श्रमशीलता आचरण और स्वभाव के संयम मे मुझ से अधिक है। उस की शिक्षा तो केवल तीन श्रेणी की थी। कुछ उसे उस के भाई हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री सत्यव्रत जी ने मन्त्रो का उच्चारण और हिन्दी का अभ्यास कराया था और मैंने तो गुरुकुल कागडी की सस्कृत की एम ए तक की परीक्षाएं भी दी थी। उस का घर समृद्ध था साथ ही हमारे घर मे कुछ समस्याएं भी थी जिन का मै उल्लेख नहीं करना चाहता। मेरे पिता जी को अपने भाई का परिवार भी पालना था जिस में पांच कन्याएं दो पुत्र और पति-पत्नी साथ ही रहते थे। मेरा छोटा भाई भी लम्बी बीमारी के बाद स्वर्गवास हो गया इन सब कष्टों ने पिता जी को बीमार कर दिया। फिर जब 1935 मे क्वेटा के भूचाल में हमारा मकान गिर गया तो दो कन्याएं एक पुत्र और मेरे चाचा जी मारे गये। इस धक्के ने भी पिता जी को अधिक बीमार कर दिया और वे गांव आ गए थे। मैं जालन्धर कालिज में आ गया था। उसके कारण हमारे तीन घर बन गए। देवी के लिए एक जालन्धर का दूसरा गांव का और तीसरा उसका मुम्बई उस के भाईयों का। मुम्बई में बहुत समृद्धि थी गांव में पर्याप्त कष्ट था पर उसे तो सब जगह आना जाना होता था। जब वो गांव में जाती तो बहुत काम करना पड़ता बर्तन मांजने झाड़ू देना, पिता जी की सेवा और भैंस का दूध तक दोहना सब काम करने होते थे। पर उसने अपने को सब के अनुकूल बना लिया था। उसे जालन्धर का घर सब से प्यारा था जो उसने अपने सब गहने देकर बनाया था। कछ भाईयो से भी मदद ली थी। ऐसा चल ही रहा था कि कुछ परिवर्तन आ गया। बड़ा पुत्र विजय रेलवे में काम पर लग गया। दूसरा पुत्र विनय फार्मास्यूटिकल मे एम एस सी कर के कुछ दिन बाद अमेरिका चला गया। वहा उसने डाक्टरेट भी की वहां उसका काम बहुत अच्छा चला। देवी के भाईयो ने तो मुम्बई मे बहुत अधिक उन्नति कर ली और वे बार-बार अपनी बहन को प्रेम से बुलाते और बहुत आदर सत्कार करते। मै जालन्धर से टंकारा आ गया और देवी के जीवन मे एक नया परिवर्तन हो गया। टकारा एक बडा आश्रम था। वहां बहुत से काम चल रहे थे। वहा आकर देवी सब के लिए माता जी बन गई और काम भी हर एक प्रकार के हो गए।

मै पहले ही लिख आया हूं कि देवी को मैं सब दृष्टियो से बहुत ऊंचा समझता था। यह प्रसंग आगे तो बहुत लम्बा है पर यहीं समाप्त करता हूं। समाप्त करने से पहले मैं एक विशेष बात लिखना चाहता हू। मेरे गुरुकुल के साथी स्नातक हरिवंश जी दिल्ली कालिज मे काम करते थे। उन की बहिन का विवाह पजाब के प्रसिद्ध नेता श्री वीरेन्द्र जी के साथ हुआ था। मैं हरिवश जी के घर गया तो उन्होने एक छोटी सी बात कही कहने लगे, जब से हमारी बहन का विवाह हुआ है कभी भी उस के विषय मे उस के ससुराल वालो ने छोटी सी भी शिकायत नही की। मैं एक बार श्री वीरेन्द्र जी से मिलने गया तो मैंने उन्हे हरिवश जी की यह बात कही तो वे बोले उसकी बहन तो हमारे घर मे आ के हमारे घर वालो से भी अधिक हमारे घर की बन गई शिकायत क्या करे।

सक्षेप से कहना यह चाहता हूं ऋषि का ये वचन कि पत्नी भी देवता बन सकती है बहुत ही सच्चा और ऊचा है। वास्तव मे यदि हिन्दू परिवारो मे देखा जाए तो एक सौ मे से सत्तर प्रतिशत देविया बहुत उच्च कोटि की हैं और उसकी तुलना में मनुष्य चालीस प्रतिशत भी देवता नहीं कहे जा सकते।

आर्य समाज मुंबई वेद सप्ताह

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सर्व प्रथम सस्थापित आर्य समाज मुबई मे श्रावणी रक्षा बन्धन से श्री कृष्ण जन्माष्टमी तक वेद प्रचार सप्ताह सम्पन्न हुआ। श्रावण पूर्णिमा के दिन आर्य समाज मुंबई एव उसकी शाखा मुलुण्ड उपनगर में स्थित आर्य समाज भवन मे उपाकर्म विधि सम्पन्न हुई, जिसमे सैंकड़ों स्त्री-पुरुषो ने पुराने यज्ञोपवीत उतार कर नवीन यज्ञोपवीत धारण किए तथा यज्ञोपवीत से सम्बन्धित अपने व्रत को निभाने का संकल्प दृढ किया।

वेद सप्ताह के इस कार्यक्रम मे प्रतिदिन प्रातःकाल यजुर्वेद पारायण महायज्ञ एवं सायंकाल भजन एव प्रेरक प्रवचन होते रहे, जिसमे श्रद्धालु एवं प्रबुद्धजन पर्याप्त संख्या मे नियमित रूप से उपस्थित रहे। आर्ष गुरुकुल एटा के प्राचार्य डा वागीश शर्मा एव श्री जिज्ञासुस्मारक पाणिनि कन्या महाविद्यालय-वाराणसी से पधारी हुई आचार्या नन्दिता शास्त्री के वैदिक सिद्धान्तो पर आधारित प्रेरणादायक प्रवचन जनमानस को उद्दीप्त करते रहे।

अन्तिम दिन श्री कृष्ण जन्माष्टमी का समारोह सम्पन्न हुआ, जिसमे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उप प्रधान कैप्टन देवरत्न आर्य, श्री ओंकारनाथ आर्य (प्रधान-आर्य प्रतिनिधि सभा, मुबई) श्री मिठाई लाल सिंह (मन्त्री-आर्य प्रतिनिधि सभा, मुबई) एवं आर्य जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, पं प्रकाश चन्द्र शास्त्री, डा वागीश शर्मा तथा आचार्य नन्दिता शास्त्री ने श्री कृष्ण के उज्जवल जीवन का चित्रण करते हुए जन समूह को भाव-विभोर कर दिया।

महर्षि दयानन्द के दाह-कर्म सम्बन्धी भ्रान्ति-निवारण

□ ले० श्री पं० इन्द्रजित् देव, पुरानी सब्जी मण्डी मार्ग, यमुनानगर (हरियाणा)-135001

हमारे एक वानप्रस्थी मित्र श्री राम भिक्षु ने (अजनाला) पंजाब से एक लघु पुस्तिका भेजी है। इस का शीर्षक है-"जगत जूठ तम्बाकू न सेव" । इसके लेखक श्री सतिवीर सिंह प्रिंसिपल हैं व हिन्दी अनुवादक हैं-डा परमजीत कौर तथा प्रकाशक "धर्म प्रचार कमेटी, (शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी) श्री अमृतसर" है। केवल 8 पृष्ठों की इस पुस्तिका मे तम्बाकू का सेवन करने की हानियां व तम्बाकू का सेवन न करने की अपील अच्छे ढंग से की गई है। हम इस भावना का पूर्णत: समर्थन व प्रशसा करते हैं। तम्बाकू की उपज करना, इसका बेचना व सेवन करने के हम उतने ही विरुद्ध हैं, जितने इस पुस्तिका के लेखक, अनुवादक व प्रकाशक हैं।

इस पुस्तिका के पृष्ठ 6 पर 14 पंक्तियां महर्षि दयानन्द सरस्वती विषयक भी लिखी गई हैं जिनका सार यह है कि उन्होंने अपना अन्तिम समय नजदीक जानकर महता भाग राम को बुला कर कहा कि मेरा अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीति से करना तथा मेरे शरीर को कोई भी तम्बाकू सेवन करने वाला व्यक्ति हाथ न लगाये। यह सोच कर कि हिन्दुओ में तो विरले ही ऐसे व्यक्ति मिलेगे, सिख ही अजमेर से एकत्रित किए गए। मृतक देह को मिस्त्री वधावा सिंह, सरदार हरि सिंह, सरदार चन्दा सिंह, सरदार खुशहाल सिह, सरदार टहल सिंह व भाई पाल सिंह जी ने स्नान कराया। रास्ते मे यदि कोई व्यक्ति अर्थी को कन्धा देना चाहता था तो दयानन्द जी का आदेश बता दिया जाता था कि कोई ऐसा व्यक्ति हाथ न लगाए जिसने तम्बाकू का सेवन किया है।

एक दूसरी भ्रान्ति फैलाने वाले मुराद अली नामक लेखक ने "यादगार-ए-मुराद अली" शीर्षक अपनी पुस्तक में यह लिखा है कि महर्षि दयानन्द की शव-यात्रा में अर्थी को कन्धा देने वाले तीन-चार व्यक्ति ही निकले थे क्योकि अजमेर के हिन्दू लोग उनसे नाराज़ थे। इसका निराकरण श्री डा. भवानी लाल भारतीय ने अपने लेख में कर दिया।

इन दोनों कथनों में तनिक भी सच्चाई नहीं है। महर्षि दयानन्द तम्बाकू का सेवन करने को पसन्द नहीं करते थे और वे भी इसके सेवन के उतने ही विरुद्ध थे, जितना कोई और था व है, परन्तु उन्होंने महता भाग राम को बुलाकर कोई मौखिक वसीयत की थी, यह बात तथ्यों के विपरीत है। उनके शिष्यो व भक्तो तथा प्रशंसकों की उस समय संख्या पर्याप्त हो चुकी थी। यह सोचना भी इतिहास के प्रति अन्याय है कि अजमेर मे तम्बाकू सेवन न करने वाला कोई विरला ही मिलता था, अत: महर्षि को तम्बाकू सेवन न करने वाले एक व्यक्ति को बुलाकर विशेष हिदायत देनी पड़ी। ऐसी काल्पनिक व अविश्वसनीय बात का प्रमाण क्या है ? आधार क्या है ? किस जीवन चरित मे लेखक ने यह घटना पढ़ी है ?

आज न मुराद अली ओर न प्रि. सतिवीर सिंह इस संसार मे है। वे हमारे लेख को पढ नहीं सकते परन्तु इतिहास आने वाली पीढियो तक सही रूप मे पहुंचाना वर्तमान पीढ़ी की जिम्मेदारी होती है, इस कर्त्तव्य को ध्यान मे रख कर हम कुछ निवेदन करने पर बाध्य हैं ।

"Dayanand Commenonation Volume—A homage to Maharishi Dayanand saraswati" शीर्षक से सन् 1933 मे एक विशाल ग्रन्थ परोपकारिणी सभा, अजमेर ने महर्षि की बलिदान अर्ध शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित किया था। इसके सम्पादक हर विलास शारदा व उनके मित्र राम गोपाल (बाद मे बार-एट-लॉ) ने इस ग्रन्थ मे महर्षि की अन्तिम यात्रा विषयक जानकारी दी है। राम गोपाल ने लिखा है कि मैं उस समय भिनाय कोठी, अजमेर मे मौजूद था, जब महर्षि ने प्राण त्यागे थे। मेरे सहपाठी हर विलास शारदा व राम विलास शारदा भी वहीं थे। दूसरे दिन शव-यात्रा निकाली गई जिसमें स्वामी जी के "**हज़ारों प्रशंसकों तथा अनुयायियों ने भाग लिया।**" इसी ग्रन्थ में हर विलास शारदा ने लिखा है कि राय बहादुर पण्डित भागराम, ज्यूडिशियल सह **कमिश्नर, अजमेर ने शव यात्रा की तैयारी की थी। पंडित भागराम स्वयं इस शव यात्रा में सम्मिलित हुए थे। वे महर्षि दयानन्द के बहुत प्रशंसक व अनुयायी थे। महर्षि का शव दाह कर्म उनके स्वीकार (वसीयत) पत्र में वर्णित निर्देशों के अनुसार ही किया गया था। मैंने रास्ते में देखा था कि महर्षि दयानन्द के शव को जिस विमान अर्थात् अर्थी को लोग उठा कर चल रहे थे, उनकी संख्या सोलह थी।**"

महर्षि के कुछ प्रसिद्ध जीवन चरित भी उपलब्ध हैं उन चरितों में जो विवरण उपलब्ध है, उसके अनुसार लाहौर के पण्डित गुरुदत्त व जीवनदास, अजमेर आर्य समाज के मन्त्री मथुरा प्रसाद, सभासद जेठमल सोढी, सरदार भक्त सिंह, अजमेर ब्रह्म समाज के प्रधान शरत् चन्द्र मजूमदार, डा लक्ष्मण दास, राय बहादुर भागराम, महर्षि के शिष्य आत्मानन्द व रामानन्द, पं. भीमसेन, गोपाल गिरि, पं. वृद्धिचन्द, मुन्ना लाल, राय बहादुर सुन्दर लाल, परोपकारिणी सभा के उपमंत्री पं. मोहन लाल विष्णु लाल पण्डया, फरूखाबाद के लाला शिव दयाल व मेरठ मुम्बई तथा अजमेर के निकटवर्ती ग्रामों व नगरों के हजारो आर्य जन व गैर आर्य समाजी भी शव यात्रा मे सम्मिलित हुए थे। यहां यह उल्लेखनीय है कि महर्षि के देहान्त का समाचार पाकर दो गैर आर्य समाजी सन्यासी भिनाय कोठी में आए थे, जहां महर्षि ने अन्तिम सांस ली। उन्होंने इच्छा प्रकट की कि दयानन्द सन्यासी का शरीर उन्हें सौंप दिया जाए। सन्यासियों में प्रचलित (अवैदिक) परम्परानुसार वे उस शरीर को गाडेंगे, जलाने नहीं देगे। आर्य पुरुषो ने उन्हें समझाया कि श्री महाराज पहले से ही अपने शव की अन्त्येष्टि के विषय में सब कुछ लिख गए हैं, अत: उसी वसीयत के अनुसार यह कार्य होगा। इस पर वे सन्यासी यह कह कर चले गए कि यद्यपि स्वामी दयानन्द वैचारिक दृष्टि से हमारे प्रतिपक्षी थे परन्तु फिर भी वे थे तो सन्यासी ही। उनके शव पर हमारा अधिकार है। हम संख्या मे यदि दो से अधिक होते तो हम शव को बलात् छीनकर ले जाते।

इस विवरण से सिद्ध है कि अजमेर में उस समय प्रचुर संख्या में आर्य जन थे क्योंकि सन् 1882 ई. में वहां आर्य समाज की स्थापना हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द पहले भी कई बार अजमेर, किशनगढ़ व पुष्कर में पधार कर उपदेश देकर गए थे जिससे उनके प्रशंसकों की संख्या बहुत थी। कुछेक नाम जो जीवन चरितो में मिलते हैं व महत्वपूर्ण थे, हमने ऊपर लेख में दे दिए हैं। यह ठीक है कि स्वार्थी व दुराग्रही हिन्दू महर्षि से द्वेष करते थे परन्तु ऐसी स्थिति भी न थी कोई हिन्दू उनके शव को हाथ न लगाता। उपरोक्त दो सन्यासी भी उनके साथ वैचारिक मतभेद रखने के बावजूद उनके शव को लेने के लिए आए थे। जीवन चरितो में तो यह भी उल्लेखित है कि यह दाह कर्म महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित "संस्कार-विधि" मे लिखित 121 मंत्रो के पाठ से हुआ था व इसमें 3 मन, 3 सेर (आजकल के माप के अनुसार लगभग 130 किलो) घृत व चन्दन दो मन, दो सेर एक पाव तथा कुछ अन्य सामान प्रयोग में लाया गया था। यह विधि "संस्कार विधि" की है जो महर्षि द्वारा ही निर्दिष्ट है।

यह विधि कोई गैर आर्य समाजी भला क्यों अपनाता ? इतना व्यय कोई और क्यो करता ? कोई आर्य समाजी तम्बाकू का सेवन नहीं करता, यह बात महर्षि को पता थी फिर उन्हें किसी व्यक्ति विशेष को बुलाकर "तम्बाकू का सेवन न करने वाले हिन्दू विरले ही होते हैं, इसलिए तुम लोग ही मेरे शरीर को स्नान कराना", और कोई इसे छूने पाए, यह हिदायत देने की आवश्यकता ही क्या थी ? महर्षि की ऐसी किसी हिदायत का प्रमाण श्री सतिवीर सिंघ प्रिंसिपल या उनके किसी समर्थक के पास क्या है ? शव यात्रा में शामिल होने वाले उपरोक्त लोगों के लेखों पर विश्वास करें या बिना प्रमाण के किसी काल्पनिक लेख पर विश्वास करें ?

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिंडा की गतिविधियां

ता. 24.6.2001 को श्री राजेन्द्र कुमार (लवली भुजिया स्टोर धोबी बाजार भठिंडा) के गृह निवास पर हवन व पारिवारिक सत्संग, ओ३म् के बड़े झण्डो व स्त्री आर्य समाज सिकन्दरपुरा आर्य समाज के बैनरों से सजा कर ओ३म् की जय जय कार के साथ सम्पन्न हुआ।

ता. 30.6.2001 श्री विजय वर्मा XEN टेलीकाम विभाग के गृह निवास पर,

ता 5 7.2001 श्री सिंघला साहब के गृह निवास पर,

ता 8 7 2001 को आर्य गर्ल्ज स्कूल के मैनेजर श्री अशोक अग्रवाल जी ने अपने पौत्र का जन्म दिवस आर्य रीति से यज्ञोपवीत पहना कर हवन यज्ञ द्वारा कराया। सभी आर्य समाजों के अधिकारी वहां मौजूद थे। उनकी गली व गृह निवास को ओ३म् के झण्डों व आर्य समाज के बैनरों से सजाया गया। गली से लेकर मुख्य सड़क तक ओ३म् के झण्डे लगाये गये। श्री कुलवन्त राय अग्रवाल, श्री कल्प वासदेव, श्री कृष्ण लाल जटाना, श्री चमन लाल मेहता, अशोक अग्रवाल, मुख्य अतिथि के रूप में पधारे । हवन की समाप्ति पर सबको जलपान कराया गया।

ता. 15.7 2001 को श्री भगीरथ शर्मा जी के गृह निवास पावर हाऊस रोड पर ओ३म् के झण्डों से सजा कर हवन यज्ञ व सत्संग कराया गया जबकि भगीरथ शर्मा खुद एक ज्योतिषि हैं, सिरकी बाजार की ओर से ओ३म् की जय जय कार के मध्य सम्पन्न हुआ।

ता 28 7 2001 श्री जगदीश राय बंसल वीर कलोनी में यज्ञ सत्संग हुआ। —बलदेव राज

मुजफ्फरपुर में वेद प्रचार

आर्य समाज पथ घिरनी पोखर मुजफ्फरनगर में वेद सप्ताह श्री पन्ना लाला जी आर्य प्रधान की अध्यक्षता में मनाया गया। इस अवसर पर यजुर्वेद पारायण महायज्ञ हुआ और स्वामी प्रशान्तानन्द प. नवल किशोर शास्त्री, श्री कमलेश दिव्यदर्शी, डा. सुरेन्द्र नाथ दीक्षित आदि के प्रवचन व भजन भक्ति रस से भरे भजन होते रहे। जनता बहुत प्रभावित हुई।

आर्य समाज सांवली आदि पंचपुरी गढ़वाल (उत्तरांचल) द्वारा वेद प्रचार

श्रावणी पर्व (रक्षा बन्धन) से श्री कृष्ण जन्माष्टमी के पावन पर्व तक आर्य समाज सावली आदि पंचपुरी गढ़वाल (उत्तरांचल) द्वारा वेद प्रचार सप्ताह बड़े हर्षोल्लास के साथ 12.8.2001 को मनाया गया। वेद प्रचार के लिये वेद प्रचार मण्डली दूरस्थ गिरि कन्दराओं मे जाकर महर्षि देव दयानन्द के विचारों को प्रसारित करने में सफल रही। विभिन्न कठिनाईयो का सामना करते हुए वेद प्रचार मण्डली ने अपने अभूतपूर्व कार्य का प्रदर्शन किया। वेद प्रचार मण्डली मे सम्मिलित थे-सर्वश्री चन्द्रप्रकाश जी अध्यक्ष, गंगा प्रसाद 'सौम्य' मंत्री, बच्ची राम आर्य चन्दोली उपाध्यक्ष दीरज सिंह आर्य निरीक्षक वासुदेव विमल, पूर्व मंत्री, दौलत राम निर्मल पूर्व अध्यक्ष, उमेश चन्द्र श्री वच्ची राम आर्य एवं श्री खुशी राम जी भजनोपदेशक।

वेद चार मे भजनोपदेश श्री वच्ची राम जी आर्य तथा श्री खुशी राम 'निराला' और उमेश चन्द्र अध्यापक ने चार चांद लगा दिये। वेद प्रचार कार्यक्रम का क्षेत्रीय जनता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा।

श्रीमद्दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय का वार्षिकोत्सव

आर्य जनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी श्री मद्दयानन्द वेदार्ष महाविद्यालय, 119 गौतमनगर, नई दिल्ली का वार्षिकोत्सव सोमवार 26 नवम्बर से रविवार 16 दिसम्बर 2001 तक समारोह पूर्वक आयोजित किया जा रहा है। इस अवसर पर चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया जायेगा। जिसके ब्रह्मा आर्य समाज के प्रसिद्ध सन्यासी स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती होगे।

—आचार्य हरिदेव

कुछ मनीषियों के अनमोल वचन

1 दूसरो के दुखों को बांटना ही मानवता है जिस मे मानवता नहीं वह मनुष्य नहीं।

2. माता पिता, गुरु आदि को धोखा देने वाला स्वयं धोखे मे है।

3 किसी की दृष्टि से गिरना कठिन नहीं परन्तु उठना भी सरल नहीं।

4 प्रेम ढाई अक्षरों का छोटा सा शब्द परन्तु जादू भरा है, प्रेम लेता नही, देता ही देता है, बस स्वार्थियों का प्रेम छल कपट भरा होता है।

5 जवानी में जोश ज्यादा तो बुढ़ापे में होश अधिक। हा जवानी में होश जोश बना रहे तो बुढ़ापा भी दूर भागता है।

6. सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य बर्तना चाहिये।

7. न रोना मना, न हंसना, जी हा व्यर्थ बोलना मना है। पैदा होते ही शिशु न रोये तो मरा हुआ कहते हैं। तथा दुखी का रोना भी ठीक कहते हैं । अपने दुख (गम) को कम करने में रोना चाहिये परन्तु जब किसी के मरने के बाद रोते हैं तो इससे मरने वाले को न लाभ न हानि, बस जरा दिखावा है। रोने से मरा हुआ जीवित हो जाए तो रोने का लाभ।

8. हंसना, मुस्कराना, खिलखिला कर हंसना, स्वास्थ्य वर्धक है परन्तु मूर्खों, पागलों की भांति हंसना अच्छा नहीं।

—रामपथिक भिक्षु अजनाला

सिविल लाईन लुधियाना में कृष्ण जन्माष्टमी पर्व

आर्य समाज सिविल लाईन लुधियाना मे कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व 10 अगस्त शुक्रवार को साय 5 से 7 बजे तक मनाया गया। हवन यज्ञ श्री बाल कृष्ण शास्त्री ने करवाया और श्री कृष्ण के जीवन पर प्रकाश डाला। श्रीमती जनक दुलारी भाटिया श्री रमेश महाजन, श्रीमती सरला लूम्बा ने भी अपने भजन व विचार कृष्ण जन्माष्टमी के सम्बन्ध में रखे। इस अवसर पर माडल टाऊन आर्य समाज से भी बहने पधारी थी। अन्त मे प्रसाद वितरण किया गया।

–वेणी प्रसाद मन्त्री

आर्य कन्या गुरुकुल दाधिया का वार्षिकोत्सव

आर्य कन्या गुरुकुल दाधिया जोकि दिल्ली से जयपुर जाते हुए लगभग 120 कि.मी. पर बहुत ही रमणीय स्थान पर स्थित है का वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष 26, 27 28 अक्तूबर 2001 (शुक्रवार, शनिवार, रविवार) को समारोह पूर्वक आयोजित किया जा रहा है। समारोह से एक सप्ताह पूर्व यजुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया जायेगा। मेरी समस्त आर्य समाजो, स्त्री आर्य समाजों, आर्य सस्थाओं से प्रार्थना है कि इस समारोह मे अपनी आर्य समाजों के अधिक से अधिक सदस्यो सहित दाधिया पधारने की कृपा करे।

गोनियाना मण्डी में पारिवारिक सत्संग

पारिवारिक सत्संग' के महत्व को पहचानत हुए आर्य समाज गोनियाना मण्डीं (जिला भटिंडा) के प्रधान महाशय श्री चरजी लाल जी तथा उन के कर्मठ सहयोगियां ने पारिवारिक सत्सगो का अभियान चला रखा है जो रविवार को होने वाले साप्ताहिक सत्संग के अतिरिक्त किया जाता है। ऐसा ही एक पारिवारिक सत्सग गत 13 अगस्त दिन सोमवार को श्री सुरेश कुमार आर्य के घर पर रचाया गया। यज्ञमान महोदय ने इस यज्ञ हवन मे शामिल होने के लिए अपने रिशतेदारो तथा मित्रो तथा अपने पड़ोसियों को बुलाया हुआ था जिस कारण हाजरी बहुत अच्छी बन गई थी। यज्ञ के ब्रह्मा, ब्र. सूर्य देव जी 'वैदिक मिशनरी' बठिण्डा वालो को जिनके साथ जिला आर्य सभा के महामंत्री श्री तरसेम कुमार आर्य भी पधारे थे। यज्ञ हवन पश्चात् ब्र. सूर्य देव जी का बड़ा ही सुन्दर सरस प्रवचन हुआ जिसे सुन कर लोगो ने बहुत सराहा। प्रवचन से प्रभावित होकर यज्ञमान महोदय के सुपुत्र विशाल कुमार ने आर्य वीर दल के लिए संकलप किया।

–सर्वजीत सिंह मन्त्री

लुधियाना में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज पार्क सिविल लाईन लुधियाना की ओर से पारिवारिक सत्सग निरन्तर चल रहे हैं।

2.9.2001 को प्रो. एस.एम. शर्मा १८३ माया नगर लुधियाना के निवास स्थान पर सत्सग हुआ भारी संख्या मे लोगों ने भाग लिया।

9.9.2001 को श्री रमेश जी मरीन 134 ई किचलु नगर (मार्केट के समीप) लुधियाना में 5 से 7 बजे तक पारिवारिक सत्सग होगा।

16.9.2001 को श्री रणधीर शर्मा 9-ई सराभा नगर मेन रोड़ लुधियाना में पारिवारिक सत्सग साय 5 से 7 बजे तक होगा। सत्सग प्रेमी अवश्य पहुंचे। **–नरेन्द्र भल्ला**

मानसा में स्मृति यज्ञ

आर्य समाज मानसा के पूर्व प्रधान श्री रोशन लाल बांसल की पहली पुण्य तिथि पर 5.8.2001 को स्मृति यज्ञ किया गया। हवन यज्ञ के पश्चात् सभा सदस्यो ने उन्हे श्रद्धाजलि भेंट की।

आर्य हाई स्कूल के मैनेजर श्री प्रमोद प्रकाश जी के निवास स्थान पर 31.7.2001 को उनकी माता जी की पुण्य स्मृति में यज्ञ किया गया। श्री निरन्जन देव जी व अन्य सभी सज्जनो ने यज्ञमानों को आर्शीवाद दिया। दोनों यज्ञों में आर्य समाज के सभी सदस्य उपस्थित थे। **–कृष्ण कुमार बांसल, मन्त्री**

पिम्परी पूणे में श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर्व

श्री कृष्ण जन्माष्टमी पर्व आर्य समाज पिम्परी में बड़े हर्षोल्लास से मनाया गया। इस उपलक्ष्य पर भजन एवं विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। पं. विश्वनाथ जी आर्य के पौरोहित्य में 12 अगस्त 2001 को प्रात: यज्ञ, वेदपाठ से कार्यक्रम आरंभ हुआ। कुमार संजीव, पुनित ग्रोवर एवं पं ऋषिपाल जी आर्य ने सुमधुर भजन प्रस्तुत किये आर्य समाज के जेष्ठ प्रचारक पं. धर्मवीर आर्य ने 'राष्ट्रपुरुष योगेश्वर श्रीकृष्ण' विषय पर ओजस्वी व्याख्यान दिया।

आर्य समाज पिम्परी के प्रधान कृष्णचद्र आर्य के मार्ग दर्शन में सर्वश्री मदनलाल सूरी, हरगुणलाल गणेशवाणी, हरिकृष्ण बात्रा, जगदीश वासवाणी, एकनाथ नाणेकर-उत्तम दंडिमे, दत्ता सूर्यवंशी आदि पदाधिकारी एवं सदस्यों ने कार्यक्रम सम्पन्न करने में विशेष सहयोग दिया। मंत्री मुरलीधर सुंदराणी ने कार्यक्रम का सूत्र संचालन किया। पिंपरी-चिंचवड़ परिसर के सैंकड़ों भाई बहनों ने कार्यक्रम में उपस्थित होकर धर्म लाभ उठाया। 17 अगस्त को सफाई कर्मचारियों के लिए यज्ञ किया गया।

गुरुकुल आर्य माडल स्कूल भटिण्डा में स्वतन्त्रता दिवस

गुरुकुल आर्य माडल स्कूल भटिण्डा में स्वतन्त्रता दिवस हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। ध्वजा रोहण से पूर्व हवन यज्ञ ब्र. सूर्य देव जी वैदिक मिशनरी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। आज के मुख्य यजमान चौ. बाबू राम जी प्रधान गुरुकुल शिल्प विद्यालय थे। स्वतन्त्रता दिवस के मुख्य अतिथि श्री राजेश मरवाहा प्रधान लायन्स क्लब माडल टाऊन भटिण्डा थे, इनके पधारते ही गुरुकुल के मुख्य कार्यकर्ताओ ने उनका माल्यार्पण करके स्वागत किया। तत् पश्चात् श्री मरवाहा जी ने अपने कर कमलों द्वारा राष्ट्रीय ध्वज तालियों के गूंज में लहराया, इसके साथ ही स्कूलो के बच्चो ने राष्ट्रगान किया।

गुरुकुल आर्य माडल स्कूल, आर्य गर्ल्ज सी.सै. स्कूल, आर्य माडल हाई स्कूल के प्रधानाचार्य एव अध्यापकगण इस कार्यक्रम में उपस्थित थे। इन तीनो स्कूलों के विद्यार्थियों ने देश भक्ति के गीत प्रस्तुत किये। ब्रह्मचारी सूर्यदेव जी ने उपस्थित जनों से आग्रह किया कि वह सच्चे राष्ट्र भक्त बने एवं अपनी आय का कम से कम 10 प्रतिशत गरीबों तथा बुजुर्गों की सेवा मे व्यय करें। इस कार्यक्रम में श्री पी.डी. गोयल, प्रो. ओ.पी मंगला, श्री धर्मपाल रलहन, श्रीमती शान्ति जिंदल, श्री हुकम चन्द गोयल तथा श्री कौशल पुरी आदि ने अपने विचार रखे एवं सभी को स्वतन्त्रता दिवस की बधाई दी। लायन्स क्लब की ओर से उनके रिजिनल चेयरमैन स एम.एस. कोछड़ जी ने अपने विचार रखे तथा सभी का धन्यवाद किया एवं बधाई दी। इस अवसर पर स्कूल के विकास के लिए एवं गरीब बच्चो के लिए चौ. प्रताप सिंह लायन्स क्लब के डायरेक्टर ने रु. छ: हजार, श्रीमती शान्ति जिंदल ने 500 रु, श्री धर्मपाल रलहन ने रु 500, महिला आर्य समाज ने 500 रु तथा श्रीमती अरुणा अरोड़ा ने 200 रु. प्रदान किये। लायन्स क्लब ने हर वर्ष की भांति संस्था को फर्निचर एवं बच्चो को किताबें, कापिया प्रदान कीं। इसके अतिरिक्त अन्य महानुभावो ने भी संस्था को दान दिया।

इस कार्यक्रम में गुरुकुल शिल्प विद्यालय के सदस्यों के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं आर्य समाज, आर्य समाज चौक भटिण्डा आर्य समाज सिरकी बाजार, आर्य समाज सिकन्दरपुरा एवं महिला आर्य समाज के सदस्य भी उपस्थित थे।

चौ. बाबू राम गर्ग प्रधान गुरुकल शिल्प विद्यालय ने लायन्स क्लब के प्रधान श्री राजेश मरवाहा जी, उनके सहयोगियों एवं आए हुए सभी संस्थाओं के महानुभावों पड़ोसियों सभी का धन्यवाद किया।

श्री [illegible] आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

2277. श्री पुस्तकाध्यक्ष जी
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तरप्रदेश)

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् |



साप्ताहिक

दूरभाष : 292926

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–55 अंक : 12 सृष्टि संवत 1960853102, 16 सितम्बर तथा 23 सितम्बर 2001 दयानन्दाब्द 178

अभिमान मानव की तीक्ष्ण और चमकती हुई बुद्धि का शत्रु है

ले० श्री देवी दयाल शर्मा, शर्मा निवास, 120-माडल टाऊन, स्ट्रीट नं.-4, अमृतसर।

संसार में बहुत से ऐसे आदमी हैं जिनको अपनी तीक्ष्ण बुद्धि पर बड़ा गर्व है। उनको ईश्वर की सत्ता पर तनिक भी विश्वास नहीं। वह यह समझ बैठे हैं कि जो कुछ उनको सफलता प्राप्त हो रही है, यह केवल उनकी बुद्धि का चमत्कार है। वह ऐसा सोचते हैं कि सूर्य अपनी शक्ति द्वारा गर्म गर्म किरणें इस पृथ्वी पर भेज रहा है। इसी तरह चन्द्रमा भी शान्ति की किरणें अपनी शक्ति द्वारा धरती पर भेज रहा है। फल-फूल भी उपवन में अपनी शक्ति से सुगन्ध फैला रहे हैं। ऐसे मानव ईश्वरीय भेद का चिन्तन, मनन नहीं करते हैं। वह तनिक भी विचार नहीं करते कि ईश्वर की बड़ी भारी शक्ति इन सब तत्वों में काम कर रही है। यदि सूर्य के अन्दर ताप और प्रकाश है तो उस परमात्मा की देन है, इसी तरह चन्द्रमा में फल और फूलों में, यदि परमात्मा की सत्ता इन में काम न करे, तो सूर्य ताप रहित और प्रकाश रहित हो जाए, इसी तरह चन्द्रमा भी अपनी शान्तमयी किरणों से वञ्चित हो जाए, फल और फूल बेकार हो जाएं। कठोपनिषद के ऋषि ने ठीक ही कहा है–

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति

कुतोऽयमग्निः तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा

सर्वमिदं विभाति॥ कठ. 5-15

इस मन्त्र के अर्थ ऊपर स्पष्ट किए गए हैं पाठकगण पढ़ें, चिन्तन और मनन करें। गीता भी इस बात की पुष्टि करती है।

दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥ गीता11-12

यदि हजारों सूर्य आकाश में चमकें तो उन का प्रकाश विश्व रूप परमात्मा के प्रकाश के कदाचित ही सदृश हो।

यदि अभिमानी लोग थोड़ा सा चिन्तन करें तो उन्हें पता लगेगा कि जो कुछ यह सफलता उनको प्राप्त हो गई है यह परमात्मा की कृपा से है। यदि मानव ने अपने हर एक कार्य में सफलता प्राप्त करनी है तो उसको अपने आप को ईश्वर के समर्पण कर देना चाहिए। कोई किसी किस्म की अकर मकर नहीं करनी चाहिए। एक अभिमानी की कहानी नीचे दर्ज है।

एक युवक ने एम.एस.सी. फिजिक्स, एम.एस.सी कैमिस्ट्री, एम.एस.सी. हिसाब और पी.एच.डी. भी नाना प्रकार के सब्जैक्ट के साथ पास की थी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा। एक बार उसको अपने गांव जाना पड़ा। जो रेलवे स्टेशन से 5 कोस के करीब था। गाड़ी से उतर कर, वह युवक पैदल गांव को चल पड़ा। मार्ग पर चलते हुए एक तरबूजों का खेत आ गया। उसने देखा कि एक एक छोटी बेल पर 4-5 किलो के तरबूज लगे हुए थे। सोच में पड़ गया कि परमात्मा ने बड़ी भारी गलती की है कि इन छोटी-छोटी बेलों पर छोटे-छोटे तरबूज लगाने चाहिएं थे। यह बात मन ही मन में कह कर अपना रास्ता लिया। अभी थोड़ी ही दूर गया था कि एक बगीचा जिस में आम के ही केवल वृक्ष थे उस पर नज़र पड़ी। देख करके, कहने लगा कि परमात्मा ने एक और गलती कर दी। यह छोटे-छोटे आम बेल के साथ और तरबूज यहां इन वृक्षों पर लगाने चाहिएं थे अभी वह युवक ईश्वर की बुद्धिहीनता को कोस ही रहा था कि एक आम वृक्ष पर से टपका और उसके सिर पर गिरा। एक सैकिण्ड भी नहीं गुजरा था कि उसको होश आई कि जो ईश्वर ने सृष्टि में रचा है, बड़ी सोच समझ से काम लिया है। यदि इस वृक्ष पर आम, तरबूज के बराबर 4 किलो वाले लटकते होते और वह उसके सिर पर गिरते, तो उस का तो प्राणन्त हो गया होता। उस युवक के सारे नास्तिक भाव आस्तिकता में तबदील हो गए और ईश्वर का धन्यवाद किया और ईश्वर का भक्त बन गया।

परमात्मा सच्चे और सुच्चे मानव से प्यार करता है इसलिए हमें सदा सत्यता के साथ ही अपनी मित्रता रखना चाहिए। परमात्मा न्यायप्रिय है, हमें भी यह नियम अपने जीवन में धारण करना चाहिए। परमात्मा सब का हितैषी है, इसलिए हमें भी प्राणीमात्र से हित करना चाहिए और सब को स्नेहमयी दृष्टि से देखना चाहिए। परमात्मा प्रकाश स्वरूप है और सब का अन्धकार दूर करता है हमारी भी यह कोशिश होनी चाहिए कि हम भी प्राणियों के मनों को ज्ञानरूपी प्रकाश से प्रकाशित करें।

हर हाल में, हमें अपनी बुद्धि का अभिमान, छोड देना चाहिए और हमें उन महापुरुषों से संगति करनी चाहिए जो वेद के प्रकाण्ड पण्डित हों और जिन का ईश्वर पर अटल विश्वास हो।

और संसार के लोगों, तुम किस की पूजा कर रहे हो। संसार का मालिक केवल एक परमात्मा है जो सब पर शासन करता है। प्राणियों, अप्राणियों का वही रचनहारे हैं, वही हमारा रक्षक है और वही पालन करने वाला है। वही एक परमात्मा पूजा के योग्य है जिन मनुष्यों के साथ हमारी अभिन्नता है यदि हम परमात्मा से उनके नाश की प्रार्थना करें तो ईश्वर कभी भी ऐसी प्रार्थना हमारी नहीं सुनेगा। यदि हम अपने कमरे के दरवाजे बन्द करके अन्धेरे में किसी के बारे में बुरा सोचने लग पड़े तो परमात्मा बुरे सोचने वाले मानव के सामने आ खड़ा हो जाता है और उसको बुरा काम करने के लिए भीतर से संकेत करता है। वास्तविकता यह है कि हमारा कोई भी कर्म उससे छुपा हुआ नहीं है अर्थात् हम अपना कोई भी कर्म उस से छुपा नहीं सकते। वह हमारे कर्मों के अनुसार (भले या बुरे) फल देता है। वह सरस्वती पूर्ण रूप से टोपा पहन कर (With a Wig full of hearing) हमारे कर्मों का न्याय करता है, कोई कमी या बेशी (न ही न्यूनता न ही अधिकता) हो सकती है। सोलह आने बोलता है, और किसी किस्म की सिफारिश नहीं सुनता है।

अभिमान से युक्त अज्ञानी लोक, परमात्मा की पूजा छोड़ के मनुष्यों द्वारा बनाई हुई मूर्तियों की पूजा करते हैं इस आशा से कि वह हमें संसारी सम्पन्नता प्राप्त कराएंगे, लेकिन यह बात सरासर गलत है। वेद तो डंके की चोट से कहता है कि केवल परम-पावन प्रभु की पूजा करो, जो कुछ सच्चे और सुच्चे दिल से मांगोगे, मिलेगा। उसकी अनुपम शक्ति का नित्यप्रति गुणगान किया करें। इस परिवर्तनशील संसार में, कभी ऐसा भी होता है कि अविजय पर विजय मानव पर प्रहार किए जा रही है, परन्तु उस अविजय में परमात्मा की गुप्त चमकती हुई बेहतरी भी ज्ञानी जनों को दिखाई देती है और वह समझते हैं कि यही रेखा उनकी भलाई के लिए है। इसलिए ज्ञानवान पुरुष घोर कष्ट आने पर भी नहीं घबराते हैं और फराख दिली से कष्टों को झेलते हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज ने अपने शरीर पर लाखों कष्ट सहे परन्तु सत्य मार्ग को नहीं छोडा। संसार को ठीक रास्ता, ईश्वर के मिलने का बताते गये। अन्त में यही कहा कि ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो और अपना भौतिक चोला इस भौतिक संसार में छोड कर अपने आप को ईश्वर के अर्पण कर दिया।

भारत में रहने वाले और विदेशों में रहने वाले, आर्य जनों से बडी उत्सुकता सहित नम्रतापूर्वक अपील है कि वे महर्षि दयानन्द जी के जीवन का अध्ययन करें और उनके गुणों को अपने जीवन में धारण करें। इसी में उनकी भलाई है।

स्वामी दयानन्द के विषय में महानुभावों के विचार

संग्रहकर्ता—डा. स्वच्छ सचदेवा प्रधाना स्त्री आर्य समाज बठिण्डा

एक बार श्रीमती इन्दिरा गान्धी जी ने कहा था कि अगर स्वामी दयानन्द न आते तो मैं आज प्रधान मन्त्री न होती।

दयानन्द का व्यक्तित्व एवं चरित्र प्रथम प्रशंसा का पात्र है वह पूर्ण तथा शुद्ध थ वह अपने सिद्धान्तो के लिए जीवित रहे, वो एक योद्धा थे, सशक्त थे, उग्र थे। स्वच्छन्द थे। शताब्दियों से पीड़ित देश वासियों का साहस पूर्ण सामना करना, एक वीरता पूर्ण कार्य से कम नहीं, वो सत्य के अनन्य प्रेमी थे।

सी.फ. एन्यूस

आधुनिक भारत के महान पथ निर्माता स्वामी दयानन्द थे। मैं सम्मान सहित श्रद्धाजलि अर्पित करता हूं। जिन्होंने हमारे देश के निर्माण काल परस्तो एव सम्प्रदायो के घोर चक्कर से ऐसा स्पष्ट मार्ग निकाला जो हिन्दुओ को ईश्वर भक्ति एवं मानव सेवा के सीधे-साधे जीवन की ओर प्रेरित करता है।

—रविन्द्र नाथ टैगोर

महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों सुधारकों एवं पुरुषों मे से एक थे, उनका ब्रह्मचर्य विचार, स्वतन्त्रता व सर्व प्रति प्रेम, कार्य कुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है। मैं जैसे-जैसे प्रगति करता हूं, मुझे महर्षि का बताया मार्ग दिखाई देता है। महर्षि दयानन्द तथा उनके आर्य समाज के प्रचार ने नव चेतना पैदा की है। मुझे आर्य समाज बहुत ही प्रिय है। महर्षि दयानन्द के इस देश उपकारी कार्य का कभी भी अपमान होगा तो मैं इसको महापाप समझूंगा।

—महात्मा गांधी

स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान देश भक्त और सुधारक थे। हमें सामाजिक कार्यों मे उनका अनुगमन करना होगा।

—डा. राधा कृष्णन

महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा और हिन्दू जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने राष्ट्र की महान सेवा की है और कर रहा है। आजादी की लड़ाई मे आर्य समाजियों का बड़ा हाथ रहा। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दू जाति की रगों मे उष्ण रक्त का संचार करने वाला ग्रन्थ है। सत्यार्थ प्रकाश की विद्यमानता मे कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।

—वीर सावरकर

स्वामी दयानन्द जी महान सुधारक थे। उन्होंने अपना सारा जीवन भारत वर्ष और हिन्दू जाति के सुधार में अर्पित कर दिया। उनका नाम भारत के इतिहास मे सुनहरी अक्षरो मे लिखा जाएगा।

—देश भक्त हरदयाल

वो एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी प्रकृति मेघराज जैसी थी। पूर्व भारत का मूल्याकन करते समय उसे भूल नहीं सकता, भारत प्रत्येक मूल्य पर उन्हे याद करता रहेगा क्योंकि वो एक अलौकिक गुण सम्पन्नता सक्रिय चिन्तक और मेधावी थे। उनके द्वारा निर्मित आर्य समाज सम्पूर्ण मानव जाति एव राष्ट्रो के लिए भेद भाव रहित बनाने का उद्घोष करता है। यह परम्परा गत जाति प्रथा सस्कार तथा समूहों का विरोधी है। दयानन्द चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य को समान अवसर मिले, जिससे समाज की स्नातक इकाई हो सके। वो अछूतों के प्रति अन्याय का प्रबल विरोध करते थे। महर्षि दयानन्द उन महापुरुषों मे से थे जिन्होने आधुनिक भारत का निर्माण किया। हिन्दू जाति का उद्धार करने में आर्य समाज का बहुत बड़ा हाथ है। महर्षि दयानन्द को एक धार्मिक सुधारक तथा कर्म योगी मानता हू संगठन कार्यों में सामर्थ्य और प्रसार की दृष्टि से आर्य समाज अनुपम सस्था है।

—नेता जी सुभाष चन्द्र बोस

वेदो का भाष्य करने के बारे में मेरा विश्वास है कि चाहे अन्तिम पर्ण अभिप्राय कुछ भी हो किन्तु इन बातों का श्रेय महर्षि दयानन्द को ही प्राप्त होगा, कि उन्होंने सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिए निर्दोष मार्ग [illegible] अज्ञान के अंधकार में से सूक्ष्म और [illegible] को उन्होंने सत्य को खोज निकाला था। जंगली लोगों की [illegible] मानी जाने वाली पुस्तक वेद के भीतर उनके धर्म पुस्तक होने का वास्तविक अनुभव उन्होंने ही किया था। ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुंजी प्राप्त की है जो युगों से बन्द थे। उसने बन्द पड़े झरनों का मूंह खोल दिया।

—अरविन्द घोष

स्वामी दयानन्द की आत्मा ने हिन्दुत्व को वर्तमान अनुपयुक्त समझे जाने के विचार के विरुद्ध विरोध किया उन्होंने प्राचीन बनखडों को आधुनिक जीवन के लिए निवास योग्य बनाने के लिए प्रचार की आजीवन प्रक्रिया जारी रखी। हम उनके महान श्रम के रूढ़िगत सम्प्रदाय मे परिवर्तन न होने दें। उनके प्रयासों की सार्थकता और उद्देश्य को समझते हुए हिन्दुत्व को प्रगतिशील, आधुनिक युग के अनुकूल बनाना चाहिए। हिन्दुत्व एक ऐसा धर्म है, जिसकी संस्कृति अन्याय से समझौता नहीं कर सकती। प्रगति में अवरोध उत्पन्न भी नहीं कर सकती। स्वामी दयानन्द के उपदेशों की भूमि व्यापक है, ऐसी स्थिति में उनका लोप नहीं हो सकता, बल्कि हिन्दुत्व का ही एक अंग बना रहेगा।

—सी.राज. गोपाल आचार्य

गुरु और शिष्य

गु नाम अंधकार का है रु नाम प्रकाश का है। इसलिए जो भी अज्ञान रूपी अंधकार को मिटा दे और ज्ञान रूपी प्रकाश के दर्शन करा दे उसका नाम गुरु है। किसी भी विषय में हमें जिससे भी ज्ञान रूपी प्रकाश मिले, तथा हमारा अज्ञान अंधकार दूर हो, उस विषय में वह हमारा गुरु है। गुरु कई प्रकार के हो सकते हैं। विद्या गुरु, शिक्षा गुरु एवं दीक्षा गुरु। जैसे हम किसी व्यक्ति से किसी स्थान या मोहल्ले में जाने का मार्ग पूछते हैं और वह हमें रास्ता बता देता है तो मार्ग बताने वाला हमारा गुरु हो गया, हम चाहे उसे गुरु मानें या न माने। उससे संबंध जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। विवाह के समय, पुरोहित ने पाणिग्रहण, फेरे-लांवां करवा कर वर-कन्या को उस ब्राह्मण/पुरोहित की याद नहीं आती और उसको याद करने का विधान भी शास्त्रों में कहीं नहीं आता। ऐसा ही आध्यात्मिक गुरु हमारा सम्बन्ध भगवान से जोड़ देता है तो गुरु का काम हो गया। तात्पर्य है कि गुरु का काम मनुष्य को भगवान के साथ जोड़ना है। भगवान के सम्मुख करना है। मनुष्य को अपने साथ जोड़ना नहीं है। अपने सम्मुख करना गुरु का काम नहीं है। इसी तरह शिष्य का कर्त्तव्य भी भगवान के साथ संबंध जोडना है। गुरु के साथ नहीं क्योंकि संसार में पहले ही बन्धन बहुत हैं। भगवान के साथ तो हमारा सम्बन्ध स्वत: स्वभाविक है। गुरु उस भूले हुए सम्बन्ध को याद कराता है, कोई नया सम्बन्ध नहीं जोड़ता। गुरु के विषय मे यह प्रसिद्ध है कि वह अज्ञान अन्धकार को दूर करने वाला है। जिस गुरु ने परमात्मा की प्राप्ति करवा दी वही असली गुरु है। गुरु के मन में सदा शिष्य का कल्याण होना चाहिए उसकी अपनी यही भावना रहे कि मैंने अपने शिष्य को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाना है और इसे परमात्मा के साथ जोड़ना है।

—सरसेम कुमार आर्य, महामन्त्री जिला आर्य सभा बठिण्डा

तपोवन (देहरादून) का शरदुत्सव

वैदिक साधना आश्रम, तपोवन (नालापानी) देहरादून का शरदुत्सव 10 अक्तूर से 14 अक्तूबर तक आयोजित किया जा रहा है जिसमें सामवेद का बृहद यज्ञ तथा योग-साधना शिविर होगा।

यज्ञ के ब्रह्मा तथा योग-साधना के निर्देशक श्री स्वामी आनन्दवेश जी (गुरुकुल) होंगे। मुख्य प्रवचनकर्ता डा. शिव कुमार जी शास्त्री दिल्ली से पधार रहे हैं।

—देवव्रत आर्य, मंत्री

सम्पादकीय.....

हिन्दी दिवस

हमारे देश में गत कई वर्षों से 14 सितम्बर हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है। हमारा सारा आर्ष साहित्य हिन्दी या संस्कृत में लिखा गया है। हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जो सारे देश को एक सूत्र में बांध सकती है और एकता पैदा कर सकती है। क्षेत्रीय भाषाओं का भी अपना-अपना महत्व है परन्तु हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसको देश के लगभग सभी लोग समझते हैं। किसी-किसी प्रदेश में हिन्दी बोली नहीं जाती परन्तु समझी अवश्य जाती है परन्तु राष्ट्र भाषा होते हुए भी हिन्दी की उन्नति के लिए हमारे देश में कोई विशेष कार्य नहीं किया जा रहा।

हिन्दी की उन्नति व प्रचार-प्रसार के लिए कई संस्थाएं कार्य कर रही हैं, हिन्दी रक्षा समिति, हिन्दी प्रचारिणी सभा, हिन्दी प्रचार सभा, हिन्दी परिषद, भारतीय हिन्दी परिषद आदि संस्थाएं व समितियां सारे देश मे कार्य कर रही हैं परन्तु फिर भी हिन्दी का सारे देश में पूरा विकास नहीं हो रहा।

14 सितम्बर को प्रतिवर्ष सारे देश में सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएं हिन्दी दिवस पर समारोहों का आयोजन करती हैं। कई उच्चकोटि के नेता व विद्वानो के इस अवसर पर भाषण होते हैं। कई नए-नए सुझाव भी हिन्दी की उन्नति के लिए दिए जाते हैं परन्तु 14 सितम्बर के बाद फिर वर्ष भर कोई भी हिन्दी की बात नहीं करता।

हिन्दी के प्रचार व प्रसार के लिए प्रत्येक भारतीय को प्रयास करना चाहिए। प्रत्येक प्रदेश में प्रान्तीय भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए भी कार्य किया जाए। धीरे-धीरे अंग्रेज़ी का स्थान हिन्दी को दिलवाया जाए। क्योंकि सरकारी कामकाज में हिन्दी के स्थान पर अंग्रेज़ी को महत्व दिया जा रहा है। यह महत्व तभी कम होगा जब हिन्दी के प्रति लोगों के दिलों में आस्था पैदा की जाएगी, जागरुकता पैदा होगी, तभी लोगों का अंग्रेजी से कुछ मोह भंग होगा।

आओ मिल कर निश्चय करें कि हम स्वयं हिन्दी को अपनाएंगे। अपना अधिक से अधिक पत्र-व्यवहार हिन्दी में करेंगे। अपने निमन्त्रण पत्र हिन्दी में छपायेंगे और दूसरों को भी इसकी प्रेरणा देंगे। हिन्दी लेखकों, कार्यकर्त्ताओं और हिन्दी की सेवा करने वाले लोगों का सम्मान करेंगे यदि हम इस दिशा में कार्य करेंगे तभी हिन्दी दिवस मनाना हमारे लिए लाभकारी होगा।

—हरबन्स लाल शर्मा, सभा प्रधान

आर्य मर्यादा का शुल्क भेजें

आर्य मर्यादा सभी ग्राहक महानुभावों को निरन्तर भेजा रहा है जब कि इसका पोस्ट करने का शुल्क बहुत बढ़ा हुआ है। हम इस पत्रिका को प्रचारार्थ प्रकाशित कर रहे हैं । सभा को इसको छापने का निरन्तर घाटा पड़ रहा है परन्तु फिर भी सभा इसे प्रचारार्थ प्रकाशित करवाती आ रही है। आर्य जनता का भी कर्तव्य बनता है विशेष रूप से इसके ग्राहकों का कि जो नाम मात्र शुल्क 50 रु. इसका सभा ने रखा हुआ है वह शुल्क नियमित सभी ग्राहक इसका भेजते रहें। इसलिए जिन ग्राहक महानुभावों ने अभी तक अपना पिछला शुल्क नहीं भेजा वह शीघ्र अति शीघ्र भेजने का कष्ट करें। सभी आर्य समाजों व आर्य शिक्षा संस्थाओं को तो तुरन्त अपना शुल्क आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम भेज देना चाहिए। इसलिए इस ओर सभी ध्यान दें।

कई महानुभाव व आर्य समाजें इसका आजीवन शुल्क 500 रुपए भेज रही हैं परन्तु पिछला शुल्क नहीं भेज रही । पिछला शुल्क आने पर ही 500 रु. आजीवन शुल्क स्वीकार किया जाएगा। इसलिए पिछला शुल्क जमा 500 रुपए का ड्राफ्ट सभा के नाम का भेजें।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

शोक-संवेदना श्रद्धांजलि

अमेरिका के न्यूयार्क नगर में गत मंगलवार दिनाक 11-9-2001 को जो उग्रवादियों ने वर्ल्ड ट्रेड सैंटर के दोनों टावर हवाई हमला करके धाराशायी कर दिए। यात्रियों से भरे जहाजों को अगुवा करके आत्मघाती आतंकवादियों ने यह कार्यवाही की है। यह 110 मंजिली बिल्डिंगे थीं जिनको हवाई जहाज से टक्कर मार कर ध्वस्त कर दिया गया। इसमे हजारों लोग मारे गए। दूसरे हमले मे वाशिंगटन स्थित अमेरिका रक्षा विभाग की इमारत पेन्टागन की भी पाच मजिलें ध्वस्त हो गईं। इस घटना में साऊदी आतंकवादी ओसामा बिन लादेन का हाथ माना जा रहा है।

दुनिया के इतिहास में यह सबसे भीषण आतकी हमला है। जिसमे सम्पत्ति की तो महान हानि हुई ही है परन्तु जान-माल दोनों की बहुत बड़ी हानि हुई है। इमारतों में जहां हजारों लोग काम करते थे वहा कई व्यापारिक केन्द्र भी थे और उनके कार्यालय भी थे। इस घटना से सारे संसार में एक तहलका मच गया। यह एक बहुत बड़ी दुर्घटना है। जिन आतंकवादियों ने की है उन्होंने एक जघन्य अपराध किया है। इसकी सारे संसार ने निन्दा की है। हमारे देश के प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी और दूसरे भारतीय नेताओं ने भी इस उग्रवादी हमले की निन्दा की है। मैं समझता हूं कि इसकी जितनी भी निन्दा की जाए कम है। इतनी बड़ी सामूहिक हत्या आज तक कहीं नहीं हुई। इस घटना ने सभी को स्तब्ध कर दिया। इसमें बहुत से भारतीय लोग भीं मारे गए।

मैं अपनी ओर से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, आर्य विद्या परिषद पंजाब, पंजाब की सभी आर्य समाजों व शिक्षा संस्थाओं के अधिकारियों व सदस्यों और अन्य सभी महानुभावों की ओर से न्यूयार्क की इस दुर्घटना में मरने वाले लोगों के लिए शोक व्यक्त करता हुआ परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि परमात्मा उन सभी पवित्र आत्माओं को उनके कर्मानुसार सद्गति प्रदान करे और उनके परिजनों को इस वियोग [illegible] श्रद्धांजलि भेंट करता हूं।

18 अक्तूबर 2001 को प्रात: 10.30 बजे सभी की सभी शिक्षण संस्थाओं में तथा सभा कार्यालय तथा अन्य स्थानों पर दो मिनट का मौन रख कर दिवंगतात्मों की सद्गति के लिए सामूहिक प्रार्थना की गई ।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

7 अक्तूबर को नवांशहर पहुंचें

सभा प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा ने आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का साधारण व असाधारण अधिवेशन 7 अक्तूबर को प्रात: 11 बजे आर.के. आर्य कालेज नवां शहर में बुलाया है। इस अधिवेशन में कई महत्वपूर्ण विषयों पर विचार होगा। सभा का गत साधारण अधिवेशन 17-12-2000 को सभा कार्यालय मे हुआ था जिसमें सर्वसम्मति से श्री पं हरबंस लाल जी शर्मा को आगामी तीन वर्ष के लिए प्रधान चुना गया था और इसके पश्चात् उनको सभा के अन्य पदाधिकारी, अन्तरग सदस्य सार्वदेशिक सभा के लिए प्रतिनिधि तथा अन्य समितियों आदि के सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दे दिया गया था उन्होंने साधारण सभा द्वारा प्रदत्त अधिकार के अनुसार सभा के अन्य पदाधिकारी व अन्तरंग सदस्य आदि मनोनीत कर दिए थे। उसी के अनुसार सभी अधिकारी अपना कार्य कर रहे हैं। गत दिनों में कई समस्याएं प्रधान जी के सामने आईं हैं। सभा के बहुत से प्रतिनिधियों ने उन्हें साधारण सभा बुलाने के लिए कहा। कई प्रतिनिधियों ने उनसे मिल कर साधारण सभा बुलाने की प्रार्थना की, हमने भी उन्हें इसके लिए कहा कि साधारण सभा बुला ली जाए ताकि जिन समस्याओं का समाधान साधारण सभा के बिना नहीं हो सकता उनका समाधान किया जा सके।

इसलिए सभी के आग्रह पर सभा प्रधान जी ने 7 अक्तूबर 2001 को आर.के. आर्य कालेज नवांशहर में आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का साधारण व असाधारण अधिवेशन बुलाया है । सभी प्रतिनिधियों को 8-9-2001 को एजैण्डा भेजा जा चुका है आशा है सभी को मिल गया होगा इसलिए आप सभी उसमें पधारने का कष्ट करें ताकि सभा के सामने आई वर्तमान समस्याओं का समाधान किया जा सके और सभा का कार्य सुचारू रूप से चलाया जा सके।

आशानन्द आर्य
सभा उप प्रधान

राजेश शर्मा
सभा मन्त्री

वृद्धावस्था के रोग और उपाय

श्री छाजूराम शर्मा, वैद्य शास्त्री, 126, जनता डी.डी.ए. फ्लैट, पावर हाऊस, नज़फगढ़, नई दिल्ली-44

मनुष्य को वृद्धावस्था किस आयु में आनी चाहिए और उसको दूर हटाने के क्या उपाय हो सकते हैं ? यह एक विचारणीय प्रश्न है जिसका उत्तर प्रत्येक सुखार्थी मनुष्य जानना चाहता है।

यदि मनुष्य की सामान्य आयु सौ वर्ष की मान कर चलें, तो वह जीवन में चार दिशाओं से गुजरता है। 1. बाल्यावस्था, 2. युवावस्था, 3. वृद्धावस्था, 4. जरावस्था। इनमें वृद्धावस्था 75 वर्ष की आयु से 100 वर्ष तक होती है और इससे ऊपर जरावस्था आ जाती है।

प्राय: समझा जाता है कि 75 वर्ष की आयु में अवश्य ही वृद्ध हो जाना चाहिए। परन्तु स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार चलने से इस समझ का खंडन हो जाता है क्योंकि वृद्धावस्था का आयु से कोई अटल सम्बन्ध नहीं है। यह तो देश , काल, आहार-विहार, आचार-विचार आदि पर निर्भर है। इसके अनुसार प्राचीन काल में सौ वर्ष अथवा उससे ऊपर वृद्धावस्था आती थी। मध्यकाल में 75 वर्ष और आजकल 50-60 वर्ष की आयु वृद्धावस्था की मानी जाती है, सो ठीक नहीं है। यदि आयु ही वृद्धावस्था का कारण होती, तो आज हम बहुतों को 40 वर्ष में ही वृद्ध होते न देखते। दुर्बलता का नाम वृद्ध वा बुढ़ापा है, वह किसी भी आयु में आ सकता है। शक्तिमान बने रहना युवावस्था है। प्राकृति जीवन जीने से यह किसी भी आयु तक बनी रह सकती है।

वृद्धावस्था की दुर्दशा-

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि:। दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते। वाक्यं: नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते। हा ! कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयस: पुत्रोऽप्यमित्रायते।

शरीर जिसका सिकुड़ गया है, गाल पिचक गये हैं, चाल ढीली पड़ गयी है, दांतों की पंक्तियां नष्ट हो चुकी हैं, नेत्रों की दृष्टि मन्द हो गयी है। मुख से लार टपकती है, बन्धु-बान्धव आदर नहीं करते, भार्या भी सेवा नहीं करती। हां ! बड़े दु:ख का विषय है कि मनुष्य की वृद्धावस्था में पुत्र भी शत्रु बन जाता है। बड़ी दुर्दशा होती है।

युवावस्था में जिसकी घर में बड़ी चाहना थी, वृद्धावस्था में उसकी घर में कोई चाह नहीं, अपितु चाहते हैं कि यह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो। अत: सन्तान आदि के अधिक मोह में न फंस कर वह कार्य करना, जिससे बुढ़ापे में सुख से रह सके। जवानी शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करता हुआ संकट-काल के लिए कुछ द्रव्य अवश्य बचाये रखना चाहिए, जिसके लोभ से सन्तान और पत्नी सेवा करते रहें। एक नीतिकार के विचारों पर ध्यान दें : **इह लोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते। स्वजनोऽपि दरिद्राणं सर्वदा दुर्जनायते॥**

संसार में धन वाले के लिए पराये भी अपने हो जाते हैं और धनहीन व्यक्ति के अपने भी पराये हो जाते हैं।

अस्ति यावत्तु सधनस्तावत् सर्वैस्तु सेव्यते। निर्धनस्त्यज्यते भार्यापुत्राद्यै: सगुणोप्यत:॥

अर्थात जब तक पुरुष के पास धन है तभी तक स्त्री-पुत्रादि उसकी सेवा करते रहते हैं। धन के अभाव में गुणवान होने पर भी उसकी कोई बात तक नहीं पूछता।

वृद्धावस्था क्यों आती है ?- ऋतु , देश, काल, प्रकृति के विरुद्ध अनियमित आहार-विहार, पौष्टिक भोजन का अभाव, अत्यधिक आराम का जीवन, परिश्रम न करना, भोग-विलास, अधिक उपवास, मानसिक चिन्तायें, क्रोध, शोक,भयग्रस्त जीवन, ब्रह्मचर्य नष्ट करना, शरीर में कोई न कोई रोग लगे रहना, विपत्तियों में फंस कर अनेक कष्ट सहना इत्यादि कारणों से शीघ्र ही बुढ़ापा घेर लेता है। मनुष्य की जीवन शक्ति प्रतिदिन घटने लगती है। तब यह शारीरिक, मानसिक दोनों ही रूप से असक्त हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं।

वृद्धावस्था के पूर्व लक्षण- स्मरणशक्ति में कमी, चलने-फिरने, उठने-बैठने में थकावट होना, कार्य करने में चुस्ती या उत्साह न होना, शरीर में झुर्रियां पड़ना, किसी कार्य में मन न लगना, निश्चय किये गये विचार को बार-बार बदलना, बालों का सफेद होना या गिरना, जोड़ों में दर्द, वायु व कफ के विभिन्न रोग होना, बिना सामर्थ्य के इन्द्रियों की अपने भोगों में रुचि होना इत्यादि लक्षण बुढ़ापे के जानने चाहिए।

इससे बचने के उपाय- बुढ़ापा अपने समय पर अवश्य आता है। लेकिन उचित उपायों से इसे 25 वर्षो तक आगे को धकेला जा सकता है। जैसे समय पर फल पकता है, वैसे ही यह शरीर भी पक जाता है। बुढ़ापा पकी हुई आयु है। यह युवावस्था का अन्तिम समय है, जो आने के बाद फिर जाता नहीं तभी तो कहा है कि-**जो जाकर न आये वह जवानी देखी, जो आकर न जाये वह बुढ़ापा देखा।** जवानी में बुढ़ापा आना जीवन में अभिशाप है। इसे ठीक से जीने के निम्न उपाय करने चाहिए-आयु की दृष्टि से सर्वप्रथम ऋतु अनुकूल उचित आहार-विहार का प्रबन्ध करना चाहिए। बुढ़ापे के उपर्युक्त कारणों से बचकर ब्रह्मचर्य का सेवन, निद्रा का उचित सेवन करना आवश्यक है।

उचित आहार क्या है ?- चोकरदार कुछ बिना छना मोटा आटा, छिलकेदार दालें, हरी सब्जियां, दूध, मक्खन, दही, घी, शहद, सूखे मेवे, देशी खांड, ऋतु के अनुसार फल, यथाशक्ति इनका सेवन वृद्धावस्था को शीघ्र आने से रोकता है। अण्डे, मांस व सब प्रकार के नशों का सेवन शीघ्र बुढ़ापा लाता है। बुढ़ापे के लक्षण देखते ही रसायन औषधों का सेवन करना, जीवन तत्वों में वृद्धि करके बुढ़ापे को रोकता है। संयम, सदाचार, सरलता, प्रसन्नचित रहना, स्वल्प, सात्विक भोजन, क्रियाशील जीवन, प्राकृतिक नियमों का पालन नि:संदेह मनुष्य को बुढ़ापे से बचाकर दीर्घजीवी बनाता है। युवावस्था में संग्रह की हुई शक्ति वृद्धावस्था में काम देती है।

वृद्धावस्था में होने वाले रोग और उनकी विश्वस्त औषधें- वृद्धावस्था में प्राय: जोड़ों का दर्द, मोटापा मधुमेह, रक्तचाप, बहुमूत्र और हृदय रोग हो जाते हैं। इनका कारण गलत भोजन, परिश्रम न करना, मानसिक चिन्ताएं व शोक आदि है। इनमें निम्नलिखित सफल औषधों का प्रयोग लाभदायक है।

मधुमेह (डायबिटीज)-नीम निबौरी की गिरी, जामुन की गिरी, गुड़मार बूटी, बेल के पत्ते, त्रिफला, गिलोय, वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, चांदी भस्म, मंडूर भस्म,छोटी इलायची के बीज।

सूखी दवाओं को कूट-छान कर चूर्ण बना लें। फिर उसमें भस्में मिला दें। इसमें करेला का रस डालकर दिन में धूप में रखें, रात को ओस में रखें। यह एक भावना हुई। इस प्रकार करेला के रस की सात भावना देकर छाया में सुखा लें। छह माशे प्रात:, छह माशे सायं जल के साथ सेवन करें।

परहेज-तेल, खटाई, मीठा, आलू, चावल, आम, पकवान, लाल मिर्च, गरिष्ठ व बासी भोजन का सेवन न करें। सादा व हल्का भोजन लें। परिश्रम, ब्रह्मचर्य सेवन करें। एक मास के सेवन से मधुमेह चला जाता है। रोग पुराना हो तो तीन मास अवश्य सेवन करें। इससे बहुमूत्र रोग भी ठीक होता है।

जोड़ों का दर्द-शुद्ध कुचला सौ ग्राम, शुद्ध गूग्गल 50 ग्राम, मल्ल सिंदूर 20 ग्राम, मीठी सुरजान 50 ग्राम लें।

पहले मल्ल सिंदूर को खरल में पीसें। फिर उसमें कुचला और सुरजान का चूर्ण मिला दें। बाद में गूग्गल मिलाकर एक कर लें। फिर इसमें अदरक डालकर भिगो दें. दिन को धूप में और रात को ओस में रखें। यह एक भावना हुई। ऐसी सात भावना अदरख की, सात रास्नादि काढ़े की और सात भावना लहसुन के रस की लेकर खरल में घुटाई करें। फिर खुश्क होने पर 2-2 रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखा लें।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

संस्कारों का प्रभाव

मे० ओम प्रकाश ग्रोवर प्रधान आर्य समाज जीरा

कई बार सुना गया है कि आर्य समाजों में नौजवान नहीं आ रहे। यह बच्चों को अच्छे संस्कार न मिलने का कारण है। मैं आर्य समाजी कैसे बना। मैं डी.ए.वी. हाई स्कूल लाहौर में पढ़ता था। उन दिनों वहां पहला पीरियड धार्मिक विषय (हवन, सन्ध्या) तथा वेदों की शिक्षा का होता था। प्रार्थना भी धार्मिक करवाई जाती थी।

हम बालकों की ओर भी,
भगवान तेरा ध्यान हो।
हो दूर सारी मूर्खता,
कल्याणकारी ज्ञान हो।
हम ब्रह्मचारी वीर व्रतधारी
सदाचारी बनें।
हो कर बड़े कुछ कर
दिखलाने के लिए तैयार हों।

इस किस्म की प्रार्थना की जाती थी। मेरी शादी 1958 में जीरा में हुई थी। बारात मोगा से जीरा आई थी। मेरा विवाह संस्कार मौजूदा आर्य समाज मोगा के प्रधान (स्वामी सच्चिदानन्द जी) ने करवाया था, विवाह संस्कार के समय सैंकडों नर नारी उपस्थित थे। वहां आर्य समाज के पुराने भूतपूर्व प्रधान महाशय उदय चन्द जी कक्कड़ जी भी उपस्थित थे। जब स्वामी जी वेद मन्त्रो का उच्चारण करते थे तो मेरे मुख से भी वेद मन्त्रों का उच्चारण शुरू हो जाता था। स्वामी जी और महाशय उदय चन्द जी बड़े प्रसन्न हो रहे थे और हैरान भी हो रहे थे कि यह लड़का कैसे जबानी शुद्ध मन्त्र बोल रहा है। आखिर उन्होंने मेरे से पूछताछ की कि आप हवन के जुबानी शुद्ध मन्त्र कैसे जानते हैं। मैंने उनको सारी कहानी बतला दी कि मैं डी.ए.वी हाई स्कूल (लाहौर) मे पढता था। स्कूल के धार्मिक पीरियड से मेरे पर आर्य समाज का रग चढ़ा है। वहां मैंने वेद मन्त्र याद कर लिए थे। उसके पश्चात् मैंने आर्य समाज में जाना शुरू कर दिया। मेरे शुद्ध मन्त्रों के उच्चारण से प्रभावित होकर मुझे शीघ्र ही महाशय उदय चन्द कक्कड़ और मास्टर हवन लाल जी मेहता ने आर्य समाज का मन्त्री बना लिया। मैं 26 साल लगातार मन्त्री रहा। मैंने पंजाब नैशनल बैंक जीरा और स्टेट बैंक आफ पटियाला जीरा और कई बड़े-बड़े स्थानों पर यज्ञ करवाए और कई संस्थाओ के उद्घाटन वैदिक विधि से करवाए। आर्य समाज रूपी माता की मेरे पर बड़ी कृपा हुई है। मेरा जीवन उच्चकोटि का बन गया। अगर आज भी डी.ए.वी. तथा आर्य स्कूलों में धार्मिक विषय हवन संध्या आदि का हो और वेद का ज्ञान दिया जाए और इसे जरूरी विषय घोषित कर दिया जाए और उसमें पास होना जरूरी कर दिया जाए तो नौजवान पीढ़ी दोबारा आर्य समाज में आ सकती है। हमारी सरकार तो संस्कृति एवं सभ्यता बिगाड़ने में तुली हुई है। टैलीविजन पर यूरोपीय सभ्यता बच्चों का भविष्य बिगाड़ रही है। आर्य प्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक सभा इस ओर ध्यान देवे तो कोई कारण नहीं कि आर्य समाज में नौजवान न आवें। आर्य समाजों में नौजवान आएंगे और आर्य समाज ही फिर से वैदिक संस्कृति ला सकती है और महर्षि दयानन्द जी के सपनो को साकार बना सकती है। यह कार्य सरकार ने नहीं करना। आर्य प्रतिनिधि सभाएं और डी.ए.वी मैनेजिंग कमेटी नियम सिद्वात बना कर स्कूलों में धर्म शिक्षा लागू करावें तो नया खून दोबारा आर्य समाज मे आ सकता है।

नोट:-अब मैं पिछले 10 साल से बतौर प्रधान आर्य समाज जीरा की सेवा कर रहा हूं। आर्य समाज की खामोश सेवा जीवन का आदर्श बन चुकी है।

आर्य समाज रानी का तालाब फिरोजपुर का चुनाव

आर्य समाज रानी का तालाब फिरोजपुर का वार्षिक चुनाव दिनांक 15.7.2001 को श्री हवन लाल मेहता संरक्षक आर्य समाज की अध्यक्षता में हुआ जिसमें सर्व सम्मति से श्री मोहन लाल मल्होत्रा जी को प्रधान चुना गया। साथ ही प्रधान जी को ही अपने समस्त अधिकारी व अंतरंग सभा के सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया। दिनांक 29-7-2001 को प्रधान श्री मोहन लाल जी मल्होत्रा ने मन्त्री व कोषाध्यक्ष का नाम निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया। मन्त्री श्री वेद प्रकाश बजाज व कोषाध्यक्ष श्री विजय कुमार गल्हौत्रा।

-वेद प्रकाश, मन्त्री

(पृष्ठ 4 का शेष)

प्रातः सायं दो-दो गोलियां दूध से लें. यह दवा गृध्रसी (रींघन वायु) दर्द की अचूक दवा है। इसके अतिरिक्त गठिया, जोड़ों का दर्द, कमर का दर्द व सब प्रकार के वायु, कफ के दर्द, पुराने जुकाम में लाभ करती है। साथ ही दर्द स्थान पर महानारायण तेल और विषगर्भ तेल की मालिश करके सेंक दें. चावल, उड़द, चने,राजमा, आदि वायुकारक वस्तुएं न खावें।

अन्य शास्त्रीय औषधें-वातचिन्तामणि रस, वाताकुलान्तक रस, समीरपन्नगरस (स्वर्णयुक्त) योगराज गूग्गल,एकांगवीर रस आदि रोगानुसार दी जा सकती है।

हृदय की धड़कन (हार्ट अटैक)-प्रवाल भस्म, अकीक भस्म, मुक्ताशुक्ति 2-2 रत्ती, हृदयार्णव रस 1 रत्ती। यह एक खुराक है। इसे मक्खन, मलाई, शहद वा दूध से दिन मे दो बार दे। इससे हृदय की धडकन को बहुत लाभ होता है, हार्ट अटैक का भय नहीं रहता। सिर में चक्कर आना, आंखों के आगे अंधेरा होना और मस्तिष्क की दुर्बलता दूर हो जाती है।

बहुमूत्र-देशी अजवाइन, नागरमोथा छह-छह माशे, काले तिल 1 तोला (10 ग्राम) सबको बारीक कर 20 ग्राम गुड़ मे मिला ले। प्रात. सायं 5-5 ग्राम पानी से ले। बहुत लाभ होगा।

शास्त्रीय औषधि–बसन्तुकुसुमाकर रस, तारकेश्वर रस, बहुमूत्रान्तक रस, चन्द्रप्रभावटी।

मोटापा–सोंठ 50 ग्राम, सूखा धनियां 5 ग्राम, छोटी पीपल 50 ग्राम, काली मिर्च 50 ग्राम, काला जीरा 5 ग्राम, काला और सेंधा नमक ढाई-ढाई ग्राम, लाल मिर्च आधा ग्राम। सबका कपडछान चूर्ण करे। दोनों समय 2-2 ग्राम चूर्ण भोजन के बाद पानी से ले।

शास्त्रीय औषधें–आरोग्यवर्धिनी वटी व त्रिफला का मिश्रण, नींबू का रस व शहद डालकर 2-2 गोली प्रातः सायं दें। चावल, घी, तेल, केला, उडद, चर्बी बढ़ाने वाले पदार्थ न खावें। शास्त्रीय औषध-मेदोहर गुग्गल इसमें लाभ करता है। 2-3 मास तक अवश्य सेवन करे। नित्य (भ्रमण) सैर करें, चिन्ता त्यागे।

उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रैशर)–सर्पगन्धा चूर्ण, छोटी इलायची का चूर्ण 2-2 रत्ती, शुद्ध शिलाजीत 2 रत्ती मिलाकर प्रातः-सायं दूध से ले। रक्तचाप वृद्धि कम होती है। अनिद्रा व उन्माद मे भी लाभदायक है। पथ्य मे हल्का सुपाच्य आहार लें। विश्राम करे। गहरी नींद लें। चिकनाई व भारी पदार्थ न लें, चिन्ता, शोक, क्रोध, अतिश्रम, अति जागरण अपथ्य है।

आर्य विद्या सभा पठानकोट का चुनाव

आर्य विद्या सभा पठानकोट का चुनाव आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल पठानकोट में सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ। निम्न अधिकारी चुने गए।

श्री रमेश अग्रवाल-प्रधान, चौ. वीरेन्द्र सिंह-उप प्रधान, श्री नरेन्द्र कालड़ा-उप प्रधान, श्री राम आहलूवालिया-महामन्त्री, श्री सुभाष मित्तल-मन्त्री, श्री डा. अरविन्द कालड़ा-कोषाध्यक्ष। श्री संत महाजन-प्रबन्धक-आर्य महिला कालेज पठानकोट। श्री यशपाल गांधी-प्रबन्धक-आर्य गर्ल्ज सी.सै. स्कूल पठानकोट।

श्री इन्द्रजीत वर्मा एडवोकेट प्रबन्धक-आर्य सी.सै स्कूल पठानकोट।

प्रिं. स्वतन्त्र कुमार प्रबन्धक-एम.डी के आर्य सी.सै. स्कूल पठानकोट।

इन सभी शिक्षा संस्थाओं का पठानकोट के शिक्षा क्षेत्र में अपना एक विशेष स्थान है। यह सन् 1901 से कार्य कर रही हैं और निरन्तर उन्नति की ओर बढ़ रही हैं।

-स्वतन्त्र कुमार

क्यों वेद अपौरुषेय हैं ?

□ ले० श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक', मु.पो.-मुरारई, जिला-वीरभूम (पं. बंगाल)

हां, वेद ईश्वरीय ज्ञान है, जो सृष्टि के आदि में ऋषियों-अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा की वाणी द्वारा उत्पन्न हुआ। जिसे हम उन आदि ऋषियों की रचना भी कह सकते हैं। रचना के अनेक अर्थ होते हैं जिसे स्थापित करना अथवा प्रकाश करना कहा जा सकता है। यदि किसी को शंका हो कि ईश्वरीय ज्ञान ऋषियों के द्वारा प्रादुर्भूत नहीं हुआ तो यह भूल धारणा है क्योंकि बिना माध्यम के कोई भी विद्या प्रकट नहीं होती। ऋषि माध्यम थे और वेदों की विद्या ईश्वरीय थी। अतः कोई भी कार्य बिना माध्यम के नहीं होता। उदाहरण के लिए-केवल ईश्वर भी बिना उपादान के कारण के सृष्टि की रचना नहीं कर सकता। इसी प्रकार केवल प्रकृति भी बिना प्रेरक परमात्मा के बहुरूप धारण नहीं कर सकती और उसी प्रकार केवल जीवात्मा भी बिना कारण और सूक्ष्म शरीर के स्थूल शरीर का निर्माण नहीं कर सकता। प्रत्येक दृश्य वस्तु अथवा वेदमन्त्रों को वाणी द्वारा प्रकाश करने में सरस्वती शक्ति की प्रेरणा होती है अर्थात् यह वेद माता सविता की तरफ से उन आदि पूर्व पुण्यात्माओं मे उनके आविर्भाव होने के समय वाणी द्वारा मन्त्रों की ध्वनि उत्पन्न होने लगती है। इसका कारण यह है कि वेद को प्रकाश करने वाले देव जन्म से ही पूर्ण ज्ञानी होते हैं। क्योकि

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वती सुकृतो अह्वायन्त सरस्वती दाशुषे वार्यदात्।
(ऋग्वेद, 10-17-7)

दिव्य गुण चाहने वाले सरस्वती (विज्ञानवती वेद विद्या) को धारण करते हैं । यज्ञ के आयोजन के लिए वेद वाणी सरस्वती का आश्रय लेते हैं। श्रेष्ठ कर्म करने वाले वेद वाणी सरस्वती के द्वारा कर्मानुष्ठान करते हैं। वेद वाणी सरस्वती से साधकजन श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त करते हैं।

उसके बाद वेद मन्त्र अन्य ऋषियों को उपलब्ध होने लगा-जिसे श्रुति कहा गया है। ऐसे लाखों, करोड़ों वर्ष से यह चारों वेदों के मन्त्र श्रुतिरूप में परम्परा से चला आ रहा था, बाद में लिपि बद्ध हुआ, कुछ मन्त्र भोजपत्र आदि पर लिखे जाते थे। मन्त्रों की संख्या वही है जो करोड़ों वर्ष पहले थी-आज भी वही है-आर्यावर्त्त में युग-युगों से इतना परिवर्तन होने के बाद भी सूर्य जैसा वेद मन्त्रों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

ऋग्वेद-में कुल 10 मण्डल, 85 अनुवाक, 1028 सूक्त, और 10522 मन्त्र हैं, यही सबसे बड़ा वेद है।

यजुर्वेद में कुल 40 अध्याय और 1975 मन्त्र हैं।

सामवेद वेद में कुल 1824 मन्त्र हैं जिनमें से अधिकतर मन्त्र ऋग्वेद आदि में आ चुके हैं, कुल 80 मन्त्र नये हैं।

अथर्ववेद में कुल 20 काण्ड, 111 अनुवाक् 731 सूक्त और 5977 मन्त्र हैं।

इस प्रकार कुल चारों वेदों में मिलाकर 20298 मन्त्र हैं, जिनमें से अनेक मन्त्र दो बार या तीन बार भी आये हैं।

हम पहले भी लिख आये हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। जिस प्रकार आंख के लिए सूर्य की और कान के लिए आकाश की सहायता की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानवी बुद्धि के लिए ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता होती है और जिस प्रकार सूर्य, आकाश आदि पदार्थ सृष्टि के आदि में ही रचे जाते हैं उसी प्रकार सृष्टि के आदि में ही वेदों की रचना हुई जैसा कि यजुर्वेद के 31वें अध्याय के 7वें मन्त्र में कहा गया है-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानिजज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्मादजायत॥

अर्थात्-उस परमात्मा से ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद उत्पन्न हुए।

प्रश्न-ईश्वर तो निराकार है, उसने वेदों को कैसे रचा?

उत्तर-ईश्वर निराकार होते हुए भी अपना ज्ञान तो दे सकता है। उसने वही किया। सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों को उसने वेद का ज्ञान दिया था।

ऋग्वेद में ज्ञान काण्ड वह **अग्नि ऋषि** पर प्रकट हुआ। **यजुर्वेद** में कर्मकाण्ड है वह **वायु** ऋषि पर प्रकट हुआ। सामवेद में **उपासना काण्ड है, वह आदित्य** पर प्रकट हुआ। **अथर्ववेद** में **विज्ञान काण्ड है वह अंगिरा** पर प्रकट हुआ।

वैसे चारों वेदों में वे सभी विषय (बीजात्मक रूप से) सम्मिलित हैं जो सृष्टि में मनुष्य जाति के लिए उपयोगी हैं। किन्तु वेद मन्त्र यौगिक होने से उसके भाष्य में भी भेद हो गया। वेद के व्याकरण ठीक से न जानने के कारण ऐसा हुआ। अनेक भाष्यकारों ने अपने-अपने स्वार्थ के अनुसार उसके सच्चे अर्थ का अनर्थ कर डाले। जादू-टोना, मांस-भक्षण, पशु यज्ञ जैसे अनेकों उस पवित्र मन्त्रों से व्याख्या कर दिए जो बिल्कुल असत्य था और है। किन्तु 125 वर्ष पूर्व ऋषि दयानन्द ने उस वेद मन्त्रों का सही अर्थ करके यह प्रमाणित कर दिया कि उसमें किसी का इतिहास नहीं है और न वह बहुदेववाद है अपितु वह वेद विद्या की पुस्तक है आज देश-विदेश के विद्वान् भी वेद मन्त्र को विद्या और ज्ञान का आदि स्रोत मानने लगे हैं। संसार में सबसे प्राचीन और आर्यों का सबसे महान् धर्म ग्रन्थ वेद ही है। वेद स्वतः प्रमाण हैं, अन्य सारे ग्रन्थ परतः प्रमाण है अर्थात् अन्य ग्रन्थों में यदि कोई बात वेद के विरुद्ध होगी तो वह माननीय नहीं होगी, लेकिन वेद की प्रत्येक बात प्रमाण रूप है। यही बात मनुस्मृति में कही है-

धर्मजिज्ञासामानानां प्रमाणं श्रुतिः

अर्थात्-धर्म के जानने वाले के लिए वेद ही सबसे अधिक प्रमाण है।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि वेद में बीजात्मक ज्ञान है। किसी मशीन के पार्ट के अनुसार उसके एक-एक यन्त्रों के नाम नहीं है। केवल उन आविष्कारों के नाम हैं और जिन शक्तियों के नाम अंग्रेजी में है उन्हीं सब शक्तियों के नाम वेद मन्त्रों के संस्कृत में हैं। आयुर्वेदिक, चिकित्सा विज्ञान, स्थलयान, जलयान, वायुयान, बिजली, नक्षत्रों का ज्ञान, गणित, संगीत के सात, सप्त धातु, सातकिरण के गुण, युद्धास्त्रों के नाम, दिशाज्ञान, गृहनिर्माण, राजनीति, सामाजिक ज्ञान, अष्टांग योग और यज्ञ विद्या ज्ञान आदि के अनेक मन्त्र उसमें विद्यमान हैं।

अतः उस विद्या की पुस्तक के मन्त्रों से कई प्रकार के नये आविष्कार जाने जा सकते हैं। वेदों के विद्वानों को चाहिए कि उन सबकी खोज करें।

संसार में केवल 200 वर्ष में साईंस में उन्नति होने का मूल कारण हमारे भारत वर्ष के ऋषियों द्वारा सुरक्षित वेद और वैदिक शास्त्र है जिनसे विज्ञान में प्रगति होती गई। इस सम्बन्ध में मैंने **विद्या** नामक अपने लेख में लिख दिया है जो **आर्यमित्र** में लखनऊ से प्रकाशित हुई है **मधुर-लोक** मासिक पत्रिका दिल्ली से भी प्रकाशित है।

देखिये वेदो की महानता आज से लाखों वर्ष पूर्व भी थी, परन्तु इतना साइन्स का विकास नहीं किया गया था। उस समय भी वेदों के मन्त्र-विद्या विद्यमान थी। किन्तु उस समय आर्य ऋषि लोग जानते थे कि यदि केवल भौतिक विद्या का विकास किया गया तो मानव जगत् में रोगोत्पन्न और अशान्ति अधिक फैल जाएगी, इसलिए विशेषकर केवल यज्ञ और अष्टांग योग विद्या पर अधिक ध्यान दिया और सफल भी हुए। कितने प्राचीन काल से वेद हैं इसका निर्णय आज तक नहीं हो पाया। इसलिए कहना पड़ता है कि यह पवित्र वेद-विद्या का ज्ञान ईश्वरीय है जो अपूर्व ऋषियों द्वारा उद्भव हुआ है।

विनोदप्रिय महर्षि दयानन्द सरस्वती

❑ ले० श्री वेदप्रकाश आर्य

विश्व के महानत्तम युगपुरुषों में महर्षि दयानन्द सरस्वती का सर्वोच्च स्थान स्वीकार किया जाना चाहिए। योगिराज अरविन्द ने ठीक ही कहा है–"विश्व के महापुरुषों की शृंखला को विश्व के सर्वोच्च पर्वतराज हिमालय के रूप में मानने पर स्वामी दयानन्द सरस्वती सर्वोच्च शिखर गौरीशंकर माने जाएंगे।" स्वतन्त्र भारत की प्रथम संसद के अध्यक्ष श्री मावलंकर जी ने कहा है कि "महात्मा गांधी भारत के राष्ट्रपिता है तो महर्षि दयानन्द निश्चय ही राष्ट्र के पितामह हैं।" ऐसे महान् व्यक्तित्व के धनी महर्षि दयानन्द सरस्वती जहां दूरदर्शी विचारक, महान् समाज-सुधारक, स्पष्ट वक्ता, निडर, भविष्यद्रष्टा और वेदज्ञ थे, वहीं वे गम्भीर एवं विनोदी भी थे। उनका विनोद केवल हास्य का भाव दर्शाने वाला ही नहीं, ज्ञानार्जन कराने वाला भी होता था। उनका विनोद सच्चाई लिए एवं रोचक करने वाला होता था। महर्षि दयानन्द से जुड़ी ऐसी ही कुछ घटनाएं तथा विनोदी क्षण यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं। महर्षि द्वारा व्यक्त विनोद के स्वर श्रोताओं के जीवन की कायापलट देते थे।

एक घटना दानापुर (बिहार) की है। स्वामी जी देशाटन करते हुए बिहार में दानापुर पहुंचे। वहां कुछ लोगों के मध्य बैठे वे धर्म-चर्चा कर रहे थे। उनमें से एक थे श्री ठाकुर प्रसाद स्वर्णकार। चर्चा के दौरान स्वर्णकार जी ने स्वामी जी से निवेदन किया–"महाराज, योगाभ्यास की कुछ विधि बतलाइये।" उनकी बातें सुनकर स्वामी जी ने कहा–"एक विवाह और कर लो तो तुम्हारा योग पूरा हो जाएगा।" यह सुनकर निवेदनकर्त्ता तो अवाक् रह गया, वहीं अन्य लोग स्वामी जी तथा स्वर्णकार जी का मुंह ताकने लगे। स्वामी जी का उत्तर मात्र एक संयोग था। उन्होंने स्वर्णकार जी की उम्र देख कर ही कहा था, परन्तु वास्तविकता यह थी कि श्री ठाकुर प्रसाद ने एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह कर लिया था। जब उन्हे अन्य लोगो से सही बात का पता चला तो स्वामी जी मात्र मुस्कराकर रह गये। अन्य लोग जहा स्तब्ध रहे वहीं स्वामी जी के विनोद का भी आनन्द लिया।

धर्म-प्रचार करते हुए स्वामी दयानन्द जी उत्तर प्रदेश के एक नगर में पहुंचे। वहा के किसी नगर सेठ की बगिया में विश्राम किया। एक दिन एक भक्त उनसे चर्चा कर रहा था। चर्चा का विषय समाज मे वर्ण-व्यवस्था की एव जाति-प्रथा से सम्बन्ध था। इसी समय आकर एक अन्य सज्जन ने स्वामी जी के सामने भोजन की थाली रख कर भोजन स्वीकार करने की प्रार्थना की। स्वामी जी के भोजन करते समय वह भक्त वहां बैठा रहा। भोजन से निवृत्त होने के पश्चात् स्वामी जी पूर्व से चर्चा कर रहे भक्त की ओर मुड़े। तभी उस भक्त ने कहा–"महाराज, आपने अछूत की रोटी खा ली।" स्वामी जी ने बिना कुछ सोचे तपाक से उत्तर दिया–"नहीं तो। मैंने तो गेहूं की रोटी खा ली है।" उत्तर सुनकर उक्त सज्जन अवाक् रह गये और झेंप मिटाने के लिए मुस्कराने लगे।

सुनने में बात सामान्य विनोद की रही, पर उसमें गहरी सच्चाई थी और जन्मना जाति-व्यवस्था तथा छूतछात पर करारी चोट भी की गई थी।

स्वामी जी भ्रमण करते हुए धर्म-प्रचार के उद्देश्य से एक बार उत्तर-प्रदेश के किसी नगर में पहुंचे। वहां के ठाकुर साहब के बंगले में वे रुके हुए थे। वहा भी एक घटना भोजन के समय घटित हुई–स्वामी जी फूल धातु (काँसे) की थाली में भोजन कर रहे थे। तभी एक अन्य सन्यासी जी वहां उपस्थित हुए और तपाक से कह बैठे–"स्वामी जी, आप धातु की थाली में भोजन कर रहे हैं। सन्यासी के लिए धातु-स्पर्श तो वर्जित हैं।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती मौन भोजन करते रहे। भोजन पूरा करने के पश्चात् आगन्तुक सन्यासी से स्वामी जी ने पूछा–"आपने क्या अपना सर जूते से मुडवाया है ? क्या उस्तरा धातु का नहीं था।" स्वामी जी का उत्तर सुनकर आगन्तुक सन्यासी तो मौन हो गए, परन्तु वहां उपस्थित अन्य लोग हस पड़े। स्वामी जी का कथन मधुर, कटाक्षपूर्ण और विनोदी था–पर था एकदम स्टीक।

एक अन्य स्थान पर चर्चा के दौरान किसी ने स्वामी जी के समक्ष जाति-व्यवस्था पर प्रश्न उठाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सहज भाव से कहा–"जातिजगत भेद-विचार सम्भव नहीं है और न ही हो सकता है।" प्रश्नकर्त्ता ने कहा–ऐसा क्यो ? स्वामी जी ने सहज भाव से कहा–"उदाहरणार्थ यदि एक ब्राह्मण के पुत्रो में से एक ईसाई बन गया, दूसरा मुसलमान, तो फिर वे किस जाति के कहलायेगे ? जन्म से तो दोनो ब्राह्मण हैं, परन्तु बाद मे ब्राह्मण नहीं रहे। जब जन्म से ब्राह्मण बालक को 'ब्राह्मण' नहीं माना गया तो वह जन्मना उस जाति का कैसे कहा जाएगा ?" प्रश्नकर्त्ता स्वामी जी का मुह ताकते रह गये।

स्वामी दयानन्द जी देश-भ्रमण करते हुए धर्म-चर्चा के साथ-साथ शास्त्रार्थ भी कर रहे थे, वेद-प्रचार भी कर रहे थे। एक और स्थान की एक घटना उसी प्रकार की है––घटना उत्तर प्रदेश की ही है–प्रवचन के पश्चात् एक सज्जन स्वामी जी के सम्मुख आकर खड़े हो गये। स्वामी जी ने संकेत से उन्हें कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। आगन्तुक सज्जन ने क्रुद्ध स्वर मे कहा–"आपने मुझे बैठने के लिए नीचा आसन दिया। मुझे भी आपकी तरह ही ऊचा आसन चाहिए।" स्वामी जी ने शान्त भाव से कहा–"मैं प्रवचनकर्त्ता हू इसलिए ऊंचा आसन मिला है। आप कुर्सी-पर-कुर्सी रख लीजिए तो वह और ऊची हो जाएगी। आश्चर्य। बैठने में भी ऊच-नीच का भेद-भाव मानते हैं। एक बात बतलाइये कि सम्राट के मुकुट पर बैठने से क्या कोई मक्खी या मच्छर बडा हो जाएगा। किसी वृक्ष पर कागा (कौआ) या बन्दर क्या मनुष्य से ऊचा हो जाएगा ?"

आगन्तुक सज्जन मौन हो गए और स्वामी जी के प्रवचन शान्त भाव से सुनते रहे। स्वामी जी के शान्त मुख-मण्डल को देखकर वे आश्चर्य करने लगे–"ऐसा निर्भीक व्यक्ति।" प्रश्न और उत्तर सुनने मे है तो बहुत छोटा परन्तु है बहुत गम्भीर, साथ ही विनोद का स्वर लिए हुए। समझने वाले स्वामी जी का उत्तर सुनकर मन ही मन मुस्कराये बगैर नहीं रहे होगे।

निरन्तर धर्म-प्रचार करते हुए देश-भ्रमण के प्रसग मे स्वामी दयानन्द जी के सामने ऐसे अनेक अवसर आए जब उनके शान्त, सटीक पर विनोद स्वर मे दिए जाने वाले उत्तरो को सुनने वालो के साथ ही आगन्तुक प्रश्नकर्त्ता व्यक्ति के मन मे भी गुदगुदी उठे बगैर नही रही होगी। स्वामी जी के उत्तर जहा रोचक और विनोदी स्वर वाले होते थे वहीं वे ज्ञानपूर्ण एव आखे खोलने वाले भी हुआ करते थे।

डेरा बाबा नानक में शहीदी दिवस

आर्य समाज डेरा बाबा नानक में 16-9-2001 को शहीद श्री विक्रान्त की स्मृति में शहीदी दिवस मनाया गया। इस अवसर पर पठानकोट, दीनानगर, दयानन्द मठ दीनानगर सुजानपुर, धारीवाल, गुरदासपुर, बटाला तथा जिला गुरदासपुर की सभी आर्य समाजों के अधिकारी व सदस्य वहां उपस्थित हुए। इस अवसर पर सारे नगर में शोभा यात्रा निकाली गई जिसमे भारी संख्या में डेरा बाबा नानक तथा जिला गुरदासपुर की आर्य समाजों से पधारे सभी महानुभावो ने भाग लिया। यह शहीदी सम्मेलन श्री प्रि स्वतन्त्र कुमार जी की अध्यक्षता में हुआ। इसमें मुख्य अतिथि श्री निर्मल सिंह काहलों पंजाब विकास एवं पंचायत मन्त्री थे। इस अवसर पर उन्होंने शहीद विक्रान्त को अपनी श्रद्धाजलि भेट की और आर्य भवन निर्माण के लिए 70 हजार रुपए देने की घोषणा की। आर्य समाज बटाला ने 11 हजार रुपए देने की घोषणा की, स्त्री आर्य समाज दीनानगर ने 11 सौ रुपए, आर्य समाज दीनानगर ने 500 रुपए तथा अन्य भी कई महानुभावों ने दान देने की घोषणा की। इस अवसर पर पठानकोट से श्री प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी, श्री वेद गुप्ता जी, श्री विनोद मल्होत्रा जी, श्री कौशल जी, श्री बाल कृष्ण जी महाजन तथा अन्य बहुत से महानुभाव वहां पहुचे, दीनानगर से आचार्य स्वामी सदानन्द जी, श्री रघुनाथ सिह जी शास्त्री, स्त्री आर्य समाज की बहने व दयानन्द मठ के ब्रह्मचारी तथा बहुत से अन्य महानुभाव वहा पहुचे थे। करनाल से स्वामी ईश्वर मित्र पहुंचे थे। धारीवाल से श्री जगदीश महाजन, गुरदासपुर से बहन सन्तोष अम्बा, सुजानपुर से श्री वेद प्रकाश उप्पल, और बटाला से श्री पलविन्दर चौधरी भी बहुत से महानुभावो के साथ वहा पहुंचे थे। यह कार्यक्रम बडा प्रभावशाली रहा है। इस अवसर पर आचार्य स्वामी सदानन्द जी व स्वामी ईश्वर मित्र जी व शहीद विक्रान्त के पिता जी, श्री निर्मल सिंह काहलो, म्यून्सिपल कमेटी के प्रधान श्री सुखदीप सिंह जी को सरोपा भेट किया और उनका विशेष सम्मान किया गया। सारा कार्यक्रम बडा सफल रहा। जनता पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा। –मन्त्री

जिला आर्य सभा गुरदासपुर

पठानकोट में वेद प्रचार

आर्य समाज मेन बाजार पठानकोट (गुरदासपुर) द्वारा वेद प्रचार का आयोजन किया गया। आर्य समाज तथा परिवारों मे समारोह किए गए। 3 सितम्बर से 9 सितम्बर 2001 तक निरन्तर वेद प्रचार चलता रहा। 4-9-2001 को श्री सत्य प्रकाश सिंह जी के घर पर 5-9-2001 को, श्री अशोक जी के घर पर, 6-9-2001 श्री वीरेन्द्र महाजन, 7-9-2001 श्री चरण दास महाजन, 8-9-2001 श्री यज्ञपाल जी गान्धी के घर पर यज्ञ व सत्संग किया गया। यज्ञ की पूर्णाहुति 9-9-2001 को आर्य समाज मे डाली गई जिसमें सभी यज्ञमानो ने भाग लिया। चार हवन कुण्डो पर 16 यज्ञमान बैठे थे। ऐसे ही परिवारों में कई-कई यज्ञमान बनते रहे। इस कार्यक्रम में पठानकोट की सभी आर्य शिक्षा सस्थाओं प्रिसिपलों, अध्यापकों, प्राध्यापकों व सारे स्टाफ मैम्बरों तथा विद्यार्थियों ने भी भाग लिया। इस अवसर पर श्री प निरजन देव जी के बहुत प्रभावशाली उपदेश होते रहे। श्री पं विनोद जी शास्त्री यज्ञ के ब्रह्मा रहे। श्री राम कुमार जी तथा रजनीश नैव के भजन होते रहे।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने मे श्री विनोद जी मल्होत्रा प्रधान, श्री सत्य प्रकाश सिह मन्त्री, श्री यशपाल गाधी, श्री रमेश जैन, श्री राकेश महाजन, श्री सुशीला महता, श्री सुदेश महेन्द्रु, श्री पृथ्वी राज महाजन, श्री वेद गुप्ता, श्रीमती कौशल्या नैव श्रीमती सविता कालडा, बहन अमृता का पूरा सहयोग मिला। कार्यक्रम की सफलता का श्रेय प्रि स्वतन्त्र कुमार को जाता है उन्होने इस कार्यक्रम मे अपना विशेष सहयोग प्रदान किया।

वैदिक दर्शन

ले० आचार्य भद्रसेन जी बी. 2,92/7 बी शालीमार नगर होशियारपुर

(गतांक से आगे)

(रुपए की कहानी)–सांचों में ढल जाने पर मेरी शक्ल गोल हो गई थी। मेरे एक ओर तीन शेर तथा दूसरी ओर मेरी पुण्य तिथि अंकित की गई। मैं प्रसन्नता मे झूम उठा, अब मुझे गाड़ी की यात्रा करने को मिली । यात्रा मे मैं आराम से सो गया। धीरे-धीरे गाड़ी चलती रही, अन्त मे एक बडे नगर मे पहुंच कर मुझे अपने बन्धुओ सहित बैंक में पहुंचा दिया गया।

बैंक बहुत बड़ा था, मैं अपने आप को स्वतन्त्र अनुभव कर रहा था। बैंक में बहुत से लोग आते, वे रुपए लाते और जमा करा जाते। अनेक सज्जन तो रुपए लेने के लिए आते थे। कुछ लोग ऐसे भी आते, जो केवल नोटों की अदला-बदली ही करते। एक दिन एक बनिया आया, उसने शायद सौ रुपए लेने थे। बैंक के बाबू ने सौ का नोट लेकर बनिये को सौ रुपए दे दिए। बनिया भी अजीब आदमी था, पर वह मेरा मालिक था। इसलिए निन्दा तो नहीं करनी चाहिए, हां, इतना जरूर कहूंगा, कि अव्वल दर्जे का मक्खीचूस था। उसने पहले तो इतने जोर से जमीन पर मारा, कि मेरी तो बस जान ही निकल गई। फिर उसने हमे एक मैली-कुचैली पोटली में बांध कर पेटी मे बंद कर दिया। मुझे तो उस पेटी मे सांस लेना ही दूभर हो गया। बनिया कभी-कभी पेटी को खोलता जब भी पेटी खुलती, तो वह पोटली को खोलता। मुझे हवा के ठण्डे, ताजे झोकों के साथ लाला जी के मुख से श्रीराम के स्वर भी सुनने को मिलते। प्रभु का नाम सुन कर मेरा मन प्रसन्न हो जाता। बनिया फिर हमे पोटली में बद कर देता, उसका यह क्रम था।

एक दिन बनिया कहीं बाहर गया हुआ था, उसकी पत्नी ने हमे पेटी से खोल कर निकाला। मैं तथा मेरे चार साथी उसके हाथ लगे। उस दिन शायद मंगलवार था और उसका व्रत था। चार मेरे साथी (रुपए) तो उसने प्रसाद में खर्च कर डाले और मुझे लेकर उसके कदम मन्दिर की ओर बढ़ गए, मन्दिर में भीड़ थी। लोग भगवान के दर्शन करके आनन्दित हो रहे थे। मेरी मालकिन ने भगवान के दर्शन करके प्रसाद तथा मुझे भगवान के चरणों मे रख दिया। वहां पहुंच कर मैं अपने भाग्य पर प्रसन्न होने लगा था, कि पुजारी जी ने मुझे यहां टिकने नहीं दिया। दूसरे दिन मैं प्रसाद बेचने वाले की दुकान पर भेज दिया गया और फिर कभी समाप्त न होने वाली मेरी 'एक से दूसरे के हाथ मे जाने वाली' यात्रा शुरू हो गई। हां, यही मेरी आत्म कथा है।

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म

ब्रह्मेश–हां, स्वामी विद्यानन्द जी विदेह ने अपनी आत्मकथा में एक स्थल पर इसी प्रसंग से जुड़ी चर्चा का बडा सुन्दर चित्रण किया है। वे लिखते है, कि मैं एक नगर में वेद कथा करने गया हुआ था, कथा से पूर्व प्रतिदिन मै–

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि–(अर्थात् ब्रह्म के लिए नमस्कार है, वायो। आप के लिए नमन भाव है। तुम ही प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, तुम को ही स्पष्ट रूप से ब्रह्म कहूंगा ।

इस मन्त्र का उच्चारण करता था। कथा कई दिन से चल रही थी, जिस परिवार मे मैं ठहरा हुआ था, वहा एक दिन उसी परिवार का एक पांच-छः वर्ष का बालक अपने माता-पिता के साथ बैठा था। वह उनके साथ कथा मे नियमित उपस्थित रहता था। जब उसके माता-पिता मेरे साथ वार्तालाप मे व्यस्त थे, कुछ देर तो बालक शान्ति पूर्वक बैठा रहा। पुनः बाल स्वभाववश खेलने लगा। खेलते-खेलते उसने मेज से एक सौ रुपए का नोट उठाया और दोनों हाथो मे लेकर उस नोट को देखते हुए अकस्मात गाने लगा–**त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि**–कुछ क्षण पश्चात मेरा ध्यान उस ओर गया। बालक की क्रिया को देख कर और शब्दों को सुन कर मेरे मस्तिष्क में एक दम आया, कि इस बालक ने तो उस मन्त्र की अनूठी संगति सुझाई है। आज अधिकतम का जीवन व्यवहार वस्तुतः यही पाठ कर रहा है, कि **'पैसा ही असली भगवान है?'**

प्रा0–इस सारी चर्चा से स्वतः स्पष्ट हो गया, कि धन भौतिक पदार्थो के आदान-प्रदान का मानदण्ड तथा मूल्यांकन और प्राप्ति का आधार होने से प्राचीन काल मे तो कम, अपितु आज पूर्ण ब्रह्म चरितार्थ हो रहा है और धन की ही 'अहं ब्रह्मासि' के रूप में सर्वत्र गुजार सुनाई देती है। आज की स्थिति को देख कर स्वतः मुख से निकलता है।

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम। यस्य गृहे टका नास्ति हा टका टकटकायते॥

अर्थात् पैसा ही धर्म, कर्म और परम पद है, जिसके पास यह नहीं है, वह केवल दूसरो को ताकता भर रह जाता है।

हां, कहानीकार, श्री सुदर्शन जी ने अपनी 'झरोखे' नामक पुस्तक मे 'रुपये का राज्य' शीर्षक से लिखा है–

'मुझे तो साफ दिखाई देता है, कि जगलो मे, शहरों मे, गांवो मे, पहाड़ों मे, मैदानो मे, मन्दिरों में, मस्जिदों मे, दिलों में, दिमागो में जहां तक संसार फैला हुआ है, वहा तक रुपए का राज्य है। लोग मूंह से भगवान का नाम लेते हैं, मगर अपने मन-मन्दिर में रुपए की पूजा करते हैं। यही वह परमात्मा है, जो सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है। यही वह सम्राट है, जिस के राज्य पर सूरज अस्त नहीं होता। यही वह सत्ता है, जिस के सामने सारा संसार सिर झुका कर प्रणाम करता है।'

'अन्न ब्रह्म इति'

ब्रह्मदत्त–यह चर्चा तो बड़ी रोचक हो गई है, इस रोचकता से मुझे भी एक लोकोक्ति स्मरण आ रही है, कि 'ढिड्डे न पइयां रोटियां. ते सब्बे गल्लां खोटियां' । क्योंकि बडे के सामने छोटा या उसके अभाव में सब कुछ फीका ही लगता है या वह कर्म असम्भव बन जाता है। तभी तो कहते हैं–'भूखे न होय भजन गोपाला, यह लो अपनी कण्ठीमाला।'

प्रा0–ब्रह्मदत्त–तूने व्यवहार के आधार पर जो तात्पर्य लिया है, वह केवल अभिप्राय ही नहीं, अपितु उपनिषद् के ऋषि ने भी स्पष्ट शब्दों में अन्न को ब्रह्म कहा है। इस दृष्टि से तैत्तिरीय उपनिषद् 2,2–'अन्नं ब्रह्मोपासते' तथा 'अन्नं ब्रह्मेति व्याजानात् 3, 2 के वचन विशेष द्रष्टव्य हैं क्योंकि वहां आया है–अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात्सर्वौषधमुच्यते. .सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति।'

येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नाद् भवन्ति भूतानि जातान्यन्नेन वर्धन्ते। अधतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्न तदुपच्यते॥ तै. 2,2

उत्पन्न हुए पदार्थों में से अन्न ज्येष्ठ बड़ा है। अतः वह औषधवत्, अपना रूप प्रस्तुत करता है। जो अन्न को ब्रह्म की तरह महत्व देते हैं, वे अन्न (के महत्व) को प्राप्त करते हैं।

अन्न के सहयोग से प्राणी उत्पन्न नहीं होते हैं और अन्न के कारण ही बढ़ते हैं । यह खाया जाता है तथा खाता है, अतः यह अन्न कहलाता है।

महाभारतकार ने अन्न के सम्बन्ध मे ये विचार दिए हैं अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाश्चान्ने प्रतिष्ठिताः।

अन्ने धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं प्रभो।

महा 13, 62, 7

अन्नं ह्यमृतमित्याह–13, 62, 31

अन्नतः सर्वमेतद्धि यत्किञ्चित्स्थाणु जङ्गमम्।

13 62, 34

अन्नं वै परमं द्रव्यमन्नं श्रीश्च परा मता ।

अन्नात्प्राणः प्रभवति तेजो वीर्यं बलं तथा॥ महा. 13, 65, 57

अर्थात् सारा चर-अचर संसार अन्न पर आश्रित है। शक्तिदायक, अन्न से प्राण, बल, तेज, वीर्य प्राप्त होते हैं। अतः अन्न को प्राण तथा अमृत कहा जाता है। इससे सिद्ध हुआ है कि अन्न एक महान द्रव्य है। हमें अपने प्रतिदिन के जीवन में स्पष्ट रूप से देखते हैं कि (क्रमशः)

आओ हिन्दी दिवस मनाएँ

रचयिता—आचार्य पवन शर्मा, मानस कुटीर 767/1 कूचा करमों, करमों डियोढ़ि, अमृतसर।

जिसके मन की यह अभिलाषा, जिसके दिल में उपजी आशा,
राष्ट्र भाषा की गरिमा हेतु, उसके संग दो कदम बढ़ाएं॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
निज भाषा और संस्कृति पर, जो सर्वस्व न्यौछावर कर गए।
उनके कृत संकल्पों पर बस, शब्दों के दो फूल चढ़ाएं॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
त्याग, तपस्या और स्वदेशी, भाषा का जो ध्वज फहराएं,
ऐसे धीर, वीर, बलिदानी, कहां गए अब कहां से लाएं॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
हिन्दी हमको छोड़ गई या, हमने हिन्दी को ठुकराया,
श्रद्धावत् या श्राद्ध की भान्ति, कैसे इसका स्मरण कराएं ॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
क्योंकर हमने है अपनाया, जिसने हम पर जुल्म था ढाया।
प्रगति-पथ पर क्या यही है केवल ? कोई तो हमको यह बतलाए॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
अपने राष्ट्र की भाषा हिन्दी, सभ्यता की परिभाषा हिन्दी,
प्रान्त की सीमा में ही रहकर, मत इसका उपहास उड़ाएं॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
एकता का आह्वान है हिन्दी, भारत की पहचान है हिन्दी।
आर्य जनों की श्रेष्ठ यह भाषा, गर्वित मन से सुने सुनाएं॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
व्रत, संकल्प, सौगन्ध उठाकर, हृदय से हिन्दी को अपना कर।
मन से भाषा भेद भुलाकर, इसे इसका सम्मान लौटाएं।
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।
हम हैं हिन्दी हिन्दोस्तानी, यह स्वाभिमान भी कैसा है ?
हिन्दी को ही तज दिया हमने, फिर भी राष्ट्र भक्त कहलाएं॥
आओ हिन्दी दिवस मनाएं।

आर्य समाज एवं युवा शक्ति

आर्य समाज चौक भठिण्डा में प्रतिदिन प्रात: 1 घण्टा दैनिक हवन यज्ञ सत्संग होता है। इसके अतिरिक्त रविवारीय सत्सग नियमित तौर पर होता है, जिसमें 40,50 के बीच उपस्थिति रहती है। दिनांक 9.9 01 के रविवारीय सत्संग में नवगठित राज्य उत्तरांचल की आर्य प्रतिनिधि सभा से श्री चमन लाल जी पधारे। जिन्होंने रविवारीय सत्संग में उपस्थित सभी आर्य जनों को सम्बोधन करते हुए कहा कि इस संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति हैं, एक वह जो केवल अपने लिए ही सोचते हैं। द्वितीय कोटि के वे व्यक्ति हैं जो दूसरे तथा राष्ट्र के लिए सोचते हैं पर उचित कार्य नहीं करते। तीसरे वह जो दूसरो एवं राष्ट्र के लिए सोचते ही नहीं किन्तु उस पर अमल भी करते हैं और अपने शुभ कर्मों द्वारा समाज तथा राष्ट्र की उन्नति में सहभागी बनते हैं। असली रूप मे आर्य वही हैं।

आज के सत्संग में बहन निर्मला जी ने ईश्वर भक्ति का भजन अपने मधुर कण्ठ से सुनाया। उल्लेखनीय यह है कि आर्य समाज भठिण्डा के रविवारीय सत्संग में बच्चों की संख्या (जो कि 10 से 15 वर्षों के बीच है) बढने लगी है। आर्य समाज की प्रगति मे धीमी गति का सबसे बडा कारण युवा शक्ति का आगे न आना है। इसकी पहचान कर हमारे आर्य समाज के पुरोहित पं श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री ने सत्प्रेरणा दी एवं सद् प्रयास किया कि भठिण्डा स्थित दोनो शिक्षण संस्थाओं (जो कि आर्य समाज के निकट हैं) को रविवारीय एवं दैनिक सत्संग में आने की प्रेरणा दी है और वे अपने इस प्रयास में सफल हुए। जिसका प्रमाण यह है कि बच्चो की उपस्थिति 10 से 15 हो गई है। इस पर उपस्थित आर्य जन खुश हुए।

यहीं बस नहीं इनमे से एक बच्चा जिसकी आयु 9 वर्ष की है, जो आर्य माडल हाई स्कूल का विद्यार्थी है, ने मुख्य यजमान के रूप मे उपस्थित होकर अपनी सूझबूझ से ध्यान मग्न होकर आहुतियां दीं। यही बस नहीं आर्य वीर दल के युवक, (जिसका गठन ब्र. सूर्यदेव जी ने गत वर्ष किया था) के सदस्यों की उपस्थिति भी प्रशंसनीय है। इससे अन्य आर्य समाजों को भी प्रेरणा लेनी चाहिए।

महामन्त्री श्री प्रेम भाटिया जी ने श्री चमन लाल जी के पधारने पर एवं उपस्थित आर्य जनो को मार्ग दर्शन करने पर उनका धन्यवाद किया एव हवन यज्ञ के मुख्य यजमान सजीव कुमार को पारितोषिक के रूप मे नकद राशि प्रदान की। उन्होने पुरोहित जी का भी धन्यवाद किया जो बच्चो को आगे लाने का उनका प्रयास है उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं। उन्होने पुरोहित जी से प्रार्थना की थी कि इस कार्य को आगे बढाने के लिए और अधिक परिश्रम करे। शान्ति पाठ के पश्चात् सत्संग की कार्यवाही सम्पन्न हुई।

—महामन्त्री

डी.एम. शिक्षा महाविद्यालय मोगा की गतिविधियां

महाविद्यालय के सभागार कक्ष में 3.9.2001 (सोमवार) को तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता करवाई गई। प्रतियोगिता का उद्देश्य महाविद्यालय के 'शिक्षा फोरम' हेतु सचिव पद के लिए विद्यार्थी का चयन करना था। प्रतियोगिता में 22 विद्यार्थियों ने भाग लिया। मंच-संचालन प्रो. जसपाल सिंह (हिन्दी विभाग) व प्रो. रितु (सामाजिक अध्ययन) ने किया। निर्णायक मण्डल में प्रो. कंवलजीत (पंजाबी विभाग), प्रो. हरलीन कौर (आंग्ल विभाग) व प्रो. राज (हिन्दी-विभाग) थे। निर्णायक मण्डल ने विद्यार्थी नवदीप कुमार को शिक्षा फोरम का सचिव चुना। कार्यकारी प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर जी ने विद्यार्थियों की प्रतिभा की सराहना की व अपना आशीर्वाद दिया।

5-9-2001—डी.एम शिक्षा महाविद्यालय में 'शिक्षा दिवस' 5-9-2001 को बहुत सादगी से मनाया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में डा. एल.एस. सिद्धू (प्रो. विभागाध्यक्ष, मानव जीव विज्ञान) पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से पधारे। विद्यार्थियों द्वारा बहुत सुन्दर शब्द, गीत गाये गए। प्रो. जसपाल सिंह के निर्देशन में विद्यार्थी नवदीप कुमार व कुमारी हरप्रीत ढिल्लो ने मंच संचालन किया। महाविद्यालय के कार्यकारी प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर शर्मा जी ने मुख्यातिथि का परिचय करवाया व शिक्षा के क्षेत्र मे अध्यापक की भूमिका पर विचार रखे। डा. एल.एस सिद्धू जी ने अपने सरल शब्दों में शिक्षा जगत में आ रही समस्याओं पर विचार रखे। कार्यकारी प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर जी व शहर के गणमान्य बुद्धिजीवियों द्वारा मुख्यातिथि को दुशाला व स्मृति चिन्ह भेट किया गया। विद्यार्थियों को इस शुभ अवसर पर चाय पिलाई गई व अध्यापकों व अतिथियो के लिए दोपहर के भोजन का प्रबन्ध किया गया। श्री बोध राज मजीठीया (भूतपूर्व उपाध्यक्ष, डी एम शिक्षा महाविद्यालय) ने मुख्य अतिथि का मोगा में आने पर धन्यवाद किया।

8-9-2001—डी एम शिक्षा महाविद्यालय, मोगा मे प्रतिभा खोज प्रतियोगिता का आयोजन 8-9-2001 (शनिवार) को किया गया। विद्यार्थियों ने गीत, गजल, लोक गीत, नाटक, गिद्दा, भंगड़ा, कविता, शब्द/भजन-गायन, एकल नाट्य प्रतियोगिता में भाग लिया। मंच-संचालन प्रो. कंवलजीत ने बडे आकर्षक ढंग से किया। निर्णायक मण्डल मे प्रो उमेश धीमान (ललित कला विभाग), प्रो. जसपाल सिंह (हिन्दी-विभाग) व संगीतज्ञ श्री रवि थे। तीस विद्यार्थियो को क्षेत्रीय युवा उत्सव के लिए चयन किया गया। अन्त मे कार्यकारी प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर शर्मा जी ने विद्यार्थियों को अपनी प्रतिभा में निखार लाने की प्रेरणा दी।

—प्रो जसपाल सिंह,
(हिन्दी-विभाग)

श्री बिहारी लाल जी मंगला का देहावसान

दिनांक 3 9.01 को आर्य समाज बठिंडा के प्रांगण में, आर्य समाज के उप प्रधान श्री बिहारी लाल जी मंगला का आकस्मिक निधन हो जाने पर समस्त आर्य संस्थाओं द्वारा प्रातःकाल 8.30 से 9.30 बजे तक शोक सभा आयोजित की गई। इस शोक सभा में, आर्य सभा जिला बठिंडा, आर्य समाज बठिंडा, महिला आर्य सभा बठिंडा, गुरुकुल शिल्प विद्यालय, आर्य समाज सिरकी बाज़ार, आर्य समाज सिकन्दर पुरा, आर्य वीर दल, आर्य गर्ल्ज सी. सै. स्कूल तथा आर्य माडल स्कूल, सभी संस्थाओं के पदाधिकारी, सदस्यगण तथा स्कूलों के स्टाफ व छात्राओ ने भाग लिया।

सर्वप्रथम मच का संचालन करते हुए श्री प्रेम भाटिया जी ने अपने श्रद्धा सुमन इन शब्दो मे भेंट किए कि ''श्री बिहारी लाल जी बहुत ही शान्त स्वभाव के, निर्विवाद जीवन बिताने वाले तथा निरोल शुद्ध स्वभाव के व्यक्ति थे।'' तत्पश्चात् श्री महेन्द्र पाल अरोड़ा जी ने भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, वैराग्य पूर्ण भजन–

''दुनिया ते आके जाण तो डरदा ए आदमी। वेखो जी की नादानियां करदा ए आदमी'' दर्द भरे स्वर में गाकर सबके नेत्रों को अश्रुपूरित कर दिया। पुन: श्री चमन लाल महत्ता जी ने–''सदा रहने के लिए कोई आता नहीं। जैसे आप गए वैसे भी कोई जाता नहीं।'' शब्दों के साथ तथा एक कहानी के माध्यम से बताया कि ''जब मृत्यु का समय आ जाता है तो कोई बच नहीं सकता।'' प्रो. श्री ओम प्रकाश मंगला जी ने श्रद्धा सुमन भेंट करते हुए कहा–''वह मेरे चचेरे भाई थे। वे गृहस्थी होते हुए भी एक सन्त थे। कभी किसी की निन्दा, चुगली, अपशब्द, वाद-प्रतिवाद कुछ नहीं।'दाल-रोटी खाओ, प्रभु के गुण गाओ' वाली उक्ति को चरितार्थ करते हुए, सचमुच एक साधु की तरह बिना कोई शारीरिक कष्ट भोगे, बिना किसी से सेवा करवाये अपनी लौकिक यात्रा पूरी कर गए।

प्रिंसीपल श्री एच.सी. गोयल साहिब ने आर्य माडल स्कूल के कोषाध्यक्ष के तौर पर की गई सेवाओं के साथ अपने निजी सम्बन्धों के कारण हुई अपनी हानि बताते हुए श्रद्धांजलि दी। प्रिंसीपल श्रीमती शान्ति जिंदल जी ने ''मृत्यु अटल है। ईश्वर व मौत को हम सदा याद रखें ताकि कोई बुरा कर्म करने व किसी का दिल दुखाने से हम डरें'' इन शब्दों में श्रद्धान्जलि भेंट की। आर्य गर्ल्ज स्कूल की दो छात्राओं ॠचा व मोनिका ने बहुत भाव भरे स्वर में संदेशे आते हैं, हमें तड़पाते हैं, लिखो कब आओगे ?.......गीत गाकर सम्पूर्ण श्रोताओं को रोने को विवश कर दिया। तत्पश्चात् लाला कुलवन्त राय अग्रवाल जी ने श्रद्धांजलि देते हुए कहा–''संसार नश्वर है जो आता है, उसका जाना निश्चित है।'' तथा अपने व्यक्तिगत सम्बन्धों के प्रकाश में बताया ''यह समस्त परिवार बहुत ही कोमल वक्ता, सुसंस्कृत, शिष्टाचारी व समाज सेवी है। हम सब इनसे निष्ठा व लग्न से कर्त्तव्य पालन करना सीखें।'' इसी प्रकार श्रीमती स्वच्छ सचदेवा जी ने ''एक भजन द्वारा'', श्री कृष्ण लाल जटाना जी ने ''हानि: लाभ जीवन मरण सब कुछ प्रभु के हाथ'' शब्दों द्वारा तथा श्री धर्मपाल रल्हन जी ने ''संसार की नश्वरता'' बताते हुए उनको श्रद्धांजलियां भेंट की। माननीय ब्रह्मचारी सूर्यदेव जी ने वेद मन्त्रों का उच्चारण करके वेदों के माध्यम से हमें बताया कि ''हम जाने वाले के गुणो की चर्चा करें व गुणों को अपनाएं। एक भजन ''मैं नहीं मेरा नहीं, ये तन किसी का दिया हुआ है.. ..'' की व्याख्या कर-कर के प्रभु को याद रखने दु:खों को सहन करने की क्षमता मांगते हुए अपने श्रद्धा सुमन भेंट किए। अन्त में श्री पी.डी. गोयल एडवोकेट ने श्री बिहारी लाल जी के शोक संतप्त परिवार एवम् पिता श्री कुन्दन लाल जी व चाचा श्री वजीर चन्द जी के हृदय को समस्त आर्य परिवार की ओर से सांत्वना देते हुए कहा–''हम जानते हैं, एक पिता के लिए वह घड़ी सबसे कठिन होती है, जब उसे अपने पुत्र की लकड़ियां उठानी पड़ती है। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पा का दु:ख अवर्णनीय है। जिनको जिंदगी की शाम में साथी की बहुत आवश्यकता थी। वे हम सबके प्रेरणा स्रोत बन गए हैं परिवार की ओर से श्रद्धांजली समारोह दिनांक 9-9-2001 को भानामल ट्रस्ट बठिंडा में किया गया जिसमें भारी संख्या में लोगों ने भाग लिया। अन्त में शान्ति-पाठ द्वारा सभा समाप्त हुई।

–प्रेम भाटिया

श्री विश्वनाथ को ''आजीवन उपलब्धि सम्मान''

❑ ले० राम नाथ सहगल, दिल्ली

श्री विश्वनाथ को ''आजीवन-उपलब्धि सम्मान'' से सम्मानित करते हुए ''भारतीय प्रकाशन संगठन'' गौरव का अनुभव करती है।

श्री विश्वनाथ ने साठ से अधिक वर्ष पूर्व पुस्तक प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था। लाहौर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते समय वे परिवार द्वारा संचालित प्रकाशन-गृह ''राजपाल एण्ड सन्ज़'' से जुड़े थे। तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध में जब विश्व बाजार जबरदस्त मंदी के दौर से गुजर रहा था, अपनी प्रतिभा और प्रबंध-बुद्धि के बल पर, बहुत कम व्यय में उन्होंने चार भाषाओं में विविध विषयों की पुस्तकें प्रकाशित कीं और अच्छी सफलता प्राप्त की।

उनकी अनेक पुस्तकें भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का समर्थन करती थी, इस कारण अनेक पुस्तकों पर तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था एवं संस्थान से जुड़े अनेक व्यक्तियों के विरुद्ध मुकद्दमें इत्यादि चलाये गये। परन्तु इन सबसे अविचलित वे चालीस के दशक के अन्तिम वर्षों तक देश और समाज में नई चेतना देने वाला साहित्य प्रकाशित करते रहे। तभी भारत का विभाजन हुआ और उन्हें लाहौर छोड़कर दिल्ली आना पड़ा। दिल्ली आने पर साधनों के नितांत अभाव की स्थिति में उन्होंने प्रकाशन कार्य का पुनारंभ किया था। संस्थान की प्रतिष्ठा ही इस समय उनका एकमात्र संबल और पूंजी थी। स्वतंत्र भारत में भी प्रकाशन व्यवसाय का एक तरह से आरम्भ ही हो रहा था और उन्होंने सूझबूझ और साहस के प्रकाशन के नए क्षेत्रों में प्रवेश किया। उनके द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकें गुणवत्ता में बहुत आगे थीं और इंग्लैण्ड में प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों से उनकी तुलना की जाती थी। इन मार्गदर्शन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप संस्थान को विपुल सफलता तथा यश प्राप्त हुआ।

1958 में अपने भाई के सहयोग से उन्होंने देश के पहले विशाल पेपर बैंक प्रकाशन संस्थान ''हिन्दु पाकेट बुक्स'' की स्थापना की। इसकी सफलता में उनका केन्द्रीय योगदान रहा और ''क्लेरियन बुक्स'' तथा ''शिक्षा भारती'' जैसे सहयोगी प्रकाशन भी इससे निकले। 1977 में आपने ''विजय बुक्स प्रा. लि.'' तथा ''ओरियेंट पेपरबैक्स'' की स्थापना की, जो आज अंग्रेजी भाषा में देश के एक अग्रणी संस्थानों में गिने जाते हैं।

वे ''फेडरेशन ऑफ इण्डियन पब्लिशर्स'' के संस्थापक सदस्यों में हैं और वर्ष 1981 तथा 1999 में इसके अध्यक्ष भी रहे हैं। वे ''अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ'' के भी अध्यक्ष रहे हैं। उन्होंने अनेक देशों में भारतीय प्रकाशकों के प्रतिनिधि मंडलों का नेतृत्व किया है, भारत सरकार द्वारा संगठित अनेक अध्ययन टीमों के सदस्य रहे हैं और अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और पुस्तक-मेलों में भारत का प्रतिनिधित्व किया है।

इस समय देश में 600 से अधिक शिक्षण संस्थाओं का संचालन करने वाली डी.ए.वी. कालेज मैनेजिंग कमेटी के वे वरिष्ठ उपाध्यक्ष हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा, स्वास्थ्य, आदिवासी-सेवा आदि कार्यों में लगे एक प्रमुख न्यास लाला दीवानचन्द ट्रस्ट के वे अध्यक्ष हैं। ''राजपाल एजुकेशनल ट्रस्ट के भी वे अध्यक्ष हैं। रोटरी के विविध सेवा कार्यों से भी वे वर्षों से जुड़े रहे हैं। वे रोटरी क्लब दिल्ली नाथ के अध्यक्ष रहे हैं और रोटरी एजुकेशन फाउंडेशन के ट्रस्टी हैं।

श्री विश्वनाथ की साहित्यिक रुचियां भी विविध हैं और उन्होंने कई बहुप्रशंसित पुस्तकों की रचना की है। साहित्य और कविता से उनका विशेष लगाव है। इस समय वे ''आर्यन हैरिटेज'' और ''नया साहित्य'' के सम्पादक हैं।

त्याग और संचय

पं. वेद प्रकाश शास्त्री, 4-ई कैलाश नगर, फाजिल्का पंजाब

एक बार गुरु और शिष्य वन में विचरण कर रहे थे। चलते हुए उन दोनों में विचार-विमर्श हो रहा था। गुरु का कथन था-'त्याग में ही सुख है, आनन्द है।' शिष्य का विश्वास था 'संचय में ही सुख की प्राप्ति है।'

दोनों ही अपने-अपने कथन पर दृढ़ थे। यह निर्णय होना कठिन था कि वस्तुतः सुख किसमें है ? दोनों के अपने-अपने तर्क थे, युक्तियां थीं। शिष्य को गुरु की बात पर विश्वास न होता था।

दोनों का संवाद चल रहा था। इसी बीच सूर्यास्त हो गया। अंधेरा फैलने लगा। वन्य जीव-जन्तुओं की डरावनी आवाज़ें आने लगीं। चलते-चलते नदी आ गई। जलधारा बड़ी तीव्र गति से बह रही थी। पार करना कठिन काम था। नौका थी। नाविक-चलने को तैयार।

गुरु जी त्यागी थे। अतः उनके पास पैसे न थे। दें तो क्या दें ? कहां से दें? शिष्य संचयी था। पैसे खर्चने से संकोच करता था। अब समस्या यह थी कि पैसे कौन दे ? इसी उधेड़ बुन में घना अन्धेरा हो गया। नाविक घर जाने को तैयार था। अतः बोला-'यदि चलना है तो जल्दी करो वरना मैं जा रहा हूं।'

यह सुनकर शिष्य घबरा गया। सोचने लगा-रात्रि में कहीं शेर न आ जाए। चीता, भेड़िया, बाघ, सांप न जाने कितने भयंकर जीव-जन्तु हैं ? कहीं खा गए तो? डरते हुए उसने पैसे निकाले। अपने और गुरु जी के पैसे दिए। इस प्रकार दोनों नदी पार कर गए।

नौका से उतरने के पश्चात् शिष्य बोला-'गुरुदेव ! मैं सत्य ही कहता था कि संचय में ही सुख है। यदि पैसे संचित न होते तो कैसे पार करते ?'

गुरु-'वत्स ! जब तक तुमने पैसे संचित रखे तब तक नदी के उस पार ही खड़े रहे।' जब पैसों का त्याग किया अर्थात् नाविक को दिए तभी नदी पार कर सके। यदि त्याग न करते तो यहां तक कैसे पहुंचते ? अतः त्याग में ही सुख है।

शिष्य गुरु के सम्मुख नतमस्तक, होकर बोला-'गुरुदेव ! आप धन्य हैं।'

आर्य समाज महम में वेद प्रचार

विगत वर्षों की भांति आर्य समाज महम (रोहतक) में दिनांक 4 अगस्त श्रावणी से 12 अगस्त कृष्णजन्माष्टमी तक ऋग्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया गया।

जिसमें यज्ञ के ब्रह्मा एवं वेद कथा आचार्य डा. प्रमोद जी शास्त्री एम.ए.पी.एच.डी. प्राध्यापक दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार व अनुभवी पुरोहित आचार्य रामसुफल जी शास्त्री "वैदिक प्रवक्ता" लाल सड़क हांसी थे। आर्य वीर दल महम के सदस्यों सहित प्रारम्भ से अन्त तक 11 यज्ञमान बने। जिसमें मुख्य यज्ञमान श्री जय प्रकाश जी सुपुत्र श्री रत्न प्रकाश जी आर्य मंत्री आर्य समाज महम थे। इस अवसर पर पूज्य स्वामी कीर्तिदेव जी, महात्मा तारा चन्द जी वानप्रस्थी, पं अंगन लाल जी शास्त्री व उच्च कोटि के भजनोपदेशक पं. नारायण सिंह आर्य नजफगढ़ (दिल्ली) ने अपने विचार रखे। यज्ञ की उत्तम व्यवस्था पं वीरेन्द्र कुमार (विद्यावाचस्पति) पुरोहित आर्य समाज महम ने की।

आर्य समाज बरनाला का निर्वाचन सम्पन्न

आर्य समाज बरनाला (संगरूर) का साधारण सभा अधिवेशन गत दिवस आर्य समाज मन्दिर में सम्पन्न हुआ जिसमें गत वर्ष का आय-व्यय का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया जो सर्वसम्मति से पारित हुआ। गत वर्ष की गतिविधियों व वैदिक धर्म प्रचार की उपलब्धियों पर भी चर्चा हुई। तदोपरान्त आगामी वर्ष के लिए निर्वाचन प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जिसमें सर्व सम्मति से पुनः श्री अमृत लाल गुप्ता को अध्यक्ष चुन कर बाकी पदाधिकारी व कार्यकारिणी सदस्य मनोनीत करने का अधिकार उन्हें प्रदान कर दिया गया। श्री गुप्ता ने निम्नलिखित कार्यकारिणी घोषित की-उपप्रधान-श्री सतीष सिंधवानी, श्री भारत मोदी, श्री भागमल जी। महासचिव-श्री गोपाल कृष्ण बांसल। सचिव-श्री राम कुमार सोबती। कोषाध्यक्ष-श्री विजय कुमार गोयल। प्रचार मन्त्री-श्री बसन्त शोरी, संगठन मन्त्री-श्री डा. अलोक सिंगला। पुस्तकालयाध्यक्ष-श्री राम चन्द्र आर्य।

इसके अतिरिक्त कार्यकारिणी में 12 सदस्य लिए गए हैं जबकि सभी शिक्षण संस्थाओं के प्रिंसिपल महोदयों को विशेष आमन्त्रित लिया गया है।

—अमृत लाल गुप्ता, प्रधान

पीपाड़ शहर में अथर्ववेद पारायण यज्ञ सम्पन्न

आर्य समाज पीपाड़ शहर का वार्षिक उत्सव एवं अथर्ववेद पारायण यज्ञ दिनांक 15-8-01 से 21-8-01 तक श्री भरत लाल जी शास्त्री हांसी (हरियाणा) के ब्रह्मत्व मे सम्पन्न हुआ। पं. भूपेन्द्र सिंह जी भजनोपदेशक एवं श्री लेखराज जी ने मधुर भजनों से लोगों को मन्त्र मुग्ध कर दिया।

दिनांक 18-8-01 को वार्षिक उत्सव का ध्वजारोहण सार्वदेशिक सभा के प्रधान एवं गुरुकुल महाविद्यालय झज्जर के प्राचार्य श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती द्वारा किया गया। इस अवसर पर जोधपुर पाली, सुंमेरपुर, शिवगंज, मेड़ता, बालोतरा, बूंदी, कोसाना, भावी एवं बिलाड़ा आदि से आर्य जन पधारे थे।

वैदिक साधनाश्रम गुरदासपुर का उत्सव

वैदिक साधनाश्रम गुरदासपुर का वार्षिक उत्सव 30 सितम्बर से 7 अक्तूबर तक स्वामी प्रकाशानन्द जी की अध्यक्षता में मनाया जा रहा है। इस अवसर पर ब्रह्मनिष्ठ ओजस्वी योगमती राधा देवी मुकेरिया, बाल ब्रह्म चारिणी योगमती रजनी देवी, पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी, स्वामी आनन्दवेश जी, स्वामी सदानन्द जी, पं. निरञ्जन देव जी, श्री पं. विजय जी शास्त्री, श्री जगत वर्मा जी भजनोपदेशक, प्रिं. चरण दास शास्त्री, प्रिं, खुशहाल चन्द बहल, प्रो. सुशीला महाजन, श्रीमती रूपरानी एम.एल.ए., श्री नारायण शास्त्री। श्री राम निवास शास्त्री, श्री मुकेश कुमार शास्त्री तथा अन्य बहुत से विद्वान् पधार रहे हैं। कार्यक्रम प्रातः 7 से 9 बजे तक सायं 4 से 6 बजे तक चलेगा। 7 अक्तूबर, रविवार को यज्ञ की पूर्णाहुति होगी कार्यक्रम दोपहर तक चलेगा।

आर्य समाज माडल टाऊन जालन्धर में वेद सप्ताह पर्व सम्पन्न

भारतीय संस्कृति का प्रतीक अध्यात्मिकता का प्रेरणा स्रोत स्वाध्याय का यह महान पर्व वेद सप्ताह न रह कर सोलह दिन तक वेद का पवित्र ज्ञान घर-घर तक पहुंचाने के लिए पवित्र पर्व का ज्ञान-गगा बन गया। पारिवारिक सत्संग के रूप मे भिन्न-भिन्न परिवारो मे दिनांक 25-8-2001 से 9-9-2001 तक वेद सप्ताह का आयोजन किया गया।

इस शुभ अवसर पर यशस्वी युवा विद्वान् आचार्य राजु वैज्ञानिक देहली ने वेदामृत वर्षा की। वैदिक सस्कृति की महानता। यज्ञ का वास्तविक स्वरूप, जीवन को सुखमय कैसे बनाया जाए-धर्म क्या है-मनुष्य का ध्येय क्या है ? आदि विषयों पर बहुत सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला।

प्रत्येक परिवार में गत वर्ष की अपेक्षा दोगुनी संख्या रही। सभी परिवारों ने हर्षोल्लास के साथ इस पर्व को मनाया। इस वेद प्रचार में प्रतिदिन सैंकड़ो धर्म प्रेमी लोगो ने लाभ उठाया।

इस कार्यक्रम को सफल बनाने में आर्य समाज के युवा प्रधान श्री अरविन्द घई व मन्त्री श्री रवि शर्मा व विद्वान् पुरोहित श्री सत्य प्रकाश शास्त्री जी ने मुख्य भूमिका निभाई। प्रत्येक परिवार में समय से पहले पहुच कर वैदिक रीति से यज्ञ सम्पन्न करवाया।

प्रवचन से पहले भजनो का प्रोग्राम बहुत सफल रहा। श्रीमती रश्मि घई, सरदार गुलशन जी व ब्रह्मचारी नन्द लाल करतारपुर ने तो मानो समय को ही बांध दिया। सबसे पहला प्रोग्राम श्री गोकुल चन्द भक्त के निवास स्थान पर उनके पोते आशीष भगत के जन्म दिवस के उपलक्ष्य मे आरम्भ हुआ व अन्तिम प्रोग्राम श्री हिन्द पाल सेठी के पुत्र मनीश का जन्म दिवस मना कर सम्पन्न हुआ। अन्त में उन्होंने जलपान भी करवाया। सारा प्रोग्राम 16 दिन तक बहुत सफल रहा। जिसकी सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

—सुशीला भगत

आर्यों का अन्तर्राष्ट्रीय वेदोक्त सत्य सनातन धर्म मेला

आपको जानकर अत्यन्त हर्ष होगा कि "वैदिक यति मण्डल" के अध्यक्ष संत शिरोमणि स्वामी सर्वानन्द जी महाराज, दयानन्द मठ, दीना नगर (पंजाब) के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से दिनांक 13 अप्रैल 2001 को दीनानगर में आयोजित यति मण्डल की बैठक ने सर्वसम्मति से तय किया था कि आर्य समाज की स्थापना के 125 वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य मे दिनांक 25, 26 व 27 अक्तूबर 2001, (आश्विन सुदी 9, 10 व 11 विक्रमी 2058) दिन बृहस्पतिवार, शुक्रवार व शनिवार को विजयादशमी के शुभावसर पर आर्यों का एक विशाल मेला-वैदिक ज्ञान गुरुकुल, दयानन्द ग्राम समीप नंगला मन्दौड़ (नहर गंगा के किनारे) जनपद मुजफ्फरनगर, उ प्र में बड़े उत्साह पूर्वक विशाल-स्तर पर मनाया जाएगा। इस विशाल मेले में देश-विदेश के सुप्रसिद्ध साधु-सन्यासी, महात्मा, विद्वान् भजनोपदेशक एवं कर्मठ आर्य जन लाखों की संख्या में पधारेंगे। इस शुभावसर पर विभिन्न सम्मेलनो के माध्यम से रचनात्मक एवं ठोस कार्यक्रम तय करके भावी योजनाओ को क्रियात्मक रूप दिया जाएगा। यह कार्यक्रम **स्वामी सदानन्द जी** (दीना नगर) मंत्री-वैदिक यति मण्डल के निर्देशन एवं सानिध्य में, **स्वामी सुमेधानन्द जी** (पिपराली, राजस्थान) संयुक्त मंत्री-वैदिक यति मण्डल की अध्यक्षता में तथा वीरांगना **श्रीमती पुष्पा शास्त्री** (रेवाड़ी, हरियाणा) के संचालन में सम्पन्न होवेगा। आप अपने परिवार, इष्टमित्रों एवं सम्बन्धियों सहित सादर आमन्त्रित हैं। कृप्या यथाशक्ति परोपकार, पुरुषार्थ कर सहयोगी बनें।

नोट:-पहुंचने का मार्ग, मुजफ्फरनगर व बिजनौर से बस द्वारा नंगला मन्दौड़ नहर गंगा के किनारे पहुंचे।

—यज्ञमुनि, दयानन्द ग्राम

स्त्री आर्य समाज भठिण्डा की ओर से पारिवारिक सत्संग

स्त्री आर्य समाज चौक भठिण्डा की ओर से 25-8-2001 को श्री अश्विनी कुमार मोंगा तथा उनकी माता वीर प्रभा मोंगा, जो स्त्री आर्य समाज की सदस्या हैं, के गृह निवास पर आर्य समाज सिरकी बाजार, आर्य समाज सिकन्दर पुरा तथा स्त्री समाज ने मिल कर एक विशाल यज्ञ व पारिवारिक सत्संग का आयोजन किया। उनके निवास स्थान को आर्य समाज के माटो तथा ओम् के झंडों से सजाया गया।

यज्ञ के पश्चात् श्री निहालचन्द एडवोकेट ने अपना लिखा एक गीत सुनाकर सबको गद्-गद् कर दिया। विशेष तौर पर श्री कृष्ण लाल जटाना, श्री चमन लाल महत्ता तथा डॉ० स्वच्छ सचदेवा, प्रधाना स्त्री समाज तथा इन्द्रा छाबडा, वीणा रानी, निर्मला, अरुणा अरोड़ा, सुशीला सुखीजा ने विशेष सहयोग दिया और यज्ञ व सत्संग सम्पन्न करवाया।

—प्रधाना स्त्री समाज

अमृतसर में वेद प्रचार

आर्य सद्भावना सत्संग समिति, अमृतसर के तत्वावधान में श्री कृष्ण जन्माष्टमी एवं वेद सप्ताह "योग निकुञ्ज" में समारोह पूर्वक मनाया गया। जिसमें आर्य समाज के अलावा सभी धर्म के लोगो ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया।

इस कार्यक्रम का शुभारम्भ पावन यज्ञ से हुआ। यज्ञोपरान्त श्री कृष्ण जी के सम्बन्ध में सुन्दर भजन श्रीमती उमा बहन, **कु. माधुरी शर्मा, कु. निधी शर्मा**, बहन श्रीमती उमा जी, माता राजरानी तथा माता सुधा जी खन्ना ने गाए। अन्त में नै. ब्र डा. माधुरी योगमती ने श्री कृष्ण जी के सच्चे स्वरूप व गुणों का परिचय दिया और वेदों के सम्बन्ध में जानकारी में उन्होंने कहा कि किस-किस वेद में कौन-कौन से विषय हैं, कितने-कितने मन्त्र हैं तथा महर्षि दयानन्द ने कैसे कैसे कष्ट उठाकर तथा घोर परिश्रम कर हम पुनः वेदों के पढ़ने-पढ़ाने का अधिकार दिलाया, अब महिलाओं को वेद सप्ताह पर यज्ञोपवीत धारण करके वेद प्रचार का संकल्प लेना चाहिए। माताएं बहनें बड़ी संख्या में श्रद्धापूर्वक उपस्थित हुईं। बाद में प्रसाद वितरण भी हुआ।

—राज रानी विज,
प्रचार मन्त्री

आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा द्वारा पारिवारिक सत्संग

2.9.2001 को आर्य समाज सिरकी बाजार की ओर से रविवार को श्री सतीश जिंदल के गृह निवास गनेशा बस्ती में आर्य समाज सिकन्दर पुरा स्त्री आर्य समाज के सहयोग से यज्ञ व पारिवारिक सत्संग करवाया गया।

बड़े-बड़े बैनरों व ओ३म् के झण्डों से पूरी गनेशा बस्ती को मेन रोड तक सजाया गया व गली से, सड़क से घर तक झण्डे लगे हुए थे। लगभग 150 आर्यों की संख्या में बड़े प्रेम से हवन मंत्रों का उच्चारण किया गया। मधुर ओ३म् की ध्वनि गूंजी। हवन सत्संग के पश्चात् सभी को चाय व प्रशाद बांटा गया।

सतीश जिंदल जी ने 1100/- रुपए आर्य समाज सिकन्दर पुरा को दान दिया व आर्य समाज सिरकी बाजार को भी दान दिया। अशोक अग्रवाल जी ने सिरकी बाजार समाज के सत्संगों को भरपूर सहयोग व दान देने का आश्वासन दिया। व खुद सत्संग को चलाने का संकल्प लिया।

—कृष्ण लाल जटाना

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रेस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष ☎ 292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–55 अंक : 12 सृष्टि संवत 1960853102, 30 सितम्बर तथा 7 अक्तूबर 2001 दयानन्दाब्द 178

"दयालु दयानन्द"

❑ लेखिका डा. स्वच्छ सचदेवा प्रधान स्त्री आर्य समाज बठिंडा

स्वामी दयानन्द वास्तव में दया की साक्षात् मूर्ति थे। बचपन में अपनी बहन और चाचा की मृत्यु ने उनको करुणा से भर दिया तथा वह मौत की खोज करने के लिए घर से निकल पड़े। अपने वस्त्र व अंगूठी आभूषण साधुओं को देकर सच्चे गुरु पूर्णानन्द सरस्वती के पास पहुंचे। उस समय उनकी आयु सौ वर्ष से भी अधिक थी। उन्होंने स्वामी जी को सन्यास धारण करवाया और यथागुण तथा नाम की युक्ति को सिद्ध करते हुए उनका नाम दयानन्द सरस्वती रखा। स्वामी जी बहुत दयालु थे मैं उनकी महानता के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत करती हूं।

गुरु विरजानन्द जी थोड़े क्रोधी स्वभाव के थे । प्रज्ञाचक्षु थे उनके लिए स्वामी दयानन्द जी प्रतिदिन स्नान व अन्य कार्यों के लिए जमुना के बीच जाकर पानी लेकर आते, प्रतिदिन आठ घड़े पानी लाना उनकी दिनचर्या में शामिल था। एक बार कुटिया की सफाई करके अभी कूड़ा नहीं उठाया था कि गुरु की आज्ञानुसार पानी लेने चले गए। गुरु प्रज्ञाचक्षु तो थे ही उनका पांव कूडे पर पड़ गया फिर क्या था, गुरु जी ने सोटा उठाया और दयानन्द की पीठ पर दे मारा। स्वामी जी ने गुरु के हाथ दबाये क्षमा मांगी कि "मेरे कारण आपको कष्ट उठाना पडा मेरा शरीर तो वज्र समान है।" मरणपर्यन्त उनकी पीठ पर लगा निशान उनको गुरु की याद दिलाता रहा । यह थी उनकी सहनशीलता व शालीनता। गुरु से मार खा कर भी वह विनम्र भाव से उनकी सेवा करते रहे।

हरिद्वार गंगा के तट पर स्वामी जी एक कुटिया में रहते थे एक पौराणिक साधु प्रतिदिन उन पर गालियों की बौछार करता था। स्वामी जी मौन रहते, एक दिन स्वामी जी का भक्त उनको फल की टोकरी दे गया, वह फल उन्होंने साधु को भिजवा दिए कि गाली निकालने से उसकी ताकत नष्ट होती है इसलिए फलों की मेरे से उसे अधिक आवश्यकता है। इस साधु ने स्वामी जी के पांव पकड लिए उनकी सहनशीलता व दयालुता का कायल हो गया।

एक बार स्वामी जी भाषण दे रहे थे कि कुछ विद्यार्थियों ने उन पर पत्थर बरसाने शुरू कर दिए, स्वामी जी के कहने पर सेवादार बच्चों को पकड़ लाये। पूछने पर उन्होंने बताया कि हमारे मास्टर जी ने हमें इस कार्य के लिए लड्डू देने का वायदा किया है, स्वामी जी ने तुरन्त लड्डू मंगवा कर बच्चों में बांट दिए और कहा कि पता नहीं तुम्हारा मास्टर तुम्हें लड्डू देगा या नहीं, तुम लड्डू खाओ। बच्चे व मास्टर बहुत लज्जित हुए।

एक औरत अपने मृत बच्चे को अपनी धोती के पल्लू मे लपेट कर लाई, लाश को गंगा में बहाने के बाद पल्लू को वापिस अपने ऊपर ओड़ लिया, स्वामी जी ने पूछा तो उसने बताया कि मेरे पास यह एक ही धोती है स्वामी जी का हृदय चीत्कार कर उठा। गरीब भारत की दशा देखकर वह रात भर सो नहीं सके। उनके हृदय में गरीबों के लिए बहुत दया थी।

स्वामी जी गौ भक्त थे । वह भारत देश में गाय कटती नहीं देख सकते थे इसलिए उन्होंने गौ रक्षा के लिए आवाज़ उठाई और प्रथम गौशाला रिवाड़ी में खुलवाई, और गौ करुणानिधि लिखी, जिसमें उन्होंने बताया कि गाय हमारे कितने परिवारों का पालन करती है, लाखों लोगों के हस्ताक्षर करवा कर गवर्नर के पास भिजवाये । काश? आज स्वामी जी होते तो देखते कि आजादी के पचपन वर्ष बाद भी गौ हत्या बन्द नहीं हुई। नारी की दुर्दशा देखी तो शिक्षा का प्रचार किया । बाल विवाह का विरोध किया तथा सती प्रथा बन्द करवाई। विधवा विवाह को मान्यता दी।

स्वामी जी के विरोधियों ने समय-समय पर उन्हें 17 बार विष दिया, लेकिन कभी किसी को सज़ा नहीं दिलवाई । उनका कहना था कि "दयानन्द लोगों को कैद करवाने नहीं कैद से छुडवाने आया है।" सत्यार्थ प्रकाश लिख कर उन्होंने बहम, भ्रम का जो भूत भगाया है उससे नई चेतना का सचार हुआ है।

हमारे ऊपर दया करके उन्होंने हवन यज्ञ की परिपाटी चलाई है, वेदों का प्रचार किया है गुरुकुल खुलवाये हिन्दी को आदि भाषा का दर्जा दिया, हवन द्वारा वातावरण को स्वच्छ बनाया, जिससे समय पर वर्षा होती है तथा रोगो का खात्मा होता है। प्रतिदिन हवन करने वाले को कोई रोग जैसे शूगर, तपेदिक, कैन्सर, एडस, दमा जैसे रोग नहीं सताते । यहा तक डिपरैशन भी कभी नहीं होता, इतना बडा दयालु और कौन हो सकता है। उनके दो शब्दों ने पंडित लेखराज मुन्शी राम, गुरुदत्त और अमीचन्द जैसे कई व्यक्तियों के जीवन की दिशा ही बदल दी थी।

नारी जाति पर उपकार करने वाले स्वामी जी ने राजा को फटकार दी कि वेश्या का संग अच्छा नहीं। वही वेश्या (नारी) उनकी मौत का कारण बनी । उस नन्ही जान वेश्या ने स्वामी जी के रसोईयों को लालच देकर दूध में कांच पिसवा कर दे दिया, स्वामी जी ने जगन्नाथ को कहा कि तुमने यह क्या किया। मुझे तो अभी बहुत कार्य करने थे। अन्तिम समय मे भी उन्होने दयालुता का परिचय दिया उसको केवल माफ ही नहीं किया बल्कि पास से स्वर्ण मुद्रा दी कि यहा से भाग जाओ, वरना राजा तुम्हे सजा अवश्य देगा । अपने कातिल पर इतनी बडी दया का उदाहरण और कहीं नहीं मिल सकता।

आवश्यक सूचना

मॉरिशस के आर्य नेता श्री मोहनलाल जी मोहित के द्वारा शीघ्र उद्घाटित होने वाले "अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक अनुसन्धान केन्द्र पो कोटूम्बे कर्जत (महाराष्ट्र) की शाखा समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद की ओर से विज्ञापित किया जाता है कि संस्थान मे अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय प्रारम्भ किया जा रहा है।

इसमे भारत एवम् विदेशो मे वैदिक धर्म के प्रचार के लिए विशेष प्रशिक्षण दिया जाएगा। इसके लिए गुरुकुलो एवम् अन्य आर्य सस्थाओ से शास्त्री और आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण स्नातको से आवेदन पत्र आमन्त्रित किये जाते हैं। जो इस प्रशिक्षण कार्यक्रम मे भाग लेना चाहते हैं वे आवेदन पत्र अपने प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपि के साथ उपर्युक्त पते पर भेजें।

–कैप्टन देवरत्न आर्य, अध्यक्ष

वैदिक दर्शन

❑ ले० आचार्य भद्रसेन जी बी. 2,92/7 बी शालीमार नगर होशियारपुर

(गतांक से आगे)

भोजन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जब तक यह प्राप्त होता रहता है, तभी तक जीवन के प्रत्येक कार्य में रस आता है अन्यथा मोटा ताजा शरीर भी असमर्थ तथा किसी कार्य को करना उसके लिए कठिन हो जाता है। भोजन के बिना कोई विकल्प भी वहां सार्थक नहीं होता। तभी तो एक विचारक ने कहा है– भूखों की भूख व्याकरण से और प्यासों की प्यास (पिपासा) काव्यरस से शान्त नहीं होती। अत: भौतिक भोजनादि द्रव्यों या इनकी प्राप्ति के मान दण्ड (धन) के बिना सब कुछ निष्फल, बेकार हो जाता है।

बुभुक्षितै र्व्याकरणं न भुज्यते,
पिपासितै: काव्यरसो न पीयते।
न छन्दसा क्वापि समुद्धृतं कुलम्,
हिरण्यमेवाश्रय निष्फला गुणा:॥

अर्थात् भाषाशास्त्र, शब्दानुशासन के विशेषज्ञों का भी पेट अपने प्रिय विषय के विश्लेषण से नहीं भरता। कवि कुल गुरु कालिदास जैसे कवियो की काव्य प्रतिभाजन्य काव्यरस से किसी की प्यास शान्त नहीं होती। अपितु बड़े-बड़े धार्मिकों की भी भूख में नैतिकता खो जाती है और तब यही परिणाम सामने आता है–

न कुछ देखा ज्ञान-ध्यान में,
न कुछ देखा पोथी में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
जो देखा वो रोटी में॥

अन्यथा रोटी के बिना अनेकधा बहुत कुछ बदल जाता है। तभी तो कहा है–

त्यजेत् क्षुधार्तो महिलां सपुत्राम्,
खादेत् क्षुधार्तो भुजंगी स्वमण्डम्।
बुभुक्षित: किन्न करोति पापम्,
क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति॥

अत: ऐसी स्थिति अन्न को स्वत: ब्रह्म सिद्ध कर देती है।

5. बड़े की बात–'सब से बड़ा रुपया-वाक्य की तरह बाजार वाले 'बडे' की भी बात हो जाये, तो इस चर्चा का एक और पहलू भी प्रकट हो जाएगा ?

प्रा0–ब्रह्म शब्द के व्यापक अर्थ के विचार के साथ उसके मूल स्वारस्य की खोज की दृष्टि से हम इसे चर्चा को चर्चित स्थिति में ला रहे हैं। हां, व्यापक अर्थ के प्रसंग से ब्रह्मगुप्त ने पूर्व प्रसंग के अनुरूप एक अन्य पहलू की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। यह 'बड़ा' किसी की ब्रह्मत्व प्राप्ति की प्रक्रिया को विशेष रूप से प्रकट करता है, क्योंकि प्रत्येक पाककला विशेषज्ञ और 'बड़ा' प्रेमी अच्छी प्रकार से जानता है, कि यह रुचिकर 'बडा' वही बढ़िया होता है। जिस की दाल अच्छी, स्वच्छ, पूरी भीगी हुई, खूब पिसी, उचित तली हुई और फिर यथार्थ ढंग से उबाल कर यथा समय दही में डाला गया 'बडा' ही स्वादु, रुचिकर होता है। जैसा कि बड़े के बनाने वाले सारे के सारे इस प्रक्रिया को अपनाते हैं, पर सब के बडे एक जैसे रोचक, स्वादु नहीं होते। इस भेद का कारण कहीं न कहीं किसी कमी का रह जाना है, या किसी न किसी अन्तर का आ जाना है। जो भी इन सभी पहलुओं पर पूरा ध्यान देता है। उसी के हाथ में विशेषता आती है, उसी का 'बड़ा' अच्छा, स्वादु, रुचिकर और बढ़िया होता है, क्योंकि प्रत्येक नगर में बड़े बनाने वाले तो बहुत होते हैं, पर प्रसिद्ध तो दो-चार के ही होते हैं। 'बडे' की तरह जो भी किसी क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रक्रिया पर ध्यान देता है, इसको अपनाता है, वही वहां बड़ा बनने में सफल होता है। हां, ब्रह्म के व्यावहारिक पक्ष या ब्रह्मदर्शन की साधना की ओर यह 'बड़ा' हमारा ध्यान अवश्य ही आकर्षित करता है। जैसे कि मनुस्मृति 2, 28, 12, 102, 12, 125 में आया है, कि वेद (आदि धार्मिक ग्रन्थों) के अध्ययन और उसके तत्वों को समझने, नियमों के पालन, अन्त: बाह्य की शोधक यज्ञीय प्रक्रिया के अनुष्ठान, मर्यादा पूर्वक सन्तानों के संवर्धन-संरक्षण सदृश कर्मों से और पंच महायज्ञ (आत्म विकास, व्यावहारिक शुद्धि, पितृ सेवा, अतिथि सत्कार, प्राणी संरक्षण) तथा सभी प्राणियों में समाए हुए परमात्मा को अपने-आप द्वारा संदर्शन करने से व्यक्ति ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। स्वाध्यायेन व्रतै होमैस्त्रैविद्येनेज्य सुतै:।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च
ब्राह्मीयं क्रियते तनु: 112, 28
वेदशास्त्रार्थ तत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्। इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ 12, 102
एवं य सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना।
स सर्वतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम्॥ 12, 125

ब्रह्मेश्वर–यह ठीक है कि जीवन धन, अन्न के बिना अधूरा-अधूरा ही रहता है, पर यह सारी चर्चा अपने आप में अनोखापन ला रही है और इस का आनन्द तो हमें धन, अन्न के बिना भी मिल रहा है। जबकि हम तो यहां केवल ज्ञान चर्चा ही कर रहे हैं। यह ठीक है, कि धन, अन्न के बिना अनेक बार सब कुछ फीका ही रह जाता है। पुनरपि चाहे कितने ही अंश की बात हो, पर जीवन में ज्ञान का महत्व भुलाया नहीं जा सकता। धन, अन्न आदि का उत्पादन, अर्जन, विकास, निवेश भी तो विद्या के बिना कठिन है। इसीलिए हमारे प्रत्येक कार्य के कार्यान्वयन का मूलमन्त्र ज्ञान ही है। अतएव 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते– गीता 4, 38 और 'सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते–मनु 4, 233 सदृश उक्तियां किसी से छिपी नहीं हैं ?

6. विज्ञानं ब्रह्म

प्रा0–मनुष्य के विचारशील होने से उसके प्रत्येक व्यवहार में यत्र-तत्र सर्वत्र ज्ञान का योगदान सर्वथा स्पष्ट है। अतएव विद्वान् सर्वत्र पूज्यते और किं किन्न साधयति कल्पलतेव विद्या सदृश सूक्तियां सब के सामने हैं। तभी तो तैत्तिरीय उपनिषद् के ऋषि ने अपनी ब्रह्म विषयक चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा है–

'विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्' 3, 5 अर्थात् अनुभव और विचार-विमर्श के पश्चात् ऋषि ने विज्ञान को एक महान तत्व के रूप में समझा, क्योंकि भक्ति की प्रक्रिया, दुनियावी कार्य, बौद्धिक और शारीरिक कर्म ज्ञान-विज्ञान से ही सम्पन्न होते हैं। तभी तो उपनिषत्कार ने यज्ञ-विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवा: सर्वे ब्रह्मज्येष्ठमुपासते॥तै. 2,5 सब से बड़ी बात तो यह है, कि विज्ञान सम्पन्न व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में पिछड़ता नहीं है। अतएव यह कहा जाता है कि 'विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति तै. 2,5 अर्थात् वह भ्रम, धोखे में नहीं पड़ता।

मनुदेव–मनुस्मृति में भी तो ब्रह्म शब्द का प्रयोग बार-बार किया गया है ?

प्रा0–मनुस्मृतिकार ने अपने विवेचन का मूल आधार वेद को ही स्वीकार किया है। वहां के शब्द हैं–

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयम्भुव:।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित् प्रभो। 1,3

अर्थात् मनु महाराज के पास आए हुए ऋषिगण अपने प्रश्न पूछने से पूर्व कहते हैं, श्रीमन जी ! जिस के ज्ञान की सीमा आंकी नहीं जा सकती, ऐसे नित्य वेद ज्ञान के आप ही पूर्णज्ञाता हैं। वेद ज्ञान के महत्त्व को सामने रखते हुए मनुस्मृतिकार ने अनेक बार वेद के लिए ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया है। जैसे कि ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरो: सदा। 2,7।

ब्रह्मण: प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा। 2, 7, 4

अर्थात् वेदाध्ययन करने से पूर्व तथा समाप्ति पर जहां गुरु के चरणों में प्रणाम करें वहां ओम् शब्द के उच्चारण के साथ ही वेदपाठ का प्रारम्भ और समाप्ति करें। इसके साथ मनुस्मृति में यह भी निर्देश हैं कि–

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रो महा-व्याहृतयोऽव्यया:।
त्रिपदा च सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥ 2, 8 **(क्रमश:)**

सम्पादकीय......

आर्य बन्धु संगठन की ओर विशेष ध्यान दें

आज पंजाब में अन्य प्रान्तों से आर्य समाज की अधिक आवश्यकता है और इसके साथ ही संगठन की भी आवश्यकता है क्योंकि पंजाब के साथ लगते जम्मू काश्मीर में आतंकवाद का बोलबाला है। पंजाब में इसका बहुत प्रभाव है। पहले पंजाब में भी पूरा आतंक रहा है। इसलिए यहां आर्य समाज के संगठन की अति आवश्यकता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब भारत की सबसे पहली प्रतिनिधि सभा है और किसी समय यही एक सभा सारे भारत में थी इसलिए पंजाब सभा के उपदेशक सारे भारत में प्रचारार्थ जाया करते थे और इसकी सम्पत्तियां भी सभी प्रदेशों में थी। अब सभी प्रदेशों में आर्य प्रतिनिधि सभाएं बन गई हैं वह अपना-अपना कार्य कर रही हैं परन्तु पंजाब सभा आज भी सबसे बड़ी आर्य संस्था है। इसकी गरिमा को बनाए रखना सभी आर्य बन्धुओं का कर्त्तव्य बनता है। इसके लिए आपसी संगठन का होना भी बहुत ज़रूरी है।

इसलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सभी अधिकारियों व अन्तरंग सदस्यों ने 30-9-2001 को यह निश्चय किया है कि हम सभा के सभी कार्यों को मिल कर चलाएंगे और सभी अधिकारी मिल कर कार्य करेंगे। सभा की संस्थाओं में जहां भी विवाद है उसे शीघ्र हल कर लिया जाएगा। सभा का प्रत्येक अधिकारी सभा के लिए समय निकाले और कार्य करे। कोई अधिकारी ऐसा कार्य न करे जो संगठन के विरुद्ध हो या जो सभा के हित में न हो। हमने सभा का हित पहले सोचना है बाद में अपनी बात करनी है। स्वार्थ परता को बिल्कुल समाप्त करना है। हम चाहे किसी भी राजनैतिक पार्टी से जुड़े हुए हों, उसके सदस्य हों या उसके अधिकारी हों हमारे लिए सभा का कार्य व आर्य समाज का कार्य मुख्य होना चाहिए। हम आर्य समाज व सभा को पहले स्थान दें बाद में अपनी राजनैतिक पार्टी की बात करें। आर्य समाजी सदा राजनैतिक पार्टियों से ऊपर उठ कर कार्य करते रहे हैं। आर्य समाज में आरम्भ काल से ही कई राजनैतिक पार्टियों के मानने वाले रहे हैं लेकिन उनकी राजनैतिक पार्टी आर्य समाज के कार्य में कभी रुकावट नहीं बनी आज भी ऐसा ही होना चाहिए।

हमारे में अधिकार प्राप्त करने की भावना नहीं होनी चाहिए कर्त्तव्य की भावना होनी चाहिए । हमारे लिए कर्त्तव्य सर्वोपरि है, कर्त्तव्य ही मुख्य है अधिकार गौण है। जो लोग अपना कर्त्तव्य निभाते हैं वह अधिकार नहीं चाहते परन्तु अधिकार उन्हें स्वयमेव मिल जाता है। आज के मनुष्य की परिस्थितियां ऐसी बन गई हैं वह अधिकार पहले चाहता है कर्त्तव्य का उसे पता ही नहीं है कि कर्त्तव्य क्या होता है।

इस अन्तरंग सभा में सभी अधिकारियों ने सभा की वर्तमान स्थिति पर विचार किया गया और सभा का संगठन मजबूत करने पर जोर दिया गया। गत दिनों में कुछ ऐसी बातें सभा में हुई हैं जो नहीं होनी चाहिएं थी। पिछले कुछ दिनों में कई अधिकारियों ने भी भूलें की हैं जिस-जिस ने यह भूल की है वह इसके लिए प्रायश्चित करे और आगे कोई भूल न हो इसका प्रयास करे। सभा के संगठन को मुख्य मान कर चलें। एक दूसरे पर कीचड़ न उछालें, आपस में न टकराएं। प्रत्येक सभा अधिकारी को दूसरे अधिकारी का मान करना चाहिए । सभा का सारा कार्य सभा के संविधान के अनुसार होना चाहिए। संविधान को सर्वोपरि मान कर सभी अधिकारियों को कार्य करना चाहिए और अपनी भूलों का सुधार करना चाहिए।

जो व्यक्ति अपनी भूल को स्वीकार कर लेता है और उसे मान लेता है कि मेरे से भूल हुई है वह ही उस का सुधार कर सकता है जो अपनी भूल न माने वह अपनी भूल का सुधार नहीं कर सकता। इसलिए भूल सुधार करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

हमने महर्षि के अधूरे कार्यों को पूर्ण करने का सकल्प लिया था और इसी सकल्प को लेकर हम आर्य समाज के सदस्य व अधिकारी बने थे परन्तु आज हम आपस में लड़-झगड कर महर्षि दयानन्द के अधूरे कार्य पूर्ण करना तो एक तरफ रहा हम तो अपने तुच्छ स्वार्थो के लिए अब महर्षि दयानन्द और आर्य समाज को बदनाम करने पर तुले हुए हैं। यदि कोई आर्य समाजी गलत कार्य करता है तो इससे उसकी तो कोई हानि नहीं होती परन्तु आर्य समाज की बहुत बड़ी हानि होती है।

आज आर्य समाज कुछ पिछड़ सा रहा है। कई लोगों को कहते सुनता हूं कि आर्य समाजी अब वह पुराने आर्य समाजी नहीं रहे जिनकी गवाही के बाद अदालत कोई और गवाही नहीं मांगती थी जो किसी आर्य समाजी ने कह दिया वही सत्य मान लिया जाता था। क्योंकि कोई भी आर्य समाजी झूठ नहीं बोलता था। उसके सभी कार्य सत्य पर आधारित होते थे, झूठ और बेईमानी उसे छू भी नहीं पाती थी। आज वह आदर्श, वह भावना, वह गरिमा आर्य समाज की कहीं दिखाई नहीं पड़ती। इसका कारण क्या है ? इस पर आर्य बन्धु अपने अन्दर झांक कर देखें कि ऐसा क्यों हो रहा है ?

आर्य समाज एक सार्वभौम संस्था है, श्रेष्ठ व्यक्तियों की संस्था है। तर्कशीलों की संस्था है। आर्य समाज में किसी भ्रष्टाचारी के लिए कोई स्थान नहीं है। बहुत से आर्य बन्धुओं ने आर्य समाज के लिए लाखों रुपए दान दिया है। धन दिया, जमीन जायदाद दी, अपने मकान तक दे दिए। आज जहां भी हम आर्य समाज की सम्पत्ति देखते हैं उसे देख कर प्रसन्नता होती है कि करोड़ों रुपयों की चल-अचल सम्पत्तियां आज आर्य समाज के पास हैं। यह सब हमारे बुजुर्गों की दान दी हुई सम्पत्तियां हैं। परन्तु आज आर्य समाज में ऐसे लोग घुस आए हैं जो यह सम्पत्तियां बेचने में लगे हुए हैं। ऐसे लोग आर्य समाज को बदनाम कर रहे हैं। ऐसे लोगो को देख कर आर्य समाज पर छींटा कसी की जा रही है। हमने स्वार्थी लोगों से व भ्रष्टाचारियों से आर्य समाज को बचाना है इसका हम संकल्प लें।

मेरी सभी आर्य बन्धुओं से प्रार्थना है कि वह आगे आएं और आर्य समाज के पुराने गौरव को कायम करें। प्रयत्न करे आर्य समाज में लौट कर फिर वही युग आ जाए जब प्रत्येक आर्य समाजी, देश, जाति व समाज के लिए अपना सभी कुछ न्यौछावर कर देता था। अपना सारा जीवन समाज को दे देता था। महात्मा हंसराज, प लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे त्यागी तपस्वी अब कहा हैं? आज आर्य समाज में विचारशील लोगों की आवश्यकता है।

इसलिए आर्य बन्धुओ आर्य समाज के उत्थान के लिए आगे आओ। इस महान संगठन के साथ जुड़ो और आर्य समाज को गलत लोगों के हाथों में जाने से बचाओ। श्रेष्ठ पुरुषों को आगे आना चाहिए। यह समय की पुकार है यदि श्रेष्ठ पुरुष आगे न आए तो आर्य समाज बदनाम हो कर रह जाएगा। क्योंकि गल्त लोग इसमे घुस आएंगे। जैसे लोग समाज में होते हैं वैसा ही यह समाज बन जाता है । इसलिए श्रेष्ठ पुरुषो एक हो जाओ, आर्य समाज की रक्षा करो और अपने कर्त्तव्य को पहचानो।

—हरंबस लाल शर्मा, सभा प्रधान

गुरुकुल कांगड़ी के कर्मचारियों की संघर्ष समिति गठित
संघर्ष समिति द्वारा आहूत आम-सभा में जमीन वापसी के संकल्प आन्दोलन की घोषणा

हरिद्वार (18-9-2001) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की बेची गई जमीन को वापिस लेने हेतु विश्वविद्यालय के कर्मचारियों द्वारा गठित संघर्ष समिति द्वारा आज विश्वविद्यालय के समस्त शिक्षकों तथा शिक्षकेतर कर्मचारियों की एक आम सभा का आयोजन किया गया। आम सभा में जमीन बेचे जाने की तीव्र भर्त्सना हुई तथा सदस्यों ने जमीन के स्वयंभू विक्रेताओं को धिक्कार देते हुए उनके ख़िलाफ कठोर व्यवहार करने का निश्चय किया। वक्ताओं का कहना था कि विश्वविद्यालय की जमीन को बेचने वाले किसी भी प्रकार से संस्था के हितैषी नहीं हो सकते अत: संस्था में उन्हें किसी भी प्रकार के सम्मान पाने का कोई अधिकार नहीं है। सभा को सम्बोधित करते हुए प्रो विजयपाल शास्त्री ने सदस्यों को अपने सम्पूर्ण सहयोग और समर्थन का आश्वासन देते हुए अनेक उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किए। डा त्रिलोक चन्द ने बताया कि जमीन बिक्री का दाख़िल खारिज होने के बाद भी अवैध विक्रय के विरुद्ध न्यायालय की शरण में जाया जा सकता है। डा भगवान देव पाण्डेय तथा श्री रजनीश के उदाहरण देकर डा त्रिलोक चन्द के विचार का समर्थन किया। श्री महावीर सिंह यादव ने सदस्यों को सचेत करते हुए कहा कि न केवल भूमि अपितु अन्य अनेक मुद्दों पर संस्था को छला जा रहा है जिसे हम सबको मिलकर रोकना होगा। डा प्रदीप जोशी ने सदस्यों को सावधान करते हुए कहा कि सम्पत्तियों को खुर्द-बुर्द कर देने से संस्था की मान्यता तक समाप्त हो सकती है। हमे किसी भी स्थिति में ऐसी अवस्थाएं पैदा होने से रोकनी हैं जिनसे संस्था के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लगने की सम्भावना हो। डा विनोद कुमार, डा यू.ए. बिष्ट आदि अनेक सदस्यों ने डा. जोशी की बात का समर्थन किया। डा विनोद कुमार ने सभी प्रकार के प्रपत्रों को इकट्ठा कर कानूनी कार्यवाही करने पर बल दिया। डा. ज्ञानचन्द शास्त्री ने कहा कि वस्तुत: आज हमारी संस्था भी एक प्रकार के आतंक से ही जूझ रही है और जैसा कि चहुं ओर व्याप्त है, हमें इस आतक को नष्ट करना है चूंकि जमीन का बिकना भी कहीं न कहीं आतंककारी और क्षुद्र स्वार्थपरक गतिविधियों का ही नतीजा है। श्री हंसराज जोशी, डा. आर के. पालीवाल, डा. सी.पी खोखर, डा. वी.के. सिंह, डा रूप किशोर शास्त्री ने गद्दारों को अलग कर एकता पर बल देते हुए संघर्ष करने का आह्वान किया। श्री करतार सिंह ने कहा कि प्रख्यात पर्यावरणविद् सुन्दरलाल बहुगुणा ने चिपकी आन्दोलन के माध्यम से वृक्षों को बचाने के लिए जिस प्रकार एक अभूतपूर्व जुनून खड़ा कर दिया था, उसी प्रकार गुरुकुल के कर्मचारी भूमि बचाने के लिए एक विशाल जन-आन्दोलन खड़ा कर देंगे। श्री जयप्रकाश ने एक गीत सुनाकर सभा में जोश का नया समा बांध दिया।

सभा को सम्बोधित करते हुए वरिष्ठ पत्रकार डा. कमलकान्त बुधकर ने कहा कि इस आन्दोलन को विशद् रूप देने के लिए इसे जनसाधारण से जोड़े जाने की आवश्यकता है। उन्होंने इस सम्बन्ध में प्रेस को विश्वास में लेने का आग्रह भी किया। सभा में आचार्य एव उपकुलपति प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री ने अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने का सुझाव दिया। डा. कश्मीर सिंह भिण्डर ने कहा कि जमीन को बेचने के लिए गुरुकुल के तथाकथित कर्णधारों को जवाब देना होगा अन्यथा उन्हें जनसमूह का कोपभाजन बनना पड़ेगा। डा. भिण्डर ने उम्मीद जताई कि गुरुकुल के पूर्ववर्ती आन्दोलन में सफल नेतृत्व करने वाले महानुभाव आज भी इस आन्दोलन का सम्यक् नेतृत्व प्रदान करेंगे। शिक्षकेतर कर्मचारी यूनियन के महामत्री कौस्तुभ चन्द्र पाण्डेय ने सदस्यों को अवगत कराया कि जमीन को बेचे जाने के प्रस्ताव पर कुलपति डा. धर्मपाल तथा परिद्रष्टा प्रो. शेर सिंह के भी हस्ताक्षर हैं। अत: इनसे पूछा जाना चाहिए कि इन्होंने यह जघन्य अपराध क्यों किया। श्री पाण्डेय ने कुलसचिव और उपकुलपति पर भी वांछित तत्परता न बरतने का आरोप लगाया। सभी सदस्यों ने श्री पाण्डेय के मत का समर्थन किया। सभा में डा जगदीश विद्यालंकार ने अपने ओजस्वी सम्बोधन में सदस्यों से एकजुट होकर आन्दोलन करने का आह्वान किया। डा. जयदेव वेदालंकार ने कहा कि अब केवल सभा अथवा भाषण से कार्य नहीं चलेगा। जैसा कि समिति की पूर्व बैठक में प्रस्ताव पारित हुआ था कि जमीन के अवैध विक्रय के विरुद्ध जनहित याचिका दायर की जानी चाहिए। धन की व्यवस्था के लिए धन-संग्रह किया जाना चाहिए। उन्होंने अपनी ओर से पांच हजार रुपए तत्काल प्रदान करने की घोषणा की। उन्होंने विश्वविद्यालय में एक दिन चक्का जाम करके धरना प्रदर्शन का भी विचार रखा जिसे सभा में भारी समर्थन मिला। डा. श्रवण कुमार शर्मा ने प्रस्ताव रखा कि जमीन के विक्रेता संस्था के दुश्मन हैं, अत: उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश न करने दिया जाए। साथ ही सीनेट में उनके विरुद्ध निन्दा प्रस्ताव लाया जाए। अपने अध्यक्षीय भाषण में संघर्ष समिति के अध्यक्ष डा. भारतभूषण ने सदस्यों को आश्वस्त किया कि जमीन को बचाने की कार्यवाही में आर्य समाज के धन का उपयोग भी किया जाएगा। उन्होंने सभी कर्मचारियों से भी जमीन विक्रेताओं को हतोत्साहित करने का आह्वान किया। उन्होंने यह भी घोषणा की कि वे भविष्य में अधम जमीन विक्रेताओं को किसी प्रकार का सम्मान नहीं देंगे।

आज सभा में भारी संख्या में उपस्थित सदस्यों में अभूतपूर्व उत्साह तथा जमीन विक्रय को लेकर बेचैनी थी। विश्वविद्यालय के उपकुलपति, कुलसचिव तथा वित्ताधिकारी भी सभा में उपस्थित हुए सभा का संचालन सघर्ष समिति के संयोजक डा. प्रदीप जोशी ने किया।

डा. प्रदीप जोशी, जन सम्पर्क अधिकारी

आंखें बन्द होने पर कुछ भी नहीं

ले० पण्डित वेदप्रकाश शास्त्री, 4-ई, कैलाश नगर, फाजिल्का-152123 पंजाब

एक बार महाराजा भोज के महल में एक चोर प्रवेश कर गया। वह राजा के शयनागार में बहु मूल्य आभूषण की तलाश में प्रयत्नशील था कि इसी बीच में राजा के आने की पदचाप सुनाई पडी। अत: अपने बचाव के लिए वह चोर राजा के पलंग के नीचे छिप कर मौके का इन्तजार करने लगा।

राजा बिस्तर पर लेट गया और श्लोक रचना में मग्न हो गया-

"चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरला स्तुरंगाः"

मेरे पास चित्ताकर्षक सुन्दर युवतियां हैं, अनुकूल मित्र हैं, अच्छे बन्धु बान्धव हैं, मधुरभाषी स्वामीभक्त भृत्य हैं, मस्त हाथियों के समूह झूम रहे हैं, चंचल (गतिशील) घोड़े विद्यमान हैं।

इस प्रकार राजा बार-बार इन पादों की पुनरावृत्ति कर रहा था परन्तु चौथे पद की रचना के समय अटक जाता था। चौथा पद बन नहीं रहा था। राजा परेशान था।

पलंग के नीचे छिपे चोर से राजा की यह परेशानी देखी न गई। अत: परिणाम की चिन्ता न करते हुए वह पलंग के नीचे से ही बोल पड़ा-

'सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति॥'

अर्थात् आंखें बन्द हो जाने पर यह कुछ भी नहीं।

चौथा पद पलंग के नीचे से सुनाई पड़ने पर राजा उसकी विद्वत्ता पर आश्चर्यचकित रह गया। चोर भी अब बाहर आ गया था। राजा उस पर बहुत प्रसन्न हुआ। चोर को बहुत से स्वर्णाभूषण पुरस्कार स्वरूप प्रदान कर विदा किया।

योग निकुञ्ज अमृतसर आर्यो की आकांक्षाओं का निकुञ्ज

ले. माधुरी योगमति योग निकुञ्ज म-21 गली नं. 10 गोकुल नगर मजीठा रोड, अमृतसर

निकुञ्ज का अर्थ होता है घर। यह एक ऐसा घर है जो ईश कृपा तथा माता-पिता की अर्जित सम्पत्ति से मुझे उपलब्ध हुआ है, इसे दिलाने व बनवाने में जहां मुझे सहयोग प्राप्त हुआ महाभजनोपदेशक प सत्यपाल जी पथिक का वहीं इसको नामकरण अर्थात् "योग निकुञ्ज" देन है मेरे गुरुदेव योग शिरोमणि स्वामी. दिव्यानन्द जी सरस्वती महाराज (हरिद्वार) की। मैं यह कहना चाहती हूं कि यह घर एक घर नहीं एक पवित्र धाम है जिसे माता-पिता, आचार्य गुरु व इष्ट मित्रों का आशीर्वाद प्राप्त है। यही कारण है कि यह घर न रह कर एक आर्य समाज अथवा आश्रम बन गया है। स्वामी जी महाराज ने जब इसका गृह-प्रवेश कराया तब आपने आशीष-प्रवचन में कहा था कि इस मोहल्ले के लोग धन्य हो गये हैं जो 'योगमती' जैसी बहन ने यहा अपना निवास-स्थान चुना है। साथ ही आपने आदेशात्मक रुख में कहा था कि मैं चाहूंगा कि यह घर ऐसा बने जहां से हर व्यक्ति के दु:ख दर्द दूर हों, सबको यहां से प्रभु भक्ति का सन्देश मिले, यज्ञ की सुगन्धि मिले तथा इस द्वार पर आने वाला कोई खाली न जाये, यहां ओ३म् की गूंज रहे, ओ३म् की पताका फहराती रहे तथा ध्यान योग एवं योगासन का नित्य आभास चलता रहे।

इस प्रेरक प्रवचन व विचारों ने मेरे मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि मै गुरुदेव के आदेशों को पूर्ण करने के लिए प्राणपण से जुट गई हू। मुझे यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि 100 गज से भी कम स्थान में बने इस घर में जहां पर जगह का निरन्तर अभाव सा अनुभव किया जाता है। वहीं पर घर के सबसे बड़े कमरे को जिसे बैठक का नाम व दर्जा दिया जाता है गोकल नगर (मजीठा रोड) वासियों के लिए एक आर्य समाज मन्दिर से कम नहीं है। मैं डी.ए.वी कालेज में नौकरी के बावजूद समय निकाल रही हूं, अपने गुरुदेव के वचन का पालन करने हेतु तथा अपने पिता द्वारा डाले संस्कारों पर चलने का। माता जी का सहयोग व आशीर्वाद निरन्तर मुझ पर बरस रहा है। वह अनेकों कष्ट उठाकर यह कमरा मुझे दिए हुए हैं, मैं हृदय से उनकी धन्यवादी हूं। आईये अब हम सक्षेप में जाने कि यहा क्या-क्या होता है।

सोमवार, मंगलवार तथा बुधवार साय 6.30 से 7.30 यहां पर महिलाओ के लिए योगासन की सुन्दर व्यवस्था है। महिलाए न केवल दिल बहलाने वरन् सच्चे अर्थो में योगासन करने व सीखने के लिए बड़ी लगन व श्रद्धा से पधारती हैं।

बृहस्पतिवार का दिन मेने वैसे तो रिक्त रखा है, परन्तु इस दिन मैं आर्य सद्भावना सत्सग समिति की बहनो के दु:ख-सुख हेतु उनको मिलने जाती हूं, या फिर रोगियो को आयुर्वेद का इलाज (दवाईंया) बताने के लिए रखती हू।

प्रत्येक शुक्रवार साय 5 से 6:30 इसी घर में आर्य-सत्सग होता है जिसमें सर्वप्रथम आर्यों का श्रेष्ठतम् कर्म यज्ञ होता है तत्पश्चात् ओकार स्तोत्र का सस्वर पाठ पुस्तिका की सहायता से बडी श्रद्धा पूर्वक होता है। (10-15 मिनट) बाद बहनों द्वारा प्रभु भक्ति के गीत व भजनो से वातावरण जहां गूञ्ज उठता है, वहीं अन्त में मैं प्रवचन द्वारा वेद वाणी का प्रचार व प्रसार करके माताओ बहनों को लाभान्वित करती हू। शान्ति पाठ व जयघोष के साथ कार्यक्रम का समापन होता है इससे हमारी आर्य बहनों व माताओं के अतिरिक्त मोहल्ले की माताएं बहने तथा योगासन सीखने वाली माताए बहनें श्रद्धा पूर्वक सम्मिलित होकर भक्ति रस का पान करती हैं। कृष्ण जन्माष्टमी, राम नवमी तथा शिवरात्री (ऋषि बोधोत्सव) के कार्यक्रम विशेष रूप से समारोह पूर्वक मनाये जा रहे हैं। इन समारोहो मे माताओं व बहनो की श्रद्धा देखने को बनती है। जब न केवल यह कमरा वरन् पूरा घर छोटा पड जाता है तथा माताओं-बहनों को सडक पर बैठने का आनन्द भी लेना पड़ता है।

समय-समय पर आर्य विद्वानों के प्रवचन व भजनों की भी व्यवस्था रहती है।

शनिवार को यहा "आर्य-बालवाड़ी लगती है जिसमें आस-पास के मोहल्ले से भी लगभग 35-40 बच्चे भाग लेने आते हैं। इस कार्यक्रम में यज्ञ, भजन, वेद सूक्तियां, नैतिक कहानिया, योगासन से लेकर योगाध्ययन तक के कार्यक्रम गुरुकुल पद्धति से सिखाये जाते हैं। बच्चो मे प्रतियोगिता की भावना जागृत रहे इस हेतु वर्ष मे एक बार प्रतियोगिता दिवस की भी व्यवस्था है। इसमें बच्चे व बच्चिया दोनो को अनुमति है। प्राचीन सस्कृति व सभ्यता के साथ-साथ बच्चों को हस्त कला के कुछ नमूने भी सिखाये जाते हैं। अन्त में बच्चों से निम्नलिखित संकल्प कराये जाते हैं। सबसे अन्त मे हल्का-फुल्का जलपान दिया जाता है जो भोजन मन्त्र के बाद ग्रहण किया जाए इसका अभ्यास कराया जाता है।

देश की रक्षा कौन करेगा
हम करेंगे, हम करेंगे
धर्म की रक्षा कौन करेगा
हम करेंगे, हम करेंगे
माता पिता की सेवा सम्मान कौन करेगा हम करेगे, हम करेगे
गुरुजनो की आज्ञा पालन कौन करेगा हम करेगे, हम करेंगे
सब प्राणियो से दया-प्रेम कौन करेगा हम करेगे, हम करेंगे
हम किसी से द्वेष-ईर्ष्या नहीं करेंगे, नहीं करेगे।
कभी भी आलस्य नही करेंगे, नहीं करेंगे।
गन्दी बातें नहीं सुनेगे, नही करेगे
टी वी के गन्दे कार्यक्रम . नहीं देखेंगे, नहीं देखेगे
भारत की संस्कृति कौन बचायेगा हम बचायेगे, हम बचायेगे।
जागेंगे जगायेगे जान तक लडायेगे
हम सब अच्छे बच्चे बनेगे, बनेगे
भारत माता की जय
भारत के शहीदो की जय
सब सन्तो की जय
वेदिक अभिवादन,
सबको नमस्ते

रविवार का दिन यो तो छुट्टी का दिन होता है, पर इस योग निकुञ्ज ने तो आर्यो की आकाक्षाओ को पूरा करना है। अत: अति प्रात: काल 'ध्यान-योग' सिखाया जाता है। तथा दिन के समय किसी के घर पर यज्ञ की व्यवस्था होती है, विशेप कर जो परिवार आर्य पद्धति से यज्ञादि नहीं कर पाते हैं।

आगे हमारा विचार है एक दिन चाहे रविवार ही क्यो न हो स्वाध्याय हेतु पुस्तकालय की सेवा की भी व्यवस्था हो जाए। मैं एक बात यह अवश्य ही कहना चाहूगी कि सब कार्यो के पीछे पूज्या माता शीरमती जनक दुलारी का वरद हस्त है । यह सब लिखने का एक मात्र उद्देश्य यही है कि आप मे से भी कोई प्रेरणा ले तथा ऐसे कार्यो मे जुटे।

जिला आर्य सभा संगरूर का निर्वाचन सम्पन्न

गत दिनों जिला सगरूर आर्य सभा का वार्षिक निर्वाचन आर्य समाज मन्दिर अहमदगढ मे पूज्य महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ, जिसमे संगरूर, बरनाला, तपा, धूरी मालेरकोटला व मण्डी अहमदगढ के आर्य प्रतिनिधियों ने भाग लिया। बरनाला के नवयुवक कार्यकर्त्ता सतीश सिधवानी को इसमे सर्व सम्मिति से जिला सभा का अध्यक्ष चुन लिया गया तथा शेष नियुक्तियो का अधिकार भी सर्व सम्मति से उन्हें सौंप दिया गया। श्री सिंधवानी ने निम्नलिखित अधिकारी व सदस्य नियुक्त किए-

संरक्षक-महात्मा प्रेम प्रकाश जी धूरी। उपप्रधान-श्री अमृत लाल गुप्ता बरनाला, श्री प्रह्लाद कुमार धूरी। श्री एस के शर्मा मालेरकोटला। श्री डा राज कुमार शर्मा तपा। श्री विजय हिन्द अहमदगढ। श्री वेद पाल टुटेजा सगरूर। महामन्त्री-श्री राम शरण आर्य संगरूर। मन्त्री-श्री सी मारकण्डा तपा। कोषाध्यक्ष-श्री विजय कुमार बरनाला। प्रचार सचिव श्री वासदेव आर्य, सगठन सचिव श्री मनोहर लाल खुगना अहमदगढ़, महिला विभाग प्रभारी श्रीमती उषा सिंगला संगरूर, युवा विभाग अधिष्ठाता श्री रमेश कौशल मालेरकोटला तथा लोक सम्पर्क अधिकारी श्री राम कुमार सोबती बरनाला।

इसके अतिरिक्त विभिन्न आर्य समाजो के सदस्यों को कार्यकारिणी समिति मे सम्मिलित किया गया है। इस चुनाव के बाद जिला संगरूर की आर्य समाजो मे नई जागरुकता आई है।

—रामसरण आर्य, महामन्त्री

मातृ मन्दिर वैदिक शोध केन्द्र

(मातृ मन्दिर का वैज्ञानिक दृष्टिकोण)

महर्षि ने वेद को जो सब सत्य विद्याओ का पुस्तक बताया है; वह अक्षरश: सत्य है विद्याओं की कसौटी विज्ञान के नियम है। ये नियम सार्वदैशिक व सार्वकालिक होते हैं, इसलिए ये सत्य है। विज्ञान किसी देश काल सम्प्रदाय की अवधि में सीमित नहीं होता। वेद सब सत्य विद्याओ की पुस्तक है, तो इसका सीधा सा अर्थ है कि वेद में विज्ञान की सच शाखाएं हैं।

अभी तक तो आर्य समाज का ध्यान वेद के महत्व को जन हृदय में प्रतिस्थापित करना था। जो लोग इस गहरे अज्ञान में भटक रहे थे कि वेद को शखासुर लेकर भाग गया और जिसके फलस्वरूप विद्वानों व जन सामान्य का ध्यान वेद की ओर से उदासीन हो चुका था, तो उस भ्रान्ति को दूर करके वेद अभी भी विद्यमान हैं, इस तथ्य की ओर जनता को जागरूक करना था।

पर अब इससे आगे का कदम बढ़ाना है, और वह यह कि वेद वर्णित विद्याओं का उद्घाटन करना है युग तेजी से आगे बढ़ रहा है, विज्ञान के कदम बहुत आगे आ चुके हैं और यदि हम यही कहते रह गए कि वेद में सब विद्याएं हैं और वैदिक विज्ञान आधुनिक विज्ञान से आगे है, और किसी भी विद्या का प्रत्यक्ष करके नहीं दिखाया तो हम उपेक्षा व उपहास के पात्र बन जायेंगे।

यही विचार था कि मातृ मन्दिर शोध केन्द्र की संस्थापना का उपक्रम किया जा रहा है। जिसका विधिवत् शुभारंभ 31-10-2001 को माननीय स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती के कर कमलों से मातृ मन्दिर के सीरगोवर्धन पुर के भवन में होगा। इस शोध केन्द्र के विषय में दो शब्द कहना आवश्यक है।

इस वैदिक शोध केन्द्र में वेद और विज्ञान का समन्वय करके शोधकार्य चलेगा। यहां पर वे ही विद्वान् सफल होंगे जिनका वेद सह विज्ञान का अध्ययन होगा। उन्हीं शोध छात्र/छात्राओं को छात्रवृत्तियां दी जाएंगी जिनका वेद और विज्ञान का अध्ययन सम सामायिक होगा। सौभाग्य से हमें ऐसे विद्वानों का परिचय मिल रहा है। श्री छैलबिहारी जी गोयल, श्री खेमचन्द्र शर्मा जी दो महिमा पण्डित विद्वानों से पत्राचार हो रहा है। श्री खेमचन्द्र शर्मा जी ने समय देने की स्वीकृति दी है। और भी अनेक विद्वानों होंगे जो खोज करने पर मिल सकेंगे, ऐसी आशा है। इन्हीं विद्वानों के माध्यम से हमें अपेक्षित शोध छात्र/छात्राएं भी मिलेगी।

निष्ठावान आर्यों व देश हितैषियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस मातृ मन्दिर शोध केन्द्र के रूप में मातृ मन्दिर का ही नहीं अपितु आर्य समाज व समग्र राष्ट्र के नूतन अध्याय का प्रारम्भ होने जा रहा है, जिसमें ईश्वर वाणी वेद केवल श्रद्धांलुओं द्वारा पूजा की वस्तु न रहकर जन सामान्य के व्यावहारिक जीवन के पथ प्रदर्शन बनेंगे। कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम् का यही स्वरूप है यही स्वप्न है और महर्षि दयानन्द का यही स्वप्न था। और यही स्वप्न दयानन्द की पुत्री आचार्य पुष्पावती जी का भी है जिसे वे अपने बाल्यकाल से संजोए हुए हैं। क्योंकि श्रद्धेया आचार्या जी को परिस्थिति वशात् विज्ञान का अध्ययन करने का अवसर नहीं मिला, और वेद और विज्ञान के समय अध्येता विद्वानों की प्रतीक्षा करनी पड़ी, इसी कारण इस वैदिक शोध केन्द्र की स्थापना में कुछ विलम्ब हो गया अन्यथा यह वैदिक शोध केन्द्र आज से तीस चालीस वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो गया होता।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि विज्ञान आधारित ज्ञान व वस्तु सार्वजनिक होते हैं वे किसी एक देश या वर्ग से सम्बद्ध नहीं होते। इसी प्रकार विज्ञान आधारित वेद-ज्ञान के निष्कर्ष ग्राह्य होंगे और यह भी संभव है कि पश्चिम के लोग अधिक जागरूक ग्रहणशील व क्रियाशील होने के कारण वेद-विज्ञान को हमसे अधिक व्यापक रूप में ग्रहण कर लें। अभिप्राय यह है कि विज्ञान और वेद का समन्व्य हो जाने पर वेद का प्रचार स्वयमेव हो जाएगा और सारे विश्व की जनता वेद को चाव से पढ़ेगी। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी आदि का कोई भेदभाव नहीं रहेगा।

समग्र विश्व को एक बनाने का भी यह सर्वोत्तम उपाय है।

जब विश्व के राष्ट्राध्यक्षों का बौद्धिक व मानसिक धरातल एक हो जाएगा, तब विश्वशांति स्वयमेव चरितार्थ हो जाएगी। यही आर्यों का चक्रवर्ती राज्य का चित्र है। आर्य लोग धन सम्पत्ति के लोभ में कभी दूसरे देशों का आधिपत्य नहीं चाहते थे अपितु विश्व शांति के लिए विश्व को एक राज्य के रूप में रखते थे। ऋषि दयानन्द ने भी चक्रवर्ती राज्य की याद दिलाई है। श्रद्धेया आचार्या पुष्पावती जी का भी यही स्वप्न है। इस स्वप्न को साकार करने में आचार्या जी ने अपने जीवन की, सुख-सुविधाओं की आहुति दे दी है, अनेक तूफानी विघ्नबाधाओं व संघर्षों को हंसते-हंसते झेला है अपने को तिल-तिल करके जलाया है, अपनी निजी सुख सुविधा के लिए कभी कुछ नहीं चाहा, तो उनके इस स्वप्न को पूर्ण करना अब आप व हम सब परम पुनीत कर्त्तव्य है।

आचार्य जी ने अपनी 6 वर्ष की अवस्था में महर्षि जी की जीवन कथा सुन कर दयानन्द बनने की कल्पना की थी जिसके अनुसार उन्होंने 11 वर्ष की अवस्था में ही आजीवन कौमार्य व्रत का संकल्प ले लिया था। और आर्य समाज को ही अपना परिवार मान लिया था। तो अब उनका आर्यों का चक्रवर्ती राज्य-अर्थात् वेद ज्ञान की पृष्ठ भूमिका पर विश्व ऐक्य के स्वप्न को पूरा करने का उत्तरदायित्व आप व हम सब पर है। आचार्या जी की पंचवर्षीय हीरक जयन्ती के दूसरे वर्ष के प्रारम्भ में हम उन्हें यही उपहार दें कि उनके द्वारा विचारे गए वैदिक शोध केन्द्र को क्रियान्वित कर दें। क्या हम उनकी जीवन भर की तपस्या के लिए कृतज्ञता प्रकाश भी नहीं करेंगे ? अवश्य करेंगे, हमें कृतघ्न नहीं बनना है।

और फिर इस वैदिक शोध केन्द्र की सफलता पर तो समग्र आर्य समाज व भारत राष्ट्र की सफलता समृद्धि व गौरव निर्भर है। यह प्रयोजना परिश्रम साध्य व व्यय साध्य है। इतने विराट् आर्य परिवार के लिए यह धन जुटाना कठिन नहीं है। हमारी शक्ति अल्प है जो आपके सहयोग से विशाल हो जाएगी। देश भर की आर्य प्रतिनिधि सभाएं जागरूकता व दृढ़ संकल्प से सहयोग देगी तथा आर्य समाज में अनेक भामाशाह हैं, वे भी मातृ मन्दिर रूपी राणाप्रताप का हाथ मजबूत करेंगे तो इस वैदिक शोध केन्द्र की सफलता में कोई सन्देह नहीं रहेगा।

इस शोध केन्द्र के साथ एक विशाल प्रयोगशाला (Laboratory) होगी जिसमें कि वैदिक विद्वान् परीक्षण करेंगे।

पर्याप्त भूमि हमारे पास है। अभी आप इतना करें कि 31-10-2001 को यहां पर अवश्य समवेत हों और अपना-अपना देय भाग दें। हमारी तो यही योजना है कि प्रत्येक प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा अपनी सामर्थ्यानुसार एक से 5 लाख तक की राशि दे, चाहे वह राशि किस्तों में ही दें। धन कुबेर भी अधिक से अधिक दें तो एक अच्छी पूंजी सावधि खाते में रखा दी जाएगी, जिसके ब्याज से वैदिक विद्वानों, वैज्ञानिकों व शोध छात्र/छात्राओं का व्यय चलता रहेगा ध्यान यह रखना है कि शोधरत विद्वान व छात्र/छात्राएं मुख्य रूप से शोध में ही लगे रहें, उन्हें इधर-उधर न भटकना पड़े । अपने शोध परिणामों का परिचय देने के लिए भले ही वे व्याख्यान दें, लेख लिखें।

और यह भी ध्यान रखना है कि कोष की राशि का दुरूपयोग न हो। विनम्र अनुरोध है कि आप सब अपने सुझाव भेजें और जितने भी विद्वानों व शोध छात्र/छात्राओं की आपको जानकारी है, आप उनके नाम पते हमें सूचित करें। जो भी वैज्ञानिक वेद के प्रति आकृष्ट हैं, उनके नाम पते भी भेजने की कृपा करें।

हमें पूर्ण विश्वास है कि आप इस सुअवसर से चूकेंगे नहीं। सम्प्रति इस वैदिक शोध केन्द्र की स्थापना से यह लाभ भी होगा कि हमें श्रद्धेया आचार्य जी की बौद्धिक उपलब्धि तथा अनुभवों की संपदा भी मिल जाएगी। आचार्या जी ने उपयोगी विषयों The Methods of Interpretation of the Vedas तथा वैदिके च तन्त्रिके च साहित्ये शब्दार्थ सम्बन्ध: शोधप्रबन्ध लिखे हैं। उन्हें भी शोध कार्य का जितना अनुभव व चिन्तन है उससे भी हमें लाभान्वित होना उचित है। आचार्य जी का परिवार एक लाख रुपया भी वैदिक शोध केन्द्र के कोष में देने को तैयार है। इस सबसे हम लाभान्वित हो, यह युक्तिसंगत है।

हम पुन:-आपसे अपना विश्वास दोहराते हैं कि आप इस मातृ मन्दिर वैदिक शोध केन्द्र के स्थाई स्तम्भ बनेंगे और आर्य समाज के गौरवमय उज्वल भविष्य के निर्माण में योगदान करके अक्षय कीर्ति व महापुण्य के भागी बनेंगे।

31-10-2001 को यहां आना न भूलें। शुभागमन की पूर्व सूचना अवश्य देंगे।

अनुरोधकर्त्ता विद्वज्जनों के अनुचर:

धर्मवीर खन्ना,
कार्यकारी अध्यक्ष प्रशासन

सीताराम ओझा,
कार्यकारी अध्यक्ष (सामान्य)

सुषमा गुप्तस्वामी,
उपाध्याय

गुरुकुल करतारपुर का 31वां वार्षिक उत्सव

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट, करतारपुर का 35वां एवं श्री गुरु विरजानन्द गुरुकुल करतारपुर का 31वां वार्षिकोत्सव, गुरु विरजानन्द भवन, जी.टी गेड, करतारपुर में बड़े उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। इस महोत्सव पर आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

यदि आप किसी आर्य समाज, शिक्षण संस्था अथवा संगठन विशेष से सम्बन्धित हैं तो आपसे साग्रह निवेदन है कि इस पुण्य अवसर पर समस्त सदस्यों को भी अवश्य साथ लावें तथा समारोह में उपस्थित हो रहे उच्चकोटि के विद्वानों व सन्यासियों के प्रवचन सुनकर जीवन लाभान्वित करें।

नोट:-अपने साथ ऋतु अनुकूल वस्त्र लाए।

कार्यक्रम :- 8 अक्तूबर सोमवार से 14 अक्तूबर 2001 रविवार तक अथर्ववेद पारायण यज्ञ-(6 से 10 काण्ड) समय : प्रात: 7 00 से 9 00 बजे तक, सायं 4.00 से 6.00 बजे तक। यज्ञब्रह्मा : आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, नोएडा। वेदपाठ : गुरुकुल करतारपुर के ब्रह्मचारी रात्रिकथा : 8.00 से 9.30 बजे तक। प्रवचन : आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, नोएडा। आचार्य महावीर मुमुक्षु, मुरादाबाद। भजन संगीत : श्री विजय आनन्द, फिरोजपुर तथा गुरुकुल करतारपुर की भजन मण्डली।

12 अक्तूबर 2001 शुक्रवार वैदिक परीक्षा सम्मेलन : रात्रि : 8.00 बजे । अध्यक्ष : आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, नोएडा।। वेद, अष्टाध्यायी, संस्कार-विधि, कण्ठस्थीकरण परीक्षाएं-विभिन्न प्रान्तों से आए अनेक प्रतियोगी कण्ठस्थ किए हुए सम्पूर्ण वेद के मन्त्र, अष्टाध्यायी के सूत्र या संस्कार विधि (कर्मकाण्ड की विधि सहित) मञ्च पर ही सुनाकर अपनी-अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करेंगे तथा सफल परीक्षार्थियों को ऋग्वेदी-यजुर्वेदी-सामवेदी-अथर्ववेदी-द्विवेदी-वेदी-पाणिनीय तथा संस्कार-विशारद की उपाधियों से विभूषित किया जाएगा। निर्णायकों का निर्णय अन्तिम होगा।

13 अक्तूबर 2001 शनिवार ध्वजारोहण एवं उद्बोधन प्रात: 8.30 बजे। आर्ष सम्मेलन प्रात: 9.00 से 12.00 बजे तक। अध्यक्ष : डॉ. रवि प्रकाश आर्य, दिल्ली। मुख्यवक्ता : स्वामी आत्मबोध सरस्वती, हरिद्वार। आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, नोएडा।

वैदिक परीक्षा पुरस्कार एवं उपाधि प्रमाण-पत्रों का वितरण श्री पं हरबंस लाल शर्मा के कर कमलों द्वारा। महिला सम्मेलन-मध्याह्नोत्तर 1.30 से 4.30 बजे तक । संयोजिका : श्रीमती सुशीला भगत, जालन्धर। अध्यक्षा . मान्या माधुरी योगमति अमृतसर। मुख्यवक्त्री : श्रीमती सरला भारद्वाज, फगवाड़ा । श्रीमती कमला आर्या लुधियाना । मान्या सुमनायति, लुधियाना । श्रीमती आचार्या चन्द्रप्रभा मदान लुधियाना। संगीत : श्रीमती रश्मि घई, जालन्धर ।

विशेष कार्यक्रम :-आर्य कन्या हाई स्कूल करतारपुर की छात्राए तथा आर्य माडल व आर्य हाई स्कूल करतारपुर के छात्र एव आर्य कन्या गुरुकुल लुधियाना की छात्राएं अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करेगी।

वैदिक संस्कृति सम्मेलन : रात्रि 8.00 से 10.00 बजे तक। अध्यक्ष : आचार्य महावीर मुमुक्षु, मुरादाबाद। मुख्यवक्ता : डॉ० राम प्रकाश, चण्डीगढ़। विशेष कार्यक्रम : गुरुकुल करतारपुर के ब्रह्मचारियो का सास्कृतिक कार्यक्रम।

14 अक्तूबर 2001 रविवार प्रात : 6.30 बजे से 9 00 बजे तक अथर्ववेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति तथा आशीर्वाद

यज्ञब्रह्मा : आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश, नोएडा। श्री गुरु विरजानन्द सम्मेलन : प्रात: 10 से 1.30 बजे तक अध्यक्ष : डॉ० राम प्रकाश, चण्डीगढ़ । मुख्य अतिथि : श्री बलराम जी दास टण्डन, मन्त्री पजाब सरकार।

मुख्य वक्ता : स्वामी आत्मबोध सरस्वती हरिद्वार। आचार्य सत्यानन्द वेदवागीश नोएडा । डॉ० रवि प्रकाश आर्य दिल्ली। भजन संगीत : श्री विजय आनन्द फिरोजपुर तथा गुरुकुल करतारपुर की भजन मण्डली। ऋषि लंगर : दोपहर 1.30 बजे शान्तिपाठ के पश्चात्।

दान की अपील-श्री गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट द्वारा संचालित इस गुरुकुल में 150 ब्रह्मचारी पढ़ रहे हैं। जिनके भोजन, दूध, आवास, चिकित्सा व शिक्षा का प्रबन्ध सर्वथा नि:शुल्क होता है । कोई फीस नहीं ली जाती। दान ही आय का साधन है। 54 लाख रुपए की अनुमानित लागत से नए परिसर में भवननिर्माण प्रगति पर है। कृपया अपनी सहयोग दान-राशि के मनिआर्डर, ड्राफ्ट या चैक श्री गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट, करतारपुर जिला-जालन्धर-144801 (पंजाब) के नाम पर अवश्य भेजें। गुरुकुल को दिया गया दान कर मुक्त है।

हरबंस लाल शर्मा — प्रधान
चतुर्भुज मित्तल — महामन्त्री

॥ पुन: मशाल जलाना है ॥

पं. अविनाश शास्त्री "वेदी" आर्य समाज संगरूर

पुन: मशाल जलाना है।
धर्म की राह दिखाना है॥
अन्धकार व्याप्त है तो क्या ?
धर्म की चीत्कार है तो क्या ?
मानव का धर्म बताना है॥ पुन: मशाल....
शरण वेद की आना पड़ेगा
छोड़ कपट प्रेम दीप जलाना पड़ेगा,
अत: आर्य (श्रेष्ठ) विश्व बनाना है॥ पुन: मशाल.....
हिन्दु मुस्लिम सिक्ख ईसाई,
मत-सम्प्रदाय है सब, धर्म नहीं भाई,
मानवता का धर्म बताना है॥ पुन: मशाल......
न भटको यहां वहां जहां मेरे,
दूजे को छोड़ खुद को मन में झाकोरे,
हर इक को बस यही पाठ पढ़ाना है। पुन: मशाल......
महर्षि दयानन्द का मार्ग अपनाओ,
हर घर में फिर वेद पढ़ाओ,
फिर सम्भलो "वेदि" कि इन्सान कहलाना है॥ पुन: मशाल.....

अमृतसर में सक्रान्ति पर्व

महर्षि दयानन्द धाम में आर्य युवक परिषद् अमृतसर की ओर से 16-9-01 को संक्राति पर्व पर विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ बृहद् यज्ञ के साथ हुआ। श्री राकेश पसाहन जी (सपत्नीक) श्री विशाल आर्य जी (सपत्नीक) तथा श्री बृज किशोर जी (सपत्नीक) ने यजमान पद को सुशोभित किया। यज्ञशाला को ओ३म् के झण्डों से सजाया गया था। और सामूहिक वेद मन्त्रो के गायन से वातावरण मनमोहक बन गया। यज्ञमानों को यज्ञ के पश्चात् साहित्य देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम का शुभारम्भ श्री ओम प्रकाश जी आर्य, आर्य युवक परिषद पंजाब के अध्यक्ष ने गायत्री मन्त्र के साथ किया। ब्र ओम प्रकाश, डा. अन्जू आर्या तथा माता जगदीश आर्या (आर्य महिला परिषद की प्रधाना) ने सुन्दर भजनों का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस कार्यक्रम के मुख्य वक्ता श्री ओम प्रकाश जी आर्य ने यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के तीसरे मन्त्र की व्याख्या की और सार गर्भित उपदेश दिया।

कार्यक्रम के पश्चात् प्रीतिभोज की व्यवस्था की गई। कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए डा. अन्जू आर्या, डा नवीन आर्य, श्री रमेश जी शर्मा, भीमसेन जी, कुनाल जी, कर्ण जी, पूजा तथा सुनीता जी ने विशेष योगदान दिया।

-राकेश पसाहन

पूर्वजन्म सम्बन्धी कुछ प्रश्नों के उत्तर

□ ले. श्री इन्द्रजित् 'देव' पुरानी सब्जी मण्डी मार्ग, यमुनानगर-135001

पुनर्जन्म वैदिक धर्म की एक विशेष मान्यता है। वैदिक धर्म वैज्ञानिक धर्म है व इसका आधार सत्य, युक्ति व तर्क हैं। धीरे-धीरे वादिक धर्म भारत वर्ष से बाहर भी गया व इसकी पुनर्जन्म सम्बन्धी मान्यता को सर्वत्र स्वीकृति प्राप्त रही है परन्तु आज उसे केवल भारतवर्ष मे उत्पन्न हुए मतो के अनुयायी व वैदिक धर्मी ही मानते हैं। इस लेख द्वारा हम पुर्नजन्म की सिद्धि तो हीं कर रहे परन्तु पुनर्जन्म सम्बन्धी कुछ प्रश्नों के उत्तर देने का सकल्प यत्न करते हैं।

पुनर्जन्म सम्बन्धी सबसे बडा प्रश्न जो प्राय: लोग पूछते है, वह यह है कि यदि पुनर्जन्म है तो बताइए कि पिछले जन्मों की घटनाए-व्यक्ति को स्मरण क्यों नहीं रहती ?

इस प्रश्न का उत्तर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह दिया है कि यह वस्तुतः ईश्वर की बहुत बडी कृपा है कि हमें (=जीवो को) पिछले जन्मो की बातें याद नहीं रहतीं । हम प्रत्यक्ष देखते हैं, संसार मे कि वर्तमान इस एक जीवन या जन्म की समस्त समस्याए ही हममे हल नहीं हो पाती। एक जन्म के समस्त दु:खों को हम सुखो में नहीं बदल सकते। एक जीवन का लेन-देन ही हम निप्टा नहीं पाते। इस एक जीवन की समम्याओं, इस एक जीवन के दु:खो-का बोझ ही हमारे जीवन को सरल, सहज, सुखी व भार मुक्त नहीं रहने देता। यदि पिछले जन्मो की बातें घटनाए भी जुड जाए तो मनुष्य एक क्षण भी चैन से नहीं जी सकेगा कल्पना कीजिए पिछले जन्म मे मैंने आपसे कुछ रुपए उधार लिए थे जो मैं आपको लौटा नहीं सका व मेरा देहान्त हो गया था। अब यदि मुझे व आपको इश्वर पिछले जन्मों की घटनाएं याद रखने की शक्तिया दे देता तो आप व मैं इस जीवन में मित्रता पूर्वक नहीं रह पाते। आप मुझसे व्याज सहित अपना धन वापिस मागते तथा मं पिछले लेन-देन से साफ मुकर जाता क्योंकि मैं जानता हू कि पिछले जन्मों का कोई कानूनी प्रमाण आपके पास इस समय नहीं हैं व आप मेरा कुछ बिगाड नही सकते। परिणाम क्या निकलता ? हममें परस्पर लाठिया चलतीं, मुकदमे चलते। यह एक सामान्य उदाहरण है। एक जीव न जाने एक जीवन में कितने लोगों से कितने प्रकार का व कैसा-कैसा व्यवहार करता है। कोई हिसाब नहीं है। अनादि काल से एक जीवन असंख्य जन्मों मे संसार के न जाने कितने प्राणियों से कितने प्रकार का, कब-कब व कैसा-कैसा व्यवहार कर चुका है। सब कुछ भूल जाने में ही वर्तमान जन्म का सार्थकता है। यदि उसका शताश भी स्मरण आ जाए तो वर्तमान घोर नरक बन जाएगा।

एक और हेतु इस प्रकार है मैं किसी जीवन में चक्रवती राजा भी बना था, किसी जीवन में योगी भी बना, कभी मोक्ष मे भी रह कर आया हू पर आज इस जीवन में एक साधारण मनुष्य ही बन पाया। यदि ईश्वर यह व्यवस्था कर देता कि सभी जन्मों की सभी घटनाएं मुझे स्मरण रह जाती तो इस वर्तमान जीवन मे अतीत के सुखों, ऐश्वर्यो व आनन्द को याद करके झूठा व व्यर्थ का अहंकार पालता रहता। पिछला ऐश्वर्य व आनन्द भोग तो वापिस नहीं लौटता, उसे याद करते-करते, उनकी याद में आहे भरते-भरते मै दुबला व उदास अवश्य रहता। मैं यदि किसी दूसरे व्यक्ति को अपनी स्मृति के आधार पर अपने चक्रवर्ती राजा होने की बात बताता तो सब मेरी बात पर हंसते व यही कहते-''चल, चल। यह मूह और मसूर की दाल।'' मैं मजाक व व्यंग्य का पात्र बनता। राजा से सामान्य मनुष्य बनने की Demation पर ग्लानि का अनुभव करते-करते चैन से जी नहीं सकता। इसके विपरीत यह भी सत्य है कि मैं कभी चोर भी बना था, किसी जीवन में भिखारी भी रहा कभी हत्या भी किसी जीवन मे की थी, किसी जन्म मे मैं सुअर भी बना था, घोड़ा गधा भी मैं किसी जीवन में बना था। यदि पिछले जन्मो की स्मृतियां भी मेरे साथ ईश्वर रख देता तो इस वर्तमान जन्म म मैं आत्म ग्लानि व लज्जा के कारण मूंह छिपाता फिरता। इस वर्तमान जीवन में जैसे हमें न केवल अपने विषय में कुछ-कुछ स्मरण रहता है, अपितु दूसरों के विषय में भी कुछ-कुछ याद रहता है। इसी प्रकार यदि पिछले जन्मों की स्मृतियां कायम रहने की व्यवस्था ईश्वर कर देते तो न केवल अपने विषय में ही हमे सब कुछ याद रहता, अपितु दूसरे प्राणियों की बातें भी हमें स्मरण रहतीं। परिणाम स्वरूप दूसरे इस पर व हम दूसरो को लज्जित करते रहते। हीन भावना से ग्रसित होकर वर्तमान जीवन में परस्पर सामाजिक स्नेह व समन्वय स्थापित कभी न हो पाता। अत: हमारे कल्याणार्थ ही परमात्मा हमारी पिछले जन्मों की स्मृतियो को छीन लेता है। जिस प्रकार स्लेट या तख्ती पर पहले से लिखा लेख मिटाया न जाए, तब तक उन पर कुछ भी नया लेख लिखा नहीं जा सकता, उसी प्रकार कुछ भुलाए बिना कुछ नया सीखा नहीं जा सकता। सब जन्मों की सब स्मृतियां लेकर जीव अतीतगामी ही बना रहेगा, भविष्यगामी नहीं बन पाएगा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ''सत्यार्थ प्रकाश'' की बातो को स्मरण न रख पाने का इस प्रकार उदाहरण देते हैं :-

''जीव अल्पज्ञ है। त्रिकालदर्शी नहीं। अत: स्मरण नहीं रहता और जिस मन से ध्यान करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिए, इस देह में जब गर्भ में जीव था, शरीर बना। पश्चात् जन्मा। पांचवें वर्ष से पहले तक की जो-जो बातें हुई हैं, उनका स्मरण क्यो नहीं कर सकता ? जागृत स्वप्न में बहुत-सा व्यवहार पृथक-पृथक् में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ निद्रा मे होता है, तब जागृत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं रह सकता? और तुमसे कोई पूछे कि बारह वर्ष के पश्चात् तेरहवें वर्ष के पांचवें मास के नवमें दिन दस बजे पर प्रथम मिनट पर तुमने क्या किया था ? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र व शरीर किस प्रकार का था ? और मन मे क्या विचार था ? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्वजन्म की बातों के स्मरण में आक्षेप करना सर्वथा बालपन की बात है और जो स्मरण नहीं होता है, इसी से जीव-सुखी है। नहीं तो सब जन्मों के दु:खों को देख-देख दु:खित होकर मर जाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जाना सकता क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है। यह बात ईश्वर के जानने योग्य है जीव के नहीं।''

हमारा निवेदन यह है कि यह कोई आश्चर्य तथा उत्सुकता । खोज की बात नहीं कि पिछले जन्मों में घटनाएं हमें स्मरण क्यों नहीं रहतीं। अपनी पाच, वर्ष से पूर्व की तो इस जन्म की ही कोई बात हमें स्मरण नहीं रहती तो पूर्व जन्मों की याद नहीं रहने में आश्चर्य कैसा ? यदि पिछले जन्मों को व कुछ इस जन्म की बाते नहीं रहती तो समझा जाना चाहिए कि जीव की अल्पज्ञता तथा ईश्वरीय सुखदायक व्यवस्था यही दो कारण हैं। श्री डा सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार जी ने एक स्थान पर लिखा है-''महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन कितने विद्वान् थे। उनकी विद्वत्ता के कारण ही उन्हें महापण्डित कहा जाता है। जीवन के अन्तिम दिनो में वे अक्षर लिखना तक भूल गए थे। सन् 1962 में जब वे कलकत्ता के अस्पताल में बीमार पड़े हुए थे, तब हमें उनका साक्षात्कार करने का अवसर प्राप्त हुआ था। हमारा उनका सन् 1920 से परिचय था। हमने उनसे कहा-''मैं सत्यव्रत हूं।'' वो कुछ समझ नहीं पाए। बोले-''सन्, कौन-सा सन् ?'' क्योंकि इतिहास में उनकी विशेष रुचि थी, इसलिए 'सत्यव्रत' का 'स' सुनकर उनकी अन्तश्चेतना में पडा हुआ इतिहास 'स' को 'सन्' से जोड़ सका, 'सत्यव्रत'-इस नाम से न जोड़ सका। इतना बड़ा महापण्डित और जीवन के अन्तिम दिनों में सब कुछ भूल गया।'' आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध सन्यासी स्वामी सत्य प्रकाश जी भी अन्तिम दिनों में सब कुछ एक बार तो भूल गए थे। बाद में, स्मृति फिर वापिस आ गई थी। जब स्मृति वापिस आ गई थी, तब कितनी वापिस आई, अनुमान-लगाना कठिन है, निर्णय कर पाना कठिन है। फिर भी इतना तो सिद्ध है कि इस जन्म की स्मृतिया भी चली जा सकती हैं। पूर्व जन्मों की तो बात ही क्या ?

(शेष पृष्ठ 9 पर)

गुरुकुल के लिए अपील

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी महाराज की जन्म स्थली करतारपुर में "श्री गुरु विरजानन्द गुरुकुल" के नाम से एक संस्कृत महाविद्यालय 1970 ई. से चल रहा है। जिस गुरुकुल का शुभारम्भ तपोनिष्ठ महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज की सत्प्रेरणा से स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज ने किया था, वह गुरुकुल आपके निरन्तर सहयोग से पंजाब में वैदिक शिक्षण तथा वेद प्रचार का प्रमुख केन्द्र बन गया है।

गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार से मान्यता प्राप्त इस शिक्षण संस्था का मुख्य उद्देश्य संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार तथा धर्मनिष्ठ, राष्ट्रभक्त, भारतीय संस्कृति की रक्षा में तत्पर, चरित्रवान, समाज सेवी युवक तैयार करना है ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण तथा प्राकृतिक आपदाओ से त्रस्त क्षेत्रों में राष्ट्रवादी विचारधारा को प्रमुख रखते हुए सेवा कार्य हेतु इन युवकों को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाता है।

वर्तमान में इस गुरुकुल में कक्षा 6 से अलंकार (बी ए) तक की कक्षाओ में पंजाब, हिमाचल, उडीसा, बिहार आदि प्रान्तों से आए हुए 160 विद्यार्थी गुरुकुलीय पद्धति से, योग्य आचार्य एवं उपाध्यायों के संरक्षण में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। ईसाई मिशनरियों के धर्मान्तरण तथा प्राकृतिक आपदाओं से पीडित परिवारों के बच्चों की शिक्षा के लिए इस संस्था के द्वार हमेशा ही खुले रहे हैं। ऐसे परिवारों से भी छात्र यहां आते हैं और यहा शिक्षा ग्रहण करते हैं।

इस गुरुकुल की यह अपनी विशेषता है कि इसमें पढ़ने वाले सभी छात्रों को शिक्षा, भोजन, दूध, आवास, चिकित्सा, आदि की सभी सुविधाएं निःशुल्क दी जाती हैं। संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी, अंग्रेजी, विज्ञान, गणित आदि आधुनिक विषयों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध है। वैदिक-कर्मकाण्ड, प्रवचन कला तथा व्यावहारिक आयुर्वेद की शिक्षा अतिरिक्त दी जाती है।

संस्था के पास अपनी गौशाला है, जिसमें 34 के लगभग गाय-बछड़े हैं। जिसके सम्पूर्ण दूध का उपयोग छात्रों, शिक्षकों तथा अतिथियों के लिए होता है।

इन समस्त मदों पर वेतन तथा प्रबन्धन-व्यय सहित सस्था का लगभग 21 लाख रुपए वार्षिक व्यय होता है। संस्था की आय-व्यय का एकमात्र साधन दान अथवा समाज सेवी संस्थाओ से प्राप्त सहायता ही है। इस समय तक केन्द्र या राज्य सरकार से इस संस्था को कोई वित्तीय अनुदान या सहायता प्राप्त नहीं हो रही है।

प्रबन्ध समिति की प्रबल इच्छा है कि छात्रो की संख्या में वृद्धि की जाए परन्तु दानियों के सहयोग के बिना यह स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। **एक छात्र पर लगभग 600 रुपए मासिक खर्च होता है।** यदि कुछ दानी सज्जन या समाज सेवी संस्थाएं एक या अधिक बच्चों का खर्च उठाने की जिम्मेदारी ले लें तो छात्रो की संख्या आसानी से बढाई जा सकती है। हमें पूर्ण विश्वास है कि दानी सज्जन चैरिटेबल ट्रस्ट तथा समाज सेवी सस्थाए बच्चो के खर्च की जिम्मेदारी उठा कर गुरुकुल को अपना सहयोग अवश्य देगे।

गुरुकुल के नए परिसर मे भवन-निर्माण का कार्य भी प्रगति पर है। एक कमरे पर लगभग 90 हजार रुपए खर्च होता है। धर्म प्रेमी सज्जन अपने प्रियजनों की यादगार में कमरे बनवाकर सहयोग कर रहे हैं। आप भी अपनी सहयोग राशि इस विशाल योजना में अवश्य भेजें।

स्थिरनिधि (फिक्सड् डिपाजिट) मासिक/वार्षिक दान, ब्रह्मचारियों के लिए वस्त्र, पुस्तकें, लंगर का सामान, गऊओ का चारा, खल, भूसा, पंखे आदि के रूप में आप अपना सहयोग कर सकते हैं।

अपनी दानराशि के मनिआर्डर/ड्राफ्ट या चैक "श्री गुरु विरजानन्द स्मारक समिति ट्रस्ट" के नाम से ही भेजें। इस ट्रस्ट को दिया गया दान आयकर की धारा 80-जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त है।

—: निवेदक :—

हरबंस लाल शर्मा, प्रधान **चतुर्भुज मित्तल, महामन्त्री**

(पृष्ठ 8 का शेष)

एक प्रश्न पुनर्जन्म के विषय में यह किया जाता है कि पुनर्जन्म देकर ईश्वर अन्यायी व चरित्रहीनता को बढ़ावा देने वाला सिद्ध होता है। मान लो, इस जन्म में एक व्यक्ति की जो बेटी है, अगले जन्म में वहीं उसकी पत्नी हो जावे। यह प्रश्न महर्षि दयानन्द से नवम्बर, 1880 में आगरा में मौलवी तुफैल अहमद, नगर कोतवाल ने किया था। महर्षि ने इसका उत्तर दिया था-बेटी और बाप का सम्बन्ध शरीर का है, आत्मा का नहीं। चूंकि आत्मा का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है अर्थात् आत्मा का न कोई पिता है, न कोई बेटा और न ही कोई बेटी। आत्मा की न कोई माता है और न इसकी कोई पत्नी है। ये सम्बन्ध शरीर से हैं, शरीर के हैं, अत: यह आक्षेप करना सर्वथा व्यर्थ है। पिछले जन्मो की बाते भूल जाने का वरदान मनुष्य को प्रभु ने दिया है, उससे ही नये जन्म के सम्बन्ध मधुर, नवीन व घनिष्ठ बन पाते हैं। न रहा बास तो अतीत की बांसुरी ही कैसे बजेगी?

पुनर्जन्म के सम्बन्ध में एक आक्षेप यह है कि जीव को पुनर्जन्म में पिछले कर्मों के दण्ड स्वरूप पशु-पक्षी आदि योनियो में प्रभु भेजते हैं परन्तु इससे दण्ड के भागी को अपने अपराधों की सूचना नहीं मिल पाती। वह सुधार कैसे करेगा?

हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि कुछ लोग जेलख़ाने में डाले जा रहे हैं, कुछ पहले से ही वहा हैं। कुछ को फांसी पर चढाया जा रहा है। कुछ को आर्थिक शारीरिक दण्ड भी दिया जा रहा है। इससे हमें शिक्षा मिलती है कि हम ऐसे कर्म न करें ताकि हम इस प्रकार के दण्ड से बच सकें। हम कभी भी अपराध न करें अन्यथा हमारा भी यही हाल होगा परन्तु हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि अपराधियों को दण्ड पाते देख कर भी सभी व्यक्ति अपराधों से मुक्त नहीं होते। नियम, सविधान, पाप-पुण्य तथा अपराध के परिणाम को जानते-मानते हुए भी बहुत-से लोग अपराध करते रहते हैं व बहुत से अपराधी दण्ड भुगत चुकने के बाद भी अपराधो को नहीं छोडते। इससे सिद्ध है कि अपराध व इसके दण्ड की सूचना पाकर भी कुछ जीव सुधरते नहीं, न ही अपराधो से स्वय को मुक्त कर पाते हैं। विपक्षी का यह तर्क कि अपराधी जीव को अपराध व दण्ड की सूचना मिल जाए तो सुधार होगा, स्वत: व्यर्थ सिद्ध है।

एक वैद्य जी को ज्वर आया और एक मूढ़ गवार को भी यही रोग हुआ। कुशल वैद्य ने अपनी विद्या के प्रभाव से ज्वर के कारण को जान लिया कि इसका अमुक कारण है। इसके विपरीत अवैद्य, गंवार ने न जाना। ज्वर का कष्ट तो दोनो ही पा रहे हैं, अनुभव भी दोनों कर रहे हैं। वह गवार निश्चित कारण न सही, इतना तो अवश्य ही समझ लेता है कि कुछ-न-कुछ गल्ती मैंने खान-पान में ऐसी अवश्य की है जिसका परिणाम मेरा यह रोग है। वह अनुमान से यह बात समझ सकता है।

एक प्रश्न यह भी किया जाता है कि पाप का कर्त्ता तो मनुष्य है परन्तु अगले जन्म में इसका फल भोक्ता घोडा, गधा या कुत्ता है। यदि पाप मनुष्य ने किया है तो मनुष्य को ही दण्ड भी भुगतना चाहिए। निर्दोष घोड़े, गधे या कुत्ते को दण्ड देना ईश्वर का अत्याचार है। इससे ईश्वर अन्यायकारी भी सिद्ध होता है। इसका उत्तर यह है कि प्रश्नकर्त्ता को यह पता नहीं कि कर्म का कर्त्ता कौन है। वास्तविकता यह है कि कर्म का कर्त्ता शरीर नहीं अपितु जीव है। कर्म का फल भोक्ता भी जीव है। यह जीव न मनुष्य है, न घोडा, न गधा व न ही कुत्ता है। जिस-जिस योनि में यह जीव जाता है, उस-उस के आधार पर व्यवहार की दृष्टि से नामकरण होता है। कर्म करने का साधन शरीर है। जिस प्रकार एक मनुष्य तलवार से दूसरे व्यक्ति को मारता है तो सरकार दण्ड तलवार को न देकर चलाने वाले मनुष्य को ही देती है, इसी प्रकार शरीर के माध्यम से पाप का कर्त्ता जीव अगले जन्म में दण्ड स्वरूप घोडे, गधे या कुत्ते के शरीर के माध्यम से ही फल भुक्त सकेगा। अत: उसे मनुष्य शरीर प्रभु प्रदान नहीं करते। स्मरणीय है कि शरीर व जीव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। शरीर जीव के बिना व्यर्थ है व जीव शरीर के बिना निष्क्रिय है। शरीर तलवार के स्थान पर है। अत: जीव को घोडे, गधे अथवा कुत्ते का शरीर देकर कुकर्मो का मैल धोया जाता है और साथ-ही-साथ समय व्यतीत होने के कारण बुराई करने का मार्ग-अभ्यास भी भूल जाता है, अत. शुद्धि करके जीव को मनुष्य शरीर में लाया जाता है। यह जीव के कल्याण व पाप-मुक्ति की अलौकिक व्यवस्था है।

श्री महाशय बनारसी दास जी नहीं रहे

आर्य समाज बंगा रोड फगवाड़ा के प्रधान, स्वतन्त्रता सेनानी श्री महाशय बनारसी दास का दिनांक 21-9-2001 को देहावसान हो गया। उनका अन्त्येष्टि सस्कार पूर्ण वैदिक रीति से तथा राष्ट्रीय सम्मान के साथ किया गया। पुलिस ने उनके सम्मान में राईफलें झुकाईं और श्रद्धाजलि प्रदान की। 23-9-2001 को दोपहर 2 से तीन बजे तक उनका अन्तिम शोक दिवस मनाया गया। बहुत बड़ी सख्या मे जनता ने इसमें भाग लिया। जिनमे दोनो आर्य समाजों के अधिकारी व सदस्य तथा कई स्वतन्त्रता सेनानियों व राज नेताओ ने भी भाग लिया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालयाध्यक्ष प धर्मदेव जी ने उन्हे सभा की ओर से भावभीनी श्रद्धाजलि भेंट की। और भी कई लोगो ने उन्हें अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित की।

इस अवसर पर श्री म बनारसी दास जी के सुपुत्रो ने उनके पद चिन्हो पर चलने का व्रत लिया। विशेष रूप से श्री अरुण वर्मा जी ने कहा कि हम अपने पिता जी की मर्यादाओं का पालन करेंगे और उनके बताए हुए रास्ते पर चलेंगे। आर्य समाज की सेवा उन्हीं की तरह तन-मन धन से करेंगे। उनके अधूरे कार्यों को पूर्ण करेंगे।

श्री महाशय बनारसी दास जी गत कई वर्षों से आर्य समाज बगा रोड फगवाडा के प्रधान चले आ रहे थे । उन्होंने आर्य समाज फगवाडा की तथा गुरुकुल करतारपुर की बहुत सेवा की । उन्होंने एक सर्राफ का जीवन व्यतीत किया इसमें उनकी ईमानदारी की बहुत ख्याति थी। उनकी दुकान फगवाड़ा में महाशयों की हट्टी के नाम से प्रसिद्ध है। उनका यह व्यवसाय सारी आयु सच्चा और सुच्चा रहा। श्री म बनारसी दास जी ने हैदराबाद सत्याग्रह में युवा अवस्था में भाग लिया था। वह थाना तुलजापुर जि. उसमानाबाद में सत्याग्रह में शामिल हुए । यह सत्याग्रह जत्था प राजगुरु व धरेन्द्र शास्त्री की अध्यक्षता में वहां पहुंचा था। श्री महाशय जी निजाम हैदराबाद की जेल में रहे और देश की आजादी के लिए उन्होंने बहुत कार्य किया। इस लिए सरकार ने उन्हें स्वतन्त्रता सेनानी घोषित किया था। उन्होंने अपना सम्मानित जीवन व्यतीत किया और दीर्घायु प्राप्त की। वह कर्मशील और कर्मठ व्यक्ति थे, बहुत मिलन सार थे। पक्के वैदिक धर्मी थे। उनका जीवन बड़ा सादा था। उनके चले जाने से फगवाड़ा आर्य समाज में जो स्थान खाली हुआ है उसकी पूर्ति होनी कठिन है, उन जैसे व्यक्तित्व का आदमी मिलना कठिन है। इनका जन्म 26 अगस्त 1913 को स्याणी वाल जिला जालन्धर में हुआ था। आर्य स्वराज्य सभा के नेता अजीत सिंह सत्यार्थी, श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती व स्वामी आनन्द भिक्षु आर्य नेताओं के साथ आप जेलों में रहे।

उनके अन्तिम शोक दिवस पर आर्य समाज बंगा रोड फगवाड़ा । आर्य समाज गौशाला रोड फगवाड़ा, आर्य हाई स्कूल फगवाड़ा, आर्य माडल स्कूल फगवाड़ा तथा फगवाड़ा की सभी अन्य धार्मिक व राजनैतिक संस्थाओ ने अपने शोक प्रस्ताव भेजे तथा उन्हें अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

—देश बन्धु चोपड़ा, मन्त्री

"मेरा संकल्प पूरा हुआ"

17 दिसम्बर 2000 को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का चुनाव सभा कार्यालय गुरुदत्त भवन किशन पुरा चौक जालन्धर मे सम्पन्न हुआ जिसमे श्री हरबम लाल जी शर्मा सर्व सम्मति से सभा प्रधान चुन लिए गए। उसके पश्चात् 21 जनवरी 2001 को सभा की अन्तरंग सभा की पहली बैठक सभा कार्यालय में रखी गई। अन्य विचारणीय विषयों के अतिरिक्त एक विचारणीय विषय यह भी था कि पंजाब में बन्द पड़ी आर्य समाजों को सक्रिय किया जाए। मैंने उसी बैठक में यह संकल्प कर लिया था कि भटिण्डा जिला की बन्द पड़ी आर्य समाजों को सक्रिय करना है और इसकी जिम्मेवारी भी सभा प्रधान श्री हरबंस लाल शर्मा जी के आशीर्वाद से मैंने ग्रहण कर ली। तब से ही मैं इस काम में जुटा हुआ था।

गोनियाना मण्डी-भुच्चो मण्डी-बुढलाड़ा मण्डी, आर्य समाज सिरकी बाजार बठिण्डा, आर्य समाज सिकंदर पुरा (वीर कालोनी) बठिण्डा तथा अन्य कई नगरों में तो आर्य समाजों को सक्रिय करने में इतनी कठिनाई नहीं हुई पर आर्य समाज तलवण्डी साबो (दमदमा साहिब) जो सिख भाईयों में गुरु की काशी नाम से विख्यात है, में पुनः यज्ञ हवन चालू करने कराने में मुझे वहां के कई चक्कर लगाने पड़े। प्रभु कृपा से यह संकल्प भी शनिवार 8 सितम्बर को पूरा हो गया। मैं तलवण्डी साबो (दमदमा साहिब) में श्री ब्रह्मचारी सूर्यदेव जी वैदिक मिशनरी के पूर्ण सहयोग से वर्षों बाद यज्ञ हवन रचाने में सफल हुआ।

तलवण्डी साबो (दमदमा साहिब) में दयानन्द आश्रम के नाम से, आर्य समाज का एक विशाल भवन है जहां पर पिछले पन्द्रह बीस वर्षों से यज्ञ हवन नहीं हो रहा था। इसके लिए मुझे कई चक्कर तलवण्डी साबो के लगाने पड़े। आर्य समाज के प्रधान चौधरी रघुवीर सिंह जी मित्तल हैं जिनके पिता श्री सत्यपाल जी मित्तल ने ही दयानन्द आश्रम के लिए भूमि दान देकर यह विशाल भवन बनाया था। दयानन्द आश्रम के अतिरिक्त वहां पर आर्य पुत्री पाठशाला का अलग से विशाल भवन है। मैं चौधरी रघुवीर सिंह जी को साथ लेकर अन्य अधिकारियों से मिला जिनमें श्री प्रेम कुमार चोपड़ा, श्री नज राम शर्मा, श्री रुलदु सिंह पटवारी तथा उनके सहयोगी मुख्य रूप से शामिल हैं। मैने इन सबसे मिल कर प्रार्थना की कि तलवण्डी साबो में यज्ञ हवन तथा पारिवारिक सत्संग का सिलसिला पुनः आरम्भ किया जाए। उन्होंने मुझे ऐसा शीघ्र करने का विश्वास दिलाया।

8 दिसम्बर दिन शनिवार को चौधरी रघुवीर सिंह जी के घर पर ही यज्ञ हवन का आयोजन किया गया। चौधरी साहिब के निमंत्रण पर जहां तलवंडी साबो के गणमान्य काफी अच्छी संख्या में उपस्थित थे। वहीं उनके बुलावे पर आर्य समाज रामां मण्डी के सदस्य बड़ी अच्छी संख्या में पधारे। साथ ही आर्य वीर दल भठिण्डा के प्रधान श्री कौशल पुरी आर्य तथा उनकी माता श्रीमती वेद कुमारी पूर्व प्रधाना आर्य समाज रामां मण्डी भी यज्ञ हवन में शामिल हुए। सबने मिल कर बड़े सुन्दर ढंग से यज्ञ हवन का आयोजन किया और भजन गाये। यज्ञ हवन के पश्चात् खीर पूरी के साथ ऋषि लंगर का सबने आनन्द उठाया।

—तरसेम कुमार आर्य

मा फलेषु कदाचन

विश्वकवि रविन्द्र नाथ टैगोर के घर एक सज्जन मिलने के लिए आए। उनके स्वागत सत्कार हेतु टैगोर ने फल और मिठाई रखी। वार्तालाप करते हुए वह सज्जन मिठाई खाते रहे और फलो की ओर देखा भी नहीं।

यह देख कर टैगोर मुस्कराते हुए बोले-''जहां तक मैंने समझा है आपने 'भगवद् गीता' को न केवल पूर्णरूपेण पढा ही है अपितु जीवन मे चरितार्थ भी किया है।''

वह सज्जन टैगोर के कथन पर आश्चर्यचकित थे। कहने लगे-''आपको कैसे पता चला कि मैंने गीता पूर्णरूपेण पढ़ी है?''

विश्व कवि मन्द मुस्कान के साथ बोले-''श्रीमन् ! गीता मे भगवान्-श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा था-मा फलषु कदाचन अर्थात् फल की कामना मत कर। तभी तो आपने भी फलों को हाथ नहीं लगाया।''

यह सुन कर वह सज्जन भी अपनी हंसी को न रोक सके।

—वेद प्रकाश शास्त्री, फाजिल्का

लुधियाना में पारिवारिक सत्संग

आर्यसमाज पार्कलेन सिविल लाईन लुधियाना की ओर से पारिवारिक सत्संग 30.9.2001 को श्री अनिल सूद 99-ग्रीन पार्क प्रिंस होस्टल लेन सिविल लाईन लुधियाना में सम्पन्न हुआ।। 7-10-2001 रविवार को सायं 4.30 से 7 बजे तक श्री प्रो ए.डी भल्ला गान्धी लेन गवर्नमैंट कालेज रोड, लुधियाना में पारिवारिक सत्संग होगा। आर्य बन्धु व बहनें समय पर पहुंचे।—**नरेन्द्र भल्ला**

श्री सिद्धेश्वर शर्मा सम्मानित

मोगा शहर के लिए यह गौरव का विषय है कि डी एम. शिक्षा महाविद्यालय के कार्यकारी प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर शर्मा जी को अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा एव प्रबन्धन सस्थान, नई दिल्ली द्वारा ''ज्यूल ऑफ इण्डिया'' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह हर्ष की बात है कि उत्तर भारत के वे प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्हें शिक्षा के क्षेत्र में सर्वउत्कृष्ट उपलब्धियों के लिए यह पुरस्कार मिला है। नई दिल्ली स्थित सम्राट होटल में डा. एस.एन. रैडी (गर्वनर उडीसा) व श्री जी.वी जी. कृष्णमूर्ति (चुनाव आयोग) द्वारा उन्हें सम्मानित किया गया।

श्री बिहारी लाल मंगला को श्रद्धांजलि

दिनांक 29.8.01 को श्री बिहारी लाल मंगला का असामयिक निधन हुआ। वे आर्य समाज चौक भटिण्डा के उप प्रधान एवं मन्त्री तथा आर्य माडल हाई स्कूल के कोषाध्यक्ष थे। उनकी अंत्येष्टि पूर्ण वैदिक रीति से हुई। उनके गृह निवास पर प्रतिदिन 10 दिन तक हवन यज्ञ हुआ। प्रतिदिन निम्न सज्जनों ने आहुतियां दीं। जिनमें उनकी धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पा मगला, सपत्नीक श्री नरेश कुमार मंगला, ला. वजीर चन्द जी, श्री सत प्रकाश मगला, ला कुन्दन लाल मगला, श्री दर्शन कुमार मंगला, सुनील व पुनीत तथा दामाद श्री सूर्य प्रकाश जी, श्री अजय कुमार जी, श्री विजय कुमार जी थे । ये सब परिवार के सदस्य हैं। दामाद श्री सूर्य प्रकाश जी ने गुरुकुल शिल्प विद्यालय का एक गेट बनवाया, जिसका नाम जगन् द्वार है।

श्री बिहारी लाल मंगला की शिक्षा महात्मा हंसराज स्कूल में हुई। वे आर्य समाज की सेवा में प्रारम्भ से ही रुचि लेते थे।

दिनांक 9.9.2001 को श्रद्धांजलि समारोह सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम हवन यज्ञ प. श्री सुनील कुमार जी, प श्री गुरु प्रसाद जी एवं ब्र श्री सूर्यदेव जी की देखरेख में पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। श्रद्धांजलि समारोह में आर्य समाज चौक के वरिष्ठ अधिकारी, सदस्यगण ने आहुतियां दीं। प्रो ओ.पी मगला प्रधान, श्री प्रेम भाटिया महामन्त्री, श्री पी डी गोयल, चौ बाबूराम गर्ग ला कुलवन्त राय अग्रवाल, श्री गौरी शकर आदि।

आर्य समाज चौक भठिण्डा की ओर से श्री एम पी अरोडा ने श्रद्धांजलि भेट की। आर्य गर्ल्ज सी सै. स्कूल की ओर से श्रीमती शान्ति जिन्दल एवं श्री चमन लाल मेहता ने श्रद्धांजलि भेंट की। श्री पी डी गोयल ला कुलवन्त राय अग्रवाल ने भी अपनी-अपनी श्रद्धाजलि भेट की। गोनियाना मण्डी से श्री तरसेम आर्य, भुच्चो मण्डी से मा मनसा राम जी स्वतन्त्रता सेनानी ने श्रद्धासुमन भेंट किए। भटिण्डा स्थित आर्य समाज एव आर्य समाज से सम्बन्धित संस्थाओं के अधिकारियों के अतिरिक्त गोनियाना, मानसा, रामामण्डी, गिदड़बाहा, भुच्चो मण्डी के सज्जन एवं आर्य वीर दल के सदस्य तथा नगर के सभी गणमान्य व्यक्ति इस समारोह में उपस्थित थे।

मंच संचालन प्रो अशोक गुप्ता जी ने किया। अन्त में प्रो ओ.पी मगला जी ने इस कार्यक्रम मे पधारे सभी महानुभावों का धन्यवाद किया। शान्ति पाठ के साथ सभा विसर्जित हुई।

–प्रेम भाटिया, महामन्त्री

आर्य समाज देव नगर नई दिल्ली का चुनाव

आर्य समाज देव नगर 26 बी/9 देश बन्धु गुप्ता मार्ग, नई दिल्ली-5 का वार्षिक चुनाव 19-8-2001 को सम्पन्न हुआ। जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से चुने गए।

प्रधान–श्री टेकचन्द दीवान। उपप्रधान–श्री जयगोपल बेदी, श्री वी देव। मन्त्री–एन एस देसवाल। उपमन्त्री–श्री अशोक कुमार गुप्ता, कोषाध्यक्ष–श्री शशि कुमार छाबडा। पुस्तकाध्यक्ष–श्री रमेश बेदी।

अन्तरग सभा के सदस्य–श्री आई एस बेदी, श्री बृजमोहन शर्मा, श्री सर्व अग्रवाल, वीरव्रत शास्त्री, दिनेश कुमार, अशोक मिश्रा।

–एन.एस. देसवाल, मन्त्री

नूर हर आँख का बन जाते हैं

ले० पिशोरी लाल प्रेम दद्दाहू रेणुका (हि. प्र.)

देश से प्यार जो भी करते हैं, देश की आन पर जो मरते हैं।
उनके होठों पे हंसी होती है, मस्ती आंखों मे भरी होती है।
पाकीजा दिल भी वही होते हैं, पाक दामन भी वही होते हैं।
उनके चेहरो पे शराफत होगी उनकी बातों में लताफत होगी।
देश सेवा मे लगे रहते हैं, देश के हित मे जान देते हैं।
आपसी फूट से घबराते हैं, नेता बनने से भी कतराते हैं।
देश की शान वही होते हैं, देश की आन वही होते हैं।
उनको आंख पे सब बिठाते हैं, उनके कदमों पे सर झुकाते हैं।
वे तो हर दिल में समा जाते हैं, नूर हर आंख का बन जाते हैं।
"प्रेम" भी उनके गीत गाता है, और अकीदत से सिर झुकाता है।

बढ़े चलो-बढ़े चलो

रचित आचार्य ... शर्मा, 767 ... अमृतसर

वे ऋचा साथ हो, ओ३म् ध्वजा हाथ हो।
वैदिक ध्वनि का नाद हो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
विषमता पछाड़ कर, समानता को धार कर ।
प्रीत की पुकार कर, बढ़े चलो-बढ़े चलो॥
जमीन से आकाश तक, हृदय-हृदय निवास तक।
सत्य की जुबान तक, बढ़े-चलो, बढे चलो॥
धर्म निष्ठ काज तुम, स्वराष्ट्र की आवाज तुम।
मां धरा की लाज तुम, बढ़े चलो-बढ़े चलो।
अंगार से तुषार तक उजाड़ से बहार तक।
मलयगिरि ब्यार तक, बढ़े चलो-बढ़े चलो।
देश, जाति आन पर, स्वतन्त्र स्वाभिमान पर।
स्वार्थ को कुर्बान कर, बढ़े चलो-बढ़े चलो।
आर्य! वीर, धीर तुम, धनु, तुणीर, तीर तुम।
रिपु का वक्ष चीर तुम, बढ़े चलो-बढ़े चलो।
दयानन्द नाम पर, श्रद्धानन्द मान पर।
"पवन" तुम प्रणाम कर, बढे चलो-बढ़े चलो।

आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया का वार्षिकोत्सव

आर्य जनों को यह जानकर हर्ष होगा कि आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया, जिला अलवर, राजस्थान जो कि दिल्ली से जयपुर जाते हुए लगभग 120 कि मी. पर बहुत ही रमणीय स्थान पर स्थित है, का वार्षिकोत्सव प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी 26, 27, 28 अक्तूबर 2001 (शुक्रवार, शनिवार, रविवार) को समारोह पूर्वक आयोजित किया जा रहा है। समारोह से एक सप्ताह पूर्व यजुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया जाएगा।

तलवण्डी साबो में पारिवारिक सत्संग

8 सितम्बर 2001 दिन शनिवार को तलवण्डी साबो (दमदमा साहिब) जिला बठिण्डा मे आर्य समाज के प्रधान चौधरी रघुवीर सिंह जी मित्तल के निवास पर यज्ञ हवन तथा पारिवारिक सत्संग का आयोजन किया गया। यह यज्ञ हवन तथा पारिवारिक सत्संग श्री तरसेम कुमार आर्य महामत्री जिला आर्य सभा बठिण्डा की प्रेरणा तथा उनके लगातार प्रयासो से सम्भव हो सका। यज्ञ हवन के ब्रह्मा ब्रह्मचारी सूर्यदेव जी वैदिक मिशनरी थे तथा मुख्य यज्ञमान चौधरी साहिब के सुपुत्र श्री विजय मित्तल तथा उनकी धर्मपत्नी आर्य समाज तलवण्डी साबो के सभी अधिकारी-आर्य पुत्री पाठशाला की प्रबन्धक कमेटी के सभी अधिकारी, चौधरी साहिब के पडोसी, जिला आर्य वीर दल बठिण्डा के प्रधान कौशल पुरी आर्य तथा उनके अन्य साथी बहन वेदकुमारी पूर्व प्रधान आर्य समाज रामा मण्डी-श्री किशोर चन्द जी मंत्री आर्य समाज रामां मण्डी, महाशय विजय कुमार उपमंत्री आर्य समाज रामां मण्डी, प्यारे लाल कोषाध्यक्ष तथा अन्य कई सदस्य भी रामांमण्डी से पधारे। गोनियाना मण्डी से श्री तरसेम कुमार आर्य महामंत्री जिला आर्य सभा बठिण्डा विशेष रूप से इस यज्ञ हवन में शामिल हुए। सर्वप्रथम ब्र सूर्यदेव जी ने पवित्र वेद मंत्रों से बड़े ही सुन्दर ढंग से यज्ञ हवन सम्पन्न कराया फिर श्री तरसेम कुमार आर्य तथा बहन वेद कुमारी ने बडे सुन्दर भजन गा कर सब उपस्थितजनों को मन्त्र मुग्ध कर दिया। इसके पश्चात् ब्र सूर्यदेव जी का बड़ा ही सुन्दर प्रवचन हुआ। फिर ऋषि लंगर आरम्भ हुआ। जिसमे सभी को खीर-पूरी खिला कर निहाल किया गया फिर आर्य समाज के सभी अधिकारी श्री तरसेम कुमार जी आर्य तथा ब्र सूर्यदेव जी को लेकर दयानन्द आश्रम पहुंचे तथा भविष्य में आश्रम में ही यज्ञ हवन करने की योजना बनाई। इसके बाद आर्य पुत्री पाठशाला के अधिकारी तथा जिला आर्य सभा के महामंत्री श्री तरसेम कुमार आर्य ने आर्य पुत्री पाठशाला के मुख्य अध्यापक श्री निरंजन सिंह जी एम.ए.बी.टी. से स्कूल की स्थिति बारे जानकारी प्राप्त की तथा स्कूल की समस्याओ को हल करने में अपना योगदान देने का आश्वासन दिलाया।

-प्रेम कुमार चोपड़ा, मंत्री

आर्य वीर दल हांसी द्वारा शान्ति यज्ञ सम्पन्न

हांसी-अमेरिका में आतकी हमलों में मारे गए लोगों की आत्मिक शान्ति के लिए स्थानीय सिंह सभा गुरुद्वारा में हवन यज्ञ एव सभा का आयोजन किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा प. विजयपाल आर्य (प्रभाकर) थे तथा अध्यक्षता श्री [illegible] कालड़ा ने की। मुख्य वक्ता श्री प. रामसुफल जी शास्त्री थे।

उल्लेखनीय है कि युवकों की आत्मरक्षा के लिए आर्य वीर दल एक कराटे प्रशिक्षण कोर्स का आरम्भ करेगा जो 1 नवम्बर से नियमित शाखा के रूप में चलाया जाएगा। बैठक के दौरान दल को सक्रिय बनाने के लिए चौ. राघवेन्द्र सिंह आर्य को कार्यकर्त्ता प्रधान नियुक्त किया गया है। बैठक में श्री सोहन लाल भयाना उप-प्रधान आर्य समाज, हांसी स्वामी कीर्तिदेव जी, कु विजया जी मुख्याध्यापिका आर्य स्कूल हांसी आदि व आर्य वीर दल के सभी सदस्यगण उपस्थित थे।

-पंकज गोयल, उपमन्त्री

आर्य समाज अड्डा होशियारपुर जालन्धर में वेद प्रचार

आर्य समाज अड्डा होशियारपुर जालन्धर में वेद सप्ताह दिनांक 10-9-2001 से 16-9-2001 तक बडे समारोह से मनाया गया। इस अवसर पर स्वामी आनन्दवेश जी व श्री पं. वेद प्रकाश जी आर्य के उपदेश व श्री बूटा राम जी के भजन तथा श्रीमती किरण सेठ जी के तथा अन्य बहनों के भजन होते रहे। कार्यक्रम प्रात: सायं दोनों समय चलता रहा जिसमें भारी संख्या में आर्य बन्धुओं व बहनों ने वहां पहुंच कर वेद कथा का लाभ उठाया। इसमें लब्भू राम दोआबा सी सै स्कूल के अध्यापकों का पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। स्वामी जी ने स्कूल में जाकर विद्यार्थियों को भी उपदेश दिया जिसका बच्चों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। कार्यक्रम बड़ा सफल रहा। इसकी सफलता का श्रेय इसके सरक्षक श्री अमृत लाल खन्ना प्रधान श्री सोहन लाल सेठ, कोषाध्यक्ष श्री विनोद सेठ व मन्त्री श्री श्रवण भारद्वाज को जाता है।

-राजेश आर्य

जालन्धर में वेद प्रचार

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर में 25 सितम्बर से 2 अक्तूबर 2001 तक वेद सप्ताह पारिवारिक सत्संगों के रूप में मनाया गया जिसमें सैंकड़ों स्त्री पुरुषों की उपस्थिति होती रही। सभी नगर-निवासियों ने व आर्य समाज के सदस्यों व अधिकारियों ने इसमें भाग लिया। श्री पं निरञ्जनदेव जी इतिहासकेसरी के प्रभावशाली उपदेश होते रहे। श्री पं. रमेश जी व पं. मनोहर लाल जी तथा बहन सत्या जी की भजन मण्डली के भजन होते रहे। कार्य बड़ा सफल रहा।

वैदिक जन सेवा समिति हांसी की गतिविधियां

वैदिक जन सेवा समिति के गठन को लगभग 1 वर्ष पूरा होने जा रहा है। जब से यह समिति गठित हुई है, तब से अब तक समिति की ओर से नित्यप्रति दैनिक व रविवारीय साप्ताहिक यज्ञ होता है। समिति का मासिक सत्संग हर महीने के अन्तिम रविवार को आर्य समाज खरड़ चुंगी हांसी में सायंकाल साढे तीन बजे से 5 बजे तक होता है तथा घर-घर जाकर पारिवारिक सत्सग एव मन्दिर, मस्जिद व गुरुद्वारों मे भी समिति के माध्यम से वेद प्रचार किया जाता है।

जन सेवा के कार्यो मे अग्रणी समिति की ओर से अनाथ-बेसहारा व गरीब लड़कियों के विवाह में यथा सामर्थ्य सहयोग किया जाता है। समिति ने नगर के समीप एक अनाथाश्रम खोलने व भजनोपदेशक तैयार करने का केन्द्र बनाने का निर्णय लिया है।

समिति को आर्य समाज जी टी. रोड, आर्य समाज खरड चुंगी, आर्य वीर दल हांसी तथा आर्य जगत के कर्मट सन्यासी स्वामी कीर्तिदेव जी एवं युवा सघर्षशील वैदिक विद्वान् आचार्य रामसुफल शास्त्री जी "वैदिक प्रवक्ता" लाल सड़क हांसी का विशेष योगदान रहता है। अत: समिति इनकी बहुत-बहुत आभारी है।

-जी.के. भूटानी, प्रबन्धक

आर्य समाज संगरूर का उत्सव

आर्य समाज संगरूर में वेद सप्ताह 8 से 14 अक्तूबर तक मनाया जा रहा है। जिसमें आचार्य देवव्रत जी वैदिक प्रवक्ता, गुरुकुल कुरुक्षेत्र के प्रवचन तथा श्री पं आशानन्द प्यारे लाल भजन मण्डली के भजन होंगे। कार्यक्रम प्रात: 6.30 से 9 बजे तक रात्रि 8 से 10.30 बजे तक चलेगा। 14 अक्तूबर को यज्ञ की पूर्णाहुति होगी कार्यक्रम 7.30 से 12.30 तक चलेगा, उसके बाद ऋषि लंगर होगा।

-रामशरण आर्य मन्त्री

सिराथू में वार्षिकोत्सव

गुरुकुल वैदिक संस्कृत महाविद्यालय, सिराथू, (सैनी) कौशाम्बी:- (इलाहाबाद) का 85वाँ वार्षिकोत्सव कुल प्रांगण में 5,6,7 अक्तूबर 2001 को ऐतिहासिक ढग से समारोह पूर्वक मनाया जा रहा है। आप इस अवसर पर सादर आमन्त्रित हैं।

-विश्वामित्र मेधावी आचार्य

आज का आदमी क्या करता है ?

प्रस्तुति-आचार्य रामसुफल शास्त्री, वैदिक प्रवक्ता हांसी

1. आश्रय देने पर सिर पर चढ़ता है।
2. उपदेश देने पर मुड़कर बैठता है।
3. आदर करने पर खुशामद समझता है।
4. उपकार करने पर अस्वीकार करता है।
5. विश्वास करने पर हानि पहुंचाता है।
6. क्षमा करने पर दुर्बल समझता है।
7. प्यार करने पर आघात करता है।

क्या यह चरित्र उचित है ?

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि. नं. एन. पी.

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–55 अंक : 21 सृष्टि संवत 1960853102, 14 तथा 21 अक्तूबर 2001 दयानन्दाब्द 178

महर्षि दयानन्द का प्रजा पालन स्वराज्य से सुराज्य का निर्माण

ले० [illegible] मु. पो.-पालड़ी (खुवाण्या)

प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति, चाहें वह आर्यसमाजी हो या अन्य मतावलम्बी मुक्त कण्ठ से युग प्रवर्तक, देशोद्धारक, आर्य राष्ट्र नामक स्वामी जी महाराज श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती ''स्वराज्य'' का प्रथम मन्त्रदाता, युग प्रवर्तक और भारत का महान् क्रान्तिकारी विचारक मानते हैं। किसी भी दार्शनिक एवं क्रांतिकारी महापुरुष के विचारों को मानने से परिणाम धनात्मक होता है, अथवा उन विचारों को व्यवहार में लाने से परिणाम धनात्मक होता है, अथवा उन विचारों को चिन्तन पर निर्भर करता है। अस्तु ! मेरी मान्यता व्यवहारिक पक्ष की है। यही कारण है कि भारत देश में अनेकानेक भगवद् दृष्टि वाले महापुरुषों ने जन्म लिया और अपना सर्वस्व राष्ट्र और धर्म के लिए लुटा कर कालानुसार आदर्श प्रस्तुत करके मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। परन्तु भारत देश की स्थिति में उन अमूल्य उपदेशों एवं आदर्शों का परिणाम कैसा रहा यह बात निष्पक्ष इतिहासकार एवं विचारक का परिणाम ही स्पष्ट कर सकते हैं। क्योंकि जहां तक मेरी मान्यता है, हम सब उपदेश सुनने के आदी हैं। उनकों व्यवहार में लाना हमारे लिए अब तक आवश्यक नहीं हुआ है। बस, इसी कमजोरी का परिणाम वर्तमान में हमारे समरक्ष है।

राष्ट्रभक्त शिरोमणि महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज ने आज से 125 वर्ष पूर्व मे अनुभव किया कि जो भारत वर्ष संसार का मुकुटमणि था, जो संसार भर को ज्ञान-विज्ञान का पाठ पढ़ाया करता था, वह सैकड़ों वर्षों की दासता के परिणाम स्वरूप स्वयं ही अज्ञान और अनाचार में बुरी तरह फंस कर सब सुध-बुध खो बैठा है। इस भयावह स्थिति को देखकर भला ऐसा कर्मयोगी चुप कैसे रह सकता है ?

महर्षि ने आर्यावर्त्त को पुन: पूर्व गौरव प्राप्त कराने के लिए जहां एक ओर विदेशी प्रभुता से उत्पन्न ईसाईयत और इस्लामियत से भयंकर टक्कर लेकर आर्य जाति को विनाश से बचाया वहां विदेशी दासता को उखाड़ कर फेंकने के लिए आर्यावर्त्त की प्रसप्त क्षात्र शक्ति को जागृत करने के लिए राजा-महाराजाओं, राज्य कर्मचारियों एवं प्रजाजनों की आत्मा को झंझोड़ कर सचेत करने में अपने जीवन के अमूल्य दिनों में प्राणों की बाजी लगा दी। महर्षि के जीवन का अन्तिम भाग जोधपुर, उदयपुर, जयपुर, शाहपुरा आदि राज्यों में प्रचार यात्रा में बीता। इस दौरान स्वामी जी ने अनेक नरेशों से भेंट की, उन्हें राजधर्म की शिक्षा दी। सदाचार, देशभक्ति प्रजा-पालन का पाठ पढाने के लिए उन्होने मौखिक तथा पत्रों द्वारा रहस्य पूर्ण एवं हृदयशूलक उदेश दिए। कुछ नरेशो को जो पत्र लिखे वे बडे मार्मिक एवं तार्किक है, जिनके गहन अध्ययन से पता चलता है कि यदि तत्कालीन नरेशो ने उनका अक्षरश: पालन किया होता तो आज स्वराज्य की रूपरेखा कुछ ओर होती। वर्तमान में उसी भूल को हम लोग भी दोहरा कर, स्वयं पापमार्गी बनकर राष्ट्र की अवनति करने में गौरवानुभव कर रहे हैं। शायद ऐसा करना हमारे लिए राजनैतिक धरोहर है। इसका मूल कारण महर्षि दयानन्द को समझ नहीं पाने का है। जब स्वामी जी द्वारा स्थापित राष्ट्र धर्मोन्नति की पोषक आर्य-समाजों में भी राजनीति का दुष्चक्र चल पड़ा है तो कहने-सुनने के लिए शेष रहा ही कौन ? यदि ग्वाला स्वयं ही अपनी फसल में मवेशी चराकर आनन्दानुभूति समझ रहा हो तो भला वह दूसरो की फसल की रखवाल कैसे करेगा।

महर्षि के अनेक पत्र जो अब जब ज्ञात हुए हैं, उन्हे मनन करने से अवगत होता है कि महर्षि के हृदय में राष्ट्र को समुन्नत देखने की असीम वेदना थी। जिसके लिए उन्होंने तात्कालीन नरेशों की पत्रों और उपदेशों के माध्यम से काफी खरी-खोटी बातें कहने में अपना कर्त्तव्य समझा। सचमुच में महर्षि निष्काम भावना से ओत-प्रोत थे। वे चाहते तो हमारी तरह स्वामी जी भी राजा लोगों की चमचागिरी करके अपना जीवन ठाट-बाट से गुजार सकते थे। लेकिन, वाह ! मेरे ऋषि, जितनी पैनी वाणी, उतनी ही शूलक कलम। राजा-महाराजाओं को भी आपने नहीं छोड़ा। भला छोड़ते भी कैसे ? स्वामी जी की मान्यता थी कि जब किसी तन्त्र को सुधारना हो तो उसके मूल यन्त्र को पकड़ लो। बस, सारी बीमारी का मूल बीमारी का मूल उद्गम वही है। उस समय में भी प्रजातन्त्र खोखला ही था और आज भी है। लेकिन उस समय की बीमारी क्षेत्रीय थी और आज की बीमारी विश्व-व्यापी। लेकिन इन सबसे आर्य राष्ट्र को बचाने की दवा हमे महर्षि दयानन्द बता गये थे। यह बात सब जानते हैं कि जब चिकित्सक की पर्ची को मरीज या उसके परिजन नजर अन्दाज कर देते हैं तो परिणाम कैसा होता है ? बस, गलती हमसे यहीं पर से हुई है। जिस प्रकार हमारा गुरु राजा लोगों की कमजोरी बता कर उन्हें उसे बरकरार रखना चाहिए था। देखिए महर्षि ने कैसी छोटी-छोटी लेकिन असरदार दवाओं की पुडिया महाराजाओं को पकडाई थी।

श्रीमद्‌जराजेश्वर महाराजाधिराज श्री जोधपुर नरेश आनन्दित रहो।

1 इस देश में वर्षा प्राय: न्यून ही है। इसके लिए यदि मेरे कहे अनुसार एक-एक वर्ष में 10,000 रुपयों का घृतादि का नित्य प्रति और वर्षाकाल में चार महीने तक अधिक होम करावेंगे वैसे प्रतिवर्ष होता रहे, तो सम्भव है कि देश मे रोग न्यून और वर्षा अधिक हुआ करे।

2. जैसे हड़के कुत्ते के दात का लार लगने से उसका दोष छूटना अति कठिन है। वैसे ही वेश्या, मद्यपान, चौपड़, कनकौवे आदि मे व्यर्थ काल खोना और खुशामदी लोगों का संग करना राजाओ के लिए महा विघ्न कारक है और धन, आयु, कीर्ति और राज्य के नाश करने वाले होते हैं। मुझको बडा आश्चर्य है कि आप बड़े बुद्धिमान और शौर्यादि गुण युक्त होकर इनसे पृथक क्यो नही होते।

3 जैसे आप इस नन्नी रडी के घर को जाते उसकी मातादि रोगिणी को देखते हैं और जैसे एक दिन किसी अपने नौकर मुसलमान के लडके के विवाह मे घोडे की लगाम पकड के पदल चले थे, वैसा निन्दाकारक काम करना आपको शोभा कभी नही देता। किन्तु इनके जैसे महता विजयसिह जी बीमार थे जाकर

(शेष पृष्ठ 4 पर)

"महर्षि दयानन्द तर्क नहीं संवाद चाहते थे।"

☐ ले० पं. वेद प्रकाश टंकारावाले 7315, भार्गव नगर जालन्धर।

महर्षि दयानन्द और तर्क, यह सम्भव ही नहीं। महर्षि दयानन्द कोरा तर्क करना ही नहीं चाहते थे उन का कोई तर्क में रस भी नही था। लेकिन फिर भी उन्हेंने तर्क किया। महर्षि दयानन्द तो चाहते थे कि संसार उस ईश्वर को माने जिस ने यह सारा संसार रचा है। इस लिए वह लगातार लोगों को ईश्वर द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान को मानने की सलाह देते चले गये। उस समय देश में पण्डितों ने लोगों को भ्रमित कर रखा था। यह देश भ्रमित बुद्धि मे अटक कर रह गया था इस लिए दयानन्द के पास कोई चारा भी न था कि इस भ्रमित बुद्धि से भरे लोगो को कैसे बाहर निकाल कर सत्य का ज्ञान करवाया जाए सो उन्होने तर्क से तर्क को कांटा और एक नई दिशा प्रदान की जो लोगों के हृदयो को छूती चली गई। यह थी संवाद की भाषा।

सवाद दो हृदयों के बीच होने वाली बातचीत है और विवाद से हमेशा दो बुद्धियों का टकराव होता है। या इसे यूं भी कह सकते हैं कि सवाद प्रेम का बोधक है जब कि विवाद संघर्ष का। सवाद में हारने का सवाल ही पैदा नहीं होता जबकि विवाद में जीत का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि दोनों ही हारते हैं। जीत किसी की नहीं होती इस लिए महर्षि दयानन्द की मजबूरी थी कि वह पहले सवाद से पूर्व तर्क करते और फिर उस तर्क से दूसरे के तर्को को खंडित कर संवाद का रास्ता खुलवाते यही एक तरीका था पौराणिक पडित तो अपनी विद्या पर इतना अहंकार करने लगे थे कि झुकने को तैयार ही न थे झुकाने का सिर्फ यही एक रास्ता था कि महर्षि दयानन्द उन के अहंकार को तोडते क्योंकि अहंकार थोड़ा झुकता तभी तो सवाद किया जा सकता था सो महर्षि ने पौराणिक पाडित्य से भरे लोगों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा और शास्त्रार्य करते ही चले गये सैंकड़ों पंडितों को धूल-धूसरित किया और अन्त में संवाद का रास्ता खुल ही गया। जब संवाद का रास्ता खुलता है तभी सत्य पाने का रास्ता भी ढूंढा जा सकता है।

जिन्होंने भी सत्य को पाया है सिर्फ उन्हीं का विवाद सही दिशा में समाज के हित में गया है और जिन्होंने सत्य को नहीं जाना उन का तर्क हमेशा खतरनाक होगा, क्योंकि सत्य न जानने वाले के हाथ में तर्क ऐसे ही है जैसे किसी बच्चे के हाथ में तलवार, उस तलवार से बच्चा अपना भी नुकसान कर सकता है और दूसरों का भी कर सकता था जबकि इस के ठीक विपरीत सत्य जानने वाले के हाथ में अगर तलवार लग जाए तो वह उससे किसी की रक्षा ही करेगा। सत्य यही था कि पांडित्य से भरे पौराणिक पंडितों के हाथ में तलवार पकड़ा दी गई थी जो सिर्फ दूसरों का सिर ही काट सकते थे उन्होंने ऐसा किया भी वह लोगों को असत्य ही बतलाते चले गये कुछ समय तो यही लगता था कि सत्य ऐसे छुप गया है जैसे बादलों की ओट में सूर्य छिप जाता है। बादल छंटते तभी तो सूर्य निकल सकता था। ऐसी परिस्थितियों में महर्षि दयानन्द ने तर्क का सम्यक् उपयोग किया।

जो-जो हारता चला जाता वह महर्षि दयानन्द से अनुरोध करता कि आप मुझे अपना शिष्य बना लें परन्तु उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया बल्कि वह तो हमेशा कहते थे कि मैं तुम्हें कोई हराना नहीं चाहता-न ही मेरा कोई ऐसा उद्देश्य है कि मैं तुम्हें हारता हुआ देखूं हां मैं इतना जरूर चाहता हू तुम सब बुद्धि के स्तर से थोड़ा ऊपर उठ कर हृदय की गहराईयों को छूने का प्रयास करो। मेरा अनुचर होने से क्या होगा ? तुम फिर वही अटक जाओगे, आगे जाने का मार्ग तुम्हें फिर दिखाई नहीं देगा इसलिए तुम अपने आप को हारा हुआ महसूस न करो। क्योंकि तुम नहीं हारे, हारा तो तुम्हारा हंकार है और मैं भी नहीं जीता क्योंकि सत्य में हार जीत नहीं होती। मेरा तो सिर्फ एक ही उद्देश्य है कि तुम सब अपने-अपने स्वार्थों को छोड़ कर पूरी मानव जाति के लिए प्रेम का मार्ग तलाश करो।

जिस सत्य को तर्क से सिद्ध करना पड़े वह सत्य नहीं हो सकता वह सिर्फ तर्क ही हो सकता है। जिस में असत्य छुपा रहेगा। एक उदाहरण देखिए कि एक व्यक्ति तर्क से सिद्ध करता है कि ईश्वर है और दूसरा व्यक्ति भी तर्क से सिद्ध करता है कि ईश्वर नहीं है। जिस व्यक्ति ने तर्क से ईश्वर है इस बात को सिद्ध किया उसे हम आस्तिक का नाम देते हैं ओर जिसने ईश्वर नहीं है सिद्ध किया उसे नास्तिक कहा जाता है जबकि दोनों का आधार तो एक सामान है दोनों ही तर्क का सहारा लिए हुए हैं जबकि सच्चाई यह है कि दोनों ही गलत हैं क्योंकि तर्क से सत्य को सिद्ध नहीं किया जा सकता-सिद्ध करने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता।

परन्तु याद रखना जब तुम महर्षि दयानन्द के पास तर्क ले कर जाओगे तो वह तुम्हारे तर्क को पलभर में छिन्न-भिन्न कर देगा क्योंकि दयानन्द के पास सत्य का अनुभव है। महर्षि दयानन्द जी ने शास्त्रार्थ सिर्फ अज्ञानियों की अज्ञानता को दूर करने के लिए किये। महर्षि दयानन्द जानते थे कि तर्क गलत होता है तर्क से कुछ पाया नही जा सकता हां खोया जरूर जा सकता। आदिशंकराचार्य से जब कुमारिल भट्ट हारे तो उस समय कुमारिल भट्ट ने जो महसूस किया वो यह था कि न तो मैं हारा हूं और नहीं शंकराचार्य जीता है-तर्क हारा है और भाव जीता है। इस लिए कुमारिल भट्ट शंकराचार्य के शिष्य हो गए।

महर्षि दयानन्द जी ने शास्त्रार्थों में किसी को नही हराया। मैं तो यह कहूंगा कि दयानन्द ने हजारों पांडित्य से भरे पंडितों को सही पंडित बनाया, हजारों मनीषियों को मनीषी बनाया, लाखों लोगों को सत्य का ज्ञान करवाया, हजारों विद्वानों की विद्वता को एक नई दिशा प्रदान की तथा मानवता के माथे पर कलंक बनी दुष्प्रवृतियों को समाप्त किया जिसने यह सब किया ऐसा महापुरुष कभी तार्किक नहीं हो सकता है हां तर्क करना उस समय की परिस्थितियों के मुताबिक दयानन्द की मजबूरी थी। जिस ने सिर्फ इस लिए घर बार छोड़ा कि उसे सच्चे शिव की तलाश करनी है वह कभी भी तर्क का सहारा नहीं ले सकता। ऐसे व्यक्ति के हृदय में तो सिर्फ प्रेम ही हो सकता। हमें महर्षि दयानन्द को ठीक-ठीक समझना होगा। आज भी महर्षि दयानन्द द्वारा चलाई शास्त्रार्थों की परिपाटी को चालू रखा होगा क्योंकि परिस्थितियां अब भी वैसी ही बनती चली जा रही हैं। संवाद के सारे रास्ते बंद हो चुके हैं।

भटिण्डा में स्मृति यज्ञ

ला. वजीर चन्द जी संरक्षक आर्य सभा, जिला भटिण्डा ने अपने पूज्य पिता स्व. श्री नत्थुराम जी बुलआना की स्मृति में अपने गृह निवास पर हवन यज्ञ करवाया। यह यज्ञ ब्र सूर्य ेव जी 'वैदिक मिश्नरी' (जो कि बठिंडा के गुरुकल की सेवा में लग्न हैं) के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ के मुख्य यजमान प्रो. ओ.पी. मंगला जी प्रधान आर्य समाज भटिण्डा सपत्निक थे। श्री नत्थुराम जी धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे तथा वे धार्मिक कार्यों में बहुत आस्था रखते थे। यज्ञोपरान्त दर्शना मंगला जी ने स्वामी दयानन्द के विषय में भजन सुनाया। इस यज्ञ में मंगला परिवार के स्थानीय एवं निकट सम्बन्धी तथा दूर-दूर के रिश्तेदार एवं नगर के प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे।

पिम्परी में ध्यान योग शिविर

महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा के सहयोग से आर्य समाज पिम्परी में दिनांक 14 से 20 सितम्बर 2001 तक आचार्य अमृत लाल जी शर्मा (खंडवा, मध्यप्रदेश) के मार्गदर्शन में ध्यान योग शिविर सम्पन्न हुआ, आचार्य जी ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान व समाधी आदि अष्टांग योग की महत्वपूर्ण जानकारी शिविरार्थियों को दी, पिम्परी, चिंचवड, निगड़ी, पुणे परिसर में आये लगभग 150 स्त्री-पुरुष साधकों ने भाग लिया। श्री कृष्ण चन्द्र जी आर्य, हरगुण लाल गणेशवाणी, हरिकृष्ण वासा, मुरलीधर सुंदराणी, जगदीश वासवाणी, एकनाथ नाणेकर, उत्तमराव दंडिमे, दत्ता सूर्यवंसी, दिगंबर रिद्दीवाड़े आदि पदाधिकारियों के सहयोग से शिविर सम्पन्न हुआ।

सम्पादकीय.....

गुरुकुल करतारपुर का महत्व

गुरु विरजानन्द स्मारक ट्रस्ट करतारपुर की देख रेख में गुरुकुल करतारपुर का सारा कार्य पिछले लगभग 30-31 वर्ष से चल रहा है। इस गुरुकुल की सबसे बड़ी यह विशेषता है कि यहां पढ़ाई-आवास-भोजन सब निशुल्क है। आज की महंगाई में शायद ही सारे भारत में कोई गुरुकुल ऐसा हो जहां सभी कुछ निशुल्क हो। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा जब इस गुरुकुल के प्रधान बने तो उन्होंने पूछा था कि कितना शुल्क बच्चों से लिया जाता है। प्रबन्धक जी ने बताया कि बहुत थोड़ी राशि प्रवेश शुल्क के रूप में ली जाती है। इन्होंने कहा कि सभी कुछ निशुल्क कर दो जितनी राशि बच्चों से ली जाती है वह मैं दे दूंगा। इसके बाद से वहां सभी कुछ निशुल्क हो गया है और लाखों रुपये मासिक व्यय होते हुए भी अभी तक कोई रुकावट नहीं पडी, पंजाब की आर्य जनता तथा पजाब से बाहर के आर्य बन्धु व बहनें भी निरन्तर इस गुरुकुल को अपना आर्थिक सहयोग दे रहे हैं।

8 अक्तूबर से 14 अक्तूबर 2001 तक इस गुरुकुल का वार्षिक उत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस बार भी प्रति वर्ष की भांति इस उत्सव में पंजाब तथा पंजाब से बाहर से सैंकड़ो लोगों ने वहां पहुंच कर इस उत्सव में भाग लिया और गुरु विरजानन्द जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। शुक्रवार को वैदिक परीक्षा सम्मेलन, शनिवार को प्रात: ध्वजारोहण, रात्रि वैदिक संस्कृति सम्मेलन, रविवार को गुरुकुल विरजानन्द सम्मेलन व यज्ञ की पूर्णाहुति सम्पन्न हुई। यज्ञ के ब्रह्मा तथा मुख्य वक्ता आचार्य सत्यानन्द जी वेद वागीश नोएडा और डा राम प्रकाश जी चण्डीगढ़ थे, मुख्य अतिथि बलराम जी दास टण्डन मन्त्री पंजाब पधारे हुए थे जिन्होंने गुरुकुल को पंजाब सरकार की ओर से एक लाख रुपए दिलवाने की घोषणा की। श्री आचार्य डा वीरेश जी ने मंच संचालन किया । प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा व मन्त्री श्री चुतुर्भज जी मित्तल ने सबका धन्यवाद किया।

गुरुकुल करतारपुर के इस उत्सव पर पंजाब के कोने-कोने से महानुभाव आए हुए थे। इस उत्सव ने एक मेले का रूप धारण कर लिया है, पंजाब की सभी आर्य समाजों, आर्य बन्धुओं व बहनों का इस गुरुकुल के प्रति विशेष स्नेह है। सभी लोग यथा शक्ति गुरुकुल की आर्थिक सहायता करते रहते हैं। यह गुरुकुल पंजाब में आर्य समाज की एक शान है। —धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

चम्बा में चतुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति

दयानन्द मठ चम्बा आर्य समाज की एक प्रसिद्ध संस्था है। लगभग सारे देश के आर्य बन्धु स्वामी सुमेधानन्द जी और दयानन्द मठ चम्बा को जानते हैं। रावी नदी के सुरम्य तट पर पहाड़ों की गोद में बना यह संस्थान प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसके वार्षिक उत्सव पर सभी प्रान्तों से आर्य महानुभाव व बहनें वहां पहुंचते हैं।

स्वामी सुमेधानन्द जी महाराज गत वर्ष से 16-4-2000 से निरन्तर दोनों समय गायत्री महायज्ञ एवं चतुर्वेद पारायण यज्ञ करते आ रहे हैं। स्वामी जी ने अपनी अन्य सभी गतिविधियां बन्द कर दी थी केवल इस यज्ञ की तरफ ही उनका ध्यान था वह पूर्णतया इस यज्ञ को समर्पित हैं। उन्होंने तीन वर्ष के लिए यह यज्ञ आरम्भ किया था परन्तु स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए इसकी पूर्णाहुति करने का निश्चय 19, 20, 21 अक्तूबर 2001 को किया गया है।

पंजाब की आर्य जनता दयानन्द मठ चम्बा के वार्षिकोत्सवों पर प्रतिवर्ष पहुंचती रही है। हमें आशा है कि इस वर्ष भी सभी महानुभाव भारी संख्या में चम्बा पहुंच कर इस बृहद यज्ञ में अपनी पूर्णाहुति डालेंगे। स्वामी जी ने सभी महानुभावों को आमन्त्रित किया है। —धर्मदेवार्य-सम्पादक

आतंकवाद का खात्मा होना चाहिए

आजकल प्रात: उठते ही सबसे पहले लोग अखबार की इन्तजार करते हैं और सुर्खियां पढ़ते हैं कि आतंकवादियों ने कितने लोग मारे हैं। भारत में जम्मू-काश्मीर में गत दिनों उग्रवाद जोरो पर रहा। भारत के अन्य प्रदेशों में पिछले कई वर्षो से विदेशी उग्रवादी हत्याएं करते आ रहे हैं। पिछले 10 वर्षों से भारत में आतंकवाद ने उग्र रूप धारण किया हुआ है। अब तो प्रतिदिन की घटना होने से लोगों को कोई खास फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि यह घटनाएं अब आम हो गई हैं। मरने वाले हिन्दुओं की संख्या सुनते-सुनते कान पक गए हैं परन्तु प्रारम्भ में बहुत महसूस होता था। हमारे नेता भी सम्प्रदायक शान्ति बनाए रखने की बात कह कर चुप हो जाते रहे हैं।

हमारे नेता लोग अमेरिका आदि देशों को इस आतंकवाद के बारे में बताते रहे और इसको रोकने में सहयोग की मांग करते रहे परन्तु किसी भी विदेशी ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया किसी ने भारत की पीड़ा नहीं समझी परन्तु अब जब अमेरिका में भी हजारो व्यक्ति इस आतंकवाद का शिकार हुए हैं तो उन्हें होश आया और उग्रवादियों के सरगना ओसामा बिन लादेन को पकड़ने के लिए अमेरिका ने अभियान चलाया है। अमेरिका 7-10-2001 से निरन्तर तालिबान पर हमले कर रहा है और उससे कह रहा है कि वह लादेन को उसके हवाले कर दे परन्तु तालिबान इसके लिए तैयार नहीं है। घमासान लड़ाई चल रही है सभी प्रकार के युद्धक हथियार इस्तेमाल किए जा रहे हैं परन्तु अभी तक इसमें कुछ भी सफलता नहीं मिली कुछेक उग्रवादियों के ट्रेनिंग कैम्प अमेरिका ने ध्वस्त कर दिए हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक बताई जाती है। उग्रवादियों के कैम्पों में उन्हें केवल मारना या मरना ही सिखाया जाता है, वह निर्दोष लोगों की निरन्तर हत्याएं करते जा रहे हैं और उग्रवाद फैला रहे हैं।

भारत में जम्मू-काश्मीर में जो हत्याएं गत दिनों की गई हैं उनमें बड़ी क्रूरता बरती गई है। माता-बहनों की छातियां काट दी गईं उनके शरीरों पर अनेकों घाव किए गए उनके टुकड़े-टुकड़े किए गए। यह कार्य आम उग्रवादी नहीं कर सकता केवल दरिन्दा और क्रूर व्यक्ति ही कर सकता है।

यह आतंकवादी लोग संसार का अमन चैन क्यो भंग करना चाहते हैं ? यह जानना सभ्य लोगों की पहुंच से बाहर की बात है। आज यह आतंकवाद धीरे-धीरे सारे संसार में फैलता जा रहा है। आतंकी का कोई धर्म नहीं होता कोई मजहब नहीं होता उसका धर्म और मजहब तो केवल आतंक फैलाना होता है। परन्तु कुछ लोग आतंकवादियों का समर्थन करके उन्हें धर्म के साथ जोड़ना चाहते हैं, ऐसा करने से आपस का भाईचारा समाप्त हो जाएगा और इसके बहुत भयंकर परिणाम होंगे। इससे सारा ससार युद्ध की लपेट में आ सकता है। यह लड़ाई आतंकवाद के खिलाफ है। आतंकवादियों के खिलाफ है किसी जाति व मजहब के खिलाफ नहीं। इसलिए आतंकवाद को समाप्त करना बहुत जरूरी है। भारत इस दिशा में बहुत देर से कार्य कर रहा है अब सभी देशों को इस दिशा में मिलकर कार्य करना चाहिए ताकि संसार के अन्दर अमन-चैन हो सके। —धर्मदेव आर्य सम्पादक

आर्य समाज जीरा में सम्मान समारोह

आर्य समाज मन्दिर जीरा में दिनांक 7-10-2001 रविवार को साप्ताहिक सत्संग तथा हवन यज्ञ के पश्चात् लाला मनसा राम अग्रवाल उप प्रधान आर्य समाज जीरा को सम्मानित किया गया। लाला जी की आयु 95 वर्ष की है। मगर साप्ताहिक सत्संगों में निरन्तर आ रहे हैं और पिछले 10 वर्षों से आर्य समाज जीरा के उपप्रधान चले आ रहे हैं, लाला जी कट्टर आर्य समाजी हैं। दोनों समय संध्या करते हैं। प्रातः ईश्वर स्तुति प्रार्थना के मन्त्रों का उच्चारण भी करते हैं। उनको एक शाल एक खुन्डी और महर्षि दयानन्द जी का चित्र भेंट किया गया और सम्मानित किया गया। लाला जी की जीवनी पर विस्तार पूर्वक रोशनी श्री उत्तम कुमार मन्त्री ने डाली और सुनहरी फ्रेम में मान पत्र भी दिया गया। लाला जी का जन्म 2 अगस्त 1907 में ग्राम महगांली जिला जालन्धर में लाला शादी राम के घर हुआ। लाला जी का एक नजदीकी भाई श्री हरीश चन्द्र आर्य भजनोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर में कार्य करता था। उनके प्रभाव से इन पर आर्य समजा का रंग चढ़ गया। आप लगातार 38 वर्ष डी.ए.वी. स्कूल कादियां में अध्यापक रहे। उसके पश्चात् 1971 से 1987 तक लगातार 16 वर्ष स्वामी सर्वानन्द जी डी.ए.वी. हाई स्कूल (हवेली) बसी कलां में प्रिंसीपल रहे। 1987 में आप रिटायर्ड हुए। 1989 से जीरा में आप अपने छोटे लड़के श्री राज कुमार के पास रह रहे हैं। श्री राज कुमार के दो लड़के हैं। एक सीमेंट डीलर हैं। दूसरा बी.ए. में पढ़ाई कर रहा है। लाला जी का दूसरा बड़ा लड़का एस.डी.ओ. अबोहर में रिटायर्ड हुआ है। वह भी आर्य समाज अबोहर के सदस्य हैं। उनका एक लड़का रमण कुमार कोट इसे खाँ में सिविल हस्पताल में एस एम.ओ. है। सारा परिवार आर्य समाजी है। समारोह बड़ी शानो शौकत से मनाया गया। इस समारोह में लाला जी के दोनों लड़के और बहुएं भी शामिल हुई थीं। अन्त में लाल जी की लम्बी आयु की प्रार्थना की गई और सब उपस्थित जनों को जल पान कराया गया।

–ओम प्रकाश ग्रोवर,
प्रधान

(पृष्ठ 1 का शेष)

देखते और जो अपने मारवाड़ के सरदार और भाई बेटे हैं जो कि राजा और राज्य की उन्नति चाहने वाले हों उनके पुत्रों के विवाह में पैदल चलना आदि करते रहें तो सदा प्रशंसा लाभ और उन्नति होती रहे।

4 आप महाराजकुमार की शिक्षा के लिए किसी मुसलमान वा ईसाई को मत रखियेगा। नहीं तो महाराजकुमार भी इनके दोष सीख लेंगे। और आपकी संतान राजनीति को न सीखेंगे। न वेदोक्त धर्म की ओर उनकी निष्ठा होगी। क्योंकि बाल्यावस्था में जैसा उपदेश होता है वही दृढ़ हो जाता है। उसका प्रभाव छूटना कठिन है।

5 जैसे अपने गणेशपुरी आजि जो कि केवल बुरी चाल चलन मिखलाने हारे हैं उनका दुराचार देखके उनका सदा त्याग रक्खा है, जैसे वैश्या आदि मीठे ठगों से भी पृथक् आप क्यों नहीं रहते। जैसे मुसलमान और ईसाई आदि के टोपा, पैजामा, मुंडे, जूते, कोट, पतलून आदि के धारण से आप अपने उत्तम विचार से पृथक् रहे वैसे ही हजारह गुणों में वेश्यासंगादि में आप अपने अमूल्य समय को मत खोवें। आपका शरीर ऐस क्षुद्र काम और विषयासक्ति और आराम के लिए नहीं हैं, किन्तु बड़े परिश्रम, न्याय, पुरुषार्थ से लाखह मनुष्यों के हितार्थ आप लोगों का शरीर है। देखिए आप ! मनु स्मृति के सप्तम्, अष्टम् और नवम् अध्यायों में कि राजाओं के लिए क्या-क्या कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य लिखा है। मुझको विश्वास है कि अप इन कड़वी और कल्याणकारक बातों को सुन कर प्रसन्न होंगे। अलमति विस्तरेण महामान्य वर्येषु। (आषाढ़ बदी 3 शनि. सं. 1140)

उपर्युक्त बातें मात्र आपका ध्यान महर्षि दयानन्द के दूरदर्शी चिन्तन और अपूर्व साहस का दिग्दर्शन कराने हेतु लिखी है। इस प्रकार के अनेक पत्र स्वामी जी ने अनेक राजा-महाराजाओं को लिखे थे। मूल बात यह है कि उस समय प्रजातन्त्र नहीं होते हुए भी महर्षि को वह माहौल मौन नहीं कर सका और आज हम लोग इतने कमजोर हो गए हैं कि अपने द्वारा चुनिंदा लोगों को भी सत्य कहने में भय महसूस करते हैं। महर्षि के भक्तो! यदि सही मायने में राष्ट्र और धर्म को बचाना चाहते हो तो महर्षि के अधूरे सपनों को साकार करके दिखाओ। फिर देखिए कोई पोप या मुशर्रफ भारत में कदम रखने का साहस कैसे कर सकता है ? आर्यजनों की एवं आर्य समाजों की शक्ति परीक्षण का काल चल रहा है।

स्वास्थ्य चर्चा–

खून का खजाना : पालक

□ ले० प्रो. इन्द्रदेव सिंह आर्य, 188 शिवाजी नगर, बागपुर

यों तो सभी हरे शाक स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हैं। जैसे नौनिया (मराठी घोल), भिंडी, चिकनी तुरई (हिन्दी-गिलखिया) आदि परन्तु फिर भी हमें यह मानना ही चाहिए कि पालक भाजी वास्तव में हमारा पालन करने वाली और उसका "पालक" नाम वास्तव में सार्थक है क्योंकि पालक-भाजी में विटामिन ए और सी के साथ-साथ लोहा तथा कैल्शियम प्रचूरता से पाया जाता है। इस प्रकार पालक की हरी पत्तियां अन्य सब्जियों से बढ़कर गुणकारी है। यदि आप कच्ची पालक पत्तियां मुंह में चबाएं तो उनका स्वाद कुछ खारा कड़वा सा लगता है, परन्तु वह इतना गुणकारी है कि वह न केवल खून को बढ़ाता है बल्कि आंखों की रोशनी को बढ़ाने के साथ त्वचा का रंग भी साफ करता है।

खून की कमी को दूर करने के लिए तो पालक रामबाण औषधि है। इसमें न केवल लोहे की मात्रा पर्याप्त पाई जाती है, बल्कि इसमें एक और रक्तवर्धकतत्व "फोलिक ऐसिड" यौगिक के रूप में रहता है और यह सर्वथा उचित ही है कि पालक का साग सद्य प्रसुता जच्चा के लिए मुफीद माना गया है क्योंकि उसमें फोलिक ऐसिड यौगिक के रूप में विद्यमान है। लोहा रक्त निर्माण के लिए आवश्यक माना गया है क्योंकि रक्त के प्रत्येक कण में लोहा अनिवार्य रूप से विद्यमान है, उससे ही रक्त में लालिमा आती है और रोग विरोधक क्षमता बढ़ती है।

कुपोषण के शिकार बच्चो, गर्भवती महिलाओं तथा अन्य किसी बीमारी से उठे लोगों को पालक का रस अवश्य सेवन करना चाहिए। गर्भवती महिलाओं को नियमित पालक सेवन करने से उन्हे अपच, वमन, वजन घटना, गर्भ में बच्चे का यथोचित विकास न होना और अंत में गर्भपात होना आदि रोग नहीं होते। प्रतिदिन पालक का रस सेवन करने से समस्त रक्त विकार तथा शरीर की खुश्की दूर होती है, चेहरे पर ललाई, शरीर में स्फूर्ति उत्साह और शक्ति का संचार होता है जिसके फलस्वरूप चेहरे के रंग में निखार आता है।

पालक में जो रासायनिक तत्व विद्यमान हैं उनका विवरण इस प्रकार-100 ग्राम पालक में 92 प्रतिशत जल, 2.9 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 2.9 प्रतिशत प्रोटीन, 0.6 प्रतिशत वसा, 1.7 प्रतिशत खनिज, 0.7 प्रतिशत रेशा रहता है जिससे शरीर को 26 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। एनीमिया (रक्तहीनता) के रोगी को पालक का सेवन विशेष लाभदायक है क्योंकि पालक रक्त की आपूर्ति में सहायक है। पालक पाचन क्रिया में भी सहायता प्रदान करती है। कब्ज के रोगियों को पालक रस पीने के कब्जियत दूर होती है। एक कप पालक के रस में यदि एक कप गाजर का रस मिलाकर लिया जाए तो रस काफी स्वादिष्ट और गुणकारी बन जाता है। पालक के पत्तों को उबालकर उसके पानी से गरारे करने से गले का दर्द और सूजन मिट जाती है। एक कप पालक के रस में 2 चम्मच मधु मिला कर लेने से रक्त में विशेष वृद्धि होती है। आंत्र के रोगो में पालक की सब्जी गुणकारी है। पालक का क्षार शरीर की सूजन को कम करता है। चेहरे के मुहासों, झाइयों, कील आदि से छुटकारा पाने के लिए एक कप पालक रस और एक कप गाजर रस मिलाकर लेने से विशेष लाभ होता है। पालक के रस में दो बूंद नींबू के रस की और दो बूंद ग्लिसरीन मिलाकर लगाने से त्वचा कांतिवान बनती है। परन्तु स्मरण रहे कि मूत्र पथरी के रोगी को पालक हानिकारक होती है। पाचन बहुत कमजोर होने पर भी पालक का सेवन हानिकारक है।

राष्ट्रीय एकता

□ ले० श्री पं. वेदप्रकाश शास्त्री, एम.ए. शास्त्री भवन, 4-ई, कैलाश नगर, फाजिल्का

राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है कि व्यक्तिगत रूप से भिन्न-भिन्न विचारों के होने पर भी राष्ट्र के सभी लोग मिलकर चलने वाले हों। इसी लिए वेद कहता है–

संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।

देवाभागं यथापूर्वे सं जानाना उपासते॥ऋग्वेद

इस मंत्र में राष्ट्र निर्माण का मूलाधार उपस्थित किया गया है। इसका अनुकरण करके ही राष्ट्रोन्नति सम्भव है। वस्तुतः वेद का उपदेश सभी मनुष्यों के लिए है चाहे वह आर्य हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिक्ख हो, ईसाई हो। वेद बिना किसी भेदभाव के उपदेश करता है–

हे मनुष्यो ! तुम सभी मिलकर चलो, मिलकर बोलो, तुम्हारे मन एक साथ मिलकर विचार करें। देव अर्थात्, विद्वान लोग अपना-अपना भाग पूर्वजों की भांति यथायोग्य प्राप्त करें।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समूह अर्थात् समाज में रहता है और समाज से राष्ट्र बनता है।

मधुमक्खियां इक्टठी रहती है, मिलकर कार्य करती हैं। कार्य का विभाजन होता है। स्वभावतः ही वे अपना-अपना काम करती हैं। कोई एक दूसरे के कार्य में दखल नहीं देता। तभी तो मिलकर, एक-एक कण जोड़ कर ढेर सारा मधु जोड लेती हैं।

चींटियां भी मिलकर रहती है। उनमें भी परस्पर सामञ्जस्य होता है तभी तो आने वाली चींटी और जाने वाली चींटी एक दूसरे से मुंह मिला कर संकेतों का आदान प्रदान करते हुए आगे बढ़ती हैं। जिससे उनका कार्य सुचारू रूप से चलता रहता है।

इसी प्रकार पशु, पक्षी भी समूहों में रहते हैं और एक दूसरे से सहयोग करते हैं। उनका यह संगठन अनादिकाल से ऐसे ही चला आ रहा है। उन्हें समाज शास्त्र या राजनीतिशास्त्र के जानने की आवश्यकता नहीं। उनमें मिलकर चलने का ज्ञान स्वभावतः है।

परन्तु मानव समाज और राष्ट्रनिर्माण के लिए अनेक शास्त्रों के ज्ञान की आवश्यकता है। अतः वेद कहता है–

(क) सं गच्छध्वम्-मिलकर चलो। कारण यह है कि कोई तेज चलता है तो कोई मन्द। सभी बराबर नही चलते। परन्तु राष्ट्र के विकास के लिए समाज के सभी वर्गों का समान गति से आगे बढ़ना अत्यावश्यक है। कहीं ऐसा न हो कि एक वर्ग अत्याधिक आगे बढ़ जाय और एक वर्ग पिछड़ा रह जाय। यदि ऐसा हुआ तो समझ लो कि राष्ट्र का विकास एकांगी ही हो पायेगा।

सैनिक मिलकर चलते हैं। उनका गति पर नियन्त्रण होता है। तेज चलने वाला गति धीमी करता है और मन्दगति वाला गति तेज करता है। इस प्रकार दोनों को लाभ होता है। दोनों की गति समान हो जाती है। जिससे राष्ट्र रक्षा में सहायता मिलती है। उनमें परस्पर तालमेल बना रहता है।

जब गति एक जैसी नहीं रहती है। अत्यन्त विषम परिस्थिति सम्मुख उपस्थित हो जाती है। महाराणा प्रताप को ऐसी ही समस्या का सामना करना पड़ा था। युद्ध करते हुए एक बार जोश में वे इतनी तीव्रगति से आगे बढते चले गए कि उन्हें यह ध्यान ही न रहा कि सेना भी उनके साथ आ रही है या नहीं। परिणाम यह हुआ कि सेना से उनका संबध कट गया और वे शत्रु के घेरे में आ गए। भला हो झाला का, जो उनका सेनापति था। उसने स्थिति को भांप लिया। महाराणा प्रताप का मुकुट स्वयं अपने सिर पर रख लिया और उन्हें तुरन्त बाहर जाने के लिए कहा।

उस संकट की घडी मे प्रताप ने अपने जीवन की रक्षा की परन्तु अपने वीर सेनापति झाला के प्राणों की बाजी लगा कर।

ऐसा क्यों हुआ ? उनकी सेना पीछे रह गई थी। जोश में होश नहीं रहा। संगध्वम्-का संदेश भूल गए।

वर्तमान समय में भी लोगों में समानता का अभाव होता जा रहा है। समान रूप से लोग नही चल रहे। कुछ लोग आगे निकल गए हैं तो बहुत सारे लोग पीछे रह गए हैं। अमीर अमीर होता जा रहा है और गरीब और अधिक गरीब हो रहा है। शिक्षा में भी विषमता है। धनाढ्यजन उच्च से उच्चतर और उच्चतम शिक्षा धन के बल पर प्राप्त कर लेते हैं और साधारण लोग साधारण शिक्षा भी मुश्किल से प्राप्त कर पाते हैं। आधी जनता तो आज भी शिक्षा से कोसों दूर है।

जब समाज और राष्ट्र में उच्च-निम्न वर्ग बन गए तो भला वे समान कैसे चलते ? एक वर्ग की गति तीव्र थी तो दूसरे की मन्द। इसी लिए आरक्षण की आवश्यकता पड़ी। जिससे बौद्धिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक स्तर पर वे भी गतिशीलता प्राप्त कर सकें। ऐसे ही धार्मिक, समाजिक और राजनैतिक रूप में भी सभी की गति एक समान न रही।

आवश्यकता इस बात की है कि समाज के सभी वर्गों की प्रगति के प्रति गति समान हो। अधिकार और कर्त्तव्य समान हों। परस्पर सहयोग की भावना हो।

पुरुष और महिलाओ की प्रगति भी समान होनी चाहिए। ऐसा न हो कि पुरुष वर्ग अधिक अधिकारों पर आधिपत्य कर ले और महिलाओं के लिए अत्यल्प अधिकार ही रह जाएं। समान अधिकार होने पर ही समान प्रगति होगी। पुरुष एवं महिला वर्ग समान रूप से आगे बढ़ेंगे।

परन्तु पुरुष महिलाओं को 50 प्रतिशत की कौन कहे 33 प्रतिशत आरक्षण देने को उद्यत नजर नहीं आते। संसद में बिल पास होने के समय लम्बे चौड़े व्याख्यान देने वाले सदस्य बगले झांकने लगते है। विभिन्न दलों के दृष्टिकोण ही भिन्न-भिन्न होते हैं और बिल अगले सत्र के लिए टल जाता है। आप चाहे कितना ही कहें कि हम अटल हैं लेकिन दिखाई तो टलते हुए ही पडते है। फिर नर-नारी का 'सगंच्छवम्' तो न रहा।

अतः राष्ट्रोन्नति के लिए सभी का मिलकर चलना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना प्रगति सम्भव नहीं।

(ख) संवदध्वम् –गति के नियन्त्रण का साधन है-संवाद, मिलकर बोलना। समस्त राष्ट्र मिलकर कहे-हम एक हैं। सबकी बोलियां भिन्न-भिन्न न हों।

नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने कहा था-'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।' हजारों वीर उन की इस आवाज पर फौज में भरती हो गए थे।

लाला लाजपत राय ने कहा- 'पगड़ी सभाल ओ जट्टा।' उनके इस आह्वान पर तमाम लोग राष्ट्रीय संग्राम में कूद पड़े।

संवाद-मिलकर बोलने से प्रेरणा मिलती है। अतः सवाद स्नेहयुक्त हों–

प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यान्ति जन्तव :।

तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

प्रियवचन बोलने से सभी प्राणियों को प्रसन्नता मिलती है। अतः प्रियवचन ही बोलने चाहिए। वचनों में क्या कंजूसी ?

(ग) सं वो मनांसि जानताम्–तुम्हारे मन एक साथ मिलकर विचार करें। जो राष्ट्रीय समस्याए हैं, उन्हें हल करने के लिए मिलकर सोचें, विचारें, हम सकीर्णता के घेरे में बन्द न हो जाएं। हमें चाहिए कि राष्ट्रहित को प्राथमिकता दें। मतभेदो को भुला दें। समान विचारों के आधार पर राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को बनाए रखें। वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, भेदभाव को समाप्त कर दे।

विभीषण और रावण के मन नहीं मिले और लका नष्ट हो गई। 'घर का भेदी लका ढाए' का कलक सदा के लिए विभीषण पर लग गया। परन्तु रावण भी इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं था।

अतः परस्पर विरोध होने पर मिल कर बैठे। विचार करे। मैथिलीशरण गुप्त की यह पक्तिया हमे सदैव प्रेरित करती रहेगी–

हम क्या थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी ?

आओ मिलकर विचारे ये समस्याए हम सभी॥

जब मिलकर विचार करेगे तो हल अवश्य निकलेगा। अहभाव का त्याग करे। अपना स्वार्थ त्याग (शेष पृष्ठ 6 पर)

(पृष्ठ 5 का शेष)

कर राष्ट्रहित पर ध्यान दें। विवाद के लिए विवाद को न उलझाएं अपितु सुलझाने का प्रयत्न करे। तभी राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

(घ) देवाभागं यथापूर्वे सं जानाना उपासते-वेद

अर्थात् विद्वान लोग अपना-अपना भाग पूर्वजों की भांति यथायोग्य प्राप्त करें।

संसार में विद्वान और मूर्ख अर्थात् देव और असुर दोनो ही हैं। दोनों का ही इस सृष्टि में हिस्सा है। मूर्खों का भी और विद्वानों का भी।

परन्तु विद्वान दूसरों का ध्यान रखते हुए अपना भाग प्राप्त करते हैं। प्रजापति द्वारा देव और असुरों को भोजन कराने की घटना सर्वप्रसिद्ध हैं। असुरों ने अपने मुंह मे डाला, भूखे रह गए। निन्दा के पात्र बने और स्वयं लज्जित भी हुए। देवों ने एक दूसरे को खिलाया अत: वे प्रशंसा के पात्र बने। उनका मान सम्मान बढ़ा।

अत: हम दूसरों का भी ध्यान रखें। उनका भाग न ग्रहण करें। जब लोग अपनी ही तिजोरी भरने लगते हैं तो राष्ट्र और समाज में असमानता आ जाती है। वर्तमान नेताओं की स्थिति हमारे सामने स्पष्ट है। सभी इससे परिचित हैं।

प्राचीन इतिहास देखें। भरत श्री राम को गद्दी दे रहे हैं और राम भरत को।

तो दूसरी ओर शाहजहां के चारों पुत्रों ने अपना-अपना राज्य स्थापित करना चाहा और लड़कर समाप्त हो गए। शाहजहां को स्वयं कैद में रहना पडा। तभी तो तुलसी दास कहते हैं-

जह सुमति तहं सम्पत् नाना।
जहं कुमति तहं विवद् निचाना॥

सुमति का अर्थ है-सं वो मनासि जानताम्।

जब हमारे मन एक होंगे तो हम अपने-अपने भाग पर अपना-अपना हक जताएंगे। ऐसा न होने की स्थिति में लड़ मरेंगे। मंदिर और मस्जिद की तरह विवाद समाप्त न होगे। दूसरे के लिए कुछ न कुछ तो त्याग करना ही पड़ेगा।

(ङ) समानी प्रपा सह वो ऽन्न भाग: -सभी के पानी पीने के स्थान और भोजन के स्थान एक हों अर्थात् खान पान में कोई भेदभाव, छुआछूत न हो।

एक बार एक मुगल राजा ने भारत पर आक्रमण किया परन्तु भारतीय वीरों ने उसे मुंह तोड़ जवाब दिया। मुंह की खाकर उसने वापस जाने की तैयारी कर ली। शाम को उसने देखा कि अलग-अलग आग जल रही है। उसे इसका रहस्य जानने की इच्छा हुई। अत: राजा ने अपने कर्मचारी को पता करने हेतु भेजा। वापस आकर कर्मचारी ने कहा-'जहांपनाह ! सैनिक अपना-अपना भोजन पका रहे हैं। क्यों अलग-अलग क्यों पका रहें हैं ?' राजा ने प्रश्न किया। कर्मचारी ने उत्तर दिया-'हिन्दू हैं न, छुआछूत मानते हैं। एक दूसरे के हाथ का बना हुआ नही खाते।'

'अच्छा ! यह बात है। चलो अभी इन पर हमला कर दो.' मुगल राजा ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी। तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन हुआ।

भारतीय वीर इस अचानक आक्रमण के मुकाबले के लिए तैयार न थे। अत: उनकी करारी हार हुई। जीतने वाले हार गए, भोजन के बखेड़े के कारण।

यदि उनका खान पान एक होता तो उनकी ऐसी दुर्दशा न होती। अत: वेद कहता है सभी के जल और भोजन के स्थान एक हों। सभी मिलकर भोजन करें।

(च) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे-हम सभी को मित्र की दृष्टि से देखें। किसी के प्रति ईर्ष्या द्वेष की भावना न हो। अपने पराए का भेद न रखें।

अयं निज: परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह अपना है, यह पराया है- ऐसा संकीर्ण हृदय वाले सोचते हैं। उदारचित्त वालों के लिए तो सारा संसार ही अपना परिवार है।

राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है जब राष्ट्र के सभी वर्ग, सम्प्रदाय परस्पर मैत्री की भावना रखें। सभी से प्रति सहयोग करें।

(छ) मातृभूमि-मातृभूमि की रक्षा करना हम सबका परम कर्त्तव्य है। क्योंकि यह धरती हमारी मातृभूमि है और हम इसके पुत्र हैं।

माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:॥

मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देना चाहिए। महाराणा प्रताप के साथ भामाशाह का नाम भी सदैव अमर रहेगा। क्योंक उसने अपनी सारी सम्पत्ति राष्ट्रहित प्रताप को समर्पित कर दी थी-

यह तन समर्पित, यह मन समर्पित,
यह धन समर्पित, ए मातृभूमि।
चाहता हूं कुछ और भी दूं॥

धन्य है यह मातृभूमि, जिस पर हम उत्पन्न हुए, धन्य हैं वे माताएं जिन्होंने वीर सन्तानों को जन्म दिया। धन्य है वे वीर, जिन्होंने हंसते-हंसते अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

बढ़ जाता है मान वीर का
रण में बलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की भस्म
यथा सोने से॥

मातृभूमि के लिए यदि सब कुछ समर्पित कर दिया जाए तो क्या आश्चर्य। यहां तक कि फूल भी कह उठता है-

मुझे तोड़ लेना वनमानी, उस
पथ में तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक॥

भटिण्डा में विश्व शान्ति यज्ञ व पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज, आर्य समाज चौक भटिण्डा के महर्षि दयानन्द सत्संग भवन में दिनांक 2.10.2001 को महात्मा गांधी, श्री लाल बहादुर शास्त्री एवं डा. राम मनोहर लोहिया की पावन जयन्ती के उपलक्ष्य में विश्व शान्ति हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। यह यज्ञ 'सामाजिक स्वतन्त्रता सेनानी संगठन' भटिण्डा की ओर से इन महान् विभूतियों की जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में किया गया। यह यज्ञ आर्य समाज, आर्य समाज चौक भटिण्डा के मान्य पुरोहित जी आचार्य श्री गुरु प्रसाद जी शास्त्री ने पवित्र वेद मन्त्रों के विशुद्ध उच्चारण द्वारा विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया। इस कार्यक्रम के अध्यक्ष ला. वजीर चन्द जी मंगला प्रधान सामाजिक स्वतन्त्रता सेनानी संगठन भटिण्डा एवं संरक्षक जिला आर्य सभा भटिण्डा थे। इस यज्ञ के मुख्य यजमान प्रधानाचार्य आर्य गर्ल्ज सी सै. स्कूल की मान्या बहन श्रीमती शान्ति जिन्दल थीं।

इस कार्यक्रम में आदरणीय श्री चिरंजी लाल गर्ग जी, मन्त्री विज्ञान तथा तकनीकी पंजाब भी कुछ क्षणों के लिए पधारे। इस संगठन के सचिव श्री पदम कुमार जी ने दिवंगत नेताओं के जीवन पर प्रकाश डाला। प्रो. ओ.पी. मंगला जी, प्रधान आर्य समाज भटिण्डा ने अपने वक्तव्य में कहा कि डा. राम मनोहर लोहिया सन् 1952 में भटिण्डा हमारे निवास स्थान पर पधारे थे। यह भी कहा कि जिस प्रकार आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द जी ने समाज में नारी के उत्थान के लिए कार्य किया, उसी प्रकार डा. लोहिया जी ने स्त्रियों को सुविधाएं उपलब्ध करवाने के लिए प्रयास किया। इस कार्यक्रम में पी.डी. गोयल प्रधान आर्य माडल हाई स्कूल श्री प्रेम भाटिया मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, महामंत्री आर्य समाज भटिण्डा श्री हुकम चन्द जी गोयल प्रधानाचार्य आ.मा. हाई स्कूल, चौ. बाबू राम गर्ग प्रधान गुरुकुल शिल्प विद्यालय, मा. सत प्रकाश जी, श्री गौरी शंकर, श्री कृष्ण जटाना, श्री विद्याधर आर्य तथा शहर के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। कार्यक्रम के अन्त में उपस्थित सज्जनों का धन्यवाद किया गया। प्रसाद वितरण जो कि मुख्य यजमान श्रीमती शान्ति जिन्दल की ओर से था। शान्ति पाठ के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। पारिवारिक सत्संग 2-10-2001 को डा. एन.के. भारती के निवास स्थान पर आर्य समाज चौक भटिण्डा की ओर से किया गया। जिसमें आर्य समाज के सभी सदस्यों व बहनों ने भाग लिया

—प्रेम भाटिया, महामन्त्री

एक खोज पूर्ण लेख

विश्व की प्राचीनतम आर्य समाज

आर्य मर्यादा के अगस्त अंक में श्री भवानी लाल जी भारतीय का लेख 'विश्व की प्रथम आर्य समाज' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। लेख बड़ा ही खोज पूर्ण तथा जानकारी से भरपूर था। जिस का एक-एक शब्द विद्वान लेखक की विद्वता का परिचय दे रहा है जिस के लिए भारतीय जी बधाई एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

फिर भी आर्य मर्यादा के सुयोग्य पाठकों की जानकारी के लिए कुछ शब्द लिखने का साहस कर रहा हूं। बम्बई में अप्रैल 1875 में प्रथम आर्य समाज की स्थापना बेशक महर्षि दयानन्द ने की थी इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता पर फिर भी महर्षि दयानन्द के उत्तरखण्ड (वर्तमान उत्तरांचल) के प्रवास के दौरान उनके सम्पर्क में आए तथा उनके विचारों से प्रभावित होकर पं. नारायण दत्त छिम्बाल के पिता पं. गजानन्द की प्रेरणा से नैनीताल उत्तर प्रदेश तथा वर्तमान उत्तरांचल के कुछ आर्यजनों ने बुधवार 20 मई 1894 को नैनीताल में सत्यधर्म प्रकाशनी सभा की स्थापना की थी। आर्य जगत विचार 4 जुलाई 1993 में यही "सत्यधर्म प्रकाशनी सभा" आर्य समाज मुम्बई की स्थापना के पश्चात् 'आर्य समाज नैनीताल' कहलाने लगी। सत्यधर्म प्रकाशनी सभा के सदस्यों में श्री रामदत्त त्रिपाठी (पुत्र मेजर कालू राम त्रिपाठी), राम लाल साह (पुत्र-हरलाल साह), राम प्रसाद वर्मा (पुत्र-वंशीधर, राणा उत्तम सिंह वर्मा पुत्र-भवान सिंह बलदेव प्रसाद धूसर, खुशी राम (पुत्र मुंशी इश्क लाल क्षत्री, राम लाल गुप्त, मिश्री लाल व छः अन्य व्यक्ति सदस्य बने। इस सभा का पथ प्रदर्शन महर्षि दयानन्द के प्रवचनों व लेखों द्वारा होता था।

1883 में हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने हेतु आर्य समाज नैनीताल में महारानी विक्टोरिया को ज्ञापन दिया था। जब महिलाओं को पढ़ाया जाना पाप समझा जाता था तब नैनीताल में सर्वप्रथम 27 अप्रैल 1909 को आर्य समाज द्वारा पुत्री पाठशाला स्थापित की गई। भारत रत्न पं. गोबिन्द बल्लभ पन्त इस पाठशाला के कार्यकारिणी के सदस्य रहे हैं। क्योंकि रविवार 21 मई 1902 को पं. गोबिन्द बल्लभ पन्त एवं पं. बद्री दत्त पाण्डेय एक साथ आर्य समाज नैनीताल के सदस्य बन कर अछूतोद्धार-स्त्री शिक्षा, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम आदि हेतु प्रेरणा प्राप्त कर देश धर्म की सेवा में जुट गए थे।

ज्ञानोदय पुस्तकालय : वैदिक सिद्धान्तों से भरपूर पुस्तकालय वाचनालय की स्थापना नैनताल में 13 अगस्त 1910 को की गई। इस पुस्तकालय समिति के अध्यक्ष चन्द्र लाल जी साह एडवोकेट तथा म्युनिसिपल कमिश्नर नैनीताल थे जिनके निधन पर समाचार पत्रों में छपा था 'कुमाऊं का सूर्य अस्त हो गया।' नायक जाति के सुधार के प्रयास 7 मई 1911 को प्रारम्भ हुए तथा सितम्बर 1912 से वेश्यावृत्ति का उन्मूलन होने लगा रविवार 3 जून 1951 को मुख्यमंत्री उत्तरप्रदेश के रूप में पं गोबिन्द बल्लभ पन्त ने आर्य समाज मन्दिर नैनीताल का शिलान्यास करते हुए कहा था कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने जीवन काल में आर्य समाज के कार्य को आगे बढ़ाया।

—तरसेम कुमार आर्य, प्रिंसिपल (अवकाश प्राप्त) गोनियाना मण्डी (बठिण्डा)

श्री मनोहर लाल जी सेठी नहीं रहे

जालन्धर के प्रसिद्ध आर्य समाजी कार्यकर्त्ता आर्य माडल स्कूल बस्ती गुजां के प्रबन्धक आर्य समाज बस्ती नौ के प्रतिनिधि व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तरंग सदस्य श्री मनोहर लाल सेठी, गली नं.-7, निजातम नगर बस्ती नौ जालन्धर का 9-10-2001 को अकस्मात देहान्त हो गया। उन्होंने एक अध्यापक का जीवन व्यतीत किया जीवन भर एक शिक्षक का कार्य करते रहे। वह एक बहुत ही मिलनसार और सरस स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके चले जाने से आर्य समाज में जो स्थान खाली हुआ है उसकी पूर्ति होनी असम्भव है। आर्य समाज बस्ती गुजां जालन्धर ने एक शोक प्रस्ताव पारित कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि भेंट की है और परमात्मा से उनकी सद्‌गति के लिए प्रार्थना की है।

जलियांवाले बाग में विश्व शान्ति यज्ञ

डी.ए.वी. कालेज अमृतसर के एन.एस.एस. विभाग की ओर से चल रहे दिनांक 28-9-2001 से 7-10-2001 तक दस दिवसीय कैम्प के दौरान कैम्प के आठवें दिन शहीदी स्मारक जलियांवाले बाग में विश्व शान्ति यज्ञ का आयोजन किया गया। यह आर्य समाज के इतिहास में तथा जलियांवाले बाग के इतिहास में पहली घटना है जब यहां पर इतने सुव्यवस्थित ढंग से आतंकवाद के विरोध में विश्वशान्ति यज्ञ किया गया हो।

जलियांवाले बाग की शोभा दिनांक 5-10-01 को देखते ही बनती थी प्रात: कालीन सत्र में चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन कालेज हाल में किया गया तथा सायं कालीन सत्र में विश्व शान्ति यज्ञ। जलियावाले बाग को इस तरह से सजाया गया था कि ओ३म् और तिरंगे झण्डे सर्वत्र दिखाई दे रहे थे साथ ही झण्डों की मदद से बड़े पार्क के अन्दर यज्ञशाला भी बनाई गई थी। चारों और बैनर और झण्डे ही नजर आते थे। तीन बजे से सायं चार बजे तक महामन्त्र गायत्री का उच्चारण एवं पाठ किया गया और चार बजे से 6.30 बजे तक बृहद शान्ति यज्ञ हुआ प्रिं एम.एल. ऐरी के निर्देशन एवं प्रो आर्य की देखरेख में हुए इस यज्ञ के यज्ञमान श्री राजन गोयल सप्तनीक बने। राष्ट्रीय सेवा योजना के लगभग 200 छात्र-छात्राएं तथा शहर के सभी आर्य समाजों के अधिकारीगण थे। साथ ही डी ए.वी. संस्थाओं के प्राचार्य महानुभाव इस ऐतिहासिक यज्ञ में ध्यान मग्न थे।

इस यज्ञ को देखकर अनेक विदेशी नतमस्तक होकर इसके प्रभाव से प्रभावित होकर इसमे शामिल हो रहे थे अनेक सम्प्रदायों के मानने वाले इस यज्ञ की महिमा को गा रहे थे। डी ए वी कालेज मैनेजिंग कमेटी के सैक्रेट्री प्रिं मोहन लाल, प्रिं. जे. काकड़िया, वैद्य विद्यासागर, श्री दर्शन लाल आदि विशिष्ट महानुभाव इस यज्ञ में आमन्त्रित किए गए तथा शामिल थे यज्ञ के उपरान्त मुख्य यज्ञमान ने चारों दिशाओं में शान्ति के दूत चार कबूतर भी छोड़े।

दिनांक 3-10-01 को आतंकवाद के विरोध में डी.ए.वी कालेज से जलियांवाले बाग तक एक सुव्यवस्थित एवं दर्शनीय ऐतिहासिक रैली भी निकाली गई जिसको प्रिं. ऐरी ने हरी झण्डी दिखा कर रवाना किया। यह रैली भी अपने आप में अनोखी एवं अमिट थी।

17-18 अक्तूबर 2001 को चौबीस घण्टे निरन्तर चलने वाला दुर्लभ शादर यज्ञ दयानन्द मठ चम्बा में होगा

दयानन्द मठ चम्बा जोकि रावी नदी के तद पर स्थित है जिसका संचालन आर्य जगत के सर्वोच्च सन्यासी पूज्यपाद स्वामी श्री सर्वानन्द जी दीनानगर के सुयोग्य शिष्य पूज्यपाद स्वामी श्री सुमेधानन्द जी सरस्वती करते हैं। वे यज्ञ के परम श्रद्धालु हैं। उन्होंने बहुत से यज्ञ किए। महाभारत काल के बाद पहली बार निरन्तर एक वर्ष तक गायत्री यज्ञ किया। 16 अप्रैल 2001 से पुन: वे गायत्री महायज्ञ सुबह चार घण्टे और सायं 3 घण्टे करते हैं। जिसकी पूर्णाहुति डेढ़ वर्ष बाद 21 अक्तूबर 2001 को चम्बा में पड़ेगी और तब 19, 20 व 21 अक्तूबर को भव्य आयोजन किया जाएगा। 20 अक्तूबर को एक भव्य शोभा यात्रा निकाली जा रही है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनि संत सन्यासी निरन्तर यज्ञ के ही उपासक रहे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र जी एवं योगीराज श्री कृष्ण चन्द्र जी सदैव प्रात: व सायं यज्ञ करते थे। यज्ञ से मानवता का कल्याण होता है और इससे द्युलोक भी पवित्र होता है। यज्ञ में डाली गई पवित्र आहुतियों का छटा भाग सूर्य की किरणें द्युलोक को ले जाती हैं।

इससे पूर्व दयानन्द मठ चम्बा में प्रथम नवरात्रे वाले दिन एक अनुपम एवं दुर्लभ यज्ञ हो रहा है, जिसे वेदों ने शारद यज्ञ कहा है।

17 अक्तूबर को प्रात: 7 बजे से लगातार 18 अक्तूबर प्रात: 10 बजे तक यह यज्ञ चलता रहेगा। इस यज्ञ मे अत्युत्तम हवन सामग्री एवं प्रयाप्तघृत प्रयोग किया जाएगा और इस अवसर पर मानवता एवं राष्ट्र कल्याण के लिए विशेष आहुतियां डाल कर प्रभु से प्रार्थना की जाएगी। पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी यज्ञ पर कई प्रकार के अनुसधान कर रहे हैं। **—सुमित-मुकेश शर्मा,** बस्ती गुजां जालन्धर

वैदिक दर्शन

लेo आचार्य भद्रसेन जी बी. 2,92/7 बी शालीमार नगर होशियारपुर

(गतांक से आगे)

अर्थात् वेद पाठ के प्रारम्भ में भूर्भुव:स्व: नामक व्याहृतियों के साथ सविता देवता वाले 'तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो न: प्रचोदयात्।' इस प्रकार तीन चरणों मे विभक्त गायत्री छन्द वाले वेदमन्त्र का भी उच्चारण करे। मनुस्मृति की तरह गीता में भी वेद के लिए ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे कि कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्। तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।13, 15 अर्थात् यज्ञ सहश धार्मिक कर्म वेदानुसार होता है और वेद अविनाशी प्रभु का ज्ञान है। अत: सर्वज्ञान मय वेद के वर्णन के आधार पर ही यज्ञविधि सम्पन्न होती है।

इस प्रासगिक रूप से यह भी स्वत: सिद्ध हो जाता है कि भारत की साहित्यिक परम्परा, धार्मिक कर्मकाण्ड की प्रक्रिया की समीक्षा यह बताती है कि वेद के आधार पर ही ये दोनों पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुई हैं। इस सारे का भाव यह है कि हमारे साहित्य में अध्यात्म, राजनीति, अर्थशास्त्र, भौतिक विज्ञान और चिकित्सा शास्त्र आदि के जो भी प्राचीन ग्रन्थ हैं। वे सारे यही कहते हैं कि हमने अपने-अपने विषय को वेदो से ही प्राप्त किया है तथा हमारे सारे धार्मिक पूजा-पाठ, सस्कार, यज्ञ, व्रत, पर्व आदि का स्वरूप जहा वेद के विवेचन के अनुरूप होता है, वहां उन की प्रक्रिया का अनुष्ठान अधिकतर वेद मन्त्रों से ही सम्पन्न, पूर्ण होता है।

वैसे तो वेद का प्रमुख अर्थ ज्ञान भी है और कार्यों के कार्यान्वयन से जहा ज्ञान बहुत बडी चीज सिद्ध होता है, वहा भारतीय साहित्य, धर्म, सस्कृति, सभ्यता का मूल होने से भी वेद को ब्रह्म शब्द से अभिहित किया गया है। हा, वेद सर्वज्ञानमय होने से सर्वथा ब्रह्म शब्द का पर्याय है अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चारो के लिए भी ब्रह्म नाम हमारे साहित्य में अनेक बार आया है।

7. 'ब्रह्मचारी का अर्थ है :–

'रजत-गुरु जी। भारतीय साहित्य और जीवन में ब्रह्मचारी शब्द भी तो बहुत आकर्षण रखता है। अत: इस प्रसंग में इस का समन्वय भी अपेक्षित है ?

प्रा.–हमारे यहां चार आश्रम हैं, इनमें से जीवन के प्रथम भाग को ब्रह्मचर्य आश्रम कहा गया है। इस स्थिति वाले अर्थात विवाह से पूर्व संयमपूर्वक विद्या ग्रहण करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं। इन दिनों शरीर की समृद्धि और ज्ञान की उपलब्धि विशेष उद्देश्य होते हैं। अत एवं उपनिषद के ऋषि ने इस प्रसंग में 'बलमुपास्व' छान्दोग्य 7, 8, 1 अर्थात् शरीर बल और विद्या बल के अर्जन का विशेष सन्देश दिया है। अत: ज्ञान के साथ शरीर-विकास के मूलभूत के लिए ब्रह्म शब्द का अनेकत्र प्रयोग होता है। इन ब्रह्मों की साधना करने वाले को इसी दृष्टि से ब्रह्मचारी कहा गया है। तभी तो कहा जाता है-ब्रह्म एव व्रतम्, तत् चरितुं शील यस्य स ब्रह्मचारी।

निकष-गुरु जी। पूर्व चर्चा में ज्ञान के लिए ब्रह्म का संकेत स्पष्ट हो गया, पर शरीर समृद्धि के लिए ब्रह्म शब्द का प्रयोग कैसे किया गया है। कृपया इस पर भी प्रकाश डालेंगे ?

प्रा.–शरीर एवं ज्ञान साधना से सिद्ध होने वाले मुख्य साध्य की दृष्टि से जहा ब्रह्म शब्द का प्रयोग विशेष अभीष्ट है, वहां इस जीवन साधना में क्रम की दिशा से सर्वप्रथम ज्ञेय यही है, कि हम खाद्य, पेय, चोष्य, लेह्य रूप में जो भी भोजन ग्रहण करते हैं। उस का शरीर में परिपाक होता है, जो कि शरीर विज्ञान की निर्दिष्ट प्रक्रिया से विविध रूपों में हमारे शरीर का अंग-संग होता है। अर्थात् हम अपनी काया में चर्म, रक्त, मांस आदि देखते हैं, ये सब हमारे द्वारा खाए गए भोजन के ही परिणाम हैं। अतएव आयुर्वेद के विशेषज्ञ बतलाते हैं, कि हम जो भी भोजन खाते हैं। वह परिपाक की प्रक्रिया के अनुरूप रस, रक्त, मांस मज्जा, मेद, अस्थि, वीर्य सदृश सत धातुओं में परिणत होता है। आयुर्वेद के आचार्य का वीर्य को मूल तत्त्व, तेज, बल, बुद्धि का आधार मानते हैं। जैसे कि कहा है-मृत्युव्याधि जरानाशि पीयूषं परमौषधम्। ब्रह्मचर्यं महद्रत्नं सत्यमेव वदाम्यहम्॥ परिपाक की उक्त प्रक्रिया से भी स्पष्ट होता है कि खाद्य से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस अर्थात् इन सत धातुओं (शरीर धारकों) का वीर्य सार है। अत: इस आधार से वह इस प्रसंग में ब्रह्म ही है। ऐसे ब्रह्म की संभाल एक महत्त्वपूर्ण साधना है, जिस से शरीर का स्वास्थ्य स्पष्ट रूप से समृद्ध होता है। शरीर के स्वास्थ्य पर ही अन्य सारी गतिविधियां टिकी हुई है। तभी तो कहा जाता है-'धर्मार्थकाम-मोक्षाणामारोग्य मूलमुत्तमम् चरक सूत्र.1, 15 अर्थात् धर्म = अच्छे कार्य, अर्थ = धन, काम = इच्छा तथा मोक्ष से सम्बद्ध सभी तरह की बातें स्वस्थ शरीर पर ही निर्भर हैं. अत: शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्-कुमारसम्भव 5,33 अर्थात् स्वस्थ शरीर ही अच्छे कर्म करने का प्रमुख साधन है। इसी लिए कहा है-'सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीर मनुपालयेत् तदभावेहि भावानां सर्वाभाव : शरीरिणाम्॥ चरक, निदान-6,7 अन्य सारी बातों को पीछे रखते हुए पहले शरीर की संभाल करें। क्योंकि शरीर के स्वस्थ होने पर ही कुछ किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। अत: शरीर समृद्धि के इस तत्त्व को ब्रह्म कहना सर्वथा संगत है।

विवेक–इस चर्चा में कहीं संभाल और कही शरीर की समृद्धि के तत्त्व शब्द का आप ने संकेत किया है। अत: इससे आप का अभिप्राय क्या है ?

प्रा.–ब्रह्मचारी के प्रकरण में ये सारे शब्द बरते गए हैं। अत: शरीर की इन धातुओं की खजाने की तरह संभाल, व्यवस्था से ही यहां अभिप्राय है। तभी तो 'इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य: स्वराभरत् अ 11, 5, 19' अर्थात् शरीर में अवस्थित आत्मा ब्रह्मचर्य की साधना से इन्द्रियों के स्वस्थ, सुदृढ, सुखी बनाता है। ऐसे ही-आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते-11, 5, 17

आचार्य ब्रह्मचर्य की साधना शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था से अपने शिष्यों को आकर्षित करता है।

अर्थात् उनके आकर्षण का केन्द्र बनता है। ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्-11, 5, 18 ब्रह्मचर्य से कन्या युवा पति को प्राप्त करने में सफल होती है और -ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति अथर्व 11, 5, 16 ब्रह्मचर्य रूपी तप से राजा राष्ट्र संचालन में सफल होता है। इन मन्त्रों में चार अलग-अलग प्रकरण हैं। प्रथम उद्धृत मन्त्र में शरीर के अरोग्य की बात है, तो दूसरे में विद्यालय की, तीसरे में वैवाहिक सम्बन्ध की चर्चा है, तो चौथे में राज्य = राष्ट्र प्रशासन का प्रसंग है। इन सब में सफलता का साधन ब्रह्मचर्य ही कहा है। अत: इन में प्रसंग के अनुरूप दिन चर्या, व्यवस्था, साधना ही उस-उस की सफलता की सिद्धि दर्शाते हैं। ऐसे ही शरीर को स्वस्थ, अरोग, संवर्धित, संरक्षित बनाने के लिए मूलतत्त्व की संभाल, संयम की इस प्रकरण का मूल अभिप्राय है।

8. मूल तत्व की संभाल–

शुभम् ब्रह्मचर्य के प्रसंग में अभी आपने संयम, संभाल को मूल अभिप्राय कहा है। यह सब तो संकेतों में बात करना लगता है, अच्छा हो इस पर कुछ और प्रकाश डालें ?

प्रा०–जैसे कि पूर्व कहा गया है कि हम जो खाते हैं, उससे रस, रक्त आदि के क्रम से अन्तिम धातु वीर्य बनती है और उसकी संभाल ही यहां मूल अभिप्राय है। जैसे कि पात्र में डाला गया दूध जहां ठोकर, टक्कर लगने पर पात्र से बाहर आता है, वहां आग पर रखने से कुछ समय पश्चात् दूध में उफान आता है तथा दूध बाहर गिरने लगता है। ऐसे ही जब हम (बहुत अधिक गर्म स्पर्श या स्वभाव की दृष्टि से) खट्टे, तीखे आदि पदार्थ खाते हैं। काम वासना, संभोग की दृष्टि से बहुत सोचते हैं अर्थात् मन को भटकाते हैं तो शरीर में रहने वाला यह सप्तम् धातु, स्वप्नदोष, हस्तमैथुन, संभोग के पश्चात् बाहर आता है।

(क्रमशः)

आर्य समाज : एक आन्दोलन

❑ डॉ० शिवकुमार शास्त्री, प्रधान, आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली

विचार विचक्षण पाठकवृन्द ! मुसलमानों ने साढ़े सात सौ वर्ष तक हमें मिटाने का प्रयत्न किया। अंग्रेज अपने पूरे बल से राम-कृष्ण और वेदादि शास्त्रों की परम्परा को समाप्त कर ईसाइयत का प्रचार कर रहे थे।

चारों ओर निराशा थी। अज्ञान छाया था। कुरीतियों, पाखण्डों एवं अन्धविश्वासो ने संसार के सबसे महान् देश भारत को जर्जर बना दिया था। अछूतों पर अत्याचार हो रहे थे। स्त्रियों को पैरों की जूती समझा जाने लगा था। स्वार्थी पण्डितों ने "स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्" का फतवा देकर उनके लिए वेदों का द्वार सदा-सदा के लिए बन्द कर रखा था। हम अपने गौरव को भूल कर दूसरों का अनुकरण करने की होड़ लगा रहे थे। 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद सभी के मन बुझे हुए थे। ऐसी विकट परिस्थितियों में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की, जिसका उद्देश्य संसार का उपकार करना है।

यद्यपि आर्य समाज की स्थापना को केवल एक सौ बाईस वर्ष ही हुए हैं इतना समय धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों के इतिहास में कोई विशेष महत्व नहीं रखता परन्तु आर्य समाज ने इस थोड़े से समय में सुस्त पड़ी आर्य जाति को झकझोर कर जगा दिया। काका हाथरसी के शब्दों में-

गोरे भारत नहीं छोड़ते राजी-राजी।

अगर न देते योग देश के आर्य-समाजी।

आज का सुधरा हुआ हिन्दु आर्य समाज की ही देन है। जन्मगत जात-पात, छूआछूत, बाल-विवाह, पर्दाप्रथा, दहेज आदि का विरोध तथा खान-पान और चौके चूल्हे के साधनों के विरुद्ध सैद्धान्तिक प्रचार और व्यावहारिक आन्दोलन आर्य समाज का ही कार्य है। अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा, विदेश यात्रा आदि पर लगे प्रतिबन्धों की जड़ें आर्य समाज ने ही खोखली की है।

आर्य समाज ने हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को उसकी अनेक कमजोरियों से मुक्त करके न केवल संगठित और सुनिश्चित करने का ही प्रयत्न किया अपितु उसके द्वार ईसाई, मुसलमान आदि अहिन्दुओं के लिए भी खोल कर उसे वास्तविक अर्थों में व्यापक और उदार बनाने का प्रयत्न किया। अपने स्वधर्मी भाईयों को सांप और बिच्छू के समान अछूत समझने वाला और ईसाई मुसलमान आदि पर मतावलम्बियों को म्लेच्छ कह कर उनका छुआ पानी तक पीने से पीने तक घबराने वाला हिन्दू अपने धर्म, संस्कृति और स्वाधीनता की रक्षा करने में असमर्थ था।

Docile and submissive Hindu कहकर जो लोग उसका मजाक उड़ाते थे। आर्य समाज के कारण वह Militant and aggressive Hindu समझा जाने लगा।

आर्य समाज द्वारा देश की भावनात्मक एकता के प्रयत्न का एक छोटा प्रतीक "नमस्ते" है। पहले यही आर्य समाजियों की पहचान थी। दूसरे लोग यहां तक हिन्दू भी इससे चिढ़ते थे आज यह सर्व सम्मत भारतीय सम्बोधन बन गया है।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज का योगदान सर्वपरिचित और प्रसिद्ध है। सरकार के बाद सबसे अधिक शिक्षण संस्थाएं आर्य समाज की ही हैं। उसके शिक्षण संस्थान भारत वर्ष के इलावा मारीशस, अफ्रीका, फिजि आदि देशों में भी फैले हुए हैं। शिक्षा प्रसार के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षा तथा राष्ट्रीय वातावरण इन संस्था की विशेषता है।

छूआछूत हिन्दू समाज का कलंक है। आर्य समाज ने इसे मिटाने के लिए सबसे अधिक संघर्ष किया और बलिदान तक दिये । अनेक आर्य समाजों में हरिजन कुलोत्पन्न पण्डित और पुरोहित आज भी विवाह आदि संस्कार कराते हैं।

विदेशों में बसे लाखों प्रवासी भारतीयों में वैदिक धर्म, संस्कृति और हिन्दी का प्रचार आर्य समाज तथा उसकी संस्थाओं के कारण हैं।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मान दिलाने में आर्य समाज का बहुत बड़ा योगदान है। अहिन्दी प्रान्तों में भी आर्य समाज का सारा कार्य और प्रकाशन हिन्दी में किया जाता है।

स्त्रियों को न पढ़ाने की पुरानी हिन्दू मान्यता के विपरीत आर्य समाज ने उनकी शिक्षा के लिए जितने स्कूल पाठशालाएं तथा गुरुकुल खोले उतने स्वाधीनता से पूर्व सरकार द्वारा भी नहीं खोले गये थे। स्त्रियों को वेद पढ़ाने एवं यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार केवल मात्र आर्य समाज ही देता है। स्वाधीनता आन्दोलन में जेल जाने वालों में 80 प्रतिशत आर्य समाज के अनुयायी ही थे Everymen के विश्वकोष में आर्य समाज को स्पष्ट रूप से एक ऐसा राजद्रोही सगठन कहा है जिसका उद्देश्य देश की आजादी था।

यद्यपि देव दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज के कार्यक्रमो को अनेक राजनीतिक पार्टिया अपना चुकी हैं पुनरपि आर्य समाज का दायित्व है कि वह अपने स्वर्णिम अतीत का अवलोकन कर उज्जवलतम भविष्य के प्रति सतर्क रहे तभी इसकी स्थापना का उद्देश्य फलीफूत हो सकेगा।

स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती नहीं रहे

उड़ीसा, बिहार (झारखंड प्रान्त), मध्यप्रदेश (छत्तिसगड़) प्रांत के वनवासी क्षेत्रों में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार में सर्वस्व आहुति देने वाले, शुद्धि आन्दोलन के सूत्रधार, वनवासी जनता को महा भारतीय स्रोत में शामिल करने का भागीरथ प्रयत्नकारी, विभिन्न गुरुकल, संस्कृत विद्यालय, महाविद्यालय, दयानन्द हाई स्कूल, मिडिल स्कूल, अनाथाश्रम, गोशाला, दातव्य चिकित्सालय, आर्य समाज आदि विभिन्न अनुष्ठान के स्थापना के साथ प्राकृतिक विपदाओं में पीड़ित जनता की सेवा करने वाले पुरी मे आर्य समाज, केन्द्रपड़ा में कन्या गुरुकुल स्थापना करते हुए उड़ीसा के बाढ़ पीढ़ित जनता की सेवा करते हुए अजस्र अनुष्ठानों के संस्थापक पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती का दिनांक 6 सितम्बर 2001 को रात 2 बजे भुवनेश्वर में हृदयाघात से निधन हो गया। स्वामी जी के निधन से आर्य जगत् की अपूरणीय क्षति हुई है। वे 86 वर्ष के थे।

पूज्य स्वामी जी उड़ीसा के वालेश्वर जिला सुदामपुर गांव में 1915 में जन्मे और बाल्यकाल से ही अन्याय-अत्याचार, शोषण और देश-धर्म के लिए संग्राम करते आए हैं। वे 1950 से लेकर मृत्यु पर्यन्त आर्य समाज का प्रचार-प्रसार, अराष्ट्रीय प्रचार निरोध, पीड़ित जनता की सेवा में बिताये। अकेले उन्होंने अपने जीवन मे जितना कार्य सम्पन्न किया वह कई संस्थाओं के सम्मिलित कार्य से कहीं अधिक है। पूज्य स्वामी जी महाराज आर्य समाज संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य कई शैक्षणिक, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्र रक्षा मे प्रवृत्त संगठनों से जुड़े हुए थे।

उनका अन्तिम संस्कार 7 सितम्बर को भुवनेश्वर स्थित सत्य नगर में पूर्ण वैदिक विधि से किया गया। भू पू मुख्यमंत्री और वर्तमान प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष श्री जानकी बल्लभ पट्टनायक, भू पू मु मन्त्री श्रीमती नन्दिनी शतपथी, मंत्री श्री विश्वभूषण हरिचन्दन आदि मन्त्री और एम एल ए श्री निवास रथ, कमिश्नर राजस्व विभाग आदि अनेक गणमान्य उच्चपदस्थ सरकारी अधिकारी तथा हजारों की संख्या में उड़ीसा के नर नारी एवं आर्य जनता इस अतिम्न सस्कार में उपस्थित थे। विभिन्न संस्थाओं तथा आर्य समाजो ने पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द के निधन पर गहरा दुःख प्रकट किया है।

8 सितम्बर शनिवार 11 बजे पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज का प्रथम संस्थापित और केन्द्र स्थली गुरुकुल वैदिक आश्रम वेद व्यास पर शोक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें दिवगत आत्मा की सद्गति और शांति के लिए प्रार्थना की गई तथा विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

—वेद व्यास

चतुर्वेद परायण महायज्ञ की पूर्णाहुति

पर्वतों की गोद एवं पवित्र रावी नदी के सुरम्य तीर पर स्थित आपके प्रिय संस्थान दयानन्द मठ चम्बा की पावन यज्ञशाला में मैंने 16-4-2000 को तीन वर्ष पर्यन्त चलने वाले अभूतपूर्व गायत्री एव चतुर्वेद परायण महायज्ञ का संकल्प पूज्यपाद गुरुदेव श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की प्रेरणा से लिया था। यह यज्ञ 10 जुलाई 2001 तक अत्यन्त सुखपूर्वक चलता रहा। किन्तु उसके बाद मेरा शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया। अगस्त मास व्यतीत होने पर भी शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो सका। अत: पुन: पुन: यह अन्त: प्रेरणा हो रही है कि अब यज्ञ को विराम दे देना चाहिए। सभी हितैषी व सहयोगी भी यही परामर्श दे रहे हैं कि शरीर की रक्षा हेतु अब यज्ञ को विराम देना ही उचित होगा।

गत वर्ष हमने निरन्तर चौबीस घण्टे चलने वाले दुर्लभ शारद यज्ञ का अनुष्ठान किया था। इस यज्ञ में अपूर्व आनन्द आया था। इस बार यह यज्ञ 17-18 अक्तूबर सन् 2001 को होगा। इस यज्ञ में भाग लेने के इच्छुक भाई बहन 16 अक्तूबर सायं तक चम्बा पहुंचने की कृपा करें। 17 अक्तूबर प्रात: 7 बजे से लगातार 18 अक्तूबर प्रात: 10 बजे तक यह यज्ञ चलता रहेगा। इस यज्ञ में अत्युत्तम हवन सामग्री एवं पर्याप्त घृत प्रयोग किया जाएगा। यजुर्वेद में अत्युत्तम वर्णन किया है :-

यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च या:।

तदग्निर्वैश्वकर्मण: स्वर्देवेषु नो दधत्॥ यजु 18-65

पदार्थ :-(यत्र) जिस यज्ञ में (मधो:) मधुरादि गुणयुक्त सुगन्धित द्रव्यों (च) और (घृतस्य) घृत के (या:) जिन (अनपेता:) संयुक्त (धारा) प्रवाहो को विद्वान् लोग करते है (तत्) उन धाराओं से (वैश्वकर्मण:) सब कर्म होने का निमित्त (अग्नि:) अग्नि (न:) हमारे लिए (देवेषु) दिव्य व्यवहारो मे (स्व:) सुख को (दधत्) धारण करता है।

भावार्थ :-जो मनुष्य वेदि आदि को बना के सुगन्ध और मिष्ठानादि युक्त बहुत घृत को अग्नि में हवन करते है वे सब रोगों का निवारण करके अतुल सुख धारण करते हैं।

अत: हमने निश्चय किया है कि इस 17-18 अक्तूबर के दुर्लभ शारद यज्ञ तथा पुन: 19-20-21 अक्तूबर को पूर्णाहुति के अवसर पर पर्याप्त घृत व सुगन्धित हवन सामग्री से यज्ञ किया जाएगा।

यज्ञ के सम्बन्ध में यजुर्वेद का एक अन्य मन्त्र भी उदाहरण हेतु प्रस्तुत कर रहा हूं :-

ओ३म् इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभि:।

तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमे :॥ यजु. 18/56

पदार्थ :-हे विद्वन ! जो (भृगुभि:) परिपूर्ण विज्ञान वाले (वसुभि:) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने (आशीर्दा :) इच्छा सिद्धि को देना वाला (यज्ञ) यज्ञ को (इष्ट:) किया है (तस्य) उस (इष्टस्य) किए हुए (प्रीतस्य) मनोहर यज्ञ के सकाश से (इह) इस संसार में आप (न:) हम लोगों के (द्रविण) धन को (आ गमे:) प्राप्त हूजिए।

भावार्थ :-जो विद्वानों के तुल्य अच्छा यत्न करते हैं वे संसार में बहुत धन को प्राप्त होते हैं । यहां (द्रविण) धन केवल भौतिक धन को ही नहीं कहा गया है अपितु ईश्वर की समस्त कृपाएं व आध्यात्मिक ऐश्वर्य ही वास्तविक धन है। अत: इच्छा सिद्धि वाले यज्ञों को अवश्य करना चाहिए।

इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत होकर हमने दुर्लभ शारद यज्ञ का अनुष्ठान करने का निश्चय किया है। इस यज्ञ का उल्लेख ऋग्वेद के सातवें मण्डल के 66वे सूक्त के ग्यारहवें मन्त्र में आया है।

मन्त्र इस प्रकार है-

वि ये दधु: शरदं मासमादहर्यज्ञ मक्तुं चादृचम्।

अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत।

ऋ.म.७/सू. ६६/ मन्त्र ११

पदार्थ-(ये) जो विद्वान् (शरदं मासं) शरद मास के प्रारम्भिक (अह: अक्तुं यज्ञं दिन रात के यज्ञ को (ऋचं) ऋग्वेद की ऋचाओ से (वि, दधु:) भले प्रकार करते हैं, वह (अनाप्य) इस दुर्लभ यज्ञ को करके (वरुण:) सब के पूजनीय (मित्र) सर्वप्रिय (अर्यमा) न्यायशील तथा (राजान:, दीप्तिमान् होकर (क्षत्रं) क्षत्रधर्म को (आशत) लाभ करते हैं।

भावार्थ :-शरद ऋतु के प्रारम्भ में जो यज्ञ किया जाता है उसका नाम "शारद" यज्ञ है। यह यज्ञ रात्रि दिन अनवरत किया जाता है। जो विद्वान् अनुष्ठानपरायण होकर इस वार्षिक यज्ञ को पूर्ण करते हैं। वह दीप्तिमान् होकर सबसे सत्काराहं अर्थात् सत्कार योग्य होते हैं।

सज्जनो ! यह यज्ञ अपूर्व है। स्वयं ऋग्वेद में उस महान जगदीश्वर ने कहा है-

एषस्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे।

अहेडता मनसा

यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु।

ऋ म.७/सू. ६७/ मन्त्र ७

पदार्थ :-(वां) हम लोग (माध्वी) संसार में मधुरता फैलाने वाले (एष:) इस (हव्यं) होम को (सख्ये) मित्र के सम्मुख (पूर्वगत्वा, इव) भेंट के समान (रात:) आपको अर्पण करते हैं जो (निधि:, हित:) आरोग्यता देने वाला है (स्य:) आप इसको (मानुषीषु, विक्षु) मनुष्य प्रजाओं में (आ, यातं) सर्वत्र विस्तृत करें (अस्मे) हमारी इस भेंट को (अहेडता) शान्त (मनसा) मन से (अर्वाक्, अश्नन्ता) हमारे सम्मुख स्वीकार करें।

भावार्थ :-इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे देव ! जिस प्रकार अपने स्वामी व मित्र के सम्मुख नैवेद्य रखा जाता है, इसी प्रकार हम लोग इस आहुति रूप हव्य को जो निरोगता की निधि तथा मनुष्यमात्र का हितकारक है, आपके सम्मुख रखते हैं, आप कृपा करके इसको स्वीकार करें और सब प्राणिवर्ग में तुरन्त पहुंचा दें।

सज्जनो ! इस दुर्लभ शारद यज्ञ को 17-18 अक्तूबर को सम्पन्न करने के पश्चात् 19-20-21 अक्तूबर को यहां चलने वाले यज्ञ की डेढ़ वर्ष पश्चात् ही पूर्णाहुति करने का निश्चय किया गया है। शरीर तीन वर्ष तक इस यज्ञ को करने की शक्ति अब नहीं जुटा पा रहा है। अत: प्रभु से क्षमा याचना करते हुए पूर्णाहुति करने का निश्चय कर लिया है।

20 अक्तूबर को चम्बा नगर में भव्य शोभायात्रा निकाली जाएगी। पूर्णाहुति के पुनीत अवसर पर आप सभी सादर आमन्त्रित हैं। आपने इस डेढ़ वर्ष की अवधि में यज्ञ के संचालन हेतु जो सहयोग किया व अपूर्व है। आशा है कि शारद यज्ञ एवं पूर्णाहुति के कार्यक्रम को भी आप सब सुख पूर्वक सम्पन्न करा देंगे। इस अवसर पर काफी व्यय आने की सम्भावना है। किन्तु सबके सहयोग से यह कठिन लगने वाला कार्य भी सुखपूर्वक सम्पन्न हो जाएगा। अब समय बहुत कम है फिर भी मैं पूर्ण प्रयास कर रहा हूं कि पूर्णाहुति पर 21 अक्तूबर को प्रसाद रूप में सभी को एक छोटी सी स्मारिका भेंट की जाए। रात-दिन एक करके इसकी सामग्री जुटाने का प्रयास कर रहा हूं। जालन्धर के श्री प्रवीण गुप्ता जी ने इस स्मारिका को प्रकाशित कराने का पूर्ण दायित्व ले लिया है। उनका बहुत-बहुत धन्यवाद। यह भी प्रयास किया जा रहा है कि इस अवसर पर आप सबको मठ का नव-वर्ष का आकर्षक कैलेण्डर भी भेंट किया जा सके।

पुन: 21-22-23 सितम्बर 2001 को लिवरपूल (इग्लैंड) की धर्मात्मा एवं यज्ञप्रिय बहिन सरला जी शर्मा के पूर्ण आर्थिक सहयोग से विशाल नेत्र चिकित्सा शिविर आयोजित किया गया।

प्रभु आपको सपरिवार सुखी रखे। मंगलकामानाओं के साथ।

–स्वामी सुमेधानन्द, दयानन्द मठ चम्बा

आर्य समाज हांसी का वार्षिक उत्सव सम्पन्न

आर्य समाज हांसी का वार्षिकोत्सव 28 से 30 सितम्बर 2001 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया जिसमें 28 सितम्बर को मुख्य अतिथि श्री कृष्ण बांगड जी (चेयरमैन हरियाणा पब्लिक सर्विस कमीशन) के द्वारा ध्वजारोहण समारोह के पश्चात् उत्सव की कार्यवाही प्रारम्भ हुई, जिसकी अध्यक्षता श्री हरिसिंह जी सैनी प्रधान आर्य समाज नागोरी गेट हिसार ने की तथा विशिष्ठ अतिथि श्री कुलवीर सिंह अहलावत (नगर पार्षद हांसी) 30 सितम्बर को मुख्य वक्ता स्वामी अग्निवेश जी, श्री सुभाष गोयल जी हरियाणा नगर विकास मन्त्री, सेठ श्री जगदीश आर्य गुरेरा, श्री हरवंश लाल जी कपूर (सह सचिव आर्य प्रादेशिक सभा मन्दिर मार्ग नई दिल्ली) का माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया गया। सभी विद्वानों के उपदेश हुए। स्वामी सर्वदानन्द जी कुलपति (गुरुकुल धीरणवास) डा. वीरपाल, पं. विश्वामित्र शास्त्री, श्री सहदेव बेधड़क जी, श्री मामचन्द जी पथिक, जवर सिंह खारी आदि उपदेशकों व भजनोपदेशकों के उपदेश व भजन हुए। आर्य समाज हांसी के पुरोहित यज्ञ के ब्रह्मा पं. राम किशोर जी शास्त्री रहे।

रामायण पहले : महाभारत बाद में

☐ श्री स्वामी वेदमुनि जी परिव्राजक अध्यक्ष: वैदिक संस्थान, नजीबाबाद (उ.प्र.)

पिछले दिनों एक सज्जन ने ऐसे विचार व्यक्त किए कि महाभारत रामायण से पहले हुआ था। उन्होंने डा. डी.पी. सरकार के इस मिथ्या वक्तव्य के खण्डन में कि "महाभारत हुआ ही नहीं" अपने वक्तव्य में कह दिया कि "महाभारत हुआ तो है किन्तु रामायण से पहले हुआ था।" इस प्रकार एक भ्रान्ति का निवारण करते हुए वह दूसरी भ्रान्ति का प्रसारण कर बैठे।

महाभारत में रामायण का संक्षिप्त रूप से सम्पूर्ण वर्णन है। इसे पाश्चात्य विद्वान् विण्ट र्निट्ज ने भी स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है कि "महाभारत का रामोपाख्यान रामायण कथा का संक्षिप्त रूप है।" इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि विण्टर्निटज महोदय ने महाभारत ग्रन्थ को पढा है किन्तु इन भारतीयों ने नहीं पढ़ा, जो महाभारत को रामायण से पहला बताते हैं। यदि पढ़ी होती तो यह ऐसी भ्रान्तियुक्त बात न कहते।

महाभारत तो रामायण का वर्णन करके उसके अपने से पहले होने पर अपनी मुद्रिका अंकित करें और कुछ लोग यह कहे कि महाभारत का युद्ध रामायण काल से पहले हुआ था तो इसका एक परिणाम तो यह होगा कि जिन्होंने महाभारत नहीं पढ़ा वह भ्रान्ति में पड़ेंगे और दूसरा परिणाम यह होगा कि जिन्होंने महाभारत पढ़ा है, वह ऐसा वक्तव्य देने वाले को अविद्वान् समझेंगे। महाभारत के बाद में और रामायण के पहले होने का हम केवल एक प्रमाण महाभारतान्तर्गत गीता से प्रस्तुत करते हैं। गीता के दशम् अध्याय का श्लोक 31 इस प्रकार है-

पवन: पवतामस्मि राम: शस्त्रभृताहम।

झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवीं।

अर्थात् पवित्र करने वाले मे मैं वायु हूं और शस्त्रधारियो में मैं राम हू और मछलियों में मैं मगरमच्छ हूं और स्रोतो में जाह्नवीं (गंगा) हू।

यदि रामायण-काल महाभारत से बाद का होता तो योगीराज श्री कृष्ण स्वयं को शस्त्रधारियों में राम कैसे बता सकते थे? जो उत्पन्न ही न हुआ हो, उसकी उपमा कैसे दी जा सकती है? महाभारत के अतिरिक्त एक प्रमाण महाभारत से रामायण के न केवल पहले अपितु लगभग दो करोड़ वर्ष पहले होने का हम यहां प्रस्तुत किये देते हैं। इससे उक्त भ्रान्ति के निराकरण में सहायता मिलेगी तथा भारतीय इतिहास में रूचि रखने वालों को लाभ पहुंचेगा। वायु पुराण उत्तरार्द्ध अध्याय 9 के 48वें श्लोक में वर्णन है-

त्रेतायुगे चतुर्विंशे रावणस्तपस: क्षयात्।

राम दाशरथि प्राप्य सगण: क्षयमीयिवान्॥

अर्थात् 24वें त्रेतायुग मे रावण का सामर्थ्य क्षीण हुआ और तब वह दशरथ-पुत्र राम को प्राप्त होकर बन्धु-बन्धुओ सहित मारा गया।

इस श्लोक मे राम का 24वें त्रेतायुग में होना बताया है। अब 28वीं चतुर्युगी का कलियुग है इसका अर्थ है कि राम और रामायण को चार चतुर्युगी पूरी-पूरी बीत चुकी है। चारो युगों अर्थात् एक चर्तुर्युगी की आयु युगानुसार काल-गणना से 43,20,000 वर्ष है, इसे चार से गुणा करने पर 1, 72, 80, 000 वर्ष चारों चतुर्युगियो का समय होता है। यह अवधि इस 28वीं चतुर्युगी के त्रेता के अन्त के साथ बीत चुकी। यदि हम यह मान ले कि रामायण-काल त्रेता के बिल्कुल अन्त का काल है, त्रेता का एक दिन भी जब शेष नहीं रहा था। तब भी द्वापर युग का पूर्ण समय 8,64,000 सहस्त्र वर्ष इन चारो चतुर्युगियों के समय 1, 72, 80, 000 वर्षों में और सम्मिलित करना पडेगा क्योंकि महाभारत युद्ध द्वापर के अन्त मे हुआ था। द्वापर और चारों चतुर्युगियो के काल की संयुक्त संख्या 1, 81, 44, 000 वर्ष होती है अर्थात् महाभारत से इतने वर्ष पहले रामायण युद्ध हुआ था। ऐसा प्रमाण उपलब्ध होने पर भी कुछ लोग यह कहे कि महाभारत रामायण से पहले हुआ था तो पाठक समझ ले कि ऐसे लोगो को किस श्रेणी मे रखा जाना चाहिए?

जहा तक महाभारत युद्ध की बात है उसे हुए भी अब तक 5,100 वर्ष बीत चुके है। पाठको से हमारा निवेदन है कि इन उपादित्तधारी अयोग्य लोगो के कपोल कल्पित वक्तव्यो से भ्रान्ति में न पडा करें और जो महानुभाव भ्रान्ति मे हैं, वह भी सत्य को जानने की दृष्टि से जिज्ञासु बन कर तथ्य को समझे और भ्रान्ति से निकले जिन लोगो को सचमुच इतिहास मे रुचि है, उनसे हम यह आशा करते हैं कि वह भारतीय इतिहास के विषय मे पश्चिम वालो को प्रमाण न माने नहीं तो भ्रान्ति के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पडेगा। भारतीय इतिहास तो भारत के ही प्राचीन ग्रन्थों मे से उपलब्ध होगा।

अमृतसर में चरित्र निर्माण शिविर

महर्षि दयानन्द धाम में आर्य युवक परिषद अमृतसर की ओर से चरित्र निर्माण शिविर का आयोजन किया गया। श्री नरेश नीलम जी ने यजमान पद को सुशोभित किया। यजमानों को यज्ञ के पश्चात् साहित्य देकर सम्मानित किया गया। कुमारी आर्य वाणी ऐश्वर्या, महक तथा श्रीमती राकेश आर्या तथा श्री शिव कुमार जी ने भजनों का बड़ा ही सुन्दर कार्यक्रम पेश किया। माता जगदीश आर्या (प्रधाना-आर्य महिला परिषद) ने भजन सुनाया।

श्री ब्र ओम प्रकाश जी, श्री भीमसेन जी ने अपने विचार प्रस्तुत किए। अन्त में मुख्य वक्ता श्री ओम प्रकाश जी आर्य अध्यक्ष-आर्य युवक परिषद पंजाब ने अपने वक्तव्य मे कहा कि मानव जीवन एक अनमोल तथा श्रेष्ठ जीवन है क्योंकि इसके द्वारा हम उस परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयास कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि हम सूर्य की तरह अपना जीवन परोपकारी बनायें।

चरित्र निर्माण शिविर कार्यक्रम के पश्चात् प्रीतिभोज की व्यवस्था की गई। कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए डा अञ्जु आर्या, डा. नवीन आर्य, श्री रमेश जी शर्मा, कुनाल जी, कर्ण जी, मेयंक जी, सुनीता जी, पूजा जी, वन्दना पसाहन जी ने विशेष योगदान दिया। —राकेश पसाहन जी

लुधियाना में विश्व शान्ति गायत्री महायज्ञ

स्त्री आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना में 22, 23, 24 नवम्बर 2001 को विश्व शान्ति गायत्री महायज्ञ व महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है जिसमें कई उच्चकोटि के विद्वान् सन्यासी महात्मा पधार रहे हैं। सभी आर्य बहनें व बन्धु पधार कर धर्म लाभ उठावें।

—जनकरानी आर्या, मन्त्री

नशा मुक्त-सफल सुखी जीवन

❑ ले० मदनमोहन आर्य मंत्री आ. शाहजहानपुर, अलवर

व्यक्तित्व प्रभावशाली हो, शरीर स्वस्थ हो, मन प्रसन्न हो, बुद्धि प्रखर हो, भविष्य उज्जवल हो, जीवन सफल हो, सन्तान अच्छी हो, परिवार सुखी हो एवम् समाज मे प्रतिष्ठा हो ऐसी चाह किस की नहीं होती सभी की होती है और सही राह पर सही ढग से चला जाये तब उपरोक्त उपलब्धिया हासिल होती हैं। आज तो उससे उल्टा ही हो रहा है। चाल सहीं पर राह गलत चलना और भी अधिक गलत केवल ना समझो का ही नहीं समझदारों का भी ऐसा बुरा हाल है बहुत ही बुरा साधारणतया यह बात साफ स्पष्ट समझ में आने जैसी है कि नशा छोटा हो या बड़ा बुरा है। परिणाम घातक है बीड़ी सिगरेट तम्बाकू, सुल्पा, गाजा चरस, भांग, हेरोईन और आज तो न जाने किन-किन नामों के नशीले पदार्थ प्रचलित होते जा रहे हैं। इतिहास साक्षी है नशा जिसने किया वह बरबाद हो गया अच्छे-अच्छे राजघरानों और बडे-बड़े राज्यों का पतन का कारण नशा बना, नशा करने वाले लोगों ने उससे सबक नहीं लिया, क्या हो गया लोगों की समझ को ? मानो लोगों की समझ को लकवा मारता जा रहा है। ज्यों-ज्यों नशीले पदार्थों का सेवन बढ़ता जा रहा है उपरोक्त महान उपलब्धियां दुर्लभ होती जा रही हैं। चिकित्सा शास्त्र में वर्णित है और वैज्ञानिक शोध ने साबित कर दिया है कि नशे के परिणाम भयकर घातक से घातक होते हैं। समाचार पत्रो मे प्रकाशनों और प्रचार सचार साधनो के माध्यम से लोगों को नशे के कुपरिणामों से परिचित कराया जाता है, यहा तक कि नशीले पदार्थो पर उनके घातक परिणाम के सकेत भी अंकित रहते हैं फिर भी नशीले पदार्थो का सेवन दिनो दिन बढता ही जा रहा है। सर्वाधिक खतरनाक बात तो यह है कि नई पीढी और पवित्र विद्यार्थी जीवन भी नशे का शिकार होता जा रहा है। हो भी कैसे नहीं ? जबकि देश के कर्णाधार मार्गदर्शक राजनीतिज्ञो का जीवन भी नशे का शिकार हो रहा है। भयकर विडम्बना तो यह है कि देश का प्रशासन भी नशे की आय से चल रहा है। देश की सरकारें नशीले पदार्थ उपलब्ध कराती हैं। अरबों रुपयों के नशीले पदार्थों का तस्करी के माध्यम से आयात होता रहता है। आये दिन अमानवीय एवं घिनौनी घटनायें घटित होती रहती हैं। हिंसा आतंक और अपराधिकरण में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इन सबका एक बड़ा मूल कारण है नशा। अब इस देश का भगवान् ही मालिक है भगवान हमारे देश वासियों को सदबुद्धि दे। एक समय था जब हमारे भारत देश के सार्वजनिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में ऐसे महान व्यक्तियों का प्रबल बाहुल्य था। जिनका जीवन त्यागमय था, निर्विवाद था और इतना प्रभावी था कि इनके इगित मात्र से जन जीवन प्रभावित होता था। उनके पद् चिन्हों पर चल कर ही भारत की जनता ने गुलामी की जंजीरें तोडी, आजादी हासिल की। आजादी के 54 वर्षों बाद आज सार्वजनिक और राजनैतिक क्षेत्र में सम्पूर्ण भारत में जनजीवन को प्रभावित करने वाला एक भी व्यक्ति नजर नहीं आता। नशे के खिलाफ कभी कहीं आवाज उठती तो है पर सम्पूर्ण भारत को प्रभावित करने वाली न तो कहीं आवाज है और न कोई व्यक्तित्व है। नशा करने वाले व्यक्ति को नशे से शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक नुकसान तो होता ही है, पारिवारिक जीवन की सुख शान्ति भी खत्म हो जाती है और अर्थाभाव के कारण अनेक बुराईयां जन्म लेती हैं। सबसे अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है सन्तानो पर। उनके संस्कार बिगड़ते हैं, शराब की लत प्रतिष्ठा घटाती है, आय घटाती है और व्यय बढ़ाती है। देश में गरीबी का बहुत बड़ा कारण नशा है और गरीबी के कारण ही लाखों-लाखो बालक शिक्षा से वचित रह जाते हैं। नशा करने वाले लोग नशे के परिणामो से परेशान हो जाते हैं और बारबार सकल्प करते हैं कि अब मैं नशे का सेवन नहीं करूगा मगर नशा व्यक्ति की सकल्प शक्ति कमजोर कर देता है। अत: वह अपने संकल्प पर टिक नहीं पाता नशे की आदत पड़ने का और उसे नहीं छोड़ने का एक बहुत बड़ा कारण है गलत संगत सोबत। कोई नशा छोड़ना भी चाहे तो उसके नशाबाज साथी उसे नहीं छोड़ने के लिए मजबूर कर देते हैं। नशा करने वाला व्यक्ति सबसे अधिक नुकसान अपना ही करता है। वह स्वयं के द्वारा स्वयं का दुश्मन होता है, शरीर रोगग्रस्त और दुर्बल हो जाता है, उम्र कम हो जाती है और जीवन असफलता का केन्द्र बन जाता है। सुखी शान्त और सफल जीवन के लिए नशेबाज व्यक्ति को मन मजबूत करके नशा छोड़ना चाहिए। असम्भव कुछ भी नहीं, नशा छोड़ना भी असम्भव नहीं। जरूरत है दृढ़ संकल्प का। ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने नशा छोड़ा है और आज उनका जीवन सुखी है।

सर्वशक्तिमान भगवान

संग्रहकर्त्ता श्री यश पाल आर्य, जालन्धर

(तर्ज–तुझको पुकारे मेरा प्यार)

तेरी अराधना करूं मैं, हे सच्चिदानन्द भगवान।
तेरी दया सुगंधी बनी रहे, हे प्रभु दया निधान।

1. हमारे दुगुर्णों को परमेश्वर दूर भगाना।
ज्ञान का दीपक दाता हर दिल में जगाना॥
नफरत का हर दिल से मिटा दो नामो-निशान
हे प्रभु दया निधान........
2. वेद ज्ञान की ज्योति हर मन मंदिर में जगा दे।
ऋषिर का संदेश प्रभु घर-घर पहुंचा दे।
तेरे ही चर्चे हों दूर हर लब पर सुबह शाम।
हे प्रभु दया निधान...... ...
3. गोबिन्द गोपाल कोई पुकारे, कोई कहे तुम्हें राम।
मैं अल्पज्ञ जान न पाया तेरे तो हैं असंख्य नाम।
साधकों की साधना तुम्ही हो, हे सच्चिदानन्द भगवान।
हे प्रभु दया निधान........
4. तू हि अल्ला तू हि वाहे गुरु, तुहि राम रहीम।
हम तुम्हें जान पायें पर यकी तूं है सबके करीब।
तेरा यश गाते हुए पावें परम धाम।
हे प्रभु दया निधान.......... .



जल में तू है थल में तू

(तर्ज–यह जिन्दगी उसी की है)

जल में तू है थल में तू कण-कण में तू समा रहा।
नज़र कहीं न आ रहा।
गगन में तू पवन में तू कण-कण में तू समा रहा।
नज़र कहीं न आ रहा.. .....

1. गरज रही है बिजलियां चमक रही है चांदनी।
काली घटायें हैं कहीं चल रही पवन सुहावनी।
भंवरा भी यही गुणगुना रहा।
जल में तू है थल में तू. ....
2. कहीं शीत कहीं गर्म कहीं चमक रही धूप है।
मेरे प्रभु तेरा कोई रंग है न रूप है।
हर तरफ तेरा ही जलवा नजर आ रहा।
जल में तू है थल में तू. . . . . . .
3. हे परम पिता परमात्मा तू ही है सबकी आत्मा।
तुझ से बाहर कुछ भी नहीं यही जमीं यही आसमां।
कली कली पत्ता-पत्ता तेरा ही यश गा रहा।
जल में तू है थल में तू.............

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। दूरभाष : 292926

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–55 अंक : 22 सृष्टि संवत 1960853102, 28 अक्तूबर तथा 4 नवम्बर 2001 दयानन्दाब्द 178

(उ–प्रतिका)
2277. श्री पुस्तकाध्यक्ष जी
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तरप्रदेश)

दूरभाष –

संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है

लेखक—श्री केवी क्याल पी शर्मा, "शर्मा निवास" 120, माडल टाउन, स्ट्रीट नं.-4, अमृतसर

सब गइओ, रावन गइओ जा कहु बहु परवार।

कहु मानक थिर कुछ नही सुपने जिओ संसार॥

इस संसार में कई बड़े-बड़े राजा, महाराजा हुए और वह राज करके चलते बने। वह सदा के लिए अपने राज्य को स्थापित्त नहीं कर सके। इतिहास बताता है कि राजा मुंज लोभ में फंस गया और उसने आदेश किया कि उसके भतीजे भोज को कत्ल कर दिया जाए क्योंकि वह राज गद्दी का हकदार था। परन्तु राजा से संदेश प्राप्त करके, जब जल्लाद उसे मारने लगे तो उसने अपने चाचा मुंज को अपनी अंगुली से खून निकाल करके पत्र लिखा "मान्धाता च महीपति दृगयुगा-लंकार भूतोगता......"

"आदरणीय मेरे पिता के समान चाचा जी मान्धाता जैसे कई एक राजा इस संसार में हुए हैं और अपना राज्य स्थापित करके, इस आत्मे आवर्जनी से रहलित कर गए, लेकिन वह अपने साथ संसार की कोई वस्तु नहीं ले जा सके "न अपि केनापियता वसुमति मुंज त्वया यास्यति" परन्तु मुझे ऐसा नजर आता है कि जिस राज्य गद्दी पर आप बैठे हुए हैं, आप इसको अपने साथ अवश्य ले जाएंगे जब आप इस जहान से कूच करेंगे। भोज के इस पत्र ने राजा मुंज के हृदय में आध्यात्मिक जागृति पैदा कर दी और वह उस अति दुष्टतायुक्त और नीचतायुक्त कर्म करने से बाज आया। संसारी वस्तुएं नश्वर हैं और यह हमारे कब्जे में हमेशा नहीं रहती। एक आदमी जो अति निर्धन है स्वप्न में अपने को माला माल देखता है, परन्तु जब नींद खुल जाती है तो फिर वही अपने आपको कंगाल अनुभव करता है सो संसार एक स्वप्न की नाई है।

उन घटनाओं के लिए जो नहीं घटती हैं उनके लिए चिन्ता करना बुद्धिमत्ता का काम नहीं है। संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है। हमारे बहुत नजदीकी बहुत प्यारे जो रिश्तेदार हैं उन सब को उसी रास्ते से गुजरना है जिस रास्ते से हमारे पूर्वज गुजरे हैं। इस नश्वर संसार से यह पृथकता कोई अनोखी बात नहीं है और न ही इसका कोई उपचार है। जो जन्मा है उसने नश्वर शरीर को अवश्य एक दिन छोड़ना है। परमात्मा की व्यवस्था से इस बात को मस्तिष्क में रखते हुए, मानव को बड़ी ईमानदारी से अपना कार्यक्रम करना चाहिए। निष्काम भाव से काम करें और फल की इच्छा कभी न करें। स्नेहमयी दृष्टि से सब प्राणियों को देखें। शरीर नश्वर (Mortal) है और आत्मा अनश्वर (Immortal) तो फिर नश्वर पदार्थ के नष्ट होने की मानव क्यों चिन्ता करे। उपाधी धारी वैदिक विद्वान् लोग न मरों की चिन्ता करते हैं और न ही जीते हुओं की।

अशोध्यन, अवशोचः त्वम् प्रज्ञावादाश्चं भाषसे।

गतासून, अगतासून च न अनुशोचन्ति पण्डिताः गीता 2/11

भगवान् कृष्ण जी महाराज अर्जुन को गीता का उपदेश देते हैं कि तू उनके लिए शोक करता है जिनके लिए तुम्हें नहीं करना चाहिए और फिर विवेक की बातें करते हो। विवेकी पुरुष जो इस ससांर से चले गए हैं और जो अभी आयु भोग रहे हैं उनके लिए शोक नहीं किया करते।

अनेक जन्मों के पश्चात्, मानव चोला मिला है यह आपको कहीं मोक्ष की प्राप्ति के लिए, सुयोग्य (Capable) बनाता है, जो परिवर्तन मानव चोले में होते रहते हैं उसका मतलब यह नहीं कि आत्मा में भी तबदीलियां होती रहती हैं। कोई भी मानव चोले का अंग स्थिर नहीं है और न ही हमेशा रहने वाला है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नये वस्त्र ग्रहण करता है, इसी तरह मानव शरीर से जुड़ी हुई आत्माएं, पुराने शरीर को छोड़ कर नया शरीर धारण करती हैं। गीता इस बात की साक्षी है :-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।:

तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही॥ गीता 2-22॥

एक माता जिसके पुत्र का देहान्त हो चुका था, महात्मा गौतम बुद्ध के पास आई उनसे दिलजोई (Counsolation) प्राप्त करने के लिए क्योंकि उसका चित्त बहुत अशान्त हो चुका था। महात्मा बुद्ध ने उनके साथ सहानुभूति प्रकट की और कहा कि माता जी पास के गांव में आप जाएं और जिस घर में कोई मृत्यु न हुई हो उस घर से आप सरसों के थोड़े से बीज लाएं। महात्मा जी के कथन अनुसार, वह गांव में गई और हर घर से पूछा परन्तु कोई घर ऐसा नहीं मिला जहां मृत्यु ने अपना डेरा ना जमाया हो। वापिस आकर उसने महात्मा जी को सारी कथा सुनाई। महात्मा जी ने कहा कि यह कुदरत (Nature) का कानून है कि वह परिवर्तन अवश्यमेव धारण करेगी। कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है सिवाय परमात्मा के नाम के और उसके दैवी कार्यक्रम के (Nothing is stable except the nature of God and his Divine performers)

मानव इन्द्रियों का गुलाम बनके, अज्ञानता के कारण सारी आयु भोग-विलास में ही व्यतीत कर देता है और धन-दौलत को इकट्ठा करने में गुजार देता है परन्तु उस परमात्मा के नाम को स्मरण नहीं करता है जिसने उसको इतने कीमती उपहार दिये हैं कि वह गिनती नहीं कर सकता। भोग भुक्तते भुक्तते यह अवस्था हो गई है कि मस्तिष्क भी सोचने की शक्ति से वञ्चित हो जाता है। [illegible] के लिए जवाब [illegible] हैं [illegible] नेत्रों के देखने की शक्ति [illegible] हो गई है कुछ सूझता नहीं ओर मौत का बिगुल भी बजने को है। गुरु नानक साहिब ऐसे मानवों का खण्डन करते हैं और कहते हैं कि जब समय ईश्वरीय स्मरण में लगाने का था, वह भोग-विलास में गंवा दिया जब पाप की गठडी सीस धरी तो फिर सीस पकड क्यो रोता है।

कष्ट क्लेश में सिवाए परमात्मा के, आत्मा का कोई भी मित्र नहीं है, इस संसार में। सब के सब मतलबी यार हैं। परमात्मा, जीव के साथ सदा ही रहता है और इसको ठीक रास्ते पर Righteous Path) चलने की शिक्षा दीक्षा देता रहता है। ससारी लोग माता-पिता, भाई, बहन और दूसरे रिश्तेदार अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए मित्रता करते हैं और स्वार्थयुक्त हैं। याद रखो दैवी ज्ञान और ईश्वर भक्ति स्थिर रहने वाले तत्व हैं। इनका नाश नहीं होता। एक बड़े विद्वान् दार्शनिक ने कहा भी है :-

"The Real Treasures of the world are not the things that perish, but knowledge and love that endure "

संसार के असली खजाने वह नहीं है जो नाश्वान हो, बल्कि, ज्ञान और प्रेम असली खजाने हे जो स्थाई रहते हैं।

शहीद भगत सिंह ने स्थिरता का असली रग रूप अपनी छोटी सी आयु में समझा था। वह खूब समझते थे कि मानव शरीर अस्थाई है और आत्मा अनश्वर है, जैसे कि वेदों में और गुरबाणी में बखान है और जीवन काल में इन्हीं दोनो तत्वों की साधना करते गए। जब उनको जेल की कोठडी (Condemned Cell of the Jail) से फांसी घर की ओर चलाया गया, तो वह हसते-2 चले जा रहे थे उन्हें मौत का कोई भय नहीं था। एक कवि ने कहा है -

"शहीदों की चिताओं पर लगग हर बरस मेले।

वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशान होगा।"

[illegible] शहीदों की चिताओं पर, हर वर्ष बड़े समारोह से शहीदी दिवस मनाते चले जाएगे। यही शहीद पुरुषों की असली विरासत (Legacy) होगी।

॥ ओ३म् ॥

ऋषि-दर्शन

□ ले० स्व. पं. चमूपति जी एम.ए.

जन्म–ऋषि दयानन्द की जन्मभूमि होने का गौरव गुजरात प्रान्त को है। पिता जन्म के ब्राह्मण थे, और भूमिहारी तथा जमींदारी का कार्य करते थे। शिव के बड़े भक्त थे। शिवरात्रि के दिन बालक को मन्दिर में ले गए और उसे उपवास करा जागरण का आदेश दिया। जब बड़े-बड़े शिव भक्त सो गए, यह भावी ऋषि प्रयत्न पूर्वक जागता रहा । गीता के कथनानुसार

या निशा सर्वभूतानां तस्याँ जागर्ति संयमी।

शिवरात्रि–इनके हृदय में भक्ति का नया भाव उदय हुआ था। वे इसी रात में शिव को रिझा देना चाहते थे। नींद आती पर यह पानी के छींटो से उसे दूर भगाते। इतने में एक चूहे ने सचेत किया। उस क्षुद्र पशु को महान् पशुपति के आगे उद्धत होता देख कर विचार आया 'हो न हो, यह शिव नहीं।' दूसरों का व्रत भंग आलस्य ने किया था इनका तर्क ने। तर्क जीवन की भूमिका था, आलस्य मौत की ! शिवरात्रि बीत गई, परन्तु शिवरात्रि की घटना हृदय में गड़ सी गई।

मृत्यु के दृश्य–मूलशंकर के बढ़ते यौवन को दूसरी चेतावनी अपने चाचा और भगिनी की मृत्यु से मिली। चाचा के लाडले थे, उनका वियोग सहा न जाता था। भगिनी को महामारी ने मारा। इन दो मृत्युओं का प्रभाव एक सा नहीं हुआ। प्रथम मृत्यु पर आश्चर्य चकित रहे और पाषाण हृदय की उपाधि पाई, दूसरी पर बिलख-बिलख कर रोए।

शिक्षा और गृहत्याग–मूल शंकर की शिक्षा का प्रबन्ध इनके बाल्यकाल मे किया गया था। इन्हें यजुर्वेद कण्ठस्थ था तथा और भी बहुत कुछ पढा लिखा करते थे। पिता को पता लगा कि बालक पर वैराग्य का भूत सवार है। महात्मा बुद्ध के पिता की तरह इन्हें विवाह की डोरों में फांसने की ठानी परन्तु विवाह से पूर्व ही मूल शंकर घर से लुप्त हो गए।

वन यात्रा–मूलशंकर की वनयात्रा की कथा बहुत लम्बी है। पहले तो किसी ने ठग लिया। इन्हें शुद्ध चेतन नाम देकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनाया। फिर वह सन्यासी हुए और दयानन्द नाम पाया । योगियों के पास योग साधन सीखते रहे। समाधि का आनन्द लाभ किया। गिरि-गुहाओं में घण्टों बिताए। पुस्तकें खोजीं और उनका अध्ययन किया। मैदानों में सोए, वृक्षों की शाखाओं मे विश्राम किया। मूल कन्द खाकर भूख मिटाई। सार यह कि पूर्ण वनचर का सा जीवन व्यतीत किया।

गुरु विरजानन्द के चरणों में–36 वर्ष से ऊपर के थे जब दंडी विरजानन्द के द्वार पर विद्या-वित्त के भिक्षु हुए। वहां पहली भेंट यह धरनी पड़ी कि जो पुस्तकें पढ़ी हैं सब यमुना मैय्या के अर्पण करो। हाथ-लिखे पुस्तक बड़ी कठिनता से हाथ आए थे। पर गुरु-मुख का उपदेश भी तो सुलभ न था। जी कड़ा किया और गुरु की आज्ञा पालन की। आदर्श शिष्य आदर्श गुरु के चरणों में आदर्श शिक्षा प्राप्त कर रहा था। नित्य प्रति यमुना के जल से गुरु जी को स्नान कराते। कुटी में झाड़ू देते, गुरु की सेवा सुश्रूषा करते। गुरु ने एक दिन डण्डे से ताड़ना की, यतिवर ने गुरु-गौरव का प्रसाद मान स्वीकार की। अन्त में दीक्षान्त का समय आया। निर्धन ब्रह्मचारी गुरुदक्षिणार्थ लौंगो की भीख मांग लीया। हा दैव ! स्वीकार न हुई। 'क्या भेंट धरूं ?' 'जो तुम्हारे पास हो'। मेरे पास मेरे अपने सिवा कुछ नहीं। तो अपना आप भेंट करो। भेंट धरी गई। गुरु ने अंगीकार की। वही अपने आपकी भेंट मानो आर्य समाज की स्थापना का प्रथम बीज थी । दयानन्द विरजानन्द का हुआ और विरजानन्द के हाथों सारे संसार का।

पाखण्ड-खण्डनी–अब पुष्कर के मेले में दयानन्द पहुंचता है, हरिद्वार में कुम्भ के महोत्सव में दयानन्द गरजता है। वेद से उल्टे जाते वैदिक धर्मियों को वेद के पथ पर लाना चाहता है। एक ओर सारी भ्रान्त आर्य जाति है, दूसरी ओर अकेला दण्डधारी दयानन्द। 'पाखण्ड खण्डनी पताका' के नीचे खड़ा कौपीनधारी ब्रह्मचारी आते जाते के लिए अचम्भा था। लोग कहते थे, गंगा के प्रवाह को रोकने का सामर्थ्य इस में कहां ? स्वयं भगीरथ आएं तो न रोक सकें।

तपस्या की [illegible]–ऋषि गरज गरज कर हार गए। गंगा बहती गई और उसके साथ हिन्दू भ्रान्तियों का प्रवाह भी बहता गया। ऋषि ने डेरा डण्डा उठाया और वनों की राह ली। पूर्ण वीतराग होने का व्रत किया कि कौपीन के अतिरिक्त कोई चीज पास न रखेंगे। महाभाष्य की एक प्रति पास थी, सो भी गुरुवर की सेवा में भेज दी। इसी कौपीन में दयानन्द सोते, इसी में फिरते। नहाकर इसे सूखने को डालते और स्वयं पद्मासन लगाकर बैठे रहते। हिमाच्छन्न नालों में क्या और जलती रेतों पर क्या दयानन्द का यही पहरावा रहा।

शास्त्रार्थ–कोई दो वर्ष दयानन्द ने इस प्रकार तितिक्षा में काटे। फिर प्रचार में प्रवृत्त हुए। शास्त्रार्थ पर शास्त्रार्थ करते चले गए। हीरा वल्लभ नाम के एक प्रौढ़ पण्डित ने सप्ताह भर संस्कृत में शास्त्रार्थ किया। उनका संकल्प था कि ऋषि से मूर्ति को भोग लगवा कर उठूंगा। ऋषि का पक्ष सुना तो ठाकुर जी को उठा कर गंगा में प्रवाहित किया और मुक्तकंठ से माना कि मूर्ति-पूजा शास्त्र विरुद्ध है।

ऋषि के उपदेश में जादू था। कंठियां उतरवा दी, मूर्तियां फैंकवा दी, तिलक छाप की रीति मिटा दी। गायत्री का प्रचार किया। सन्ध्या लिख लिख कर बांटी। स्त्रियों को मन्त्रजाप का अधिकार दिया। जाटों राजपूतों को यज्ञोपवीत पहनाए।

आर्य धर्म की जय–चान्दापुर के शास्त्रार्थ में ऋषि ने आर्य जाति के इतिहास में एक नए युग का बीजारोपण किया। आर्य आर्य तो आपस में तो विवाद करते ही थे। मुसलमान, ईसाइयों से इनकी कभी न ठनी थी। इससे पूर्व प्रथा यह थी कि अहिन्दू हिन्दुओं का खण्डन करें और हिन्दू चुप रह कर सहन करते जाएं। आर्य धर्म आटे का दिया था। कच्चा धागा था, ऋषि ने इस भ्रान्ति को मिटा दिया। तीन दिन बाद शास्त्रार्थ होना था जिस में मौलवियों और पादरियों के विरुद्ध ऋषि ने आर्य धर्म का पक्ष लेना स्वीकार किया था। एक ही दिन में ऋषि ने आर्य धर्म की स्थापना ऐसी दृढ़ता से की कि दूसरे दिन वहां प्रतिपक्षियों का चिन्हमात्र भी शेष न था। आर्य धर्म की यह विजय धर्म के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

अन्य मत वालों पर कृपा–ऋषि ने ईसाइयों को निमन्त्रण दिया, मुसलमानों को निमन्त्रण दिया, कि आर्य धर्म को परखो और स्वीकार करो। इस निमन्त्रण में मोहनी शक्ति थी। सर सैय्यद ऋषि के चरणों में आते। पादरी स्काट ऋषि के दर्शन करते। पादरी को ऋषि 'भक्त स्काट' कहते। 'भक्त' की अनुपम उपाधि किसी आर्य समाजी को न मिली, एक ईसाई ऋषिभक्त का यह अपूर्व प्रसाद ले गया। मुहम्मद उमर जन्म का मुसलमान था। उसे ऋषि ने अपने हाथों आर्य बनाया और अलखधारी नाम रखा। सारे संसार के लिए आर्य धर्म का द्वार खोलने का श्रेय वर्तमान युग में ऋषि दयानन्द ही को है। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लवैटस्की अमेरिका से चल कर ऋषि दयानन्द के चरणों में आए। अपने पत्रों में ऋषि को 'गुरुदेव' कह कर सम्बोधित करते थे।

बन्धन काटने वाले–एक दिन एक ब्राह्मण ने पान का बीड़ा ला दिया। चबाने से प्रतीत हुआ कि इसमें विष है। ऋषि उठे, गंगा पास थी, उस पर जाकर न्योली कर्म किया और विष निकाल दिया। सैय्यद मोहम्मद तहसीलदार था। उसने दोषी को पकड़वाया और दयानन्द के दरबार में ले गया। ऋषि से यह सहा न गया कि किसी को उनके कारण बन्धन में डाला जाए। क्या दया-पूर्ण उत्तर दिया। मेरा काम तो बन्धन काटना है, बन्धन बढ़ाना नहीं।

बाल ब्रह्मचारी का बल–ऋषि जिस धर्म का प्रचार करना चाहते थे वह उनके जीवन में मूर्तरूप में विद्यमान था। दयानन्द का सबसे बड़ा बल ब्रह्मचर्य बल था। बाल ब्रह्मचारी को अधिकार था कि व्यभिचारियों को डांटे। विक्रम सिंह ने ब्रह्मचर्य बल का प्रमाण चाहा तो उसकी दो घोड़े की गाड़ी हाथ से पकड़ कर रोक दी। साईस बल लगाता है, घोड़े यत्न करते हैं, परन्तु गाड़ी हिलने में नहीं आती। पीछे की ओर देखा ऋषिवर गाड़ी रोके खड़े हैं। शरीर में तेज बरसता है। मुख कान्ति टकटकी लगा कर देखी नहीं जाती।

(शेष पृष्ठ 4 पर)

सम्पादकीय.....

गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय के नए विजिटर जस्टिस श्री जयभूषण जी गर्ग चुने गए

20 अक्तूबर 2001 को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की सर्वोच्च सीनेट की बैठक में प्रो. शेर सिंह के स्थान पर पंजाब हरियाणा हाई कोर्ट के रिटायर्ड जज श्री जयभूषण जी गर्ग को विश्वविद्यालय का नया विजिटर चुना गया। इस सम्बन्ध में 21 अक्तूबर को दैनिक अमर उजाला हरिद्वार में और 24 अक्तूबर को दैनिक पंजाब केसरी में जो समाचार छपा है वह नीचे दिया जा रहा है।

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार की भूमि के संबंध में सर्वोच्च सीनेट की बैठक सम्पन्न

कुलपति समेत ग्यारह व्यक्तियों के विरुद्ध एफ.आई.आर. दर्ज करने का फैसला

अमर उजाला ब्यूरो, हरिद्वार 20 अक्तूबर व पंजाब केसरी जालन्धर, 23 अक्तूबर (खुराना) : गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की सर्वोच्च सीनेट ने कुलपति समेत उन सभी 11 अधिकारियों के खिलाफ एफ.आई.आर. दर्ज कराने का निर्णय लिया है जो भूमि विक्रय में शामिल हैं। विक्रय में शामिल विजिटर प्रो. शेर सिंह के स्थान पर पंजाब हरियाणा हाईकोर्ट के सेवानिवृत्त जस्टिस जय भूषण गर्ग को विश्वविद्यालय का नया विजिटर चुना गया है। सीनेट ने कुलपति डा. धर्मपाल के त्यागपत्र पर इसलिए विचार नहीं किया ताकि उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई हो सके।

इस महत्वपूर्ण बैठक में यू.जी.सी. के प्रतिनिधि एम.एम. शकधर और भारत सरकार के प्रतिनिधि अशोक चतुर्वेदी ने भी भाग लिया। कुलपति की नियुक्ति करने का अधिकार चूंकि विजिटर को होता है अत: भूमि घोटाले मे लिप्त कुलपति डा. धर्मपाल के संबंध में निर्णय नए विजिटर जस्टिस जय भूषण गर्ग पर छोड़ दिया गया है।

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में बीस करोड़ की जमीन चुपचाप बेचने पर कुलाधिपति श्री हरबंस लाल जी शर्मा (जालन्धर) की अध्यक्षता में हुई बैठक में जम कर हंगामा हुआ। सीनेटर देवराज, राजेन्द्र नाथ पांडेय, डाक्टर अम्बुज शर्मा, कौस्तुभ पांडेय, महेश विद्यालंकार, राम मेहर एडवोकेट और देवेन्द्र शर्मा ने जम कर प्रहार किए। बचाव पक्ष में केवल श्रीमती प्रभात शोभा और स्वामी ओमानन्द ही नज़र आए। वक्ताओं ने मांग की कि कुलपति डा. धर्मपाल का त्यागपत्र स्वीकार करने की बजाय उन्हें बर्खास्त कर दिया जाए।

बैठक में जमीन बेचने वालों के खिलाफ मुकदमा चलाने और हर सूरत में बेची गई जमीन वापिस लेने का फैसला हुआ। कुलसचिव को निर्देश दिया गया कि वे विजिटर और एक अधिवक्ता की सलाह लेकर भूमि विक्रेताओ के खिलाफ कानूनी कार्रवाई तत्काल शुरू करें। कुलाधिपति हरबंस लाल शर्मा (जालन्धर) ने कहा कि भूमि विक्रेताओं ने खरीददार से जितना कमीशन लिया है, वह विश्वविद्यालय को लौटा दें। खरीदार को बाकी पैसा वे चुका देंगे। श्रीमती प्रभात शोभा और स्वामी ओमानन्द ने जब पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा जालन्धर के अश्विनी कुमार पर भी भूमि विक्रय के आरोप लगाए तो सीनैटरों ने उन्हें घेर लिया। भारी शोर-शराबे के बीच विक्रय में शामिल दोनों आर्य नेता बैठक से उठ कर चले गए। महेश विद्यालंकार, वेदव्रत शास्त्री और देवेन्द्र शर्मा ने प्रो. शेर सिंह पर अत्यंत तीखी टिप्पणियां कीं। सीनेट बैठक मे 33 सदस्यों ने भाग लिया। हरियाणा के रामदेव ने संविधान में संशोधन की बात कही। बैठक के उपरान्त कुलाधिपति हरबंस लाल शर्मा, नए विजिटर और अन्य सीनेटर धरनास्थल पर आए। कुलाधिपति ने घोषणा की कि उन्हें चाहे जो भी कुर्बानी देनी पड़े, जमीन वापिस ली जाएगी। कुलाधिपति की अपील पर शिक्षकों एवं कर्मचारियों ने आन्दोलन समाप्त करने की बात स्वीकार कर ली है।

सीनेट की बैठक में कुलाधिपति ने सात नए मनोनीत सदस्यों प्रेम भारद्वाज, सुधीर कुमार शर्मा, श्रीमती राजेश शर्मा, डा. विनय कुमार, एडवोकेट मनीष सहगल, अतुल मगन और विजय साथी का स्वागत किया। यू.जी.सी. के एम.एल. शकधर और भारत सरकार के अशोक चतुर्वेदी का भी स्वागत किया गया। सिंडीकेट के 4, शिक्षा पटल के 5, वित्त समिति के एक सदस्य को चुनने और सीनेट का कोषाध्यक्ष मनोनीत करने का अधिकार कुलाधिपति को दिया गया। नए विजिटर के नाम का प्रस्ताव प्राचार्य स्वतंत्र कुमार ने रखा। अनुमोदन स्वामी ओमानन्द, देवेन्द्र शर्मा व देवराज द्वारा किया गया।"

इस अवसर पर गुरुकुल के कुलाधिपति सभा प्रधान श्री पं हरबंस लाल जी शर्मा ने संकल्प किया है कि मैं यह भूमि गुरुकुल को वापिस दिला कर ही रहूंगा, इसके लिए प्रयास जारी है। कानूनी तौर पर भी पूरी पैरवी की जा रही है। हम चाहते हैं कि गुरुकुल कागड़ी विश्वविद्यालय का पहले की भान्ति सारे भारत में ही नहीं सारे संसार में नाम रोशन हो परन्तु यह कार्य तभी हो सकेगा जब आर्य जनता भी इसमें कुलाधिपति श्री हरबंस लाल जी शर्मा को अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करेगी। पण्डित जी पिछले कई वर्षों से गुरुकुल की उन्नति के लिए प्रयास कर रहे हैं परन्तु कुछ न कुछ समस्याएं उनके सामने आती रही जिससे इस कार्य में रुकावट पड़ रही है, यदि आर्य जनता, गुरुकुल व विश्वविद्यालय का स्टाफ व कर्मचारी तथा सभी अधिकारी उन्हें अपना सहयोग प्रदान करेंगे तो वह शीघ्र ही गुरुकुल का काया कल्प कर सकते हैं। सारे भारत वर्ष में आर्य-समाज का यह एक मात्र विश्व विद्यालय है। इसकी उन्नति और रक्षा के लिए प्रत्येक आर्य समाजी को आगे आना चाहिए और अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के स्वप्नों को साकार करना चाहिए।

—देवेन्द्र नाथ शर्मा

दीपावली का पर्व मनाएं

हमारे देश में कई पर्व मनाए जाते हैं उनमें दीपावली का पर्व सबसे महान पर्व है। चिरकाल से प्रति वर्ष हम इस पर्व को मनाते आ रहे हैं। इसका सम्बन्ध मर्यादा पुरुषोत्तम राम से भी जोड़ा जाता है कि लंका पर विजय प्राप्त करके दुष्ट रावण का वध करके जब राम वापिस अयोध्या में आए थे तो उस दिन उनके अयोध्या में आने पर दीपमाला की गई थी खुशियां मनाई गई थीं, मिठाईयां बांटी गई थी तभी से इस दिन सारे देश में दीपमालाएं की जाती हैं।

यह पर्व बहुत पुराना है । अनुसन्धान कर्त्ताओं का कहना है कि यह पर्व रामायण काल में भी मनाया जाता था और उससे पहले भी मनाया जाता था। यह पर्व बहुत प्राचीन है क्योंकि इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से नहीं है इसका सम्बन्ध भारतीय संस्कृति से है, ऋतु परिवर्तन से है, कृषि से है।

यह पर्व वर्षा ऋतु के अन्त में तथा शरद् के आरम्भ मे आता है। इस पर्व के अवसर पर नए अन्न धान का आगमन होता है, धान, मकई, जवार, बाजरा, तिल, माह, मूंग आदि की फसले तैयार होती हैं। हमारा देश कृषि प्रधान देश है इसलिए इस अवसर पर सभी लोग प्रसन्नता प्रकट करते हैं। वर्षा ऋतु के बाद घरों की लिपाई, पोताई, सफाई आरम्भ हो जाती है।

कार्तिक वदी अमावस्या की इस अन्धेरी रात के आने पर सभी घरो मे दीप मालाओं से प्रकाश किया जाता है। अन्धकार को प्रकाश मे बदलने का प्रयास किया जाता है खुशिया मनाते हुए मिठाईयां बांटी जाती हैं। लक्ष्मी पूजन अर्थात् लक्ष्मी का सत्कार करने का निश्चय किया जाता है। धन को लक्ष्मी कह कर पुकारा जाता है। धन को अच्छी जगह खर्च करना ही उसका सत्कार है। हमारे देश के लोग धन को ठीक जगह उपयोग करने का निश्चय किया करते थे। परन्तु आज कल कई लोग इस दिन लक्ष्मी-धन का जूआ आदि खेल कर, शराब आदि नशीले पदार्थ पीकर व खाकर अपमान करते हैं, परन्तु प्राचीन काल में ऐसा नहीं होता था।

यह पर्व हर्ष और उल्लास का पर्व है, मिठास बाटने का प्यार और स्नेह का पर्व है। कड़वाहट को दूर भगाने का पर्व है, एक दूसरे को गले मिलने का पर्व है। पवित्रता शुद्धता का पर्व है। अपने घरों के साथ साथ अपने मनों को भी हम पवित्र बनाए। यह प्रकाश का पर्व है। इस ससार से अज्ञान का अन्धकार मिटाए, महर्षि दयानन्द की भान्ति ज्ञान का प्रकाश सारे ससांर मे फैलाए। आज के दिन महर्षि दयानन्द जी ने अपने नश्वर शरीर को सदा के लिए छोडा था उनका निर्वाण दिवस मनाते हुए हम उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उनके बताए हुए रास्ते पर चले। उनके अधूरे कार्यों को पूर्ण करने का व्रत ले यही इस पर्व का सन्देश है।

—धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

(पृष्ठ 2 का शेष)

देवी पूजा–ब्रह्मचारी है और और देवियों का आदर करता है। एक नन्ही लड़की बालकों के साथ खेल रही है। ऋषि देखते ही सिर झुका देते हैं। देखने वालों को धोखा है कि सामने खड़े वृक्ष को प्रणाम किया है, देवता-निन्दक को देवता की परोक्ष शक्ति ने देवता-पूजक बनाया है। ऋषि के मुख से सुनना ही था कि 'वह देखो ! वह नन्ही बालिका मूर्त मातृ-शक्ति है,' बस! सभी के मुख से निकला 'धन्य'! धन्य!! देवियों के सत्कार-स्वरूप बाल ब्रह्मचारी दयानन्द! धन्य । इस एक घटना मे दयानन्द के देवियों के प्रति सम्पूर्ण भावों का मूर्त चित्र चित्रित है। देवियों की शिक्षा हो और शिक्षा के साथ पूजा हो, यह दो सूत्र ऋषि के देवी सम्बन्धी सिद्धान्त का सार है।

अछूत कोई नहीं–दयानन्द की दृष्टि मे कोई अछूत न था। उमेदा नाई खाना लाया तो भरी सभा में स्वीकार किया। भक्त की भावना गेहूं के आटे मे गुंधी थी, जो भक्त वत्सल की दृष्टि मे लाख जन्माभिमानियों की अपेक्षा अधिक सम्मान के योग्य थी। कसाई (मजहबी सिख) को किसी ने व्याख्यान सभा से हटाया तो स्वामी जी ने कहा' इसे नहीं हटाओ ! मेरा व्याख्यान कसाईयों के लिए भी है।'

क्या आप जानते हैं कि सब से पहला मलकाना रुस्तम सिंह किन शुभ कर कमलों द्वारा पुनीत यज्ञोपवीत से अलंकृत हुआ था ? ऋषि दयानन्द की दयाबल-वाली भुजाओं ने उसे अस्पृश्यता की गहरी गुहा से उठाया और आर्यत्व के पुण्य शिखर पर बिठाया था।

गो रक्षा–ऋषि का करुणाक्षेत्र मनुष्य जाति तक परिमित नहीं था। प्राणिमात्र दयानन्द की दया के पात्र थे। ऋषि ने गोरक्षा के लिए भरसक प्रयत्न किया। एक निवेदन पत्र पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सब के हस्ताक्षर कराए कि गो-हत्या राजनियम से बन्द की जाए। ऋषि ने अपने नाम को सार्थक किया, जब दातारपुर के बाहर सड़क पर जाते हुए एक बैल गाड़ी कीचड़ में धसी देखी। गाडीवान का और बस न चलता था, बैलों ने बहुतेरी गर्दिने हिलाई, कन्धों पर बहुतेरा दबाव डाला, पर गाड़ी न खिची। गाड़ीवान हार कर रह गया। ऋषि को अधिक दया गाड़ीवान पर आई या बैलों पर-यह कहना कठिन है। दोनों के हृदय कृतज्ञताभार से आभारी थे जब राजों महाराजाओं के गुरु लोकमान्य दयानन्द ने स्वयं कीचड़ में उतर बैलों का जुआ अपनी गर्दन पर डाला और जो भार दो बैलों से न खींचा गया था, अकेले अपने भुजाबल से कीचड़ से बाहर कर दिया।

ऋषि की लीला बहुपक्षी लीला है। जिस पक्ष पर दृष्टि डालो वही कहता है, मैं सबसे मीठा हूं। वस्तुत: गुड़ जहां से खाओ मीठा लगता है। इस लीला के अवसान में भी वह महत्व है जो और मनुष्यों के जीवन में नहीं।

प्रचार की धुन–ऋषि दयानन्द ने अन्तिम यात्रा जोधपुर की ओर की। इस समय तक ऋषि ने बीसियों आर्य समाजों की स्थापना कर ली थी। पंजाब, पश्चिमोत्तर (वर्तमान संयुक्त) प्रान्त, राजपूताना, यह सब प्रदेश चरणों में सिर झुका चुके थे। कितने राजपूत नरेश शिष्य बन चुके थे। जोधपुर में भी महाराज को बुलाया था। चरण-सेवकों ने विनय की, "वहां के लोग क्रूर स्वभाव के पुरुष हैं, आप की शिक्षा का गौरव नहीं समझेंगे। संभव है, प्राणों के वैरी हो जाएं।" दयावीर दयानन्द ने उत्तर दिया-"अभी तो जाता हूं क्योंकि बिगड़ों के सुधार की और अधिक आवश्यकता है। रही मेरे प्राण-घात की बात, सो तो यदि मेरी उंगली-उंगली से बत्ती का काम लिया जाए, और इसी से किसी को सीधा रास्ता सूझ जाए तो मेरे जीवन का प्रयोजन इसी बात में सिद्ध हो जाएगा।" कहने की आवश्यकता नहीं कि ऋषि के पहुंचते ही राजा चरणो का भक्त हो गया, प्रजा अनुराग-रक्त हो गई। प्रतिदिन आनन्दवर्षा होने लगी।

निर्भयता–एक दिन राजा ने महाराज को अपने डेरे पर निमंत्रित किया। ऋषि बिना सूचना दिए जा पहुंचे। राजा के दरबार में उसकी प्यारी वेश्या नन्ही जान आई हुई थी। राजा खिसियाने हुए। उसे पालकी में बैठा कर उठवा तो दिया परन्तु ऋषि से आंखें चार न हो सकीं। ऋषि यह कुत्सित दृश्य देख कर लाल हो गए। गरज कर कहा- सिंहों की गोद में कुत्तियों का क्या काम ?

दया-आदर्श–यह निर्भयता ऋषि के लिए विष सिद्ध हुई। विरोधियों ने दल बना लिया। कुछ दिनों ही में जगन्नाथ रसोइए को घूस देकर वीतराग योगीराज को विष दिलवा दिया। ऋषि ने उस समय भी अपनी स्वाभाविक दया से काम लिया । जगन्नाथ ने स्वयं माना, 'ऋषिवर ! यह अपराध मुझ से हुआ है।' ऋषि ने उसे धन दिया और आग्रह-पूर्वक कहा कि शीघ्र आंगल राज्य से बाहर हो जाओ जिससे तुम्हारे प्राणों पर संकट न आए।

विष का प्रभाव धीरे-धीरे हुआ। दस्त आने लगे। पेट का शूल बढ़ता गया। बार-बार मूर्छा होने लगी। महीना भर यह क्लेश रहा। वैद्य चकित थे कि इस वेदना में ऋषि संतोष-पूर्वक जी रहे हैं। यह ऋषि का चमत्कार था।

देहावसान–जोधपुर से आबू और आबू से अजमेर गए। दीवाली की सायंकाल को जहां घर बार गली बाजार में दीपक जलाए गए यह जाति-कुल-दीप, संसार-समुद्र का ज्योति-स्तम्भ देखते-देखते जगमगाती चकाचौंध से कुंध्याती रात्रि में अन्तर्हित हो गया। देखने वालों ने देखा कि बुझते दीपक ने संभाल लिया। मृत्यु समय समीप आया देख कर ऋषि सचेत हुए। क्षौर कराया, शरीर पोंछवाया, चनों का रस लिया, प्रभु का भजन, मन्त्रों का पाठ करते रहे। अन्त में 'परमेश्वर! तैंने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो।' यह शब्द कहे और अत्यन्त आनन्द पूर्वक प्राण त्याग दिए।

देह छोड़ते समय दयानन्द के मुख पर एक विचित्र कान्ति थी। पूर्ण किए कर्त्तव्यों का सन्तोष छाती को उभारे हुए था। जगज्जनक की गोदी में परम पिता का प्यारा पुत्र लालायित हृदय साथ लिए लौट रहा था। पिता की आज्ञा का पालन किया है, यह आल्हाद था, शान्ति थी, सन्तोष था।

दृष्टि रासायण–जीवन प्रचार में अर्पण हुआ था, मरण भी प्रचार का साधन हुआ। गुरुदत्त एम.ए. पंजाब यूनिवर्सिटी में प्रथम रहे थे, उनकी यह ऋषि से प्रथम भेंट थी। बातचीत नहीं हुई, शंका-समाधान नहीं हुआ, प्रश्नोत्तर का अवसर नहीं मिला, परन्तु चचंल, शंका का अवतार तर्क-मूर्त, गुरुदत्त ऋषि पर आसक्त है। उसे कोई सन्देह नहीं रहा, क्षणमात्र में उसकी काया पलट हो गई है। एक दृष्टि ने कुछ का कुछ कर दिया।

ऋषि की दृष्टि रसायण है। आओ ? उस दृष्टि के दर्शन करो। खोटा सिक्का है ? लाओ, खरा सोना हो जाएगा। ऋषि के जीवन के अध्ययन से शिक्षा लाभ करो। उनके ग्रन्थों को पढ़ो और उनके जीवन का मिलान उनके लेखों से करो । भृर्तहरि ने कहा है-

मनस्येकं वचस्येकं
कर्मण्येकं महात्मानाम्।

यह वाक्य ऋषि दयानन्द के महत्व का सार है।

अमर दयानन्द–आज केवल भारत ही नहीं, सारे धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक संसार पर दयानन्द का सिक्का है। मतों के प्रचारकों ने अपने मन्तव्य बदल लिए हैं, धर्म पुस्तकों के अर्थों का संशोधन किया है, महापुरुषों की जीवनियों में परिवर्तन किया है। ऋषि का जीवन इन जीवनियों में बोलता है, ऋषि मरा नहीं करते, अपने भावों के रूप में जीते हैं । दलितोद्धार का प्राण कौन है ? पतित पावन दयानन्द। समाज सुधार की जान कौन है ? आदर्श सुधारक दयानन्द। शिक्षा प्रचार की प्रेरणा कहां से आती है ? गुरुवर दयानन्द के आचरण से । वेद का जय जयकार कौन पुकारता है ? ब्रह्मर्षि दयानन्द । देवी सत्कार का मार्ग कौन दिखाता है ? देवीपूजक दयानन्द। ब्रह्मचर्य का आदर्श कौन है ? बालब्रह्मचारी दयानन्द । गोरक्षा के मिष से प्राणिमात्र पर करुणा दिखाने का बीड़ा कौन उठाता है ? करुणानिधि दयानन्द॥ आओ। हम अपने आप को ऋषि के रंग में रंगे। हमारा विचार ऋषि का विचार हो, हमारा आचार ऋषि का आचार हो, हमारा प्रचार ऋषि का प्रचार हो। हमारी प्रत्येक चेष्टा ऋषि की चेष्टा हो। नाड़ी-नाड़ी से ध्वनि उठे :-ऋषि दयानन्द की जय।

समाज का विकास और आर्य समाज आन्दोलन

☐ ले० डा. [illegible] द्विवेदी, प्रवक्ता समाज शास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, जालौन (उ.प्र.)

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत का अंग्रेजों द्वारा धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक शोषण अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था। भारतीय समाज दोहरे संकट से गुजर रहा था। एक इसकी स्वयं की दयनीय दशा और दूसरा इस्लाम तथा ईसाइयत का तेजी से बढ़ता हुआ सर्वग्रासी रूप। धर्म का वास्तविक स्वरूप लुप्त हो चुका था। पाखण्ड, आडम्बर, अंधविश्वास आदि ने धर्म को आच्छादित कर लिया था। धर्म के नाम पर पापाचार पनप चुके थे। जात-पात, छूआछूत, बाल-विवाह, दहेज प्रथा जैसी कुरीतियां समाज को जर्जर कर रही थीं। सती प्रथा तथा बहुविवाह, दहेज जैसी क्रूरताएं समाज में विद्यमान थीं। समाज में नैतिक अध:पतन हो जाने के कारण स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय थी।

राजनीतिक स्वतन्त्रता के अभाव में तत्कालीन आर्थिक स्थिति जर्जर हो गई थी। अंग्रेजों की शोषण नीति के फलस्वरूप भारतीय कृषि व्यवस्था और कुटीर उद्योग धंधे नष्ट हो गए थे। आर्थिक कठिनाई से त्रस्त निम्न वर्ग को ईसाई बनाया जा रहा था।

ऐसे समय में पुनर्जागरण की लहर समाज में आयी। पुनर्जागरण का अर्थ है कुछ समय निद्रा के उपरान्त राष्ट्र के मानस एवं आत्मा का जाग्रत होना। धार्मिक और सुधारवादी आन्दोलनों मे ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज एव थियोसोफिकल सोसाइटी प्रमुख है। राजा राममोहन राय ने पर्दाप्रथा, बहु-विवाह, स्त्रियों में अशिक्षा, सती प्रथा आदि कुरीतियों के निराकरण का प्रयास किया। प्रार्थना समाज ने अवतारवाद, बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, पुजारियो की सत्ता के विरोध के साथ-साथ धार्मिक एव सामाजिक सुधार का प्रयत्न किया जिससे हिन्दू समाज जागृत हो सके। रामकृष्ण परमहंस ने सभी धर्मों को समान बताकर धार्मिक एवं सामाजिक सुधार का प्रयत्न किया जिससे हिन्दू समाज जागृत हो सके। राम कृष्ण परमहंस ने सभी धर्मों को समान बताकर धार्मिक समन्व्यवाद पर बल दिया। इसके पश्चात् थियोसोफिकल सोसाइटी ने भारतीय संस्कृति के गौरव ग्रन्थों, वेदों, उपनिषदों के अध्ययन एवं धर्माचरण की प्रेरणा दी।

धार्मिक नवजागरण का सबसे प्रभावशाली योगदान आर्य समाज द्वारा संचालित किया गया। आर्य समाज ने निराकार ब्रह्म की उपासना एवं भारतीय संस्कृति पर आधारित शिक्षा व्यवस्था सुलभ कराने पर बल दिया। धार्मिक पुनर्जागरण में आर्य समाज आन्दोलन ने महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किए। स्वामी दयानन्द सरस्वती उस सुधार और पुनर्गठन के समर्थक थे। जो विभिन्न धर्मों के समन्वय पर आधारित न होकर शुद्ध हिन्दू परम्पराओं की मान्यताओ पर आधारित थी। स्वामी दयानन्द का उद्देश्य धर्म निरपेक्षता अथवा ईसाई, इस्लामी धर्मो की मान्यताओं में एकता की खोज न करके वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करना है। स्वामी जी का विचार था कि हिन्दू धर्म में नवजीवन तभी आ सकता है जब समाज मे व्याप्त रूढ़ियो अंधविश्वासों तथा निर्मूल परम्पराओं को समाप्त करके वैदिक धर्म की स्थापना की जाए।

महर्षि दयानन्द ने हिन्दू समाज को संगठित करने का प्रयास किया। महर्षि दयानन्द के प्रेरणास्रोत वेद एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थ थे। उन्होंने वेदों को समस्त ज्ञान का भण्डार सिद्ध किया और वैदिक ज्ञान के आलोक में भारतीय जनमानस में व्याप्त अज्ञानजनित अधकार को दूर करने का सार्थक प्रयास किया। स्वामी दयानन्द मुख्यत: धार्मिक सुधारक थे। उन्होंने स्त्री और शूद्रों को वेदाध्ययन का अधिकारी बनाया और निम्न वर्ग पर हो रहे अत्याचारो की निदा की। अपने वाणी, लेखनी, व्याख्यान, शास्त्रार्थ द्वारा हिन्दू समाज को जागृत करने का प्रयास किया।

आर्य समाज आन्दोलन ने व्यापक आन्दोलन का रूप लिया और समाज को नवीन प्रकाश प्रस्तुत किया। महर्षि दयानन्द के अनुसार धर्म का अभिप्राय कर्मकाण्ड के जटिल क्रिया जाल का पालन ही नहीं अपितु धर्म उन उदात्त गुणो की समष्टि का नाम है जो मनुष्य के नैतिक सवर्धन तथा आध्यात्मिक उत्थान मे महायक होते हैं। स्वामी दयानन्द ने वेद को धर्म का मूलाधार बताया है। अपने ग्रन्थों द्वारा पाखण्ड एवं अंधविश्वास दूर करने का प्रयत्न किया।

आर्य समाज के प्रचार-प्रसार मे अनेक वितराग तपस्वी, सन्यासियों विद्वानों और उत्साही प्रचारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज आर्य समाज की अनेक शाखाएं वैदिक संस्कृति का प्रचार कर रही है।

सामाजिक क्षेत्र में स्वामी दयानन्द और आर्य समाज आन्दोलन का अत्याधिक महत्वपूर्ण योगदान है। तत्कालीन समाज में अल्पायु में बालक व बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता था। महर्षि दयानन्द ने ब्रह्मचर्य पर बल दिया। विवाह की आयु न्यूनतम 24 वर्ष पुरुष एवं 16 वर्ष कन्या निर्धारित की। स्वस्थ लोगों में विवाह से उत्तम सन्तान प्राप्त होती है। महर्षि ने बल एवं कन्या के गुणों का विधान बताया है।

आर्य समाज ने विधवाओं के लिए विधवाश्रम, अनाथों के लिए अनाथालय की स्थापना को। तत्कालीन समाज में व्याप्त भूत प्रेत की पूजा, जादू टोने में विश्वास, संतान प्राप्ति के लिए विविध कर्म, तंत्र, मंत्र आदि अन्धविश्वासों को महर्षि ने दूर करने का प्रयास किया। महर्षि ने जाति प्रथा का विरोध करते हुए गुण, कर्म के आधार पर जाति प्रथा निर्धारण किया। दलितों के उद्धार के लिए दलितोद्धार सभा, अछूतोद्धार सभा, दलितोद्धार संगठन आदि स्थापित किए गए जिससे निम्न जातियों का उत्थान हो सके।

महर्षि दयानन्द ने वेदों के प्रमाण द्वारा सभी को वेदाध्ययन का अधिकार दिया है। नर-नारी शूद्र सहित सभी को वेद पढने का अधिकार प्राप्त है। आर्य समाज के सुधार आंदोलनों का भारतीय समाज और संस्कृति पर बहुमुखी प्रभाव पडा।

आर्य समाज के प्रादुर्भाव के समय भारत धार्मिक और नैतिक दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर था। समाज मे बहुदेवतावाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा के प्रचलन के साथ-साथ धर्मों के नाम पर अनेक कुकर्म हो रहे थे। महर्षि ने निराकार, अजन्मा, परमात्मा की पूजा, अराधना तथा सध्या हवन करने की सलाह दी।

भारतवर्ष में राष्ट्रीय शिक्षा के अग्रदूतो मे महर्षि दयानन्द, महात्मा गाधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर मदनमोहन मालवीय और अरविन्द के प्रवर्तक और उन्नायक महर्षि दयानन्द है। उन्होंने प्राचीन संस्कृति पर बल देते हुए गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति की आधार शिला रखी। उन्होने आदर्शवाद प्रकृतिवाद, समाजवादी दर्शन को समन्वित करते हुए सत्य, सदाचार एवं ब्रह्मचर्य पर बल दिया। शिक्षा वैयक्तिक एवं सामाजिक उन्नति के लिए हैं।

भारतवर्ष में स्त्री शिक्षा के उन्नायक महर्षि दयानन्द को माना जा सकता है। उन्होने जातिभेदमूलक शिक्षा व्यवस्था का विरोध किया और स्त्रियो तथा शूद्रों को वेद पढने का अधिकार प्रदान किया। संस्कृत भाषा के ज्ञान के बिना शिक्षा अपूर्ण है। स्वामी जी का विचार है कि स्वावलम्बन की भावना शिक्षा के मूल मे होनी चाहिए। उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित होने पर बल दिया। वर्तमान समय मे गुरुकुल कन्या गुरुकुल, डी ए वी कालेज बालविद्या मन्दिर, माडल स्कूल, पब्लिक स्कूल आदि मे परम्परागत भारतीय संस्कृति ओर नवीन पाश्चात्य ज्ञान के समन्वय के आधार पर उस समय शिक्षा दी जा रही है। पाच हजार से भी अधिक शिक्षण सस्थाए देश-विदेशो मे आर्य समाज द्वारा संचालित की जा रही है। महर्षि ने राजनीतिक ओर आर्थिक सुधारो पर बल दिया। स्वराज्य का मंत्र सर्वप्रथम महर्षि द्वारा उद्घोषित किया। महर्षि दयानन्द ने भारत को राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक रूप में एकसूत्र मे बांधने का प्रयास किया। उन्होने स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति, स्वसस्कृति और स्वभाषा का प्रबल समर्थन करके भारतवासियो मे राष्ट्रीय भावना का संचार किया।

आर्य समाज ने आर्थिक सुधारो पर भी ध्यान दिया। स्वामी जी का मत है कि करो का उद्देश्य प्रजा का सुख है। महर्षि ने बीस प्रतिशत आय शिक्षा, बीस प्रतिशत धन स्थिर कोष, बीस प्रतिशत राज्य, तीस प्रतिशत रक्षा व्यवस्था के लिए निर्धारित किया है। महर्षि द्वारा प्रतिपादित आज भी प्रासगिक है।

आर्य समाज ने सामाजिक, धार्मिक, नैतिक सुधार, जातिवादी परम्पराओं मे सुधार, शिक्षा के क्षेत्र में सुधार तथा राजनीतिक, आर्थिक सुधारों द्वारा हिन्दुओ की क्षीण शक्ति को पुनर्जीवित किया और समाज को नई दिशा प्रदान की। महर्षि दयानन्द का स्पष्ट मत है कि मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी प्रकार की दास्ता से मुक्ति प्राप्त होनी चाहिए। अपनी स्थापना काल से आज तक आर्य समाज विविध सुधारकार्यों मे सफलतापूर्वक विचार और मानवतावादी संदेश समाज को नई दिशा प्रदान करते हैं। महर्षि दयानन्द को भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सुधार के इतिहास मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

धर्म की परिभाषा

❑ ले० श्री आनन्द अभिलाषी आर्य वान प्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

धर्म शब्द की हर व्यक्ति की अपनी-अपनी परिभाषा है। एक व्यक्ति हवन यज्ञ करता है तो वह समझता है कि मैं धर्म का काम कर रहा हूँ। परन्तु धर्म का यज्ञ से क्या सम्बन्ध ? यह तो कर्मकाण्ड है। एक व्यक्ति कहता है कि मैं प्रार्थना कर रहा हूँ, दूसरा कहता है कि मैं ध्यान में हूँ। एक कहता है कि मूर्ति के सामने बैठ ईश्वर के नाम का जप करता हूँ, कोई रामायण पढता है तो कोई जप जी साहिब। परन्तु यह सब कुछ तो भक्ति की परिभाषा है। धर्म नहीं है । धर्म की परिभाषा तो कुछ और ही है। तो फिर धर्म किस चीज का नाम है? धर्म की क्या परिभाषा है ? धर्म-कर्म क्या है ? क्या करने से व्यक्ति धार्मिक माना जाता है। आओ महापुरुषो के विचार जाने जो कि उनके व्यक्तिगत भी हैं और शास्त्रो पर भी आधारित हैं।

स्वामी दयानन्द .-स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास मे लिखते है कि जो पक्षपात रहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग आचार है, उसी का नाम धर्म है और इससे विपरीत जो पक्षपात सहित अन्यायचरण सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण रूप कर्म है उसी को अधर्म कहते हैं। हर व्यक्ति कहता है कि उसका धर्म उत्तम है परन्तु जिसमे परस्पर विरोध है वह कल्पित झूठा अधर्म है, जिस बात मे सब एक मत हो उसी का नाम धर्म है। इस सूत्र को स्वामी जी ने एकादश समुल्लास मे और स्पष्ट किया है जब जिज्ञासु पूछता है कि इस बात की परीक्षा कैसे होगी कि किस बात मे सब सहमत हैं अथवा भिन्न मत है। स्वामी जी लिखते हैं कि इन सबसे एक बात पूछो सबकी सम्मति हो जाएगी, उनसे पूछो-सत्य भाषण मे धर्म है या मिथ्या मे ? सब एक स्वर होकर बोलेगे कि सत्य भाषण मे धर्म और असत्य भाषण मे अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह-सत्सग, पुरुषार्थ-सत्य व्यवहार आदि मे धर्म, अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, पर हानि करने आदि कर्मों मे ? सब एक मत कहेंगे कि यह अधर्म है। महर्षि द्वारा निर्मित आर्य समाज के दस नियमों में धर्म की उक्त धारणा का ही स्पष्टार्थ परिलक्षित होता है जब सत्य को धारण करना, सत्य और असत्य मे विवेकपूर्वक कर्म करना, संसार का उपकार करना, प्रीतिपूर्वक यथायोग्य व्यवहार करना, अविद्या का नाश करना, सर्वोदय की कामना और सर्वहितकारी स्वच्छन्दता न बर्तना धर्म बतलाया है। वस्तुतः यही सार्वभौम और शाश्वत धर्म है। इसी धर्म मे विश्व के सम्पूर्ण मानवो का हित निहित है। यह बिना भेद भाव के मानव जाति द्वारा धारण करने मे समर्थ है। विश्व का कोई धर्म गुरु इसे नकार नहीं सकता।

महर्षि मनुः-महर्षि ने धर्म के दस लक्षण गिनाए हैं-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शोचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात् धृति धैर्य रखना-क्षमा (अर्थात् किसी व्यक्ति द्वारा भूल या अज्ञानवश किए गये अपराधो के लिए क्षमा दान देना तथा जानबूझकर अन्याय, अपराध, अत्याचार करने वाले को अपराध के अनुसार दण्ड देना, दिलाना आवश्यक है) दम (आत्मसयम) अस्तेय (चौर्य भावो प्रवृत्तियो से सर्वथा दूर रहना-जिस वस्तु पर किसी अन्य का अधिकार है उसे असवैधानिक रूप से हस्तगत न करना और न ही करने की इच्छा करे-दूसरे के द्रव्य या पदार्थो को मिट्टी के ढेले के समान समझना) शौच, मन, वाणी, कर्म की पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियो पर नियन्त्रण), धी (विवेकशील बुद्धि), विद्या (ज्ञान), सत्य (सत्य बोलना), अक्रोध (क्रोध न करना)-ये धर्म के दस लक्षण गिनाये हैं। इनके विपरीत कार्य करना व्यवहार करना अधर्म है।

अन्य महानुभावों के विचार :-जैनाचार्यों ने धर्म के चार रूप बतलाए हैं-वस्तु का स्वभाव धर्म, क्षमा आदि दस प्रकार के भाव धर्म, रत्न त्रय धर्म और जीवों की रक्षा धर्म है। तीर्थांकरों ने निज आत्मा में वास को धर्म कहा है। विलियम जेम्स पश्चिम विचारक ने श्रद्धा को धर्म माना है। फ्रेजर उन शक्तियों की अराधना को धर्म मानता है जो प्राकृतिक व्यवस्था और मानव जीवन का मार्गदर्शन करती हैं। मक्टागार्ट ने चित्त के उस भाव को धर्म माना है जिसके द्वारा हम विश्व के साथ एक ही प्रकार के मेल का अनुभव करते हैं। हवाइट ने मानव द्वारा अपने एकाकी रूप के साथ किए जाने वाले व्यवहार को धर्म बतलाया है तो हर्बट स्पेंसर ने विश्व को व्यापक रूप मे समझने की काल्पनिक धारणा को धर्म कहा है। मेयर्स की मान्यता है कि मानव आत्मा का ब्रह्माण्ड विषयक स्वस्थ और साधारण उत्तम धर्म है। कहीं पर अहिसा को परम धर्म, कहीं पर आचार को परम धर्म कहा गया है, कहीं पर चरित्र या स्वभाव को और कहीं पर कर्त्तव्य को धर्म कहा गया है।

वैदिक धर्म :-प्रायः सभी निष्पक्ष विचारक यह भी मानते हैं कि वेदो में किसी जाति विशेष या समाज विशेष की आचार संहिताओ का ही नहीं अपितु इनमे सार्वजनीन एव सार्वभौम सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ है जो सम्पूर्ण मानव जाति के कर्त्तव्य का सदुपदेश करते हैं। इसीलिए वेद **'सर्वशान्तिः'** का उद्‌घोष कर विश्व बन्धुत्व की भावना का समर्थन करता है और मनुर्भव मनुष्य बनो का उपदेश देकर सभी को मनुष्य बनने का सत्परामर्श देता है। वेद सभी मानवों को मिल-जुल कर रहने का उपदेश देता है, परस्पर द्वेष भाव को त्याग करने का उपदेश देता है और किसी की हिंसा न करने का भी उपदेश देता है। वैदिक संस्कृति या धर्म एक जीवन पद्धति है जो संस्कारी एव नैतिक मूल्यों पर टिकी है। धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं यह जीवन का वह ढंग है या वह आचार संहिता है जो समाज के किसी अंग एवं व्यक्ति के रूप में मनुष्य के कर्मों एवं कृत्यों को व्यवस्थापित करता है तथा उसमें क्रमशः विकास करता हुआ उसे मानवीय अस्तित्व तक पहुंचाने के योग्य बनाता है।

अन्य शास्त्रों में धर्म की परिभाषा :-तैत्तिरीय उपनिषद् "सत्यं वद, धर्मं चर" का उपदेश देती है। याज्ञवल्क्य की मान्यता है कि सत्य और धर्म में कोई भेद नहीं। दान एवं दया की शिक्षा ही प्रमुख धर्म शिक्षा है। महाभारत में मनसा वाचा अनुग्रह करना और दान देना सनातन धर्म कहा गया है। निःस्वार्थभाव से परोपकारार्थ दिए जाने वाला कर्म धर्म है। निष्काम कर्म सार्वजनीन एवं सार्वभौम है। धर्म की इस भावना को भक्तिकालीन कवियों ने सही रूप में पहचाना था। तभी तो गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था 'पर हित सरिस धरम नाहि भाई'।

धर्म का स्वरूपः-निष्कर्ष यह निकलता है कि जो सभी प्राणियो का हित करने वाला हो ऐसा सम्यक् आचार-विचार धर्म है। इसलिए सभी प्राणियो से आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए। दूसरों के साथ आत्मा के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए । वस्तुतः धर्म किसी मत, सम्प्रदाय, पंथ या मजहब का नाम नहीं है, न ही वह किसी वस्तु (धर्म पुस्तक, मूर्ति आदि) या व्यक्ति अवतार, देवता, पैगम्बर, धर्माचार्य, निष्ठ है। प्रत्युत धर्म उन शाश्वत नियमो, विश्वजनीन भावो एव नैतिक मूल्यों का नाम है जिनके धारण व आचरण से वस्तु या व्यक्ति का भेद मिटता है। समष्टिभाव का उदय होता है। विश्व के सभी प्रमुख मत पारसी, इसायत, मुस्लिम, बौद्ध जैन, सिख इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं फिर धर्मावलम्बियों में परस्पर लड़ाई-झगड़ा क्यों होता है ?

मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना :-यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मत में पाये जाते हैं परन्तु यदि वे पक्षपात छोड़कर स्वतन्त्र सिद्धान्त को स्वीकार करें जो-जो बातें सबके अनुकूल हैं और सबमें सत्य है उनको ग्रहण करें और जो-जो बातें एक दूसरे के विरुद्ध पाई जाती हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति वर्ते तो जगत् का कल्याण हो सकता है। विद्वानों के विरोध ही से अविद्वानों में विरोध बढ़कर विविध दुःखों की वृद्धि और सुखों की हानि होती है। यह हानि स्वार्थी मनुष्यों को प्यारी है परन्तु इसने सर्वसाधारण को दुःख सागर में डुबो दिया है।

[illegible] 31-18

□ ले० डा. [illegible] कुमार वरिष्ठ उपसम्पादक 'हिन्दुस्तान' रांची (झारखण्ड)

एक राजा था। एक बार उसे न जाने क्या सूझा कि वह जा पहुंचा आचार्य विष्णुदत्त की कुटिया पर। आचार्य को प्रणाम कर बोला– आचार्य वर ! कुछ ज्ञान दीजिए। विष्णुदत्त मुस्कराकर बोले–**महाराज, आपको ज्ञान चाहिए तो आचार्य देवव्रत के पास जाईये । वे ही इस अवस्था में आपको ज्ञान दे सकते हैं।**

यह सुन राजा को क्रोध आ गया। उसने सोचा आचार्य विष्णुदत्त का इतना साहस कि वह इस तरह से मेरा अपमान करें। फिर क्या था। वह आचार्य पर उबल पड़ा– **महाराज, आप मेरा अपमान कर रहे हैं। आप भूल रहे हैं कि मैं आपका राजा हूं ।**

आचार्य विष्णुदत्त जो क्रोधजयी थे, अत: वह मुस्कराते हुए बोले– **राजन ! आप राजा हैं आपको मेरे पास वह ज्ञान नहीं मिलेगा जिस ज्ञान से आप अपना साम्राज्य को सुचारू रूप से चला सकें। उस ज्ञान में आचार्य देवव्रत निपुण हैं। आप उनसे साम, दाम, दण्ड, भेद आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जब आपकी आयु ढलने लगे तो आप मेरे पास आयें तो मैं आपको वह ज्ञान दूंगा फिर आप जीवन से मुक्त हो जाएंगे।**

यह सुन राजा का पारा उतर गया। उसे अपनी त्रुटि का आभास हो गया। उसने हाथ जोड़ कर कहा– ''आचार्य वर ! क्रोध में आकर मैंने आपका अपमान किया। कृपा करके मुझे क्षमा करें। कहते हुए वह उनके चरणों में लोट गया। आचार्य विष्णुदत्त ने उसकी पीठ पर प्यार से हाथ फेरते हुए उसे उठाया। उसे क्षमा कर दिया।''

यह मात्र कथा-कहानी नहीं है। बल्कि जीवन की सच्चाई है। इस संसार के सभी ऐसे लोग हैं जो यह जानते हुए कि बिना परिश्रम किए कुछ मिलने वाला नहीं है। लेकिन सामान्यत: सभी लोग इस रास्ते को छोड़ दूसरा रास्ता अपनाया करते हैं। वह रास्ता है चापलूसी का, पर निन्दा का, मुंह मियां मिट्ठू बनने का। अक्सर किसी नौकरी करने वाले के मुंह से यह सुना जा सकता है कि फलां आदमी कुछ करता-धरता नहीं है। अपने अधिकारी की चापलूसी में लगा रहता है। इधर-उधर की लगाता है तभी तो उसका इतना जल्दी प्रमोशन हो गया है। एक हम हैं काम करते-करते मरे जा रहे हैं पर प्रमोशन तो क्या हमसे सीधे मुंह बात भी नहीं करता। इसका कारण है ? आत्मबल का अभाव है जो मनुष्य आत्मबली होते हैं, वे दिखावे के लिए कुछ नहीं करते, वे अपनी सन्तुष्टि के लिए कार्य करते हैं। वह ईश्वर को साक्षी मानकर अपने कर्त्तव्य पथ पर डटे रहते हैं। भले ही उनका प्रमोशन हो या न हो। वे अधिकारी की चापलूसी करने से अच्छा अपना काम करना ज्यादा पसन्द करते हैं। जो कामचोर होते हैं जैसे-तैसे नौकरी पा जाते हैं। काम-धाम कुछ आता नहीं है। वैसे ही लोग जहां भी रहेंगे, जिस विभाग में रहेंगे उस विभाग का दिवाला निकाल देंगे, उसका कबाड़ा कर देंगे और अपनी अयोग्यता निकम्मापन जैसे दुर्गुणों को छिपाने के लिए निन्दा, चाय, लस्सी, मक्खनबाजी, चमचागिरी करते हैं। वे विष बेल की तरह बढ़ते हैं और पिसकर अपने अधिकारी और विभाग को ही नष्ट कर देते हैं । ले डूबते हैं।

यही कारण है कि सरकार की सभी विकास योजनाएं लोगों तक पहुंचने से पहले ही गधे के सींग की तरह गायब हो जाती है।

जबकि वेद आदेश देता है– **काम करो। क्रतो स्मर। किए हुए का स्मरण । विष्णोकर्माणि पश्यत्** विष्णु के कार्यों को देखो। जो वेद का अनुयायी होगा वह चमचागिरी, चापलूसी आदि का कतई सहारा नहीं लेगा। वह तो ललकार कहेगा– दायें हाथ में मेरा कर्म है बाएं हाथ में उसका फल। वह अपने प्रमोशन के लिए किसी के सामने गिड़गिड़ाता नहीं। यहां तक कि वह परमात्मा के सामने भी गिड़गिड़ाता नहीं है। वह परमात्मा की उपासना करता है। उपासना यानी कि परमात्मा के समीप बैठता है । समीप में उसे कौन बैठाता है। उत्तर उसके उत्तम, श्रेष्ठ कर्म, आचरण आदि ही उसे परमात्मा के समीप बैठाता है। चमचागिरी, चापलूसी के बल पर वह परमात्मा के निकट नहीं जाएगा। क्योंकि परमात्मा यह सब करने का आदेश ही नहीं देता है। वह तो मेहनत परिश्रम आदि करने का आदेश देता है। चमचागिरी, चापलूसी आदि से अपने अधिकारों को पटाया जा सकता है। परमात्मा किसी की पिटाई में नहीं आता है। उसे तो श्रद्धा भक्ति-समर्पण से ही पाया जा सकता है जब वह अपने भक्त को अपनी छत्र छाया में ले लेता है। ऐसे में दुनिया का कोई भी अधिकारी उसका बाल बांका नहीं कर सकता है।

आज आवश्यकता इसी बात की है कि जो जहां भी है जिस विभाग में है वहां चमचागिरी, चापलूसी आदि के मार्ग को छोड़कर अपने-अपने कर्त्तव्य को मानकर समर्पण और निष्ठा से कार्य करे तो आत्मसन्तोष की उपलब्धि होगी। इस जीवन की यही सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसी उपलब्धि के लिए योगी, साधु सन्यासी, महात्मा घर-बार छोड़कर इधर-उधर भ्रमण करते हैं। इसके विपरीत जो मक्कारी, चापलूसी द्वारा प्रमोशन पा जाते हैं वे धन-दौलत आदि भले ही प्राप्त कर लें पर उन्हें आत्मसन्तोष नहीं मिल सकता। रुपया-पैसा भौतिक संसाधन उसके पास आ जाएंगे लेकिन आत्मसन्तोष उससे कोसों दूर रहेगा। यह तो वही हालत हुई खाने को सभी प्रकार के व्यंजन तैयार हैं पर खाने के लिए जो जरूरी भूख है वह है ही नहीं। ऐसे मे सभी व्यंजन उस व्यक्ति के लिए बेकार हैं जिसके पास भूख नहीं है या उन व्यंजनो को पचाने की क्षमता नही है। ऐसे लोगो को चिकित्सको की सलाह होती है। खबरदार ! दाल के पानी के अलावा कुछ खाया तो जीवन के लाले पड़ सकते हैं। यानी उपभोग की समस्त सामग्री उपलब्ध है पर उपभोक्ता इस योग्य नहीं कि वह उपभोग्य वस्तुओं का भोग कर सके। यह स्थिति कब आती है जब मनुष्य आत्मसन्तोष से दूर रहता है। यानि की संसारिक चमक-दमक की खोज में वास्तविकता को खो देता है।

यदि मनुष्य मेहनत से काम करें तो एक न एक दिन उसे सफलता अवश्य मिलेगी। भले ही वह सफलता छोटी हो पर उस सफलता से मनुष्य को सबसे बड़ी जो चीज मिलेगी वह होगी आत्मसन्तुष्टि। यह आत्सन्तुष्टि उसे चापलूसी, चमचागिरी द्वारा मिली बड़ी से बड़ी सफलता को फीकी कर देती है क्योंकि उसकी वह सफलता अपनी मेहनत, निष्ठा से प्राप्त की हुई होती है। उसमें उसे अपनापन और उसकी महत्ता का मान होता है। वह अपने ही जैसे इससे लोगो को बढावा देना पसन्द करता है। इसके विपरीत तरीकों से प्राप्त सफलता के महत्व को समझ नही सकता। वह दूसरो को भी अपने जैसा ही समझ कर उसके गुणो का मूल्यांकन नहीं करता। इसलिए वह मेहनतकश व्यक्ति को पसन्द नहीं करता है। वह गुणियो का आदर-सत्कार भी नहीं करता। ऐसे में प्रतिभा का हनन होता है। यह हनन देश तक नहीं अपितु विश्व-स्तर तक घातक है। अत: हम सभी महेनती बन कर दुनिया की तमाम भवबाधाओ को दूर करने का प्रयास करें। यह सम्भव तभी होगा जब हम सब अपने कर्त्तव्य पथ पर डट कर परमात्मा की गोदी मे बैठेगे उसका पुण्य स्मरण करेगे, आत्मवलोकन करेंगे। आज दूसरो को देखते-देखते आदमी स्वयं को भूलता जा रहा है। स्वय को भूलना स्वय के पैरो पर कुल्हाड़ी मारने से कम नही है। इस आपा-धापी मे जीवन मे कुछ न कुछ समय ऐसा जरूर निकाले जिसमें आत्मवलोकन किया जा सके। परमात्मा के समीप बैठ कर उससे अपने मन की बात कही जा सके। हम दुनिया से बहुत सारी चीजें छिपाते हैं। उसके पीछे भय रहता है कि कहीं हमारी पोल न खुल जाए। पोल खुलने का भय परमात्मा के पूजक को नहीं हो सकता। क्योंकि वह यह मानकर चलता है मैं जो कुछ कर रहा हू भले ही उसे दुनिया न देखे पर परमात्मा तो देख रहा है। इस सच्चाई को स्वीकार कर वह अनेक पापाचारों से बच जाता है। स्मरणीय है कि हम परमात्मा के अलावा किसी और से अपने मन की बात कह भी नहीं सकते। आइए, उस की शरण मे चले परमात्मा की ओर चले। वहीं पर आत्म-सन्तोष मिलेगा, वहीं पर मन, प्रफुल्लित होगा। सांसारिकता से मन भटकता रहेगा पर आनन्द या आत्मसन्तुष्टि नहीं मिलेगी। आत्मसन्तुष्टि मिलेगी अपना कर्म करते हुए परमात्मा की शरण मे जाने से, इसके अलावा और कोई चारा नहीं–**नान्य: पन्था विद्यते ऽअनाय।**

वैदिक दर्शन

□ ले० आचार्य भद्रसेन जी बी. 2,92/7 बी शालीमार नगर होशियारपुर

(गताक से आगे)

जब ऐसा सीमा से अधिक होता हे तो शारीरिक कमजोरी रोग अपना घर बना लेते हैं इसी लिए युवावस्था मे अष्टविध मैथुन से बचने का शास्त्रकार बात करते हैं जैसा कि कहा है

स्मरण कीर्तन केलि प्रेक्षण गुह्यमाषणम् सकल्पोऽध्यवसा यश्च क्रियानिवृत्तिरेव च॥ एतन्मैथुन मष्टाग प्रवदन्ति विचक्षणा ॥

इसको स्पष्ट करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा हे

जिसके शरीर में सुरक्षित ~ र्य रहता है तब उसको आरोग्य बुद्धि बल पराक्रम बढ के बहु सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण मे यही रीति है कि विषयो का ध्यान स्त्री का दर्शन एकान्त सेवन सभाषण और स्पर्श आदि कर्म से पृथक रहे । अर्थात् मन को भटकाने वाली बातों से बचना चाहिए

सत्यार्थ प्रकाश 2 35

ब्रह्मप्रिय–गुरु जी । पिछली चर्चा के पश्चात् मैंने पुस्तकालय मे जाकर तैत्तिरीय उपनिषद का अवलोक किया तो वहा ब्रह्म का विस्तृत वर्णन देखा। अत उस प्रकरण पर भी कुछ प्रकाश डाल दिया जाए ता सोने मे सुहागे वाली बात हो ?

प्रा0–यह बडी प्रसन्नता की बात ह कि तुम सब की जिज्ञासा भावना इस चर्चा की रूप रेखा मे सुन्दर रग भर रही है। अत आइए ! ब्रह्म की परिपुष्ट होती हुई चर्चा मे उपनिषद् होती हुई चर्चा मे उपनिषद् के इस प्रसग पर भी एक दृष्टिपात कर ले।

भारतीय साहित्य मे उपनिषद् एक उल्लेखनीय ग्रन्थ राशि है। गुरु या विषय का निकटता से जो ज्ञान गहरे पानी पैठ होता है वह ही उपनिषद कहलाता है। वैसे तो आज उपनिषदो की सख्या दो सौ से अधिक है पर उनमे से अठारह कुछ की दृष्टि से ग्यारह प्राचीन तथा सर्वमान्य हैं।

उपनिषद में ब्रह्मचर्या

प्राचीन उपनिषदों में से एक तैत्तिरीय है जिसके पहले प्रकरण का नाम शिक्षावल्ली है। जिसमें शिक्षा के विविध पहलुओं पर विचार किया गया है। दूसरी वल्ली का नाम ब्रह्मानन्द है इसमे शरीर से जुड़े अन्न प्राण मन विज्ञानमय कोशों पर विचार है इन को क्रमश ब्रह्म रूप मे सकेतित करते हुए उत्तरोत्तर इनकी उत्कृष्टता जताई है

तीसरी वल्ली का नाम भृगु वल्ली है क्योंकि भृगु अपने पिता के पास जाकर चर्चा करता है। वहा का प्रसग है कि भृगु अपने पिता वरुण के पास आया और कहा भगवन् ! ब्रह्म का उपदेश दीजिए। तब वरुण ने कहा अन्न प्राण चक्षु श्रोत्र मन वाणी जिससे उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर जिसके आधार पर जीवित रहते हैं तथा जिस में विलीन होते हैं **उसको ही ब्रह्म समझो**। इस पहचान के आधार पर भृगु ने जब विचार किया तो स्पष्ट हुआ कि सब से स्पष्ट ऐसा तत्व अन्न ही है। इस विषय पर और आगे विमर्श करने पर स्पष्ट हुआ कि प्राण (33) भी ऐसा तत्व है जिस पर जन्म जीवन टिका हुआ है। इसके पश्चात् क्रमश मन (3 4) विज्ञान (3 5) और आनन्द (3 6) की उत्तरोत्तर चर्चा आई है। हा तैत्तिरीय उपनिषद की ब्रह्मानन्द वल्ली में ब्रह्म का जो स्वरूप (सत्य ज्ञानमनन्त) और कार्य दर्शाया गया है। वह केवल परमात्मा के साथ ही चरितार्थ होता है। उपनिषद मे आया है कि ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाम्युक्ता। सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म। यो वेद निहित गुहायाम् परमे व्योमन् तै उप 2।

अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला उन्नत होता है। ब्रह्म के स्वरूप को बताते हुए कहा जाता है कि ब्रह्म सत्यस्वरूप ज्ञान का सागर तथा हर तरह की सीमा से रहित है। जोकि सर्वव्यापक होकर सभी के हृदयों में विराजमान है। ब्रह्म के स्वरूप को समझाते हुए आगे कहा है

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयेनेऽभय प्रतिष्ठा विन्दते ॥ तै 2,7 1

ब्रह्म भौतिक स्वरूप वाला न होने से किसी प्रकार भी दृष्टि पथ में नहीं आता शरीर रहित होने से उसको भौतिक रूप में समझाया नहीं जा सकता। ब्रह्म अनन्त पूर्ण है अत उसको सीमित रूप में कहा नहीं जा सकता और भौतिक वस्तुओं की तरह कभी वह ओझल या विलीन नहीं होता है। अत ब्रह्म के इस स्वरूप को समझ लेने पर उपासक निर्भय होता है तथा उच्च प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है।

इससे आगे ब्रह्म के कार्य को निर्दिष्ट करते हुए कहा है– भीषास्माद्वात पवते। भीषोदेति सूर्य:। भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम । तै 2,8 1।

अर्थात् प्राकृतिक जगत के वायु का बहना उषा ऊर्जा उष्मा के साथ सूर्य का उदय होना अग्नि का अपना कार्य करना वर्षा का बरसना और मृत्यु का चक्र उसकी व्यवस्था में ये अपना अपना कार्य करते हैं।

(छान्दोग्य उपनिषद 3,8) में भी ब्रह्म की चर्चा आई है वहा पिण्ड और ब्रह्माण्ड के आधार पर ब्रह्म को समझाने का प्रयास किया है। शरीर में मन को ब्रह्म बता कर मन के साथ वाक प्राण (नासिका) चक्षु श्रोत्र का तथा ब्रह्माण्ड में आकाश को ब्रह्म बता कर उसके साथ अग्नि वायु आदित्य दिशा रूपा चार चरणो मे निर्देश है। वहा के शब्द है–मनोब्रह्मेत्युपासीत इत्यध्यात्मम्। अथाधिदैवम्। आकाशो ब्रह्म। इत्युभयमादिष्टम् भवत्यध्यात्म चाधिदैवत च। 3 18 1 तदेतच्चतुष्पाद् ब्रह्म वाकपाद प्राण पादश्चक्षु पाद श्रोत्र पाद इत्यध्यात्मम्।

अथाधिदैवतम्। अग्निपादो वायुपाद आदित्यपादो दिश पद इत्युभयमेवादिष्टम् 3 18 2 इस प्रकार अपने अपने क्षेत्र के बडे को समझा कर उसके आधार पर प्रकरण वाले विषय का स्पष्ट किया है

तुम सब ने वैशेषिक आदि दर्शनो में पाच भूतो का विवेचन पढा है। उनमे से आकाश अपनी व्यापकता से बडा होने के कारण यहां ब्रह्म कहा गया है। [illegible]

10 [illegible]

ब्रह्म–गुरु जी । अभी आप ने उपनिषद की चर्चा से पूर्व कहा था, कि शरीर एवं ज्ञान रूपी साधना का भारतीय परम्परा के अनुरूप एक विशेष साध्य है । अत ब्रह्मचारी शब्द का ब्रह्म कुछ विशेष अर्थ को सकेतित करता है। उसको भी स्पष्ट करने की कृपा करेंगे ?

प्रा० बच्चको ! हमारी यह मीमासा स्वाभाविक रूप से अपने मूल विषय की ओर प्रवाहित हो रही है। यह वाक्य मैंने केन्द्र बिन्दु की ओर लाने के लिए ही प्रयुक्त किया है। आपने देखा कि ब्रह्म शब्द जहां शरीर समृद्धि के तत्व एव ज्ञान की सकेत करता है वहा ज्ञान के आधार वेद का भी वाचक है। अत ब्रह्मचारी की ये जहा साधनायें हैं वहां इन साधनाओं का भारतीयता के अनुरूप परम ब्रह्म ही साध्य है। तभी तो कहा है–

करे जो साधना ब्रह्म की

वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

इसीलिए मनुस्मृतिकार ने कहा है– वेदशास्त्रार्थ तत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्। इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

12 102

वेदादि शास्त्रों का जो मूलतत्व (ब्रह्म) है उसको जानने वाला जिस किसी आश्रम में रहता हुआ जीते जी ब्रह्म प्राप्ति मे सक्षम होता है।

एक दूसरे श्लोक में इस भाव को इन शब्दो में कहा है–

एव य सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मान मात्मना। स सर्वतामेत्य ब्रह्माभ्येति पर पदम्॥ 12 125

अर्थात् सभी प्राणियों प्राकृतिक पदार्थों में विद्यमान् (परम) आत्मा की आत्मिक वास्तविक रूप म अनुभव करता है। वह उस ब्रह्म की वास्तविक सर्वव्यापकता के अनुभव को प्राप्त करके जीवन के प्राप्तव्य ब्रह्म रूपी परम पद को प्राप्त कर लेता है।

वैदिक वाड्मय के अनुसार मानव [illegible] का साध्य, प्राप्तव्य ब्रह्म ही है। इस दृष्टिकोण के अनुसार ब्रह्मचारी का [illegible] अर्थ [illegible] है। (क्रमशः)

मुम्बई वालों के 'ओ३म् स्वाहा' पर लेखान्दोलन !

□ लै० सत्यानन्द वेदवागीश

अभी कुछ मास पूर्व मुम्बई में आयोजित आर्य महासम्मेलन के अवसर पर हुए पारायणयज्ञ में श्री ब्रह्माजी के द्वारा मन्त्रान्त में स्वाहा से पहले 'ओ३म्' लगाने पर अर्थात् 'ओ३म् स्वाहा' बोलकर आहुति दिलवाने पर पत्र-पत्रिकाओं में उसके विरोध में अनेक लेख लिखे गये और एक स्वामी जी ने उन सब लेखों को पुस्तकाकार में छपवाकर वितरित भी किया। एक प्रति मेरे पास भी आई। मानों ब्रह्मा जी ने कोई अपराधिक कृत्य कर दिया हो। उन्हें 'अनधिगत शास्त्र', 'विद्वन्मन्य', 'शास्त्र विरोधी', 'अज्ञ', 'अदयानन्दी', 'मिथ्या' क्रिया प्रवर्तक आदि विशेषणों से विभूषित किया गया।

क्या श्री ब्रह्माजी द्वारा 'ओ३म् स्वाहा' बोलकर आहुति दिलवाना इतना बुरा कर्म था ? थोड़ा इस पर विचार करना है।

पहली बात तो यह है कि श्री स्वामी सत्यम् जी ने ही इसे 'इदम्प्रथमतया' आरम्भ नहीं किया है। पुस्तिका में जिन विद्वानों की सम्मति उद्धृत की गई है उनमें से मीमांसक जी, श्री विश्वश्रवा: जी, श्री वेदश्रमीजी और श्री धर्मदेव जी वि.मा. अब नहीं रहे अर्थात् उनके जीवन काल में भी इस 'ओ३म् स्वाहा' का प्रयोग होता था, जिसका निवारणार्थ उन्हें लिखना पड़ा। अभी 25 जून से 1 जुलाई तक ब्यावर (राज.) आर्य समाज में वर्षा हेतु किए गए यज्ञ में, संकलित 105 (104) मन्त्रों के पाठ हेतु एक स्थानीय महामना वृद्ध शास्त्री जी, को भी सादर आहूत किया गया। उन्होंने स्वीकार किया, पर उन्होंने मन्त्रान्त में रि स्थान पर प्रणवसहित स्वाहा बोलने का (=ओ३म् स्वाहा) बोलने का अथवा अभ्यास बताया। तब वैसा ही किया गया। सन् 57 से 65 तक राजस्थान के ब्यावर आदि नगरों के आर्य समाजों में श्री आनन्दभिक्षु जी महाराज की अध्यक्षता में जो पारायण यज्ञ होते थे उनमें भी 'ओ३म् स्वाहा' से आहुति दी जाती थी। इन पंक्तियों का लेखक दस वर्ष की आयु में सन् 43 में श्री स्वामी व्रतानन्द जी द्वारा संस्थापित-संचालित 'चितौड़गढ़ गुरुकुल' में प्रविष्ट हुआ। वहां प्रतिदिन सायं व प्रात: यज्ञ समय में क्रमश: वेद के तीस मन्त्रों से आहुति दी जाती थी, जिससे एक वर्ष मे चारों वेदों का पारायण हो सके, तब भी 'ओ३म् स्वाहा' बोलकर आहुति दी जाती थी।

इस प्रकार कम से कम 58 वर्ष से यह 'ओ३म् स्वाहा' का प्रयोग कहीं न कहीं होता रहा है। पूर्वोद्धृत ब्यावर के श्री पं वासुदेव जी शास्त्री जी के दादाश्री रामप्रताप जी ने महर्षि जी के दर्शन किए थे और तब से उनके वंशज परिवार निष्ठापूर्वक वैदिक धर्म कर्मानुयायी हैं और निस्पृह भाव से आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं। श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज, श्री स्वामी स्वामी श्रद्धानन्द जी के शिष्य थे और सन् 1915 के लगभग वे गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिष्ठित स्नातक बने। इन स्वामी जी ने और श्री रामप्रताप जी के परिवार ने जो यह 'ओ३म् स्वाहा' की पद्धति अपनाई, उसका मूल निश्चय ही उनसे पुराना है।

अब इस 'ओ३म् स्वाहा' पर जो माम्मट वक्र दृष्टि हुई है, उस विषय में थोड़ा विचार करें।

(1) पहला दोष यह लगाया गया है ''ओ३म् स्वाहा'' बोल कर आहुति देने से.......' होम की मूल भावना 'मन्त्रों से आहुति देना' का लोप हो जाता है, क्योंकि ओंकार मन्त्र से भिन्न है (पृष्ठ ६)। यह हेत्वाभास है क्योंकि ''विश्वानि...... आसुव'' मन्त्र तो इतना ही है। जब स्वाहा लगाया गया तो वह भी मन्त्र से भिन्न हुआ कि नहीं ? यदि कहें कि 'वह तो मन्त्र से बहिर्भूत है' तो उससे पहले लगाये गये 'ओ३म्' को भी मन्त्र से बहिर्भूत मान लेने पर मन्त्र से ही आहुति क्यो नहीं मानी जाएगी ? फिर जब आप 'विश्वानि....' से पहले 'ओ३म्' लगाते हैं, तो वह भी तो मन्त्र भाग नहीं है, तो भी आप मन्त्र से आहुति मानते हैं तो अन्त में 'ओ३म्' लगाने पर मन्त्र से आहुति क्यों नहीं मानी जा सकती?

मन्त्रों से ही आहुति देने की बात पर बल दिया जा रहा है। 'मन्त्र' किसे कहते हैं ? वेदवचन (=ऋचा, यजु: और साम) ही मन्त्र हैं महर्षि जी ने भी आहुति देने मे वेद मन्त्र को ही मन्त्र माना है। वे 'वसुभ्यस्त्वा....' (यजु. 2, 16) के भावार्थ में लिखते हैं- 'अग्नौयाऽऽहुति: क्रियते सा .. वेद मन्त्रैरेव कर्त्तव्या, यतस्तस्या: फलज्ञाने नित्यं श्रद्धोत्पद्येत।' पर किसी शास्त्र ने इसका निर्वाह किया है। श्रोत्रसूत्र और गृह्यसूत्र वेदमन्त्रों से भिन्न अहित एवं कल्पित मन्त्रों से भी भरे पडे हैं। स्वयं महर्षि जी के 'संस्कारविधि' में शतश: मन्त्र (?) दिए गये है, जो वेदमन्त्र (=वेदवचन)• नहीं हैं। 'ओम् अधर्माय स्वाहा' 'ओं विविष्ट्यै स्वाहा' 'ओं कषोत्काय स्वाहा।' (सन्यासविधि) आदि वेदमन्त्र नहीं हैं। वेदों में अधर्म, विविष्टि, कषोत्क का नामोनिशान नहीं है। ये तै, आ. के वाक्य हैं। जब इन्हें भी मन्त्र मानकर आहुति दी जा सकती है, तो क्या 'ओ३म्' सहित स्वाहा से नहीं? क्या 'ओ३म्' शब्द अधर्म और कषोत्क से भी बुरा हो गया जो उस पर इतना हो हल्ला मचे।

विवाह संस्कार के जया होम में 'चित्तं, चित्ति:', 'विज्ञातं', 'विज्ञाति' इतने एक-एक पदमात्र को मन्त्र मान कर आहुति का विधान किया गया है। सन्यास, मे 'भू:' पदमात्र को मन्त्र नाम देकर पूर्णाहुति कराई गई है, तब 'ओ३म्' स्वाहा के साथ लग गया तो उससे पूर्व बोला जा रहा वेदमन्त्र क्या मन्त्र संज्ञा से हीन होकर आहुति लायक नहीं रहा ? कहा जाएगा कि 'चित्तं' 'भू:' आदि भले ही वेद मे मन्त्ररूप में नहीं हैं किन्तु वेदमन्त्रों में वे शब्द आये तो हैं। इस पर हमारा कथन है कि 'ओ३म्' शब्द भी तो वेदमन्त्रो में आया है। यजु. के 2.13 मन्त्र में 'ओ३म् प्रतिष्ठ' के रूप में और 40-14 मन्त्र में 'ओ३म् क्रतोस्मर' के रूप में फिर 'भू:' 'चित्तं' आदि की तुलना में 'ओ३म्' के श्रेष्ठत्व को देखें। ओ३म् का नाम 'प्रणव' इसीलिए रखा गया है, कि नाम के द्वारा ही प्रभु की सबसे बढ़िया स्तुति-गुणवर्णन किया जा सकता है। प्रकृष्टो नव:=स्तव:=स्तुतिर्येन स प्रणव: (प्र+ण स्तुतौ+अपभावे->प्र+नव: (बहु.)।

नस्यणत्वे प्रणव:। ओम् के उन्नीस अर्थ हैं। वे सब ईश्वरगुणानुवाद में घटित होते हैं। समिदाधान का प्रथम 'अयन्त इध्म:' और स्विष्टकृत का 'यदस्यकर्मणो' वाक्य का कहाँ वेदमन्त्र हैं ? ये 'आश्वाला, गृह्य,' के वचन हैं जलसेचन के तीन वाक्य भी वेदमन्त्र नहीं है तब फिर 'ओ३म्' पर इतना 'अमन्त्रत्व दोष' क्यों ?

(2) दूसरा दोष- 'ओकार सहित स्वाहा बोलने' के कारण ऋक्त्वनाश हो जाता है अर्थात् छन्दो भंग होता है।' (पृ ६)। यह भी चिन्त्य है। जब रि के स्थान पर 'ओ३म्' बोला जाएगा तो छन्दोभग नहीं होगा। यदि च स्वतन्त्र रूप मे ओ३म् बोला जाए, तब भी छन्दोभंग दोष नहीं लगेगा। क्योंकि जैसे मन्त्र के आरम्भ मे बोले गये 'ओम्' से छन्दोभग या ऋक्त्वनाश दोष नहीं होता वैसे स्वाहा से पहले लगाये गये 'ओ३म्' से भी वह दोष नहीं माना जाना चाहिए। यदि आदि मे बोला गया 'ओम्' ऋचा से बहिर्भूत है तो स्वाहा के साथ 'ओ३म्' भी ऋग्बहिर्भूत है।

(3) तीसरा दोष-यह शास्त्र विरुद्ध है (पृ 2)। पहले तो यह सोचना है कि 'शास्त्र' के अन्तर्गत कौन से ग्रन्थ है ? महर्षि के मन्तव्यानुसार तो वेद सहिता 'शास्त्र' है और वेद से जो अविरुद्ध आर्षग्रन्थ हैं वे 'शास्त्र' हैं। उनमे श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र एवं ब्राह्मणग्रन्थ ओर मनुस्मृति हैं। जबकि पुस्तिका मे 'बृहत् पाराशर स्मृति और लघु हारीत स्मृति' (पृ 7-8) के प्रमाण दिए हैं। ऐसा क्यों ?

विरोध भी दो प्रकार का होता है। एक तो जहां जिस बात का या कर्म का निषेध किया गया हो उसको करने का विधान या सम्पादन करना। दूसरा जिस कार्य को जैसे करने का उल्लेख हो उसको छोड़ देना या न करना। यथा 'स्वाहा' बोलकर आहुति दी जाए। यह विधान है, तो 'स्वाहा' पद बिना बोले आहुति करना यह विरोध हुआ।

किन्तु यदि यह माना जाए कि शास्त्र में जो नहीं लिखा हो उसे मानना या करना शास्त्र विरुद्ध है चाहे वह लाभकारी क्यो न हो तब तो अनेकत्र महर्षि ग्रन्थो मे भी

(शेष पृष्ठ 10 पर)

स्वाध्याय प्रेमी श्री धर्मपाल

□ ले० मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

नियमित स्वाध्याय वैदिक जीवन पद्धति का प्रमुख अंग है। गुरुकुल से शिक्षा पूरी कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश से पूर्व आचार्य दीक्षान्त उपदेश में स्नातक ब्रह्मचारी को 'स्वाध्यायान् मा पमदः' अर्थात् जीवन में स्वाध्याय से कभी प्रमाद नहीं करना, का उपदेश देता था। धर्मपालजी इस वैदिक शिक्षा पर चलने वाले निष्ठावान अनुयायी थे। इस गुण के कारण उनके व्यक्तित्व में अनेक विशेषतायें देखने को मिलती थी जो सामान्य व्यक्तियों में प्रायः नहीं मिलती।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों एवं मान्यताओं के प्रति पूर्ण निष्ठावान श्री धर्मपाल का जन्म 18 जुलाई 19[illegible] को देहरादून में हुआ था। आप के पिता श्री शेर सिंह भी आर्य [illegible]माज के अनुयायी थे। आपकी माता श्रीमती सिद्धी देवी धार्मिक विचार[illegible] सरलता व त्याग की सद्गृहणी देवी [illegible]। आर्य समाज के प्रति अनुराग व निष्ठा धर्मपाल जी को अपने [illegible]ता से विरासत में प्राप्त हुई थी। चार भाई व एक बहिन में आयुक्रम में आपका दूसरा स्थान था। लगभग 12 वर्ष की अवस्था में पिता का साया आपके सिर से उठ गया था। परिवार में बड़े भाई मानसिक रूप से क्षीणबुद्धि होने के कारण आपकी माता की सूझबूझ व धर्मपाल जी के अध्यवसाय से परिवार न केवल सामान्य रूप से जीवन निर्वाह करने में सफल हुआ अपितु सभी भाई-बहिन अपनी-अपनी बौद्धिक क्षमताओं के अनुरूप शिक्षित होकर समाज में सम्मानित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। शिक्षा की दृष्टि से आप विज्ञान स्नातक, अर्थशास्त्र मे स्नात्कोत्तर उपाधि तथा स्नातकीय विधि शिक्षा में प्रवीण हुए। सन् 1982 में आपने आयुष्मती आज्ञारानी से विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया। आपके तीन पुत्र हुए जिनमें से बड़े पुत्र की शैशव काल में मृत्यु हो गई थी। शेष दो पुत्र अध्यनरत हैं। डाक-विभाग और केन्द्रीय जल संरक्षण विभाग में कुछ-कुछ काल कार्य करने के पश्चात् आप खण्डीय लेखाकार नियुक्त हुएँ और मृत्यु पर्यन्त इस पद पर कार्यरत थे।

श्री धर्मपाल का स्वयं का जीवन अत्यन्त सरल था। वह साधन सम्पन्न होकर भी सादा जीवन एवं उच्च विचार के जीते जागते उदाहरण थे। उनकी बातों से अनुभव होता था कि साधन सम्पन्न होकर भी मनुष्य को अपने अन्य सभी पारिवारिक जनों के स्तर व सामर्थ्य का ध्यान रखते हुए स्वयं को प्रायः वैसा ही रखना चाहिए। अपने परिवार के सभी भाई-बहिनों-पत्नी एवं उनके परिवारों तथा मित्रों के प्रति उनमें पूर्ण स्नेह, सहायता एवं सहयोग की भावना थी। 31 दिसम्बर 2000 को पूर्वान्ह में वह ट्रैकर से देहरादून से पौड़ी के लिए रवाना हुए थे। ऋषिकेश से थोडी ही दूर जाने पर एक मोड पर सामने से आ रहे ट्रक ने उनके ट्रैकर को टक्कर मार दी। धर्मपाल जी के सिर में गहरी चोट लगी और घटनास्थल पर ही उनकी मृत्यु हो गई। ऐसे सरल, कर्मठ, स्वाध्यायशील एवं सक्रिय सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति की अल्पायु में मृत्यु आर्य समाज की ऐसी क्षति है जिसकी पूर्ति संभव नहीं है। उनको स्मरण कर उनके मित्र, परिवार एव समाज के लोग उनमें निहित गुणों को स्वयं में धारण कर उनके जैसे कार्य करें, यही प्रथम पुण्यतिथि पर उस दिवंगत आत्मा को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

करुणा सागर भगवान

□ ले० श्री यशपाल आर्य, जालन्धर

तू करुणा सागर है, तेरी शरण में आये हम,
अपनी भक्ति का वर देना, सफल हो जाये यह जन्म।
1 ऋषि मुनियो को मेधा दीनी वही मेधा हमें देना।
पर उपकारी हम बने ऐसी शक्ति हमें देना ।
जो तुमको प्यारे लगें ऐसे हों हमारे कर्म ।
तू करुणा सागर
2 सत जनों ने तुझको ध्याया पार तेरा ना पाया,
रोम-रोम में रमने वाले नेति नेति तुझे बतलाया।
तेरी महिमा तू ही जाने तेरी भक्ति में लगे मेरा मन।
तू करुणा सागर
3 विश्व विधाता जग निर्माता तू हि पिता और तू ही माता,
दुखों का साथी सुखों का दाता अंत न तेरा कोई पाता॥
अपनी भक्ति का वर देना, लगी रहे ''यश'' तेरी लगन।
तू करुणा सागर .

(पृष्ठ 9 का शेष)

शास्त्रविरोध रूपी दोष लगेगा। (अ) प्रचलित साप्ताहिक सोमवार, शनिवार आदि नाम अवैदिक ही नहीं अभारतीय सर्वथा काल्पनिक हैं। किसी वेद-ब्राह्मण-कल्पसूत्र-स्मृति आदि शास्त्रों में तो क्या रामायण-महाभारतादि में भी इन वारों का उल्लेख नहीं है। वेद में 'वार' शब्द तो आया है, पर सर्वत्र उसका अर्थ अन्न (ऋ. 1.128.6) वरणीय प्रदेश (ऋ. 1.151.5) वरणीय धन (ऋ. 5.16.2), वरणीय तेज (ऋ. 10 74.2), आवरक अन्धकार (ऋ. 9.110.6) आदि हैं। प्रचलित सप्ताहनामों के रूप में कहीं वार नहीं है। किन्तु महर्षि जी ने अपने ग्रन्थों में इन नामों का प्रयोग किया है, यथा-'अमायां शनिवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया'......त्रयोदश्यां रवौवारे....(संस्कार.)।'गुरोवरि प्रातः प्रतिपदः' (यजु. भाष्य। आदि। तो इस वार प्रयोग से महर्षि जी का यह कार्य क्या शास्त्र विरुद्ध हो गया ?

(ब) कल्पसूत्रों में हविष्यान्न के रूप में व्रीहि (=चावल) और यव (=जौ) का विधान है, किन्तु महर्षि जी ने हविरन्न में गेहूं का भी उल्लेख संस्कारविधि में किया है। तो कल्पसूत्रों में गेहूं (=गोधूम) का क्वचित् भी उल्लेख न होने पर भी महर्षि जी द्वारा उसे हविरन्न कहने से 'शास्त्र विरोध' हो गया ? विदित हो कि तै. ब्रा (1.3 7.2) में गोधूम को चषाल (=यूपकटक) के निमाणार्थ श्रेष्ठ तो माना है, पर वहां भी हविरन्न का प्रसंग नहीं है।

(स) 'अयंत इध्म' मन्त्र से 5 बार घृत आहुति दी जाती है। यहां पांच संख्या की विद्वानों ने भिन्न-भिन्न व्याख्याएं की हैं। पर किस कल्पसूत्र में पांच बार का विधान है? तो क्या यह 'शास्त्र विरोध' हो गया ? फिर यह मन्त्र घृताहुति का है ही नहीं समिदाहुति का है। इध्म कहते हैं इन्धन (=काष्ठ=समिधा) का है। यदि कहा जाए कि 'इध्यते प्रदीप्यतेऽग्निरनेनेति' इस व्युत्पत्ति से धात्वर्थ बल से घृत भी 'इध्म' है तब तो कपूर व्यंजन नलिका, वायु आदि भी 'इध्म' पदवाच्य होंगे। फिर किसी वेद मे या वेदभाष्य में इध्म का अर्थ घृत नहीं किया गया हे। महर्षि जी ने जितना वेद भाष्य किया है उसमें 6 या 7 बार 'इध्म' शब्द आया है, पर कहीं भी उसका अर्थ घृत नहीं किया गया है। फिर दो मिनट पूर्व ही जिस मन्त्र को समिध की आहुति में प्रयुक्त किया गया है।

उसे तुरन्त घृताहुति के रूप में प्रयुक्त करना कैसे प्रशस्य है? हां यदि वेद में घृत पद वाले मन्त्र नहीं होते, तब तो इस मन्त्र से भी काम चलाया जा सकता था। किन्तु जब वेद में अनेक मन्त्र घृतपदबहुल हैं, तब घृताहुत्यर्थ इध्म वाले मन्त्र का प्रयोग चिन्त्य ही है। उदा 'आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृत प्रतीको घृतयोनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमानस्वाहा।' (यजु. 35.17) । क्या शास्त्रानुमत न होने से किसी ने महर्षि जी के इस विधान को शास्त्र विरुद्ध करार दिया जाए?

(द) कल्प सूत्रों (=कात्या श्रौ. 2.12.7.3.2.1, 2.14.1, 3.3.10) के अनुसार ओम् प्रजापतये, 'और ओम् इन्द्राय' मन्त्र आघाराहुति के और 'ओम् अग्नये,' तथा 'ओं सोमायं' मन्त्र आज्याभागाहुति के हैं, किन्तु महर्षि जी की संस्कारविधि में शास्त्र से विपरीत विधान है तो क्या इसे शास्त्र विरोध कह कर किसे ने आन्दोलन किया ?

(य) किस शास्त्र मे लिखा है कि वेद मन्त्रों के शब्दों का स्वरूप बदल दिया जाए और तदनुसार अर्थ कर दिया जाए। 'गृहाश्रम प्रकरण' के 21, 22, 23 मन्त्रों में अथर्ववेद के सृष्टा, श्रिता, आवृता, प्रावृता, परीवृता, परहिता, पर्यूढा, गुप्ता और प्रतिष्ठिता इन स्त्रीलिङ्ग प्रथमा विभक्ति के एकवचन के रूपों को पुलिंङ्ग प्रथमा बहुवचन बना दिया गया और तदनुसार अर्थ भी कर दिया गया। अथर्व 12,5,1-3 मन्त्रों के ये शब्द वस्तुतः 'ब्रह्मगवी' के विशेषण हैं। और अतएव स्त्रीलिङ्ग प्रथमेकवचन के ही रूप हैं। शास्त्रविरुद्ध होने से किया किसी ने विरोध का झण्डा खड़ा किया? इत्यादि को शास्त्रानुमत न होने पर भी जब सहन किया जा रहा है, तब 'ओ३म् स्वाहा' पर असह्यता क्यों दिखाई जा रही है? माना कि कल्पसूत्रादि में 'ओ३म् स्वाहा' का विधान नहीं है, पर स्वाहा से पूर्व ओ३म् लगाने का निषेध भी तो कहीं नहीं किया गया है। जिन महानुभावों ने इसे आरम्भ किया होगा, लाभ की दृष्टि से ही तो किया होगा। (क्रमशः)

महात्मा प्रेम प्रकाश जी का उपदेश

☐ संकलनकर्ता रीटा 'भूषण' मंगला, मंगला साड़ीज 514 मेन बाजार, कालका (पंचकूला)

गत दिनों त्यागमूर्ति श्रद्धेय महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थ (धूरी वाले) कालका (जिला पंचकूला) में यजुर्वेद महायज्ञ करवाने हेतू पधारे। आर्य समाज के प्रसिद्ध वक्ता महात्मा प्रेम प्रकाश जी ने अपने प्रवचनों में 'अहिंसा, धर्म' पर अपने महान् विचार रखते हुए कहा कि सब प्राणियों से प्यार करना ही भगवान की भक्ति है व भगवान के प्राणियों को अकारण मारना अपराध है। उनके अनुसार भारत के महर्षि प्रत्येक प्राणी से प्यार करते आए हैं। इसीलिए गाय, कुत्ता, कौआ आदि में से दो प्राणियों को पहले भोजन देकर फिर स्वयं खाने का निर्देश करते हैं परन्तु आज कल के कुछ लोग जीव हिंसा की परवाह ही नहीं करते। वे मांस आदि दुर्गन्धित पदार्थ खाते हैं और अपने आपको मानव भी समझते हैं। कमाल की बात तो यह है कि हम थूकते हैं मुर्गा उसको चाट जाता है और यह मानव मुर्गे को चाट जाता है। हम गन्दा करते हैं, सूअर उसको खा जाता है और यह मानव सूअर को खा जाते हैं। इतना ही नहीं आजकल कुछ लोगों ने तो यह प्रचार शुरू कर रखा है कि आजकल अण्डे में जीव नहीं होता परन्तु जब यह पूछा जाता है कि यदि आपने पोलटरी फार्म खोलना हो और आपको दस हजार चूजे (बच्चे) चाहिएं, तो आपको मिल जाते हैं। यह किस बाग में या किस समुद्र मे पैदा होते हैं तो कोई उत्तर नहीं मिलता। महात्मा प्रेम प्रकाश जी के अनुसार यह सब साधारण जनता को चक्र में डालने के षड़यन्त्र रचे जा रहे हैं। एक बार अमेरिका और कैनेडा वालों के बीच शिकांगू यू.एस.ए. में विवाद छिड़ गया कि मांस खाना चाहिए या नहीं। कोई निर्णय नहीं हो पा रहा था। ऐसी अवस्था में उनमें से एक विद्वान् ने उठ कर कहा कि समय की बहुत कमी है। यदि कोई हमारी समस्या का समाधान एक मिनट में कर दे तो बड़ी अच्छी बात होगी। (क्योंकि महात्मा प्रेम प्रकाश जी भी आर्य महा-सम्मेलन में यू.एस.ए. गए हुए थे इसलिए उन्होंने कहा कि आधा मिनट चाहिए। सम्मलेन के आयोजको ने विनय-पूर्वक कहा-कहियेगा। महात्मा जी ने कहा कि जिन पदार्थों में दुर्गन्ध (बदबू) है उन्हें नहीं खाना चाहिए, जिन पदार्थों में सुगन्ध (खुशबू) है उन्हें ही खाना चाहिए। सारा हाल तालियों से गूंज उठा और महर्षि दयानन्द की जय-जयकार हो गई। इसलिए मनुष्यों को मानवता का फर्ज निभाते हुए सुगन्धित पदार्थों का ही सेवन करना चाहिए। क्योंकि सुगन्धित पदार्थों में ही बुद्धि तत्व विद्यमान होता है।

मानवता की शिक्षा देते हुए महात्मा प्रेम प्रकाश जी महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारो का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार पूज्य माता-पिता एवं गुरु की सेवा करने का 'सौभाग्य' किसी-किसी पुण्यवान सन्तान को ही मिलता है। वेद के ऋषियों ने पुत्र को चांद कहा है, चांद क्या कार्य करता है ? चांद 'सूर्य' से प्रकाश लेता है और पृथ्वी की परिक्रमा करता है। वेद के ऋषियों ने पिता को 'सूर्य' और माता को पृथ्वी कहा है। अर्थात् पुत्र-पिता से प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त करे और माता की परिक्रमा (सेवा) करे। ऐसी सन्तान को ही योग्य (प्रकृष्ठ, प्रगतिशील) सन्तान कहा गया है। इसलिए मृत्यु के पश्चात् माता-पिता का श्राद्ध नहीं बल्कि उनके जीते जी श्रद्धापूर्वक वस्त्र, भोजन और मधुर वाणी से इन्हें तृप्त करें, यही सच्चा श्राद्ध और तर्पण है।

श्री राम भी प्रात: उठकर अपने माता-पिता और गुरु को नमस्ते करते थे। अत: गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है प्रात:काल उठ कर रघुनाथा, मात-पिता गुरु नवाहि माथा। भगवान श्री राम जी का इतिहास लाखों वर्ष पुराना है किन्तु फिर भी उनके नाम से जब भी रामलीला शुरू होती है तो सबसे पहले श्रवण कुमार का ड्रामा होता है, क्योंकि श्रवण कुमार ने श्रद्धापूर्वक हृदय की गहराईयों से माता-पिता की सेवा की थी। इसलिए "माता-पिता और गुरु की सेवा करना मानों सच्ची त्रिवेणी तीर्थ में स्नान करना है।"

इसलिए बड़ों की सेवा करके महर्षि मनु के आदेशानुसार आयु, विद्या, यश और बल प्राप्त करें।

दयानन्द पब्लिक स्कूल, दीपक सिनेमा रोड लुधियाना में यज्ञ

गत दिनों दयानन्द पब्लिक स्कूल, दीपक सिनेमा रोड, लुधियाना में बृहद हवन यज्ञ का प्रात: 8.30 से 9.30 बजे तक आयोजन किया गया। जिसमें बहुत से छात्र-छात्राएं यजमान बने। यज्ञ श्रीमती सरला लूम्बा जी ने सम्पन्न कराया। स्कूल के प्रबन्धक श्री आशानन्द जी आर्य ने यज्ञ की महिमा का गुणगान किया। इस अवसर पर श्री ओम प्रकाश गुप्ता जी, श्रीमती विनोद गांधी जी, श्रीमती सरला लूम्बा जी ने बच्चों को आशीर्वाद दिया। शान्ति पाठ के बाद कारवाई समाप्त हुई।

–प्रिं. सुनीता मलिक

समस्तीपुर में वेद प्रचार

जिला आर्य समाज समस्तीपुर (बिहार) के तत्वावधान में 15 से 21 अक्तूबर 2001 तक वेद प्रचार सप्ताह समारोह पूर्वक बड़ी धूमधाम से मनाया गया । स्वामी अग्निव्रत जी महाराज नालंदा एवं स्वामी प्रशान्तानन्द जी गुजरात, कपिल कुमार शर्मा, श्रीमती सुमन आर्या, श्री कमल शास्त्री, श्री इन्द्र देव शास्त्री, श्री अशर्फी प्रसाद, सुश्री लक्ष्मी आर्या तथा श्री भंडारी जी के कार्यक्रम सात दिनों तक होते रहे, प्रतिदिन हजारों लोगों ने कार्यक्रम से लाभ उठाया। 16 अक्तूबर को जिला के कार्यकर्त्ताओं की गोष्ठी हुई।

समग्र क्रान्ति का सर्वप्रथम उद्घोष महर्षि दयानन्द ने ही किया था—कोठारी

कोटा 15 अक्तूबर—"महाभारत काल के बाद आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती पहले महापुरुष हुए हैं जिन्होंने सम्पूर्ण मानव समाज को हर दृष्टिकोण से आन्दोलित किया था अर्थात् केवल वाणी से ही नहीं अपितु व्यवहारिक रूप से समग्र क्रान्ति का पहला उद्घोष महर्षि दयानन्द ने ही किया था।" ये वाक्य मोटर वाहन दुर्घटना दावा अधिकरण न्यायालय कोटा के न्यायाधीश श्री सज्जन सिंह कोठारी ने 14 अक्तूबर को सायं विज्ञान नगर में आर्य परिवार संस्था द्वारा प्रकाशित "आर्य परिवार स्मारिका" का विमोचन करते ह‍ए कहे। स्मारिका पर अपने वि‍चार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि इस स्मारिका में हाड़ौती क्षेत्र के आर्य समाजों के दिवंगत 76 आर्य कार्यकर्त्ताओं के जीवन परिचय और संस्मरण प्रकाशित कर उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। आर्य समाज के 125 वर्ष और आर्य परिवार संस्था के 10 वर्ष लेखों में वेद प्रिय शास्त्री तथा राजेन्द्र कुमार आर्य द्वारा आर्य समाज के गौरव पूर्ण भूतकाल, वर्तमान काल में व्याप्त जड़ता तथा शिथिलता और भविष्य के कार्यक्रमों का आलोचनात्मक ढंग से अच्छा विश्लेषण किया गया है। इस अवसर पर डा. भवानी लाल भारतीय का प्रभावशाली उपदेश हुआ।

प्रभु मेरे करो सुपना साकार

☐ ले० लीला राम [illegible], प्रचार मन्त्री, आर्य समाज फाजिल्का

प्रभु से करूं बेनती जोड़के दोनों हाथ।
सुपने की करो पूर्ति हे नाथों के नाथ॥

भजन

प्रभु मेरे करो सुपना साकार।
होवै उन्नत देश भारत विश्व में बड़ाई हो।
रोजी रोटी सबको मिले, डबल कमाई हो॥
बैर-भाव छोड़ें सारे, कदे न लड़ाई हो॥
राम लखन से भाई हों, सच्चा होवे प्यार-1।
प्रभु मेरे, सपने... .
गायत्रीमन्त्र बोलैं, ऐसी बुद्धि दे भगवान।
सत् असत् जानने की प्रत्येक करे पहचान॥
वेद मन्त्रों का करैं उच्चारण, शास्त्रों का होवै ज्ञान।
वेद पढ़ें बने महान्, भारत के नर-नार॥2॥
प्रभु मेरे, सपने
दयाभाव हो सबके मन में, कोई ना अत्याचारी हो।
सूझ-बूझ रखने वाले, भारत के नर-नारी हो॥
मीठे-मीठे शब्द बोलैं, मीठी बोली प्यारी हो।
ईश्वर के पुजारी हों, दूर करे अन्धकार॥ 3॥
प्रभु मेरे, सपने.
राज-काज करने वाला, जनता हित काम करै
स्वार्थ का त्याग करके, भला प्रातः शाम करै।
भ्रष्टाचार में लिप्त होकै, कति ना बदनाम करै।
प्रार्थना "लीलाराम" करे, शुद्ध पवित्र हो सरकार॥ 4॥
प्रभु मेरे, सपने

बहादुरगढ़ में ध्यानयोग शिविर

आत्मशुद्धि आश्रम बहादुर गढ़ में ध्यान योग शिविर, गायत्री-योग यज्ञानुष्ठान व योग सम्मेलन 23 दिसम्बर से 30 दिसम्बर 2001 तक होगा। जिसमें स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती शिविराध्यक्ष होंगे और स्वामी धर्म मुनि जी दुग्धाहारी यज्ञ के ब्रह्मा होंगे। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि आदि अष्टांग योग का क्रियात्मिक प्रशिक्षण दिया जाएगा। —शिव कुमार शास्त्री

ओंकार दोहावली

☐ ले० पं. वेद प्रकाश शास्त्री 4-ई, कैलाश नगर, फाजिल्का, पंजाब

ओंकार सबसे प्रथम, मन में कीजिए ध्यान।
ओम् ही के जाप से, अवश्य मिले भगवान्॥1॥
ओम् नाम भगवान् का, सर्वानन्द निधान।
सब नामों में श्रेष्ठ है, करते 'वेद' बखान॥ 2॥
अकार सत् स्वरूप है, उकार चित् स्वरूप।
मकार आनन्दपूर्ण वह, सच्चिदानन्द अनूप॥3॥
केवल सत् है प्रकृति, सत् चित् जीवन स्वरूप।
ओम् है आनन्दमय, चेतन सत्य स्वरूप॥4॥
मन वाणी के योग से, ओम् नाम उच्चार।
भावपूर्ण आनन्द में, भर कर प्रेम अपार॥5॥
ओम् नाम का ध्यान धर, भीतर भर सद्भाव।
सर्वरक्षक ओम् को, तरो बनाकर नांव॥6॥
ओम् है अजर अमर, उसका आदि न अन्त।
निराकार और निर्लेप है, सर्वेश्वर प्रभु भगवन्त॥7॥
ओम् आप तो एक है, जानो उसके नाम अनेक।
इस भेद को जाने वही, जिसमें है विमल विवेक॥8॥
ओम् दया का सिन्धु है, कर देगा तव उद्धार।
ओम् की कर साधना, नित वेदो के अनुसार॥9॥
ओम् उपासक हुए सभी, श्री राम कृष्ण भगवान्।
दयानन्द सम ऋषि मुनि, था जिनका उत्तम ज्ञान॥10॥
ओम् ओम् जपते रहे, तन मन की सुधि खोय।
प्रेम करे जो ओम् से, ओम् उसी का होय॥11॥
ओम् नाम सबसे बड़ा, इससे बड़ा न कोय।
'वेद' ओम् का सुमिरन करे, दुःख काहे को होय॥12॥

प्रभु बिन अधूरा जीवन मेरा

☐ ले० श्री यशपाल आर्य, जालन्धर

प्रभु बिन अधूरा जीवन मेरा।
सभी ओर दिसदा घोर अंधेरा॥

1. बालक बिन दिसदी माता सूनी।
भाई बिन दिसदी बहना सूनी॥
पिया बिन तड़पे कोई देवी,
कैसे कटे-कटे अब जीवन मेरा। प्रभु बिन........

2. बिना ज्ञान के साधु सूना।
शिष्य भी दिसदा गुरु बिन सूना॥
बिना ज्ञान दे नर देह सूनी।
हृदय भर दो-2 ज्ञान से मेरा। प्रभु बिन........

3. तेरी कृपा हो जाए दाता,
तू ही मेरा पिता तू ही मेरी माता।
जन्म-जन्म का तुझ से नाता।
सिमरण करे-करे "यश" केवल तेरा॥

4. तेरी कृपा से नर तन पाया,
शरण तेरी प्रभु जी मैं आया।
कण-कण में तू आप समाया।
पार करो अब मेरा बेड़ा।
प्रभु बिन........

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | कृण्वन्तो विश्वमार्यम् | यजुर्वेद

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष : 292926

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—55 अंक : 23 सृष्टि संवत 1960853102, 11 से 18 नवम्बर 2001 दयानन्दाब्द 178

दीपवाली के पावन पर्व पर हार्दिक शुभ कामनाएं

दीपावली के पावन पर्व व महर्षि दयानन्द के 118वें बलिदान दिवस को सभी आर्य समाजें 14-11-2001 को समारोह पूर्वक मनाएं।

दीपावली के पावन व मंगलमय अवसर पर सभी आर्य बन्धुओं व बहनों को हार्दिक बधाई।

शुभ कामनाओं सहित

हरबंस लाल शर्मा — *सभा प्रधान*

सुरेन्द्र नाथ मुरगई — *सभा महामन्त्री*

समस्त सभा अधिकारीगण व अन्तरंग सदस्य

राष्ट्रीय अस्मिता के उद्घोषक-दयानन्द सरस्वती

ले० श्री भवानी लाल भारतीय, 8/423 नन्दनवन, जोधपुर

हमारे देश में सामान्यतया यह धारणा प्रचलित है कि संन्यासी के लिए कोई सांसारिक कर्त्तव्यकर्म शेष नहीं रहता। वह पुत्रैषण (परिवार), वित्तैष्णा (धन-सम्पत्ति) तथा लौकेषणा (ख्याति एवं प्रशंसा) से ऊपर उठ कर स्वयं परमात्मा तक पहुंचने के लिए प्रयत्नशील रहता है। स्वामी दयानन्द ने परिजनों की ममता का त्याग तो तभी कर दिया था जब भरी जवानी में अपने घर का त्याग कर उन्होंने वैराग्य का मार्ग लिया। परिवार को छोड़ने के साथ ही उन्हें पिता की सम्पत्ति से भी छुटकारा मिल गया। आगे चल कर उन्होंने देशोत्थान तथा समाज सुधार का जो कार्यक्रम अपनाया तथा अपने कर्त्तव्यपालन के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों तथा बाधाओं को सहा। उससे स्पष्ट हो गया कि निन्दा-स्तुति से ऊपर उठकर लोकहित तथा समाज की भलाई के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं। वस्तुतः दयानन्द एक ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने राष्ट्र एवं सम्पूर्ण मानवता का हितचिन्तन करते हुए अपनी जीवन यात्रा पूरी की।

स्वामी दयानन्द की एक बड़ी देन है भारत की सुप्त राष्ट्रीय चेतना को पुनः जागृत करना। इसके लिए उन्होंने देशवासियों को स्वधर्म, स्वसंस्कृति, स्वराष्ट्र तथा स्वभाषा को अपनाने पर बल दिया। दयानन्द की दृष्टि में धर्म किसी निश्चित कर्मकाण्ड या नैतिक मूल्यों का पालन ही नहीं है अपितु वे सत्याचरण, न्याय, पक्षपात-त्याग को धर्म कहते हैं। धर्म के इन लक्षणों में उन्होंने वेदाज्ञा के पालन को भी रखा है। जब वे वेदाज्ञा के पालन की बात करते हैं तो उनका अभिप्राय यही होता है कि प्रतिपादित शिक्षाएं देना जाति वर्ग या सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं हैं। वेदों में आचरण की जिन बातों का उल्लेख हुआ है वे मनुष्य मात्र के द्वारा स्वीकार किये जाने योग्य हैं इसलिएं वेदोक्त धर्म को मानवधर्म का पर्याय कहा जा सकता है1 यों उन्हें भारत के अन्य धर्म ग्रन्थों में उल्लिखित धर्म की सभी परिभाषाएं और लक्षण मान्य हैं और वे इन्हें अंगीकार करने पर जोर देते हैं। मनुस्मृति में उल्लिखित धर्म के दस लक्षणों की चर्चा करते हुए उन्होंने अहिंसा को धर्म का प्रमुख ग्यारहवां लक्षण बताया।

दयानन्द की दृष्टि में किसी गुरु, आचार्य या कथित पैगंबर द्वारा प्रवर्तित मार्ग मत, पन्थ या सम्प्रदाय की श्रेणी में आता है। सम्प्रदाय या पन्थ की शिक्षाओं में अनेक ऐसी बातें भी होती हैं जो सार्वजनिक या सर्वजन स्वीकार्य नहीं होतीं। कर्मकाण्ड और पूजा-उपासना की भिन्नता ही सम्प्रदाय या पन्थ को जन्म देती हैं। स्वामी दयानन्द ने माना है कि सभी मत, पन्थ और सम्प्रदाय धर्म के उन मूल तत्त्वों को यथावत, स्वीकार करते हैं जो नैतिकता तथा सदाचरण के पालन में सहायक होते हैं। यथा, सत्य, [illegible]हिंसा न्याय, दया, प्राणिमात्र के [illegible] करुणा तथा मैत्री का भाव आदि धर्म के वे प्राण तत्त्व हैं जिनके अभाव में कोई भी कथित धर्म या सम्प्रदाय अपना अस्तित्व बनाये नही रख सकता। स्वामी दयानन्द ने विभिन्न मत पन्थों की यदि आलोचना की है तो उनका आलोचना कुठार उन्हीं धारणाओं और मान्यताओं पर गिरा है जो अवैज्ञानिक हैं, अंधविश्वास युक्त हैं तथा सृष्टिक्रम के विपरीत होने के कारण अमान्य हैं। इसीलिए वे सभी मत पन्थों के प्रचारकों तथा आचार्यों से अनुरोध करते हैं कि वे मिल बैठ कर अपने पारस्परिक मतभेद भुलाएं तथा ऐसे मार्ग की तलाश करें जिससे मानव जाति का व्यापक हित साधन हो। उन्होंने यदि भारत में उत्पन्न महाभारत के उत्तरयुगीन मत-मतान्तरों की आलोचना की तथा सैमेटिक मजहबों के बारे में टीका की तो उनका आशय यह नहीं था कि इन मतों के अनुयायी अपनी मान्यताओं का तुरन्त त्याग कर वैदिक धर्म की ध्वजा के नीचे आ जायें। वे इसे सम्भव भी नहीं मानते थे। उनका प्रयोजन तो इतना ही था कि विभिन्न मत सम्प्रदायों के बीच अनुराग विराग के जो कारण हैं, मताग्रह तथा सम्प्रदाय विशेष के प्रति अनुयायियों में जो पूर्वाग्रह या कहीं-कहीं दुराग्रह लक्षित होता है उसके कारणों की मीमांसा की जाये तथा यथासम्भव विभिन्न सम्प्रदाओं के आचार्य परस्पर विषमता पैदा करने वाले इन तत्त्वों के निराकरण का उपाय ढूढें।

प्रचलित हिन्दू धर्म के बारे में उनकी धारणा कि इसमें कुछ ऐसे विश्वासों रुढ़ियों तथा अंध-धारणाओं का प्रवेश हो गया है जिसके कारण वह अपनी शक्ति और सामर्थ को खो बैठा है। अपनी इन्हीं दुर्बलताओं के कारण सबल प्रतिपक्षी उस पर प्रहार करते हैं जिससे धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहन मिलता है। उन्होने इसी तथ्य को लक्ष्य में सब का वेद धर्म (जिसे व्यापक धर्म में हिन्दू धर्म कहा जाता है। की ऐसी व्याख्या की जिस पर किसी प्रकार के आरोप या आक्षेप की गुंजाइश नही थी। साथ ही उन्होंने हिन्दू धर्म की दुर्बलताओं के कारण उस पर प्रहार करने वाले सैमेटिक मतों के प्रचारकों को भी चेतावनी दी कि आप जिस मत का प्रचार कर रहे हैं इसमें भी न्यूनताएं तथा कमजोरियां हैं, इसलिए कांच के घर में बैठ कर दूसरों पर पत्थर बरसाने का कोई औचित्य नहीं हैं। इस प्रकार उन्होंने भारत के सनातन धर्म के प्रोज्जवल, परिशुद्ध तथा दुर्जेय स्वरूप को लोगों के सामने रखा और कहा कि मानवता के मूलभूत तत्त्वों को स्वयं मे समाहित और समायोजित करने वाले वेदोक्त धर्म के प्रति यदि देशवासी अपनी अविचल निष्ठा और श्रद्धा रखेंगे तो उन्हें किसी पाकीय मत सम्प्रदाय के प्रचारक की मिथ्या आलोचना से खिन्न अथवा हताश होने का कोई कारण नहीं रहेगा। स्वधर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ कर निष्ठापूर्वक पालन करने पर जोर देना दयानन्द की महत्वपूर्ण शिक्षा थी।

सच्चे शिवोपासक दयानन्द

लेखक- डा. अशोक आर्य, मित्र विहार, आर्य कुटीर, मण्डी डबवाली (सिरसा) हरियाणा

विश्व के प्रत्येक भाग मे चूहो से भारी नुकसान होता है। यह किसी भी वस्तु पर अपने तीखे दात चला देते है। विशेष रूप से जहां मीठे पदार्थ रखे हो, वहा इनका आतंक और भी बढ जाता है। सभी तरफ गन्दगी फैलाना व मलमूत्र त्यागना यह अपना अधिकार समझते हैं, तो भी विश्व के किसी व्यक्ति ने कभी इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। इस त्रासदी को देख, दोष भांपने वाला यदि कोई महापुरुष इस विश्व मे हुआ है तो वह मूलशकर के रूप मे महर्षि दयानन्द सरस्वती ही थे।

शिवरात्रि की गहन अंधेरी रात्रि को कर्षण जी नामक ब्राह्मण अपने बेटे को न केवल शिव का उपवास रखने पर बल देता है अपितु रात्रि को शिव-मदिंर मे शिव-पिण्डी के पास जागरण करने का आदेश अपने 14 वर्षीय पुत्र को दे डालता है।

रात्रि की नीरवता का लाभ उठाते हुए बिल मे छुपे बैठे चूहो ने अपने अपने बिलो से निकल कर इधर उधर कूदना फादना आरम्भ कर दिया, भोग्य पदार्थो को जूठा करने लगे, शिव-पिण्डी कर उछल कूद मचाने लगे तथा स्थान-स्थान पर मलमूत्र त्यागने लगे। नन्हा सा बालक मूलशकर यह देख कर सोचने लगा कि जो शिव इन छोटे-छोटे चूहो से भी अपनी रक्षा नही कर सकता, वह सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान परमात्मा कैसे हो सकता है ? बस यह विचार मन मे आते ही, सच्चे शिव की खोज उत्कट अभिलाषा लिये वहा से उठा और सीधा घर की ओर चल दिया। अभी वह कोई निर्णय भी न ले पाया था कि उसके प्राणो से भी प्यारी बहन तथा प्रिया चाचा की मृत्यु ने बालक को उद्वेलित कर दिया। स्थान-स्थान पर भटकते हुए बीहड़ जंगलो, नदी नालो व पहाडो की खाक छानते हुए अन्त मे गुरु विरजानन्द दण्डी से सच्चे ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से ससार मे अज्ञान, अन्याय तथा अभाव को मिटाने का संकल्प लेकर कार्य क्षेत्र मे उतरे।

कार्यक्षेत्र मे उतरते ही महर्षि ने पाया कि भारतीय समाज अति दीन, हीन व क्षीण अवस्था मे है। जिस समाज को अनेक बीमारियां, रूढ़ियां तथा अन्धविश्वास दीमक की तरह खाए जा रहे थे, इस समाज को इन बुराईयो से छुटकारा दिलाना उस महामानव ने अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते हुए पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड कर अपना कार्य आरम्भ कर दिया। लोगो ने उनके नवीन (प्राचीन) व क्रान्तिकारी विचारो को आरम्भ मे न समझा। इस कारण उन्होने धुन के धनी इस सन्यासी पर पत्थर बरसाए, लाठियां चलाई, साप फैंके, यहां तक कि अनेक बार उन्हे विषपान भी करना पडा, परन्तु यह 'वीर संन्यासी' किसी भी बाधा से घबराने के स्थान पर अड गया। इन सब भूले भटके लोगो को सुमार्ग गामी बनाने के लिए एतदर्थ उन्होने सर्वप्रथम भारत के अपने प्राचीन ईश्वरीय ज्ञान वेद ग्रन्थो को खोज निकाला तथा यह जयघोष लगाया-"हे भारत के लोगो ! यदि तुम कल्याण चाहते हो, तो वेदो की ओर लौटो।" यह सत्य-ज्ञान है, जिस पर चलकर तुम अपना कल्याण कर सकते हो। इस सत्य का प्रचार करने के लिए उन्होने स्थान-स्थान पर सभाएं की-भाषण दिये। शास्त्रार्थ भी किये। अन्त मे ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका लिखकर वेद का सच्चा ज्ञान जन-जन के लिए सुलभ कराया।

इसी समय ऋषि ने पाया कि देश मे महिलाओं की हालत बहुत ही शोचनीय है। सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह तथा बहु-विवाह प्रथा ने महिलाओ की हालत बहुत ही शोचनीय बना रखी है। इस पर भी उन्हे शिक्षा के अधिकार से वंचित कर अंध-कूप में धकेला जा रहा है। नारी की इस अवस्था को देखकर ऋषि रो दिये। उन्होने नारी उत्थान के लिए अभियान आरम्भ किया। अन्धविश्वासो, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह तथा बहु विवाह के विरुद्ध जोरदार [illegible] उठायी, नारी शिक्षा पर बल दिया [illegible] विधवा महिलाओ को पुन: विवाह का अधिकार देकर उनका उत्थान किया।

महर्षि ने स्वयं गुजराती होते हुए भी यह समझा कि पूरे देश को एकता की कड़ी में बाधने की शक्ति केवल हिन्दी मे ही है, क्योकि यह सब जगह समान रूप से समझी जाती है। इसलिए स्वामी जी ने हिन्दी को अपने लेखन, प्रचार व पत्र-व्यवहार का माध्यम बनाया। स्वाधीनता का सबसे पहले बिगुल बजाने का श्रेय भी महर्षि दयानन्द सरस्वती को ही जाता है। अछूतो से असम्बद्धता के कारण जाति के लाल दूसरो की झोली में जा रहे थे इससे जाति को बचाने के लिये उन्हे जाति का अंग बनाया।

आज पुन: यह सब बुराईयां सिर उठाने लगी हैं। आर्यो को एक बार फिर एकजुट होकर इन समस्याओं से जूझने की तैयारी करनी चाहिये।

सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता में शानदार जीत

बडे हर्ष का विषय है कि बठिंडा नगर में समाज सेवा के कार्यो मे संलग्न रोट्रैक्ट क्लब द्वारा पिछले सप्ताह आयोजित सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता मे हमारे आर्य कन्या विद्यालय भठिण्डा की छात्राओ ने प्रथम द्वितीय व अन्य अनेक पुरस्कार प्राप्त करके विद्यालय का गौरव बढाया। इस प्रतियोगिता मे नगर के लगभग 25-30 स्कूलो के 500 के लगभग बच्चो ने भाग लिया। इस लिखित प्रतियोगिता मे हमारे विद्यालय की छात्रा-शिवानी सुपुत्री श्री अशोक कुमार ने प्रथम पुरस्कार स्वरूप 1200/-रुपये नकद एक गिफ्ट (टिफिन), एक मोमैन्टो तथा एक सर्टिफिकेट प्राप्त किया। तथा कु शबनम सुपुत्री श्री समसुल हक असारी ने द्वितीय पुरस्कार स्वरूप 900/-रुपये नकद एक गिफ्ट (टिफिन) एक मोमैन्टो तथा एक सर्टिफिकेट प्राप्त किया। इनके अतिरिक्त खुले एक मुकाबले मे भी श्रोताओं से पूछे गये प्रश्नो मे 6 छात्राओ ने कठिन प्रश्नो के उत्तर देकर अनेको पुरस्कार प्राप्त करके विद्यालय की कठिन प्रश्नो के उत्तर देकर अनेको पुरस्कार प्राप्त करके विद्यालय की शान बढाई। इस शानदार सफलता का श्रेय विद्यालय की प्रधानाचार्या श्रीमती शान्ति जिंदल जी को जाता है, जो व्यक्तिगत रुचि लेकर बच्चो का सामान्य ज्ञान बढाते रहते हैं। तथा अध्यापिका कु शिल्पा के योगदान को भुलाया नही जा सकता जिन्होंने दिन रात एक करके सब साधनो से सामान्य ज्ञान के प्रश्न एकत्र करके बच्चो को तैयारी करवाई।

एक अन्य समाज सेवी सस्था "भारत विकास परिषद" द्वारा आयोजित राष्ट्रीय समूहगान प्रतियोगिता मे हमारे विद्यालय की वरिष्ठ टीम ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

इसी परिषद द्वारा आयोजित "भारत को जानो" प्रश्न-मन्च प्रतियोगिता में भी तृतीय स्थान प्राप्त करके बच्चे समय-समय पर स्कूल का नाम रोशन करते रहे हैं। अत: प्रबन्धक समिति, प्रिंसीपल, स्टाफ, अभिभावक व आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब सभी बधाई के पात्र है।

अमृतसर में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज पुतलीघर अमृतसर के तत्वावधान मे श्री इन्द्र कुमार के निवास स्थान पर पुतलीघर मे पारिवारिक सत्सग हुआ। यज्ञ के यज्ञमान श्री सुधीर जी सपत्नीक बने, लगभग 150 आर्य पुरुषो ने भाग लिया। इस अवसर पर श्री ओम प्रकाश जी आर्य, माता जगदीश आर्य, श्रीमती राकेश आर्य के उपदेश हुए। जिनका जनता पर बहुत प्रभाव पडा। इस सत्सग मे युवक व युवतियो ने भी भाग लिया। श्री ओम प्रकाश जी आर्य ने वैदिक सस्कारों के महत्व पर प्रभावशाली प्रकाश डाला।

--सुधीर कुमार आर्य

सम्पादकीय.....

महर्षि का बलिदान दिवस

दीपावली पर्व को हम महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस के रूप में बहुत देर से मनाते आ रहे हैं क्योंकि इस दिन 1883 में महर्षि ने सायं काल लगभग 6 बजे जब अन्य लोग दीपमाला कर रहे थे अपने प्राण त्यागे थे। सभी आर्य बन्धु जानते हैं कि यह महर्षि की स्वभाविक मृत्यु नहीं थी बल्कि उन्हें उनके विरोधियों ने कूट जहर दिलवाकर उनके पाचक से मरवाया था।

महर्षि दयानन्द अखण्ड ब्रह्मचारी महान तपस्वी, महान योगी व महान बलशाली थे। वह इतनी छोटी सी आयु में मरने वाले नहीं थे मात्र 59 वर्ष की आयु में वह हमसे जुदा हो गए जबकि इस प्रकार के योगी, संयमी व तपस्वी सौ वर्ष से भी अधिक आयु को आज भी आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। महर्षि बहुत ही दीर्घ जीवन प्राप्त करते यदि उन्हे कूट-विष न दिया जाता। वैसे उन्हें मारने का विरोधियों ने अनेको बार प्रयास किया। कहीं उनकी बली दी जाने लगी थी परन्तु अपने बुद्धिबल व शारीरिक शक्ति से वह वहां से बच निकले, कहीं उनके ऊपर विषैले सर्प फैंके गए, कहीं उन्हें पान में विष दिया गया, कहीं उनके ऊपर तलवार से प्रहार किए गए, कहीं उन्हें दो दो पहलवानों ने मारने के लिए नदी में फैंकने का प्रयत्न किया। कहने का भाव है कि अनेकों बार उन्हें विरोधियों ने मारने का प्रयत्न किया परन्तु वह हर-बार शत्रुओं को पछाड़ कर आगे बढ़ते रहे परन्तु अन्त में शत्रुओं ने ऐसा घातक प्रहार किया कि इससे वह अपने आप को बचा नहीं सके। इस लिए यह उनकी साधारण मृत्यु नही थी बल्कि उन्हें मारा गया था और उन्होंने अपने देश के लोगों की अज्ञान अन्धकार से व पाखण्डो से रक्षा करते हुए, उन्हे सन्मार्ग दिखाते हुए उनका चरित्र निर्माण करते हुए अपना बलिदान दिया था।

सच्ची बात कड़वी होती है यह सभी को पता है। महर्षि दयानन्द सच्ची बात कहते हुए किसी से भी डरते नहीं थे चाहे वह उस समय के भारत के शासक अंग्रेज हों या कोई उस समय का सत्ताधारी राजा महाराजा हो। वह जीवन भर निडर होकर कार्य करते रहे।

महर्षि दयानन्द ने देश की आजादी के लिए देश की रक्षा के लिए, नारी उत्थान के लिए, अनाथों, विधवाओं और अछूतों के लिए जो कार्य किया वह स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। उन्होंने सोए हुए भारत को फिर से जगा दिया। सभी भारत वासियों को कर्त्तव्य बोध सिखाया और अज्ञान अन्धकार मिटा कर सभी के हृदयों में ज्ञान का प्रकाश किया। जाते-जाते भी गुरुदत्त जैसे घोर नास्तिक व्यक्ति को आस्तिक बना गए। जिस गुरुदत्त को कोई तर्क में नहीं हरा सका वह गुरु दत्त उनके सामने निरूत्तर होकर रह गया और अन्तिम समय उनकी मृत्यु का दृष्य देख कर नास्तिक से आस्तिक बन गया।

महर्षि दयानन्द के भारत वर्ष पर बहुत बड़े-बड़े अहसान हैं। हम तो भूल गए थे कि हमारे देश का नाम भारत भी है, हम तो इसे हिन्दुस्तान कह कर पुकारने लग गए थे। यह तो किसी को भी पता नहीं था कि इसका ना आर्यवर्त भी है और इस देश के रहने वाले लोगों का नाम आर्य है। हमे तो वह हिन्दु शब्द ही प्यारा लगने लगा था जिनका अर्थ डाकू चोर और लुटेरा है। महर्षि ने बताया कि हम हिन्दु नहीं आर्य हैं और हमारे देश का नाम आर्य वर्त है। महर्षि ने उन वेदों को भी ढूंढ निकाला जिनके बारे में लोग कहा करते थे कि उन्हें लेकर राक्षस लोग पाताल लोक में चले गए। महर्षि ने घोषणा की कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और उन्हें कोई राक्षस उठा कर नहीं ले गया वह भारत में ही हैं। जर्मन से मूल वेद मंगवा कर महर्षि ने वेद भाष्य करना आरम्भ किया और उन्हें अजमेर से छपवाना भी आरम्भ कर दिया। लुप्त हुए वेदों के ज्ञान को महर्षि ने फिर जन-जन तक पहुंचा दिया।

14 नवम्बर 2001 को महर्षि का बलिदान दिवस है इस दिवस को मनाते हुए और दीपावली के पर्व को मनाते हुए महर्षि के जीवन से प्रेरणा लेकर अब हम भी अपने जीवन का निर्माण करें।

-धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालय अध्यक्ष

श्री सरदारी लाल जी आर्य प्रतिनिधि पंजाब में शामिल और उन्होंने अपनी तथाकथित सभा भंग की

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का त्रिवार्षिक चुनाव 17-12-2000 को सभा कार्यालय में सर्व सम्मति से सम्पन्न हो गया था जिसमें सर्व सम्मति से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा आगामी तीन वर्ष के लिए चुने गए थे। तब से निरन्तर आर्य प्रतिनिधि सभा उनकी देख रेख में कार्य कर रही है और आगे बढ़ रही है।

श्री अश्विनी कुमार शर्मा ने कोर्ट में शपथ पत्र लिख कर दे दिया था कि मैं श्री हरबंस लाल जी शर्मा को आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का प्रधान मानता हूं और 17-12-2000 को हुए चुनाव को वैध मानता हूं। और स्कूल, कालेजों की कमेटियां बनाने व पुनर्गठन करने का अधिकार उसी सभा को है जिसके प्रधान पं हरबंस लाल जी शर्मा हैं। श्री अश्विनी कुमार के ऐसा कोर्ट मे लिख देने के पश्चात् भी वह तथाकथित सभा चलती रही जिसके प्रधान श्री सरदारी लाल जी थे यहा तक कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के 3 व 4 नवम्बर 2001 को होने वाले चुनाव के लिए इनकी तरफ से 15 प्रतिनिधि भी भेज दिए गए थे और श्री अश्विनी कुमार शर्मा द्वारा उन्हें मान्यता दिलवाने का प्रयास किया जा रहा था परन्तु पं. हरबंस लाल जी शर्मा सभा प्रधान ने एक प्रतिनिधि मण्डल को जिसमे चौ ऋषिपाल सिंह एडवोकेट सभा उप प्रधान, श्री सुदर्शन शर्मा सभा उप प्रधान, श्री प्रेम भारद्वाज सभा कोषाध्यक्ष तथा श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा रजिस्ट्रार थे उन्हे चुनाव अधिकारी एडमीस्टेटर, रिसीवर श्री रामफल जी बासल एडवोकेट को मिलने दिल्ली भेजा। श्री राम फल जी को न्यायालय द्वारा सभी अधिकार दिए गए थे उनके सामने सभा के प्रतिनिधि मण्डल ने अपना सारा पक्ष प्रस्तुत किया और सभी दस्तावेजो के आधार पर उन्हे यह समझाया कि सार्वदेशिक सभा के प्रधान व अन्तरंग सभा ने उसी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को मान्यता दी हुई हैं जिस के प्रधान श्री पं हरबंस लाल जी शर्मा हैं। इसके साथ ही अश्विनी कुमार शर्मा अपने कुचक्र वाले रास्ते से हट कर सच्चाई को स्वीकार कर चुका है और वह अदालत में यह मान चुका है कि वह उसी सभा को मानता है जिसके प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा हैं। इसके साथ ही श्री सरदारी लाल जी जिस तथाकथित सभा के प्रधान चले आ रहे थे उन्होंने भी 27 10.2001 को आपको (श्री बांसल जी को) एक पत्र लिख कर दिया था उन्होंने भी उसमें लिखा है कि मैं आर्य समाज के प्रचार व प्रसार को प्राथमिकता देते हुए और आर्य समाज के संगठन को सामने रख कर उस तथाकथित आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को तत्काल रूप से भंग करता हूं जिस का मैं प्रधान हूं तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुरूदत्त भवन चौक किशनपुरा जालन्धर जिसके प्रधान श्री पं हरबस लाल जी शर्मा हैं उसमें सम्मलित होता हूं तथा उनकी अध्यक्षता मे कार्य करने का प्रण लेता हूं और अपने द्वारा सार्वदेशिक सभा में भेजे गए प्रतिनिधियों को वापस लेता हूं। यह सभी दस्तावेज हमने श्री बासल जी के सामने प्रस्तुत किए।

इस सब बातों को सुनने के बाद व दस्तावेज पढ़ने के पश्चात् श्री रामफल जी बांसल ने आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के 15 प्रतिनिधि स्वीकार कर लिए और उन्होंने 3-4 नवम्बर 2001 को सार्वदेशिक सभा के साधारण अधिवेशन में भाग लिया।

पंजाब में इस समय एक ही आर्य प्रतिनिधि सभा है जो पंजाब की सभी आर्य समाजों व शिक्षा संस्थाओं को नियन्त्रण में रख कर चला रही है सभी आर्य बन्धुओं को व बहनों को इस सभा को अपना पूरा सहयोग देना चाहिए। अपने सभी पुराने मतभेद भुला कर इस समय हम सब को एक हो जाना चाहिए। जिस प्रकार श्री सरदारी लाल जी आर्य ने अपने सब मतभेद भूला कर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को अपना पूरा सहयोग देने की घोषणा की है उसी प्रकार वह सभी लोग जो किन्हीं विशेष कारणों से सभा के संगठन से अलग हो गए हैं वह फिर से सभा के साथ जुड़ जाएं और आर्य समाज व सभा की उन्नति के लिए कार्य करें ऐसी मेरी उनसे प्रार्थना है।

-देवेन्द्र नाथ शर्मा (रजिस्ट्रार)

प्रभु भक्त दयानन्द

□ लेo श्री राज कुमार महाजन, पठानकोट

स्वामी दयानन्द जी महाराज इस युग के अद्वितीय महापुरुष हैं। इस ससार मे समय-समय पर आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न महापुरुषो ऋषि-मुनियो और महानात्माओ का आगमन इस भारत की पवित्र भूधरा पर हुआ, जिन्होने इस ससार के मानव समाज को कल्याण व सन्मार्ग पर चलाया। ऐसे सभी महान व पुण्य आत्माओ व शक्तियो के प्रति पूरी मानवता आस्था, विश्वास, श्रद्धा व कृतज्ञता के सुमन भेट करती है।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज का प्रादुर्भाव 1824 में गुजरात में टकारा नाम के छोटे से नगर मे औदीच्य ब्राह्मण कुल मे हुआ। महर्षि का जन्म नाम मूल शंकर तथा उनके पिता जी का नाम कर्षण जी तिवारी था। 30 अक्तूबर सन् 1883 को दीपावली वाले दिन आपने अपने नश्वर शरीर को छोड़ दिया। मूल शंकर बाल्यकाल से सुशील सदाचारी धर्मप्रिय, श्रद्धावान तथा ईश्वर के परम भक्त थे। इनके पिता जी ने अपने इस प्रिय पुत्र को 5 वर्ष की आयु में ही यजुर्वेद तथा अन्य धर्म शास्त्रो के मन्त्र व श्लोकादि कण्ठस्थ कराना प्रारम्भ कर दिए थे। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य प्रभु भक्ति तथा परमात्म-पद प्राप्ति ही था। सिन्ध के प्रसिद्ध सन्त टी एल वासवानी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "पथ-प्रदीप" में लिखते हैं "महर्षि दयानन्द का ईश्वर पर अटल विश्वास था। उस सच्चिदानन्द चेतन स्वरूप आत्मा की पूजा करना ही दयानन्द का परम लक्ष्य था।" किन्तु जहां वे प्रभु के अनन्य भक्त थे, वहां वे अन्ध श्रद्धालु नहीं थे। वे भगवान के नाम पर किए जाने वाले मिथ्या स्वार्थ साधक आडम्बरो को पसन्द नहीं करते थे। वे केवल परमेश्वर का वाचिक जप करना मात्र ही ईश्वर भक्ति नहीं मानते थे। भगवान के पवित्र नाम का अर्थ विचार पूर्वक जप करना और तदनुकूल प्रभु की गुण गरिमा को अपने जीवन में चरितार्थ करना ही प्रभु की सच्ची भक्ति बताते थे। सचमुच ऐसा ऋषि जिसका सारा जीवन ही प्रभुमय था। वे केवल प्रभु भक्त ही नहीं अपितु "भक्त शिरोमणि" कहलाने के पात्र है। जब वे प्रेम से मग्न हो प्रभु का यशोगान करने लगते तो उनके नेत्रो से भगवदनुराग की अविरल अश्रु धारा बहने लगती थी और जब वे प्रेम पुलकित हृदय से प्रभु के पवित्र प्रणव नाम का नाद भरी सभा मे गुंजाते तो सारी सभा मे प्रभु प्रेम की लहरे चलने लगती। शान्ति और आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। वे सारी की सारी राते प्रभु-चिन्तन तथा उनके नाम स्मरण मे ही बिता देते थे। अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ-प्रकाश" के प्रथम सम्मुलास मे स्वामी दयानन्द ने केवल ईश्वर की ही चर्चा की है और 100 से अधिक नामों का उल्लेख किया है।

महर्षि का हृदय करुणा तथा दया से भरा रहता था। महाराज जब देखते हैं कि एक अकिंचन माता अपने दिवङ्गत पुत्र को नदी में बहा कर उसके कफन तक को भी उतार अपने साथ लिए जा रही है तो उनसे नहीं रहा जाता। उस निर्धन माता की उस दयनीय दशा पर वे जोर-जोर से रोने लगते हैं। उनके नेत्रों से अविरल अश्रु धाराओ का प्रवाह बहने लग जाता है। महाराज जब गाड़ी में जुते हुए दलदल में फंसे बेजुबान बैलों पर गाड़ीवान के बर्बरता पूर्ण डण्डे पड़ते देखते हैं तो उनका हृदय उन बैलों की व्यथा से व्यथित हो जाता है। अपने वस्त्र उतार कर उस दलदल में घुस जाते हैं और बैलो को गाड़ी से पृथक कर अकेले ही गाड़ी को खींच कर बाहर निकाल देते हैं। स्वामी दयानन्द ने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। स्वामी जी का स्वभाव अति शान्त, क्षमाशील तथा परम उदार था। ऋषि जीवन में उनकी क्षमाशीलता के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जगन्नाथ जिसने विष दूध में मिला कर ऋषिवर को पिलाया। उस निज प्राण हरता पापी को यह कह कर कि "जिन रुपयों के लोभ, से तूने मुझे घातक विष दिया है वो रुपये ले और यहां से तुरन्त चला जा। अन्यथा फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया जाएगा।" उसे नेपाल की ओर भेज देते हैं। भला इस से बढ कर अपने प्राण हर्ता पर क्षमा प्रदान करने और दयाभाव दर्शाने का ज्वलन्त उदाहरण अन्यत्र कहां मिले ा प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो ओ३म् का उच्चारण कर गायत्री मन्त्र का उच्चारण कर के 30 अक्तूबर 1883 को दीपावली की शाम को ऋषिवर अपने प्राण छोड़ कर निर्वाण को प्राप्त हुए। हम सब आर्य जन प्रभु भक्त स्वामी जी को दीपावली पर अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। स्वामी जी ने वेद को ईश्वरीय ज्ञान बताया। प्रभु का प्रधान व निज नाम ओ३म् बताया। गायत्री मन्त्र को महामन्त्र व सद्बुद्धि का मन्त्र बताया। नमस्ते को वैदिक अभिवादन बताया। नारी को विश्व की महानतम् विभूति कह कर पुकारा। वेदो का ईश्वरीय ज्ञान देने वाले गुरु विरजानन्द ऋषि के गुरु थे। आज दीपावली पर ऋषि निर्वाण उत्सव पर समस्त आर्य नर-नारी ऋषि को प्रणाम करते हैं शत् शत् प्रणाम करते हुए इस महान् व पुण्य आत्मा को श्रद्धा सुमन भेट करते हैं।

भटिण्डा शहर में जनचेतना यात्रा

भटिण्डा शहर में जन चेतना यात्रा का भटिण्डा स्थित आर्य समाजों एव डी.ए वी. संस्थाओं द्वारा शनिवार दिनांक 3.11.01 को प्रातः 11 बजे से दोपहर 1 बजे तक आयोजन किया गया। इस यात्रा के माध्यम से भारतीय समाज में फैली हुई प्रमुख सामाजिक कुरीतियां दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या, भ्रष्टाचार, जात पात एवं नशा आदि के उन्मूलन के सम्बन्ध में सर्व साधारण को जागृत किया गया। इस यात्रा का प्रारंभ भटिण्डा जिले के सीनियर सुप्रिटेण्डेंट पुलिस श्री जे.के जैन आई पी एस. जी के कर कमलों द्वारा 'ओ३म्' ध्वज फहराकर किया गया। इस जनचेतना यात्रा के मुख्य अतिथि श्री राधेश्याम जी शर्मा उप प्रधान डी.ए वी. मैनेजिंग कमेटी थे। इस यात्रा में आर्य समाज, आर्य समाज चौक भटिण्डा आर्य समाज सिकन्दरपुरा, आर्य समाज सिरकी बाजार, महिला आर्य समाज, गुरुकुल शिल्प विद्यालय, आर्य समाज गुनियाना मण्डी आदि ने झांकियों के साथ बढ़ चढ़ कर भाग लिया। आर्य समाज आर्य समाज चौक भटिण्डा द्वारा अपने मुख्य द्वार पर यात्रा के स्वागत में एक बहुत बडा स्वागत गेट लगाया गया तथा इस यात्रा में सम्मिलित लोगो में लड्डूओं का प्रसाद वितरित किया गया। इस के साथ ही आर्य समाज के द्वार पर आर्य समाज के अधिकारी प्रो. ओ.पी. मंगला प्रधान आर्य समाज ला. वजीर चन्द जी संरक्षक आर्य जिला सभा भटि. श्री प्रेम भाटिया महामंत्री आर्य स. चौ. बाबू राम गर्ग प्रधान गुरुकुल शिल्प विद्यालय, श्री पी डी गोयल प्रधान आर्य माडल हाई स्कूल, ला कुलवन्त राय अग्रवाल प्रधान आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल, श्री नवनीत कुमार कोषाध्यक्ष आर्य समाज आदि ने माल्यार्पण द्वारा मुख्य अतिथि का अभिनन्दन किया।

यात्रा में आर्य समाज एवं डी.ए.वी. सम्बन्धित शिक्षण संस्थाओं डी.ए वी. कालेज, महात्मा हंसराज सी.सै.स्कूल, डी.ए वी. सी.सै. स्कूल, आर्य गर्ल्ज सी.सै स्कूल, आर्य माडल हाई स्कूल, गुरुकुल आर्य माडल स्कूल के प्राचार्य, अध्यापकगण, कर्मचारी वर्ग एवम् विद्यार्थियों ने यात्रा में सम्मिलित होकर बड़े जोशो खरोश के साथ समाज में फैली कुरीतियों के विरोध में नारे लगाए गए। इस यात्रा में मुख्य योगदान श्री सुभाष मडिया जी प्राचार्य डी ए वी. कालेज का रहा।

इससे पहले कि यात्रा प्रारंभ हो सभी मुख्य कार्यकर्ताओ ने अपने सिर पर भगवा पगडियां धारण की। ऐसा लगता था कि आर्य समाज एवं आठ हजार विद्यार्थियों का एक समूह इन सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ उमड़ पड़ा हो। इस यात्रा का नगर निवासियों ने भरपूर स्वागत किया एवं इसे सामाजिक कुरीतियों के विरोध में एक ऐतिहासिक आन्दोलन बताया। यह यात्रा भटिण्डा के मुख्य बाजारों में से होती हुई महात्मा हंसराज सी.सै. स्कूल के प्रांगण में सम्पन्न हुई।

मुम्बई यज्ञ के 'ओ३म् स्वाहा' पर लेखान्दोलन !

ले० श्री सत्यानन्द जी वेदवागीश

गताक से आगे

४ चतुर्थ दोष यह बताया गया कि 'स्वाहा' से पहले 'ओ३म्' लगाना वेद विरुद्ध है क्योकि वेद मे 'स्वाहाकृत हविरदन्तु देवा:' कहा गया है (पृ २५)। यहा प्रथम तो यह विचारणीय है कि 'स्वाहा कृतम्' पद मे 'स्वाहा' का शब्दरूप मे प्रयोग है अथवा अर्थरूप मे ? महर्षिजी ने यहा 'स्वाहा' का शब्द रूप प्रयोग नहीं माना है। ऋग्वेद (10 110 11) का यह मन्त्र यजुर्वेद (29.36) मे भी है। वहां महर्षि जी ने 'स्वाहाकृतम्' का अर्थ 'सत्येन निष्पादित कृत होम वा' (सत्यव्यवहार से सिद्ध किये वा होम किये से बचे) अर्थ किया है। ऐसी स्थिति मे विदुषी जी का किया अर्थ चिन्तय ही है। किंच यदि मान भी लिया जाए कि 'स्वाहाकृतम्' मे 'स्वाहा' शब्दरूप ही है तब भी उससे 'ओ३म्' साथ लगाने का खण्डन नहीं होता। क्योंकि उपरि उद्धृत चतुर्थ वरण से पूर्व मन्त्र का तृतीय चरण है-'अस्य होतु: प्रदिशि + ऋतस्य वाचि' 'अस्य ऋतस्य होतु: प्रोदिशिवाचि' (उच्चारितायां) स्वाहा कृतं हवि : देवा अदन्तु ऐसा अर्थ लगा। प्रोदिशिवाचि का अर्थ हुआ प्रदिष्ट-निर्दिष्ट वाणी के प्रयुक्त होने के पश्चात 'स्वाहा' कृत-स्वाहा शब्द लगाकर दी गई हवि: का-हविराहुति का देव लोग उपभोग करे। यह निर्दिष्ट वाक् क्या है ? वेदवाक् ही तो। क्या 'ओ३म्' शब्द वेदवाक् के अन्तर्गत नही है ? अत: 'स्वाहा' कार से पूर्व 'ओ३म्' कार से पूर्व 'ओ३म्' लगा दिया तो वह वेद विरुद्ध कैसे हो गया।

५ पञ्चम दोष बताया गया कि पिछले महासम्मेलनो मे कभी ओ३म् स्वाहा' नही बोला गया अपनी व्यक्तिगत पहचान के लिये कुछ भी आदि। यह बात भी सर्वाश मे सत्य नहीं है। सन् 1168 मे हैदराबाद के नुमाइश मैदान में हुए आर्य महासम्मेलन मे आयोजित पारायणयज्ञ मे ब्रह्मा श्री आचार्य कृष्ण जी (वर्तमान में स्वामी दीक्षानन्द जी) थे। तब पारायण वेद मन्त्रों के अन्त में 'ओ३म् स्वाहा' बोलकर आहुति दी गई थी। वेदपाठियो मे श्री ज्ञानेन्द्र जी, श्री सत्यप्रिय जी, आदि के अतिरिक्त इन पक्तियो का लेखक भी था। उस महासम्मेलन मे सर्वश्री विश्वश्रवा जी, श्री धर्मदेवजी वि मा श्री मीमासक जी आदि भी आये हुए थे। सम्भावना थी कि वे 'ओ३म् स्वाहा' का विरोध करेगे। पर वैसा नहीं हुआ। यदि विरोध किया जाता तो समाधान कर दिया जाता।

६ षष्ठ दोष यह बात कही गई कि फिर मध्य भाग मे भी 'ओ३म्' लगाइये आदि (पृ 27)। यह कोई बात नहीं है कि स्वाहा से पहले ओ३म् लगा दिया तो मन्त्र मध्य मे भी लगाया जाय। मन्त्र का अपना कथ्य है, उसके मध्य मे लगाने की आवश्यकता नहीं है। और यदि सम्भव हो तो वहां लगाया ही जाता है। क्या महर्षि जी ने मन्त्रो के अन्तर्गत आये पदो के आरम्भ मे ओ३म् लगाकर अनेक मन्त्र अहित नहीं किये ? देखिये 'यजु (3 1) के मन्त्र बनाकर उनमे छ· बार 'ओ' लगाया कि नहीं ? यजु (यजु 22 20) के एक मन्त्र काय स्वाहा (शिपिविष्टाय स्वाहा के 17 मन्त्र (वानप्र सस्कार में) बनाये कि नही? और वहा प्रत्येक के साथ ओ बोला जायेगा कि नही ? यदि कहो कि नहीं बोला जायेगा तो 'ओकार वेदेषु' और 'स्वाहात्र प्रणवादिकं मन्त्र प्रयोजयेत्' के विपरीत होगा। किंच महर्षि जी ने तो एक मन्त्र मे ही सात बार ओ का प्रयोग किया है वह है प्राणायाम मन्त्र 'ओ भू: ओ भुव:' आदि। यहां यह नहीं माना जा सकता कि इन्हे सात मन्त्र मान लेगे। महर्षि जी के शब्द हैं-'नीचे लिखे मन्त्र का जप भी करता जाय' यहा एकवचन 'मन्त्र' शब्द है। है इस एक मन्त्र मे सात बार ओ लगाने का उत्तर ? सिवाय इसके कि ओकार प्रणव है, इससे ईश-गुण-स्तवन उत्तम रीति से होता है, अत: सात बार भी लगा दिया गया।

७ सप्तम दोष बात यह कही गई कि 'हो सके तो फिर मन्त्र बोलिये ही नहीं, ओ३म् ही ओ३म् कहिये' (पृ 27)। इस पर निवेदन है कि ऐसा ही हो रहा है और प्राय: सर्वत्र हो रहा है। साय आहुतियो के दो मन्त्रो के बाद 'ओ३म् स्वाहा' बोलकर आहुति दी जाती है। इस पर कहा जायेगा कि वहा मन्त्र है 'अग्निर्ज्योतिरग्नि:'। और इसका मन मे उच्चारण करके फिर आहुति देना है। निश्चय ही ऐसा विधान है, किन्तु कौन इसका पालन करता है ? नब्बे प्रतिशत लोग मन्त्र का मन मे उच्चारण नही करते। 'ओ३म्' शब्द को अवश्य लम्बा (प्लुत सा) बोलते है और तुरत स्वाहा बोलकर आहुति देते हैं। प्राय: सर्वत्र यह कहना पड़ता है कि 'भाई । ओ३म् स्वाहा' इतना कोई मन्त्र नहीं है, 'अग्निर्ज्योति ' मन्त्र को मन मे बोलो फिर स्वाहा बोलो, और यदि मन मे बोलने का धैर्य नही है तो उस मन्त्र का उच्चारण ही कर लो, उसका लोप तो न करो। यही बात स्विष्टकृदाहुति के बाद की प्रजापत्याहुति के समय की है। जब प्रतिदिन प्राय: लोग 'ओ३म् स्वाहा' बोलकर आहुति देते हे, तब उसको दूर करने का क्या प्रयास हुआ ? इस पर कथन होगा कि ये तो लोगो की त्रुटि है। पर महर्षि जी ने तो मन्त्रान्त मे 'ओं स्वाहा' का प्रयोग नहीं किया। अब हम बताते है कि महर्षि जी ने भी प्रयोग किया है-

महर्षि जी द्वारा 'ओं स्वाहा' का प्रयोग

महर्षि दयानन्द जी ने मन्त्र के अन्त मे स्वाहा से पूर्व ओ का प्रयोग किया है और एक बार नही दो बार किया है देखिये दैनिक यज्ञ के मन्त्रो मे-

'ओम् आपो ज्योति रसोऽमृत ब्रह्म भूर्भुव: स्वरो स्वाहा'

यहा स्पष्ट ही 'स्वाहा' से पूर्व ओकार का प्रयोग हुआ है। और सभी लोग प्रात: तथा साय इसे बोलते हैं, तो क्या यह शास्त्रविरुद्ध प्रयोग है ? कोई चिल्लाया इस पर ? इसी प्रकार संन्यास सस्कार के होम मे भी-'त्व तदाप आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुव: सुवरो स्वाहा' प्रयोग है।

जब स्वय महर्षि जी ने दो स्थानो पर मन्त्रान्त मे 'ओ स्वाहा' का प्रयोग किया हे, तो अन्य मन्त्रो मे कोई पारायण आदि के समय सोद्देश्य स्वाहा से पहले ओम् लगा दे तो अपराध कैसे हो गया ? यदि कहे कि महर्षि जी ने जिस मन्त्र मे 'ओं स्वाहा' लगाया वहा तो ठीक है, अन्यत्र नही ? तो इस मन्त्र मे 'ओ स्वाहा' लगाने का क्या हेतु है ? यहां लगेगा तो ओर मन्त्रो मे क्यो नहीं लग सकता ? यदि कहे कि 'महर्षि जी ने तो तै, आरण्यक से यह मन्त्र लिया है, ओर वहा 'ओ स्वाहा' का सकेत है। यदि कहे कि यह मन्त्र वेदेतर ग्रन्थ का हैं, अत· स्वाहा से पूर्व ओ लगा दिया होगा। फिर तो सस्कारविधि मे वेदेतर ग्रन्थो के शतश: मन्त्र है, वहां भी स्वाहा से पूर्व ओ लगाना चाहिये। फिर वेदेतर ग्रन्थीय मन्त्रो मे 'ओ स्वाहा' लगे, तो वेदस्थमन्त्रो मे 'ओ स्वाहा' क्यो नही ? क्या वे अछूत हे ?

समयाल्पता के कारण पत्र-पत्रिकाओ के सब लेखो को मे नही पढ पाता, पर जब मुबई से इन 'ओ३म् स्वाहा' से सम्बद्ध एक पुस्तिका ही मुझे प्राप्त हो गई तब मैने अपने विचार प्रकट किये हे।

मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि मेरा श्री स्वामी सत्यम् जी से कोई विशेष परिचय नही हे। जीवन मे कुल 3 या 4 बार ही उनके दर्शन हुए हे। एक सन् 44 मे जब वे 'सत्यशील' नाम के ब्रह्मचारी थे। दो सन् 75 मे कीर्तिनगर आ समाज मे जब मेरी कथा थी। तीन अभी सन 99 मे गुरुकुल गोतमनगर मे। तब मेने उनसे 'सत्यम्' ऐसा नपुसक लिङ्ग नाम न रखने का निवेदन किया था। इसके अतिरिक्त मेरा इनसे कोई व्यवहार नही हे। अत मेरा निवेदन उनका पक्ष लेकर नहीं अपितु मेरे अपने विचारो का ही प्रकटीकरण है।

272, आर्यनगर, अलवर 301001 (राज)

मानव के लिए संध्या और यज्ञ का महत्व

❑ सुश्री प्रतिभा आर्य, एम.ए.एल्ल एल.बी. ब्रह्मपुरी, एल्लम, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

यह ससार नरक नही है। इसको नरक और स्वर्ग मनुष्य स्वय ही बनाता है। यह कर्मभूमि है। तपोभूमि है। तपस्वी लोग यहा आकर तप करते हे।

यू तो प्रत्येक प्राणी सुखी रहना चाहता हे और दु:खो से दूर भागता है। फिर भी दु:ख मनुष्य को घेरे रहते हे। यदि मनुष्य सच्चा सुख चाहता है तो अपने जोवन मे **सध्या और यज्ञ के महत्व को समझे।**

मनुस्मृति मे मनु महाराज ने मनुष्य के दु खो को दूर करने का उपाय बताया है–

पूर्वां सन्ध्या जपस्तिष्ठत्सावित्रीमार्कदर्शनात्।

पश्चिांस्तु समासीन सम्यगृक्षविभावनात्॥

जो मनुष्य प्रात काल मे सन्ध्या करता है। वह रात भर के पापो से मुक्त हो जाता हे ओर जो मनुष्य सायकाल मे सन्ध्या करता है वह दिन भर के पापो से मुक्त हो जाता है। तो क्यो न मनुष्य प्रात: व सायकाल की सन्ध्या करके अपने दु:खो को दूर करे। दिन-रात की सन्धि बेला का नाम सन्ध्या है। उस समय ब्रह्म का ध्यान किया जाता है। आत्मा का परमात्मा मे मिलन होता है। इसीलिए उसे सन्ध्या कहते है। **सन्ध्या आध्यात्मिक भोजन है।**

स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते सन्ध्या स्व अन्त:करण का विषय है। सन्ध्या मे जीवन का समग्र दर्शन है। सन्ध्या मे अनुभूतियो को जगाया जाता है। उन्हे सूक्ष्म किया जाता है। सन्ध्या मे बैठ कर शब्दो से परे, तर्को से परे अपनी सहज अनुभूति को जगाये। स्वय का अनुभव करके दु:खो को दूर किया जा सकता है।

वेदो मे मनुष्य के लिए पाच यज्ञ बताये है। यज्ञ को अग्निहोत्र भी कहते है। 1 ब्रह्मयज्ञ, 2 देवयज्ञ, 3 पितृयज्ञ 4 बलिवेश्वदैव यज्ञ, 5 अतिथि यज्ञ ।

ब्रह्म यज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणों की वृद्धि होती है। **देवयज्ञ** के करने से वायु, वृष्टि जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा ससार को सुख प्राप्त होता है। **पितृयज्ञ** के करने से मनुष्य माता-पिता और ज्ञानी महात्माओ की सेवा करता है। तब मनुष्य का ज्ञान बढता है।

पितृपितामह प्रपितामहाः मातृपितामहीप्रपितामहः। संगोत्राः। सम्बन्धिनोः॥

बलिवैश्व यज्ञ करने से पाकशाला की वायु शुद्ध होती है जो अज्ञात, अदृष्ट जीवो की हत्या होती है उसका प्रत्युकार कर देना है।

अतिथि यज्ञ के करने से गृहस्थो को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती है। बिना अतिथियो के सन्देहनिवृत्ति नही होती है। सन्देहनिवृत्ति के बिना दृढ निश्चय नहीं होता है। निश्चय के बिना सुख कहा ?

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्यते धर्मार्थो चानुचिन्तयेत्।

कायक्लैशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थ मेव च॥

ब्रह्ममुहूर्त्त मे उठकर के आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ शरीर के रोगों का निदान परमात्मा का ध्यान करें। कभी अधर्म का आचरण न करे।

जो मनुष्य श्रद्धा से, विनय से, कण्ठ से वेद मन्त्रो का उच्चारण करके आहुतियो को अग्नि मे प्रदान करता है उसका यश अति उज्जवल होता है । यज्ञशील मनुष्य दु:खो पर विजय पाकर, सच्चे सुख और शान्ति का अनुभव करता है। जिस प्रकार दानी का दान कभी क्षीण नहीं होता है। उसी प्रकार शुद्ध मन से किया गया **यज्ञ** कभी निष्फल नहीं होता है। यदि मनुष्य दु:खों का निवारण चाहता हो तो यज्ञ के द्वारा मानव-कल्याण हो सकता है।

दूरागतं पथि श्रान्तं, तथा, गृहमागतम्।

अनर्चयित्वा यो भुंक्ते, स वै चाण्डाल उच्यते॥

दूर से आये हुए, मार्ग में चलने से थके हुए और घर में आये हुए अतिथि को उसकी बिना पूजा (सत्कार) किये जो मनुष्य स्वयं भोजन खा लेता है। वह निश्चय ही चाण्डाल है।

महाभारत काल से पहले मनुष्य भौतिक और आध्यात्मिक सुख के लिये यज्ञ किया करता था। जिससे संसार के सभी जीव सुख-चैन से अपना जीवन व्यतीत करते थे। ज्यो-ज्यो मानव प्राणी यज्ञ से दूर होता गया उतना ही दु:खो के समीप आता गया। प्राचीनकाल मे हमारे ऋषि, मुनि **यज्ञ** के द्वारा अनेक रोगो का उपचार भी किया करते थे।

जिस पत्थर को लोग मन्दिरो मे पूजते है। वह मानव निर्मित कलाकृतिमात्र है। मूर्तिपूजा पाप है। केवल यज्ञ के द्वारा ही मानव-कल्याण हो सकता है। खान-पान से मनुष्य पर विशेष प्रभाव पडता है। यदि खान-पान शुद्ध नहीं है तो मन भी अशुद्ध हो जाएगा। मन और आत्मा की शुद्धि के लिए शुद्ध व सादा खाना आवश्यक है। घर मे ऐसा साहित्य नहीं रखने चाहिए जो चरित्र को दुष्प्रभावित करता हो। मनुष्य सोने (शयन) मे अपना एक तिहाई जीवन-व्यतीत कर देता है। यानि कि चौबीस घण्टे मे से आठ घण्टे निद्रा मे और बाकी सोलह घण्टे मे भौतिक साधन अपनाने मे लडाई-झगडे मे, सुख-दु:ख मे और शान्ति व अशान्ति मे व्यतीत कर देता है परन्तु **सन्ध्या और यज्ञ** करने के लिए उसके पास समय नही है। अत: मनुष्य को चाहिए कि कुछ समय निकाल कर **सन्ध्या और यज्ञ** को अपनाकर अपने जीवन को सफल और सार्थक बना कर सच्चे सुख और शान्ति का अनुभव करे।

नए वर्ष 2002 के कैलेण्डर मंगवाएं

गत वर्षो की भाति इस बार भी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने महर्षि दयानन्द के चित्र वाले कैलेण्डर सन्–2002 के छपवा लिए हैं। जो सभा कार्यालय में आ गए हैं।

यह कैलेण्डर सभा को 400 रुपए सैंकड़ा आए है परन्तु साहित्य की भान्ति यह कैलेण्डर भी आधे मूल्य पर दो सौ रुपए सैकड़ा दिए जा रहे हैं। अत: शीघ्र अति शीघ्र सभी आर्य समाजें अपना व्यक्ति भेज कर कैलेण्डर मंगवा लें।

–धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

दीपक तो जला लो

ले० सुभाष चन्द्र गुप्ता

रोशनी के चिराग बाहर सैंकड़ो तूने जलाए,
मन में पर अंधकार-जिसमें एक दीपक तो जला लो
शास्त्र-वचनों को पढ़ा, संतों से भी अमृत पिया
पर अरे ! अज्ञानता की नींद में तू ही जिया
एक अंकुर ज्ञान का तो मन की खेती में उगा लो।
मन मे पर अंधकार-जिसमें एक दीपक तो जला लो॥1॥
पथ है जीवन का अरे ! फूलों व शूलों से भरा
खुशियां इसमे गम भी हैं, साथी कोई खोटा खरा
मुस्कराते धैर्य साहस से भी संग तुम निभा लो।
मन मे पर अधकार-जिसमें एक दीपक तो जला लो॥2॥
जिसने ईश्वर से है जोडा, नाता वह तो तर गया
लक्ष्य अपना पा लिया, ऊचे शिखर पर चढ़ गया
प्रीत तुम भगवान् के चरणों मे भी कुछ तो लगा लो।
मन में पर अंधकार-जिसमें एक दीपक तो जला लो॥3॥
मन न जब तक शुद्ध होगा, तू न शान्ति पायेगा
आत्मिक उत्थान बिन रस भक्ति का न आयेगा
'सुभाष' करके मनन चिंतन ध्यान से आनन्द पा लो।
मन में पर अधकार-जिसमें एक दीपक तो जला लो॥4॥

करवा चौथ का व्रत

❑ ले० श्री मुलख राज, आर्य मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

4 नवम्बर 2001 रविवार को सारे देश मे करवा चौथ का व्रत रखा गया।

यह व्रत हर नारी अपने पति की लम्बी आयु की कामना के लिए रखती है। ताकि उसके पति की आयु लम्बी हो। यह कामना करना बहुत अच्छी बात है। परन्तु वर्ष मे 365 दिनो मे क्या केवल एक दिन ही कामना करनी उचित है ? पति की आयु की कामना तो पत्नी को हर समय करनी चाहिए। इस व्रत पर हर परिवार का हजारो रुपए व्यय हो जाता है। 60 प्रतिशत नारियां तो ऐसी है जो हर समय पति को गालिया देती रहती है और केवल वर्ष मे एक दिन पति की लम्बी आयु की कामना करती है। इस व्रत पर हजारो रुपए मिठाई और फल पर व्यय हो ... है। जब किसी लडकी की नई शादी होती है तो उस समय लडकी के माता-पिता को हजारो रुपए व्यय करने पडते हैं। क्योकि पहला व्रत होता है। यदि लडकी वाले गरीब होते है तो भी उसके माता-पिता को चाहे कहीं से भी रुपए लाए, उनको व्यय करना पडता है। इस पर विचार किया जाए कि जिस लडकी के माता-पिता गरीब हैं, उस लडकी पर क्या गुजरती होगी। वह लड़की अपने पति की लम्बी आयु की कामना क्या करेगी। जो लडकिया अच्छी होती हैं, वह तो पति की सेवा करती रहती हैं और अपने पति की हर समय लम्बी आयु की कामना करती रहती हैं। बहुत सी लड़कियां ऐसी भी है जो अपने पति को गालियां निकालती रहती हैं, यहां तक कि अपने पति को हरामजादा, कुत्ता कहती है। परन्तु एक दिन करवा चौथ का व्रत रख कर वह भी लम्बी आयु की कामना करने लगती है, एक नारी अपने पति को गालियां देती रहती थी। परन्तु पति बहुत ही नर्म स्वभाव का था।

एक दिन करवा चौथ का व्रत आ गया। तो प्रात: उठ कर व्रत रखने के वास्ते खाने के लिए कुछ बना रही थी। पति ने प्रात: धर्मपत्नी को आवाज दी कि भाग्यवान क्या कर रही हो, तो उसने आगे यह उत्तर दिया तुम्हारा ही स्यापा कर रही हूं। खाना व्रत रखने के लिए अपने लिए बना रही थी। क्योकि व्रत पति की आयु की कामना के लिए रख रही थी। जो पति को यह कह रही है कि तुम्हारा स्यापा कर रही हू। वह पति की आयु की कामना क्या करेगी? पति की सेवा और आयु की कामना तो हर समय ही करनी चाहिए। प्रात: 4 बजे उठ कर पेट खुब भर लिया जाता है और सारा दिन कुछ नहीं खाया जाता। रात्रि को चाद देख कर ही खाया जाता है। रात्रि को चाद देख कर ही खाना, यह हमारी समझ मे नहीं आता। आयु के साथ चाद का क्या सम्बन्ध है। यह हमारी समझ मे नही आ रहा।

इस व्रत के बारे मे एक बार मैंने एक कहानी पढी थी वह कहानी तो मुझे भूल गई है परन्तु उसका भाव वह इस प्रकार है-

करवा चौथ का जब व्रत आया तो किसी नारी ने अपने पति की आयु के लिए व्रत रखा। वह शाम को चाद निकलने से पहले खाना न खाने के कारण भूख से निढाल हो गई जिस पर उसके भाई ने अपनी बहन की रक्षा के लिए कोई बत्ती जगा, किसी वृक्ष पर चढ गया और अपनी बहन को चांद दिखा दिया। बहन ने व्रत तोड कर खाना खा लिया उसी समय उसके पति की मृत्यु हो गई। तो उस नारी ने एक वर्ष का व्रत रख लिया। आप यह विचार करो कि चांद तो भाई ने दिखाया। पति ने चांद तो दिखाया नहीं। परन्तु पति मर गया। गल्ती तो भाई ने की परन्तु मर पति गया। उसने एक वर्ष तक कुछ भी खाया पीया नहीं। तो उस समय एक परी भागी-भागी उसके पास आ गई। मै तेरे एक वर्ष के व्रत से बहुत खुश हूं मैं अभी तुम्हारे पति को जिन्दा कर देती हूं आप ऐसी झूठी कहानियों पर विचार करे कि परी उसके पति को जिन्दा करने लगी है। उस परी से पूछना चाहिए था शरीर से जब जोव आत्मा निकलता है तो एक मिनट भी वहां नहीं रहता। वह उसी समय दूसरे शरीर में चला जाता है। यह तो परियां ही बता सकती हैं कि उसके पति की जीवआत्मा कहां पड़ी रही। और जिस शरीर मे वह आत्मा गई थी तो क्या परियां उस शरीर से जीवआत्मा को निकाल कर ले आई। जिस शरीर मे वह जीवआत्मा गया था। क्या उसके शरीर को समाप्त करके ले आई ? यह सारी कहानी झूठी है।

एक वर्ष के पश्चात किसी को जिन्दा करना ऐसी कहानिया झूठी होती है और लोग उसको सत्य मान लेते है व्रत क्या होता है किसी बात पर दृढता से पालन करना उसको व्रत कहते है। आप यह व्रत ले कि मै आज से सत्य ही बोलूगा और झूठ नही बोलूगा और सदा अच्छे काम ही करूगा। अच्छे-अच्छे व्रत लेने चाहिए। कुछ न खाना यह व्रत नही है। यह तो उपवास है। जरूरत पडने पर उपवास अवश्य रखना चाहिए कभी-कभी शरीर की रक्षा के लिए उपवास भी रखना चाहिए। व्रत रखा नही जाता। व्रत लिया जाता है। इसलिए मै अपनी हर बहन-बेटी से प्रार्थना करना चाहता हू कि पति की आयु की कामना अवश्य करे। यह अच्छी बात है।

आयु की कामना कैसे होगी। प्रात: काल उठ कर पहले पति के पैर छूए और पति के साथ मीठा बोलो। पति के साथ बुरा व्यवहार न करो। यदि पति के साथ व्यवहार अच्छा होगा, तो उसका असर आपकी सतान पर भी पडेगा। बहुत सा ऐसा देखा जाता कि पति पत्नी का आपस मे झगड़ा होता रहता है। कभी भूल कर भी पति की निदा न करो। आप दोनो के व्यवहार अच्छे होने चाहिए। भाई ने अपनी बहन की रक्षा के लिए चाद दिखाया तो उस समय परियों ने उसके पति को मार दिया। यह बाते झूठी हे परिया किसी का भी कुछ नही बिगाड सकती। मेरा जन्म आर्य समाजी परिवार मे नही हुआ। मेरा जन्म एक पौराणिक परिवार मे हुआ। अपने परिवार मे मै अकेला ही आर्य समाजी था। मेरी जब शादी हुई तब पहला करवा चौथ का व्रत आया मेरी माता जी और मेरी बडी बहन जी ने मुझसे चोरी करवा चौथ का व्रत मेरी पत्नी से रखवा दिया। चोरी इसलिए रखवा दिया क्योकि उनको पता था कि मै व्रत रखने नही दूगा। साय 5 बजे मुझे पता चल गया कि करवा चोथ का व्रत रखा हुआ है। मैंने उससे कहा व्रत तोड दिया जाए तो मेरी माता जी और बहन जी ने मुझे यह कहा अब शेष दो घण्टे रह गए हे आगे से यह नही रखेगी। मैने कहा नही व्रत अभी तोडा जाए और व्रत तोड दिया गया इस बात को आज 55 वर्ष हो गए उस समय एक भाई ने अपनी बहन की रक्षा के लिए चाद दिखाया था परियो ने उसके बहनोई को मार दिया। परन्तु मैंने तो व्रत जबरदस्ती तुडवाया था। परन्तु आज तक वही परिया 55 वर्ष तक मेरा कुछ नही बिगाड सकी।

इसलिए इन झूठी कहानियो से सावधान रहे।

जीवन यात्रा को सफल बनाने का योग

हमारा शरीर एक रथ है। आत्मा इसका स्वामी है। पाच ज्ञान इन्द्रिया और पांच कर्म इन्द्रियां इस रथ के दस घोडे हैं। मन घोडो की लगाम है। बुद्धि सारथी (चालक) है जो मन रूपी लगाम को पकडकर जीवन के मार्ग पर चल रही है। इन्द्रियारूपी घोडे बडे बलवान और चचल हैं। विषय वासना की हरी हरी घास को देखकर इधर उधर जाने की चेष्टा करते है। यदि सारथी मन की लगाम को कसकर न रखे और जरा भी ढीला छोड़ दे तो यह घोडे काबू से बाहर हो जायेगे और रथ को भोग विलास की दलदल में फसा देगे, जहां से निकलना कठिन हो जायेगा।

यदि जीवन यात्रा को सफल बनाना चाहते हो तो बुद्धि रूपी सारथी को सावधान व सतर्क रखना होगा। यदि चालक सुस्त और लापरवाह है तो किसी समय भी दुर्घटना हो सकती है। इसलिये सारथी को प्रशिक्षित और चतुर होना चाहिये और उसके हाथ मे घोडो को फटकारने व नियत्रित करने के लिये ज्ञान का चाबुक भी होना चाहिये। ज्ञान का चाबुक सत्संग और स्वाध्याय से प्राप्त होता है। योगाभ्यास से इन्द्रिया रूपी चंचल घोड़े सही रास्ते पर चलते है तथा जीवन को सरल व सार्थक बनाते हैं।

-देवराज आर्य मित्र, आर्य समाज कृष्णा नगर, दिल्ली

वैदिक दर्शन

❑ ले० आचार्य भद्रसेन जी बी. 2,92/7 बी शालीमार नगर होशियारपुर

(गताक से आगे)

सयमपूर्वक विद्या पढने वाला है ? वहां ब्रह्मचारी शब्द का वास्तविक, यौगिक अर्थ ब्रह्म प्राप्ति की साधना करने वाला है। इसी लिए ही कठ उपनिषद् के ऋषि ने कहा है-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति:
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्ये चरन्ति।

तत्ते पद सग्रहेण ब्रवीम्यो-मित्येतत् 11, 2, 15 अर्थात् सारे वेद जिस प्राप्तव्य को बार बार बताते हैं और ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले इसी इच्छा से ब्रह्मचर्य की साधना करते हैं। वह प्राप्तव्य ओम् नाम वाच्य ही है। मनुस्मृति के दूसरे अध्याय मे विद्याध्ययन करने वाले ब्रह्मचारी की जीवनचर्या बताई गई है पुनरपि वहां जीवन के लक्ष्य का संकेत सामने रखते हुए ही कहा है- स ब्रह्म परमभ्येति, 2, 82 अर्थात् ब्रह्मचर्य की जीवन चर्या का पालन करने वाला परम ब्रह्म को प्राप्त होता है क्योकि ब्रह्मचारी का ब्रह्म-

(एकाक्षरं पर ब्रह्म 2, 83 अक्षरं दुष्कर ज्ञेय ब्रह्म चैव प्रजापतिः 2, 84)-वही है, जो कि अविनाशी है ओर सभी प्रजाओ। प्रकृष्ट रचनाओ अर्थात् सभी प्राणी तथा प्राकृतिक पदार्थो का पालक है तथा जिसकी प्राप्ति बहुत बडी साधना से होती है। इन वचनो मे ब्रह्मचारी शब्द मे ब्रह्म की साधना का ही विशेष सकेत है।

ब्रह्मशकर-क्या वेदान्तदर्शन की ब्रह्मजिज्ञासा का अभिप्राय इसी से है?

प्रा.-हमारी चर्चा और इस दर्शन का प्रतिपाद्य यही ही है। यतो हि वेदान्त का प्रथमसूत्र है-'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' अर्थात् अन्य दर्शनो मे आए ज्ञान को जान लेने के बाद अब ब्रह्म को जानने की इच्छा है। इस मे जिस ब्रह्म की जिज्ञासा अभिव्यक्त की है, उस ब्रह्म की पहचान को बताते हुए दूसरे सूत्र मे कहा है-'जन्माद्यस्य यत:' कि हमारे चारो ओर जा भौतिक पदार्थ सूर्य आदि दृश्य तथा जो अदृश्य रूप मे विद्यमान है और जिन का कर्त्ता-धर्त्ता बारम्बार विचारने पर भी हम मे से कोई सिद्ध नही होता है। अत: यह सारा जगत जिस के कारण पैदा होता है और फूलता फलता है, वही ब्रह्म है।

इसी भाव को तैत्तिरीय उपनिषद के ऋषि ने इन शब्दों मे कहा है-

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसविशन्ति 3, 1

इस विषय को मनन की कोटी की ओर ले जाते हुए तीसरे सूत्र मे कहा है कि यह केवल युक्ति अनुमान की ही बात नहीं, अपितु सारे शास्त्र एक स्वर से ब्रह्म को ही इस ससार का स्रष्टा, व्यवस्था-कर्ता निर्दिष्ट करते है। तभी तो वेदान्तदर्शन का तीसरा सूत्र है- शास्त्रयोनित्वात। हा, इस सूत्र का दूसरा अर्थ यह भी है, कि ब्रह्म न केवल प्राकृतिक पदार्थो का रचयिता है, अपितु इस के साथ शास्त्र-ज्ञान का दाता भी ब्रह्म ही है। वेदान्त के सभी भाष्यकारो ने यह स्वीकार किया है, कि वह ज्ञान वेद ही है जिसका देने वाला परमेश्वर है।

11. ब्रह्म का ब्रह्मत्व-इस से अगले सूत्र मे यह भाव गूंथा गया है कि जैसे एक कलाकृति मे उसका कलाकार अपनी कला से समन्वित होता है अर्थात् वह कृति अपने कर्ता की योग्यता, क्षमता का सर्वथा परिचय देती है। ऐसे ही इस सृष्टि रूपी अपनी कलाकृति में वह ब्रह्म सर्वत्र समाया हुआ है। तभी तो चतुर्थ सूत्र है-तत्त समन्वयात 1, 1, 4

अर्थात् इस सृष्टि की सारी सर्जना, व्यवस्था, एकरूपता अपने कलाकार के कौशल को अभिव्यक्त कर रही है। ब्रह्म का ऐसा वर्णन शास्त्रो मे किसी एक स्थल पर ही नहीं है, अपितु सर्वत्र प्राप्त होता है अर्थात् सारे शास्त्रो का इस दृष्टि से मुख्य प्रतिपाद्य ओम् नाम वाच्य ब्रह्म ही है। जैसे कि कठ उपनिष्द का यह वचन पहले भी उद्धृत किया है कि सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तत्ते पद सग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्। 2, 15

वत्सल-वेद, उपनिषद आदि मे जगत का कर्त्ता, धर्त्ता, सहर्ता केवल ब्रह्म ही वर्णित नही है, क्योकि वहां कहीं विष्णु का, तो कही प्राण, आकाश, अन्न, आनन्द आदि का रूप मे चित्रण मिलता है ?

प्र.-नि:सन्देह शास्त्रों मे अन्न, प्राण, आकाश आदि शब्दों से भी जगत के कर्तव्य आदि को दर्शाया गया है। इन सब शब्दो का वाच्य क्या है ? यह एक विचारणीय प्रश्न है, इसी लिए वेदान्त दर्शन के अगले सूत्रों में विचार-विमर्श करते हुए बताया है, कि इन-इन शब्दों द्वारा ब्रह्म की ही चर्चा है, क्योंकि उस उस प्रकरण मे जो विशेषण आए हैं, वे सब ब्रह्म मे ही घटते हैं। अत: प्राण आदि शब्दो से निर्दिष्ट जगत कर्तृत्व आदि क्रियाएं केवल ब्रह्म की ही हैं। प्राण, आकाश आदि शब्द अलग-अलग होने से ये अलग-अलग कर्ता सिद्ध नही होते, अपितु भिन्न-भिन्न नामो से प्रकरण के अनुरूप गुण का निर्देश करते हुए एक ब्रह्म का ही संकेत है, क्योकि सर्वत्र क्रिया एक ही है। इस प्रक्रिया का विशेष परिचय वेद की कुन्जी मे दिया गया है।

ब्रह्मसूत्र मे सर्वागीण रूप से ब्रह्म के इस रूप और स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। यह सब ब्रह्मसूत्र के अध्ययन से स्वय भी निश्चित किया जा सकता है। हां, ब्रह्म शब्द से अभिहित जितने तत्त्व है, वे सभी सर्वथा सर्वदा परम ब्रह्म के नियन्त्रण, संचालन के अर्न्तगत ही आते हैं। अत: सब से बडा तथा पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर ही है। अत: ब्रह्म का निज स्वरूप जहां सच्चिदानन्द है। सत्य ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सो ऽश्नुते सर्वान् कामान्। सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥ तै, 2, 1

वहां तुलनात्मक या अपने सर्व नियामक के रूप से सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी आदि गुण वाला है, क्योकि सर्वनियमन का कार्य इन गुणो से युक्त होने पर ही कोई कर सकता है। अत: ब्रह्म का ब्रह्मत्व सर्वातिशायी है। शास्त्रकार ब्रह्म की चर्चा करते हुए तभी तो कहते हैं-ओ३म् ख ब्रह्म यजु 40, 17 अर्थात् ओम् नाम वाच्य ब्रह्म आकाश की तरह व्यापक, अभौतिक, अविकारी, नित्य, पूर्ण है। अत: वस्तुत: ब्रह्म ही प्रत्येक प्रकार से सब से बड़ा और सर्वत्र पूर्ण है।

अक्षत-हा, है तो बात साधारण सी पर एक सामान्य पाठक की दृष्टि से इस पर भी प्रकाश डालने की कृपा करेगे, कि यहा वेदान्त, ब्रह्मसूत्र, उत्तरमीमासा शब्दो का वाच्य क्या है?

प्र.-इन तीनों नामों का नामी मुनि के मीमांसा दर्शन के लिए-है, अभिप्राय वाच्य एक ही दर्शन है। उत्तर मीमांसा-वाक्यो के आधार पर निष्कर्ष निकालने वाले वेदान्त का संकेत करता है। पूर्व की अपेक्षा उत्तर शब्द है, अत: पूर्व जहां ब्राह्मण वाक्यों के आधार पर तत्त्व का जचाव करने वाले जैमिनि वेदान्त शब्द पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है और ब्रह्मसूत्र नाम शास्त्र के प्रतिपाद्य की दृष्टि से है अर्थात् इस दर्शन में ब्रह्म का विश्लेषण होने से इस को ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं।

स्नेहिल-हा, प्रस्तुत शीर्षक मे ब्रह्म के साथ दर्शन शब्द भी तो समस्त है। अत: इस दर्शन शब्द पर भी कुछ प्रकाश डाल दिया जाए, तो 'आमो के आम गुठलियो के दाम' की उक्ति चरितार्थ हो सकती है ?

प्रा.-यहां दर्शन शब्द विशेष रूप से अनुभूति के अर्थ मे कहा जा सकता है। जगत रूपी अनोखी रचना से जहां हम उस रचनाकार का दर्शन कर सकते है, वहा शास्त्रो मे वर्णित ब्रह्म के सर्वांगीण रूप को प्रथम समझे और फिर इसके आधार पर योग मे प्रतिपादित प्रक्रिया के माध्यम से परम ब्रह्म की अनुभूति का अभ्यास करे। तभी तो कहा जाता है- श्रोतव्य: श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोप पत्तिभि :। श्रुत्वा च सततं ध्येय एते दर्शन हेतव :॥

अर्थात् वेदादि शास्त्रो मे आए निर्दिष्ट तत्त्व के स्वरूप का प्रथम श्रवण करे और तदनन्तर युक्ति, तर्क से उस का मनन, विचार विमर्श, जचाव करे। इसके अनन्तर योग की प्रक्रिया के अनुरूप अनुभव का प्रयास करे, क्योंकि किसी को समझने का यही ढंग है।

अपनी सुविधा के अनुसार प्रात: और सायं शुद्ध, शान्त, निश्चिन्त होकर एक आसन मे बैठ कर उस परम ज्योति से अपने आप को जोडने का अभ्यास करें। इसके लिए प्रथम मन ही मन मे अर्थात् धीरे-धीरे बोल कर ओम् ध्वनि का दीर्घ श्वास के साथ गुन्जार करे। इस प्रकार पांच बार करने के पश्चात ओम् के अर्थों, भावो का विचार करते हुए ब्रह्म के गुणो स्वभावो, शक्तियो, कर्मों का चिन्तन करे। क्योकि ब्रह्म का विवेचित बड़ापन ओम शब्द द्वारा अभिव्यक्त होने वाले अर्थो के लिए देखिए-'ओम् शब्दार्थ विमर्श' के माध्यम से व्यापक रूप से स्पष्ट हो सकता है।

मृत्युञ्जय महामन्त्र

आर्य कवि विद्यारत्न सागर वानप्रस्थी देहली।

ओं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बधनान्मृर्त्योमुक्षीय माऽमृतात॥
ओइम त्र्यंम्बक हे भगवान, तिन काल विच इक समान।1॥
तिन ताप दे आप हो हरता, उत्पति पालन और सहर्ता।2॥
तिना विद्यावां दे दाता। तिन गुणा दे आप विधाता।3॥
तिन तार जनेऊ धारा, तिनो कर्जे सिरो उतारां।4॥
भगवान मैनू दे वरदान्, मम् जीवन हो यज्ञ समान।5॥
जीवन विच सुगन्धि भर दे, पुष्टी दे बलवान वी कर दे।6॥
ज्यू पत्नी नू पति प्यारा, मैनू तेरा तिवे सहारा।7॥
आप पकां फिर और पकावां, अपना सबते रग चढावा।8॥
पक के मैं खरबूजे न्याई, छड दया ससार दे ताई।9॥
वासना रूपी बीज जो मेरे, मैनू छड के होन परेरे।10॥
दस फागा ऐह दसो अग ने, अन्दरो इको रूप रंग ने।11॥
दस नियम जीवन विच धारां, दस लक्षण दा धर्म विचारां।12॥
रसना विच मिठास लया दे, जीवन वेद अनुकूल बना दे।13॥
मोह ममता मैनू पकड न सक्कन, माया जाल विच जकड़ न सक्कन।14॥
अमृत दे सागर विच नांवां, मृत्यु बन्धन तों छुट जावां॥15॥

दिवाली रंग लायेगी

पं. विजयपाल आर्य प्रभाकर, लाल सड़क हांसी हिसार

हृदय की दूरियों को ये मिटा करके ही जायेगी।
दिवाली रंग लायेगी, दिवाली रंग लायेगी॥
उदय हो ज्ञान का सूरज, उजाला जग में फैलेगा।
अविद्या नाश तब होगा, अंधेरी दूर जायेगी॥
जो जलते हैं परस्पर, देख सुख समृद्धि को हरदम।
ये उनके मन में अविरल, प्यार की गंगा बहायेगी॥
न होगा कोई भी लम्पट, लुटेरा चोर कर्मचारी।
जगद गुरु देश भारत को, ये फिर से चम-चमायेगी॥
वैभव सम्पदाओं के ये बादल खूब बरसेंगे।
सभी निश्चिन्त होवेंगे, खुशी घर-घर समायेगी॥
अटल विश्वास जागेगा, सुकर्मों में लगन होगी।
किम् कर्तव्य विमूढ़ों को, ये कुछ करके दिखायेगी।

आर्य समाज हनुमान रोड नई दिल्ली का उत्सव

आर्य समाज हनुमान रोड नई दिल्ली का 79वां वार्षिकोत्सव सोमवार, 26 नवम्बर से रविवार, 2 दिसम्बर, 2001 तक समारोह पूर्वक मनाया जाएगा। जिसमें स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती, श्री सत्यपाल जी पथिक सहित अन्य कई विद्वान पधार रहे हैं।

अत: दिल्ली, नई दिल्ली की समस्त आर्य समाजों के अधिकारियों एवं सदस्यों से निवेदन है कि उपरोक्त तिथियों में वह अपने समाज में कोई कार्यक्रम का आयोजन न करके आर्य समाज हनुमान रोड नई दिल्ली के वार्षिकोत्सव में सपरिवार सम्मिलित होकर एकता का परिचय दें तथा धर्म लाभ उठाएं।

–अरुण प्रकाश वर्मा, मन्त्री

आर्य वीर दल हांसी ने विजय पर्व मनाया

आर्य वीर दल हांसी 26 व 27 अक्तूबर 2001 को दो दिवसीय विजय् पर्व अलग-अलग परिवारों में बड़ी धूम धाम से मनाया।

प्रथम दिन आर्य युवा साथी श्री सत्यवीर जी आर्य (सैनीपुरा) व दूसरे दिन श्री बालकिशन जी मिस्त्री लाल सड़क हांसी के परिवार में कार्यक्रम रखा गया। जिसमें यज्ञ के ब्रह्मा पं. विजय पाल आर्य (प्रभाकर) पुरोहित आर्य समाज खरड़ चुन्गी हांसी थे। आचार्य राम सुफल शास्त्री, श्री केशव बंसल, श्री सोहन लाल भयाणा, श्री राम स्वरुप भाटिया, श्री उत्तम कुमार ने भी अपने विचार विजय दशमी के सम्बन्ध में रखे।

–के.आर. मन्त्री

हांसी में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान व वार्षिकोत्सव

डी.ए.वी पब्लिक स्कूल, पुरानी सब्जी मण्डी, लाल सडक, हांसी मे दिनांक 22-23 दिसम्बर 2001 को आर्य वीर दल हांसी का वार्षिक उत्सव एव स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस समारोह बडी धूमधाम से मनाया जा रहा है जिसमे स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती (जालौन) उ प्र, स्वामी कीर्तिदेव जी आर्य समाज, जी टी रोड, हासी, महात्मा तेजमुनी जी वानप्रस्थी छानी बडी (राज), साध्वी विशोकायति जी बरवाला, प्रो ओम कुमार जी आर्य जीन्द, श्री योगेन्द्र वीर जी भारती (पंजाब) पं रणधीर जी आर्य भजनोपदेशक सिरसा, श्रीमती बहन सुदेशार्य जी शास्त्री चिडौद, प्रज्ञाचक्षु श्री रामसेवक जी सगीताचार्य (हमीरपुर) उ प्र आदि साधु सन्त विद्वान महानुभाव पधार रहे हैं। स्कूली बच्चो के रोचक कार्यक्रम भी होगे। 22 दिसम्बर को प्रात: 5 बजे प्रभात फेरी एव शाम 3 बजे महिला सम्मेलन होगा। कराटे प्रशिक्षण भी शाम को प्रतिदिन नेहरु कालेज मे शुरू हो रहा है। प्रवेश हेतु सम्पर्क करे। **–राकेश टुटेजा, महामन्त्री**

हांसी में नवदिवसीय पारिवारिक सत्संग सम्पन्न

आर्य वीर दल हांसी द्वारा शारदीय नवरात्रो के उपलक्ष मे 17 से 25 अक्तूबर 2001 तक नौ दिवसीय वैदिक पारिवारिक सत्संग एवं यज्ञ का आयोजन किया गया। जिसमें निम्नलिखित 8 परिवारों में अलग-अलग कार्यक्रम रखे गए-

1 श्री रतन सिह सोनी, 2 मा हर स्वरूप पूर्व सेवक आर्य समाज शहर, 3. चौ. गुलाब सिंह आर्य शेखपुरा, 4. श्री राम स्वरूप पोपली, 5 श्री सुभाष आर्य, 6. श्री केसर दास मल्होत्रा, 7 श्री जिले सिंह हलवाई, 8 श्री राम गोपाल सैनी आदि सज्जनो के यहा प्रतिदिन प्रात: 9 से 10 बजे तक यज्ञ व शाम 5 से 6 बजे तक सत्संग किया गया।

अन्तिम दिन 25 अक्तूबर 2001 को ममता पब्लिक स्कूल, पुरानी सब्जी मण्डी, लाल सड़क हासी मे प्रात: 8 से 11 बजे तक पूज्य स्वामी कीर्तिदेव जी आर्य सन्यासी, आर्य समाज, जी टी. रोड, हांसी की अध्यक्षता मे समापन समारोह आयोजित किया गया।

समारोह यज्ञ एव उक्त आठो परिवारो के यज्ञ के ब्रह्मा पण्डित रामसुफल शास्त्री जी वैदिक प्रवक्ता लाल सडक हासी थे। मुख्य वक्ता के रूप मे बोलते हुए आर्य समाज हासी शहर के वरिष्ठ उप प्रधान श्री सोहन लाल भयाणा ने कहा कि आर्य वीरो को देश भक्तो के जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए। जिससे दिशाहीन, पथ भ्रष्ट युवको का मार्ग प्रशस्त हो सके।

उक्त आशय की जानकारी देते हुए दल के कार्यवाहक प्रधान चौ राघवेन्द्र सिंह आर्य ने बताया कि उक्त नौ दिवसीय कार्यक्रम मे आर्य जगत के उच्च कोटि के वैदिक विद्वान पंडित भरत लाल जी शास्त्री एम.ए, वकील कालोनी, हासी, पं विजय पाल आर्य (प्रभाकर) पुरोहित आर्य समाज, खरड़ चुंगी, हांसी, पंडित राम किशोर आर्य (विद्या भास्कर) पुरोहित आर्य समाज शहर, श्री जबर सिंह व श्री वेद पाल आर्य की भजन पार्टी का भी समय-समय पर योगदान मिलता रहा। इस कार्यक्रम से नगर मे वेद प्रचार की धूम मच गई है।

–के.आर. मन्त्री

मंडी डबवाली में वेदप्रचारोत्सव

मण्डी डबवाली आर्य समाज द्वारा इस वर्ष भी वेद प्रचार उत्सव का बड़ी धूमधाम से आयोजन किया गया है। दिनांक 21 नवम्बर से 25 नवम्बर तक चलने वाले इस समारोह में वेद, शास्त्र, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि शास्त्रो के विद्वान् स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी के प्रवचन होंगे तथा सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पं. ओम प्रकाश वर्मा के मधुर भजनोपदेश होंगे।

–डा. अशोक आर्य

चमकता हुआ सितारा अस्त हो गया

आर्य समाज फगवाड़ा के प्रधान श्री बनारसी दास जी आर्य समाज के एक चमकता हुए सितारा थे। उन्होने आजीवन आर्य समाज की सेवा की है। जिसके पास धन है वह धन से खूब सेवा करते हैं। जैसे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री पं हरबस लाल जी शर्मा सेवा करते हैं। इसी प्रकार महाशय बनारसी दास जी भी ऐसे ही कई लोगो की धन से सेवा किया करते थे व तन से भी आर्य समाज की सेवा किया करते थे। वह एक सर्राफ थे परन्तु उन्होने सारा जीवन ईमानदारी से व्यतीत किया।

आर्य समाज की सेवा तीन प्रकार से होती है । मौखिक, पुस्तको के द्वारा तथा अपने आचरण से। आचरण से प्रचार की जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। पहली और दूसरी पीढी के आर्य बन्धु ऐसे ही थे। वह अपने आचरण से भी आर्य समाज का प्रचार करते थे वह थोड़े थे परन्तु शत्रु भी उनकी प्रशसा किया करते थे। आज भी ऐसे लोगो का अभाव नहीं है पर थोड़े ही आर्य समाजी अब ऐसे मिलते हैं। एक समय था आर्य समाजी की साक्षी पर जज अपना निर्णय दे देता था।

एक बार समराला का उत्सव था जब उत्सव मे केवल चार दिन शेष रह गए तो वहां की बहनों ने कहा कि हमारा उत्सव तभी ठीक होगा यदि इसमें लाला जगत नारायण जी आएं। मैंने कहा कि अब समय थोड़ा रह गया है इसलिए उनका आना कठिन होगा। वह कहने लगीं यदि लाला जी नहीं आ सकते तो उत्सव स्थगित कर दो वह इस बात पर अड़ गईं। इस पर मैं लाला जी के पास जालन्धर पहुचा और प्रार्थना की कि समराला का उत्सव बड़ी देर के बाद रखा है वह खराब होने लगा है वहां के लोग चाहते हैं कि आप उनके उत्सव पर आएं। लाला जी हिन्द समाचार कार्यालय में बैठे थे। मेरी प्रार्थना पर उन्होंने कहा तारीख खाली हुई तो अवश्य भाग लूंगा। तारीख खाली थी उन्होंने हां कर दी और वह समराला पहुंचे। जब वहां के लोगों ने उन्हे गाड़ी के पैट्रोल के पैसे देने चाहे तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और कहा मेरे पास समय था मैं आ गया हूं। पुराने लोग अपना समय देते थे परन्तु बदले में कुछ नहीं लेते थे। महाशय बनारसी दास जी समय भी देते थे। धन भी देते थे, तन भी देते थे। आर्य समाज के हैदराबाद सत्याग्रह में भी गए, देश के लिए भी कार्य किया। समाज के लिए भी कार्य किया। हम उन्हें सदा याद करते रहेंगे।

–राम नाथ सि.वि. महोपदेशक, मोरिण्डा जिला रोपड़

आर्य समाज मन्दिर संगरूर का वार्षिकोत्सव सम्पन्न

वेद सप्ताह : 8.10.2001 सोमवार से 14-10-2001 रविवार तक आचार्य देवव्रत (गुरुकुल कुरुक्षेत्र) के सानिध्य में "गायत्री महायज्ञ, आध्यात्मिक दिव्य सत्संग" एवं पं. आशाराम आर्य व पं. प्यारे लाल आर्य (गाजियाबाद) के सान्निध्य में 'मधुर भक्ति संगीत' बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ जिसमें भारी संख्या मे स्थानीय श्रोताओं के साथ-साथ आर्य समाज धूरी, मालेरकोटला, अहमदगढ़, बरनाला, पटियाला, नाभा, समाना, राजपुरा एवं अन्य स्थानों से अपने-अपने वाहनों पर भारी संख्या में मातृ शक्ति एवं आर्य बन्धुओं ने वेद सप्ताह की शोभा बढ़ाई। विशेष आकर्षक, रोचक, ज्ञानवर्धक कार्यक्रम के अन्तर्गत गुरुकुल कुरुक्षेत्र के संस्कारित ब्रह्मचारियों (22) द्वारा सस्वर वेदमन्त्रोंच्चारण, श्लोक उच्चारण योग शक्ति प्रदर्शन, निशानेबाजी, रस्सा योग प्रदर्शन, अग्नि चक्र में से कूदना, जिम्नास्टिक एवं 14.10.2001 रविवार पूर्णाहुति गायत्री महायज्ञ इक्यावन कुण्डों में सम्पन्न हुई। ऋषि लंगर का आयोजन भी हुआ।

वेद सप्ताह उत्सव की शानदार सफलता का श्रेय स्थानीय आर्य समाज के प्रधान श्री वेदपाल टुटेजा एवं सहयोगी श्री अश्विनी महाजन (यजमानों की व्यवस्था) श्री राजेन्द्र आर्य (कोष, मुनादी प्रचार व्यवस्था), श्री पुरुषोत्तम दास, वीरेन्द्र जी, श्री रामशरण आर्य मन्त्री (सर्वस्व व्यवस्था) महाशय महेश कुमार, श्री खण्डू राम, श्री विष्णु दत्त, श्री विनोद कुमार व श्री जगननाथ गोयल द्वारा ऋषि लंगर व्यवस्था, श्री मा. धर्मवीर मा. देवराज (यज्ञ व्यवस्था) मा. नन्दलाल गांधी, विद्यालय स्टाफ, स्त्री आर्य समाज, आर्य वीर दल के संगठित सहयोग से सभी धन्यवाद के पात्र हैं। कार्यक्रम का संयोजन श्री सुरेन्द्र पाल गुप्ता ने एवं यज्ञ संयोजक पं. अविनाश पुरोहित थे। पांच वीडीयो, 15 आडियो कैसेट बने हैं।

विजय पर्व 26.10.2001 शुक्रवार को बड़ी श्रद्धापूर्वक मनाया गया। यज्ञ विशेष मन्त्रों सहित पं राजेन्द्र आर्य द्वारा करवाया गया, विद्यालय की छात्राओ द्वारा सुन्दर कार्यक्रम मा धर्मवीर जी द्वारा विजयदशमी पर्व के महत्व पर प्रवचन हुआ।

गुरु विरजानन्द दण्डी दिवस 28.10.2001 रविवार को श्रद्धापूर्वक मनाया गया। यज्ञोपरान्त विद्यालय स्टाफ एवं श्री रत्न लाल मांडला द्वारा मधुर भजन एवं पं. राजेन्द्र आर्य ने गुरु विरजानन्द के जीवन पर प्रकाश डालते हुए सभी को शुभ कामनाएं प्रकट की।

–राजेन्द्र आर्य

लुधियाना में वार्षिक उत्सव व विश्व शान्ति गायत्री महायज्ञ

स्त्री आर्य समाज का वार्षिकोत्सव 22 नवम्बर 2001 दिन वीरवार से 24 नवम्बर शनिवार तक बड़ी श्रद्धा से मनाया जा रहा है। आप सपरिवार इष्ट-मित्रों सहित सभी भाई-बहन इस कार्यक्रम में पधार कर धर्म लाभ प्राप्त करें तथा उत्सव की शोभा बढ़ायें।

"आमन्त्रित विद्वान् व विदुषी बहिनें"–श्रद्धेय स्वामी सम्पूर्णानन्द जी (करनाल वाले) । पं. सुरेन्द्र कुमार शास्त्री (पुरोहित आर्य समाज, दाल बाजार वाले)। श्रद्धेय माता सुमनायति जी। स्वामी शोभानन्द जी। नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी आदरणीय माधुरी योगमती जी (अमृतसर)। कुमारी नम्रता जी सोनी (लुधियाना)। श्रीमती सरला भारद्वाज (अध्यक्ष संस्कृत विभाग, फगवाड़ा)। तथा अन्य बहनें भी पधार रही हैं। कार्यक्रम दोपहर बाद 2.15 से 5 बजे तक 22-11-2001 से आरम्भ होगा। 24-11-2001 को दो बजे से 5 बजे तक महिला सम्मेलन श्री सरला भारद्वाज (फगवाड़ा) की अध्यक्षता में होगा। मुख्यातिथि सुश्री माधुरी योगमती जी अमृतसर होंगी।

–जनक रानी आर्य, महामंत्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्व में विद्यालय हरिद्वार में असमाजिक तत्वों द्वारा गड़बड़

पता चला है कि 9.11.2001 को गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय परिसर में कुछ लोगों ने गड़बड़ करने का प्रयास किया जिनमें कई असमाजिक तत्व भी शामिल थे। यह लोग चार कारों में भर कर यहां आए थे। सूचना के अनुसार यह भी ज्ञात हुआ कि असामाजिक तत्वों के पास अपनी बन्दूकें व रिवाल्वर थे और वह हवा में गोलियां चलाते हुए गुरुकुल में आए थे, जिस पर गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय के सुरक्षा कर्मचारियों ने भी जवाब में सुरक्षा की दृष्टि से हवा में गोलियां चलाई जिससे वहां भगदड़ मच गई। पता चला है कि इस कार्यवाही में कई लोगों को चोटें भी आई हैं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय कर्मचारी संघर्ष समिति के सदस्य तथा अन्य बहुत से लोग इन लोगों को वहां देख कर इकट्ठे हो गए थे और उन्होंने गड़बड़ करने वाले लोगों को वहां से भगा दिया और उनके विरुद्ध पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट दर्ज करवा दी जिस पर पुलिस ने अण्डर सैक्शन 307 के अधीन केस दर्ज करके कार्यवाही आरम्भ कर दी है। यह सारा घटनाक्रम गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय की बेची गई भूमि से सम्बन्धित है सरकार की ओर से उच्च स्तर पर इसकी सारी जांच करवाई जा रही है। यह असामाजिक तत्व गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय की बेची भूमि के साथ-साथ अब गुरुकुल की ख्याति को समाप्त कर देना चाहते हैं। परन्तु गुरुकुल के हितैषी अब ऐसा नहीं होने देंगे।

भटिण्डा में गुरु विरजानन्द दिवस

महर्षि दयानन्द सत्संग भवन आर्य समाज चौक भटिंडा मे दिनांक 28 अक्तूबर को प्रो. ओ पी मंगला प्रधान जी की अध्यक्षता मे "गुरु विरजानन्द" दिवस बड़ी धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। आचार्य श्री गुरुप्रसाद जी शास्त्री वैदिक प्रवक्ता के ब्रह्मत्व मे बृहदयज्ञ सम्पन्न हुआ। आज की मुख्य यजमान आर्य माडल हाई स्कूल की छात्रा कुमारी शैफाली थी। यज्ञोपरान्त कुमारी श्वेता ने 'वेदो का डंका आलम मे बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने' इस भजन को अपने मधुर कण्ठ से गाकर उपस्थित जन समूह को मन्त्रमुग्ध कर दिया। तदुपरान्त श्री आचार्य जी ने गुरु विरजानन्द दण्डी जी का परिचय देते हुए 'यो जागार : तमृचः कामयन्ते' ऋग्वेद के इस मन्त्र की व्याख्या की और कहा कि परिश्रम से मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है बशर्ते उसकी भावना पवित्र हो, परिश्रमी व्यक्ति अपने भाग्य का परिवर्तन कर सकता है। जैसे गुरु विरजानन्द जी नेत्रहीन तथा बेसहारा होते हुए भी भाई एवं भाभी के तिरस्कार पूर्ण व्यवहार से दुःखी होकर गृह त्याग कर भी अपने परिश्रम एवं लग्न से संस्कृत व्याकरण तथा आर्ष ग्रन्थों के दिवाकर कहलाए और दयानन्द जैसे शिष्य को तैयार कर दुनिया की भलाई के लिए समर्पित किया। आगे श्री शास्त्री जी ने कहा कि गुरु विरजानन्द जी प्रायः अपने शिष्यों से कहा करते थे कि मैं जिस विचाराग्नि को घूमाकार रूप मे तुम लोगों में प्रविष्ट कर रहा हूं समय आने पर वह ज्वालामयी होकर देश में विद्यमान नाना सम्प्रदाय जन्य आडम्बरो, मिथ्या विश्वासो और भ्रान्तमतो को भस्मसात कर देगी। अन्त में उन्होंने कहा कि हमें गुरु विरजानन्द जैसे महापुरुष के जीवन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

मुख्य वक्ता के रूप में ब्र सूर्यदेव जी वैदिक मिशनरी ने गुरू विरजानन्द के जीवन पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जिस प्रकार वीर शिवाजी के निर्माण में समर्थ गुरू रामदास का हाथ था, उसी प्रकार स्वामी दयानन्द जैसे शिष्य का निर्माण गुरू विरजानन्द दण्डी ने किया। जब महर्षि दयानन्द संस्कृत व्याकरण की शिक्षा के लिए विरजानन्द के पास मथुरा पहुंचे तो दण्डी जी ने शिष्य की परीक्षा ली कि देखो । यहां खाने पीने का प्रबन्ध तुम्हें स्वयं करना होगा, साथ ही प्रति दिन मेरे लिए यमुना से जल लाना होगा, जो यहा से लगभग 2 कोस दूरी पर है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि मैं तुम्हे एक पाठ को केवल एक ही बार पढाऊगा दुबारा कभी नहीं बताऊंगा। ऐसी कई शर्तो पर उत्तीर्ण होने पर दण्डी जी ऋषि दयानन्द को पढाने के लिए तैयार हो गए। आगे ब्रह्मचारी जी ने कहा गुरु विरजानन्द जी नेत्रहीन थे अतः उन्हे एक बार स्वामी दयानन्द द्वारा अधूरा कार्य (झाड़ू लगाकर) कूड़ा ठिकाने न लगाने पर बहुत मारा और कहा रे मूर्ख मैंने तुझे इस लिए मारा है कि जीवन में कोई भी कार्य अधूरा मत छोड़ो। जो करो उसे पूर्ण करो। गुरू विरजानन्द की गुरु दक्षिणा के बारे में उन्होने कहा कि उनकी गुरु दक्षिणा भी निराली थी, दयानन्द जी के लौंग भेंट देने पर गुरु जी ने कहा अरे दयानन्द ! मुझे तो तेरा जीवन गुरु दक्षिणा में चाहिए और शिष्य के तथास्तु कहने पर गुरु जी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और कहा जाओ संसार का उपकार करो।

इस कार्यक्रम में आर्य समाज के अधिकारियों में चौ. बाबू राम व उप प्रधान श्री नवनीत कुमार, श्री गौरीशंकर, श्री एम पी अरोड़ा, श्री रणधीर सिंह, श्रीमती इन्द्रा छाबड़ा एवं श्री धर्मपाल श्री रलहन जी प्रधान आ स. सिकन्दरपुरा आदि उपस्थित थे साथ ही प्रि श्रीमती शान्ति जिन्दल, प्रि. श्री हुकुम चन्द जी गोयल तथा नगर के मणमान्य व्यक्ति एवं आर्य वीर बच्चों की संख्या देखते ही बनती थी जो उपस्थित थे। मंच संचालन महामंत्री श्री प्रेम भाटिया जी ने किया। अन्त में प्रो. ओ.पी. मंगला जी ने कार्यक्रम में उपस्थित सभी महानुभावों का धन्यवाद किया। श्री शास्त्री जी एवं श्री सूर्य देव ब्रह्मचारी जी का भी बहुत-बहुत धन्यवाद किया। जिन्होंने समय निकाल कर आर्यजनों का मार्ग दर्शन किया। शान्ति पाठ एवं प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

—प्रेम भाटिया, महामन्त्री

गोनियाना मण्डी में यज्ञ समारोह

17 अक्तूबर 2001 को गोनियाना मण्डी जिला बठिंडा के नगर निवासियों द्वारा महाराजा अग्रसेन जयती पब्लिक धर्मशाला में धूमधाम से मनाई गई जिसमे सैंकडो की गिनती में पुरुष स्त्रिया शामिल हुए। आयोजन की शोभा में उस समय चार चांद लग गये जब स्वामी विरजानन्द आर्ष गुरुकुल मथुरा (उत्तर प्रदेश) के अधिष्ठाता आचार्य स्वदेश जी अपने ब्रह्मचारियो को साथ लेकर सम्मेलन मे उपस्थित नर-नारियो को अपना आशीर्वाद देने के लिए पधारे। सर्वप्रथम पवित्र वेदमंत्रों के साथ पूर्ण वैदिक रीति से यज्ञ हवन सम्पन्न कराया गया। इस के पश्चात् आर्य गुरुकुल के ब्रह्मचारियो द्वारा 'ओ३म आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो .. कल्पताम्' वेदमत्र द्वारा वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना कराई गई तथा इस की व्याख्या की गई जिसे सुनकर उपस्थित नर नारी रोमांचित हो उठे। बाद मे आचार्य स्वदेश जी ने बडा ही सुन्दर सरल सरस मार्मिक वेद प्रवचन देते हुए मण्डी निवासियो को महाराजा अग्रसेन जयती पर यज्ञ हवन का आयोजन करने पर बधाई दी। आप ने महाराजा अग्रसेन द्वारा दिखाये हुए मार्ग पर चलने की सभी को प्रेरणा दी। आचार्य स्वदेश के प्रवचन से मंत्र मुग्ध हो कर और उन से प्रेरणा लेकर अग्रवाल समाज मे प्रवेश हो रही 'दहेज' और विवाह शादी आदि के समय शराब आदि का सेवन जैसी बुराईयो को खुद त्यागने और इन तथा अन्य बुराईयो को जड से उखाड फेकने का दृढ संकल्प लिया। इस निश्चय के साथ हर साल महाराजा अग्रसेन जयंती पब्लिक धर्मशाला मे अथवा अन्य सार्वजनिक स्थान पर यज्ञहवन के आयोजन के साथ ही मनाई जाया करेगी। शाति पाठ के पश्चात् लड्डूयो का प्रसाद बाटा गया। क्षेत्र मे आचार्य स्वदेश जी के प्रवचन की खूब धूम मची है तथा लोग उनकी मुक्त कठ से प्रशसा कर रहे।

—तरेसम कुमार आर्य

छोटे मुंह बड़ी बात कहने का साहस कर रहा हूं

ले० श्री राम पथिक आर्य समाज अजनाला अमृतसर

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को तो हम मानते हैं परन्तु विडम्बना यह है कि महर्षि की बातो को हम नहीं मानते जिस दिन सुमन से महर्षि की बातो को मानने लगेगे एव सिद्धान्तो को क्रियात्मक रूप से जीवन मे धारण करेगे तो उसी दिन से फिर आर्य समाज का वहीं पुराना युग आरम्भ हो जाएगा और पंडित लेखराम व स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसे वीर स्वत: दिखाई देने लगेंगे। इस के लिये हमे अपनी कथनी और करनी के अन्तर को मिटाना होगा। आज हम कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं। इसी से आर्य समाज का प्रचार व प्रसार नहीं हो रहा।

संरक्षक शब्द का आजकल बहुत प्रयोग आर्य समाज मे चल रहा है। आर्य समाज के कार्यक्रमों के इश्तिहारो में नामो की भरमार होती है, क्या यह ठीक है। यह सब आर्य समाज का प्रचार है या अपने नामो का प्रचार है। इस प्रथा को हमें रोकना होगा। पचास साठ वर्ष पूर्व आर्य समाज मे संरक्षक शब्द का कोई प्रयोग नहीं करता था जैसे वर्तमान मे हो रहा है। कहीं-कहीं तो दो-दो या तीन तीन व्यक्ति एक ही संस्था के संरक्षक बन जाते हैं। और जब कोई सूचना आर्य समाज की छपती है तो अनेकों नाम उसमें छप जाते हैं। काम क्या हुआ यह कम छपता है तो नाम अधिक छपते हैं। परमपिता परमात्मा ही हम सब के जीवन का एक मात्र संरक्षक है न कि कोई व्यक्ति विशेष। केवल परमात्मा को ही संरक्षक कहा जा सकता है इन्सान तो मरण धर्मा है वह सदा रहने वाला नहीं । आज शोभा कीर्ति के भूखे लोगो ने व चापलूसो ने संरक्षक शब्द को बढ़ावा दिया है। यह एक कड़वा सत्य है जिसे मैं सिद्धान्त रक्षार्थ कहने का साहस कर पाया हूं। गृहस्थी, व्यापारी, प्राय: यश चाहता है इसलिये वह स्थान स्थान पर दान देता है जबकि इससे पहले लोग गुप्तदान दिया करते थे और धार्मिक संस्थाएं कभी रसीद बुक नहीं छापती थीं। साधु सन्यासी को कभी भी यश की भूख नही होती थी। वह न आर्य समाज में व आर्य समाज की किसी सस्था में न अधिकारी बनता था और न ही कहीं सरक्षक बनता था। आज विज्ञापनो मे, पुस्तको में तथा संगमरमर की शिलाओ में संरक्षक शब्द का प्रयोग बढ रहा है। एक बार महर्षि दयानन्द सरस्वती को लाहौर आर्य समाज में प्रधान पद देने की पेशकश की गई थी लेकिन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह कह कर ठुकरा दिया था कि मेरे पास इस के लिये समय नहीं है क्योंकि मैं हर समय प्रचार के लिये इधर से उधर आता जाता रहता हूं इसलिये मैं प्रधान पद से न्याय नहीं कर पाऊंगा। तब स्वामी जी से संरक्षक पद के लिये कहा गया लेकिन उन्होंने इसे भी ठुकरा दिया। तब स्वामी जी ने कहा कि यदि आप मुझे संरक्षक बनाओगे तो फिर परमपिता परमात्मा को किन शब्दों से सम्बोधित करेंगे। प्रभु ही एक मात्र संरक्षक है इसलिये संरक्षक शब्द का प्रयोग किसी भी व्यक्ति के नाम के साथ नहीं होना चाहिये। हम सब का परमात्मा ही संरक्षक है। उसे संरक्षक मान कर कार्य करें।

आर्य समाज के विधान में, नियम उपनियम में कहीं भी संरक्षक शब्द का प्रावधान नहीं है और न ही ऐसा कोई पद का इस में कोई उल्लेख किया गया है। हम लोगों ने ही दान लेने के लालच में अपने स्वार्थ के लिये संरक्षक शब्द का प्रचलन किया है। आर्य समाज में बड़े बड़े बुद्धिजीवी, विवेकशील, तर्क शिरोमणि विचारकों की कमी नहीं है लेकिन न जाने क्यों अभी तक संरक्षक शब्द के प्रयोग पर किसी भी व्यक्ति ने ध्यान नहीं दिया है।

बीती बिसारे-वर्तमान संभाले तो स्वत: भविष्य अपने आप सुधर जायेगा। यही सोच कर आप सब से मैंने यह सब कहने का साहस किया है। यदि मेरी सोच गलत है तो इस सम्बन्ध में विद्वानों को सोचना चाहिए और यदि मेरी सोच ठीक है तब भी आर्य नेताओं व विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिए और इस सम्बन्ध में आर्य समाज की पत्र पत्रिकाओं में अपने विचार देने चाहिएं। ताकि आर्य समाज में भी गलत प्रवृत्ति पैदा हो रही है वह बन्द हो सके। मैंने पहले भी इस विषय में लिखा था परन्तु अन्य किसी भी विद्वान व आर्य नेता ने इस विषय में कुछ भी नहीं लिखा। आखिर ऐसा क्यों है ? क्या किसी संस्था का कोई संरक्षक बन सकता है ? यदि नहीं बन सकता तो आर्य बन्धु अपने विचार आर्य समाज की पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ क्यों नहीं भेजते। जिससे यह प्रवृति आगे से बन्द हो सके। मुझे आशा है आर्य बन्धु व आर्य समाज के विद्वान व नेतागण इस ओर ध्यान देंगे।

आर्य समाज—नया नंगल का वार्षिक उत्सव

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी आर्य समाज नया नंगल का पांचवां वार्षिक उत्सव 8 अक्तूबर से 14 अक्तूबर 2001 तक बड़े उत्साहपूर्वक मनाया गया। इस शुभ अवसर पर आमन्त्रित आर्य विद्वानों में आर्य शिरोमणि स्वामी माधवानन्द सरस्वती जी हिसार (हरियाणा) एव आर्य भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, जालन्धर तथा अन्य विद्वानों ने अपने ज्ञान वर्धक प्रवचनो और मनोहर भजनो से नयानंगल निवासियों को आनन्दित किया, हम सभी विद्वानों के अति धन्यवादी हैं, कार्यक्रम की रूपरेखा इस प्रकार से थी। 8 अक्तूबर से 13 अक्तूबर तक प्रात: काल 5.45 से 7.30 बजे तक सन्ध्या हवन, भजन और आर्य समाज के योग्य पुरोहित पं. सुशील कुमार आर्य जी ने हवन यज्ञ सम्पन्न करवाये।

सायं काल 6.00 से 8.00 बजे तक अलग-अलग परिवारों में पारिवारिक सत्संग हुआ जिस में हवन यज्ञ, भजन और प्रवचनों का कार्यक्रम रहा।

11 अक्तूबर बृहस्पतिवार 11.00 से 1.00 बजे तक श्रीमती प्रबोध चौधरी जी (होशियारपुर) की और से अन्तर विद्यालय "चौधरी सदा राम जी पंचम स्मृति श्लोक मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता" आर्य समाज के प्रधान जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई, प्रथम द्वितीय आने वाले बच्चों को पारितोषिक द्वारा सम्मानित किया गया।

12 अक्तूबर शुक्रवार अपराह्न 2.30 से 4.30 बजे तक नया नंगल में नगर शोभा यात्रा आर्य समाज सैक्टर-2 से आरम्भ हुई और सैक्टर 2, 5, 4 और 1 से होती हुई आर्य समाज प्रांगण में समाप्त हुई । उस के पश्चात आर्य समाज मन्दिर में 5.15 बजे श्री दास.के. महत्ता रोगजिक्यूटिव डायरेक्टर एन.एफ.एल. द्वारा "ओ३म् ध्वजारोहण" की रसम अदा की गई इस के साथ ध्वज भजन और प्रवचनों का कार्यक्रम भी रहा। तीसरी सभा 12 अक्तूबर साय 7.30 से 9.00 बजे तक आर्य समाज मन्दिर मे भजनों और प्रवचनों का कार्यक्रम भी रहा। 13 अक्तूबर शनिवार प्रात: 9.00 से 11.00 बजे तक श्री आसकरन दास सरदाना जी की और से अन्दर विद्यालय श्रीमती सुशीला सरदाना चतुर्थ स्मृति भाषण प्रतियोगिता स्वामी माधवानन्द सरस्वती जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई प्रथम, द्वितीय, तृतीय आने वाले अध्यापकों और बच्चों को पारीतोषिक द्वारा सम्मानित किया गया और जल पान भी करवाया गया।

14 अक्तूबर रविवार प्रात: 8.00 से 9.15 बजे तक हवन यज्ञ, यज्ञ की पूर्णाहुति और आशीर्वाद का कार्य रहा उसके पश्चात् 1.15 बजे दोपहर तक भजनों प्रवचनों का कार्यक्रम चलता रहा, इस कार्यक्रम में निम्नलिखित सदस्यों को आर्य समाज की ओर से सम्मानित भी किया गया-1. स्वामी माधवानन्द सरस्वती, 2. श्री जगत वर्मा जी, 3. पं. सुशील कुमार आर्य जी, 4 श्री मदन मोहन मित्तल जी Minister Food & Supply Punjab, 5 श्री कृष्ण कांत वर्मा जी, बहन जनक रावल जी। अन्त में धन्यवाद एवं शान्ति पाठ के पश्चात ऋषि लंगर का कार्यक्रम 1.30 से 2.30 तक चलता रहा, सभी आर्य समाज के कार्यकर्ता बधाई के पात्र हैं जिन के कारण आर्य समाज का वार्षिक उत्सव का कार्यक्रम सफल रहा।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा [illegible] प्रेस, [illegible] जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्



साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

जालन्धर

दूरभाष ☎ : 292926

सामवेद अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—55 अंक : 24 सृष्टि संवत 1960853102, 25 नवम्बर से 2 दिसम्बर 2001 दयानन्दाब्द 178

जालन्धर की सभी आर्य समाजें सभा प्रधान पं. हरबंस लाल जी शर्मा को अपना पूरा-पूरा सहयोग देंगी--सरदारी लाल आर्य रत्न

18-11-2001 को आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर के वार्षिक उत्सव पर जनता को सम्बोधित करते हुए श्री सरदारी लाल जी आर्य रत्न ने कहा कि जालन्धर की सभी आर्य समाजे आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रधान श्री पं हरबस लाल जी शर्मा को पूर्व की भान्ति अपना पूरा सहयोग देगी यह हम सबने मिल कर निश्चय किया है और पंजाब मे आर्य समाज के प्रचार व प्रसार के लिए हम सब मिल कर कार्य करेंगे।

आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर के उत्सव पर 18-11-2001 को 12 बजे जब श्री प हरबंस लाल जी शर्मा सभा प्रधान श्री सुदर्शन जी शर्मा सभा उप प्रधान, श्री देवेन्द्र नाथ जी शर्मा सभा रजिस्ट्रार वहां पहुंचे तो जालन्धर की लगभग सभी आर्य समाजो से पधारे आर्य समाजों के प्रधान, मन्त्रियो और सदस्यो ने उनका भव्य स्वागत किया। आर्य समाज भार्गव नगर से श्री सरदारी लाल जी, श्री कमल किशोर जी, श्री प मनोहर लाल जी, सुदेश कुमार जी, श्री राज कुमार जी, श्री जगदीश जी और अन्य कई सदस्यों, आर्य समाज गढा से श्री कर्मचन्द जी माली, श्री वीरेश जी भगत, श्री मनोहर लाल डोगरा, श्री अमरनाथ जी तथा अन्य, आर्य समाज बस्ती दानिशमन्दा से श्री डा ज्ञानचन्द जी, श्री फकीर चन्द जी तथा अन्य, गान्धी नगर-1 से श्री बूटा राम जी, श्री तिलक राज जी व अन्य, आर्य समाज गांधी नगर-2 के कई सदस्य, आर्य समाज वेद मन्दिर गढा से श्री सम्भा राम जी तथा अन्य, आर्य समाज कबीर नगर से श्री जमनादास जी, श्री यशपाल भगत तथा अन्य, आर्य समाज सन्त नगर से उसके प्रधान तथा मन्त्री आर्य समाज माडल हाऊस से श्री जयदेव जी तथा अन्य, आर्य समाज आर्य नगर के सभी अधिकारी तथा आर्य समाज बस्ती बाबा खेल के सभी अधिकारी तथा अन्य सैकडो व्यक्तियो ने उन्हे पुष्प मालाए पहना कर उनका भव्य स्वागत किया और सम्मानित किया।

इस अवसर पर श्री सरदारी लाल जी आर्य जी ने बोलते हुए कहा कि आज लगभग जालन्धर की सभी आर्य समाजो के मन्त्री, प्रधान व प्रतिनिधि यहा उपस्थित है। हम सभी ने निश्चय किया है कि हम पहले की भान्ति प हरबस लाल जी शर्मा सभा प्रधान को अपना पूरा-पूरा सहयोग देगे। उन्होने आगे कहा कि हमे गुमराह किया गया था परन्तु अब हम सारी स्थिति को समझ गए हैं। इसलिए गत दिनो मैंने अपनी तथाकथित आर्य प्रतिनिधि सभा भंग कर दी है और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को भी इसकी सूचना दे दी है। अब पंजाब मे एक ही सभा है और उसके प्रधान श्री पं हरबस लाल जी शर्मा है। हम पिछले चालीस वर्ष से इस परिवार के साथ मिल कर कार्य कर रहे हैं प किशन चन्द जी और श्री प मुरारी लाल जी ने आर्य समाज का बहुत कार्य किया, अब पं. मुरारी लाल जी के सुपुत्र श्री देवेन्द्र नाथ जी शर्मा भी आगे आ गए हैं और सभा के यह रजिस्ट्रार हैं। सभा प्रधान श्री पं हरबंस लाल जी शर्मा के बड़े सुपुत्र श्री सुदर्शन जी शर्मा जो इस समय सभा के उपप्रधान भी हैं सार्वदेशिक सभा के भी उपप्रधान हैं अब सभा के कार्य को आगे बढाने के लिए व सभा की उन्नति के लिए कार्य कर रहे हैं। भ्रष्टाचारी लोगो व गलत लोगो से सभा को बचाने के लिए पण्डित जी जो प्रयास कर रहे हैं हम भी इसमे अपना पूरा-पूरा सहयोग इन्हे देगे। गलत लोगो का सभा मे कोई स्थान नही होना चाहिए। हम पिछले-चालीस वर्षो से आर्य समाज का कार्य कर रहे है और आगे भी इसी प्रकार करते रहेगे। गत दिनो आर्य समाज के प्रचार कार्य मे कमी आने से कई नए-नए मत-मतान्तर फैलने लगे है। कुछ राजनैतिक लोगो ने अब हमारे लोगो मे भी कबीर पन्थ का प्रचार करना आरम्भ कर दिया है हमे इससे सावधान रहना चाहिए और पहले की भान्ति आर्य समाज का प्रचार करना चाहिए क्योकि हम सभी आर्य समाजी हैं।

इस अवसर पर श्री देवेन्द्र नाथ जी शर्मा ने कहा कि मेरे ताया श्री प किशन चन्द जी और मेरे पिता श्री प. मुरारी लाल जी ने आर्य समाज व आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का जो कार्य किया है आप सब जानते हैं पण्डित किशन चन्द जी को सभी लोग चलती फिरती आर्य समाज कहा करते थे वह जालन्धर की सभी आर्य समाजो मे जाते थे वह रात-दिन कार्य करते थे। मै आप सब को विश्वास दिलाता हूं कि हम सभी आर्य बन्धुओ को साथ लेकर चलेगे सभी को पहले की तरह पूरा-पूरा सम्मान देगे। जो लोग गुमराह हो गए थे वह पुन: सभा के साथ जुड गए हैं इसकी हमे बहुत खुशी है। सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो यह प्रसन्नता की बात है। मैं सभा प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा की ओर से सभी को विश्वास दिलाता हू कि हम सभी आर्य बन्धुओ को साथ लेकर चलेगे और सभी को पूर्व की भान्ति सहयोग देगे।

अन्त मे सभा प्रधान श्री प हरबस लाल जी शर्मा ने सभी आर्य बन्धुओ को मिलकर पहले की तरह आर्य समाज का कार्य करने की प्रेरणा दी तथा उत्सव की सफलता के लिए बधाई दी और आर्य समाज आर्य नगर के भवन निर्माण के अधूरे कार्य को पूरा करने के लिए 31 हजार रुपए देने की घोषणा की। इसके साथ ही श्री सुदर्शन जी शमा उप प्रधान सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली तथा उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने अपनी ओर से 20 हजार रुपए भवन निर्माण हेतु देने की घोषणा की।

—धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

वेद मन्त्रो के कविता मे अर्थ—

अलंकृत यज्ञ

—देव नारायण भारद्वाज (अलीगढ़)

अग्नि दूत वृणीमहे होतार विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम। साम ७६०।
मन वीणा को कर दो झकृत।
करो हमारा यज्ञ अलकृत।
हमने तुमको वरण किया है।
मार्ग तुम्हारा ग्रहण किया है।
हे अग्नि दूत हे प्रभा पूत,
तुम करते हो विश्व शुभकृत॥
तुम्हें ज्ञान है दुनिया भर का।
सभी देवताओ के घर का।
साथ तुम्हारे देव पधारे,
जन जन होगा यहा उपकृत॥
हर कार्य यज्ञ सा उत्तम हो।
जग सत्यम शिवम सुन्दरम हो।
जीवन मे ज्योतित मेधा हो,
हर कृति से हो जगत चमत्कृत।

सार्वदेशिक सभा के नवनिर्वाचित प्रधान श्री कै. देवरत्न आर्य

3 11 2001 को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के साधारण अधिवेशन मे सर्वसम्मति से आर्य नेता कै देवरत्न आर्य सभा प्रधान निर्वाचित हुए है। समूचे आर्य जगत मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। श्री के देवरत्न जी जन जन की आशाओ के केन्द्र हैं।

आर्य समाज गगन के देदीप्यमान नक्षत्र

आर्य समाज गगन मे उदित एक देदीप्यमान नक्षत्र कैप्टन देवरत्न आय के कृतित्व और व्यक्तित्व पर जब दृष्टि क्षेप करते है तो उत्साह, सन्तोष ओर गर्व से अभिभूत हुए बिना हम नही रहते। दलबन्दी, मतभेदो और वितडावादो ने आर्य समाज को हिलाकर रख दिया है। ऐसे कठिन अवसर पर कैप्टन देवरत्न आर्य के सयोजकत्व मे अन्तरराष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन एक अभूत पूर्व घटना के रूप मे साकार हुआ।

विश्व भर के लगभग पचास हजार आर्य जन, प्राय: डेढ सौ की सख्या मे आर्य सन्यासी, विद्वान, वक्ता, लेखक, ग्रन्थकार, सम्पादक, पत्रकार, नेता आचार्य, पुरोहित मच पर खडे कैप्टन देवरत्न आय पर आशीर्वाद की वर्षा कर रहे थे। मारे वैमनस्य कल्मष को, अपनी रचनात्मक प्रतिभा के बल पर, विनष्ट कर, दयानन्द के दीवानो को एक मडप मे इकट्ठा कर दिया ऋषि की पीडा से व्यथित इस जादूगर ने। चार दिनो तक समाज, धर्म और देश की विषम समस्याओ पर विद्वानो ने, आर्यजनो ने गहराई से प्रकट चिन्तन किया।

नव स्फूर्ति-नवप्रेरणा-नवसन्देश

कैप्टन देवरत्न आर्य एक कुशल सगठक और सावधान सयोजक है। वे इस आर्य महासम्मेलन-माला मे रेशम के आकर्षक, सुदृढ सूत्र है। इस सूत्र मे धन संग्रह समिति, दान प्राप्ति समिति, यज्ञ समिति, पण्डाल समिति, आवास समिति, भोजन समिति, स्टॉल समिति, जल समिति, बिजली समिति, स्वागत सम्मिति, स्वय सेवक समिति आदि समितियां मोतियो की तरह जगमगाने लगी। कैप्टन आर्य का सैनिकी अनुशासन तो सर्वविदित ही है, पर उनकी तत्परता, दूरदर्शिता और सजगता ने तो शैथिल्य का, ढीलेपन का, उदासीनता और मलीनता का अस्तित्व ही मिटा दिया। पूरा वातावरण नव स्फूर्ति, नव जागरण, नव प्रेरणा और नव सन्देश से ओत प्रोत हो गया।

चमत्कारिक व्यक्तित्व की पृष्ठ भूमि

वैदिक वाड्मय के ख्याति लब्ध मनीषी विद्वान योगाचार्य अनेक पुस्तको के लेखक आचार्य भद्रसेन जी के सुपुत्र होने का दुर्लभ गौरव कैप्टन देवरत्न आर्य को प्राप्त है। आचार्य जी आर्य समाज के स्वर्ण युग की विभूति थे। यम नियमो के पालन से निर्मित आचार्य जी का जीवन अपने आप मे एक उदाहरण था। वे एक वैदिक मिशनरी और सत्साहित्य के प्रणेता थे। योग के मर्मज्ञ तथा प्रसारक थे। स्वभावत: ज्ञानसाधना, श्रमनिष्ठा, निस्पृहता, संयमशीलता, सिद्धान्त प्रियता, कठोर नियमितता जैसी दिव्य सम्पति कैप्टन आर्य जी को अपने पूज्य पिता से मिली। वे अनायास ही आर्य सस्कारो से पूरित हो गये। यही कारण है कि कैप्टन देवरत्न आर्य मे सुवर्ण युगीन आर्य समाजियो की झलक दृष्टि गोचर होती है। आचार्य भद्रसेन जी की कैप्टन आर्य के रूप मे एक अनुपम भेट है आर्य समाज को।

आर्य गृह

कैप्टन आर्य का वैयक्तिक जीवन नगण्य है। वे घर में, कार्यालय मे जहा भी रहते है आर्य समाज की समस्याओ और प्रश्नों से घिरे रहते हैं। आर्य जी का पूरा परिवार पूरी निष्ठा से उनका सहप्रवासी है। आर्य सन्यासियो, विद्वानो और कार्यकर्त्ताओ को आर्य जी का घर अपनेपन, अकृत्रिमता और स्नेह से भरा मिलता है।

साहित्य रसिक कैप्टन आर्य

आर्य जी दयानन्द महाविद्यालय अजमेर के छात्र रहे राजस्थान विश्व विद्यालय जयपुर से एम.कॉम. किया। पर हिन्दी साहित्य में उनका अटूट सम्बन्ध बना रहा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन से उन्होंने हिन्दी साहित्य और अर्थशास्त्र में 'साहित्य रत्न' किया है। वे स्वयं मजे हुए कुशल हिन्दी के लेखक हैं।

कैप्टन आर्य हिन्दी के प्रभावशाली वक्ता है। उनकी सहज, स्वाभाविक वक्तृत्व शैली है और स्पष्ट, सुनिश्चित विचार उनकी विश्वासार्हता को निस्सदिग्ध बनाते हैं। जिस सभा में आर्य जी होगे, उसके आयोजक निश्चिन्त हो जाते हैं कि उनकी उपस्थिति मे कोई काम बिगड़ेगा नही। उनके द्वारा सभा संचालन तो देखते ही बनता है और एक सुनियोजित चल चित्र का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

आर्य समाजेतर क्षेत्र भी आशान्वित

कैप्टन आर्य समाज के ऐसे रत्न हैं कि जिन से आर्य समाजेतर संस्थाएं भी लाभान्वित होती हैं। 1 मुम्बई गुडस् ट्रान्सपोर्ट एसोसिएशन मुम्बई के महामन्त्री और प्रधान रहे। 2 पूर्व सैन्य अधिकारी कल्याण एसोसिएशन के सदस्य। 3 इण्डियन मर्चेन्ट चेम्बर के अन्तरंग सदस्य। 4 उत्तरी भारत सभा मंच के संरक्षक सदस्य आदि अनेकानेक सस्थाए आपकी सेवाओ से लाभान्वित हो रही है।

लायन्स क्लब के प्रतिष्ठित सदस्य

आर्य जी लायन्स क्लब के सुप्रतिष्ठित सदस्य है। जन सामान्य की सेवा के कितने ही कार्य इस संस्था के द्वारा करते रहते हैं। लायन्स क्लब के वे मेलनिन जॉन फेलो हैं तथा उसके द्वारा उन्हे कई अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

वैदिक विद्वानों को पुरस्कार एक मौलिक योजना

आर्य समाज सान्ताक्रुज आज विश्व की आर्य समाजो मे विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी है। इसका बहुत कुछ श्रेय कैप्टन देवरत्न आर्य को है। वैदिक विद्वानो ने अपना जीवन वैदिक वाड्मय के प्रणयन मे खपा दिया। पर उनके योगक्षेम की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। कैप्टन आर्य ने वेद वेदाग पुरस्कार, वेदोपदेशक पुरस्कार, आर्य प्रकाशन पुरस्कार, आर्य साहित्य पुरस्कार आदि पुरस्कारो की एक शृखला ही आर्य समाज सान्ताक्रुज मे प्रारम्भ कर दी। अपनी मौलिक सूझबूझ के द्वारा इन पुरस्कारो के लिए स्थायी ट्रस्ट बना दिये। कैप्टन आर्य इन सभी पुरस्कारो के संयोजक हैं। 1985 मे सर्वप्रथम पं युधिष्ठिर मीमासक को 75 हजार का पुरस्कार दिया गया था। स्व देवेन्द्र कपूर और कैप्टन आर्य इन दो व्यक्तियो ने इस उत्तरदायित्व को सम्भाला था। उसके पश्चात् अब तक लगभग 60 वैदिक विद्वानो और वेदोपदेशको को पुरस्कृत किया जा चुका है।

अभ्यास परिप्लुत भाषण

कैप्टन आर्य देश और विदेश के आर्य सम्मेलनो के स्वागताध्यक्ष, विशेष अतिथि और वक्ता के रूप मे आमन्त्रित किये जाते है। उनका भाषण भी श्रवणय तथा स्मरणीय होता है, श्रोताओ को मन्त्र मुग्ध करने की उनकी शैली 'वक्ता दश सहस्रेषु' की प्रतीति कराये बिना नही रहती।

स्वागताध्यक्ष के रूप मे उन्हे महाराष्ट्र आर्य प्रतिनिधि सभा के महासम्मेलनो मे दो बार आमन्त्रित किया। ऐसी स्थिति में उनका भाषण अभ्यासपूर्ण, गहरे परिश्रम का परिणाम होता है। वे स्थानीय इतिहास, संस्कृति और साहित्यकारों का विशाद वर्णन करते हुए अपना भाषण प्रस्तुत करते हैं। उस हृदयस्पर्शी भाषण से स्थानीय लोग स्वयं को गौरवान्वित समझते हैं। अभ्यगतजनो के ज्ञान में वृद्धि होती है। मंच और पूरी सभा आर्य जी की मुट्ठी में रहती हैं क्योंकि उन्हें मालूम है कि जहा कैप्टन आर्य और वहां सभा संगठित, सुनियोजित और परिणाम कारक होती हैं। उनकी सफलता का रहस्य यह है कि वे सभी कार्य निरलस भाव से, मनोयोग पूर्वक, अनथक परिश्रम के साथ करते हैं। एक लक्षणीय और महत्वपूर्ण बात यह होती है कि उनके सहयोगियों को अपनी-अपनी योग्यता और क्षमता के सफलताभूत होने की अनुभूति उन्हें निरन्तर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। (शेष पृष्ठ 4 पर)

सम्पादकीय.....

सभी आर्य बन्धु एक हो जाएं

आज संसार में आर्य समाज की उस काल से भी अधिक आवश्यकता है जिस काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की थी। उस काल में हमारे देश में छूत-छात, भूत-प्रेत, जादू-टोने, ऊंच-नींच जातिवाद, सम्प्रदायवाद व अज्ञान अन्धकार बहुत फैला हुआ था। ईसाई व मुस्लमानों का बोलबाला था। स्त्री शिक्षा नाम मात्र की थी पुरुष भी अधिकतर अशिक्षित थे अनाथों व विधवाओं की कोई सुनने वाला नहीं था। सभी लोग अंग्रेजों की फूट का शिकार थे, आपस मे लडाई-झगडे थे। देश परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, ऐसे समय मे महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना करके देश में फैली इन कुरीतियों के विरुद्ध एक आन्दोलन आरम्भ किया था जिसने देश की काया पलट कर रख दी, शिक्षा के क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा हुई, स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया गया, छूत-छात समाप्त हो गई, विधवा व अनाथों की रक्षा हुई अज्ञान अन्धकार के बादल छट गए और देश आजाद हुआ।

सारे देश में आर्य समाज के सगठन का डका बजा आर्य समाज ने देश विदेश मे अपना सिक्का जमाया और सभी प्रकार के सुधार कार्य किए। वेदों की रक्षा व प्रचार-प्रसार के लिए भी आर्य समाज की स्थापना महर्षि ने की थी और उन्होंने स्वयं भी वेद का प्रचार किया और उनके बाद आर्य समाज के कई दीवानो ने देश के लिए अपना बलिदान दिया और भारत देश की परतन्त्रता की जजीरों को तोडा, स्कूल-कालेजो का शिक्षा के लिए सारे देश मे जाल सा फैलाया और गुरुकुल भी खोले। आर्य समाज ने जो भी आन्दोलन आरम्भ किया उसमे सफलता प्राप्त की । हैदराबाद सत्याग्रह मे निजाम के दात खट्टे किए आज उसी के कारण कई लोगो को स्वतन्त्रता सेनानी होने का गौरव प्राप्त हुआ है और आज सैंकड़ो आर्य समाजी स्वतन्त्रता सेनानी है।

यह ठीक है कि जो कार्य प्रारम्भ मे आर्य समाज ने आरम्भ किए थे उनमे से बहुत से कार्य पूर्ण हो चुके हैं परन्तु आज भी आर्य समाज की उतनी ही आवश्यकता है जितनी आवश्यकता उसकी उस काल मे थी जब उसकी स्थापना हुई थी। एक समय ऐसा भी आया कि आर्य समाजी होना एक गौरव की बात मानी जाने लगी थी परन्तु अब आर्य समाज की स्थिति कुछ सोचनीय सी होती जा रही है। कुछ लोग मुझसे पूछते हैं कि सारे ससार को सगठन का पाठ पढाने वाला आर्य समाज आज स्वय विघटन का शिकार क्यो होता जा रहा है ? जिसने सारे संसार को अज्ञान अन्धकार से जगाया था आज वह स्वय निद्रा में लीन क्यो होता जा रहा है। आज आर्य समाज मे विघटन व फूट ने अपना घर क्यों बना लिया है ? जिन शिक्षा सस्थाओ से आर्य समाज का प्रचार व प्रसार होना था आज वही आर्य समाज मे कलह का कारण क्यों बनती जा रही है। आज शिक्षा सस्थाओ पर अधिकार जमाने की होड सी आर्य समाज मे क्यों लगी हुई है ? यहा तक कि शिक्षा सस्थाओ पर अधिकार जमाने के लिए जिन्हे हम त्यागी और तपस्वी समझते है वह भी गोलियां क्या चलवाने की कोशिश कर रहे है ? एक समय था जब आर्य समाज मे समाज के कल्याण के लिए कार्य करने की होड लगी हुई थी। एक से एक आगे बढ कर काम कर रहा था परन्तु आज अधिकारो के लिए होड क्यो लगी हुई है, कार्य कोई करना नही चाहता। ऐसा क्यो है ?

कई लोग प्रश्न करते है कि आज आर्य समाजो मे, आर्य प्रतिनिधि सभाओ व शिक्षा संस्थाओं में विवाद क्यो पैदा हो रहे है ? आर्य समाज उन्नति के स्थान पर अवनति की ओर क्यों जाता हुआ दिखाई दे रहा है ? देश से भ्रष्टाचार, अज्ञान-अन्धकार को दूर भगाने वाला आर्य समाजी आज स्वयं क्यों इसमें फसता जा रहा है ? जिन बुराईयो का आर्य समाज सदा विरोध करता रहा है आज स्वय क्यों उन्हें अपनाने लगा है ? ऐसे बहुत से प्रश्न किए जा रहे हैं जिनका लोग उत्तर मांगते हैं।

मैं तो इन प्रश्नों का यही उत्तर देना चाहता हूं कि आर्य समाज में आज भी संगठन है। आर्य समाज में आज भी बुद्धिजीवी लोग हैं। आर्य समाज मे आज भी त्यागी-तपस्वी लोग हैं, आर्य समाज मे आज भी देशभक्त लोग हैं। आर्य समाज में आज भी उच्चकोटि के विद्वान् व सन्यासी है। मै यह जरूर मानता हूं कि अपने निजी स्वार्थ के लिए कुछ ऐसे लोग आर्य समाज मे घुसपैठ करके आगे जरूर आ गए हैं जो आर्य समाज को हानि पहुंचा रहे है। जब वह अधिकारो के लिए लडते है, झगडे पैदा करते है, आर्य समाज की सस्थाओं पर बलात् कब्जा करना चाहते है, तब कई लोग ऐसा समझ लेते हैं कि आर्य समाजी आपस मे लड रहे हैं, परन्तु जो आर्य है, जो श्रेष्ठ लोग हैं, जो उच्चकोटि के चरित्र के धनी हैं, जो ज्ञानी है, विद्वान् व उच्चकोटि के सन्यासी हैं, त्यागी व तपस्वी है वह कभी किसी से नही लडते न उन्हें लडने की कोई आवश्यकता है। वह तो आर्य हैं वह किसी से क्यों लडेगे। आज आवश्यकता इस बात की है कि आर्य समाजी बन्धु आगे आ जाए जो लोग आर्य समाज मे विघटन पैदा कर रहे है भ्रष्टाचार फैला रहे है और जो आर्य समाज को हानि पहुचा रहे है और अपने स्वार्थो के लिए लड रहे है उन्हे पीछे हटा दे और अच्छे लोगो को आगे ले आए। आर्य समाज का वास्तविक स्वरूप लोगों के सामने रखे। आर्य समाज ने देश की रक्षा के लिए और धर्म की रक्षा के लिए बडे से बडा बलिदान दिया है परन्तु आज आर्य समाज की रक्षा के लिए भी हमे बलिदान देने की आवश्यकता पडेगी इसके लिए भी अब हमे तैयार रहना चाहिए।

मैं श्री सरदारी लाल जी आर्य रत्न व उनके साथियो को बधाई देता हू कि उन्होने पजाब मे आर्य समाज के हित को सामने रखते हुए और सगठन का परिचय देते हुए अपनी तथाकथित सभा भग कर दी और हमारे साथ मिल कर आर्य समाज के प्रचार व प्रसार के लिए कार्य करने का निश्चय किया है। मै चाहता हू कि पजाब की सभी आर्य समाजो का एक शक्तिशाली सगठन बन जाए। पजाब ने सदा सारे आर्य जगत का मार्ग दर्शन किया है अब भी ऐसा ही होना चाहिए। मै प्रयास कर रहा हू जहा-जहा भी पजाब मे आर्य समाज मे कही-कहीं मतभेद है वह शीघ्र दूर हो जाए। इसी प्रकार मै चाहता हू कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब से सम्बन्धित सभी आर्य शिक्षा सस्थाआ का कार्य सुचारू रूप से चले उनकी भी उन्नति हो। यह कार्य भी तभी होगा जब सभी आर्य बन्धु अपने-अपने मतभेद भुला कर एक सगठन मे आकर जुड जाएगे। कही तक यह बात भी ठीक है कि शिक्षा सस्थाओ पर अधिकार को लेकर पंजाब मे एक दो स्थानो पर गत दिनो विवाद पेदा हुआ है। मे समझता हू कि यह नही होना चाहिए था क्योकि हम आर्य समाजो व शिक्षा संस्थाओ में सेवा के लिए अधिकारी बनते है और हमे अधिकारी बन कर भी इनकी सेवा करनी चाहिए इन पर अपना अधिकार नही जमाना चाहिए। हमारे बडे बुजुर्गो, पुराने आर्य बन्धुओ ने इन्हे अपने खून-पसीने से सींचा है हमे कोई अधिकार नही है कि हम इन्हे कोई हानि पहुचाए इनमे विघटन पैदा करे, हम सब को मिल कर इनकी उन्नति के लिए कार्य करना चाहिए। यही हमारा धर्म है और यही हमारा कर्त्तव्य है। इस धर्म व कर्त्तव्य का प्रत्येक आर्य समाजी को पालन करना चाहिए।

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि शीघ्र अति शीघ्र हम मिल बैठ कर सार्वदेशिक सभा व सभी आर्य प्रतिनिधि सभाओ व आर्य समाजो के विवादो को समाप्त कर दे और आर्य समाज मे एक सगठन व प्यार की लहर पैदा करे परन्तु यह तभी होगा जब हम अपने स्वार्थो को छोड कर अपने सब मतभेद भुला देगे।

आर्य बन्धुओ व बहनो आगे आओ और गलत लोगो से आर्य समाज की रक्षा करो, यह कह कर पीछे मत हटो कि हमने क्या लेना है ? आर्य समाजी कभी कुछ लेने के लिए आगे नही आता बल्कि कुछ देने के लिए आगे आता है यदि अच्छे लोग आगे नही आएगे तो गलत लोग आगे आएगे और वह कुछ लेने के लिए ही आगे आएगे कुछ देने के लिए नही। इससे आर्य समाजो व शिक्षा सस्थाओं की बहुत बडी हानि होगी और कई स्थानो पर तो होने भी लग गई है। इसलिए सावधान होकर व जागरूक होकर आर्य समाज का कार्य करे।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

(पृष्ठ 2 का शेष)

चीनी मोरचा-तोपखाने पर कैप्टन आर्य !

कैप्टन आर्य जिस क्षेत्र में गये सफलता ने उन्हें वरण किया। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि एक वैदिक विद्वान के घर जन्मे आर्य जी एक सफल सैनिक रहे हैं।

फायर फाइटिंग डिप्लोमा उन्होने नैशनल फायर कॉलेज नागपुर से किया। भारतीय सैन्य सेवा में उन्होने भारत-चीन युद्ध के समय १९६३ से १९६९ तक भारतीय सेना की आर्टिलरी डिवीजन में काम किया और ऊचे पर्वतो मे शत्रुओ का मुकाबला किया। उन्हें सैन्य सेवा मेडल १९६२ तथा सैन्य रक्षा मेडल १९६५ दिया गया। उस कठोर जीवन से उन्होंने जो अनुभव प्राप्त किया उसने उनके जीवन क्रम को अत्यन्त अनुशासनमय बना दिया। नियम पालन और समय पालन उनके जीवन का अनिवार्य अग बन गये। असयम और अनियमितता उन्हे बिल्कुल सहन नही है।

एक सर्वथा मौलिक योजना

वैदिक सस्थाओ का धनाभाव दूर करने के लिए कैप्टन आर्य ने एक नवीन योजना का शुभारम्भ किया है। यह योजना आर्य समाज के इतिहास मे अनोखी मौलिक योजना है। उन्होने आर्य जगत के उच्च कोटि के सन्यासियो के सम्मान की योजना बनाई और उससे प्राप्त धन सम्बन्धित सस्था को भेट करा दिया। अब वे संस्थाएं दयानन्द के मिशन के द्रुतिगति से अग्रसर कर सकेगी। ये सम्मान समारोह कैप्टन आर्य के सयोजकत्व मे ही सम्पन्न हुए। इनका विवरण इस प्रकार है-

1 सन् 1995 पूज्य स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती-11 लाख रुपये आर्य समाज काकडवाडी

2 सन् 1995 स्वामी सर्वानन्द जी सरस्वती-31 लाख रुपये श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा

3 सन् 1997 पूज्य स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती-श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास उदयपुर द्वारा

4 सन् 1998 स्वामी तत्वबोध जी सरस्वती-31 लाख रुपये

5 सन् 1999 स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती-31 लाख रुपये

6 सन् 2000 पूज्य स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती-31 लाख रुपये

पूज्य स्वामी दीक्षानन्द जी सरस्वती का विश्वास

इन सस्थाओ का उत्तरदायित्व तो कैप्टन आर्य सम्भाल ही रहे है, एक नया उदाहरण लीजिए।

आर्य समाज के मूर्धन्य संन्यासी स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती उच्च कोटि के वैदिक चितक, वेदो के विद्वान और स्तरीय वैदिक साहित्य के प्रकाशक है। स्वामी जी ने अपने गुरु स्वामी समर्पणानन्द जी (प बुद्धदेव विद्यालकार) की स्मृति मे समर्पण शोध संस्थान की स्थापना की है। स्वामी जी ने यह शोध सस्थान कैप्टन आर्य के व्यवस्थापन मे निर्माणधीन अन्तरराष्ट्रीय वैदिक अनुसंधान केन्द्र को समर्पित कर दिया है। उन्हे आशा है कि आर्य जी के तत्वावधान मे यह सस्थान फलता-फूलता रहेगा और महर्षि की वसीयत के अनुसार देश देशान्तर और दीप दीपनान्तर से वैदिक विद्वान विभिन्न विदेशी भाषाओ में तैयार कर भेजने मे समर्थ होगा।

कैप्टन आर्य का विश्वसनीय नेतृत्व

कैप्टन देवरत्न आर्य मे संन्यासियो, विद्वानो, कार्यकर्त्ताओ और आर्यजनो को विश्वसनीय नेतृत्व की आशा दिलाने की क्षमता है। वे नवजीवन और नवजागरण से ओतप्रोत कार्यक्रम देने मे अपना उदाहरण आप हैं। उनका सयोजन और नियोजन का कौशल अनुपम है। उनमें एक सैनिक की खूबी है। अपने लक्ष्य की वास्तविक समझ और उस तक पहुचने की दुर्दमनीय तत्परता है।

हमे विश्वास है कि इनके नेतृत्व मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली का कार्य अब पहले से बहुत अधिक आगे बढ़ेगा और सुचारु रूप से चलेगा।

–यशप्रिय आर्य

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली का त्रैवार्षिक चुनाव सम्पन्न

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा महर्षि दयानन्द भवन नई दिल्ली का त्रैवार्षिक चुनाव 3-11-2001 को आर्य समाज दीवान हाल नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ जिसमें सर्वसम्मति से श्री कैप्टन देवरत्न जी को आगामी तीन वर्ष के लिए प्रधान चुना गया और शेष पदाधिकारी व अन्तरंग सदस्य उनको मनोनीत करने का अधिकार दिया गया। उन्होने अन्य पदाधिकारी व अन्तरंग सदस्य निम्न प्रकार मनोनीत व घोषित किए एवं साधारण सभा द्वारा स्वीकृत हुए।

कार्यकारिणी एवं अन्तरंग सभा के सदस्यों की सूची पदाधिकारी

1. प्रधान-कैप्टन देवरत्न आर्य (मुम्बई)। 2 वरिष्ठ उप प्रधान-श्री विमल वधावन (दिल्ली) 3. उप-प्रधान-श्री गौरी शकर कौशल (मध्य भारत), 4 उप-प्रधान-श्री रवि हरीशचन्द्र (मध्य विदर्भ), 5 उप-प्रधान-डा राधाकृष्ण वर्मा (कर्नाटक), 6 उप-प्रधान-श्री सुदर्शन शर्मा (पजाब), 7 उप-प्रधान-श्री आनन्द कुमार आर्य (बंगाल), 8 उप-प्रधान-श्री आचार्य यशपाल (हरियाणा), 9 मन्त्री-श्री वेदव्रत शर्मा (दिल्ली), 10 उप-मन्त्री-श्री वाचोनिधि आर्य (गुजरात), 11 उप-मन्त्री-श्री रोशनलाल आर्य (हरियाणा), 12 उप-मन्त्री-श्री भूपनारायण शास्त्री (बिहार), 13 उप-मन्त्री-श्री कृष्णराव (आन्ध्र प्रदेश), 14 उप-मन्त्री-श्री आचार्य जगतदेव (मध्य विदर्भ), 15 उप-मन्त्री-श्री सुग्रीव काले (महाराष्ट्र), 16 उप-मन्त्री-श्री जयनारायण अरुण (उ प्र) 17 कोषाध्यक्ष-श्री जगदीश आर्य (दिल्ली), 18 पुस्तकाध्यक्ष-श्री सोमदत्त महाजन (दिल्ली), 19 श्री लक्ष्मीचन्द चौधरी (उ प्र) 20 डा सच्चिदानन्द शास्त्री (उ प्र) 21 श्री दयाराम बसैय्या (महाराष्ट्र) 22 श्री टी वी नारायण (आन्ध्र प्रदेश), 23 श्री भगवानदास अग्रवाल (मध्य भारत), 24 डॉ० महेश विद्यालकार (दिल्ली), 25 श्री प्रदीप आर्य (राजस्थान), 26 श्री स्वामी व्रतानन्द (उडीसा), 27 श्री आचार्य रामानन्द (हिमाचल प्रदेश)। 28 श्री पी एन आर्य (कर्नाटक), 29 श्री सुबोध कुमार (तमिलनाडू), 30 माता प्रेमलता शास्त्री (दयानन्द सेवाश्रम संघ) 31 डॉ० योगेन्द्र कुमार शास्त्री (जम्मू-काश्मीर), 32 श्री ओकार नाथ आर्य (मुम्बई), 33 श्री कल्याण देव (गुजरात) 34 श्री देवेन्द्र शर्मा (पजाब), 35 श्री मुकेश सैनी (प्रतिष्ठित)

अमृतसर में ऋषि निर्वाण दिवस

महर्षि दयानन्द धाम बाजार हसली अमृतसर द्वारा महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। दीपावली के पावन पर्व का शुभारम्भ बृहद् यज्ञ के साथ हुआ। वेद मन्त्रो की ध्वनि ने वातावरण को मनमोहक बना दिया। यज्ञ के यज्ञमान पदो को क्रमश श्री रमेश जी डागा, श्री राकेश जी पसाहन तथा शिवलता जी ने सुशोभित किया। सर्वप्रथम माता जगदीश आर्या जी ने स्वामी दयानन्द जी के विषय मे प्रेरणाप्रदत्त भजन सुनाया। श्रीमती राकेश आर्या तथा श्रीमती विजय अरोडा ने भी सुन्दर भजनो का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इस कार्यक्रम के अवसर पर श्री ओम प्रकाश जी आर्य (अध्यक्ष—आर्य युवक परिषद पजाब) ने स्वामी जी के विषय मे सारगर्भित एव शिक्षा प्रदत्त विचार प्रस्तुत किए।

अन्त मे उन्होंने ऋषि के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए कहा कि आज दीपावली के इस पावन पर्व पर ऋषि निर्वाण दिवस पर सभी सकल्प करे कि हम ऋषि द्वारा बताये गये पाच यज्ञो को तथा वेद ज्ञान को घर-घर मे प्रचारित एव प्रसारित करेगे।

कार्यक्रम के पश्चात् कार्यकर्त्ताओ तथा समाज सेवियो ब्र ओम प्रकाश, श्री शिव कुमार जी तथा पूजा जी को कुछ विशेष उपहार श्री बलवन्त राय जी, श्री ओम प्रकाश जी आर्य एव माता जगदीश आर्या जी ने प्रदान किए।

–ब्र० ओम प्रकाश आर्य

[illegible] की राह

- [illegible]

संसार की सब से प्राचीन पुस्तक 'ऋग्वेद' का एक मंत्र है-

स्वस्ति पन्थामनुचरेम, सूर्या चन्द्र मसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमहि ॥

मैं जब भी इस वेद मंत्र का पठन करता हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि इस पवित्र वेद मंत्र में जीने की कला अथवा जीने का ढंग दर्शाया गया है। आओ इस वेद मंत्र के अर्थ पर तनिक विचार करें। इस वेद मंत्र के तीन भाग हैं-पहले भाग 'स्वस्ति पन्थामनुचरेम' में कहा गया है कि हम सब प्राणी पुरुष एवं स्त्री कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण करें। कल्याणकारी मार्ग सरल, सीधे और प्रशस्त मार्ग को कहते हैं। पर उस मार्ग की एक विशेषता होती है कि वह मार्ग हमे उद्दिष्ट स्थान तक पहुंचा सके, हमे अपनी मंजिल तक पहुंचा सके, हमारी मंजिल है 'प्रभुदर्शन' अथवा 'मोक्ष प्राप्ति' कल्याण मार्ग हमारे लोक और परलोक दोनों को सुधारने एवं संवारने वाला होता है। ऐसे मार्ग पर चलते हुए हम अपना भी भला करते हैं तथा अन्य लोगों का भी भला करते हैं। अतः यश के भागी होते हैं। कठोपनिषद मे ऋषि यमाचार्य ने 'स्वस्ति पन्थ' को 'श्रेय मार्ग' कहा है। ऋषि यमाचार्य बालक नचिकेता को जीने का ढंग दर्शाते हुए कहते हैं 'श्रेय' और 'प्रेय' दो मार्ग मनुष्य को अपनी अपनी ओर आकर्षित करते है। इन दो मार्गों में 'श्रेय मार्ग' ही कल्याण का साधन होता है। दूसरा मार्ग 'प्रेय मार्ग' हमे अच्छा (प्रिय) तथा लुभावना तो लगता है, पर यह मार्ग वास्तव मे अच्छा नहीं होता। गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जब प्रेय मार्ग (विलासतापूर्ण मार्ग) छोड़ कर श्रेय मार्ग को अपनाया तभी तो 'कल्याण मार्ग का पथिक' कहलाये। 'स्वस्ति पंथ' को ही श्री गुरु नानक देव जी ने सुच्चा मार्ग उचारा है। गुरुवाणी में आया है-'सुच्चे मार्ग चल्लियां उस्तत करे जहान'-अर्थात् जो मनुष्य सुच्चे (स्वस्ति अथवा सत्य) मार्ग पर चलता है, उस की प्रशंसा सारा संसार करता है।

वेद मंत्र के दूसरे भाग में कहा गया है 'सूर्याचन्द्र मसाविव' अर्थात् हम सूर्य और चन्द्र के समान अपने को बनावें। हमें सूर्य और चन्द्र के गुणों को अपने जीवन मे धारण करना है। सूर्य और चन्द्र के गुण क्या हैं ? सर्वप्रथम सूर्य ही अग्नि का मूल स्रोत है। सूर्य ही अपने सौर जगत का जीवन ज्योति और प्राण है। सूर्य की ऊष्मा और उसी के प्रकाश से रंग रूप और संसार आदि सृष्टि दिखाई देती है। प्राणियो को जीवन शक्ति प्रदान करने के साथ-साथ सूर्य मे और भी बहुत से गुण हैं जो सूर्य की महानता को दर्शाते हैं। सूर्य महान दानी तो है ही क्योंकि वह लगभग दो अरब वर्ष से निरंतर अपने प्रकाश तथा ऊर्जा का दान कर रहा है। महाभारत मे दान वीर कर्ण को उस के दान देने के इस विशेष गुण के कारण ही शायद 'सूर्य पुत्र' कह कर सम्बोधित किया जाता था।

सूर्य और चन्द्र नियम पालक के परिचायक हैं। नियम पालक के साथ सूर्य और चन्द्र समय पालकता के भी सूचक हैं। न केवल सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि का समय निश्चित है, वरन किस किस समय पर सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी कहां कहां स्थित होंगे, इन तथ्यो की जानकारी वर्षों पहले ही हो जाती है जिस के आधार पर पंचाग बनाये जाते हैं। पाठको को स्मरण होगा कि कुछ वर्ष पहले जब 1994 ई. मे दीपावली पर पूर्ण सूर्य ग्रहण लगा था तो कई दिन पूर्व ही समाचार पत्रो मे संसार का मानचित्र प्रकाशित कर उस पर एक पट्टी दिखाई गई थी, जहां जहां से पूर्ण सूर्य ग्रहण देखा जा सकता था। सूर्य प्रकाश का मुख्य स्रोत है और प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है। सूर्य की भाति जो व्यक्ति दूसरों का पथ प्रदर्शन करता है अथवा सत्य प्रेरणा एवं ज्ञान प्रदान द्वारा प्रकाशित करता है, वही सच्चा मनुष्य कहलाने का अधिकारी है।

सूर्य से हमारा अन्न परिपक्व होता है। समस्त वनस्पतियां सूर्य की किरणो से ही पुष्पित पल्लवित होती हैं। सूर्य की तीक्ष्ण किरणें रोग वर्धक कृमियों का नाश करती हैं। हम भी जीवन की बुराईयों का नाश करें। सूर्य में जो तेज है वह हममें आ जावे तो कोई भी हम से छेड़ छाड़ करने का साहस भी नहीं कर सकता। इस प्रकार गम्भीर विवेचन करने पर सूर्य के और भी अनेक गुणों को खोजा जा सकता है जिन को धारण कर अपने जीवन को अधिक सार्थक बनाया जा सकता है। सूर्य के इन विलक्षण गुणों के कारण ही वेद बार-बार सूर्य का अनुसरण करने की हमे प्रेरणा देते हैं। ऋग्वेद मे एक अन्य स्थान पर आया है 'तन्तु तन्वन रजसो मानु मन्विहि' अर्थात् हे मनुष्य ! जीवन के ताने बाने को बुनते हुए तू आकाश के सूर्य का अनुसरण कर। सामवेद भी कहता है 'अहं सूर्य इवाजनि'-मैं सूर्य के समान हो जाऊं।

दिन मे सूर्य अपना प्रकाश तथा ऊर्जा देता है तो रात को चन्द्रमा अपना प्रकाश तथा शीतलता प्रदान करता है। सूर्य की किरणे वनस्पतियो को पुष्पित पल्लवित करती हैं तो चांद की किरणे उन मे तथा फलो मे मिठास भर देती हैं। मत्र के तीसरे और अंतिम भाग मे तीन गुणों का वर्णन है जिन्हे धारण करने के लिए हमे इन तीन गुणो के धारण कर्ता मनुष्यो की संगत मे रहने का सकल्प लेना होगा। सब से पहले हमे 'ददता' अर्थात दानशील व्यक्ति के समीप रहने का यत्न करना चाहिए। उन लोगो को देख कर हम भी दान करने की ओर अग्रसर होगे। कहा भी गया है-जैसी सगत, वैसी रंगत।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, सूर्य महान दानी है और विश्व मे महाभारत का 'कर्ण' भी दान करने के लिए प्रसिद्ध है। मागने पर अपना कवच और कुण्डल भी दान मे दे दिया, बेशक इस कारण उस ने अपना जीवन भी दाव पर लगा दिया। जब उस के पास कुछ भी दान देने को नहीं था तो उसने अपना सोने का बना हुआ नकली दांत भी दान कर दिया। अंग्रेजी मे एक कहावत है 'Charity is the Sat of Riches' अर्थात दान पुण्य-अपनी धन दौलत को सुरक्षित रखने का सब से उत्तम साधन है।

दूसरा गुण है : 'अघ्नता' अर्थात जो हिसा न करता हो । हम स्वय दुखी होना नहीं चाहते तो हमे भी किसी को मन वचन तथा कर्म से दुखी नही करना चाहिए, किसी का बुरा नहीं सोचना चाहिए। महात्मा गाधी जी ने हमेशा अपने जीवन मे सत्य तथा अहिसा को धारण किया।

तीसरा गुण है : 'जानता' हम ज्ञानवान बने तथा एक दूसरे के दृष्टिकोण को जाने। समाज मे, व्यक्तियो, भिन्न समुदायो तथा राष्ट्रो लडाई-झगड़े एक दूसरे को न समझ सकने के कारण ही होते हैं। अत: जो भी प्राणी अपने अन्दर इन तीन गुणो-ददता, अघ्नता एव जानता को धारण कर लेगा। उसने जीने का ढंग सीख लिया, उसका अवश्य ही कल्याण होगा।

सूर्य चन्द्र सम प्रभु जीवन मे,
स्वस्ति सुपथ पर सदा चले।
ज्ञानी दानी बने अहिसक,
सत्संगत ही सदा करे।
पूरक होवे सदा परस्पर ।
मिलजुल कर चलना सीखे।
सूरज सम ओजस्वी बन कर।
शान्ति चन्द्रमा सम दिखे।

गोनियाना मण्डी में पारिवारिक सत्संग

अक्तूबर मास मे आर्य समाज गोनियाना मण्डी द्वारा चार साप्ताहिक सत्संगो के अतिरिक्त तीन पारिवारिक सत्संग भी सम्पन्न हुए। मगलवार 16 अक्तूबर को असीम आहुजा के निवास-आहुजा आईस मिल मे पवित्र वेदमंत्रों मे यज्ञ हवन के पश्चात श्री कृष्ण लाल जटाना प्रचार मत्री जिला आर्य समाज बठिण्डा ने मधुर भजन सुना कर सभी को आनन्दित किया। अगले दिन महाराज उग्रसेन जयती के उपलक्ष्य मे पब्लिक धर्मशाला के विशाल आंगन में सैंकडो नर नारियों की हाजरी मे यज्ञ हवन सम्पन्न हुआ उसके पश्चात 23 अक्तूबर दिन मंगलवार को प्यारे लाल कोषाध्यक्ष आर्य समाज गोनियाना के निवास पर यज्ञ हवन किया गया तथा सभी का मिठाई एवं चाय आदि पिला कर आदर सत्कार किया गया।

केवलाघो भवति केवलादी में छिपा है—गरीबी को दूर करने का उपाय

❑ ले० डा. नरेन्द्र कुमार, वरिष्ठ उपसम्पादक 'हिन्दुस्तान' रांची (झारखण्ड)

वेदमन्त्र–का अंश है–**केवलाघो भवति केवलादी।** आशय है **जो अकेला खाता है वह पाप खाता है।** इस मत्राश के आशय बडे ही गम्भीर हे। एक मुख्य आशय तो यही है कि वैदिक पूर्ण-व्यवस्था मे जितना विस्तार सामाजिक भावना को मिला है उतना व्यक्ति को नही। प्राचीनकाल म सयुक्त कुटुम्ब होते थे। उन कुटुम्ब का कोई न कोई मुखिया अवश्य होता था। उस मुखिया पर घर की सारी जिम्मेदारिया होती थी। वह यह देखता था कि घर का कोई सदस्य भूखा तो नही रह गया। घर का कोई बच्चा बिना भोजन किए तो नही सो गया। घर का कोई सदस्य अस्वस्थयता के कारण भोजन से उपेक्षित तो नही। ऐसी ही अनेक प्रकार की जिम्मेदारिया उस मुखिया पर होती हैं। तुलसीदास ने मुखिया के बारे मे लिखा–

मुखिया मुख सो चाहिए खानपान सब एक।
फूले फलहि सकल अग तुलसी सहित हो अनेक

भाव यह हे कि जैसे शरीर मे मुख की प्रमुखता होती है उसी प्रकार घर-परिवार, समाज, राष्ट्र मे मुखिया की होती है। मुखिया कैसा हो ? इसके बारे मे बताया गया कि वह मुख के समान होना चाहिए। मुख की उपमा इसलिए दी क्योकि मुख त्यागी होता है। मुख खा-पीकर शरीर के समस्त अगो को पुष्टि देता है। यानि कि वह अपने पास कुछ भी नही रखता। मुख विवेकी होता है। यह खाता-पीता जरूर है पर उसे अपने तक सीमित नही रखता। वह भोजन के सार को शरीर के समस्त अगो तक विवेकानुसार यथोचित मात्रा मे पहुचा देता है।

यदि मुखिया मे गडबडी आ जाए तो सारा शरीर गडबडा जाएगा। यही जब सामाजिक स्तर होता है तो इसका दबाव बढ जाता है ओर वह देश स्तर तक हो जाता है। आशय यही निकला कि मुखिया उसे ही बनाया जाए जो विवेकी से त्यागी हो। ये दोनो गुण मनुष्य के जीवन के लिए अति आवश्यक हैं। मुखिया ही नही बल्कि सबके लिए जरूरी है।

मैं प्राचीन काल के संयुक्त परिवार की बात कर रहा था। उसी कडी मे मैं यह भी जोड़ता चलूं कि वह मुखिया पूरे परिवार के हितो की रक्षा करता था। कैसे करता था। उत्तर है अपने त्याग और विवेक से। यहा तक कि कई बार उसे परिवार के लिए अपने हितो को भी बलिदान करना पडता था।

आपने इस प्रकार की अनेक कथाए-कहानिया सुनी होगी कि फला सेनापति स्वय भूखा रहा पर उसने अपने सैनिको को भूखा नहीं रहने दिया। स्वय प्यासा रहा पर सैनिको को प्यासा नही मरने दिया। इस प्रकार की अनेक घटनाए पढने-सुनने को मिलती ही रहती है। यह परोपकार की पराकाष्ठा है।

जब मुखिया इन गुणो से परिपूर्ण होकर कार्य करेगा तो क्या इसकी सम्भावना नही रहेगी कि उसके घर का कोई सदस्य भूखा रहेगा इतना तो स्पष्ट है कि जहा त्याग और विवेक रहेगे वहा कोई भूखा नहीं रह सकता। मान लीजिए किसी परिवार मे दस लोग है और वे भोजन करने बैठ गए तभी दो मेहमान आ गए। अब यदि उनमे त्याग और विवेक है तो वे पहले अपने अतिथियो को भोजन परोसेगे। फिर उसके बाद जो कुछ बचेगा उसे दसो सदस्य मिल-जुलकर विवेक और त्यागपूर्वक ग्रहण करेगे क्योकि परिवार के मुखिया ने उन्हे समझा दिया है–**केवलाघो भवति केवलादी।** अकेला जो खाता है वह पाप खाता है।

इसी प्रकार भोजन के साथ ही जीवन मे अनेकानेक क्षेत्र ऐसे हैं जहा इसी सूक्ति के अनुरूप त्याग ओर विवेक से सभी समस्याओ से छुटकारा पाया जा सकता है।

मुखिया बनने के लिए वयोवृद्ध होना ही बहुत बडी कसौटी नही है। उसके साथ ज्ञानवृद्ध एवं धर्मवृद्ध होना भी जरूरी है। यह भी जरूरी नहीं है कि ये सारी चीजे आज जैसी पढाई करके ढेर सारी डिग्रियां हासिल करने आ जाए। इन गुणो का विकास होता है बडे-बूढो की सेवा करने से जो कि आपकी शिक्षा पद्धति से लुप्तप्राय: हो रही है।

उक्त मंत्राश में जहां सामाजिकता की सीख है वहीं परस्पर सहयोग एवं सौहार्द की भी सीख है। जब तक आपस में सहयोग नहीं होगा। तब तक ये गुण या भावनाएं विकसित नहीं हो सकती।

दो बातें तो स्पष्ट हो गई कि किसी भी समाज को सुदृढ बनाने के लिए परिवार मे सुदृढता तथा एकता आवश्यक है। दूसरी यह है कि त्याग और विवेक के बल पर ही परिवार को एकजुट रखा जा सकता है। यही कसौटी देश के लिए भी है।

आज सयुक्त परिवार का प्रचलन धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। इसका एक कारण यह है कि पढ-लिख कर नौकरो के लिए इधर-उधर पलायन करना। घर के मुखिया को अलग-थलग करना, पढ़-लिख कर दूसरो को नजर अन्दाज करना आदि अनेक कारण हैं और सबसे बडा कारण है मैं और स्वार्थ। यानि कि **केवलाघो भवति केवलादी** के विपरीत आचरण करना। वेद का का मन्त्र ह–**अनुव्रत: पिता पुत्रो: माता भवतु सम्मन:** पुत्र पिता के व्रतो का अनुकरण करे, माता का सम्मान करे है।

सयुक्त परिवार का टूटना, एकल परिवार की ओर बढना ही आज हमारी सामाजिक विषमता का कारण है। इसके कारण ही हमे एक-दूसरे के सुख-दु:ख, भूख-प्यास आदि से कोई मतलब नहीं है औरो से क्या लेना-देना, यही भावना एकल परिवार को बढावा दे रही है। इसी भावना के अनुरूप व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। आत्मकेन्द्रित से हमारा अभिप्राय: अपने स्वार्थ साधन से है। समाज का मुखिया बनकर सबको उल्लू बना रहा है। हमारे अधिकतर जनप्रतिनिधि भी चाहे वह विधायक हो या सासद भी इसी परिधि मे आते जा रहे हैं। कहने को मुखिया बनते हैं पर त्याग और विवेक से शून्य होकर सबको उल्लू बनाकर अपने स्वार्थ साधन मे लग जाते है क्योंकि उनमें **केवलाघो भवति केवलादि** को भावना है ही नहीं है। हमे तो मैं और मेरा परिवार ही दिखाई देता है। दूसरों पर निगाह तब पड़ती है जब उन्हें उनसे वोट लेना होता है। सच्चाई तो यह है कि यदि समाज के लोग उक्त मन्त्रांश का बीस-पचीस प्रतिशत भी अपने जीवन मे उतार ले तो भूख से, भय से, अभाव से कोई नहीं मरेगा। यदि बडे लोगो धन्ना, सेठो, साहूकारो के मन मे यह भाव आ जाए कि मै अकेला खा रहा हू, मेरा परिवार अकेला खा रहा है। वह जब खा रहा है तो उसमे सुधार की गुजाइश हो सकती है बशर्ते उसमे थोडा बहुत त्याग और विवेक हो तो।

तमाम सरकारी योजनाए बनती है। गरीबी दूर करने के लिए। सरकार गरीबो को चिह्नित करके उन्हे गरीबी रेखा से ऊपर उठाने के लिए सभी योजनाए चलाती है पर उसका अस्सी प्रतिशत लाभ बडे लोगो तक सीमित रह जाता है। ऐसा क्यों होता है क्योकि लोगो की आखो से पानी उतर गया है।

इसके विपरीत सरकार इसकी खोजबीन करे कि जिस सेठ-साहूकार की आमदनी 2000 सन् मे पाच लाख थी। वह 2001 मे आठ-लाख कैसे हो गई। यानि कि सेठो को, अमीरो को, साहूकारो को चिह्नित करना कठिन है। बनिस्बत गिने-चुने अमीरो को। अमीरो को चिह्नित करना सरल है, क्योकि वे अंगुलियो पर गिने जा सकते है।

अमीरो को कन्ट्रोल किया जाए तो गरीब की गरीबी अपने आप कन्ट्रोल में आ जाएगी। पर इसके लिए सरकार यानि कि जो भारत मे सभी परिवारो का मुखिया है उसे त्याग और विवेक जैसे गुणो से पूर्ण होना चाहिए। सरकार मे हैं हमारे जन प्रतिनिधि विधायक तथा सांसद आदि। ये स्वय को जन सेवक कहते हैं पर ये जन सेवक अपने पालिको (मतदाताओ) से भी अधिक ऐश और आराम से रहते हैं।

अत: स्पष्ट है कि **केवलाघो भवति केवलादि** के सार को जीवन मे अपनाकर ही गरीबी को, भूख को, भय, भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सकता है। इसके लिए मुखिया को मुख की भांति त्यागी व विवेकशील होना परम आवश्यक है। इसके साथ ही परिवार के सदस्यो को (जनता) को उसके पीछे चलना आवश्यक है।

कितना सच ?

दयानन्द सरस्वती की सिपाही विद्रोह में कथित भूमिका

□ ले० डॉ० भवानीलाल भारतीय

मै प्रारम्भ मे भी यह स्पष्ट कर दू कि ऋषि दयानन्द के जीवनचरित को जानने के प्रमुख स्रोत निम्न हैं-

1 पूना मे दिये गए 4 अगस्त 1875 के आत्मवृत्तान्त विषयक प्रवचन मे कथित वृत्तान्त।

2 थियोसोफिस्ट पत्र की तीन किस्तो में प्रकाशित आत्मकथन।

3. पं लेखराम द्वारा सकलित और इन पंक्तियो के लेखक द्वारा सम्पादित। रघुनन्दन सिह निर्मल द्वारा उर्दू से अनूदित जीवन-चरित।

4 प देवेन्द्र मुखोपाध्याय रचित दा जीवन-चरित (1) 1887 मे प्रकाशित तथा (2) 1933 मे प्र॰ ॰त।

उपर्युक्त सामग्री के आधार पर ही ऋ॰ के अन्य अनेक जीवन-चरित लिखे गये। इनमे लाला लाजपत राय, चिमन लाल वैश्य, रामविलास शारदा तथा बाबा छज्जू सिह (अग्रेजी मे) के द्वारा लिखित जीवन-चरितो का आधार प लेखराम द्वारा लिखित उर्दू जीवन-चरित रहा है जबकि 1933 के बाद मे छपे जीवन चरितकारो ने देवेन्द्र बाबू की खोजो से लाभ उठाया है। उपर्युक्त के अतिरिक्त हमारी दृष्टि म ऋषि के जीवन के बारे मे जानने का कोई अन्य प्रमाणिक स्रोत नहीं है। 1950 से पहले तक इस बात की कोई चर्चा नहीं हुई कि क्या स्वामी जी ने 1857 के युद्ध मे कोई प्रत्यक्ष योगदान किया था ? इसका सर्वप्रथम उल्लेख प जयचन्द्र विद्यालकार ने अपनी पुस्तक इतिहास प्रवेश मे किया और उसके पश्चात् प पृथ्वी सिह मेहता विद्यालकार ने अपनी पुस्तक हमारा राजस्थान मे पूर्वापर घटनाओ का निरूपण कर मात्र यह सम्भावना व्यक्त की कि दयानन्द जैसा जागरूक और स्वतन्त्र चेता व्यक्ति इस राजनैतिक तथा सघर्षपूर्ण हलचल से कैसे पृथक् रहा होगा ? तथापि उपर्युक्त दोनो इतिहासकारो ने यह इदम् इत्थम् नहीं कहा कि निश्चित ही स्वामी जी ने 1857 मे कोई भूमिका अदा की थी। यह भी ध्यातव्य है कि ऋषि-जीवन के लेखक और समीक्षक-सर्वश्री लेखराम, देवेन्द्रनाथ पं भगवनद्दत्त, पं युधिष्ठिर मीमासक, आचार्य विश्वश्रवा, हरविलास शारदा (अंग्रेजी जीवन चरित लेखक), प गगा प्रसाद उपाध्याय आदि किसी का भी यह मत नहीं रहा कि ऋषि ने 1857 मे कुछ सक्रिय रूप से भाग लिया था। क्या इन्हे हठी और दुराग्रही कहा जायेगा ?

आज ऋषि दयानन्द के जीवन का अध्ययन और उसकी समीक्षा करने वाले लोग नगण्य है। जिन विदेशी लेखको ने स्वामी जी पर लेखनी चलाई वे भी इसी मत के है कि स्वामी दयानन्द 1857 मे नर्मदा तट के एकान्त अरण्या मे एकाकी विचरण कर रहे थे। वही पर स्वामी विरजानन्द का परिचय पाकर वे अध्ययनार्थ 1860 के अन्त मे मथुरा आये। पृथ्वीसिह मेहता द्वारा व्यक्त किए गए विचारो का सहारा लेकर महर्षि के 1857 मे लिप्त बताने के दो काल्पनिक प्रयास हुए (1) 1968 मे कलकत्ता के दीनबन्धु वेदशास्त्री ने दयानन्द की अज्ञात जीवनी के नाम से एक लेखमाला सार्वदेशिक मे छपाई। मैने इसके प्रतिवाद मे उसी पत्र मे अनेक लेख लिखे। कलकत्ता की इस फर्जी सामग्री के आकर्षण से अभिभूत होकर स्वामी सच्चिदानन्द योगी (राजेन्द्रनाथ शास्त्री) ने तुरन्त कलकत्ता का टिकट कटाया और प दीनबन्धु जी से वह सामग्री ले आये तथा उसे एक ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित कराया। मैने इसकी विस्तृत समालोचना आर्य मर्यादा मे लिखी तो योगी जी ने उसके समाधान मे कई लेख लिखे। अन्तत: पत्र के तत्कालीन सम्पादक स्व सिद्धान्ती जी के आदेश से मैने उनके मन्तव्यो के खण्डन मे विस्तार से लिखा। इस विषय मे रुचि रखने वालो को यह समग्र लेखन देखना चाहिए। जहा तक मुजफ्फरनगर जिले के ग्राम सोरम मे प्राप्त सामग्री का सम्बन्ध है वह सर्वथा जाली और काल्पनिक है। स्वामी ओमानन्द जी ने मुझे स्वय कहा कि वहा के लोग नित नई बाते गढते रहते हैं और काल्पनिक प्रसंगों को उछालते रहते हैं। इसका प्रमाण तो यही है कि इस सामग्री के समर्थकों ने पहले प्रचारित किया कि स्वामी दयानन्द ने देवबन्द की इस्लामी सस्था (दारुल उलूम) की स्थापना में चन्दा दिया था, फिर उससे इन्कार कर दिया। पहले पूर्णानन्द नामक किसी साधु की आयु 1853 मे 110 वर्ष बताई और अब उसे 129 वर्ष बताते हैं। हैरानी की बात यह है कि इस प्रकार की अलीक और मिथ्या बाते भी आर्य पत्रो मे स्थान पा जाती है। कोई सम्पादक इस ओर ध्यान नही देता।

अब डॉ० सत्यकेतु जी के इतिहास मे आये इस प्रसग की चर्चा करे। यह भाग कथन मिथ्या और भ्रान्त है। मैने स्वय डॉ० सत्यकेतु जी से उनके जीवनकाल मे उसकी चर्चा की थी। उनके द्वारा प्रदत्त सीताराम बाबा, दस्सा बाबा और मरियम उपन्यास की बाते सर्वथा काल्पनिक, आधारहीन तथा ऋषि-चरित के प्रतिकूल है। इनका दयानन्द सरस्वती की जीवनी से कोई लेना-देना नही है। अब हम स्वामी वेदानन्द रचित स्वामी विरजानन्द के जीवन-चरित की पडताल करते है। मै यहा पुन: स्पष्ट कर दू कि हमारी दृष्टि मे दण्डी जी के तीन जीवन-चरित ही प्रामाणिक है-1 लेखराम लिखित (यह दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित मे परिशिष्ट रूप मे छपा है) 2 देवेन्द्रनाथ रचित 3 प भीमसेन शास्त्री (कोटा) रचित विरजानन्द प्रकाश स्वामी वेदानन्द रचित दण्डी जी की जीवनी मे जो तथ्य है वे तो प लेखराम तथा प देवेन्द्रनाथ द्वारा ही एकत्र किए गए थे। अवशिष्ट बाते उनकी निजी कल्पना पर आधारित हैं, जिनका हमारे लिए कोई मूल्य नही है। स्वामी वेदानन्द जी ने यह वाक्य किस आधार पर लिखा "आज मुक्त ऐतिहासिक मुक्त कण्ठ से कहने हैं कि विरजानन्द तथा उनके गुरु **पूर्णानन्द** ने इस सग्राम (1873) का प्रारम्भ किया था।" सच तो यह है कि स्वामी विरजानन्द के दीक्षा गुरु स्वामी पूर्णानन्द के बारे मे हमे कोई अधिक जानकारी नहीं मिलती और दण्डी जी का सम्पूर्ण जीवन एक खुला पृष्ठ है जिसमे उपर्युक्त जैसी किसी घटना की स्वल्प चर्चा भी नहीं उपलब्ध होती। 1855 मे वेदानन्द जी के अनुसार "स्वामी दयानन्द कनखल मे विरजानन्द के गुरुदेव स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती की सेवा मे विद्या-प्राप्ति के लिए पहुचते हैं।" यह कथन सर्वथा अलीक एव भ्रान्त हैं। इस बारे मे स्वयं महर्षि अपने आत्मकथन में लिखते हैं It was in the year 1911 (Samvant than I first joined in the Kumba Mela at Hardwar where so many sages and divine philospphers mead toen undefreeived togethar So ring as the mela cingregating of pilgrims lasted. I kept practising that science in the siti tude of the jungle of Chandi and after the pilgrims had separated I tranfferred myself to Rishikesh where sametimes in The company of the good yogis and Sanyasis often or alone I continued in the study and practice yoga (The theosophist)

अक्तूबर 1879 इस अक की फोटो प्रति मैने थियोसोफिकल सोसाइटी के अड्यार (चेन्नई स्थित प्रधान कार्यालय से विशेष रूप से अपने पुस्तकालय के लिए प्राप्त की है।)

उपर्युक्त अग्रेजी अनुवाद का दयानन्द द्वारा हस्ताक्षरित मूल लेख इस प्रकार है-"सवत्, 1611 के वर्ष के अन्त मे हरिद्वार के कुम्भ के मेले मे आके बहुत साधु सन्यासियो से मिला और जब तक मेला रहा तब तक चण्डी के पहाड के जगल मे योगाभ्यास करता रहा। जब मेला हो चुका तब ऋषिकेश मे जाके सन्यासियो और योगियो से योग की रीति सीखता और सत्सग करता रहा।" (दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा-सम्पादक-भवानीलाल भारतीय मूल हस्ताक्षरित पत्र परोपकारिणी सभा के सग्रह मे सुरक्षित है। ऋषि के उक्त स्पष्ट कथन से स्वामी वेदानन्द का यह कथन पूर्णतया मिथ्या सिद्ध होता है कि स्वामी दयानन्द 1855 मे कनखल गए और किसी स्वामी पूर्णानन्द से विद्या पढनी चाही। उन दिनो दयानन्द चण्डी के जगलो मे योग साधना मे रत रहे और वहा से ऋषिकेश चले गए। दयानन्द का अध्ययन तो पाच वर्ष बाद 1860 मे आरम्भ हुआ था।

मेरा स्वामी वेदानन्द जी के प्रति अत्यन्त आदर भाव है। मै उनके साहित्य का श्रद्धालु पाठक रहा हू किन्तु विरजानन्द चरित मे लिखी गई कल्पनापूर्ण बातो से मेरी असहमति है। स्वामी वेदानन्द का एतद् विषयक लेखन कितना

(शेष पृष्ठ 8 पर)

(पृष्ठ 7 का शेष)

भावुकतापूर्ण किन्तु तथ्यहीन था इसका एक पुष्ट प्रमाण और दे रहा हूं। स्वामी दयानन्द का अध्ययनार्थ मथुरा आगमन नवम्बर 1860 (द्रष्टव्य प महेशप्रसाद संकलित दयानन्द सरस्वती के स्थानान्तर में आगमन-प्रतिगमन की तालिका (तिथि, तारीख, सन्, संवत् युक्त) मे हुआ था। दण्डी जी और उनके होने वाले शिष्य का प्रारम्भिक संवाद क्या था, इसके बारे मे दयानन्द के प्रथम जीवनी लेखक प लेखराम ने तो आत्मकथा को ही उद्धृत किया है। देवेन्द्र बाबू ने इस प्रसग मे लिखा है-"मथुरा पहुंचकर पहले दयानन्द कुछ दिन रंगेश्वर के मन्दिर मे ठहरे और एक दिन विरजानन्द की सेवा मे उपस्थित होकर प्रणाम किया और अपना 'अध्ययनार्थ उपस्थित होने का' सकल्प उन पर प्रकट किया। विरजानन्द ने कहा-आज तक जो कुछ तुमने मनुष्य प्रणीत ग्रन्थ को पढा है, वह सब भूल जाओ आदि 'स्वामी सत्यानन्द ने दयानन्द प्रकाश मे इसी प्रसग को इस प्रकार लिखा है-"कार्तिक सुदि 2 सं 1617 वि० को स्वामी दयानन्द मथुरा मे प्रविष्ट हुए और सीधे दण्डी जी की अट्टालिका पर चढ कर उसका द्वार खटखटाने लगे। दण्डी जी ने पूछा-कौन है ? उत्तर मिला-दयानन्द सरस्वती।"कुछ व्याकरण भी पढे हो ?" महाराजा सरस्वतादि व्याकरण ग्रन्थ पढा हू।" यह सुनते ही दण्डी जी ने द्वार खोल दिया।"

अव इसी प्रसग को स्वामी वेदानन्द ने जिस प्रकार कल्पना और अतिरजना की चाशनी लगा कर पेश किया है उसे देखे-जब दयानन्द द्वार पर पहुचे तब द्वार बन्द था। धीमे से दयानन्द ने द्वार खटखटाया। खटखट ध्वनि होने पर भीतर से उत्तर आया-"कौन हो ?" दयानन्द ने विनय भाव से कहा यही जानने के लिए आपकी शरण मे आया हूं।" (पृ० 151) विरजानन्द वैदिक सस्थान का द्वितीय सस्करण। स्पष्ट ही ऐसा कोई वार्तालाप गुरु शिष्य के बीच नहीं हुआ। दयानन्द विद्याध्ययन के लिए दण्डी जी की सेवा मे गए थे न कि स्वय को जानने के लिए। दण्डी जी भी व्याकरणादि शास्त्रो को पढाते थे, वे आत्मज्ञान सिखाने वाले कोई दार्शनिक नहीं थे। स्वामी वेदानन्द के इसी कल्पना-आधिक्य ने इनके द्वारा रचित विरजानन्द चरित को अविश्वसनीय बना दिया है। इतिहास मे भावुकता का प्रक्षेपण अनर्थकारक हाता है।

इसके साथ मैं एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूं। 1856 के समस्त घटनाचक्र का विश्वसनीय विवरण भारतीय और पाश्चात्य इतिहासकारों ने बृहदाकार ग्रन्थों में लिखा है। हमारे मित्रों ने तो ये ग्रन्थ देखे भी नहीं है। भारतीय लेखकों में विनायक दामोदर सावरकर, रमेश चन्द्र मजूमदार तथा प्रो राम विलास शर्मा उल्लेखनीय हैं जबकि अंग्रेज लेखकों के तथा मालेसन प्रामाणिक माने जाते है। 1851 के क्रान्तिकारियों पर पृथकशः भी ग्रन्थ लिखे गए हैं। इन ग्रन्थों मे कहीं यह चर्चा नहीं आई कि इन घटनाओं मे दयानन्द सरस्वती का कोई योगदान था। आश्चर्य है कि अति भावुक हमारे मित्रों ने यह नहीं सोचा कि 1857 पर लिखने वाले उनसे भिन्न अन्य प्रामाणिक इतिहासकार भी हैं। स्वामी वेदानन्द जी ने तो हरिद्वार मे दयानन्द की 126 वर्षीय पूर्णानन्द (?) से भेट करा दी जब कि पं दीनबन्धु तथा उनके चेलो ने तो हरिद्वार मे गदर के सभी नेताओ-नाना साहिब, जगदीश पुर के बाबू जगदीश सिह तथा झासी की रानी आदि सब को दयानन्द के आगे प्रणिपात करते हुए दिखला दिया। ये सारे कथन शेख चिल्ली की उडान से अधिक महत्व नहीं रखते।

हमारे मित्र श्री निहाल सिह परमार्थी ने 28 दिसम्बर 2000 के सर्वहितकारी मे एक बडी मजेदार बात लिखी है। इनके अनुसार 1855 मे दयानन्द ने हरिद्वार मे राज्यक्रान्ति की जो प्रेरणा पूर्णानन्द से प्राप्त की उसमे दण्डी विरजानन्द का भी सहयोग था। लेखक को यह पता नहीं कि 1860 तक तो स्वामी दयानन्द को विरजानन्द का परिचय तक नहीं था। 1855 मे वे योग-जिज्ञासु के रूप में उत्तराखण्ड तथा पश्चात् नर्मदा प्रान्त मे भ्रमण करते रहे। जहा तक नाना साहब और दयानन्द के परिचय आदि के काल्पनिक वृत्तान्त प्रचारित किए गए हैं, उनका समाधान भी मेरे द्वारा बहुत पहले किया जा चुका है। यह सत्तर के दशक की बात है। एक मराठी लेखक डा दामोदर नेने (पेशे से डाक्टर तथा दादू मियां के नाम से लेखन कार्य) ने अग्रेजी पत्र आर्गेनाइजर तथा साप्ताहिक धर्मयुग मे कुछ लेख छपाकर दयानन्द और नाना साहब के काल्पनिक सम्बन्धों पर लिखा था। मैं स्वय बड़ौदा में डा दामोदर नेने से मिला हूं और उनकी बातो का समाधान किया है। उनके पत्र तथा उक्त लेख मेरे संग्रह में सुरक्षित हैं। वस्तुतः नाना साहब का उत्तर जीवन तो भिन्न बन गया था, किन्तु इससे दयानन्द का कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक बात और स्पष्ट करना चाहता हूं। दयानन्द की राष्ट्र-भावना, स्वदेशी राज्य के प्रति उनकी उत्कट लालसा, देश को स्वतन्त्र देखने की उनकी आकांक्षा तथा स्वदेशी और स्वराज्य के प्रति उनकी आसक्ति भिन्न चीज है और 1856 की हलचल में सक्रिय भाग लेना या नेतृत्व करना अन्य बात है। इसलिए आर्याभिविनय की स्फूर्तिप्रद प्रार्थनाओं, सत्यार्थ प्रकाश में बाघेरों की वीरता के सन्दर्भ तथा पूना व्याख्यान में किसी पेशवा के पुस्तकालय को जलाये जाने के उल्लेखों से दयानन्द का 1857 की जंग मे भाग लेना सिद्ध नहीं होता। इसके लिए आज तक कोई तथ्यात्मक प्रमाण नहीं मिला।

यों तो इस सारे प्रसंग पर सैंकड़ों पृष्ठ लिखे जा सकते हैं-मैंने लिखे भी हैं। इस प्रकरण को लेकर अनेक लोगों ने मेरी स्थापनाओ के प्रति अपनी नाराजगी भी प्रकट की है किन्तु दयानन्द स्वयं सत्य के दृढ़ पक्षपोषक थे। उनके बारे मे कोई मिथ्या बात कही जाये यह उन्हे भी गवारा नहीं थी। श्री परमार्थी ने एक बात ऐसी लिख दी जिससे उनका सारा कल्पनाजाल छिन्न-भिन्न हो जाता है। वे लिखते हैं कि 1856 मे मेरठ मण्डल-बावली ग्राम की सड़क पर दयानन्द ने एक जोशीला भाषण दिया था। आश्चर्य है कि 1860-62 तक अपने मथुरा प्रवास में तो दयानन्द हिन्दी अच्छी तरह से बोल भी नहीं सकते थे। उनके सम्भाषण में गुजराती का पूरा पुट रहता था। 1862-63 में कलकत्ता जाने तक वे संस्कृत में ही बोलते और व्याख्यान देते थे। किन्तु 1856 में मेरठ के हिन्दी क्षेत्र में वे जोशीला भाषण देने लगे ? इस प्रकार के मिथ्या, दूषित कथन से परमार्थी जी क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? मेरठ के दीपंकर ने तो उन्हें प्याऊ पर पानी पिलाने वाला बना दिया। दयानन्द के मनस्वी जीवन के बारे में ऊट-पटांग, प्रमाणहीन तथा कल्पना पूर्ण बातों को पढ़कर ऋषि-भक्तों का दिल जलता है या नहीं, मुझे नहीं मालूम। मेरा निवेदन तो इतना ही है कि इस विषय में सच्चे जिज्ञासु यदि कोई हैं तो समय निकाल कर मेरे समीप आयें तथा अपना समाधान करें। दयानन्द पर मिथ्या लांछन लगाने से उनकी छवि विकृत होती है। इतिहासज्ञो की दृष्टि मे ऐसी बाते लिखने वाले हंसी के पात्र बनते हैं। मुझे हठी और दुराग्रही कहने से ही यदि किसी को सन्तोष हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। दयानन्द विषयक मेरे लेखन से सारा आर्य जगत् सुपरिचित है।

अचूक औषधि है : अजवाईन

❑ डा. कंवरपाल उपाध्याय, मुजफ्फरनगर

○ अजवाईन का इस्तेमाल आमतौर पर घरों में केवल मसाले के रूप मे किया जाता है, लेकिन अजवाईन अनेक औषधीय गुणों से सम्पन्न है। अजवाईन से हम छोटे-छोटे रोगों का इलाज घर पर ही कर सकते हैं।

○ यदि खांसी हो तो थोड़ी सी अजवाईन खाकर गुनगुना पानी पीने से तुरन्त राहत मिलती है।

○ बहुमूत्र की शिकायत होने पर अजवाईन और बराबर मात्रा मे सफेद तिलों का सेवन कुछ दिन लगातार करने से आशातीत लाभ होता है।

○ सर्दी, जुकाम में गर्म तवे पर थोड़ी अजवाईन डालकर उसकी भाप लें, तुरन्त राहत मिलेगी।

○ दात के दर्द मे अजवाई के तेल मे रूई का फाहा भिगोकर दांत के नीचे रखने से तत्काल राहत मिलती है।

○ गठिया से परेशानी होने पर अजवाईन के तेल की मालिश उस स्थान पर करें अथवा अजवाईन के पानी के भाप उस स्थान पर देने से तुरन्त आराम मिलता है।

○ पेट संबंधी गडबड़ी अथवा वायु विकार होने पर अजवाईन रामबाण सिद्ध होती है। इसका सेवन पेट की वायु को नष्ट करता है।

○ पौरुष शक्ति में वृद्धि के लिए अजवाईन को नींबू के रस में भिगोकर सुखाने के बाद सेवन करनी चाहिए।

○ हृदय रोगियों के लिए अजवाईन एक महाऔषधि है। अजवाईन रक्त मे कोलेस्ट्रोल की मात्रा को कम करती है। इसके सेवन के बाद हृदय रोगियों को दिल का दौरा न पड़ने की सम्भावना काफी कम हो जाती है।

○ मंदाग्नि होने पर अजवाईन को बराबर मात्रा में काली मिर्च, सेंधा नमक और जीरा मिलाकर चूर्ण बना लें। रोजाना गुनगुने पानी से खाली पेट सेवन करें।

○ पत्थरी होने पर अजवाईन के साथ मूली के रस का सेवन पत्थरी को गलाकर निकाल देती है।

दयानन्द पब्लिक स्कूल लुधियाना में वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह

दयानन्द पब्लिक स्कूल, दीपक सिनेमा रोड लुधियाना का वार्षिक वितरण समारोह 11 नवम्बर 2001 रविवार को स्कूल के प्रागण मे 2 बजे बाद दोपहर से साय 7 बजे तक मनाया गया। सबसे पहले यज्ञ किया गया। यज्ञ श्रीमती सरला लूम्बा जी ने सम्पन्न करवाया। यजमान श्रीमती लाल जी चोपडा और श्रीमती अनीता जी चोपडा बने। इसके बाद श्री वेद भूषण मदान जी उपप्रधान प्रबन्ध समिति मालिक वी के स्टील द्वारा ध्वजारोहण की रस्म अदा की गई। ध्वजारोहण की रस्म पर छात्राओ ने ध्वज गीत प्रस्तुत किया। अजय कुमार बत्तरा जी प्रबन्ध समिति के माननीय सदस्य ने लक्की ड्रा निकाला।

समारोह की कारवाई कुमारी ...ी ने गायत्री-मन्त्र द्वारा आरम्भ ...ा एव गायत्री मन्त्र अर्थ सहित प्र... किया। उस समय मुख्यातिथि श्री दवन्द्र नाथ शर्मा रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पंजाब, प्रिसिपल श्री स्वतन्त्र कुमार उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री सरदारी लाल आर्य ...न्, श्री प्रेम कुमार भारद्वाज, कोषाध्यक्ष आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, सभा के कार्यालयाध्यक्ष प धर्मदेव जी आर्य, नवा शहर के डाक्टर भण्डारी जी समारोह मे पधारे। छात्र-छात्राओ ने तालिया बजा कर उनका स्वागत किया एव प्रबन्ध समिति के सदस्यो तथा नगर के गणमान्य व्यक्तियो ने फूलो के हार पहना कर उनका भव्य स्वागत किया। इस अवसर पर छात्राओ ने उनके स्वागत के लिए स्वागत गीत प्रस्तुत किया। इसके पश्चात् स्कूल के प्रबन्धक श्री आशानन्द जी आर्य ने स्कूल की रिपोर्ट पढते हुए कहा- आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब द्वारा 1996 मे यह स्कूल खोला गया था। उस समय इस भवन की हालत बहुत खस्ता थी। लेकिन प्रबन्ध समिति ने बहुत परिश्रम करके सारे कमरो की छत्ते तबदील कीं और इन पांच सालो मे 13 नए कमरे एव भव्य हाल बनवाया। छात्र-छात्राओं के लिए गर्मी में बच्चों के पीने के लिए एक वाटर कूलर भी लिया। पांच सालों में बच्चों की संख्या 60 से बढ़कर 350 तक पहुंच चुकी है। इस स्कूल में छात्राओं में देश भक्ति व धार्मिक विचार कूट-कूट कर भरे जाते हैं। हर मास भव्य यज्ञ का आयोजन किया जाता है जिसमे छात्र, स्टाफ एव प्रबन्ध समिति के सदस्य बडे उत्साह से भाग लेते है। सारे पर्व बडे उत्साह से मनाए जाते है। विशेष रूप से महर्षि दयानन्द का जन्म दिवस एव महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस बडे उत्साह से मनाए जाते हैं। मैं आशा करता हू कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब इस स्कूल की उन्नति के लिए विशेष ध्यान देगी।

इसके बाद दसवी कक्षा की पुष्पा, ज्योति ने वन्दे मातरम् गीत प्रस्तुत किया। सातवीं कक्षा के ऋषि ने देश भक्ति के गीत पर नृत्य प्रस्तुत किया। शैली, रेखा आर्य ओर पूजा यादव ने अनपढ औरत पर एक स्किट प्रस्तुत की। आठवी कक्षा के विशाल ने एक हास्य कविता पढी। सातवी और आठवीं कक्षा के छात्र-छात्राओ ने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की महिमा का गुणगान करते हुए एक समूह गीत प्रस्तुत किया। पाचवी कक्षा की छात्राओ ने एक पजाबी गीत पर नृत्य प्रस्तुत किया। एल के जी कक्षा के तुषार और शुभम ने कविता बोली। यू के जी कक्षा की चरनप्रीत और नैना ने एक कविता बोली। छठी, सातवी और दसवी कक्षा की छात्राओ द्वारा एक राजस्थानी कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। जिसने समय बाध दिया। पहली कक्षा की निधि, मोहित और टीनू ने कविताए बोली। सातवीं कक्षा की मीनाक्षी और किरण ने देश भक्ति का एक सुन्दर गीत प्रस्तुत किया। महर्षि दयानन्द जी के जीवन पर आधारित एक स्किट स्कूल के छात्र-छात्राओ द्वारा प्रस्तुत की गई। सोनिया, ईशान, मोहित, सागर और सावन ने कविताएं बोली। छठी कक्षा के गिन्नी, राहुल ने एक स्किट प्रस्तुत की। छठी कक्षा के आकाशदीप ने दीपावली पर एक सुन्दर कविता बोली। स्कूल के छात्रो ने भगडा प्रस्तुत किया। इसके अलावा फैंसी ड्रैस शो भी आयोजित किया गया। जिसमे छात्र-छात्राओ ने बढ-चढ कर भाग लिया। कार्यक्रम में स्कूल की छात्राओ ने गिद्दा भी प्रस्तुत किया।

मुख्यातिथि श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा जी ने स्कूल की प्रगति एवं सांस्कृतिक, धार्मिक कार्यक्रम पर बहुत खुशी प्रकट की और कहा कि सभा विद्यालयो के माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहती है और यह विद्यालय अग्रस्तर पर यह कार्य कर रहा है। मै इस विद्यालय के छात्र-छात्राओ, स्टाफ एव प्रबन्ध समिति को हार्दिक बधाई देता हू और विश्वास दिलाता हू कि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करेगी। इस अवसर पर प्रबन्धक समिति के कोषाध्यक्ष श्री सतपाल जी नारग, प्रधान श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता, सदस्य श्री बृज मोहन जी अरोड़ा, श्री विजय जी सरीन ने समारोह की तैयारी एवं जलपान आदि मे पूरा सहयोग दिया। कार्यक्रम के अन्त में पहले वार्षिक परीक्षा मे प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले बच्चो को पारितोषिक वितरित किए गए। इसके बाद कार्यक्रम मे भाग लेने वाले बच्चो को भी पारितोषिक वितरित किए गए। इस शुभ अवसर पर बच्चे फूले नही समा रहे थे। मच का सचालन कुमारी ज्योति ने किया। इस समारोह मे श्रीमती सी के अरोडा जी, श्रीमती रेणु जी श्रीमती अविनाश जी एव स्टाफ के सारे अध्यापको ने बढ-चढ कर सहयोग दिया।

—सुनीता मलिक प्रिसिपल

आर्य विद्वानों की सेवा में

मै आर्य विद्वानो की सेवा मे एक जिज्ञासु के नाते कुछ हृदय की जिज्ञासाए रख रहा हू—कृप्या समाधान कर अनुगृहीत करे। इस विषय पर अपना सार गर्भित लेख आर्य मर्यादा मे प्रकाशनार्थ भेजे ताकि उसे पढ कर अन्य जिज्ञासु भी लाभ उठा सके और मै भी लाभ उठा सकू।

1 प्रश्न—परम पिता परमात्मा जीवो को कर्मफल भोग कैसे और किस तरह प्राप्त कराते है ?

2 कर्म फल का निमित्त कारण व्यक्ति विशेष स्थान विशेष परिस्थिति, क्या निश्चित और क्या वह भगवान के ज्ञान मे होती है—या अपरिवर्त्तनीय होती है ?

3 मनुष्य के नये कर्म कौन से है जिन्हे करने मे वह स्वतन्त्र है ?

4 क्या मनुष्य जो भी कर्म करेगा या करना चाहेगा वह पहले से ही फल सहित प्रभु के ज्ञान मे है ?

5 क्या मनुष्य वेद ज्ञान या सत्सगति से दुरात्मा से महात्मा या महात्मा से दुरात्मा बन परमात्मा के वर्तमान या भविष्य ज्ञान मनुष्य ज्ञान के अनुसार उलट सकता है ?

6 परमात्मा मे—आत्मा को निमग्न करने या आत्मा—परमात्मा को स्पष्ट रूप से जानने की क्या विधि है ?

7 दिन भर मे क्या विशेष कार्य करना चाहिए जिससे रात्रि मे सोने के वक्त जीवन की सार्थकता का अनुभव होकर सन्तुष्टि हो ?

8 परमात्मा दयालु और न्यायकारी है किसी को भी उसके कार्यों से अधिक सुख नही दे सकते है फिर उपासना प्रार्थना स्तुति से सिवाय निरभिमानता तथा विवशता के आभास के अतिरिक्त और क्या फायदा है?

9 मनुष्य नौकरी करता है उसे वेतन रूपी फल मिल जाता है पर यदि वह अपने काम के अतिरिक्त मालिक की स्तुति प्रार्थना उपासना भी करता है तो मालिक खुश होकर उसे अतिरिक्त इनाम वगैरह भी देता है क्या भगवान भी स्तुति प्रार्थना उपासना का कोई निश्चित फल देता है ?

विनीत—ओम प्रकाश इन्दु,
आयुर्वेदाचार्य, हिन्द फार्मेसी गौशाला रोड, फगवाडा

मोगा में 'जनसंख्या शिक्षा एवं परिवार कल्याण' विचार गोष्ठी

डी एम शिक्षा महाविद्यालय, मोगा के सभागार कक्ष में पंजाब विश्वविद्यालय के सहयोग से 'जनसख्या शिक्षा एव परिवार कल्याण' विचार गोष्ठी का आयोजन तिथि 5-6 नवम्बर 2001 को किया गया। विचार गोष्ठी के लिए जहा बुद्धिजीवी वर्ग का सहयोग मिला। वही मोगा के डी सी स कवरबीर सिह सिद्धु जी ने मुख्य अतिथि के रूप मे आकर शोभा बढाई। कार्यक्रम को सुन्दर सुसज्जित कक्ष मे आयोजित किया गया। मच का सचालन बडे प्रभावी ढग से प्रो कवलजीत सिह (पजाबी विभाग) ने किया। प्रथम दिन कार्यक्रम का आरम्भ शब्द गायन से किया गया। इसके उपरान्त प्राचार्य जी सिद्धेश्वर जी ने मुख्य अतिथि का परिचय व स्वागत किया। उन्होने अपने शोध पत्र मे भारत की वर्तमान समस्या जनसख्या विस्फोट पर तथ्यो सहित पक्ष रखा। मै स कुवरबीर सिह सिद्धु ने अपने विचारो द्वारा श्रोताओ को स्पष्ट किया कि वोट की राजनीति भी इस समस्या के लिए उत्तरदायी है, फिर उन्होने महाविद्यालय के विकास के लिए 40,000 रुपये भेट करने की घोषणा भी की। उन्होंने जोनल युवा उत्सव अबोहर से जीते पुरस्कार विजेता रचनात्मक लेखन मे प्रथम स्थान विद्यार्थी धरमजीत सिह, गजल गायन मे द्वितीय रमोना परमार व वाद विवाद मे हरप्रीत कोर, दीपक कुमार (कले मॉडलिग) व अनिल भट्ट (सर्वश्रेष्ठ नृत्यक, भगडा, समूह नाच) को पुरस्कार दिये। महाविद्यालय की ओर से मुख्य अतिथि को प्राचार्य सिद्धेश्वर शर्मा जी उपेन्द्र लाम्बा एस के स्याल (सलाहकार, प्रबन्धक कमेटी) श्री बोधराज मजीठिया स्मृति चिन्ह भेट किया गया। अन्य वक्ताओं मे डा सर्वीन (पजाब विश्वविद्यालय) ने अपने विभाग द्वारा जनचेतना का ब्योरा दिया। विद्यार्थी नवदीप कुमार ने विद्यार्थियो की ओर से विषय पर अपने विचार रखे। डॉ गुरवीर कौर सघा (डी एम महाविद्यालय मोगा) प्राध्यापिका ने अपने विचारो से श्रोताओ के ज्ञान मे वृद्धि की। विद्यार्थी रमोना व अमनगीत ने गजल व कविता सुनाई।

दोपहर भोजन के उपरान्त डा जी एस प्रीत (निर्देशक सेहत विभाग, पजाब) मुख्य अतिथि थे जिन्होने अपना शोध पत्र पढा व विचार रखा कि जनसख्या शिक्षा के लिए वर्तमान समाज मे फैल रही कुरीति भ्रूण हत्या को रोकना होगा जिसके लिए उन्होंने डाक्टरो पर तीव्र व्यग्य कसे कि वे अपना यह दृष्कृत्य बद करे। श्री बोध राज मजीठिया ने भी उनका समर्थन करते हुए आह्वान किया कि वे इसमे अपना योगदान देगे। उन्होने आये हुए अतिथियो का धन्यवाद किया और प्राचार्य बोधराज मजीठिया लाम्बा जी व एस के स्याल जी ने मुख्य अतिथि को स्मृति चिन्ह भेट किया।

दूसरे दिन भी महाविद्यालय मे यह ऐतिहासिक कार्यक्रम बडे अनुशासन मे और पूर्ण उत्साह से जारी रखा कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डा एन सी मान (अतिरिक्त निर्देशक दन्त सेवाए, पजाब) थे। उनके स्वागत क लिए प्रो जसपाल सिह (हिन्दी विभाग) ने दो शब्द कहे। बच्चो द्वारा शब्द गायन से कार्यक्रम शुरू किया गया। मच सचालक प्रो कवलजीत सिह ने सर्वप्रथम प्रो आर सी शर्मा अध्यक्ष, वनस्पति विभाग (डी एम महाविद्यालय मोगा) को मच पर शोध पत्र के लिए न्योता दिया। प्रो शर्मा जी ने जनसंख्या समस्या के लिए जहां राजनेताओ को लताड़ा वही सुन्दर ढग से तथ्यो द्वारा अपना मत स्पष्ट किया। उनका मानना था कि समस्या अज्ञानता के कारण ही बढ गई है। उनके बाद के वक्ताओ मे प्रो रितु (सामाजिक अध्ययन विभाग) व प्रणीता गोयल और विद्यार्थी नवदीप कुमार ने अपने विचार रखे। मुख्य अतिथि ने अपने विचारो के लिए नौजवानो को आह्वान किया कि वे जो इन महाविद्यालयो से अध्यापक बन कर समाज मे सेवा करेगे, इस समस्या को रोक पाने मे सहायक हो सकते है। उन्होंने अपने शोध पत्र मे तथ्यो का समावेश करते हुए हमारी दुर्दशा को स्पष्ट किया।

अन्त मे प्राचार्य जी ने उनका धन्यवाद किया जिसमे उन्होने सारे कार्यक्रम को एक सूत्र मे पिरोते हुए माला सी बनाते हुए मुख्य अतिथि के नाम के साथ 'चन्द' का प्रयोग महाविद्यालय मे चार चांद व 'मान' का प्रयोग महाविद्यालय की शोभा बढाने से किया। कार्यक्रम मे विद्यार्थी कमलजीत व सुरेन्द्र ने गीत गाये। विद्यार्थियो को प्रमाण पत्र बाटे गये व भगडा टीम को ट्राफी भी दी गई। प्राचार्य, बोधराज मजीठिया, गिरधारी लाल ने मुख्य अतिथि को स्मृति चिन्ह भेट किया। अत मे बोध राज जी मजीठिया ने सुन्दर ढग से मुख्य अतिथि का धन्यवाद किया जिसमे उन्होने अपने चिर परिचित शैली का प्रयोग करते हुए दर्शको को हसाया व विचार प्रस्तुत किये। महाविद्यालय के इतिहास मे ये कार्यक्रम बडी सफलता से आयोजित के लिए सबने प्राचार्य श्री सिद्धेश्वर शर्मा जी को बधाईया दी। **—प्रो० जसपाल सिंह,** हिन्दी विभाग

जन जन की आशाओं के केन्द्र कैप्टन देवरत्न आर्य

सारे विश्व से आर्यजनो ने अभूतपूर्व आर्य महासम्मेलन की सफलता के उपलक्ष्य मे अपने पत्रों द्वारा आशीर्वादो और शुभ कामनाओ की वर्षा की है। आज पूरा आर्य जगत कैप्टन देवरत्न आर्य की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है। आपके विलोभनीय व्यक्तित्व से आश्वस्त लोगों ने पहले ही कितनी जिम्मेदारिया आपको सौंप दी हैं, जरा उन पर दृष्टिपात कीजिए

1 आर्य रत्न मोहन लाल मोहित, वेद निधि प्रतिष्ठान मॉरिशस के आजीवन ट्रस्टी और मत्री, 2 आर्य समाज शिक्षा सभा, अजमेर के आजीवन ट्रस्टी, 3 परोपकारिणी सभा अजमेर के ट्रस्टी और पूर्व उपप्रधान, 4 छः वर्ष तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के उपप्रधान, 5 महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर के आजीवन ट्रस्टी और उपप्रधान, 6 आर्य प्रतिनिधि सभा मुम्बई के वरिष्ठ उपप्रधान 7 रामानन्द आर्य डी ए वी कालेज की शासक निकाय के सदस्य, 8 स्वामी ओमानन्द गुरुकुल स्कालरशिप ट्रस्ट के आजीवन न्यासी एव मत्री, 9 राष्ट्रीय चेतना सगठन नई दिल्ली के अन्तरग सदस्य 10 महर्षि दयानन्द निर्वाण स्मारक ट्रस्ट, अजमेर के कार्यकारी प्रधान, 11 आर्य समाज सान्ताक्रुज, मुम्बई के आजीवन ट्रस्टी एव मत्री 12 आर्य मेडीकल रिलीफ मिशन मुम्बई के आजीवन ट्रस्टी और मत्री, 13 दयानन्द वेद पीठ दिल्ली के उपप्रधान जैसी सस्थाओ के पदो पर आप आसीन हैं और अब सार्वदेशिक सभा के प्रधान चुने गए हैं।

आर्य समाज हबीबगंज लुधियाना में ऋषिनिर्वाण दिवस सम्पन्न

दिनाक 14 नवम्बर 2001 दिन बुधवार का प्रात 8 00 बजे से साढे दस बजे तक आर्य समाज मदिर हबीबगज लुधियाना मे ऋषि निर्वाण दिवस बडे समारोह मे मनाया गया। समारोह की कार्यवाही यज्ञ से आरम्भ हुई। यज्ञमान श्री सदीप कुमार तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अविनाश कुमारी थे। यज्ञ आर्य समाज के पुरोहित श्री योगराज जी शास्त्री ने बडी श्रद्धा से सम्पन्न कराया। यज्ञ के पश्चात श्री योगराज जी शास्त्री न अपने सुरीले भजनो द्वारा महर्षि दयानन्द का सदेश विस्तार से सुनाया। आर्य समाज के प्रधान आशानद आर्य ने जहा सब बहन भाईयो को दीपावली की शुभकामनाए दी और कहा कि आज के दिन स्वामी दयानद जी ने निर्वाण प्राप्त किया था। महर्षि दयानन्द जी ने सारी आयु गरीब जनता की उन्नति के लिये कार्य किया, सत्य का प्रचार किया और आर्य समाज की स्थापना कर अपना प्रचार कार्य जारी रखने का आदेश दिया। आज के दिन हम आर्य भाईयो को उन के अधूरे कार्यो को पूरा करने की शपथ लेनी चाहिये। इस समारोह मे आर बी स्कूल के स्टाफ एव छात्रो ने बढ चढ कर भाग लिया। श्रीमती विनोद गाधी श्री कवलजीत, श्री सुशील कुमार एडवोकेट ने भी छात्रो को आशीर्वाद दिया। ***—जनकराज भगत, मन्त्री***

एहसान दयानन्द के फिर भी न अदा होंगे

❑ ले० श्रीमती सुकान्ती साहा, मनुर्भव सदन कंठीपाली, रायगढ़

बात उन दिनो की है जब यह महान भारत देश अज्ञान अन्धकार के महागर्त मे गिरा जा रहा था। धर्म के नाम पर सर्वत्र लूट मची हुई थी। धर्म के कल्याणकारी एवं वास्तविक स्वरूप को कोई जानता तक नहीं था। रूढ़िवाद के विनाशकारी दलदल मे वैदिक ज्ञान विज्ञान दम तोडते दिखाई दे रहे थे। राष्ट्रोत्थान का भद्रभाव विस्मृति के महासागर मे भलातू धकेल दिया गया था। येन केन रोटी कपडा मकान की उपलब्धि ही मानव समाज का चरम लक्ष्य बन कर रह गया था विशेष कर हिन्दू समाज की जो दयनीय दशा उन दिनो थी वर्णन सम्भव नहीं। हमारा समाज विवेचन के सीधे एव सरल मार्ग से च्यूत होकर पौराणिक ''वाद के गम्भीर गर्त मे ऐसा गिरा हुआ था कि उसके उद्धार का किसी का भी कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। एकेश्वरवाद को तिलाजलि देकर नाना प्रकार के जड़ देवी देवताओ की पूजा का हर जगह प्रचलन बढ़ा जा रहा था। सपर्यगाच्छुक्र-मकायमव्रणम् वाला सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा को तथाकथित धर्म के ठेकेदारों ने मच्छ कच्छ वराहादि निकृष्टयोनियो मे दर दर की ठोकरे खाने वाला बना दिया था। पवित्र वेदो के द्रष्टा ऋषिगण धूर्त भाण्ड एव निशावर करार दिये गये थे। वेद ज्ञान के देदीप्यमान भुवनभास्कर को पौराणिक मतवाद के घटाटोपो ने अस्तित्वहीन करके रख दिया था। वैदिक यज्ञो की अहिंसक परम्परा वैदिकी हिसा न भवति का बेसुरा राग आलाप कर निरीह पशु पक्षियो को यज्ञ मे स्वाहा कर बलि चढा दी जाती थी। ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' की पवित्र भावना को तिलांजलि देकर नारी को द्वार किमेकं नरकस्य नारी मानने में नहीं हिचक रहे थे। स्त्री शूद्रोनाधीयाताम् का पतनकारी नारा सर्वत्र गुजायमान हो रहा था। वर्णाश्रम की वैदिक मर्यादा खाक मे मिला दी गयी थी। ''काला अक्षर भैंस बराबर'' व्यक्ति सिर्फ ब्राह्मण के घर पैदा होने मात्र से पूजनीय माने जाने लगे थे। देश की ऐसी दुर्दशा के दिनो मे हजारों सालों की दीर्घावधि के बाद ऋषि दयानन्द का शुभागमन इस धरापृष्ठ पर हुआ। अपने गुरुवर प्रज्ञाचक्षु पदवाक्याप्रमाणज्ञ स्वामी विरजानन्द सरस्वती के आदेश से उत्प्रेरित होकर वैदिक ज्ञान का प्रचार पाखंड प्रपंच के ऊपर प्रचड प्रहार, दलितोद्धार, स्वदेशी विचार वेद विज्ञान विस्तार को लक्ष्य कर कार्यक्षेत्र मे अवतीर्ण हुए और स्वय वेदज्ञान के अद्भुत ज्ञान से आलोकित होकर पौराणिक पाखण्ड के झण्झावाल बलि प्रथा, पाषाण पूजा आदि भ्रात विचारो का खण्डन कर लोगो के समक्ष सद्धर्मस्वरूप का प्रतिपादन किया। पाखण्ड प्रथा पर आधारित गर्हित गतिविधियो का युक्ति युक्त समालोचना कर धर्म के जिज्ञासुओ के लिए सत्मार्ग प्रशस्त किया। आर्य समाज के दस नियमो को देकर पूरे विश्व को सुख शान्ति का मार्ग बता दिया। ऋषि की पावन देनो का वर्णन छोटे से लेख मे सम्भव नहीं है। हम बस यही कह सकते है–

सौ बार जन्म लेगे सौ बार फिदा होगे। एहसान दयानद के फिर भी न अदा होगे॥

हांसी में ऋषि निर्वाण दिवस

आर्य वीर दल हासी की स्थानीय इकाई ने आर्य समाज के सस्थापक युग प्रवर्तक जगत् गुरु स्वामी दयानन्द सरस्वती का निर्वाण दिवस 14 नवम्बर को लाल सडक स्थित शास्त्री निवास मे बहुत ही धूमधाम से मनाया गया।

जिसमें सर्व-प्रथम यज्ञ के ब्रह्मा पं विजयपाल आर्य (प्रभाकर) द्वारा यज्ञ किया गया तथा माताओ बहनो द्वारा भजन सुनाये गये।

उक्त आशय की जानकारी देते हुए आर्य वीर दल के सह-प्रैस सचिव केशव बंसल ने बताया कि आर्य वीर दल के पदाधिकारियो व सदस्यों के अलावा स्वामी रामानन्द आर्य जी, महात्मा रत्नदेव वानप्रस्थी, श्रीमती आशा भुटानी, श्रीमती सावित्री देवी आर्या, श्री उत्तम चन्द वर्मा आदि गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

आर्ष कन्या गुरुकुल, दाधिया का 40वां वार्षिकोत्सव सम्पन्न

आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया का 40वा महोत्सव रविवार दिनाक 28 10 2001 को दिल्ली के प्रसिद्ध उद्योगपति माननीय श्री मुशी राम सेठी, मैनेजिग डायरेक्टर, फ्रन्टियर बिस्कुट फैक्ट्री प्राइवेट लिमिटेड की अध्यक्षता मे समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। उसी दिन एक सप्ताह पूर्व आयोजित चतुर्वेद परायण महायज्ञ की पूर्णाहुति प्रात: 10 बजे हुई, जिसके ब्रह्मा डा विश्वपाल जी वेदालंकार थे।

दिल्ली एवं दिल्ली के आसपास से पधारे हुए लगभग 1000 व्यक्तियो ने इसमे भाग लिया। कार्यक्रम का विशेष आकर्षण था, ब्रह्मचारिणी सूर्या का सामवेद का कण्ठस्थ उच्चारण, समारोह मे पधारे हुए एक सन्यासी द्वारा सामवेद हाथ में पकडकर बीच-बीच मे से सामवेद मन्त्रो का उच्चारण करवाया जिसे ब्र. सूर्या धारा प्रवाह बोलती गई। इस बच्ची के कार्यक्रम को देख कर श्रीमती ओमवती ने रुपए 5,000/- एवं समारोह के अध्यक्ष श्री मुंशीराम सेठी जी ने रुपए 14,000/- की राशि गुरुकुल को इस ब्रह्मचारिणी हेतु दी। इसी के साथ गुरुकुल के मत्री श्री राम नाथ सहगल ने घोषणा की कि ब्रह्मचारिणी सूर्या कन्या गुरुकुल की निधी है, इसके भविष्य में विद्या अध्ययन हेतु यह राशि सुरक्षित रखी जाएगी।

कम बोलना सोचकर बोलना
मीठा बोलना गुणकारी होता है।

आर्य समाज तलवाड़ा का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज तलवाड़ा का वार्षिक उत्सव 29 अक्तूबर से 4 नवम्बर 2001 तक उत्साहपूर्वक, श्रद्धा और उल्लास से मनाया गया। इस शुभ अवसर पर आर्य जगत के महान् विद्वान् स्वामी माधवानन्द जी सरस्वती हिसार जिनकी दार्शनिक दृष्टि से गीता, रामायण, महाभारत और सत्यार्थ प्रकाश के ज्ञान पर बहुत अच्छी पकड़ है। स्वामी जी के मुख से निकले प्रत्येक प्रकार के ज्ञान के शब्द मनुष्य के हृदय को छू जाते हैं। उनके भजन की संगीतमयी आवाज भी चलने वालो के कानो को सडक पर अपनी ओर खींच लेती है। सडक पर चलता राही भी उनकी आवाज को सुन कर रुकने के लिए मजबूर हो जाता है। ट ॆ कारण है जितने लोग तलवाडा मे ¯ हे सुनने के लिए आर्य समाज म ि मे होते है उससे अधिक सडको प खडे टोते हैं। उनके साथ प विज कुमार जी शास्त्री महोपदेशक अ ्रतिनिधि सभा पंजाब जो कि पंजा- सभा के सुयोग्य, मिलनसार जि- का व्यवहौर प्रन्येक मनुष्य के साथ हुत प्रेममय है और उनको सभी अपना समझते हैं वेदो के विद्वान जिनकी वेद मन्त्रोचारण मे बहुत मधुर आवाज है वेदकथा और श्री सतीश-सुभाष जी भजन मण्डली अपने बहुत मधुर ईश्वर-भक्ति और देश भक्ति के भजनो द्वारा लोगों को आनन्दित करते रहे।

29 अक्तूबर से 2 नवम्बर तक रात्रि 8 से 10.30 बजे तक पूज्य स्वामी माधवानन्द जी द्वारा ज्ञान की गंगा का प्रवाह होता रहा। श्री विजय कुमार जी शास्त्री वेद की सुन्दर ऋचाओ की व्याख्या बहुत सरल तरीके से समझाते रहे, जीवनोपयोगी ज्ञान की चर्चा करते रहे।

श्री सतीश सुभाष जी के बहुत सुन्दर भजन होते रहे। 3 नवम्बर और 4 नवम्बर को उत्सव का विशेष कार्यक्रम रखा गया। आर्य समाज मन्दिर को बिजली की रोशनी, ओ३म् के झडों से खूब सजाया गया। इस प्रोग्राम मे महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल के स्टाफ और छात्रों-छात्राओ को यज्ञ पर बिठाया गया। शहर के और भी गणमान्य सदस्यों को यज्ञ पर बिठाया गया आर्य समाज तलवाड़ा के अधिकारीगणों ने मिल कर सभी ने यज्ञ किया। उसके बाद सभी को आर्य समाज की ओर से चाय और नाश्ता दिया गया। इसके बाद महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल के बच्चों ने बहुत सुन्दर भजन गाये और सभी ने बहुत पसन्द किए और 4 नवम्बर को दोबारा सुनने की इच्छा की जिसको पूरा किया गया। आर्य समाज की ओर से इस प्रोग्राम में भाग लेने वाले छात्रों को पारितोषिक द्वारा सम्मानित किया गया। इसमें सतीश जी के भजन, मान्यवर शास्त्री जी और स्वामी जी का बहुत सुन्दर उपदेश हुआ यह कार्यक्रम रात्रि तक चला।

4 नवम्बर को सुबह 8 30 बजे यज्ञ किया गया। यज्ञ आर्य समाज के ग्राऊंड मे टैन्टो के नीचे 4 हवन कुण्डों पर किया गया। जिसमे शहर के हर वर्ग के बुद्धिजीवियों को बुलाया गया था। वह सभी परिवारो सहित आर्य समाज मन्दिर में पधारे। इसमे अधिकतर वह सदस्य थे जो दूसरी संस्थाओ के अधिकारी है चालीस यजमान हवनकुण्डो पर बिठाये गए। पं विजय कुमार जी शास्त्री जी ने बहुत अच्छे ढंग से यज्ञ सम्पन्न करवाया, पूज्य स्वामी माधवानन्द जी ने सभी को आशीर्वाद दिया। इसके बाद सभी ने नाश्ता, चाय आर्य समाज की ओर से दी गई।

आर्य समाज मन्दिर का हाल और मैदान लोगो से भरा पड़ा था। यहां हर यूनियनो, संस्थाओं के सदस्य पहुचे थे। स्वामी जी के व शास्त्री जी के उपदेश को सुनने के लिए बहुत से लोग आए थे। स्वामी माधवानन्द जी और विजय कुमार जी शास्त्री का बहुत ही विद्वतापूर्ण उपदेश और सतीश के बहुत सुन्दर आनन्ददायक भजन हुए। स्वामी माधवानन्द जी के उपदेशों को यहां के पत्रकार दो दिन लगातार अखबारों में देते रहे और प्रत्येक को बहुन सराहा यहां तक पत्रकारों ने लिखा कि कई बार उपदेश सुनते-सुनते आंखों में पानी भर आता था। स्वामी जी का उपदेश प्रत्येक सुनने वाले के मन को हिला देता था।

अन्त में मन्त्री जी ने सभी विद्वानों का जिन्होने लगातार 7 दिन उपदेश दिया। शहर वासियो का तलवाडा की सभी संस्थाओं का। आर्य समाज तलवाडा, स्त्री आर्य समाज तलवाडा के अधिकारियों और सदस्यों का धन्यवाद किया। महात्मा हंसराज पब्लिक स्कूल तलवाड़ा के स्टाफ, प्रिंसीपल जी, छात्र, छात्राओं का भी धन्यवाद किया जिनकी मेहनत और लगन से यह उत्सव का कार्यक्रम पूर्ण हुआ। बाद में ऋषि लंगर हुआ सभी ने मिल कर बिना भेदभाव के लंगर का प्रशाद ग्रहण किया।

—मनोहर लाल आर्य, मन्त्री

स्वास्थ्य चर्चा—

कैंसर (अर्बुद)

☐ ले० स्वामी धर्मानन्द सरस्वती, गुरुकुल आश्रम आमसेना जि. नवां पाड़ा, उड़ीसा

कैंसर का नाम सुनते ही स्वस्थ शरीर भी कांप उठता है। मरीज का तो कहना ही क्या ? उसकी हालत तो अधमरी हो जाती है, परन्तु ऋषि, मुनि, आचार्यों ने इसकी चिकित्सा का पूरी तरह से वैज्ञानिक तरीका से जीवन सचार के लिए असाधारण दवा का वरदान दे गए हैं। जो कि सचमुच रोगी के लिए रामबाण सिद्ध हो चुकी है, हां इस रोग के इलाज मे धन व्यय अधिक अवश्य होता है पर जीवन तो नया मिल जाता है।

केंसर एक भयानक रोग है, जो शरीर के किसी भी भाग में पैदा हो सकता है। यह शोथ का एक भेद है, जिसका मूल कारण खून मे खराबी ही प्रधानता से है। इसमे कभी-कभी जलन, कभी भयंकर शूल और कभी शूल, पीडा रहित हो सकता है। आजकल स्त्रियों मे स्तन कैंसर होना, स्तन मे गांठ होना, गला में दोनो पार्श्व मे गाठ होना, योनि मध्य से सफेद पानी बहना, अधिक रक्तस्राव योनि मार्ग से आना, इत्यादि लक्षण, पुरुष वर्ग में मूंह में छाले होना, गले मे गांठ, भोजन नली में द्रव्य का न उतरना, लीवर में शोथ होना, तिल्ली की वृद्धि होना, भोजन नली से बार-बार रक्त का अचानक बहना आदि-आदि लक्षण ही भयानक रूप ले लेते हैं। मरीज डाक्टरो के पास दर दर भटक कर अन्त मे धन के साथ जीवन को भी खो बैठता है। अतः आईये निराश न होकर धैर्य के साथ दवा का सेवन करके स्वस्थ जीवन जीने का लाभ उठायें। इसकी एक दवाई इस प्रकार है-

शोथ में-इमली का बीज पीसकर, कुलीयारी छाल (कचमार छाल) सुहागा, हल्दी, सेंधा नमक, थोड़ा-थोड़ा इमली चूर्ण में पानी डालकर पुल्टिस बना कर सुहाता-सुहाता प्रतिदिन बांधने से रोगी को आराम होकर शोध कम होने लगता है।

1-अर्बुदहर चूर्ण 50 ग्राम, कचनार गुंगुल 50 ग्राम, आरोग्यवर्धिनी वटी 20 ग्राम, कशिश भस्म 10 ग्राम, वराटिका भस्म 10 ग्राम, सबको मिलाकर कुटपीस कर एक बर्तन में बन्द करके रख लें, प्रतिदिन 1 ग्राम मात्रा दिन में 3 बार भोजन से आधा घण्टा पहले खाकर ऊपर से खदिरारिष्ट 15 मि.ग्रा. अर्बुदहर पेय 15 मि.ग्रा बराबर पानी मिला कर सेवन करेगे।

2-भयंकर अवस्था मे-त्रैलोक्य चिन्तामणी रस 5 ग्राम ताप्यादिलौह 10 ग्राम, मण्डुर भस्म 5 ग्राम, प्रवाल भस्म 5 ग्राम, यशद भस्म 5 ग्राम, ताम्रभस्म 5 ग्राम सबको मिलाकर 150 खुराक (भाग) बनाकर दिन मे 3 बार शहद के साथ भोजन से पहले सेवन कराये।

3-अर्बुदहर कवच दिन मे 3 बार एक कवच खाने से पहले सेवन कराये। यदि शरीर मे अधिक दर्द हो तो "सर्ववातहर कवच" एक-एक कवच दिन में 3 बार भोजन के बाद ले।

4-उदर तथा भोजन नली आदि में अर्बुद होती दवा को थोड़ा बदल कर इस प्रकार सेवन कराये-सूत शेखर रस (स्वर्णयुक्त) 5 ग्राम, त्रैलोक्य चिन्तामणि रस 5 ग्राम, ताम्र भस्म 5 ग्राम, कामदूधारस 5 ग्राम, पथ्यादि लौह 5 ग्राम, धात्री लौह 5 ग्राम सबको मिलाकर 120 खुराक बनाकर दिन मे 3 बार खाने से पहले मधु के साथ सेवन कराये अवश्य लाभ मिलेगा। यह सब अपने अनुभव की चिकित्साविधि लिखी गई है। यदि सन्देह हो और कोई परामर्श लेना चाहे तो ऊपर लिखे पते पर ही संपर्क कर सकते हैं।

पथ्य-भोजन सुपाच्य एवं हल्का लेंगे रोगी को जो अनुकूल बने सेवन करें। मांस, मछली, अंडा और मद्य तो छूये ही नहीं। प्रभु कृपा से रोग दूर होकर मरीज को नया जीवन मिलेगा। सर्वे भवन्तु सुखिनः

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

रजि. नं. एन. पी. 17504/58

ऋग्वेद | ओ३म् | विश्वमार्यम् | यजुर्वेद

साप्ताहिक

दूरभाष ☎ : 292926

आर्य मर्यादा

जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष—55 अंक : 25 सृष्टि संवत 1960853102, 9 से 16 दिसम्बर 2001 दयानन्दाब्द 178

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की साधारण बैठक दिनांक 3 एवं 4 नवम्बर 2001, में सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव

प्रस्ताव—1

(क) प्राणितत्वविदो (Ancient Indian Metaphisicians) ने 'गाय' का लक्षण करते हुए बताया—'ककुदयुत्-गलकम्बलवान् गो: ।' अर्थात् थूह (कूहान ठाठी) तथा गले मे झालर, पीठ समतल, पीछे का भाग कुछ उन्नत व सामान्य ऊघ वाली (ZEBU) 'गाय' है। इसके अनुसार हमारी देशी नस्लें अथवा प्रजातिया तथा—थारपारकर, हरियाणी, गीर, साहीवाल, राठी, मेवाती, गगातीरी, देवनी, कागायम, काक्रेज ही गाय हैं, आष्ट्रियन, जर्सी, फ्रिजियन आदि विदेशी प्रजातिया गाय नहीं कही जा सकती। हमे यह भी भली प्रकार समझ लेना होगा कि उक्त विदेशी प्रजातिया गोत्व (गौपन) हीन हैं तथा इनके साथ सकरीकरण हुई भारतीय नस्ल की गायो से उत्पन्न गोवश मे भी गोत्व (गौपन) जाता रहता है। यही नहीं इनसे प्राप्त दूध एक ओर सेवन मे अरूचिकर होता है वही दूसरी ओर उनके दुग्धादि सेवन से मानव देह मे रोग सक्रमण की भावना बहुत बढ जाती है।

(ख) जहा देशी भारतीय नसले गोत्वयुक्त अर्थात् गाय है जो भारत, अफगानिस्तान पारस्य तथा अफ्रीका के कुछ भागों में जो आर्यावर्त अर्थात् विशाल प्राचीन भारत के अग रहे हैं, मे प्राप्य हैं। अन्यत्र सुर्वत्र गौ की शकल का जन्तु गव्य (गोमृग) मिलता है जिसे पालतू बनाकर दुधारु तो बना दिया है परन्तु वह गोत्व (गौपन) हीन है। आयुर्वेदोक्त गव्य दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र 'गाय' मे है। गवव्य मे रंचमात्र भी नही। पच गव्यों से जहा सामान्य रोगोपचार होता है वहीं उनसे असाध्य रोगो का निदान पाना भी सम्भव है। इस दिशा में अब तक हुए प्रयासो से उत्साहजनक परिणाम सामने आए हैं, आ रह हैं, फिर भी गहन शोधो की आवश्यकता है जो निजी सस्थानों के साथ ही विशद् राजकीय सहयोग की अपेक्षा रखते है।

(ग) काक्रेज, गीर, थारपारकर, हरियाणा, मेवाती, राठी, गंगीतीरी, साहीवाल देवती कागायम—ये भारतीय नसले ही गाय हैं। जर्सी, होल्स्टेन, फ्रिजियन आदि नही। गौ संवर्द्धन उपर्युक्त देशी नस्लो मे आपसी सकरीकरण से सम्भव है, इसी से नस्ल सुधार एव दूध की वृद्धि भी होगी। इसके विपरीत धवलक्रान्ति के नाम पर विदेशी साड के रक्षित शुक्र से गाय को गर्भित कराना नस्ल सुधार नही वस्तुत. यह गौ-नस्ल सहार ही है। परिणाम सामने हैं देशी नस्ल की गायों की नस्ल कमजोर होती जा रही है और उनकी सख्या भी तीव्र वेग से घटती जा रही है। कसाई खानों मे तथा अन्य प्रकार की देशी नस्ल के गाय-बैल आदि का अधिक सख्या मे दुर्भाग्यपूर्ण ढग से काट किया जाना भी गोवश नाश का एक बडा कारण रहा है। परन्तु अब सम्भवत. हम ऐसी स्थिति मे पहुचते जा रहे हैं जहां से पुन: सभलने में काफी कठिनाईया आएंगी फिर भी आज जो परिस्थिति है उसे सम्भाल लिया जाए तो अच्छा है।

सार्वदेशिक सभा का यह अधिवेशन उपर्युक्त परिपेक्ष्य मे समस्त बुद्धिजीवियो विज्ञानविदो, राजनोतिज्ञो, शासनाधिकारियों का ध्यान परिस्थिति की गहराई की ओर आकर्षित करते हुए उनसे पुरजोर अपील करता है कि भारतीय नस्ल की ऊपरवर्णित किस्म की गौवश यथा—कांक्रेज, गीर, थारपारकर हरियाना, मेवाती, राठी गगातीरी, देवती, साहीवाल, कांगायम के अस्तित्वनाश की स्थिति को समझते हुए अविलम्ब उक्त नस्लों के किसी भी उम्र के पशु के वध पर अविलम्ब रोक लगा दिए जाने की बात को समझ कर सभी आवश्यक कदम उठाए जाए तथा उनके सवर्द्धनार्थ कारगर उपाय किए जाए एव उक्त नस्लो के गोमूत्र एव गोबर के शोध कार्य मे लगे सस्थानो गोशालाओ को व्यापक राजकीय सहयोग प्रदान कर उनके मानवहितार्थ औषधि निर्माण कार्य को प्रोत्साहित किया जाए।

प्रस्ताव—2

गाय भारतीय-आत्मा का मानबिन्दु है। यह हमारी महान् सभ्यता ओर सस्कृति का प्रतीक है। भारतवर्ष का सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, नेतिक और आध्यात्मिक जीवन सदा से गोवश पर आश्रित रहा है। कृषि, ग्रामीण उद्योग धन्धे, वाणिज्य और परिवहन सहित समस्त भारतीय अर्थतन्त्र गौ पर केन्द्रित है। देश की सम्पूर्ण आय का बहुत बडा अश हमे गोवश मे मिलता है। आज भी भारत मे खेती का 80 प्रतिशत एव बोझा ढोने का 50 प्रतिशत काम बैलो से ही होना है। देश की ऊर्जा का सबसे बडा स्रोत गोवश है। भारत मे वैदिक काल से गोरक्षा एव गो सेवा की अविच्छिन्न परम्परा रही है। दुर्भाग्य से कालान्तर मे गोहत्या की घृणित प्रथा शुरू हुई जो अब तक जारी है। यद्यपि स्वराज्य के पश्चात् हमारे सविधान निर्माताओ ने व्यापक जन आकाक्षा को ध्यान मे रख कर निर्देशक सिद्धान्त बनाया है तथापि सरकारी शक्तियों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावो के परिणाम स्वरूप इस धारा की दी गई व्याख्या के कारण विभिन्न राज्यो मे गोवश रक्षा निष्प्रभावी हो गई है। अनुभवो ने सिद्ध कर दिया है कि गोवश की रक्षा कानून जो प्रदेशो मे बनाए गए वे त्रुटिपूर्ण है। बूढे और अनुपयोगी बेलो के नाम पर उपयोगी, अनुपयोगी सारे गाय बैल काट दिए जाते है। विदेशी मुद्रा अर्जन के लालच से इस देश से गोमास तक का निर्यात हो, इससे बड़ा अपमान हमारा और भारतीय सस्कृति का क्या होगा। अत सम्पूर्ण रक्षा हेतु अविलम्ब केन्द्रीय कानून बनाने की प्रक्रिया शुरू होनी चाहिए अथवा भारतीय दण्ड सहिता मे तदर्थ सशोधन होना चाहिए या फिर गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित कर सम्पूर्ण गोवश की पूर्ण परिपालना एव रक्षा का दायित्व शासन को स्वय ग्रहण कर लेना चाहिए। (नोट-राष्ट्रीय पशु घोषित कराना गोवश रक्षा एव देशोन्नति का सरलतम उपाय हो सकता है।)

यह अधिवेशन भारत सरकार से पुरजोर माग करता है कि इस दिशा मे समुचित विचार करके भारतीय संस्कृति, सविधान एव देश की बहुसख्यक जनता की मनोभावना का आदर करने का समुचित उपाय करे।

प्रस्ताव—3

(क) प्रत्येक गाव एव अनेक शहरो मे परम्परा से पहले एक साक्षी गोचर भूमि रहती थी जहां गाय, बैल, बछडे प्रतिदिन चरने जाते थे—इससे उनके पालको को कोई अतिरिक्त वित्तीय भार नही पडता था। 1955 के भूमि सुधार कानूनों द्वारा सम्पूर्ण गोचर भूमि भी छीन ली गई। फलत: अब अनुत्पादक गाये चरने के लिए गोचर भूमि न होने से लोग गोवश को कसाइयों के हाथ बेचने को बाध्य होने लगे। शनै: शनै: गोरक्षा की भावना भी लुप्त होती गई

(शेष पृष्ठ 9 पर)

बलिदान पर्व पर विशेष—

'स्वामी श्रद्धानन्द एवं स्वतंत्रता आन्दोलन'

□ ले० श्री तरसेम कुमार आर्य, महामन्त्री जिला आर्य सभा बठिण्डा

महात्मा मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द का पूर्व नाम) जी ने 16 मई 1900 को गुजरावाला मे गुरुकुल की स्थापना कर दी थी। इसी गुरुकुल को 4 मार्च 1902 को गगा नदी के तट पर हरिद्वार के पास कांगडी नाम के एक गाव मे तबदील कर दिया गया और यह गुरुकुल 'गुरुकुल कागडी' के नाम से जाना जाने लगा। इस के बाद महात्मा मुन्शी राम शिक्षा प्रसार के साथ-साथ धर्म प्रचार और समाज सुधार विशेष कर अछूतोद्धार का कार्य अपने हाथ मे लेकर इसको आगे बढाने मे जी जान से जुट गए। इससे पहले कि महात्मा मुन्शी राम जी सन्यास आश्रम मे प्रवेश कर स्वामी श्रद्धानन्द बन कर गुरुकुल कागडी को विदा कहते कुछ ऐसी घटनाए घटीं जिनके कारण स्वामी श्रद्धानन्द जी राष्ट्रीय सेवा हित स्वतत्रता आन्दोलन मे जुटे दूसरे नेताओ के साथ कंधे से कधा मिला कर चलने लगे।

1914 मे जब गाधी जी अभी दक्षिण अफ्रीका मे भारतीय मूल के लोगो की समस्या सुलझाने मे लगे हुए थे, तब उन्हे भारत से अपने परम हितैषी एव मित्र चारली एण्डरूज (C F Andrews) का एक पत्र मिला। पत्र मे अन्य बातो के साथ गाधी जी को भारत लौटने पर तीन व्यक्तियो को अवश्य ही मिलने का आग्रह किया था। इन तीन व्यक्तियो मे एक थे गुरुकुल कागडी के महात्मा मुन्शी राम।

गाधी जी अगले वर्ष 9 जनवरी 1915 शनिवार के दिन अफ्रीका से वापिस बम्बई पहुचे। उन्होने अपनी डायरी मे लिखा है-"इस साल (1915) हरिद्वार मे कुम्भ का मेला पडता था। उसमे आने की मेरी प्रबल इच्छा थी, फिर मुझे महात्मा मुशी राम जी के दर्शन भी करने थे। अत गाधी जी 6 अप्रैल 1915 मगलवार की प्रात. गुरुकुल कागडी देखने गए। वहां आपने महात्मा मुशी राम से भेट की और उनकी बैलगाडी से वापिस हरिद्वार आ गए।"

फिर 8 अप्रैल को गुरुकुल के ब्रह्मचारियों की ओर से गांधी जी का अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर बोलते हुए महात्मा मुंशी राम जी ने कहा था "मुझे आशा है कि महात्मा गांधी जी भारत के लिए ज्योति स्तम्भ बन जायेगे। उनकी वाणी आगे चल कर सफल और सार्थक सिद्ध हुई। गांधी जी को "महात्मा गांधी" के नाम से सम्बोधन करने का शायद यह प्रथम अवसर था।

1916 मे 18 मार्च से 23 मार्च तक गाधी जी प्राय: हरिद्वार मुख्यत: गुरुकुल कांगडी मे रहे। मार्च 18 को गुरुकुल कागड़ी मे अछूतोद्धार सम्मेलन हो रहा था। गांधी जी भी इस सम्मेलन में शामिल हुए। आपने अस्पृश्यता निवारण की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि हिन्दुओ को प्रायश्चित की भावना से कार्य करना चाहिए।

20 मार्च को गुरुकुल का पुरस्कार वितरण समारोह था। गांधी जी इस समारोह में भी शामिल हुए। आपने कहा पाठशाला को ग्रामीण जीवन, ग्रामीण शिल्प, खुली हवा, आजादी तथा अपने लोगो की सेवा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना चाहिए।

इसी दिन गुरुकुल कांगडी के वार्षिक उत्सव मे उन्होने एक मार्मिक भाषण दिया। उन्होने कहा उचित धार्मिक भावना हमारी सबसे बडी तात्कालिक आवश्यकता है। हमारी धार्मिक भावना सुप्त है और हम लोग इसी कारण हमेशा भयभीत बने रहते है।

23 मार्च को उनकी तबीयत ठीक न होने पर भी आर्य समाज भवन हरिद्वार मे उन्होने दयानन्द स्कूल के विद्यार्थियो के सामने एक छोटा सा भाषण करते हुए कहा कि अपनी आत्मा के प्रति सच्चा बनना चाहिए। तभी तो वे देश के प्रति भी सच्चे बन सकते हैं। गुरुकुल कागड़ी के महात्मा मुंशीराम के साथ मार्च 1916 मे हुई महात्मा गांधी जी की यह मुलाकात शायद अन्तिम मुलाकात थी, क्योंकि अगले वर्ष 1917 में ही महात्मा मुंशी राम जी ने सन्यास आश्रम में प्रवेश किया और वे स्वामी श्रद्धानन्द बन गये। सन्यासी बन जाने पर स्वामी श्रद्धानन्द जी केवल गुरुकल कांगडी के न रह कर सकल मानव जाति के बन गए। आपने जन सेवा विशेष कर राष्ट्रीय सेवा में बढ़-चढ़ कर भाग लेना शुरू कर दिया। महात्मा गांधी जी के आग्रह पर आपने काग्रेस को सहयोग देना भी स्वीकार कर लिया।

1918 मे गढ़वाल (वर्तमान उत्तराचल) मे अकाल पड़ गया। उन दिनो पहला विश्व युद्ध चल रहा था। अत: भारत की अग्रेज सरकार का तो अपना राज सिंहासन ही डावांडोल था। गढवाल की अकाल पीड़ित जनता की ओर ध्यान देने के लिए न उसके पास समय था और न ही सरकार इस की आवश्यकता ही समझती थी। सरकार का तो यत्न था कि भारत की जनता को गढ़वाल के अकाल की खबर तक न हो परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द जी को जब इस अकाल का पता चला तो उन्होने अपने अखबार 'सत्य धर्म प्रचारक' मे इस अकाल का पूरा विवरण लिख कर जनता से सहायता की अपील की। स्वामी जी की अपील पढ कर लोगो पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि धन पानी की तरह बरसने लगा। स्वामी जी अपने साथियो को लेकर गढवाल पहुच गए और सरकारी विरोध और बाधाओ की प्रवाह न करते हुए दुखी और विवश जनता की सेवा मे जुट गए। 1919 का वर्ष भारत के इतिहास मे बहुत ही महत्वपूर्ण वर्ष था। विश्व युद्ध मे बुरी तरह फसी बरतानवी सरकार ने भारत से धन और जन की सहायता प्राप्त करते हुए भारत की जनता को आश्वासन दिया था कि युद्ध जीत लेने के पश्चात् अंग्रेजी सरकार भारत को आजाद कर देगी पर युद्ध समाप्त होते ही विदेशी सरकार ने भारत भर मे रौलट एक्ट लागू कर दिया। इस विश्वासघात के कारण जनता जनार्दन में असंतोष और रोष फैल गया। महात्मा गांधी ने तंग आकर रौलट एक्ट के विरुद्ध अहिंसात्मक सत्याग्रह की घोषणा कर दी तब मातृ भूमि की पुकार सुन कर राष्ट्रहित के लिए अपनी आहुति देने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द आगे आए।

दिल्ली में सत्याग्रह कमेटी का गठन किया गया जिस का प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द को चुना गया। कमेटी ने 30 मार्च 1919 का दिन प्रार्थना दिवस के रूप मे मनाने का निश्चय किया। अत: 29 मार्च की सायं को स्वामी जी की प्रधानगी मे एक बैठक हुई। अगले दिन 30 मार्च को दिल्ली भर में हड़ताल रखने का निश्चय किया गया। 30 मार्च 1919 को जब दिल्ली की जनता का नेतृत्व करते हुए, वे चांदनी चौक के घंटाघर के निकट पहुंचे तो गोरखा सिपाहियो ने अपनी बन्दूको की संगीने स्वामी जी की ओर बढ़ाते हुए कहा 'हट जाओ नहीं तो हम छेद देवेगे' यह सुन कर स्वामी जी एक कदम और आगे बढ़ गए। अब सगीन की नोक स्वामी जी की छाती को छू रही थी। स्वामी जी ने बडे ऊंचे स्वर मे कहा 'चलाओ गोली' और वह वहीं खडे रहे। वो सैनिक स्वामी जी पर गोली चलाने का साहस नहीं जुटा सके।

जलियांवाले बाग के हत्याकाड के बाद जब पजाब मे राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन आयोजित किया जाना असम्भव जान पडता था, उस समय अमृतसर मे सफलता पूर्वक राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन कराना और उसके स्वागताध्यक्ष के पद से प्रथम बार हिन्दी मे स्वागत भाषण पढना स्वामी श्रद्धानन्द जैसे निर्भीक पुरुष के लिए ही सम्भव था।

सितम्बर 1922 मे 'गुरु के बाग' वाले मोर्चे के सिलसिले में स्वामी श्रद्धानन्द जी अकालियो को आशीर्वाद देने के लिए अमृतसर गये। वहां अकाल तख्त के निकट हुई सभा मे आपने जो भाषण दिया उसकी बिनाह पर उस समय की पंजाब सरकार ने आपको जेल मे बद कर दिया। आप एक साल चार महीने जेल मे रहे। दिसम्बर 1923 में आपको जेल से रिहा किया गया। (क्रमश:)

सम्पादकीय.....

स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवस

स्वामी श्रद्धानन्द आर्य समाज की एक महान् विभूति थे । महर्षि दयानन्द के बाद आर्य समाज मे जितना मान व प्रतिष्ठा स्वामी श्रद्धानन्द जी को प्राप्त थी उतनी किसी और को प्राप्त नही हुई। स्वामी जी ने महर्षि दयानन्द का सच्चा अनुयायी बन कर उनके गुरुकुल खोलने के स्वप्न को साकार किया। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश मे गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का वर्णन किया है। जब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश को पढा तो जहा इससे उनका जीवन पलट गया वहीं उन्हे इस महान् ग्रन्थ के पढने से बालको व कन्याओ के अलग-अलग गुरुकुल खोलने की प्रेरणा भी मिली।

स्वामी जी का जन्म जालन्धर के पास तलवन ग्राम में हुआ था परन्तु बाद में आर्य समाज अड्डा होशियारपुर जालन्धर के बिलकुल सामने उन्होने अपनी कोठी बनवाई थी। वह कई वर्ष तक जालन्धर में रह कर वकालत करते रहे। वकालत के क्षेत्र मे भी उनका अपना एक विशेष स्थान था। वह कभी भी कोई झूठा मुकद्दमा नही लेते थे चाहे कोई उन्हे कितना ही धन फीस के रूप मे क्यो न दे रहा हो। एक बार उनके मुन्शी ने एक झूठा मुकद्दमा उनके लिए ले लिया जब वकील मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) को इस बात का पता चला कि उनके मुन्शी ने झूठा मुकद्दमा ले लिया है तो उन्होने अपने मुन्शी को इसके लिए पर्ताड़ना की और जो फीस मुकद्दमे की मुन्शी ने ले ली थी वह उसी समय वापिस करवा दी और मुन्शी को कहा कि आज के बाद कोई झूठा मुकद्दमा मत ले। मैं उसे नही लड़ूंगा चाहे उसके लिए कितना भी पैसा क्यो न मिल रहा हो। वह सत्य के पुजारी थे और जीवन भर सत्य पर ही डटे रहे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी अपनी धुन के बडे ही पक्के थे जब वह किसी कार्य को करने की ठान लेते थे तो उसको करके ही दम लेते थे। उनका रास्ता रोकने की किसी मे भी हिम्मत नही होती थी। दिल्ली के चादनी चौक मे उन्होने गोरो की संगीनों के सामने अपनी छाती तान दी थी और कहा चलाओ गोली परन्तु इस संन्यासी की ललकार सुन कर सगीने झुक गई और सारा जलूस आगे निकल गया। जलियावाला बाग काण्ड के बाद किसी की हिम्मत नहीं हुई कि अमृतसर मे वह कोई सम्मेलन कर सकें परन्तु स्वामी जी ने इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और सम्मेलन करके दिखाया।

जब लाहौर मे गुरुकुल खोलने की बात इन्होने आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के अधिकारियो के सामने रखी तो उनके सामने धन एकत्रित करने की बहुत बडी समस्या आ गई। सभी ने मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी को कहा कि इस कार्य के लिए कम से कम तीस हजार रुपया होना चाहिए तभी गुरुकुल खोलने की बात हो सकती है। मुन्शी राम ने इसके लिए लाहौर मे ही प्रतिज्ञा की कि जब तक मै 30 हजार रुपया इकट्ठा नहीं कर लूगा तब तक अपने घर मे नही जाऊगा। उस समय मुन्शी राम जी स्वामी श्रद्धानन्द नही बने थे। जालन्धर में आर्य समाज अड्डा होशियारपुर के सामने जो उनकी कोठी थी उसमें उनके बच्चे रहते थे। जब वह इस प्रतीज्ञा के बाद जालन्धर आए तो घर न जाकर सीधे आर्य समाज मे चले गए। इनकी धर्म पत्नी शिव देवी का इससे पूर्व देहान्त हो गया था। ऐसी अवस्था मे बच्चो को न मिलना और अपने घर न जाकर आर्य समाज मे चले जाना परिवार को बहुत खटका। इन्होंने घर वालो को बताया कि मै प्रतीज्ञा करके आया हू कि जब तक तीस हजार रुपया एकत्रित नही होगा मै घर नही आऊगा। इसलिए अब मैं तीस हजार रुपया एकत्रित करके ही घर आऊगा और मुन्शी राम जी धन एकत्रित करने के लिए स्थान -स्थान पर घूमने लगे और तीस हजार के स्थान पर चालीस हजार रुपया एकत्रित करके वह घर पहुंचे। यह रुपया उन्होने गुरुकुल खोलने के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब लाहौर को सौंप दिया।

जब कोई और व्यक्ति गुरुकुल खोलने के लिए धन संग्रह के बाद भी आगे नहीं आया तो वह स्वय इसके लिए तैयार हो गए। सर्वप्रथम 8 अप्रैल सन् 1900 मे वैदिक आश्रम गुजरांवाला मे गुरुकुल की स्थापना हो गई। परन्तु महात्मा मुन्शीराम जी हरिद्वार मे गगा तट पर गुरुकुल खोलना चाहते थे। इसके लिए वह हरिद्वार मे भूमि की तलाश में आए और कांगडी ग्राम के पास गगा के तट के पास जब वह भूमि देख रहे थे तो उनकी भेट भूमि के मालिक मुन्शी अमन सिह जी से हुई जो नजीबाबाद जिला बिजनौर के रहने वाले थे। वह बडे धर्म पारायण और रईस व्यक्ति थे। उनकी कांगडी ग्राम मे एक हजार चार सो बीघे भूमि थे जब उनको गुरुकुल खोलने की सारी बात स्वामी श्रद्धानन्द जी ने बताई और कहा कि यह स्थान ही गुरुकुल खोलने के लिए उपयुक्त है तो उन्होंने अपनी यह भूमि आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब को गुरुकुल खोलने के लिए प्रदान कर दी। यह स्थान जो अब पुण्य भूमि के नाम से जाना जाता है आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब को 1901 के अन्त मे मिला और 2 मार्च 1902 को फूस की झोपडियो मे कागडी ग्राम के पास हरिद्वार मे गुजरावाला से गुरुकुल स्थानान्तरित कर दिया गया और महात्मा मुन्शी राम जी अपने दोनो पुत्रो सहित गुरुकुल मे आ गए और गुरुकुल की उन्नति के लिए कार्य आरम्भ कर दिया और इसका नाम गुरुकुल कागड़ी रखा गया।

महात्मा मुन्शी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) का तप रग लाया और वहा फूस की झौपडियो के स्थान पर शानदार भवनो का निमाण किया गया। सारे भारत देश मे गुरुकुल की चर्चा होने लगी जो लोग पहले अपने बच्चो को जंगल मे इस गुरुकुल मे भेजना नही चाहते थे उन्होने जब वहा जगल मे मंगल देखा तो अपने बच्चे भेजने आरम्भ कर दिए। आज भी जो भवन पानी की मार से बच गया वह बडा शानदार भवन है। जिसे देख कर पता चलता है कि इसके निर्माण मे स्वामी श्रद्धानन्द जी को कितना श्रम करना पडा होगा। जो आर्य भाई व बहनें गुरुकुल कागडी के उत्सव पर प्रति वर्ष जाते है उन्हे पता है कि यह भवन आज भी कितना मजबूत है।

जब मैंने इस भवन की मुरम्मत का कार्य गत कई वर्ष हुए आरम्भ किया था तो इसकी बडी खस्ता हालत थी परन्तु मैंने निश्चय किया था कि जो भी खर्च हो जाए उसकी मुझे चिन्ता नहीं परन्तु यह स्वामी श्रद्धानन्द जी की यादगार कायम रहनी चाहिए, यह ठीक है कि हम मुरम्मत के बाद भी आज तक इस भवन का कोई लाभ नही उठा सके परन्तु हमे यह तो सन्तोष है कि यह भवन अब सुरक्षित तो हो गया।

मेरी प्रारम्भ से ही यह अभिलाषा रही है कि स्वामी श्रद्धानन्द की इस धरोहर को हम नष्ट नही होने देगे इस भूमि व भवन की सुरक्षा के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने इसे गगा की धार से बचाने के लिए पत्थरो से ठोकरे बनवाई भूमि के कटाव को रोका और भवन की सुरक्षा की। मेरे से भी जितना हो सका मैने इसके लिए कार्य किया।

जिस स्वामी श्रद्धानन्द ने अपना तन, मन और धन और यहा तक अपने बच्चे भी गुरुकुल को अर्पण कर दिए थे और स्वय एक सन्यासी बन कर धर्म प्रचार मे जुटे हुए थे। उस महान् पुरुष को एक मतान्ध मुस्लमान अबदुल रसीद ने दिल्ली मे जब वह रुग्ण थे 23 दिसम्बर सन् 1926 को शहीद कर दिया था।

हम प्रतिवर्ष 23 दिसम्बर को स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान दिवस मनाते। इसलिए इस बार भी सभी आर्य समाजो मे 23 दिसम्बर 2001 रविवार को स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस मनाया जाए। इन्ही शब्दो के साथ मै लोक नायक उस महान् स्वामी श्रद्धानन्द जी को अपनी ओर से आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब की ओर से व गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय का कुलाधिपति होने के नाते गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय के समस्त अधिकारियो व कर्मचारियो की ओर से श्रद्धाजलि भेट करता हू और परमात्मा से प्रार्थना करता हू कि वह हमे शक्ति प्रदान करे कि हम स्वामी जी के स्वप्नो को साकार कर सके और उनके द्वारा स्थापित इस गुरुकुल को उन्नति की ओर ले जाते हुए इसकी रक्षा कर सके।

—हरबंस लाल शर्मा, सभा प्रधान

एक विचारणीय प्रश्न–

शिक्षा और विज्ञान के नाम पर पाखण्ड का प्रचार

☐ *ले० डा० भवानी लाल भारतीय 8/423 नन्दनवन, जोधपुर*

सभी विचारशील पुरुषों की धारणा है कि शिक्षा और विशेषत: वैज्ञानिक शिक्षा के द्वारा मनुष्य की चिन्तन शक्ति और उसके विवेक को बढावा मिलता है। विज्ञान का लक्ष्य ही सृष्टि मे व्याप्त सत्य का उद्घाटन करना है। स्वामी दयानन्द ने विज्ञान को 'पदार्थ विद्या' का नाम दिया था और शिक्षा मे पदार्थ विद्या का पाठ्यक्रम रखने की पुरजोर हिमायत की थी। यद्यपि स्वामी जी के युग मे भौतिक विज्ञान ने अधिक उन्नति नहीं की थी, तथापि स्वामी जी चाहते थे कि इस देश के नवयुवक नवीन विज्ञान तथा प्रौद्योगकी से परिचित हो तथा राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि मे उसका उपयोग करे। आज भारत सरकार के शिक्षा मत्री डा मुरली मनोहर जोशी, जो स्वयं भौतिक विज्ञान के विद्वान् हैं, विश्वविद्यालयों में फलित ज्योतिष, पौराणिक कर्मकाण्ड तथा वैदिक गणित के नाम से प्रसिद्ध कुछ कल्पित फार्मूलो को पढ़ाने की जबरदस्त वकालत कर रहे हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विभिन्न विश्वविद्यालयो को आर्थिक सहायता देने की बात कही है जो उपर्युक्त विषयों को अपने पाठ्यक्रम म रखता है। यह भी कहा गया है कि ये सभी विषय वैकल्पिक हैं और किसी छात्र को इन्हे पढना अनिवार्य नहीं है।

उधर काग्रेस तथा वामपन्थी विचारधारा के दल शिक्षा के क्षेत्र मे शामिल किए जाने वाले नये विषयों का विरोध कर रहे हैं तथा इसे शिक्षा का भगवाकरण (Saffronisation of Education) कह कर इसकी आलोचना कर रहे है। आश्चर्य तो यह है कि भगवा या 'काषाय' का शब्दार्थ भी न समझने वाली काग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी पानी पी-पी कर सरकार को इसलिए कोस रही है कि वह शिक्षा का भगवाकरण कर रही है। हम इस बात को प्रारम्भ मे ही स्पष्ट कर देना आवश्यक समझते है कि भगवा रग को बदनाम करने वाले इस राजनैतिक मुहावरे 'भगवाकरण' के प्रयोग पर हमें सख्त आपत्ति है। भारतीय सस्कृति मे भगवा रंग आदर का सूचक है। वह त्याग, वैराग्य, सेवा तथा मैत्री का प्रतीक है। आर्य जाति के साधु सन्त, त्यागी, तपस्वी, महात्मा एव सन्यासी भगवा रंग के वस्त्र पहनते हैं। शंकराचार्य से लेकर स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ पर्यन्त सन्यासियों के वस्त्र भगवा होते थे। समर्थ रामदास भी भगवा वस्त्रधारी थे। आज भी हमारा मस्तक भगवा वस्त्र धारी साधु-सन्यासी के सामने स्वत: ही झुक जाता है। अत: पवित्र और आदरणीय समझे जाने वाले भगवा रंग को राजनैतिक चोला पहनाना तथा उसे बदनाम करना भारतीय संस्कृति का अपमान है। क्यों हमारे साधु, सन्त, महन्त और मधुलेश्वर इस बात को लेकर क्षुद्र राजनीतिज्ञो को फटकार नहीं लगाते कि वे एक दूसरे पर कीचड बेशक डाले, किन्तु त्याग और वैराग्य के प्रतीक भगवा रग को बीच मे कदापि न लाये।

किन्तु हमारे इस चिन्तन के साथ कुछ और सवाल जुडे हैं। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने फलित ज्योतिष को मिथ्या पाखण्ड बताया है। उनकी दृष्टि मे जन्म पत्र 'शोक पत्र' है तथा शीघ्र शोध, मुहूर्त चिन्तामणि आदि फलित ज्योतिष के ग्रन्थ अनार्ष है फलत: त्याज्य हैं। गणित ज्योतिष की स्थिति उससे भिन्न है। गणित ज्योतिष पूर्णतया वैज्ञानिक है और उसके द्वारा निकाले निष्कर्ष पूर्णतया सत्य होते हैं। इस सन्दर्भ में स्वामी जी लिखते हैं कि 'दो वर्ष मे ज्योतिष शास्त्र सूर्य सिद्दान्तादि, जिसमें बीज गणित, अंक गणित, भूगोल, विगोल और भूगर्भ विद्या है इसको यथावत् सीखें परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि फल के विधायक (फलित ज्योतिष) ग्रन्थ हैं उनको झूठा समझ के न पढे और न पढ़ावें।' सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास। स्वामी जी ने शीघ्र बोध के 'अष्टवर्षा भवेत गौरी' आदि बाल विवाह विषयक श्लोको की कटु आलोचना की है। फलित ज्योतिष के द्वारा ससार मे अंधविश्वास, पाखण्ड, भाग्यवाद, अकर्मण्यता, पुरुषार्थहीनता को तो बढ़ावा मिलता ही है, झूठे ज्योतिषियो के पाखण्ड जाल मे फंस कर लोग अपने धन, स्वस्थ्य तथा आत्मिक बल को खो बैठते हैं। स्वामी सत्य प्रकाश जी एक बहुत तथ्यपूर्ण बात कहते थे। पचास-साठ वर्ष पूर्व छपने वाले हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के समाचार पत्रों में कहीं भी साप्ताहिक फल, राशियों के अनुसार व्यक्तियो के सम्बन्ध में भविष्य कथन आदि नहीं छपते थे किन्तु अब प्रत्येक दैनिक अथवा साप्ताहिक पत्र का पाठक सबसे पहले साप्ताहिक राशिफल को देखता है तथा उसके आधार पर झूठे-सच्चे सपने देखने लगता है। पत्रों से हम यह अपेक्षा रखते हैं कि वह पाठक मे बुद्धिवाद तथा विवेक को जाग्रत करेगा किन्तु उससे उल्टा हो रहा है? कादाम्बिनी जैसी पत्रिकाएं भूत-प्रेत तथा तंत्र-मंत्रों की मिथ्या कथाओं से भरे विशेषांक छाप कर पाठकों को पाखण्ड और अंधविश्वास के गर्त मे ढकेलती हैं।

हमारा निवेदन है कि गणित ज्योतिष (Astronomy) तो सदा से ही विश्व विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में रहा है। स्वामी जी ने तो इस विज्ञान के अन्तर्गत एरिथमेटिक, ज्यामिति, बीज गणित, यहां तक कि भूगर्भ विद्या तक का समावेश कर उसे व्यापक अर्थवत्ता प्रदान की है। फलित ज्योतिष के खण्डन में पं. वेदव्रत मीमांसक ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनसे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि भविष्य कथन, हस्तरेखा, सामूहिक विद्या, मुहूर्त विचार, दिशा शूल तथा दिनों का शुभाशुभ मानना, नक्षत्रो के शुभाशुभ फलों को मानना, नवग्रहो को शुभाशुभ समझना, राशियों का विचार, कुण्डली विचार आदि फलित ज्योतिष के अन्तर्गत आने वाले सभी विषय मिथ्या तथा कपोल-कल्पित हैं। यहां विस्तार में न जाकर यही कहना उचित है कि आज के वैज्ञानिक युग में फलित ज्योतिष जैसे पाखण्ड को बढ़ाने वाले विषयो को विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रम में समाविष्ट करना छात्रों को मध्य युग मे धकेलने तुल्य है। इस फलित विद्या को सीख कर हमारे नवयुवक भी सड़क छाप ज्योतिषी बन कर ससार को ठगते रहेगे। ज्योतिष के नाम पर पाखण्ड तथा पापाचार को बढ़ाने वाले कथित ज्योतिषी डा. नारायणदत्त जी माली का कच्चा चिट्ठा यदि लोग पढ़ेंगे तो जान सकेंगे कि आज के इस बुद्धिवाद के युग में भी भोले भाले लोगो को ज्योतिष के नाम पर मूर्ख बनाना कितना सरल है।

अब पौरोहित्य विद्या को लें। डा. जोशी तथा उनके समान धर्मा लोगों का कथन है कि इस पौरोहित्य विद्या को पढ़ कर नव युवकों को रोजगार मिलेगा। हमारा निवेदन है कि पौरोहित्य तथा कर्मकाण्ड के अन्तर्गत इस पाठ्यक्रम में क्या पढ़ाया जाएगा? क्या उन्हें आश्वलायन, पारस्कर, गोमिल आदि गृह सूत्रों की शिक्षा देकर वैदिक कर्मकाण्ड सिखाया जाएगा? क्या उन्हे दयानन्द सरस्वती प्रणीत संस्कार विधि के आधार पर सोलह संस्कारो का प्रशिक्षण दिया जाएगा? ऐसा नहीं है। उन्हें गणेश पूजन, घट स्थापन, नवग्रह पूजन, शिव, विष्णु आदि पंच देवो की पूजा, दुर्गासप्तशती के अनुसार हवन जिसमे गर्ज गर्ज क्षणं मूढ। मधुयावत् विबाम्हम्, श्लोक के विनियोग मे यज्ञ वेदी में शराब की आहुति का विधान है। मृतक श्राद्ध, शिव पिण्डी पर पंच गव्यों की धारा आदि पौराणिक कृत्य सिखाये जाएंगे। इस विधि को सीखे पुरोहित विवाहो को वैसा ही तमाशा बनायेगे जैसा हम हिन्दी फिल्मों में हिन्दू विवाह तथा हिन्दू पुरोहित की दुर्दशा देखते हैं।

यही पुरोहित मंदिरों में मूर्ति स्थापना करायेंगे, पाषाण प्रतिमाओ मे देवताओ का आहवान करेगे। पत्थरो मे प्राण प्रतिष्ठा का आडम्बर कर लोगो का धन हरण करेगे। यदि गरुड पुराण वांच कर यजमानो के धन का हरण करना ही पुरोहितो का इतिकर्त्तव्य माना जाए तब तो इस पौरोहित्य प्रशिक्षण से तौबा कर लेना चाहिए।

अब गणित विद्या की कथित वैदिक शाखा को देखें। कुछ वर्ष पहले पुरी के एक दिवंगत शंकराचार्य भारती कृष्ण तीर्थ रचित वैदिक मैथेमेटिक्स नामक अग्रेजी पुस्तक छपी। इसमे वैदिक गणित के कुछ सूत्रो को उद्धृत कर गणित के कुछ प्रसंगो की चर्चा की गई। जब मेरे एक परिचित ने ये वैदिक सूत्र मुझे बताये और कहा कि ये अथर्व वेद के मत्र हैं। मैंने इन सूत्रों को देखते ही कह दिया कि वे अथर्ववेद के मंत्र नहीं हैं। भारती कृष्णतीर्थ के कल्पित वाक्य हैं। रुडकी विश्व विद्यालय के किसी प्राध्यापक ने इस वैदिक गणित का प्रचार किया।

(शेष पृष्ठ 9 पर)

राष्ट्रीय सुरक्षा अनुशासन एवं शान्ति का मूल मंत्र–'धर्मदण्ड'

❑ आचार्य आर्य नरेश वैदिक गवेषक उद्‌गीथ साधना स्थली ग्राम-डोहर, पत्रा. फागू तहसील-राजगढ़ जिला–सिरमौर हि.प्र.-173101

किसी भी व्यक्ति, परिवार, स्थान, समाज एव राष्ट्र को शान्त एवं सुरक्षित रखने का मूल उपाय धर्मदण्ड है। धर्म से अभिप्राय ज्ञान पूर्वक कर्त्तव्य कर्म एवं दण्ड से अभिप्राय सुरक्षा के साधन हैं। एक अल्पमति व्यक्ति भी जब किसी कार्य को सिद्ध करना चाहता है तो वह उसके करने की विधि जानने का प्रयास करता है। जितना कार्य वह सम्पन्न कर चुका होता है, उसे वह सुरक्षित रखने के साधन अपनाता है। एक छोटे से छोटा बालक भी किसी इच्छित वस्तु की प्राप्ति हेतु पूर्ण ध्यान देता है और जब प्रयास करने से वह वस्तु उसे प्राप्त हो जाती है तब वह उस वस्तु को अपनी पूर्ण शक्ति से मुट्ठी मे बन्द कर लेता है। तब यदि कोई उससे अधिक बलवान् व्यक्ति भी उससे उस वस्तु को छीनने का प्रयास करता है तो वह उसे सहजतया छोडता नहीं और यदि फिर भी कोई उससे छीनने का प्रयास करे तो वह अवश्य ही अपने दांतों से काट देता है। यही जीवन को सुखी बनाने का मूल मन्त्र है कि पहले हम कर्त्तव्यकर्म की ओर पूर्ण ध्यान दे, पश्चात् कार्य सिद्ध हो जाने पर उसकी सुरक्षा हेतु पूर्ण बल लगा दे। इसी बात को परम पिता परमात्मा ने मानव धर्म वेद मे– 'यत्र ब्रह्मच क्षत्रञ्च सन्यञ्चौ चरत: सह, तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषम्' कहा है। अर्थात् वही स्थान पुण्य लोक (निर्भयता, शान्ति एव (सुखयुक्त) हो सकता है जहां के लोग कर्तव्यकर्म का पूर्ण ज्ञान रखते हो और उसकी सुरक्षा हेतु उग्र दण्ड की व्यवस्था करते हो।

सुख का यह मूल सूत्र प्रभु की सम्पूर्ण सृष्टि मे व्याप्त है। परम पिता परमात्मा प्रत्येक प्राणी को उत्पन्न करके जहां उसे जीवन यापन हेतु सामान्य ज्ञान दिया वहां उसे जीवन की सुरक्षा हेतु कठोर एवं तीक्ष्ण अग भी प्रदान किए। संसार मे दृष्टि गोचर एक छोटी से छोटी चींटी भी जब कभी हमारे अज्ञान के कारण दब जाती है तो वह भी स्वयं को बचाने के लिए हमे काटती है। प्राय: संसार के सभी प्राणियो को परमात्मा ने अपनी सुरक्षा के लिए इसी प्रकार के साधन प्रदान किए हैं। किसी को डंक तो किसी को नाखून, किसी को सींग तो किसी को दान्त, किसी को तीक्ष्ण पजे तो किसी को शूल के समान चुभने वाले बाल। कहने का अभिप्राय: यह है कि मनुष्य के बालक से लेकर ससार के प्रत्येक बड़े से बडे सिंह और हाथी तक को भी परमात्मा ने अपनी सुरक्षा हेतु दण्ड प्रदान किया है।

इसमें दो मत नहीं कि दण्ड के बिना संसार मे कोई औचित्य नहीं। यदि दण्ड को निकाल दे तो सारी व्यवस्था धरा धराशायी हो जाती है। लगभग प्रत्येक प्राणी को मिला मेरुदण्ड इसी बात का सूचक है। यदि जीना है तो दण्ड को सुरक्षित रखो अन्यथा जैसे मेरुदण्ड के टूटने से जीवन मृत्युवत् हो जाता है ठीक वैसे ही परिवार, समाज एव राष्ट्र से दण्ड विधान के छूट जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है। दण्ड के भय के बिना भय का ताण्डव नृत्य, उद्दण्डता, अनुशासन हीनता, दु:ख एवं अशान्ति आदि अपने पंजे जमा देते हैं क्योकि कर्त्तव्य न निभाने पर किसी को दण्ड का भय नहीं अथवा क्षमा मिल जाने की पूर्ण आशा है। अत: सम्पूर्ण व्यवस्था भग हो जाती है। व्यक्ति उच्छृखल होकर सब धर्म कर्म को ताक पर रख देता है। जंगल राज्य की स्थापना हो जाती है। यदि परिवार मे बच्चो को माता-पिता के दण्ड का भय नहीं होता तो वे बच्चे कर्तव्यहीन, असभ्य, पढाई-लिखाई मे रुचि न लेकर समाज मे अनुशासनहीनता को जन्म देते हैं। बाल्यकाल से ही ऐसे सस्कारहीन व्यक्ति आगे चल कर भी राष्ट्र के पतन का ही कारण बनते हैं। यही स्थिति दण्ड के बिना विद्यालियो एवं महाविद्यालयों में वर्तमान के अधिकाश छात्र-छात्राओ की है। मैने एक विद्यालय मे प्रवचन करते हुए बच्चो से पूछा–"आजकल के विद्यार्थियो द्वारा नकल करना, विद्यालयो से भागना, अध्यापको का अपमान करना, आज्ञा का उल्लघन करना आदि अनिष्ट कार्य क्या पहले अधिक होते थे अथवा अब अधिक होते हैं? उत्तर मिला कि अब अधिक होते हैं। तब मैंने पुन: प्रश्न किया कि विद्यार्थियो को अध्यापको के द्वारा दण्ड, मार-पिटाई और डाट पहले अधिक मिलते थे या अब? तो उत्तर मिला कि पहले। तब मैंने उन्हे कहा कि यदि आप पहले के समान अच्छे विद्यार्थी बनाना चाहते हैं तो आज से प्रसन्नतापूर्वक गुरुजनो से दण्ड लेना स्वीकार करो। क्योकि जब दण्ड दिया जाता था तब विद्यालयो का वातावरण अच्छा था। अब दण्ड के अभाव मे विद्यालयो का वातावरण अत्यन्त उच्छृंखलता युक्त होता जा रहा है। न तो विद्यार्थियो को अध्यापको का और न ही माता-पिता का भय है। दूसरी ओर अध्यापको को भी न तो अपने धर्म का ही भय है और न ही अपने अनुशासको का। अत: जहा आजकल के विद्यार्थी परिश्रम के बिना केवल नकल से पास होना चाहते हैं वहां अध्यापक भी पढाने का पुरुषार्थ न करके केवल ट्यूशन से ही पास करवाना चाहते हैं क्योकि किसी को किसी प्रकार के दण्ड का भय नहीं है।"

पाठकवृन्द! राष्ट्र की ध्वजा का गौरवमय आधार दण्ड ही है। ध्वजा मे से दण्ड निकाल देने पर ध्वजा का कोई मूल्य नहीं रहता। कठोरता के बिना जीवन का कोई मूल्य नही। विनम्रता भी तभी पूजी जाती है जब वह किसी बलवान व्यक्ति से प्रस्फुटित होती है। कुत्ता पैर चाट जाए तो कोई मूल्य नहीं रखता। मूल्य तो तब आंका जाता है जब किसी सिंह ने विनम्रता से किसी साधु का पैर चाट लिया हो। अत: वेद का ज्ञान भी अग्नि की उग्रता से प्रारम्भ होता है। ओ३म् 'अग्नि मीळे पुरोहितम्' मानव शरीर का मूल्य हड्डी के बिना कुछ भी नही। एक मास का लोथडा ससार मे कुछ नहीं कर सकता। सम्मान को दिलाने वाला यह सिर भगवान् ने बहुत कठोर बनाया है। सिर की खोपडी सैंकडों किलो भार उठा लेती है। इतने पर भी यदि कोई आक्रमण करने का प्रयास करता है तो शास्त्र रूपी दोनो भुजाए सहजता से ऊपर उठ जाती हैं। सिर की सुरक्षा हेतु ऐसा करना कभी किसी को सिखाया नही गया। अत: यदि राष्ट्र के गौरव, धर्म, स्वातन्त्रय, अनुशासन एव शील को बचा कर सिर को ऊपर उठाकर सम्मान से जीना चाहते हो तो दण्ड को उठाओ। सज्जनवृन्द! वस्तु की प्राप्ति करना सुख का साधन है जबकि हम उसे सुरक्षित भी रख सके। कुछ बलिदानी महर्षि दयानन्द के दीवाने वीरो से हमे स्वतन्त्रता तो मिली पर खेद का विषय है कि हम उसे उचित दण्ड-विधान के बिना सुरक्षित न रख सके। एक भोले से भोला किसान भी जब अन्न उगाने की बात सोचता है तो खेत मे बीज डालने से पूर्व उसकी बाड की पहले व्यवस्था करता है। इसीलिए परमात्मा ने मानवधर्म वेद को ऋग् रूपी ज्ञान से प्रारम्भ किया और उसके गर्भ मे श्रेष्ठ कर्म एव उपासना की सुरक्षा हेतु उसे अथर्व पर पूर्ण किया। अथर्व का अर्थ ही निश्चित सुरक्षा है। अत: यदि आज व्यक्तिगत जीवन को, परिवारो को, ग्राम को, प्रान्तो को अथवा समूचे राष्ट्र को भय-अशान्ति और हलचल से मुक्त करना है तो अथर्वरूपी दण्ड को लाना होगा।

अथर्ववेद मे अनेक मन्त्र क्षात्र धर्म की व्यवस्था को दर्शाते है वहा किसी व्यक्ति विशेष को शत्रु न कह कर उन लोगो को शत्रु कहा गया है जो धर्म के हत्यारे हैं। चाहे वह कोई भी हों।

(क्रमश)

आर्य समाजों के अधिकारियों की सेवा में निवेदन

❑ ले० श्री मुलखराज आर्य, मन्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

आमतौर पर देखा जा रहा है कि किसी की मृत्यु होने पर जब शोक दिवस होता है तो आर्य समाज शोक सभा के लिए स्थान दे देती है और आर्य समाजो मे तो आर्य समाजी नहीं होते जबकि उनको स्थान दिया जाता है। तो वहां उन की जो मर्जी होगी वही करेगे क्योकि वह आर्य समाजी तो होते नहीं है वहां पर गरुड पुराण की कथा भी होगी। जो वेद के विरुद्ध है क्योकि वहां पर उनको कोई रोक नहीं सकता क्योकि उन्होने स्थान पैसे दे कर लिया होता है। ये आर्य समाज के सिद्धान्त के विपरीत है। क्योकि समाचार पत्रो मे शोक के बारे मे समाचार छपा होता है कि फला आर्य समाज मे यह प्रोग्राम होता है इसके लिए आर्य समाज के अधिकारियो को देखना चाहिए। मैं कई बार देख चुका हूं कि आर्य समाज मे गरुड पुराण की कथा भी होती है और आर्य समाज की स्टेज पर जिस की मृत्यु हुई होती है उस पर हार भी चढाया होता है और जो भी आता है वहां पर जा कर माथा टेकता और कोई 2 रुपए और कोई 5 रुपए भी चढाता है। ये सारी बातें आर्य समाज के सिद्धान्त के विपरीत हैं। 28-4-98 को मंगलवार को हमारे किसी रिश्तेदार की रस्म पगड़ी यहा जालन्धर मे हो रही थी वह आर्य समाज विक्रमपुरा मे थी। मैं वहां पर गया था तो वहा पर उस आर्य समाज का जो पुरोहित था जो बोल रहा था यह बहुत ठीक है आर्य समाज का पुरोहित कार्यवाही कर रहा था परन्तु वेदी पर फोटो भी रखा हुआ था और उस पर हार भी चढाया हुआ था और जो भी आता था जाकर माथा टेकता था और पैसे चढ़ाता था। ये कार्यवाही गलत थी मैंने शोक सभा समाप्त होने के पश्चात् पुरोहित जी से पूछा कि आर्य समाज में शोक के लिए जो स्थान दिया जाता है क्या यह सब कार्यवाही आप ही करवाते हैं उसने उत्तर दिया कि कभी-कभी तो कोई दूसरा भी आकर करवाता है। मैंने उसको कहा कि दूसरा जो आकर यहा करवाता है वह गलत है। इसी प्रकार और भी कई आर्य समाजो मे शोक दिवस के लिए स्थान दिया जाता है । ये सारा गलत काम पैसे की खातिर किया जाता है हमे दुःख है कि आर्य समाजी भाई भी अब मृत्यु होने पर जब शोक दिवस मनाया जाता है तो वह भी स्टेज पर मरने वाले की फोटो रख कर उस पर हार चढ़ाने लग गये हैं। क्योकि उस समय शोक का समय होता है किसी से कुछ कहना भी कठिन हो जाता है। एक दिन हमारे एक पुराने समाजी की मृत्यु हो गई वह मेरे मित्र भी थे। जब मुझे पता लगा तो मैं भी शोक सभा में गया वह शोक सभा भी आर्य समाज मे ही थी मैंने भी उनको श्रद्धाजलि अर्पित की। वहा पर भी उनकी फोटो रखी हुई थी और उस पर हार भी चढ़ाया हुआ था परन्तु शोक सभा मे यदि कुछ कह देता तो सबने नाराज हो जाना था। समाप्ति के पश्चात् मैंने उस आर्य समाज के अधिकारी को कहा आपको ऐसी बात को रोकना चाहिए था और उनके घर वालों को समझाना चाहिए था। मुझे उन्होने कहा कि आपने ये ठीक किया है कि बीच मे कुछ नहीं कहा ये हमारी गलती थी अगली बार ध्यान रखा जाएगा। दुख तो इस बात का है कि जो हमारे विद्वान् होते हैं वह भी चुप रहते हैं। क्योंकि उनकी भी पैसा ही चाहिए जो बड़े-बड़े आर्य समाजी होते हैं। उनके घर मे भी सब कुछ यही होता है। क्योकि घर वालो का कुछ दोष नहीं होता। वहां दोष विद्वानों का होता है। यदि उस समय घर वालों को समझाया जाए कि यह आर्य समाजी सिद्धान्त के विपरीत है तो घर वाले मान जायेंगे बड़े-बड़े आर्य समाजियो का ये हाल है कि जब भी घर में मृत्यु होती है तो यह भी सब पौराणिकता द्वारा ही सारे कार्य करते हैं। जब सस्कार करने जाते हैं तो शमशन घाट में पहुंच कर शव को बाहर थड़े पर रखते हैं और वहां पर तीन चक्कर लगा कर घड़ा तोडते हैं और उस शव पर चक्कर लगा कर बहुओ को माथा टेकने के लिए कहा जाता है और वहां पर भी पैसे चढाये जाते हैं स्वामी जी के कथन अनुसार तो संस्कार के लिए हवन सामग्री तथा घी शरीर के बराबर लाना चाहिए परन्तु यह वहां कोई नहीं लाता अधिक से अधिक दो किलो घी और 2-3 किलो सामग्री ले आते हैं। ये भी प्रथा गलत हैं ये सब कुछ आर्य समाज के सिद्धान्त के विपरीत हैं। महर्षि दयानन्द जी ने अपनी मृत्यु के समय आर्यों को एक आदेश दिया था उस समय स्वामी जी ने कहा था कि आर्यो मेरे मरने के पश्चात् मेरी समाधि न बना देना ऐसा न हो कि लोग मेरी पूजा करना आरम्भ कर दें। जिस गड्ढे से मैं तुम्हें निकालने आया हूं मेरी समाधि बना कर उसी गड्ढे में न फंस जाना। ये स्वामी जी के शब्द थे परन्तु आज आर्य समाजी भी स्वामी जी के विपरीत चलने लग पडे हैं। मैं कई स्थानों पर देखता हूं कि आर्य समाज ने अपने घर स्वामी जी का चित्र रखा होता है और उस पर हार भी चढ़ाया होता है। मैं एक बार कपूरथला में गया तो किसी आर्य समाजी को मिलने के लिए उनके घर गया तो वहां देखा कि स्वामी दयानन्द जी का एक चित्र रखा हुआ था और उस पर हार चढ़ाया हुआ था। मैंने उन को कहा कि यह आपने हार स्वामी जी के चित्र पर क्यों चढ़ाया हुआ है। वह कहने लगे हम उतार देंगे मैंने कहा कि आप अभी इसको उतार दो वह हार मैंने उसी समय उतरवा दिया क्योंकि आज हमारे बहुत से आर्य समाजी भाईयों को अपने सिद्धान्त का भी पता नहीं होता इसलिए आर्य समाज के विद्वानों से विशेष रूप से यह प्रार्थना करूंगा कि आप जब भी किसी घर में जाते हैं और किसी प्रकार का भी संस्कार करते हैं तो घर वालों को तो कुछ ज्ञात नहीं होता आप वेद के आधार पर सारा कार्य करें जो बात भी हो वह वेदो के विपरीत न हो। आज कई विद्वानों को मैं देखता हूं कि जो बातें वेद के विपरीत करते हैं वह भी कह जाते हैं जैसा कि एक भजन मे कह देते हैं-

नारायण तुम आप हो पाप के मोचनहार
क्षमा करो अपराध सब कर दो भव से पार

मैं दो विद्वानों को ये शब्द कहने पर टोक चुका हूं परन्तु वह शब्द फिर भी कह देते हैं एक बार उन्होने मेरी मौजूदगी में यही शब्द दोबारा फिर कहे। मैंने उनसे पूछा कि पण्डित जी आप ये बताओ कि परमात्मा हमारे किए हुए अपराध, क्षमा कर देता है। वह कहने लगे परमात्मा क्षमा नहीं करेगा तो मैंने उनको कहा फिर आप ये शब्द क्यों कहते हैं। क्योकि वह शब्द उनके दिमाग में घुसे हुए हैं। इसलिए बार-बार कह देते हैं। इसलिए मैं आर्य समाज के अधिकारियो से प्रार्थना करूंगा कि आर्य समाज की पवित्रता का ध्यान रखा जाए और विद्वानों से भी मेरी प्रार्थना है कि आप आर्य समाजियों के घरों मे जब जाते हैं तो वहां पर उन को आप समझाया करे क्योंकि उनको कुछ भी पता नहीं होता आशा है कि इन बातो पर आर्य समाज के अधिकारी भी और विद्वान् भी आर्य समाज के सिद्धान्त के अनुसार ही सब कुछ करायेंगे।

आर्य समाज नया नंगल में ऋषि निर्वाण दिवस

गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी आर्य समाज नया नंगल में महर्षि दयानन्द का 118वां निर्वाणोत्सव (दीपावली वाले दिवस) 14 नवम्बर-2001 (बुधवार) को बड़ी धूमधाम से मनाया गया है इस शुभ अवसर पर आमन्त्रित विद्वानों में मुख्य प्रवक्ता आचार्य भद्रसेन दर्शनाचार्य, होशियारपुर से थे। हवन यज्ञ आर्य समाज नया नंगल के योग्य पुरोहित पं. सुशील कुमार आर्य जी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम में प्रातः 8 से 9 बजे तक हवन यज्ञ और पूर्णाहुति और उसके पश्चात् 9 से 11 बजे तक भजनो और विद्वानों के प्रवचनों का कार्यक्रम रहा। यह कार्यक्रम दयानन्द पब्लिक सीनियर सैकेण्डरी स्कूल एवं आर्य समाज नंगल टाऊनशिप के सहयोग से सम्मलित रूप से मनाया गया।

अन्त में बाहर से आए हुए विद्वानों को आर्य समाज की ओर से सम्मानित किया गया तथा शांति पाठ के पश्चात् जलपान का प्रबन्ध भी किया गया था। —गुमान चन्द तालूजा, मन्त्री

गाण्डीव भी था और पिनाक भी

❑ ले० श्री स्वामी वेदमुनि परिव्राजक अध्यक्ष वैदिक संस्थान, नजीबाबाद (उ.प्र.)

कुछ दिनों से कुछ लोग इस प्रकार के भ्रामक वक्तव्य प्रसारित कर रहे हैं कि जिनसे भारतीय जन-मानस अपने प्राचीन इतिहास के विषय में भ्रान्ति मे जा पड़े। यह लोग कभी कहते हैं, महाभारत नहीं हुआ। कभी कहते हैं, महाभारत हुआ तो है मगर रामायण से पहले। कभी कहते हैं लका मध्य प्रदेश मे थी तो कभी कहते हैं रामायण को बाल्मीकि ने बौद्ध साहित्य के "दशरथ-जातक" के आधार पर ईसा से लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व लिखा।

इनके इन भ्रान्तिपूर्ण वक्तव्यों के युक्तियुक्त और सप्रमाण उत्तर हम विविध समाचार-पत्रों में दे चुके है। उन लेखो मे हम यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि इन लोगो के उक्त वक्तव्य न केवल निराधार ही हैं अपितु यह लोग भारतीय इतिहास से सर्वथा अनभिज्ञ भी है यदि अनभिज्ञ नहीं है, और जान-बूझ कर ऐसा कर रहे हैं तो विदेशियो के शीतयुद्ध की राजनीति में चंगुल मे फसे हैं।

समाचार-पत्रो मे श्री एच डी. साकलिया का एक और वक्तव्य पढने को मिला। पहले आपने कहा था, लंका मध्य प्रदेश में थी। अब आप उसे ढूढते फिर रहे है। अपनी इस यात्रा मे मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल नगर मे एक सभा को सम्बोधित करते हुए आप यह कह बैठे "भारत अतीत में शस्त्र-निर्माण के क्षेत्र मे पिछड़ा हुआ था। रामायण और महाभारत के युद्धो मे रथो, चक्रो, भाति-भांति के धनुष बाणो तथा तलवारों का जो वर्णन किया गया है, वह मात्र कवि-कल्पना है।" आपने यह भी कहा "रामायण और महाभारत महाकाव्यो में जैसे हथियारो का वर्णन मिलता है, वैसे हथियार मानव-सभ्यता के संदर्भ से हट कर विकसित नहीं किए जा सकते।" आपने कहा कि "उक्त महाकाव्यो मे वर्णित युद्धपयोगी शस्त्रों की कल्पना अति विकसित सभ्यता की पूर्व कल्पना है। पश्चिमी एशिया और अफ्रीका सभ्यता की तुलना में भारत शस्त्र-निर्माण की दशा में बहुत पिछड़ा हुआ रहा है। यह कहना किम्वदन्ती है कि अर्जुन ने गाण्डीव का प्रयोग किया, राम ने शिव-धनुष तोड़ा और रावण रथ में बिठाकर सीता को ले भागा था।" आपने कहा कि "उक्त हथियारों का विकास बहुत बाद मे किया गया है ?"

गाण्डीव भी था और पिनाक भी–किन्तु जब अभागे भारतीय पश्चिम की ऐनक लगाकर ही भारतीय इतिहास को पढ़ते हैं, तब उन्हें भारत में कुछ भी क्यों दिखाई देने लगा ? यह नितान्त लज्जा की बात है कि आदि सृष्टि से ही समस्त संसार को सर्व-विद्या सिखाने वाले देश के वासी अपने गौरव पूर्ण इतिहास के विरुद्ध इस प्रकार की मिथ्या धारणायें व्यक्त करने और फैलाने में लगे हैं। विश्व का यह सबसे बड़ा आश्चर्य कहा जाना चाहिए कि लोग अपने पिता आदि पूर्व पुरुषाओ के विषय में विदेशियो को प्रमाण माने-अपने घर के इतिवृत को नहीं। अपने पिता का नाम आदि परिचय देने के लिए व्यक्ति स्वयं प्रमाण होता है किन्तु भारत को मानव-सभ्यता के इतिहास में पिछड़ा बताने वाले भारतीय अपने आपको सभ्य और विकसित समझ रहे हैं और यह उनके विकसित मस्तिष्क की पहचान है कि भारतीयता के लिए भारतीय इतिहास को नहीं अपितु विदेशियो के पक्षपात पूर्ण अनर्गल और असंगत लेखों को प्रमाण मान रहे हैं।

सिद्धान्त-विवेचन की दृष्टि से हम यह कहना चाहते हैं कि श्री सांकलिया जी के नाम के साथ जो "सांकलिया" शब्द लगा है, इसका क्या महत्व और क्या इतिहास है ? हमारा अभिप्राय यह है कि श्री सांकलिया जी तो सभ्यता के अति-विकसित युग में रह रहे हैं। इतिहास पर शोध कर रहे हैं कि लंका को ढूंढते फिर रहे हैं, कभी उन्होंने इस सांकलिया शब्द के विषय मे भी सोचा है ? उर्दू में जिसे जंजीर कहते हैं, उसे हिन्दी में "साकल" कहते हैं, "सांकलिया" पशुओं में तो कुत्ता, गाय, भैंस हाथी आदि को कहा जा सकता है, जो साकल मे बांधे जाते हैं और मनुष्यों में उन्हे कहा जा सकता है, जो "सांकल" बनाने का कार्य करे अथवा जिनके वश मे "सांकल" बनाने का कार्य होता रहा हो। सभ्यता के विकास की बाते करने वाले और भारत के रामायण-महाभारत कालो को सभ्यता के विकास में पिछड़ा हुआ बताने वाले विद्वान् को यह तो सूझना चाहिए कि यह शब्द विकसित सभ्यता का नहीं अपितु नितान्त पिछडेपन का परिचायक है। रामायण-महाभारत के लेखको को तो श्री साकलिया जी के ही शब्दों मे "उक्त महाकाव्यों मे वर्णित युद्धोपयोगी शस्त्रों की कल्पना अति विकसित सभ्यता की पूर्व कल्पना करने की योग्यता और बुद्धि तभी प्राप्त हो गई थी, जब सभ्यता सांकलिया जी के विचार से विकसित भी नहीं हो पाई थी। परन्तु सांकलिया जी को अब तक भी यह बुद्धि प्राप्त न हो सकी जो इस विकसित सभ्यता के युग मे रह रहे हैं-कि जिससे वह यह जान लेवे कि साकलिया शब्द सभ्यता का नहीं अपितु अत्यन्त असभ्य युग में रहने तथा अयोग्यता का परिचायक है।

इस विषय मे हमारा निवेदन यह है कि रामायण और महाभारत विश्व की महानतम् सभ्यता के युगो के परिचायक इतिहास हैं। उस समय के लोग आज से अधिक उच्च सभ्यता के वातावरण मे पल और पनप रहे थे। उस समय की सभ्यता मानवीय इतिहास की महानतम सभ्यता थी और उस समय का बुद्धि कौशल भी उसी के अनुरूप था। सत्य तो यह है कि वर्तमान सभ्यता और बुद्धि-कौशल मानव-विनाश की ओर उन्मुख है और मानव-विनाश ही इसका आधार है। किन्तु उस समय की भारतीय सभ्यता और बुद्धि कौशल न केवल मनुष्य मात्र अपितु प्राणी मात्र के हित-चिन्तन मे सलग्न थे। इस बर्बर युग की उस दिव्य युग से क्या तुलना ?

इससे भी बढ़ कर यह आश्चर्य है कि एक ओर तो सांकलिया जी रामायण और महाभारत को कल्पनाओ के ग्रन्थ बताकर उनकी ऐतिहासिकता से ही नकार कर रहे हैं तथा दूसरी और लका की खोज करते फिर रहे हैं। लंका का कहीं वर्णन है तो रामायण में, किसी अन्य ग्रन्थ में नहीं। किसी अन्य ग्रन्थ में है भी तो रामायण के आधार पर ही। अन्य ग्रन्थ जिनमे लंका का वर्णन है, रामायण से पश्चात् के हैं। रामायण इन सब से प्राचीन 1, 81, 49, 000 वर्ष पुराना ग्रन्थ है। सांकलिया जी की दृष्टि मे जब रामायण केवल काव्य है और उसके वर्णन पूर्व कल्पना हैं अर्थात् वह ऐतिहासिक ग्रन्थ है नहीं तो रामायण की लका भी काल्पनिक हुई। उसकी खोज के लिए किसी बुद्धिमान इतिहासज्ञ के द्वारा समय विनष्ट करते फिरना सर्वथा अनुपयुक्त और अनुचित है। भूगोल मे अवस्थित लंका को आप वह लंका नहीं मानते और रामायण को इतिहास नहीं मानते तो फिर आपके इस प्रकार मारे-मारे फिरने का क्या औचित्य ? दूसरी ओर आपके द्वारा लंका की खोज यह सिद्ध करती है कि आप-सम्पूर्ण रूप से न सही कम से कम लका के विषय मे अवश्य रामायण को प्रमाण मानते हैं। इस स्थिति मे आपको लंका को मध्य प्रदेश मे नहीं अपितु समुद्र मे ढूढना चाहिए कारण कि रामायण के अनुसार राम के लका को जाते समय सह्य, मलय और महेन्द्र पर्वतो पर होते हुए गये हैं और यह पर्वत मध्य-प्रदेश से दक्षिण मे कुमारी अन्तरीप तक फैले हुए नीलगिरि आदि हैं। जब रामायण लका जाने का मार्ग इस प्रकार समुद्र तट की ओर भारत के दक्षिणी किनारे तक बताये, तब मध्य प्रदेश मे उसकी खोज निरर्थक है। इसके अतिरिक्त रामायण मे लका की अविस्थति का वर्णन है। यह सीता की खोज करने वाले दल के सदस्य अगद को जटायु के भ्राता सम्पाती ने इस प्रकार बताया है-**इतो द्वीपै समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने।**

तस्मिल्लंकापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा॥

अर्थात् समुद्रस्थ इस द्वीप मे, जो यहां से पूरे सौ योजन दूर है, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित सुन्दर लकापुरी है। इस वर्णन के होते हुए लंका को भारत के मध्य मे ढूंढा जाए, इसकी क्या तुक है ? संक्षेप मे हमारा अभिप्राय यह है कि लका की खोज करना रामायण को इतिहास सिद्ध करता है और रामायण को इतिहास मानने पर लंका को समुद्र मे खोजना चाहिए तथा रामायण को इतिहास न मानने वाले को लका की खोज नही करनी चाहिए।

(शेष पृष्ठ 8 पर)

(पृष्ठ 7 का शेष)

साकलिया जी ने यह भी कहा कि रामायण और महाभारत महाकाव्यो मे जैसे-हथियारों का वर्णन मिलता है, वैसे हथियार मानव-सभ्यता के विकास के सदर्भ से हट कर विकसित नहीं किये जा सकते। जैसा कि पीछे भी हम लिख आये हैं, हमारा यह कहना है कि मानव-विकास को आधार मान कर शास्त्रास्त्र के निर्माण की होड मे नित नये-नये अस्त्रो का अविष्कार मानव-सभ्यता का विकास कदापि नही कहला सकता। इसे तो बर्बर, जगली, राक्षस, दानव और पिशाच-सभ्यता का विकास तथा मानवता व मानव-सभ्यता का ह्रास कहना ही उपयुक्त होगा। मानव सभ्यता का विकास तो आत्म विज्ञान विवेचन द्वारा मानव को मानव जीवन के वास्तविक तथा प... और चरम उद्देश्य मोक्ष की ओर ले जाना ही है।

फिर भी हम इतनी चर्चा अवश्यमेव कर देना चाहते हैं कि रामायण और महाभारत काल के भयकर आयुधो के समान आयुध वर्तमान तथा कथित मानव-सभ्यता के विकास का विज्ञान अभी तक निर्माण ही नहीं कर सका। इस विषय मे जानकारी के लिए महर्षि भारद्वाज कृत 'यन्त्रसर्वस्व' नाम ग्रन्थ उल्लेखनीय है। बडौदा के 'राजकीय संस्कृत पुस्तक भवन' मे इस ग्रन्थ का 'वैमानिक प्रकरण' उपलब्ध है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन, आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-2 से इस 'वैमानिक प्रकरण' की हिन्दी टीका श्री स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक कृत बृहद् विमान-शास्त्र के नाम से प्रकाशित हुई है। इसमे 'रक्षा-विधान' के अन्तर्गत भी भारतीय अस्त्र-विद्या का वर्णन है। न केवल अस्त्रो का अपितु अस्त्र-विद्या का।

यह भी सत्य है कि यह ग्रन्थ भी रामायण काल का ही है। राम वन मे जाते समय प्रयागराज मे इस ग्रन्थ के प्रणेता महर्षि भारद्वाज के ही आश्रम मे ठहरे थे। इस प्रकार यह ग्रन्थ भी रामायण-कालीन अर्थात् भारत की लगभग दो करोड़ वर्ष पुरानी सभ्यता और बुद्धि कौशल के विकसित स्वरूप का दिग्दर्शन करा कर वर्तमान विकसित सभ्यताभिमानियो की एतद्विषयक भ्रान्ति को दूर कर देता है।

इस ग्रन्थ में एक 'गुहागर्भादर्शयन्त्र' का वर्णन है। इस यन्त्र के विषय मे कहा गया है कि विमान के तोड़ने के अर्थ शत्रुओं ने भूमि के अन्दर महागौल सब ओर मुख वाला अग्नि-गर्भ आदि अद्भुत (विमान-भेदक) जहा गुप्त रूप से स्थापित किया है, उस के स्वरूप की वास्तविकता की ठीक जानकारी के लिए शास्त्र-क्रम में 'गुहागर्भादर्श यन्त्र' स्थापित करे।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि इस ग्रन्थ के निर्माण के समय अर्थात्-रामायण काल में ऐसे भयकर गोले थे, कि जिनमे सब ओर छेद रखे गये थे तथा जिनके अन्दर आग्नेय पदार्थ अर्थात् विस्फोटक सामग्री भरी रहती थी, जो भूमि में दबा कर शत्रु को आकाश यानो को मार कर गिरा देने के लिए रखे जाते थे और जो उर्पयुक्त समय पर स्वयं ही फट जाते थे। इनकी भूगर्भ-अवस्थिति का ठीक पता लगाने के लिए, जिससे शत्रु की चोट से बचा जा सके 'गुहागर्भादर्श' नामक यन्त्र को स्व-विमान में लगाने का विधान किया गया है। इनके आगे इस यन्त्र की निर्माण विधि और उसमे प्रयुक्त होने वाले पदार्थों का वर्णन है।

इसी ग्रन्थ में एक 'अपस्मार धूम्र प्रसारण' यन्त्र का वर्णन है। जब स्व-विमानो को चारों ओर से शत्रु के विमान घेर लें, तब इस यन्त्र के द्वारा शत्रु-विमानो पर धूम्र प्रसारण करें। अर्थात् धुआं फैंके। यह धुआं शत्रु-विमान चालको तथा उन विमानो मे से आयुद्ध प्रहार करने वाले सभी व्यक्तियों को अचेत करने वाला है। इसके विषैले प्रभाव से शत्रु-विमान चालको आदि के अचेत होने के परिणाम स्वरूप भूमि पर आ गिरेगा। इस यन्त्र के भी निर्माण की पूरी विधि इस ग्रन्थ में दी है। यहां तक कि यन्त्र निर्माण की प्रक्रिया में भट्टी के अन्दर जलने वाली अग्नि के तापमान के अंशों की (डिग्रियों) का भी विधान किया गया है।

यह सब विज्ञान इस ग्रन्थ के निर्माण काल मे प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इसके सिद्धान्त आदि-सृष्टि मे उपस्थित हैं। इन सिद्धान्तो का वर्णन भी-इसी "विमान-शास्त्र" के प्रारम्भ में मगलाचरण की बोधानन्द कृत व्याख्या में इस प्रकार है-

निर्मथ्य तद्वेदाम्बुधिं भारद्वाजो महामुनिः।
नवनीतं समद्धृत्य यन्त्रसर्वस्व रूपकम्॥

अर्थात् वेद रूपी समुद्र को मथ कर भारद्वाज महामुनि ने उसमे से 'यन्त्र-सर्वस्व' रूप में नवनीत को वास्तविक रूपेण उद्धृत किया है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि यन्त्र आदि समस्त विद्याओं का मूल वेद में है। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने घोषणा की थी कि 'वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है उन्होंने 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' नामक अपने ग्रन्थ मे वेद मन्त्रों की व्याख्या करके इस विषय का रहस्योदघाटन भी कर दिया है। उनके पश्चात् श्री अरविन्द घोष ने भी लिखा है कि 'वेदो में विज्ञान बताकर महर्षि दयानन्द ने अतिश्योक्ति नहीं की अपितु कुछ न्योलोक्ति से ही काम लिया है। क्योंकि वेद-वर्णित विज्ञानो के अनेक रहस्य तो अभी तक छिपे हुए ही हैं।'

वेद रामायण से बहुत पहले के-आदि सृष्टि के हैं। इस प्रकार भारतीय सभ्यता और बुद्धि-कौशल मानव सभ्यता के इतिहास मे सर्व-प्रथम और सर्वोच्च है। बुद्धिमानी इसी मे है कि इसकी वास्तविक जानकारी प्राप्त की जाए और तथ्यो को स्वीकार किया जाए, न कि विदेशियो की भ्रान्त-स्थापनाओ के चक्र मे फंस कर अपने अत्यन्त गौरवपूर्ण इतिहास को झुठलाने का प्रयत्न किया जाए और स्वयं को पतित समझा व सिद्ध किया जाए।

आर्य समाज गोनियाना मण्डी में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज गोनियाना मण्डी (जि भठिण्डा) के आर्य नेता लाला चिरजी लाल जी प्रधान आर्य समाज गोनियाना मण्डी की सतत प्रेरणा तथा मार्ग दर्शन मे यज्ञ हवन तथा पारिवारिक सत्सगो का कार्यक्रम जारी है। नवम्बर मास में चार साप्ताहिक सत्संगो के साथ-साथ छः पारिवारिक सत्संग भी आयोजित किए गए।

1 नवम्बर 2001 को पूर्णमाशी का यज्ञ हवन श्री आसीम आहूजा के घर पर सम्पन्न हुआ। असीम आहूजा ने अपनी पत्नी सहित यज्ञमान के रूप में पवित्र वेद मत्रो के उच्चारण के मध्य शुद्ध घी से तथा सामग्री से आहुतियां डालीं। यज्ञ हवन पं. राजेन्द्र जी पुरोहित आर्य समाज सिरकी बाजार भठिण्डा ने सम्पन्न कराया। बाद मे श्री कृष्ण लाल जटाना प्रचार मन्त्री जिला आर्य सभा भठिण्डा ने बड़ा ही मनोहर भजन सुनाया। अंत में लाला चिरंजी लाल जी प्रधान आर्य समाज गोनियाना मण्डी ने यज्ञमान दम्पति को आशीर्वाद प्रदान किया। आहूजा परिवार ने सभी उपस्थित बन्धुओ को मिठाई और चाय परोस कर उनका सत्कार किया?

14 नवम्बर 2001 को दीपावली तथा ऋषि दयानन्द निर्वाण पर्व आर्य हाई स्कूल में धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर तरसेम कुमार आर्य महामंत्री जिला आर्य सभा भठिण्डा ने ऋषि दयानन्द के जीवन पर प्रकाश डालते हुए सभी आर्यजनो को स्वामी दयानन्द द्वारा दर्शाए मार्ग पर चलने का अनुरोध किया। 15 नवम्बर 2001 को अमावस का यज्ञ फिर आहूजा मिल मे आयोजित किया गया। श्री कृष्ण लाल जटाना प्रचार मंत्री जिला आर्य सभा भठिण्डा ने भजनो द्वारा ऋषि दयानन्द को श्रद्धांजलि भेट की। 24 नवम्बर 2001 को यज्ञ हवन तथा पारिवारिक सत्सग लाला चिरंजी लाल जी प्रधान आर्य समाज गोनियाना मण्डी के घर पर आयोजित किया। उनके सभी सगे सम्बन्धी और पडोसी उपस्थित थे। श्री राजेन्द्र कुमार जिंदल कोषाध्यक्ष जिला आर्य सभा भठिण्डा विशेष रूप से भठिण्डा से पधारे। उनके साथ प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु जी अबोहर से आए हुए थे। यज्ञ हवन के पश्चात् जिज्ञासु जी ने अपने प्रवचन मे ट्रक यूनियन के अधिकारियो को अपने स्थापना दिवस के उपलक्ष्य मे यज्ञ हवन का आयोजन करने के लिए बधाई एवं धन्यवाद दिया। आप ने बताया कि परिवहन के कारण जो वायु-प्रदूषण होता है उस प्रदूषण का निवारण यज्ञ हवन द्वारा ही हो पाना सम्भव है। आप ने यह भी बताया कि पजाबी विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित 'पंजाब का इतिहास' मे लिखा गया है कि जितना बडा यज्ञ हवन महाराजा रणजीत सिंह ने कराया था। उतना बड़ा यह हवन पिछली दो-तीन शताब्दियों मे और किसी ने नहीं कराया। यज्ञ हवन के पश्चात् लड्डुओं का प्रसाद बाटा गया और सभी को मिठाई के साथ चाय भी पिलाई गई।

30 नवम्बर 2001 को पूर्णमाशी का हवन सेठ गोबिन्द राम भगवान दास के निवास पर किया गया।

-संजीव कुमार जिंदल उपमंत्री

(पृष्ठ 4 का शेष)

इसकी अनेक कार्यशालाएं ओयोजित की गई तथा इस पुस्तक का प्रचार किया गया। हमारा निवेदन है कि स्वामी दयानन्द ने गणित विद्या का मूल वेदों में दर्शाया है तथा इसी के आधार पर परवर्ती गणितज्ञों ने अपने ग्रन्थों की रचना की है। गणित जैसी विद्या को किसी दायरे में बांधना इस विद्या का अपमान करना है। जोड, बाकी, गुणा, भाग, ज्यमिति, त्रैराशिक आदि के नियम सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक हैं।

अब वास्तु शास्त्र के नाम का एक नया पाखण्ड चला है और पढे लिखे लोग भी इस धूर्त विद्या के शिकार हो रहे हैं। वंचक वृति के लोगो ने वास्तु शास्त्र के नाम पर जो ठग विद्या चलाई है इसमें बड़े-बडे धनीमानी, कारखानों के मालिक, उच्च पदस्थ सरकारी अफसर तथा साधारण मेधावित्त के लोग ठगे जा रहे हैं। यदि कोई वास्तविक वास्तु शास्त्र सचमुच कुछ है तो वह सिविल इजनियरिंग ही है जिसमे भवन निर्माण तथा तत सम्बद्ध विषयो का विवेचन रहता है) घरो, कारखानों तथा फैक्टरियो के निर्माण मे इन्हीं वास्तु विदो (इंजीनियरों) का परामर्श मान्य होना चाहिए। किन्तु धनी लोगो को ठगने वाले कथित वास्तु शास्त्री बने बनाये भवनों और कर्मशालायो को तोड़ने के लिए कहते हैं, लाखों का नुक्सान कराते हैं तथा वास्तु शान्ति के नाम पर धनिको के धन का अपहरण करते हैं। मेरे सामने राजस्थान पत्रिका के एक रविवारीय अक मे प्रकाशित डा भोजराज द्विवेदी का 'रेमेडियल वास्तु शास्त्र' शीर्षक एक लेख है। अंग्रेजी शब्द 'रेमेडियल' और संस्कृत शब्द 'वास्तु शास्त्र' से बना यह कार्य सकरी शीर्षक लेख आद्यन्त आंख के अंधो और गाठ के पूरो को ठगने का महामत्र है। इस वंचक शास्त्र के कुछ सूत्रों को देखे। 1 शुद्ध चांदी का बना अभिमंत्रित श्री पंथ स्थापित करने से आपके घर या कारखाने में लक्ष्मी (धन) की वर्षा होगी। 2 मारुति यंत्र दुर्घटनाओ से बचाता है। 3 सूर्य यंत्र-राजकोष से बचाता है। 4 धुड़नाल यंत्र-मकान को बुरी नजर से बचाता है । 5 कृत्यानाशक यंत्र-तांत्रिक टोने टोटके तथा अभिचार से बचाता है। 6. वास्तु मंत्र लकारी तोरण-बुरी आत्माओं तथा अशुभ योनियो से बचाता है।

आश्चर्य है कि आज के वैज्ञानिक युग में पढ़े लिखे लोग ऐसे मूढ़ विश्वासों और अंध धारणाओं को मानते हैं। ऐसे ही लोग जलाभिषेक तथा शिव मंत्र के जाप से मंदिर का निर्माण करने की बात करते हैं।

निष्कर्षत: हम कहना चाहते हैं कि हमारा आचार्य दयानन्द विशुद्ध तर्काधारित बुद्धिवाद का प्रचारक था। वह मनुष्यो मे वैज्ञानिक सोच और विवेक पैदा करना चाहता था। जिसे आप वैज्ञानिक चिन्तन या सोच कहते हैं स्वामी जी उसे सृष्टि क्रम से अविरोधी तथ्य कहते हैं। सृष्टि क्रम के विरुद्ध मिथ्या विश्वासों और चमत्कारो के वे घोर विरोधी थे। आर्य समाज और आर.एस एस तथा विश्व हिन्दू परिषद् की अवधारणाओ मे मौलिक विरोध हैं। हम मूर्तियो और मंदिरो मे किंचित मात्र श्रद्धा नहीं रखते। पाषाण पूजकों तथा ध्वज पूजकों (स्वामी जी इन्हे लक्कड़ पूजक कहते थे) से हमारा प्रत्यक्ष विरोध है। किसी ईट-पत्थर के मंदिर का निर्माण हमारे जातीय गौरव की वृद्धि नहीं करता। किसी विध्वस्त इमारत या पुराने खण्डहरों को तोड़ने मे हमें कोई गौरवानुभूति नहीं होती। उसी प्रकार करोड़ो व्यय कर अभ्रस्पर्शी मंदिरों का निर्माण भी आडम्बर और पाखण्ड को पराश्रय देने की क्रिया है। हम मूर्तियो की स्थापना करने तथा उनमे पाषाण पूजन को उत्तेजना देना अनार्योचित्त मानते है। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश मे जहां मूर्ति पूजा का शास्त्रीय प्रमाणो से खण्डन किया है वहां उसे देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राष्ट्रीय उन्नति का घातक सिद्ध किया है। इस प्रसंग में उन्होने गिना कर मूर्ति पूजा के सोलह दोष वर्णित किए हैं। स्वामी जी की दृष्टि मे मूर्ति पूजा दुराचार है-द्रष्टव्य, उपदेश मजरी का अन्तिम व्याख्यान)। फलित ज्योतिष, पौराणिक पौरोहित्यवाद तथा मिथ्या वास्तुशास्त्र इसी मूर्तिपूजा की अवैध सन्ताने हैं।

(पृष्ठ 1 का शेष)

(ख) देश में लगभग 3500 गोशालाओं में से अधिकाश की स्थिति आर्थिक दृष्टि से दयनीय हो गई है। वर्तमान में सरकार इस ओर सजग हुई है फिर भी गौ के महत्व के बारे में व्याप्त गहन अज्ञान को दूर करने का कोई प्रयास नही हो पाया है जिस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। गहन अज्ञान के कारण सामाजिक मनोवृत्ति आज गो सेवा से विमुख होती जा रही है, जिसे गो सेवान्मुख करना जरूरी हो गया है।

(ग) गोशालाओं की भूमि एवं मकानों पर बहुत सारे स्थानो पर दबग लोगों ने अवैध कब्जे कर रखे हैं या करने की साजिश कर रहे है।

यह अधिवेशन सरकार से मांग करता है कि उपर्युक्त परिस्थितियो का विवेचन करते हुए एक समिति का गठन करे जो सही आकलन करते हुए निम्न उपाय करने हेतु सरकार को अपने सुझाव प्रस्तुत करे-

(1) गोवश के चरने हेतु गोचर भूमि को पुन: उपलब्ध कराया जाए। (2) गोशालाओ को हदबन्दी कानून से मुक्त रखा जाए। (3) राज्य सरकारो को केन्द्रीय निर्देश जारी किए जाएं कि वे गोशालायों या गाय से सम्बन्धित सम्पत्तियो करो अनाधिकृत व्यक्तियों के चुंगल से मुक्त कराने सम्बन्धित शिकायतो को प्राथमिकता देकर निपटाएं। (4) गोशालाओं को आयकर से मुक्त रखा जाए।

प्रस्ताव-4

केन्द्रीय सरकार विभिन्न प्रकार के खाने योग्य तिलहन की खल्लिया तथा अन्य तरह के गोचारे का निर्यात बन्द कर दे। अपने देश में भी खल्लियों तथा अन्यान्य चारों का उपयोग अन्य कामों में होने पर रोक लगाएं तथा इन वस्तुओ को खरीद-बिक्री करों (टैक्सों) से मुक्त रखा जाए।

प्रस्ताव-5

भारत का पशुधन भारतीय सीमा से सटे पाकिस्तान एवं बंगलादेश में चोरी छिपे ले जाए जाने की सूचनाए अक्सर प्राप्त होती रहती हैं-परिस्थिति पर नजर रख कर इसे रोकने के कारगर उपाय किए जाएं।

प्रस्ताव संख्या-6

देश में विदेशों में समय-समय पर आयोजित होने वाले शासकीय भोजो मे, भारत सरकार के प्रतिष्ठानों में, होटलो में, जलपान गृहों में गोमास के प्रयोग पर पूर्ण प्रतिबन्ध होना चाहिए। गोवश के मास, गोचर्म के निर्यात तथा गोमासयुक्त वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध होना चाहिए।

प्रस्ताव-7

यह अधिवेशन मठ, मन्दिरों, गुरुकुलो एव आश्रमों से अनुरोध करता है कि वे अपने-अपने संस्थानों में गोपालन को व्यावहारिक रूप मे अधिकाधिक अपनाने का प्रयास करें तथा अपने नित्य नैमित्तिक अनुष्ठानों मे यदि उपलब्ध हो सके तो गोदुग्ध आधारित व्यंजनों का प्रयोग करे। जन-साधारण को भी यह संकल्प ग्रहण कर उसका पालन करना चाहिए कि वे कहीं से कोई चमडे के सामान न खरीदें, न काम में लाएं।

प्रस्ताव-8

(क) हममें गोवश पालन की भावना पुन. जागनी चाहिए एव तदर्थ यह आवश्यक है कि हम अपनी रोटी मे से एक अश गाय के लिए जो निकाला करते थे किन्तु आज अपने मोहल्लो मे दूर-दूर तक भी गाय अनुपलब्ध हो गई है तो ऐसी स्थिति में हमारे परिवार का गाय के लिए एक अश निर्धारित कर उसे किसी ऐसी गौशाला या गौसस्थान को जहा गाय यानि विशुद्ध देशी नस्ल वाली गाय ही पाली जाती हों, मासिक या त्रैमासिक धनराशि (राशि कम या अधिक कुछ भी हो सकती है), स्वेच्छा पूर्वक भेजना आरम्भ कर दे ताकि दैनन्दिन मे गोसेवा की भावना हमारे परिवारो मे पुन: जग सके।

(ख) हमारे प्रत्येक परिवारो को हर्ष एव विषाद (खुशी एव गमी) के अवसरों पर जहां विविध प्रकार से धन व्यय किया जाता है वही उस उपलक्ष्य मे देश की उन गोशालाओ या गौसंस्थानों को अपनी सहयोग राशि (जो कम या अधिक कुछ भी हो सकती है), अवश्य भेजनी चाहिए जो गौशालाए या सस्थान शोध कार्य करते एवं विधि चिकित्सकीय औषधियो के निर्माण कार्य मे लगे हो।

यह अधिवेशन विचार व्यक्त करता है कि गौ रक्षा की भावना से जुडे सभी गो सेवक चाहे वे किसी भी संस्था से जुड़े हो, सर्वसाधारण को इस दिशा में प्रेरित करते रहने का बीड़ा उठावे। गो-सेवकों के इस कार्य से एक ओर जहां आम लोगों में गौ के प्रति कर्त्तव्य भावना का उदय होगा वहीं उन गोशालाओं एवं गौ संस्थानों की आवश्यक शोध कार्य मे प्रगति भी हो सकेगी। -विमल वधावन, वरिष्ठ उपप्रधान

स्त्री आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार, (दाल बाजार) लुधियाना का उत्सव सम्पन्न

लुधियाना-तीन दिवसीय विश्व शान्ति गायत्री महायज्ञ धूमधाम से सम्पन्न हुआ। स्त्री आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार मे 22-23-24 नवम्बर को बडी श्रद्धा से हुआ, जिसमे स्वामी सम्पूर्णानन्द जी प सुरेन्द्र कुमार, सद्‌भावना समिति की प्रधाना माधुरी योगमति (अमृतसर) मुख्य अतिथि के रूप मे पधारी अध्यक्षा श्रीमती सरला भारद्वाज (फगवाडा) से आई, श्रद्धेय शोभानन्द जी महात्मा सुमनायति जी, प्रसिद्ध समाज सेविका सुवर्षा जी कालडा लुधियाना जिला प्रधाना राजेश जी शर्मा श्री श्रवण कुमार आर्य अन्य बहुत भाई तथा बहनो ने भाग लिया। इस यज्ञाग्नि क प्रज्वलित किया श्री रणधीर शर्मा वीणा जी शर्मा प्र. र्य (शान्ति निकेतन आदर्श विद्य. य वैजमन रोड) स्वामी जी े अपने प्रवचन मे कहा मनु'य सुख चाहता है उसे पाने के लिए यत्न नही करता प्रभु ने सब मे खजाना रखा है। भूखा-भीखा कोई नहीं सब की गठडी लाल, गाठ खोलनी जानत नही इस विध भये कंगाल। मानव के अन्दर आत्मा मे बहुत शक्ति है। आदमी उसे पहचाने श्रीमती राजेश जी ने कहा हे प्रभु तू आज के इन्सान को सही अर्थो मे मानव बना । इन्सान मे इन्सानियत हो तभी वह इन्सान है। माधुरी जी ने सत्य को जीवन मे धारण कर ही हम परमात्मा से योग द्वारा जुड सकते है। सरला भारद्वाज जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में वेद का संदेश देते हुए कहा कि हम सुने हुए उपदेशो, को धारण करे। कुमारी नम्रता सोनी के भजनो को अपने जीवन मे आत्मसात् करे तो सही मायने मे मानव कहला सकते हैं। जनता ने मत्र-मुग्ध होकर भजन प्रवचन सुने। सत्सग हाल मे 6 यज्ञ कुंडो पर सब यजमानो ने 108 गायत्री महामंत्र की आहुति डाल कर अपने मन को आत्मा को पवित्र किया। सत्संग े शोभा देखते ही बनती थी। ामी सुमनायति जी ने हार्दिक आशीर्वाद दिया स्वामी शोभानन्द जी ने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश की महत्ता पर ऋषि दयानन्द जी के जीवन पर प्रकाश डाला तथा सब सत्संगियो को फल का प्रसाद वितरित किया । अन्त में प्रभु का धन्यवाद करते हुए जनक रानी ने आ माधुरी योगमति जी से प्रार्थना की। ओ३म् धुन लगाते हुए हलवा तथा जलपान का वितरण कराया। प्रधाना जी ने मब विद्वानो का धन्यवाद करते हुए सहयोग करने वाली बहनो का भी धन्यवाद किया। श्रीमती पुष्पा जी गोगिया, नीलम जी थापर, शुभलता भण्डारी, प्रेम जी सेठी सभी बहनो के प्रयास से यह उत्सव सफल हुआ। उत्सव में भाग लेने वाले भाईयो का भी हार्दिक धन्यवाद किया।**-जनक रानी आर्य**

फाजिल्का में ऋषि निर्वाण दिवस मनाया गया

धन्य हो स्वामी तूने कर दिया कमाल।
मुर्दा थी मेरी कौम तूने प्राण दिये डाल।

आर्य समाज फाजिल्का मन्दिर मे स्वामी दयानन्द सरस्वती का निर्वाण दिवस बड़ी धूम-धाम से डा अमर लाल बाघला व श्रीमती सुदेश नागपाल प्रधाना आर्य स्त्री समाज के सहयोग मे मनाया गया। मुख्यातिथि स्वामी आनन्द अभिलाषी। (पूर्व नाम सुभाष चन्द्र जसूजा एडवोकेट) थे। श्रीमती नेहा मोंगा व सुश्री सरस्वती सहदेव दिल्ली से विशेष रूप से सम्मिलित हुए।

हवन-यज्ञ के पश्चात् श्रीमती नेहा मोगा, सुमन जुनेजा प्रिंसीपल व श्रीमती सुदेश नागपाल ने अपनी मधुर ध्वनि से श्रोताओं के मनो को मोह लिया। स्वामी आनन्द अभिलाषी, डा भीम लाल बाघला व शास्त्री निवेदन शर्मा ने स्वामी दयानन्द के जीवन पर रोशनी डाली। पूर्व अध्यक्ष सुशील वर्मा ने सबका धन्यवाद किया। **-प्रधान**

आर्य समाज मन्दिर संगरूर में महर्षि निर्वाण दिवस

आर्य समाज मन्दिर संगरूर में महर्षि निर्वाण दिवस दि. 14-11-2001 को प्रात: 8.30 से प्रात: 11 बजे तक बड़े धूमधाम से मनाया गया जिसमें सर्वप्रथम यज्ञ हुआ जिसमे मुख्य यज्ञमान श्री अश्विनी महाजन मैनेजर पंजाब नैशनल बैंक सुनाम थे। लाजपतराय आर्य कन्या विद्यालय संगरूर एवं सूर्यनारायण अग्रवाल मैमोरियल दयानन्द पब्लिक स्कूल के विद्यार्थियो एवं छात्राओ ने बहुत ही सुन्दर मनोहर भजन रखे। मच संचालन श्रीमती राजरानी जी हरमोनियम पर कु मनप्रीत कौर एवं ढोलकी पर श्रीमती सीता गर्ग जी ने कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। महात्मा प्रेम प्रकाश वानप्रस्थी जी ने कार्यक्रम मे भाग लेने वाले सभी छात्र-छात्राओ को अपनी ओर से ईनाम दिया। यज्ञ श्री राजेन्द्र आर्य जी ने करवाया भजनो के पश्चात् महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी का बहुत ही सुन्दर प्रवचन हुआ। महात्मा जी ने बच्चो के भजनो की बहुत ही प्रशंसा की पश्चात् आर्य समाज सगरूर के प्रधान श्री वेदपाल टुटेजा जी ने सभी उपस्थित सज्जनो का धन्यवाद किया।

-रामशरणार्य, मन्त्री

संगरूर में वैदिक सत्संग

आर्य समाज संगरूर के संरक्षक महाशय वीरेन्द्र कुमार जी की 25वीं विवाह की वर्षगांठ (सिल्वर-जुबली) के पावन अवसर पर दि 10-11-2001 दिन शनिवार को सायं 3.30 बजे से सायं 5.30 बजे तक वैदिक सत्संग का आयोजन श्री महाशय वीरेन्द्र कुमार जी की ओर से श्रद्धेय महात्मा प्रेम प्रकाश जी की अध्यक्षता मे आर्य समाज के सत्संग हाल मे हुआ, जिसमे महाशय जी के रिश्तेदारों के अतिरिक्त अन्य नगरवासी भी उपस्थित थे।

इस शुभ अवसर पर यज्ञ हुआ यज्ञ में महाशय अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राजरानी के साथ विराजमान थे। उनकी पुत्रिया दामाद, पुत्र, पुत्र वधु एवं अन्य रिश्तेदार यज्ञ पर बैठे हुए थे। यज्ञ के ब्रह्मा श्री राजेन्द्र आर्य थे। यज्ञ के पश्चात् बहुत ही सुन्दर भजनों का कार्यक्रम हुआ जिसका सभी उपस्थित सज्जनो ने आनन्द प्राप्त किया।

पश्चात् इस शुभ अवसर पर महात्मा प्रेम प्रकाश जी वानप्रस्थी जी द्वारा एक भजनो की छोटी सी पुस्तिका "पुष्पाजली" का विमोचन किया गया। यह पुस्तिका महाशय वीरेन्द्र जी ने प्रकशित करवाई है जो कि उनकी ओर से सप्रेम भेट की गई है। पुस्तक विमोचन के पश्चात् महात्मा जी का बहुत ही सुन्दर उपदेश हुआ। पश्चात् सभी ने जलपान एवं मिष्ठान कर महाशय परिवार को आशीर्वाद दिया।

मैं आर्य समाज की ओर से महाशय वीरेन्द्र जी एवं श्रीमती राजरानी जी को उनके विवाह की 25वीं वर्षगांठ (सिल्वर-जुबली) पर हार्दिक बधाई देता हूं तथा परम-पिता परमात्मा से उनके मगलमय जीवन की कामना करता हू।

-रामशरणार्य

सारथी

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्।।साम८२७।

यह सज्जन की रखवाली है।
प्रभु वर की शक्ति निराली है।
जग में जो भी रथ वाहक है।
प्रभु सर्वोत्तम संवाहक है।
गुण-ज्ञान-ऐश्वर्य सुख सत्ता,
महिमा असीम उजियाली है।
प्रभु वाणी से व्योम भरा है।
करती श्रुति संकेत गिरा है।
जो सुनता पार उतरता है,
यह नाव तारने वाली है।
प्रभु बनें सारथी सज्जन के।
आक्रमण बचाते दुर्जन के।
भक्त सुरक्षित घर पहुंचाओ,
पथ छायी रजनी काली है।

गोनियाना मण्डी ट्रक यूनियन में यज्ञ हवन तथा सत्संग

गोनियाना मण्डी (जि भटिण्डा) में स्थित ट्रक आप्रेटरज यूनियन ने अपना स्थापना दिवस 25 नवम्बर 2001 को हर वर्ष की भांति धूमधाम से मनाया। सर्वप्रथम पवित्र वेदमन्त्रो द्वारा यज्ञ हवन का आयोजन किया गया। इस समय ट्रक यूनियन के प्रधान तथा अन्य अधिकारी यज्ञमानों के आसन पर विराजमान था। नगर कौंसल के प्रधान श्री गोबिन्द राम जिंदल मुख्य यजमान के आसन को सुशोभित कर रहे थे। यज्ञ हवन तरसेम कुमार आर्य महामन्त्री जिला आर्य सभा बठिण्डा ने सम्पन्न कराया। इसके पश्चात् आर्य समाज के महान विद्वान् एवं इतिहासज्ञ प्रो राजेन्द्र जिज्ञासु जी का विद्वतापूर्ण प्रवचन हुआ।

इस ट्रक यूनियन की यह विशेषता है कि यह ट्रक यूनियन हर वर्ष अपने स्थापना दिवस पर किसी न किसी आर्य विद्वान् को बुलाकर उससे प्रवचन कराती है। गत वर्ष इस समारोह पर महात्मा प्रेम प्रकाश जी का प्रवचन कराया गया था। इस बार प्रो राजेन्द्र जिज्ञासु जी को बुलाया गया था।

शांति पाठ के पश्चात् सभी उपस्थित बन्धुओं का मिठाई तथा चाय पिला कर सम्मान किया गया।

जिला आर्य सभा बठिण्डा के महामन्त्री श्री तरसेम कुमार आर्य ने ट्रक यूनियन के अधिकारियो को इस आयोजन के लिए बधाई दी एवं धन्यवाद भी किया।

—चिरन्जी लाल प्रधान

दयानन्द पब्लिक स्कूल दीपक सिनेमा रोड, लुधियाना में धर्म प्रचार

20-11-2001 को प्रातः 11.30 बजे स्कूल मे स्वामी यज्ञ मुनि जी महाराज, मुजफ्फर नगर वाले विद्यालय में पधारे। उनके पधारने पर स्कूल के छात्र-छात्राओं ने एक समारोह में उनके उपदेश का प्रबन्ध किया। स्वामी जी ने छात्र-छात्राओ को सम्बोधित करते हुए कहा कि विद्या ग्रहण के समय जो विद्यार्थी परिश्रम करता है, वह ससार मे उन्नति करता है। अपने जीवन को सदाचारी बनाओ। आपके विद्यालय का नाम स्वामी दयानन्द जी के नाम पर है। उन्होने सारा जीवन परोपकार किया, सत्य का दामन नहीं त्यागा। आप भी अभी से अपने मन मे सत्य व परोपकार की भावना प्रज्जवलित करे। अच्छी पुस्तको का स्वाध्याय करे। छात्रो पर काफी प्रभाव पडा। इस अवसर पर स्कूल के प्रधान श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता एव प्रबन्धक श्री आशानन्द जी आर्य ने भी छात्रो को आशीर्वाद दिया। इससे पूर्व 13-11-2001 को दीपावली का पर्व बडे समारोह से स्कूल मे मनाया गया। इस अवसर पर श्री ओम प्रकाश जी गुप्ता प्रधान, प्रि सुनीता मलिक, श्री बृजमोहन अरोडा, श्रीमती विनोद गाधी ने यज्ञ के बाद बच्चो को आशीर्वाद दिया।

—प्रिंसिपल

अमृतसर में मैडिकल कैम्प

महर्षि दयानन्द फ्री अस्पताल अमृतसर में 2-12-2001 को पोलियो फ्री कैम्प लगाया गया जिसमें प्रातः 9 बजे से सायं 5 बजे तक 150 बच्चो को पोलियो के ड्रॉप्स पिलाये गये।

इन सभी कैम्पो का नेतृत्व डॉ० अन्जु आर्या सुपुत्री श्री ओम प्रकाश जी आर्य करती आ रही हैं जो कि एक बहुत ही सेवाभाविनी कर्त्तव्य निष्ठा महिला है।

वेदप्रचारोत्सव 21-25 नवम्बर

मण्डी डबवाली आर्य समाज द्वारा इस वर्ष भी वेद प्रचार उत्सव का बड़ी धूमधाम से आयोजन किया गया। दिनांक 21 नवम्बर से 25 नवम्बर तक चलने वाले इस समारोह मे वेद, शास्त्र, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि के विद्वान् स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी के प्रवचन हुए तथा सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक प ओम प्रकाश वर्मा के मुधर भजनोपदेश हुए। —डा. अशोक आर्य

आर्य समाज हबीबगंज लुधियाना के समाचार

आर्य समाज हबीबगंज लुधियाना का साप्ताहिक सत्सग नियम पूर्वक हर रविवार प्रातः 7.30 बजे से आरम्भ होता है यज्ञ आर्य समाज के पुरोहित श्री योगराज जी शास्त्री सम्पन्न करवाते हैं। काफी सख्या मे जनता लाभ उठा रही है।

आर्य समाज मन्दिर मे चल रहे स्कूल मे गत दिनो गरीब बच्चो को फ्री वर्दिया बांटी गई। इनके लिए सरदार गुरदेव सिंह ने 1600/- एवं श्री वेद भूषण जी मदान प्रधान प्रबन्ध समिति ने 1000/- दान दिया।

आर्य समाज मन्दिर मे एक निर्धन कन्या गीता का विवाह पूर्ण वैदिक रीति से कराया गया। आर्य समाज के प्रधान श्री आशानन्द आर्य की प्रेरणा से कन्या पक्ष का सारा व्यय श्री मदन लाल बातिश ने किया ? आर्य समाज की ओर से कन्या को उपहार दिए गए। आर्य समाज मन्दिर में धर्म देवी आर्य फ्री औषधालय प्रतिदिन प्रातः 9 बजे से 10.30 तक एवं साय 5 बजे से 6 बजे तक खुलता है। डा सुरेश कुमार जी राजपाल जी ए एम.एस बीमारों को चैक करके फ्री दवाई देते हैं। काफी जनता लाभ उठा रही है। दिसम्बर मास मे एक फ्री मैडीकल कैम्प भी लगाया जा रहा है।

—आशानन्द आर्य, प्रधान

कम बोलना सोचकर बोलना मीठा बोलना गुणकारी होता है।

आर्य समाज अजमेर द्वारा कैप्टन देवरत्न आर्य का अभिनन्दन

अजमेर-आर्य समाज अजमेर के तत्त्वावधान मे आर्य समाज अजमेर के प्रधान व प्रसिद्ध शिक्षाविद् प्रो दत्तात्रेय बावले आर्य की अध्यक्षता मे आर्य शिरोमणि सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सर्वसम्मति से निर्वाचित प्रधान कैप्टन देवरत्न आर्य का अभिनन्दन समारोह सम्पन्न हुआ।

उक्त अभिनन्दन समारोह के प्रारम्भ मे प्रसिद्ध शिक्षाविद् प्रो दत्तात्रेय बावले आर्य ने कैप्टन देवरत्न के सर्व सम्मत निर्वाचन पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा कि उनके कार्यकाल मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को नई दिशा मिल सकेगी जिससे वह अपने मूल रूप मे वापस लौटकर आर्य समाजो को सशक्त नेतृत्व दे सकेगी।

उक्त अभिनन्दन समारोह मे सर्व श्री प्रो दत्तात्रेय बावले आर्य प्रो रासा सिह रावत, डा बाबू राम शास्त्री, रामपाल सिह वर्मा, वेदरत्न आर्य, डा वीररत्न आर्य, सोमरत्न आर्य, पन्नालाल महेश्वरी, हरिनारायण सोमानी, गोविन्दराम साजनानी, नवीन मिश्र, नवीनकुमार शर्मा, पी एन मेहरा, हरीशचन्द्र शर्मा, भागचन्द गुप्ता, किशन लाल शर्मा, उमेश चन्द रस्तोगी, धन्ना लाल शर्मा, चन्द राम आर्य, आचार्य गोविन्द सिह, ओम प्रकाश भारद्वाज, कल्याणमल जाट, कृष्णदत्त, डा राम सिह शास्त्री, शिवचन्द सिंह, लखनचन्द्र शर्मा, लाल चन्द आर्य, जगेश्वर निर्मल, श्यामसुन्दर, चिरजी लाल आर्य, राजेन्द्र आर्य, रामकिशन भजनोपदेशक, पीर अली व जयकिशन आदि ने कैप्टन देवरत्न जी का हार्दिक स्वागत किया।

फिरोजपुर में ऋषि निर्वाण दिवस महोत्सव

आर्य समाज मन्दिर, रानी का तालाब, फिरोजपुर शहर ऋषि निर्वाण दिवस व शुभ दीपावली के उपलक्ष्य मे चतुर्वेद शतक पारायण महायज्ञ दिनाक 11-11-2001 से 14-11-2001 तक बडे हर्ष के साथ मनाया गया। जिसको हमारी समाज के ही सुयोग्य पुरोहित प सुनील दत्तार्य जी ने बडे ही प्रेम व निष्ठा के साथ सम्पन्न कराया। 14-11-2001 को पूर्णाहुति के पश्चात् महात्मा ओममुनि वानप्रस्थी जी के आशीर्वाद व उनकी कार्यशैली के अनुरूप आर्य समाज मे बडा ही उत्तम कार्यक्रम हुआ। जिसका नाम "भाषण प्रतियोगिता" रखा गया। यहा के स्थानीय स्कूल के जूनियर व सीनियर दो ग्रुप मे बच्चो ने भाग लिया। जिसमे प्रमुख एस डी पब्लिक स्कूल, देव समाज स्कूल। अरुण ज्योति पब्लिक स्कूल। हिन्दू गर्ल्स सीनियर सेकेण्डरी स्कूल। हसराज विद्या मन्दिर व डी ए वी पब्लिक स्कूल (छावनी) प्रमुख है। यहा के लगभग 50 छोटे बडे बच्चो ने भाग लिया। जिनका विषय महर्षि दयानन्द सरस्वती व श्री राम के जीवन का था। कार्यक्रम बडा प्यारा रहा। बच्चो को प्रथम द्वितीय व तृतीय निर्णायको द्वारा पुरस्कृत किया गया। पुरस्कार हमारी समाज के मन्त्री श्री वेद प्रकाश बजाज ने बच्चो में बाटे व सभी बच्चो को सम्मानित किया गया। इस उक्त कार्यक्रम की अध्यक्षता व श्रेय सारा महात्मा श्री ओम् मुनि जी को जाता है। यह सारी प्रेरणा व उनकी मेहनत का फल है। ईश्वर उनको आयु दीर्घायु करे। कार्यक्रम मे रोज नये-नये परिवारों से यज्ञमान बनते रहे। पूर्णाहुति के बाद प्रातःराश का कार्यक्रम भी रखा गया। सारे इस यज्ञ का व प्रातराश का समुचित धन हमारी समाज के प्रधान श्री मोहन लाल मल्होत्रा जी के सुपुत्र श्री नरेश मल्होत्रा जी ने वहन किया। अन्त मे पुरोहित श्री सुशील दत्तार्य जी का भजन व प्रवचन हुआ। श्री डी आर गोयल जी ने भी ऋषि जीवन पर प्रकाश डाला और अन्त मे महात्मा जी ने सभी का सादर धन्यवाद किया।

–वेद प्रकाश बजाज, मन्त्री

भठिण्डा में महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के आदेशानुसार ऋषि निर्वाण दिवस आर्य समाज चौक भठिण्डा के महर्षि दयानन्द सत्सग भवन मे हर्षोल्लास एव बडी धूमधाम से मनाया गया। सर्वप्रथम आर्य समाज के मान्य पुरोहित जी आचार्य श्री गुरु प्रसाद शास्त्री जी के ब्रह्मत्व मे विशेष मन्त्रो के साथ बृहद यज्ञ सम्पन्न हुआ। इस यज्ञ के यजमान श्री रणजीत मित्तल, श्री पवन कुमार मित्तल, श्री राजेन्द्र जिन्दल एव श्री सुधीर बासल सपत्नीक उपस्थित थे। ब्र सूर्यदेव जी 'वैदिक मिशनरी' ने इस बात पर विशेष बल दिया कि पर्व की महत्ता उसी तिथि को मनाने मे है तथा यह भी बतलाया कि यह दीपावली का त्यौहार श्री रामचन्द्र जी के वनवास से लौटने से पहले भी मनाया जाता था। प्रो ओ पी मंगला प्रधान आर्य समाज भठिण्डा ने महर्षि के सम्बन्ध मे दो महत्वपूर्ण पर्वो ऋषि निर्वाण दिवस एव ऋषि बोधोत्सव के बारे मे बताया।

ऋषि निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य मे वैदिक प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमे आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल आर्य माडल हाई स्कूल तथा आर्य परिवार के बच्चो ने भाग लिया। इस कार्यक्रम मे श्री एम पी अरोडा उपमत्री आर्य समाज भठिण्डा एव श्रीमती अरुणा अरोडा अध्यापिका आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल ने प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता का सचालन सुचारू रूप से किया। प्रथम पुरस्कार आर्य परिवार के बच्चो ने, द्वितीय आर्य गर्ल्ज सी सै स्कूल, तृतीय आर्य माडल स्कूल के बच्चो ने प्राप्त किया। श्रोताओ के प्रश्नो के उत्तर मे श्रीमती शान्ति गर्ग, श्रीमती जमना जी, डा स्वच्छ सचदेवा तथा श्री धर्मपाल जी रलहन विजेता रहे। मुख्य अतिथि श्री बचन दास बासल प्रधान सीमेट डील एसोसिएशन पंजाब ने विजेताओ को पुरस्कार दिए। श्री वजीर चंद जी मगला सरक्षक जिला आर्य सभा ने श्री बचन दास जी को, श्रीमती शान्ति जिदल प्रि आर्य गर्ल्ज सी से स्कूल ने श्रीमती एव श्री सुधीर बासल, चौ बाबूराम जी प्रधान गुरुकुल शिल्प विद्यालय ने श्रीमती एव श्री पवन मित्तल आदि यजमानो को आर्य समाज का साहित्य भेट किए। श्री पी डी गोयल प्रधान आर्य माडल स्कूल ने श्रीमती अरुणा अरोडा को प्रतियोगिता का सचालन करने पर विशेष रूप से पुरस्कृत किया। श्री देवराज बासल प्रधान, टी ट्रेडर एसोसिएशन, बैंक अधिकारी श्री चमन लाल जी, श्री राम कुमार महेश्वरी, श्री हुकुम चन्द जैन चेयरमैन, भोजरानी जैन स्कूल एव शहर के गणमान्य व्यक्तियो ने इस कार्यक्रम की प्रशसा की एव सुझाव दिया कि आर्य समाज के प्रचार के लिए इस प्रकार का कार्य अति आवश्यक है।

कार्यक्रम के अन्त मे बच्चो को तथा सभी सज्जनो को प्रसाद (लड्डू) बाटे गए। श्री गौरी शकर खनगवाल उपमन्त्री आर्य समाज भठिण्डा ने जलपान का प्रबन्ध किया। शान्तिपाठ एव जयघोष के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम को सफल बनाने मे प्रो अशोक कुमार गुप्ता एव प्रधानाचार्या श्रीमती शान्ति जिन्दल का विशेष योगदान रहा।

–ओ.पी मगला, प्रधान

स्त्री आर्य समाज गोबिन्दगढ़ जालन्धर का वार्षिक उत्सव

स्त्री आर्य समाज गोबिन्दगढ जालन्धर का वार्षिक उत्सव 25 फरवरी 2002 से 3 मार्च 2002 तक बडी धूमधाम व श्रद्धा से मनाया जा रहा है। इसलिए हमारी जालन्धर की आर्य समाजो के अधिकारियो से प्रार्थना है कि वह अपना उत्सव इन तिथियो मे न रख कर हमें अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करे तथा उत्सव मे बढ-चढ कर भाग लें। और सभी बहने व भाई इस उत्सव में पधार कर पुण्य के भागी बने।

–आनन्द पुरी, मन्त्री

प्रान्तीय आर्यवीर दल शिविर सम्पन्न

आमसेना-विगत 26 अक्तूबर से 3 नवम्बर तक गुरुकुल आश्रम आमसेना में विशाल आर्यवीर दल शिविर सम्पन्न हुआ। जिसमे 250 से अधिक आर्य वीरो ने उत्साहपूर्वक भाग लेकर नई प्रेरणा प्राप्त की। पूज्यपाद श्री स्वामी धर्मानन्द जी के आशीर्वाद से यह सप्त दिवसीय शिविर सम्पन्न हुआ। उक्त शिविर मे आर्य वीरो का लाठी भाला, कराटे, दण्ड बैठक, चाकू, योगासन आदि का प्रशिक्षण दिया गया। इसी बीच 1 नवम्बर को खरियार रोड नगर, मे भव्य शोभायात्रा (रैली) निकाली गई। शराब एव मास अडो के विरुद्ध नारे भी लगाये गये। खरियार रोड नगरवासियो ने मिष्ठान्न, जलपान आदि से शोभायात्रा का भव्य स्वागत किया।

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

राज. न. एन.

ऋग्वेद | कृण्वन्तो | ओ३म् | विश्वमार्यम्

2277. श्री पुस्त
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार (उत्तरप्र



दूरभाष : 2

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
जालन्धर

सामवेद | अथर्ववेद

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) जालन्धर का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष-55 अंक : 26 सृष्टि संवत 1960853102, 23 से 30 दिसम्बर 2001 दयानन्दाब्द 178

आर्यो ! स्वामी श्रद्धानन्द का स्मारक बचा लो ?

लेo डॉo महेश विद्यालंकार, दिल्ली

स्वामी श्रद्धानन्द सच्चे अर्थ में ऋषि भक्त अनुयायी और उनके उत्तराधिकारी रहे हैं। स्वामी दयानन्द जी जो भी सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, नारी उत्थान शुद्धि आदि के क्षेत्र में सुधार व निर्माण करना चाहते थे। वह सभी कार्य स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से कर दिखाया। उनका पूर्व जीवन पक्ष अन्धकारमय था। ऋषिवर के दर्शन, उपदेश तथा व्यक्तित्व ने उनका कायाकल्प कर दिया। वे त्याग, सेवा, उपकार और बलिदान के पर्याय बन गए। उनका महत्व तथा योगदान स्मरणीय एवं वन्दनीय रहेगा।

'गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार' स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन्त व प्रेरक स्मारक है। गुरुकुल शिक्षा पद्धति वैदिक शिक्षा प्रणाली का आदर्श रूप है। स्वामी दयानन्द ने जो शिक्षा का आदर्श रूप बताया उसे स्वामी श्रद्धानन्द ने मूर्तरूप दिया। गुरुकुल कांगड़ी स्वामी श्रद्धानन्द की आर्य जनता के नाम विरासत और वसीयत है। इसकी रक्षा करना हम सबका परम कर्त्तव्य है। गुरुकुल का अतीत स्वर्णिम तथा प्रेरणाप्रद था। जितना गुणगान किया जाए थोड़ा है। पहले के अधिकारियों, अध्यापको, विद्यार्थियो, उत्सवों वातावरण, रहन-सहन आदि की प्रेरक गौरव गाथाएं इतिहास तथा लोगों की वाणी पर है। पहले गुरुकुल तीर्थ के रूप मे पूजा और माना जाता था। लोगों की श्रद्धा भक्ति तथा दान भावना का सैलाब उमड़ता था।

वर्तमान बड़ी तेजी से बदला। सोच, भाव-भावना, आचार-विचार आदि सब कुछ तेजी से बदला। उसी का परिणाम है कि आर्य समाज, सभा, संगठन, संस्थाएं, महापुरुषों को देखते-सुनते, पढ़ते हैं तो भावशील आर्यजन, निराश-हताश, चिन्तित-तटस्थ व खिन्न हो उठते हैं। कारण स्पष्ट है-वर्तमान आर्य समाज अपने मूल उद्देश्यों, कार्यों, सिद्धान्तों, नियमों, आदर्शों, आचार संहिता आदि की दृष्टि से भटक गया है। मूल से भूल हो रही है। आनार्य लोग तेजी से प्रवेश व कब्जे कर रहे हैं। आचार-विचार विहीन, उद्देश्यहीन, सिद्धान्तो व आदर्शों से बेखबर, कामो पर लाभ लोभ, स्वार्थ, अहंकार, माला-माल आदि के लिए आर्य समाज को साधन बना रहे हैं। इन्हीं बातो की चपेट मे सस्थाएं-सगठन समाज मन्दिर स्कूल आदि भी आ रहे है।

इसका ज्वलन्त उदाहरण है-गुरुकुल कांगडी हरिद्वार पिछले दिनो चर्चा, अखबारों, मीटिंगो तथा संवादो आदि मे गुरुकुल कांगडी की भूमि विषय छाया रहा यह गुरुकुल कागड़ी का दुर्भाग्य रहा। यह सस्था पिछले कई दशकों से उठक-पटक, गुटबाजी, ग्रुपबाजी, प्रान्तवाद, जातिवाद, स्वार्थवाद आदि के घेरे में रही। इसी कारण गुरुकुल की विश्वसनीयता साख, आदर्शों, विचारों तथा कार्य प्रणाली पर गहरा प्रभाव पड़ा है। गुरुकुल गौण हो गया। स्वार्थ, लाभ, लोभ, पद आदि प्रमुख हो गए। जो गुरुकुल ब्राह्मण संस्था थी। जहां देने की, त्याग और सेवा की भावना होती थी। वहां सभी लेने की भावना से व्याकुल हो उठे। गुरुकुल व्यापार तथा कमाने का साधन बनने लगा। इसी भावना ने गुरुकुल को तेजी से कालेज मे परिवर्तित किया। इसी के अन्तर्गत पैसो के आदान-प्रदान के लिए नये-नये कोर्स खोले गए। इससे सम्बन्धित कुछ लोग लखपति धनवान बन गए। मगर गुरुकुल बदनाम हो गया। गुरुकुल का मूल चिन्तन, आदर्श, वातावरण आदि विकृत हो गया। उसकी पहचान खत्म हो गई। आज गुरुकुल में खडे होकर अधिकारी, अध्यापक, विद्यार्थी वातावरण आदि किसी भी दृष्टि से यह नहीं लगता है कि हम गुरुकुल में खड़े हैं। जो बुराईयां दुनियां मे हैं, वही गुरुकुल मे हैं। फिर अन्तर क्या रहा ? यह गुरुकुल के पहचान का प्रत्यक्ष प्रमाण है। गुरुकुल शब्द की हत्या है।

धन के लाभ और लोभ मे आकर पिछले दिनो गुरुकुल के उच्च अधिकारियों ने गुरुकुल की 144 बीघा जमीन बेच दी। इस जमीन की बाजार कीमत लगभग 20-25 करोड बताई जाती है। अधिकारियों ने केवल 70 लाख मे बेची है। बेची भूमि की सीमा गुरुकुल की बीच सडक तक आती है। यह निश्चित हो गया है कि जमीन बिक गई है। बिकने के बाद अधिकारी, कर्मचारी, अध्यापक, गुरुकुल हितैषी आर्य जनता आदि जागी धरने, हडताल, पोस्टरबाजी, पर्चे, मीटिग आदि हुई। सबने इस पर रोष प्रकट किया। प्रस्ताव पास किए, भाषण दिए। सघर्ष समिति बनी, कोर्ट-कचहरी मे जाने की तैयारी बनी। सभाओ के अधिकारी, इस मुद्दे पर विभाजित हो गए। एक-दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। वर्तमान में विवाद वही का वहीं लटका हुआ है। जमीन खरीद के पक्के कागज खरीददार के पास हैं। जमीन का कब्जा गुरुकुल के पास है।

मेरा जनता से निवेदन का उद्देश्य है कि गुरुकुल कांगड़ी की बिकी हुई भूमि को हर कीमत पर बचा लिया जाए। इसके लिए चाहे हम सबको कोई पर्याप्त कीमत और कुर्बानी देनी पडे। पता चला है कि खरीददार जमीन वापिस करने के लिए दबाव मे सोच सकता है। उसका कहना है कि जो मैंने पैसा एक नम्बर और दो नम्बर मे दिया है, वह सब वापिस मिल जाए। यह साफ जाहिर हो चुका है कि गुरुकुल भूमि विक्रय मे दो नम्बर मे मोटे पैसे का आदान-प्रदान हुआ है। सभा संगठन, संस्थाओ और आर्य जनता का दायित्व तथा कर्त्तव्य है कि जिन्होंने इस भूमि विक्रय मे गलत तरीके से धन लिया है, उन पर सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, व्यावहारिक आदि दृष्टि से दबाव बनाया जाए। लिया हुआ धन वे लोग वापिस कर दें। यदि कोई व्यक्ति अपनी भूल को स्वीकार कर सुधार लेता है, वह महान कहलाता है।

(शेष पृष्ठ 2 पर)

विश्व दर्शनीय यज्ञशाला के निर्माण हेतु आर्थिक सहायता की अपील

ऋषि जन्मभूमि टंकारा में निर्माणाधीन यज्ञशाला में अपना योगदान देकर पुण्य के भागी बनें

ऋषि जन्मभूमि पर निर्माण की जाने वाली इस यज्ञशाला का एक विशेष महत्व है। पूरे विश्व के ऋषि भक्तो के लिए टंकारा, गुरुधाम का स्थान रखता है और समस्त आर्य जगत् की भावुक भावनाएं इस स्थान से जुड़ी हुई हैं इसलिए आपके द्वारा दिया गया योगदान किस महत्व का होगा इसे आप अवश्य समझे।

24 स्तम्भो से बनी यह यज्ञशाला पूर्णरूप से कंक्रीट से बनी हुई होगी। इसमें ईंट अथवा प्लास्टर नाममात्र के लिए ही होगा। भूमितट से 6 फीट ऊंची इस यज्ञशाला का रेखाचित्र एवं काल्पनिक चित्र कम्प्यूटर द्वारा तैयार किया गया है और कम्प्यूटर इंजीनियर का ऐसा मानना है कि इस आकार की यज्ञशाला पूरे विश्व मे इससे पूर्व कहीं निर्मित नहीं हुई होगी। इसे विश्वदर्शनीय बनाने हेतु और सुन्दर रूप बनाये रखने के लिए ऐसी सम्भावना है कि इसे ग्रेनाइट पत्थर से सुसज्जित किया जाएगा और स्तम्भों को खुर्जा टाइल्स से डिजाइनदार बनाया जाएगा।

आर्य जनता से अनुरोध है कि टंकारा में चल रहे यज्ञशाला के निर्माण कार्य मे मुक्तहस्त से अधिकाधिक सहयोग देकर पुण्य के भागी बने। यह दान नकद/ड्राफ्ट/क्रास चैक तथा मनीआर्डर द्वारा श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा के नाम दिल्ली कार्यालय आर्य समाज "अनारकली" मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली के पते पर अथवा टकारा, जिला राजकोट-363650 (गुजरात) को भिजवाने की कृपा करें। आपसे सानुरोध प्रार्थना है कि अपनी आर्य समाज, अपनी शिक्षण संस्था तथा सम्बन्धित संस्थाओ की ओर से अधिकाधिक राशि भेज कर पुण्य के भागी बनें। टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर से मुक्त है।

निवेदक

ओंकारनाथ	**विद्यादेव**	**रामनाथ सहगल**
मैनेजिंग ट्रस्टी	आचार्य	ट्रस्ट मंत्री

उपकार्यालय . आर्य समाज 'अनारकली' मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाषा : 3363718, 3362110, 4693607 टेलीफैक्स . 4615195

हम सपने साकार करेंगे

रचयिता—पं० रामसुफल शास्त्री, हांसी

जगत गुरु ऋषि दयानन्द के।
हम सपने साकार करेंगे॥
घर-घर ज्ञान की ज्योति जलाकर वेद की पावन ध्वनि गुंजाकर।
दु:खी और निर्धन लोगों को प्रभु भक्ति की राह दिखा कर॥
मानव के अज्ञान तिमिर को।
अब हम जड़ से नष्ट करेंगे॥१॥
दलित पतित और दीन जनों को प्रेम-प्यार से हृदय लगाकर।
इन्हीं दिलों में बसते हैं प्रभु ये बातें सबको समझाकर॥
जाति-पाति और ऊच-नीच की।
तुच्छ भावना दूर करेंगे॥२॥
गली-गली और नगर में जाकर, वेदामृत का पान कराकर।
एक ईश के सब बेटों को मानवता का पाठ पढा कर॥
वेद का पढना परम धर्म है।
ऐसा ही सब कहा करेंगे॥३॥
सबके सब घर स्वर्ग बनेंगे, सत्संगित सद्ज्ञान को पाकर।
वेद शास्त्र और सद्ग्रन्थों को गायेगे सब गीत बनाकर॥
जीवन दृश्य बनेगा प्यारा।
ऐसा बढ़िया काम करेंगे॥४॥

(पृष्ठ 1 का शेष)

मुंशीराम स्वामी श्रद्धानन्द अपनी भूल सुधार से ही बने। यदि ऐसा सम्भव नहीं होता है तो कोर्ट-कचहरी तथा दण्ड विधान के द्वारा आर्य जगत को गुरुकुल की भूमि वापिस कराने का पुरजोर प्रयत्न करना चाहिए। यदि बिकी हुई भूमि वापिस न हुई तो, स्वामी श्रद्धानन्द का स्मारक छिन्न-भिन्न हो जाएगा। वहां रिहायशी कालोनी बनेगी। गुरुकुल का स्वरूप, वातावरण और गुरुकुलत्व पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट होगा। स्वामी श्रद्धानन्द की आत्मा हम सबको कभी माफ न कर सकेगी। यह भी निश्चित है कि जो भूमि विक्रय में सम्मिलित हैं वे भी कभी सुख-चैन, शान्ति एवं आराम से जी न सकेंगे। परमात्मा के यहां देर है, अंधेर नही है। उसकी मार में आवाज नहीं होती है।

दुर्भाग्य है कि यह वर्ष गुरुकुल की स्थापना का सौवां वर्ष है। शताब्दी वर्ष पर भूमि को बढाने की जगह हमने बेच दी। दान की जमीन को हमें बेचने का कोई अधिकार नहीं है। जिस संस्था को स्वामी श्रद्धानन्द ने अपना तन-मन और धन सर्वस्व न्यौछावर करके बनाया था। उसे लाभ-लोभ में आकर बेचना महाअपराध है। जो भी इस काण्ड में सम्मिलित हैं, उनसे आर्य जनता को पूछना चाहिए? मेरा किसी व्यक्ति, पार्टी, ग्रुप आदि से राग-द्वेष नहीं है। मेरी शुद्ध-भाव-भावना है कि गुरुकुल को बचा लो। ये संस्थाएं हमारी प्रेरणास्रोत हैं। ये आर्य समाज की टकसाल हैं, जहां आर्य समाजी गढ़े और बनाये जाते हैं। मुझे भी इस संस्था ने जीवन-दृष्टि दी है। मैं इसका ऋणी हूं।

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस पर आर्यो ! सोचो! विचारो! कुछ करो ! स्वामी श्रद्धानन्द को हम क्या श्रद्धांजलि दें ? उस महामानव के तप-त्याग, सेवा, बलिदान और उपकारों का क्या यही बदला है। हम उसके बने-बनाये व महकते चमन को चन्द-चांदी के सिक्कों के लिए उजाड़ दें ? अपने पद-स्वार्थ लोभ व लाभ के लिए, उसके स्वरूप वातावरण और आदर्शों को निवृत कर दें? गुरुकुल में सस्वर वेदपाठ की गूंज की जगह गोलियों की दनदनाहट की आवाजें सुनाई दे? स्वामी श्रद्धानन्द ने इसलिए गुरुकुल नहीं बनाया था ?

यदि हम सच्चे अर्थ मे स्वामी श्रद्धानन्द को अमर और जीवित रखना चाहते हैं, तो उनके अमर स्मारक गुरुकुल कांगड़ी की बिकी हुई भूमि को पुन: वापिस कराने के लिए व्रत, संकल्प करे। इसके लिए चाहे हम सबको, भूख-हड़ताल करनी पड़े, चन्दा एकत्र करके भरपाई करनी पड़े। जेल जाना पड़े। धरने देने पडे। सब कुछ करके यदि गुरुकुल की भूमि वापिस हो गई, तो गुरुकुल की स्थापना के शताब्दी वर्ष की यह गुरुकुल को स्मरणीय भेट होगी। स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान को सच्ची श्रद्धांजलि रहेगी। असम्भव कुछ नहीं है। जनता जाग जायेगी, तो किसी की हिम्मत नहीं है जो गुरुकुल की भूमि की ओर नजर उठा सके। जनता में बड़ी शक्ति होती है। आर्य जनता ऐसी अनेक मुसीबतों, कठिनाईयों और समस्याओ से जूझना जानती है। यदि मेरे इन शब्दों और भावों से गुरुकुल भूमि वापिसी के लिए कुछ हलचल, प्रयास तथा पहल होती है, तो मैं यह उस महामानव बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द को नमन श्रद्धांजलि समझूंगा।

सोमपान

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोम पीतये।
या जाता पूतदक्ष सा॥ साम७६३॥
आओ प्यारे प्रभुवर आओ।
प्रभु सोमपान करने आओ।
प्रभु सोमपान करने आओ॥
तन में, वीर्य सुरक्षित करके।
मन में भक्ति अलंकृत करके
बलवान पवित्र हो गये हम,
अब तो हमको मित्र बनाओ॥
प्राण-संग्रह हमने सीखा।
सीखा दान अपान सरीखा।
हमने यश-उत्कर्षण पाया,
तुम भी अपनी शोभा लाओ।
जो हमको अपना कहते हैं।
वे हम से हर्षित रहते हैं।
निर्बल के हम रहें सहायक,
तुम नाथ हमारे बन जाओ॥

सम्पादकीय.....

स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान पर्व

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज आर्य समाज की एक महान् विभूति थे सारे आर्य जगत में उनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। 23 दिसम्बर उनका शहीदी दिवस व बलिदान पर्व है। इस दिन सारे भारत वर्ष की आर्य समाजों में उनका बलिदान दिवस मनाया जाता है। 23 दिसम्बर 2001 को जहां पंजाब तथा अन्य प्रदेशों की आर्य समाजों में उनका बलिदान दिवस मनाया गया उन्हें श्रद्धांजलियां भेंट की गई। वहां उन्हीं के द्वारा स्थापित आर्य समाज की महान संस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय हरिद्वार में 23 दिसम्बर 2001 को बड़े समारोह से यह दिवस मनाया गया। इस अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय की यज्ञशाला में प्रात: 9 बजे यज्ञ आरम्भ हुआ। इस यज्ञ के मुख्य यज्ञमान गुरुकुल के परिद्रष्टा माननीय न्याय मूर्ति पंजाब हरियाणा हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री जयभूषण गर्ग जी थे। यज्ञ के पश्चात् प्रात: 10.30 बजे गुरुकुल के कुलाधिपति व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री पं. हरबंस लाल जी शर्मा ने ध्वजारोहण किया तथा स्काऊट का निरीक्षण किया। इस अवसर पर जनता को उद्‌बोधन करते हुए उन्होंने कहा कि हम सभी आज निश्चय करें कि हम सब मिल कर स्वामी श्रद्धानन्द जी के स्वप्नों को साकार करेंगे और उनके बताए हुए मार्ग पर चलेंगे। उन्होंने आगे कहा कि मैं गुरुकुल की उन्नति के लिए यथाशक्ति तन, मन, धन से जो भी कार्य कर सकता हूं। करूंगा।

इसके पश्चात् उपस्थित भारी जन समूह ने स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज व महर्षि दयानन्द व गुरु विरजानन्द जी महाराज के जयघोषों से आकाश गूंजा दिया और एक शोभा यात्रा के रूप में सभी लोग विश्व विद्यालय के बड़े हाल में पहुंचे। इस अवसर पर गुरुकुल कांगड़ी के सभी ब्रह्मचारी व स्टाफ, विश्व विद्यालय का सारा स्टाफ, आर्य वान प्रस्थाश्रम के सभी वानप्रस्थी, हरिद्वार व ज्वालापुर के आर्य बन्धु व बहनें तथा कई ग्रामों से भी ट्रैक्टर-ट्रालियों में बैठ कर लोग वहां पहुंचे थे।

गुरुकुल के सभागार में पं. हरबंस लाल जी शर्मा कुलाधिपति की अध्यक्षता में श्रद्धांजलि सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ हुई। इससे पूर्व गुरुकुल के सभी अधिकारियों, प्राध्यापकों तथा वहां पधारे प्रतिष्ठित महानुभावों ने पुष्प मालाओं के द्वारा कुलाधिपति पं. हरबंस लाल जी शर्मा व परिद्रष्टा श्री जयभूषण गर्ग जी का भव्य स्वागत व शाल आदि भेंट करके सम्मान किया। इस अवसर पर श्री वेद प्रकाश जी कार्यकारी कुलपति, श्री महावीर जी रजिस्ट्रार तथा गुरुकुल के कई अधिकारियों व प्राध्यापकों व श्री आनन्द अभिलाषी जी वानप्रस्थी तथा सार्वदेशिक सभा के महामन्त्री श्री वेदव्रत जी शर्मा, वरिष्ठ उपप्रधान श्री विमल वधावन, श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपप्रधान प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी, श्री आशानन्द जी आर्य, श्री सुदर्शन जी शर्मा व आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री देवेन्द्र नाथ शर्मा ने अपने विचार प्रकट करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। प्रिं स्वतन्त्र कुमार जी व श्री देवेन्द्र नाथ जी ने जनता को सम्बोधित करते हुए कहा कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुरुकुल की उन्नति के लिए हर सम्भव कार्य करने के लिए तैयार है, गुरुकुल की कुछ लोगो के द्वारा गत दिनों बेची गई भूमि को वापिस लिया जाएगा। गुरुकुल की कोई भी भूमि बिकने न दी जाएगी।

गुरुकुल के परिद्रष्टा न्यायमूर्ति श्री जयभूषण गर्ग ने अपने उद्‌बोधन भाषण में जहां इस आयोजन के लिए गुरुकुल के अधिकारी वर्ग व स्टाफ का धन्यवाद किया वहां गुरुकुल की उन्नति के लिए हर सम्भव कार्य करने का आश्वासन दिया, उन्होंने आशा प्रकट की कि कुलाधिपति पं हरबंस लाल जी शर्मा व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की देख-रेख में यह गुरुकुल और उन्नति करेगा।

अन्त में श्री हरबंस लाल जी शर्मा कुलाधिपति ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आई हुई जनता तथा कार्यकर्त्ताओ का धन्यवाद करते हुए कहा कि मैं पिछले कई वर्षो से गुरुकुल में आ रहा हू और मैं यहां की स्थिति को अच्छी प्रकार से जानता हूं अब गुरुकुल में पहले से भी अच्छे कार्यकर्त्ता आगे आये हैं। गलत लोग स्वयं ही गुरुकुल से बाहर होते जा रहे हैं। जो लोग गुरुकुल का हित चाहने वाले हैं और ईमानदार लोग हैं उन्हें आगे आना चाहिए और गुरुकुल की उन्नति के लिए कार्य करना चाहिए। इस कार्य मे मेरा उन्हें पूरा सहयोग मिलेगा। मैं तन, मन, धन से ईमानदार लोगों के साथ हूं। आओ आज हम संकल्प करे कि हम स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वप्नों को साकार करेंगे। अन्त में उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से, गुरुकुल की ओर से तथा अपनी ओर से स्वामी श्रद्धानन्द जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

यह समारोह बड़ा सफल रहा सभी आर्य बन्धुओ व बहनो ने इसमे बढ़-चढ़ कर बड़े उत्साह से भाग लिया। गत दिनो मे गुरुकुल की बेची गई भूमि को लेकर सभी लोगों के मन मे एक रोष था। सभी इस कार्य की निन्दा कर रहे थे। गुरुकुल कांगडी हरिद्वार स्वामी श्रद्धानन्द जी महराज का एक स्मारक है, इसकी उन्नति के सम्बन्ध मे विचार करना प्रत्येक आर्य बन्धु का परम कत्तर्व्य है। इस गुरुकुल के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। अपना तन, मन, धन व यहां तक कि अपने बेटे भी इस गुरुकुल को अपर्ण कर दिए थे। उनके त्याग व तप के द्वारा ही इस गुरुकुल का निर्माण हुआ है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में बच्चों की शिक्षा के लिए पाठशालाओं के स्थान पर गुरुकुलीय शिक्षा पर जोर दिया है और गुरुकुल की महत्ता पर प्रकाश डाला। जब लाहौर मे मुन्शी राम जी ने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा तो उन्होंने निश्चय किया कि आर्य समाज को स्कूल, कालेजों के स्थान पर गुरुकुल खोलने चाहिएं और इसके लिए उन्होंने आर्य समाज लाहौर तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकारियों को प्रेरित किया और स्वयं भी इस कार्य में जुट गए।

इस महान तपस्वी की तपस्थली गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार की रक्षा-सुरक्षा व उन्नति करना सभी आर्य बन्धुओं का कर्त्तव्य है। इसी भावना को लेकर 23 दिसम्बर 2001 को गुरुकुल कागड़ी हरिद्वार मे एक विशेष समारोह प्रतिवर्ष की भांति किया गया, जिसमें सार्वदेशिक सभा के महामन्त्री श्री वेदव्रत जी शर्मा, वरिष्ठ उप प्रधान श्री विमल वधावन, प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री दिल्ली से पधारे थे और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान व अन्य पदाधिकारी पंजाब से पधारे थे। यह समारोह बड़ा सफल रहा जिसके लिए आयोजक बधाई के पात्र हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह भी रही है कि इस अवसर पर गुरुकुल की समस्याओं पर भी सभी अधिकारियों ने विचार किया।

–धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

आर्य मर्यादा का शुल्क भेजें

आर्य मर्यादा के उन सभी सदस्यों (ग्राहकों) से मेरी प्रार्थना है जिन्होंने अभी तक अपना शुल्क नहीं भेजा वह शीघ्र अति शीघ्र शुल्क भेजने का कष्ट करें। यह पत्रिका सभा केवल प्रचार के लिए प्रकाशित कर रही है और शुल्क भी सभा ने नाम-मात्र 50 रुपए रखा है जबकि इसका डाक व्यय ही लगभग एक सौ रुपए व्यय हो जाता है कागज और छपाई व फोल्डिंग आदि व्यय अलग है। इसलिए कृप्या अपना पिछला शुल्क शीघ्र अति शीघ्र आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम पर मनिआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

–धर्मदेव आर्य, सभा कार्यालयाध्यक्ष

यज्ञ मन्त्रों में स्वाहा या ओम् स्वाहा विद्वान् विषयान्तर में न जायें

□ ले० डॉ भवानी लाल भारतीय, 8/423 नन्दनवन, जोधपुर

वैदिक कर्मकाण्ड की विधियों के लिए आर्ष ग्रन्थों की सहायता ली जाती है। उसमें व्यक्ति विशेष के आग्रह, सनक या तरंग (अंग्रेजी में Whim) के लिए कोई स्थान नहीं है। आर्य समाज में प्रचलित कर्मकाण्ड मुख्यत: ऋषि दयानन्द प्रणीत संस्कारविधि के आधार पर होता है। गत मार्च में जब मुम्बई मे महासम्मेलन के अवसर पर यज्ञ हुआ तो प्रत्येक आहुति में मंत्रपाठ की समाप्ति मे अन्तिम अक्षर को ओम् से जोड़ कर 'ओम् स्वाहा' इस प्रकार उच्चारण पूर्वक शाकल्य आदि डलवाया गया। कतिपय विद्वानो ने इस प्रथा का विरोध किया और पत्रो में कुछ लेख प्रकाशित हुए। वर्तमान में आर्य समाजी, विद्वानों में कर्मकाण्ड के जानकारों में स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती त्रिवेद तीर्थ (आर्य समाज हापुड़) का नाम शीर्षस्थ है। ये ही उन बचे हुए विद्वानों में हैं जिन्होंने आर्ष कर्मकाण्ड का साक्षात् गुरुमुख से अध्ययन किया है। विगत में आचार्य विश्वश्रवा, पं. युधिष्ठिर मीमांसक तथा पं. वीरसेन वेदश्रमी इसी कोटि के विद्वान् थे जो अब दिवंगत हो चुके हैं। आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई के प्रधान डा. सोमदेव शास्त्री ने जब मुझे पत्र लिख कर धर्मार्थ सभा की एतद्विषयक सम्मति मंगाई तो मैंने १९६१ में दिल्ली में सम्पन्न आर्य महासम्मेलन के अवसर पर आचार्य विश्वश्रवा (मंत्री धर्मार्थ सभा) द्वारा सम्पादित यज्ञ पद्धति का प्रासंगिक अवतरण उन्हें भेजा। यह और कतिपय अन्य लेख पुस्तकाकार स्वामी सुरेन्द्रनाथ सरस्वती ने डा. सोमदेव जी से सम्पादित करा कर प्रकाशित किए हैं। इस पुस्तक के काव्य की आलोचना में पं. सत्यानन्द जी वेद वागीश ने मुम्बई यज्ञ के ओ३म् स्वाहा पर लेखान्दोलन शीर्षक लेख लिखा जो कतिपय आर्य पत्रों में प्रकाशित हुआ है।

मेरा निवेदन है कि कर्मकाण्ड में शास्त्रोक्त विधि को यथावत् सम्पन्न करना-कराना ही महत्वपूर्ण होना है। इसमें व्यक्तिगत रुचि तथा अल्पमत-बहुमत जैसा विकल्प नहीं होता। जो आर्ष (दयानन्द प्रोक्त) विधि है वह करणीय है, तद् विरुद्ध अकरणीय है। अत: वेद वागीश जी के लेख मे अनेक हेत्वाभास प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं। यथा-

1. 'आचार्य विश्वश्रवा, मीमांसक जी, पं. धर्मदेव जी तथा पं. वीरसेन जी के जीवन काल में भी ऐसे यज्ञ होते रहे हैं।' विगत मे किसकी उपस्थिति में क्या हुआ, यह प्रासंगिक नहीं है।

2 'ब्यावर आर्य समाज में महात्मा आनन्द भिक्षु जी की अध्यक्षता में जो पारायण यज्ञ होते थे, उनमें 'ओम् स्वाहा' पूर्वक आहुति दी जाती थी। निवेदन है कि महात्मा आनन्द भिक्षु जी यज्ञ प्रेमी अवश्य थे किन्तु कर्मकाण्ड में निष्णात नहीं थे, अत: उनका किया या कराया प्रमाण कोटि में नहीं आता। उन्होंने यज्ञों का प्रचार अवश्य किया।

3. यही स्थिति स्वामी व्रतानन्द जी द्वारा संचालित गुरुकुल चितौड़गढ़ में होने वाले चारों वेदो से पारायण यज्ञों में 'ओम् स्वाहा' बोल कर आहुति देने की है। स्वामी व्रतानन्द जी स्वामी श्रद्धानन्द के प्रत्यक्ष शिष्य थे तथा 1915 में स्नातक बने, यह सब ठीक है किन्तु उनके द्वारा क्रियान्वित किसी याज्ञिक विधि को शास्त्रोक्त तो नहीं कहा जा सकता।

4. मंत्रारम्भ में ओम् लगाना तथा आहुति डालने से पूर्व 'स्वाहा' से पहले ओम् लगाना दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं। निश्चय ही 'स्वाहा' पद मंत्र से बहिर्भूत हैं किन्तु आहुति डालने में उसका प्रयोग आर्ष सम्मत है। यो तो 'इदं न मम' यह भी मंत्र का भाग नहीं है किन्तु यज्ञ विधि सम्मत है।

5. यजुर्वेद (2-16) के भाष्य में स्वामी जी का जो कथन है कि 'आहुति वेद मंत्रों से ही करनी चाहिए' यह एक सामान्य कथन है। अपवाद रूप में संस्कारों तथा अन्य याज्ञिक विधियों में सूत्र ग्रन्थों में आये मंत्रों का विनियोग शास्त्र सम्मत है। ऋषि ने स्वयं ऐसा किया है। इसलिए ये सारे आक्षेप ऋषि दयानन्द पर लागू होते हैं। वेदवागीश जी ने ऋषि प्रोक्त विधि पर आक्षेपों को निम्न प्रकार क्रमबद्ध कर दिया है।

(अ) संस्कार विधि में शतश: ऐसे मंत्र हैं जो वेद मंत्र नहीं हैं- सन्यास विधि में आये अधर्माय स्वाहा आदि, जया होम में आये चित्तं च स्वाहा आदि।

(आ) 'समिधाधान में 'अयं त इधम आत्मा', स्विष्टकृत आहुति का 'यदस्य कर्मणो' आदि। ये सभी वेद वचन (वेद मन्त्र) नहीं हैं।' तथापि स्वामी जी ने इनका विनियोग यथा स्थान किया है। अत: यह आर्ष विनियोग है।

(इ) वेदवागीश जी की भांति अन्य विद्वानों ने भी ऋषि प्रोक्त यज्ञ विधि पर विगत में न केवल आक्षेप किए अपितु उन्होंने उसमें मनमाने परिवर्तन भी कर डाले। पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय ने लिखा कि तीन समिधाओ का आधान दयानन्द प्रोक्त चार मंत्रों (इसमें अयं त इधम आत्मा भी शामिल है से न करें। यजु. (3-1, 2-3) इन तीनों से ही तीन समिधाएं डाल दें। यह काफी है। दयानन्द ने चार मंत्र लिख कर भूल की है। हैदराबाद के पं. वेद भूषण ने 'अयं त इध्म आत्मा' से पांच घृताहुतियां देने का घोर विरोध किया। उन्होंने मारिशस में अपने द्वारा सम्पादित एक यज्ञविधि चलाई और यह विधि 'यज्ञ सुरभि' शीर्षक से यूनियन पार्क मारिशस के पं. सत्य प्रकाश भृगु ने प्रकाशित की। इसमें 'अयं त इध्म आत्मा' (आश्वलायन गृह सूत्र-1-10-12) से पांच घृत आहुतियां देने को सर्वथा उड़ा दिया। पं. वेद भूषण की संध्या विधि का आरम्भ 'ओम् अमृतोपस्त रणमसि' आदि तीन मंत्रों द्वारा किए गए तीन आचमनों से होता है न कि 'ओम् शन्नो देवी' इस मंत्र से। जितने पण्डित उतनी विधियां। दयानन्द की व्यवस्था चाहे चूल्हे में जाये। इनको क्या ?

(उ) वेद वागीश् जी 'अयं इध्म आत्मा' के बारे में पूछते हैं (किससे पूछते हैं ? स्वामी जी तो उत्तर देने के लिए हैं नहीं, अस्मदादि सदृशों में ऐसी सामर्थ्य नहीं है। इस मंत्र से पांच घृताहुतियां देने का विधान किस कल्प सूत्र में है ? यह मन्त्र घृताहुति का है ही नहीं, समिधाहुति का है। उनके द्वारा (स) के अन्तर्गत किए गए सारे आक्षेप दयानन्द पर हैं। अब यह तो दयानन्द के अनुयायियों का दायित्व है कि वे इन आक्षेपों का समाधान करें। स्वयं वेदवागीश जी यह दायित्व लें।

(ऊ) आघाराहुति और आज्यभागाहुति मंत्रों में जो अस्थान छप जाने से व्यक्तिक्रम हुआ है, उसका निर्देश पं. युधिष्ठिर जी ने बहुत पहले ही कर दिया था। (द्रष्टव्य संस्कारविधि का राम लाल कपूर ट्रस्ट का संस्कार 2031 वि पृ. 33 की पाद टिप्पणी सं. 6)।

पं. वेद वागीश जी पूछते हैं कि किस शास्त्र में लिखा है कि वेद मंत्रों के शब्दों का स्वरूप बदल दिया जाए। उदाहरण मे उन्होने गृहस्थाश्रम विधि में प्रयुक्त कतिपय एक वचन स्त्रीलिंग शब्दो को स्वामी जी द्वारा पुल्लिंग बहु वचन बनाने पर आपत्ति की है। हमारा निवेदन है कि कर्मकाण्ड में इस प्रकार के परिवर्तन किये जाते हैं। शाखा प्रवचन में तो मंत्र गत शब्दो के स्थान पर अन्य शब्दों का प्रयोग सर्वत्र मिलता है। उदाहरणार्थ, यजु. (9-40) में आये 'एष वो अमी राजा' को काण्व शाखा में 'एष व: कुरवो राजा' तैत्तिरीय शाखा मे 'एष वो भरतो राजा', काठक में 'एषते जनते राजा' तथा मैत्रायणी शाखा में 'एष ते जनते राजा' इस प्रकार पठित किया गया है। क्या वेद वागीश जी स्वामी जी को कर्मकाण्ड विधि के लेखन में उक्त शाखाकारों जितना भी अधिकार देना नहीं चाहते ?

5. सच पूछो तो वेदवागीश जी का यह लेख किसी मजबूरी में ही लिखा गया है, तभी तो वे कहते हैं-'माना कि कल्प सूत्रादि में 'ओ३म् स्वाहा' का विधान नहीं है पर 'स्वाहा से पूर्व' 'ओ३म्' लगाने का निषेध भी तो नहीं है। यदि इस तर्क का सहारा लेकर विधियों में मनमानी कल्पनाएं की जाने लगी तब तो सर्वथा अराजकता छा जाएगी। पौराणिक भी तो यही कहते हैं कि हमारे अमुक कार्य की विधि वेदों में नहीं है तो निषेध भी तो नहीं है।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

(पृष्ठ 4 का शेष)

सुश्री सूर्या देवी ने 'स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवा:' (ऋ. 10-110-11) को उद्धृत किया और इसकी व्याख्या में यास्क वचन (इति यजन्ति) को प्रस्तुत किया। वेद वागीश जी ने इस मंत्र के यजर्वेदान्तर्गत दयानन्द भाष्य को उद्धृत कर लिखा कि यहां ऋषि ने स्वाहा कृतं का अर्थ यज्ञपरक नहीं किया अपितु 'सत्येन निष्पादितं कृतंहोमं' इस प्रकार सामान्य नीति शिक्षा परक किया है। किन्तु यह लिख कर तो पण्डित जी ने वेद मंत्रों के आधार पर किये जाने वाले समस्त सत्य विनियोगों को ही पलीता लगा दिया है। 'शन्नो देवी' (यजु. 36-12) के भाष्य में स्वामी जी ने यह कहां लिखा कि संध्या के प्रारम्भ मे इस मंत्र को बोल कर तीन बार जल लेकर आचमन करे। भाष्य में तो मंत्र का सामान्य अर्थ ही किया गया है और किया जाता है। विनियोगवाद का तो आधार ही यह है कि मंत्र से जो संकेत मिले उसके अनुकूल यज्ञ में क्रिया सम्पन्न की जाये। इसे ही एतरेय ब्राह्मण (1-1-4) ने रूप समृद्धि कहा है। इसकी व्याख्या में पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं-'यदि ऐसा मंत्र बोला जाए जिसमें उसी क्रिया का वर्णन हो जो यज्ञ में की जाने वाली हो तो इसको रूप-समृद्धता' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जब यज्ञ रचे गये और उनमें पढ़ने के लिए मंत्र छांटे गए तो वे ही मन्त्र छांटे गये जिनके शब्दों से उस क्रिया का लगभग वर्णन प्रकट होता है।'' ऐतरेय ब्राह्मण-प्राक्कथन पृं. 2 सं. 2006 वि.) पुरा काल के ऋषियों ने जब यज्ञों में बोले जाने वाले मंत्रों के अन्त में 'स्वाहा' के उच्चारण का विधान किया तो प्रमाण रूप मे उन्हें यजुर्वेद का यह मंत्र (29-36) मिला। इससे दयानन्द भाष्य में किये गये 'स्वाहा' के स्वामीकृत अर्थ पर कोई आक्षेप नहीं आता।

हैदराबाद महा सम्मेलन (1968) मे आचार्य कृष्ण (स्वामी दीक्षानन्द जी) की अध्यक्षता में सम्पन्न पारायण यज्ञ में भी 'ओम् स्वाहा' उच्चारण पूर्वक आहुतियां डाली गईं। वहां पं धर्मदेव जी, पं विश्वश्रवा जी तथा पं. मीमांसक जी उपस्थित थे। किसी ने आपत्ति नहीं की। उपर्युक्त कथन निर्दोष नहीं है। कहां क्या हुआ, यह अतीत बन चुका। भूतकाल के सारे कार्य आदर्श या आचरणीय नहीं होते। विरोध करने या आपत्ति करने से आज कल कोई मानता नहीं। इसलिए बुद्धिमान् चुप रहना अच्छा समझते हैं। विगत में स्वामी ध्रुवानन्द जी तथा आचार्य विश्वश्रवा तो कर्मकाण्ड में कहीं विधि विरुद्ध होता देख कर टोकते थे। तब के आर्यों में सहिष्णुता तथा सत्य को अंगीकार करने में रुचि थी। अब स्थितियां बदल गई हैं। आर्यों में भी सत्यासत्य विवेक नहीं रहा, विधि निषेध की पहचान नहीं रही। यदि कोई जानकार विद्वान् टोका-टाकी करे तो उसे ही व्यंग्य का लक्ष्य बनाया जाता है और कहा जाता है 'बड़े आये विद्वान् ! शास्त्रों को जानने का ठेका क्या आपने ही ले रखा है।' आदि। अत: देश तथा विदेश की विभिन्न आर्य समाजों में संध्या हवनादि की विधियों के पालन में अनेकरूपता तथा दयानन्द प्रोक्त विधि का उल्लंघन होता देख कर भी अपमान के डर से बुद्धिमान् लोग चुप ही रहते हैं। मुम्बई के यज्ञ में भी यज्ञ के आचार्य ने अनेक विद्वानों के आपत्ति करने पर भी 'ओम् स्वाहा' के दुराग्रह का त्याग नहीं किया।

10. प्राणायाम मंत्र में 'ओम् भू: ओम् भुव:' आदि सात बार ओम् बोलने की तुलना यज्ञ में बोले जाने वाले मंत्रों के अन्त मे स्वाहा से पूर्व ओम् के उच्चारण से नहीं की जा सकती। दोनों के प्रसंग भिन्न हैं।

11. कोई कार्य गलत होता है तो उसे उदाहरण के रूप में पेश नहीं किया जा सकता। सायंकालीन मंत्रों में 'अग्निर्ज्योतिरग्नि स्वाहा' को यदि हम मौन नहीं बोलते (मन मे उसका उच्चारण नहीं करते) अथवा प्रजापति के लिए दी जाने वाली आहुति के मंत्र (ओ प्रजापतये स्वाहा) को हम या आप मन में न बोल कर मात्र ओम् (प्लुत करके) स्वाहा बोल कर घृत की आहुति दे देते हैं तो यह हमारा दोष है। 'कौन इसका पालन करता है ?' कहने से कोई विधि विरुद्ध क्रिया करणीय नहीं हो जाती। यदि स्वामी मुनीश्वरानन्द जी, पं. धर्मदेव जी, पं. वीरसेन जी, आचार्य विश्वश्रवा जी, आचार्य वैद्यनाथ जी तथा पं. युधिष्ठिर जी जैसे विद्वानों द्वारा अनुमोदित विधि को चुनौती (सर्वोपरि धमार्थ सभा के निर्णय के विरुद्ध चलना) दी जाती है तो इसे श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता।

12. आपो ज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुव: स्वरो स्वाहा। (अग्निहोत्र विधि मे पठित) इस मंत्र में स्वाहा के पूर्व ओम् का प्रयोग अपवाद है तथापि आर्ष (दयानन्द प्रोक्त) है। यह स्थिति सन्यास प्रकरण में पठित मंत्र 'त्वं तदापि' की समझनी चाहिए। हमारी तो मान्यता है कि महर्षि ने जिस मंत्र में ओं स्वाहा लगाया वह ठीक है इसके विपरीत हमे या आपको इसके मनमाने प्रयोग की छूट नहीं है। कोई महर्षि के सम्पूर्ण विधान को ही नकार दे तो बात दूसरी है।

निष्कर्ष रूप मे निवेदन है कि पं. सत्यानन्द जी मेरे परम आत्मीय स्वजन तुल्य हैं। मेरी उनकी मैत्री या निकटता 1959 से है जब वे गुरुकुल चितौड़ से स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण हुए थे। मैं उनके पाण्डितय वैदुष्य तथा उनके शास्त्र निष्णात होने का प्रशंसक हूं। सम्भवत: प्रासंगिक लेख भी उन्होंने डा. सोमदेव जी द्वारा सम्पादित पुस्तक पर अपनी सहज प्रतिक्रिया रूप में लिखा है। इसमे गम्भीरता इतनी नहीं है जिसकी अपेक्षा की जा सकती है ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान का 75वां वर्ष

यह वर्ष जातिभेद निर्मूलन वर्ष के तौर पर मनाया जाए....

आर्य समाज के योद्धा सन्यासी, दलितोद्धारक, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के उद्धारक, शुद्धि आन्दोलन के प्रणेता, स्वतन्त्रता आन्दोलन के सेनानी, हिन्दी भाषा के स्वाभिमानी, हमारे प्रेरणा स्रोत स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान को इस वर्ष 75 साल हो रहे हैं, हमारा कर्त्तव्य है कि, **हम 23 दिसम्बर 2001 से 23 दिसम्बर 2002 तक यह वर्ष स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान वर्ष के रूप में मनायें।**

आर्य समाज के क्षेत्र मे आई ग्लानि को दूर करने हेतु इस उपलक्ष्य पर प्रत्येक आर्य, आर्य समाज, प्रतिनिधि सभायें पूरे वर्ष विविध कार्यक्रमों का आयोजन करे।

यह वर्ष जातिभेद निर्मूलन वर्ष के तौर पर मनाया जाए। इस संदर्भ मे विशेष कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए।

निम्नलिखित कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जा सकता है?।

1) बलिदान दिवस पर विशेष व्याख्यान । (2) स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं में विशेष लेख प्रकाशित करना। (3) विद्यालयो-महाविद्यालयों में व्याख्यानों का आयोजन । (4) शुद्धि प्रचार। (5) जातिभेद निर्मूलन कार्यक्रम-अंतरजातिय विवाहितों का सम्मेलन, सहभोजन, दलित परिवारो में यज्ञ-हवन, विचार आदान-प्रदान। (6) अनाथालय, रूग्णालय, वृद्धाश्रम में सम्पर्क। (7) चिकित्सा शिविर-बालक, महिलाएं, वृद्ध । (8) नेत्रचिकित्सा शिविर (9) रक्तदान शिविर (10) अंधश्रद्धा निर्मूलन शिविर (11) व्यसन मुक्ति अभियान । (12) दहेज विरोधी अभियान। (13) स्वदेशी आन्दोलन। (14) गुरुकुल प्रचार । (15) स्वामी श्रद्धानन्द चरित्र प्रकाशन।

प्रत्येक आर्य समाज द्वारा अधिक से अधिक कार्यक्रम किए जाए जिससे आर्य समाज का आन्दोलन फिर से चमक उठे। प्रत्येक कार्यक्रम की समुचित सूचना प्रसिद्ध स्थानीय पत्रिका एव सभी आर्य पत्रिकाओ में जाए।

निवेदक

-प्रा. आर्य अेकनाथ नाणेकर

आर्य समाज पिम्परी, महर्षि दयानन्द पथ, आर्य समाज चौक, पिंपरी नगर, पुणे-411018 (महाराष्ट्र)

राष्ट्रीय सुरक्षा अनुशासन एवं शान्ति का मूल मंत्र-'धर्मदण्ड'

❑ आचार्य आर्य नरेश वैदिक गवेषक उद्गीथ साधना स्थली ग्राम-डोहर, पत्रा. फागू तहसील-राजगढ़ जिला-सिरमौर हि.प्र.-173101

गतांक से आगे

मानवता, नारी, गौ एवं राष्ट्र की सीमाओ की अवहेलना करने वाला व्यक्ति धार्मिक दृष्टि से दण्ड योग्य शत्रु है। ऐसे व्यक्ति पर कभी भी कहीं भी किसी प्रकार से दया नहीं करनी चाहिए। इसलिए वेद का यह आदेश है-"मा नो दु:शंस ईशत।" अर्थात् ऐसे दुष्ट को कभी अपना शासक मत होने दो। "अपघ्नन्तोऽरावण:" अर्थात् राष्ट्र के ऐश्वर्य में बाधक, जनता का खून-चूसने वाले शोषक को समाप्त कर दो। "यदि गां हिंसी" यदि कोई गाय की हत्या करता है तो उस गो घातक को गोली से उड़ा दो। अन्यत्र भी कहा गया है "राष्ट्रद्रोही" शत्रुओं को पुरानी गन्दी रजाई के समान उधेड़ कर रख दो। उन्हे काट-काट कर इस तरह लाशें बिछाओ कि कुत्ते उन्हे फाड़-फाड़ कर खा जाएं। कहने का अभिप्राय यह है कि संसार का प्रथम मानव धर्म वेद ज्ञान स्पष्ट कर रहा है कि यदि सुख-शान्ति चाहिए तो शत्रु के लिए दण्ड उग्र होना चाहिए।

विश्व के प्रथम संविधान निर्माता, न्यायविदों मे सर्वत्र पूज्य महर्षि मनु वेद का ही अनुकरण करते हुए अपनी प्रसिद्ध कृति मनुस्मृति मे कहते हैं-नाततायी वद्ये दोष:। अर्थात् देश, धर्म, शील व संस्कृति की हिंसा करने वाले को मारने में कोई पाप नहीं। अपितु ऐसा व्यक्ति दो प्रकार के पुण्य का भागीदार है। एक तो वह दुष्ट को दण्ड देकर समाज अथवा राष्ट्र को कष्ट से बचाता है और दूसरे उस व्यक्ति का शरीर आत्मा से पृथक् करके उसे और अधिक होने वाले पापो से बचाता है। अत: जो लोग देशद्रोहियो को मृत्यु दण्ड देना उचित नहीं समझते वे उपरोक्त इस सिद्धान्त को समझने का कष्ट करें। वेद एवं शास्त्र मे पूर्ण ज्ञान देने पर भी यदि कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्यकर्म से विमुख होता है तो उसे कठोर दण्ड देने का विधान है। क्योंकि सामान्य दण्ड तो पाप की वृत्ति को और ही बढ़ाता है। यदि दण्ड थोड़ा मिले तो प्रत्येक व्यक्ति यह सोच लेता है कि कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। अत: वह पाप कर्म से रुकता नहीं है। ऐसा होने पर अनेक व्यक्ति थोड़े दण्ड से भयभीत न होने के कारण पाप में प्रवृत्त होने लगेंगे। इसीलिए महर्षि दयानन्द स्वरचित अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं-दण्ड तो कठोर ही होना चाहिए। यदि दण्ड कठोर होगा तो उससे जनता भयभीत होकर पाप करने से बचेगी। इस प्रकार से अधिक लोगों को दण्ड भी नहीं मिलेगा जिससे दण्ड की कुल मात्रा भी कम होगी। अत: मनु महाराज कहते हैं-चोरी करने वाले के हाथ काट दो, दुष्ट कर्म करने वाले की आंख निकाल दो। व्यभिचारी पुरुष को गर्म-गर्म विशाल तवे पर डाल कर मार दो। व्याभिचारिणी स्त्री को कुत्तों से नुचवाकर मरवा दो। यह दण्ड दुष्टो को सार्वजानिक स्थान पर दिया जाए जिससे कि अधिकाधिक लोग देख कर शिक्षा ग्रहण करें और भय के कारण स्वप्न में भी कभी पाप करने का विचार न करें।

आर्यावर्त्त (भारत) जो कभी सोने की चिड़िया, विश्व गुरु और चक्रवर्ती सम्राट कहाता था, जिसकी सीमाएं कभी अफ्रीका तक फैली थीं। पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा, भूटान, बंगला देश आदि जिसके अन्तर्गत थे, विश्व में इसकी पूजा, सुरक्षा और सम्मान का कारण यही दण्ड था। इसी कठोर दण्ड के कारण लोग धार्मिक थे। सम्पूर्ण राष्ट्र में प्राय: कहीं भी मांस, अण्डा, शराब, जूए के स्थान या वेश्यालय नहीं थे। देश में कोई रिश्वतखोर नहीं था, कोई व्याभिचारी, कंजूस और शोषक नहीं था। कहीं चोरी नहीं होती थी। अत: घरों में कहीं ताला नहीं दिखता था। यह सब कुछ दण्ड के ही कारण था। धर्ममय जीवन का आधार दण्ड ही था। दण्ड की निष्पक्ष व्यवस्था और क्षमा की कोई आशा न होने से ही लोग धर्म पर आरुढ़ रहते थे। इसीलिए मनु महाराज कहते हैं-दण्डं धर्मं विदुर्बुधा:। अर्थात् न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है। यदि दण्ड नहीं तो राजा का कोई औचित्य नहीं। यदि दण्ड नहीं तो धर्म का भी कोई आधार नहीं।

प्रबुद्ध पाठक यह भली-भांति जानते हैं कि विश्व के उस राष्ट्र में न्यून अपराध होते हैं जहां दण्ड कठोरत्तम है। जैसे कि सऊदी अरब आदि। अमेरिका का राष्ट्रपति जब सऊदी अरब के सम्राट से मिला तो उसने वहां की शासन व्यवस्था की जानकारी ली। जब अपराध विषयक चर्चा चली तो वह यह जानकर आश्चर्य चकित हुआ आखिर इस देश में कम अपराध होने का कारण क्या है ? सम्राट ने उसे बताया कि हम चोरों के हाथ काट देते हैं। गद्दारों के गले काट देते हैं। पापी-अपराधियों को जमीन में गाडकर पत्थरों से मार देते हैं पर दूसरी ओर विश्व के धनाढ्य और महाप्रबुद्ध देश अमेरिका मे प्रत्येक मिनट में अनेकों चोरियां, बलात्कार एवं हत्याएं जैसे अपराध होते हैं। क्योंकि वहां दण्ड अल्प होता है। बताया जाता है कि बगदाद में बहुत शराब पी जाती थी। वहां के सम्राट ने घोषणा की कि शराब पीने वाले को कोड़ों से पीट-पीट कर मौत के घाट उतार दिया जाएगा। कुछ शराबियों ने इस राज नियम को ढीला करने के लिए सम्राट के पुत्र को शराब पिला दी। जब सम्राट को ज्ञात हुआ तो उसने बिना किसी ननुनच के सामान्य जनता की अपेक्षा अपने पुत्र को कोड़े मारकर मौत के घाट स्वयं अपने हाथों से ही उतार दिया। इस घटना को देख कर एवं सुनकर सारे शराबी बगदाद से भाग गये और बगदाद सदा के लिए शराब से मुक्त हो गया।

पाठकवृन्द ! यह विधान हमारे ही देश की वैदिक संस्कृति से गया है। हमारे यहां दण्ड धर्म का सम्मान न होकर राष्ट्र धर्म की हत्या हुई पर उन्होंने इसे अपनाकर अपने राष्ट्र की उन्नति की। देव दयानन्द एक महाराज भरत की कथा लिखते हैं कि जिसने स्वयं अपने हाथों से अपने अनुशासनहीन पुत्र का सार्वजनिक रूपेण वध कर दिया था। क्योंकि वह किसी की शिक्षा को मानने के लिए तैयार नहीं था। इसी प्रकार के न्यायप्रिय एवं धर्मदण्ड प्रिय शासकों के कारण ही भारत सोने की चिड़िया एवं विश्व पूज्य बना था। यदि आज पुन: वैदिक धर्मानुसार महर्षि मनु एवं दयानन्द की बात को मानकर सर्वप्रथम सामान्य जनों की अपेक्षा विशिष्ट अधिकारियों को हजार गुणा अधिक दण्ड दिया जाए तो सामान्य जनता स्वत: ही अपराधवृत्ति छोड़ दे। यदि देश के चुने हुए स्मगलरों, रिश्वतखोरों, घोटालेबाजों, मिलावटखोरों और गोहत्यारों तथा गद्दारों को दूरदर्शन-आकाशवाणी एवं समाचार पत्रों द्वारा पूर्व सूचना देकर 15 अगस्त एवं 26 जनवरी के दिन लाल किले तथा भारत द्वार (इण्डिया गेट) जैसे सार्वजनिक स्थानों पर कोड़े मार-मार कर अथवा कुत्तों से नुचवा कर मार दिया जाए तो सम्भवत: भारत पुन: सोने की चिड़िया और विश्व वन्दनीय राष्ट्र बन सके। इसमें दो मत नहीं कि उसी घर उसी संस्था, उसी ग्राम अथवा उसी राष्ट्र में बाहर से अधिक आक्रमण होते हैं जिसके लोग कमजोर दण्डहीन अथवा तथाकथित अहिंसा की भावना से क्षमा करने की मूर्खता करते हैं। क्योंकि अहिंसा का अर्थ वैदिक शास्त्रों में कहीं भी न मारना नहीं है। और न ही मारना अर्थात् शत्रु अपराधी को छोड़ देना पुण्य नहीं है। यदि कोई न्यायाधीश कई व्यक्तियों के हत्यारे व्यक्ति को मृत्युदण्ड देने की अपेक्षा छोड़ देता है तो जनता उसे पापी, घूसखोर और अन्यायकारी कहती है। इतना ही नहीं अपितु ऐसे एक हत्यारे को छोड़ देने से अभय दान के कारण कई और हत्यारे जन्म लेते हैं। इसीलिए भारत की प्राचीन संस्कृति वैदिक धर्म मे अहिंसा का अर्थ छोड़ देना क्षमा करना या न मारना न होकर न्याय करना लिखा है। जिसे महर्षि दयानन्द ने 'यथायोग्य व्यवहार' की संज्ञा दी है। अत: श्रेष्ठ का सत्कार करना जहां धर्म एवं अहिंसा है। अर्थात् न्यायोचित कर्म है वहां दुष्ट को यथायोग्य दण्ड देना भी परम धर्म एवं अत्यन्त न्यायोचित कर्म है। यही वास्तविक अहिंसा कर्म है। यदि भारत के लोग इस वैदिक अहिंसा को समझते और दुष्ट तथा देशद्रोही को मारना परम धर्म अपनाते तो भारत कभी गुलाम न होता। यहां कभी गौएं न कटती, कभी कहीं भी धर्मान्तरण न होता, कभी मांस और शराब की मण्डी न सजती और न ही कहीं जूआखाने तथा वेश्यालय ही दिखाई देते।

श्रेष्ठ संगठन—आर्य समाज

❑ ले० डॉ० कृष्ण लाल जी १३७, सरस्वती विहार, दिल्ली-११००३४

अमीर-गरीब, छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, बाल-युवा, देश-विदेश, सभी जातियों के सच्चरित्र स्त्री-पुरुषों का एकमात्र संगठन आर्य समाज है। आर्य समाज चरित्र पर बल देता है। आर्य समाज का आदर्श वाक्य है- कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। यह वेद पर आधारित धर्म, नीति, उपासनापद्धति, चरित्र-निर्माण चाहता है। इसी का प्रचार वह करता है। अन्ध विश्वासों को छोड़कर सब आर्य बने, श्रेष्ठ बनें। आर्य कौन है ? जो चलता है, गति करता है, निरन्तर कार्य करता है, आलस्य मे नहीं रहता। आर्य केवल अपनी उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होता। वह अपने साथ सम्पूर्ण समाज को, सारी मानवता की, सारे प्राणी-जगत् की रक्षा और उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहता है। इस विषय में आर्य समाज का निम्नलिखित नवम-नियम स्मरणीय है-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। कैसी उन्नति अपेक्षित है, यह बात इससे पहले छठे नियम में स्पष्ट कर दी गई है जहां यह कहा गया है कि "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

आर्य समाज अन्य मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों से इस बात में भिन्न है कि जहां अन्यत्र तथाकथित भगवानों, प्रजापतियों, आचार्यों आदि की बातों पर विश्वास करके उनका अन्धानुकरण किया जाता है, वहां आर्य समाज के मन्तव्य ईश्वरीय वाणी वेद पर आधारित है। ईश्वर की वाणी मानवमात्र के व्यापक कल्याण के लिए प्रकट हुई।

अन्य सम्प्रदाय एकाङ्गी हैं, बाह्य आडम्बरों में विश्वास करते हैं, चमत्कार दिखाकर, प्रदर्शन के द्वारा जनता में आकर्षण पैदा करते हैं। दूरदर्शन में ऐसे साधु बाबा को कुम्भ मेले में दिखाया गया जिसकी खड़ाऊं में उल्टी (पांवों की ओर नोक वाली) कीलें और इसी प्रकार आसन पर कीलें लगी हुई थीं परन्तु हाथ में सिगरेट सुलग रही थी जो सिगरेट जैसे व्यसन को नहीं छोड़ सका उसे औरों को उपदेश देने का अधिकारी कैसे हो गया ? ऐसे आडम्बर बहुत चल रहे हैं। ये चरित्र-हीन, दिखावा करने वाले साधु-सन्यासी समाज को कहां ले जायेंगे। कई सस्थाओं में शिविर (ध्यान शिविर) लगाते हैं और भोजन-आवास के नाम पर 250/- रु प्रतिदिन लेते हैं। साधक जाने-आने का व्यय अपनी जेब से करते हैं और आठ-आठ, दस-दस दिन तक अपने कार्य की हानि करते हैं-सो अलग। वहां केवल व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति का राग अलापते हैं। उनका उद्धेश्य ही है कि व्यक्ति को समाज-परिवार से काट जाए। वे कहते हैं कि व्यक्ति सुधरेगा तो समाज सुधरेगा। यह कभी सम्भव नहीं क्योकि समाज से व्यक्ति को पहले ही काट दिया गया। ब्रह्मकुमारियों के सत्संग में केवल सफेद वस्त्र पहन कर जाने का नियम है। इसी प्रकार राधास्वामियो के सत्संगो मे बहुत भीड़ होती है। आसाराम, मुरारी बापू जैसे धर्माचार्य अपनी आरती उतरवाते हैं और अन्धविश्वासों का प्रचार करते हैं। उनके प्रवचनो में जो कुछ थोड़ी अच्छी बात होती है वह वैदिक होती है, परन्तु वेद का नाम नहीं लेते। मुझे नहीं लगता कि इनके प्रवचनों से कुछ सुधार हुआ है। वास्तव में बहुत बार इन बापूओं-बाबाओं के नाम पर उनके भक्तों द्वारा रात-दिन प्रचार के द्वारा अन्धविश्वासी लोगों की भीड़ इकट्ठी की जाती है। उनसे पूछो कि क्या सुना, क्या समझ आया तो सब हवा। ऐसा ही रात्रि-जागरणों में होता है। वहा बहुत से गाने बजाने वालों को शामियाने के पीछे मदिरापान करते देखा गया है। इसके अतिरिक्त ऊंची आवाज में ध्वनिविस्तारक चलाकर आसपास के लोगों की नींद में बाधा होती है।

इन सबके विपरीत आर्य समाज आडम्बर, प्रदर्शन में विश्वास नहीं करता। उसका उद्देश्य चरित्र-निर्माण कर सबको आर्य बनाना है। यज्ञ भी प्रदर्शन नहीं है, पर्यावरण की शुद्धि के लिए, सब प्राणियों की सुख-सुविधा के लिए आदि काल से यज्ञ प्रचलित हैं। श्री राम और श्री कृष्ण स्वयं भी यज्ञ करते थे और ऋषियो द्वारा अनुष्ठित यज्ञो की रक्षा करते थे। सम्पूर्ण सृष्टि यज्ञमय है। यज्ञ सारी सृष्टि की नाभि है, उसका केन्द्र है (अय यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभि:) केवल अपने ध्यान में केन्द्रित व्यक्ति आत्म-सीमित होकर समाज के लिए क्या कर सकता है ? आर्य समाज, व्यक्ति और समाज-जीव के दोनो छोरो को उत्प्रेरित करता है जिससे कि व्यक्ति सन्ध्या-स्वाध्याय द्वारा आत्मोत्थान भी करे और हवन-दान (विद्या-अभय-धन) के द्वारा आत्मोत्मसर्ग करके समाज का उत्थान भी करे और उसमे यह सब करते हुए दर्प की भावना न आये। वह यह मानकर चले कि इस व्यापक अर्थ मे यज्ञ प्रकृति का नियम है।

(टंकारा समाचार से साभार)

संस्कारों का प्रभाव

❑ ले० महात्मा प्रेम प्रकाश वानप्रस्थी, आर्य कुटिया, धूरी (पजाब)

आज से लगभग 12 वर्ष पूर्व श्री कर्मचन्द जी बंसल के घर मे मैं "चतुर्वेद ब्रह्म परायण महायज्ञ" करवा रहा था, वहा उनके प्रेमी श्री वासुदेव जी धूरी भी आने लगे। क्योकि चतुर्वेद ब्रह्म परायण महायज्ञ श्री बसंल जी प्रतिवर्ष करवाते रहे, और वासुदेव जी आते रहे । यह यज्ञ एक मास तक चलता था। श्री वासुदेव जी ने सैंकड़ो प्रवचन सुने और बहुत प्रभावित हुए, मुझे कहने लगे, मैं आपको गुरु बनाना चाहता हूं, मैंने कहा, पहले शराब आदि व्यसन त्याग करो। उन्होंने त्याग दिए। फिर मैंने कहा, प्रात: सायं ध्यान करो। उसे भी वह करने लग गये और जीवन पवित्र बन गया।

अब उनके घर मे दैनिक यज्ञ होता है और यज्ञशाला भी बन गई है दो बार सामवेद पारायण यज्ञ करवा चुके हैं। चारो वेद घर में है और आज श्री वासुदेव आर्य के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा दो वर्ष जिला आर्य सभा संगरूर के प्रधान रह चुके हैं और आज कल आर्य सीनियर सैकेंडरी स्कूल धूरी के प्रधान हैं। आर्य संस्थाओं को दान भी खूब देते हैं। गत 15 नवम्बर को उनकी पूज्य माता पुन्ना देवी जी 95 वर्ष की आयु में परलोक गमन कर गईं। उनका अन्त्येष्ठी संस्कार वैदिक रीति अनुसार हुआ और परिवार में चतुर्वेद शतक यज्ञ आर्य समाज धूरी के पुरोहित जी करवाते रहे। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि उनकी अन्तिम शोक सभा 25 नवम्बर 2001 को हुई, उसमे भी विशाल यज्ञ करवाया तथा विभिन्न सस्थाओ को 53000/- (तिरेपन हजार) रुपए दान दिये। संस्कारो का ही प्रभाव था कि माता जी की उन्होंने बहुत सेवा की और दान भी सबसे अधिक आर्य संस्थाओं को दिया, जिसमें 31000/- (इकतीस हजार) रुपए आर्य सीनियर सैकेण्डरी स्कूल को अपनी पूज्या माता जी के नाम से कमरे के लिए दिया और लगभग दस हजार रुपए का आर्य साहित्य वितरण किया।

अत: मेरा निवेदन है कि घर मे सस्कारो के लिए दैनिक यज्ञ दोनों समय सन्ध्या गायत्री जाप या ध्यान परिवार मे अवश्य करे। घरो में हजारो रुपए की व्यर्थ चीज़ें पडी रहती है परन्तु परम पिता परमात्मा की कल्याणी वाणी "वेद" और महर्षि दयानन्द जी महाराज कृत ग्रन्थ नहीं होते, यह शोभा की बात नहीं। घर मे वेद वाणी के गान से घर का वातावरण शुद्ध रहता है और परम पिता परमात्मा शरीर के लिए "सुख" और मन के लिए "शान्ति:" और आत्मा के लिए "आनन्द" की वृष्टि करते हैं।

-प्रेम प्रकाश वानप्रस्थी, आर्य कुटिया धूरी

आर्य-समाज आर्यों का समाज बने !

❑ यशपाल 'यश', 35-60, रजत पथ, मानसरोवर, जयपुर

आर्य-समाज स्वामी दयानन्द द्वारा निर्मित वह संस्था है, जिसका लक्ष्य संसार का उपकार यानि शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उन्नति करना है। स्वर्णिम अतीत को देश की आजादी के लिए हुए शान्तिधारी और क्रान्तिकर्मियों ने सर्वत्मना उत्सर्ग कर इसके दीवानों ने प्रतिपादित किया है। हिन्दुओं की पौगा पन्थी पर पाखण्ड खण्डिनी पताका द्वारा मुस्लिमों के कठमुल्लेपन व ईसाइयों की राज्य व धन शक्ति से फैली ईसाइयत को शास्त्रार्थ और सत्यार्थ-प्रकाश से थामा गया है और तदनुसार परिवर्तन बदलाव व क्रान्ति का सफल बीजारोपण देव दयानन्द और आर्य समाज द्वारा हुआ था। किन्तु क्या आर्य समाज आज आर्यों का समाज बना है ? यह प्रश्न क्रियात्मक उत्तर मांग रहा है हम सबसे, जो हमें देना है।

यह सत्य है कि आज भी इसके पास त्यागी, तपस्वी, विद्वान्, तपोमूर्ति साधु सन्यासी, प्रचारक, लेखक, व्याख्याता मौजूद हैं आज देश में आर्य समाजी अग्निहोत्र (स्वाध्यायी व सन्ध्योपासनी) उदारमना दानवीर दानदाता महिला पुरुष मौजूद है। अनेक देशों में इसकी शाखायें भव्य भवन व संस्थाएं भी हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था की चर्चा रविवारीय साप्ताहिक सत्संगों से लेकर अन्तर राष्ट्रीय सम्मेलनो व सत् साहित्य पत्र है। फिर भी हम चिन्तित हैं कि युवा पीढी में जबकि चरमोन्नत भौतिक ग्लैमर के रहते हुए "आर्य-पद्धति" (जिसकी मूल दक्षिणा मे वैदिक वर्णाश्रम की स्थापना मागी थी) कैसे कामय रहेगी ? दोनो प्रश्न एक दूसरे के पूरक हैं।

आत्मावलोकन

हमे विचारना होगा कि हम दोंहरी सामाजिक निष्ठा की मानसिकता मे पडे हैं। हम अच्छे विचारशील भावना शील कर्मठ उत्सर्ग करने को लालायित आर्य-समाजी, तो हैं ही, साथ-साथ हम क्या अग्रवाल समाजी, जाट समाजी, राजपूत समाजी, ब्राह्मण, मीणा, जाटव आदि अन्य समाजी नहीं हैं? हमें अपने गिरेबान के अन्दर झांकना होगा कि हम आर्य समाजी दोहरी निष्ठा के कारण "धोबी के कुत्ते की तरह रह गये हैं जो न घर के हैं न घाट के" हम जीवन्त आर्य समाजी भी नहीं हैं (वर्णाश्रम के पालन न करने के कारण) और आर्य समाजी होने के कारण प्रथम श्रेणी (डिग्री) के जन्मगत जाति के समाजी भी नहीं हैं ? हमारे मुख से निकलने वाली वेद-सत्यार्थ प्रकाश जमा खर्च होकर रह गई है। हमारे कुछ महानुभावो ने हालांकि जन्मगत जाति-पाति के बंधन को तोड़कर गुण कर्मानुसार रोटी-बेटी (अन्तर जातीय विवाह अपनाकर) का व्यवहार किया है आर्य महासम्मेलन राम लीला मैदान दिल्ली मे आयोजित समाज बदलो सम्मेलन में पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह के आह्वान पर अन्तर जातीय विवाह प्रोत्साहन व सम्मान तथा चरण सिंह अवार्ड योजना लेखक ने शुरू कर रखी है मगर आर्य समाज के बड़े संगठन धारी या काबिज लोग इसे पं. जवाहर लाल नेहरू की तरह तरजीह नहीं देते।

आर्य सामाजिक स्तर पर हमने आर्यों का समाज बनाने के लिए गंभीर होकर रोटी-बेटी के व्यवहार को अपनाने की दिशा में यानि आर्य समाजियों की सन्तानों को आर्य समाजी परिवारों में ही विवाहित करने का संकल्प पूर्ण निश्चय नहीं किया। इससे हमारी निष्ठा डगमगा गई। और हम कोई व्यावहारिक आर्यों का समाज 'आर्य-समाज' नहीं बना सके। चूने-पत्थर के भवन कभी आर्य समाज नहीं हो सकते। कई स्थानों पर तो आर्य समाज जातियो में बंटा है आखिर क्यों ? कुछ विचारणीय बिन्दु हैं जिन पर हम ईमानदारी से चिन्तन कर व्यवहार करें तो आर्य समाज का संस्थागत रूप ही जीवन्त नहीं हो उठेगा अपितु आर्य समाज आज समग्र क्रान्ति का अग्रदूत बनेगा। मां भारती की अखण्डता को बना खतरा जाति-वाद का खात्मा होगा ऋषि के ऋण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा।

1 आर्य समाज, आर्य संस्थाओं, प्रतिनिधि सभाओं के अधिकारी जन्म गत जाति के संगठनों के अधिकारी नहीं बने। आर्य समाज के अधिकारी जातिगत संगठनों के कार्यक्रमों में शरीक न हो।

2. जाति सूचक या उपजाति द्योतक 'सरनेम' (यथा गुप्ता, शर्मा, मीना, गुर्जर, जाट, राजपूत आदि) का उपयोग बन्द करें।

3. गुण कर्म स्वभावानुसार अन्तर जातीय विवाहों को स्वयं अपनाकर सन्तानों को करने का संकल्प करें। आर्य समाज व प्रतिनिधि सभाएं 'लव मैरिज' अधिकतर 'अनार्ष विवाह' मैरिज की दुकान न बन कर सामूहिक गुण कर्म स्वभावानुसार विवाहों का सम्पादन करें पृथक प्रकोष्ठ बनाकर सुव्यवस्थित संचालन करें। दहेज जैसा दानवी मानवता को कलंकित करने वाला अभिशाप, कम खर्चीली आर्य समाज द्वारा आयोजित कार्यक्रम को स्वत: मिटने लगेगा।

4 सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा प्रान्तीय सभाएं सरकारों को कानूनी तौर पर बाध्य करावें ताकि सरकारी मंत्री या अधिकारी राज्य या केन्द्र शासन की हैसियत का उपयोग जातिगत संगठनों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रोत्साहन के लिए प्रयोग न करें और न ही कार्यक्रमों में शरीक हों।

5. जाति या उपजाति के नाम से सम्बोधित संस्थाओं के आगे जाति सूचक नाम हटवाने के लिए कानून बनवायें जो नाम नहीं हटाये उसकी सरकारी सहायता व मान्यता समाप्त करने के लिए आन्दोलन आर्य समाज करे।

आर्य समाज की प्रतिनिधि सभा राष्ट्रीय स्तर की राजपत्रित सेवाओं के लिए अन्तरभाषायी के मध्य विवाह या अविवाहित होने पर ऐसा करने का बॉण्ड भरे ऐसी अर्हता परीक्षाओं में प्रवेश के लिए आवश्यक घोषित हो राज्य स्तर पर पदो के लिए अन्तर जातीय विवाह या विवाह का बॉण्ड भरना आवश्यक कराने के लिए जन जागृति अभियान शुरू कर सरकारो को ऐसा करने के लिए मजबूर करें।

7. आर्य समाजें अन्तर जातीय व अन्तर भाषायी के मध्य विवाहों का आयोजन वैदिक रीति से सम्पन्न करावे ताकि शराब आदि का सेवन भौंडा प्रदर्शन रुके।

आशा है वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना के लिए आर्य समाज समग्रता से ध्यान देगा। अन्यथा स्वतंत्रता प्राप्ति, नारी शिक्षा, अछूतोद्धार, विधवा-विवाह संरक्षण, सती प्रथा उन्मूलन आदि कार्यक्रम तो पूर्ण हो चुके हैं या हो रहे हैं। इन्हें शासन अपना चुकी है। अब तो सम्पत्ति ही नहीं संतति के राष्ट्रीयकरण के मूल मंत्र "वर्णाश्रम" की स्थापना के लिए संघर्ष ही लक्ष्य बनाना होगा।

श्री सत्यानन्द जी मुंजाल की सुपुत्री का देहावसान

आर्य समाज के प्रसिद्ध समाज सेवी एवं उद्योगपति श्री सत्यानन्द जी मुंजाल की सुपुत्री श्रीमती सुषमा चोपड़ा धर्म पत्नी श्री जितेन्द्र चोपड़ा का लम्बी बिमारी के बाद 4-11-2001 को देहावसान हो गया। उनकी आयु केवल 53 वर्ष थी। उनका अन्तिम शोक दिवस 11-11-2001 को सायं 3 से 5 बजे तक आर्य सी.सै. स्कूल लुधियाना के प्रांगण में मनाया गया जिसमें हजारों की संख्या में लोगों ने भाग लेकर दिवंगतात्मा को अपनी श्रद्धांजलि भेट की। आर्य समाजों तथा शिक्षा संस्थाओं की ओर से शोक प्रस्ताव भेजे गए। महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट टंकारा, आर्य समाज अनारकली दिल्ली, भारतीय हिन्दु शुद्धि सभा, प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, डी.ए.वी. कालेज प्रबन्ध कर्त्री समिति आदि की ओर से शोक संवेदना प्रकट करते हुए मैं दिवंगतात्मा की सद्गति के लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की गई। —राम नाथ सहगल

मकर संक्रान्ति एवं पोंगल

❑ ले० श्री तरसेम कुमार आर्य, महामन्त्री जिला आर्य सभा बठिण्डा

मकर संक्रान्ति भारत वर्ष का एक अति प्राचीन महा पर्व है जो ५र ५र्ष विक्रमी सम्वत् के माघ मास की पहली तारीख को मनाया जाता है। यह पर्व इस वर्ष 14 जनवरी 2002 को मनाया जा रहा है। यह एक भूगौलिक पर्व है जिसका सम्बन्ध हमारी धरती से जुड़ा हुआ है।

नामकरण : हमारी पृथ्वी सूर्य के चारों ओर साल भर में एक परिक्रमा पूरी करती है। जिस अंडाकार पथ पर यह धरती घूमती है उसको क्रान्ति-चक्र (आरबिट) कहा जाता है। हमारे विज्ञानियो ने समय का विभाजन करने के लिए उस क्रान्ति-चक्र को बारह भागो में बांट लिया है। प्रत्येक भाग का नाम उस समय आकाश स्थित तारा पुज के नाम पर रखा गया जो राशियो के नाम से जाने जाने लगे जैसे मीन, मकर, कर्क आदि। और जिस दिन हमारी पृथ्वी एक राशि की यात्रा पूरी कर दूसरी राशि मे प्रवेश करती है उसको संक्रान्ति (संग्रांद) कहते हैं अत: मकर संक्रान्ति का अर्थ हुआ वह दिवस जिस दिन हमारी पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती-घूमती मकर राशि में प्रवेश करती है।

मकर संक्रान्ति का महत्व : यूं तो हम कहते हैं कि सूर्य पूर्व से निकलता है। पर वास्तविकता यह है कि जैसे सूर्य उदय होने का एक समय नहीं है उस तरह सूर्य उदय होने का स्थान भी एक नहीं है। इसका कारण हमारी धरती की दो गतियां हैं एक दैनिक गति दूसरी वार्षिक गति। धरती की वार्षिक गति की चर्चा ऊपर कर दी गई है। अब इसकी दैनिक गति के बारे में जानने का प्रयत्न करते हैं। धरती की दैनिक गति वह गति है जिसके द्वारा धरती अपने धुरे के इर्द-गिर्द ही लट्टू की तरह एक चक्र पूरा करती है (The Earth Revolve) अब जिस धूरे के इर्द-गिर्द यह धरती घूमती है वह धुरा इस क्रान्ति-चक्र पर सीधा लम्बकार में खड़ा न होकर लगभग 66° पर झुका हुआ है। इस झुकाव के कारण ही सूर्य उदय के समय और सूर्य उदय के स्थान मे परिवर्तन होता है। छ: महीने तक सूर्य प्रत्येक दिन पिछले दिन से थोड़ा उत्तर की ओर हट कर निकलता हुआ दिखाई देता है और छ: महीने तक सूर्य प्रतिदिन पिछले दिन से थोड़ा दक्षिण की ओर हट कर निकलता हुआ दिखाई देता है। इस छ: मास की अवधि को हमारे शास्त्रों में आयण कहा गया है। जिन छ: महीनों में सूर्य पिछली स्थिति से उत्तर की ओर हट कर निकलता है उसे उत्तरायण और जिन छ: महीनो में सूर्य पिछली स्थिति से दक्षिण की ओर हट कर निकलता है उसे दक्षिणायण कह कर पुकारा जाता है। मकर संक्रान्ति से उत्तरायण का आरम्भ होता है और कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायण का आरम्भ माना जाता है। अब जिस दिन सूर्य पिछली स्थिति से उत्तर की ओर हट कर निकलेगा तो पिछले दिन के सूर्य उदय के समय से पहले उदय होगा और देर से छिपेगा और जिस दिन सूर्य पिछले दिन की स्थिति से दक्षिण की ओर हट कर निकलेगा तो देर से निकलेगा। कर्क संक्रान्ति से दक्षिणायण का आरम्भ होता है उस दिन से ही दिन छोटे होने लगते हैं और रातों की अवधि बढ़ने लगती है। दिन छोटे होते-होते दक्षिणायण के अंत तक पौष मास मे दिन की अवधि केवल दस घंटे की रह जाती है और रात्री चौदह घंटे की हो जाती है। एक बात और पौष मास में जबकि दक्षिणायण अपने अन्तिम समय के निकट है तो शीत अपने यौवन पर होता है। बच्चे, युवक, बूढ़े सभी लोग सर्दी के कारण परेशान दिखाई पड़ते हैं और धूप निकलने की प्रतीक्षा करते हैं। धूप न निकलने पर अग्नि जला कर सर्दी से छुटकारा पाने का यत्न करते हैं। मकर संक्रान्ति से उत्तरायण का आरम्भ होता है तो दिन क्रमश: बड़े होने लगते हैं और रातें छोटी होने लगती हैं। उत्तरायण काल में सूर्य शीघ्र निकलने के कारण और दिन बड़े होने के कारण हमें सूर्य का प्रकाश और गरिमा (ऊर्जा) अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। सूर्य का प्रकाश और गरिमा हमारे लिए जीवनदायी है। इसी कारण प्राचीन लोग उत्तरायण काल को एक पावन काल मानते थे। प्राचीन ग्रन्थों में तो इस काल को "देव यान" भी कहा गया है। और तो और कई लोगों की तो यह भी इच्छा होती थी कि वे अपने प्राण भी त्यागें तो उत्तरायण काल मे ही। महाभारत मे हम पढ़ते ही हैं कि अर्जुन के बाणो से घायल भीष्म पितामह शर शेय्या पर पड़े पडे उत्तरायण काल आरम्भ होने की प्रतीक्षा करते रहे और उत्तरायण काल आरम्भ होने पर ही उन्होने अपने प्राणो का त्याग किया। उत्तरायण काल के इस महत्व का ज्ञान रखने वाले हमारे ऋषियों ने मकर संक्रान्ति को, जिस दिन उत्तरायण काल का आरम्भ होता है, एक महान पर्व के रूप मे मनाने का संकल्प किया। मकर संक्रान्ति का पर्व सकल भारत मे किसी न किसी रूप मे अवश्य मनाया जाता है। उत्तर भारत मे लोग इस दिन बहुत शीघ्र जाग जाते हैं और किसी नदी नाले अथवा सरोवर मे ठण्डे जल से स्नान कर यज्ञ, हवन तथा पूजा पाठ करते हैं। दक्षिण भारत मे यह पर्व पोगल के रूप मे लगातार तीन दिन तक मनाया जाता है। पंजाब मे यह पर्व लगातार दो दिन तक लोहडी और माघी के रूप मे मनाया जाता है। मकर संक्रान्ति की पूर्व सन्ध्या पर लोहडी की सायं को लोग अपने-अपने घरो के बाहर लकडियो तथा गोबर के उपलो का ढेर जला कर उस मे तिल-मूंगफली तथा अन्य मेवो का आहुति डालते हैं जो हमे प्राचीन काल मे रचाये जाने वाले बडे-बडे यज्ञ हवनों की याद दिलाते हैं।

श्री सरदारी लाल जी के पिता का देहावसान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकारी व आर्य समाज के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री सरदारी लाल जी आर्य रत्न के पिता श्री वैसाखी राम जी का देहावसान 95 वर्ष की आयु में 8-12-2001 को हो गया। उनका अन्तिम शोक दिवस 18-12-2001 को जालन्धर मे मनाया गया जिसमे जालन्धर व पंजाब की कई आर्य समाजों के अधिकारियो व कार्यकर्त्ताओं ने वहां पहुंच कर तथा कई राजनैतिक नेताओं ने इस अवसर पर अपनी-अपनी श्रद्धांजलि उन्हे भेट की। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कई अधिकारियों ने वहां पहुंच कर अपनी श्रद्धांजलि भेंट की और दिवंगतात्मा की सद्‌गति के लिए परमात्मा से प्रार्थना की।

सभा प्रधान श्री हरबंस लाल जी शर्मा ने अपने एक शोक सन्देश मे अपनी ओर से व आर्य प्रतिनधि सभा पंजाब की ओर से आर्य विद्या परिषद पंजाब की ओर से व सभा से सम्बन्धित आर्य समाजों व शिक्षण संस्थाओं की ओर से उन्हें श्रद्धांजलि भेंट की। स्व श्री बैसाखी राम जी एक नेक इन्सान थे वह अपने पीछे पुत्र-पौत्रों से भरा परिवार छोड कर गए हैं। उनके पांचों सुपुत्र श्री सरदारी लाल जी, श्री राम चन्द जी, श्री बनारसी दास जी, श्री हरबंस लाल जी व श्री राजकुमार निरन्तर आर्य समाजी की सेवा करते आ रहे हैं। उनका सारा परिवार आर्य समाज परिवार है। यह उनकी आर्य समाज को एक बहुत बड़ी देन है।

–धर्मदेवार्य

लुधियाना में पारिवारिक सत्संग

आर्य समाज सिविल लाईन लुधियाना के तत्वावधान में 23-12-2001 रविवार को पारिवारिक सत्संग श्री पी.एल अरोड़ा कोठी न 418 फेज-2 अर्बन एस्टेट डुगरी रोड, लुधियाना में सायं 3.30 से 5.30 बजे तक सम्पन्न हुआ। जिसका जनता पर बहुत प्रभाव रहा।

30-12-2001 रविवार को पारिवारिक सत्संग सायं 3.30 से 5.30 तक श्री डा. ए.के. थापर अपोजिट पुलिस लाईन लुधियाना मे मनाया जा रहा है। लुधियाना की आर्य जनता से प्रार्थना है कि समय पर पधार कर सत्संग की शोभा बढ़ाएं व धर्म लाभ उठावें।

–नरेन्द्र भल्ला

कर्मवीर, शूरवीर, महान् स्वतंत्रता सेनानी व साहस की भीषण ज्वाला थे–स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

❑ले० श्री सुदामा शास्त्री आर्य समाज फतेहाबाद (हिसार)

एक सूक्ति है कि ''सामान्य लोग परिस्थितियों के सामने झुक जाते हैं जबकि असामान्य लोग उन पर हावी हो जाते हैं ।'' यह सूक्ति बिल्कुल स्वामी श्रद्धानन्द के ऊपर सटीक बैठती है। असाधारण लोग तात्कालिक परिस्थितियों एव चुनौतियों का सामना करते हुए अन्ततोगत्वा अपनी मजिल को पा ही लेते हैं। किन्तु भीरु व पलायनवादी प्रकृति के लोग सामान्य परिस्थिति समस्या व बाधाओं की दल-दल कीचड में धस कर अपनी मजिल को बहुत दूर पाते हैं। सृष्टि के आदि से लेकर अब तक अरबों-खरबो लोगो ने जन्म लिया जिन्होने अपने जीवन का लक्ष्य मात्र खाना-पीना और मौज-मस्ती करना (Eat Drink and Be merry), बनाया, उनके लिए मानुषिक चोला कोई महत्वपूर्ण पदार्थ नहीं रहा परन्तु जिन्होंने इस जीवन को औरों के लिए समझा मानवता का पुजारी बनकर देश, समाज व जन-जन की सेवा की, वो ही अपने जीवन की सार्थकता लौकिक व पारलौकिक रूप में जन-जन के मानस पटल पर अंकित की। इसीलिए किसी कवि ने बड़ा ही सुन्दर शब्दो में मानवीय जीवन का चरित्र चित्रण किया है–''*कोई रो के मरता है, कोई हसके मरता है।*

जग उसको याद करता है जो कुछ करके मरता है।''

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भी एक ऐसे महामानव थे, जिन्होंने देश व समाज के लिए कुर्बानी दी। जीवन के अन्दर कुछ करके बलिदान हुए। जिसके कारण आज हम उन्हें याद कर रहे हैं। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी के शब्दो में–''स्वामी श्रद्धानन्द एक महान् समाज सुधारक थे। कर्मवीर थे, शूरवीर थे, वाकशूर नहीं। सकट आने पर घबराते नहीं थे, बल्कि उसका डट कर दिल और दिमाग व तन-मन से मुकाबला करते थे।'' प्रथम राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में–''स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की हिन्दू-मुस्लिम एकता की शुद्ध भावना, दृढता, सत्यनिष्ठा, स्पष्टवादिता, निर्भीकता व देश प्रेम की निष्ठा इतिहास के पन्नों पर व स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लेखनीय एवं अनुकरणीय है।'' प्रथम प्रधानमंत्री पं जवाहर लाल नेहरू के शब्दो मे–''स्वामी श्रद्धानन्द देश सेवा में अपने आप को अहर्निश लगाये हुए थे। उनका भीषण साहस व ओजस्वी शेर गर्जना सदैव मुझे याद रहती है।'' भारत कोकिला श्रीमती सरोजनी नायडू के शब्दों में–''स्वामी श्रद्धानन्द मेरी स्मृति एवं मेरे अनुराग के आराध्य देवता, वर्तमान संतति के सन्मुख एक ऐतिहासिक मूर्ति के रूप में विराजमान हैं। भारतीय जीवन के धार्मिक व आध्यात्मिक क्षेत्र मे और राष्ट्र सुधार के कार्य सदैव स्मरणीय रहेंगे।''

स्वामी जी का जीवन पढ कर जब व्यक्ति तहे दिल से चिन्तन मनन के सागर में गोते लगाना शुरू करता है। उनके जीवन की महानता की गहारी में बे-रोकटोक सहसा ओझल हो जाता है। उनके गुरु वेदों के प्रकाण्ड विद्वान्, महान् समाज सुधारक, महान् शिक्षाविद, महान् दार्शनिक, तत्ववेत्ता, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम प्रेरक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। जिनका सान्निध्य प्राप्त करके व गुरु चरणों में बैठ कर जनसेवा का पाठ सीखा था। उस समय की भारतीय समाज की दुर्दशा को भली प्रकार से देखा था। आतताई अग्रेज शासकों के जुल्म एवं अत्याचार को बड़ी नजदीकी से परखा था। अज्ञान रूपी अधकार में भटके हुए समाज को, देश को देख रहा था। विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराईयों में फसे हुए समाज की निकटतम परिस्थिति का सिहावलोकन किया था। भला, ऐसे व्यक्ति समाज व देश का सुधार किए बिना कैसे रह सकता था। सब से पहले स्वामी जी महाराज ने हरिद्वार के निकट बिहड निर्जन जंगल में गंगा के निकट कांगड़ी नामक गांव के पास महान् शिक्षा का केन्द्र गुरुकुल के रूप में प्रतिस्थापित किया। अंग्रेजी शासन के दौरान शिक्षा का भारतीयकरण करना, प्राचीनता के साथ जोड़ना, नगी तलवार की धार पर चलने के समान था, आग में हाथ डालने के बराबर था। ऐसी विकटतम परिस्थिति में शिक्षा के क्षेत्र में महान् क्रांति ला खड़ी कर दी। शिक्षा विशुद्ध भारतीय थी। शिक्षा के साथ स्वतंत्रता का पाठ भी पढ़ाया जाता था। इतिहास इस बात का गवाह है कि उस गुरुकुल से निकले हुए स्नातकों ने आजादी की लड़ाई में धूम मचा दी। सैंकड़ों ने हंसते-हंसते फांसी के फंदे चूम लिए। यहा तक कि इनके बड़े पुत्र हरिश्चन्द्र ने 1914 ई में विलायत जाकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा दी। जिसके कारण इनका पुत्र देश पर बलिदान हो गया। इनके छोटे पुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति जो गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम स्नातक थे, ने गांधी जी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर व देश के बड़े-बडे नेताओं के साथ आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ कर हिस्सा लिया था। जब महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ आदोलन चला रहे थे उसी दौरान गांधी जी ने स्वामी जी के पास सहयोग की भावना के साथ एक पत्र लिखा । स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ऐसे कामों से, सहयोग के नाम पर कैसे पीछे हटने वाले थे। गुरुकुल के अन्दर धन का बड़ा अभाव था। सहयोग किया जाए, तो कैसे किया जाए । स्वामी जी महाराज ने अपने गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को बड़े प्यार-प्रेम व वात्सल्य भाव से गांधी जी की भावना से अवगत कराया, सभी ब्रह्मचारी छात्रों ने आसपास के गांवों में जाकर नौकरी, मजदूरी करके खून-पसीना बहाकर के धन इकट्ठा किया। खुद स्वामी जी महाराज ने भी रात-दिन लगाकर धन इकट्ठा करके दक्षिण-अफ्रीका में गांधी जी के पास धन राशि भेजी । जब महात्मा गांधी दक्षिण-अफ्रीका से भारत लौटे तो सब से पहले गुरुकुल कागडी, हरिद्वार जाकर स्वामी श्रद्धानन्द जी (पूर्व नाम महात्मा मुन्शीराम) के पास गये और चरणस्पर्श करके गाधी ने उनको अपना बड़ा भाई कहा। उसी समय स्वामी जी महाराज ने गांधी जी को महात्मा शब्द से विभूषित किया। मिस्टर गांधी की जगह महात्मा गाधी कहा। उसी दिन से मिस्टर गांधी महात्मा गांधी बन गये।

स्वामी जी के जीवन की दूसरी घटना–30 मार्च सन् 1919 की है। रौलेट एक्ट के विरोध में स्वामी जी महाराज 50 हजार जन समूह को लेकर अंग्रेजों के खिलाफ नारे लगा रहे थे। दिल्ली के चांदनी चौक के पास गोरे सिपाहियों ने जन समूह को आगे बढने से रोक दिया और अपनी बदूकें तान ली। तब स्वामी जी ने अपनी छाती खोल कर बंदूक के सामने कर ली और निर्भीकता पूर्वक शेर गर्जना में बोले इस निहत्थी जनता पर गोली चलाने से क्या लाभ ? मैं सन्यासी हू, मैं इनका नेता हू, मेरी छाती, तेरी बंदूक के सामने खुली है। है हिम्मत तो, सबसे पहले मुझ पर गोली चलाओ। स्वामी जी के इन साहसपूर्ण शब्दों से गोरे सिपाही एकदम सहम गए और अपनी बंदूकें नीचे कर लीं। 31 मार्च 1919 की बात है। यह घटना शायद विश्व के इतिहास में कहीं घटित हुई होगी आज तक इतिहास मे पहली घटना है। स्वामी जी महाराज दिल्ली स्थित जामा मस्जिद के मिंबर पर बैठ कर पहले हिन्दू नेता थे जिन्होंने वेद मंत्रो का उच्चारण करते हुए हिन्दू मुस्लिम एकता पर जोरदार भाषण दिये। उस दिन ऐसा माहौल था कि महसूस ही नहीं हो रहा था कि हमारे देश के अदर हिन्दू मुसलमान अलग-अलग रहे है। स्वामी जी महाराज आज जीवित होते तो भारत का नक्शा कुछ और ही होता। आज का भारत, बंगला देश, पाकिस्तान सहित एक बृहद् भारत होता। जिसमें काश्मीर की समस्या नहीं होती, आतकवाद नहीं होता, भाईचारा व प्रेम की गगा बहती। हमारा देश पुन: विश्व का गुरु कहलाता है, सोने की चिड़िया कहलाता, स्वर्ग का धाम बनता।

स्वामी जी महाराज का हिन्दू-जाति के उत्थान के लिए नारी शिक्षा के उत्थान के लिए, विधवा उद्धार के लिए, दलितोद्धार के लिए, समाज के अंदर फैली हुई महान् बुराईयों को नष्ट करने में जो उनका ऐतिहासिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसे किसी भी कीमत पर भुलाया नहीं जा सकता है। स्वामी जी महाराज संपूर्ण भारत को भारतीय सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा-दीक्षा व मानव धर्म के रूप में देखना चाहते थे। जिसके लिए उन्होंने अपने घर-बार, धन-दौलत, यहां तक कि अपनी संतानों को भी देश के लिए न्यौछावर कर दिया। किसी कवि के शब्दों में–''**गिने जायें मुमकिन, सहरा के जर्रे, समुद्र के कतरे, फलक सितारे लेकिन तेरे एहसान श्रद्धानन्द स्वामी, है कैसे संभव गिने जायें सारे।**''

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास के अन्तर्गत स्थापित वेद प्रचार मंडल द्वारा वैदिक विचारधारा के प्रसार हेतु किए जा रहे कार्य

संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करना आर्य समाज का असली काम है और महर्षि देव दयानन्द का यही संदेश है। जिस कदर यह काम अपने में महान है उतना ही प्रयत्न साध्य है। हमने महर्षि की प्रचार शैली को त्याग दिया। अपने आपको आर्य समाज की चार दिवारी में कैद करा लिया। अकेले महर्षि जी ने बहुत कम समय में स्वयं पैदल घूम-घूम कर अनेकों तकलीफों/अपमानों को सहन कर वैदिक संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया। आज आने जाने के साधन उपलब्ध हैं-प्रचार के उत्कृष्ट साधन उपलब्ध होते हुए भी आर्यों द्वारा प्रयत्न में कमी आने से वेद प्रचार के पवित्र कार्य में शिथिलता आ गई। इस कमी को दूर करने के लिए हमने नारे दिये :

1 वेद प्रचार के लिए समाजों से बाहर निकलो।
2 लोग हमारे पास न आयेंगे हमे उनके पास जाना होगा।
3 महर्षि दयानन्द की वेद प्रचार शैली अपनाओ।

इन अनुकरणीय क्रियात्मक प्रयासों से वेद प्रचार के कार्य में उल्लेखनीय प्रगति आई।

माह मई 1998 में सत्यार्थ-प्रकाश न्यास के अन्तर्गत वेद प्रचार मंडल इकाई का गठन कर इसके तहत करीब 10 लाख की लागत से एक प्रचार वाहन तैयार किया और इसे प्रचार के सभी आधुनिक साधनो से सुसज्जित कर तथा इसमें हर तरह का आर्ष साहित्य उपलब्ध करा प्रचार कार्य शुरू कराया। करीब 25,000/- मासिक खर्च (एक उपदेशक, एक भजनोपदेशक, एक ढोलकवादक, साहित्य विक्रयकर्ता, वाहन चालक मय हेल्पर) से प्रचार कार्य शुरू किया।

इस भजन मंडली को ग्राम-ग्राम मे भेजते हैं और यज्ञ से कार्यक्रम शुरू कर कर भजन प्रवचन कराते हैं। दूसरे ग्राम में जाने से पूर्व उस वक्त तक प्रचार कराते रहते हैं जब तक कम से कम एक व्यक्ति वेद प्रचार मडल का सदस्य न बन जाता है। इस प्रचार शैली का ही परिणाम है कि जिन स्थानों पर महर्षि देव दयानन्द/वेद/समाज का नाम भी लोग नहीं जानते वहा जाग्रति आई-जैसा वहां से बने वेद प्रचार मंडल के सदस्यों से स्पष्ट है।

इस योजनान्तर्गत दिनांक 14 1 98 से 31.8.2001 तक 25730 किलोमीटर की यात्रा कर 315 ग्रामों व नगरों में हजारो नर-नारियो को वैदिक विचारधारा अनुकूल प्रवचन/उद्बोधन प्रदान किए। यज्ञ, वैदिक सत्संग व संस्कार सम्पन्न करायें लगभग 52,672/- का साहित्य वाहन के माध्यम से विक्रय किया गया इसके अतिरिक्त लगभग 32,000/- का प्रचार साहित्य वैदिक धर्म का परिचय, यज्ञ दर्शन (ट्रैक्टर्स) व सत्यार्थ प्रकाश नि:शुल्क वितरित किया गया।

वेद प्रचार की इस शैली से उपलब्धि

अब तक 1080 सदस्य (आजीवन) वेद प्रचार मडल के सदस्य बने। इनमे से संरक्षक सदस्य 5000/- प्रतिष्ठित सदस्य 1000/- व सहयोगी सदस्य 100/- प्रतिवर्ष योगदान भी दिला रहे हैं। ये सदस्य आर्ष साहित्य का स्वाध्याय हमेशा करते रहें-इसके लिए वेद प्रचार मडल की ओर से वर्ष मे चार बार साहित्य (नि:शुल्क) भी भेजा जाता है।

झीलो की विश्व प्रसिद्ध उदयपुर नगरी मे स्थित भव्य सत्यार्थ प्रकाश भवन में प्रतिवर्ष 26 से 28 फरवरी में महर्षि देव दयानन्द की स्मृति मे आर्य जनो द्वारा विशाल सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव भी मनाया जाता है। मेरी अभिलाषा है कि आगामी सप्तम् महोत्सव के अवसर पर आवें व इस योजना के लाभ प्रत्यक्ष में देखें।

वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु यह योजना निरन्तर चलती रहे इस हेतु आवश्यक है कि मडल के अधिकाधिक सदस्य बने तथा लगभग 15 लाख रुपए की स्थिर निधि और बने ताकि उसके ब्याज से यह पवित्र व अत्यावश्यक कार्य अनवरत् रूप से चलता रहे। इस हेतु आप सभी से मुक्त हस्त से योगदान करने हेतु निवेदन करता हू। शुभेच्छु,

स्वामी तत्वबोध सरस्वती

आर्य समाज जीरा के तत्वावधान में कोट ईसे खाँ नगर में वेद प्रचार

आर्य समाज जीरा के कार्यकर्त्ताओं द्वारा कोट ईसे खॉ नगर में वेद प्रचार की धूम बड़ी महत्वपूर्ण रही। तिथि 2-12-2001 को डा. रमन गर्ग के जी सी अस्पताल का उद्घाटन वैदिक विधि से किया गया। वेद के पवित्र मन्त्रों से बृहद हवन यज्ञ श्री सुभाष चन्द्र आर्य कोषाध्यक्ष ने बडे शानदार ढंग से करवाया। उसके पश्चात् स्वर्गीय महाशय मदनजीत जी आर्य, फिरोजपुर शहर की बनाई हुई पद्धति मे दिए गए मन्त्रों की व्याख्या श्री उत्तम कुमार आर्य मन्त्री जी ने बहुत सुन्दर ढंग से विधिपूर्वक की। व्यापार सूक्त के मन्त्रों का उच्चारण सुन कर लोग बहुत प्रभावित तथा प्रसन्न हुए। इस समारोह में सैंकड़ों की संख्या में नर-नारी उपस्थित थे। अन्त में श्री ओम प्रकाश ग्रोवर प्रधान जी ने स्वास्थ्य रक्षा और शारीरिक विज्ञान पर प्रवचन दिया जो बड़ा प्रभावशाली रहा। श्री दिलावर सिंह आर्य ने ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के जयघोष के जयकारे लगाए। यज्ञ शेष बांटा गया और जलपान कराया गया। डा रमन जी ने पांच सौ रुपए आर्य समाज जीरा को दान दिया तथा आर्य समाज जीरा के कार्यकर्त्ताओं का धन्यवाद किया। —ओम प्रकाश ग्रोवर, प्रधान

अहंकार त्याग कर अपनी गलती होने पर क्षमा मांग लें।

स्वामी दयानन्द की मूर्ति और आर्य समाज

आज से लगभग 3 वर्ष पूर्व इन्दौर से 'धर्म-मर्यादा' मे छापने के लिए एक पत्र प्राप्त हुआ, वह पत्र आर्य समाज के सिद्धान्तो के विपरीत था, जिसे मैं छापना नहीं चाहता था, परन्तु फिर भी मैंने उसे छाप दिया, उस पर मैंने एक अपना लेख लिखा जो कि 'धर्म-मर्यादा' मे छाप दिया था, परन्तु उस पर मैने अपनी ओर से एक और लेख लिखा वही लेख मै आर्य मर्यादा मे दे रहा हूं।

(मुलखराज आर्य)

पिछले दिनो हमे जगदीश प्रसाद जी वैदिक भवंर कुआं इन्दौर से धर्म मर्यादा में प्रकाशनार्थ एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने इन्दौर मे शिरुमल जी खयूरिया जो पहले से ही आर्य समाज से भलि भांति परिचित हैं। उन्होंने इन्दौर मे स्वामी दयानन्द नगर के नाम पर एक नगर बसाया है और वहां पर एक संस्था बनाई जिस का नाम दयानन्द गृह-निर्माण संस्था रखा गया। वहां पर गत वर्ष स्वामी दयानन्द जी का जन्म उत्सव मनाया गया और वहां पर स्वामी दयानन्द जी की मूर्ति भी स्थापित की गई जिसमे दयानन्द नगर के लोगों ने भाग लिया। वहां पर यज्ञ भी किया गया। उस यज्ञ मे दयानन्द नगर के ही आठ दम्पति यज्ञ में बैठे थे। वहां के एक व्यक्ति श्री विनोद जी कटारिया जो युवक ही हैं। उनकी प्रेरणा से ही स्वामी दयानन्द की मूर्ति स्थापित की गई है। विनोद जी कह रहे हैं कि स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तो को ध्यान में रखते हुए हम मूर्ति पर फूल मालाएं नहीं पहनाते हैं तथा पूजा भी नहीं करते हैं और ये कहते हैं कि हमारा मूर्ति लगाने का उद्देश्य ये है कि हम सब शहरवासियो तथा नई पीढ़ी को स्वामी दयानन्द जी के सम्बन्ध मे ज्ञान हो सके। ये पत्र जब छपने के लिए प्राप्त हुआ तो मैं उस पत्र को छापना नही चहाता था परन्तु हमारे चौधरी ऋषिपाल सिह जी एडवोकेट ने कहा कि वह जब ये मानते है कि हम पूजा नहीं करेंगे और न ही फूल माला डालेंगे। इसलिए मैंने वह पत्र अंक नं. 271 तिथि 17-5-98 धर्म मर्यादा में छाप तो दिया है परन्तु इस पर मैं प्रकाश डालना भी आवश्य चाहता हूं। मैं विनोद जी कटारिया से पूछना चाहता हूं कि सारा कार्य स्वामी जी के विचारों के उलट करके फिर भी ये कह रहे हैं कि स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए उनकी मूर्ति पर फूल-माला नहीं डाली जाएगी। और न ही पूजा की जाएगी। मैं विनोद जी से पूछना चाहता हूं कि क्या आप स्वामी जी की मूर्ति के पास चौबीस घण्टे बैठे रहेंगे और लोगों को रोकते रहेंगे कि मूर्ति की पूजा न करो। आप ने तो स्वामी जी के सिद्धान्त को मिट्टी में मिला दिया है। जरा ध्यान से सुने कि स्वामी जी के विचार क्या थे। जब स्वामी जी की मृत्यु का समय आया तो उस समय जो आर्य समाजी उनके पास बैठे थे उस समय स्वामी जी ने उन्हे एक आदेश दिया था कि आर्यो ! मेरे मरने के पश्चात् मेरी समाधि न बना देना, ऐसा न हो कि जिस गढ़े से तुम्हें निकालने के लिए आया हूं उसी गढ़े मे फिर ना फंस जाना, लोग मेरी भी पूजा न करने लग जाये। मेरी जो राख भी होगी वह भी किसी खेत में डाल देना ताकि वह भी किसी किसान के काम आ जाये। इसलिए मेरा आप से निवेदन है कि शीघ्र अति शीघ्र स्वामी दयान्द की मूर्ति को वहां से उठा लिया जाए। जो रुपया आपने मूर्ति पर व्यय किया है वह सब आप ने बर्बाद कर दिया है। आप कहते हैं कि नई पीढी को बताने के लिए ये काम किया है। यदि नई पीढ़ी को बताने के लिए आप स्वामी दयानन्द जी के नाम पर कोई अस्पताल खोल देते और उस कमरे में स्वामी दयानन्द जी का बहुत बड़ा चित्र बनवा कर वहां पर आठ-दस फुट ऊंचा दिवार पर लगा देते तो वहां पर भी लोगो को पता चल सकता है कि ये स्वामी दयानन्द जी का चित्र है। दस फुट ऊंचा जो चित्र दीवार पर लगा होगा उस पर न तो फूल मालायें डाली जा सकती हैं और न ही पूजा हो सकती है। महर्षि दयानन्द जी ने मूर्ति पूजा का घोर खण्डन किया है और एक हम ही हैं कि उन्हीं की मूर्ति हम स्थापित करने लग पड़े हैं ये स्वामी जी का घोर अपमान है और साथ ही ये भी कह रहे हैं कि स्वामी जी के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए ये कार्य कर रहे हैं और चल उलट रहे हैं। मैं आर्य समाज के विद्वानो और सन्यासियों से ये पूछना चाहता हू कि आप क्यों नहीं बोलते, अब तो आर्य समाजों के अधिकारी भी स्वामी जी के सिद्धान्तों के विपरीत चल रहे हैं। अब तो आर्य समाजी परिवारों मे, घरो मे स्वामी दयानन्द जी की फोटो लगी होती है उस पर हार डाला होता है और जब कोई मर जाता है तो उसकी फोटो भी स्टेज पर रखी होती है और उस पर हार चढ़ाये जाते हैं और पुष्प भी मूर्ति पर चढ़ाये जाते हैं। पिछले दिनों जालन्धर में राजन अस्पताल में शहीद रमेश समारोह हो रहा था। मैं भी वहां पर गया हुआ था वहां पर शहीद रमेश जी की फोटो रखी हुई थी। उस पर हार तो पहले ही चढ़ाये हुए थे। उस समारोह की समाप्ति पर श्रद्धांजलि के रूप मे लोगो ने पुष्प भी चढ़ाये, उनमे दो आर्य नेता भी थे उन्होंने भी पुष्प चढाये। ये है आज के आर्य समाज के नेताओं का हाल। 1977 मे शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में जहां मैं रहता हूं उस समय ये कालोनी नई बनी थी। उस कालोनी की एक एसोसिएशन बनी हुई थी जिसका प्रधान मैं था। जब शहीद भगत सिंह का शहीदी दिवस आया तो उस समय शहीद भगत सिंह के चित्र पर फूल माला चढ़ाने का प्रश्न हुआ तो मुझे कहा गया कि मैं भगत सिंह के चित्र पर फूल माला डालूं तो मैंने इन्कार कर दिया तो मुझे कहा गया आप प्रधान हैं। मैने उत्तर दिया कि मैं फूल माला नहीं डाल सकता। आप मुझसे प्रधान पद का त्याग-पत्र ले लें तो फिर उस समय मेरे स्थान पर कृष्ण देव जी मोहन होते थे उन्होंने फूल माला पहना दी परन्तु मैंने इन्कार कर दिया था। आर्य समाजी नेताओं को ध्यान रखना चाहिए कि मैं क्या कर रहा हूं? क्या यह सब कुछ आर्य समाज के सिद्धान्तों के विपरीत नहीं है। जिस आर्य समाजी को ये भी पता नहीं कि मैं आर्य समाज के सिद्धान्त के विरुद्ध काम कर रहा हूं फिर वह अपने आप को आर्य समाज का प्रधान कहता है ये कितनी लज्जा की बात है। अब मैं आर्य समाजों के अधिकारियों से अनुरोध करूंगा कि आर्य समाज के सिद्धान्त का ध्यान रखें कोई भी गलत कार्य आर्य समाज में न हो कहीं भी और किसी स्थान पर भी आर्य समाज के सिद्धान्त के विपरीत कोई काम न करें। आर्य समाज के विद्वानों को चाहिए कि ये देखें कि ये कार्य जो हो रहा है ठीक है या गलत। आज का विद्वान किसी को नहीं रोकता। अब मैं यही प्रार्थना करूंगा कि इन्दौर वालों से जो उन्होंने स्वामी जी की मूर्ति स्थापित की है उसको हटा कर स्वामी जी के बताये हुए मार्ग पर चलें। इस लेख को पढ़ कर श्री जगदीश प्रशाद जी ने मुझे एक पत्र लिखा था वह पत्र भी आर्य मर्यादा मे दे दिया जाएगा।

–मुलखराज आर्य, मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

शोक समाचार

आर्य समाज गोबिन्दगढ जालन्धर के संरक्षक श्री राम प्रताप शर्मा का 23-12-2001 रविवार को प्रातः देहान्त हो गया। वे 95 वर्ष के थे। आप पुरानी पीढ़ी के कर्मठ आर्य समाजी थे। यज्ञ के प्रति उनके हृदय में बहुत श्रद्धा थी। आप सिद्धान्तवादी और स्पष्ट वक्ता थे। आप वर्षों आर्य समाज गोबिन्दगढ़ के प्रधान रहे। कई आर्य संस्थाओं को दिल खोल कर दान देते रहते थे। आपका समस्त परिवार वैदिक विचारों से ओत-प्रोत है। उनका अन्तिम संस्कार आर्य समाज गोबिन्दगढ़ जालन्धर के पुरोहित श्री कमल कुमार शास्त्री जी द्वारा पूर्ण वैदिक रीति से करवाया गया और ईश्वर से प्रार्थना की गई कि शोक सन्तप्त परिवार को धैर्य प्रदान करें और हम सबको उनके श्रेष्ठ गुणों को अपनाने का [illegible] देवें। शर्मा जी एक भरा पूरा सुखी परिवार (पांच बेटे और दो बेटियां) छोड़ गये हैं। अन्तिम शोक सभा 1-1-2002 दोपहर 2 से 3 बजे तक आर्य समाज गोबिन्दगढ़ जालन्धर में होगी।

–नरेश कुमार, मन्त्री

श्री धर्मदेव आर्य सभा कार्यालयाध्यक्ष, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा रचना प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौंक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ।

others and wish to give them the help which he feels he did not receive himself Two quotations taken from autobiographies illustrate this point

My mother and father did not show any signs of affection for each other or toward the children. I always wanted to be loved the way other children were. I hardly remember my mother ever kissing any of us . I want help in trying to meet the urges and needs of my boys and girl in school so that they can get, before they are grown, satisfactions that I was not able to get.

I take special interest in helping children to read and still do I am getting some of the satisfactions that I wanted when a child

Note in this last statement that by projecting help and affection out onto her children she is thereby gaining for herself some of the satisfactions that she felt were denied her when young

Finally, it is possible to project feelings of inferiority and worthlessness onto others Insofar as others seem to be poor scholars, poor teachers, poor teammates, insofar as society seems to be all bad, and the institutions of society going from bad to worse, there is a possibility that the person is projecting out similar feelings of unworthiness and inferiority and inadequacy from himself onto others

This projection of the superego is not necessarily all on the negative side It is possible to project onto adults the image of the good and accepted self Insofar as the child has had good and accepting parents he looks upon himself as a good person and accepts himself Then he has the tendency to project this view of himself out onto others and tends to find others about him as good and accepting persons. Such a child expects to see a kind world about him and looks for kindness and fair treatment in others Unfortunately, in reality he is doomed to be disappointed There may be, therefore, some value in having a child experience both the good and bad in his parents, so that when he comes to meet people in reality in later life, he will be able to project onto others attributes which will match the reality of the situation

Projection of Self-Love. A third phase of self that may be projected is self-love Projected self-love has been called love of the narcissistic type It is one of the few varieties of positive aspects of the self which may be projected As examples of narcissistic love one may mention the parents' projection of their self-love onto their children, so that they tend to love their children for the qualities in them which they have previously admired in themselves Narcissistic love is selfish love The child who is loved narcissistically is loved only when he is successful and accepts the qualities which his parents have admired, perhaps unconsciously, in themselves Such a child is not loved for himself but is only loved for what he can produce He is loved because he is beautiful and people admire him, because he is making a good school record and people speak well of him A child who is loved narcissistically is fundamentally insecure, and, because of this, often develops neurotic symptoms Narcissistic

love may also have a homosexual quality A man finding it necessary to love someone who resembles himself will find these qualities most completely expressed in another man, or he may admire in his wife the feminine qualities that he sees in himself Or a woman who previously has identified herself with her father may find the masculine qualities in herself attractive in another man whom she meets. In narcissistic love one is loving the other person not for his own realistic qualities but for the qualities which one finds in the other one that are projected from the self

Projection of Omnipotence. A fourth phase of the self which may be projected is one's own omnipotence The little child discovers early in infancy that his omnipotence is limited In order to save himself from the wound, he tends to project his feelings of omnipotence out onto others about him He ascribes to his father or his older brother feelings of power which he lacks in himself "My father can lick you," or, "Just wait until I tell my brother and he will attend to you" By thus projecting his own feelings of power which are severely threatened onto some older and bigger adult, he thereby saves his own feelings of adequacy

Persons who feel the need for extending their own power may attempt to do so by magical means The wave of interest in telepathy a few years ago under its new technical name of "extra-sensory perception" may be attributed in part to the desire to find a cheap method of asserting one's power. The fascination of hypnosis, spiritualism and character-reading to psychology students may also be ascribed to this projection of one's feelings of omnipotence onto powers outside which one should like to be able to manage It has also been recognized that in the modern machine, man finds an expansion of his own power and tends to project onto the machine his feelings of power and omnipotence. The German people projected their sense of power into their army and particularly into the machines of warfare through which they hoped to achieve success

Projection of Failure. An important phase of the self which may be projected is failure A person may blame another for being the cause of his failure, whereas the real cause lies within himself—his inadequate ability, or skill or inattention. Projecting the blame for failure is frequently done in school when the child blames the teacher or outside activities for his inability to get along, or again, failure in work may be ascribed by a person to the fact that his abilities are not appreciated by his employer or that a rival is using unfair means in order to forge ahead of him

Self-Regard a Projection Process. Our self-regard is in fact a kind of projection We like to think of ourselves in terms of what we believe others think of us But this is a projection of our attitude toward ourselves. If we believe that others think highly of us, this is in part a projection of our own high self-evaluation But if we believe others despise us, we again are in part projecting our own self-belittlement Of course, beliefs concerning evaluations by others are constantly subject to realistic corrections

PROJECTION FROM ONE PERSON TO ANOTHER

Little has been said in this discussion of the second meaning of projection As a matter of fact, projection, in the sense of transferring one's feelings from one person to another, is used comparatively seldom in the literature Projection, however, is used to refer to certain transcendental concepts God, for instance, as He has evolved throughout history has been a projection of attitudes toward the father, particularly a projection of the father as an all-powerful, all-wise, all-good being Since attitudes toward the father are projections of early omnipotent strivings, the God concept is a reprojection of these feelings [291] The father proves himself to be a fallible and imperfect person after all, so the projective process must be onto some more ideal figure Of course, the Greek deities still continue to carry the same human weaknesses as men Likewise the evil side of the father is projected into the idea of the devil In the figure of the devil is idealized all of the fear and all of the hatred and all of the danger inspired by the father. In a less extreme fashion, the concept of the father may be projected into other men or other father-symbols Likewise, the figure of the good mother may be projected into the figure of the Madonna or to the fairy, and the bad mother may be projected into the figure of the witch In all of these the good or bad figure that is projected has been incorporated into the individual himself by a process of introjection.

HOW PROJECTION IS EXPRESSED

Thoughts and Fantasies. Projection is expressed most commonly in thoughts, feelings, and fantasies A person looks about him and finds fault with people and institutions In projecting off onto others the ignoble and dangerous characteristics which are really his, a person's thoughts and attitudes and dislike of the world are thereby concealed Naturally, since projection is of the less desirable characteristics, these thoughts tend to be aggressive in character, concerned with hating, criticizing, and finding fault with other people Suspicion is a very frequent expression of projection A man may suspect that another person has hostile designs and is plotting his downfall, or a woman may imagine that a man has been attracted to her and is about to make amorous approaches

Parker sees things through dark-colored glasses He is certain that he has been given the poorest teacher in his building He continually finds fault with her, insists that she assigns too much homework and that she does not make things clear, that she picks on him Parker also finds fault with the Boy Scouts They do not meet on time They do not take enough camping trips They are not strict enough about passing the tests for the various classes in Scouting Parker also finds things to criticize about his Sunday school He is sure that they have more fun in the Presbyterian church across the tracks There they have plays and parties and, in the summer time, picnics Parker is always looking at what the other fellow is doing and bemoaning his own lot in life One may suspect

that Parker is projecting onto the people with whom he works and plays his own feelings of inadequacy.

Open Aggression. Projection can be expressed, however, in open aggression Isaacs [396, p. 366], following Freud, speaks of projected guilt "When children call other people 'dirty' or 'horrid' or when, for example, Harold says sententiously, 'I don't like big boys to tease little ones,' or Paul tells Mrs I. he is very ashamed of her because she has been cross with him when he teased Dan, he was himself really very guilty about having teased Dan" This open aggression by which children try to project their bad wish-selves off onto others may be in the form of bodily attacks or in the less obvious but equally telling habit of calling names Sometimes projection is accomplished by urging another person to do what the person wishes to do himself A child, for instance, may entice another child to destroy school property, to write a derogatory note to the teacher, or to play the Hallowe'en prank, something he may not dare to do himself Placing blame on another person is a telling method of projecting one's own guilt Then there are a number of more subtle methods, for example, pouring scorn or contempt or ridicule on another person either directly or by innuendoes Persecution and intolerance may be thought of as forms of projection When a group has failed in carrying out its ambitions, it may place the blame on some minority group It is said, for instance, that the persecution of Jews in Germany was the method by which the Nazis projected Germany's downfall onto a special group which was to bear the brunt of responsibility Intolerance of various kinds, whether religious, racial, or political, may be the projection of blame for one's own defeat or inability to completely dominate the situation Criticism has been spoken of many times as a common form of projection An especially telling form of projection is "righteous indignation," for the very righteousness of the indignation protects it with respectability

Going to One's Own Defense. The man who flies to his own self-defense with a multitude of excuses is really projecting outward his own inner self-reproach There is a French expression, "Qui s'excuse, s'accuse," meaning he who excuses himself, accuses himself and with a freer translation, "A guilty conscience needs no accuser," or as the saying goes in the South, "Hit dog always hollers"

Little Arthur, who has dropped the box of strawberries which he was bringing home from the garden, is quick to find an excuse There was a hidden stick lying across the path, and he could not help but stumble over it

Naturally a child who feels it necessary to run to his own defense is the child who is likely to have poured upon him a torrent of abuse.

Hypocrisy. Bergler [77] shows how hypocrisy is actually a form of projection of hostility against the superego or repressing authority within The hypocrite is a person who performs some humiliating act which

turns out to be an aggressive act. He gains his ends by perverting the truth, by flattery, or by pseudo-approach, all in the spirit of deceit and ingratitude. Actually, the hypocrite is expressing outwardly a conflict within. One part of himself ridicules, minimizes, disparages, and hence harms another part of himself, which is his superego—his ideals, his guiding, and controlling tendencies. And this inner conflict is revealed as he projects his hostility to authority or to authoritative persons in his environment whom he disparages and harms by his flattery, deceit, and chicanery.

Moral Superiority. Besides aggression, projection may take the form of moral superiority shown in tendencies to consider oneself more cultured, more advanced, and more talented than other persons. This is sometimes coupled with introjection of the forbidding and prohibiting adult which is then projected out onto another person. A child may criticize an adult for being noisy—something for which he had previously been reprimanded himself. The child's criticism would indicate that the desire to be noisy was still strong within him, and that he was countering the prohibiting aggression of his parents by a little aggression of his own. One attempts to build the self up by tearing others down through animadversion.

Prejudice. The whole list of prejudices may have a tinge of projection. As far as a person is prejudiced in his beliefs with regard to forms of taxation, change in the calendar, married women serving as teachers, or the wastefulness of public relief, he may be projecting in his beliefs his own sense of inferiority by finding it difficult to accept new conditions to which he is not accustomed.

Law and Authority. In a sense, the whole system of laws and penal procedure is a projection on society of the individual's feeling of guilt. Take for example, the child in school who wants rules made that will keep pupils orderly and will eliminate competition and unfairness. In such a case, a pupil may be afraid of his own tendencies to be disorderly or to be unfair and wants to be buttressed against these tendencies by rules made and enforced by the group. In school courts pupils will impose penalties far more severe than the school authorities would for the same offense, in part, perhaps, because each is projecting his own guilt and need for punishment onto the offender for his own unconscious wishes which are similar to the offense. So in the larger realm of public affairs, society, being afraid of its own tendencies to aggression and disorder, buttresses itself against these tendencies by the institution of civil law, the basis of our present civilization. Laws were not necessarily formed originally as projections but are accepted as binding today by most citizens because they institutionalize projecting tendencies. Many features of group control are in essence projections of controlling tendencies within the individual of which he is not quite aware. The leader is the incarnation of the group's conscience. In other words, projection is a

mechanism by which man helps to keep himself in better order and control.

Exclusiveness. Projection can also be expressed by exclusiveness and turning away. It can be seen in the simple act of cutting another person on the street, or, in another case, lifting one's skirts so as not to be dirtied by those whom one thinks inferior Members of a society who have had difficulty in gaining admittance themselves are the very ones who wish to protect their feeling of superiority by enforcing rigidly the entrance requirements of others, thereby projecting their feeling of inferiority Perhaps the same would hold with respect to the application of immigration laws in a country

In every expression of projection, the person himself will deny that the impulse is in any way his own His hands are clean, his motives are noble, *it is the other person whose intentions are bad*

Sometimes projection and identification combine as when a child projects his own bad impulses onto a brother or sister and then identifies with his parents and with his own superego is righteously condemning the prohibited act

Still another mode of expressing projection is to turn an active wish (to bite) into a passive one (to be bitten) and then to project it onto another person For instance, a child may bite another child because he says the other child wanted to be bitten [630] A boy may tie up another boy because he says the other boy wanted to be tied, or his active wish to see it turned into the passive one to be seen, and he accuses another child of exposing himself indecently

Projection in Fantasy *In Play* A very significant mode of projection is play This may be seen so clearly in children's play with dolls and other figures A little girl will project all of her wishes and feelings onto her dolls as she plays with them Sometimes the doll will be a little baby to be put to bed, to be taken out to ride, to be washed and clothed and fed Sometimes a doll will be the stern and strict mother who has the care of a family of dolls which she talks to in commanding and forbidding fashion Some of the time a doll will feel happy, and at other times a doll will feel neglected or sad The use of play is proving to be very helpful in understanding children who present problems In their play they project their own feelings, wishes, and conflicts out into the play situation. The careful observer in watching a child at play will be able to discover many of the child's personal problems The boy with his toy trains can think of himself as the powerful engineer, or his model airplane permits him to feel himself in the rôle of the pilot

In Art. In a more sophisticated sense, much art is a form of projection Projection as a mechanism may be recognized as a particular form of the general tendency to give outer and concrete expression to inner thoughts, feelings, and attitudes Projections, therefore, may be thought of as special cases of the general tendency to express oneself by word or deed or crea-

tive act in the world of reality The artist projects into his art his own feelings, his hopes and fears, his loves and hates, his joys and disgusts. This projection is probably most obvious in the graphic and plastic arts The sculptor expresses his feelings of strength or of weakness, of fear or of hate, in the models which he creates The artist paints into his pictures his moods of gaiety or depression, his compulsive need for detail or his more primitive need for bold execution, as expressed in large patches of color and bold strokes The musician projects his mood into his music. The mood in Wagner's *Die Meistersinger* is in marked contrast to that in Tschaikowsky's *Sixth Symphony* Women project their prevailing mood into their clothing and their houses Even one's handwriting, so we are told [855], is a projection of one's impulses to be bold, precise, erratic, sharp, peculiar, and so forth, although here, as in other forms of art expression, it may be the deeply unconscious which is being expressed and which may not coincide with the more open modes of expression of the personality Art, then, serves as a welcome form of release through the mechanism of projection and thereby serves as a safety-valve for repressed tendencies, a reputable and even socially valuable safety-valve which might have other much less desirable modes of expression

In Nature. Likewise, we all project our moods and emotions into nature We speak of the weather as being calm, tempestuous, or threatening The sea is referred to as angry or sullen, clouds are gentle or menacing We project our ambitions and hopes into the high mountain or the lofty trees, our fears into the yawning chasm Or one may project his wishes and difficulties onto the stars, as is popularly done through astrology "I was in Gemini, the moon was in the second house, with Jupiter rising . ."

In Literature A particularly significant form of projection is found in literature. The novelist projects his feelings, his conflicts, and his wishes into the tales that he creates When a novelist creates a character, that character must correspond to something inside the person who finds expression in this particular mode Most persons have only limited capacity for projection, perhaps because they have had limited identifications A man like Dickens, who created innumerable characters running the whole gamut of human types and emotions, must have identified himself easily with all sorts and conditions of people and been able, in addition, to project these out onto the characters that he created in his fiction One can only speculate how two such sheltered persons as the Bronte sisters could write such melodramatic stories as *Jane Eyre* and *Wuthering Heights* It seems fair to assume that they were projecting, in this manner, impulses and fantasies which had no other more direct means of expression The playwright visualizes even more vividly the scenes and characters created by him, and in producing them on the stage creates actual scenes with which hundreds of people can later identify themselves and thereby live through experiences similar to those which are called for by

their own needs The poet also projects his feelings, not in quite such a direct manner as the novelist, but in more subtle and delicate shadings and nuances Wagner, in his operas of the Ring, was working out on a gigantic scale the tremendous conflicts with which his tempestuous life was involved.

PATHOLOGY OF PROJECTION

Projection is seen as the mechanism at work in certain pathological states Paranoia, which is a psychotic state characterized by various kinds of delusions, is very clearly based on the mechanism of projection For instance, the delusions of persecution—belief that other persons are plotting against oneself, that one is in the toils of some dangerous person who is planning some kind of harm—are clearly based on projections of one's own dangerous aggressive tendencies The greater the anxiety concerning one's own evil tendencies (guilt), the greater the tendency to project these tendencies onto the world, until at last everyone is looked on as an enemy, plotting one's downfall, unfriendly and persecuting Fairbairn [203], who sees the processes of introjection and projection in terms of the actual relationships involved instead of the shifting of impulses, insists that the paranoid technique is the projection of repressed *objects* rather than *impulses* In paranoia, however, these projections have lost all semblance of reality, so that the individual is disoriented and disorganized

Likewise, projection may be seen as the basis for many phobias For instance, the fear of an animal, such as a cat, which may be the fear of some person for whom the cat stands as a symbol, may also be fear of one's own aggressive impulses which have been displaced and are symbolized by biting, snarling, and also greedy characteristics Thus the cat is a projection of one's own internal wishes Likewise, it is possible to project onto an object one's own inner anxiety and guilt. Freud has shown how the fear of open places may be the fear of one's own impulses either of an erotic nature or of an aggressive nature in the open place where one may meet people Since the fear, fundamentally, is of one's own impulses which one does not wish to recognize because they are considered so bad and dangerous, these fears are projected out into the place where they might be stimulated.

VALUES OF PROJECTION

On the whole, projection as a mechanism is considered a rather poor kind of adjustment It may be thought of as an attempt at cure of the conflict within the self, but it is an ineffectual cure As has been seen by the many illustrations given, projecting certain characteristics in oneself out onto persons or objects represents a failure to permit awareness of these characteristics in oneself and a failure to manage them Insofar as the internal tendencies are repressed, they may cause needless anxiety

and guilt, needless conflicts and suffering The person who can learn to recognize and hence to tolerate and possibly accept his own impulses is on the road toward managing them

On the other hand, where these impulses seem too dangerous, and where there is no one on whom one can lean in order to gain sufficient security, a way is found for managing them alone, even though somewhat lamely, by projecting them onto others. It has even been said that we *need* other persons in part so that we may hate them. Projection of our impulses onto others helps us to regulate and order our own lives This is seen most clearly when laws are considered as projections of one's own tendencies toward self-regulation, where the self feels hardly adequate to manage its own dangerous erotic and aggressive tendencies. These can be projected out onto other people who will serve as regulators and arbiters of these tendencies, thus effecting a certain degree of security. This is the method that society has worked out in order to control the dangerous impulses and bring them into some semblance of order

XIV

Identification

DEFINITIONS

First Meaning. Identification is a very common phenomenon observable in all human relations Identification has several distinct meanings that should be clearly differentiated Modeling of oneself in thought, feeling or action after another person is the most common use of the term This may be accomplished in two ways Most typically, identification takes place when a person copies another person In this sense identification is practically synonymous with imitation In common language, a child may be said to imitate someone else whom he admires Mary observes that girls who are personally attractive receive the most attention, and she copies the dress and mannerisms of one of the smartest girls in her class. Kardiner [449, p 64] calls this an "enriching" type of identification because by means of it the personality is enlarged

Second Meaning. A related, yet much more subtle, meaning is found in those cases in which a person, instead of copying another person directly, attempts to live out his wishes in the life of another person One example of this would be a woman who hopes to achieve some of her unfulfilled social and scholarly ambitions by seeing them fulfilled in her sister. Another example is the case of the citizen who insists on having a severe penalty imposed on some other citizen found guilty of a misdemeanor He himself has not been guilty of this act, to be sure, but he has dreamed of committing it, and it would make him feel a great deal of guilt were he actually to be the culprit In these cases there is an interesting connection between identification and projection One might say that the first woman identifies herself with her sister and then projects onto her some of her own unfulfilled ambitions. Kardiner calls this an "impoverishing" type of identification because the person projects himself in fantasy onto another person.

Third Meaning. Identification is also sometimes used in a third sense to indicate that one is responding to a person in thought, feeling, or action as though he were like or resembled some third person For instance, it may be said that a mother identifies her son with her own father This means that she sees a resemblance in her son to her father

in looks, action, mannerisms, or gestures. When such an identification of two persons is made, one may expect that the same response will be made to the one that formerly has been made to the person whom he resembles. This similarity in response has been termed *transference* One might say, for instance, that there is transference because of an identification. This use of the term identification is loose and tends to confuse the principal meaning of the term It would seem to have grown out of the meaning of identification as the act of asserting the sameness or similarity of two persons or objects, for example, in the "identification of a criminal" when a person is charged with being a criminal because he possesses characteristics described by some witness But this act of comparison is quite different from the much more inclusive one of changing one's own behavior or attitude so as to be like another admired and envied person The term *equation* might be more appropriate in this connection than identification.

FUNDAMENTAL CONSIDERATIONS

Unconscious Nature of Identification. Probably we should not use the word identification to describe what takes place when a person systematically looks over his acquaintances and decides which one he prefers to be most like Identification, as it typically operates, is unconscious, and the person is not aware of the fact that he is modifying his own behavior to pattern it after that of another person

Distinction Between Having and Being Like. Freud [297] has made the distinction between *having* another person and *being like* another person. Having another person as a friend, as an enemy, as an intimate, as a confidant, as an object of love, is what Freud terms "object relationship" Being like another person has been given the name "identification" One can identify oneself with another without having any relationship with him On the other hand, it is possible, indeed it is a very frequent occurrence, that one has both a relationship with another person and also an identification with him For instance, it has frequently been noted that married persons tend to grow like each other. Not only have they entered into a relationship with each other, but they have adopted the same tastes, standards, and points of view It is possible for one to identify oneself even with an intimate, if for no other reason than that the intimate possesses characteristics that the person himself would like to emulate

Identification is present in all persons. It can be observed very early in life even in the first days and weeks It has been said to be a primary basis of character formation One may look to identification as an explanation for many of the traits and characteristics of a person One hears it commonly said that Mary takes after her mother, or that Tom is a chip off the old block Children are frequently heard to say, "My mother said," or "My father said"

Fenichel [212] points out that identification is a more primitive process (that is, occurs at an earlier age) than love, and that love in a sense grows out of or is a derivative of identification. That is why (as we shall see) when a love relationship is prevented, identification sometimes takes place by regression

Identification a Modification of the Self. Identification is in reality a modification of the self It is a method by which the self becomes enlarged and takes on new interests, new patterns of behavior, new attitudes, and new feelings toward persons and objects in the environment The larger the number of identifications, the wider a person's interests. The very process of growth may be thought of, in part, as the taking on of additional identifications first simple kinds of behavior and feelings with respect to persons in the immediate environment, later extending these identifications as maturity increases to people, institutions, and movements in the larger society A person is as broad as his identifications.

Motivation. Identification may be thought of as one of the methods that a person can adopt in order to satisfy his needs As needs develop, there is a search for methods of satisfying them. It is only natural that a child should look about him and find how others are satisfying these same needs and then adopt these methods as his own. Typically, the person with whom one identifies himself is both loved and hated He is loved because he is a person who is admired and who can, through the identification, be of service He is hated, on the other hand, because his very power, strength, ability, or beauty is envied.

Identification has also been described as a means of compensation By identification with a person whom one admires, one may bolster up one's own weakness or gloss over deficiencies. It may be truthfully said the greater the need for a person to identify himself with another, the greater the personal insecurity. A person gains strongly by identifying himself with someone else whose prowess he wishes to emulate and whose virtue or achievement he can take for himself This use of identification as a means for compensation is wholesome when it leads actually to taking over the other person's behavior, attitudes, or feelings, it can be actually destructive if the identification is made in fantasy only, without feeling the necessity of taking on the characteristics of the other person in reality

Identification is a method of adjusting to rivalry and hostility Identification absorbs and substitutes for the rivalry. A boy may manage the rivalry he has felt for an older brother by striving to emulate him. This permits him to praise and admire his brother instead of to criticize and disparage him.

Identifications once made may be abandoned as increasing maturity shows other and better ways of meeting these same needs. However, old identifications may be readopted at a later time, if necessary, by regression in case the older identifications still seem to serve in the new situations as the best form of adjustment that can be made.

Identification and regression have interesting relationships. "Backward identification," that is, identification with a person younger than the self, is sometimes called regression Identifications which are extreme also have been referred to as being like regression. For instance, the identifications of the very little child are frequently fantastic He magnifies in his mind the characteristics of other persons, and these exaggerations come out in play through the characters that he adopts It is easy for him to play the part of a bandit, a gunman, or a giant The older person who makes fantastic identifications is said to have regressed because his identifications are similar to those made by a little child

Identification of Whole with Part or Part with Whole. It is possible to identify a whole with a part or a part with a whole For instance, one can identify one person with another because some obscure feature characterizes both Also one can identify a book or a flower with another person when the object has been in the possession of the other person or even in some remote way associated with him One may wonder how children come to identify themselves with ugly or vicious characters Naturally, the child is identifying himself with only one aspect of the character, as with his strength or agility When a child admires such a character as Long John in *Treasure Island* he is identifying himself with his aggressiveness or blood-thirstiness

Identification a Basis for Symbolism. Identification becomes the basis of symbolism One might say that symbolism is a displacement of one object for another with which it has been identified. A handkerchief or a flower that has been picked up and kept by the lover helps him to recall fond memories at will. Othello's sweetheart keeps Othello's handkerchief as a memento and symbol of him The material in dreams, which so frequently has symbolical reference, is based in part on the principle of identification.

IDENTIFICATION RELATIONSHIPS

Boy with Father. Of the first type of identification the most typical example is the identification of a boy with his father The boy looks forward to the time when he can be stronger, more powerful, and have greater control His father is one whom he admires and perhaps envies because he is stronger and can do so many interesting and difficult things, all of which have prestige in the boy's eyes.

Arthur, aged five, likes to play automobile. He will sit in the driver's seat as his father does, blow the horn, shift the gears, and talk back to policemen

Jennings is called Junior and seems to follow in his father's footsteps In high school he played on the ice-hockey team as his father had done years before. He chose to go to Dartmouth, his father's college, later deciding that his career would be in the law, and hoping that he would be able to become a member of his father's firm The father was proud that Junior was interested in carrying on the family tradition

Imagine the responses of three fathers to the bill collector who knocks at the door One parent will be stormy and blustering, will shout that the charge was unjustly made, and will threaten violence to the collector The second will be unctuous and canny He will make glib promises of paying at some indefinite future date The third will be humble and apologetic, candidly explaining his difficulties. Many years later we may find their sons, who were silent witnesses of these episodes, using similar methods of dealing with similar situations In identifying themselves with their fathers they unconsciously have assimilated patterns of social behavior.

Girl with Mother. Equally common is the identification of a girl with her mother Betty, who is eight years old, likes to dress up in her mother's clothes, put on her high-heeled slippers, apply rouge, lipstick, mascara, and red nail polish, and then set about acting the part of her mother by entertaining guests, pouring tea, and dealing out cards. Thus in her play she identifies herself with her mother in her social activities and anticipates the time when she herself can play a similar rôle in real life.

Agnes, who is sixteen, would like more freedom to have dates with boys and resents her parents' insistence that she be at home before eleven o'clock in the evening One would think that Agnes would like to break away entirely from her home and family However, there are many signs that Agnes has identified herself closely with her mother She adopts the same style of hairdress that her mother does and has the same taste in jewelry She seems to agree with her mother when there is an issue as to how flowers should be arranged or what draperies should be chosen She also resembles her mother in the way in which she pouts when she cannot have her own way, her fear of being alone, her quickness in making decisions, and the gracious way she has of meeting people

It has been said that there is a stronger and more persistent tendency toward identification among girls than among boys. Boys turn their energies outward and work out their needs in the world of reality Many girls, however, remain bound by their identifications—they work out their needs through their identification with another person rather than by their own efforts and activities

It should be mentioned that identification may, and usually does to a degree, take place between the child, whether boy or girl, and the parent of the opposite sex A boy may take on the beliefs and philosophy of life of his mother, a girl may take on the aggressiveness of her father When this becomes prominent we speak of homosexual tendencies, and we call the boy a "sissy" or a "fairy" and the girl a "tomboy" If a boy identifies himself with the feminine rôle, he does not have to seek a woman to love—he has the woman in himself, and inversely with the girl

With Parent Substitute Identification may be made with a parent substitute as well as with a parent

Tim likes to play policeman, will strut around, ordering people to stand back, and will bawl out imaginary traffic-law offenders Martha likes to play school

but always wants to be the teacher She arranges other children as they should sit in her school, is patient with them in their lessons, but is firm with them when they act silly or start to wriggle Henry has never found anyone whom he admires so much as his mathematics teacher He positively idolizes him He follows him closely in class and adopts some of these same manners while president of the debating team

Identification in the form of hero-worship is a common phenomenon in adolescence In the need for recognition and establishing status, an adolescent through identification will appreciate to himself the success of his hero As one girl stated "I recall that I could play the piano better with my hat on because one of my heroines was a fine pianist and was usually seen playing at afternoon affairs wearing a hat"

Zim in a study of *Science Interests and Activities of Adolescents* states [882, p. 127]

Younger adolescents may develop interests in science in emulation of some adult whom they admire, who is their hero This association is frequently expressed and even if not conscious is easily observed It may be an envisioning of himself in the rôle of his father, or the hero may be some relative, teacher, friend, or even a person known only through stories or books The author has known a number of adolescents who felt that a particular scientist was their hero and wished to read his original papers, duplicate his experiments, etc The family doctor is a frequent hero of boys interested in science Famous men, such as Einstein, Pasteur, and Marconi, are important as heroes

These substitute identifications should be recognized as a natural and necessary part of the act of growing up and breaking away from the dependence of family ties. The adolescent girl who successively identifies with teachers, movie idols or classmates is attempting to free herself of infantile dependence on her mother However, by imitating sexual behavior of less admirable characters in early adolescence there is danger of a weakened rather than strengthened self-control It has been frequently observed that the oldest son in a family may resemble the maternal grandfather The boy is unconsciously identifying himself with the man whom the mother has loved and admired the greater part of her life—her own father The oldest son wants to stand in the same relation as his grandfather in his mother's regard and identifies himself with him

With Siblings. It is very common for brothers and sisters to identify themselves with each other provided they are spaced somewhat in years In my observations, brothers or sisters who are close together in age or who are the first two in the family are quite likely to have dissimilar characteristics The older one may be cautious, reserved, and orderly, while a younger brother may be carefree, sociable, and disorderly However, if brothers or sisters are separated by a few years, the younger brother may look up to the older one as a hero and his highest ambition may be to emulate his brother. He will look forward to working his way

through college as his brother is doing, will want to take the same studies and maintain an equally high standing, and in many ways will look to his brother as a pattern and model.

Quite the reverse, the child may identify himself with a younger brother or sister if the younger child seems to be favored in the family in some way. It has been commonly noted that when a baby is born in the family an older child may take on babyish ways such as using baby-talk, wetting himself, spilling his food, and the like This backward movement in identification is called regression

Identification with Sibling Substitute. Another common form of identification is with a sibling substitute A boy, for instance, instead of identifying himself with a member of his own family will identify himself with one of his school or college group whom he admires very much.

George seems to have a crush on the football captain in his school He insists on having his hair cut as the older boy does, wants to wear the same kind of of square toed shoes, plaid woollen socks, and sport shirts He also adopts some of the older boy's characteristic racy vocabulary

Identification of Parent with Child. Not infrequently a mother, finding herself thwarted in her love life or in her ambitions will identify herself with her children and attempt to live out her frustrated plans through them This identification relationship has received more extended analysis and discussion in the chapter, "Projection"

Identification of Husband with Wife and vice versa. Not infrequently marriage partners may identify with each other This may be seen not only in those instances in which husband and wife develop similar tastes and interests as they grow older, but also in those cases of narcissistic love of a homosexual type in which one partner secretly and unconsciously admires traits and characteristics in the other that he would like to possess himself

Identification of Counselor with Client. The identification of a counselor with his client is a common therapeutic procedure. Identification may be used loosely in this connection, since certainly if the counselor intends it, it cannot be wholly unconscious, but the process is meant to simulate identification.

Henry was sent to Mr A., the school psychologist, because he had been caught cheating on an examination He found out that Henry had a very severe stepfather who would whip him if he did not bring a good report from school Henry was faced with a terrific conflict He had either to fail and receive a severe whipping at home, or find some way of passing the final examination He chose the latter as the easier way Mr A put himself in the boy's place in imagination and sympathized with him. This completely disarmed Henry who found it possible to relate his own feelings and tell Mr A in his own words some of the difficulties he was facing By thus encouraging and permitting Henry to talk openly about his problems, Mr. A. helped him to face them with less anxiety

Identification of One Person with Third Person. A typical example of the second type of identification is the successive identification of mother, sister, and wife

Mr F lost his mother when he was only seven years old However, an older sister became the housekeeper and took charge of the family of seven children Mr F, as a boy, identified this sister with his mother and transferred his attitudes of compliance and resistance to this sister, who took the place of his mother Later on, he picked a girl for his wife whom he again identified with his mother and also with his sister His wife combined in her person the same dominating characteristics with motherly care Mr F, therefore, went through life under the domination of this series of women who took the place of a mother for him, praised his successes, condoned his failures, and helped him with his decisions

A similar identification may be seen of father, brother, and son.

Mrs T vents her bad temper on her young son She nags him constantly and upbraids him for any small deviation from her strict standards In general, she is identifying him with her own father and later with her brother for whom she had similar hostility as a girl but which she has now entirely repressed As a matter of fact, Mrs T now has to contribute to the support of her elderly father and feels strong devotion toward him

EXTENSION OF IDENTIFICATION

Behavior and Attitudes. In the illustrations which have just been given, the identifications are of a simple, obvious kind in which the imitation is of behavior or of general attitude Identification, however, can take a number of different courses For instance, unconsciously one may identify oneself with another by mannerisms and tastes Social attitudes are largely a result of early identification One finds himself when grown up holding allegiance to the Republican or Democratic party and often is called upon to justify this allegiance The actual truth of the matter is that this allegiance was an identification in early childhood with the attitudes and beliefs expressed by father or mother in the home circle In like manner, one finds himself adhering to a religious sect for no other reason than that it is the religious sect of one's childhood family, and belief in it has been taken over by the process of identification

One not only identifies with people but also with social movements, with one's family as a cultural entity, with its prestige and honorable history, with one's school or college or fraternity The feeling of "we-ness," that one is a member of a group, may be extended as a product of the process of identification

Sidney speaks of his school with the greatest loyalty He boasts of its football team, takes pride in the newspaper of which he is an editor, and is proud to display his school emblem and his class numerals on his sweater and the class pin on his lapel

Philosophy of Life. One's philosophy of life and attitudes with regard to class and caste, one's idealism, one's repressions, the acceptance of

culture, one's moral standards, one's ambitions, all stand out as an outcome of this same mechanism of identification The habits of thought of the earliest family associations are adopted without critical review, and then in later life there is an attempt to justify them

In identifying himself with those whom he loves, hates, and emulates, a boy thereby is adopting the rudiments of his own philosophy of life His moral standards, tendencies toward selfishness, self-sacrifice, idealism, ambition, and repression all grow out of these early identifications with members of the immediate family circle through a process of identification The taboos with respect to murder, cruelty, theft, incest, and sex are formed on the basis of these early identifications. Later in life the persons who were the original models for these identifications may be forgotten and all that is left are impersonal or even personified ideals It is for such ideals that men take their stand and often fight

IDENTIFICATION IN FANTASY

Identification with Imago of Parent Many of the identifications which have been described are identifications in fantasy rather than in reality For instance, the child's identification with his parents is likely to be with the imago of the parent rather than with the actual parent Children build up fantasies of bigger, stronger, more important, and more powerful persons than the parents actually are, and the child identifies himself with this imagined parent rather than with the parent who actually exists. We are all magnified in the minds of our children, and it is with this magnified self that our children identify themselves

Identification with Imaginary Companions. When a child does not have a suitable model with whom to identify himself, he may manufacture one Many children have imaginary companions who serve in fantasy as the person with whom the child would like to identify himself These imaginary companions live in far-away glamorous places, have unusual toys or pets, are permitted to do interesting and forbidden things, all of which have allurement for the child himself We might say, then, that the child identifies himself with the imaginary companion The question still remains as to where the child finds the characteristics of the "ideal" that he manufactures We know very well that these "ideals" are not fabrications of his imagination—the elements, at least, are derived from his familiar experience. Commonly, they find their origin in characteristics of father or mother, brother or sister, grandmother or grandfather, aunt or uncle, however much these persons have characters which do not permit him to identify *in toto*

Identification with Toys, Animals, Objects. The child may identify himself with his toys A girl, for instance, dresses her doll, puts her to bed, feeds her, takes her out to ride, as she herself would like to be treated. Children in their play may take the position of father or mother, teacher, cops or robbers, kings or queens, each one of these characters

being a person whose position they would like to occupy and with whom in fantasy they can identify themselves A boy may identify himself with an animal He may wish to run like a dog or be strong and fierce like a lion or a bear. It is an interesting pastime, when one is with a group of people, to identify persons with animals, in a spirit of ridicule. Here is a man who reminds one of a bulldog, another of an ox, another of a race horse, another of a baboon, another of a pig One may also identify himself with an object Boys, for instance, will identify themselves with their toy automobiles or airplanes and wish for the power or speed which they attribute to these objects. A girl may identify herself with her bedroom and take the same interest in furnishing it with frothy curtains and bed coverings as she has in adorning her person

Identification with Person Absent or Dead. A very different kind of identification in fantasy is with a person who is dead or is absent When a parent dies, the child's identification with the parent still persists; in fact, it may be even stronger with the parent dead or absent than it was when the parent was alive This is one method that a person adopts for keeping still intact that part of his personality that was contained in the relationships with the late person And it is by this method that a person defends himself against unconscious aggressive impulses which he may have held toward the person when he was alive Many times these identifications with absent persons are heightened to the extent that they are controlled only by the memory and hence are likely to be more permanent in character than if they depended on a living relationship In such cases, the person may try to restitute the lost person in his own life. A widow may, for instance, try to carry on her husband's business, finish her husband's book, or adopt some ideals that her husband stood for. Or, the child will in fantasy adopt the vocation of the missing parent or take on his habits of thought, his activities, and his standards

Although Harry, age ten, does not speak of his father who died four years ago and apparently thinks of him very seldom, the fact is that he is actually much influenced by the memory, mostly unconscious, of his father If he thinks of his father at all, it is of a very good and wise man, a man who was outstanding in achievement Harry bases these memories on childish incidents which are very much magnified in his imagination These thoughts of his dead father serve as a stimulus to Harry's effort in school and as an incentive to his bearing and conduct His mother and aunts and uncles do not know of this and they merely think of Harry as growing to be a splendid, manly boy, who in many ways reminds them of his father

Identification with Characters in Fiction. One may mention as an identification in fantasy that which is made so frequently with actors on the screen or in the play, or characters in a book It is well known that as one sees a play he tends to identify himself with one of the characters in the plot, to take his part in all conflicts and struggles, to want very much for the outcome to be in his favor In short, he "roots" for his favorite characters, just as he roots for his favorite team in a game.

These identifications with characters in fiction may play an important part in character development, as is well known by teachers of literature. These identifications do not have to hold to sex lines A man can identify himself with the actress, a girl with her favorite hero In their play children may take the part of gasoline-station attendants, judges, doctors, Spanish senoritas, cowboys, teachers, Pilgrim Fathers, and especially movie stars. Identification frequently takes place with radio, movie, and comic-book heroes.

Identification with God. Finally, an important identification in fantasy is that which an individual makes of himself with God. As Freud [291, p 449] has pointed out, God is a projection of the introjected parents so that the concept of God comes by way of the superego and the sense of guilt. A little child can magnify and conceptualize this image of his parents into a far-away figure called God—a figure that has carried the ideals of man for centuries The belief in spirits or divine beings is all but universal, although candid consideration must place these beliefs in the general realm of fantasy A little child tries to conceive of what God is like and, stimulated by pictures he sees, he forms a concept of him as an old man with a long robe and a beard It is significant that these concepts of divinity are in the form of parental figures, and there is no doubt but that most children think of God as an extension of their own parents or of other admired men and women who are extensions of the parental figure That one may be antagonistic toward one's father, yet reverent toward God is an example of the common tendency to disperse ambivalences through displacement.

FEATURE IDENTIFIED

Identification with Loved Object. As has been mentioned before, one common form of identification is with a loved object Indeed, one might expect that the person who is admired to such an extent that he is unconsciously copied might also be a person of whom one is fond and whom one would like to have as a friend, companion, or as some other intimate As explained in the chapter, "Introjection and the Superego," the motive here is fear of loss of love.

Identification with Prohibiting Authority. However, identifications may be made with persons in other relationships. For instance, it is possible to identify oneself with a prohibiting authority and incorporate within oneself the prohibitions that are imposed by this authority This type of identification has been adequately discussed in the chapter on introjection and the superego

Identification with an Aggressor. Still another form of identification is with an aggressor, which has been discussed by Anna Freud [251]. Sometimes this is the identification with a person who has threatened harm in the past, and sometimes it is identification with a person who might threaten harm in the future Usually the aggression is toward

another person than the one whose aggression he fears. A man who fears the oppression of the law or of his employer may in turn become bossy and dictatorial at home. The child who is afraid of older bullies may in turn dominate children younger than himself. A boy who has to submit to beatings from a tyrannical father may in turn ruin his brother's kite or abuse his dog. By encouraging others and thereby attempting to control them one may act aggressively with a reassuring effect. Many instances of revenge illustrate "identification with the aggressor"—when the loved person hurts or frustrates, then these "hurts" can be undone by identification—that is, by introjecting the other person's aggressive attitude by a retaliating hurt. The punished child may manage the punishment wound by counter-aggression.

It has been pointed out elsewhere in this book that the boy manages his relationship with an overaggressive mother by identifying with her and taking on feminine interests which may explain the origin of certain forms of homosexuality. As was pointed out in the chapter on "Introjection" one can manage the demanding attitude of the loved person by incorporating her demands and requirements and this may extend to taking on her characteristics, interests and attitudes as well. Homosexual attitudes of girls may likewise be explained in part in some cases as the attempt to deal successfully with an aggressive, demanding and not too responsive father. "Identification with the aggressor" may explain unique behavior of the moment, or it may explain character trends derived from the attempt to deal with figures in the past.

Identification with Object of Envy. It is also possible to identify oneself with an object of envy.

Bill, age four, resents the fact that when his father comes home at night his mother feels obliged to prepare his father's supper, talk to him about the affairs of the day, and sleep with him in the same room. For this reason he would like to emulate his father's mannerisms and patterns his behavior after his father. On the playground he will order other children around as he has seen his father order around employees at the office.

Identification with Permitting Authority. A child can manage his dangerous impulses by identifying himself with the authority that gives him permission. Some children look to their elders for permission to do all sorts of things that they wish to do very much but that for one reason or another they are afraid to undertake. Casting imploring eyes at father or mother, they wait for a nod of permission to run out in the rain, to set off the fire-cracker, or to pick up the toy belonging to another child. Some children have to wait until given permission to be aggressive. It is as though they were saying, "It is all right if you let me," "It's all right, isn't it."

Little Tommy is brought into the clinic for study by the psychologist. In a room filled with interesting toys, he stands aloof in the middle of the floor with his hands behind his back, daring only to let his eyes wander shyly from interesting

toy to toy Not until the psychologist not only gives him permission but openly suggests that it is all right if he would like to handle the toys does he dare to satisfy his curiosity about them One marvels at the extent of the prohibiting supervision that such a child has received which would so inhibit natural spontaneous activity It is only when he can identify himself with the adult who gives him the permission that he can allow himself to enjoy free play

Identification with Permitting Authority Against Prohibiting Authority. Going a step further, one sometimes finds a child who will play one authority off against another.

John wishes to get out of some disagreeable task at school He tells the teacher that his mother does not wish him to soil his hands or to be late in coming home from school.

Hector has to be spoken to by the playground director many times for fighting When attempts are made to stop him, Hector retaliates by saying that his mother has told him that she wants him to stand up for himself and give a good account of himself He uses his parents in this way to give him permission, even overriding the wishes of the playground director who would like to restrain him for acting smart and being a bully with the younger children

Identification with Persons to Be Punished. In the discussion of law and authority in the chapter, "Projection," page 313, in each illustration given there was an identification of the self with the criminal who was punished

Identification with Recipient of Aggression It is possible for one to identify oneself with the recipient of aggression and to feel keenly in imagination the same feelings of sorrow or of pain which the person toward whom the aggression is directed is thought to feel This kind of aggression is undoubtedly the basis of sympathy, and sympathy develops to the extent that persons identify themselves with the recipient of aggression

An individual identifying himself with a person who is being punished may feel so acutely the suffering of being punished that he goes to the rescue of the person in sympathy even if not in actuality Frequently sympathy for others is an empathic feeling growing out of the hardships which one has undergone himself. One person describes his feelings as follows

The control and discipline were generally left to my mother with the understanding that weighty subjects would be referred to Father If both parents were present, there was generally cooperative agreement There was severe and strict discipline and corporal punishment was actually inflicted—the child cutting his own stick. I was often crushed and very hurt to have Mother punish a younger child, to see someone else cry or suffer was sure to bring a feeling of great sympathy from me

However, sympathy may also be a mask to cover the wish that the punishment might be inflicted In this case, it is possible that unconsciously the sympathetic person was identifying herself with her parents and getting satisfaction from the punishment being administered to a brother or sister

Identification with Someone Who Is Ill Finally, it is even found that a person will identify himself with someone who is ill because becoming ill appears to be a way of escaping certain conflicts. Typically, this is the method employed in conversion hysteria, where some physical symptom appears that serves as a method of escape from disagreeable reality A person will read or hear of the disease of others and proceed to suffer vicariously in his imagination and in reality, too, these same diseases At times in the past, manias, such as gambling or dancing, or the fifth-column scares during the early stages of World War II, have spread like wild-fire through communities, apparently through the operation of the mechanisms of identification Naturally such group movements could not have been stimulated merely by the process of identification, but there must have been certain readiness in the shape of anxiety or sadistic impulses waiting for some stimulus to action.

Multiple Identification. Fenichel points to the possibility of multiple identification [212, p 34] A person can play out a little drama, successively taking the parts of various individuals A boy may identify himself with his father and take on threatening, dominating attitudes toward other children. Then he may turn and feel sorry for those he may have hurt and try to make amends for them, in this case identifying with his mother with whom he sympathizes in receiving harsh treatment from his father

Conflict of Identification. There may, on occasion, be conflicts between identifications This would be particularly true if one identified himself with two persons who hold opposite ideals or standards The child, in identifying himself with both father and mother who are not entirely in harmony with each other, is given a very difficult adjustment problem with which to cope It is probable that quarreling within the family is more harmful to children than is generally believed because of this conflict of identifications within the self Such conflicts between identifications may lead to a disruption of the ego, with the necessary repression of one part of it, and may be a factor in later neuroses or psychoses These conflicts in identifications may be managed by repression during the latency period but may flare into prominence again during adolescence even if the outer situation may have been altered in the meantime Children whose parents have quarreled and as a result have separated or been divorced, carry scars which may give them severe personality disorders later in adolescence, when they have the difficulty of reconciling these exaggerated and conflicting trends within themselves.

INTROJECTION AND IDENTIFICATION

There is considerable confusion concerning the two allied conceptions of *introjection* and *identification.* Freud apparently uses them somewhat interchangeably and has not sharply differentiated between them In general, throughout the psychoanalytic literature the distinction between

these two terms has not been brought out too sharply However, that there is a distinction may be recognized by the phrase, "the boy identifies himself with his father by introjecting some of his characteristics" A paper by Knight [464] helps to clarify the distinction between these two terms. According to him, introjection is a *process* and a *mechanism* Identification, on the other hand, is a term used to describe an accepted fact, that is, a *relationship* or condition that depends, to a large extent, on introjection but uses other mechanisms such as projection and displacement as well. In the present chapter and in the chapter on projection, illustrations have been given in which both identification and projection have been used to describe a single bit of behavior

Identification may be reached by some such method as the following: first, there are certain desires and impulses within an individual which he is unable to express These are projected out onto another person who exemplifies the working out of these desires in actuality As the other person represents the successful accomplishment of these desires, he then is introjected, and we find that the individual identifies himself with him. The small boy, for instance, wants to be big and strong His brother can build a model airplane, ride a bicycle, and play tennis in ways that the younger boy would like to be able to do Consequently, he projects his own desires out onto his older brother and then in turn introjects his older brother's skills by identifying with him If this is done in actuality, we have the first type of identification, which is imitation If we have the second type of identification, the introjection is carried out in fantasy, and the younger boy obtains satisfaction in the fact that it is *his* older brother that can do these things In the third type of identification, where one person is compared and likened to another, the mechanism by which the identification is accomplished is displacement

To illustrate the relation of identification to these mechanisms, sympathy may be thought of as a form of identification First, when one feels sympathy for another, wishes of the individual are projected out onto the other person who has suffered some misfortune or failure or who is enjoying some success or triumph As the other person experiences success or misfortune, the individual identifies himself with him and experiences similar elation or disappointment by the process of introjection In sympathy, therefore, the impulses are first of all in the individual who sympathizes However, instead of working them out in his own experience, he experiences them vicariously in the joys or suffering of another

One also sees identification in the friendly relationship A man may admire another man because of his hairiness or resounding voice, which are attributes of his masculinity, or he may unconsciously admire his mincing walk or gracious mannerisms, which may be an expression of femininity. In either of these the individual is admiring in the other

person tendencies present within himself He is projecting his wishes out onto the other person, and as the other person fulfils his desires by his mannerisms and personality characteristics, the individual identifies with him by introjection. This may serve as an explanation of homosexual as well as heterosexual tendencies

One may also identify with an enemy by a similar process of projection If one wishes to know what a person feels wrong about himself, which of his own tendencies he despises and rejects, ask him to describe his enemy or rival His critical answer will tell what characteristics in the other he would feel ashamed of in himself

Knight also describes the process of psychoanalysis in these same terms. As the client reveals through his free associations and his behavior certain unconscious tendencies, the analyst will interpret them in terms of kindred impulses within himself These he projects onto the client through his interpretations. As the client is able to assimilate these interpretations, he is identifying himself with the analyst by introjecting the interpretations that have been made to him Deepening insight, therefore, takes place through a process of identification, and it would not be possible to achieve this insight except through a process which would require the identification with another person

PATHOLOGICAL ASPECTS

One's identifications determine, to considerable degree, the characteristics of sexual expression Normally, when the Oedipus complex is satisfactorily resolved, a boy will adopt heterosexual attachments in adolescence without difficulty However, if identification with the mother has been exaggerated in early childhood there may be at a later time homosexual tendencies, that is, he may find it easier to be excited and stimulated by men, whereas his feelings toward his mother may have been so intense that he not only represses these but feelings toward other women as well It is believed that homosexuality can be understood, in part, in terms of identifications in early childhood

Identification with undesirable types of persons may lead to unfortunate types of character It is quite possible for a boy to identify himself with the criminal tendencies in a father, or a girl with the sexual looseness in her mother A child who attempts to identify with a shallow, vacillating, immature parent may become psychopathic, with difficulty in forming any kind of stable character or superego at all

VALUES IN IDENTIFICATION

Positive. Identification is universal and common to all men, a potent mechanism in character formation It has positive value when it helps an individual to find a way of satisfying any of his needs. Identification is recognized as good when it gives a person ambitions, ideals, and goals and when it spurs him on to greater activity It is also valuable insofar

as it gives a person security When a child can ally himself with his father or his older brother and gain strength from this alliance against his own weakness, when a man gains strength by allying himself with his state or nation or his school or club, then we find such identification good.

Identification is also a basis of sympathy When we sympathize with a person we have in part identified with him Even when we sympathize with a person in distress we identify with him in the sense that we would like to have had the secret satisfaction for which the misfortune is a punishment and to share the punishment Freud [260, p 64] illustrates this by the spread of hysteria in a girl's boarding-school when one girl is provoked to jealousy by the contents of a love-letter The other girls would secretly like to have had the same experience

Negative. Identification, on the other hand, may be considered less desirable when it tends to become exaggerated and fantastic Men and women who permit themselves to become so strongly identified with some character in history or fiction and, at the same time, dissociate themselves from the affairs of real life become psychotic Delusions of grandeur, a characteristic of paranoids, is an illustration of identification gone haywire. The individual believing himself to be Jesus Christ or Napoleon or Einstein or some other religious or scientific hero may so immerse himself in this rôle of fantasy that he loses his capacity to adjust to the real world in which he must live Identification is bad when it is without discrimination. A small boy may identify himself with his favorite airplane pilot, spend his time tinkering about on engines, and dream of the time when he can span the continent. On the other hand, if this leads to being careless in dress, or going about with soiled hands, or lateness at meals or at school, this identification can give parents and teachers considerable concern Identifications can become fixated and hence prevent growth It is possible for a child to hold a childish goal or ambition to such an extent that he fails to grow more mature in his outlook and to adopt a more adult point of view If there is a lag between goal and achievement, as when identification takes place only in fantasy, there may come a feeling of worthlessness or discouragement, even of guilt, which can be destructive or which can negate any of the benefits which come from the spur given by the identification

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

Identification, therefore, because it is a common mechanism in the formation of behavior, feeling, and thought, may be used as a powerful educational tool. In general, children respond readily to appeals to identification Whatever a teacher wishes to inculcate in her children can be most easily accomplished not by directly urging them but by pointing tactfully to some other person who may be admired and who possesses these traits and characteristics Parents and teachers should also remem-

ber that there is a natural trend for a child to identify himself with them, and that, insofar as they themselves carry in their persons the traits and characteristics which they would like to see in their children, they can be sure that their children are on the road to adopting them by the process of identification

SOCIAL IMPLICATIONS

In the chapter on projection leadership was mentioned as a projection of inner authority Leadership is also an identification as the leader becomes a substitute for the goals and successes which we are unable to attain by our unaided efforts The tendency to identify with a leader blindly can be prevented by (1) an amelioration of the situation so that the individual feels more confident and secure, and (2) strengthening of the group and its defense resources so that there is less to fear from the aggressiveness of other groups As a group grows inherently strong there is less need to project authority on and to identify with a strong leader.

XV

Conflict

In Chapter III frustration was discussed in connection with the satis faction of wants But frustration, by and large, presents problems to an individual in relation to his adaptation with the outer world, and does not immediately concern problems of the integration of the individual himself Most of the serious problems of adjustment in children and in adults are based on conflicts An understanding of the nature of conflicts and how they are resolved is necessary for an adequate understanding of how persons can achieve satisfactory adjustments and integration of personality

DEFINITION

Conflict differs from frustration in that it is the simultaneous operation [illegible] le action systems stimulated, one is inhibited giving the other freedom of action. We see this most clearly in the action of antagonistic muscle groups For instance, it is obviously impossible for the biceps and triceps muscles of the upper arm to contract at the same time One flexes the elbow and the other straightens the elbow. The nervous system is so organized that there is complete cooperation between these two groups of antagonistic impulses. When the biceps is stimulated, the triceps muscle is relaxed and vice versa. This coordination is the way in which the body manages its muscle groups which have opposite functions In [illegible] and [illegible] both [illegible] nflicts may be recognized in difficulties in making a choice or a decision The small child finds that it is not possible to enjoy eating his cake and also to have it to save as a prized possession The older boy finds it difficult to choose between an opportunity of attending the ice carnival and going to the basketball game, both of which are scheduled on the same evening The young lady has difficulty in deciding whether to wear her white or green dress. She feels that she looks better in green but that most of the other girls are going to wear white.

FUNDAMENTAL CONSIDERATIONS

Conflicts arise and continue because two antagonistic drives are aroused Both of [illegible] economy [illegible] partments of life, and ordinarily, perhaps a person can satisfy both of them at different times and on different occasions without any difficulty However, the time may come when it is not possible to satisfy both. They may come at the same time or require different uses of the same materials or lead in opposite directions Both wants, however, are real and not easily brooked, and consequently conflict results

Conflicts Relate Primarily to Means Not Ends It may be truthfully said that conflicts relate only to means and not to goals and ends. As has already been pointed out, all subsidiary drives are in the service of more basic drives In the long run, there is no conflict and can never be any conflict in the basic desires for security and adequacy but only in the means for achieving them From these basic desires stem out a myriad of methods of guaranteeing their continued satisfaction. Conflicts relate to the clash of these antagonistic and contributory means for achieving basic ends in which there is no question of conflict For instance, a boy may alternately be good and bad in school and give clear indication of conflict over these contradictory forms of behavior He may even tell a counselor with some guilt how he purposely makes mistakes in order to arouse a laugh in the class In both forms of behavior, that is, the conforming and non-conforming behavior in the classroom, the boy is wanting one thing, namely to stand high in regard of the group. If he cannot win this recognition by success in the performance of school tasks for which he frequently strives, he will then turn about and try for this recognition by some form of annoying behavior

Maslow sees four types of conflict [562] Type one is sheer choice, as when one has to choose between two flavors of ice-cream or whether to wear blue or green T[illegible] some one vital goal [illegible] goals Type four is a pure threat in which the person is so hemmed in [illegible]

[illegible]

way of achieving a desired end, or because learning has been more adequately, this behavior will have the preference and the conflict will not be so acute

The Stronger the Drives or Avoidance Tendencies the More Intense the Conflict [illegible] One does not feel a

very strong conflict about things for which he cares very little Conflicts over minor wants are not likely to be very intense If there are signs of intense conflict over apparently trivial decisions, one may feel assured that the desires involved go deeper than they appear to on the surface and probably unconsciously are connected with broad and underlying trends in the personality. For instance, one may apparently have great difficulty in selecting some simple gift and the conflict seemingly causes great mental distress One does not know, however, to what extent the difficulty in selecting the gift is related to conflict of friendly and hostile attitudes toward the person for whom the gift is meant.

Consciousness and Conflict. Of the two drives which constitute the conflict, a person may be conscious of both, or of one but not the other, or of neither Illustrations of conflicts in which the person is aware of both needs are easy to recognize and of frequent occurrence. Throughout the course of the day one has to make many decisions and to face alternate choices of which he seeks to be fully aware. A university professor has to decide whether to put his time on class preparation, reading a doctoral dissertation, attending a committee meeting, meeting an out-of-town guest, or conferring with a student Sometimes, however, difficulty may present itself, and an individual is unable to define the difficulty sharply. He knows that he wants one thing but is not able to state exactly why he hesitates in accepting it.

As an illustration of conflict, one of the poles of which is conscious, the other unconscious, consider the little child who has the opportunity of indulging in finger-painting The tendency of which he is conscious is his fear of soiling his hands and getting his clothes dirty Equally strong, but less conscious, is his desire to dip his finger into the paints and smear them on to the painting surface With a little encouragement this desire breaks through the barriers of inhibition, and if the person who is encouraging him shows no sign of censure at his getting his hands soiled, he will enter upon the project with high enjoyment Or consider the high-school girl who wants very much to go on the week-end party but is forbidden by her mother who is afraid that the supervision of the young people's activity may not be carefully planned This girl, who has been brought up with close and affectionate relations with her parents, accepts the decision with good grace and even rationalizes to herself the reason why she should not go, namely that she would have to miss attending Sunday-school class Deep and increasing resentment against her mother for the restrictions that she is feeling with increasing force are kept securely repressed The conflict here is between the open and conscious acceptance of the mother's wishes and the unconscious tendencies toward resisting them together with the accompanying feelings of hostility.

A third group of conflicts in which both drives are unconscious is difficult to give, because, since each of the trends is unconscious, any illustration will tend to be unreal. For instance, in the illustration just given, suppose the girl's hostile feelings toward her mother aroused unconscious feelings of the need for self-punishment in the form of some kind of self-denial or restriction of pleasure, as is frequently the

case. There is then the additional conflict between the unconscious feeling of hatred and hostility toward her mother and the desire to hurt her, and the unconscious feeling that she (the girl) is bad and hence deserves some sort of punishment for these feelings The only evidence that the girl has of this unconscious conflict is a feeling of guilt or a feeling of unworthiness or inferiority This unconscious conflict may show itself in open expression by demureness, docility, and a well-developed tendency to play the part of the devoted daughter.

Conflicts May Be Residues of Frustrations of Earlier Life. One or both drives constituting the conflict can be survivals of tendencies in the individual from long ago, perhaps even from childhood or infancy. In other words, conflicts may be not only conflicts of wishes or desires [illegible] frustrations [illegible] in the illustration just given, the feeling of hostility toward the mother is a survival and a revival of hostility which has been aroused frequently from the earliest periods in life Again, the need for punishment, which apparently is unrelated to anything in the present situation, may be a survival of the actual punishment which the girl received or was threatened with for overt expressions of aggression and hostility when a little child This feeling of unworthiness and expectation of censure or punishment which was developed at that early period has ever since remained a tendency which this girl has assimilated into her own self and which may be aroused whenever these earlier feelings of hostility are restimulated In fact, the most distressing and serious conflicts are those in which one aspect of the conflict is a revival of some childish tendency entirely forgotten by the person, of which he is totally unaware. It is for this reason that these unconscious conflicts are so difficult for the average person to accept readily as an actuality He simply knows of their existence by his feelings of guilt, shame, anxiety, and unworthiness, and by the fact that they are expressing themselves by some neurotic symptom.

The Spread of Conflicts. Miller [584] points out that conflicts tend to spread by a process of higher-order conditioning, as one of the competing tendencies in the conflict generalizes to new situations This spread probably means that unconscious tendencies constantly generate anxiety, and more has to be included in the repression to ward it off.

Types of Incompatibility. Miller cites five types of incompatibility that may give rise to conflict The first four of these types are not the particular concern of this book as they refer more to physiological than to psychological conflict They are: (1) *mechanical*, as when the flexion of a muscle interferes with its extension, (2) *neural*, as when the excitation of one reflex inhibits another, (3) *chemical*, as when some glandular secretion may stimulate a response that is the converse of some opposite response, and (4) *perceptual*, as when attention given to one form of

perception prevents simultaneous variant forms of response. His fifth variety, which he calls *acquired*, hardly expresses the significant quality, some such term as *functional* or *structural* would be more appropriate to indicate that they are conflicts in adjustment and that they are conflicts between different trends or "structures" in the personality.

TYPES OF CONFLICT

We may divide conflicts into two major groups, those in which the conflict is between drives operating in two (or more) individuals, and those in which the drives are operating in the same individual Of the first class, consider a situation in which two persons are studying in the same room and one, feeling the room to be somewhat chilly, wishes the radiator open, and the other, feeling the room to be stuffy, wishes the radiator closed So-called "culture conflicts," that is, conflicts that a person who has grown up in one culture experiences when he is set down to live in a strange culture, is another group of illustrations of this same type

There is, for instance, the girl in an Italian family whose parents believe that she should not go out with boys until she is eighteen years old or so, whereas other boys and girls are having good times and friendships together as early as fourteen The girl feels that her parents are old-fashioned and unreasonable, whereas the parents feel that the girl is wild and uncontrollable, and conflict naturally develops

Industrial conflicts between worker and owner belong in this same group.

Actually, these are not illustrations of conflict from the psychological point of view, but rather they come under the heading of frustrations that were discussed in the previous chapter. For instance, to the person who feels chilly in a room the wish of the other person to keep the radiator closed serves as a frustration and, vice versa, the other person is frustrated by wanting the radiator open These are the kinds of conflicts commonly discussed in sociology We may, therefore, make a distinction between *psychological* conflicts and *sociological* conflicts, the latter being, from the psychological point of view, frustrations. Since frustrations have already been adequately discussed, this type of conflict will receive no further attention here Throughout this book such conflicts will be called frustrations and conflict will be reserved for the second type, namely competition or antagonism between drives *within* any one individual.

In describing the various kinds of psychological conflicts, the classification to be used will follow, roughly, that given by Lewin [512, pp 88-94], whose topological and vector psychology has been most fruitful in the derivation of dynamic laws of behavior Lewin's analysis and classification of types of conflict is based on the distinction between wants and avoidances. He recognizes three types of conflict (1) that in which the individual is confronted with two opposing or contradictory wants, (2) that

in which the individual is faced simultaneously with a want and with a desire to avoid the same situation or activity, and (3) that in which the individual is faced with need to avoid two situations, from both of which he wishes to escape. The meaning of these three types will become clearer as they are illustrated by examples

Conflict Between Two Competing or Interfering Drives. Th[illegible] [illegible] systems within the individual. Lewin [512] gives the simple example of a child who has to choose between going on a picnic and playing with his comrades.

Conflict Between Basic Drives There is a reference in the Freudian literature to "instinct[illegible]" [illegible] drives However, ther[illegible] such as love and hate are not fundamentally in conflict with one another, but that if such a conflict arises, it in some way involves the structure of the personality It is perhaps too simple to think of love and hate as being two opposite forces which naturally run into conflict with each other. Where such a conflict arises, and one drive has the ascendancy and the other is repressed, probably what takes place is that some critical faculty intervenes to make the one attitude acceptable and the other unacceptable It is as though an individual finds hate too dangerous and puts the tendency to hate aside, leaving the tendency to love with a free field. Or perhaps, because love has been rebuffed so many times, to express love becomes too great a threat to the person, and this tendency is repressed, leaving hate the undisputed master of the situation.

Conflict Between Immediate Wishes Besides conflicts between the basic driv[illegible] *immediate* and *minor* antagonistic action systems, which come into conflict at every hour of the day For example, one must make a choice between staying in bed in the morning where it is warm and comfortable, and getting up and going about one's daily pursuits, or, in the evening, there is a choice between going to bed in obedience to the demands for rest and sleep, and staying up to finish an interesting novel or to listen to the radio There is the choice between talking to one's friend or preparing one's assignment for the next day's class While it is true that in these simple conflicts involving a choice, the wishes are antagonistic in the sense that they will take an individual along two different lines of activity, there is not the fundamental antagonism and wrench to the personality that results from the conflicts involving the more fundamental origins Consequently, it is possible for both of these simple drives to be tolerated in consciousness, and since the person is aware of the conflict he retains it clearly in consciousness to be handled in problem-solving fashion

Conflict Between Immediate and Remote Drives There may also be conflict between *immediate* and more *remote* wishes, ideals, duties, or

ambitions Tom Sawyer, for instance, was caught between the necessity of painting the fence and the desire to go with the gang up Cardiff Hill An adolescent finds that the drives toward sexual pleasure and expression are in conflict with his wishes to achieve He finds that he may have to choose between having a good time in the present and putting his emphasis on his studies in order to win a high scholastic record and hence gain admission to college The conflict here is between a goal which is consciously, even though perhaps uncritically, accepted, and the more impulsive and pleasure-seeking driving forces within Another illustration would be the conflict between the boy's desire to make himself an effective public speaker, and, on the other hand, his natural embarrassment in displaying himself before a group Washburne, in his *Social Adjustment Inventory* [827] has used conflicts between immediate and more remote wishes as diagnostic of social adjustment He will ask "If you had to choose between having a very fine automobile right now (with expenses paid, a driver's license, and knowledge of how to drive), or a million dollars next year, which would you take?" Washburne found that the adolescent who chose to have the automobile, to have his immediate wish satisfied, was, on the average, less well adjusted than the adolescent who could postpone his gratification to secure a larger reward in the future.

Conflict Between Two Ideals or Ambitions Two *ideals* or *ambitions* are frequently in conflict In our complex modern life, many goals beckon, and yet time and energy are insufficient to permit their realization

I once knew a young man in college who was a good student and had ambitions to make Phi Beta Kappa He also had an excellent physique, and could easily make the college football team During the football season, however, the schedule was so arduous that it interfered with his scholastic ambitions He accomplished both goals only by a high degree of tenacity and careful planning

Women today are torn between raising a family and having a career. These are goals, both of which may be ardently wished for, and yet both are so consuming of time and energy that they run into sharp conflict.

A child whose parents are mismated, quarreling and disagreeing in their family relationships, is almost forced to adopt standards and ideals which are in conflict Perhaps the parents separate, and the child goes to live with each for part of the year From each parent he learns a different set of ideals His mother wants him to go to college and enter upon some professional career She has standards of honesty and a restricted point of view with regard to relations with girls His father, however, wishes him to go into business and is not too scrupulous in his own business methods His son well knows that his father is somewhat free and loose with women The boy is fond of and loyal to each parent and assimilates the ideals and ambitions of each. However, they conflict, and it is impossible for him to reconcile these conflicting standards that are held up to him. Consequently, he is frequently in grave conflict in making choices and decisions.

Conflict Between Two Duties Sometimes *two duties* conflict. Andrew Jackson, for instance, had to make a choice between remaining with his invalid wife at the Hermitage and serving his country in the Battle of New Orleans Parents are frequently torn between the demands of their children. Wishing to do their duty by each of their children and give them the very best preparation for life in most cases inevitably involves choice and conflict over which children can be sent to college or given other similar advantages.

Conflict Between Duty and Ambition. Sometimes *duties* and *ambitions* conflict A teacher, for instance, is ambitious to advance herself professionally and would like to attend the summer session or take part in teacher institutes However, her invalid mother also makes demands on her time and energies, which means that her professional ambitions must be indefinitely postponed Many a person has to make the choice between sending a younger brother or sister to college or spending the money on his own professional advancement.

[illegible] In this same group will b[illegible] or *beliefs* The conflicts already described have been between competing tendencies to action However, these conflicts may arise even in the planning stage when one is merely thinking about the stand to be taken on various issues Sometimes when these concern the fields of politics or religion, they are distinct enough to be described under a separate heading Culture conflicts, which we have earlier stated to be essentially sociological, may be psychological to the degree that the individual has assimilated within himself points of view of two or more cultures He may find that certain forms of behavior are both accepted and condemned, and he is perhaps sympathetic to both points of view The adolescent today frequently finds severe conflicts between earlier religious views learned as a child at home and in church, and views with regard to the universe learned in science classes These conflicts may be very intense The science teacher not infrequently has a boy or girl come to him and ask if he believes in God, if science sees no plan or purpose in the universe, and similar philosophical questions We frequently find conflicts of this type between sex standards and religious teachings or between points of view expressed by church and state with regard to military service In 1940, for instance, this country was committed to conscription of men between twenty-one and thirty-five, and discussions in the newspapers and in forums preached and upheld this action On the other hand, certain idealistic church groups discussed the issues as to the individual's responsibility toward war, and one group of Christian gentlemen expressed opposition to conscription John Haynes Holmes, for instance, said, "So my resolve is fixed, as it has been fixed for many years If America enters this war, I will not. As far as the law may allow, and my spirit dictate, I will oppose the war" [370] These divergent points of view meant severe conflicts to some

young men who were struggling to adopt a definite position and who were influenced both by their allegiance to country and to religious teachings.

Wishes concerning one's own adequacy and abilities may conflict with a belief that one's abilities may not be up to standard. A mother may become terror-stricken over the suggestion that her son may be feeble-minded or may have delinquent tendencies This belief is in conflict with her belief and hopes that he has high potentialities and will grow up to become a great success in life

The conflict of loyalties also comes in under this heading In the case of the boy whose parents are separated, underlying all issues of his standards and conduct is the conflict of divided loyalties Shall he hold himself loyal and deferent to his mother and equally so to his father? This becomes more difficult to the degree that their ideals and standards diverge, and he has a desire to adopt standards of both Or if a boy with separated parents lives in a foster home, there is the additional conflict between loyalty to his mother whom he adores and to his stepmother for whom he has the greater respect Then there is the conflict between loyalty to one's mate and to one's parents, particularly where both make conflicting demands This conflict is especially harsh in cases where there is fixation on a parent, with emotional ties which are unduly strong Then there is the conflict of loyalty to a friend Shall one be true or false to a friend? Shall one be loyal to a friend when the friend has done something of which one does not approve and which goes against one's conscience? In such cases, shall one be true to the person or shall one be true to one's ideals? These and similar issues of choice and decision form the basis of many difficult conflicts:

Conflict Between an Action System and a Frustration. Lewin's second group of conflicts is that in which an individual is faced simultaneously with a want and also with a desire to avoid the same situation or activity. He gives as an illustration the boy who wants to climb a tree, but is afraid, or the child who is offered a reward for some activity, such as a school task, which he does not really want to execute In these illustrations there is an external stimulus beckoning the child on, but at the same time there is a barrier, either external or internal, that makes the activity difficult

Conflict Between a Drive and External Frustration This conflict between a drive and its control may be seen in early infancy, when a parent finds it necessary to restrain a child Here the conflict is between a drive and an external frustration The child reaches out its hand to touch some attractive object, and the mother slaps its hand or places the object out of reach Slapping the hand is a punishment The infant soon learns to recognize these occasions, in which an adult forcibly restrains him and uses pain to enforce the restriction, as punishment He may even go beyond and interpret any pain or injury which he experiences, whether or not given intentionally by another person, as a means

of restraining him. Many of the subtle and distressing conflicts of adult life, those which bring anxiety and guilt and which drive a person into neurotic behavior, originate in these simple conflicts between a child's primitive impulses and the restraints in the form of punishments placed upon him by his parents in the earliest days and weeks of his life Here is an illustration of the importance for later personality adjustment of the apparently insignificant experiences of a baby in its earliest years

Conflict Between a Drive and Inner Restraint Growing out of this conflict between a drive and external frustration is the large class of conflicts between drives or wishes for immediate and pleasurable activity and inner restraints A good example of this type may be found in the conflict between the desire to grow up and the need to be dependent If a child has been intimidated and represses his outgoing adventuresomeness, competition, and assertiveness, he may develop retiring and dependency trends But the natural forces of growth will supply urges toward independence, authority, and aggressiveness Resulting from this conflict one commonly finds criminal tendencies that are a protest and compensation against the dependency needs [28]

CONFLICT BETWEEN A DRIVE AND EGO RESTRAINT The first of these is the conflict between the aroused drives and the demands of the ego, known in psychoanalytic literature as the ego conflict. These aroused drives are the tendencies to love and hate, to soil, to peek, to feel omnipotent, already so many times heretofore mentioned For instance, consider the conflict between the alcoholic who wants a drink and his tendencies to hold himself in check He recognizes that if he does drink he will be late to work the next morning, he will lower his efficiency, and there is a chance that he will lose his job He is afraid of deterioration and loss of efficiency Such a conflict between caution, on the one hand, and impulse on the other is well recognized in discussions of morals.

CONFLICT BETWEEN A DRIVE AND SUPEREGO RESTRAINT *Basic drive—superego conflict.* A second variation in this group may be the conflict between basic drives and the assimilated *unconscious* inhibitions This is known in the psychoanalytic literature as the basic drive-superego conflict It is this conflict that is the basis of much neurotic behavior and suffering. Just as the child may recognize his parents' prohibitions as representing danger to him if he does not submit, so he may recognize his own standards and internal restraints as dangerous if he does not accede to them, and when he does act contrary to his own self-imposed standards, he is filled with guilt and remorse. The little child, for instance, may be observed to feel annoyed when his hands are dirty, to feel ill at ease when he has left the cover off a box, or has left his toys scattered around, or has a spot on his clothes He may be timid in the presence of other children as though he were afraid that his own tendencies toward them will be aggressive

These prohibitions and restraints, arising originally in the culture but

taken into the self and accepted by the individual as his own, meet the impulsive side of a person's nature in a head-on collision This is probably one of the most striking and distressing forms of conflict that exists. Usually the individual is well aware of his repressing attitudes He knows that he believes it wrong or sinful or improper or lacking in sportsmanship if he were to steal, commit adultery, tell a lewd story, or cheat in a game. The tendencies to do each of these things he probably fails to recognize in himself and if questioned would deny their presence with some vehemence. One can recognize this *conflict* between urges and internal restraints in situations in which one feels guilty, embarrassed, or ashamed A child feels guilty when he has stolen something, told a lie, broken a window-pane, torn his clothes He feels ashamed when he has made a mistake in his lesson, when he has forgotten to comb his hair, when he has not done as well as a brother or sister

Conflicts of this type occur most frequently in connection with tendencies toward sexuality,[1] partly because sexual expression is so strongly condemned in our culture where every individual grows up with strong superego attitudes toward it, and partly because the sexual urges carry such a large amount of feeling with them The excitement of romantic love is undoubtedly due to the conflict between these sexual urges and prohibitions against them. On the one hand, there is the arousal of the impulses toward love and, on the other hand, the belief that in yielding to these impulses one is doing something that is considered wrong One finds this conflict in a little child who, when he is first reproached for playing with his genital parts, has to face the fact that this is prohibited as well as his strong urge to gain gratification in doing it Later he finds that sexual love for his mother is treated in the same manner, and the incest fear develops. In adult years this same conflict persists As an illustration, consider the woman who falls in love with a married man and has to contend, on the one hand, with the emotions that are aroused, and, on the other hand, with the scruples assimilated from her early teaching that it is wrong to yield to this love Charlotte Bronte's story, *Jane Eyre,* presents the exquisite torture that this conflict can engender It is fairly common today to find girls who have accepted religious barriers against sexual experience without marriage, and yet are impelled to seek out the company of young men However, religion in such a case is only a rationalization against a deeper feeling of fear or disgust or feeling of inadequacy for sexual experience.

Tendencies toward aggression may likewise be subject to this same type of conflict Children are taught at an early age that aggression is

[1] When one mentions the sexual, it should be recognized that the word "sexual" is not being used in its limited and customary sense but refers to many activities in infancy and childhood which have a sexual significance There are many components of the sexual impulse in childhood, each one of which is pleasure giving in its natural form of expression, and many or most of them are prohibited by parents in our culture in their natural and undisguised expression by children.

not acceptable in present-day society, and that it is wrong to strike, bite, or harm any person Yet his impulses to hate and tendencies to harm another person are aroused at every turn, and these tendencies are constantly met by the opposing, assimilated inhibiting tendencies which tell him that they are wrong This conflict is recognized by the individual himself as guilt Every basic desire that is repressed in early years may serve as a basis for later conflict For instance, the desire to exhibit oneself, which is well recognized in infancy, later comes in conflict with the acquired tendency to feel that to do so is wrong and shameful This type of conflict becomes especially strong with children who have grown up in strict homes where there has been much moral teaching or where there has been overprotection

CONFLICT BETWEEN DRIVES AND ANTICIPATED SELF-PUNISHMENT. One may go [illegible]ncy to hold them in check by recognizing that the expression of these basic drives in young children has often been followed by punishment, and that the need for this punishment has been introjected or assimilated into the self, just as the prohibitions themselves have been Consequently, when an impulse arises and there is also aroused a feeling that this impulse is bad and hence is subject to punishment, the person has a tendency to inflict on himself, if not actual physical injury, at least all sorts of hardships and deprivations Naturally, a person wishes to avoid self-inflicted punishment, as one avoids punishment that is to be imposed by another person Just as there is inhibition of an impulse, on the one hand, arising from fear of punishment which may be imposed by parents or teachers, so on the other, there may be conflict between one's impulses and one's fears of one's own inner tendencies toward self-punishment or self-deprivation. Since both the impulse itself may be repressed and unconscious, as well as the introjected tendencies toward self-punishment, this conflict itself is wholly unconscious, and is known only to the person as guilt or feelings of inferiority

CONFLICT BETWEEN DRIVES AND THOUGHTS OF ONE'S OWN LIMITATIONS. A fourth variety of conflict between drives and inner restraining systems is that in which the restraining force is thoughts of or beliefs in one's own limitations These conflicts arise very often A little girl wishes to receive and show affection in her family, but she has often been told how much of a beauty her sister is and how ugly she is with her straight, stringy hair and freckles Consequently, she believes herself to be an unworthy child, and fearing that her affectionate advances will not be accepted or reciprocated she represses them and is known as an odd, unapproachable child. The adolescent youth may feel his sexual powers arising, but he may be troubled with thoughts that because of some unfortunate early sexual episode or masturbation he has made himself impotent. Consequently, a grave conflict arises, and he becomes timid and retiring in his relations with the opposite sex, unconsciously believing that he lacks certain

essential qualities which would make him altogether acceptable to them

This discussion has been concerned with drives toward immediate and pleasurable activity However, there may also be poignant conflicts between the remote drives in the form of ideals or ambitions and inner restraints In the first place, there may be a conflict between an ideal or an ambition and restraint imposed by the ego For example, one may have an ambition to learn the touch system in typing, but finds that it is difficult to afford the time necessary for the acquisition of this skill; or one might wish to perfect himself in some sport, but, again, realizes that while there might be genuine satisfactions in being able to display one's prowess, such a skill must take a secondary place as compared with skills necessary in one's business or profession Sometimes common sense comes to the rescue in preventing a person from following the will-o'-the-wisp in the form of some chimerical goal or aspiration

Conflict Between Introjected Systems A third large group of conflicts between action and restraining systems are those in which both forces are of introjected systems By an introjected system we mean some action tendency which has been assimilated uncritically from the culture, usually by teachings of parents and others in early childhood or merely from accepting the current modes of behavior and attitude in the surrounding culture

CONFLICT BETWEEN EGO IDEAL AND SUPEREGO A first type in this group is the conflict between an *ego ideal* and the *superego* These two sets of introjected forces may come into conflict. For instance, in the illustration of the youth whose parents have separated, we may find that the father, on the one hand, sets the example of promiscuous sexual activities (ego ideal) The mother, on the other hand, has from early childhood attempted to teach her son the value of chastity She has scolded or threatened, shamed or ridiculed all his expressions of interest in girls and through these prohibitions has created in him, at least in one side of his character, strong ascetic tendencies His father's ideals and his mother's restraints, both of which he assimilated, are in strong conflict

CONFLICT BETWEEN EGO IDEAL AND ANTICIPATED SELF-PUNISHMENT A second type is conflict between the ego ideal and anticipated self-punishment This type does not differ so much from the conflict between basic drives and anticipated self-punishment except that in this case instead of a basic drive, the drive is an introjected one in the form of an ideal or ambition or goal A boy, for instance, has a strong drive to pass with a high grade on an examination He knows that if he were to fail he would blame himself for failing to study or for going out with the crowd and staying up late at night. He is dimly aware that were he to make a low grade on the test he would feel the necessity of denying himself all sorts of pleasures. That such self-denial is a punishment for his failure to take the test seriously and properly prepare for it would be uncon-

scious on his part. Consequently, he anticipates the test with considerable apprehension and "examination fear." In this case the drive is conscious, but the anticipated self-derogation and punishment is mainly unconscious, showing merely itself in vague apprehension

CONFLICT BETWEEN EGO IDEAL AND THOUGHTS OF ONE'S OWN LIMITATIONS. The third type of conflict is between the ego ideal and thoughts or beliefs in one's own limitations We may divide these beliefs into two groups: first, beliefs about one's past deeds or accomplishments, and second, beliefs about one's own potentialities. The conflict between one's ambitions and attitudes toward one's deeds and accomplishments may be severe. On the one hand are high ideals set for oneself and, on the other hand, are the more or less tangible evidences of failure to live up to these ideals This conflict shows itself in feelings of unworthiness and inferiority, which can become most painful in their intensity The second group under this type are those conflicts between belief concerning one's aptitudes and potentialities and the ideals that one holds. A boy, for instance, wishes to make a success in his career. His father, however, has committed a crime and has been in the state penitentiary for years. This boy believes that he has within himself similar criminal tendencies, which he fears will prevent him from making the success in life which he would like to win Fantasies with regard to one's own limitations are widespread and the cause of many severe conflicts. The person may fear that he is going insane because of insanity in the family, that he lacks intelligence or special ability to carry through the goal that he has set for himself, that he lacks certain character qualities which will give him the needed persistence and endurance to carry through to the end, or that he lacks normal sexual potency These beliefs coming into conflict with ideals produce grave disturbances in personality

[illegible]

[illegible] is, inhibitions, and various forms of stimulation or encouragement from the outside These conflicts reverse those which we have just been considering First of all, the original drive must have been suppressed so that the inhibition becomes assimilated within the personality Then as this inhibition becomes strong, there may be heartbreaking conflicts between it and outer encouragement or stimulation On the other hand, there may be conflict between a repulsion, that is, a feeling that something is wrong or bad or ignoble, and outer encouragement or sanction of this act. For instance, a young man coming from a strict and puritanical home may find himself with a bid to become a member of a fraternity in college Upon getting acquainted with his fraternity brothers, he finds that they sanction many things that are in conflict with the standards of his home, church, and community He finds that he is expected to drink, to experiment with relations with women, to place bets on athletic events These newer sanctions coming into conflict with his childhood standards may

give rise to extremely severe conflicts. The conflict may not be merely one of feeling He may have rationalized his position and have built up elaborate structures of ethics based on religious beliefs whose sanctions become even stronger bulwarks against the new mores into which he finds himself plunged

These conflicts grip the individual with special force when outer sanctions and encouragements have become introjected and assimilated into the individual's set of values He then finds one part of himself which says that it is all right to go in for petting, to play a little poker, to join the fellows in a drink, and his newly acquired sanctions which still must contend against deeper inhibitions, repulsions, vague feelings that what he is doing is not wholly right

Conflict Between Two Restraining Systems In [illegible] a certain assignment but also wishes to escape from a penalty which will [illegible] Here he has [illegible] upon the [illegible] the disagree- [illegible]

In this group, the conflict is not between an inhibition and a sanction, but between an inhibition and some external force in the form of a punishment. Here we have those situations in which a boy is forced to do something which is distasteful or against which he has inhibitions A boy may be forced to cheat, something that he recognizes as bad, by the fear of punishment which he will receive if he brings home a poor report card

Here again, the conflict becomes the more acute when the outer force becomes assimilated as an inner duty The child, for instance, who engages in petty thieving, which he knows is wrong, in order to avoid the beating awaiting him at home if he returns empty-handed In these conflicts, there is a desire to escape, on the one hand, from the immediate situation which has become untenable, and on the other hand, from a duty which has been inhibited from past experiences

Hovland and Sears [377] believe that there is a fourth type in this group, which is a combination of the first and the third They find, for instance, that there are frequently two wants with positive valences, the neglect of either of which will produce some kind of disappointment or punishment As an illustration, take the situation in which a person has two appointments at the same hour It is impossible for him to be in two places at the same time, and yet failure to attend either of the meetings results in disappointment, which is the equivalent of punishment

MULTIPLICITY AND INTERRELATION OF CONFLICTS WITHIN THE INDIVIDUAL

Hal, a boy of fourteen whose father is dead and whose mother must work, has a long record of truancy At the beginning of the term, he resolves to attend

school regularly in order to make a good record He does this, in part, to please his mother, who is anxious for him to make a good record in school Since his mother is away from home a large part of the day and the home is shabbily and meagerly furnished, Hal spends his afternoons and evenings with a gang whose headquarters are at a corner candy store The activities of the gang, which include wholesome activities—attending a gym and organizing basketball and baseball games—takes a great deal of Hal's time and prevent him from doing home assignments He also gets to bed so late that he does not feel like going to school the next morning Since his mother nags at him about going to school, he stays away from school, in part, at least, in order to get even with his mother This further arouses his feelings of guilt and unworthiness and further aggravates his tendency to avoid school and to stay up late (which he knows is calculated to defeat his own ends of making a good record in school) as a way of bringing punishment and failure on himself, which he feels he deserves because of his antagonism to his mother's wishes

There is here the conflict between the desire to do well in school and to avoid school There is a conflict between keeping the emotional security of being with his gang by staying out late at night and getting to bed early so that he will feel like going to school the next day Undoubtedly there are many other deeper conflicts underlying the factors presented in the foregoing brief description, but those given here illustrate the multiplicity and interrelationship of conflicts in any individual Conflicts never come singly As one struggles ineffectually to relieve one conflict, one adopts a solution which of itself contains the germ of further conflicts. As escape or compromise methods are used in meeting each successive conflict, further difficulties are engendered which bring with them additional conflicts In order to understand the motives underlying the pattern of behavior of any individual, it is necessary to know the various conflicts that the individual is trying to relieve.

HOW CONFLICT IS EXPRESSED

Presence of Emotion. The person working with individuals should be alert to evidences of conflict. Probably the most certain indications that conflict is present are the expressions of strong unpleasant emotion Of course the presence of emotion may indicate merely that a person is frustrated by some external obstruction or barrier However, the chances are good that when emotion is present, in some way the response to the obstruction has aroused other tendencies within the individual which result in conflict. It would seem that whereas frustration produces rage and tendencies toward aggression, conflict produces an additional internal friction, one calling for escape or repression, and the emotion aroused is anxiety Mowrer [601] has recently called attention to the close relationship between *conflict and anxiety* Excitement is probably the surest indication that emotion has been aroused and that, therefore, conflict is present Excitement may show itself in restless behavior, hyperactivity, and inability to relax Other evidences of emotion will be nervous movements, tics, or jerking of the face or shoulders, increased muscular tension

and tenseness in any form whether a drawn face or hyperactivity or the tendency to "fly off the handle," and any of these may be looked upon as a sign that conflict is present.

Action Confused and Inefficient. On the motor side, when a person is [illegible] less acts such as counting objects, telegraph poles, or touching cracks in the sidewalk Frequent washing of the hands, nervous movements in adjusting the clothing, and the like may also be indications of anxiety and betray the presence of unconscious conflicts Then other indications may be found in tendencies to forget, in accidents, slips of the tongue or pen, any one of which may seem simple and without consequence in itself, but which will indicate a difficulty of meeting the situation in straightforward fashion, and the necessity for taking up and directing some drive or tendency which is seeking expression, but which is otherwise counteracted by contrary tendencies Another way in which conflict shows itself is in the tendency to withdraw and to keep apart from others. This may show itself in anti-social behavior, a tendency to go off by oneself, to seek solitude, and to find little pleasure in social activities with others In school, conflicts may be seen in the child who has lost interest in his work, who fails to pay attention, who comes with assignments poorly prepared, who is lethargic and absent-minded

Fantasy. This naturally leads to another indication of conflict, namely, extensive fantasy The child [illegible] hand is probably not enti[illegible] tendencies through day-dreaming and the building of air-castles Where his tendencies do not find expression in socially acceptable undertakings, there is an indication that the contrary tendencies are present, which spells conflict In this connection, dreams are practically always related to conflicts Usually they are conflicts which have been aroused during the previous day and which have not been entirely resolved Usually they are conflicts in which one or both of the driving forces are unconscious. The dream, then, is mental activity in which the conflict is making a further attempt to work itself out The dream is similar to day-dreaming but since repression is relaxed, the person can accept incongruous elements in a dream in an attempt to work out the conflict Conflict is shown by greater *indecision* and a lengthened interval between the presentation of an alternative and the choice between them.

Exhaustion. Finally, evidence of exhaustion where there is apparently no physical basis is a more pronounced form of withdrawal Lassitude and weariness are evidences that conflict has been severe and its effects pronounced. When an individual is exhausted at the end of a day's work, that d[illegible] ffort, the chances are that he is [illegible] satisfying to him. It is as

though the body cooperated with the mind in withdrawing from the struggle, or as though the struggle had been displaced from the mental to the physical by a variety of physical symptoms. This method of reacting to conflict is sometimes called "neurasthenia"

Miss T is chronically fatigued She never wanted to be a teacher, but was forced into the profession by parents who considered it the only genteel occupation for a woman Later the responsibilities of caring for younger children in the family prevented her from marrying

HOW CONFLICTS ARE REACTED TO

Significant recent experimentation has placed on an objective basis our knowledge of the ways to which conflicts are reacted [111, 584; 731] This modern experimental analysis follows the classification of conflicts into approach-approach situations, avoidance-avoidance situations, and approach-avoidance situations first given by Lewin [512]

Approach-Approach Situations. Miller points out that in true approach-approach situations, that is, situations in which an individual is attracted to two different goals without any negative factors being present, there is no real conflict Two pure choices could not balance for long in perfect equilibrium on a knife edge One would soon demonstrate its superior strength and would gain ascendancy. As Miller [584] points out, Buridan's ass standing starving between two bundles of hay is pure fiction In such a situation a person or an animal will go in the direction of the strongest impulse, or to the nearest stimulus Such a situation seeks to be governed purely by the strength of the various forces operating, and when one path is chosen the other path loses its pulling power Where there seems to be conflict and indecision in the face of two alternate choices, Miller believes that there are avoidance factors present as well as the pull of the attractive goal

However, in human affairs the solution to this simple double-approach situation may have another outcome It is possible to satisfy each of the alternatives in turn, granted that a person goes in the direction of the strongest impulse or the nearest stimulus After this impulse has been satisfied, then he may turn in the direction of the other goals and satisfy them in turn One can sometimes postpone one satisfaction until another has been achieved One can plan a trip so as to see several points of interest by driving a little further around When the visitor drops in at lunch time, he may be invited to lunch, and thus make it possible to continue the conversation

Avoidance-Avoidance Situations The typical response to a situation in which a person or animal wishes to escape f[illegible] ble stimuli is by wit[illegible] ask attempts to escape from it by finding some excuse for not doing it or by leaving the room When withdrawal is impossible, and an individual is confined on all sides, he tends to respond by blocking or by vacillation

(By vacillation is meant a turning from one alternative to the other.) When the situations to be avoided become more intense, the individual may break down emotionally and develop any one of a number of expressions of strong emotion and disorganized behavior

Approach-Avoidance Situations. [illegible] ns in which the stimu- [illegible] he typical response is [illegible] [511] has described a [illegible] or," in which an individual seemingly becomes impervious to outside stimulation and becomes concerned with his own immediate affairs and interests Autoerotic behavior would perhaps come under this term Sears and Hovland [731] found that blocking is five times as great in avoidance as in approach responses This block increases in strength as the two tendencies approach equality In approach-avoidance situations one also finds a tendency to oscillate both toward and away from the stimulus First, if the animal is some distance away the avoidance drive loses its force and the animal tends to approach However, as the stimulus object comes nearer, the avoidance drive becomes greater, and the approach is turned into a retreat.

Shift in Conflict with Shift of Drive and Avoidance Tendencies. J S Brown [illegible] drive increases with the amount of avoidance tendency remaining constant, a person will move closer to his goal That is, as a prize becomes more enticing and desirable a child will put forth more effort and will overcome, to a greater extent, his fear of failure And if the avoidance tendency increases it will drive a person still further from his goal If a child becomes embarrassed in speaking before a public because he is ridiculed, he will stay even further from the group that is preparing for the play or debate Increasing the strength of the drive is the equivalent of decreasing the strength of the avoidance tendency.

Miller [584] points out that the gradient of avoidance, that is, the change in the strength of the avoidance tendency, is steeper than the gradient of approach. The reason for this is that impulses toward approach are relatively stable inasmuch as they reside within the economy of the organism, whereas tendencies to avoid are directly proportional to the nearness of the stimulus, and as the distance from the stimulus changes, these avoidance tendencies will change in like ratio

Double Approach-Avoidance Situations. Several investigators have pointed out that one rarely gets a simple approach-approach situation [illegible]

regret at having to give it up or the fear of losing it Consequently, in a pure choice situation, there are also usually negative factors which lead to vacillation and ultimately to blocking The difference, however, between this and the avoidance-avoidance situation is that there are inherent pulling factors toward each goal, so that no barriers are needed to hold the subject in the situation. Most choice situations probably include the double approach-avoidance factors

Choice in Conflict Situations. Barker [56] has added some significant facts with regard to choice in a conflict situation He experimented by having children choose between two beverages Some of the beverages were those which children ordinarily like, such as lemonade or cocoa, and others were those which are bitter and distasteful, such as salt water or castor-oil In preliminary experimental work, Barker was able to place these drinks on a liking-disliking scale He found that the greater the distinction between items in choice on the scale, the shorter the time for making a decision and the less hesitation and vacillation there is in making the decision In other words, children have less difficulty in deciding between lemonade and castor-oil than they do between lemonade and cocoa. In actual trials, it was found that it is more difficult for children to make a choice when they had to actually relinquish one of their choices than when they were promised that they could have both of them Choosing between disliked items required a longer time, and more hesitation and vacillation than choosing between liked items On the other hand, choices between neutral items, that is, those neither strongly liked nor disliked, took the longest and led to the most hesitation and vacillation There was greater conflict in a real choice than when the choice was hypothetic, and the answers were to be given on paper

Meeting Conflict Through Fantasy The results of these experimental studies of conflict, however, do not take care of all of the contingencies [illegible] One method of running away [illegible] o come to grips with it in real life is the attempt to achieve the ends desired through fantasy The boy whose desires to succeed in school conflict with his belief that he cannot succeed, may meet the situation by indulging in day-dreams of becoming a successful aviator

Meeting Conflict Through Repression. Another reason why the experimental studies do not take care of all of the varieties of conflict in actual life is that they do not take into account the possibility that one or both conflicting tendencies may be repressed A common method of managing conflicts is to repress into the unconscious one vector of the conflict and allow the other to have free expression and this is what is usually done with the conflicts in basic drives as described on p 341 Usually this method of handling conflict is satisfactory if the outer frustrations are not too great. If, however, the outer frustrations become too intense, an individual may not be able to manage his tendencies in this way. Both

may press for some form of outward expression, and the conflict itself then becomes intense and hard to manage

Meeting Conflict Through Compromise. Compromise is the typical neurotic method of handling a conflict An attempt is made to satisfy both demands without actually satisfying either

For instance, a teacher feels an obligation to stay with her mother during the summer but also wishes to be away from her where she can be free and independent She will then try to satisfy the claims of her conscience and also her wishes by planning to take an extended trip or to attend a summer-school (the latter preferably because she can justify it by rationalization of her need to make professional progress), while she plans that her mother shall stay at a pleasant hotel and will receive a daily letter from her In this case, neither wish is completely satisfied for, on the one hand, she is actually not with her mother, and on the other, would continue to feel guilty for having left her

Neurotic behavior is, to a degree, meaningless behavior in the sense that it does not seem to be wholly appropriate to the situation The reason that it seems to be meaningless is that it is attempting to provide expression of the unconscious trend as well as the conscious In that sense, much neurotic behavior has a symbolic significance For instance, ceremonious hand-washing, which has been mentioned as a way in which conflict may be expressed through compulsive behavior, may indicate both that the individual has gratified himself through masturbation, and feels that this is wrong and must somehow be expiated and cleansed Consequently, the hand-washing illustrates both the gratification through fantasy of the forbidden tendency and the effort to satisfy the superego demands that the tendency be expiated Hand-washing repeated many times throughout the day is meaningless in the real world Its true meaning comes only in terms of its symbolic significance in the light of the conflict

Integrated Solution to Conflict Finally there is the integrated solu- [illegible] both sides of the conflict must be fully in view in consciousness, so that the individual is aware of both tendencies He must be in a position to weigh their relative values, to see to what extent, through modification of them or through substitute gratification, values in each may be realized By some sort of adjustment of his wants, the maximum satisfaction, in view of the circumstances, can be achieved Naturally, the integrated solution is, theoretically, the one most open to commendation, but it cannot be achieved until the unconscious side of the conflict is clearly brought into awareness so that it can be dealt with on the basis of reality.

As an illustration, consider the mother who loves her son and yet hates him because he reminds her of her dead husband whose name he holds, a husband who failed to support her and debauched himself with drink Because she unconsciously feels guilty because of these hostile feelings, she tends to give the boy more expensive toys and clothing than she can afford as an atonement If she could be helped to realize the reality of her feelings toward her son and their origin and the fact that in a way she is not to be blamed for having them, then two

things would happen—she would be better able to tolerate her feelings, and the hostile feelings themselves would diminish in intensity.

Sometimes the integrated solution can be achieved by a new gestalt or perspective on the problem

The Methodist minister is unable to condone attendance at the movies because his church has placed a ban on theater-going But if he sees the movies as an agency in character education, then he may be able to incorporate them into his accepted values

A person does not naturally outgrow his conflicts Conflicts are resolved by adaptation and not through the natural process of development Parents or teachers cannot assume that the maladjusted child will outgrow his problems by the mere process of growth He has to manage his problems by finding a better solution to them One should not hesitate to remove a child from situations which are causing marked frustration, because in so doing one removes the cause of serious conflicts There is no harm in helping a little child master his fear of the dark by going with him and tucking him in bed

Baggally [47] has derived some fundamental laws relating to the conflict of pleasure and pain By making some simple assumptions he evolved a mathematical formula to indicate how pleasurable and painful experiences unite to form a resultant experience When there is pleasure, the addition of pain in amounts smaller than the pleasure adds appreciably to the resultant pleasure As an illustration, any game or sport gains considerable zest and satisfaction if it can be accompanied by danger—the danger of injury or of defeat Similarly, when there is pain, the addition of small amounts of pleasure greatly adds to the pain For example, envy and jealousy against others becomes many times more poignant when it is accompanied by the fantasy of enjoying the pleasures which the other persons are enjoying Baggally gives this a positive interpretation by showing that as tension (hunger, sex) rises, it is intensified by greater amounts of pleasure (odors from food, foreplay in sex) until the accumulated tension is released by reflex discharge When pain greatly exceeds pleasure so that the resultant is strongly unpleasant, then the ego steps in with some one of its defenses against anxiety

Resolution of Conflicts Through Psychotherapy. Psychotherapy is the art of helping a person to tolerate and to resolve his conflicts The maladjusted person is one in whom drives have been jammed and are forced to seek expression in circuitous and meaningless ways In psychotherapy the individual must be helped to discover and break down these barriers so that the driving forces within may receive more immediate and uninhibited expression The chief aim in psychotherapy is to help an individual accept the reality of his drives, that is, to bring the unconscious tendencies into consciousness where they can be seen and evaluated, and where plans for meeting them or managing them can be worked out This is done

through the aid of a second person, the counselor, who encourages the person to express himself freely by giving him every kind of security so that repressed tendencies may find expression safely Education, on the other hand, is mainly concerned with helping an individual to become adequate to meet life's situations, both for maximum satisfaction to himself and for the protection and advancement of society Psychotherapy and education, therefore, have different goals, but both are concerned with the furtherance and more adequate expression of drives within the individual

PATHOLOGICAL ASPECTS OF CONFLICT

In a previous chapter it was pointed out that frustration in itself is insufficient to cause illness, and that neurotic illness is caused only when conflict is present It is interesting to see how frustration turns to conflict when it becomes too intense. Mild frustration usually can be successfully managed and an appropriate way out found for it However, if the frustration becomes too intense all efforts at successfully meeting it fail, and the individual is thrown back into earlier, more infantile and primitive methods of adjustment in the hope that these methods which served the individual at an earlier stage may still be of value in the present crisis However, these earlier methods of adjustment have probably been relegated to the unconscious as being infantile and perhaps unacceptable in the society of mature individuals. Intense frustration leads to regression but regression implies the arousal of action systems which have been dormant and hence which tend to have been repressed and unconscious These earlier action systems are opposed by action systems more recently superimposed whether by ego development and adaptation to reality or through superego and ego-ideal assimilation and introjection This then is the basis of the neurotic conflict, conflict between present and acceptable drives in the individual and the earlier repressed and unconscious drives which the intense frustration arouses to activity through regression Neurotic conflict then requires the operation of a conscious drive in opposition to an unconscious drive, and we say that neurotic behavior indicates the presence of unconscious conflicts Neurosis is, by definition, a compromise solution of a conflict This means that some form of behavior is adopted which attempts to satisfy both the conscious demands of the present and the unconscious demands of the repressed tendency which is being aroused, and actually does not satisfy either very well The potential neurotic is a person who carries with him possibilities for conflict normally solved in infancy The stable man or woman is one whose early trends have been satisfactorily assimilated in the process of development. For here there are no fixation points, no weak spots toward which one will fly in the face of adversity and strong temptation The neurotic individual who has never found a satisfactory way of meeting early frustrations will, in the face of strong present frus-

tration, easily and readily regress to these points where adaptation to earlier frustration was inadequate Curtis [159], in a very significant experiment has demonstrated that dogs and sheep who have been given much security through human companionship in early years and who have been made more or less resourceful through early training, resist strain in experimental neurosis experiments better than animals who have not received this security and training early in life Instability is brought about when the dog's keeper turns from being kindly to being harsh and unfeeling The typical neurotic conflict, therefore, is the conflict of the *drive* with the *superego* (or with the ego), one aim of which is conscious and the other unconscious It is believed that all neuroses involve the conflict of opposing positive and negative impulses of nearly equal strength Hendrick [356] also finds that the neurosis is a conflict between these unconscious repressed tendencies which are aroused through regression and unconscious anticipated self-punishment tendencies Undoubtedly, a simple conflict between the drive and the superego tendencies, and between the drive and these anticipated self-punishment tendencies cannot be separated because superego tendencies in themselves usually carry the implication that punishment will follow if these superego tendencies are not obeyed

In the light of this analysis of neurosis and its definition in terms of conflict, it may be interesting to see the meaning of certain typical neurotic forms For example, hysteria, a form of extreme anxiety when accompanied by heart palpitations and digestive upset, typically is a compromise in the conflict between sexual expression and superego repression. Hysteria, as it has been psychoanalyzed, has been found in practically every instance to be founded on a repressed tendency The form of the hysteria itself will represent a displacement of the original tendency either onto some other part of the body or to some form of behavior which gives the individual opportunity to relieve his guilt by punishment either in the form of illness or self-denial or some other form of self-abnegation The sex drive only seems to be strong in neurotics because of its repression and the ensuing conflict.

Compulsion neurosis, typically, is a compromise in the conflict between libidinal expression and aggression, that is, between the antagonistic expression of hate and love, both of which are attempting expression but which the individual is not able to vent openly, and hence a compromise and apparently meaningless form of expression is adopted

A psychosis [2] represents an attempt to meet frustration by regression to still more primitive forms of adjustment which involve deeper conflicts These may be managed by more pronounced withdrawal and by

[2] A psychosis is a *severe* form of mental derangement characterized by disorganization so severe that the patient is not able to carry on with his normal occupation and the tasks of life The statement above applies only to the functional determinants of psychosis It is recognized that psychoses usually have components in pathological organic conditions

behavior which is still more meaningless than heretofore in the actual situation in which the individual finds himself

VALUES AND EDUCATIONAL IMPLICATIONS OF CONFLICT

Conflicts Are Inevitable and Normal. Conflicts are inevitable and hence normal It is no disgrace to be faced by a conflict As a matter of fact, it is only through conflicts that one is able to grow and to reach functional maturity in the world about him The individual who is protected from conflict is missing an opportunity of reaching a higher, more stable integration of his desires Sherman [749], who has devoted much thought to the meaning of conflicts in human life, would judge them on three scores· first, directly in terms of the issues involved and how deep-seated and fundamental they are in the individual's hierarchy of drives Secondly, he would judge them in terms of their frequency, and thirdly, in terms of their intensity. One might say that the individual is better adjusted whose conflicts are more immediate and superficial rather than those which involve deeper and more fundamental aspects of the personality, are fewer in number, and are less intense in quality

Conflicts May Interfere with Good Adjustment. Conflicts may become a detriment if they usurp too much of a person's time and energy The well-adjusted child in school is the child who has relatively few personal conflicts to contend with and hence can give his attention to the immediate tasks and activities at hand with full zest in attempting to adjust to them. The child who is upset by a severe emotional conflict will have difficulty in adjusting in school He will be the child who either becomes maladjusted and anti-social or inhibited The child who is subject to severe frustrations and beset by doubts in regard to the security which he can expect from other people is faced with severe conflicts Many times they are conflicts with regard to aggression tendencies to wish to express aggression toward others and fear of doing so When these conflicts are intense they, of necessity, drain off energy and attention from more worthwhile pursuits. No one can fully give his mind to his task until it is free from disturbing conflicts

The happy man is one in whom conflicts are at a minimum of depth, frequency, and intensity His life is one that has a straightforward pattern. He can face outward and meet, with zeal and adequacy, the situations that each day presents The successful resolution of the conflicts, both minor and major, which beset one in daily living is the road to maturity Integration depends on the successful resolution of the conflicts inevitably met at all stages of development A person's emotional stability is closely related to his conflicts The stable person, that is, the one who is unperturbed in the face of severe frustrations and can find a solution for them, is the person who has at an earlier age found a way through his conflicts. On the other hand, the person whose conflicts are intense gives way early to emotion, and we recognize him as an emo-

tionally unstable individual Conflicts are at a minimum in the individual who has grown up in a secure relationship in the family situation and hence dares to face the reality of the opposing arms of conflict which beset him

How Severe Conflicts May Be Avoided Severe conflicts may be avoided by avoiding frustrations that are too severe, that is, those which cause regression A child is fortunately brought up who is protected to the extent that he does not have to face frustrations which overwhelm him and which he finds unsurmountable although, as was stated in a previous chapter, a certain amount of mild frustration is necessary for growth Many parents feel that they tend to mollycoddle their children They believe that character is developed by thrusting a child into situations through which he must find a way by himself There is widespread belief in the values of discipline. However, to thrust the child into emotional situations for which he is unprepared is to present him with frustration for which he is not likely to find satisfactory solution, and this is sure to arouse conflict Conflicts have less power over the emotionally secure person, that is the individual who was brought up in a home where through personal relationships emotional security was fostered.

XVI

Guilt and Self-Punishment

The topic of guilt comes as a climax to the series of dynamic concepts beginning with drive and continuing through frustration, aggression, punishment, anxiety, and introjection. In guilt these forces come to a focus and result in the strongest motivation for growth and adjustment. Just as in the literary plot the climax must be followed by some sort of conclusion, satisfactory or not, so guilt must be followed by some sort of resolution whether it be love and reparation on the one hand, or self-punishment on the other.

NATURE OF GUILT

Guilt a Variety of Anxiety. Guilt is a variety of anxiety, and so far as can be determined, the nature of the feelings and emotions and their physiological concomitants are precisely the same in guilt as they are in anxiety. Guilt is sometimes called conscience anxiety or social anxiety as distinguished from objective anxiety toward some outside stimulus or event. Guilt, then, is a form of fear, although, because of its derived nature, the feared object is not immediately discernible. Guilt is anxiety arising from the superego, that is, from the demands and prohibitions of parents and other parental figures which have been introjected. Anxiety, as we have seen, is the fear of anticipated danger. Guilt, then, becomes the fear of those tendencies within the self which disapprove and threaten punishment. The boy feels guilty when he has thrown a baseball that has broken a window. To be sure, he may also be anxious because he firmly believes that when his father comes home in the evening he will be punished, but even though his father may not discover the broken window for a long time, the boy may still feel uncomfortable about it, that is, guilty. Something within him tells him that he has committed a fault, has been careless, has broken something for which he deserves to be punished. It is this uncomfortable feeling, stirred up by his own inner standards of what is right and wrong, standards which are, of course, the result of the teachings of his parents and society in general, which we call guilt. Sometimes guilt arises from things that are left undone, as when a man discovers that he has forgotten some important business engagement, or the housewife that she has forgotten to set the table for supper.

Guilt Is Based on Previous Introjections. Guilt comes only after the process of introjection It is not found in the very young child before he has assimilated into his own behavioral patterns the teachings of his elders It is not found in the psychopath for whom no superego has been formed because of absence of standards, conflicting standards, or the failure of standards to develop due to hostility Guilt, therefore, grows out of the oral-sadistic and the anal-sadistic stages of development, when threatened punishment necessitates the process of introjection When the superego is being formed in the very young child, and the child's behavior is still largely dominated by the wishes and restraints of his parents, the tendencies toward guilt are weak It can easily be resolved in the child by the adult's forgiveness. In later life, however, when the superego has become established and is to a large extent independent of outside influence, guilt also is independent of the attitudes which others may take. The adolescent or adult, even though forgiven by the person toward whom an offense is committed, still feels guilty about his misconduct In the adult guilt is determined almost completely by the standards that an individual holds for himself, and it makes comparatively little difference what attitudes others hold toward them It is for this reason that adults resist change in standards of thought and behavior and take on new ways slowly

Guilt Not Possible When Objective Anxiety Is Too Great. Guilt is not possible when objective anxiety is too great. This is another reason why guilt is not found in the very young child whose anxiety, due to exaggerated fantasies of the attitudes of his parents, becomes overwhelming The young child has difficulty in accepting his superego and the feelings accompanying it, and he tends to project it in hostility and destructiveness toward those about him The superego anxiety becomes reduced in degree only as maturity brings a sense of reality in a family that does not arouse too much hostility So it is only at about the age of four or five that we find true guilt developing, indicating that the individual has formulated his own standards of right and wrong and has developed feelings of discomfort and unworthiness when he does not live up to them Often in later years when guilt becomes strong, it assumes the peculiar qualities of conscience and is felt as a form of anxiety against which defenses must be raised

Origin of Guilt Guilt arises from fear of loss of self-regard and also from the dread of punishment With regard to the first, guilt arises from the fear of being at odds with oneself, that is, the parents within, and from fear and loss of self-love. This form of guilt usually goes under a different name and is called variously, feeling insufficient, feeling inferior or inadequate, feeling isolated or lonely All of these states result from the fear of what is called loss of self-esteem, self-respect, self-regard or self-love. Just as anxiety has its primary cause in fear of being left alone and deserted by one's parents, so guilt originates from a similar

dread of losing oneself, that is, the part of oneself that one respects and admires.

Probably guilt is more commonly recognized as originating from the dread of punishment. However, it is not the actual punishment that is dreaded, but rather the sense of deserving punishment following defection from the standards which the individual has assimilated and taken into himself Guilt then follows from that part of the self that judges, condemns, reproaches and criticizes For instance, a man may feel guilty because of the aggressive or sexual impulses released when he is drunk, not because he is criticized by others but because of standards within himself which are the residue of punishment received long ago The person most critical of others is the one who will feel the most severe guilt himself. This shows itself in such divers ways as the fear of making a mistake when embarking on some new enterprise, anticipating failure, or being acutely aware of one's own shortcomings Guilt also shows itself in the fear of annoying people and arousing their hostility even before there is anyone to be annoyed Guilt is a product of one's own fantasy, but always in the background is a reference to the attitudes of other persons—a fear of retaliation or censure or punishment from parents, and in a more remote sense, from society and its laws, or even from Divine anger So the citizen who fails to get his income tax in before the deadline, may have that uncomfortable feeling of having transgressed the laws, or the religious man may dread the vengeance of the all-seeing Eye

Part of the motivation in guilt is the desire for union and harmony with the object toward which the aggression is directed and from which the punishment and retaliation is feared The guilty person wants, first of all, to be at peace with himself, but in the background is his desire to establish good relations with others He wants to restore his self-regard by clearing himself of his faults and misdemeanors, but, at the same time, he wants to be able to look others in the eye without flinching, and to feel that he is an acceptable member of their society

As we have seen, it is normal to be anxious in the anticipation of real danger, but the anticipation of infantile or fantasied dangers we call neurotic and pathological In all cases of neurotic anxiety there is also a mixture of guilt, for a large percentage of neurotic anxiety concerns security with one's parents and the fear of punishment from them Almost inevitably these tendencies lead to introjection, and, as such, the anxiety which is then aroused is conscience-anxiety or guilt

Guilt a Conflict Phenomenon—Discrepancy and Tension Between Ego and Superego. It must be evident from the foregoing that the forces making for guilt are all within the individual This means that within the individual there are two sets of conflicting forces. One of these, the superego, represents those tendencies that hold standards, criticize and recognize the need of punishment. The other part of the individual that

is held responsible for guilt is the ego So in guilt the superego representing the introjected parents becomes critical of the ego, the ego perhaps has failed to live up to the behests of the ego ideal, and feelings of inferiority develop As a child he may fail to make the marks in school that his parents would like, in later years he becomes dissatisfied with his own achievements in school and at work, and develops feelings of unworthiness and inadequacy Or perhaps the ego has transgressed the prohibitions of the superego, and there is guilt and conscience Here too, one feels that one is unworthy and a sinner The little boy is told by his parents that it is wrong to play marbles for keeps. When he grows up he may find that he becomes most uncomfortable when he is asked by a group of friends to place a bet on the outcome of a race Deutsch [172] has called this "aggression against aggression" This is the aggression of the superego in the form of censure and criticism against the aggression of the ego in the form of hostile, aggressive acts toward others

It is interesting that feelings of guilt and of inferiority spring particularly from the fear of being detected This undoubtedly goes back to the stage in early years when the child knows that he will be punished only if he is caught doing a misdemeanor So anxiety is conditioned by the watchful eye of the parent, and the fear of being caught is as much a part of anxiety as the fear of the punishment for the misdemeanor itself Being seen by the parent (visual response by the parent) becomes the cue to later admonishment (vocal response by the parent) Fear of being observed by the critical parents is the first cue or signal of coming danger and hence is a stimulus for anxiety So Horney [374, pp 238 ff] sees guilt as the disparity between the impulse and the defense against it Guilt is a fear of being unmasked, of having one's real weaknesses revealed both to oneself and to others

When one feels guilt he dreads letting others know about it. There is a certain comfort in keeping one's weaknesses, failures and shortcomings to oneself Guilt is intensified when secrecy is abandoned The detection of one's faults and failings by another person breaks the barrier between the façade and its background The true self lies revealed in all its nakedness, and the fact that it is revealed, not only to others but to the self, increases the guilt feelings

Secrecy, then, helps to maintain the discrepancy between the ego and the superego, if one can prevent the world from knowing one's faults, one can also hide them from himself to a degree Letting the world know makes it necessary to face the reality in oneself, and guilt breaks out with full force It is for these reasons that persons find it necessary to maintain a poker face and to hide their real feelings, and, as Horney [374, p. 244] points out so clearly, it is just this failure to admit one's weaknesses and shortcomings that is the basis of neurotic tendencies

On the other hand, when one is at harmony with one's conscience a deep feeling of peace arises, the tension and strain and feeling of un-

worthiness and inadequacy melt away. Accordingly, one sees that it is not the weakness or the inadequacy, however severe these may be, that is the cause of guilt and feelings of inferiority, but the discrepancy between the standards one holds and the feeling of shortcomings with regard to them.

FUNDAMENTAL CONSIDERATIONS

Physiological Concomitants of Guilt. So far as the writer knows, scientific studies of the physiological concomitants of guilt have not been made If one can rely on the testimony of introspective enquiry, feelings of guilt and anxiety are identical in nature Feelings of guilt are accompanied by similar signs in the intestinal region and similar disturbances of circulation and breathing. Physiological studies of these related phenomena are much needed

Much of Guilt Unconcious. The unconscious nature of guilt is clearly indicated by characteristic feelings of uneasiness. In a mild form we call it the "pangs of conscience" Since guilt is a feeling, it perhaps is inconsistent to speak of "unconscious guilt," inasmuch as one can hardly have a feeling of which one is not aware However, a large part of the phenomena of guilt is unconscious, showing itself in certain dynamic tendencies to action rather than in definite conscious feeling Freud [273] recognizes this dilemma and speaks of "unconscious guilt" as the "need for punishment," thereby translating it into a more dynamic concept. Since guilt arises from the integrated teachings of parents and others, much of which comes in early infancy, the unconscious part of guilt is infantile and irrational Indeed, an act or thought may be quite acceptable from a rational point of view and yet may bring a deep unconscious need for punishment Many times we feel disgusted, uncomfortable, or annoyed at some person or at some act for no apparent reason. The deeper springs of our own actions and of our ability to accept them are unknown to us, and we often cannot account for our intolerances and feelings of unworthiness with regard to ourselves The point of the matter is that nine-tenths or more of guilt springs from unconscious sources and may not show itself in feelings, but only in the steps taken by a person to justify himself or to rectify his conscience As we shall see later, all of the tendencies toward asceticism, self-denial, and in prejudicing one's interests grow out of the unconscious need for punishment Tendencies toward self-destruction become conscious only when the mental disturbance becomes severe.

Guilt a Criterion for the Decisions of the Repressing Faculty. Repression is an ego function, and several sources of motivation have been suggested in this book for repression On page 120 it was stated that repression is motivated by punishment, which is true On page 227 anxiety was stated to be the motivating force underlying repression. These are all partial ways of looking at the meaning of repression They

come together, however, in this concept of guilt in which an individual is anxious with regard to his need for punishment Just as we have seen that a person maintains secrecy so as to avoid revealing his errors and shortcomings, so we find this also to be the basic principle governing repression. Repression, then, is putting out of mind the recognition of those forces, tendencies, and impulses within the self which would cause guilt and the loss of self-regard

Guilt Highly Intolerable. Guilt, like anxiety, is an intolerable state of affairs, one which the individual goes to any extreme to avoid or to disguise Guilt is probably more intolerable than hate, for it carries with it not only the emotion itself but also the conflict of forces within the individual The intensity of guilt varies with the degree of aggression that is repressed The more violent the hostile impulses causing guilt, the more severe the guilt tendencies. Guilt is felt to the degree that aggression is repressed and not expressed openly. Somehow, the open expression of aggression serves as a release of feeling, whereas impulses toward aggression not actually expressed may carry more than the average load of guilt MacKinnon [551], for instance, found in an experiment that non-violators of certain prohibitions set up during an experiment expressed more guilt than those who violated the prohibitions

Feelings of Guilt May Be Far from Their Source. One difficulty in understanding the guilt reaction of a person is that guilt feelings are frequently far removed from their source They may go through many stages of displacement before they are finally expressed, the basic cause for which goes back many years to childhood and infancy. Most persons strive to maintain a wall of secrecy both to others and themselves concerning the real nature of their guilt This is, in part, a protection against the arousal of more anxiety than can be managed The adolescent girl engaged in petting on an evening date may experience strong feelings of guilt following the deed Her own belief is that her guilt springs from not telling her parents about meeting the young man, whereas her real guilt springs from her pleasure and the hostility aroused over possible criticism concerning it Guilt over acts for which one would be ashamed seems to be displaced to guilt over being dishonest or secretive Freud [265, p 23] points out that the apparently unjustified cries of a child in denial of a deed of which he is accused, is over some other misdeed for which real guilt is felt, but of which the child is not even aware at the moment So the counselor will find that the factors underlying guilt are likely to be arranged in layers, the first explanation of which may not reach the deeper motivating factors.

Guilt a Composite of Criticism from Many Sources. One should not assume that guilt always arises from specific wishes or prohibitions of parents or others. Actually, the standards which occasion guilt result from a variety of sources, so that it would be difficult to pin responsibility on any one person. An act may be criticized by one person and con-

demned by others, hence guilt arises from the total set of values which an individual has absorbed from all portions of his environment.

Guilt over Infantile Faults May Last Through Life. One becomes impressed with the continuity of dynamic tendencies in an individual The standards and values which a person absorbs when very young are retained by him throughout his life, and even in adult years he can become sensitive over faults which were criticized in his childhood To be sure, there is a constant modification of our standards and values as experience accumulates. However, the more immediate experiences are relatively weak in deciding the basic values of a person as compared with those influences which were operating on him and directing him when he was very young.

Guilt Involves Consideration of the Ethical. Guilt is always concerned with and closely related to our sense of moral values. One may say that guilt arises as a warning of departure from accepted standards, but it should be recognized that these standards are not fixed, immutable laws as some religious and philosophical systems have considered them, but are those standards which were inculcated in the individual by the culture in which he grew up, especially as it was interpreted by his own parents.

OCCASIONS FOR GUILT

Guilt Because of Aggressive Impulses. One feels guilty concerning two things: sadistic tendencies and tendencies to gain erotic satisfaction In the first place, to the extent that sadism has been punished, tendencies toward its expression are an occasion for guilt An individual in our culture feels guilty when he expresses hostility, hatred or revenge, whether in deed or in fantasy. Indeed, as has been stated, the most poignant guilt is frequently felt for fantasied hostile impulses rather than those actually expressed in deeds These hostile impulses in fantasy imply that the aggression has been repressed, and guilt is always stronger when aggression is repressed than when it is given active expression. Guilt arises in an important way in early years out of the Oedipus complex As is well known, when a boy finds that his father is his rival for some of his mother's exclusive attention and affection, he feels hostile toward his father Since the boy is small, and consequently no match for his father in actuality he has to content himself with exaggerated fantasies of overcoming his father and taking his place It is from these feelings of competition and hostility that guilt is aroused. Similarly, a girl will feel hostile toward her mother for being a competitor for her father's endearments and will likewise feel guilt at her hostile fantasies This rivalry is not a hundred per cent one-sided by any means, and unconsciously the father takes steps to see that the little boy in the family does not overstep his prerogatives and keeps his place Guilt is intensified when the father manifests rivalry even to a slight degree. To the extent that the father does not object to the boy's relations with his mother and indeed encour-

ages them, giving them opportunity to enjoy each other's company and affection, the boy's guilt is mitigated.

Guilt is not felt when hostility is believed justified, but only when the hostility is condemned or criticized. A child will feel guilty because of his hostile tendencies only as a parent tends to put him in his place by appropriate restrictions and punishment There are occasions in our society when aggression is not only overlooked but actually approved. For instance, one expects a boy to be aggressive in sports, in achievements, and enterprises Righteous indignation at social evils is generally applauded In war men are not only given permission but are expected to kill and are rewarded for killing Juries will acquit an assailant who can prove that he has acted in self-defense Not only does society condone these kinds of aggression, but the individual is, to a degree, freed from the sense of guilt concerning them The heroes who are decorated with awards of merit for valor on the battle-field are relieved of guilt over their exploits, for their actions have been justified in honor.

High standards which an individual has adopted for himself can easily become the occasion for guilt One can explain this as due basically to guilt for the aggression which one feels against the person requiring these high standards For instance, an individual feels that he must make Phi Beta Kappa in college When he comes to the end of his senior year and has failed to make his goal, he feels most humiliated, which of course is directly related to the fact that there is a discrepancy between his accomplishment and the goal set for himself. This humiliation, however, stems originally from the fact that his goal grew, at one time, from similar goals set for him by someone else, as for example, a doting parent, and the feeling of inadequacy arose out of the attitude expressed toward him when he failed to meet his parent's expectations

In general, one may say that the greater the degree of sadism, the greater the degree of guilt which will be felt. A person who has had reasonable parents and who has been only mildly frustrated and given security when young will have little occasion for strong feelings of hostility in later years, and, consequently, will be relatively free from guilt On the other hand, the individual who has been severely frustrated and punished, particularly for his aggressive behavior, will be the one who feels the most inadequate, and in him guilt will be most strongly aroused in later life

Guilt for Erotic Impulses. It is well known that guilt is aroused not only from hostile feelings but also for enjoying forbidden pleasures Some writers seem to believe that guilt following erotic pleasure comes almost instinctively, but the probabilities are that this guilt is aroused only to the extent that erotic pleasures have at some previous time been punished As these autoerotic pleasures have been frowned upon by parents, so in later years a man or woman may himself feel guilty and uncomfortable when he has enjoyed too much pleasure The guilt here may

also arise from the Oedipus complex Just as a father may resent it when the boy finds too much satisfaction and pleasure from being with his mother, so the boy feels embarrassed and ill at ease when his mother shows him too much direct affection and cuddling. One would have to explain why any individual should feel uncomfortable or guilty at receiving benefits from pleasures as there seems to be no obvious connection For instance, if one receives more money than he deserves, or if he is undercharged there may be a slight tinge of guilt Many persons feel uncomfortable if they do not pay their bills promptly This is undoubtedly related to guilt and a fear of punishment which accompanies undeserved pleasure, as though one had to pay in pain for the pleasures one enjoys

Strangely enough, guilt over aggression penetrates the guilt which one feels in connection with erotic pleasure. As has been seen earlier, these two tendencies are always closely related, and this penetration is a factor in the production of guilt For instance, the fantasies accompanying masturbation, instead of being erotic fantasies, are frequently those of a most powerful aggressive character. Even a child in seeking pleasure may find a particular secret joy in having the pleasure exclusively for himself, shutting out a rival sibling The uncomfortable feeling that comes in connection with many pleasures may be related to the unconscious aggressive fantasies accompanying them Pleasures must sometimes be stolen, producing guilt which comes from this aggressive act The boy who climbs on the pantry shelf in order to help himself to jam and cookies feels guilt, not only because he is doing something that is wrong and for which he may be liable to punishment, but also because in a real sense he is stealing pleasure which has been denied him by his parents, otherwise the tempting edibles would not have been put out of reach.

Guilt Because of Criticized Characteristics. Apart from these two main occasions for guilt, there are other lesser and perhaps derived occasions. Aside from behavioral tendencies to action, a child may feel guilty or inferior in connection with characteristics possessed by him. A lamed, deformed, mutilated or scarred child is liable to taunts and ridicule, and as Adler [13] has pointed out so clearly, possession of physical defects is a prime cause for feelings of inferiority More important, perhaps, is guilt that comes from having sexual characteristics not approved by the father or mother A father, for instance, who unconsciously has difficulty in accepting feminine characteristics in his own personality may find it difficult to accept his daughter in her own feminine rôle. Such a girl may strive to play the boy's rôle when young and take on the characteristics of a tomboy. In similar manner, a boy whose mother finds masculinity dangerous and difficult to tolerate, may have difficulty in accepting his own masculinity He may veer away from rough and tumble boys' games in sports, and his interests will turn to those activities of a more refined and less competitive nature. In thus denying the rôle of their own sex,

these individuals are responding to the guilt which their parents' attitude has forced on them.

In all of these illustrations guilt has been fostered by the attitude which the parents have taken toward the aggressive or erotic tendencies in the very young child Parents make known their attitude by word and deed in the form of punishment, verbal prohibition, ridicule, and obvious signs of revulsion Guilt, fundamentally, has its origin in punishment and overstrict treatment by the parent.

GUILT VERSUS FEELINGS OF INFERIORITY

In the foregoing discussion guilt feelings and inferiority have been spoken of as though they were one and the same thing Franz Alexander [22], however, draws some pertinent distinctions between guilt and feeling of inferiority Both have certain features in common they both are forms of anxiety, they both are related to the tension between the ego and the superego. Guilt, however, relates to wrong-doing while inferiority feeling relates to weakness and inadequacy The first pertains particularly to the moral and ethical aspects of behavior, whereas feelings of inferiority are related to the skills and adequacy of the adjustments that a person has made

Guilt leads to the inhibition of hostile aggression The guilty person tends to adopt attitudes of submission, subordination, and dependence. Inferiority feelings, on the other hand, stimulate competition, striving, and aggression Guilt feelings, in so far as they are a reaction to aggressive tendencies, find these tendencies to be bad and hence something to be repressed When, however, the individual is made to feel inadequate, he tends to compensate for this inadequacy by the opposite tendency of striving, leading to aggression.

Guilt is the result of social interaction, it always arises in the relation of person to person and is a response to the attitude which the other person adopts, or is believed to have adopted Inferiority feelings, on the other hand, are a more personal affair, they do not necessarily arise so much from social interaction as from the conflict between the wish to remain dependent and the desire to be strong and powerful like adults The little child is torn in two directions on the one hand, he prizes the snug and comfortable feeling of dependence on his parents, and on the other hand, he envies them for their strength and ability This sets up a genuine conflict within the individual to the extent that dependence is fostered in reality by overanxious parents or is forced on the child by illness or accident The conflict between the desire to stay a baby and to grow up is intensified with the corresponding intensification of feelings of inferiority

Inferiority feelings are always based on a comparison of the self with others. Guilt, however, does not imply such a comparison but is rather a more direct response to the attitudes and wishes of others

Alexander [22] points out an interesting cycle of interaction between guilt and feelings of inferiority Guilt makes a boy submissive, this submissiveness leads to the inhibition of action and sooner or later engenders feelings of inferiority when the individual compares himself with others. This comparison stimulates aggression, but the new aggression results in new guilt to be followed by new inhibitions So guilt and inferiority feelings are interrelated, and the one stimulates the other as the cycle of reaction follows its course, each being stimulated from the outside by the punishments, criticisms, or taunts of others

EXPRESSION OF GUILT

It is important for the counselor to be able to recognize guilt in its many forms of expression Guilt shows itself directly in behavior and speech, it shows itself in fantasy productions and in the play activities of children It also becomes expressed in various projections whereby the individual attempts to deny his guilt and pin it on others

Anxiety Also Indicates Pressure of Guilt. Almost any expression of anxiety may also be an expression of guilt in so far as the occasion for the anxiety has been introjected and made part of the individual himself So there are certain infantile methods of expressing guilt Crying, which we have seen to be a method by which the very young child shows his anxiety, may also be an expression of guilt. A little boy who cannot do the sums assigned to him may burst into tears If we knew him better we would recognize that these tears were in anticipation of the scolding that he believes he will receive when his failure is discovered. This, of course, is definitely anxiety because the punishment to be feared is a real external punishment Later, however, this same child may show signs of despair at his own failure and ineffectiveness, even though no one else is around to show their disappointment This would be a true expression of guilt A child who when visiting breaks some object may plead for mercy, although the aunt with whom he is staying may have no thought of scolding him

Conflict and Disorganization Indicate Guilt Since guilt represents a conflict within the person, any signs of conflict or disorganization are prima facie evidence of guilt Various kinds of confusion in thought and speech are telltale signs The child who stammers or becomes confused in making an explanation is probably struggling with guilt tendencies Proneness to error, mistakes in copying, errors in arithmetic or reading, in carrying out errands, point to confusion in thought and conflict within the self, which is a sign of guilt Likewise, the inability to concentrate, so common in children in school, may also be taken as a sign of feelings of guilt and inferiority Mind-wandering and day-dreaming in school are almost certain to indicate emotional conflict and a fear of censure either from teacher or parent. Even simple hesitation may be a token of guilt In a more general sense, the loss of interest, listlessness, lack of ambition,

point to the presence of guilt and feelings of inadequacy Failing to remember tasks, appointments, errands or responsibilities and procrastination point to the same kind of confusion in thought and arouse a suspicion of guilt tendencies A person may show his guilt on the intellectual side by doubt.

Fears a Possible Sign of Guilt. Guilt shows itself most clearly in a variety of fears more or less openly expressed Perhaps the most basic expression of guilt is the fear of loneliness, of isolation, and the loss of love, because this fear is basic to guilt itself Guilt arises, in the first place, from the threat of rejection and withdrawal of love, and it is this fear that ever hovers about the individual lest he antagonize others and isolate himself from them So the person who has a need to be one of a group, to join the club or the gang shows his feelings of inadequacy if he is forced to shift for himself, alone and without the support of others This will show itself in the fear of annoying people and arousing their opposition The person who cannot bring himself to contradict another and who has adopted ingratiating manners and politic tactics is struggling with underlying feelings of guilt

The person in whom guilt is easily aroused is the one who fears the retaliation of others, he is the person who is sensitive to criticism and uses various devices to cushion himself against the critical attacks of others Such a person is always sensitive to the possibility of criticism, he even interprets harmless remarks as slurs although they were not so intended He is much concerned about public opinion and wants to feel assured that others think well of him He wonders if others are disapproving of his behavior or point of view, and finds it necessary to ingratiate himself with others so that he may feel secure with them. Sometimes guilt is shown by sharp resentment at criticism, and the tendency is to run to one's own defense Others show their guilt by ignoring insults for fear that they might further alienate the person who attacks them. He who fears retaliation from others is the prophet of disaster, he is always expecting the worst and has suspicions of evil intentions jumping out at him from dark corners In this connection, much irrational and unexplained behavior is determined by guilt, since we tend to react to our imagos of another person rather than to the real person So when there is some uncalled-for outburst against another person, it is more than likely due to the guilt from otherwise unexpressed hostile impulses than to some real occasion aroused by the other person

Guilt Shown by Feelings of Inferiority. Guilt is also shown by expressions of feelings of inferiority, smallness and weakness The individual who protests his unworthiness, his inadequacy, is giving expression to his tendencies toward guilt and feelings of inferiority On the other hand, the individual who boasts of his exploits, his travels, his accomplishments in an extravagant fashion may be recognized as one who is trying to hide from himself as well as from others his underlying feelings

of unworthiness Sometimes these feelings of inferiority are expressed by doubt, uncertainty, lack of resoluteness

Secrecy as an Indication of Guilt. Another fear experienced by the guilty person is that of being found out, hence the individual shows his guilt by secretive tendencies. the hushed word, the comment passed behind the hand or in the cloak-room, the muffled step, the furtive look Secrecy is motivated as a means of avoiding the loss of love and of punishment and actually of guilt itself. It shows itself in many ways A child may hesitate to tell his parents about his comings and goings Many parents complain that whereas in earlier years they felt very close to their son or daughter, at adolescence a barrier of reserve has sprung up, and they no longer are the confidants of the inmost thoughts and feelings of their children. A young girl will want to have secret boxes and diaries with locks on them The locket which carries the secret picture is both an expression of wishes and also guilt concerning them There is a tendency toward the obliteration of clues, and even to flight itself from one's wishes and thoughts The person who runs away from pleasures, tasks, difficulties, and obligations is one who feels inadequate concerning them and guilty for his inadequacy. Perhaps the desire to conceal guilt may be attempted by such devices as casualness, levity, or coldness of feeling

Fighting Back—Warding off Punishment as a Sign of Guilt. There are many ways in which an individual may protect himself against the fear of his own hostility Most prominent of these is the tendency to fight back Aggression, which has shown so many meanings in these pages, takes on another one here as a telltale sign of guilt Unprovoked hostility, criticism, and the reproaches of others are almost certainly signs of guilt The tendency to argue one's point out indefinitely shows a struggle with one's own tendencies toward feeling hostile, and the belief that this hostility will arouse the antagonism of the other person causes one to go to his own defense against this imagined hostility The person who bristles when criticized, coming to his own defense, and the person who is unwilling, resistant, uncooperative and rebellious, give evidence of their fear of the retaliatory measures which others may take toward their own hostility, and give clear evidence of their own feelings of guilt concerning them Sometimes one jumps the gun in stalling off the feared hostility or criticism by blaming or unjustly criticizing another, or by being rude or defiant In cases where the attack on the other person seems to lack sufficient provocation, or to be unnecessarily harsh, one may suspect guilt tendencies

Self-Justification and Defense as Signs of Guilt. To protect oneself against the imagined attack of others, one's aggressive tendencies may take the form of defense rather than attack The guilty person is ready with excuses and explanations for his failure or forgetfulness Many times these excuses will be given even before the other person is aware that there is any fault The boy who apologizes to his teacher for the delay in hand-

ing in his paper or for his untidiness, is forestalling expected criticism, thereby showing his own guilt over his omissions Likewise, the person who avoids humiliation by a preparatory build-up is equally protecting himself against his guilt and inferiority. So some persons adopt gracious manners, dress with exquisite taste, or select decorative ornaments for their houses, their automobiles or their writing paper to ward off criticism and possible challenge to adequacy Others may fear the challenge to their thoughts and points of view and may build up elaborate defenses to their arguments lest they topple over and crash into discard.

Avoiding Expression of Aggressive Tendencies as Indication of Guilt. A third method of meeting or forestalling the attacks and criticisms of others is to avoid giving offense and to adopt a character of submissiveness and docility The individual who withdraws from competition, who refuses to play games or to lay himself open to any sort of challenge or attack apparently is, first of all, afraid of being defeated and having to suffer the ignominy accompanying it He may not be afraid of the jeers and taunts of others, but he may feel uncomfortable at the pride and assurance which accompanies their victory and his own humiliation at his defeat Withdrawal from competition is stimulated primarily because the individual wants so much to prove himself the victor In a more general sense, this person avoids any act which might give offense to others He is careful not to antagonize them by any assertions on his own part or by any claims to eminence He ignores his accusers and takes no steps to justify himself or to retaliate In thus refusing to compete, he is tacitly claiming his superiority

Guilt and feelings of inferiority are also shown by obedience, subservience, and humility A boy may show his guilt by submitting without protest to the wishes of his parents by becoming very good The person who leads a moral and righteous life, who does not cheat or lie or steal, who is polite, courteous, and proper is one that has put aside all tendencies to resist, to rebel, or to defend himself against attacks of others He shows his guilt primarily by avoiding the occasion of it The purer the life, one may be sure the more poignant the feeling of guilt associated with back-slidings from the high moral standards set The perfectionist is the person who must hold himself to his high standards in order to avoid feelings of discomfort were he to relax or fail in any principle.

Showing Guilt by Defending a Person or Cause. Guilt may show itself not only in those tendencies that an individual adopts with regard to himself, but in the attitudes that he takes toward another person. Many a man will defend a friend or a cause where he would not lift a finger to protect himself in a similar extremity However, to defend a friend or a cause is tantamount to admitting that whatever is defended is somewhere within the person himself, and by going to the defense of another person, he admits that he is sensitive to just such an attack Far from criticizing the person who is guilty, we find here an illustration of how

guilt serves as the basis for one of the most highly admired of human characteristics

Punishment of Others a Projection of Guilt. Likewise, the punishment of another person is a sign of guilt in the person doing the punishing When a teacher punishes a pupil it is for some characteristic that he dislikes in the pupil, some behavior or failure that he cannot tolerate To be sure the behavior or the failure is in the other person, but the standard with regard to this behavior or achievement is in the person doing the punishing What he does not tolerate in others, by the same token, he does not tolerate in himself One might ask how the teacher or parent has come by the standards of behavior or achievement which he demands of his pupils, or son or daughter These standards are his own superego, and the fact that he cannot tolerate departure from them in others is a sign of his own unconscious attitude toward departure from them in himself

Obendorf [619] has ventured the interpretation that "kidding" is an expression of guilt on the part of the person doing the kidding Kidding, as is well known, is a mild form of criticism or making fun of another person more or less in jest and in good spirit, and the other person is expected to "take" the banter in an equal spirit of play However, kidding, sometimes can have a vicious sting Obendorf makes the point that kidding usually represents criticism directed, of course, toward another person, but also represents something to which the kidder himself is sensitive and hence is an expression of guilt Likewise, scorn and criticism of others, however mild and veiled it may be, represents the same tendency The fault which is found with the other person, even the most veiled allusion, represents a standard about which the accuser himself is sensitive. In like manner, the attempt to arouse guilt in others by pointing the finger, saying "tch tch," while designed, of course, to correct the other person, indicates first of all the thing about which the person himself is sensitive and of which a breach of conduct would arouse guilt

REDUCTION OF GUILT

Since guilt is such an intolerable emotion in man, he goes to any extreme to avoid or to reduce it, and the present section will review some of the methods by which this is accomplished In the first place, it should be noted that a man is unable to rid himself of guilt unaided from the outside Guilt, as we have seen, is an anxiety response to tendencies within the self, consequently, self-forgiveness is impossible and an individual needs some sort of assurance from outside sources in order to rid himself of these distressing feelings.

Somatic Methods. In reviewing methods of reducing guilt, mention ought first be made of some of the somatic methods occasionally used These methods indicate that introjection, in the first place, is a physical act of incorporation, and, fundamentally, to rid oneself of these intro-

jected tendencies may also be thought of as a physical act Persons feel that they are expelling the bad from within by vomiting or by defecation Indeed, a fashionable method of righting oneself is to undertake what is known as colon irrigation, that is, a very thorough form of enema. By this method individuals pride themselves that they are freeing the body from poisonous fermenting elements It is curious that this sort of internal cleansing serves at the same time to take the form of a mental clearance for so many persons They act as though they were freed of a burden of guilt In these two processes of ejection of the contents of the body there is a suggestion of confession which is another well-known method by which guilt is reduced. However, these somatic methods are of passing interest only and perhaps are worth more for their symbolic than actual significance

Self-Punishment. The principal method by which guilt is reduced is that of self-punishment As has already been indicated, guilt implies a sense of deserved punishment, and as guilt is aroused, this sense of deserved punishment is followed by steps taken to see that punishment, or its equivalent, is actually suffered.

Motivation of Self-Punishment HOSTILITY TOWARD OTHERS DANGEROUS. The motivation for inflicting pain on the self, however, is not immediately evident, in fact would seem to represent an impossibility and hence requires careful explanation In the first place, there is sadism, or the infliction of pain on others—dangerous because it arouses hostility and punishment from others and threatens loss of their love So this sadism is repressed First it is suppressed directly by the restraining influence of others who do not particularly enjoy being the objects toward which sadism is directed and take steps to protect themselves from it Later, however, sadism is repressed by the individual himself, that is, by his superego, which accepts for himself as wrong that which has been taught him to be wrong by others So far this reviews what has already been previously stated

FRUSTRATION OF HOSTILITY TOWARD OTHERS INSTIGATES HOSTILITY TOWARD SELF—THE SOURCE OF FRUSTRATION As an individual represses his sadism *he becomes the frustrating agent,* and the sadism then becomes turned against the self, which is recognized as a new source of the frustration. Here, then, we see the motivation for aggression turned inward The aggression toward others is repressed, but the impulse remains unexpressed, and it becomes directed inward against the self (the repressing agent) as a substitute One may still see, however, that this aggression toward the self in fantasy is actually directed toward the other person who has become the introjected object Since hostility, for example, toward the actual parents is barred, the hostility is now directed toward the parents within who have taken their place One may see this in the supporting motor control that accompanies the repression of aggression One may, for instance, bite his lips when he represses saying an unkind word. But biting

the lips is biting oneself rather than another person Likewise, one may dig one's nails into the palms of one's hands when he refrains from hitting another person Here, again, the tension becomes turned inward as a direct outcome of the restraint from turning it outward It may be mentioned in passing that sadism directed toward the self hurts others too, inasmuch as the person toward whom the sadism is orginally directed is one who loves and consequently is hurt when the loved object, namely the person who is aggressive, finds it necessary to injure himself

SELF-AGGRESSION MEANS SELF-PUNISHMENT Self-aggression is injurious to the self and may take on the meaning of self-punishment It is through this same roundabout process that self-punishment becomes motivated Aggression toward the self becomes the expression of self-punishment through the libidinal or love factor In the first place, the child inhibits his aggression toward others, in part, because they are loved objects, and he fears the loss of their love The child recognizes that if his parents do not love him enough to direct his behavior, they would not take the trouble to punish him He therefore recognizes a certain justice in the punishment, and when he finds it necessary to inhibit his counter-aggression to the punishment inflicted—recognizing that he deserves it—he turns it against himself On a fantasy level the father against whom the aggression is felt, and who is thereby killed, can only be brought to life and made real by accepting the punishment he would have inflicted Therefore, as the parent is taken in by the process of introjection, his continued existence is demonstrated by accepting, and even seeking the punishment which is due him in reality

GUILT MEANS FEAR OF SELF-INFLICTED PUNISHMENT. Guilt means the fear of self-inflicted punishment as well as the fear of punishment from others It was stated earlier that sadism toward the parents becomes turned into sadism toward the introjected object This later becomes equated with punishment by the introjected object directed against the ego, or self This turnabout of subject and object inside the self is the sort of thing that happens so frequently in the dynamics of human adjustment So we find that the punishment is one which becomes really directed against the self at the instigation of the superego which holds the standards and demands the penalty

This fear that punishment will follow an offense sets up a tension within the individual, and this tension is the expectation of punishment, originally an expectation in reality However, if the parent is not present, or if the individual keeps his act secret from the parent, punishment is not forthcoming, and there is no way for the tension set up to be relieved Suspense is often worse than reality, for the punishment in reality does serve as a relief from the anxiety aroused Indeed, this tension becomes more vivid and distressing with the continued default of punishment The need of punishment is in reality the tension and expectation of punishment set up by ordinary processes of conditioning. Indeed, this

need for punishment, being the distressing state of affairs that it is, leads the person to seek punishment and to bring it on himself in fantasy and in reality. It is this dynamic sequence that lead Freud [297] to substitute the term "need for punishment" for "unconscious guilt."

TENSION OF EXPECTED PUNISHMENT CAN BE RELIEVED BY SELF-PUNISHMENT The tension of the expectation of punishment is assuaged by self-punishment and with this, release and reduction of tension guilt is thus resolved and disappears It is for this reason that suffering sometimes reduces guilt, and in a sense it is only through suffering—that is, aggression turned inward—that the pangs of guilt can be relieved It would almost seem that the tension created by the need for punishment is self-stimulating, constantly building up pressure, so that punishment in some form is required as a way of realizing and draining off this increasing tension

SELF-PUNISHMENT BETTER CONTROLLED THAN PUNISHMENT BY OTHERS. There are other ways of looking at self-punishment which may help to explain its motivation For instance, it is thought that punishment may be better controlled by the self than by others One never knows how severe or disastrous punishment by a parent may be, but if given by the person himself, it should be under his control and hence made no more painful than the individual can bear.

SELF-PUNISHMENT AS FACE-SAVING In this sense self-punishment may be thought of as a form of "face-saving" Attached to punishment delivered by another is a certain humiliation and degradation. On the other hand, if one punishes himself, and particularly if this is done so that it seems to be a blow of chance or fate, then the challenge to self-esteem and self-respect is mitigated

SELF-PUNISHMENT BRINGS SYMPATHY Self-punishment may also bring the person sympathy, care, affection, and reassuring statements from others

Jackie is always getting hurt, queerly enough, this usually results in injuries to his head At one time he fell off a fence and landed on his head, another time he fell downstairs, and on a third occasion he was struck behind the ear by another boy On a fourth occasion he was injured on the scalp in the gymnasium by the swinging rings All these appeared to be accidental occurrences, but the nature of the accidents were too similar to make them wholly a matter of chance One would only have to see the concern and solicitude of his parents to recognize the gratification that these painful accidents carried with them. That there was some motivation to them was all the more evident, because in other respects the boy was never quite sure how he stood with either parent.

To bring oneself to task by failure or bad luck following some misdeed, poor judgment, or moral delinquency may be a cause for self-approval and self-gratification by indicating that the person has good moral judgment after all, and is reaping the whirlwind that was sown

SELF-PUNISHMENT AS RESISTANCE TO REFORM Self-punishment in the form of accident, illness, or self-denial may also protect the person from the necessity of having to change himself in fundamental ways. There is a deep-seated resistance to fundamental change in most persons, they would

much prefer to keep their childish ways of thinking, feeling, and acting rather than to endure the threat that seems to be involved in having to undergo a fundamental change. Consequently, most persons prefer to keep their unconscious antagonisms, jealousies, rivalries and their secret pleasures if they can pay for them with an appropriate penalty. It is as though one were obsessed by the desire to possess inferior goods for which it is necessary to pay dearly.

SELF-AGGRESSION PROTECTS AGAINST RETALIATION FROM OTHERS Finally, to turn aggression on the self protects the person from having to accuse others, with all of the danger of possible retaliation that might ensue. It is not uncommon to observe a person turn on himself a depreciatory remark intended for a friend whom he wants to criticize The result is that instead of criticizing the other person, he is actually absolved from his fault A mother who is angry because her son does not make a good record in school, will say, "I know that I am partly to blame for not giving him the proper encouragement and for devoting so much of my time to afternoon parties, bridge, and teas" One can easily observe cases in which self-blame is in reality a backfire from blasting criticism really intended for others

SELF-PUNISHMENT NOT SO EXTENSIVE IN WOMEN AS IN MEN It is an interesting observation that self-punishment does not seem to be so acute or extensive in women as in men By and large, women seem less obligated to take extreme measures toward absolving themselves from shortcomings and weaknesses To be sure, many women do this by a sort of masochism or long-sufferingness, but on the whole the tendencies are not nearly so strong in women to deny themselves by asceticism, martyrdom, failure, or criminality This would follow from an observation in an earlier chapter that the superego is stronger in men than in women and has a more independent existence. The self-punishment that women adopt is more often one in which they take on subservient or submissive relations toward others, rather than by a more independent prejudicing of their interest

When unconscious tendencies are brought up to consciousness, as through the interpretations of psychoanalysis, anxiety and guilt are aroused. Against them and also against the self-punishment that the superego demands (if the interpretations are correct) the ego has to defend itself by some one of the mechanisms of defense Bergler [78] points out that dreams regularly not only express unconscious, infantile wishes, but also defenses against the reproaches of conscience aroused by the expression of these infantile wishes in waking life.

THE HARSHER EARLY DISCIPLINE, THE MORE SEVERE THE SELF-PUNISHMENT In general, the harsher the early discipline and punishment by the parents, the more severe the self-punishment. Frequently a parent will complain that although she whips her child many times a day, the more he is punished the less he seems to care and the more obstinate and wilful

he becomes. This latter may be true, but the parent is not noticing that at the same time the child's guilt is also greatly increased, causing him to inflict self-punishment: failure to learn to read, failure in school, or the development of other undesirable characteristics. Self-punishment is also punishment of the parent, inasmuch as when the child prejudices his interests, and fails in one activity after another, he also humiliates her before her friends and neighbors. What is taken for pure naughtiness or laziness is actually his own tendencies toward inflicting on himself punishment as severe as that which his mother administers physically.

Form of Expression of Self-punishment: SUICIDE THE MOST DRASTIC. Of all self-punishment, suicide may well be considered the most drastic, although actually it may be motivated by less severe guilt than some of the more tortuous failures and penalties which a person may bring upon himself. No attempt will be made here to go into all of the vagaries of suicide or attempted suicide. This topic has recently been the subject of an extensive inquiry by Zilboorg [879], the publication of which will shortly appear. Reik [658] has made the interesting observation that "women prefer poisoning or drowning as a means of suicide whereas men choose the gun or rope," indicating that the means of ending one's own life still maintains the characteristic sex difference whereby men consider attack as external danger, and women consider it an internal danger.

There is a great deal of popular misconception concerning the motivation of suicide. If one would take newspaper accounts literally, he would believe that most suicides are motivated by disappointment or loss; frequently they seem to follow disappointment in love. A wave of suicides followed on the heels of the depression, when formerly prosperous business men were faced with the collapse of their fortunes. Even in the morning paper of the day on which this was written, I read of a man who jumped to his death from a high window. As he entered the elevator he told the elevator boy that "he could not go on living without his wife" (who had died two weeks previously) and "not to be surprised if something happened to him." [1] It should be recognized, however, that suicide is first and foremost a form of self-aggression, and as we have seen, self-aggression is aggression toward others turned inward. Likewise, it is a form of self-punishment. This may seem far-fetched, for so drastic a form of self-punishment can have no possible real value. However, as the proverb, "to cut off one's nose to spite one's face," well indicates, self-punishment frequently goes far beyond any real benefit which may be derived. The very fact of suicide, or of suicidal attempts, points to the degree of torture to which guilt may give rise. Suicide has as a secondary motive, a backwash of aggression or spite expressed toward others. One hurts oneself, to be sure, by cutting off at the roots all hopes and ambitions and enterprises, but at the same time this drastic re-

[1] *New York Times*, March 18, 1943, p. 21.

moval of oneself may also be the supreme form of punishment directed toward someone else to whom he is dear Many other motives may be mingled in the suicide act In some cases there is a deprivation of love, and suicide may be an attempt to win love that cannot be won in any other less drastic way. Anyone who attempts suicide is going to have a solicitous fuss made over him, and if the suicide is successful, there are those who will mourn at the funeral Suicide also may represent a striving to regain a state of peace and repose. There may be an identification with a loved dead object and in some cases an attempt to reunite with a departed loved person [69]. Whereas suicide has been considered both an indirect way of hurting others and of inflicting the supreme punishment on the self, it may also be a means of escaping from aggressive impulses toward others which assume such dangerous implications [357] So in searching for an explanation of suicide, one should look to the relationships that are closest and nearest to the person who has taken his life Even though the person most closely affected and deeply hurt is one toward whom a person has the greatest loyalty, one never knows to what extent unconscious fantasies of hatred and hostility which have been covered for years by impeccable behavior and the deepest devotion, finally find overt expression. It is interesting how tendencies to suicide can be blocked by real danger or an emergency from the outside which redirects the aggression from within outward

SELF-PUNISHMENT DIRECTED TOWARD THE PERSON Under this heading a long list of ways in which an individual harms himself and prejudices his interests will be commented upon The best reference on this subject is Menninger's book, *Man Against Himself* [577], which describes a large variety of methods found to come under the heading of self-punishment First of all, however, let us mention some of these methods primarily in the realm of feeling. One response to guilt is remorse or compunction. The guilty person feels sorry for his misdeed. Even before he tries to make amends for it and to pay the penalty, he himself feels sorry, and this remorse or sting of conscience may become so sharp and painful as to be a sufficient punishment in and of itself

Self-Depreciation Similarly, persons who have the need for self-punishment may castigate themselves by self-blame or self-depreciation, self-renunciation, or self-reproach All of these methods of scolding or criticizing the self are direct outgrowths of similar forms of criticism that a person may have received at the hands of others. One may feel angry at first for his delinquencies and hostilities. It is an interesting observation that of the various forms of self-punishment presently to be described, an individual usually finds satisfactory explanation for them in terms of accident or illness or chance or fate. Seldom does one want to admit to himself that he has had a direct hand in bringing on himself the restrictions, the failures, the accidents, of which he is apparently the innocent sufferer He will not admit his error and blame himself for his part

of the self-punishment, and will not want it to appear that he was a partner in the responsibility.

Of the many ways in which a person may hurt himself, perhaps the most general is that of refusing to take advantage of opportunities presented How many times does a person turn away from invitations and opportunities because he feels unworthy or guilty and cannot avail himself of them? The feeling that pleasures are too good for one, that they may be for others but that one is too clumsy or unpopular or hideous or old to participate, may really stem out of the deep-seated feelings of one's inadequacy and guilt

Martyrdom One of the most widespread ways of invoking punishment on the self is through the various forms of *martyrdom* There are, for instances, tendencies toward self-sacrifice, of turning oneself away, or of leaving victory to others We are encouraged to show good sportsmanship, which means to accept defeat gracefully, and even perhaps to give one's opponent every advantage so that he may win fairly, if not even with advantage All forms of asceticism and self-denial represent another form of this same martyr tendency One sees this characteristically in adolescents who may turn, in one of their moods, to extreme denial of pleasures, glutting themselves with restrictions and hard work, passing by opportunities to feast the senses The young girl who denies herself ice-cream and chocolates in the interests of reducing, or the boy who, in a similar manner, abstains from smoking and late hours because he is in training during the football season, are voluntarily enduring self-punishment, although for obvious reward Then there are the tendencies toward self-discipline, also a common phenomenon in adolescents Here we see the serious-minded youth who rises before dawn, immerses himself in a bath of cold water, undertakes an arduous schedule of study or work, skimps at meals, denies himself the pleasure of the bull session or midnight feast We see it again in the individual with an overdeveloped sense of duty whose conscience pricks when in some way he falls short of his obligations and the expectations of others He labors long and late to get the magazine copy in on time or to complete arrangements for the spring trip of the baseball team. Many of the men whom we admire as successful and who point back to the hard road on which they have toiled, have reached their eminence in part because of the self-castigation from earlier guilt There is a touch of this form of self-punishment in all of us, because these tendencies toward self-denial, asceticism, discipline, responsibility, and hard work are generally admired and win the approval and plaudits of most serious-minded persons When one looks at the matter from this perspective, one has to conclude that the motivations must be strong to cause a person to leave a life of ease and pleasure and whip himself so mercilessly, and to adopt all kinds of hardships and abnegations in order to achieve a doubtful goal One can endure all sorts of hardships when he feels guilty and unworthy

While on the topic of martyrdom, perhaps religious penance should be mentioned. It is not so fashionable today but it played an important rôle in certain eras of human history. Under the sting of religious guilt a person may pay exacting penalties decreed by his particular religion Perhaps today in our nationalistic culture people are taking on equally severe personal penalties and deprivations as the religious zealot of generations ago.

Prejudicing One's Interests. Another way in which one can punish himself is by prejudicing his interests with others For example, one may let his appearance deteriorate and hence become offensive to others By procrastinating or by putting off one's duties and obligations, one may disappoint others and thereby fall from their high regard One may even take more active measures of increasing the aversion or contempt of acquaintances by vague insults or criticisms, by failure to show proper appreciation, by forgetting other persons' names, or uttering vague insinuations or deprecations One may even hurt the person who wishes to help by failing to appreciate the help given or by finding unnecessary fault with it One usually excuses the untactful and uncouth person by saying that he knows no better, or that he has had a poor upbringing The truth of the matter is that many times one incurs the hostility of or prejudices his interests in others' eyes with unconscious purposefulness, as a way of hurting himself and thereby of paying the penalty for actual or fantasied misdeeds Bergler [76] has shown how guilt is aroused by every game of chance (and perhaps of skill, too) The game itself arouses strong aggressive tendencies in the attempt to win But these same aggressive tendencies may arouse guilt and cause the person unconsciously to make errors or let opportunities for scoring a point pass, so that there is a vicious cycle of aggression and self-punishment as self-punishment clears the ground for renewed aggression.

Sutherland [774] discusses how guilt may operate in the taking of an examination, particularly an oral examination, to prejudice the candidate against his own best interests Guilt may be aroused by unconscious exhibitionistic tendencies that have to be punished by failure A candidate may unconsciously reveal weak spots to satisfy a need for punishment Failure of an examination may be used aggressively to hurt his parents' ambitions and as a self-punishment for the guilt over his own ambitions

Many persons become failures not entirely because of the blows of fortune or ill-luck but because they manage to pervert circumstances to their own disadvantage The reader may be inclined to believe that ordinary events of life are being strangely twisted and given unnecessarily distorted meanings and interpretations Why would one ever wish to fail, one may well ask? However, cases have been studied in which the failure of a child in school indicates that the failure was intended In part, the child failed because his parents considered him a failure, and he was almost compelled to live up to the reputation which had been

attributed to him. Sometimes children fail in school not only to punish themselves, but also to hurt their parents and to force them to reveal that the extent of their affection for their children depends upon progress in school. The child with a good level of intelligence whose parents show that they have high regard for him, and who thereby insure his high regard for himself, is more likely to succeed in school than the child whose parents do not show high regard for him and who consequently lacks confidence in his own abilities. Indeed, it is possible for ignorance, stupidity, or even low intelligence to have a functional origin. It is well known that persons sometimes feign stupidity. Perhaps, in a wider sense, they may compromise their success in the world by mental confusion and incapacity. But this statement should not lead anyone to hope that mental deficiency usually has such a functional origin, on the other hand, one is safest in taking expressed intelligence at the best indication of real intelligence.

An unfortunate and unhappy marriage is usually felt to be one of the fortuitous circumstances of life. How could two persons know ahead of time how they were going to react to one another, or what the other person's characteristics were going to be? However, there is reason to believe that not infrequently a man brings an unhappy marriage upon himself as a penalty to be paid for some of his earlier Oedipus strivings for which he has never been able to shake off guilt. The "bluebeard," who is cruel to women, is not infrequently the kind of man with whom women are anxious to have relations in order to reduce their guilt.

Another method by which individuals prejudice their interests is by the development of personality traits of shyness and withdrawal. However much one may enjoy companionship and association with others, something within him cuts him off from them and makes for him a lonely and isolated existence.

Alcohol Addiction as Self-Punishment. Addiction to alcohol may also come under this category of self-punishment, to the extent that its use tears down an individual's personality, causes him to fail in his responsibilities, and forces him to lose out on other of life's values. Incontinence in the use of alcohol has been one of the puzzles in human behavior. Otherwise splendid men and women with every advantage and encouragement from their families, have gone to pieces through overindulgence. Through alcohol one finds a way of removing oneself from the world, thereby invoking a form of self-punishment. Frequently there is a severe and stern father and a childhood of repression and discipline in the background of a person who overindulges in drink. Through drink one may be expressing a wish for the most primitive form of nourishment even though it be fire water—hostility turned inward—instead of milk. In using it as an escape from the restrictions placed upon him, he is prejudicing his own interests and disappointing those who have expected so much from him.

Delinquent and Criminal Tendencies as Self-Punishment. Delinquent and criminal tendencies may have a similar neurotic character. This form of self-punishment was first hinted at by Freud [289], but has received a more thorough analysis by Franz Alexander [17; 28, 29]. In some crimes it becomes clearly evident that the criminal unconsciously intended to be caught. He may have failed to cover up his tracks or to obliterate the clues. As in Dostoevski's *Crime and Punishment,* the criminal may have an obsessional need to revisit the scene of the crime or to talk about it with interested persons. All of these tendencies seem to be unconsciously directed toward getting himself convicted of the crime and subsequently punished. Indeed, as we shall see in a later section, the criminal's guilt may even force him to commit the crime so that he may be punished. The guilt which is the driving force for taking such extreme measures may have originated years before in hostility toward the father and later by derivation, hostility to all authority, particularly that of constituted law.

Psychosis as Self-Punishment. Even psychosis has been found to have its motivational roots in the need for self-punishment.

Homosexuality as Self-Punishment. Homosexuality may also be looked on as a form of self-punishment, although its roots may go back so far in infancy that the specific character of homosexuality as self-punishment is difficult to trace. However, homosexuality is almost always associated with castration fear on the part of the male. Castration is, of course, the equivalent of the loss of power. If an infant in his Oedipus hostility has fantasies of castrating his father which become too dangerous for him to accept, he may turn this into fantasies of self-castration. These fantasies may find their outward expression in the turning of the personality from masculine to feminine expression. In brief, homosexual personality trends may arise out of the introjection of castration fantasies.

Pleasure Indulgence as Self-Punishment. In the queer form of self-punishment known as *pleasure indulgence,* the individual does the very thing for which guilt is felt. The pleasure that has been repressed and is thought of as being wrong or harmful is repeated, the repetition carrying with it the painful quality of guilt as well as pleasure, and hence serving as self-punishment. This explains certain forms of compulsive masturbation which the individual, however much he may wish to rid himself of the habit, finds an irresistible tendency to repeat. It is as though he were striving to repeat the very fault which gives him pleasure but from which he wishes to refrain because of his guilt concerning it.

SELF-PUNISHMENT THROUGH THE BODY. Here we come to this large field, which in recent years has been publicized under the heading of "psychosomatic medicine." It has become increasingly clear that many forms of illness and organic suffering have a psychogenic origin; these are in part psychologically motivated [184]. This is not to deny in the least that

the disease or the infirmity is real. The pain, the lesion, the inflammation, or the fever is real, but at the same time it may have been induced, in part, through mental instigation. The exact mechanism by which the mind in this way has influence over the body is only beginning to be dimly recognized, but the existence of such control can no longer be doubted. Suffice it to say here that illness and suffering serve admirably as forms of self-punishment, both by their incapacities and the pain which accompanies them. One investigator, Fromm-Reichmann [305], is convinced that migraine headaches are always one specific expression of deeply repressed unconscious hostility against beloved persons. They also serve, at the same time, to bring punishment on others who grieve at the suffering and are forced to expend time, money and care in treatment. They serve the needs of self-punishment admirably, since they seem so convincingly to be the result of physical causation and consequently are entirely out of the control of the individual who succumbs to the illness. They absolve the person completely from responsibility. He sees no necessity for finding fault in himself for his own aggressive and erotic impulses. One has only to observe how readily persons look to a physical handicap for an explanation of their psychological difficulties to discover how widespread is this form of self-punishment.

Hallowell [339] found in one Indian tribe that illness was considered as a hostile attack from some unseen enemy in retaliation for one's own hostile impulses. Even in our own society illness may be thought of as something one deserves for his carelessness. The common anxiety surrounding illness may be guilt for unconscious hostile tendencies.

Accidents and injuries come under this same category of self-punishment through the body. In these cases too, the responsibility seems to lie outside of the individual and points to chance or fate for the explanation of the suffering. It is indeed difficult to picture the motivation which would cause a person to swerve in his automobile-driving at just the right moment to have a collision, but the unconscious forces at work are nevertheless certain.

Still another illustration of self-punishment through the body would be found in the not uncommon varieties of self-mutilation. The extreme forms are more spectacular, but one can see self-mutilation in various forms in everyday life. The tense boy or girl who chews his nails down to the quick is blunting one of the body's few natural weapons, and in numerous instances, nail-biting is just this—the destruction of sharp instruments which might be used with hostile intent. Roheim [685] suggests that fingernail-biting is a punishment for masturbation tendencies, and the connection with the hands, which are usually the agents in masturbation, may readily be seen.

This turning in of aggression shows itself in the compulsion that many persons have to undergo surgical operations. Here the cutting is turned inward and parts of the body are excised. Modern Shylocks pay their

pound of flesh in a very real sense for the guilt which they feel over real or fantasied hostile tendencies. The number of occasions on which women have operations on their genital organs is testimony to the guilt which they feel concerning sexual activities.

MALINGERING AS SELF-PUNISHMENT. Malingering is a well-known form of self-punishment through the body. A person complains of incapacity because of his feelings or because of self-imposed injuries or limitations. A man complains that he can no longer keep his place at the bench because of a splitting headache. The youth complains that he cannot do his homework because his eyes hurt. Here, too, the pain or incapacity may be real and yet may be in part psychologically induced or at least utilized to serve one's purpose of escaping from a disagreeable task or obligation. An adolescent girl frankly admitted to me recently that there were occasions when she found it convenient to have a cold and to be forced to stay at home so that she had to miss some disagreeable examination or appointment, but she also told me at the same time that she was very speedy in her recovery from these coryzal infections.

STUTTERING AS SELF-PUNISHMENT. Stuttering is another functional limitation which, while its origin may be obscure, persists in part because it serves as a useful form of self-punishment through the body. Speech is so important an aspect of human communication that any impediment in it is certain to be a pronounced handicap to the individual and can be used by him for self-punishment motives.

THE STRIKE AS SELF-PUNISHMENT. A strike can have self-punishment implications. Ghandi's hunger strikes are certainly a form of martyrdom for him, but are also used as a weapon against the British government. Frequently, children go on strike against doing their school work or accepting responsibilities placed on them at home, and they use passive resistance both to prejudice their own interests and also to punish the parents or teachers against whom they feel hostility.

SEXUAL IMPOTENCE AS SELF-PUNISHMENT. Finally, sexual impotence on the part of the man or frigidity on the part of the woman can represent self-imposed yet unconscious restriction and limitation on the pleasures of sexual activity. While motivation of these functional disorders have many roots, at least one of them can, in most cases, be traced to the desire to punish the self through the restriction of these forms of interdicted pleasure.

Punishment Relieves Guilt. There has been a controversy in psychoanalytic literature regarding the question as to whether punishment actually does reduce the amount of guilt. Wilhelm Reich [654] has doubted that punishment does have this effect. However, the consensus of opinion seems to be that guilt is reduced in intensity by punishment. In this sense, punishment then is a satisfaction, even though it can hardly be admitted that it is a pleasure. The tension aroused by the guilt may be even more unpleasant than the punishment which releases it and

permits it to flow through and drain off. Theodor Reik [658] believes that no one seeks punishment in and of itself, but only the gratification for which permission is gained through the punishment. (See p. 393.) Punishment also, besides relieving guilt, seems to reduce the repression which was kept effective by means of the guilt. After punishment, behavior is no longer restrained and inhibited, and since there is no longer the same need for maintaining secrecy, the personality relaxes and the behavior may become more natural and spontaneous.

On the other hand, punishment, as we have already seen, does stimulate the superego, so that punishment cannot be thought of as a cure for guilt but merely as a temporary relief. As impulses and behavior that are unacceptable to the superego, and consequently arouse guilt, are repeated on some subsequent occasion, the need for punishment with its accompanying tension returns and this time it is stronger than before. Like a habit-forming drug, punishment, while affording temporary relief, actually requires a larger dose following each administration.

Efforts of Self to Provoke External Punishment. Self-punishment may be initiated in two ways: either by inflicting calamities on the self or by provoking others to inflict punishment. There is a strange reversal of motivation here. Some time ago we saw that a person inflicts punishment on himself so as to avoid what he believes to be the harsher and less easily controlled punishment that he may receive from others. Now he finds that his own self-punishing tendencies may be far more severe than those which he can expect from kindly parents and teachers. In order to avoid his own severe superego, he may reach out again and attempt to instigate punishment from others. Every child knows how to provoke punishment by annoying or hurting others or their interests, so that the hate which was introjected in order to avoid the hostile reactions of others is again projected outward for the very purpose of arousing anger in others. Here, then, we find the not uncommon phenomenon of the child's being naughty in an increasing tempo for the precise unconscious purpose of bringing punishment on himself. The sequence of behavior operates somewhat in this way. The child has to be increasingly naughty and disturbing in order to get the reaction which he requires from his parents. Sometimes one can see this in the child in the growing intensity of his passion or temper tantrum. Parents who are slow to wrath and who have their own tempers well under control are the very ones against whom the child with the severe superego must go to extreme limits in order to gain punishment. It may be that the parent himself is afraid of aggression and represses it until—as mothers frequently say—"they lose their patience and fly off the handle." When the punishment is meted the child's naughtiness and guilt subside, and for hours or days he is an uncommonly "good" child. However, as temptations arise and hostile fantasies once more put in their appearance, the child's guilt once again demands relief, and the cycle is repeated.

Many teachers readily recognize that this cycle of bad behavior is followed by a period of relative calm

Function of Self-Punishment in Testing Reality. Susan Isaacs [396] points out in telling fashion the function of punishment in testing reality In her observations she has seen that children often invite punishment to see how severe it will be, in order to determine whether it is something which can be endured. It is like the temptation that one has to press the sore tooth in order to see whether it still really hurts and if so, how badly In fantasy, a child may even go much further than this and seek punishment in order to discover whether his parents really wish to injure him or destroy him In other words, it is a test of the extent to which the child can count on the parents' fundamental acceptance or rejection Because the child has such an overwhelming need to be loved, he must test the reality of the parents' hate-

Here too, we see the phenomenon of prohibition increasing a child's desire to experience the very thing which is prohibited A boy who is told that he must not say the forbidden word seems possessed to utter it. This even looks as though it were a challenge to the parents' authority, but in reality is more an attempt to test the danger of the punishment which is threatened In a more general sense, this process of testing the reality of danger situations is a wish to test and demonstrate one's ability to master a situation Boys will take dares from each other in order to prove their own mastery and to dispel the reality of their fear.

Punishment as Payment Which Provides Justification for Committing Forbidden Acts This additional meaning of self-punishment was discovered apparently independently by both Franz Alexander [17] and Theodor Reik [656] Their original discoveries were published in German, but received fuller exposition in English In Alexander's *Psychoanalysis of the Total Personality* [17] and Reik's *Masochism in Modern Man* [658] punishment may be looked on as an economic transaction One transgresses and then pays the penalty, and paying the penalty balances the books and furnishes absolution from past indulgences As we have already seen, guilt is reduced so that on the feeling level at least, the air is cleared and tension is released Punishment, then, clears the way for new indulgence and pleasure, even of forbidden acts, and at the same time serves as a sort of justification for the forbidden acts in the past. There is a "flight forward" to gratification for which the punishment-payment is made This significance of punishment is seldom clearly recognized by parents and teachers Punishment is given in order to prevent the repetition of forbidden acts, whereas in actuality it may almost be an invitation for their repetition Alexander [17, pp 23 ff] speaks of the "corruptibility of the superego," and speaks of the superego as being in secret collusion with the basic and forbidden impulses and tendencies Punishment is even spoken of as a form of hush money which, to the outward observer, particularly the parents, pays the penalty and frightens

the child away from his wrong deeds Actually, however, the punishment may be recognized by the child as the penalty to be endured in order to enjoy the secret pleasures forbidden him In this sense, the invitation to punishment, which was described in the last section, may be thought of as the effort to secure a ticket of admission to the very gratification which the parent wishes to prohibit Sometimes the time sequence is reversed In an economic transaction payment is usually made before the purchase can be enjoyed In the psychological realm, however, punishment as payment usually comes after the gratification, but even then it is recognized as something necessary in order to give the forbidden act its full measure of gratification It is as though the gratification and pleasure were not complete until they had been paid for

Going on in this same vein, it has been found that the punishment itself contains a fantasied or symbolic repetition of the forbidden act. The painful quality of the blow of the strap may at the same time have an erotic quality of pleasure because the individual identifies the painful feeling with the pleasure for which it is being taken as payment It is on this basis then that children sometimes actually seem to enjoy punishment, which only increases the fury of the parent who is administering it, for it is through the punishment that the child feels that his wrongdoing is yielding him its full measure of gratification

Through the various forms of self-punishment which have already been described, feelings of inferiority seem to disappear Many persons pride themselves on their aches and ailments; they treat them as prized possessions and bore their friends by describing them in great detail The man who apparently is the innocent victim of circumstances and who endures the darts of misfortune can wear the merit badge of martyrdom, which may be the most honorable form of distinction which he can scrape together for himself When one observes closely, he can see that misfortune is not an ill-wind for all persons and that some individuals derive considerable emotional satisfaction from their hardships

In a previous section, it is pointed out that homosexual tendencies may have a self-punishment significance To the extent that a boy fails to stand up against his father as a rival or competitor he masochistically accepts punishment and humbles himself before his father, and he may by the very payment of this penalty gain permission to love his mother as he wishes Consequently, the turning from masculine to feminine and from active to passive, while representing a giving-up of masculine prerogatives, may be thought of as a payment for gaining permission for feelings and attitudes for which otherwise too much guilt may be felt

Masochism The term *masochism* was orginially used to indicate a sexual perversion in which a person became sexually stimulated by having pain inflicted on him Freud [273] has recognized three types of masochism which he called respectively, (1) sexual masochism, (2) feminine masochism, (3) moral masochism.

Sexual masochism refers to the tendency to find pleasure from abuse and cruelty from one's partner in sexual relations Feminine masochism is the tendency of women to bear abuse and cruelty in their love relations and to endure pain in their reproductive functions. Moral masochism refers to the tendency to undergo personal suffering or degradation as a punishment to assuage the demands of guilt for the infraction of self-accepted moral rules

Deutsch [173] believes that feminine masochism reflects deep-seated tendencies in the feminine character, based in part on the infant's efforts, as an independent person, to assert its freedom from the mother, and the fact that in adopting this more assertive rôle she is thrown back by the people around her (the father in particular) into a passive rôle in anticipation of the sexual rôle that she is destined later to assume

Recent discussions, however, indicate that the type of masochism which Freud termed "moral" is the basic type, and in the present discussion the word "masochism" will refer to this general tendency of an individual to avoid guilt by debasing and humbling himself in a painful way Sexual masochism, instead of being primary, takes its place among a variety of more general masochisms of the personality Sexual masochism, then, may be thought of as a sexualization of the more general masochistic tendencies.

Recent discussions [79; 575] indicate that the goal of masochism, instead of being pain as is the popular conception, is instead the desire to gain love Suffering through pain is the price one has to pay for the small amount of love to be gained along with the hate, which must also be accepted A person endures slights and suffering at the hands of another person in order to be at the same time the recipient of whatever love there may be expressed in the relationship Pain is the representation of the love object. Hence, the small boy may invite punishment because it is only through punishment that he can be sure that his parents really love him, that is, care enough about him to punish [273]

Fromm [303] stresses the desire to efface the individual self in the masochistic attitude and to avoid the freedom and responsibility which increasing maturity requires For the insecure person, the assumption of self-responsibility becomes too great a threat He prefers to retain his infantile security by submitting himself to a leader and taking orders from another, which, according to Fromm, is the basis of the masochistic attitude

Masochism is arrived at through an attitude of dependence, which is primarily an infantile attitude The individual repeats in later life the same pleasurable obedience to parents that he adopted as a child, in order to insure for himself whatever small amount of his parents' love his obedience will bring him Masochism has been spoken of as indicating an effeminate trend The effeminate connotation, however, is secondary

and grows out of a more primary attitude of infantile dependence As dependence, masochism shows itself in various ways For instance, one may take an inferior position such as that of a servant or slave One may adopt the masochist attitude of respect and deference of a younger person to an older person. Masochism may also show itself through taking a submissive rôle in sex relationships In sexual relationships the masochist will crave as a partner a person who is stronger than he and can dominate him, or he will crave some person who is inferior, who can degrade and abuse him by virtue of the inferior relationship

Sadism and masochism are frequently paired as opposites, but recent psychoanalytic discoveries show that these tendencies are not as simple as this Freud [273, p 60] at one time spoke of masochism as "sadism turned inward" This is true as far as it goes, but it is not at all the whole story with regard to masochism Reik [658] brings out many subtle features with regard to the masochistic process As the need for punishment rises in intensity there is a corresponding need for more severe punishment Accordingly, the person may be driven to display his suffering and to exhibit his punishment in order to intensify the suffering he receives from it We have already seen that one feature of guilt is the tendency toward secrecy, consequently, the drive to exhibit the punishment greatly augments the torture and excoriation. This helps to explain, in part, the compulsion that many persons have to broadcast to the world the extent and nature of their martyrdom Reik [658, p 481] also points out that punishment through suffering in and of itself is never pleasurable nor can it be thought to be the goal sought It serves as the prelude to pleasure, the gateway through which one must pass in order to buy one's right to pleasure So the Christian is urged to humble himself in order to receive his reward in another life, the Beatitudes are an excellent statement of the masochistic point of view

Masochism is also closely related to narcissism It is employed as a remedy for wounded narcissism, lowered self-regard, and feelings of inferiority which result from harboring hostile and aggressive impulses The person condemns himself and wallows in guilt. His self-respect can be revived only as he pays the penalty and erases the debt So masochism is a method for raising narcissism· one feels more worthy for having suffered. He can join the blessed circle of the martyrs [2]

Difficulties of Children with Weak or Indulgent Parents One of the mysteries in human personality has been the fact that children with weak and indulgent parents frequently have the harshest superegos This would almost seem to be a contradiction in terms and to deny the general fact that the harsher the discipline and punishment, the more severe the superego It is this phenomenon that has made some psychoanalysts believe that superego is, in part, a spontaneous development from within

[2] By far the most scholarly and comprehensive analysis of masochism is that presented by Theodor Reik, *Masochism in Modern Man* [658]

and is not wholly determined by experience Certainly, more light needs to be thrown on this phenomenon It is difficult to believe that superego can develop without a minimum of frustration and punishment on the part of the parents However, even with the mildest and most attentive parents there must be some occasions in which privations are experienced, and restrictions, restraints and prohibitions are enforced A child cannot grow up in our culture without being directed in his responses to a considerable degree, and even though the parents are gentle and non-punitive, the child finds that society itself sets standards within which he must adjust himself.

Once this is admitted, then the fact that in such children the superego may become extraordinarily severe follows from some of the foregoing principles As impulses to do forbidden acts arise, guilt tension increases, and relief is sought to avoid the severe superego and guilt by self-punishment If punishment is not forthcoming from others, then the child may provoke it by defiance and destructiveness Susan Isaacs [396] explains that when a child is with a weak and permissive adult such a person is identified with the bad wish-self within, that is, the hostile impulses, and as these impulses become overbearing, the self-aggression is projected outward into naughtiness and defiance On the other hand, the child identifies the firm parent with his own superego, and to the extent that outer control is exercised, the child is helped to yield to his own inner controls However, one must distinguish here between firmness and punishment, as the two are not identical

Borrowed Guilt Another phenomenon that has been observed is that of borrowed guilt, namely, guilt for the behavior and impulses of others We see this in a person who feels guilt at the misdeeds of another person with whom he is closely identified A mother, for instance, will feel guilt over the delinquencies of her son If he has stolen, then the parents may suffer If a wife drives through a traffic light, her husband may feel uncomfortable about it and may be apprehensive that she was observed by a traffic officer In such cases, the intensity of the guilt is in relation to the closeness of the relationship If one is riding with a stranger who passes through a traffic light, the feeling of guilt may be very slight indeed, inasmuch as one does not feel involved in any way himself. So one person may suffer for the wrong-doing of others and may actually attempt to atone for the other person's sufferings Sometimes a person may feel that he is too prosperous or successful and may discard his prosperity or success in order to take on himself some of the sufferings of others It is for this reason that some persons cannot accept too much success or prosperity [125] Again we find the tendency for individuals, on some occasions, to take the blame for things for which they are not really responsible In each of these cases it may be found by inquiry that the individual who has borrowed the guilt has identified himself in some way with the person who has actually committed the misde-

meanor. It will also be found that there is an unconscious impulse to commit the same fault committed by the person with whom one has identified oneself. Freud [293, p. 72] believes that in cases of borrowed guilt there is not only the identification but the remnants of an earlier erotic tie. This means that the identification is not based wholly on jealousy and competition with the other person, but that these rivalry elements are weakened or missing, and in their place an introjection process is substituted. This tendency toward borrowed guilt is another phenomenon of the Oedipus complex, so that the boy feels guilty for the close relationship of his father and mother, and thereby adopts a masochistic attitude toward his father.

It is an interesting fact in these cases that the person borrowing the guilt will, himself, sanction the misdeed committed by the other person. For instance, when the wife goes through the traffic light, the husband may be secretly glad that she did; naturally, it is inconvenient to have to stop. If he had been driving himself, his superego would have impelled him to stop, for he would have felt guilty if he hadn't done so. When his wife has committed the misdemeanor he can feel guilty for her action, but can also be secretly pleased that she has defied the authority. In the Oedipus complex the boy then absolves his father from blame for having relations with his mother; it is altogether fitting that he should do so, but in his identification he takes the guilt upon himself and finds it necessary to atone for his father's misdeed by his own masochistic and homosexual attitude.

Sharing Guilt. Guilt is reduced by sharing it. One boy who steals or breaks a window suffers alone. Two boys who commit a misdemeanor can lean on each other for support. As long as they stick together they afford each other a certain amount of emotional security which removes some of the sting of punishment. A gang may furnish so much support as to render its members more or less impervious to societal influences. A nation can feel quite righteous about its criminal activities.

Many persons suffer conflict when they have committed a fault with another. On the one hand, loyalty prevents them from implicating the other; on the other hand, the desire to share guilt is a strong incentive to confess and "tattle." Perhaps it is to insure society against a breakdown of the institution of guilt, by which a considerable amount of social control is managed, that there is so widespread a feeling against the practice of tattling.

Efforts to Redeem and Purify the Self. We are speaking here still of methods of reducing guilt. Going beyond self-punishment, the individual takes steps to clear away the stain of guilt aroused by his misdeeds. We see this in tendencies toward repentance, penitence, and contrition. Repentance while a form of self-punishment, is a weakened form. We spoke earlier of remorse and compunction, and the suffering which they produce, as being forms of self-punishment. In repentance, however, this

suffering is mitigated, and there is an attempt to restore the self-respect Repentance also protects the individual from punishment from without. The penitent individual is already on the road to paying the penalty and, consequently, has absolved himself from the need for punishment by others

Then there are attempts at purification through reform and resolution to lead a new life These promises to refrain from prohibited thoughts and acts in the future are all efforts of the self to seek redemption and purification Religion has formally recognized such activities and has given them symbolic representation through various rituals.

Efforts to Bring about Reconciliation with the Outside World. One may not only seek to propitiate himself, but may also take steps to reconcile himself with others For instance, one may take definite steps to secure love and affection There are many ways of going about this Perhaps the most obvious is that of giving gifts, a device commonly used to win favor The gifts may be actual physical objects, such as food, clothing, jewels, or they may be in the nature of kind deeds, "good turns," assistance with tasks, and the like. An interesting behavior constellation not infrequently seen in children who carry heavy burdens of guilt, is that of stealing money in order to buy candy or other favors for which to exchange friendship and affection In this single series of acts, one may see combined the desire to bring punishment on the self at the same time that one is attempting to conciliate others Conciliatory acts for the reduction of guilt can usually be recognized through their exaggeration, for any form of generosity or helpfulness—however sincere—may carry with it an unconscious effort to eliminate guilt

The Excuse or Apology Another form of conciliation is the excuse or apology This humbling of the self has a masochistic quality about it and partakes of the nature of self-punishment, as well as the desire to reinstate oneself in the good graces of others

Confession Perhaps the most important act of a conciliatory nature is confession In confession the tendency to secrecy is abandoned, the nature of the forbidden act is revealed, and the person throws himself on the mercy of those whom he has offended One can see in the act of confession most clearly the extent to which guilt is really a fear of punishment, for as a person confesses, he throws himself open without defense to whatever retaliatory measure the other person wishes to exact The hope is, of course, that by abandoning hostility and making himself defenseless he pulls the teeth of anger from the other person and thereby saves himself from his vengeance

Those who have studied confession psychoanalytically see many other aspects of it For instance, it is recognized as a weakened form of the forbidden action By reciting it, the act is repeated in words, and the same pleasure and gratification which were experienced in the original performance of the deed are experienced again in attenuated form Then

there is a projection of the wishes and desires onto the confessant, and this in two ways. In the first place, the confessant becomes the substitute recipient of the impulses which were present in the original misdeed. He may be, for instance, the symbolic recipient of the hostile tendencies. And then these same wishes and impulses are projected onto the confessant, and he is made, in a sense, a partner to the crime—one who shares the secret with the person whose it was originally.

Confession is also seen to partake of the nature of self-punishment, and since it is often the result of incriminating evidence, it is a sort of substitute for self-punishment. As one person said, "If I had smashed everything completely, I would have left no trace and hence would not have to confess." Confession may frequently be more painful than punishment itself. It may take more courage for a boy to confess that it was he who stole and wrecked the automobile than to wait to have this found out and to take the deserved punishment. So the need for punishment is usually gratified by confession. By confession, the dread of the community, that is, parents, teachers, the forces of law and of higher powers is lessened, and in this sense, confession serves to mitigate guilt.

Confession also serves to integrate the conflicting forces within the individual. The ego and the superego that have been in conflict with each other find their differences resolved. The alliance between the superego and the symptom is lessened in degree, the symptom here referring to the particular form of self-punishment adopted. As the person confesses, the need for other forms of self-punishment is reduced, they no longer serve a purpose. Since the guilt is reduced, there is no penalty to pay, and consequently self-aggression becomes meaningless, its value disappearing. It is for this reason that the therapeutic process of talking it out, if this is successful in bringing to open expression some of the deeper motives for behavior and personality adjustment, is successful in helping symptoms to dissolve. In confession there is an attempt to bring the fantasied object into accord with the real object. The fantasied object is the imagined anger and hostility of the parent which has been introjected. In introjection the severity of the real parent may be greatly magnified, and it is for this reason that the superego is frequently more severe than the real parents. As one confesses to his parents and finds that their reaction in reality is mild and forgiving, then the fantasied introjected parent is seen to be an unreal elaboration, and the intensity of the inner conflict is reduced.

Restitution. The effort to bring reconciliation with the outside world finds clearer expression in acts of restitution. Here we come to some of the most worthy aspects of human nature, the crowning glories of human endeavor. It may seem fanciful to many persons to believe that tendencies toward constructive efforts of all kinds must fully emerge only from this black welter of aggression, punishment, anxiety and guilt, but such seems to be the case as we trace these dynamic principles through the process

of development So the person who makes constructive efforts to clear himself with the world may willingly accept obligations of various kinds toward his family, his clubs, and toward the wider circle of his community and nation Making restitution is more amply discussed in the chapter, "Miscellaneous Mechanisms," starting on p 479

If some one of these measures is successful in reducing guilt, it probably brings other effects along with it For instance, the removal of guilt is likely to be accompanied by an upsurge of repression which renders resistance high and impenetrable For this reason Fairbairn [203] would not attempt to remove guilt until the defenses against it had been somewhat cleared away, as too early a resolution of guilt may defeat the very purposes that a counselor is trying to achieve in the search for the underlying motives for anxiety and guilt.

ABSENCE OF GUILT

Guilt is normal in everyone, at least to a moderate degree On the other hand, the absence of guilt is decidedly pathological and indicates very unusual conditions of early rearing Indeed, when guilt is absent, a very important form of social control is missing, and the individual without guilt may develop unfortunate forms of anti-social behavior Delinquents and criminals who have a defective sense of guilt are known as *psychopathic*

Causes. A study of individuals without guilt has been made by Jenkins [408], who has an unusual opportunity of observing a number of such cases at the Warwick (N Y) School for Boys Jenkins finds five varieties of lack of guilt In the first group there is a complete lack of standards of behavior which has resulted from growing up in a family where there has been no attempt to inculcate commonly accepted standards A second group includes those whose lack of guilt results from a lack of understanding These individuals are mentally deficient and lack the capacity to discriminate between what is right and wrong, acceptable and unacceptable. In the third group are those with distorted standards of behavior They have their own code, to be sure, but this is not the accepted code of society Their standards may have developed in a family situation where the parents themselves have criminal or pathological tendencies Frequently, as is well known, boys and girls adopt anti-social standards of behavior from their associations in gangs with anti-social purposes A fourth group includes those who have standards, but because of emotional factors, have not brought these standards into line with their actual conduct Such boys and girls may tell you that they believe one should conduct oneself in socially desirable ways, but their actual conduct belies this fact In such cases, there are unconscious tendencies at work which come into conflict with their conscious intentions. A fifth group are those who have a general emotional flatness and lack of feel-

infancy in institutions where the personal relations are remote, unfeeling and institutionalized Such boys and girls are notoriously lacking in feeling and, consequently, lack a sense of guilt [322].

Methods of Treatment. Jenkins also indicates the method of treatment found to be most effective in his experience. With those who lack standards of behavior, a program of education is called for with appeals to the foresight and enlightened self-interest of the individual All standards must, in the first place, have value for the individual who adopts them, and where such education must be undertaken late there still must be the appeal to ego interests. The group that lacked understanding must also be helped to gain such understanding as their limited intelligence will permit Those with distorted standards of behavior must be helped to modify their standards This can be accomplished only when an adult whose socialized standards they can identify wins their loyalty Those who have failed to relate their conscious standards with their conduct are suffering from inner conflicts, and Jenkins prescribes psychotherapy to remove the repressions so that the unconscious impulses toward anti-social behavior can be brought to awareness and dealt with accordingly. The fifth group, who have undeveloped feelings, need whatever help psychiatric skill can give, although the prognosis for this group is not very promising

PATHOLOGICAL IMPLICATIONS

Guilt is normal and is present in everyone to the extent that everyone has a superego or a conscience operating on every occasion on which unacceptable tendencies and impulses are countered with restraining tendencies Guilt, however, becomes pathological only when these restrictive tendencies are of an infantile and irrational nature When guilt is aroused by these irrational demands of the superego it gives rise to neurosis. A neurosis is a form of adjustment in which the individual seeks at the same time to gratify these forbidden impulses and the need for punishment and thereby to meet the demands of the two conflicting forces within the personality. The so-called "neurotic symptom" is the self-punishment itself, and the long list of examples of self-punishment given earlier in this chapter may also serve as a partial list of forms of neurosis. The neurotic symptom is painful, distressing and is recognized as such by the individual. Illness and misfortune and the restrictions of self-imposed asceticism are, to a degree, satisfying in so far as they reduce guilt However, as was commented on in a number of the illustrations of self-punishment, they indirectly serve the purpose of the interdicted drive by hurting or distressing another person who may be affected Permitting oneself to become a failure not only damages one's own success but also hurts others to whom a person's success is also important. So the neurotic symptom in a roundabout way aims to accomplish the ends sought in the

Guilt in the Various Neuroses. *Guilt in Hysteria* It is in the various forms of hysteria that the expression of guilt and methods for reducing guilt are most clearly seen. In a conversion hysteria, for instance, the various physical symptoms can probably be, in each instance, explained as a form of self-punishment, and repentance in a general sense stands out as a characteristic in all forms of hysteria. In hysteria the basic drives are repressed, and their expression is displaced into substitute and symbolic forms of activity. These displacements serve at the same time to reduce the guilt and also, in a back-handed way, to enable the individual to express his drives The illustration of the person punishing himself by falling too readily into some form of incapacitating illness not only brings misery on himself but also on his friends and relations In hysteria one also sees the longing for love, the fear of the loss of love, and the striving for a loved object which, as we have seen, is one of the basic forms of expressions of guilt and feelings of inferiority.

Guilt in Compulsive Neurosis The individual who takes on compulsive ways when his frustrations become severe is also attempting to manage the conflict within, and to allay his sense of guilt The person with a flair for order and system continually surveys his conduct and is to that extent imposing restrictions on himself and denying himself the pleasure of spontaneous activity Compulsive cleanliness or avoidance of disease, dangerous tools or crowds tend to restrict the person and shut him off from areas of life and in this way can be seen to represent a form of self-punishment The compulsive symptom, on the other hand, may be an attempt to ward off misfortune or punishment by precautionary measures and defensive struggles against them The man, for instance, who is obsessional in the avoidance of draughts or exposing himself to inclement weather, or who is phobic in avoiding contacts that might carry infection is attempting to protect himself against self-punishment tendencies, but in so doing, he is limiting himself in other directions By thus turning the aggression on the self, that is, on the introjected object, a person is permitted to continue to love the real object. It is for this reason that compulsive individuals seldom have suicidal tendencies, their aggressiveness is drained off by way of the compulsive system, which permits them to make peace with the self

Guilt in Paranoia. When the conflict becomes still more intense, there is a tendency to project the guilt onto others, and when these projective tendencies become exaggerated and unreal, paranoic tendencies result For instance, when guilt is extreme and is taken care of by ascribing hostile tendencies to others which they do not actually feel or express, there arises a delusion of persecution which, when pronounced, will lead to schizoid tendencies so that the individual becomes withdrawn from the reality of the situation

Guilt in Depression—Melancholia. As Freud [284] and Abraham [11, pp 418-480] have so clearly pointed out, depression which follows a loss,

whether of a person or some other loved object, represents the turning in on the self of unconscious hostile tendencies that have been felt toward that person. This self-aggression, when the loss of the loved one and the feeling of abandonment is real, may become intense and lead to the characteristic forms of depression and melancholia The reproaches directed toward the self are those forms of punishment which stemmed originally from the parents and which have now been introjected and turned inward, and they also represent tendencies of hate which, unconsciously directed toward the lost person, are now taken back and turned against the self

Guilt in Manic-Depressive Psychosis. In the manic-depressive psychosis the depressive phase corresponds to the self-punishment, which is the turning in on the self of aggressive tendencies that have become too dangerous to express outwardly So the man who is not outwardly aggressive may be the one most depressed This self-punishment, however, serves as its own corrective, and as the guilt is reduced, there is a swing to the manic phase of the psychotic disorder In this phase the previous depression itself is absolved from guilt and is permission for a more excited and aggressive form of behavior As this stage rises, however, it brings with it increasing guilt, and eventually the cycle returns to the need for self-punishment, and the depression reoccurs This cycle of spontaneous, excitable aggressive behavior, to be followed by moody depressed behavior, is seen in many normal individuals in a less pronounced form Indeed, these alternations of mood are fairly characteristic of adolescents and point to the heightened drives and guilt reactions during this stormy period

Guilt in Schizophrenia. The way in which the projection and guilt tendencies can cause a person to withdraw from reality and give himself over to unrestrained fantasy, has already been pointed out in the brief description of paranoic tendencies When the individual has stronger conflicts than he can manage, efforts to dissolve guilt through reparation can also depart from reality The individual with megalomanic tendencies or with delusions of grandeur may be attempting to redeem himself for his hostile tendencies, and may be trying to buy the love and praise of the whole world

GUILT AND CRIMINAL TENDENCIES

Mention has already been made of criminal tendencies as a form of self-punishment, but it should be recognized that not all crime is necessarily a response to guilt Many criminals are psychopathic and fail to meet society's standards because of a lack of, or a faulty superego However, there is a kind of neurotic criminal who seeks punishment in order to rid himself of guilt by means of the criminal act The same tendencies causing a little child to be naughty in order to incur punishment which he deserves, to test his endurance, and to reassure himself that his parents

will not destroy him, may also be found in the adult criminal who is seeking similar punishment from the hands of society.

GUILT AND RELIGION

The reader will probably already have noticed many times in this description a parallel between methods taken to reduce guilt and various religious forms and ceremonies Religion is one of the institutions which man has developed in order to help him take care of his overpowering sense of guilt, and to enable him to live at peace with himself In the Christian religion, for instance, the activities of confession and repentance play a prominent rôle. The story of Christ, who borrowed guilt from others and sacrificed himself to atone for their guilt, is well known The communion service of the Christian church is a definite attempt to achieve at-one-ness (atonement) with God and also to emphasize the sense of belonging to the church community

Religion is one of the antidotes against feelings of inferiority By aligning oneself with the church one is a member of a huge family. The church makes each one of its members feel that he is important in the sight of God, and that his membership and allegiance set him apart as one of the chosen He is altogether worthy Since the church stands for all things that are good, the individual who gives his allegiance to the church partakes of the worthiness and sense of self-esteem that the church carries with it.

VALUES OF GUILT

Guilt has both its positive and negative values. It may seem strange to ascribe any positive values to such a distressing emotion However, it is through the fiery furnace of guilt that some of the finest human values are derived.

Negative Values of Guilt. The most obvious negative value of guilt is the intolerable distress that it causes, driving people to unfortunate extremes to rid themselves of it Insofar as guilt leads to some form of self-punishment, it restricts and harms the self To this extent, then, it prevents the self from deriving full enjoyment of life The man who brings on himself misfortune, poor health, failure, self-denial, or martyrdom is failing to find the maximum enjoyment of life

Positive Values of Guilt. In the first place, guilt should be recognized as an important motivating force for morality and civilized culture One frequently hears religious persons bemoaning the fact that religion has lost its grip in modern times, thereby threatening the moral foundations of society Religion, however, is only an expression of guilt and a method of resolving it Guilt is as strong today as it has ever been One must depend on the family and the standards and moral ideals of parents as the fundamental bulwark of our culture. So guilt serves an essential function which cannot be dispensed with in present-day life.

Civilization with its restraints implies a certain degree of self-aggression All inhibition of natural impulses, in a sense, means that a certain amount of aggression, normally directed outward toward others, has been turned inward on the self Inhibition, to the extent that pleasure has been choked off, is a form of self-punishment. While we may decry the fact that self-punishment restrains and restricts the full enjoyment of life, we believe that this is necessary in order to live together in civilized peace and harmony. Those who have given consideration to what can be done to reduce the destructive forms of aggression now running rampant in the world, believe that part of them must be absorbed through the controls of self-aggression

It should also be recognized that guilt can never be wholly avoided. Parents can go to whatever extreme they wish to avoid censure, blame, criticism or punishment, they can give a child free rein to self-expression and place on him a minimum of restriction Even so this child will have guilt, in fact, more guilt than the normal child.

Most important of all is the fact that on the foundation of guilt are built some of the most valuable of human characteristics The mechanism of sublimation develops on this foundation. In Chapter XXIII we shall see that love in its most fully developed form is based on dissatisfaction with the self and the desire to find another person who will supplement the self which feels so inadequate. Reparation and all other constructive activities apparently depend on a primary guilt for which amends must be made So the highest achievements of man find as their fundamental motivating force the desire to make amends for early inadequacies. It is the striving to overcome infancy, weakness, and failure that gives man the driving power to mount to successful achievement.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS OF GUILT

In the last section it was pointed out that there are certain positive values to guilt, nevertheless the development of guilt should not be an educational aim Guilt is altogether too easily stimulated, and it can too easily rise to uncomfortable and uncontrollable heights However, in mild amounts, it undoubtedly serves as a stimulus for learning and for the taking on of constructive activities. Education has a great deal to learn about the methods of stimulating that exact amount.

Damaging guilt arises from extremes of parental control and discipline, and, as we have seen, from weak, submissive control as well So the reduction of guilt depends in large measure on the nature of the parent-child relationship

It was pointed out above that a certain modicum of guilt was necessary to uphold moral standards of the community. However, periodically these standards take extreme directions and put too much stress on the controlling mechanisms of human beings. While a certain amount of regulation is necessary to civilized life, the tendency to regulate must be kept in

constant check By and large, the individual who has been made to build a strong superego and guilt tendencies when young, is a candidate for neuroticism in later life.

THERAPY OF GUILT

Guilt can be reduced, as we have seen, by the individual himself through self-punishment and reparation activities. However, modern psychotherapeutic methods attempt to reduce the conflict between the ego and the superego more directly by bringing these conflicting tendencies into the full awareness of the individual so that he can reconcile them and exercise a certain amount of conscious control and direction. Self-punishing tendencies are reduced therapeutically by encouraging the subject to turn his aggression outward onto others, particularly the therapist who is equipped to handle it and help the patient displace it more constructively and appropriately.

Ordinarily in psychotherapy, one goes slowly in uncovering guilt in deliberate and easy stages, because of the distress accompanying the anxiety when it is aroused However, there are times during the therapeutic process when the resistances are so stubborn that progress seems to be permanently blocked. In these instances, some psychoanalysts believe that they are justified in mobilizing the sense of guilt by active prohibitions, commands, and the like, so that it may come more directly to consciousness and thereby be better understood and dealt with. However, the mobilizing of guilt by these direct methods is only too easily accomplished and when attempted too early in therapeutic process, such large amounts of anxiety arise that the individual would either be driven to break off the process, or his resistances would be in that same degree raised against it Consequently, these direct methods of arousing guilt in the process of psychotherapy should only be attempted after the transference has been firmly established, and the therapist is able to use restraint in his techniques

One might question why an individual would ever undertake a process of therapy if he has other means through self-punishment and reparation for reducing guilt. It is because the suffering in the self-punishment itself becomes so intolerable that one is driven to find some way of avoiding it. It is the suffering of self-punishment that supplies the motivation and the energy for carrying through with a process of psychotherapy To the extent that the values of the self-punishment in reducing the guilt outweigh the torture and misery thus self-inflicted, the individual will lack the motivation to carry through the therapy, and this is the explanation of the so-called negative therapeutic reaction which causes individuals to break off a program of treatment before it is completed.

XVII

Sublimation

Sublimation is the one mechanism which comes closest to the affairs of everyday life Consequently it is the mechanism which has been subject to the most vigorous and persistent attacks from academic psychologists and has been one part of psychoanalytic theory held up to ridicule most frequently However, it occupies a place along with the other mechanisms, describing one way in which a person manages his primitive tendencies and impulses Whatever one may think of sublimation as a theoretical concept, there is no doubt that a better understanding of the possible underlying motivation of much of daily activity in the workaday world, whether in terms of sublimation or not, will prove of help in interpreting behavior

DEFINITION

Sublimation is the adoption of behavior or feelings which are a substitute for the original or natural expression of an impulse or wish, and which are at the same time harmonious with the native impulse or wish and socially acceptable Since it is thus acceptable in the world of reality, sublimation has been spoken of as a highly valuable mechanism, a kind of adjustment extolled as altogether laudable and commendable Because sublimation is a substitute of one form of response for another, it is a form of displacement.

Many games, such as football, would represent a sublimation of the tendency to strike and kill. Putting oneself forward, in occupying a prominent place in a group, speaking loud and forcibly, or wearing sporty and ostentatious clothes, may be a sublimation of a more primitive tendency to display the naked body.

FUNDAMENTAL CONSIDERATIONS

Comparison with Repression. Sublimation has been contrasted with repression as a method of managing forbidden or unacceptable impulses. Repression crushes these impulses and forbids their actual or direct expression Part of the energy released is piled up and escapes in roundabout ways through symptoms, fantasy, or reaction formation. Sublimation, on the other hand, is the way of giving these impulses, whose

primitive and natural expression is unacceptable in civilized life, an alternate yet acceptable outlet and mode of expression.

Sublimation is a form of expression which implies both the presence and absence of repression Since the natural or primitive form of expression is unconscious, the person who has adopted a sublimated outlet is unaware that a more natural form of expression is repressed, in fact he would probably resent as ridiculous any such suggestion. For this reason sublimation as a mechanism has been severely criticized.

Motivation. Motivation to sublimation is similar to that of a number of other symptomatic forms of behavior. Sublimation is set into action when there are obstacles to the direct gratification of impulses which prevent the primitive forms of expression. Typically there are interferences by another person, presumably, in infancy, the mother or father This is accomplished by threats or ridicule and even punishment. For instance, parents will usually make the processes of defecation and urination seem repulsive and dirty and will attempt to establish habits of cleanliness and order to bend the growing child to their ways Later the child finds that the domination and restraints by the parents are seconded and reinforced by general social taboos He finds that society in the shape of schoolmates, police, in fact all our social institutions, expects certain standards of behavior and does not tolerate certain forms of expression. The little child, for instance, soon learns that certain things he can talk about freely with his mother when he is going to bed are not acceptable at the dining table when company is present Later he may sublimate this desire to refer to some of these prohibited taboos by telling obscene stories or jokes which have a racy implication.

Sublimation may also be an expression of narcissistic tendencies. Insofar as one's impulses are turned inward so that whatever he does is for himself and is a form of self-love, they are called narcissistic Self-love, however, undergoes modification as one grows older, becoming concerned less with sexual and bodily satisfactions and more with one's place in the social group Narcissism goes through a process of idealization which is at the same time a process of sublimation. Ideals for the self can also become ideals for better social service, scientific discovery, or executive leadership It is possible for self-love to become idealized and socialized and to lose its more primitive sensual and emotional qualities

Sublimation may also be motivated by superego or introjected interference with the direct and natural expression of impulses Not only does one have to contend with prohibitions from without, but the time comes when one has built up his own standards of what is right or wrong, clean or unclean, acceptable or unacceptable, and must shape his behavior to these standards From this it may be seen that a child growing up toward puberty does not need the constant domination of his parents but has already taken into himself, sometimes with terrifying force, his own set of prohibitions. These prohibitions may be maintained by adopt-

ing substitute forms of expression, which may also be recognized as sublimations.

Develops in an Atmosphere of Security. Sublimation develops best in an atmosphere of security The child who readily adopts sublimation is a child who is accepted by his parents and is given the warmth and affection that leads to personal and emotional security The child who is accepted, therefore, dares to experiment with people and things in the real world, and thereby finds substitutes for the kinds of expression which are suppressed Severe rejection or intimidation or punishment in suppressing activities is not likely to be a fertile condition for the development of acceptable sublimations. If tendencies that are thwarted, either from without or from within, are to be sublimated, they must not be too intense, otherwise there will be reaction formation or symptom formation Reaction formations or symptom formations in many cases are the result of "traumatic" experiences, such as a severe whipping or even scolding It is probably true that sublimations will not follow readily when the suppression is traumatic, for in such cases the inhibition is too intense and tends to spread to any form of related or cognate activity It has also been suggested that excessive indulgence in infantile sexuality probably hinders sublimation Where the infant has been overstimulated sexually or there has been seduction, the impulses aroused are probably too intense, and the need for direct gratification too severe, to permit the release by substitute sublimated activities

Sublimation requires a certain freedom on the part of the individual—freedom from external pressure or requirement and also from the compulsiveness of his own demanding superego The child who studies because he is afraid he will be punished or will lose his mother's love if he does not, is not sublimating, neither is the child who is driven to study to placate his own demanding superego Sublimation implies spontaneity and freedom to enlarge and unfold the ego

A Function of the Ego. Sublimation is essentially a function of the ego or personality and is not merely concerned with the satisfaction of an isolated drive It represents the child's contact with reality It enables him to use his higher mental processes to the limit of their capacity. It favors the application of intelligence to the problems which the person meets Insofar as it requires intelligence it is a conscious process, but the individual may not be aware of its use as a defense against more primitive expressions of the impulse Sublimation, therefore, serves as a partial explanation for the normal activities in which a person engages

A Mechanism of Early Childhood. Sublimation is a mechanism of early childhood. It appears in most pronounced fashion between the ages of five and twelve, the so-called latent period It is in this period that the original impulses, particularly those of a sexual nature, have been finally successfully suppressed, and the child for whom the repression is successful is launched out into his exploration and management of the

world about him It is probable that the major sublimations which a person adopts begin in childhood Later sublimations are to a large extent only repetitions of the patterns which were laid down in the first sublimations following the period of infancy. One commonly sees sublimations taking on form in adolescence It is at that time that the growing boy or girl finds meaning in art and science, in sports, in religion and social service, but it is probable that these are only the blossoming of trends which were laid down several years before.

Made Possible by Identification. The kind of sublimation adopted is undoubtedly preceded and made possible by identification This again is a common observation Children slowly adopt patterns of behavior which others around them whom they admire provide as models The kinds of sublimations adopted are determined by the patterns of behavior found in the home and in the school Parents and teachers should recognize that their own sublimations are going to be adopted by their children and pupils without their having to make these the object of direct instruction

Related to Choice of Occupation. Sublimations play an important part in determining the choice of one's profession or employment One's occupation ought to provide him with experience which not only helps him earn a living and gives him the necessities of food and shelter, but ought also to permit him the exercise of some creative faculty, which in itself would have the manner of a sublimation. The teacher, for instance, is a person who may have sublimated her desire for children of her own in her work with children for whom she is responsible as a teacher The butcher may have selected an occupation which gives him an opportunity of expressing his unreleased aggressive or sadistic tendencies One could go through each occupation and list the pleasures it provides which represent the satisfaction of basic needs whose original expression has been diverted

Sex Differences in Sublimation. It has been said that in our culture sublimation is a mechanism found more widely among men than among women. What this means, of course, is that men enter into sports and business in a much more general and whole-hearted way than women It has sometimes been said that women do not put their hearts into a profession and that their real interest is in establishing a home of their own It is possible that women have less need to sublimate because their sexual drives can be, and are, expressed in the primitively satisfying and yet socially acceptable act of motherhood which has no parallel in the activities of men Jung is reported to have said, "I cannot understand how any woman who has experienced motherhood can become neurotic!" (A woman whose aggressive drives arouse conflict may become neurotic.) Certainly today women do undertake careers in art or science, in business or professions, much more enthusiastically and whole-heartedly than was true a generation ago. This may be associated with the decreasing fre-

quency of child-bearing. With the relaxation of social restrictions applying to women it has been found that the capacity to sublimate is not so different from that of men as was once supposed

Sublimation a Protection Against Guilt. E Glover [317] in a significant paper pointed out how sublimations can frequently serve as a façade or protection against the sense of guilt and anxiety which some of these early aggressive impulses and fantasies leave behind them. Sublimations, because of their social value and the fact that many times the work a person undertakes is socially appreciated, tend to allay the sense of guilt and anxiety which earlier destructive and aggressive impulses have left behind as a residue In addition, sublimations because of their rightness and social acceptability tend to build up a wall of immunity from investigation A person protects himself by his adoption of a basal system of values They may be the canons and forms in art, the laws and generalizations in science, or a system of moral values which a person holds immutable and perfect So long as he holds these set values up before him as a screen he is safe from all the tormenting impulses and traits which he has carried with him from infancy and childhood but put away into the unconscious Such a person is unapproachable Arguments are of no avail; he apparently stands firm In one way this is an adequate form of adjustment, and persons who have so ordered their lives are in equilibrium However, they are not immune to the gusts and storms of life, and if there is a broad social change there may be a wrench to their adjustment Such persons are difficult to counsel in case they pass through a difficult time and need assistance in weathering the storm The façade of accepted values prevents one from reaching below to touch and resolve the conflicts

But if anxiety and guilt are too strong, the impulse to restore is blocked because it is necessary to use more repressive and distorting mechanisms of defense to deal with the internal forces which threaten Consequently sublimation can serve to allay guilt only when it is mild

Glover also compares sublimations to obsessions He speaks of sublimations as being dispersed and socially approved obsessional techniques. The research worker, the statistician, the efficiency expert, the experimental scientist, are all persons who have a flair for order and system and for extreme accuracy in counting and tabulating These would be recognized as obsessional were it not that they have social value, and consequently the obsessional side is overlooked and excused Indeed Glover goes so far as to compare sublimation to phobia, speaking of it as an extended and successful phobia Just as a phobia displaces the real impulse or wish and disguises it as a fear which, to be sure, is related by association to the situation in which the impulse would normally be acted out, so a sublimation is a displacement of the object or outcome of an impulse or wish, which, however, is extended over whole areas of life and enables a person to use this mechanism in his social adjustment.

Sublimations as Disguised Object Relationships. Chassell [136] points out in addition that sublimations may be the disguised form of object relationship The boy, for instance, who has had erotic feelings toward his mother but has put them away in favor of a comradeship and friendship may use sublimations as a form of contact and relationship He may feel it difficult, if not impossible, to show affection directly, but finds satisfactory contact in shared activities and in conversation. He may practice the piano, for instance, with his mother at his side.

FORMS OF SUBLIMATION

It may be of help to list categorically some of the more important forms of sublimation Friendship as contrasted with erotic and sexual love is recognized as an important sublimation In this sense social experiences such as play, picnics, church gatherings, work or visits may be thought of as sublimations of earlier childhood erotic tendencies. These all stem from the sublimation of sexual feelings toward the mother or father which turn into tender and comradely feelings Social service in its various forms as well as civic activities may be considered as sublimations, even extending the more immediate and direct friendly interests Art in its various forms, both expressive and receptive, is an important form of sublimation Science in the form of experimentation or in its applications to constructive work belongs to the list and is prominent particularly in boys during adolescence As previously noted, an important kind of sublimation is found in one's occupation or work, perhaps even more strikingly in one's hobby or avocation Religion occupies a prominent place in the sublimations of adolescence. The thrill over, and communion with, nature, as exemplified in such geniuses as Thoreau and Burroughs, represent a sublimation of erotic desire. Finally, some of the aggressive impulses are sublimated through sports and games

A considerable part of sublimation is expressed through symbolism. Religion uses symbolism to represent some of the deeper impulses to which it gives expression Symbols are a common feature of art products The symbol gives token recognition of the need and a token representation of its satisfaction. Even the memento can elicit a mild replica of the more intense experience for which it stands

TENDENCIES WHICH ARE SUBLIMATED

Practically every original impulse may be found in later life in sublimated form The nature and direction of some of these sublimations will be mentioned in the following discussion

Oral Tendencies. Oral tendencies, that is taking in and incorporating in the personality, may be seen in later tendencies toward acquisitiveness and greed One speaks of taking in music or new ideas or of devouring books or of absorbing a new field of study. A large portion of formal edu-

cation represents this act of taking in knowledge. Some persons have an insatiable curiosity for all kinds of facts even far beyond their practical value This tendency toward acquisitiveness may become a general character trait which can have social value when it leads to thrift but antisocial significance when it leads to hoarding According to the theory of sublimation, however, these activities all stem out of the original nursing activities in earliest infancy which not only lead to obvious activities of eating but to these other personality trends by which new interests and activities are taken in.

Knowing is also a form of sustenance. One takes in or incorporates by the act of knowing as one takes in food, so that the act of learning or knowing may be thought of as a sublimation of early oral activities Liss [520] has pointed out the possibility that difficulties in learning in school may be related to early difficulties in feeding So the child with a "thirst" for knowledge may be sublimating the thirst for mother's milk which was never satisfied in the first months of life

Aggression. Aggressive impulses also have their sublimations This concept of sublimation of aggression is one loaded with great social importance The world at this time is in great need of a sublimation of aggressive impulses to serve as a substitute for war and brutality Many years ago William James [403] wrote an essay on the moral equivalent of war, a concept which attracted immediate attention and has been a vague goal of social planners ever since As a matter of fact, it would seem as though it is relatively difficult to sublimate the aims of aggression, at least much more difficult than the aims of the various components of sexual behavior Aggression apparently sets up tensions which demand more immediate release than the tensions connected with sex[1] Consequently the sublimations of aggression are more difficult to incorporate into a social plan Sublimation of aggression is relative. Terms of aggression are taken over by the photograph devotee to indicate his feelings—a picture is called a "shot." Instead of killing the wild animal one may take photographs of it One may sublimate his hostile tendencies in the direction of social reform and war against the social evils Many years ago Southard [760] wrote a book called *The Kingdom of Evils*, and spoke of man's organized attempts to combat ignorance, crime, vice, disease, and poverty Many persons have devoted their lives in an aggressive way toward combating these evils Menninger [577, p 424] in a discussion of Southard's list would add to these evils, ugliness and aggression, itself. With so much of the world turning to war as a way of gaining other satisfactions, it would seem as though there is no more important kind of fight to be waged today than that against aggression itself

1 At this point it may be noted that sex impulses are not wholly separated from the aggressive impulses Indeed Riviere, in M Klein and J Riviere, *Love, Hate and Reparation* [462], make the point that sex is feared so strongly because in infancy its first expression is linked with aggression.

Games and sports form a very wholesome socially acceptable sublimation for aggression We see this in spectacular form in college football games in which eleven men will pit themselves against eleven other men for an afternoon and a huge crowd looks on with empathic enjoyment. One can gain equal aggressive satisfaction not only in active games and sports such as boxing or wrestling but in bridge or chess, or even slapjack or old maid Those working with maladjusted children who have need for releasing their repressed aggressions find that games provide this opportunity very successfully [2] Some can meet their aggressive needs through mountain-climbing Politics and competitive business are sublimative outlets for aggressive tendencies for many men

A large number of occupations contain an element of aggressiveness which enable a man to sublimate his conflicts in socially approved ways Salesmanship in its various forms has a distinctly aggressive element. The business executive is a man who enters with zest into competition More sadistic trends can be sublimated in a number of occupations, by the butcher in a very obvious but social way, by the surgeon and barber in a more refined but equally obvious manner The variety of ways in which aggression is sublimated is legion, laughter, even when it is directed toward another person's mistakes and misfortunes, is a socially acceptable expression of aggression In this connection it might be worth mentioning that certain occupations quite obviously are restitutive in nature, possibly to make amends for aggressive fantasies over which guilt is felt The nurse, for instance, is concerned with helping The masseuse combines vigorous bodily manipulation, punching, kneading, and knocking with the intent of correcting strains, displacements, and tensions. Even the teacher, a person with a protective aim, in many cases obviously finds in her work a restitutive significance This is particularly obvious in those persons who have positions in guidance in education and who have as their function helping young persons either avoid trouble or escape it The social worker attempts to patch up some of the evils of the present social order and the psychological conflicts resulting therefrom. One even sees this tendency toward restitution in those statesmen who lend their services to weak and helpless nations and who propose giving them assistance in times of crisis.

Sublimation of Anal Tendencies. The impulse to retain shows itself most clearly in character traits of parsimony, niggardliness, and saving. We all know persons who wish to save all sorts of things and find it difficult to throw away string, empty boxes, old newspapers, and the like Some persons have much more difficulty in passing out pennies, nickels,

[2] One teacher contributed the following "A pupil of mine was so exasperatingly full of mischief that, at the end of the day, I was worn out In seeking some means of sublimating this impulse, I hit upon dramatics My classes were constantly engaged in dramatizing, and there were many 'chores' to be done in connection with preparing for the performances Marjorie, the mischief-maker, put the same energy into helping make the dramatic presentations a success as she did into her trying escapades"

and dimes than in writing checks Others may have difficulty in giving or lending books, their time, and food

In the anal sphere one sees the beginning of scientific collections and the need to arrange, classify, tabulate, count, and carry through the many processes which belong to the scientific method The first of these is an outgrowth of the tendency toward retention, the second an outgrowth of the tendency to be clean and orderly, in reality more of a reaction formation than a sublimation

Sublimation of Urethral Impulses. Impulses to urinate or to show prowess by the force of urination may lead in later years, if these pleasures have not been completely worked through in infancy but are repressed, to a predilection for playing with water or to a "burning" ambition Unsatisfied curiosity with regard to the urinary process in self or parents may give rise to an interest in or fascination for tubes, conduits, hydraulics, or electricity, and such interests have actually been traced back in psychoanalysis to these unsatisfied curiosities.

Sublimation of Erotic Tendencies. Erotic tendencies supply the most obvious and at the same time most spectacular illustrations of sublimation. At the time of the Oedipus complex which comes when boys are around the ages of four and five, there are marked erotic feelings toward the mother Later, however, these are suppressed, and in their place one finds tender feelings later recognized as sentiment These tender or sentimental feelings remain strong throughout life A widespread observance of Mother's Day is testimony of this sublimation In place of physical expressions of sex there will be sublimated forms of handshaking, slapping on the back, embracing, kissing the hand These all are forms of personal contact which are permitted in ordinary friendly relationships representing the husk of a more intense sexual response The fires of sexual ardor may burn out, but friendships and marriages based on a community of interests have enduring qualities because they encompass larger segments of life so that they can resist the ravages of time

Many occupations represent sublimations of these erotic tendencies Practically every occupation that brings people into friendly relationships may serve this purpose Social service, teaching, the ministry, and medicine, in fact practically all the professions are those in which strong social relationships are expected but on a strictly impersonal or friendship basis There is a barrier over which one is not expected to step in a professional relationship which marks it off from one with a definitely erotic or sexual significance. Much of religion is a sublimation of the erotic tendencies Religious worship represents a satisfying yet sublimated expression of love and reverence Veneration of the Virgin may carry with it a wealth of feeling which substitutes in a very real and helpful way for a more immediate experience in real life.

Sublimation of the Desire to Procreate. Along the same lines, the desire to procreate finds many sublimated outlets On the side of the male the

desire to procreate a child may be sublimated to producing some artistic creation, either a painting or a piece of sculpture, or it may be directed into engineering, leading to the construction of a building or a bridge or a parkway, as illustrated in such expressions as "my brain child" or "the child of my fancy" The desire to procreate may go in the direction of writing and producing a book. Many parents, particularly those with scholastic interests, will announce the birth of a son as though it were the bringing out of a new book, giving date of publication, name of author, and publisher in mock play on the actual birth of the child itself. Almost any kind of productive work may carry with it the significance of sowing seed or conceiving some production. As a feminine act, giving birth to a child may be sublimated in any kind of production. Many occupations permit women to care for children, notably that of teaching. The maiden aunt who lives with brother or sister and occupies the place of nurse-maid in the family is sublimating her repressed needs for child-bearing

Sublimation of the Tendency to Peek. Another component of sexual life in the infant is the tendency to see or peek The meaning of this is the child's curiosity to know not only what his own body is like but what the bodies of parents and siblings are like This curiosity is concerned with the origins of life, the difference between the sexes, and his need for orienting himself into the social world in which he is growing up This impulse to be curious shows itself at about the age of four in innumerable questions. Parents can be fairly certain that at that time their children will ask them questions about the origin of life when the sublimating process begins, and the children not only wish to assure themselves concerning their own status and security but spread their curiosity to include the sun, moon, and stars, thunder and lightning, and the whys and wherefores of natural phenomena about them. This may lead to exploration, to scientific curiosity and research, and to interest in people and their affairs which may later be expressed in the writing of novels or in various forms of social service. The tendency to be curious is one which is the foundation for much of the work in school, and the sublimating of the tendencies to peek which are at work during the elementary-school period can be depended upon to create the impetus for higher education

Sublimation of the Tendency to Exhibit the Body. Still another component of the sexual in infancy is the impulse to exhibit the naked body Particularly in boys this may be a desire to show their prowess and enable them in fantasy to compete with those who are older and stronger than they. Later on of course there is reaction formation against this first crude form of exhibitionism, leading to modesty and shame. This tendency is sublimated by seeking notoriety, putting oneself in prominent positions and taking the lead in public gatherings. Another form of sublimation is through exaggerated dress This is the form that sublima-

tion takes so often with women with whom the sense of modesty is strong and yet who will take delight in clothing the body in striking dress Artistic talents are lavished on the design of women's costume Men's dress has become to a degree standardized since the advent of the democratic tradition, so that men must seek sublimations of the tendency to exhibit themselves in other ways. It is possible that with the growing stratification of society man is returning to a more colorful and less standardized costume as a way of sublimating his exhibitionistic impulses Public speaking is a noteworthy mode of sublimation of the tendency to exhibit oneself publicly, and one can note this same sublimation even in private conversation in the person who has a great need to put himself across and occupy the limelight

Sublimation of Homosexual Tendencies. Homosexuality can be sublimated just as can the more normal tendencies of heterosexual love Admiration of great men may represent the sublimation of homosexual trends Tolstoi in *War and Peace* describes how young Rostov thrilled to the sight of the Russian emperor "When the Tsar was only twenty paces away, Nikolay saw clearly in every detail the handsome, young, and happy face of the Emperor, he experienced a feeling of tenderness and ecstasy such as he had never known before Everything in the Tsar—every feature, every movement—seemed to him full of charm." [8] About this Freud [271, p 243] says, "It is well known that a good number of homosexual persons are distinguished by a special development of the social instincts and by a devotion to the interests of the community"

ART AS A SUBLIMATION

By way of recapitulation some comments will be made on art as a form of sublimation Primitively art makes use of the same processes of smearing or molding that are found to play so important a part in anal tendencies in infancy. Sculpture is the final stage in the process of molding which is seen in earlier childhood in play with mud, clay, putty, or plasticine Painting is a laying on of pigment in two dimensions The tendency to construct, which may be thought of in part as a sublimation of these same tendencies, may be seen in wood carving, in carpentry, in photography and cooking, and in combination with other trends in architecture and engineering design

The erotic component is clearly seen in all forms of art Music and poetry have their lyric passages The artist and sculptor are fond of depicting the human body with all of its sensuous qualities The dance especially is recognized as having an important erotic element in rhythm and touch

This constructive side of man's nature which runs very deep is an externalization of an internal image Where this internal image comes

[8] Nikolaevich Tolstoi, *War and Peace* (New York, Random House, Inc., Modern Library edition), p 225

from must be in part a matter of surmise, but it is reasonable to suppose that it originates in the process of incorporation or introjection of parental and other moods in early infancy, which are elaborated in fantasy and then finally seek expression in outward form, possibly as an art product in later life. We are also told by psychoanalysts that this tendency to create or construct must be contrasted with the destructive tendency during the process of introjection. The introjected object, whether it be the fantasy father or mother or some other early figure, is destroyed in hate, so that this process of projecting the incorporated object out into external reality is at the same time an act of restitution. The urge to create an art product, whether it be poetry or music, painting or sculpture, is the urge to do reparation for, and restore, the incorporated object for which guilt is felt. It is for this reason perhaps that man's finest and highest ideals have been translated into works of art which are today considered civilization's most priceless products. When big cities are threatened with bombing from the air, the first things removed for protection in bombproof cellars or in outlying districts are the works of art in museums.

Finally, in the institution of art in present-day society there are the critics who review, describe, discuss, and analyze art products. This provides a sublimated outlet for aggressive impulses both for the critics themselves and for those who read what the critics write.

SCIENCE AS A SUBLIMATION

As a further summary, we may consider the explanation of science as a sublimation. Both art and science have much in common. They are externalizations of internal impulses and images. Whereas art is a matter of doing, science is a matter of knowing. Science grows out of primitive curiosity. It is possibly a sublimation of early trends to peek and peer in and through in order to see forbidden acts and objects. This curiosity begins with the first stirrings of intellectual life in the form of curiosity into the origin of the self and exploration of the body and an attempt to understand how men and women, boys and girls are alike and different. Out of this grows naturally study of the body in biology, and further in zoology, and botany. The high-school student interested in biology can be thought of as sublimating this earlier curiosity which was never completely satisfied. In a different direction curiosity may be directed to an understanding of the universe, the sun and moon, the planets and stars, eclipses and earthquakes, and all the cosmic phenomena and forces. These interests again go back to curiosity about the origins of life and an attempt to understand human relationships. In order to comprehend how an infant transfers his curiosity and fears with regard to himself and his relations to others to these cosmic matters, one must understand that the infant has no understanding at all of distances or of the relative significance of these bodies of light which move about

him in the sky. At first they are confused with people, who also move, and in fantasy the little child transfers some of his curiosities and fears to these strange out-of-reach objects which he cannot understand

Science also has its creative side The scientist is interested in building up his theories, his laws, his generalizations and in putting them in ordered form for students to comprehend, he is attempting to put together the chaotic universe about him and to classify it and arrange it in a system of orderly laws Just as the artist wants to put his aspirations into external form as a restitution for his own disordered and broken introjected images, so the scientist wishes to do reparation by his knowledge of the world of nature for the disordered and broken images which are the form of his early introjected objects The child's early introjections are huge, terrifying, and overwhelming Through knowledge he hopes to master these overwhelming images by turning them into orderly creations

WORK AS SUBLIMATION

Numerous examples of how various occupations possess sublimation values have been given in previous sections One may wonder why work is sometimes considered an evil Menninger [579] suggests that it is because it represents an unintrojected activity and hence arouses antagonism to authority. When the work has been introjected it becomes an end in itself and acquires positive values During the recent depression work was called a "right of man" and instead of being despised was considered one of the supreme values But resistance to work can be one way in which resistance to authority is expressed Menninger also asserts that work, in order to be pleasurable, must have an erotic component

VALUES

Positive Values By definition sublimation has social value, which may be divided into utility value, play value, and esthetic value, each of which has been amply illustrated in the foregoing discussion Sublimations are legitimate activities as contrasted with the forms of expression they replace Sublimation directs the individual's attention and energies to the environment and helps him produce changes in it When a sublimation fails in its social acceptability, as happens occasionally, we give it the term *eccentric* Even then it is possible to distinguish between unacceptable forms of experience, which are bad, dirty, dishonorable, repulsive, and the sublimations that take their places, which, even if they are not wholly socially acceptable, are recognized as amusing or just plain queer This frequently happens with sublimations which lose their social significance or are carried to extremes. Collections, for instance, as when a child collects stamps or shells or pictures, are recognized as a form of sublimation of obsessional tendencies If, however, the collection has no social value and is carried to an extreme, it is still recognized as a

sublimation, although it has lost its capacity to excite admiration.

That social acceptability is not an invariable characteristic of sublimation, however, is indicated by the difficulty in reconciling the two in many recognized instances of sublimation Could delinquency be considered a sublimation? Certainly delinquency is not socially acceptable, yet it represents a deviation from, and partial substitution for, more primitive forms of aggression. And what shall be said of war, which is both a socially approved and condemned form of aggression, a sophisticated substitution for primitive aggression and yet a return to its most barbaric form?

Money-Kyrle [589] once suggested that the essence of a sublimation is that it is overdetermined, that is, that it is an act that serves (or partially serves) two or more needs and therefore forms a reinforcement which is absent in the partial satisfaction of either need alone In this sense, sublimation resembles the mechanism of compromise, to be discussed in the chapter, "Miscellaneous Mechanisms" Overdetermination and compromise cannot be taken as the sole criteria of what constitutes sublimation, especially when it is recognized that one of the needs served is the establishment of ego prestige, which may be accomplished (but not exclusively) by doing something that is socially acceptable In the light of this discussion one might redefine sublimation as that act which satisfies both some primitive need and ego prestige The second requirement (ego prestige) would always be met by social acceptability, but it could also be met by the approval of a small sub-group of society (as in a group of criminals) or temporary approval in cases of emergency (as in a nation at war) [232].

The definition of sublimation in terms of overdetermination, one element of which shall be the enhancement of ego prestige, eliminates one criticism of the usual definition of sublimation which implies a value judgment and gives it a moral significance.

The Intrinsic Value of Sublimation One suggestion which has some value is that sublimations represent those activities which have acquired intrinsic values of their own Originally most activities served as means toward ends The various components of sexual behavior are known as foresatisfiers. But if some of these foresatisfiers acquire independent values and interests of their own, without requiring that they serve only as stimulants of further stages of sexual behavior, then they may be classed as sublimations All activities which are of the nature of play—to be enjoyed for their own sake—would be classed as sublimations according to this concept This concept, however, must be considered as only one aspect of sublimation.

There is some doubt whether it is wise to push the generalization that all forms of art and science, work and play are sublimations It would be possible to argue that any form of activity which fills a need in a person's life in the sense that it is adopted by him voluntarily and is

actually sought out as an interest is a sublimation. Perhaps it is not necessary to push this point to its extreme formulation and attempt to make the generalization universal, but only to insist for the time being that many forms of activity which do satisfy unconscious needs are sublimations However, it is a fascinating thought that every activity which is adopted out of interest satisfies some unconscious need in the individual

Mental Health Values Sublimation has been spoken of by psychoanalysts as a highly commendable method of dealing with difficult, dangerous, and forbidden impulses and with the dangerous disorganized fantasies Sublimation is spoken of as being a healthy and constructive solution of the problem of unacceptability of original impulses and tendencies Roheim [686] speaks of a sublimation as a neurosis successfully mastered A neurosis isolates, a sublimation unites A neurosis separates a person from his social group, a sublimation makes a person an acceptable member of his social group Roheim shows how exactly the same behavior may be considered neurotic in one society and acceptable in another. Whether or not a given bit of behavior is neurotic or is a sublimation depends on the particular culture in which one is living Sublimation, by going along in harmony with original impulses, fulfills and enriches life By its social acceptability it acts as a stabilizer, by its objectification of internal impulses and tendencies it serves as a contact with the world of reality and hence helps to make more adequate adjustments in the world of people and events At the same time it has been pointed out that the average man has severe limitations to his capacity for sublimation

Because sublimations are generally socially acceptable, they are substitute reactions which help to lessen the amount of anxiety. It is perhaps this feature as much as any other that gives sublimations their mental hygiene value.

Relief of Tension. W S Taylor [784], who has written at length on sublimation, compares it with other forms of behavior which act as tension reducers. When impulses are released but prevented from complete expression, there results a piling up of residual tension in the muscular system For instance, when one who is angry inhibits striking another person with his fist, the impulse started may be dammed up temporarily and expressed later and perhaps partially in some substitute way, as cursing the other person or even taking it out later on the ticket agent or the secretary in the office Sublimation would seem to be exactly this same process at work Sublimation, however, does not refer to the method of handling the frustrations of everyday living but rather to the modes of socially acceptable expression of the continuing drives and impulses which are prevented from immediate and natural expression in the long course of development from infancy through childhood and into adult life.

It will be readily seen that sublimation in most of the illustrations which have appeared in psychoanalytic literature is concerned with the reconstruction of various aspects of the sexual impulse This is reasonable because sex is the one impulse which has had the most drastic control exercised over it by society Many of the immediate and obvious expressions of sex as they would occur in infancy and childhood are roughly suppressed by parents and teachers, and it is little wonder that this drive seeks expression in acceptable and substitute fashion The fact that sublimations usually are found in the sexual area has led to much of the criticism and ridicule of this mechanism When one looks at the need for some such substitute activity, though, it would seem not only reasonable but necessary

Difficulty in Attaining Complete Sublimation. It is extremely doubtful, however, whether it is possible ever to achieve complete sublimation, that is, without the necessity of some direct expression of the original impulse Taylor, who had studied the sublimation of the sex instinct in men, believes that no form of substitute activity, whether art or science, sport or work, ever quite drains off, and takes the place of, the needs for direct sexual expression Tension may be partially reduced, but the physical and glandular basis for sex still remains, calling for some sort of direct expression It is for this reason that sublimation does not succeed as a substitute for the more direct forms of expression with everyone In fact, probably only a small proportion of persons are successful in making sublimation a satisfactory substitute for some of the more direct and natural forms of expression Even when it apparently is a success, it may be punctuated by periods of lapse Some of the primitive orgies and ceremonials apparently were institutionalized and regulated occasions when sublimations were tossed away and more direct forms of expression were accepted We can see similar reversals in our present civilization, for instance, in war, in the fanaticism of certain religious groups, in the loosening of ordinary restraints in connection with riots, lynchings, and the excesses in hazing by college men and women In particular, sex expression can never be completely satisfied by sublimation This very fact makes one pause to consider again the problem of the youth who is forced by present economic conditions to interpolate a period of abstinence between the time of his maturing and the time when society is willing to recognize sexual expression in the formalized institution of marriage. Many writers have suggested the possibility and desirability of taking up the slack of this period when sexual powers are at their maximum by various sublimations, but it is doubtful whether this is a complete solution of the problem

This discussion has spoken of sex in most general terms as though there were a reservoir of sexual impulses of a general nature which required expression. On the contrary, psychoanalysts do not recognize any such general sexual force but rather a number of rather specific drives

or tendencies, each one of which may be recognized as a component of the thing that we call sex. One writer, Deri [166], actually asserts that sex itself cannot be sublimated, but only the foresatisfiers to the orgasm itself—what are called the pregenital impulses. She would make sublimation a mechanism which serves the demands of achievement (self-preservation) and not pleasure (race preservation). Consequently, it would hardly be sufficient to speak of art as a sublimation of sexual drives but would be necessary to recognize in a number of specific ways how art helps to relieve and satisfy a number of separate tendencies. These separate tendencies have been discussed in greater detail in another portion of this chapter.

That sublimation requires a constant expenditure of effort is not readily seen. However, it sometimes happens that the sublimatory value of an activity wears away and there is a tendency to regress to the need for a more direct and primitive expression of an impulse. What happens sometimes to *work* is an illustration of the fate of an activity which serves as a sublimation. While work serves as a sublimation, it is entered into with zeal and enthusiasm, but if it loses its value as a sublimation, the zeal for the work may fall away. Then, when the work no longer has its interest, it becomes onerous and there may be a breakdown from overwork. This undoubtedly is the basis for some cases of "nervous breakdown."

Restitution Value of Sublimation. Some of the more recent work in psychoanalysis has discovered certain more basic motives for sublimation in addition to those which have been given in previous paragraphs in this section. It has been shown that sublimations represent the possibility of a reconstruction of objects for which there were impulses or fantasies to destroy. This may account for those kinds of work which may be termed essentially constructive in nature. It has been observed that in little children much of the early play is destructive in character. The boy wishes to knock over the tower of blocks or to tear books apart. This tendency to destroy is associated with some of the early frustrations that seem almost necessary to the growing infant. Later, however, this destructive form of play sometimes abruptly ceases and a more constructive type of play takes its place. Sublimations, therefore, may represent the effort on the part of the individual to restore the objects or persons which his earlier impulses and fantasies wanted to destroy. Thus sublimations may have value as reparations to the individual and give him an opportunity of making good in the world for some of his impulses to kill and destroy.

Sublimation as Therapy. Sublimation is useful as therapy for persons who have reached impasses in their conflicts and must seek some sort of relief. Where direct aid is not available in the form of psychoanalysis, it is possible to offer considerable relief through various sublimated activities. A considerable amount of sublimation is required for healthy

living Indeed, even where more adequate and fundamental therapy is available it is possible that healing, constructive efforts can be put into motion through helping a person adopt sublimations which fit his needs. In this sense, therefore, art, science, social service, sport, and work all may be thought of as factors in healthy, constructive living.

A very wealthy woman had no interests in life, no duties or encumbrances, and to all intents and purposes was very ill, but her doctor could find no physical basis for her illness. Someone interested her in a children's home that needed supervision and money She became the "fairy godmother" to that home, and her illness miraculously disappeared.

Relation of Sublimation to Education A description of the processes by which sublimations are acquired would be a description of the process of education itself, for sublimation is practically the equivalent of education in its customary usage. Sublimation therefore develops slowly and gradually There is a long process of conditioning growing out of early primitive impulses This is the learning process which is so completely described in studies of child development and learning Sublimation, therefore, in its long process becomes further and further removed from the original native forms of expression The whole process of elementary education may be thought of as the institutionalizing of the process of sublimation which develops normally when the Oedipus complex is finally dissolved. In this sense, therefore, a criterion of readiness for formal schooling would be evidence of the breaking up and termination of the Oedipus conflict As a child learns to read and write, to become interested in history and geography, in plays and games, he may develop and elaborate his sublimated processes to such a high degree that to all intent and purposes the motivating impulse from which they originally grew and which continued to nourish them is lost Sublimations receive their start in infancy As E Jones [415] says, "The weaning of the child to external and social interests is the essence of sublimation and the most important single process in the whole of education" Every traumatic situation successfully mastered is a sublimation However, sublimations, proceeding as they must outward from within, cannot be forced. The task of education is that of providing an opportunity for the development of sublimations which are appropriate to the individual rather than of forcing a uniform set of sublimations on every child.

Dangers of Sublimation. Sublimation also has its dangers, which have been pointed out in convincing fashion by Chassell [136] He speaks of the danger of carrying all one's eggs in one basket By that he means that insofar as one depends upon a single kind of sublimation to take care of the adequate expression and release of a set of impulses, one may be courting danger It is possible that this particular sublimation, whether it be work or play, art or science, may in time prove to lose its effectiveness, and then the individual will be stranded with no acceptable outlet for his impulses Many persons, for instance, who have put all of their

energies into their work may find that in middle life their work fails them and they are left without resource A more popular way of saying the same thing is that one should take up a number of hobbies or avocations as well as devote one's energies to work

A second danger that Chassell mentions is that sublimation may become sacred and be set up as a barrier against underlying guilt feelings and anxieties. So long as the moral standards or the artistic or scientific ideals are not threatened, all is well, but if there is danger that they may become undermined by new discoveries or by new ideas which may percolate into one's system, there is also danger that the whole fabric of sublimation will collapse and expose one to the full force of the anxieties and guilts he is for the time being successfully managing through his sublimations.

In the third place, there is a danger that sublimations may fail when they are based largely on repression The young woman who sublimates her hostility toward her mother by managing a business with a firm hand, many find that in periods of fatigue or strain her calmness and self-assurance are punctuated by resentment and open hostility and aggression toward her mother

In the fourth place, there is a danger that the sublimation may take on a compulsive character when the person finds it so necessary that he does not dare to drop it When the sublimation is something to which one clings, there is evidence that the conflicts banished are welling up through the unconscious barrier and the structure which apparently gives equilibrium is actually tottering.

Finally, one wonders to what extent civilization will go on adding to restrictions of native expressions of impulses It is possible that civilization has already gone so far that the culture of our cities is too far removed from nature and too much dependent on machines, printing, and all the artificial fabrics of living. This is a point of view expressed years ago by Wordsworth and Rousseau One honestly queries whether the time will not come when there will be a reaction and a demand for a return to simpler and more immediate expression of the urges and impulses which are natural to man as an animal and from which he cannot depart too far without making the strain unbearable Indeed, one can see trends in this direction in the "back to the farm" movement, the popularity of such outdoor recreation as skiing and swimming

XVIII

Reaction Formation—Reversal Formation

Two mechanisms are recognized as modes by which an individual diverts forbidden and dangerous impulses One of these, *reaction formation,* is taken up in the present chapter, the other, *sublimation,* was discussed in the last chapter In some of the older treatises, sublimation has been used broadly enough to include reaction formation Recognition of reaction formation as a separate mechanism is a refinement of the original concept of sublimation In reaction formation the impulse or drive is handled by suppressing its direct expression and by acting out its opposite.

DEFINITION

Reaction formation is the adoption of behavior and feelings which are quite the opposite of those which would normally result from the uninhibited expression of impulses and wishes Reaction formation is doing the opposite of what one really feels like doing An illustration of this can be seen in the man whose need for making insults and for hurting the feelings of others is cloaked in an extremely polite and deferential manner

In sublimation the expression of the impulse is not repressed, but is redirected into substitute cognate and socially acceptable ways Consequently, a certain amount of relief or satisfaction is gained through sublimation, so that the net result is, on the whole, more stable and satisfying than in reaction formation The discussion and illustrations which follow are so numerous and cover so many aspects of behavior that one may wonder whether the whole world is not topsy-turvy. Naturally, it is not asserted that every expression of behavior really implies its opposite in impulses and feelings Reaction-formation behavior can be recognized by its extreme, pronounced, and exaggerated characteristics—so extreme, in fact, as to be uncalled for in the situation

FUNDAMENTAL CONSIDERATIONS

Reaction Formation as Bulwark Against Dangerous Impulses. Reaction formation is a mechanism found in every person, in every growing child, and is a necessary concomitant to a civilized society, where impulses

must be curbed and restraints adopted. Reaction formations are bulwarks against dangerous and forbidden impulses They are a protection against impulses which have been prohibited presumably first by either mother or father and later by others who have charge over the training and upbringing of the child. Insofar as a parent attempts to teach a child self-control and uses the various devices of persuasion, cajolery, threat, and punishment, a child is forced to adopt patterns of behavior opposed to his normal impulses. However, reaction formation requires not only pressure from the outside but the acceptance of these restraints by the individual who must recognize the danger in opposing the authority of others stronger than he. A person is also restrained by his own introjected, dangerous fantasies, and adopts a pattern of behavior exactly the opposite of the impulses which are being inhibited.

Little Paul, who is just over a year old, is known to be a serious, thoughtful baby Already at this age he is considered a good child, with an undue amount of patience in waiting without fret or fuss for the attentions that he needs It is probably true that Paul, by original nature, tends to be relatively passive When only a few weeks old, he became fretful over delayed feeding periods, and was scolded and slapped by his mother He responded, not as so many babies do, by intensifying his crying and fretfulness, but by increased passivity

By agreeing with outer authorities and adopting the kinds of behavior which they demand, the danger of attack from them is lessened Reaction formation, therefore, is a very sensible solution to the problem of meeting threats and punishments, which always look so much more terrible to the little child than they later appear to him as an adult

Reaction Formation Lessens Anxiety. By agreeing in behavior with one's own inner repudiation of impulses, anxiety is also lessened. Only recently has the extent been realized to which even a little child struggles to reconcile the strength of his own impulses and his introjected prohibitions and restraints taken from the adults around him This conflict inevitably produces anxiety, and the child manages and reduces this anxiety by agreeing with his introjected restraints and prohibitions in the war against his impulses This results in behavior which is considered "good" by the child's elders [461, 395]

Reaction Formation Aided by Identification. In addition, reaction formation is aided by identification The models which a child finds about him in parents and older siblings have already adopted these same restraints, and by identifying himself with such individuals, he is supported in his own tendencies toward reaction formations.

Martha, at one time, was like all little children, careless and untidy, but she had little difficulty in following her mother's wise efforts to teach her how to be clean and neat Every day her mother dressed her in freshly laundered clothes, as she herself was dressed The mother was a good housekeeper, kept things clean and tidy, and Martha had little difficulty falling into the same patterns of behavior.

Reaction Formation in Unstable Equilibrium. As a method of handling one's impulses, reaction formation is an unstable equilibrium, always in danger of being toppled over. It is true that some children have shown such firmly repressed impulses toward aggression and uncleanliness that they seemingly have adopted characters which would almost testify to the lack of these primitive impulses However, put the child in a new situation, particularly with other children whose repressions are unstable, and there will be outbreaks of desire and destruction which parents find difficult to understand

Tom "went to the dogs" in his first year in college, although he grew up in a very strict home and was known to have been a model child "Falling from grace" and "back-sliding" following religious conversion may be another illustration of this same point.

The restraints of civilization are only skin-deep and require constant watchfulness

Unconscious Nature of Reaction Formation. The unconscious is a factor in reaction formation as in other mechanisms Impulses that are prohibited both by outer restraint and by the superego are repressed and buried. The average adult is even unaware that he once possessed these impulses, which at one time were openly expressed The reaction formation taking their place is highly conscious The person is consequently aware of his character as being only cooperative, compliant, orderly, constructive Hence, reaction formation is closely allied to hypocrisy and smugness. Hypocrisy, however, is despised because it is the acting of a false part, and hence is a *conscious* camouflage; or at least it is not so deeply unconscious as a reaction formation is. However, these are all gradations between those acts which are strictly conscious simulations of virtue, and those which are wholly unconscious protests against undesirable and unacceptable tendencies. A person may speak with cant and insincerity, or he may honestly uphold moral principles as a reaction formation against unconscious tendencies of an immoral nature. A reaction formation is always honest and sincere so far as the conscious intention of a person is concerned

It should not be assumed that all "goodness" in human nature is a reaction formation against the bad, but some of it clearly is One should not assume that the illustrations to follow are universal rules, they are merely descriptions of reaction formations in particular instances

Disguised Forms of Gratification. In passing, it should be noted that reaction formations, on some occasions, actually permit in disguised and roundabout ways the expression of the very impulses over which they stand guard An illustration of this point may be found in the mother who pours onto her child an excess of love and protection. The child is overwhelmed by the attention that he receives He has everything that can be asked for in toys, in clothing, in being waited upon, in educational advantages, in health care, and so forth. Actually, however, by the super-

ficiality of this overwhelming love, the mother is expressing to the child some of her hostility toward persons in her earlier life or even childhood This has been called "tormenting" love because its amount and ferocity actually distresses and harms rather than pleases its recipient.

In the preceding chapter it was said that sublimations bloom best in an atmosphere of security. Reaction formations, on the other hand, are more often engendered by lack of security, severity, harshness, and coldness

MAJOR TYPES OF REACTION FORMATION

Reaction Formation Toward Pleasure. In the following pages several types of reaction formation and illustrations of them will be presented so as to indicate the range of behavior explained by this mechanism In each of these, some fundamental need is repressed, and the behavior described is the direct opposite of that which would be found were the impulses to have direct and open expression. The first of these impulses is generally one toward pleasure and enjoyment This might be called the prototype of all impulses and drives And inversely, the prototype of all reaction-formation behavior is the inhibition or repression of enjoyment and pleasure The puritan, who denies himself all the pleasures of the world, is the clearest illustration of this general type of reaction formation His philosophy implies that one's native impulses are bad, vicious, degrading, and not to be expressed We, however, take the standpoint that original impulses are neither good nor bad, but can become either according to the outcome of their expression Depth psychology points out that the puritan and ascetic sit on a volcano of their own inhibited impulses

Frank, who is in high school, is known as a very serious and model boy He seldom smiles He does not like to dance, believes that it is wrong to smoke or gamble. For him adolescence came without difficulty, but these tendencies toward asceticism became more pronounced at that time in order to mask the usual turbulent and conflicting emotions of adolescence

Rachel, who feels that she does not have the power to attract boys, becomes a "boy-hater," avoiding not only them but also girls who are "boy-crazy" toward whom she feels and acts superior

Reaction Formation Toward Need to Receive. The tendency to receive and be supported is a basic need of every infant, in fact, of every person If this need is threatened the infant is likely to demand it aggressively by devices at the command of every baby A person who has had to repress his need for being supported may adopt the reaction formation of emphatic self-assertion. This may be suspected in the individual who dominates others, expresses himself forcibly, and asserts himself emphatically in all sorts of situations Whatever he achieves he must win for himself

Mrs B has always had an enormous store of energy In high school she took part in many activities, was president of the student council, and was manager

of the school play. In college her social proclivities continued to develop. She headed many committees, went out for sports, was in charge of the junior prom. Later she married a somewhat insignificant man and found herself responsible for an increasing family. However, she was not content with just managing her family but took part in many community enterprises. Mrs B. was a person who never seemed to seek support but gave one the impression of great strength and independence. The times when on vacation she would let down and enjoy having others wait upon her were few and far between. In these vacation periods she relaxed enough to permit her deeper nature to break through to expression. Mrs B. can never remember the time when she did not take responsibility for others. As a child she was forced to take responsibility, since she was the oldest girl in the family, and her mother was more or less of an invalid for many years.

Stealing, that is, taking by force, may be a denial of the wish to be given things and to be supported. Indeed, much criminality may be a reaction formation against underlying weakness and dependence [28].

The need to receive which has been frustrated in the past may be reacted to by refusing a gift or favor. This is in part due to a fear that the gift may be too good to be true, but also, on other occasions, to a desire for revenge by disappointing the giver—"cutting off one's nose to spite one's face."

Reaction Formation Toward Craving for Affection. Similar to the foregoing is the reaction formation toward craving for affection for which many a rejected child feels a deep longing. One reaction formation to this longing is the adoption of the "I-don't-care" attitude, characterized by a spirit of aloofness, unconcern, independence, and indifference. Likewise, they may greet the acknowledgment of admiration or praise with defiant coldness, beneath which lies a great need for such praise and affection. Sometimes when tendencies to love and craving for affection and recognition become too strong, an individual may try to disguise these tendencies by actual expressions of hate, biting remarks or expressions of contempt. The presence of love underneath can be discerned by the obvious challenge or invitation to repartee. There are those who will plead poverty just in order to test whether they will be accepted even if poor.

Reaction Formation Toward Aggression. Probably the most obvious and outstanding reaction formation is that toward aggressive or sadistic impulses. First of all, it should be noted that fear may be a reaction formation to aggressive tendencies. The unconscious hostility itself is feared, and this fear takes the place of the aggressive impulse. Excessive anxiety may be a reaction to and a disguise of strong aggressive impulses which the person does not dare recognize because of their danger.

One of the varieties of reaction formation to aggressive impulses is the tendency to be overtender, overprotecting, or oversolicitous toward others—disguised repressed impulses to harm. The oversolicitude and protection of a parent for a child may be a disguise for the parent's hostility to the child. Husbands with shrewish wives may overdevelop their tend-

encies toward mildness and calmness, causing the wife to exclaim naively, "It's funny, the madder I get the nicer you are to me" Likewise, the solicitude of a young woman for her elderly mother may mask unconscious hostile feelings

Miss P, for instance, lives a restricted life because of her invalid and complaining mother She finds it impossible to accept many invitations because her mother needs her care She delights in reciting her mother's infirmities and her own filial feelings The hostility which is present may be displaced onto a sister-in-law or some other less immediate person in her circle of acquaintances

This reaction formation to aggression may take the form of self-sacrifice, devotion to duty, and unselfishness One may suspect, for instance, that the person who becomes too much of a martyr to his family, to his work, to a social cause, is covering up hostile feelings I believe it is Jones who has said that the "fairest flowers of a love life" may be reaction formations to underlying aggressive and hostile tendencies Likewise, the whole range of humanitarian feelings may have a similar origin pity, sympathy, tenderness, thoughtfulness, in some instances, grow out of the need for smothering underlying aggressive impulses Brothers and sisters in later life may adopt strong loyalty and affection for each other A sister may help put a younger brother through college at the cost of great self-sacrifice Probably in such cases, intense childhood sibling rivalry and hostility has been forgotten and repressed in this way Societies for the prevention of cruelty to children or animals undoubtedly have been organized and fostered by persons with tendencies to cruelty The anti-vivisectionist who paints such vivid pictures of the suffering of the animals in scientific experimentation may be suspected of controlling tendencies toward cruelty within himself. One should not draw the conclusion from this analysis that these persons are insincere They are most sincere and cannot be accused of any form of self-deception Their impulses toward cruelty are buried deep in their unconscious Persons who have adopted this form of reaction formation to aggression have gentle, sensitive personalities. In order not to hurt others they may be overtruthful, honest and just

Finally, persons may adopt a façade of politeness and solicitude for others

Stanley is a very polite boy He will remove his cap on entering the house Every utterance of his is prefaced by "sir" or "ma'am" When he is introduced to a stranger he gives the Boy Scout salute He will say "excuse me" and "thank you" at every opportunity He will ask solicitously for the health of old Mrs Brown, and when attending parties, he will see to it that everyone is served and has a good time But Stanley is also known to be sly and to have been very cruel to animals on some occasions He comes from a home where he has had to tolerate a great deal of strict discipline and has been surfeited by a combination of strictness and superficial advantages

Reversals of hate into fear apply to the self as well as to others Phobic fear of dying or of contracting some disease may well be expressions of

an unconscious wish to die or to get sick And why would one want to die? Possibly because of the great guilt felt for an unconscious hatred of others, and possibly for an unconscious desire to punish others through one's death—to make people grieve at last So concern for the self may have implications far removed from their immediate significance.

It is possible that the striving of the artist for form, balance, symmetry, and unity and the scientist's desire for law and regularity may represent tendencies in both of these individuals to triumph over the disorder of the original infantile impulses.

Some reaction formations against hostility may be disguised methods of expressing aggression The individual who resorts to passive resistance, non-cooperation, and excessive passivity may be using these devices as the best method available of defeating the purposes and plans of those whom he might like to attack openly

Reaction Formation Toward Need to Be Independent Reaction formation to the need to be independent shows itself in extreme docility. This will be the pattern adopted by a child of dominating parents. Such a child is very tractable, apparently has no will or wish of his own, and does in a hopeless, languid way whatever he is asked to do

Reaction Formation Toward Need to Exploit Others. The need to exploit others may be managed in reaction formation by modesty and humbleness as is illustrated by Uriah Heep, the character in Dickens' *David Copperfield* Uriah was a servile person, most ingratiating and humble in character, although actually he was plotting to acquire the fortune and business of his employer and also the hand of his daughter in marriage Dickens makes him appear to be hypocritical and two-faced. In reaction formation a person is not hypocritical in the sense that he exploits others under the guise of humility Rather, the need to exploit others is unconscious, and if it were recognized it would cause great anxiety to the individual.

Another reaction formation to this need is timidity, shrinking from others, and feeling embarrassed in their presence

Reaction Formation Toward Tendency to Humiliate Self. Tendencies toward masochism and self-degradation may be counteracted by a superficial optimism and good-naturedness The traditional jovial spirits of Negroes may be a reaction formation against their miserable living conditions and the self-depreciation accompanying these conditions

Reaction Formation Toward Tendency to Soil. Another tendency which illustrates reaction formation is the impulse to soil, particularly in connection with early toilet processes The baby at first wets and soils wherever and whenever the need arises One might almost say that this soiling was enjoyed To teach the child to be clean is one of the major tasks of the mother Most infants fall in with these demands and actually acquire the control expected of them and in addition adopt orderly characteristics in most other respects as the reaction formation

against general uncleanliness. Disgust is a reaction formation to natural toilet processes and originates from the parental attitude toward them Character traits which grow out of this need for rejecting the impulse to soil are neatness, cleanliness, and orderliness Adults may show this mechanism in their neatness in clothing and personal grooming, punctiliousness in care of their belongings, orderliness in arranging furniture, and in frequent and thorough washing of the hands. One finds this mechanism in people who apparently are annoyed by seeing papers strewn around, an untidy picnic ground, spots on clothing. A still more remote displacement is the annoyance at having natural beauty destroyed by the encroachment of industry

The tendency toward neatness and cleanliness can be exaggerated and may easily become pathological. The same reaction formation to soiling may be seen in reliability, truthfulness, honesty, and dependability A person adopts these as character traits in protest to disorder. In a still more general sense, this tendency toward cleanliness may exhibit itself in a character which can be described as pure or conscientious The capacity for organizing and systematizing may partly explain the enjoyment that some individuals find in keeping accounts, counting, tallying, and tabulating. The scientific interest in classifying and placing loose and discrete objects into some sort of order may be another derivation of this tendency. Finally, this tendency toward orderliness may take the form of annoyance at sloppy thinking, inconsistency in behavior, poor logic, inability to stay on a topic in conversation, and in similar mental and intellectual processes. These have all been described by Freud [266] and Ernest Jones [431] as one phase of the anal character, the mechanism involved being that of reaction formation.

Reaction Formation Toward Tendency to Give. The other phase of the anal character is the impulse to give away. The reaction formation to this impulse results in tendencies toward saving and thriftiness or overdevelopment of penurious traits.

Ira is a queer child. He makes many collections, and his pockets can be depended upon to produce a miscellany of objects. His mother complains that he will never throw away anything at home, and his desk is covered with stamps, pictures from cigarette packages, pieces of string and wire, and similar objects which have value only to a boy. Ira is equally saving with money He has a bank in which he carefully puts pennies, nickels, and dimes, and will, when he has accumulated a dollar, promptly proceed to deposit it in the local savings bank The troublesome thing about it is that Ira does not seem willing to dispose of any of these cherished possessions

Reaction Formation Toward Exhibitionism and Voyeurism. Two impulses which go together, frequently managed by reaction formations, are the impulses toward exhibitionism and voyeurism The impulse toward exhibitionism, that is, display of the naked body, may be repressed and managed by reaction formation leading, on the side of feeling, to

shame and, on the side of behavior, to modesty in its various manifestations. Reaction formation to exhibitionism may also take the form of retiringness and avoidance of the limelight Questions of psychoneurotic questionnaires relating to difficulty of taking a front seat in an audience or speaking before a group may be illustrations of reaction formations against exhibitionism Voyeurism, the tendency to want to see the naked body and to peek underneath clothing, may be repressed and managed by reaction formation leading, on the side of feeling, toward disgust and, on the side of behavior, toward prudery, lack of curiosity, and the like. The person who has no tolerance for nude pictures, lewd stories, or references to bodily functions may be suspected of managing unconscious curiosity toward these matters

Reaction Formation Toward Masochism. The tendency toward masochism may be managed in reaction formation, on the side of feeling, by sensitivity to suffering and, in behavior, by protests against suffering, as for instance, in vivisection

Reaction Formation Toward Sex. Tendencies toward sex experiences which are repressed may be managed by a variety of forms of reaction formation. Desire in this area may appear in the form of fear or anxiety. Any person who shows marked feelings of disgust or loathing at mention of sex may be suspected of having repressed impulses toward sexual expression This takes a more pronounced form in expressions of fear

Miss L, a spinster, has a number of compulsive practices which seem strange to an onlooker She locks the door of her room carefully every night and barricades it with heavy furniture Although she is well above the buildings on the opposite side of the street she will pull her shades down to the very bottom of the windows, which she is careful to lock Before getting into bed she will look under the bed and also in her closet. She has frequent dreams of a strange man with murderous intent breaking into her room and attacking her This obsessional behavior, commonly accompanied by marked fear, is a reaction formation against strong sexual needs which have been repressed long ago but which are continually crying for satisfaction

These are the persons who frequently hold high moral standards and preach them in and out of season, are militant in opposing public dance halls, houses of prostitution, abortion, and birth-control measures They censor the overt expression of sex in movies, books and plays, regarding such expression as unmoral and filthy. Such reaction formations against sex in adolescence are frequently found. Some young boys and girls have a deep-seated inhibition toward any expression of sex. They show resistance toward kissing or necking or any form of sex play Boys at this age in whom this reaction formation is strong avoid girls and any of the social groups in which boys and girls get together for fun and excitement. Girls in whom these reaction formations are strong are called "old-fashioned." They will avoid parties, offering as excuses that they must do their lessons at home, that they do not have their parents' permission

to attend, that their clothes are shabby and out of date, or that they are unpopular because of acne on their faces.[1]

Reaction Formation Toward Sex Rôle. According to Adler, reaction formation against playing the rôle of one's own sex is the basis of all reaction formation He stresses particularly the "masculine protest," by which he refers to the tendency of women in our culture to overcome the traditional inferiority of their rôle by compensating measures. This reaction formation is particularly prominent in current social movements and during the Second World War when women more than ever entered into activities and occupations which have been the traditional prerogatives of men.

This reversal of sex rôle may also show itself toward the *denial* of playing the rôle of the opposite sex It is well known that every individual has bisexual tendencies Men, for instance, normally have certain tendencies toward playing a feminine rôle, but since these tendencies, if expressed openly, would be subject to ridicule and ostracism there is strong reaction formation against them. Tendencies toward homosexuality and effeminacy in men may sometimes lead to the reaction formation of the Don Juan character who, in attempting to keep these tendencies out of sight, adopts the pattern of the lady-killer Homosexuality and effeminacy may also lead to strong aggression as a reaction formation This tendency is illustrated further on p. 555 in the chapter, "Love and Self-Love"

Brahms, who had pronounced feminine characteristics, attempted to hide them by overemphasizing those of masculine attributes. "The exaggerated hirsute and virile appearance of his long bearded middle age was encouraged by Brahms as a psychic compensation for the humiliation he had suffered on account of the smooth cheeks of his early twenties" [707, p 762]

Likewise, women may protest again tendencies to adopt a masculine rôle by heightened femininity, adopting petite and chic ways, and devoting more than ordinary attention to the emphasis of feminine characteristics through costume and cosmetics. But even this attempt to belie masculine tendencies may be defeated and betrayed by the wearing of heavy stiff masculine jewelry

Reaction Formation Toward Fantasy In the preceding chapter it was shown how science is a sublimation of primitive tendencies of exploration and curiosity But science may be a reaction formation against tendencies to fantasy A person may hold his wild, uncontrollable, dangerous fan-

[1] It has been pointed out to me that these are old-fashioned illustrations (I still believe that these are the most common kinds of reaction formation to thwarted sexual expression) Today these same persons pride themselves on their broad-mindedness, see all the "worst" plays, and discuss sex openly. These are just other ways of covering up their real attitudes which in unguarded moments are expressed by resentment toward married teachers who are "taking jobs away from those who need them" or by catty remarks about married members of the family

tasies in check by following the canons of scientific method The discipline of science is an excellent antidote for the wildness of fantasy.

Reaction Formation Toward Fear. Fenichel [214] has discussed the "counter-phobic" attitude, that is, those attitudes and reactions which are designed to counteract fear In general, these acts are those that boldly approach the dangerous situation and master it by dealing with it strenuously. Loud and defiant singing or whistling may bolster one up against inner fears. The boy who is afraid of snakes may overcome his fear by making a collection of live snakes. Fenichel tells of one person who mastered a childhood fear of story books by becoming passionately fond of literature; another who mastered his fear of railroads by making them his hobby. Fenichel believes that most sport enthusiasts are following their sport, particularly the more strenuous and dangerous ones (like mountain-climbing) as a way of disproving to themselves the dangers inherent in these activities Some artists paint pictures of the very things they distrust in order to prove their mastery over them Some persons master their anxieties and distress by assuming a carefree and light-hearted attitude. Such counter-phobic activities must be constantly repeated in order to keep infantile anxieties submerged. Their success depends on the fact that a passive attitude is turned into an active one, that they may gain support from other persons with whom they associate, that the activities themselves may contain other pleasures which compensate in part for the danger involved These defenses against fear also have the very therapeutic value of helping the person to attain a better relation to reality. In periods of fatigue, overtenseness, or when dreams or symptomatic acts betray the underlying anxiety being thrust aside, this anxiety may temporarily break through in these activities.

Reaction Formation Toward Success. To some persons success and pleasure are dangerous and intolerable Success may arouse guilt in persons whose feeling of unworthiness is so strong that a reward is felt as undeserved and the acceptance of pleasure as punishable. Sutherland [774] tells of a young man who failed examinations, because passing meant graduation and the possibility of marriage—successes and pleasures he did not feel worthy of. Also, failing the examination was a punishment for even unconsciously entertaining these ideas So failure may sometimes be unconsciously intended and worked for as a reaction formation against the success and pleasure really (unconsciously) desired.

Symptomatic Reversal. There are many well-known reversal tendencies in modern life which, if the facts were all known, would probably turn out to be forms of reaction formation However, since they are not direct reversals but are symbolic or symptomatic, it is difficult in any case to trace their dynamic significance It is not uncommon to find children and even adults who will reverse letters in spelling or words in reading and writing The cause of this reversal is obscure. Some, however, believe that the cause is to be found in a reversal of dominance in the cerebral hemi-

spheres [623]. Others believe that these reversals are mere chance affairs which have been hardened into habit by bad teaching [314] The suggestion is made here that they may have a dynamic significance and represent the spread of a reversal tendency against unacceptable impulses to these habits of reading and writing The repression of basic impulses requires so much support that there is a tendency for reaction formation to spread to unrelated activities For instance, it may well be found that the reversal of letters is an attempt to disguise some hostile significance which the correct order of the letters might imply Reversal tendencies are also found in the use of numbers and in other simple operations in which order plays a prominent rôle.

The tendency to be unlike others, because to be like them means the arousal of dangerous tendencies, may spread in many directions. Some individuals wear clothing quite unlike others' in style or fit A man, for instance, may wear warm clothing when inappropriate or may carry either hat, overcoat, or rubbers when others find these unnecessary protections Some persons insist on working when others play, and others on playing when others work One man will insist on walking when the group wishes to ride Some persons adopt curious food fads, and others insist on living on the opposite side of the town away from their friends Any kind of idiosyncratic behavior should be suspected as being a reaction formation

Reversal in Dreams. It is well known that reversal tendencies are particularly prominent in dreams, because the dream represents the disguised expression of repressed tendencies. In fact, it has been stated that every dream has at least one, if not more, reversals This would mean that persons, objects, movements, and tendencies in dreams often express in the manifest content the opposite to what is intended in the latent content Space and time may be reversed What comes late in the dream may really be early and what is below may refer to that which is above Left and right may be reversed in the dream, what is descending may be really ascending, and what is behind may be before. It is never possible to tell whether dream material is to be taken at face value or in reverse, but the counselor should always be ready to recognize that a person may intend the opposite to that which he expresses in a dream.

METHODS OF EXPRESSION OF REVERSAL

Behavior. Reversal tendencies and reaction formations may express themselves first of all through behavior By every expression of the personality a person may be attempting to deny the impulses and feelings which lie underneath Denial may be expressed through gestures For instance, vigorous shaking of the head indicaitng "no" may veil a hidden desire to say "yes," the vigor of the denial testifying to the strength of the underlying wish Naturally, one must not go through life suspecting that every act a person is employing really signifies something differ-

ent than it portends, yet, on the other hand, one should also be aware of the widespread frequency of these reversal tendencies

Word. Verbal denial occurs so frequently and is so significant as a mechanism that it almost deserves a separate chapter. Denial implies a possession of implicit tendencies toward the opposite It may be categorically stated that when a person makes an uncalled-for denial this is tantamount to implying that the individual also possesses the tendency or impulse which is denied. Indeed, through verbal denial or a negative judgment repressed tendencies can receive conscious expression even though they are not consciously accepted This does not mean that one should refuse to take any statement of a person at face value and assume that any assertion or judgment that a person may make implies that he really means the opposite. But when one denies some tendency or feeling, the very denial is evidence that the opposite tendency has a foothold. For how could a thing be denied if a person cannot at least imagine himself possessing those qualities which are denied? A mother may state that she is sure that she loves her child. If this statement is made without its opposite having been implied by the counselor, one can be almost certain that the mother's assertion is evidence that she is harboring unconscious tendencies of hate toward her child The vigor and heatedness of a denial is tantamount to admitting that the tendency has root as an unconscious impulse If a person is accused of something that is ridiculous or preposterous, it is not even worth denying and can be laughed at, or denied calmly and in a matter-of-fact way. If one is told, for instance, that his teeth are black or his blood is green he would wonder what kind of a mental aberration his friend was having, but if he were told that he is unpopular or disloyal he might retort with a heated denial or by some other defensive response. The vehemence of Peter's denial pointed to its falsity.[2] Words may be used to deny several phases of reaction tendencies. For instance, one may deny having an *impulse*. When a person says, "I don't think I am mean or cruel," he is giving recognition to the existence of this very tendency within One may deny the *meaning of an act* that he has performed and assert that it does not have the implication or significance ascribed to it For instance, one may say, "I didn't really mean to damage your papers," where the act itself speaks loudly as to the unconscious significance. One may deny *contemplating an act*, or again one may deny an *identification* For instance, one may say, "I would not be mean like him," wishing to give the impression that he is not to be compared to another person, but the very denial of the identification is testimony to the fact that he has already thought of himself as being like the other person When a person says, "I like my medicine," he may be consciously truthful with himself, but at the same time he is trying to bolster his own courage and is attempting to deny the unpleasantness of what is necessary.

[2] Mark XIV, 66-72.

Sometimes persons feel danger from boasting or from making uncalled-for assertions and feel that some such symbolic gesture as knocking on wood is necessary in order to free them from the evil spell which their boasting may bring on them As a matter of fact, as Freud [292] has pointed out, this fear of boasting is a half-conscious recognition that that which is feared is in some small measure true A person may say, "I have not had a cold all winter" and then feel frightened lest his boast may be premature The truth of the matter is if this fear is strong, there will probably already be unconscious indications of the onset of a cold Or some persons who have been subjected to insecurity fear to tempt fate by acknowledging an improvment in condition, but, on the contrary, continue to play safe by anticipating the worst

A *promise* is another verbal form of reaction formation The person who feels it necessary solemnly to promise that he will perform some act is the very one in whom there is some resistance to performing this act and a need to bolster himself against the resistance

REACTION FORMATION AGAINST REACTION FORMATION

Fenichel [212] uses the term, "reaction formation against reaction formation" to indicate those tendencies, which by adopting the opposite of a primitive tendency, actually serve the purpose of the original tendency For instance, a mother has repressed her feelings of hostility toward her son and overindulged him by showering him with expensive gifts. In doing this she is deliberately (and unconsciously) spoiling him, preventing him from developing manly independence and resourcefulness, and hence actually working out her original hostility

PATHOLOGICAL IMPLICATIONS OF REACTION FORMATION

Hysterical Reaction Formation. The mechanism of reaction formation leads to two distinct pathological types The tendency to be afraid of one's own aggressive or sadistic impulses, when extreme, leads to forms of anxiety hysteria. It may also show itself in anxious reaction against aggression in any form wherever it occurs Such persons will faint at the sight of blood or will become fanatic vegetarians They will campaign for peace and will show anxiety over force and violence in any form These same persons may develop neurotic traits of oversolicitude, an excess of self-sacrifice and unselfishness which may go to the extent of being pathological Phobias frequently originate in this way

Obsessional Reaction Formation Reaction formation may become pathological in another direction leading to the obsessive-compulsive neuroses In these neuroses, which are reactions against disorder, soiling, and uncleanliness and waste and inefficiency, such a person may have a pronounced phobia toward germs or become excessively concerned over arrangement and cleanliness of his person or his house or the management of his affairs When these forms of neuroses arise, it may be seen

that they, in all probability, have their origin in early infancy when the problem of controlling these impulses became serious and reaction formations were instituted

VALUES OF REACTION FORMATION

Civilizing Mechanism. It will be readily seen from the foregoing that reaction formation is a universal mechanism which appears to a more or less pronounced degree in every individual who grows up to take his place in a civilized society. It is the mechanism whereby original tendencies toward the expression of innate affection and protection, toward aggression, toward free expression of the processes of elimination, and toward sex which must be controlled and inhibited in civilized life are managed by the adoption of feelings and forms of behavior opposite to these primitive impulses One might say that the whole structure of modern society, which requires of a person certain restraints on his demands for uncontrolled pleasure; in acquiring gentle, sympathetic, kind, and thoughtful character traits, in becoming clean, orderly, reliable, and dependable; and in keeping under control at the appropriate time and place expressions of sex, is based on the mechanism of reaction formation It matters little, therefore, whether one agrees that reaction formations are good or bad They are necessary

On the other hand, there is no doubt that reaction formation is an insecure form of control of primitive impulses This is the equivalent of saying that the crust of civilization is thin So long as society is stable the restraints of civilization are secure However, war, pestilence, and social revolution, easily break through the reaction-formation mechanism and let loose the expression of these primitive impulses, probably with accompanying feelings of guilt and anxiety

Involves Strain and Constant Expenditure of Energy. One does not know to what extent reaction formations place a strain on the individual in the course of normal daily living It is probable that there has to be a constant expenditure of energy to curb the normal expression of impulses However, this is speculation and one does not know to what extent it is true Of the two mechanisms, reaction formation and sublimation, sublimation is believed to represent a more normal and desirable form of adaptation to repressed tendencies. inasmuch as sublimation tries to find natural outlets for impulses, whereas reaction formation tends to keep them out of sight by adopting opposite patterns of thought and behavior Reaction formations, however, are so universal that they can be considered abnormal only when excessive It is only when they become extreme and too much time and energy are devoted to maintaining them that they become dangerous and interfere with normal living A person who has so put away his tendencies to aggression and has covered them over with an excess of tenderness and solicitude or disinterestedness fails to maintain himself in a society of peers and gives the impression of

being an individual who lacks the fire and passion for living Likewise, the person who must go to such extremes in controlling his desire to soil that his pursuit of cleanliness becomes obsessional lives an unbalanced life void of zest or satisfaction. Reaction formations against sex create the impotent man or frigid woman This form of reaction formation may not only influence the direct expression of sexual activities, but affect the personality profoundly and produce individuals who are afraid of themselves in many ways.

XIX

Compensation

ORIENTATION AND DEFINITION

Compensation One of the Principal Methods of Adjustment. Compensation has sometimes been listed as one of the mechanisms, but strictly speaking, it is hardly to be thought of as a mechanism inasmuch as it covers a wide variety of behavior Actually compensation as a method of adjustment uses many mechanisms Compensation as a method will be described in this chapter very generally, while the specific mechanisms used in compensation are discussed each in its own chapter.

Compensation is a form of adjustment to a real or imagined personal defect It is, in short, an attempt to overcome, or substitute for, the defect in some way In this sense, compensation is found as a biological phenomenon at all levels of organic development.

For instance, if one lung is incapacitated, the other lung will take up the burden and actually over a period of time become enlarged so as to perform the function of two lungs Likewise one kidney will attempt to perform the functions of both if the other becomes impaired The process of homeostasis described by Cannon [127] is compensatory in character The body contains mechanisms whereby the chemical equilibrium in the blood is maintained, and when it becomes too acid or too basic, compensatory processes are automatically instituted

The defect for which compensation is made may be a real defect, as for instance, poor eyesight, or it may be an imagined defect which exists only in fantasy, as, for instance, when a person whose intelligence is at least average believes himself to be mentally inferior.

Compensation a Defense. Compensation may be thought of as a kind of defense which the organism sets up against a defect or limitation in its structure or functioning Sometimes the term *defense mechanism* has been used to indicate one of the more important modes of compensation that a person has available against his weaknesses and limitations In fact, when broadly used, compensation is a term which may be used to cover all types of defense against anxiety In particular, a person finds it necessary to set up defenses or to compensate for feelings of inferiority. It is true that an organism sets up compensations somewhat automatically

against defects in structure or functioning. However, in human beings compensation for personal defects hardly takes place unless the defect is recognized and the person feels his inferiority, real or imagined Compensation, therefore, concerns itself not only with overcoming or managing a weakness or defect, but also with establishing oneself in the favorable regard of others We are so constituted that we care as much what others think about our achievements as we do about the actual achievements themselves. So compensation is concerned not only with freeing ourselves from our feelings of inferiority but also with securing favorable attention from others as an indication that they do not recognize any inferiority in us. In this sense, then, compensation is like drawing a red herring across the trail It is an attention-getting device. It helps to divert attention from unfavorable characteristics and direct it toward strong or favorable characteristics. A person who has many weaknesses or defects to compensate for and who must continually strive for the favorable attention of others comes eventually to adopt a mendicant or "gimme" complex or attitude He finds it necessary at every turn to demand favorable attention from others This tendency to exaggerate some trait in order to draw attention away from a weakness or deficiency in another direction has been called "overcompensation" by Adler

Compensation a Method for Maintaining Self-Respect In addition to defending oneself against one's weaknesses and securing the favorable attention of others, compensation is also concerned with maintaining one's own self-respect and self-regard Self-respect may be thought of as an incorporation through identification of respect shown us by others. However, it becomes eventually an intrinsic part of one's personality, and most of us find it necessary to satisfy our own needs for self-respect as well as to secure the favorable attitude of others. We have our own ideals to live up to and satisfy as well as the standards set by the society in which we live.

Compensation Stimulated by Competition. The necessity for compensation is greatly stimulated by our competitive society. One can imagine a society where it makes little difference whether a person has certain possessions or talents However, in our society we are measured by our achievements and possessions to such an extent that there is a strong and relentless drive toward at least normal or average and, if possible, superior attainment in these directions.

Origin of Compensation in Childhood. One might say that compensation has its origins in childish inadequacy Everyone has been little at one time as compared with father and mother and others who have nurtured him in his formative years The little tot feels his inadequacy, and all his striving is toward growing up and being able to meet competition. Compensation is an attempt to manage this feeling of littleness Compensation also has its origin in rejection of children by their parents, nurses, and others to the extent that a child who is not wholly

accepted, cared for, and protected is bound to feel inferior and inadequate.

Consequently compensation, in part, is an attempt to overcome this feeling of not being wanted or loved or accepted, not having one's due place in the family, school, and community groups. It may represent, for the boy, competition with the father. Roheim [688] sees many individual endeavors and social phenomena (war) as a way of challenging the demands of the superego which says, "You cannot compete against your father." He refers to the "building sacrifice" which primitive man offers in constructing a new house in order to insure the success of the project and in order to appease the "jealous gods," that is, the superego

Compensation May Be Either Conscious or Unconscious. Compensation may be either conscious or unconscious, and to the extent that it is conscious, it does not represent a true mechanism as that term is used in this book Compensation may be an act of the conscious ego in making a reasonable adjustment to inadequacies of the self, or it may be an adjustment of the unconscious part of the personality to weaknesses of which awareness has been repressed.

FACTORS COMPENSATED FOR

Physical Defects. One can feel inadequate or inferior in practically any way, whether physical, mental, social, or personal. Adler [13], who has developed the theory of compensation for inferiority most extensively, placed his original emphasis on compensation for physical defects Almost any bodily anomaly becomes a weakness and limitation for which a person feels it necessary to compensate Being tall or short, fat or thin, having poor eyesight, poor hearing, scars and blemishes on the skin, particularly on the face, excessively large or small features, may make one feel inferior and require compensation. Lameness, a poorly functioning heart, weakness caused by some exhausting disease, or malnutrition are functional bodily weaknesses. Then one finds that even such attributes as acne on the face, freckles, red hair, straight, stringy hair, prominent teeth, pop-eyes, sloping shoulders, and many other deviations from the normal in physical development are characteristics which, if they cause one to feel inferior, require compensation

Low Mentality. One of the most depressing factors causing feelings of inferiority is low or inadequate mentality. Of course, if a person has a very low mentality, he does not recognize its significance and goes on his way quite oblivious of the pity that he engenders in others A person who feels most inferior would seem to be the person who is of average or even above average intelligence but who has had to live in a family or community where there are others much brighter who have been given respectful recognition for their intellectual gifts So high a premium has been placed on intellect that the feeling that one is intellectually inferior would seem to be the most poignant of all feelings of inferiority. When

one child in a family is praised for being bright, another child will frequently compensate for his lack of distinction along these lines by developing social charms or striking beauty

Economic or Social Status. Inferior social or economic status when comprehended is painful and must be compensated for. Feelings of inferiority in social or economic status are wholly a matter of comparison One can feel superior to those in the class below, inferior to those in the class above If one lives in the midst of his own class and has no contact with others in the class above or below, he has little feeling with regard to class position If, however, he lives on the border of his class or even in the midst of the class above or below, his feelings become more intense In particular, if a person is thrown into a class above his, he is made to feel inferior and must find some way of compensating for this feeling The college student, for instance, who finds it necessary to earn his way in the summer by waiting on table at a hotel or tutoring in a private family is often made to feel uncomfortably inferior because of the indignity of his position in comparison with those whom he serves, especially in view of the fact that during the year he may be on a par with those whom he serves during the summer The man who suffers a loss in the stock market may attempt to overcome his loss by keeping elaborate charts

Moral Status. One can also feel inferior and be forced to make compensation for evil or ignoble impulses in the self. One's moral standards of right or wrong and his ambitions may not always be lived up to, and he is driven to find some way of compensating for them.

One man of my acquaintance who was destined by his mother to become a gentleman but has never been able to hold a position which equals the goals which he set for himself, compensates for this by his extremely neat and elegant dress He lives the part of the gentleman in his dress even if he is not able to attain the position that would permit him to live the life of the gentleman in actuality.

TYPES OF COMPENSATION

Overcoming a Handicap. The first and most important kind of compensation is that which attempts directly to overcome a handicap or limitation or defect. The boy who has had a long lingering ailment and comes out of it somewhat weak and emaciated may attempt to build up his muscular tone by systematic exercises and recreation. Theodore Roosevelt, by cultivating an active outdoor life, developed into a hardy and robust man from a sickly boy. Glenn Cunningham became one of the world's greatest runners as a result of exercise which he took to restore use of his legs after severe burns. The boy who is a poor scholar in mathematics may give all of his energies to the study of mathematics in an attempt to overcome this deficiency. I once talked to a school headmaster whose theory of education was that every person should specialize in those subjects in which he had the most difficulty so that he could overcome these weaknesses and hence develop himself into an all-round

scholar This particular individual found languages gave him the greatest difficulty in high school He specialized in language in college in an attempt to bring his competence in languages up to his competence in science and mathematics

The child who has grown up on the wrong side of the railroad tracks may have set for himself the goal of accumulating a fortune, and he persistently follows this goal so that eventually he can build himself a fine house on a large estate and take his place in the society from which at one time he felt himself an outcast The boy in adolescence who has come up from childhood with an overwhelming sense of guilt, and perhaps unconscious feelings that he has transgressed the moral code, may attempt to compensate for this imaginary moral defect by straight-laced asceticism and rigid observance of the moral code

When compensations are adequate, that is, when a person can be recognized for his talents along some line, he can afford to repress aggression and to accept dependency. The artist or scientist who devotes his life to his pursuits and thereby sublimates many of his desires can afford to transfer the management of his affairs to another person.

Sex. Much has been made in psychological literature of the inferiority of women and their attempts to compensate for this feeling Part of the basis of this inferiority is physical, but a substantial part grows out of the cultural position which women have traditionally held. Bearing a child may compensate a woman for her past feelings of inferiority.

Turning the Handicap into an Asset. Some defects cannot be corrected A second method of directly overcoming a handicap is by turning the handicap into an asset This is called overcompensation, but that is not the customary meaning of the term. (See the meaning by Adler cited on page 441) It is only the unusual person who can do this, however, Many persons suffering defects have devoted their lives to a study of the ways in which persons with these defects can be made to live useful and happy lives. Helen Keller, who is both blind and deaf, has been a source of great inspiration to others who are afflicted with the lack of these senses of sight or hearing by what she has been able to accomplish in spite of her handicaps. The person who is blind or deaf naturally is not able to regain the use of his senses except in the most exceptional cases. The boy who is lame or who has a cleft palate must find some way of compensating for such handicaps by developing a situation in which the defective function is useful The slender boy will find himself wanted as the coxswain of the crew or the jockey in the horse-race The tall boy will find that his height is an asset when he applies for a job as doorman at a motion-picture house or hotel Actually it has been found that in some occupations too high an intelligence is a handicap rather than an asset The bus driver or delivery man whose mind is so active that it flies away from the monotony of the task is less effective in such positions than the man for whom the job offers a greater challenge There would

seem, therefore, to be a place for the person who deviates from the normal in many directions, and one way of compensating for these abnormalities is by finding the place in which he will be most useful

Substitution of One Function for Another. A third and common method of compensation for personal limitations is by the substitution of another function for the function which is weak Sometimes this is done by developing the opposite of the function The tall girl, for instance, will slouch in order to compensate for her height, while the short man will strut about and bluster A whole science of dress has been developed which helps a woman to conceal any exaggerated feature by the skilful use of line, color, or contrast A manufacturer may pay his labor inadequate wages and then compensate to ease his conscience by establishing hospitals, parks, social services, each with his name inscribed in a prominent place as the gracious donor. A poor man may be satisfied if he can convince others (and himself) of his uprightness.

Most frequent, however, is the development of allied functions, and this probably will constitute the most obvious and frequent kind of compensation.

Marvin has always been a sickly boy and has not been able to participate in games like the other children in his block He has compensated for this by much indoor play and by becoming interested in the books in his father's library. He has developed a studious interest in history and will spend much of his spare time reading in the public library He is known to the boys as a bookworm and as a grind On the other hand, they are forced to respect him, particularly since at graduation time he was called up to make the valedictory address, which was very mature for a boy of his age

Jack, on the other hand, has an I Q of between 90 and 100 School work is difficult for him, and he has never cared much for it This is due in part to the fact that his older brother has always done well in school Jack compensates for his low marks by his interest in athletics. He is extremely fond of sports, goes out for football in the fall, basketball in the winter, and baseball in the spring, and in the summer loves tennis and swimming During the summer months he had no difficulty getting a job in a summer camp, while his older brother was forced to stay home Jack will undoubtedly be successful, as he makes friends so readily, in spite of the fact that he has not been able to do well in school

Zim [882, pp. 126, 127] describes how interest in science can serve as a compensation for deficiencies in other directions

In a sense attempting to gain security through a science interest is one form of compensation Compensation is a strong drive in interest development An adolescent may increase his interest and activities in science because of academic difficulties, physical defects, or social maladjustment. Lack of affection at home, birth of a new brother or sister, splitting of the family or other internal family problems may lead to compensatory efforts in a field of science interests In many cases the adolescent attempts to compensate for some personal deficiency through activity in science Such compensations may hinder normal growth for the student They may be attempts to intellectualize some personal or emotional problem and to solve it by intellectual means Personal sex problems may be

intellectualized into a study of reproduction or genetics but success with these problems does not mean that the student will find a way through his own difficulties More frequently success in the science will not touch the areas compensated for, unless there is careful guidance at the same time Frequently the personal nature of problems involved precludes any help in the school situation, but the teacher who is aware of the function of a science interest for the boy who is trying to find such compensation may be able to broaden the boy's activities in a way that will ease his personal problems

One may suspect that almost any trait or characteristic which is exaggerated in an adolescent or a child is a compensation Loud tastes in dress, wisecracking and tomfoolery in the classroom, taking up such hobbies as playing the saxophone, making woodcuts. collecting cacti or birds'-nests, when such activities are overdone, may be suspected of representing a compensation.

Anti-Social Behavior as Compensation. In many cases anti-social behavior can be thought of as a compensation. Sometimes anti-social behavior is a compensation for some defect or limitation The child who is failing in school attempts to secure recognition by creating trouble It seems strange that recognition is so strongly desired that the child will attempt to gain it by undesirable as well as by desirable conduct, but such seems to be the case. Very obviously and directly a boy who comes from a poor family and is denied the privileges of a child in a better-situated home or who lacks toys or even food may compensate by stealing. In many cases delinquency can be attributed in part to the desire of an adolescent to achieve for himself notoriety, glory, or even crude compensation in reality for his social status It must be recognized, however, that the motivation for delinquency involves many more factors than can be included under the heading of compensation.

Compensation Through Play. When a child is not able to succeed through achievement in the classroom or through developing skills, he may compensate for this by play In play the competitive element provides an opportunity of asserting oneself in an endeavor to win Many persons engage in games of chance with the hope that if they cannot succeed through their skill, chance will give them the success which they crave.

Compensation Through Ceremonials and Charms. Another method by which an attempt is made to compensate for deficiencies is through the magical means of charms, superstitions, and ceremonial acts. A boy may carry a squirrel's tail on his bicycle or a lucky stone in his pocket and derive from these a certain degree of comfort through a superstitious belief that they will bring him luck Such obsessional acts such as touching fence posts or stepping on cracks in the sidewalk are engaged in because of their magical significance and because they serve as substitutes for other more meaningful acts, perhaps of an aggressive nature, which are denied direct expression. Many of the ceremonial observances in religion

take on this same compensatory significance, substituting for repressed acts or serving as propitiations for behavior in real life

Compensation Through Symptomatic Acts. There are a large number of meaningless acts and gestures recognized as expressions of neurotic tendencies which can be thought of as representing compensations or substitutes for other forms of adjustment which have failed to yield satisfactory results A child may resort to temper tantrums as a last resort in having his way and exerting influence over his parents. If the temper tantrum is a substitute for more direct persuasive methods, it can be thought of as a form of compensation

Speech offers the most convenient vehicle for the expression of compensatory tendencies By boasting or bragging one may cover up his real feelings of inferiority A boy may boast of having ridden in the cab of a locomotive or flown in a four-motored bomber to strike awe and respect in the hearts of his listeners, but he is also hereby bolstering himself against his feelings of his own essential unworthiness By belittling others one can assume a more lofty position in one's own regard

Fantasy as a Compensation. Fantasy may be a type of compensation Rather than attempt to make up for one's limitations by some sort of substituted behavior, it is possible to compensate in fantasy The boy that is handicapped physically may day-dream of his exploits on the athletic field. The girl who is plain and homely or whose mother has old-fashioned ideas of dress may compensate by imagining herself a modern Cinderella In fact, much of the day-dreaming that goes on in childhood and adolescence is of a compensatory nature, acting out in fantasy the successes and exploits denied in the actual world Fantasy has one advantage over open verbal boasting, in that it can be done in secret out of sight of public gaze or hearing, and consequently can become wild and exaggerated

Compensation Through a Second Person. Finally, compensation may be accomplished through a second person.

Mrs K., growing up in a minister's family where one had to watch one's step, missed the normal experiences of adolescence, apparently because a minister's child is held up as a model in the community Mrs K.'s mother herself was a very narrow-minded person and believed that a great many harmless enjoyments were sinful Mrs K.'s father was likewise a stern and uncompromising man Consequently when Mrs K.'s young daughter was entering adolescence, Mrs K wished for her pleasures and experiences which she herself was denied as she was growing up She encouraged her daughter to go to dances and week-end parties Mrs K stinted herself in order that her daughter could have a number of sport and party dresses She encouraged boys to come to the house and pushed her daughter forward into social life

This process has already been amply illustrated in the chapters, "Identification" and "Projection."

RESOURCES FOR COMPENSATION

Vocation. Among the resources for compensation may be mentioned first one's vocation. Many a person has selected his vocation as a way of compensating for some limitation When one has been a failure in his vocation, how does he compensate for it? One way is to teach the skill of which he has not quite made himself a master. It is a fact that some of those who go into teacher-training institutions as instructors have actually not been wholly successful themselves as teachers in elementary or secondary schools There is a well-known saying that "those who can, do, those who can't, teach" One may suspect that many famous teachers of voice or piano or of golf or tennis have been almost champions, but not quite having championship caliber, they have compensated for this by taking on the task of instructing others

Avocation. One's avocation in many cases becomes a very effective form of compensation Many a person's hobby actually becomes his most important contribution, and often a person has won through his hobby the fame and esteem he has been unable to gain in his vocation The same trait has already been mentioned with regard to pupils in school When a pupil has not made a success of his school work, he may gain compensation by taking up some fad or hobby and devoting much of his time to it and may make himself a success to compensate for his lack of success in school work I have in mind a young man who was not altogether a failure in school but compensated for his low marks in some subjects by establishing for himself a successful stamp business which nets him a small amount of money each year

Personal Characteristics. Personal characteristics can be used as compensations. One may compensate by fine manners, by courtesy, by good conversational ability, by striking or chic appearance, or by ability to manage large undertakings successfully

Possessions. Some persons compensate through their possessions By owning a fine automobile, a fine house, a kennel of championship dogs, a man may compensate for his lack of ability in his work or for his lack of social graces

Play Children in their play often compensate for real or imagined personal limitations Lehman and Witty [490] in studying play in school among children, came to the conclusion that children gain a good deal of compensation by this make-believe play These authors point out that playing school is a favorite game among Negro children, and they believe that by playing school Negroes compensate for their actual inferiority with regard to school work or perhaps more often for the treatment that they receive at the hands of others

Philosophy. The philosophy or point of view has already been spoken of as one of the resources for compensation Sense of humor may be

mentioned in this connection A man with a sense of humor who can turn aside a slight or slander by seeing the funny side of it has equipped himself with the most valuable compensatory aid for meeting rebuffs Of quite a different sort but still of the nature of fantasy are those readjustments that a person makes in his attitudes by which he is able to accept or tolerate his limitations in his situation and hence adapt himself to them One's philosophy of life, whatever it may be, whether that of denying his wishes or taking the blame for his limitations on himself or finding some other rationalization for them, is a form of compensation.

GROUP COMPENSATION

Compensation is a phenomenon which may be observed in groups as well as with individuals Vaughan [819] has made a special study of the operation of compensation as a social phenomenon

The Labor Strike. A good illustration of this is the labor strike. Vaughan points out that the strike is more than a device for forcing employers to adjust wages or working conditions to the wishes of employees The strike is a device for forcing on the public a recognition of the importance of the job, thereby enhancing the worker in the eyes of the public The essence of the strike is its quality of display which brings it into the focus of public attention A strike also serves to compensate the individual members of the union for their sense of weakness, dependence, and impotence against the owner who represents power, domination, and coercion

Radicalism. Radicalism is a social philosophy which many persons have adopted as a form of compensation for their own feeling of social inferiority Those who adopt radical points of view frequently are those who feel socially inferior, and their extreme social philosophy may be thought of as an attempt to make themselves superior to others It has been pointed out that radicalism often derives itself from the reaction to a stern and dominant father In this sense it is a protest against authority by setting up in fantasy a new and higher authority While this is not necessarily true of every individual who has adopted a radical point of view, it is true often enough to make it a generalization In recent years a prevailing radical philosophy in this country has been communism Those who express the communistic point of view are more often than not those who are struggling for position in their economic, professional, and labor groups Those who preach revolution are obviously dissatisfied with the present social order and, being unable to see a satisfactory solution to their own problems through the regular channels of social change, readily recommend a more drastic process.

Religion. Religion represents a social institution which has been established, among other reasons, to serve as an organized compensatory mechanism Through religion one learns to accept one's status. Religion also

supplies in the form of faith or consolation what one may be denied in the real world.

Religion makes one feel that he belongs to the great company of the redeemed. Christianity emphasizes the intrinsic worth of personality. Friendship with God through ritual is stressed Religion, then, by stressing the worth of personality serves as a compensation for some of the deficiencies and trials in the reality of living.

Social Reform. Another social phenomenon which is compensatory in character concerns the various movements for reform, such as the movements toward peace, toward anti-vivisection, the control of vice, the war on rackets and gangsters, temperance reform, and so forth The zeal and ardor shown by those who are zealous for reform is a distinct phenomenon In many cases it has been demonstrated that the reformer in his intolerance, singleness of purpose, and zeal is protesting against a feeling of inadequacy. Naturally this description of the reformer will be disputed because undoubtedly many reformers are honest and sincere persons, but underlying the reformer's zeal will in most cases be found something within the individual's own psychology which has made this activity of such importance to him

Feminism. Feminism, now somewhat abated as a revolutionary movement, at one time was a compensatory social movement It again was believed to have originated in the organized protest of women against their inferior social status and was pursued with the extravagances which characterized it partly because of the intense need of those who championed the cause

Compensation of Special Groups. Special groups may be singled out as having special needs for compensation One of these is the Jewish people, whose singular history has given it special problems to solve The Jewish people are peculiar in that they have had for centuries no organized homeland and have adopted citizenship in every country This adoption of homeland has made the Jews in every case a minority group and has forced upon them certain characteristics which are readily recognized as being compensatory in nature The feelings of inferiority which underlie the Jewish character (in general, though not in every individual) are compensated for by overaggressiveness and push, particularly in business relations, which have further helped to alienate the Jewish people wherever they congregate in larger cities

Another special group who have been forced to adopt special methods of compensation are the Negroes in the United States Negroes during the period of slavery held an exceedingly inferior position, and since the Civil War they have never fully outgrown this status In one of the studies by Lehman and Witty [491] these writers found that Negro children tend to engage considerably more frequently than white children in church activities, playing school, writing poetry, and boxing It is interesting that boxing should be particularly popular among the Negroes.

It is one activity in which they have attained notable success which enhances their prestige and status, one in which they have competed fairly with white contenders. This interest in boxing among the Negroes can be recognized directly as a substitute compensation for the otherwise inferior treatment accorded to them by white people

Although it was the purpose of the foregoing discussion to point out unconscious compensating phenomena operating in the social movement, this is not to assert that these factors take care of the total explanation of them It is true that these social movements are based principally on real needs and real purposes.

SOME THEORETICAL CONSIDERATIONS

Compensation an Adlerian Concept Compensation for inferiority or feelings of inferiority has been given special prominence by Adler in his school of individual psychology Adler makes the drive for superiority the central driving force in human activity and sees the inferiority or the feelings of inferiority as responsible for most maladjustments. Adler and his followers have elaborated the theory of compensation more thoroughly than any other school of psychology

Erotic as Well as Ego Element in Feelings of Inferiority. Freud [297], however, has taken issue with Adler in his extremely simple analysis of the feelings of inferiority, pointing out that along with the actual feeling of being inferior there is an erotic element In compensation, therefore, according to Freud, a person wants to be loved and accepted as well as to believe himself to be adequate. The two are rather difficult to separate in an actual situation Anna Freud [251] has found that feelings of inferiority grow out of the family situation in which the child is unloved and unwanted fully as frequently as the situation in which the child is suffering from some personal defect In addition to this point of view it has been observed also that compensation is a defense against one's own dangerous impulses The ego has to adopt special devices for protecting itself against these dangerous impulses which it recognizes, and the various mechanisms which the ego adopts for its own defense are directed primarily against these feelings of guilt and unworthiness Feelings of inferiority, therefore, include not only actual estimates of inferiority and feelings of wanting to be loved, but also self-depreciation because of imagined guilt and failure to live up to moral standards.

There is a homosexual component when a man attempts to compensate for his guilt and feelings of inferiority by social ambition and competition, as for instance, in playing a friendly game of chess.

Compensation may be contrasted with reaction formation In compensation one attempts to deny outer reality and the reality of one's relations to the outside world. In reaction formation, however, there is an attempt to disguise the reality of inner drives and impulses by expressing their opposites.

VALUES OF COMPENSATION

Positive Values. Compensation has both its good and its bad implications. On the one hand, it is one of the important and necessary methods of adjustment to be adopted where there seems to be a real or imagined personal defect or deficiency When it leads to satisfying and useful fields of endeavor, compensation is a good method of adjustment Its results can be considered good when they yield superior accomplishment Compensation represents an active outgoing method of adjustment Insofar as it stimulates ambition and leads to increased effort, it may be thought to be an acceptable and beneficial kind of adjustment Compensation, to be wholly acceptable, ought to make a person attractive to others, and in many cases it does accomplish just this Insofar as the compensation results in a changed attitude by making the person less sensitive to his inferiorities, it makes it possible for him to accept his status, which should result in a relief of tension leading to satisfaction and calm. Compensation, therefore, may help a person to be happy himself and also more acceptable to others

Negative Values. On the other hand, compensation is bad when it does not lead to the results just mentioned For instance, if it tends to alienate and isolate a person from others, making him less socially acceptable, it cannot be said to be a good form of adjustment If the form of compensation adopted is one of attention-getting which annoys and interferes with others, leading eventually to asocial behavior and delinquency, it again can be thought of only as harmful and injurious Compensation is not the best form of adjustment available when it results in some sort of exaggeration of behavior Most of the substitute forms of compensation are effective only when they are exaggerated, and in this sense they do not represent a satisfactory solution to a problem The person with the perfection complex or the need for surpassing others finds that his problems are not solved and that he has chased himself from one state of unhappiness to another

When important areas of life are neglected, as may be the case when one activity is substituted for another, compensation is harmful For instance, if a child who has average intelligence and is made to feel inferior because of his unsatisfactory work in school is encouraged thereby to give up all interest in school and turn his interests to athletics or social affairs, his education may thereby suffer, and in the long run this form of compensation will be a detriment.

Compensation is bad when it takes place only in fantasy and leads to cessation of effort instead of increased effort to overcome the deficiency However, indulgence in the movies may be a valuable safety-valve insofar as the fantasy is somewhat removed from our daily lives and we are not likely to remain immersed in it It is interesting that the attitude toward withdrawing through fantasy is not valued the same way in adults

as in children. The denial of reality is regarded as normal in children, and they are expected, even encouraged, to live in a fantasy world It is all right for a child to enjoy reading fairy-tales, but one would think an adult who spent his time reading Grimm and Andersen had something wrong with him Living in the world of reality and of fantasy can coexist in a child, provided he shifts readily from one to the other at the appropriate time The child is expected to drop his fantasy play at the appropriate time and to wash and clean himself for dinner. In the adult, however, these opposites are much more completely segregated He is expected to live in the world of reality in his daily life and to indulge in fantasy only at appropriate times in the theater or with his detective story Indeed we suspect the person who introduces fantasy into his living, for this is the beginning of the development of schizoid trends and is liable to the danger of more extensive personality disorganization

Compensation is bad when emphasis is placed on only temporary activities or possessions The man who compensates for feelings of inferiority by flashy, loud clothes or a sporty automobile is making only an ineffective attempt to meet his problem When the clothes and automobile become out of style, his problem of meeting his inferiority will still be present with him Compensation that represents a temporary solution to problems can at best be only a palliative

Finally, compensation is not an acceptable method of adjustment when the substitute achievement does not wholly take the place of felt inferiority For instance, if the child compensates for his failure to excel in school work by undertaking some collection or becoming a social lion, he will find that so much emphasis is placed on success in school that none of his substituted activities will completely free him from his feeling of inadequacy with regard to school progress In this sense, then, many substituted compensations only temporarily or momentarily relieve the basic feeling of personal limitation and inadequacy In such cases the problem of adjustment still remains to be worked out in a satisfactory manner Finally compensation may lead to eccentricities, exaggerations, and oddities in personality, and if these become pronounced, they may alienate an individual from others as the group makes him the butt of ridicule, causing him distress and unhappiness.

XX

Rationalization

Rationalization should be a well-known mechanism because it is so common and widespread in human affairs It is the one mechanism which has been most generally recognized by psychologists, perhaps because it has to do with thought processes and comes the closest to dealing consciously with unconscious material.

DEFINITION

Rationalization may be defined as faulty thinking which serves to disguise or hide the unconscious motives of behavior and feeling Rationalization, therefore, takes its place as another one of the defense mechanisms—a defense against having to recognize unconscious motivation in everyday life. It is a device frequently resorted to by many a person in attempting to reassure himself of his own prestige. It is a way of fooling oneself, of making oneself seem more able, more successful, more moral, and more honorable than one really is Rationalization is the blanket which we throw over our own infirmities and weaknesses so that it will not be necessary for us to have to face them directly A boy excuses himself for failing an examination by saying he did not study for it, whereas the examination was actually too difficult for him to be successful in.

FUNDAMENTAL CONSIDERATIONS

Rationalization as Fallacious Thinking. Rationalization is fundamentally fallacious thinking In terms of the syllogism, rationalization is a selection of facts that can be used as minor premises in order to justify certain conclusions already reached One notes three things in this analysis of the process of rationalization first, that the conclusion is given Usually this is an act performed, since rationalizations are very frequently explanations justifying behavior which has already taken place Second, in a rationalization the major premise is also given, and with this no particular fault is found, except that it may not always be a sound generalization The essential feature of rationalization is the search for a particular circumstance to be used for the minor premise which, taken with the major premise, will lead decisively to the conclusion. Rational-

ization, therefore, represents a selection of possible circumstances or reasons which will justify the course of action already pursued

For example, Max comes late to school and on being sent to the office of the principal finds it necessary to have a reason for his lateness Lateness is the action which must be justified Among the real reasons are the boy's dislike of school, the pressure that he is under at home to make a good record, and the convenient way of showing his hostility toward his parents provided by the demerits he receives Max, however, is only vaguely aware of the former reason and is entirely unaware of the latter When faced with the necessity of finding an excuse to satisfy the principal, he begins to search for a reputable one First it is necessary to persuade himself that it was not possible for him to get to school any earlier "Yes, as I was coming down the walk I noticed a trolley car just leaving, and it was five minutes before the next one came I am sure that there must have been a delay in the street-car service" This seems reasonably convincing to him, and so he plans to use it as his excuse The syllogism in this instance would run something like this Major premise—if there is a delay in the street-car service, I shall be late to school Minor premise—there was a delay Conclusion—therefore, I was late to school.

The distinction between a rationalization and correct thinking is the distinction commonly made between the good and the real reason The real reason is the state of affairs essentially and necessarily connected with the conclusion which is to be justified A good reason is a circumstance selected out of many that could have been chosen which contains a superficial or concomitant explanation

In this analysis, the implication is that certain facts are overlooked, and necessarily so, since they are repressed and therefore are facts of which the individual is unaware In rationalization there is a disproportion of emphasis Uncomfortable facts are disregarded in favor of ones which will not serve as deep-seated threats to the essential integrity of the person concerned

Motivation. Rationalization is an effort to guard one's pride by escaping the necessity of recognizing the real basis for behavior for which one feels ashamed and guilty In rationalization, behavior is not repressed as is the case of other mechanisms, but is an attempt to distort its meaning or significance so as to make it acceptable in the pattern of living One rationalizes to avoid wounding one's self-pride by acknowledging the underlying and fundamental motives for the behavior which one finds it necessary to justify.

Rationalization is primarily an effort to effect a compromise between an impulse or compulsion and the demands of social propriety. In this sense, it is an effort to resolve the conflict between the basic drive and the superego or cultural standards to which an individual is sensitive. Rationalizations always appear to be attempts to justify oneself to others, but more basically they are attempts to reconcile conflicting tendencies within.

A subsidiary motive for rationalization is the attempt to minimize the successes and virtues of another person toward whom we feel hostile or

with whom we are in competition. As in the primary form of rationalization, one tends to find arguments and reasons for depreciating and degrading the behavior and motives of another person.

Characterized by Inflexibility. Rationalization as a method of thought is characterized in general by inflexibility, fixity, and stubbornness Since in rationalizing the person is not entirely free to cast around for possible explanations from which to select one that seems, by all the canons of logic, most fundamental, he must protect his reasoning artificially, and this is frequently accomplished by the force of the assertion and the stubbornness with which the reason is held One reason why rationalization is inflexible is that it usually is accompanied by or follows the arousal of emotion, and emotion notoriously leads to an exaggeration of response and inflexibility

Logic-Tight Compartments of the Mind. The person who rationalizes also tends to show dissociation in his mental processes The term, "logic-tight compartments" of the mind, has been used as a picturesque description of the mental processes of selecting reasons in rationalization The person who rationalizes, for instance, is usually inconsistent He may stand for liberalism in philosophy but he is quite reactionary in his political or economic views He may stand for social security and be an active worker in various charitable enterprises, but when it comes to passage of laws which would limit the income of a corporation in which he has invested or which would increase his taxes, he takes a very reactionary stand It is almost as though barriers were erected in his mind preventing him from seeing the essential relation between his point of view with regard to social security, on the one hand, and the necessity for the redistribution of wealth on the other The same person will claim that cigarettes steady his nerves and stimulate him People whose minds are divided into logic-tight compartments tend to accept things on authority rather than investigate all of the implications of their beliefs

Signs of Rationalization. In the following illustrations of rationalization, one may feel as though all reasoning tended to be a form of rationalization and may even begin to distrust any of his own reasoning Of course this is not true; all reasoning is not necessarily a rationalization Rationalization can be recognized by a number of clearly defined signs One signal is the person's attempt to hunt for reasons If the principal in asking Max, for instance, finds that Max stumbles and halts in his his effort to produce a good reason for being late, he may suspect that Max will never give the real reason even if he knew it, but is searching for an approved one that will be a rationalization Secondly, the extent to which a person avoids rationalization in his thinking can be determined by the consistency of his thought. If in discussion one uncovers certain inconsistencies that the other person fails to recognize, or, recognizing them, attempts to justify further, one may suspect that rationalization is at work.

For instance, Mr M, who is at a bridge party where it is proposed that they play for small stakes, refuses on the grounds that it is against his principles On other occasions, however, it has been noticed that Mr M does not have the same scruples in regard to living up to some of his other standards with rigid consistency If Mr M is willing to compromise in one situation, one may suspect that there is some unexpressed reason behind the refusal to do so when playing bridge Perhaps at the bottom of his expressed conviction is some deep-seated feeling with regard to playing for money which outweighs any possible gain in wealth or prestige.

Another sure method of detecting rationalization is by noting the amount of emotion shown during a discussion A person who rationalizes is almost sure to lose his temper if the adequacy of the reasons which he gives is questioned. The man who is not rationalizing meets challenges on their merits and pits one argument against another with a flexibility and a willingness to change his position, giving reputable explanations for doing so

Finally, rationalization can be observed by the presence of blocking in free association This is noted in psychoanalysis when a person who is attempting to protect himself frequently experiences long blocks or pauses as his associations lead to material which arouses anxiety One notices this in everyday life also The person who finds it difficult to carry on a discussion that is taking certain directions shows evident signs of discomfort and distress and is either inhibited in his conversation or turns the subject to some other topic. When this occurs, one may suspect that the previous conversation has included an element of rationalization.

Rationalization as a Disguise. Rationalization may be thought of primarily as a disguise of the self for the self First and foremost, we wish to protect ourselves against recognizing our own motives which a part of our personality would consider ignoble, mean, and discrediting In order to maintain a certain integration of the personality and to find ways of making all kinds of behavior and circumstances acceptable, one resorts to rationalization However, the integration is not complete, hence, the logic-tight compartments It is after one has persuaded himself of his rightness and integrity that he then attempts to justify himself to the world and persuade others also that his reputation is still unsullied One naturally thinks of rationalization as an attempt to prove to others that one's motives are noble, but it should not be forgotten that preceding this attempt is the necessity of persuading oneself

Hollitscher [367], in a short paper as a testimonial to Ernest Jones, brings out the point that rationalization may be either right or wrong. He would generalize the concept of rationalization to include all forms of justification which attempt to close the gap between the unconscious and the conscious, whether such explanations are true or false In his opinion the explanation of behavior that truly portrays unconscious motives is as much a rationalization as that which attempts to distort and hide unconscious motives. The foregoing discussion has led to the

point of view that rationalizations are always wrong because they are disguises, and consequently Hollitscher's position is not acceded to in this book

Rationalization Used to Fill out Material in Dreams. Freud [297, p 34] pointed out another quite different meaning of rationalization when he discussed the tendency to expand a dream when reporting it in order to give it a certain amount of rationality He explained that we find it difficult to accept dreams which are too distorted and that there is the necessity for modifying them to give them greater apparent reality This attempt to make the products of our unconscious agree with reality he calls a form of rationalization. It is obvious, therefore, that even the long list of illustrations of rationalizations given above does not begin to show the extent to which we piece out our unconscious motives with the clothing of rational explanations in everyday life

Rationalization Used to Justify Fundamental Values. Rationalization may be used to *justify fundamental values,* which are acquired through the process of identification in early childhood Every person grows up a citizen of a country, a member of a church, and a member of a political party with certain basic personal values and philosophy Later he finds it necessary to justify his membership in his political party, his adherence to a certain church, his loyalty to a club or state, and searches for reasons and arguments which will justify his choice It is because of this that one must suspect much of the campaign oratory, for the arguments used in political speeches are more for the purpose of justifying choices made long ago rather than the attempt to help people form their opinions anew.

Use of Rationalization to Justify Behavior of Another Person. One can use rationalization not only to justify one's own behavior, but also that of another person with whom one has identified oneself or for whom one feels responsible A mother, for example, may explain away the behavior of her naughty child by saying that he is tired However, in this example, it may well be that she is protecting herself, as well as the child, by trying to hide her inadequacies as a mother But as a parent identifies himself with his children, he will run to their defense and offer excuses for their delinquencies Generalizing, we find a tendency to rationalize for the failure or shortcomings of our school, political party, golf club, or even state or nation Whatever we feel a part of, that we must uphold and justify

Relation of Rationalization to Projection. Rationalization is not unlike projection In projection, however, an individual clears himself by projecting his faults onto external circumstances or another person To the extent that in rationalization one is transferring the real reason for behavior from one's own motives to some external circumstances or to blame of another person, one is rationalizing by projection In short, rationalization is a method for protecting the ego's narcissism or wish to be loved and admired.

Relation of Rationalization to Mirth. A rationalization easily stimulates mirth both in the onlooker and in the person himself when the excuse thinly veils the repressed tendency. A person may chuckle to see how clearly he is "pulling the wool" over the eyes of others Or the person to whom the excuse or explanation is given may be amused as he sees its speciousness.

TYPES AND EXAMPLES OF RATIONALIZATION

To attempt to classify all the varieties of rationalization and to give illustrations of them would be an impossible task, since rationalization enters into every phase of human affairs The best that can be done is to point out a number of these varieties in the hope that with them in mind the reader will become sensitive to the presence of rationalization in any form. In this analysis the rationalization will be broken up into two components On the one hand, there will be a discussion of the personality limitations and motives, wishes and impulses which can be justified by recourse to rationalization and, on the other hand, the excuses commonly given as protective devices of rationalization will be illustrated.

Personality Limitation. Practically any personality limitation, either real or imagined, is subject to justification by the individual who feels the need to be protective Any error or mistake will frequently call forth an attempt to justify the self "The poor workman quarrels with his tools," and he readily finds occasion to excuse imperfections in his handiwork The cabinet maker will find excuses in the grain of the wood, the tennis player in the uneven surface of the court, the billiard player in the fact that the table is not exactly level Most persons in our culture find it necessary to rationalize their status and excuse their failures, whereas the real reasons may lie in their own deficiencies The person who is in debt to another can usually find many excuses for postponing payment One also finds it necessary to rationalize his social status; Persons in minority groups are especially given to rationalizing about their conditions and failures in life. This is possibly one of their greatest handicaps in that it keeps them from evaluating their circumstances in true perspective. The Negro business man rationalizes that he cannot succeed because Negroes prefer buying from white dealers when, as a matter of fact, he may not have used business tactics that insure success.

Incapacity. It would make an interesting study to ascertain what kind of incapacity makes people feel sensitive and inferior Most persons do not feel it necessary to give excuses for not being good athletes, good musicians, good artists, or good scientists. On the other hand, most persons find it very necessary to justify their mental abilities Probably there is no area in which people are more sensitive or in which it is more difficult to admit incapacity. This may be due to the pressure put on children to succeed in school. The school boy or girl must find a reputable excuse for failure if failure comes his way. In a study under-

taken sometime ago the question was asked of pupils who had left school at the end of the eighth grade, "Why did you find it necessary to leave school?" [49] All sorts of reasons were given, but excuses on the ground of poor health and necessity of going to work were among the most frequent. Undoubtedly, there was some truth in these reasons, but the explanation of lack of ability to do the work in the succeeding grades or lack of interest in school was given much less frequently than should be expected.

A person who has an incapacity for being aggressive will feel particularly virtuous for the kind consideration which he has for the feelings of others. The person who is unable to defend himself against the attacks of others will satisfy himself on the basis of his capacity to understand other people The man who is unable to go after what he wants will feel a glow of self-justification at his unselfish aims There are many persons who because of infantile experiences find it difficult to have adequate sex experiences in later life Most of these persons find it necessary to adopt certain rationalizations Many unmarried women, for instance, have love-affairs but are blocked from consummating them in marriage because of fixations on earlier persons, perhaps on the father They will rationalize each of these experiences, however, finding that the man in whom they were interested did not really measure up to their ideals of what a husband should be. One man, for instance, spends too much time following the racing news. Another is slack and untidy in his person, and still another, in the final analysis, lacks the push and drive to be the success which his sweetheart feels he must be. In each of these cases the affair is broken off and some such superficial excuse is given, whereas the real reason lies in the unresolved fixations coming from early life experiences.

Eccentricity. Most persons with eccentricities, for instance, obsessions, which are their bulwark against disturbing duties and anxieties, find it necessary to rationalize them, usually on the grounds of their social value Indeed, most neurotic persons will find rational excuses for pampering their neurotic tendencies. The man who must have his whole household quiet from two to three every afternoon so that he may have a nap justifies his behavior on the grounds of his health. The mother who has an obsessive need to nag at her son day in and day out about his work in school justifies the action on the ground that in no other way will Arthur be able to get through school

Anxiety and Fear. Many people carry around a burden of anxieties and fears which they find it necessary to rationalize either verbally or in behavior in order to protect themselves Many women, for instance, are afraid of approaching old age, and they do everything in their power to retard its advance. The cosmetology industry has been developed largely to help women ward off the encroachments of age Most persons adopt a variety of rationalizations against disease and pain They will

try to persuade themselves that the pain does not exist, or that its treatment can be postponed Other commonly held anxieties against which most persons find it necessary to bolster themselves are the fears of being neglected, of being poor, and of being ugly Fear of social disapproval and losing caste with others is a basic cause for rationalization both in word and in behavior.

Character Weaknesses. Then there are any number of character weaknesses which must be justified by rationalization One person may attempt to justify his selfishness on the grounds that he must look after his own interests first, because only when he himself is healthy and satisfied can he be of service to others Then there is the need for justifying the taking of personal advantage of others and being domineering For instance, a man takes an active interest in politics, justifies this interest on the grounds of national and state welfare, and makes generous contributions to the campaign funds of the Republican party He maintains that the economic well-being of the nation is possible only when the Republican party is in control Actually, however, this may be a façade to cover up his interest in possible greater profits in connection with his own business

Jealousy is frequently covered up by rationalization Members of a society will institute rigid tests for membership and will carry on elaborate initiation rituals, all designed by the unconscious as a way of proving their own superiority and humiliating the newcomers who threaten their position

A group of high-school seniors were discussing the personnel of an important committee Theirs was the job of nominating the members Betty, a prominent girl in the group, objected, unjustly, to Lorraine, Lorraine would be a competitor of hers later on for citizenship honors, and she did not want her to be given this additional honor

Mrs Y protested against the appointment of Mrs X on a committee in the women's club Mrs Y maintained that Mrs X lived too far out in the country and attempted to mollify her protests by saying that Mrs X was already carrying so many responsibilities that she would not have time to take on this additional one Actually, however, underneath this reasonable protest was jealousy of Mrs X. as a rival

A man may attempt to justify his penuriousness by saying that he must save up for his old age or that he is looking forward to a vacation trip or to buying a new home The reason this is called a rationalization is that the man cannot help being "tight"—it is a character trait ingrained by early infantile experiences

The tendency to hate, which many persons seem to hold irrationally, is often justified by finding superficial reasons for disliking or hating the other person The man who frequently finds it necessary to escape from responsibilities must also accompany his refusals with reasons almost certain to be rationalizations.

Idealization. The process called *idealization,* in which a person in love tends to overvalue his loved object, rests in part on rationalization.

James rhapsodizes over his sweetheart and in his fantasy attributes to her the most extravagant excellences He gives expression to these spiritual merits by poems addressed to her He fails to recognize the sensual basis of his attraction and worship, but rationalizes the sensual by reference to spiritual charms.

Sex. Finally, in our society where sex expression is taboo except in the institution of marriage, it becomes necessary to rationalize all pre-marital experiences.

Kathryn, an emotional girl of seventeen, had sex relations with one of the boys in her high-school class She justified her actions by saying that she was getting the experience which every woman should have before she marries "No man wants to marry a woman who is a novice in such matters "

It is also common for adolescent girls who regret early sexual experiences to blame their parents for not informing them of the dangers involved or exercising firmer control, although this very control was bitterly contested at the time

EXCUSES GIVEN IN RATIONALIZATION

To list all the varieties of possible excuses that might be given as rationalizations would be quite out of the question All that can be attempted here is to give a few examples of certain recurring types We hear daily such simple rationalizations as, "I can't," as an explanation why one does not do a certain task, or, "I had to do it," "I couldn't help it," "It's nothing at all," for explaining away some aggressive act

Liking or Disliking as an Excuse. A common excuse is simply that of *liking* or *disliking.* The girl who was not invited to the dance said she did not go because she did not like the crowd. The man who buys himself expensive cigars insists that he does not like any of the inferior brands and finds particular enjoyment in the more expensive ones Of course this latter explanation may well be a real reason, but underneath it may have been some other equally important unconscious explanation, such as the necessity to punish his wife by spending more for cigars than he could afford Many teachers profess a special interest in counseling Were the truth known, they wish to transfer to counseling sometimes because they are not wholly successful as teachers, and also because they hope in that way to work through to a solution of some of their own problems.

Placing Blame on Extenuating Circumstances and Other Persons. It is very common to place the blame on *extenuating circumstances* "My watch stopped," "The car was late," "My tools were dull," "The light wasn't good," and so forth, are excuses which we hear every day. Of almost equal frequency will be the excuses given of physical incapacity;

"I did not hear," "My eyesight is not good," "I have a lame back," "I am just getting over a cold." The mountain climber feels that he is justified in not reaching the peak because of mountain sickness, when actually he has lost his enthusiasm for the hardship and physical effort necessary to accomplish his goal.

It is also very easy to place the *blame on other persons*. One rationalizes by projecting. Complaints are made that other persons were not prompt, that one had to stay home to look after the baby, that one's teacher did not give the expected help, that one's father did not arrive with the car, and so forth.

Rationalization in Reference to Authority. Acts are commonly justified by pointing to others in positions of authority or respect. A boy who did not wish to comb his hair might refer to Lindbergh, following his elevation to a hero, or a married woman who continues to use her maiden name in business may refer to former Secretary of Labor, Madame Perkins. In these rationalizations there is also an identification which brings one close to the unconscious significance of the rationalized act.

Blaming Oneself. Next to blaming other persons, a frequent form of rationalization is *blaming oneself*. The need for self-depreciation is never simple, and the mechanism involved is never solely that of rationalization. There is always some way in which aggression has been turned in upon the self to take the form of self-depreciation. Some examples of this have already been given. The man who justifies his lack of aggressiveness on the ground of humility, which he terms a virtue, is an example of this. The Beatitudes have been used by persons for centuries as ways of justifying their low estate and lack of worldly success. It is common to find excuses for accidents where, if the truth were known, the accident may have been unconsciously brought about as an explanation that could be used for self-justification. For example, a child may have blotted his paper and berated himself for his carelessness, when the accident, which was unconsciously permitted or even intended, only covered up his inability to do the task called for. Some individuals frankly admit their faults, thereby unconsciously excusing themselves from having to correct them in reality.

Various Excuses. One may use *relative importance* as an excuse. For instance, one young boy reads the newspaper on Sunday morning with remarkable thoroughness. When he is reminded of certain chores that are his responsibility, he snaps back, "There is nothing more important than current events. One just has to know what is going on in the world." Similar excuses have been heard from boys and girls who insist on listening to the news on the radio instead of doing their homework, and then continue to listen to the next skit. Another excuse which is frequently heard is the necessity of *making an exception*. "Just this one time" is commonly used as a rational excuse, as though the oneness in carrying its own weight against the general rule, was made valid.

Mrs K 's four-year-old daughter uses the expression, "Just this one time" to gain an opening wedge in her mother's objection Later she expresses her argument with, "Well, you let me do it before."

Those who have anxieties whose cause is buried in the unconscious may find it necessary to rationalize them by *adopting a real object to fear.* This is the basis of most phobias where fear of a specific object is only an excuse for the real fear buried deep in the unconscious

Sour Grapes. In psychological literature two excuses have been given specific names, although these forms of rationalization are not more important or more frequent than many of the other varieties illustrated here One of these is called "sour grapes," and refers to the excuse so often given that what was wanted is not worth having after all

Mary T , who was not invited to the party, explains that it is a low-brow party anyway, that they never have a good time at parties given by Catherine, and that she has other things more interesting and important to do

Allen, who failed his entrance examinations for the college of his choice, later explains that it is just as well since the standards of work at this college are not very high and hence it would be a waste of time to go there

The boy who could not marry a rich girl later is heard to say that rich girls in general have bad characters The truth of the matter is that this boy had particular financial needs which could have been filled had he married a wealthy girl, and had to find some excuse to justify his failure

Sweet Lemon Mechanism. Opposing this, the other type of rationalization has been named by Gates, "the sweet lemon" mechanism, it is also sometimes called, "the Pollyanna" mechanism Here an undesirable state of affairs is rationalized as having its merits One takes a new apartment which necessitates walking up three flights, but one rationalizes that the benefits of better light and cleanliness outweigh the hardship A boy who has to walk to school four miles each day finds recompense in the fact that he is toughening his muscles and getting an education despite many difficulties This form of rationalization is more highly regarded than others because it relieves anxiety and, at the same time, makes use of other constructive forces in the situation

Doctrine of Balances as Rationalization. There is a pernicious *doctrine of balances* which many persons fall into as a way of justifying their circumstances A rather ugly girl may convince herself that good looks are not so important as success in school It is argued that brightness and beauty are not natural companions Slow learning is justified in the saying, "Easy come, easy go " And those who have reason to be jealous of bright children will argue that bright children tend to be unsocial and to have poor health.

Rationalizing by Reinterpreting Motives. In some cases, where one starts off on a course of action which later proves difficult to maintain, there is the necessity for a *reinterpretation of motives*

Mary H , for instance, gives up smoking but later finds that it is more difficult to abstain than she thought it was going to be Finally, she returns to the old

habit and justifies what she has done by saying she wanted to prove that she could give up smoking if she wanted to and, having satisfied herself that she could, sees no reason for futher abstention

In reinterpreting motives, another familiar excuse is the appeal to duty

Essential Right of the Status Quo. Richard C Cabot in his book, *The Meaning of Right and Wrong* [121], supplies a number of illustrations of wrong thinking, which he makes the basis of his discussion of negative moral values According to Cabot, the essence of badness may be found in rationalization, that is bad thinking. Several of the illustrations which follow are taken from Cabot's discussion Many of these habits of thought that Cabot refers to are deeply ingrained in thought and action and are more common as rationalizations than verbal excuses For instance, there is the argument of the *essential right of the status quo,* particularly of privileged persons Wherever a person gains a certain advantage either through rank, wealth, or position, he comes to feel that these advantages are his by right It is as though he said, "I have power and privilege Therefore, I ought to have them They are my rights" If the advantages or privileges are denied him, he will act like a spoiled child Differences in rank and prestige soon settle into crystallized and permanent forms which are difficult to imagine as changing

Ignoring the Other Person. Another subtle form of rationalization mentioned by Cabot is the *tendency to ignore another person's needs as though one did not know of their existence* This is a subtle form of selfishness all too common in our great cities where the down-and-out person can be ignored on the street by thousands.

Procrastination. In *procrastination,* another form of self-deception, there is a disagreeable task to be performed which can be postponed, thereby postponing the discomfort of it also. This is an insidious form of self-deception and may be classed as one of the forms of rationalization carried out not by verbal excuse but by a form of behavior.

Argument of Necessity. The argument of *necessity* is a common form of rationalization A man wishes to purchase a new automobile even though he cannot afford to do so In order to justify his purchase he persuades himself that it is necessary to the health of his ailing wife who needs to get out into the country At the present time, advertising plays on this form of rationalization It creates a necessity for the many mechanical and electrical gadgets of our era. A person is cruel to himself, to his family and friends if he does not provide the latest labor-saving device to make life easy and comfortable One can argue for almost any course of action by the appeal to necessity

Appeal to Morality. Another form of rationalization may be called *pseudo-morality* This is illustrated by the employer who, wishing to run his business on the principle of the open shop, argues that he has treated his employees for years in a most magnanimous way His wages are above the level of many of his competitors whose employees are unionized. He

maintains that for his own employees to unionize would be detrimental to their cause. These arguments, however, serve merely as excuses to permit his continued autocratic direction of the factory By arguing that he is a benevolent autocrat and stressing the word, *benevolent*, he believes that he has presented a fair and telling argument against turning his factory into a closed shop

Appeal to Fundamental Principles. There are many varieties of appeal to *fundamental principles,* all of which are varieties of rationalization For instance, much sloppy thinking has been disguised as liberalism. The appeal to be mature in all things, the challenge to be tolerant and broad-minded, and its opposite, the calling of names such as "old-fashioned" and "conservative" cover up tendencies to protest against conditions which work hardship on the individual. One finds that the individual who has not been able to achieve a position or salary or social status according to his ambitions will use these arguments

Appeal to Magic. It is queer how universal the tendency is to get *something for nothing* Even in the mental sphere, we delude ourselves into thinking that facts can be brought about by a form of magic We go about ordering or forbidding ourselves by auto-suggestion without realizing that change of habit requires a certain expenditure of energy as well and usually depends upon some sort of change in conditions or at least a change of stimulus or cue. A subtle and deep-seated form of rationalization is an *appeal to self-preservation* as a fundamental right superseding all other motives and reasons "I had to cheat, otherwise I would have failed the test"

Arguments Based on Comparison with Others Another subtle argument representing a curious twist of mind is one that attempts to make *two wrongs equivalent to a right* This is the argument that a pupil who has committed some misdemeanor will use in school when he willingly lets another pupil take the blame He may argue as follows even though it was he who slipped up, his fellow-pupil had previously created disturbances, so that he too was culpable and hence punishment meted out to him is justifiable Another similar excuse commonly heard in schools is that *someone else did something worse* By pointing to the faults of another person, a boy hopes to justify his own blameworthy course of action Or one justifies an act of aggression toward another by saying, "He deserved it" Parents and teachers frequently justify punishment by this flimsy rationalization

PATHOLOGY OF RATIONALIZATION

That rationalization is a factor in obsessional neurosis has been convincingly pointed out by Reik [659] He points out that as an obsessional neurosis spreads, it becomes increasingly difficult to rationalize the symptoms in such a way as to make the obsessional behavior seem reasonable to those about Naturally, a person wishes to protect himself from criti-

cism and ridicule of others For that reason he must find ways of justifying his obsessions, of excusing them, of preparing the way for them For example, if a person has a compulsion to get to the theater early, he must rationalize this tendency by stating that he wishes to see the audience come in or that he does not wish to miss the overture If he has a compulsion to brush his clothes or wash his hands frequently, he must apologize by expressing fear that he will catch some infectious disease

VALUES OF RATIONALIZATION

Positive. Rationalization cannot be thought of as a commendable mechanism. Its values are mainly negative The only positive values that one can see are those which make it possible for a person to avoid facing disagreeable and distressing motives This device may for the time being alleviate the anxiety, but it is an unstable form of adjustment and is always in danger of being toppled over by force of circumstance In general, one may say that good adjustment involves facing of all kinds of reality, which is the very thing that rationalization attempts to prevent As has already been noted, if rationalization at the same time, as in the "sweet lemon" variety, seems to hold other constructive values, it can be considered as a worthy method of meeting and accepting difficult conditions

Negative. Rationalization has more dangers than advantages It tends to blind the man to the rational solution of his problems in the real world It encourages postponing of the solution of real problems and helps a person to excuse himself from facing his problems In rationalization there is also the danger of actually harming others. For instance, the mother who rationalizes concerning her child is putting off a realistic meeting of the child's problems The mother of a dull-normal child may refuse to recognize the reality of his dullness Her anxiety over school progress increases as the child continues to show increasing retardation This anxiety leading to increased pressure creates neurotic disturbances in the child.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS OF RATIONALIZATION

Rationalization is encouraged in a child by putting too much pressure on him and forcing him to justify his every act Parents and teachers should recognize that children are continually acting from unconscious motives and for this reason should not be forced to justify their behavior on rational grounds Often a teacher asks a child, "Why did you do that?" and the child is forced to answer, "I don't know" The teacher, then, persists in trying to get the reason from the child, a reason of which he is unconscious It would be much more important if parents and teachers could understand the unconscious motives back of the child's behavior rather than attempt to force him to produce reasons which have only a rational basis If parents were to accept children's behavior with all of

its irrational qualities, it would be easier for the child to approach his problems more realistically

Arguing with a person encourages rationalization since it forces a person to defend his position He is encouraged to discover more and more rationalizations rather than to admit the uncomfortable unconscious motives back of his beliefs and attitudes Accepting and acting on the rationalizations of another person helps also to establish them A child should neither be forced to find rationalizations to justify his behavior, nor should his rationalizations be accepted once they are given When a child offers an excuse for some lapse or delinquency, parents should recognize the nature of this excuse This does not mean that the child who gives an excuse should be punished or forced necessarily to change his behavior in accordance with the parents' standards On the contrary, when rationalizations have been given, less pressure than ever should be placed on the child so that he will find it easier to recognize and accept his underlying motivations It must be remembered that rationalization occurs, in the first place, because certain motives appear wrong, bad, sinful, and dangerous Parents and teachers must compromise between holding their children up to the standards expected in contemporary society and in not making basic motives seem unpleasant and dangerous

Finally, controversies cannot be settled by labeling arguments as rationalizations This will only add to the confusion and force a person to discover still more subtle forms of deception The best way of helping children to face reality is through the identification with parents and teachers who themselves are able to face reality and are under no immediate necessity to justify their behavior by resorting to rationalization.

XXI

Miscellaneous Mechanisms

In this chapter a number of miscellaneous mechanisms will be described Some of these mechanisms are of more limited significance or have been more recently discovered than the ones treated in the separate preceding chapters.

COMPROMISE FORMATION

Definition. In conflicting situations a person may find ways of avoiding the direct impact of the two opposing trends by softening and blunting the demands of each of the trends This mechanism of *compromise formation* will be discussed along with *condensation* as two aspects of a number of forms of behavior By *compromise formation* is meant that the same act or thought expresses two or more drives or tendencies However, both drives are modified so that neither is completely satisfied For instance, one may compliment another person but may modify the compliment in such a way that it turns out to be a criticism as well "You were swell in that act and so funny I nearly died laughing" Freud has said that every compromise is achieved at a cost of a splitting of the ego

Principal Dynamic Patterns in Compromise Formation. *Compromise Between Conscious and Unconscious Drive* Among the principal dynamic patterns in compromise formation is the compromise between an unconscious, and hence unacceptable, drive and a conscious, and hence, acceptable, one This finds its most frequent expression where there is ambivalence and the same act expresses love and hate For instance, one may give a gift but in some way let it fall short One may send a Christmas or birthday present but send it so late that it arrives after the day, or one may send a gift but get the wrong size or an inappropriate color In these acts giving the gift is an expression of love, but spoiling it is an unconscious expression of hate Another illustration is giving a gift which carries with it some obligation, as when a father promises his son a new jack-knife if he will bring home perfect papers in arithmetic for a month Here the father wishes to show his love for the child but also places demands on him which may well be an expression of hostility. Or, again, a housewife keeps her home spotlessly clean. In doing this she is providing her husband with an attractive home and is priding

enjoy his smokes, leave the newspaper strewn about, or have a corner of the room for his workshop Or a mother may guard her child's health by elaborate precautions but in so doing restrict his freedom. In the winter he must wear heavy clothing and thick rubber overshoes which make running and playing burdensome He must wash his hands before and after each meal and avoid overheating or overcooling himself So a mother, through her love, can also restrict a child's pleasure and thereby show her hostility.

On the other hand, there are occasions where hate is acceptable and love is unacceptable. A teacher may punish a pupil and is so doing obviously show her hostility toward him for his dilatoriness or sloth, but underneath she may be expressing her fondness for him

This conflict of conscious and unconscious drives may relate to narcissism and object love. For instance, one may give a gift which one would like for oneself Giving a gift is usually thought of as an expression of object love, although in the selection of the gift one may be thinking more of what one would like himself than what the other person would enjoy

In each of these illustrations the main intention is spoiled by the intrusion into the act of the opposite tendency

Compromise Between Unconscious Drive and Ego Barrier Raised Against It. A second dynamic pattern would be an unconscious drive which is distorted and only partially expressed because of the ego barrier raised against it One can illustrate this by referring to vocational choice, which is frequently a compromise formation between an unconscious drive and the individual's desire to act in a socially acceptable way. As Brill [101, Ch XIII, "Selection of Occupations"] points out, there is no doubt that physicians and surgeons often select these professions as a compromise method of expressing unconscious aggressive trends and death wishes. In many occupations unconscious desires are working themselves out in socially acceptable performances.

Compromise Between Unconscious Drive and Self-Punishment A third dynamic pattern is self-punishment, which, by payment of a penalty, permits an unconscious and hence unacceptable drive to be expressed. Illustrations of this kind of compromise formation may be found in combinations of fulfilment of sexual wishes and self-punishment. Blushing makes a good example, as illustrated on page 160

Parent-fixation is another illustration in which there is a continuance of pleasure in the parental relationship at the same time that the child cuts himself off from enjoyment of others of his own age. The longer he continues finding pleasure in his relations with his parents, the more he

A third illustration of the compromise between the unconscious wish and self-punishment is when an aggressive wish is linked with self-punishing tendencies. Stuttering, for example, is a token of a more direct aggressive verbal attack. Yet the stuttering brings with it embarrassment and suffering. It therefore serves the two purposes of self-injury and disguise of aggression.

Forms of Expression. *Neurotic Symptom.* Many forms of behavior, notably neurotic symptoms, represent compromises. Persons suffering from asthma who have been analyzed show that their asthmatic attacks are in verity compromise formations. It has been found in a number of instances that the asthmatic cough is a partially repressed cry either of anxiety or of rage [249]. The aggressive tendency in the same cough receives its punishment through the racking and torturing. This is a clear illustration of compromise formation in which the same act serves two purposes, both disguised.

As a second example, hysterical vomiting was found in one analysis to be a symbolic representative of pregnancy. It represented on the one hand the fulfilment of a wish, but on the other hand a flight from it, and the discomfort and disgrace of vomiting also represented a punishment of the wish.

Errors. Many common mistakes in everyday living are subtle compromise formations. Slips in speech or writing may betray impulses and trends quite the opposite from that which is obviously intended.

For instance, Miss L., in mentioning the fact that her family planned to go home for Christmas, said, "They count the days until vacation is here" and then quickly corrected herself and substituted "we" for "they." On inquiry it was found that although she intended to convey the impression that she was most eager for a family reunion, the fact of the matter was that she had a certain resistance toward it, and in order to express both her conscious wish to go home and her less conscious resistance toward it, she made her statement refer to the other members of the family, leaving herself out.

Accidents not infrequently represent compromise formations.

For example, Mrs. Wilson had the tragic accident of dropping the main dish which she had prepared for a luncheon for guests whom she wanted to entertain most graciously, and not only broke the dish, but spilled the contents on the floor. On thinking over the episode later, she recognized the fact that she had a certain resistance to entertaining these particular guests, one of whom she disliked, and she could detect in her dislike a certain envy of the position of her guest's husband. So dropping the dish with which she had taken particular pains was the equivalent of saying, "I want to show you great respect, but I do not want to be generous to you." The episode, which seemed entirely accidental, then represented one of those not infrequent compromise formations in which the unconscious plays a guiding rôle.

In addition to these factors a number of other dynamic factors centered on

this simple act of dropping the dish of food There was guilt at her resistance to entertaining those guests, and the embarrassment at the episode as well as the labor in later cleaning it up served as a form of self-punishment The dish being served was a very ordinary one—macaroni and cheese—which also showed hostility toward the guests, and spilling it was complicated by guilt at serving such a mean dish. Perhaps, in addition, dropping the dish represented symbolically the chance to throw out the guests

This simple illustration shows how a single episode can be the crossroads of innumerable behavior tendencies Mislaying or forgetting objects may also illustrate the process of compromise formation It is commonly recognized that leaving an object behind, after a visit or a conference, has a double meaning It might be interpreted as pure forgetfulness On the other hand, it does necessitate going back for the gift, which shows plainly that the person unconsciously did not want to leave, enjoyed the company, or wanted to be in the presence of the person in whose home or office the book or umbrella was left It would have been quite inappropriate to have said bluntly, "I like you and wish to stay," but the symptomatic act serves the same purpose. There is also the self-punishment tendency here, because it may delay the person in his next appointment, and makes him suffer the inconvenience and embarrassment of returning for the object which was forgotten

Gestures Many gestures and expressive movements are compromise formations In many instances they are abbreviated or attenuated symbols of more overt acts which, at the same time, cause the person distress or irritate others and consequently bring their wrath or annoyance down on him In this way the same gesture may serve as a symbol of the hostility or love which the person feels and his guilt if he were to permit himself full and free expression Clearing one's throat, for instance, has an undeniable hostile meaning in many instances but would, if directly expressed, cause great embarrassment Affected ways of talking with precision or with sugariness likewise may be the utterance of semi-repressed aggressive impulses

Names Names and nicknames frequently betray compromise formations A parent, disappointed over the sex of a child, may show the feeling by assigning a name which reminds one of the opposite sex A boy may be named Francis, or a girl Josephine or Roberta. Barbara may be nicknamed Bobby, showing where the parents' wish lies.

Expression. If we were wise enough it might be possible to interpret facial expressions as postural sets, revealing underlying compromise attitudes and personality trends For instance, the smile may also be a sneer.

Fantasy Fantasies sometimes represent compromise formations in which the thought is freer than can be openly expressed It nevertheless represents a compromise between two competing trends within the individual A man may think of a woman, for instance, as being beautiful but dumb His appreciation of her beauty is his first and natural impulse, which

claims expression, but he is inhibited in giving this feeling toward a stranger a more open expression, and consequently he tempers it by the "sour grapes" attitude that she is not intelligent. This, then, enables him to compromise effectually between his ardent tendencies and his more reticent and inhibiting tendencies

Dreams. One may even find compromise formations in dreams. A person dreamed, for instance, of looking out of the window and seeing another person step from the window out into space. In telling the dream it was recounted that the dreamer lived on the ground floor, consequently the figure seen in the dream stepping from the window was not far from the ground Associations made it clear that this was a suicide dream, but it was necessary to temper this hideous thought, and by placing the episode on the ground floor the element of danger was eliminated. Or, to give another illustration, a man dreams of a nun [333, p 51] In his associations it is evident that actually he had his sister in mind, but his incestuous wishes with reference to his sister were dangerous, and even in the dream it was necessary to disguise the person and to make her inviolable against his wishes Hence the figure in the dream was a nun

Compensation Many compensations take on the nature of compromise formations, as illustrated in the chapter, "Compensation" (p 448).

Vocation Most vocations have an element of compromise formation in that they permit the sublimated expressing of more basic tendencies. For example, the teacher has charge of many children and in that way secures a compromise fulfilment of her wish to bear children Or, through her strictness, her demands, and her punishment, she exercises dominating and aggressive tendencies in ways that are socially approved Through teaching, then, a compromise is effected between satisfying prohibited impulses themselves and the wish to appear acceptable before others

Sublimation Most sublimations include an element of compromise formation. The crusader, for instance, is one who has secret wishes to do the very thing against which he is crusading Within himself he has opposite tendencies of expressing, and revolting against, these tendencies. In the crusade he comes into contact with the vice, the drug, the gambling, or whatever it may be, and thus partially satisfies his cravings, but he also attempts to suppress these activities. The hatred he arouses in those whom he prosecutes is the punishment he brings upon himself for even permitting himself the wish

The Superego a Compromise The superego may be thought of as a compromise between the desire to love and to be loved To love directly is prohibited, and to keep the parent's love and affection, one gives his own love to the introjected parent, or the superego Through the internalizing of the parents and what they stand for, the individual is able to effect a compromise between his desires to love and at the same time to be loved.

CONDENSATION

Definition. Condensation is a mechanism Freud [254] brought into prominence in his work on "dreams" Although it plays a part in many acts of everyday life, this mechanism is referred to almost exclusively in discussion of dream analysis It may be defined as behavior, thought, or feeling which signifies more than one impulse, drive, or behavior trend It represents a junction station, the crossroad of two behavior trends which use the same act, feeling, or thought for their expression But since, in addition, the particular connection with each trend is in a sense buried in the one element, it serves as a disguise of this end or drive It is this power to disguise the drive that makes it a mechanism

Fundamental Considerations. If one takes an element in a dream, it may be the beginning of several lines of association. The same element may refer to an episode of the day before, as well as an experience in early childhood Likewise, many associations could eventually pass through this one element in a dream by starting from a number of different experiences For instance, a person may dream of dancing Later as he reviews the dream, dancing makes him think of skating, or it may cause him to think of taking dancing lessons and his dislike of the dancing teacher, or it may remind him of a certain person with whom he danced at one time many years ago Each of these associations has its motivational element and emotional content The pleasure of skating is thus brought into relation to the pleasure of the relationship with the dancing partner, but the antagonism to the dancing teacher is also a hidden feeling toward this same person with whom one danced years ago Condensation expresses the agreement, similarity, and association between people and experiences which are now fused in one dream image, but these relationships are at the same time hidden because even in the association the connection or relation is not recognized The erotic feeling toward the dancing partner may be recognized and accepted—the hostile feeling toward the dancing partner, which is recognized only in the antagonism toward the dancing teacher, may be quite unacceptable and unconscious It is quite common for love to be felt toward a figure in a dream who is a symbol of some other person, frequently some member of the family, toward whom there are incestuous longings

Motive for Condensation One can see two motives to this mechanism One the one hand there is economy in presentation A dream is a highly condensed working through of numerous unresolved conflicts But the nature of the dream is that in a flash presentation of a few scenes and episodes, these various trends receive concentrated expression It is because each element in the dream carries a load of several of these trends that it serves the purpose of economy But the mechanism of condensation also serves as a disguise. The attitude toward one meaning of a dream element may be conscious and acceptable, but another meaning and asso-

ciation to the same element may be quite unacceptable and unconscious.

Condensation has two essential aspects One is the substitution of one element for another. In this sense it may, and frequently does, use symbolism, and as a person gives his associations to the condensed element in the dream, he really is interpreting its symbolic significance Then condensation modifies or distorts the behavior trend so that it does not have immediate and obvious significance

Condensation a Factor Which Produces Weird Effect in Dreams Condensation is the factor that produces the weird effect in dreams, bringing together incongruous elements which would never be a sequence or contact in actual life It produces the absurd nature that we readily recognize as pertaining to the dream

Condensation Occurs in Layers Some of the associations of the condensed element may refer to very recent experiences, while other associations refer to remote experiences, even those which go back to infancy. So, by the mechanism of condensation, a tie can be effected between the conflicts in present living and unresolved conflicts in childhood which are now recurring at the present time

Common Forms of Expression of Condensation. *Condensation in Dreams* As has been said, condensation receives its clearest expression in dreams A person in a dream, for instance, may really refer to several individuals His appearance may be that of one individual, his posture that of another, and his words those of still a third person One figure may be someone in the day's experiences, while associations may carry the dreamer back to relationships of years ago.

Elements in dreams frequently have symbolic significance Gutheil [333, p 221] illustrates this from one of the dreams described in his book.

A patient dreams, "A Persian carried me in his arms" In the associations which follow, it is learned that the patient's father once told her a story about Persians In this story it was stated that in Persia there are more men than women So being carried by a Persian is related to the fact that she is unhappily married and wishes for more satisfactory relations We are also told that the patient's father used to carry her in his arms when she was a child So the father who told her the story is also symbolized by the Persian in the dream, and this indicates that she still would like to be carried by her father, indicating father-fixation So this Persian represents the conjunction of several lines of association and hence is a condensation of them

Condensation in Wit Condensation is found very frequently in various forms of wit Freud [257, Ch II, "The Technique of Wit"] relates that during an introduction a man was referred to as one who "had a great future behind him" The obvious intention, of course, was to imply that the man had a future before him There was also the implication that he came from a good family which espoused a political party now in eclipse, so that whereas he could point to the greatness of his forebears, the immediate future presented difficulties This expression, which contained a

reversal formation, was the meeting-place of several references and hence was a condensation of them all in the one expression

Condensation Expressed by Ambiguous Words. Ambiguous words which may be formed by a combination of two words make very pretty illustrations of condensation The editors of *Time* magazine employ these neologisms frequently and with telling effect Freud [257] gives several effective examples of these ambiguous and meaning-weighted words "Anecdotage" refers to the tendency of old persons (in their dotage) to enjoy reminiscing about their past. One writer, in referring to the Christmas season, used the term "alcoholidays," which refers to their bibulous nature. A speaker referred to someone's "monumentory" success, which was intended to refer to his notable and enduring nature, but also with the implication that the word *momentary* was also employed, in effect negating the original intention In many illustrations of condensation one association of the word or symbol tends to negate the other. One meaning is conscious and intended, while the other meaning is unconscious but damaging and uncomplimentary

Condensation in Conversion Symptoms Practically all conversion symptoms are condensations having double and opposite significance A trick of clearing the throat, used as an illustration of compromise formation, also illustrates condensation, and on one hand may imply embarrassment and humility, while on the other it may be a vestige of a shout or loud and dominating talk In addition to the two possible meanings, one the obvious and intended meaning, the other the repressed and unconscious meaning, throat-clearing involves discomfort, with its implication of self-punishment for the suppressed hostile nature of the act

ISOLATION—INTELLECTUALIZATION

Freud [295, Ch II, "The Undoing and Isolation Mechanisms in Compulsion Neurosis"], in *The Problem of Anxiety,* proposed two mechanisms which had not been mentioned before in psychoanalytic literature, *undoing* and *isolation* Freud did not elaborate either of these two mechanisms and failed to give any clear-cut or helpful illustrations Consequently they have been almost totally neglected in the literature, although some writers have made feeble attempts to mention and explain them. However, they have been recognized by others independently and by other names Both the mechanism of *undoing* and that of *isolation* are found particularly in obsessional neuroses In 1909 Freud [278, p 378] made a very brief reference to the tendency of obsessional patients to isolate their compulsive acts from the feelings they are attempting to protect the individual against, but he did not elaborate this into a mechanism at that time

Definition of Isolation. Isolation may be defined as the tendency to eliminate feeling from behavior and thereby relieve the individual from suffering anxiety at the open expression of his unconscious impulses. In

particular, the mechanism of isolation depends on overdevelopment of intellectual traits The individual substitutes intellectual formulations, theorizing, and problem-solving for the working out of his emotional problems. Fenichel [212] contrasts *isolation* with *repression*. The latter is found to be the mechanism at work in hysterical formations, the former in obsessional formations. Repression blots an impulse from consciousness and prevents any recognition of its symptomatic neurotic expression. Isolation recognizes the symptom but fails to grasp its significance because it has been separated from its emotional and affectional component It would seem that isolation is a very common mechanism, one that is employed by all civilized individuals every day, and in view of the fact that compulsive and obsessive behavior increases with the advance of civilization, its importance has been far underestimated It is isolation that turns eroticism into affection, that makes platonic love possible, that enables men and women to associate in business and study without recognizing the erotic and aggressive significance of much of the behavior these associations signify

Motivation of Isolation. By the mechanism of isolation an individual attempts to escape from guilt for forbidden impulses by displacing these impulses onto the intellect and working them out by intellectual processes As these impulses become foreign languages to be learned, geometric problems to be solved, and chemical processes to be mastered, they are deprived of their feeling, and hence they can receive expression without guilt

In many cases of isolation there is parent-fixation, and in the endeavor to escape from the consequences of impulses directed toward the parents there is a resort to intellectualization and problem-solving

By thus eliminating feeling from the expression of his impulses the person seeks to hinder associations which might make him painfully aware of the real person toward whom they are directed The affect is repressed, and the conflict is transferred to the intellectual so that the effective meaning of the mental content is concealed. The adolescent may substitute philosophical musings concerning the abstract nature of right and wrong for his conflict with regard to his relations to members of his family, or his conflict may turn toward an attempt to solve mathematical problems or to the working out of abstract issues of ethics or political science

Variations in Expression of Isolation. The exact nature of isolation can perhaps be best presented by giving the number of ways in which it is expressed Much "small talk" is the operation of an isolation process. Saying, "Good morning," commenting on the weather, politics, the latest gossip, or dress, sidetracks attention from the more important personal matters one temporarily puts aside. The compulsion to count is sometimes merely a filler of time between one significant personal activity and another. Most persons have their own time-fillers. Through the mechanism

of isolation one may be satisfying deeper wishes without his recognizing it, even though he is aware of what he is doing. The tactless, blunt person may injure the feelings or pride of another person without so intending and without recognizing the offense that he gives even though the "digs" and affronts gratify him unconsciously Likewise a man may satisfy his erotic desires by glances, repartee, handshakes, and slaps on the back, again without recognizing their erotic significance or their unconscious erotic gratification.

Similarly one may develop a number of compulsive acts such as not touching objects or of avoiding stepping on cracks in the sidewalk as a generalized form of avoiding all forbidden impulses—sexual or aggressive In this latter sense the act becomes a kind of ritual, and one behaves as though it had some magical property of warding off contact with any dangerous impulse

The power of concentration so much desired by teachers and parents in a boy or girl indicates the operation of this mechanism To the degree to which one can concentrate his attention on his studies, he is eliminating emotions and putting aside the dangerous and troublesome conflicts which beset him There is a striving for logical perfection and systematic completeness which may prevent the intrusion of disturbing emotional elements There is an emphasis on discipline and ideals of self-sacrifice while suffering and duty are extolled The schoolmaster who has a passion for training and discipline is one who has put aside the more human and emotional values in life Under the stimulus of this mechanism a person is resistant to criticism He becomes independent, to a degree, of emotional responses to others and is guided more by theoretical and abstract consideration Through the operation of isolation there is an emphasis on the speculative, the theoretical, and the philosophical, and by these abstract activities there is a rarefied attempt to solve more personal and emotional conflicts.

Blos [90], in his case of Paul, describes a boy in whom this mechanism of isolation is prominent Paul is struggling with the conflict between his desire to remain a child, retaining his position with his mother, and to grow up and become more mature in his relationships with his peers He puts aside, however, a direct facing of this dilemma and attempts to work it out through his interests in mathematics and language and his endless debates on philosophical and religious issues.

Howe [379] has distinguished between "flight" thinking and "fight" thinking By flight thinking he means ritualistic, symbolic, repetitive thought which would be used in the mechanism of isolation By fight thinking he refers to creative thinking which can be used in solving the real problems of adjustment.

Values of Isolation. Isolation is another of the constructive and socially approved mechanisms It is the basis of intellectual activity and of the civilized and rational attack on problems This mechanism is highly

approved and accepted Parents and teachers are overjoyed when they find a child who is interested in intellectual pursuits, in the solution of abstract problems, and in academic proficiency The possibility that these boys and girls are repressing their more normal emotional experiences seems to be of little importance The value of intellectual prowess in professional pursuits makes parents and teachers willing that boys and girls become emotionally dwarfed in the process This mechanism is the basis of scholarship One might inquire how many individuals who undertake advanced study submerge themselves in laboratory or library research as an escape and retreat from emotional conflicts This mechanism which is employed in order to avoid anxiety has such high social value that its inhibiting effects are condoned and overlooked

UNDOING, REPARATION, RESTITUTION

Definition of Undoing. Freud pairs isolation with undoing. Fenichel points out that isolation is the primary and basic mechanism and undoing is a special case or illustration of isolation Undoing refers to an act, feeling, or impulse which strives to annul or negate some earlier act not wholly completed. Reaction formations are akin to undoing All attempts to expiate or atone for an act represent the mechanism of undoing There are many testing acts, such as trying the door to see if it is locked, testing one's watch to make sure it has been wound, looking under the bed to make sure there is no intruder, turning back to make sure one has turned out the lights, whose function it is to undo some feared prior act The family who had to run back in their automobile, after they had traveled many miles on a vacation trip, to make sure that they had turned out the gas flame which had been used for cooking in preparing the lunch illustrates this tendency

In this testing form of undoing there is always implicit the presence of an unconscious desire which is to be undone by the testing act Testing the lock may mean that one unconsciously wishes the burglar to enter or the automobile to be stolen Making sure that no one is under the bed testifies to the woman's wish that there might be Testing the gas cock actually increases the risk of its being open Fenichel gives the illustration of the man who must rearrange the objects on top of his bookcase lest they fall and hurt someone and who by the act of changing their position possibly gives them a still greater chance of falling

So these compulsive acts of undoing require repetition to negate the impulse which each operation of the mechanism arouses It is through the mechanism of undoing that one finds explanations for many of the repetitive activities which characterize compulsive individuals.

The act of counting with its concentrated repetition serves as a defense against the repetition of a distasteful act and represents an effort at undoing the thing which fantasy has already performed

The apology is an act of undoing It shows penance and gives proof

of good intentions but at the same time tacitly admits the aggressive nature of the act for which apology is made

The mechanism of *undoing* has received an independent formulation by the English group of psychoanalysts, particularly Melanie Klein [458] and Susan Isaacs [396], who have described it under the heading of *reparation* or *restitution* These analysts, without specifically referring to Freud's mechanism of undoing, have the same concept in mind, that of restoring the damage done by early sadistic tendencies [1]

An important meaning of this mechanism is that of restoring, making whole, or making better that which was earlier destroyed, torn apart, or damaged in some way. Although a child might show this mechanism in his play by repairing a toy or by bringing a dead toy figure back to life, it is believed that this symbolic play always refers to the child's attitude toward some *person* in his environment The individual toward whom the child has had violent sadistic and hostile impulses is the one toward whom he later has impulses of healing, restoring, or recreating Little children show a tendency to want to make good, to construct, and to be generous and helpful toward another person It is, of course, trying to stretch a point to say that every spontaneous act of generosity and sharing expressed by a little child is his attempt to free himself of the guilt which he feels for earlier selfish and hostile tendencies, but there are certainly occasions when children show love for just this reason Sometimes these tendencies toward restitution are spoken of as attempts to revive the destroyed objects. By this is meant that if the original hostile tendencies occasioning guilt were so intense as to become an actual wish to kill, the reduction of guilt may be sought by reviving in fantasy the person previously destroyed in fantasy This mechanism serves as a partial explanation for efforts to produce objects of art, to make scientific contributions, and to construct or build Alexander [17, pp 125-127] has briefly discussed the significance of sublimation as an antidote to guilt In particular he sees the peculiar significance of various forms of communication in this sense Where art is expressed in concrete form, the individual finds an opportunity of giving pleasure to the world at the same time that he may release some of his aggressive fantasies

A second meaning of this mechanism is that of rescuing, saving life, and cherishing, which has a more direct application to individuals and the desire to help them and to make them more prosperous and more happy

A third meaning is that of returning what has been stolen This, usually a fantasy product, is love, power, children, or some part of the body In reparation there is a tendency to give back the love or the power earlier appropriated in fantasy

[1] The writer is indebted to K A Menninger in his book *Love Against Hate* [578] for bringing these two concepts together It is interesting that Isaacs mentions undoing [396, p 304] without seeing any connection between it and restitution [396, p. 316].

Fundamental Considerations. The first restitution is toward the mother against whom the original sadism is expressed. Indeed, wishing to cherish and protect one's mother becomes a strong force in later life for most persons And the fourth commandment, which contains the injunction "to honor thy father and mother" makes this mechanism an obligation

Undoing Impossible When Anxiety Too Great Undoing is not possible, however, as long as the original anxiety which the sadism aroused is present in full force Constructive tendencies can enter in only as anxiety subsides and is felt as guilt The person whose anxiety must no longer be projected but can be accepted as guilt may have the urge to make restitution for the hurt which was earlier done either in fantasy or fact For this reason little children under four years of age have but little power to do reparation Not only are their anxieties too acute, but their powers of manipulation are inadequate The tendency to make restitution is one which develops only when the superego changes from anxiety to assimilated guilt

Restitution Tends to Adhere to Form of Injury That Has Been Done Klein [458, pp 239 f] points out that in restitution the acts must adhere in every detail to the injury that has been done The same means of restoring the individual must be used that were used in destroying him This means that if the destructive tendencies were accomplished in fantasy by oral, urethral, anal, or genital means, the same means must be used in making reparation The bite turns into the kiss The poison turns into a beneficent medicine

This same principle of *like restoring like* also applies to the degree of restitution which must parallel the degree of the destroying impulses One wants to give as much as or more than was received, and if one is not able to return in kind, strong guilt may be aroused Indeed, some persons feel that they cannot give back until the restoration is in the same amount or to the same degree as that which was taken This leads to a desire to accomplish momentous tasks or to attain a superlative degree of perfection. The difficulty or impossibility of making the actual restoration equal to the damage done in fantasy may often lead to severe inhibitions in work A person who feels that he must reach perfection may be discouraged from even attempting anything

Need to Give Back Becomes Insatiable This need to make restitution may become compulsive and insatiable A person may hoard in order to pay back the damage which his early fantasies have done, and the demand for making a huge fortune or building the big liner or airplane may find its impetus in the exaggerated need to do reparation Many of the great achievements in the world have been goaded into being by a desire to undo the damage which infantile fantasy created

The underlying mechanism in undoing is identification with the good parent. A child must be able to form the image of a good parent before he is able to set up a goal for his restitution Undoing depends on the two

parents being united in harmony and setting the child a good example If the need to do reparation to the mother who has been damaged by sadistic fantasy becomes strong, the boy in his generosity may take a propitiatory position toward his father so that the father and the mother may become united His desire toward his mother is abated, and his rivalry toward his father is also mitigated, so that he adopts a homosexual rather than a hostile attitude.

Methods of Making Reparation. *Vocation* Perhaps the clearest illustrations of methods of undoing and making restitution appear in vocations. Physicians and ministers, teachers, nurses, social workers, indeed anyone in an occupation that attempts to serve and heal others, give expression to this mechanism of undoing The physician may combine in an interesting way compromise formation and undoing He may sublimate his desire to poison and to kill through his practice of medicine and surgery and, at the same time, make restitution for these tendencies by his arts of healing and restoring

Giving a Gift Giving a gift is a simple and common method of expressing undoing tendencies An individual's generosity in providing for other people, in helping them with their education, in sponsoring philanthropic enterprises, gives free scope to reparation tendencies

Restitution Through Sex Melanie Klein [462] has shown how sex contains a number of restitutive tendencies. Just as sex in infancy has a sadistic significance and the sex act is thought to be an attack, so in maturity sex is healing and restoring in its nature

Self-Sacrifice Many forms of self-sacrifice permit the expression of reparation tendencies The mother who sacrifices for her child, the teacher who sacrifices for her pupils, the governor who sacrifices for the governed may be working out reparation tendencies through their sacrificial behavior In these cases the sacrificial act not only permits the expression of the tendency toward reparation, but also alleviates guilt through the self-punishment which the sacrifice and self-denial entail

Most religions encourage reparation tendencies through the giving of alms, doing good, healing the sick, and the like. By encouraging their adherents to contribute to charity, to volunteer for social service, to help the poor, and to be generous to sinners, churches sanction, and provide avenues of expression for, undoing

Values of Undoing. The mechanism of undoing is one of the most constructive and applauded in civilized life It is the basis for much of the sympathy, benevolence, and love in the world, and without this mechanism the world would be a poorer and more dreary place This mechanism is one of the great socializing, softening, and leavening forces in the world It is interesting, indeed, that this constructive mechanism should be an attempt to make up for infantile sadism, and that the stronger the sadistic tendencies in the child, the stronger the tendencies toward reparation in the adult

Deficiency in the capacity for reparation may lead to a number of uncomfortable and disappointing traits in individuals The person who is unable to do reparation may yield to despair If his constructive tendencies are lacking, he may suffer sharp feelings of inadequacy and worthlessness If his capacity for reparation is weak, he may be forced to protect himself by increased aggression.

SYMBOLIZATION

Symbolization will not be elaborated and discussed in this place because its essential features as a mechanism are discussed in the chapters, "Displacement" and "Fantasy" and in connection with the two mechanisms in the present chapter, "compromise formation" and "condensation"

DETERMINATION

A number of mechanisms which appear most clearly in dreams have been given special names Gutheil [333] mentions several of these By *determination* he refers to the tendency to depict a *general* or pervasive belief, attitude, or feeling by a *specific* reference which carries with it a definite feeling tone For instance, an element in a dream was that "three men refused me" In the association following, it was found that the three men, which was quite specific, actually referred to men in general. Here the dream disguised the fact that the individual felt snubbed or shut out by men in general by making it specific with a reference to *three men* So a specific element in a dream, or in daily conversation, may actually refer to a more general attitude or belief.

SPLITTING THE SYMBOL

Gutheil also refers to a mechanism which he calls "splitting the symbol," which is in effect the reverse of condensation In this mechanism two different characteristics of the same person are represented by two persons in the dream This occurs most frequently in those instances where a person has a conflict and is struggling in real life with two opposed tendencies Frequently in dreams the connection between the two is shown in the way in which they are placed in juxtaposition or by the way in which one merges into the other In waking fantasies this same splitting of the symbol may be found in those stories in which contrasting characters are portrayed, one representing the good and the other the evil The purpose of this mechanism is to help disguise and conceal from the individual some aspect of his personality If he quite readily identifies himself with one of the two characters, he has little difficulty in contrasting himself with the other character which in truth represents another and deeper side of his own personality.

TRANSFERENCE

Transference is a mechanism referred to frequently in psychoanalytic literature, particularly in discussions of the technique of psychoanalysis. Transference is a very special kind of displacement onto the counselor or analyst of attitudes and feelings, which have formerly on other occasions and in other situations been held toward other persons or the person himself (projection). But these feelings are not mere blind repetitions of earlier feelings Rather they are appropriate reactions in a new situation using patterns of response which have proved valuable and successful in similar situations in the past Transference is used exclusively to refer to the displacement onto the counselor which occurs during the counseling process There will be no attempt to discuss all phases of transference at this place because such a discussion belongs more rightfully in a treatise on counseling techniques and processes A few major principles, however, may be mentioned briefly Originally it was believed that transference was only of the so-called positive variety, and Freud, in his early discussions, spoke only of "transference love" In one paper [276] he discusses the inevitable tendency for the patient to fall in love with the analyst during a psychoanalytic treatment. It is now well known, however, that transference refers not only to the positive emotions, but to the negative and hostile emotions so that it is common to refer to "positive transference" or "negative transference" As a matter of fact, every shade of attitude and feeling that one person may hold toward another can be transferred to the counselor in the counseling process Negative transference refers to those expressions of anger and hate which clients may at first dimly and later openly express toward the counselor It is common to have the positive transference find expression before the negative transference, and it is only on a basis of positive transference that any kind of counseling can be accomplished but it is also well known that in any analytic process negative transference, in fact, the whole gamut of emotion, will eventually find expression.

It is sometimes thought by the novice that transference is something that must be fostered and stimulated by advances and invitations on the one hand, and by submissiveness and acceptingness on the part of the counselor, on the other Actually, however, transference takes place inevitably no matter what the counselor does or the attitude that he takes in the sense that when a person meets another individual in a new situation he is bound to react to him in some way as determined by his experiences with other persons on previous occasions with whom he finds some association to the counselor in the present situation

It is the practice in psychoanalysis for the analyst to sit quietly and out of sight of the patient There is a purpose in this maneuver, for the counselor thereby makes himself a shadowy and unreal person The client is forced to react to him as his fantasy dictates, which means that

he reacts to him as he has reacted to other persons in his past, with old patterns of feeling, and not as the real character of the analyst might cause him to react.

The feelings and attitudes which the client stirs up in the counselor are known as "counter-transference" To the extent that feelings of sympathy, high regard, or love on the one hand, or dislike, contempt, disgust on the other, are aroused in the counselor, he loses his effectiveness as a counselor To the extent that the counselor possesses needs which arouse defenses against anxiety in the client, the client is unable to express what has been repressed. But if the client's defenses are lowered, he can express unconscious tendencies. It is important that a counselor learn to become aware of his own attitudes, feelings, and reaction tendencies so that he may keep these under control as it seems necessary and desirable and avoid in particular those which are interpreted as destructive or authoritative by the patient

ANTICIPATION

The mechanism of anticipation, found by Theodor Reik [658, 659] to play an important rôle in masochism, is based on the principle that all drives *look forward* to a reduction and satisfaction of the need stimulating them It is of the nature of drives that they look forward to a consummation—the finding of satisfactions—which will lead to the reduction of the irritating stimulus

Anticipation, however, is heightened in masochism, owing perhaps partly to the fact that the satisfaction looked forward to is postponed, and partly to the fact that for the time being the individual undergoes humiliation and self-punishment which makes the longing for the eventual satisfaction even more acute than it would be under normal circumstances. Reik believes that anticipation is heightened in masochism in part because of the *suspense* and in part because of the *preoccupation with fantasy*. The masochistic person is one who must undergo some kind of self-inflicted torture, degradation, or humiliation However, the masochist is not unlike other persons, and these self-inflicted tortures are feared and arouse anxiety just as they do in normal persons But the masochist must pass through this self-punishment in order to justify his later (or earlier) gratification and pleasure. So the anticipation of pleasure helps him to bear the punishment which must be endured in order to gain the pleasure, and hence it helps to maintain the tension of suspense Indeed, in order that the books may be balanced, he may require self-punishment as intense and prolonged as the gratification he hopes it buys The second reason for the heightening of anticipation in masochism is the masochistic preoccupation with fantasy which anticipates the suffering and thereby the pleasure which is to follow Without the fantasy the punishment might come directly without prolongation, but the fantasy helps to heighten the anticipation both of the difficulties to be en-

countered, the hardships to be endured, and the final gratification to be won

In masochism punishment is actually welcomed because it grants the permission for later pleasure. Suffering releases anxiety which must be a pre-condition, or payment, for the anticipated pleasure. Many masochists live their whole lives in the condition of mortification, self-denial, illness, and the like without ever reaching the climax and achieving the goal which is anticipated They revel in the feeling of holiness and righteousness which their suffering makes them feel is their due The masochist is one who postpones, yet anticipates, the pleasure which is to emerge through the pain

The mechanism of anticipation may be illustrated in all the varieties of masochism The perversion in which the climax of the orgasm is reached only after flagellation or humiliation, involves the mechanism of anticipation. As the beating and humiliation are demanded and received by the masochist, he is able to anticipate in fantasy the climax which will come only through the pain On the social level anticipation is illustrated in various expressions of martyrdom A martyr is a person who can endure suffering because through the pain he is able to look forward to his reward It is even possible to speak of national masochism, when a whole people will deny themselves and will gird themselves for the tortures and miseries of war in anticipation of the national greatness which they hope is to follow.

XXII

Fantasy

Fantasy is popularly thought of as the fairyland, the unreal part of the mind Actually, it is very real and in a way tough—a part of the mind that cannot be so easily dispensed with Even though fantasy is intangible and fleeting, it still has an actual existence and is influential in shaping personality and guiding behavior

DEFINITION—PSYCHOLOGICAL NATURE OF FANTASY

Fantasy as Drive. Basically, fantasy is almost synonymous with drive, indicating a tendency toward action or a wish In our adult years this can be seen in the nature of our day-dreams which so much of the time consist of wishes and fantasies of the things we would like to do or the persons we would like to be Even before language has developed these drives to action begin to take form, are directed toward certain ends, and assume content It is well to keep in mind in the subsequent discussion that fantasy is the *impulse toward action*

Fantasy as Wishful Imagination. Going a step further, fantasy may be thought of as the mental anticipation or substitute of the overt fulfilment of a drive In this sense it may be spoken of as *wishful imagination*. Fantasy is the drive before it is translated into action, at the time when action exists only in the form of muscular tension and preparatory physiological reaction This definition helps to distinguish between fantasy and reality.

Fantasy and Sensation. Fantasy is also related to sensation A drive, as it becomes translated into action, is accompanied by a sensory experience So fantasy is, in a large measure, the mental anticipation of sensations which later actually are experienced Dreams are presented entirely in sensory form, largely in terms of visual imagery One can conjure in fantasy the taste of a glass of cold milk or the tang of wild cherry, the picture of one's childhood home or the mansion which one would like to build Every sensation can be anticipated in fantasy

Fantasy Expressed in Imagery To say that fantasy is expressed in imagery is only to take another step in the definition Indeed, it is correct to say that imagery is fantasy As is well known, visual or auditory images predominate in individuals according to their previous experience and the varying acuteness of their sense organs Some images have character-

istic feeling tones, so that images of one sensory origin may be used to describe those of another. This is known as *synesthesia* One may speak, for example, of the warm tones of a violin, or of colors that shriek

Fantasy and Conceptualization. These images may take on definite forms and shapes so that, on the whole, fantasy consists of clear-cut conceptualization Many persons, for instance, think of numbers in terms of characteristic geometric patterns. The number system may be in the form of a spiral with 1 at the center, and 2, 3, and 4 circling around it Sir Francis Galton [309, "Mental Imagery"] was curious about these number forms and collected many illustrations Some individuals also have characteristic alphabetical numbers or calendar forms—peculiar ways in which they have arranged these concepts in their mind to aid in recalling the sequence of letters, numbers and months

Fantasy and Generalization Fantasy also draws freely on the process of generalization, but not too critically in the earliest years Things are brought together in the mind on the basis of chance association, and in infancy perhaps these associations exist only in the common satisfaction or pleasure that they have for the individual A few illustrations are in order. In a young child there is a tendency to put things under the same category because of superficial resemblances To a very young child the resemblance between animals and men outweighs their differences Animals, like men, move easily and unpredictably through space. They make noises with their mouth, have hair on the body, and fix one with a glistening eye So we find the young child is able to enjoy stories of animals who talk and act the part of people. Mickey Mouse offers no imaginative hurdle to a young child The very tiny child even sees a resemblance between the stars, sun, and moon and the flashing eyes of the people about him Such an association may explain why heavenly bodies have symbolic value for adults in fantasy. These resemblances have been elaborated into so many different associations for older people that they forget how simply they are interpreted by children As a third illustration, the letters in our alphabet take on meaningful shapes to the child The *f* may look like a dagger, the *j* like a pistol, and *c* like a cradle In reading we have forgotten that a little child inspects each letter separately and each may remind him of common experiences and, if the need is great, he may react to them emotionally

A second form of generalization in the fantasy of children is *animism*—the tendency to impute human motives to the inanimate We see this in the adult who swears at the chair over which he has tripped Children love toy animals and can talk to them as though they were little playmates

This leads to the third generalizing tendency of fantasy, namely, that of finding a symbolic significance in all sorts of objects A child has no difficulty in creating his toys out of the most humble materials A few sticks, pieces of cloth, wheels, or a ball—and he can create his own world in his imagination. The rag becomes a doll or the string of wooden blocks

becomes a train This tendency to let one object stand for another continues throughout life We use a piece of cloth, the flag, to symbolize our country, and religion has used with great effectiveness symbolic signs and rituals throughout the ages.

A fourth characteristic of the generalization of fantasy may be called *syncretism,* that is, the bringing together of antagonistic or inconsistent trends and making them serve more than one purpose or function In our rational life such inconsistencies would not be tolerated, but in fantasy the critical faculty is absent and inconsistencies are tolerated. For example, thought of suicide may serve two opposite trends For one, it may serve the purpose of self-punishment and effacement In the same thought, however, suicide may be the means of bringing grief to another person and, in addition, of compelling him to admit the importance and value of the person who fantasies this method of claiming his love The fantasy of suicide, then, makes it possible for a person both to lay claim to life and to deny it

Fantasy and Thinking. Fantasy may also combine various images in a form of thinking sometimes called *autistic,* meaning thinking not governed by real considerations but which may become as distorted as wishful imagination may demand. Autistic thinking shows itself best in the myth, the fairy-tale, or fanciful story so beloved by children, which starts out from reality but breaks away from such restrictions as real experience might demand

Fantasies Are Emotionally Toned. Finally, fantasies are emotionally toned They are not neutral and cold phenomena That which we look forward to with eagerness are pleasant fantasies That which we look forward to with fear and dread are unpleasant The future is never neutral but is approached either with eager anticipation or foreboding.

FANTASY AND DREAMS

Probably the best illustration of fantasy is the day-dream, by which fantasy typically expresses itself in those moments of abstraction when we lose ourselves in reverie and build castles in the air Fantasy holds full sway and is not mixed with concern over active affairs. Nocturnal dreams are also fantasies As Freud [254] has demonstrated, the dreams in sleep translate unacceptable impulses into acceptable mental forms with such disguise that the individual himself is not aware of the true nature of his impulses

SOME CHARACTERISTICS OF FANTASY

Fantasy Concerned with Personal Relations. We shall proceed to set forth a number of other characteristics of fantasy which distinguish it from other mental processes. Fantasy is always concerned, in the last analysis, with *personal relations* Most fantasies deal directly with people. In day-dreams the boy or girl will imagine himself in situations in which

he can dominate others Fantasies of a more impersonal nature, such as the operation of machines, of mathematical relationships, and the like are believed to represent a derivation of earlier fantasies in which the personal relationship has been repressed This cannot be easily demonstrated in every instance, but enough illustrations have been adduced to indicate how this process of abstraction takes place. Indeed, abstract fantasies have been found to represent a disguised effort at working out conflicts in personal relationships [1]

Fantasy Is Egocentric. Fantasy is typically *egocentric*. One wishes in fantasy for that which will contribute to the aggrandizement of self—either through helping the individual to attain the position which he desires or to escape from ignominy. Fantasy implies an unconscious self-estimate The boy who thinks of himself as the great aviator is already envisaging himself in the rôle

Fantasy Is Pleasurable. Fantasy characteristically is *pleasurable* The child who day-dreams does so because he finds this the most pleasurable activity at the time It is the anticipation of some sensory or narcissistic gratification that gives fantasy its alluring and compelling quality Achieving these satisfactions in reality is pleasant but the anticipation of them in fantasy is equally pleasant and frequently more so

Fantasy Dimly Conscious in the Unconscious. Fantasy is *hardly conscious* Indeed, much of it is not conscious at all Fantasy, then, is to be contrasted with controlled thinking which takes place in the white light of consciousness Fantasy tends to be dim and shadowy Ask a boy what he was thinking about and he cannot tell you—partly because it is intensely personal, partly because he is ashamed of it, but also because it has disappeared from his mind, and he cannot bring it back when reality faces him Many of our day-dreams, even though they operate consciously, have a strange elusive quality about them In reverie we may permit ourselves to imagine how pleasant it would be to become acquainted with the attractive stranger who passed, or we may excitedly imagine the possible accident which might befall our best friend who is also our rival. When, however, we face ourselves as to our real attitude, we find that our interest in the stranger was the merest passing whim and that in reality we have only the fondest feelings toward our friend The fantasies have disappeared into nothingness

Fantasy Lacks Urgency Fantasies lack pressure or *urgency* They have no particular compelling quality about them as does reality which forces decisions and requires action In fantasy all flows evenly

Fantasy Monopolizes the Attention. Fantasy tends to *monopolize the attention* When pressure of the immediate situation is relaxed, the mind flows back automatically into fantasy Were our needs all met we should never have anything to bring us out of this voluptuous atmosphere It is for this reason that fantasy is so restful Rational thinking requires

[1] See the case of Paul in P Blos, *The Adolescent Personality* [90]

energy and sustained attention, but fantasy requires no effort and the attention flows easily without effort as the inner impulses direct

Fantasy Is Autonomous. Fantasy is *autonomous* and parallels the dictates of inner drive and impulse. It is not responsible to reality, and this accounts for its bizarre nature and absurd generalizations

Fantasy Is Quasi-Real. Fantasy frequently has the vividness and sharpness which approaches that of a real situation When imagery becomes extremely vivid and realistic, it is called *eidetic* However, even when most vivid, fantasy lacks the tenacity and all-enveloping character of real experience, because it is usually shadowy, dim, and easily effaced

Fantasy Evaluates. Fantasy divides people and things into the categories of *good* and *bad* The good mother is associated with warmth, comfort, and well-being The bad mother is associated with pain, discomfort, wind in the stomach, colic, and pressure of urine and feces So, basically, fantasies derive their feeling tone from inner organic conditions, either those of satisfaction or those of pain and distress These feeling tones, however, are projected onto persons in the outside world, and qualities of good and bad are ascribed to them This tendency to so label everything in fantasy has important implications for superego development and for later sexual life Sexual objects can be accepted or rejected according to whether earlier experience fantasies them as good or bad

In Fantasy Person May Play Rôle of Onlooker. It is interesting that frequently the person fantasying *plays the rôle of an onlooker* even though he is the center of a dream Almost never does a child consciously build a story with himself as the hero It is always some character in the story with whom he can identify himself Indeed, each character in a day-dream or story personifies a different aspect or force in the personality of the day-dreamer. And by thus projecting rôles onto characters in the day-dream, satisfaction can be gained which would not be permissible when applied to the self directly. The boy who imagines himself the ace who shot down scores of Jap planes would perhaps have difficulty in accepting himself in this dangerous rôle as a murderer, but by conjuring up the rôle of the pilot who wins acclaim, he is able to achieve the gratification which he would perhaps be afraid to admit in reality So the best beloved hero may be the person who is the gangster, breaks the rules, is apprehended by the police, and goes to prison—rôles which one could not think of playing directly.

Fantasy Tends to Exaggerate. Another important tendency of fantasy is *exaggeration* The little child thinks in terms of astronomical numbers and huge amounts. When a little girl is asked how many dolls she would like, she replies, "millions and millions and millions" When in a moment of hate she wishes that her mother might drown, it is that the whole ocean should roll over her In order to put oneself in the frame of a child's thought, one must be ready to admit gross exaggerations. Adults

also fail to recognize the intensity of the emotions in a little child's fantasies A child in a moment of anger says "I will kill you" and those about say "how cute" Because adults have repressed strong emotions connected with such thoughts in their waking life, it is hard for them to believe the overwhelming intensity in the feelings of a little child when he screams in terror

Time and Fantasy. It is important to understand the *time sequence* of fantasy. Fantasy is stimulated by present desire and its frustration In every case fantasy goes back to the past when a similar wish was fulfilled, and it is only through past experience that imagination can conjure up fulfilment Then fantasy imagines how this wish might be fulfilled in the future Let us think of it simply A child is hungry All that he can do is to imagine sensations aroused by food in the past and use this imagery as the hope for the future All fantasy follows in more complicated fashion after this simplest of illustrations The individual who becomes afraid of his own hostile feelings toward another person is afraid, not of what might take place in the future, but of what he feels has already taken place He reacts to his fantasy as though his hostile impulses had already had their effect So in thinking about fantasy, one must remember that it operates not as though cast into the future, but as though the deeds which are fantasied had already been accomplished

Fantasies Are Private Fantasy life is generally kept *secret* This may be due, in part, to the fact that the exaggerations and distortions of our fantasies would be open to ridicule, or not be socially acceptable

Quantitative Aspects of Fantasy Murray [612] has devoted some thought to the quantitative aspects of fantasy He discusses the arousal or recall of fantasies from the experimental point of view He states that fantasies may vary as to (1) *inducibility* some fantasies are more deeply repressed than others and consequently it is more difficult to find stimuli which might arouse them, (2) *capacity to arouse action* weak fantasies leave no trail in behavior behind them Strong fantasies may be so impelling in motivation that they break over into some kind of other action, (3) *level of aspiration* weak fantasies ask for little Strong fantasies ask for the moon and make huge demands for gratification, (4) *amount of terminal satisfaction* weak fantasies are those in which the individual has little stake in the outcome Strong fantasies are of tremendous importance to the individual, (5) *degree of concentrated absorption* a person can easily be diverted from a weak fantasy Strong fantasies, however, are carried with considerable momentum, and a person is not easily turned away from them, (6) *number of external incentives rejected or positive needs inhibited,* (7) *endurance* weak fantasies may fade out quickly Strong fantasies may recur again and again over long periods of time, (8) *frequency* a weak fantasy may occur only once Strong fantasies may be repeated many times, (9) *accompanying emotions* weak fantasies are slightly more than affectively neutral Strong fantasies are accom-

panied by strong emotion, (10) *accompanying pleasure or unpleasure:* weak fantasies are neutral Strong fantasies are strongly toned

Murray sets up certain criteria concerning the strength or quantity that can be applied to measuring the strength of fantasy He proposes to measure the strength of fantasy by (1) the length of time that a fantasy or topic of conversation endures, (2) the number of times a topic of conversation recurs, (3) the potency of a fantasy, that is, its vividness and urgency; (4) the selection of topics of conversation and verbal associations—those topics which are spontaneously selected for conversation are those around which the strongest fantasies center, (5) creative production—that which a person constructs, draws or models represent his strongest fantasies; (6) reaction time A long reaction time to a stimulus represents strong inhibition and intense emotion This has been brought out in word-association tests first demonstrated by Jung [443], (7) inappropriateness of association When an association is bizarre and irrational, there is evidence of the strength of the driving force of the topic which is so inappropriately introduced, (8) multiplicity of form of expression Fantasy which expresses itself both in words, gesture, and other forms, other things being equal, is stronger than one which is expressed in only one way, (9) projective distortion The amount of distortion in perceiving objects, or in interpreting events, or in wishful thinking, indicates the strength of the fantasy, (10) level of aspiration Fantasy directed toward great activities and higher aspirations indicates its strength, (11) degree of absorption The resistance toward turning the topic of conversation or diverting the attention serves as a measure of the strength of fantasy, and (12) degree of affection The amount of pleasure, the enthusiasm and zest in a topic of conversation, indicates the importance of this fantasy for the individual

FUNCTION OF FANTASY

Method of Meeting Frustration. Fantasy is one method for achieving substitute satisfaction when more direct methods are not available When one is hungry he conjures up the picture of a good meal. One can usually tell on the all-day tramp when it is lunch time because conversation will naturally gravitate to topics of food. Thoughts of food do not take the place of real food to any great extent, but fantasy may serve as a substitute satisfaction in the case of the more psychogenic drives A child whose brother or sister is favored over him in the family may gain real satisfaction by imagining situations in which he is the favored one As a matter of fact, during infancy and childhood the sexual impulses have no direct outlet in reality, and practically all sexual satisfaction in infancy is of a fantasy character Because of this many persons have difficulty in recognizing the strength and reality of sexual impulses in infancy

Fantasy is used as a substitute satisfaction when frustration becomes intolerable. The stronger the frustration, the greater the tendency to

resort to fantasy. Fantasy serves to relieve the tension of an aroused need. It plays an important rôle in helping a child to learn to wait If there were no such thing as fantasy, a child's cravings would become intolerably urgent. He can put off his cravings for a short time by resorting to imagination of how sweet the coming food or play will be

Fantasy may be used to gain relief from external pressure The boy who day-dreams in school may be resorting to this method of relief from parental urgings for achievement, particularly where the tasks set him are beyond his powers. One might say that day-dreaming in school is almost in direct proportion to the amount of home pressure.

Fantasy may be used as an escape from the disagreeableness of reality For instance, it may protect a child against idleness or loneliness The bright child who does his exercises quickly in school may then fill in the gaps in time with the pleasures of fantasy The only child in the family builds up an imaginary world peopled with imaginary companions who tide him over his loneliness Indeed, lack of playmates or playthings may lead to excessive day-dreaming

Fantasy also serves the function of familiarizing a child with objects of fear A child may ask to have a fairy-tale repeated in order to reduce the terror of the giant or dragon which he first felt

Method of Resolving Conflicts. When fantasy fails in its primary function of serving as a substitute satisfaction anxiety develops, and fantasy then becomes a defense against competing forces within the individual The great conflicting forces of desire and restraint within the individual become symbolized through fantasy. The child tends to picture the opposing forces within himself by projecting them into fantasy. His stories of the villain and the hero represent the two opposing forces within himself, and episodes of his story-land characters represent his struggles to resolve the conflict By projecting his difficulties into his fantasies he objectifies them and attempts to find a solution for them. Fantasy then helps to prevent the development of neurotic habits by serving as a safety-valve form of expression Lorand [523] points out how inventiveness serves as an escape and relief from painful situations resulting from the conflict of desire and guilt Some of the highest literary, musical and scientific productions owe their existence to this attempt of the author, composer, or scientist to work through his own conflicts

Fantasy Stimulates Mental Growth and Personality Development. By trying out situations in play a child experiments with the situations with which he is confronted, and he develops through mastery of these make-believe situations, as will be elaborated below on pages 502 and 503

Fantasy Determines Action. As we shall see later, fantasy not only stays within its own realm but, on occasion, tends to break over into actual behavior, and a considerable part of behavior is conditioned not by outside stimuli but by the inner stimuli of fantasy

Fantasy a Defense Against Unacceptable Behavior. Sometimes fantasy is more gratifying than actual experience because of the guilt of accompanying gratification So, instead of hitting a person one feels like hitting him. The actual hitting would become too dangerous and would result in retaliation or punishment There is no penalty attached to one's fantasies, and hence they can be expanded to fantastic length without danger. One can wish for absurd and impossible Christmas gifts in secret, since such wishes would only cause ridicule if they were expressed in reality However, even fantasy has its limitations. One's aggressive fantasies toward others may give rise to fantasies of retaliation which may spoil, to a considerable degree, the pleasure of the original fantasy One may find pleasure in all the names one could call another person but, at the same time, feel guilty as though the other person had actually heard the names

Fantasy Provides Enhancement of Self-Esteem. One of the most direct purposes of fantasy is to enable an individual to build himself up in his own regard Whatever the judgment of reality, an individual can imagine himself the great and important person he would like to be In fantasy, as Lorand points out, inventiveness serves as one purpose of reducing an individual's own feeling of inferiority, as well as that of others.

Fantasy Aids Insight. As a person projects various aspects of himself into the characters of his fantasies, his fantasies become the stage on which his own problems are acted out. By thus objectifying the various forces within, he is able to see them more clearly and thus gain insight concerning them

Fantasy Is Pleasant in Itself In listing the various functions of fantasy, one should not forget to mention that fantasy is pleasant in and of itself and consequently needs no further justification However, the pleasure is only a substitute for the pleasure of actual gratification.

Fantasy as a Prelude to Constructive Thought and Action. Discussions of fantasy emphasize over and over again its value in the real world as the basis for constructive planning and creative thought. The schoolboy's day-dreams may evaporate into nothingness On the other hand, it is out of such fantasies that constructive action arises and invention has its origin. The creativeness of thought must be sought in the freedom of fantasy which brings together that which hitherto was bizarre and inappropriate. One's vocational and marriage choices are based, in large measure, on fantasy.

FANTASY, REPRESSION, AND THE UNCONSCIOUS

It is inaccurate to believe that fantasy must always be expressed in words Indeed, one who reviews the various expressions of fantasy finds that it is more frequently expressed in imagery than in words As one pushes back into childhood, he finds that fantasy takes more and more the

nature of the unformulated impulse or wish which may in itself be hardly conscious So we might say that in its origin, fantasy grows out of unconscious or barely conscious desires and wishes, and achieves consciousness only after one has mastered the tools of language by which these desires receive a symbolic formulation.

Fantasy as Continuing Unconscious Preoccupation with Traumatic Situations. Fantasy may be unconscious in another sense When former satisfying situations fail to give satisfaction, then repression takes their place and impulses become unconscious For instance, the child originally finds his mother's breast most desirable because it is here that he receives his greatest pleasure Through nursing, his hunger needs are satisfied At weaning, however, the mother's breast is no longer available, and the infant is forced to turn to other methods of eating It is at this time that the desire for the breast or the bottle is repressed, and it is impossible for the adult to place himself back, even in conscious fantasy, to the time when a mother's breast had so much importance. If the tension in an unsatisfied impulse is not reduced by some substitute form of expression (eating from a spoon or drinking from a cup), there is continuing unconscious preoccupation with the unsatisfied impulse which leaks out in various forms of expression. It may show itself in conscious fantasy in somewhat disguised form, or it may show itself in dreams or in neurotic behavior If an act is punished there is also repression, and the impulse which previously received open gratification now becomes repressed Where the recognition of an impulse becomes impossible, but the impulse remains, it is appropriate to speak of unconscious fantasy

Meaning of Unconscious Fantasy. Unconscious fantasy is a concept which gives difficulty to many persons who are accustomed to think of fantasy in terms of vivid imagery. If, however, the more basic meaning of fantasy in terms of drive or impulse is recognized, the unconscious fantasy becomes a meaningful concept For instance, in later stages of a child's nursing he may have a tendency to bite and thereby hurt the mother It is natural for a mother to show displeasure and to punish the child who attempts to bite her The impulse then is inhibited but remains an unconscious impulse and will express itself in symbolic or play activities For example, a little child may respond with fear to stories in which the wolf devours Little Red Riding Hood's grandmother, the giant thrusts Jack into the oven, or a witch gobbles up the children Here the desire to bite is disguised by displacements and reversals Few persons recognize such fantasies as belonging to themselves, although the very fact that as children they could read these fairy-tales and enjoy them is moot evidence that these themes struck a chord to which they were responsive. The fact that so many persons saw, with evident enjoyment, Walt Disney's *Snow White and the Seven Dwarfs*, which was so filled with fantastic material, and experienced horror at the ugly witch, or a feeling of romance at the Prince Charming, points to the existence of

these deep-seated fantasies to which most adults unconsciously respond

Unconscious fantasies (impulses) may operate in later years and seek expression and fulfilment in various ways The extent to which unconscious fantasies affect later expression depends upon their urgency and the degree to which they have been repressed As a matter of fact, unconscious fantasies may represent complicated, even highly organized, processes which evidence themselves in dreams and in the choices and attitudes of later life. These unconscious fantasies are not bound by reality inasmuch as they represent a stage of development which has ceased to function long ago, and since they have been repressed, they are locked up and are impervious to change or development These unconscious fantasies remain infantile and primitive Indeed, these extravagant fantasies may never become openly conscious, and their presence can only be detected through their expression in neurotic behavior or in dreams

Many psychologists find difficulty with the phrase "the unconscious," thereby giving whatever "the unconscious" means a more corporate existence than it deserves Perhaps the difficulty can be obviated by thinking of the unconscious as the collection of unconscious fantasies and even generalizing to the extent of saying that the unconscious process consists of unconscious fantasy

Conscious fantasy always implies the existence of unconscious impulses and wishes One day-dreams, for instance, not only because one is frustrated in the immediate situation, but because there are unconscious impulses in the individual of a similar character which has never been satisfactorily completed as a satisfaction in reality The term *screen memory* has been used for those memories in early life which actually stand for, or cover deeper frustrations and conflicts One may have wondered why some isolated and apparently trivial memory stands out so clearly in early childhood Where these memories have been analyzed, it has been found that they are representations of earlier repressed fantasies which have broken through into isolated conscious experience highly charged emotionally *Paramnesia* (sometimes called "déjà vu"), the illusion of remembering scenes and events which are being experienced for the first time, is again related to this same phenomenon of unconscious fantasy The previous memory is actually of an earlier experience which has since been repressed and forgotten Another vague phenomenon known as "déjà raconte" ("I feel as though I had known it all the time") is a variation of this same breaking through of unconscious fantasy into conscious experience.

The Anima or Underlying Personality. A most interesting phenomenon which has been observed by a number of psychologists is the fact that the overt personality may be the opposite from the underlying personality trends A person, for instance, may be to outward appearances confident and carefree but underneath anxious and troubled Another

individual may have a mild and gentle disposition and yet underneath be filled with the most violent and destructive fantasies An individual may give the world the impression of being ineffective and irresolute, but within he has fantasies of striving and adherence Adler [12] describes this as the compensation for inferiority Jung [444] has described this as the outward *persona* (mask) and the inner *anima*. W. Wolff [855] has recently produced some experimental verification of the oppositeness of the overt and the underlying personality It is as though the personality with which an individual faces the world is a mask and a disguise for the opposite tendencies indicating a weakness of which he is somewhat ashamed. The underlying personality represents the infantile and the primitive The overt personality is the attempt to deny the existence of unconscious fantasy. Koichin [468], using two tests, a direct picture-frustration test and a fantasy test (Thematic Apperception Test) found that frustrations which were reacted to in fantasy situations by direct aggression were reacted to by self-punishment or rationalization in fantasy situations as though frustration-reaction types were expressed in different forms on the various levels of personality However, the unconscious side of a person is, in a sense, the real person because it represents his wish life, whereas the personality which one presents to the world may be only a mask and a sham—"as a man thinketh in his heart so is he." [2]

Fantasy and the Mechanisms. The mechanisms discussed in previous chapters operate in large part through fantasy rather than in actual behavior. It is through the medium of the mechanisms that unconscious fantasies can work themselves out through conscious fantasy into reality Since various mechanisms have already been elaborated, it will be unnecessary to review them in detail here.

Through the mechanisms, one employs fantasy in order to avoid objective danger and pain. It would become emotionally too dangerous to show one's hate and hostility directly toward a member of one's family Consequently, these feelings are not openly expressed in overt behavior, but are merely imagined Indeed, it would be too dangerous to imagine venting one's hate directly, so these feelings become displaced onto characters in stories, the teacher in school, or in fantasies of hunting the inoffensive rabbit or sparrow Likewise, it would be inappropriate and dangerous to show one's erotic feelings in their full strength toward members of one's own family, therefore, these feelings find expressions in romantic tales from which the danger is removed by the operation of the mechanisms of displacement, condensation, symbolism, identification, and projection.

FANTASY AND REALITY

Impact of Reality on Fantasy. The popular conception is that fantasy is ethereal and remote from the actual affairs of life. Dreams are thought

[2] Proverbs, 23:7.

to be vaporous products that disappear in the brilliant light of day. Actually, fantasy has a marked influence on real behavior; and, likewise, the events and experiences of life guide and control fantasy production. It is difficult for a normal person to maintain a fantasy which is contrary to experience. It is true that the fantasies of children are frequently distorted and exaggerated, but real life experiences correct these distortions The longer a person who has established good contacts with reality lives, the more realistic his fantasies become.

When adjustments are adequate and the outside world provides satisfaction, fantasy tends to subside. The well-adjusted child indulges in a minimum of day-dreaming, his fantasies suffer little distortion from reality and are generally pleasant, and his dreams tend to be pleasant dreams. On the other hand, when adjustment is inadequate, and the world withholds satisfaction, fantasy becomes intensified and distorted and is not bound by reality. Harsh parents tend to reinforce a child's fantasies The child who has bad dreams, or who indulges in wild and excited day-dreaming, is suffering strong frustration This is true not only for the child rejected by his parents, but also for the overprotected child who, likewise, is insecure and anxious The father- and mother-imagos of these maladjusted children may resemble the real parents only slightly. They may fantasy their parents as fearful ogres, or they may dream of them disguised in forms of frightening animals, witches or dangerous robbers.

There is an unfortunate tendency in many persons to expect only the good in people because to admit the bad is to admit fantasies of dangerous parents or rivals. In order to avoid these unpleasant fantasies, they expect everyone to be kind and generous to them, and in the real world they are bound to be disappointed.

The fantasies of a poorly adjusted child may lead to open states of depression, anger, or anxiety These wild and distorted fantasies represent an attempt to understand and adjust to reality, and their distortion indicates how unsuccessful these attempts are For the poorly adjusted child, his thoughts of himself and of his omnipotence may be rudely shaken, and feelings of inferiority may develop.

It is through the clash of purposes with those of other persons that the reality of those other persons slowly develop. The overindulged child has a particularly free, fertile, and distorted fantasy life because he has never had the experiences which demonstrate to him the separateness of other persons. Lacking outer control, he finds that there is no brake to his fantasies within, and he indulges in them extravagantly.

Impact of Fantasy on Reality. It is important to recognize that fantasy has psychological reality. Behavior may be determined as effectively by the stimuli of inner fantasies as by the stimuli of outer experience. Indeed, in a neurosis, fantasy may be the determining factor in behavior. In this sense, fantasy is part of the environment of a person, and one may

respond to an unconscious fantasy exactly as to an outside stimulus. For instance, the thought of offending another person may arouse guilt as strong as an actual insult which has instituted some act of counter-aggression.

Impact of Fantasy on Behavior. Fantasy may give rise to behavior disturbances. It was stated in discussing the functions of fantasy that it is an attempt to provide a substitute satisfaction. However, this satisfaction may not be complete or adequate, and some token in real experience may be necessary to reduce the aroused tension of need. In pathological stealing, for instance, a child may appropriate some trifle to serve as a token of the love which he really wants. A child who is light-fingered and steals every personal belonging that he can lay hands on is saying as loudly as possible, "I want to be loved I want attention paid to me Since I cannot have your love, I will take a part of you or something that belongs to you as a token"

Deutsch [173, pp. 123 ff] describes under the term "pseudology" the tendency of persons to act out their fantasies. She tells of young girls who carry on imaginary love-affairs with themselves, mail themselves letters, send themselves flowers, and go through the extremes of despair and elation as such actions stir their emotions.

Psychosomatic Relationships Fantasy may react on reality by actually causing changes in the functioning of bodily tissues. Recent work in psychosomatic relationships is beginning to show clear-cut connections between mental states and physical disorders. Most of these are related to the building up or releasing of tension and, as indicated in the chapter, "Anxiety," these relationships are mediated through the functioning of the sympathetic and the parasympathetic nervous systems. It is becoming well known now that unconscious fantasies may be the direct antecedent and partial cause of such organic disorders as gastro-intestinal disturbances, asthma, muscular hypertension, glaucoma (disease affecting the elasticity of the eyeball), glycosuria (a condition in which sugar has been excreted in quantities larger than the body can assimilate), and diseases of the skin. In each of these the physical disorder crudely symbolizes the frustrated impulse and represents a symbolic satisfaction. For instance, it has been discovered that peptic ulcer is related to a persistence of the infantile wish to remain dependent, to be loved and taken care of This is translated into the wish to be fed, which "mobilizes the innervations of the stomach and serves as a stimulus to the stomach functions" [137, p. 21]. This leads to chronic hypermotility and hypersecretion of the stomach and the accompanying nervous stomach, epigastric distress, heartburn, and belching may eventually lead to ulcer formation.

Those who suffer from asthma frequently have been observed to be those who fear separation from the mother-figure because erotic or hostile impulses exist in fantasy. The outer expression of these impulses has been inhibited, particularly the cry of rage or grief. The asthmatic cough is

a symbolic substitute for these repressed vocal expressions of the feared impulses

Glaucoma was found to be related to ocular tension, which in turn was related to emotional tension. So the pressure on the eyes was increased in periods of anxiety from aggressive, hostile impulses.

Glycosuria was found in some cases to be related to the release of sugar from the glycogen storage in the body in response to emotional conflicts

In diseases of the skin the presence of certain dynamic factors has been demonstrated. In many cases scratching and skin care seem to be the masochistic turning inward of repressed hostile impulses, while these repressed impulses also find expression on the skin because of exhibitionistic trends relative to the inhibition of sexuality.

Reality Testing Through Play. Isaacs [396] has described a mechanism which she calls "reality testing," [8] in which the child acts out his fantasies in play in order to test whether they will overpower and destroy him To act these out in play is less dangerous than to act them out in reality. Play then becomes the proof or the refutation of anxious fantasy and is the testing ground on which the child either finally conquers and overcomes these fantasies or is consumed and destroyed by them In play, then, a child torments his elders in order to test out the danger involved, but he wants his elders to respond in the spirit of play and not in dread reality

When adjustments are adequate and the outside world provides satisfaction, there is a tendency for fantasy to fulfil itself in reality, and hence it becomes an element in growth Searl [722] and French [246] point out how play serves as a link between pure fantasy, on the one hand, and real living on the other The knowledge of the external world is built in large measure on the basis of pleasure and play in childhood. As was pointed out earlier, these become the anticipation of later satisfaction in reality Fantasy helps one to master reality, and a child who learns to play is being helped to avoid the danger of denying external reality (psychosis) or inner reality (neurosis).

Fantasy is a defense against immaturity. A child feels his smallness and helplessness He copies what he can from his parents and leaves the rest to fantasy A day-dream may be thought of as a child's wish to grow up and to take his place alongside his elders. Fantasy permits a child to grow up by slow stages rather than making it necessary for him to wait until he is actually thrust into a new situation for which he had no preliminary preparation. Fantasy then becomes a preparation for accepting more mature responsibilities.

Fantasy Contributes to Adult Adjustment. Fantasy then contributes in an important way to the reality adjustments of the mature adult It may

[8] See page 185 in Chapter VII, "Defenses Against Anxiety" for a discussion of "reality testing" as a defense against anxiety.

seem far-fetched but it is true that mature life relationships are conditioned by the character of fantasies of an individual as an infant. For instance, a mother does for her child what her mother did for her when she was a child, or what she wished her mother had done for her. Infantile fantasy may be surrounded by guilt because of the disapprobation of the parents, but for the mature person, sex relations in marriage is one of our approved social institutions. If conditions of the early guilt are removed, childish fantasies can be acted out in reality without guilt, and thus the sex relations of the adult are a fulfilment of the wishes of the little child

When adjustments are inadequate and the outside world frustrates, fantasy is not fulfilled in reality As the fantasies of the maladjusted child become distorted and wild, they prevent him from expressing them realistically. Instead of constructive adjustments, the adjustments become emotional and destructive, and the emotionally disturbed child attempts to enforce his distorted fantasies on others neurotically. Mature sex relations are impossible if repressed infantile fantasies have not been worked through to satisfactory expression, or if a child's early life has been so hedged about that he has had insufficient sexual stimulation So, instead of fearing a child's early sexual expressions, parents ought to recognize that these become the basis for satisfactory later sexual adjustments and should encourage their expression without overstimulation.

Fantasy also produces real changes by assisting in the development of personality trends. A person tends to act out in his total personality the kind of fantasies which his early experience has aroused in him Sometimes a person with benign and gentle fantasies will develop cooperative and socialized personality trends On the other hand, the individual with hostile and violent fantasies may either work these out in delinquent trends or hide them behind the façade of a calm and controlled personality and insincere attempts to establish good relationships with others.

Fantasies as ideals may be acted on and in this way guide a person through life, direct his energies, and help him to make his impression on the world in reality. Many people who have accomplished great achievements have done so by holding tightly to an idealism that has been the beacon by which they have steered throughout life.

FANTASY AND PLAY

Play is one of the earliest forms through which fantasy expresses itself. Play is an intermediate stage between the oneness of parent and child, when satisfaction reigns supreme, and the attainment of independent competence in reality Play then performs an important rôle in the growing-up process After repression sets in, fantasy is most spontaneously expressed through symbolic play Healthy and spontaneous play requires secure relations with others and an absence of aggressive hate. The play of rejected children may be characterized by aimlessness or destructiveness

Parents probably fail to recognize the extent to which children react to objects in a symbolic fashion. Throughout the day, in countless experiences, the child is working through in play the problems connected with gaining his wishes and satisfactions and methods of overcoming frustrations.

In play a child can do what is forbidden in reality. He can be disobedient, naughty, aggressive, or annoying to others. The Oedipus striving of love toward the mother and hostility toward the father can be worked through in play. There is a necessity to avoid pain and anxiety when play is too free and when it gives expression to the more dangerous impulses. Under these circumstances, play then takes on a compulsive nature, with much repetition, insistence on order and neatness, adding things up, and playing by rules.

Ideational Fantasy or Day-Dreams. In later childhood the tendency to play becomes repressed. A child becomes ashamed of revealing his fantasy life too plainly for others to observe. Play becomes childish to him. Whereas once the child took pleasure in expressing prohibited impulses through play, now these prohibited impulses become so dangerous that he cannot even afford to express them openly at all. It is then that there is a retreat to inner ideational fantasy, and day-dreaming takes the place of play. Day-dreaming can be secret and cherished. The adolescent will reveal his innermost thoughts in diaries and the young girl wants a locket (which can be kept locked) for her secrets. The imaginative child can be observed talking to himself when alone, showing the pressure of fantasy.

In infancy play has as almost its sole function the discharge of the tensions of anxiety. In later childhood it also serves a cognitive purpose as a child experiments and learns through play. Early fantasy and play interests determine the interests toward work, play, and real experiences in later life. One's hobbies are almost always based on the happy play experiences of early childhood, and fantasy attitudes toward parents determine later attitudes toward teachers, rulers, government, and authority in whatever guise, and also toward religion.

FANTASY AND ART

Art is one of the more mature forms of expression of fantasy although art products can be distinguished in important respects from pure fantasy. Art and fantasy are alike in that they are both expressions of wishes. The painter draws the world as he would like it to be and as his inner impulses dictate. Both fantasy and art offer compensation for what is lacking in reality. The musician expresses his inner moods of joy or disappointment through his compositions. Many of Mendelssohn's "Songs without Words" have been given titles to indicate the nature of the emotion expressed. Both fantasy and art may be concerned with pleasure and also with the suffering which arises from guilt.

However, there are important differences between art and fantasy Fantasy need be acceptable only to the individual Indeed, most of the private fantasies of individuals would be shocking and repulsive to others To be art these fantasies must have social acceptability They must be so disguised and diluted that they can be experienced without disgust or annoyance by others. Fantasy may be poorly organized, indeed fantasies, as expressed in dreams, are usually bizarre and chaotic Art, however, must have form, unity, and clarity Indeed, it is perhaps the need to make fantasy socially acceptable that serves as the main basis for the canons of artistic form The day-dreamer feels no urge to express his fantasy, and when called upon, words may fail him The artist, on the other hand, must be a skilful technician able to express in word or color or sound the objects of his inner life

Myths, Sagas, and Legends. Fantasies have received an interesting expression in the myths, sagas, and legends which have come down to us from the past These myths and legends represent the expression of the fantasies of whole nations crystallized in permanent artistic form They have been built from a common core of experience out of the innumerable infantile and adolescent fantasies of individuals It is interesting how the fantasies of children today resemble the myths and folk-tales of the long ago Indeed, these tales from the past would not endure and be enjoyed with each succeeding generation were it not for the fact that they are in tune with something that reverberates in each one of us

Fairy-Tales. The fairy-tale is an illustration of the form which the fantasies of children take From around five to ten years old most children enjoy fairy-tales. An analysis of fairy-tales throws considerable light on the nature of childish fantasy [1, 646, 670] For instance, it has been found that in practically every fairy-tale there is some direct wish fulfilment The hero achieves wealth or fame or a happy marriage The child who enjoys a fairy-tale usually has some immediate provocation in the present in the form of some frustration, or a long-standing grievance Fairy-tales help to broaden the imagination and, like play, assist in the process of emotional development They enable a child to solve some of his inner conflicts by identifying himself with the characters in the stories and sharing with them the trials and experiences leading to the final satisfaction Modern educators who would abolish fairy-tales and substitute in their place stories of the work of the world, as illustrated in the postman, the milkman, and the taxi driver, have seen only the intellectual values in these stories and have failed to recognize their contribution to emotional growth The reader or the movie-goer can enjoy his day-dreams without reproach on shame as they are projected out into the story, and the writer works out his own conflicts through the experiences of the characters he creates

Fairy-tales, on the other hand, have their destructive values For some

children a fairyland may serve as an escape from reality which can become a permanent pattern, so that when difficulties arise the individual falls back on the fairy-tale or the comic book for satisfaction

In those few individuals who were unable to enjoy Walt Disney's *Snow White* were probably aroused unpleasant repressed tendencies and conflicts which were never completely and satisfactorily solved at some earlier period and which were painfully revived by the film

It is interesting to speculate on the symbolic meanings in fairy-tales. Fairyland becomes a retreat to the security of the early infantile state, a time when a person is without responsibility and his needs are met by others The amazing miracles in fairy-tales—pebbles turned into jewels, the golden thread produced from flax—represent both the difficulties and helplessness of infancy and the magic wish to have these difficulties overcome The witch becomes the bad mother and represents the child's resistance to the mother's domination The self-sacrifice and assumption of burdensome tasks in the fairy-tale represent the giving up of the mother and infantile dependence, and the taking on of the responsibilities of later childhood In all fairy-tales the child lives out the drama of his own growing up

One must not overlook the present vogue for comic strips, horror strips, and cartoons Practically every newspaper has its pages of comics, and the rage for comic books has distressed and bewildered parents In this form of picture-reading, one can observe fantasy expression in the purest form. Here is the hero who overcomes his rivals and enemies by magic means—invisible garments, death rays, and the like. People of all ages love to laugh at the downfall of the villain The writer once entered a movie where a most gruesome scene was being enacted on board a pirate ship the pirate band was being bloodily overcome by various tricks and stratagems What I saw were the blows and falls, but the audience was howling with glee at the release of pent up vengeance for previous dastardly achievements of the pirate band

FANTASY IN THE STAGES OF DEVELOPMENT

Fantasy in Infancy. The fantasies of the infant are mainly concerned with those objects toward which it directs its impulses Of these probably his own body takes first place, and the infant's earliest strivings are directed toward its parts, particularly the openings—the mouth and organs for excretion This concern with the body, both the inside and outside, easily transfers itself to what he eats and what he excretes An infant is also interested in the mother and her body and later, perhaps, in the father and his body The average person is not aware of the extent to which the little child is concerned with physical contact and how natural this is He comes into the world naked, and one of his first experiences is the direct contact with his mother's breast Next, the infant is interested

in his brothers and sisters and his physical contact with them is among his earliest pleasures. Early in life the infant recognizes danger situations and injurious objects He becomes concerned with pins, heat and cold, and crawling insects As his development progresses, he becomes concerned with his toys and familiar objects around the house These he tends to invest with meanings which he translates from his earlier interest in his body Still later he finds interest in his and in his playmates' pets One should not forget, as was suggested earlier, that the little child is also curious about the sun, moon, and stars He has not yet learned the significance of distance, and the moon is an object just beyond his reach that fascinates him by its brilliance.

These are some of the principal objects toward which the infant directs his impulses and which become the subject of his fantasies Most of these are universal experiences—every infant experiences his own body, what he eats and secretes, and is under the care of someone who occupies the parental rôle Accordingly, if psychoanalysts refer to universal infantile fantasies and universal symbols, it is because they grow out of universal infantile experiences

Infantile Fantasy the Basis for Bizarre Element in Dreams. The bizarre nature of dreams becomes intelligible only when they are referred back to the distorted fantasies of infancy, because it is now well authenticated that some of the elements in dreams are infantile fantasies which have remained unchanged over the intervening years Infantile fantasy is subject to almost complete repression, and this accounts for the fact that it has not been corrected by later reality experiences The return to infantile fantasy in dreams is a return to the fixation points in development to which the individual was not able to make wholly adequate adjustments At points of traumatic experience, in infancy, following the weaning experience, for example, fantasy becomes more exaggerated; but since these fantasies become so completely repressed it is difficult to demonstrate this fact except through analysis.

Fantasy in Adolescence Early adolescence is another period when fantasies tend to become wild and exaggerated If a child passes through such traumatic periods successfully, his fantasies become less egocentric, he demands less for himself, and is better able to take his place as a member of a group. It is believed that the fantasies of adolescents represent newer editions of older similar fantasies They are revived because of the demands of adolescent development We find, for instance, that in adolescence, day-dreams deal particularly with adventure and romance It is at this period that there is more mature yearning, aspiration, and idealism, boys who look forward to taking a place in the work of the world, and girls to homemaking Day-dreams at this period admit the incompleteness and inadequacy of the self, and there is a distinctly new altruistic note which is missing in the day-dreams of earlier childhood. Moral conflicts are wrestled with in adolescent fantasy.

CONSCIOUS FANTASIES—DAY-DREAMS

Incidence of Day-Dreams. All persons day-dream at one time or another In one study [149] sixty-nine per cent of college students admitted day-dreaming frequently, and undoubtedly the other thirty-one per cent either failed to make a similar admission or were unaware of how they occupied their idle moments Boys tend to be more productive than girls In a study by the writer in which stories were made up to accompany pictures, boys told longer stories with a larger number of themes One study [68] points out that Negro boys day-dream more than white, perhaps because of greater frustrations It is emphasized that there is no appreciable correlation between intelligence and imagination, and that most intelligent children are not necessarily the more imaginative. An inverse relation has been found between a tendency toward verbalization and day-dreaming. The talkative child day-dreams less than the silent, morose one [170].

Situations Conducive to Day-Dreaming. Everyone knows that certain situations are particularly conducive to reverie One is forced to day-dream more when alone than when with an active excited group Fantasy is stimulated more by the dimness of twilight and moonlight than by the brilliant light of day. Monotonous sounds and rhythmic movements—the sound of waves, the running water of a brook, soft music, the flickering of a fire—are also common inducements. Most persons are roused to fantasy by distant sights and sounds, such as a view from a mountaintop or a far-off train whistle. Reverie is aided by a state of slight fatigue Artistic productions—radio skits, novels, movies, plays, and short stories—often excite pleasurable fantasies.

Forms Day-Dreams Assume. Perhaps the most common form of the day-dream is the absent spell, in which a person retires from the active concerns about him and becomes engrossed in his own fancies Sometimes these conscious fantasies take the form of obsessions or persistent thoughts that return to mind with insistent force. In a more extreme form they are found as hallucinations—fantasies or sensations of a highly vivid and realistic nature for which there is no apparent external cause. Still other forms are the illusion, which is an inaccurately interpreted stimulus or object, and delusion, which represents a false belief or judgment.

Content of Conscious Fantasies. In general, it might be said that there are three general kinds of day-dreams (1) those in which a child wishes to be, to have, or to do—the wish going back eventually to a desire for security or for self-esteem and approbation; (2) those in which he is afraid, and (3) those in which he fears what he might do or be Jersild [409] finds that with younger children, particularly, day-dreams are more concerned with wishes than with fears.

The writer's own use of the picture-story method reveals the content of adolescent fantasies. Over a third of the psychological themes in the

stories told by adolescent boys and girls deal with aggression and eroticism Consistently their stories are filled with episodes of violence, crime, and death, on the one hand, and of dating, falling in love, and getting married on the other. Sometimes the central figure in the story plays an active rôle, and it is he who is guilty of the crime or finally marries the employer's daughter, in many instances, he is tempted to commit such aggressive acts against his better judgment. Frequently, however, the aggression is passive, that is, the hero is the innocent victim.

The characters around which these stories are woven are members of the family to a considerable extent, because adolescent boys and girls are still largely immersed in their families.

Another frequently recurring theme is punishment. The criminal is finally caught, brought before the law, and sentenced This apprehension of the aggressor occurs with monotonous regularity and is a result of the huge burden of guilt following in the wake of the children's aggressive (and erotic) fantasies This is also shown by the themes of reform, repentance, and learning a lesson which are sprinkled throughout the stories. But then, in many cases, these fantasies become too painful, and the story is completed by erasing all misfortune so that everyone "lives happily ever after"

One gets the impression that the stories which adolescents tell do not reveal the true depth of feeling beneath A boy may tell a story in which he is driving an auto for the first time and hits and kills an old woman who later turns out to be his mother The story is told in a blunt matter-of-fact way in the spirit of "the play's the thing" even though accompanied by a shudder The fantasies of most persons have an *Arsenic-and-Old-Lace* tone

Among other lesser themes, one frequently finds altruism—giving another person a helping hand This may be a theme of *saving* or *rescue* from the gangsters or the evil man Themes of ambition or success are not uncommon Horatio Alger still lives in the day-dreams of countless boys and girls Escape is another theme which one finds occurring many times, usually with the excitement or fear of detection and eventual relaxation when safety is reached The problem of separation and rejection occupies a prominent rôle The hero will leave home and try his fortune in the large city. But after many hazardous and not too fortunate episodes, he may finally return with relief to the home he left. Every adolescent wants to grow up and become independent, but he is still in need of the security of his home The fear of loss or of separation arises many times. Fear of accidents, illness and injury is a constant threat

In general, the stories of boys and girls are remarkably alike. It is probably well to stress the fact that the general problem of meeting the frustration of growing away from the family is more influential in causing boys and girls to tell stories that are alike, than differences in needs and interests are in causing them to tell stories that are different. Boys,

in their stories, tend toward violent aggression, introducing themes of police, arrest, and prison for which punishments are more external, while the aggression of girls is more mildly expressed by disobedience, rebellion, and coercion It is perhaps unsuspected that boys introduce themes of love and falling in love more frequently than girls, whereas girls more often introduce friends and children. Boys are more interested in themes of wealth and riches.

The stories of older adolescents are much like the stories of younger adolescents Those invented by children under fifteen tend to be happier, while the older groups include more themes of discouragement and disappointment, of anxiety and worry, of fear, dread and alarm. This paints the picture of early adolescence as a carefree period with more violent expression and a minimum of guilt over it Adolescents over fifteen, on the other hand, face sharper conflicts with family, social standards, and the expectations of society. Stories told by the younger group express crude hopes and longings, set in a world of primitive passions, those given by the older group show some disillusionment, disappointment over the past and present, anxiety concerning the future

Superego Fantasies. Sometimes dimly conscious fantasies take on the nature of inner voices which will be found in every instance to duplicate what has been said to the individual by another person Sometimes these voices are reassuring "You are doing well," "Things will turn out all right," "Do your best and you will succeed " Sometimes these voices strike a critical note "You are a bad girl," "You should be punished," "You will die because you are bad." Sometimes they utter warning notes "I musn't do it," "I will be scared." Sometimes these inner voices take on more of the nature of the ego ideal and express ambitions and goals. "You should be more like your brother," "You can sell more tickets than your cousin " Sometimes these voices tell of persecutory beliefs· "The boys in the next block are trying to get you, you had better go around the other way to school," "People are whispering about you behind your back."

All of these are replicas of attitudes that other persons have expressed to the individual about himself and which he has now made his own It is interesting that they come to him as *auditory fantasies* duplicating the manner in which they were originally expressed.

The Imaginary Companion One day-dream is common enough and so excites popular fancy that it is worth discussing at some length Several studies [346; 350, 387, 776, 821] deal with imaginary companions One study [350] found that six per cent of the children questioned had imaginary companions, while another study [387] found that imaginary companions were admitted to by twenty-three per cent of the boys and thirty-one per cent of the girls. A child may have an imaginary companion as early as two and three, and they are found in children up until the time of adolescence Actually, the imaginary companion may appear in children in two quite different epochs Some children have them before

the age of five and six, at which time they disappear. In other children they first appear at about five or six and are continued on up until adolescence. In both cases the imaginary companion is likely to disappear either at the time of the transition from infancy to childhood, or from childhood to adolescence. Children who have imaginary companions tend to be lonely children or only children, living far away from others where playmates are not accessible. Sometimes they are children in large families where the other children have grown up and the newcomer is almost of another generation. These children are known to be imaginative children in other respects. On the whole, they tend to have higher than normal I Q.'s. Imaginary companions are found more often among girls than boys In personality these children tend to be shy and isolated.

The imaginary companion is more than likely to be of the same sex as the child. Also, the trend is for the companion to be older than the child, someone that the child can look up to and revere and yet, at the same time, be companionable The companion tends to be good rather than bad. The child herself may be up to pranks and deviltry, but the companion tends to represent the child's ideal for herself. In a large proportion of cases the imaginary companion has a name. With young children the name may be a curious concoction of the child's own, not corresponding to any English word, such as "Ga-ga," or "Dubido." With older children, the imaginary companion will have a real child's name, not infrequently an elaborate or glamourous name. All this points to the possibility that the imaginary companion is the child herself, or rather her ideal, and, in some cases, may represent the good mother whom the child wishes her own mother to be like.

Children tend to be highly secretive about their imaginary companions. They do not share them even with members of the family, and it takes a skilled investigator to establish excellent rapport with a child in order to learn the details of this companion and its imaginary world. The imaginary companion stirs kindly emotions and in later years, in those rare moments when a person goes back to memory in childhood, there is nostalgia in recalling this companion. With the younger children the imaginary companion is easily identified with a toy, animal, or doll, which serves as a fetish and actually comes to appear alive and real

Parents are sometimes alarmed when they discover that their child is living in this imaginary world with such an elaborate fantasy life So far as is known, there is no evidence to indicate that such imaginings have any ill-effect on the personality The child is merely taking up the slack in its emotional life and substituting for the real emotional experiences in play with other children, imaginary experiences in the world of fantasy

PATHOLOGICAL IMPLICATIONS OF FANTASY

The same factors—frustration, repression, and failure of mastery—that cause a neurosis also cause fantasy, so that one finds that where fantasies

are abundant and powerful, individuals tena phenomenon, it is accom-
characteristics If a person is able to work out his ction should be made
he tends in the first place to be a stable and normal ns and the schizo-
fantasies are relatively mild and tend to be realistic On withdrawal
the fantasies of neurotics are luxuriant and powerful ologically

The question is sometimes raised as to whether all persons rming the same infantile fantasies. One can simply assume that they are in the same in all individuals In the normal individual they tend to be mild, lack exaggeration and distortion, and are also more deeply repressed In neurotics, on the other hand, these fantasies are stronger and more distorted in infancy Day-dreaming may be a sign of serious emotional disturbance

One can go a step further and say that unconscious fantasies tend to express themselves in neurotic symptoms, and that the neurotic symptom is the outward expression of unconscious fantasy that is pressing for some sort of fulfilment

The fantasies of neurotics are infantile They are not based on present situations, nor need they have too close resemblance to reality An individual who has returned to the scenes of his childhood after an absence of many years may be surprised to find that the oak tree in front of the house does not tower to heaven as he imagined it did This is the phenomenon of infantile fantasy When we are small things are in disproportionate relationship to that which we experience to be true in later years.

Specific Neuroses or Psychoses. *Hysteria* Hysteria is almost completely the working out in reality of unconscious fantasy or wishes These wishes are not acceptable to the superego and consequently have been repressed, but they are so urgent that they force themselves through to a disguised expression Hysteria is based much more frequently on pure fantasy than on the memory of actual experiences It may be possible to find cases in which the phobia is based on some real experience, but these are exceptions Bagby [48, p 162] reports on the child who developed hysterical headaches following an episode with her father who planned to administer punishment, but was deterred by the intervention of the mother who protested that the child had not been well during the day. This episode has the merit of being understandable and realistic However, the fact of the matter is that an hysterical symptom is much less seldom based on a single real episode like this than on pure fantasy, which has a highly tenuous origin in experience

Hysterical symptoms are, in every instance, symbolic representations of the unconscious fantasy which they express If one knows the fantasy on which it is based, one can see how the symptom is a displaced expression of it. Many anxieties can easily be traced to fears of sexual experience which are disguised wishes for these wholly unacceptable experiences A conversion symptom, by which is meant some sensory, motor, or glandular

disorder, can be recognized as a symbolic representation both of the resistance against a repressed desire and the expression of it A paralysis of the arm, for instance, was found to be related to repressed rage against a teacher The same individual, who as a child found that crying did not bring the attention he craved, woke up one morning speechless, this speech inhibition bringing to him the attention of which he had been deprived [172]

Phobia. Phobias are fears which are fantasies in disguise The person, for instance, who is afraid of sharp knives is the very one for whom a knife becomes a dangerous weapon, and there is a fear that the impulse to use this weapon aggressively may be carried out The phobia then is a protection and a defense against this fantasy

Obsessional Neuroses Obsessional neuroses are also based on fantasies and are protective expressions against them A rule is sometimes given to count ten when angry, for this counting will give time for the anger to cool off and will represent substitute activity for the more direct expression of the anger It is not generally known, however, that many repetitive activities are unconscious substitutes for similar aggressive or hostile impulses The tendency to count steps, persons, or objects, may well be a substitute for more dangerous attitudes and impulses. One will usually find that the counting also is a substitute expression for the wish as well as of the protection against it—to find out if "they" are all there, as well as to hope that they are gone Obsessional acts of cleanliness may be a protest against dirt or disease, but may also indicate the wish for contact by which the contamination would be effected. So, in every case, the obsessional symptom is both the protest against and the expression of a fantasy.

Paranoia *Paranoiacs* are persons who have exaggerated and unrealistic fantasies (delusions) These fantasies tend to be of two main varieties, the fantasies of greatness or of grandeur in which the person enlarges himself and tends to dominate or overcome others, and fantasies of persecution or suffering which would be a very natural complement to the first since the fantasies of attack lead to retaliatory attacks from others So the paranoiac is one who believes that others are plotting his downfall The definition of delusion as "a patch on the spot where originally there was a rent in the relation between ego and the outer world" [272, p 252] seems to be particularly appropriate

Depression Depressed states are also based to a large extent on fantasy Depression owes its origin to guilt felt over hostility toward others who have died or moved away, or who have been hurt in some way This guilt, in most cases, is for hostile fantasies, and actually the person who has gone away is one for whom only the greatest affection and love were shown in actual relations

Schizophrenia *Schizophrenia* is a condition of withdrawal from active and emotional participation in the outside world. It is commonly believed

that because schizophrenia is a withdrawal phenomenon, it is accompanied by an increase in fantasy Actually, a distinction should be made between the person who indulges in excessive day-dreams and the schizophrenic. Day-dreaming is a protection against psychotic withdrawal. When, however, the relations to the outside world become pathologically impaired, there is a reduction rather than an increase in day-dreaming fantasy.

DANGERS IN FANTASY

In an earlier section the positive values of fantasy were set forth However, fantasy has its dangers which should be recognized and not overlooked Fantasy is harmful under two conditions (1) when it is based on anxiety, and (2) when it becomes an end in itself When it is based on anxiety it tends to become exaggerated and fixated, and instead of contributing to ego development, it may interfere with it. Fantasy, which sometimes helps a child to feel his way into the adult world, is used to wrestle with it when anxiety appears

Fantasy may become so satisfying in itself that it causes the damming up of real satisfaction It was earlier pointed out that fantasy intervened at points of frustration in order to supply substitute satisfactions Now it is well known that the satisfaction of fantasy is never as real or as completely rewarding as real experience The hungry child who plasters his nose against the bakeshop window and feasts in fantasy on the tarts and pies he sees there may be thereby gaining a certain temporary satisfaction, but it can never be as completely rewarding as the taste of food itself The person, then, who evades real experience in order to indulge in fantasy is failing to gain the richest and most complete satisfactions of life

Fantasy may be thought of as a form of escape from real experiences and accomplishments. He who builds himself up too much in fantasy will meet disillusionment in the real world Too much devotion to day-dreaming will interfere with the normal routine of living. A child who day-dreams excessively in school will not profit by the real experiences the school program provides Fantasy may interfere with concentration. As stray thoughts pass across the mind, the attack on the problem is temporarily diverted and efforts to solve the problem are frustrated. Fantasy then must be thought of as a waste of time as compared with the richer experiences of actual living

Another danger in fantasy is that it may isolate a person socially The individual who has savage, hostile fantasies toward others cannot fail to believe that others are also unkindly disposed to him and he will tend to shun them So a person who engages in too much fantasy tends to remove himself from others. Also, as we have seen, fantasy may lead to neurotic behavior in an attempt to work through the problems which gave rise to the fantasy itself

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

As we have seen, fantasy has both its merits and its dangers. First of all, because fantasy is important in the process of maturing parents must give attention to it in their children's development It is not something to be stamped out, but rather to be cultivated along productive and expressive channels The wise parent is one who will provide his child with toys and play materials which will enable him to express his fantasies constructively Paints and crayons, modeling clay, toy animals, dolls, miniature objects of furniture, tools, trains, airplanes, and the like, all permit the child to develop and express his fantasy life Parents should enter into the child's fantasies and take an active rôle in them This does not mean that the parent should attempt to pry into a child's secret thoughts, but should get down on the child's level and play with him

It is very important that parents accept the child's aggressive fantasies Where the child shows his irritation and annoyance toward the parent, these feelings should be accepted as they are expressed The parent who tries to hush a child from showing his disappointment and his annoyance is pushing fantasy back into the repressed and the unconscious where it is readily inaccessible and where it may find the necessity for working itself out in neurotic and objectionable ways in later life

Naturally, parents will wish to reduce unwholesome fantasy and excessive day-dreaming. A child cannot repress the tendency to day-dream by direct resolution, and parents will have little success in attempting to eradicate it by direct methods It is important to teach the child to be successful, to give him tasks to do that are within his range of abilities, and to encourage him to be successful with them The child who can *do* things is going to have less occasion to resort to vapid day-dreaming Every child needs sufficient freedom to give expression to his fantasy life A child who is caught up with restrictions that are too compelling and confining is the one who will be forced to indulge in unwholesome fantasy. Children should have time and space to play A day closely scheduled with tasks is going to force the child to rob some of these scheduled hours for his fantasy life Every child needs an hour or two of free time during the day for play, and space where this play can be carried out unhampered by restrictions. Parents and teachers should avoid assigning children monotonous, meaningless tasks. The constant efforts at curriculum revision in our schools should continue to be along the line of making the work and activities in schools more interesting and meaningful to children

It has been seen that it is the lonesome child who tends to indulge in unwholesome fantasy Children should have playmates and it is the fortunate child who lives in the block where there are several other children his age with whom he can engage in spontaneous play. Parents would do well if they provide their children freely with toys and take

them on trips, excursions, and picnics. The child whose life is filled with busy and interesting things, whether these are planned for him or are of his own choice, is going to have less need to resort to daydreaming

It is highly important that parents answer their children's questions as they are asked There is a time in the life of every child at around the age of four when he becomes curious concerning the facts of life—birth, death, and similar queries. Instead of putting off the child's questions with unsatisfactory answers, a parent should attempt to face these issues frankly and satisfy, so far as they can, their child's open curiosity concerning them It also would help if parents could share their children's fantasies without censure or blame Fantasies become repressed because parents are unable to tolerate them Those parents who develop such a dislike for comic books are not helping their children to deal with them in a realistic fashion A more helpful reaction would be for parents to become acquainted with these books and try to find out what it is that makes them so appealing On the basis of this understanding parents would be better able to deal with the impulses and desires which these comic books satisfy rather than trying to pretend that they do not really exist and to repress them

EXPERIMENTAL METHODS OF SECURING FANTASIES

The method for securing unconscious fantasies par excellence is through dreams. Dreams have intrigued men for centuries, but it was not until Freud published his first and monumental work, *The Interpretation of Dreams* [254] that the significance of dreams in revealing infantile-fantasy material was recognized. Freud's method of dream interpretation depends on the production of free associations to the dream material by the dreamer, and the analysist's skilful understanding and use of mechanisms employed by the individual to defend himself against anxiety which would be aroused by unacceptable impulses, were they to be openly revealed in undisguised form

Projective Techniques. A rather recent development in the study of fantasy is through the so-called "projective techniques," a term first used by Frank [241]. The use of the term "projective" in this sense is derived from the mechanism *projection* but is a somewhat liberal and inexact use of the term In projective techniques there is the implication that as a person expresses himself in any kind of constructive or interpretative activity he is acting out inner fantasy If he is telling a story it is believed that he projects into the characters in the story his own impulses, feelings, and thoughts That this is true to a degree is beyond doubt, but exploration and experimentation with the method are yet so young that the exact correspondence between the products of expressive material and inner fantasy is not yet known There is no doubt that if projective techniques are the acting out of inner fantasies, these have

been so distorted and disguised by layer upon layer of protective mechanisms that the deeper infantile fantasies are hopelessly hidden If projective techniques are used in social situations, as in clinics or schools, naturally the stories and productions must also pass the censorship of social acceptability.

Projective techniques may be divided into two main groups, the *expressive* and the *interpretive* The expressive techniques consist of those in which the subject takes unstructured and plastic materials, and shapes them in accordance with his own fancy and inner impulses Among the media which have been employed for securing fantasy material through this method are painting, drawing, modeling and finger-painting. The use of color by a child adds to the significance of the content by revealing the underlying mood Modeling clay, soap, cold cream, and other plastic substances have proved valuable as they give added scope to the child's imagination Stone [494] has experimented with balloons which would give a child opportunity for venting his hostile impulses by pricking them, causing them to burst Probably the most valuable of these expressive projected techniques is found in doll play, many variations of which have been tried out. One of the most significant methods is that in which small doll figures, selected to represent members of the child's family, are presented to the child, who is then encouraged to tell how each member of the family feels and reacts to certain situations [759] Puppet shows are a good medium through which children can express their emotions, as their crude drama provides familiar emotional settings

Interpretive Projective Techniques Interpretive projective techniques employ materials which have already been formed, but in a relatively unstructured fashion, and the child is asked to give his interpretation The most famous of these in the well-known Rorschach [689] method. This method uses a series of ten plates, each containing a symmetrical ink blot In five of these blots color appears The subject is asked to tell what he sees in the blot—of what it makes him think The responses reveal the structure of the individual's perceptual life with a minimum of attention to content. A more direct approach to the study of fantasies is the *thematic apperception* method, credit for which goes to H A Murray[4] In this test the subject is presented with a series of pictures, one at a time, and is asked to tell a story for which the picture might be used as an illustration The subject is asked to tell the relation of the individuals in the picture, what has happened to them, their present thoughts and feelings, and what the outcome will be He is told that this is a test of creative imagination so that the purpose of the test is hidden from the subject. The stories which a subject tells have been found to be highly revealing of basic trends in the individual's personality Murray

has devised a method for "scoring" this test by an analysis of the stories into "themas" [612].

Murray has also used other stimuli designed to arouse fantasies, such as the playing of musical themes, presenting the subject with odors, and the like. To each of these the subject is asked to tell what associations are evoked. Murray has also experimented with having subjects complete unfinished stories.

Projective techniques are in their infancy, and methods of analyzing them have not yet been satisfactorily worked out. These techniques yield information of great diagnostic value concerning a person such as the strength of his drives, his conflicts and problems, and the nature of his underlying wish life.

Fantasy material is of value in planning treatment for a maladjusted and neurotic person. Some psychiatrists use the Rorschach method to help them discover the extent and nature of the disturbance of a patient. They also find other projective methods of value in quickly sizing up the nature of the patient's difficulties, and using them as a guide to the therapeutic procedure which can be used. Projective methods are also found valuable in checking on the progress of treatment. A second Rorschach, given after the treatment has progressed for a time, will indicate the nature of the progress made and the probable extent and course of the remaining treatment.

Some Features of the Thematic Apperception Method. In one of the writer's own studies [778] he determined criteria for the choice of pictures to be used in the thematic apperception method. It was found that those pictures are most satisfactory which satisfy two criteria: (1) that they be simple, somewhat vague, and unencumbered with detail, and (2) that they should contain figures which the subject can identify, preferably of the same age and sex.

It has been found that the stories bring the feelings and the emotions of a subject into strong relief so that his underlying moods are revealed. Stories also show the major conflicts and problems with which an individual is struggling. In some cases a sequence can be observed in which for one or two stories material will be highly charged emotionally, with perhaps a strong, aggressive, or erotic content to be followed by more innocuous and neutral stories, as though revealing some of the more dangerous fantasies frightens the person and he finds it necessary to raise his resistances against them. In general, better adjusted persons tell longer and freer stories, although this relationship is not at all close and cannot be depended upon for diagnosis.

Some Characteristics of Stories by Different Neurotic Groups. Masserman and Balken [567, 53] have used the Thematic Apperception Test extensively with mental patients and, as a result of their studies, have found features which distinguish the stories told by different

In conversion hysteria stories tend to be flippant and full of sexual fantasies and erotic scenes Patients with various forms of anxiety require a warming-up period Their stories are slow-moving and cautious, filled with climactic situations, and indicating strong identifications Obsessional characters give long, detailed, indecisive stories The conflicts with which these persons are struggling are clearly shown. They make use of special expressions, and there is a tendency to rationalize and theorize Paranoiac characters give evasive and guarded stories with much neutral material in which emotionally charged responses may occasionally break through. Depressed characters give retarded, halting, and fragmentary stories colored with guilt and self-depreciation The mentally defective produces stories with a naiveté of material and a dearth of imagery.

Methods of Validating Fantasy Material. Murray [611] has given considerable attention to the method of validating fantasy material, that is, demonstrating that material gathered through projective techniques correspond to significant fantasies of the individual. He proposes five methods for such validating studies. (1) He would compare the fantasies obtained through one projective medium with those obtained through another. If the same fantasies are produced by different methods, he would assume that these represent fundamental trends in the individual (2) He would correlate fantasy material with biographical material, always with the understanding that biographical material may be surface and superficial, and that the sought-for correlation with the fantasy material may not be revealed. Recent studies using projective techniques indicate that fantasy material obtained through projective techniques in some cases represent trends in an individual exactly the opposite of those trends which he shows in his everyday living (3) He would compare fantasy material with early childhood and infancy experiences (4) He would attempt to predict future behavior from material revealed through projective techniques and wait for these predictions to be verified in the future (5) He would compare fantasy material with the person's own interpretation of and reaction to it

THERAPEUTIC IMPLICATIONS OF FANTASY

An understanding of fantasy is particularly important in therapeutic work with neurotic individuals As was stated earlier, a neurosis is, in part, an acting out of infantile and unconscious fantasy Consequently, to help anxious or obsessional persons it becomes necessary to uncover their unconscious fantasies and help the person to become aware of their nature It has been found that while there is considerable resistance to uncovering and facing these fantasies because they so often represent unacceptable impulses, they lose their grip on the individual as their infantile character is recognized, so that he is freed from their bondage. The individual, then, is able to reorient his living on a more mature basis So psychoanalysis consists in large measure in helping a person to

discover the nature of his own unconscious fantasies in order to secure relief from the anxiety or tension which they arouse.

It has been found that when the resistances which a person has set up against this unconscious material are pointed out or interpreted to him, these resistances relax and the person is able to express his fantasies in freer fashion.

In analytical work with children use is made of play rather than language for the expression of fantasy Play has higher symbolic value, as has already been pointed out. As the child analyst interprets to the child the possible symbolic meanings in his play, the play becomes free and the child gains insight into the nature of his impulses and strivings. Neurotic trends are frequently relieved both by the cathartic value of the play itself and by the insight gained from the interpretation of its fantasy meaning

XXIII

Love and Self-Love

One may search through most of the popular texts of psychology without finding love even remotely considered, and yet the very fact that the word *love* produces so pronounced an emotional reaction on most persons indicates its psychological significance in human affairs Psychology has dealt adequately with the strong emotions but on the whole has ignored love Its importance cannot be overvalued, and no topic in psychology has more profound implications

DEFINITION

Love will first be defined in terms of feeling As used in this chapter it will refer to the positive feelings of liking, satisfaction, and enjoyment Love finds its origin in the infant's attainment of satisfaction and pleasure in the act of nursing Even as the first pleasure is experienced, so the person who is associated with this pleasure is enjoyed, and this is the beginning of love When one loves, one cherishes The object of love is approached with admiration and reverence When one loves another person, one even tolerates his waywardness and foibles and overlooks minor limitations and irritations In love some feel gratitude and a sense of appreciation and obligation toward the other person, even when direct gratification from the other person has ceased Love is linked to gratification in such a way that through love it is possible to tolerate the suffering (frustration) that is necessarily bound up with it Sometimes the distinction is made between *liking* and *loving* One likes when he feels mildly toward another person, but he loves when the feeling becomes intense and passionate In this chapter love will be used for all degrees of positive feeling, whether mild or intensely passionate

The second meaning of love grows out of the first As one feels fond of another, one is attracted toward him and wants to come closer There is pleasure in proximity, and love ripens into a deep "attachment" which indicates the element of closeness There is a striving for contact There is a desire for physical contact which may show itself in caresses and tenderness, but there is also a desire for social contact—being in the same circle of friends—and for communion of thoughts, attitudes, and ideals.

Love may be thought of in a more general sense as the *affirmation of value* It is the recognition of whatever we consider to be good, valuable, and worthy, and toward these persons or objects we show our positive emotions. This affirmation is not limited to the mere nod of a head but expresses itself passionately and with energy In love there is a striving for the happiness, the development, and the freedom of an object or person. In this sense love is the opposite of hate. What one hates he wants to destroy and to put away from himself, but what one loves he wants to nourish and foster A mother who loves her child should want the child to grow and become a person in his own right. It is impossible for a person to love evil, or that which is negative or which is based on compulsion Love is not an intellectual evaluation but is expressed by the attitude and activity of the whole personality Love as the affirmation of value is indicated by those objects which have been found to symbolize love in the dreams of some persons money, or a coat, or a job—all objects of value—or fire or flood, which represent its passionate and engulfing element

Love not only represents an *attitude* toward what is valued, but indicates further a *search* for these objects of value Love represents a search for the person on whom one can lavish his affection One searches for understanding, for fame, and for possessions, each one of which shows the direction that his love is taking "For where your treasure is there will your heart be also" [1]

Finally love represents a drive of the individual for wholeness, completeness, reconciliation, and personal adequacy. As we shall see later, love grows out of a sense of personal incompleteness, smallness, and inadequacy Reik has said that the person wholly satisfied with himself can never love another As an individual finds value in others, he enlarges himself and finds a completeness which is lacking when he stands alone. So personality fusion and integration can be accomplished only by giving oneself to persons and interests and enterprises outside oneself.

PHYSIOLOGICAL CORRELATES

The physiological nature of the strong emotions of fear and rage have received attention in recent years by physiologists, notably Cannon [126]. Strangely enough, the physiological processes associated with love have received almost no attention by psychologists and physiologists The physiology underlying the pleasant emotions receives practically no discussion in psychology texts Almost the only analysis of the physiology of the pleasant emotions is that given by Wundt many years ago. However, piecing together the recent studies of the functioning of the autonomic nervous system, it appears that love represents the functional ascendancy of the *parasympathetic* nervous system To review briefly, the autonomic nervous system consists of three parts: the cranial and sacral, and the

[1] Matthew VI, 21

sympathetic, which is interposed between the other two and works in an opposed way. The cranial and sacral sections are commonly spoken of as the parasympathetic nervous system Their function is to maintain the vital processes in the body in a slow, even, and orderly fashion. When the parasympathetic system is stimulated, there is muscular relaxation, and inhibitions are released It represents essentially a pleasurable state without anxiety. The heart beats slowly, and evenly, breathing is regular, digestive processes are stimulated There is dilation of the arteries with increased turgor and redness of the skin but without sweating The secretion of adrenalin is inhibited as well as the secretion of sugar by the liver On the other hand, there is an increased blood supply delivered to the sexual apparatus All this is orienting the organism toward the world and out of the self Each one of these adjustments is the opposite of those stimulated by the action of the sympathetic nervous system, which prepare the body for intense activity in the face of danger. The sympathetic reaction represents anxiety, whereas the parasympathetic reaction represents pleasure, so the ascendancy of the parasympathetic nervous system represents the physiological state requisite for love It is excited by mild stimuli which represent to the person situations of safety rather than of danger. In the infant the parasympathetic system is stimulated by expressions of love and endearment from the mother More specifically, these milder pleasurable reactions originate from such stimuli as food or sexual objects which satisfy inner organic drives Love, being the emotion which accompanies the ascendancy of the parasympathetic nervous system, involves far more than mere sexual arousal of one person by another, rather, it includes all reactions of an outgoing and positive nature.[2]

INFANTILE LOVE—PRIMARY NARCISSISM [3]

Bodily Satisfaction. Love finds its origin at the start of life in the infant's experiences of pleasure. An infant's first expressions of love are erotic, as he finds pleasure in the stimulation of certain sensitive bodily zones These zones have now been rather accurately mapped They include the lips, the anus, nipples, the genital organs, the ear lobe, tongue, palms of the hands, and, peculiarly enough, the forehead [4] In early infancy the erotic (pleasurable) and personality needs coincide As a matter of fact personality has not yet emerged, but it finds its first expression in these pleasurable reactions to the stimulation of stroking and rubbing

[2] One of the clearest expositions of the physiological basis for love is in W Reich's *The Function of the Orgasm* [655]

[3] Narcissism will be used throughout this chapter to mean quite simply self-love in it various aspects The modern reference to Narcissus for a technical term to describe self-love originated with Havelock Ellis [198] according to his own statement in 1898, although this credit is commonly given by psychoanalysts to Naecke in 1879 [281].

[4] Reich [655, p 328] determined these sensitive areas by means of the galvanic reaction to an electrical charge

Love finds an early expression in the various stages of infantile libidinal development. A baby's first love is eating, for it is in the act of nursing and in the stimulation of lips, gums, and tongue, that the little baby first finds pleasure. At first this pleasure is entirely receptive, but later on the infant becomes more energetic and this pleasure enters a more active stage. There is a wish to swallow, to control, to dominate others, and an attempt to win satisfaction by active effort. This or active sadistic narcissistic love is to be contrasted with masochistic or passive narcissistic love, which is represented by the tendency to surrender oneself to another person in order to be given things and to gain satisfaction passively The masochistic person expresses love by his need for receiving gifts and attention rather than demanding or striving for them.

Love also finds expression in connection with the processes of excretion The term *anal eroticism* is used to indicate the expression of love through the excretory processes In early infancy anal erotic love expresses itself by the wish to give, to expel, to reject, throw away, lose, or destroy the object (urine or feces) The person who shows his love in this way has a tendency to bestow gifts rather then tenderness In a later stage when toilet habits have been established, anal erotic love turns to a wish to retain, to master, and control the object This is the basis for expressions of love in the form of hoarding and saving and also for those forms of self-love which show themselves in self-willed independence

Later these early expressions, both in connection with eating and with excreting, become transferred to, and concentrated in, the genital organs, which in later childhood, adolescence, and adult life become the main bearers of erotic pleasure.

The little child shows self-love through fondness for the body and its products. For instance, there is an early desire to exhibit the body and to display it to others who are interested This perhaps arises from the mother's intense interest in the child's body A little child desires to continue the early admiration which parents showed toward him by continued display of the body. Later, of course, these tendencies are repressed, and the child tends to inhibit exhibitionistic tendencies, but many older children, in spite of the general expectation, are fond of displaying their naked bodies, sometimes to the embarrassment of their parents Many persons carry with them the remnants of these early exhibitionistic tendencies, which are shown by attempts to make themselves prominent and to seek the limelight Parents, however, suppress these tendencies in their children as naughty and revolting, and they even threaten the child bodily harm through punishment if he continues such forms of expression These tendencies toward exhibitionism are strongest in connection with the genital organs, perhaps because most intense feelings are concentrated in them and also because parental threats are most violent in connection with attempts to expose or display them. This tendency to be interested in the body makes its appearance in later years

in many ways When illness strikes a person, he tends to withdraw his interests from outer affairs and concentrates his attention onto his body. The self-love of a person for his body becomes noticeable in self-concern regarding accidents and injuries. Persons in later life also show it by adornment of the body and by primping In old age there is frequently a return to interest in the body and a concern with its soundness and freshness Indeed, there may be a fusion of love for the body and self-punishment Many persons seem to find intense enjoyment in applying salves and lotions or in taking medicines, while at the same time body infirmities or handicaps have value as forms of self-limitation or punishment

One who is sensitive to these early forms of narcissism can see their residues in the habits and adjustments of mature people. There are those who go through life expecting favors and who depend on others to provide them with pleasures and satisfactions. Somewhere in their early experience these individuals have learned to lean heavily on others for their pleasure Others indicate the direction their values take by collecting, hoarding, and saving Every form of positive feeling and expression of value finds its beginning in some infantile process.

Ego Satisfaction. The previous section has dealt with the infant's concern with his body At the same time that this is going on there is a growing sense of value for the self as an individual, separate from the distinct concern for the body Self-esteem must wait for the development of the perception of the self as different from other persons The infant is originally at one with his mother It is only gradually that she takes shape as another person, sometimes present and sometimes absent, with the power to give or to withhold. This growth of the perception of self as distinct from the world without is accelerated by the process of weaning Gradually the self acquires value and becomes important apart from the pleasures centering around eating and excreting As the self is recognized as separate from other persons, it becomes libidinized, that is, feelings of value and pleasure become attached to it Narcissism as used in this sense is the libidinal complement of egoism and means that the self not only is *acting* in self-interest but has *feeling* and *value* attached to it. This feeling helps to mold and strengthen the self Gradually distinct emotions are built up around the self as contrasted with these which pertain to others One can see this clearly in childhood as a child shows signs of jealousy and hurt feelings when attention is given to another child who is a rival As the self acquires value, it helps the individual develop prudence and foresight, and self-evaluation provides a check on the unrestricted expression of the basic drives One stops eating because one has feelings of satiety, but one may also stop eating in order not to become ill or in order not to offend one's elders who would call one a pig or glutton This development of love of the self as a person—primary narcissism—not only gives the self value, but places the self in

a vulnerable position, for when one loves, he not only cherishes the loved object but feels hurt if in some way it is damaged or slighted The very growth which gives the self value may also make it possible for the individual to feel slighted, offended, insulted if in some way he is not given the privileged position or the attention which he craves

Primary narcissism is concerned only with the self and the advantages it can gain. It is not concerned with others, hence primary narcissism is not concerned with, or related to, good or evil. Moral issues do not arise in connection with primary narcissism, and the individual who regresses to this primitive stage is beyond reach of ethical considerations

Development of Ego Satisfaction Primary narcissism normally reaches its height in a child from about three to five years. It is at this age that the child is most self-interested, self-willed, and selfish The child looks on everything and everybody as catering to his pleasure and comfort At this stage the child has a need to be loved without winning it or deserving it or without giving anything in return His motives are entirely selfish or egoistic Children resist giving up their narcissism They have to be encouraged to share, to go without, and comply sometimes against considerable resistance. Narcissism is greatest at the very age when the ego itself is least capable of meeting reality and adjusting to it. At the time the child can do least for himself, he makes the greatest demands on others Interference with development at this period leads to exaggerated narcissistic tendencies in later years.

These selfish tendencies are reduced by contact with other children in the family and in school during the period of middle childhood Both L. B Murphy [607], Anna Freud and Burlingham [252] and Susan Isaacs [396] have described sympathetic behavior in children. This grows out of the more selfish ego tendencies through the operation of various motives and mechanisms. Sometimes there is pure gratitude in exchange for favors received. To be able to help another may be a sign of growth and maturity Sympathetic behavior may make remorseful amends for earlier feelings and fantasies of harm and hostility Identification also plays a part, and if the child has kind and generous parents, he may wish to show his maturity by being like them Finally, children may band together cooperatively to defend themselves against the cruel and unfriendly outside world of adults. Roheim [688] is of the opinion that sympathy first develops in the mother-child relation as the child responds with gratitude to the mother's ministrations. There is a brief recrudescence of primary narcissism in early puberty when the boy or girl seems to become more selfish and self-centered But normally as adolescence proceeds this primary narcissism retreats in favor of object relationships.[5]

[5] The terms *object relationship* and *object love* are used throughout this chapter in a special or technical sense to refer to love of something (or someone) outside the self as opposed to love of the self. Probably in nine times out of ten object relationship or object love refers to relationship with, or love of, another person rather than some material object.

Boys and girls find interest in one another, and the early tendencies toward selfishness normally disappear. However, the narcissistic element is never absent throughout life

Narcissism is a term which has been loosely and inexactly used throughout literature, so that several serious inconsistencies have arisen in connection with its use Probably there are many kinds of self-love, and at least two kinds can be clearly distinguished One kind is based on parental acceptance The child who is accepted by his parents tends to feel secure and confident in himself. He has genuine self-esteem, rooted in emotional security and based on a realistic appraisal of the self This kind of self-love is not dependent on anxiety and, as we shall later see, is the basis of object love, for only as a person genuinely respects himself can he love another person

The child rejected by his parents is also narcissistic, but in quite a different way. The child who is denied love by his parents is thrown back on himself for love He is forced to find pleasure in himself rather than in persons and experiences outside and frequently is driven to auto-erotic practices in an attempt to derive the pleasure denied him in his contacts with others Such a person builds a fantasy, instead of a reality, appraisal of himself. He magnifies himself through day-dreams as he becomes his own hero in fantasy exploits He becomes aggressive, forced by the necessity of wresting a good opinion of himself from the outside world by forcible means His attempt at gaining power is his insurance against the underlying belief in his own unworthiness Narcissism based on rejection is rooted in emotional insecurity and is tinged with anxiety The person who is fundamentally unsure of himself but builds himself up in fantasy and in self-stimulation is unfit for social relations with others.

SECONDARY NARCISSISM—ANACLITIC LOVE

Secondary narcissism still refers to self-love but represents a step toward object love, or love of another person Secondary narcissism has two meanings It refers to the recognition of the other person, but only for what the other person can contribute to the self, and this in two senses (1) to use the other person for the self, and (2) to make the other person part of the self Both of these require exposition

To Use the Other Person for the Self. Secondary, like primary, narcissism grows out of situations in early infancy. It is only natural for a little child to become fond of persons, particularly his parents, who cater to his comfort This fondness, however genuine it appears, is rooted in the fact that the other person supplies the infant's needs and that through the mother his distresses are relieved and his pleasures are received Narcissism experiences a recrudescence in adolescence as the growing boy or girl is deluged by fresh needs for emotional relationships The adolescent wants very much to be admired and respected and becomes extremely

sensitive to criticism He (or she) welcomes each evidence of physical development as a sign of growing up, and a cult of body worship may develop The adolescent girl, in particular, may give more time and attention to the cultivation of charm and beauty. But this narcissism is unstable because it is constantly threatened by shame of, and disgust with, bodily functions, an attitude inherited from infancy; and the adolescent girl may try to hide and efface evidences of approaching feminine maturity.

In secondary narcissism the ego has not developed beyond the need for being supported and protected One finds adults who have never grown beyond this kind of relationship with other persons, using them only for what they can bring When an individual depends on others for his comforts and satisfactions, we speak of this as neurotic love The individual whose only need for others is their catering to his pleasure is essentially insecure This form of relationship with others originates in anxiety A person who depends on others for what they can contribute to him is really afraid of losing the love and support of others and has nothing within himself that he can rely on independently Many times fear of the loss of others' love is due to underlying and unconscious hostility It is as though the individual fears his hostile impulses will antagonize and alienate others, and it is this fear which is the basis of his clinging to them for support

Women are commonly referred to as narcissistic for a somewhat similar reason Deutsch has pointed out the almost universal nature of women to be masochistic—passive, receptive, long-suffering, and enduring of pain. As a kind of reaction function against masochism, such humiliation requires the inner bulwark of narcissism, self-respect and pride, not only in beauty and charm (although these are important), but also in being a woman So the womanly, feminine woman has a great need to be admired and loved But narcissistic tendencies in women may revolt against pain and hence raise resistance to the reproductive function Deutsch [173] again and again refers to the necessity for working out some compromise between the masochistic and narcissistic tendencies in women in order to produce the greatest balance and integration

Narcissistic object choice, then, is the love of another person only for those advantages which can be derived from the relationship for the self A person who is capable of only this kind of relationship with others finds that his own self-regard is dependent on the attitude others take toward him. If he is loved, then his self-regard is raised; but if he feels that others do not love him or actually despise him, his self-regard sinks He is in constant need of praise to prove to himself that he is lovable and worthy of love The only basis of his love for others is the fact that this attitude contributes to his esteem for himself In this kind of narcissistic relationship another person may be loved for providing

water, disregarding how much he is submerging the other person, so in narcissistic love one cares little about the burdens placed on the person from whom the "love" is received One also loves another person for pleasure, but a person who seeks relationships with another *only* for the gratification it affords to himself is not offering the most mature form of love Love of another person only for sexual gratification is in reality a kind of neurotic love. One may also love another for the sake of prestige A child may be exploited in order to bring prestige to his parents A man may marry a woman because her beauty testifies to his good taste A woman may marry a man because he can provide her with riches and comforts or social position

There is an urgency or compulsiveness about narcissistic love One feels panicky about the strength of the love tie, and any small sign of defection arouses anxiety Narcissistic love also has an insatiable quality There can never be enough of it. Tokens of love must be repeated at every succeeding moment Doubts arise on a brief separation or when the loved one shows any sign of directing his affections toward another person

Regression to narcissistic love is a neurotic phenomenon It represents an overcompensation for a basic lack of self-love An individual whose love relations are of the narcissistic variety is the one whose self-love is based on rejection rather than acceptance and who feels an underlying insecurity with himself Narcissistic love is one of the defenses which may be raised against anxiety. It is an attempt to counteract feelings of insecurity with regard to the self by having praise and attention constantly coming from others

Narcissistic love may be focused on one person A man, for instance, may seek in marriage a woman who can serve as a mother person, someone who can cater to his comforts and needs, who can give him praise and show him the constant belief and encouragement that his mother showed him when he was young Likewise a woman may seek as a mate a man who can take the place of her father and give her the support and encouragement, the love and devotion her father showed to her as a girl This need to be loved may also be focused on a group The boy may feel an intense need to become a member of the gang, of the Boy Scout troop, of the fraternity Being accepted by the group means everything for the sense of self-regard, whereas being turned out of the group is devastating in its effects on self-esteem Narcissistic love may be focused on one sex, as in the case of the woman who feels secure only when surrounded by men and is never at ease unless she is the focus of male admiration Likewise some men feel worthy only when they can be successful in a feminine conquest and can impress a member of the opposite sex with their strength and importance

Object love is impossible so long as a person serves only as a dispenser of affection and admiration One cannot be directly fond of another person so long as that person serves only to build up one's ego In nar-

cissistic love there is a failure really to enjoy the other person. As a matter of fact, there is so much doubt and insecurity with regard to the devotion of the other person that anxiety replaces true enjoyment. Concern with oneself prevents a person from giving himself freely to others and overshadows any feeling of affection.

Horney [373, Ch. VIII, "Ways of Getting Affection and Sensitivity to Rejection"] describes various methods which are used for gaining narcissistic love. In each of these there is an attempt to force the other person to give. First there is the appeal by bribery. "I love you dearly, therefore you should love me in return and give up everything for the sake of my love." It is as though one tried to buy the love of the other person by stingily offering a pittance of love in return. Second, there is the appeal to pity. "You ought to love me because I suffer and am helpless." Here the appeal is to great-heartedness by the person who is in such great need of the other's love. The third is the appeal for justice. "I have done this for you. What will you do for me?" This is love on an economic basis. A mother may demand devotion of her child as a payment for the sacrifices she has made for him. Fourth is the use of some threat. "If you don't show me love—then . . ." A mother, for instance, may withhold some gift or excursion until the child has polished the floor or done his homework. Narcissistic love shows its insecure basis by the demand for proofs. The other person is encouraged to give love endearments. Praise is eagerly sought after, and the individual plays to the gallery in order to win open expressions of affection of others. A wife, for instance, may spend much time on personal adornment in order to receive the husband's endearing comments, or the husband may boast of his exploits in order to receive his wife's admiration. This constant need for proof of love is sought in order to help the person assure himself that he is worthy and lovable.

To Make the Other Person Part of the Self. The foregoing discussion has considered the use of the other person for selfish purposes. When, however, the narcissistic person has demands made on him by another person—the parent, for example—whose love he wishes to retain, he has to find ways of winning and keeping his approval at the same time in order to avoid threats or harm to his self-esteem (what is sometimes called a *narcissistic wound*). As the parents criticize, belittle, or punish him, he must take steps to avoid developing feelings of inferiority and guilt. And so he tends to take into himself the wishes and ideals his parents express for him. He develops an ego ideal, a picture of himself as the kind of boy his parents show they want him to be. In this way he can win from his parents expressions of approval, and they will say, "What a fine boy George is growing to be." The child seeks to recover the perfection and omnipotence he loses when his parents oppose his wishes and he becomes in reality the small and helpless child. As he takes for his own his parents' ideals, he gains in strength by identifying

himself with his parents There is a change from the early satisfaction in bodily pleasures to the satisfaction of the mental image of himself as he would like to be and thinks he is. If he can find satisfaction in himself by becoming the kind of boy his parents would like him to be, then he also retains his self-esteem to the extent that he—that is, his ego—lives up to the demands of his superego. It is here that conscience comes in, for this serves as a watch-dog to see that the self lives up to the ideals the parents hold for the child If there is a discrepancy between the ego and the superego or ego ideal, conflict develops, narcissism is wounded, and feelings of guilt and inferiority develop In psychoanalysis such a patient wishes to take the same subservient, submissive, masochist attitude toward the analyst formerly taken toward the parent, with the same narcissistic hurt to the ego.

Influence of Criticism on Narcissism. Knight [464] in his interesting theory of the interaction of introjection and projection interprets the meaning of criticism and its effect on the individual First there is a projection of self-love onto another person—we admire him But he criticizes us As we introject him, that is, take his criticism to heart, we feel the loss of his love What is really happening is that we lose love (or respect) for the self Narcissism is wounded, and the depression that frequently follows criticism is the result of hostility unconsciously directed toward the entire being turned inward

Achievement Substituting for Pleasure As a child builds an ego ideal and attempts to live up to this ideal, achievement gradually begins to take the place of pleasure Parents can create a glow of satisfaction in the child by saying, "What a big boy you are growing to be," and the child can think to himself, "What a big boy I am getting to be" Admiration and recognition become substitutes for love. In later years a child cares more for his parents' opinion of what he can do than for the physical expressions of love they gave him at an earlier age So narcissism becomes the basis for later achievement Some who achieve, for instance athletes and thinkers, are those who have developed a secondary narcissism They find that in order to retain the love of their parents they must build ideal pictures of themselves and strive to live up to, and accomplish, these ideals It is true, however, that when the drive for self-esteem is too strong, this achievement may be a superficial striving for show rather than an honest performance.

Moral Self Substitutes for Love of Others Ernest Jones [438] has shown how some persons substitute moral standards for the love of other persons In early years they create moral standards for themselves in order to satisfy the demands of parents, and this moral self in later years serves as a substitute for true relationships with others The righteous person, for instance, is likely to be hard-hearted and intolerant of others who fail to live up to the standards he has set for himself In thus projecting intolerance outward onto other persons, the individual protects himself

against his intolerance of himself and thereby maintains his narcissism and self-esteem

We have been speaking in this section of the alteration of one's attitude toward the self through the establishment of ideals, in order to maintain the respect and admiration of others. Probably every relationship with another person involves to some small degree an alteration of the ego through this process of introjection. The imagos of loved persons and their demands are carried about in the self, and the concept of the self is built out of the expectations of others. These are reacted to in order to maintain the respect, admiration, and love of the other persons.

MATURE LOVE—OBJECT LOVE

Fondness That Results from Familiarity. The genuine fondness of another person, apart from any advantage to be gained for the self, arises originally from a very simple and common phenomenon, namely, that fondness always results from continued contact and familiarity which has been pleasurable. We grow to love the things that we experience

As I was traveling across the flat prairies with a friend, I commented on what seemed to me an ugly group of buildings, surrounded by one or two trees, set in the midst of the boundless, unbroken plain I discovered that this little group of buildings was a beautiful and hallowed spot to my friend To him it meant home and all the associations of childhood Any surroundings, no matter how commonplace or ugly, can seem beautiful through pleasant associations

In spite of this obvious explanation of object love, the fact that a person can become fond of another person presents certain dynamic difficulties Individuals are so completely self-centered that attachment to, and finding value in, another person is not the obvious thing psychologically that it might appear to be from its frequency and our familiarity with it The present analysis makes love grow out of the less lovely aspects of personality. Love is made to seem like a corrective process and a way of avoiding a greater evil. Such an explanation strikes a person at first thought as ridiculous and far-fetched. However, observation of children and individual analyses point strongly toward the dynamics presently to be outlined.[6]

Object Love Grows Out of Dissatisfaction with the Self. Fondness for another person grows out of the fact of infancy, the fact that everyone has been at one time small, insignificant, helpless, and dependent If we were totally satisfied with ourselves, there would never be need for finding value in another person As one enters childhood, he loses his infantile sense of omnipotence, finding that he cannot always have his way with

[6] This analysis of mature (object) love is essentially identical with that proposed by Thomas Reik in *A Psychologist Looks at Love* [660] The writer had the privilege of being a member of a group which met frequently with Reik as he was formulating his theories The present chapter was written, however, before the publication of Reik's book.

others and that in many respects he fails to come up to the ideals which others have for him and which he has developed for himself. Love grows out of this dissatisfaction with the self. It is based on the loving criticism and reproaches administered by parents and teachers. It grows out of the comparison of others of his own age, playmates or other children in the family. It grows out of the doubts of his erotic capacity and the need to demonstrate to himself that he is capable of loving another The person wholly satisfied with himself is incapable of loving another. Thus love grows out of feelings of inferiority and inadequacy, but if it is to be mature love, these feelings must be healthy and normal, not based on anxiety, rejection, or emotional insecurity

Dynamics of Object Love. *Love Grows out of Envy* Love, then, grows out of envy of another person who is older, stronger, more beautiful, or more competent than he It is one method of recovering the lost omnipotence There are two methods for maintaining self-respect one by the road of achievement, the other through love of another person The child who is envious of another may overcome his envy by turning it into admiration. By a process of introjection he takes into himself in fantasy the admired characteristics of the other person, he would like to have them as his own He then projects these values back onto the other person and identifies with him "Out there these characteristics are mine. I love him, the possessor and bearer of these characteristics " The other person then is admired and praised Because one finds value in him, he is cherished and becomes precious The well-being of the loved person becomes as important as the well-being of the lover A parent, for instance, by identifying with his children renews his own childhood

Melanie Klein [462, pp 66 f] has pointed out that fondness for another person is an outgrowth of an earlier identification with a good parent; that is, with the parent, created in his fantasy, who is always good, generous, and loving As he recreates this parent in himself, he finds it possible to love other persons Or, to put it simply, he behaves toward others as he would like his own parents to have behaved toward him.

Love as a Reaction Formation to Hate Looking at it in another way, love is a reaction formation against hostility Hate, distrust, and indifference have become dangerous tendencies, making the person liable to punishment and contempt, and one way to avoid these dangerous tendencies is to adopt the attitude of love. A loved object is beyond the range of open hostile feelings However much ambivalence there may be, if love is openly expressed it is difficult for the negative feelings and reactions of hate and hostility to find open expression One cannot really value and cherish another and at the same time openly despise and distrust him and wish to destroy his happiness and independence. As we have already seen, however, it is possible to harbor both of these contradictory tendencies at the same time, the one to be repressed and the other to find open expression.

The Loved Person Represents a Better Person—The Ego Ideal. In the discussion of secondary narcissism, we spoke of a person's taking into himself the wishes and ideals of another person whose love he does not wish to lose and making them his own, his ego ideal. But if the individual is disappointed in the extent to which he can live up to his own ideals and accomplish them, he may find a satisfactory substitute for them in another person. The loved object then becomes in some respects the kind of person he himself would like to be, a substitute ego ideal. This process of idealization finds its first expression typically in early childhood when a child idealizes his parents and gains strength by identifying himself with them

Little Tommy can hold his own with the other boys when he points with pride to the skill of his father who caught the biggest fish or has taken the longest airplane trip "Wait until my older brother catches you" is a method by which a little child can dare to stand up against the bigger bully

This displacement of power which finds its first expression in connection with the parents extends itself to more remote authorities until eventually a person finds his greatest source of strength and comfort in the worship of God, to whom he attributes everything that is good, all-knowing, and all-wise, or on the devil, on whom he projects the evil tendencies within Sachs [700] has suggested that man's interests in machines and his development of them is his attempt to recapture his lost infantile omnipotence and to project his idealizations into the machine, which becomes his source of strength and power.

We are attracted to the person who thinks well of himself. It is common for a man to fall in love with a highly narcissistic woman who is vain in the admiration of her own beauty because he finds her to be like the person he would prefer to be One of the strongest desires in everyone is to have high respect for himself, and almost universally the person with self-esteem is admired and envied by others and is often loved

Love—A Recovery Process from Dissatisfaction with the Self. So we find that love is a healing process to soothe the wounds of broken narcissism Being discontented with the self, one finds solace in the admiration and love of another person Object love, then, represents a shift from direct attempts to bolster self-esteem to finding self-esteem through the love of other persons whom we may possess as our own As one finds value in the other person, that person becomes *his* and to that extent part of him or his extended self We feel pride in the person whom we love, and that pride adds to our own pride So one becomes generous to the other person and is willing to sacrifice himself because value has shifted and is focused in the other

Narcissism Retained in Object Love. Even when object love is highly developed, however, a certain degree of narcissism is retained Genuine object love is based on a security in the self which makes one seek the

other person, not for what he can get, but for what he can give and can afford to give because his narcissism is of the stable and secure kind based on acceptance rather than rejection A person who is genuinely fond of others has no doubts that others can be fond of him He does not have to cling to others for fear of losing them, because he is secure within himself. Narcissism can be diluted but can never be destroyed. The secure person can extend himself to many others and give of himself generously and without stint because he feels sure that others will respond generously to him Friendship has been spoken of as an extended narcissism A friend becomes the alter ego or the substitute for the ego ideal

Indeed, to reinforce the point that even in the most mature object love narcissism is never lost, we may go on to say that one *always* loves another person in order to be loved or appreciated in return But the difference between narcissistic love and mature object love is that in the former one loves because of doubt and anxiety as to his relations with the other person, whereas in mature object love one gives himself freely because he feels secure in his relationships with others As a matter of fact, in true object love narcissism is actually increased because a person feels more at ease, more comfortable, and more secure as he gives his love and has it in turn reciprocated Unrequited love, on the other hand, produces a narcissistic wound, a threat to self-esteem which may be serious and shattering in its consequences

Love Implies Acknowledging Others as Independent Personalities Love and admiration of others can be enjoyed only to the extent that the other person is acknowledged and respected as an independent personality One does not love another genuinely when one wishes to use the other person, control him, or direct his growth and activities The parent who most truly loves his child is the one who respects him as an independent person, immature to be sure, but one who has a right to be respected as a separate individual. The good parent wants his child to grow up and mature rather than to stay dependent and childish

Overestimation of Loved Object A common phenomenon of love is the overestimation of the loved object A man wooing a girl endows her with every charm and virtue. She becomes a queen, a fairy, an angel Her limitations and less noble qualities are entirely overlooked This overestimation is a sure sign that narcissism is present, for it is a projection of the earlier overestimation of the self which we have discussed under the heading of infantile omnipotence The child once saw himself as this all-powerful, perfect individual In love this same blindness to limitations is projected onto the other person In sexual love spiritual merits are lent to the object by the sensual charm which tends to magnify certain qualities and blinds one to the lack of others In falling in love a man projects onto a girl attributes of his own, that is, those that he admires which he previously introjected from his mother or mother-

figure. So a man loving a girl is really in love with his projected self—that is, he sees in her values which are his values and which he has been searching to find in another person. Love is a process of reintrojection of these projected attributes and values It is only by introjecting the admired portions of the environment that a person can continue to love himself even when he recognizes himself as small and insufficient This overestimation of the other person protects the individual against any tendencies he may have to hate, distrust, despise, or criticize, which are repressed. As the negative tendencies are repressed, positive tendencies of admiration and worship hold complete sway

Love Enriches a Person The loved person then, with his admired characteristics, becomes valuable to the lover, and as a person loves he grows in his self-esteem It is interesting to note a man's pride in his family or possessions Let a number of families get together, and one can see with what pride a man introduces his wife and children As the children are growing straight and strong, making out well in school or college, as his wife continues to be a worthy helpmate and possesses charm, the man feels proud of them and permits himself to expand in his own estimation of himself The man who owns the winning race-horse, acclaimed by many, gathers pride for himself by virtue of this fact Love helps a person see himself in a more favorable light A parent lives on through love of his children As they grow in stature and bring honor to him, he finds that he can translate his satisfactions from his own achievement to those of his offspring

Narcissism is basic in mother love. Children, who were once part of the mother, continue to occupy her hopes and fears She becomes devoted to them because it is through their development that she is able to realize her own goals and aspirations.

Love reduces the feelings of unworthiness, isolation, and depression The man who lives for himself and shuts himself off from contact with others is bound to have moments in which he feels that he has failed and that life has robbed him of his just rewards. A lover, however, gathers strength to the extent that he can give himself generously to the cultivation and help of the person whom he loves. A lover feels strong in his recovery from his earlier feelings of unworthiness and inadequacy.

Love as Reparation. Melanie Klein [458, 462] through intensive studies of children has pointed out another dynamic factor in the development of love in the mechanism of restitution or reparation which has already received discussion in the chapter, "Miscellaneous Mechanisms" Starting from guilt over wishes to destroy the mother or to rob her of her children, there develops in the child a need to abolish this guilt by efforts to make good the fantasy damage by reparation measures Klein believes that these feelings of guilt may persist over long periods of life and that in marriage husbands or wives may find occasion for undoing the harm they

fantasied toward their own parents By acting the good husband or the good wife or the good parent, they identify themselves with their own parents and hence recreate them, thereby making reparation for the hostile tendencies they at one time felt. Likewise, as adults we may be generous, kind-hearted, sympathetic because we are unconsciously trying to do reparation for the hostile feelings (partially displaced from our parents) which we harbored in childhood toward our brothers or sisters These tendencies toward reparation also have a selfish motive in that they represent positive ways of buying off the injured person from retaliating If one is kind or generous to one's enemy, perhaps he will forget his enmity and make peace It must be remembered in applying this concept of love as reparation that the reparation is for acts committed in fantasy, often deeply buried, unconscious fantasy, rather than acts committed overtly in the form of actual injury done to another person But fantasies often provide more mental misery and guilt and require more measures of relief than actual acts Reik describes the relief that comes from guilt as one feels loved and appreciated by others, as often expressed by an upsurge of emotion giving vent in tears and happiness This mingling of our own acts of reparation with the loving appreciation of others in return is one of the profoundest of emotional experiences [660, pp 184 ff.]

FUNDAMENTAL CONSIDERATIONS

Love Is a Spontaneous Response. Love is not something that can be forced or coerced. It presupposes freedom and spontaneity on the part of an individual to act in accordance with his own values and not at the behest of another person It is difficult for the compulsive person to love freely Love and compulsion do not readily coexist

Love Is Not Permanent. Love is in a sense a momentary thing and represents the values existing at the moment What is valuable today may lose its value tomorrow, and new loyalties and interests may arise to take its place Life is made up of movement, development, and change, and one must expect love to follow the tide of development Love has value because it contributes to the growth and unfolding of personality rather than something that must be clung to permanently Love may fade as experience reveals inadequacies in the loved object The reality of the object and the overestimated fantasies concerning the object do not coincide Reik [660, p. 138] also points out that the ego ideal is not always single but may be a mixture of contradictory features Whereas one person may satisfy certain of these ego-ideal requirements, he may not satisfy others, and shifting needs in the individual may mean that the loved object contributes less to the individual's needs Reik believes that the withering of love is due not entirely to the fact that a change takes place in the loved object, but also and in large part to a change in the ego needs of the person himself It is customary to project blame on

the other person and believe that he is an impossible person to live with, but much of the difficulty is within the individual himself.[7]

Love—A Condition of Heightened Suggestibility. Freud [260] has pointed out a parallel between love and hypnotism Love implies a certain degree of subjection and compliance to the will of another person, and this possesses a resemblance to the hypnotic state As one finds value in another person, he tends to put himself into the other person's hands and becomes subject to his will. In both love and hypnotism criticism and hostility are absent. The hypnotized person finds no cause for complaint against the hypnotist, and the lover buries his hate under a cloak of repression In both states there is an absorption of one's own initiative in the other person The similarity breaks down, of course, when it is realized that in hypnotism there is a high degree of repression of all the critical faculties, whereas in love, except for the repression of the negative attitudes of hate and hostility and for the tendencies toward overestimation of the loved object, the mind functions normally

Love and Identification. Identification, as we have seen, has two primary meanings first, the attempt to mold the self to be like another person, the other, to live out one's own wishes through another person The first of these is related to envy and hate The youth, for instance, may identify himself with the leader of his crowd by copying the mannerisms, speech, and dress of the leader at the same time he may envy the position of the leader and wish to occupy it The second meaning of identification is related to object love One identifies with another person by wanting to possess him and to include him within one's range of values, by wishing to see him prosper and succeed, be beautiful, talented, noble, or good In this second kind of identification there is also reintrojection, or taking into the self the assets and charms of the other person Introjection is the bridge by which narcissism is transferred into object love Schilder [708, p 14] has said that every love relationship depends on an identification Reik [660] goes even further and asserts that to want to be like another person and to possess him are identical in the unconscious Identification in its first sense may grow through love. As parents love their children, they identify with them, as we have already seen, and reenact their own childhood. So we find that love and identification are separate tendencies and yet are, to an extent, closely related to each other.

Love versus Fear. Love and fear are antagonistic processes A person in a state of fear cannot love, whereas love tends to banish fear. Fear separates; the fearful person has a tendency to run away Love, on the other hand, joins and brings persons together Fear makes a person retiring, whereas love is outgoing It is interesting in this connection that when love is repressed, it may express itself in disguised form as fear,

[7] In the chapter, "Normality," the point will be made that the individual who is best adjusted has the most thoroughly integrated personality, and consequently his loves will be of a more permanent and stable character.

The spinster who fears that the unknown man is paying attention to her is the very one who unconsciously wishes that this might be the case. In loving another person by introjection one takes him into the self and in that way masters fear of him

Love versus Hate. Certain relationships between love and hate have already been discussed, but there are other relationships that deserve emphasis. Genetically hate comes before love. Love is seen to be a somewhat late and retarded development. However, there is a close relationship and alternation between them First there comes frustration, and the person connected with the frustration (the mother who is slow in nursing) is hated, but when the frustration is overcome and satisfaction takes its place, then positive feelings arise, and the same person associated with the satisfaction is loved. However, it is not possible to separate these two states so decisively Both love and hate grow out of early situations which stimulate sadistic impulses It is only later that love and hate become separated and are directed toward different objects and persons. The child who wishes to destroy his loved object in his eagerness to possess it is showing both love and hate Later, however, he finds it difficult to reconcile these two opposing tendencies toward the same person, and they become split off, the love tendencies finding open expressions toward some persons and the hate tendencies toward others

It is interesting how easily love may turn to hate. We can see this in young children who apparently are playing fondly with each other and then suddenly, at some minor disagreement, will attack each other It is equally true that hate may shift easily to love, and two boys may become bosom companions after having taken the measure of each other in fisticuffs Love is practically always mixed with hate to some degree in human relations

Aggression and Love A child needs his parents' love as proof that his hostile and aggressive feelings do not make him worthless Love is the proof that he is lovable and that other persons can find pleasure and value in him. It is strange, therefore, that children sometimes show aggression toward others because of their intense need to be loved To be sure, in showing aggression the child is perhaps living up to the reputation which he has with others If parents call a child "bad," he feels that he is bad and has every excuse to act accordingly If a parent will not love a child naturally and spontaneously, perhaps this love must be won forcibly. Attention from a parent is the next best thing to love; and if children cannot win love from parents by pleasing them, at least they can claim attention by being naughty Indeed, if a child can force a parent to punish him he at least knows that a parent cares enough to punish rather than neglect him altogether.

The neurotic cycle mentioned in an earlier chapter finds its place here. A child has a need to repress his hostility in order not to lose his parents' love. But the repressed hostility arouses guilt, and the guilt leads to a

need for punishment, and if the punishment is not forthcoming then the child must be more aggressive in order to bring it on himself Once the punishment has been received, then the hostility can be again repressed in order to win back the parents' love

Love a Defense Against Hate It has already been mentioned that love may serve as a reaction formation and a defense against hate Close contact between two persons living together almost inevitably produces some form of restriction and frustration and consequently resentment and hate Love, however, prevents this resentment and hate from flaring into the open Love binds the destructive forces within the individual and keeps them in check Indeed, we know this is true, for sometimes hate is revealed by the very expressions of love itself, so that we know it is present in repressed form This disguise of hate by not only apparent but genuine expressions of love is difficult for most persons to believe and is one principle that makes psychoanalysis so hard for many persons to accept One hears the expression, *kill through kindness* The fond wife who assists her husband by patiently waiting on him and by tending to his affairs may be subtly destroying his independence and initiative. The daughter who protests that her mother cannot play games or enjoy excursions because the excitement might be too much for her not only wishes to protect her mother from harm but, at the same time, is restricting her pleasures Love may serve as a measure to hide hate Parents know that children perhaps have to be carefully watched lest in their apparent zeal to be helpful they become purposely (unconsciously) careless and destructive Another well-known phenomenon of parents' attitudes toward children is the overcompensating love that relieves guilt and hate. The parent who fundamentally hates a child and rejects it may overcompensate in being a good parent by lavishing more care and toys than are good for the child Some parents may actually sacrifice themselves by too constant care and devotion to atone for their underlying hatred, and at the same time such constant care may in itself be an expression of hatred because it denies the child pleasure and makes life a burden for him

Love Can Find Highest Expression Only When There Is an Outlet for Hate Love achieves its highest expression only as hate finds a constructive outlet of some kind, for love based on repression of hate is unstable and tenuous Provocations to anger in the love relationship need to be freely expressed, discussed, and adjusted to To stifle anger may seem to ease the situation temporarily, but actually it creates the danger of a more violent explosion later on Love flourishes best when hate is sublimated. As we have seen, love itself may represent reparation or making amends for previous aggression, either real or fantasied Love permits the displacement of hate, and, as one person has stated it, one can love another only when there is a third person or object or cause to hate A child that is helped to disperse his feelings in this way is aided in his efforts to deal

with reality. If he can displace his aggressive tendencies to his work or play, then he can approach the members of his family most realistically and love them according to the demands of the situation The best form of sublimation of hate is that which helps to foster love itself Perhaps the clearest illustration is the pioneer who protects his family by fighting off the dangers that threaten it from the outside and by wresting from the soil and from his herds the means of livelihood Or hatred may be aroused if the loved one is attacked. We go to the defense of whatever we love—a person, an object, an ideal—by attacking the attacker In our modern life one similarly defends his family by going out to meet the competition of business and professional life So the struggle during the day helps a man enjoy, and find value in, his family in the evening

Hate Can Find Expression Only When There Is Something to Love Turning the matter around, it can also be truthfully stated that hate can find expression only as there is another person from whom one can receive love and support For many individuals, to hate becomes too dangerous unless one feels secure in the love and warmth of someone to whom he can retreat after the battle When self-love has been overdeveloped, there may be undiluted expressions of hate toward others It is the selfish and spoiled child who does not have any scruples about being selfish and cruel to others. The excess of narcissism in the young child goes with enhanced aggressive tendencies toward others

Secure Persons Bring Love and Hate Together We have already seen how love and hate are fused in the same act of nursing. When we speak of oral erotism and oral sadism, we refer to two different aspects of the same act The infant that is gaining pleasure from its nursing is also trying to devour and consume the source of its nourishment in order to relieve its frustration. Likewise, love and hate are also fused in the act of defecation, and again anal erotism and anal sadism are two different aspects of the same process. Defecation may be both pleasurable and at the same time may be used aggressively to control, annihilate, or injure the other person It is thus that love and hate may be directed without conflict toward the same person in early infancy These tendencies toward the same person become painful only when one of them becomes dangerous as a result of being associated with badness or wrongfulness or of being frustrated in expression In oral and anal sadism pleasure and hostility are combined When, however, hostility becomes dissociated from love, we have hate proper, and all the destructiveness carried with it.

Incomplete Fusion of Aggressive and Erotic Trends Sadism as a sexual perversion represents a disassociation of the normal fusion of the erotic and the aggressive in coition Where pleasure in sex is missing, there tends to be an increase in hate, hostility, violence, and destructiveness Schilder has said that an overwhelming sexual instinct will be experienced as a colossal aggressiveness Wilhelm Reich [655, p 133] says, "The cruel character traits of people with chronic lack of sexual satisfaction became

understandable. They are well known, e g, in sharp-tongued spinsters and ascetic moralists The mildness and kindness of individuals capable of genital satisfaction is striking in contrast. I have never seen individuals capable of genital satisfaction who had sadistic character traits."

The incomplete fusion of aggressive and erotic trends—which really means that there is a denial of pleasure—shows itself in many forms of exaggerated cruelty in human affairs It is possible that the leader who is thirsty for war or revenge is working off in such sadistic behavior the denial of love and affection in earlier years

The future career of infantile ambivalence (sadism) is determined by experiences when infancy turns the corner into childhood from the years four to six If the Oedipus complex is resolved easily and naturally with the help of loving and fond parents, the strong feelings are dissipated easily, the tender feeling toward parents is the resolution of love and hate, and these feelings can be displaced openly to others outside the family But if the attitudes of the parents require a too sudden repression of these attitudes and feelings, this repression interferes with all later emotional relations Such a person can never completely love because of the interference of hate, nor can he hate because of his need to love

In normal development this fusion of the erotic and aggressive components of these natural processes is maintained even in the complete fulfilment of the sexual act itself Coitus accompanied by aggressiveness is thought of as primitive and barbaric Actually, however, the sex act includes a fusion of the erotic with the aggressive Sex life which emphasizes only the erotic but lacks the vigor of the aggressive is attenuated and weakened

The separation of love and hate is a sign of anxiety and guilt The secure person is one who is able to bring love and hate together in the one person He reacts realistically He is able to love even a *not* perfectly good person, that is, he can feel love for a person in whom realistically he can recognize and admit limitations and defects This ability to bring together love and hate openly side by side can only be accomplished by a secure person and represents the highest development of love

Sex can be thought of as the paramount expression of love and at the same time the surest guarantee of the sublimation of hate Those whose sexual life functions adequately are those who can and have released their aggressive tendencies in a satisfying way

Hate May Indicate Hunger for Love There are a few other relationships between love and hate to be considered For instance, hate sometimes expresses a hunger for love This means that one only hates a person for whom there is a potential capacity for love Perhaps one would not even hate another if he did not care enough about him to feel this strongly, and this "caring enough about" could easily be translated into the opposite emotion of love It is for this reason that one sometimes finds bitter enemies patching up their differences and becoming

warm friends. The gulf between hate and love is a narrow one and can easily be bridged in either direction.

Hate Can Be Used as a Defense Against Love Hate can sometimes be used to cover up love in cases where love becomes too dangerous For instance, one person may become attracted to another and a passionate love may develop; but there may be external barriers to the full expression of this love The two individuals may be of different races or of different creeds or may be separated by other stronger ties which would interfere. One method by which this love can be repressed is by the arousal of the opposite emotion of hate, which serves as a screen and cover for the real emotion underneath It is in this connection that unrequited love frequently calls forth hate Love that is not reciprocated is left dangling, and as there is no satisfactory strength and support returned to the part of the self that is so generously offered, love turns to hate.

HOW NARCISSISM MANIFESTS ITSELF

Autoerotism. Narcissism is expressed originally through pleasure in the stimulation of one's own body As has already been pointed out, certain portions of the body are more sensitive, and stimulation of these parts is more pleasurable than others It is through the stimulation of these parts that the infant first finds value in himself. The outsider can recognize these pleasurable states as the baby shows them by laughter, smiles, coos, gurgles, the cessation of crying, and the reciprocation of affection.

Egocentricity. After the self becomes recognized as a separate entity, narcissism shows itself through egocentricity, that is, seeing the world from a personal or subjective standpoint The little child particularly refers everything to himself His speech is filled with the personal pronouns, "I," "me," and "mine," and everything thought, said, or done is in terms of what it will bring to him

Self-Absorption. The narcissistic person is self-absorbed The child tends to withdraw into an exclusive concern with himself and his own interests, attitudes, feelings, and pleasures He becomes his own hero, and the child whose narcissism is based on rejection builds a fantasy hero-self to take the place of the self crushed in reality

Self-Admiration. The narcissistic person is proud and vain These feelings become the symbols of his strength, but they are only the shell to cover the emptiness within, an insurance against the hollowness of the self They are in the nature of reaction formations against an injury to the original narcissism Self-admiration may be directed toward the body, and the narcissistic person may spend hours before the mirror, or toward the mind and its accomplishments, or toward attainments and achievements and the things that he is able to construct and contrive. A person may admire his moral virtues and feel proud that he is law-abiding, continent,

temperate, and clean. A man may admire his sexual potency and virility He may find pride in his wealth and possessions All these, either personal characteristics or objects that he owns, may contribute to his pride and vanity A woman, on the other hand, may conceive of herself as a jewel, an object of great value which she will someday present to some man—her lover—as a precious gift Women tend to feel self-respect for their own inner mental or fantasy life instead of expecting praise for their outward achievements, and it is this quality of superiority in the inner self that adds to woman's charm

Overestimation of the Self. The narcissistic person overestimates himself and is given to conceit This may even take the form of delusions The paranoid person may indulge in feelings of superiority and imagine himself to be a more important or capable person than he actually is These delusions are quite likely to alternate with periods of depression, accompanied by feelings of inferiority that may be evoked by the inevitable frustrations and disappointments that he is bound to meet. The self-concern of a person in a depressed condition is prima facie evidence of his narcissism even while he is lacerating himself

Domineering. Another form of narcissistic expression may be in the tendency to domineer, to demonstrate power, or in the wish to aggrandize oneself by controlling others and bending them to one's will. In this way one demonstrates that he is a strong man and thereby adds to his own self-feeling

Demands on Another Person. The narcissistic person may place demands on others for attention, praise, honor, compassion, or gratitude He needs praise as an incentive for his work, he requires praise and admiration from others whether he deserves it or not and frequently hopes to be admired for qualities which do not exist or to be praised for achievements which are not worthy of commendation He may make demands on others without being willing to grant any payment in return He may require others to be loyal to him in spite of his provocative behavior, or to be generous without payment or gratitude He may demand advantages which cost others in time and effort but which pay them niggardly returns. He may even require sacrifices on the part of others for his own benefit

The narcissistic person is notoriously selfish Fromm, in his paper on "Selfishness and Self-Love" [302], points out how the insecure person is greedy in his demands on others This greediness may be for the obvious necessities of food, clothing, money, or possessions One may also impose on another for his time He may be importunate in his demands for advice or for help in difficulties The insecure child may ask for gifts. The timid person may ask for information The narcissistic person may even be importunate for sexual gratification.

In the third place, one may place intolerable demands on another for perfection in living up to high ideals. When a person really loves another,

he is willing to accept him as he is with his faults and limitations The narcissistic person, feeling insecure in himself, wishes to build the other person up to meet his demands of perfection which he is not able to accomplish within himself

Being on Guard Against Another Person. The narcissistic person is on guard against another lest he be imposed upon or lest the other let him down He becomes suspicious and makes unwarranted interpretations of harmless attitudes that the other adopts Demands made by others are regarded as impositions Criticisms coming from others are interpreted as humiliations and attempts at discrediting The interest of another in a third person is interpreted as rejection neglect and sometimes even as hostility.

Disregard of Another Person. Still another way in which narcissism is shown is through disregard of another person and treatment of him as though he were one's property One may disregard his personality, or his limitations and peculiarities, his deeds and wishes A wife, for instance, may overlook her husband's need for a quiet evening at home and insist that they go to the night-club; or if a husband has a need for a round of golf or a visit to the races, she may want to have him exclusively for herself on that afternoon Parents may disregard the needs of a child's development They may interfere with a child's efforts to grow up and do things for himself One may disregard another's independence and place restrictions and hindrances on his free movements In all these cases, the narcissistic person ignores the independence of other persons and uses them for his own needs rather than recognizing that they too may have needs and interests of their own

Jealousy. One of the most important manifestations of narcissism is through the attitude of exclusive possession, that is, *jealousy* This is commonly taken to indicate the strength of love The jealous person is thought to be the one who loves more than average; he is hurt because of the depth of his fondness, he becomes angry because the threat of loss of love is so great Jealousy is popularly considered to be rivalry in love All this, however, is in reality a perversion of the truth Actually a jealous person is weak and inadequate in love, or rather his love is narcissistic The jealous person projects unfaithfulness onto the other person and puts the blame for the waning of the love impulse upon him. Actually, the truth of the matter is that the jealous person is the one in whom the love has failed, frequently because of the magnitude of his guilt and hate The jealous person believes that he is not loved because he is not lovable, that is, because he is hateful Indeed there are some persons in whom passion can be aroused only when hate is thrown off in jealousy They can find interest in another person only when a rival appears on the scene to threaten the relationship Many wives recognize this and actually encourage affairs because it is only when competition threatens that the husband's passion can become fully aroused

Those cases in which the jealous person places the blame for defection in love on the seductive influence of a rival are clearly projections of his own weakness and unworthiness, the well-known tendency to place the blame on the other person rather than to seek it in oneself

When jealousy is shown, there is an undue dependence on the love object. The relationship is not one in which a person freely and willingly gives of himself, but one in which his own needs make imperative its continuance In the family situation, for instance, the little child is jealous not only because a brother or sister is preferred but because there is, in addition, the threat that he may be ignored as the mother gives her love to the brother or sister

It need not be repeated, perhaps, that jealousy is an important component of the Oedipus experience The little boy, for instance, wishes the exclusive attention of his mother and finds his father the hated rival standing in the way of his wishes The success with which he works through this complexity of feelings determines the quality of many of his later social relationships Jealousy frequently dissolves following the displacement of love. For instance, if a child in the family finds some playmate outside the family with whom he can have interests and secrets in common, the intense rivalry with other children in the family may decrease Indeed, it is common to find that when children within a family are young they may give their parents considerable concern because of their constant bickerings and wranglings When they go away to school, however, and form other associations their earlier hostilities may apparently completely disappear, and they will show great loyalty and fondness for each other Jealousy will sometimes disappear when the person can rise above the petty feelings aroused by the relationships of a narrow circle and take on wider interests and acquire a broader perspective.

Using Another Person The narcissistic person may want, not only to possess another person exclusively, but to use the other person for some selfish purpose He may wish the other person to provide him with sexual gratification, and this may be his only excuse for interest in the other person This is the typical attitude toward the prostitute or gigolo Or one may use another person for the prestige he may bring In the days gone by American heiresses would seek out members of the titled European nobility as husbands because of the prestige which it would bring, and today many Hollywood marriages have no higher motive.

Making Other Persons Dependent on Self. Still another form of narcissistic relationship is that in which one person is made dependent on another Women sometimes are only too eager to attach themselves to incompetent or incapacitated men because they find that the responsibility which is theirs in guiding and leading these persons to some kind of effectiveness gives them a sense of importance and accomplishment Many men, more particularly perhaps in the Victorian Age, felt a sort of power if they could marry a woman whom they could make dependent

on them as in a master-slave relationship, as Galsworthy depicted in *The Forsythe Saga* [308]

Becoming Dependent on Others. Narcissism is also shown in quite the opposite way by becoming compliant and accepting a position of emotional dependence on another person In adopting this "clinging-vine" attitude, one person gains strength at the expense of another However, humbling oneself in this way by relying for strength on another person humiliates to a degree, and in so far as it does, is accompanied by unconscious resentment

Sensitivity to Neglect or Criticism. The narcissistic person is sensitive to neglect, to belittlement, and to criticism The delusions of persecution of the paranoid are signs that this psychotic state is basically narcissistic A narcissistic person is concerned over himself A hypochondriac is one who is obsessed with infirmities and illnesses He dwells on the state of his health and takes steps to preserve himself from illness or decay He is concerned with the soundness and functioning of his lungs, heart, and stomach He worries over his mouth and teeth and becomes sensitive to the least sign of defects in his sight or hearing The narcissistic person is more than ordinarily concerned with his appearance and takes pride in adorning himself tastefully and wearing the most modish and appropriate clothing He becomes concerned over the functioning of his intellect He worries lest his personal qualities fail to meet his standards of excellence He becomes concerned over his status and is highly sensitive to the possibility of being ignored or snubbed or not appreciated for his true merits Where he fails to come up to his own ideals, he indulges in self-pity

Depreciation of Others. The narcissistic person, on the other hand, shows his own self-concern by his tendency to depreciate others He develops strong antipathies to men in certain occupations—butchers or barbers—or to certain races—Jews or Negroes He easily indulges in fault-finding and criticism He openly shows his antipathies and aversions and belittles their characteristics and disparages their accomplishments

A person may show his narcissism by secrecy and reticence A part of himself—his ideas—may seem so important to him that they will be lost if known and used by others Some persons, for instance, hesitate to express their thoughts because they feel that their thoughts are far above those of the common herd, and they do not want to have them contaminated or lost by becoming the common property of others

Roheim speaks of sublimation as half-way between narcissism and object love. In a sublimation one has not completely given himself over to the object, but on the other hand he has externalized his own impulses in a socially acceptable way An artist reacts to an art object and thereby externalizes his inner stirrings so that others can respond to them as well But an artist does not fall in love with his product—it is still too much a part of himself.

EXPRESSION OF OBJECT LOVE

Sex. *Sex and Love Not Identical* The infrequent mention of sex in the foregoing discussion may seem to a number of persons to be strange inasmuch as love and sex are so commonly bracketed in most persons' minds Love is almost universally used as a term to denote sex. When one picks up a book entitled *The Art of Love*, he expects to find a treatise on sex Psychoanalysis in its early formulations was severely criticized because it was thought to overemphasize sex and to interpret all neurotic states as due to aberrations of the sexual impulse It is true that psychoanalytic theory, being based mainly on extensive studies of neurotic persons, has failed to provide a wholly adequate analysis of love, which is in the main a characteristic of normal and stable individuals.

It is an interesting fact, however, that only recently in the history of the human race has love been considered an aspect of sexual activity One does not speak of love in connection with the sexual activity of lower animals, and primitive man by no means linked love and sex together as one and the same thing Anthropological studies of primitive cultures will show that every conceivable emotional relationship can accompany sexual relations For instance, Margaret Mead [572] in studying a New Guinea tribe found that a man gives all of his affection to his sister and that his relations with his wife are to a high degree impersonal and even antagonistic [8]

Even in civilized countries where marriage is arranged between two children by their parents, the marriage is not based on love but becomes an economic and social transaction between families Love may develop in the marriage relationship, but sex is not accompanied by love at the start Indeed, romantic love as we know it in our own society has had a late historical development What seems so important and inevitable is simply a product of our own culture It is our way of conceiving sex

Freud [260, 296] has referred to love as "aim inhibited sex", that is, he thinks of love as the tender feelings that one has left after sex has been inhibited. Sex, which was originally present, has been subtracted from these tender feelings. A libidinal concept of love was necessary for Freud because he saw pleasure or sex as the grand-swell out of which all the more mature emotions emerged Freud's concept, however, fails to comprehend the dynamic character of love, for he attempted to fit it too narrowly into his libido theory. As we are discussing love in this chapter,

[8] "A man gives the allegiance of dependence to his father, occasionally to his mother, mutual affection and feeling of reciprocity and co-operativeness to his sister, playfulness and easy give and take to his female cross cousin, anxious, solicitous, sedulous care to his children For his wife he reserves—what? Unrelieved by romantic fictions or conventions of wooing, untouched by tenderness, unbulwarked by co-operativeness and good feeling as between partners, unhelped by playfulness, preliminary play or intimacy, sex is conceived as something bad, inherently shameful, something to be relegated to the darkness of night Married women are said to derive only pain from intercourse until after they have borne a child"

it is more a function of the personality and its adjustments to the people who are part of its world than it is a function of sex

But Sex and Love Have Much in Common. Physiologically, love and sex have much in common They both represent the operation of the parasympathetic nervous system The preparatory stages of sexual excitement, including tumescence and a turgid condition of the genital organs, represent a discharge of the parasympathetic We have also seen that in a more general sense the discharge of the parasympathetic represents an essential condition for the expression of love. Both love and sex represent muscular relaxation, and freedom from inhibition and fear They both represent pleasurable excitement Both represent an outgoingness Indeed, sex as a basic drive which demands the response of another person for its relief and satisfaction becomes a prime setting for the development of love

However, love must not be confused with sexual expression There may be love of food and adventure in just as real and passionate a sense as the love which accompanies sex On the other hand, sex must not be thought of too narrowly as the relief of physical tension Indeed, most writers on sex would insist that the forepleasure and the personal relationship are important factors in the consummation of sexual pleasure In this sense sexual love involves a confluence of two separate streams of expression and feeling, one purely physical, the other, emotional, based on human relationships As these two come together, they result in a more profound and exalted experience than any other expression of love Indeed, sexual expression depends for its highest satisfaction not only on the adequacy of the physical act but also on many other factors, just as the pleasures of eating are enhanced by refined appointments and entertaining company. The expectations of the culture determine in a large measure the quality of sexual expression What custom permits and expects sets the stage for the quality of sexual pleasure The vitality of the two partners also plays its part The sexual temperaments of the man and woman as determined by their erotic experiences in infancy also determine the quality of sexual experience Current discussions of sex put major emphasis on the adequacy of the sex act itself, but this is only one of a number of factors and not necessarily the most important one which contribute to the total satisfaction in sexual relations

Sex in its narrow aspects is physical Love implies, on the other hand, the esteem and recognition of another individual as a separate personality. For the most complete sexual relationships other persons must be acknowledged in a double way, first as persons and second as carriers of sex activities

A disputed point for which conflicting arguments and evidence have been advanced is whether love or friendship must rest on a sensual and even a sexual basis Some have asserted that any human relationship is to a degree sensual and ultimately will be found to invoke to some small

degree an element of sex. One investigator [393] who collected many diaries and letters of adolescents believes that he has evidence to support the view that the feelings and expressions of friendship are different from, if not opposed to, those of sex. One cannot, perhaps, take a dogmatic position with regard to this issue at the present time, and it is not very important to do so The fact of the matter is that even if there is a minute sensual basis to the most platonic friendships, it may be so minute as to be relatively unimportant. One knows, for instance, that there is moisture in unseasoned wood, because it will warp However, in discussing wood the fact that it contains moisture within its pores would be a relatively unimportant characteristic[9] There is a basic difference between sex and love in this respect Sensual pleasure becomes extinguished when satisfied, whereas love continues unabated, indeed, is enhanced the more satisfaction a person derives from another. Actually, the satisfaction of the physical needs of sex occupies only a small, though necessary, part of life, whereas the emotional needs are all-embracing To go back to Maslow's hierarchy of drives referred to in Chapter II, "Drive," the physical needs of sex are basic Generally they demand first satisfaction, but, unlike hunger, they can be widely displaced and sublimated. When the physical needs are met, the stage is set for the gratification of higher needs of safety, affection, recognition and self-realization

Sex is one form of joint sharing and activity through which love may be expressed Indeed, it is the most complete union and sharing of which men and women are capable It represents the highest degree of intimacy, but it has been emphasized time and again that sex must not be thought of in its narrow physical aspects but in the whole circle of relationships, experiences, and responsibilities which accompany it

Christian civilization, strangely enough, is opposed to sexuality while at the same time it endorses love This inconsistent attitude makes all persons in our culture to a degree impotent and frigid Love could receive a more widespread and deeper expression if society could take a less restrictive attitude toward sex.

Friendship This long passage on the relation between love and sex would make it seem that sex is the only form of expression of object love While it does occupy an important place, it is by no means the only form of expression Indeed, friendship in which the sexual element is minimized or missing can serve as the expression of love quite as effectively as though sex expression were present Friends can have many bases for common interests, common pursuits, for sharing and helping one another, all of which foster love and serve as its expression Reik points out that in friendship there is less overestimation of the object, less idealization, and a less intense possessiveness Friendship usually involves certain qualities of the person and not the whole person himself Reik sees the relationship in friendship as one of equality, but Fromm makes

[9] Illustrations from conversation with Theodor Reik

this equality a requisite of love. In friendship each of the two individuals keeps a stronger separate identity

Cooperation. Love finds its social expression through various forms of cooperation One of these is in the various modes of sharing Husband and wife will find that love is enhanced to the degree in which they can share together in family life either their work or their play A person feels that he is loved by another when he is invited to do intimate things Sitting down to eat together is one form of intimacy and a valuable expression of love The give and take of conversation is another form of sharing One may give to another person his thoughts and feelings To amuse him, to inspire him, to encourage him by the capacity to listen and to receive from the other person expresses fondness fully as much as the capacity to give One must be ready to share grief as well as pleasure, and until one has shared hardships and trials, perhaps the bonds of love are not welded in their closest form It is possible to establish love on a basis of interests as well as sex

Helping another person and giving freely of one's time, energy, and wealth is another way of expressing love The neglect of another person and the refusal to assist him is universally accepted as a refusal of love

Exchanging gifts becomes an important token of love A gift is a sign that the recipient is love-worthy One gives freely objects such as food, toys, or clothing, his service or time, or erotic satisfaction only to a person whom he likes or admires

Love also expresses itself through gentleness The lover is considerate, is not brusque or importunate, and shows a quiet consideration of the other person.

Hart [349, pp 170 ff] has prepared the following tests of romantic love. (1) There is greater happiness in the presence of the loved partner than of any other person (this assumes a love that is exclusive and reciprocal) (2) There is a sense of unrest and dissatisfaction when they are separated (3) The lovers find a wealth of things to say to each other (4) There is an eagerness to share experiences. (5) Each is eager to give full consideration to his partner's opinions, judgments, and interest (6) Plans and interests keep organizing themselves around the partner (7) The lover takes pride in his partner. (8) He is eager for the success of his partner.

Probably the best description of how love is expressed was given by Paul in the passage from Corinthians.[10]

> Love suffereth long, and is kind, love envieth not, love vaunteth not itself, is not puffed up, doth not behave itself unseemly, seeketh not her own, is not provoked, taketh not account of evil, rejoiceth not in unrighteousness, but rejoiceth with the truth, beareth all things, believeth all things, hopeth all things, endureth all things

[10] Corinthians, I, 13:4-7

CONDITIONS FOR THE DEVELOPMENT OF LOVE

The Capacity to Be Loved. Some persons find it difficult to permit themselves to accept love from others. These individuals are remote, offish, inaccessible. If one lacks a capacity to be loved, he finds it difficult to love in turn. Experience in the clinical study of children indicate that the capacity to be loved depends primarily on being loved by one's parents. If one has been given love in childhood, he finds it easy to accept love in later life. But this love from the parents must not be excessive in amount. Where the parents overindulge a child, they make it difficult for him to be satisfied with smaller amounts of attention. He becomes greedy, ravenous, and highly narcissistic. He finds it difficult to renounce love, even temporarily, when it is not forthcoming. Such an individual becomes panicky when forced to be alone or when he finds himself with strangers. Excessive love from parents encourages over-indulgence.

A second condition for the capacity to be loved is the recognition that one is lovable. This depends on being told that, and being so treated and accepted by others. A child who is called a bad child will find difficulty in later years accepting love and praise from others. The child who has been disappointed in his expectations of what others will give learns to expect little and is afraid to recognize love lest once again he be deceived.

A third requirement of the capacity to accept love is a certain pliability and suggestibility. To be able to accept love, one must be susceptible to the desires of others. One will hardly be the recipient of love if he is stiff, resistant, or stubborn. Such a person will tend to antagonize rather than encourage love from others. Also, to be loved one must be willing to admit superiority, merit, or ability in others. One must not aggrandize the self too greatly but must have a certain amount of humility and reverence. A person has a capacity to be loved only when he recognizes merit in the person from whom it is to be received.

Capacity for Self-Love. The capacity for self-love, as we have already seen, also grows out of the attitude that the mother takes toward the child. Self-love flourishes in its most healthy state when a child is loved and cherished by his parents. If the child is over- or undervalued, there is distortion to his own self-evaluation. The child who is overvalued by doting parents develops an overweening narcissism. His interest in his body develops in the first place because his parents go into ecstasies over him. Parents who sacrifice themselves by too close waiting on a child encourage him to overvalue his self-importance.

On the other hand, the child who is underestimated by critical and punitive parents is thrown back on himself for pleasure. He tries to build up in fantasy the self he does not find mirrored in the attitude others show toward him. Such a child attempts to gain by force and

aggression the satisfaction in himself that his parents do not willingly give him

Self-love, however, may also be dependent on skill, accomplishment, and achievement The child who can do things with his body, with his hands, or with his mind, or who can control others by his speech thereby gains a confidence in himself and greater capacity for self-esteem and self-love Any child is aided in making a good adjustment who is helped to gain the basic skills of reading and writing, of graceful bodily co-ordination, and pleasing social accomplishments Oddly enough, the capacity for self-love of a somewhat different sort may also be strengthened by illness The child who has had a long confining illness is thrown back on himself for pleasure and amusement and is made overconcerned with self-care However, as can be readily seen, this kind of self-love lacks the healthy tone of that which has a more positive origin

Finally, the capacity for self-love depends on sexual potency A man or woman who is sexually adequate is helped to feel a higher self-respect

Capacity to Give Love. A capacity to love is also dependent in the first place on being loved by one's parents in infancy Here again this parental love should be a mean between two extremes Children whose parents help them to make good and to grow up give their parents love in return, which is the first of the many forms of object love that find expression throughout life On the other hand, as has already been mentioned, the child of rejecting parents is thrown back on himself, and the capacity to give himself to others is reduced The unloved child finds it difficult in later life to take part in effective human relationships, having been rejected once, after approaching his parents expecting to be accepted, he hardly dares to risk offering himself again On the other hand, excessive parental love tends to encourage fixation When the parent becomes too important a person, it is difficult for the child in later years to find any other relationship quite as important or satisfying, in this way overindulgence may actually impair the capacity for love relationships with others in later life

Indeed, the relations of the parent to the child establish the character of all later love relationships. A father's attitude toward his daughter, for instance, may determine the kind of man with whom she will fall in love If the father-daughter relationship is satisfying, the daughter may be attached to men who resemble him, whereas if the father threatens or arouses hostility in his daughter, she may be attracted to a man with quite different characteristics

In like manner the mother's attitude toward her son will determine the kind of woman he will love, and the same factor of pleasure or antagonism in his relationships to his mother will determine whether he will seek a mate who resembles her or who has differing characteristics

As we have already seen, another factor in the capacity to give love is the individual's good relationships with himself. These things must of

necessity go together because they grow out of a single stem; namely, being loved by the parents. As Fromm [302] states, "If a person can love only others, he cannot love at all," meaning by this fact that if he is so unsure of himself that he has to love others (narcissistically) in order to regain his self-assurance, then he cannot have genuine love for others. A person who does not have respect for himself has difficulty in offering sympathy and understanding to others

Object love depends upon finding a good love object If those who are accessible have unlovely qualities or throw up barriers of repulsion, love is impeded. The other person must not only be physically acceptable but also must meet the requirements of social class, race, and religion. To love another, a person usually must be free from illness, accident, or other forms of incapacitation He who is ill is of necessity so concerned with himself that he finds it difficult, if not impossible, to give himself freely to others There are notable exceptions to this, of course, and some bedridden persons have drawn praise by their unselfishness and devotion to various causes, but this attitude is the expression of some special mechanism

In order to love, there must also be freedom from excessive competition Intense rivalry makes generous love impossible.

Freud points out that love that is too easily attained may not be deeply appreciated It would seem that love develops most soundly when the love object is to a degree inaccessible and its attainment represents a challenge That which can be easily grasped may appear to have less value than that which requires effort to reach While this feature of love may be commonly observed, it is probably the exception rather than the rule The studies of Wright [860] on frustration would seem to indicate that the highest value is placed on those objects (and persons) closest at hand and most easily accessible

The capacity for love depends on the capacity to sacrifice or expend the self without stint or counting of the cost. The person whose narcissism will prevent him from any form of exertion which might be harmful can hardly achieve the highest form of unselfish object love. Likewise, there must be the capacity for forgiving or overlooking the slights, the rudeness, and incivility of others

Love depends on the possession of common interests and the pursuit of common enterprise Where two individuals diverge in their tastes, their attitudes, and their loyalties, it is difficult for them to maintain the bond of love

Love varies in the reliability and steadiness of feeling The shallow arousal of sexual desire which can be easily satisfied by sexual relationships may be accompanied by one kind of love. On the other hand, love may be bound up with the whole personality rather than with the desires and satisfactions of the moment

Finally, a man loves as he has loved others before. The character of

one's love retains a continuity As the early infantile experiences set the pattern for the nature of love relationships, later love experiences repeat these early characteristics time after time through life. A person's new love relationship can be counted on to bear a resemblance to the loves he has had in the past

DISPLACEMENT OF LOVE

Motivation. It has been mentioned earlier that love is first given by a child to his parents and then later is directed toward other persons and objects This takes place by a process of displacement—of shifting attitudes and feelings from one person to another There are several reasons why a child does not find his first love toward his parents entirely satisfactory and does not maintain it as the exclusive relationship throughout childhood and later life. By spreading his love among a number of persons, he reduces the danger of frustration and failure To pin all one's hopes on one person is like putting all one's eggs in one basket. To have many friends rather than one and to be able to go to other persons for relief and consolation is safer than relying on one person This is particularly true because of the child's hostile feelings toward his parents and his fear of retaliation from them If there is a possibility that through his hostile feelings he may lose them, it may be safe to turn some of his love to grandfather or grandmother, brother or sister, or companions outside of the home So spreading one's love to other persons affords relief from the painful dependence on the mother, painful because of the possibility that it is not permanent and that the child may suffer disappointment

As one shifts his love from one person to another, he lessens his burden of conflict and guilt. Confining his love to one person, he has to suffer the possible effect of his hostile tendencies There is safety in spreading one's affections among many people

Still another aspect in the motivation of the displacement of love is that by finding value in another person, one re-creates in fantasy the earlier person, perhaps the mother, who had been destroyed in fantasy. So throughout life there follows a succession of attachments in which the new person takes the place of someone who occupied a similar position in the past

Sometimes displacement of love occurs because the original love does not satisfy The mother who is disappointed in what she expected to receive in her marriage from her husband may give herself passionately and devotedly to her children They become the recipients of her affection that is not reciprocated by her husband. Writers commonly make it seem as though the responsibility for this failure lay with the husband, who is pictured as a remote and unresponsive person immersed in his professional or business interests But the basis for the displacement lies equally with the narcissistic mother who finds it difficult to give herself

wholeheartedly to her mate As another illustration, a child who loses one parent frequently lavishes too much love on the parent who is left, in fear lest he lose this parent too This concentration of love may become so powerful that hostile impulses naturally present may be stifled and repressed Repressed hostility is always a dangerous condition and leads to profound changes of character and possibly neurotic (hysterical) manifestations

Basis for the Displacement of Love. In any case of infatuation or attraction there is some element bridging the gap between the new loved object and a person who has been loved in the past This element may be some isolated characteristic of the person, subtle and tenuous, such as the timbre of the voice, a gesture, a shrug, a fleeting odor. Elusive as such an element may be, it is still real and exerts the all-controlling influence in determining the strength of the new attraction based on pleasant associations with the past

Displacement of Love Varies in Completeness and Permanence. The displacement of love varies in its completeness and permanence. Some relationships represent a broad and deep experience, while others are shallow and superficial The personality dynamics of the individual determines whether he has a need that is to be temporary or permanent The quality of a new relationship also depends on the strength of the needs of the two individuals concerned If the relationship fulfils profound ego needs, if there is deep satisfaction in the reparation to which the relationship gives expression, then the relationship may be more stable than if it satisfies more isolated and immediate needs in the individual In general it may be stated that the stability of the love relationship depends on the degree to which it satisfies embracing, inclusive needs rather than isolated needs of the individual

It is difficult for one love object to correspond to all of the requirements of the imago Adolescence is a time when many temporary crushes and alliances spring into being, each one of which corresponds to some inner need within the individual, but none of which satisfies all needs equally well The tendency to have a succession of temporary and superficial love relationships is known as "Don Juanism," after a legendary Spanish figure who traditionally was an irresistible lover and seducer of many women. Popularly the Don Juan is thought of as being a particularly ardent and passionate person Actually the man who flits from one love-affair to another is amatorially weak He frequently is less concerned with his passion than with his hostility He may be so haunted by the fear of death to his loved ones as the result of his hostile impulses toward them that as a form of insurance he provides himself with a succession of love objects He may have to prove his own virility and irresistibleness by his repeated courtships He also may have to assure himself that his loved object is not indispensable because if he loses one, he will never be without another to take her place. The Don Juan then is haunted

by his fears of being left alone, of his own possible lack of virility and passion, and of the destructive effects of his hostilities

It is a tradition that a man is inclined to change his love objects more frequently than a woman A woman is supposed to find special need for the permanence of the love relationship, partly because she is economically dependent on the man, since it is she who bears a child and must have permanence in order to rear it properly A man does not feel the urgency of this responsibility, at least in the same degree. Constancy in love in a man depends on many factors, the most important of which is the degree to which he has been accepted as a child and finds values in the permanence and stability of his own childhood family relationships This is aided, in addition, by the man's identification with his mother, which helps him to understand the woman's need and tendency to preserve what she loves In this we are saying that constancy in a man depends in part on the strength of the feminine component in his nature This identification also helps to the extent that his wish to have his own mother as his child (a very important and common infantile fantasy) becomes realized in his ability to play this mother rôle toward his wife

It has been pointed out that displacement, at least from the mother to other loved objects, should not be too complete. It is desirable for satisfactory later love experiences that traces of the love for the parents should remain The person who forgets his earlier loves too completely may forget how to love at all Except as one can displace into the new situation the traces of the old, it is possible that love in the new situation will never satisfactorily develop While too strong fixation of love handicaps because it can inhibit the formation of new love relationships, on the other hand, a tender feeling which is the remnant of an earlier more ardent feeling should persist throughout life as a sign of the individual's love capacity

PERSONS TOWARD WHOM LOVE MAY BE DIRECTED

Parents and Siblings. Enough has been said to make clear that love is first directed toward one's parents For both boys and girls the mother is the most important first person because from her come milk and the accompanying tenderness But the father, from whom one receives support and firmness, follows closely in importance This love spreads to other members of the family, particularly to siblings Indeed, sibling relationships help to lessen the intensity, with its accompanying dangers, of love for the parents The development of sibling love also helps to hamper tendencies toward jealousy, rivalry, and hate of the siblings Love may also spread to the grandparents, who not infrequently stand as superparental figures to be worshiped with awe, if not loved in a more immediate and direct way By displacement, love may be felt toward one's in-laws and also, in the case of foster children, toward foster parents

New Family Ties. Part of the process of achieving adulthood is the

establishment of new marital and family relationships. As children are added to the family group, each is given a due measure of love and affection Attitudes of love toward one's children are usually displacements of earlier loves felt toward father or mother or brothers or sisters in childhood A mother may love each of her children in a different way, each representing a displacement of her attitudes toward one or another member of her own family in childhood and infancy or even toward the different imagos of any one family member. The typical stages of displacement of love are from parents to siblings and later for the boy to other boy friends, then to an older woman, and finally to a girl of his own age, with eventual consummation in the marriage relationship

Displacements of Love Outside the Family. These displacements of love are not confined to the family circle. Less intense but equally important are the many friendships which represent milder forms of love attachment. Friendships may be crystallized in group allegiances as a man joins a club, a society, an athletic team, or political party

It is not uncommon for love to be turned toward animals A man can become as fond of his horse or dog as of a friend and will mourn its loss as though it were someone near and dear to him The animal cemetery in Hartsdale, New York, with its elaborate stone monuments erected to household pets, is testimony to the strength of these love attachments turned toward animals.

One may also love inanimate objects and less tangible things such as enterprises, causes, ideas, and so on. One may devote considerable allegiance to a business enterprise or an athletic contest, and throw into such activities some of the zeal which might, on another occasion, characterize a love relationship with an individual One may devote a considerable amount of love to things such as possessions, money, clothing, and collections of various kinds The curator of the museum, the capitalist, the director of the botanical garden devote their interests and passion to the care and preservation of these enterprises as truly as the mother does to her growing child. When an object also acquires the power for sexual stimulation, it is known as a fetish Objects furnish such stimulation when they have special symbolic value and permit the repetition of pleasurable situations that occurred in a simpler setting in early infancy A shoe, a glove, a ribbon, or a handkerchief may be a symbol of the absent loved person and originally, perhaps, will serve as a substitute for the absent mother The philosopher or scientist is in love with his thoughts and ideas, cherishes the words which he places on paper, and becomes angry with his publisher who may insist that less important passages be deleted or awkwardly phrased statements reworded

Enough has been said already to indicate that one important direction that love may take is toward the self. Someone has described sleep as a withdrawal of interests from the outside world and the concentration of them on the self It is well known that dreams are wholly egocentric,

and regardless of their apparent subject-matter, they always have direct personal reference

SELECTION OF THE LOVE OBJECT

Narcissistic Love Choice. This has two features: the selection of someone who will give the person praise and support, and the selection of someone who will be like himself With regard to the first, which Freud has called "anaclitic love choice," one selects as a person to be loved someone who will fill the place of father and mother The loved object is selected as someone who will love him in return, who will protect, sustain, and support him, who will praise him for his deeds and accomplishments Even in the most mature love relationship there is always a trace of this factor in the selection

The other phase of the narcissistic love choice is the selection of a person who in some way is like the self Freud [281] has said that the person selected may represent one's present qualities, whether of appearance, intellect, or personality; one's childhood qualities, one's ideals and aspirations; or, in the case of one's own child, he may once have been an actual part of the self

Every object-love relationship is based in part on narcissistic love If one finds that the other person represents a fulfilment of his own deeper longings and aspirations, that person may appear attractive and valuable; and this is the basis of mature love Those who have made studies of marriage relationships describe a phenomenon known as "assortative mating," by which is meant that these two individuals are more like each other in various aspects than if the selection were purely random. It is well known that a man usually chooses a girl of the same nationality, race, and religion He also usually selects her from his same economic and social class Commonly there is some adherence to the same customs Less known but equally true is the fact that there tends to be a resemblance in physical and intellectual measurements [452, 112, 786]

Object-Love Choice While every object-love choice has a narcissistic element in it, in the more mature forms of love other factors also play a part. Where childhood relationships in the family have been wholesome and were not accompanied by too much anxiety or repression, a person tends to select as a lover someone having the same characteristics as the father or mother However, when guilt becomes too strong the love selection cannot be based on such obvious similarities, frequently there is a reaction formation, and the loved person bears precisely the opposite characteristics to father or mother A man, for instance, may pick out a brunette, whereas his mother may have blonde characteristics Or the girl whose father is a successful banker or industrial leader may choose a husband who is a writer or scientist In these illustrations the displacement is from the parent of the opposite sex A woman may select as a mate a man who in some way resembles her younger brother

so that she can continue to play the same maternal rôle toward her husband that she played toward her brother as a child Or in similar fashion, a man may select for a wife a girl who resembles his sister in some remote fashion, so that he may continue to play the big brother rôle toward her However, the origin of this displacement is not limited to members of one's childhood family, but may extend to anyone with whom one has had close, tender, erotic, or libidinal relationships A childhood nurse, a distant relative, or a family friend who has stimulated the child in some way may serve as a model for a later love choice In every encounter with another person there is an unconscious evaluation of his characteristics, and a response is made to some characteristic associated with another person in the past who originally elicited the same special feeling.

OVERVALUATION OF LOVE AND SEX

By Men. While love tends in our present civilization to be overvalued and sex to be undervalued, in certain individuals this is not true Some men, for instance, tend to place too strong a value on sex To them sex is the most exciting and important thing in the world, everything is measured in terms of its contribution to sex needs A man may overvalue sex as a way of meeting certain anxieties and of contributing in a neurotic way to the satisfaction of other needs. First of all there is the fear many men have of not being normal, particularly of not being sexually virile. This probably is a final repository of earlier anxieties which have settled on a concern over sexual adequacy. One may suspect that the man who overvalues sex is struggling with more pervasive doubts as to his adequacy as a person The man who overvalues sex has strong needs to surpass his male rivals Perhaps he has had these exaggerated rivalries as a boy, and they may go back to his original rivalry with his father The sexually ardent man is attempting to restore his wounded self-esteem. He wants to prove that he can attract women and to dispel doubts as to any weakness that he may have in this direction

In a more specific sense, sex may be overvalued because of specific early experiences The boy who has been sexually stimulated or seduced as an infant may be made by such experiences to have an increased need for such pleasures, particularly when he feels they are to be denied

By Women. Women in particular are inclined to set a high premium on love experiences, and while they may also overvalue sex, the sexual aspects typically play a lesser rôle The woman for whom love experiences have an exaggerated significance perhaps doubts her own love qualities Frequently she is attempting to surpass female rivals and to prove to herself that she is more attractive and more to be desired than others in her circle. This, too, goes back to a rivalry with sisters or, in the first instance, with the mother

Women seek love experiences for the restoration of wounded self-

esteem. Love serves as a compensation for the inferior sex rôle they are forced to play Since a woman does not play the aggressive sex rôle, she has to prove that she can attract men Horney [372] emphasizes the need of some women to be constantly surrounded by men and build themselves an entourage as protection against the anxieties their own feelings of inferiority arouse Another explanation sometimes adduced for the overvaluation of love by women is the fact that they have been commonly denied other pleasures and satisfactions granted to men In the Victorian era the compartmentalization of life allotted few other interests to women than love, whereas men had the whole range of life's interests from which to draw

Women as well as men may have been overstimulated in early childhood, and these early experiences may have forced love and sex relations to assume a place of large importance.

A little girl, for instance, who was forced by her parents to sing and dance in a tavern and was fondled by the rough visitors may have developed a taste for sensuous experiences which afterward when repressed contributed to the development of a chronic depression arising from persistent guilt.

REPUDIATION OF LOVE

Motivation. *Lack of Confidence in the Self* To go to the other extreme, it is not uncommon in the present civilization to find individuals who have forced love out of their lives, at least the love of other persons These individuals become emotionally dried up and withered They concentrate their energies on their work and starve themselves for the richer, more meaningful, more pleasurable, and more emotional human associations. The repudiation of love is founded on a lack of confidence in the self which owes its origin to early experiences The person who dodges love is one who feels unworthy of love But since few young persons can accept unworthiness in themselves, it is a common tendency to rationalize the repudiation by projecting it onto others and ascribing lovelessness to them. An individual explains that he has given up love because the world is such a friendless place and other people are so interested in themselves and their own affairs. Doubts as to one's capacity to love in one situation tend to spread The person who suffers a disappointment in a love relationship, perhaps through no fault of his own, should beware lest his misfortune drive him to a more general withdrawal Silas Marner became the miser that he was because of one unfortunate experience when he was falsely accused of theft

Repudiation of Love as Method of Preserving Love Another motive for the repudiation of love is the desire to preserve love. The one love experience may have seemed so perfect and so vivid that the danger of wrecking it by future less passionate contacts is too great to be faced. To cut off a love relationship is one way of preserving it, particularly if the person feels unworthy of so vivid a love experience.

Betty, who meets the boy from Cleveland at a dance, decides that she does not care to see him again She likes him very much, but she is afraid that further contacts will spoil the experience. This is because she is insecure in her own relationships with her mother and doubts the depth or permanence of any relationship [11]

Dread of Intimacy. Still another reason for the repudiation of love is dread of the intimacy which a love relation entails and fear that in an intimate relationship the other person will see through one's mask to the hollowness, shallowness, and inadequacy beneath. It is for this reason that some persons insist on maintaining superficial and distant friendships They cannot afford to risk more intimate relationships lest they reveal themselves and all the inadequacies they feel they must keep concealed.

Love Repudiated to Reduce Danger of Frustration. Love is repudiated in order to reduce the danger of frustration. The person who finds it necessary to avoid intimate relationships is one who has been burned by them in the past He needs to avoid the possibility of rebuffs to overtures he may make because the coldness and repulse of others is more than he can bear. These frustrating situations may go back to weaning in infancy and to other situations that bred in him distrust of the attitude of others toward him.

Love Repudiated to Avoid Dependency Still others avoid love experiences because they are afraid of the dependency they may imply The adolescent boy or girl apparently rejects love in his own family because he is so strenuously striving to achieve independence He does not want to feel that he is tied down to a dependence on his sister or his mother. This again is to an extent illusory The adolescent boy who apparently is trying to avoid love experiences may be the very one for whom they are especially important The threat that love may be withdrawn is so great to him that he may beat the gun and be the first to repudiate his need of it There are those who are afraid of being loved too possessively It is of interest that possession by another person is sometimes interpreted as the equivalent of disapproval This is, if a mother resists signs of independence in her son, she also does not really respect him as a separate personality, and in this sense is disapproving The person who strives to absorb another person is really loving narcissistically, and most persons are only too sensitive to situations in which they are being used to satisfy the needs of another

Presence of Ambivalent Trends. The sixth basis for the repudiation of love is the presence of strong ambivalent trends When strong hostile tendencies are backed by unconscious death wishes, the danger of doing away with the person toward whom love is felt is so strong that the person does not dare to risk giving his love Love implies a wish to protect; and if this is in conflict with hostile impulses, then the danger from these

11 P Blos, *The Adolescent Personality*, Case of "Betty" [90, pp 77-109].

impulses may be too great a threat for the nurturing tendencies Many a mother has rationalized her philosophy of child-rearing on the grounds that a child can be hurt by too much coddling and pampering Actually, however, the truth may be that unconscious hostile tendencies may be so overwhelmingly strong that the mother does not dare to show too much affection to the child lest the viper in her also sting

Fear of Depreciation A seventh basis for the repression of love is the fear of depreciation by others No one wishes to place himself in a situation where he is likely to be criticized or humbled A person may give himself to another who responds, not generously, but selfishly and without appreciation Some persons are unable to bear such a threat

Repression of Love Through Identification There are some who have actually been trained to repress their love tendencies Perhaps they come from families in which the open expression of love is stifled and the family pattern is established so that only the barest tokens of affection are permitted expression Some persons are used to showing their love awkwardly and with curious tokens of affection

Methods of Escaping Love When a person wishes to run away from love, he sometimes does it by leaning over backwards and making it appear that he may have not only neutral but even hostile feelings toward another person The very things he most loves and cherishes are the things he depreciates Just as a gem merchant may depreciate the cut of a stone or the setting of a ring he hopes to purchase at a reduced price, so some persons hide their attitudes of love by critical comments The surest token of a mother's rejection of a child is her criticism of him, but criticism may also imply a degree of fondness A person must have some positive feeling toward the other or he could not even care enough to criticize him The wife who finds fault with her husband because he does not groom himself properly or use sufficient tact in his business dealings does so, not only because of an underlying hostility, but also because she loves him and wants to help him The "sour grapes" rationalization is frequently the depreciation of the very thing that is most desired

Some persons escape loving by adopting a style of life that removes them from contact with others. A man may choose a vocation in which he works alone rather than with others A woman may isolate herself by choosing to teach in an institution or a remote community where she is removed from contacts The adolescent boy or girl may avoid the groups, cliques, clubs, or fraternities in which he would find relationships and prefer to go his own way as a "lone wolf"

Some persons escape intimate contacts by assuming obligations and duties which confine them A woman may accept the responsibility for the care of an aged mother or father or responsibility for putting a brother or sister through college This very responsibility ties her down and removes her from associations with those of her own age and interests.

Many a man has been prevented from courting a girl who seems always to be engaged with some responsibility which leaves her no freedom.

Another way of escaping love is by demanding too much of the other person. A man may demand beauty in his wife, or a wife may demand wealth in her husband When the other person is wanted for something that he owns or for some special quality, he is not wanted for himself but in order to provide special gratification.

VALUES OF OBJECT LOVE

Love has become the foundation of the Christian religion and is extolled and glorified by everyone old and young Love is the basis for the most profound happiness human beings are capable of achieving. One's love relations are cherished as experiences of paramount value. If one looks back over the years, his comings and goings, his achievements and successes pale in significance beside the memories of companionships and intimate associations with others.

The richest life is that which is filled with associations with others. Anyone who writes an autobiography entitled, *Across the Busy Years,* records not only his achievements but also his associations and intimate relations with others A life filled with personal worthwhile contacts is one based on love Love provides the surest guarantee of security from fear One can best protect himself from disturbing anxieties when he is secure in the gift of his love to another person The person who loves becomes relaxed and at ease and is able to throw off the burden of tension Love helps a person to achieve peace of mind and freedom from guilt The person in love is assured of his potency The capacity to achieve and the capacity to love and to understand are the two principal weapons or tools for the conquest of, and adjustment to, the external world Love frees one from crippling dependency on others and from sensitivity to criticism, scorn, and contempt Love is a successful solution to the threat of loneliness and isolation Many persons are afraid really to accept pleasure and enjoyment for themselves because of crippling experiences in early years The highest form of pleasure comes to the person who is able to give himself in love

Love is the essence of desirable group life The world today is struggling to recover from a global conflict which has brought misery and terror to most peoples Efforts are being made to create a world in which this misery will never have to be repeated In a previous chapter the cause of war was found to lie in aggressive tendencies in man; the basis for peace, on the other hand, must be found in the love tendencies in man Somehow love tendencies must be provided with an opportunity for expression, and a world organization must be established which can foster the love impulse. Love in the last analysis is the only antidote for hate.

Love is the strongest civilizing factor There is no doubt that love

occupies a more important place in world affairs today than in any time in previous history. It is certain that men are more sensitive to cruelty, to slavery, and to torture and that they hate these things more today than ever before We have a clearer notion of what kind of world we would like to live in and we have a dim insight as to how this kind of world can be accomplished. The force which has helped men grow out of barbarism is love Love brings a change from egoism to altruism. It is love that enables men to live collectively, to care for one another, and to establish arrangements for social security

Love is the basis for emotional security and stability in the individual. It is love from the parents that helps to establish the secure personality in infancy, and the emotionally stable adult is one who has been loved by fond parents in early life Parents can never love a child too much or too well

Love is the basis for effective personality development. The finest individuals are those who have been nourished in an atmosphere of love.

EDUCATIONAL IMPLICATIONS

Use of Love in Learning. Theories of learning have stressed the importance of satisfaction as a factor in the learning process Children learn better by praise than by blame or indifference Praise even in mild degree is an expression of love. Children learn most readily in response to love Anna Freud [250], for instance, has noted the fact, many times verified, that the most important motive for the learning in school is love of the teacher. Children are motivated less by prizes, competition, and other extraneous incentives than they are by wishing to please the teacher and secure some token of affection from her Teachers and parents recognize that the threat of the withdrawal of love is the most potent form of punishment In fact, it is so devastating that it may have disastrous and traumatic effects if used too severely Parents or nurses who threaten the child with the bogeyman or the policeman or say that they will go away and never come back are creating deep wounds in the child's security and erecting barriers to the child's possibilities of growing toward emotional maturity

Love as a Growth Process and Product of Maturity. Love is a growth process and is not something that reaches full maturity at once Two persons who marry should recognize that the first flush of physical attraction is far from being the full fruition of love impulses. Love is something that matures as a result of years of mutual cooperation, mutual enjoyment, and mutual suffering As individuals share experiences with one another they are providing a broader and sounder basis for love.

THERAPEUTIC IMPLICATIONS OF LOVE

Those whose task it is to help distressed persons back to more normal living find that the key to the difficulty frequently is the person's ability

to accept himself. The neurotic individual needs self-love in order to become well A wise counselor will use every opportunity for ego building, for making a person feel greater respect and pleasure in himself Self-respect is the basis on which all good adjustment must be founded

The aim in therapy is not to destroy narcissism or self-love where it is too intense but to dilute and dissolve it The patient must find it possible to relax the tight grasp on himself and by slow degrees give of himself to others As the individual through the security in a personal relationship dares to venture out and give himself to others, he will find the path for the return to health.

On the other hand, therapy fails when narcissism is strong When the individual is unable to establish a relationship with others, there is no means with which constructive influences can be put into operation The overnarcissistic person who is wrapped up in his own experiences and pleasures can seldom establish a secure relationship with another person, and where a relationship does develop it is likely to be of an exceedingly infantile and dependent nature, demanding and consuming in its nature It is for this reason that therapeutic methods promise considerable help to those who are afflicted with the transference neuroses, but their use in aiding individuals with various forms of narcissistic neuroses is more difficult Freud [276] in his early practice found that love, particularly sexual love, could serve as a kind of resistance and hence impede the process of psychoanalytic treatment If a relationship becomes all important to an individual, the individual's attention may be diverted from understanding and development of the self to an exaggerated interest in the person or the counselor. Freud's warning in this instance is that the counselor make sure that he himself is not involved emotionally in the relationship and that he keep his attention focused on an understanding and interpretation of the meaning of the experience to the client rather than to accept it or oppose it emotionally

The wise counselor is one who avoids giving direct advice with regard to love relationships and concentrates his efforts on breaking down the barriers which make these relationships difficult or distorted. Rickman [673] holds that a counselor would be unwise to advise marriage or sex relations as a therapeutic measure If there is difficulty along these lines, it has a psychological basis, and this needs to be worked through first As he points out, the sexual impulse is in every instance so demanding and outgoing that there is no need to give it special encouragement, but if for some reason it is blocked, the primary need is to knock down the psychological barriers and resistances. Psychotherapy aims to release hostile impulses so as to dissipate them and permit the love impulses to break through into open expression and to assist them to mature and become firmly established.

XXIV

Normality

MEANINGS OF NORMALITY

Difference Between Normal and Abnormal Principally One of Degree After this long analysis of the process of adjustment, it may be fitting to close by an attempt to describe the well-adjusted person and to define the criteria of normality In the first place, it is generally agreed that the difference between the normal individual and the pathological individual is mainly quantitative and not qualitative The pathological individual does not differ from the normal in some quality or essence which he possesses but the normal person does not Neither does the normal possess certain qualities that the poorly adjusted person does not The difference is merely one of degree Every normal individual has potentialities of poor adjustment and carries about within him shreds and remnants which, if enlarged and magnified, would carry him over to pathological abnormality and maladjustment. These, of course, are the remnants of childhood reactions which in the normal person have been outgrown and covered with more mature forms of adjustment

In like manner, the abnormal person has the capacity for development which will make him a normal and well-adjusted individual Exception to this statement must be made in the case of those individuals who are suffering from organic tissue damage, destruction, or deterioration. An infection of a nervous tissue, the growth of a tumor, damage by the cutting or crushing of the nervous tissue, interruption of the blood supply, or introduction of chemical substances into nervous tissue offer insurmountable obstacles to normal adjustment; but if there is no tissue or organic barrier, the only difference between the normal person and the abnormal is a quantitative one The common superstition that insanity is inherited and that one is destined to mental maladjustment if there is some predecessor in the family who is mentally deranged, is without basis, as shown by the very inconclusive clinical and experimental studies of the inheritance of insanity [124]. An understanding of the dynamics of human adjustment permits us to see how insanity may be caused by the experiences of life and hence makes it unnecessary to search for an explanation in heredity. It is true that the chances for an individual's

making normal adjustments are less favorable when his parents were poorly adjusted persons, but even in these instances the necessity of maladjustment is not inevitable, and except in cases where there are tissue disturbances, every individual has within himself the capacity for achieving a normal life Freud once said, "Nothing is pathological—only when you cannot explain it" When mental disease was not understood, it was feared Now that science is gradually accumulating knowledge concerning mental adjustments and their nature is better understood, there is less tendency to think of behavior deviates as pathological

Normality Described in Terms of Balance. In the normal person the forces in personality find a more satisfactory balance than in the abnormal In the abnormal certain characteristics may be exceptionally strong or exceptionally weak Certain traits and characteristics may dominate the rest of the personality, making for eccentricity In the normal person, however, no one characteristic overbears the rest to produce an unbalanced, distorted, or twisted personality In the normal there is a balance between the drives, the ego restraints, the superego restraints or urges, and the defenses against anxiety In the abnormal some one or more of these forces may be exceptionally strong and overpowering In the normal individual there is a balance between the demands of society and the wishes of the individual These two forces work cooperatively and are in harmony The normal person finds a cultural outlet for his basic drives Perhaps in his vocation he finds a way of expressing some basic urge which is socially acceptable and gives him the feeling of making a worthwhile contribution to society

The normal person represents a fortunate combination of traits, whereas the traits in the abnormal person, while each may be acceptable in itself, are out of balance and conflict with one another

Normality as Maturity. Normality can be thought of as the goal to be achieved in adjustment in maturity. The common man thinks of pathological conditions in terms of demoniacal possession or moral deviations It is probably more helpful to think of pathological conditions in an individual as fixation, regression, and immature functioning The abnormal person is simply one who has not grown up He is still acting in infantile or childish ways. Practically every abnormal characteristic in an adult will be found also to be a normal reaction in a child or infant One expects little children to be negativistic, to show intolerance when frustrated, to be untidy, to hit, bite, or scratch another person without compunction When an older person does these things, we think him strange or odd So normality consists in working infantile wishes and anxieties through to a satisfactory conclusion These infantile trends become resolved, they become socialized and integrated within the individual

Normality as maturity has no upper limit and hence cannot be a fixed concept There is no limit to the extent to which a person can socialize

his tendencies, learn to tolerate frustration, gain wider understanding of reality, learn to love more objectively. This, too, should be a heartening concept of normality for everyone. No matter at what stage he is in his adjustment, he can take steps toward achieving a more mature development, resolving infantile tendencies, and developing a more socialized and integrated adjustment

Normality in Terms of Adequate Functioning. Normality can also be thought of as the degree of hardship and strain a person can undergo and adjust to successfully without disorganization. Some persons become disturbed and upset at the slightest frustration They must live sheltered, even, comfortable lives in order to make a "go" of things On the other hand, there are individuals who can undergo terrific hardships and taking them in their stride, stand steadfast as a rock Even these individuals may "break" when the tension becomes too great, but ordinarily they can take a great deal of buffeting and affliction In the London air raids it was found that some children, particularly those coming from stable families, could come through severe bombings without nervous symptoms, while other children from less stable and loving homes developed serious neurotic signs [252] The normal person is one who overcomes severe threats and frustrating conditions; the abnormal person is one who makes ineffectual adjustment to even slight frustration Among some of the strains which serve as tests of normality are death in the family, childbirth, loss of money or property, physical illness, and loss of work or position An unstable individual may be bowled over by any of these. He may be forced into a deep depression or melancholy, or he may suffer a nervous breakdown which incapacitates him from carrying the normal burdens of family and work The normal individual, too, may be expected to have brief depressions and to show discouragement and tension, but he snaps out of these conditions more quickly, and they do not disorganize his normal contacts and effectiveness.

Normality as a Compromise Between Inner and Outer Demands. As this book has pointed out in many places, the crux of the adjustment problem lies in integrating the inner impulses, urges, and wishes with the demands of social living These forces not infrequently run into headlong conflict, and the normal person is the one who finds compromise solutions for these conflicts A number of such solutions have been described in these pages A person may manage his conflicts by the *substitution* of one goal or solution for another. He may *compensate* for lack or failure in one direction by an overdevelopment in another He may *sublimate* his desires by finding modes of expressing them which are, at the same time, in harmony with social goals and the expectations of the culture He may work out some kind of *compromise* by which in a single act he may receive a token fulfilment of his desires which at the same time does not violate social sanctions Every compromise means some sort of mutual concession, and the normal individual is one who

is able to give up some of his wishes and at the same time yield something of the strictness of his moral standards. The normal person can practice *renunciation* of his desires without feeling deprived or becoming emotionally disturbed in the process. It is the abnormal person who feels that his desires are imperative The normal person is able to *desensitize* his wishes so that they cause him less hurt if their fulfilment is denied

Horney [373] finds that it is impossible to define normality in terms of behavior itself, inasmuch as the same behavior may be normal or pathological according to its meaning for the individual Behavior is normal when it represents a straightforward and satisfying adjustment to the outer world Behavior is abnormal, on the other hand, when it represents an attempt to escape from anxiety, inferiority, and inadequacy Behavior which serves these purposes becomes a shield, a buffer, and a façade to protect both the individual and society from recognizing the emptiness and inadequacy beneath. Normal adjustment is realistic and straightforward; neurotic adjustment is false and insincere

Finally it should be noted that normality and good adjustment cannot be absolutely defined There is no one standard of normality that applies equally to all times and places and cultures The criteria of normality must also vary from individual to individual. Each person makes the only adjustments possible for him in the light of his constitutional inheritance, the effect on his character of the experiences which he has undergone, and the circumstances under which he must currently operate The reformer must aim at some goal of perfection. But there is no such universal goal of adjustment, rather, each individual must work out the most adequate and satisfying adjustment possible for him [318]

CRITERIA OF GOOD ADJUSTMENT

It is our purpose in the following section to indicate a number of criteria of good adjustment It would be helpful if good adjustment could be boiled down to a single concept which an individual could carry about him as a phrase or catchword and apply as a measure of his success in living. The process of adjustment, however, cannot be defined within a single concept Accordingly, it must be defined under a number of different headings, each one of which represents a different aspect of the total adjustment process These several concepts of adjustment will be put down roughly in the order of importance, although in strict terms this is not possible, for each phase of adjustment is important in itself

Integration. The first criterion of good adjustment is freedom from inner conflict. A well-adjusted person presents a solid, unbroken front to the world and is free from competing trends within He has resolved his early ambivalence His tendencies to love or hate are not annulled because the expression of one of them is blocked by the interference of

the competing trend. A well-adjusted person can love freely and can hate with equal candor when the occasion demands The opposing trends have been successfully repressed or in some way displaced or sublimated In particular, the Oedipus conflict has been satisfactorily resolved. Tender feelings have taken the place of early sensual feelings, and identification has taken the place of hostile rivalry There has also been a spread or displacement of these feelings from the parents to many other persons, with a consequent dilution of intensity

Integration also means the resolution of conflicting personality trends There is no severe dissociation The integrated person could not possibly be both Dr Jekyll and Mr Hyde He adopts compatible goals, that is, goals which permit him to live with harmonious purposes in an open and forthright manner, he is forced to expend little energy in fighting undesirable trends within himself He who fights himself least has the most energy to expend on the outside world In the integrated person the superego is in harmony with the basic drives The things that he wants to do are also the things that his conscience tells him are right to do He carries through his tasks, therefore, more from pleasure than from a sense of duty, or, to put it in another way, his duty is a thing that he wants to do The individual for whom duty is onerous is the one who is struggling with conflicting trends within himself The integrated person, then, has achieved a reconciliation of freedom and discipline What he does arises more from the ego, that is, from his candid acceptance of his behavior as appropriate for the conditions, than from a blind sense of obligation

The integrated person has resolved the conflict between his selfish and his social goals. His social goals are also his personal, and therefore his selfish, ones. He takes pleasure in social behavior because in the expansion of his personality the well-being of others is included in his own well-being

It is probably true that the integrated person is one for whom these ideals are more or less conscious They are not primitive ideals but represent the end of a long maturing process, one which can come only after mastering the conflicts which inevitably rise in the process of maturing In short, integration is an achievement to be won

Integration shows itself in ability to concentrate one's energies on a single goal or at least on a small group of harmonious and compatible goals. One thinks of the integrated person as the one who is on fire for a cause and who has deep loyalties and vivid enthusiasms The integrated person is one who takes things seriously rather than playing at them What the integrated person does is very much a part of his whole life rather than some superficial attachment which he puts on and off like a garment, to be entered into as the occasion demands, but to be laid aside when the group is dispersed This latter is a picture of the shallow and superficial rather than the integrated person.

The energy of the drives of an integrated person is expended on the outside world for effective adaptation The neurotic, on the other hand, through the necessity for repression and the consequent energy which must be used in maintaining the repression, is debarred from normal outlets in living

Ego Development—Effective Intelligence. The well-adjusted person is one who has learned to apply his intelligence to the effective solution of the problems of living The highest evidence of successful adjustment is getting along in the world around one, particularly with one's fellow-men The well-adjusted person draws lessons from his defeats and failures in order not to repeat the same errors on another occasion He learns to make intelligent compromises, renunciations, and substitutions as his drives and wishes meet resistance

Effective adjustment means the sublimation and socialization of basic unconscious impulses and drives The well-adjusted person has the capacity to plan. There is an interesting relation between goals and planning First of all, a man decides that he wishes to build a house—that is his goal Then he employs an architect to draw up plans for his house He tells the architect what his needs are, the number of persons in his family, and the kind of lives they live, and then the plans are drawn up to meet these needs, the price the man is willing to pay, and the conditions of the market In like manner, the well-adjusted person is able to make plans for the successful accomplishment of his goals in terms of his needs, on the one hand, and the conditions of his life, on the other The behavior of the well-adjusted person is rational, that is, it makes sense It can be explained It represents a step on the way toward the successful achievement of one's goals

This second criterion of good adjustment, effective intelligence, shows itself in the capacity to work and in one's efficiency and adequacy in work The well-adjusted person finds a reasonable enthusiasm, satisfaction, and pleasure in his work He enjoys attacking and overcoming obstacles He revels in the solution of problems He knows how to work when working and how to play when playing and does not confuse the two. He does not attack his work as a dilettante or make it a compulsive and disagreeable necessity.

Along this same line the well-adjusted person has worked out for himself a sane and constructive philosophy of life which includes a broad and realistic outlook on the world about him The narrow-minded person who shuts his eyes to conditions and sees things through false and distorted perspective is unable to formulate worthy goals or to make effective plans for reaching them

Acceptance of Reality. A third criterion of good adjustment is ability to accept *reality*, particularly the reality within The person who is well adjusted recognizes the reality and inevitability of the conditions to which he must adjust Freud has discussed adjustment in terms of the

pleasure principle and the *reality principle* The pleasure principle dominates infancy, when there is failure to recognize the conditions imposed by outer circumstances. Only as a person modifies his longings, on the one hand, and his mode of satisfying them, on the other, to the conditions imposed by outer reality, is he making a good adjustment The well-adjusted person learns frustration tolerance, that is, the ability to postpone satisfactions until conditions are ripe to grant them

The most important kind of reality which must be faced and accepted, however, is the drives, fears, and inadequacies within the self A person must learn to face the reality of his inner nature however much he has been taught that certain trends within himself are bad, evil, immoral

An army colonel with wide experience in dealing with men once stated in the writer's hearing that he could trust a man who had insight into his own weaknesses The successfully adjusted person learns the necessity of giving up impossible wishes He learns continence and is not beset by an excessive need for indulgence He develops the capacity for effective inhibition when this is called for, or he puts his wishes to work on realizable goals and substitute satisfactions, accepting the reality within himself, dropping his defenses, and letting fall the shams and disguises by which he tends to cover up and conceal the inadequacies within.

The person who has made good adjustment learns to accept unavoidable pain, humiliation, or loss When trials come he meets them squarely and frankly Since he does not have elevated notions of himself, he has little to be disappointed in when disillusions arrive. He does not get a swelled head and lose perspective in understanding who he is or what he stands for John Wesley Dafoe, for many years a Canadian editorial writer, was once offered a knighthood He retorted, "Me a knight? Why, I tend my own furnace and shovel snow off my porch"

Acceptance of reality also means the absence of excessive fantasy The man who lives in the world about him and derives his satisfactions from life's experiences does not have to depend on fantasy fulfilment of his wishes

Responsibility for Self. Otto Rank [648] in his discussion of therapy has made much of the point that the well-adjusted person is one who can accept responsibility for himself This is another phase of maturity The little child is one who has things done for him. His parents decide what he shall eat and wear, when he shall go to bed, and what he shall learn It is a token of maturity that a person is able to manage himself and make decisions with a minimum of worry, conflict, and advice-seeking Of particular importance for good adjustment is the ability to take responsibility for one's own feelings The maladjusted child is one who is unable to accept the reality of his own feelings He must project them onto others either by attributing hostile impulses to others or by retaliating to the hostility which he feels others hold toward him It is a real

achievement to be able to accept responsibility for one's own fears, dis likes, and hatreds, as well as one's loves and admirations.

The well-adjusted person is at home with himself and manages all aspects of his personality as one drives a four-horse chariot. He has self-control and capacity for inhibition and restraint.

A person successful in adjustment is characterized by independence. He is able to say, "No" to situations that may provide only temporary satisfaction He is able to restrain himself from putting up a wager which gives him a momentary thrill but may result in a loss he can ill afford He is able to say, "No" to excesses which provide only temporary excitement but do not afford lasting satisfaction On the other hand, he is able to say, "Yes" to the unpleasant that promises ultimately to prove beneficial He can take temporary sacrifices, postpone temporary pleasures, and endure temporary hardships for the sake of more enduring satisfactions He is independent of group opinion in favor of his independent judgment, but he does not take an arbitrary opposition to whatever the group proposes The well-adjusted person has no need for flattery. He does not have to be supported at every turn by group approbation but when the occasion demands can assert his independent opinion

The person who has adjusted well has a degree of originality In the first chapter the concept of adjustment as conformity was discussed. There it was stated that while conformity is a requirement of social living, there is room for those individuals who can see the errors and inadequacies of present social customs and practices and can propose better ways of group living

Emotional Expression. *Happiness and Pleasure in Life—Subjective Sense of Well-Being* So far these criteria of good adjustment have emphasized the controlling, restrictive, and inhibitive aspects of personality, but this is only one concept of good adjustment The well-adjusted man is one who, in addition to these capacities for self-control, has a certain freedom of emotional expression

Perhaps the criterion of happiness as a criterion of good adjustment should have been given earlier, but whether given early or late, the subjective sense of well-being is an important criterion A satisfactorily adjusted person is content and maintains an adequate and satisfying emotional undertone He has a sense of security which springs out of a feeling in childhood of belonging and of being wanted and which stays with him throughout life He has feelings of adequacy and of being appreciated Being able to handle feelings of difference is especially important as far as happiness is concerned Many persons are bothered by status They are continually comparing themselves to others But this leads only to unhappiness The well-adjusted person has adjusted his aspirations to reality, that is, the reality of what he can expect of himself in the light of his talents, social position, and opportunities. And he measures himself, not in terms of whether he won the race, but in terms

of whether he did what he could reasonably expect of himself and whether he enjoyed himself in the process The well-adjusted person has adequate self-esteem, self-confidence, and strength He is free from excessive anxiety, depression, worry, and disturbing fears He maintains a relatively even emotional tone characterized by neither excessive exuberance nor excessive despondence He can be characterized as fearless, which means not only courage in the face of immediate danger, but that peace and stability which also presage freedom from anxiety over unresolved conflicts in the past All these emotional feelings accompany the other criteria of good adjustment which have been described

Relaxation There is emotional warmth in the well-adjusted person's relationships. He is able to laugh and smile freely One can tell the degree of relaxation by noticing the facial muscles The tense individual is one whose face is drawn and stern

One of the most important criteria of good adjustment is the ability to play, perhaps the most significant sign of all in the little child [458, pp. 154 f] One can gage a person's adjustment by the breadth of his interests in sports, games, and hobbies, and by his ability for self-expression in creative living The well-adjusted person shows a normal curiosity, another important sign of good adjustment in children It is a typical complaint of teachers that Johnny is not interested in anything but remains apathetic toward all of the activities the school provides This is a telltale sign of adjustment problems The well-adjusted person should be spontaneous, natural, and easy in his social relationships

Ability to Love Ability to love is an important criterion of good adjustment and usually is placed alongside ability to work One who is well adjusted is able to enjoy erotic pleasure without feeling it is somehow bad or sinful He is able to show affection freely and through bodily contact, with unrestrained feelings of pleasure He can feel sympathetic with the other person and share his joys and sorrows unrestrainedly

The ability to have free and full sexual experience is commonly spoken of as characteristic of the well-adjusted person This criterion, however, must be judged carefully in terms of an individual's need for sensuality For certain individuals with a background of considerable sensuous experience and with strong hormonal stimulation, sexual experience may be highly important On the other hand, there are persons whose early experiences have been relatively unemotional and whose hormone output is subnormal for whom sexual experiences are not so meaningful or important It must be recognized that erotic gratification is an important pleasure and hence good in itself It should also be recognized that an adequate freeing and expression of eroticism also implies an adequate solution of aggressive problems There are individuals for whom sex has been overdetermined and who feel the need for sex as a method of proving their adequacy It is probably more true that the well-adjusted

person is one for whom continence is possible than that he is one for whom sexual expression is a necessity Indeed, mental health and the capacity for continence go together, rather than the opposite In short, adequate sexual expression is recognized as a sign of good adjustment, but variations in terms of individual needs must also be recognized and can be contained in the concept of good adjustment. For many individuals probably it is more important to think in terms of a general balance of living than in terms of the ability to obtain complete sexual gratification This should be a comfort to many persons who are forced to live lonely and continent lives and who, while denied this one pleasure which does stand out above others, find a net balance of still greater satisfaction in an ordered scale of living

Ability to Show Anger The well-adjusted person is also able to show anger when injured, or hostility and aggression when necessary or desirable This phase of good adjustment is difficult for most persons to understand or accept The evil of aggression is taught so early and so consistently that many persons are unable to think of any expression of aggression as related to what is good or acceptable But this is not the case Aggressive tendencies are so much a part of every person's equipment that it must, of necessity, be right to show aggression at the proper time and in socialized channels. But aggression should be neither unduly exaggerated nor inhibited It is a supreme achievement of the ego to know when it is the part of wisdom to face and fight the world as well as when to inhibit one's aggressive tendencies Naturally, the well-adjusted person has learned to socialize his aggression and to put his energies to constructive and socially desirable ends.

Emotional expression, then, should be neither too completely inhibited nor too violently exhibited The well-adjusted person is one whose emotions are under control and who does not permit them exaggerated expression.

Social Relationships. A well-adjusted individual is one who lives with others and enjoys social contacts and interests It is a sign of maturity for object love to take the place of narcissistic love, that is, for one to love others for themselves and not for the advantage it may bring him. In the normal individual social deeds take the place of pain and suffering in the neurotic The neurotic individual is at odds with his family and friends, but the normal individual lives bountifully in his social group For him there is a spread of emotional contacts as his experiences in social living widen and deepen

Good Rapport with Others The well-adjusted person has good rapport with others He is able to establish permanent friendships, relations with others that persist year after year through good weather and foul, through success and failure, finding more value in the person than in the person's status He is able to show friendly feeling and social understanding He is able to get along with other people, to understand them, and to avoid

distrust, jealousy, conflicts, and quarrels. He is characterized by tolerance and the ability to accept others whose beliefs, standards, and tastes differ from his He is cooperative and can work with others harmoniously and helpfully on joint undertakings As Jones points out [439], friendliness is to be measured by the internal freedom of such feelings and attitudes rather than by their quantity.

Not Too Unlike the Group in Which He Lives The well-adjusted person is not too unlike the group in ways the group feels to be important In short, he is a citizen who makes the goals, purposes, and ideals of the culture his own The interests of the individual and of the community merge and become inseparable An infallible sign of good adjustment is a person's acceptance by others. The child who is liked by other members of the family, who is accepted by his teacher at school, who is elected to offices by his peers, tends to be the well-adjusted individual He finds socially acceptable outlets for his energy and yet fits himself in with the group's wishes with a certain degree of docility and obedience

Recognition of Others The well-adjusted person is able to recognize the ability and independence of others. He is able to admit superiority and merit in others, even when they surpass him in respects that are important to him. Genuinely to admire others without unconsciously feeling envious of them is a very difficult accomplishment and a difficult criterion of good judgment Another requirement is the capacity for admitting the independence of other individuals. Parents sometimes have difficulty in admitting that their children are growing up or that they are independent and responsible individuals so far as their maturity permits The institution of slavery is based on the lack of recognition of the independence of other men The well-adjusted person is one who is able to recognize and grant the independence of others.

Capacity to Enjoy Society of Other Sex In a previous section the importance of sexual expression was discussed There it was stated that while freedom in sex was desirable, sexual expression was not a necessity but should fit into the total pattern of living. Of greater importance than sexual expression for good adjustment is the individual's ability to enjoy the society of members of the other sex, not to feel strange or ill at ease in speaking, working, or playing with them, not to be overly aroused, on the one hand, or repelled, on the other, but to accept them as rational human beings

Extroversion Better than Introversion There has been some discussion of the normality of the extrovert as contrasted with the introvert In general, the outgoing, friendly, social person is better adjusted than the individual who has turned upon himself and has withdrawn from contacts with others However, this should not be interpreted as meaning that the reserved and remote individual is necessarily ill adjusted Of more importance, perhaps, than the amount or kind of social contact, is

the inner harmony and self-assurance of the individual, which may be characteristics equally of the introvert and the extrovert.

Consistency of Personality. A person who has succeeded in adjustment maintains a course without deviation. It is no sign of maturity to lead a will-o'-the-wisp, flighty existence, to dabble, to touch experiences lightly, to be here today and gone tomorrow. One cannot accomplish effective adjustment in terms of a well-rounded life without a certain amount of settling-down persistency and consistency. The well-adjusted person is characterized by the persistence and depth of his loyalties.

Adaptability. To counterbalance the last criterion one should add that a well-adjusted individual is also, to a degree, flexible, plastic, and suggestible. He does not hold a course too rigidly and inflexibly in the face of insurmountable obstacles. The well-adjusted person can make the essential compromises that occasions demand. His morals and his conscience are not too inflexible. It is admissible to have moral standards, but again they should be adapted to circumstances, and if the interests of the largest number would be served by some breach of long-established standards, then such a breach is called for. This kind of adaptability is well illustrated in the life of the much-loved jurist and esteemed member of the United States Supreme Court, Oliver Wendell Holmes, who was always ready to overturn precedent in the interests of human welfare. The well-adjusted person avoids limiting fixations. In particular he avoids emotional ties that limit his growth and development. It is well known that fixations of emotions on one's parents or other members of the family interfere with the establishment of relationships which enable one to take his place as a member of adult society. It is appropriate to establish fixed emotional relations to one's husband or wife and to one's children, for this is in the interests of taking an accepted place in society, with all the possibility for expanded growth that family life carries with it.

Adequate Gratification of Bodily Desires. As a companion to the last criterion, the enjoyment of pleasures is a mark of good adjustment. It is commonly thought that there is something ignoble about pleasures. The epicurean is looked upon askance by his puritan brother. Be that as it may, the well-adjusted person should find pleasure in the simple biological operations of eating and sleeping. He should be able to exercise his elimination functions without shame or conflict. The matter of sexual adequacy has already been discussed. On the other hand, the well-adjusted person is not preoccupied with the body. He is not overly interested in the minute details of bodily function and does not become unduly disturbed when there is an upset or sickness. In particular, he does not dwell unnecessarily on his ailments and complaints, as the hypochondriac does.

Emotional Perception of World. The well-adjusted individual perceives his world as a warm, friendly place inhabited by pleasant, friendly, benevolent people. He is optimistic (even while he is realistic) in outlook and

expects the best from all That person has a distorted and unhealthy outlook on life who sees it filled with dangers, who sees the people around him as sinister, plotting, evil, untrustworthy, and selfish. To be sure, a child may grow up so sheltered as to be unaware that there are bad people in the world who may wish to hurt him But there is a difference between this unrealistic perception and the distorted perception that fails to see and expect the best in people and looks only for the worst.

Recognition of Capacities—Strengths and Limitations Since a well-adjusted person adopts goals which are reasonable and achievable in the light of his talents and capacities, it is necessary for him to assess his abilities and talents correctly and without over- or underestimation The well-adjusted person is not afraid to get on the scales to see how much he weighs, to view himself in the mirror, to listen to a record of his own voice, to take various psychological tests by which he can learn his mental abilities, or to have an analysis of his personality trends Indeed, he wishes to know the facts about himself so that he can establish goals which are reasonable in view of his capacities The average man would perhaps be wise if he did not aim to become a champion athlete or supreme court judge. On the other hand, a man of superior talents would profit by knowing of these abilities and by making the most effective use of them The well-adjusted man does not magnify his successes, and, at the same time, admits his limitations; in particular, he avoids tendencies toward perfectionism which would be foolish whatever his talents or abilities

Capacity to Refrain from Self-Injury. In the chapter, "Guilt and Self-Punishment" it was pointed out that a common method of defending oneself from guilt is to inflict self-injury This interference with one's pleasures and successes does not have a rational basis, and paying for one's faults, while a profound psychological process, does not have value in real adjustment. In the first place, a person should become aware of his tendencies toward self-injury and the motives back of them. He should then find ways of recognizing and admitting his guilt, of lowering his superego tendencies, of finding socially acceptable outlets for his impulses, and thereby of eliminating the necessity for self-injury and self-depreciation

Ability to Accept Love. Along with the capacity to love others should go the ability to accept love from others This is a basic need, the need for dependency and being loved by superiors. However, some persons find that it is a threat to their self-sufficiency to continue to be dependent on others The very individuals who most want to be loved by others are those who rebuff the efforts of others to be generous to them The well-adjusted person is one who is able to accept the generosity and devotions that others want to express to him

Adequate Drive A criterion of good adjustment that should not be overlooked is possession of health and vigor One cannot enjoy life or

experience it to the full unless he possesses adequate and abundant health In some respects this requirement underlies all others, for without health one is thwarted in all other satisfactions

Removal of Symptoms Not Important. In therapeutic work the goal is often the removal of symptoms for which the child is originally referred for treatment or for which the individual refers himself Since these symptoms cause the original distress, it is only natural to think of adjustment in terms of their elimination However, the symptoms are merely signs of poor adjustment and do not indicate the nature of the adjustment process itself One would do well to judge the quality of adjustment in terms of ability to work, play, and love, to feel happy and contented, to accept reality, to express one's emotions freely, to exhibit normal inhibitions, rather than to pattern one's behavior according to any set formula or standards Parents would do well if they thought of their child's development not in terms of specific habits and skills to be formed, but rather in terms of these larger goals of adjustment and maturity The symptoms become serious only when they drain off large amounts of energy which ought to be applied to a more effective adaptation to the real world about Symptoms in which dependence is prominent, as in drug addiction or alcoholism, are unfortunate handicaps, and in good adjustment they would be absent But by and large, the goal of every individual should be the achievement of a good working relationship with the world in which he lives

THE ACHIEVEMENT OF GOOD ADJUSTMENT

Just as some trees reach magnificent development because they have been nurtured on rich soil, have access to light, and are free from destructive pests, so some men grow up under conditions that foster good adjustment The foundation of good adjustment lies in a stable and happy family Education can contribute notably toward good adjustment, and the steps that education can take have been described in many of the chapters in this book

The individual who is unhappy and who is handicapped in his adjustment by an unfortunate constitution and deleterious early-life experiences can be helped to become normal, happy, and well adjusted The stunted or gnarled tree can be made more beautiful by enriching the soil around its roots, by cutting away the surrounding growth to provide more sunlight, and by pruning, trimming, and spraying. So the individual can be helped in his adjustments by changing in some way his conditions of living and by modifying his attitudes and tensions An individual cannot expect to find happiness or to banish anxiety by wishing it or by ordering it or by the application of self-determination It is the rare individual who can help himself by self-analysis A maladjusted person can achieve health and normality only through the help of other persons who can

introduce him to new conditions of living and institute a process of psychotherapy Most persons find release to grow to maturity with the aid of family or friends, or if these are not sufficient, through the help of a trained counselor No one need despair, for there is the possibility of better adjustment, happiness and normality for every person.

Bibliography

1 ABRAHAM, KARL, *Dreams and Myths* Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 15 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1913)

2. ——, *Selected Papers on Psychoanalysis,* International Psychoanalytical Library, No 13 (London The Hogarth Press, 1927)

Karl Abraham was one of the pioneers in developing psychoanalytic theories We are indebted to him especially for formulating the stages of pregenital development and showing how fixations at these stages exhibit themselves in later adult life

3. ——, III "The Psychological Relations Between Sexuality and Alcoholism" (1908), 80 89

4. ——, IV. "Hysterical Dream-States" (1910), 19-124

To Abraham we are indebted for some of the earliest formulations of infantile fantasies which he discovered from his analysis of adult patients

5. ——, VI "Notes on the Psychoanalytical Investigation and Treatment of Manic-depressive Insanity and Allied Conditions" (1911), 137-156

This paper contains one of the first psychoanalytic discussions of the nature of anxiety and its expression both in manifestations of hate and in depressive states

6 ——, XII. "The First Pregenital Stage of the Libido" (1916), 248-279

In this important paper Abraham presents certain basic psychoanalytic concepts of infantile behavior, particularly those having to do with oral frustrations and the infant's response to these In this paper appears one of the first descriptions of cannibalistic impulses and fantasies

7. ——, XIII. "Ejaculatio Praecox" (1917), 280-298

8 ——, XXIII "Contributions to the Theory of the Anal Character" (1921), 370 392

This important paper contains the first comprehensive statement of the nature of anal sadism and a description of the character traits which arise from results of toilet training

9. ——, XXIV "The Influence of Oral Erotism on Character-Formation" (1924), 393-406

This paper develops further Abraham's observations of character traits which grow out of difficulties in the early experiences in feeding

10. ——, XXV "Character-Formation on the Genital Level of the Libido" (1925), 407-417

In this paper Abraham describes the characteristics of the mature person Of special interest is his statement, "The definitive stage of character formation is relatively un-narcissistic" He believed that maturity was characterized by a diminished degree of narcissism In this statement he is emphasizing his belief that the mature person is capable of object love, but he fails to note that anyone who is capable of object love must first of all respect himself Abraham failed to recognize some of the important values in narcissism.

11. ——, XXVI "A Study of the Development of the Libido, Viewed in the Light of Mental Disorders" (1924), 418-501.

In this long and comprehensive paper Abraham summarizes his beliefs concerning the stages of libidinal organization and adds certain important interpretations of the meaning of depressive states and melancholia

12. ADLER, ALFRED, *The Neurotic Constitution* (New York Dodd, Mead & Company, 1917)

To Adler must be credited an emphasis on *adequacy* as a fundamental goal of human endeavor which was neglected by the Freudian school of psychoanalysis Adler's first emphasis concerned adequacy of the physical organism, but this original point of view was greatly extended to include adequacy of the ego in every relationship

13. ———, *Study of Organ Inferiority and Its Psychical Compensation*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 24 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1917)

14. ———, *Understanding Human Behavior* (Greenberg, 1927)

Adler relates anxiety to feelings of inferiority He shows how it may be used as a tool to control others

15 ———, *What Life Should Mean to You* (Boston Little, Brown & Company, 1931)

Adler sees punishment interpreted by the individual to mean that he is ineffective and defeated Punishment is part of a contest between the individual and society

16. ADLER, D L, "Evidence for Repression and Rationalization in the Solution of Moral Conflicts," *Psychological Bulletin*, 38 (1941), 600, 601

This is an abstract of an important study which is promised in a fuller report at a later date

17. ALEXANDER, FRANZ, *Psychoanalysis of the Total Personality*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 52 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company), 1929, a translation of *Psychoanalyse der Gesamtpersonlichkeit*, Neun Vorlesungen uber die Anwendung von Freuds Ichtheorie auf die Neurosenlehre Internationaler Psychoanalytischer Bibliothek, No 22 (Internationaler Psychoanalytischer Verlag 1927)

This monograph elucidates a number of important dynamic principles from the psychoanalytical point of view It contains a helpful analysis of anxiety Alexander provides one of the most clear cut analyses of sublimation, contrasting it with regression Perhaps the most important contribution that Alexander has made is his discussion of guilt and self punishment To him we are indebted for elaborating the concept of self-punishment as payment which gives permission for the enjoyment of prohibited pleasure He has elaborated the infantile stages of narcissistic development and has discussed the importance of self-love in the development of personality

18. ———, "A Reply to Reich's Criticism," *International Journal of Psychoanalysis*, 9 (1928), 240 246

19 ———, "The Relation of Structural and Instinctual Conflicts," *Psychoanalytic Quarterly*, 2 (1933), 181-207.

This is a significant article by a leader in psychoanalysis, drawing an important distinction between conflicts growing out of basic drives and conflicts which represent divergence of aim and different structural levels of the personality

20 ———, "The Influence of Psychologic Factors upon Gastro-Intestinal Disturbances," *Psychoanalytic Quarterly*, 3 (1934), 501-588

Three functions of the alimentary system—receiving, giving, and withholding—are discussed, first with regard to their relationship to gastro intestinal disturbances but also pointing out wider implications in individual psychology

21 ————, "The Logic of Emotions and Its Dynamic Background," *International Journal of Psychoanalysis*, 16 (1935), 399-413

22 ———, "Remarks about the Relation of Inferiority Feeling to Guilt Feeling," *International Journal of Psychoanalysis*, 19 (1938), 41-49

Alexander makes some important distinctions between guilt and feelings of inferiority which have been briefly sum-

marized in chapter XVI. These distinctions deserve further elaboration in future discussions

23. ——, *Our Age of Unreason* (Philadelphia J B Lippincott Company, 1942)

The middle section of this book contains a little resumé of a dynamic theory of personality It is particularly good on regression

24. ——, "Aggressiveness—Individual and Collective," in *The March of Medicine,* the New York Academy of Medicine Lectures to the Laity, 1943 (New York Columbia University Press, 1943), 83-99

This lecture deals with the problem of the necessity of war Alexander concludes that war is only one form of expression of aggressive impulses and that it should be possible for society to organize itself so that the aggressions which are aroused by frustrations may have another form of expression

25. ——, "Peace Aims," *American Journal of Orthopsychiatry,* 13 (1943), 571-581

26. ——, "Fundamental Concepts of Psychosomatic Research Psychogenesis, Conversion, Specificity," *Archives of Neurology and Psychiatry,* 51 (1944), 208-210

Alexander distinguishes between conversion phenomena and other psychosomatic disturbances which do not have a hysterical basis

27. ——, "A World Without Psychic Frustration," *American Journal of Sociology,* 49 (1944), 465-469

28 ——, and HEALY, WILLIAM *Roots of Crime* (New York Afred A Knopf, 1935)

This book shows how criminality may be a reaction formation against underlying weakness and dependency The conflict between dependency needs and the needs for self-assertion is discussed

29 ——, and STAUB, HUGO, *The Criminal, the Judge and the Public* (New York The Macmillan Company, 1931).

30. ALLEE, W C, and COLLIAS, N E., "The Influence of Estradiol on the Social Organization of Flocks of Hens," *Endocrinology,* 27 (1940), 87-94.

31. ——, and LUTHERMAN, C Z, "Modification of the Social Order in Flocks of Hens by the Injection of Testosterone Propionate," *Physiological Zoology,* 12 (1939), 412-440

32 ALLEN, CLIFFORD, "Introjection in Schizophrenia," *Psychoanalytic Review,* 22 (1935), 121-137

This author believes that certain forms of schizophrenia are based on an introjection process, and this paper presents case illustrations of this

33. ALLENDY, R F, "The Mechanism of Auto-Punishment" *Psychoanalytic Review,* 19 (1932), 72-76

34 ——, "Various Instincts and Their Development," *Psychoanalytic Review,* 19 (1932), 310-318

This paper contains a running account of the development of basic drives

35 ALLPORT, G W, *Personality, A Psychological Interpretation* (New York, Henry Holt and Company, 1937)

Allport, in Chapter VI gives a rather sketchy and unsatisfactory discussion of the mechanisms He gives considerable space to compensation and then refers to the psychoanalytic mechanisms in a highly critical discussion

36 ——, "The Ego in Contemporary Psychology," *Psychological Review,* 50 (1943), 451-478

In this scholarly paper the various meanings of the ego in contemporary psychology are enumerated Allport believes that ego involvement is an important consideration in determining how frustrations are met

37. ——, BRUNER, J S, and JANDORF, E M, "Personality Under Social Catastrophe—Ninety Life-Histories of the Nazi Revolution," *Character and Personality,* 10 (1941), 1-22

This is a significant study of various modes of reaction to conditions of extreme disorganization

38. AMES, T. H., "Prevention of Nervous and Mental Disease in Childhood," in Sándor Lorand, *Psychoanalysis Today* (New York: Covici-Friede, 1933; London: George Allen & Unwin, 1933), 163-175. Reprinted under the title, "Prevention of Mental Disease in Childhood" (New York: International Universities Press, 1944), 88-98.

When the father seems pleased that his son and mother are happy together, guilt is prevented from arising in the child.

39. ANDERSON, E. E., "The Externalization of Drive: I. Theoretical Considerations," *Psychological Review*, 48 (1941), 204-224.

This is a significant theoretical paper prophesying the experimental conditions in which drive would operate in detachment from inner need.

40. ———, "The Externalization of Drive: II. The Effect of Satiation and Removal of Reward at Different Stages in the Learning of the Rat," *Journal of Genetic Psychology*, 59 (1941), 359-376, 397-426.

41. ANDERSON, H. H., "Conflicts in Personality Development," *Mental Hygiene*, 20 (1936), 605-613.

42. ANDERSON, O. D., and LIDDELL, H. S., "Observations on Experimental Neuroses in Sheep," *Archives of Neurology and Psychiatry*, 34 (1935), 330-354.

43. ANGIER, R. P., "The Conflict Theory of Emotion," *American Journal of Psychology*, 29 (1927), 390-401.

44. ANGYAL, ANDRUS, *Foundations for a Science of Personality* (New York: The Commonwealth Fund, 1941).

This author deals with the meaning of integration in a somewhat philosophical way.

45. APPEL, K. E., "Drawings of Children as Aid to Personality Studies," *American Journal of Orthopsychiatry*, 1 (1937), 129-144.

This article describes the use of drawing as a projective technique.

46. APPEL, M. H., "Aggressive Behavior of Nursery-School Children and Adult Procedures in Dealing with Such Behavior," *Journal of Experimental Education*, 11 (1942), 185-199.

This is one of those rare studies which fills a large gap in an unexplored field, this time, the relation between parents' methods of dealing with aggressive behavior in children and children's responses to them.

47. BAGGALLY, W., "Hedonic Conflict and the Pleasure Principle," *International Journal of Psychoanalysis*, 22 (1941), 280-300.

This paper is unique in that it reduces the conflict between pleasure and pain to a mathematical formula and deduces some important relationships therefrom. It holds true to the extent that the assumptions underlying the formula are true.

48. BAGBY, ENGLISH, *The Psychology of Personality* (New York: Henry Holt and Company, 1928).

This book contains some good illustrations of rationalization.

49. BAGLEY, W. C., and KYTE, G. C., *The California Curriculum Inquiry* (Berkeley, Calif.: University of California Printing Office, 1926).

50. BAIN, ALEXANDER, *The Emotions and the Will* (London: Longmans, Green & Co., 1859, fourth edition, 1899).

A famous Scottish philosopher and psychologist adds his contribution to hedonic theory. He was one of the last of the distinguished line of British philosophers to develop the pain-pleasure principle.

51. BALINT, ALICE, "Identification," *International Journal of Psychoanalysis*, 24 (1943), 97-107.

This delightful paper is full of insight and contains not only many significant comments on the introjection process but some practical suggestions for educators. It is a chapter out of a book on child psychology.

52. BALINT, MIHÁLY, "Fruhe Entwicklangsstadien des Ichs Primäre Objekliebe" ("Early Development

Stages of the Ego Primary Object Love"), *Imago*, 23 (1937), 270-288

53. BALKEN, E R., and MASSERMAN, J H, "The Language of Phantasy III The Language of the Phantasies of Patients with Conversion Hysteria, Anxiety State, and Obsessive-Compulsive Neuroses," *Journal of Psychology*, 10 (1940), 75-86.

This is one of a series of studies reported by these authors, based on the use of Murray's thematic apperception method. This paper describes the stories told by psychiatric patients

54. BARBOUR, RICHMOND, "What's Wrong with Corporal Punishment?" *Nation's Schools*, 33, No 6 (1944), 25-26

This popular article concludes that the hatred aroused by corporal punishment is more damaging than any beneficial effects it might have in directing behavior

55. BARKER, R G, "Frustration as an Experimental Problem V The Effect of Frustration upon Cognitive Ability," *Character and Personality*, 7 (1938), 145-150

This article presents a discussion of experimental findings on the relation between frustration and its stimulation of learning and problem solving

56 ——, "An Experimental Study of The Resolution of Conflicts in Children," in Quinn McNemar and M. A Merrill, editors, *Studies in Personality* (New York. McGraw-Hill Book Company, Inc, 1942), Ch. II, 13-34

An interesting study in which children were asked to choose between beverages

57. BARKER, R G, DEMBO, TAMARA, and LEWIN, KURT, *Frustration and Regression: An Experiment with Young Children*, Studies in Topological and Vector Psychology II University of Iowa Studies in Child Welfare, Vol 18, No 1, University of Iowa Studies, No 386 (Iowa City University of Iowa Press, 1941)

58. ——, DEMBO, TAMARA, and LEWIN, KURT, "Frustration and Regression," in R. G Barker, J S Kounin, and H. F Wright, editors, *Child Behavior and Development* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1943), Ch XXVI, 441-458.

59. BARRETT, W G., "A Childhood Anxiety," *Psychoanalytic Quarterly*, 6 (1937), 430-535.

60 BARUCH, D W, "Aggression During Doll Play in a Preschool," *American Journal of Orthopsychiatry*, 11 (1941), 252-260

In this paper aggressive tendencies of children during play with dolls in a nursery-school setting are described with helpful illustrations

61. BASH, K W, "Contributions to a Theory of the Hunger Drive," *Journal of Comparative Psychology*, 28 (1939), 137-160

The hunger drive is not limited for its stimulation to contractions in the stomach but must depend on less precise organic conditions within the body

62. ——, "An Investigation into a Possible Organic Basis for the Hunger Drive," *Journal of Comparative Psychology*, 28 (1939), 109-135.

63. BELLAK, LEOPOLD, "An Experimental Investigation of Projection," *Psychological Bulletin*, 39 (1942), 489, 490.

64. BELLOWS, R. T, "Time Factors in Water Drinking in Dogs," *American Journal of Physiology*, 125 (1939), 87-97

Thirst depends on other factors besides dryness in the throat

65 BENDER, LAURETTA, "Art and Therapy in the Mental Disturbances of Children," *Journal of Nervous and Mental Diseases*, 86 (1937), 249-263

Drawings are used for studying children's fantasies

66. ——, "The Treatment of Aggression Round Table, III Aggression in Childhood," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 392-399

67. ———, KEISER, SYLVAN, and SCHILDER, PAUL, "A Study in Criminal Aggressiveness Aggressiveness in Children Aggressiveness in Women," *Genetic Psychology Monographs,* 18 (1936), 361-564

This series of studies was carried out in the children's ward in Bellevue hospital

68. ———, and LIPKOWITZ, H H, "Hallucinations in Children," *American Journal of Orthopsychiatry,* 10 (1940), 471-491

This is a significant paper describing varieties of hallucinations found among hospitalized children This is an important contribution to the literature on fantasy describing those particularly vivid fantasies usually in the form of voices

69 ———, and SCHILDER, PAUL, "Suicidal Preoccupations and Attempts in Children," *American Journal of Orthopsychiatry,* 7 (1937), 225-234

70. BENJAMIN, ERICH, "The Period of Resistance in Early Childhood," *Journal of Pediatrics,* 18 (1941), 659-669

A very good simple statement of anxiety as it manifests itself in infancy and early childhood

71 BENTHAM, JERAMY, *An Introduction to the Principles of Morals and Legislation* (Oxford Clarendon Press, 1789, New York Doubleday, Doran & Company, Inc, 1935)

Bentham was one of the group of British philosophers who stood for hedonism Bentham's statement of the pleasure pain principles is one of the most clear-cut that can be found in philosophic literature

72 BERGLER, EDMUND, "Phases of the Masculine Beating Phantasy," *Psychoanalytic Quarterly,* 7 (1938), 514 536

73 ———, "Four Types of Neurotic Indecisiveness," *Psychoanalytic Quarterly,* 9 (1940), 481-492

74 ———, "Two Forms of Aggression in Obsessional Neurosis," *Psychoanalytic Review,* 29 (1942), 188-196

75. ———, "The Respective Importance of Reality and Fantasy in the Genesis of Female Homosexuality," *Journal of Criminal Psychopathology,* 5 (1943), 27-48

76. ———, "The Gambler A Misunderstood Neurotic," *Journal of Criminal Psychopathology,* 4 (1943), 379-393

The gambler frequently defeats himself as a self-punishment mechanism following guilt for earlier aggressive impulses

77. ———, "Hypocrisy Its Implication in Neurosis and Criminal Psychopathology," *Journal of Criminal Psychopathology,* 4 (1943), 605-627

78. ———, "On a Predictable Mechanism Enabling the Patient Even at the Beginning of Analysis to Check the Veracity of Interpretations," *Psychoanalytic Review,* 30 (1943), 17-32

A correct interpretation arouses so much guilt and tendencies toward self-punishment that defenses against it will be raised which will show themselves in dreams

79. BERLINER, BERNHARD, "The Concept of Masochism," *Psychoanalytic Review,* 29 (1942), 386-400

This is a paper of the first rank relating masochism to a dependency tendency and making sexual masochism a sexualization of this tendency

80. BERNARD, CLAUDE, *Leçons sur les Propriétés Physiologiques et les Altérations Pathologiques des Liquides de l'Organisme* (Paris J-B. Baillière et Fils 1859)

81. BERNARD, L L, "The Misuse of Instinct in the Social Sciences," *Psychological Review,* 28 (1921), 96-119.

82. ———, "Instinct and the Psychoanalysts," *Journal of Abnormal and Social Psychology,* 17 (1923), 350-366

83. ———, *Instinct A Study in Social Psychology* (New York Henry Holt and Company, 1924)

Bernard is one of the group of sociologists who made telling attacks shortly after World War I on the instinct theory as applied to human drives

84. BERNE, E V C, *An Investigation of the Wants of Seven Children*, University of Iowa Studies in Child Welfare, Vol 4, No 2, University of Iowa Studies, 1st. series, No 171 (Iowa City University of Iowa Press, 1929)

One of the few empirical studies of the wants of children based on actual observation The findings of this study serve as an excellent factual basis for discussion of psychogenic drives.

85. BEVERLY, B I, "Anxieties of Children Their Causes and Implications," *American Journal of Diseases of Children*, 641 (1942), 585-593

This is a splendid analysis of the anxieties of children in terms of fear of hate and parental rejection

86 BIBRING, EDWARD, "The Development and Problems of the Theory of the Instincts," *International Journal of Psychoanalysis*, 22 (1941), 102-131

This author traces the development of Freud's theories of the instincts

87. ——, "The Conception of the Repetition Compulsion," *Psychoanalytic Quarterly*, 12 (1943), 486-519

This paper contains a rather confused discussion of the repetition compulsion A postscript which was added in response to papers on the same topic by Kubie adds to the confusion inasmuch as the author shows a lack of certainty with regard to statements made in the main body of the paper

88. BISCH, L E, *Be Glad You're Neurotic* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1936)

89. BLOS, PETER, "Aggression in Children," *Child Study*, 15 (May, 1938), 228-230, 252

This is a very helpful article addressed to parents The author has given as clear a discussion as will be found in the literature on the origins of aggression in early childhood The point is made that aggression does not necessarily follow as a result of physical punishment.

90. ——, *The Adolescent Personality* (New York· D. Appleton-Century Company, Inc., 1941).

91. BONAR, H S, "High-School Pupils List Their Anxieties," *School Review*, 50 (1942), 512-515

92. BORTZ, E L, "Adjustment in Wartime," *Annals of Internal Medicine*, 19 (1943), 457-469

93 BOSE, G, "Opposite Fantasies in the Release of Repression," *Indian Journal of Psychology*, 10 (1935), 29-41

94 BOWLBY, JOHN, "The Abnormally Aggressive Child," *New Era*, 19 (1938), 230-234

95. BRACELAND, F J, and ROME, H P, "Anxiety and Fatigue," *Connecticut Medical Journal*, 7 (1943), 827-841

96 BRICKNER, R M, "The Treatment of Aggression Round Table IV The Paranoid," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 400-416

97. BRIDGES, J W, *The Meaning and Varieties of Love* (Cambridge, Mass Sci-Art Publishers, 1935)

This Canadian psychologist has written a basic and penetrating essay on some of the psychological implications of love

98 BRIDGES, K M B, "The Development of the Primary Drives in Infancy," *Child Development*, 7 (1936), 40-56

In this article there is some confusion between fundamental drives and the infant's increased adaptation to its environment

99. BRIGGS, T H, "Sarcasm," *School Review*, 36 (1928), 685-695

This paper makes a careful analysis of sarcasm, presents some choice illustrations, discusses its influence in the classroom, and offers suggestions to teachers with regard to alternative methods of disciplinary control Briggs suggests that teachers, during their training, should be instructed concerning the effects of sarcasm on pupils.

100. BRILL, A A, *Psychoanalysis: Its Theories and Practical Application* (Philadelphia. W. B. Saunders Com-

pany, 1912, second edition 1914; third edition 1922)

Brill was one of the first Americans to write on psychoanalytical theory His book, although published many years ago, is still helpful for its description of anxiety syndromes and for its explanation of regression, projection, condensation, and compromise formation. Brill has excellent chapters on the psychopathology of everyday life with helpful illustrations, and a chapter which provides illustrations of the meaning of vocational choice in terms of sublimation

101. ——, *Fundamental Concepts of Psychoanalysis* (New York Harcourt, Brace and Company, 1921)

In his excellent chapters on psychopathology of everyday life Brill gives a number of helpful illustrations of condensation and compromise formation

102. ——, "Sexuality and Its Role in the Neuroses," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York. Covici-Friede, 1933, London George Allen & Unwin, 1933), 101-116, reprinted in revised edition (New York International Universities Press 1944), 174-186

This paper contains a brief discussion of the narcissistic stage of infancy

103. BRILL, M S, "Motivation of Conduct Disorders in Boys," *Journal of Delinquency,* 11 (1927), 5-22.

104. BRITT, S H, and JAMES, S Q, "Criteria of Frustration," *Psychological Review,* 47 (1940), 451-459

This is an excellent review and summary of recent experimental literature and discussions of frustration The authors are primarily concerned with defining frustration psychologically

105. BROADWIN, I. T, "Understanding the Problem Child," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York Covici-Friede, 1933, London· George Allen & Unwin, 1933)

Broadwin discussed the persistence of narcissism in early childhood and the difficulty parents and teachers have in lessening its severity

106 BROGDEN, W J., "Non-alimentary Reinforcement of Conditioned Fore-Limb Flexion in Food-Satiated Dogs," *Journal of Experimental Psychology,* 30 (1942), 326-335

This is an experimental study providing evidence of the externalization of drive

107. BROWN, C H, and VAN GELDER, I, "Emotional Reactions before Examinations I Physiological Changes; II Results of Questionnaire, III Interrelations," *Journal of Psychology,* 5 (1938), 1-31.

108. BROWN, J F, "Reactions of Psychiatric Patients in a Frustrating Situation," *Bulletin of the Menninger Clinic,* 3 (1939), 44-64

By observing patients in various psychiatric groups and applying certain criteria to his observations, Brown was able to secure a measure of the degree of regression and to place the psychiatric groups in order of severity of regression The results compare favorably with findings of such psychoanalysts as Abraham and others

109. ——, *Psychodynamics of Abnormal Behavior* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1940)

This chapter in Brown's book makes a rapid survey of the Freudian mechanisms

110. ——, "The Theory of the Aggressive Urges and War-Time Behavior," *Journal of Social Psychology,* 15 (1942), 355-380

This is a good summary of contemporary thought about the dynamics of aggression

111. BROWN, J S, "Factors Determining Conflict Reactions in Difficult Discriminations," *Journal of Experimental Psychology,* 31 (1942), 272-292

112 BURGESS, E W, and COTTRELL, L S, JR, *Predicting Success or Failure in Marriage* (New York Prentice-Hall, Inc, 1939)

113. BURNHAM, W H, *The Normal Mind* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1924)

114. ——, *The Wholesome Personality* (New York· D Appleton-Century

Burnham, while keeping his discussion on the level of reality, recognizes the presence of unconscious forces and stresses the fact that bringing them to consciousness in itself is a healing process He discusses the place of conflict in adjustment and gives some didactic hints for managing and resolving conflict

115. BURT, CYRIL, "Is the Doctrine of Instincts Dead? A Symposium I The Case for Human Instincts," *British Journal of Educational Psychology,* 11 (1941), 155-172

116 ———, "Is the Doctrine of Instincts Dead? A Symposium VII Conclusion" *British Journal of Educational Psychology,* 13 (1943), 1-15.

This is the last of a remarkably confused and stodgy group of papers that gets no where debating the whereabouts of the old concept of instinct by a distinguished group of psychologists One is forced to the conclusion that the concept of instinct has no important place in human psychology

117. BURTON, ARTHUR, "The Aggression of Young Children Following Satiation," *American Journal of Orthopsychiatry,* 12 (1942), 262-267.

118. BURTT, H E, "An Experimental Study of Early Childhood Memory Final Report," *Journal of Genetic Psychology,* 58 (1941), 435-439

119 BUTTERFIELD, O M, *Love Problems of Adolescence,* Teachers College Contribution to Education, No 768 (New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1939)

The author has collected expressions of the attitudes of adolescent boys and girls toward problems of love at that age and has presented his findings and has drawn implications concerning them for the adolescents

120 BYCHOWSKI, GUSTAV, "On Relation Between the Ego and the Superego," *Psychoanalytic Review,* 30 (1943), 313-324

This not too well-organized paper contains illustrations of interesting relations between the ego and the superego, particularly where the superego is harsh and the ego is weak, submissive, and vacillating

121. CABOT, R C, *The Meaning of Right and Wrong* (New York The Macmillan Company, 1933).

Dr Cabot devotes a section of this book to rationalization, giving a large number of illustrations of different kinds of rationalizations Cabot makes rationalization the equivalent of immorality According to him evil is more a matter of poor thinking than it is failing to follow certain moral standards

122. CAMERON, NORMAN, "Reasoning, Regression, and Communication in Schizophrenics," *Psychological Monographs,* 50, No. 1 (1938)

Cameron demonstrates that the thought processes in schizophrenia are not necessarily like those of children, but may differ from childish thought significantly However, this by no means destroys the regression hypothesis which deals more with impulse and tendencies to thought and action

123. ———, "Deterioration and Regression in Schizophrenic Thinking," *Journal of Abnormal and Social Psychology,* 34 (1939), 265-270

124 ———, "The Functional Psychoses," in J McV Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York The Ronald Press, 1944), Vol 2, Ch XXIX, 862-863

125. CANER, G C, "Superstitious Self-Protection in Psychopathology," *Archives of Neurology and Psychiatry,* 44 (1940), 351-361

126 CANNON, W B., *Bodily Changes in Pain, Hunger, Fear and Rage* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1915, second edition, 1927)

127. ———, *The Wisdom of the Body* (New York W W Norton & Company, Inc, 1932, revised edition, 1939)

128. ———, "Hunger and Thirst," in Carl Murchison, editor, *A Handbook of General Experimental Psychology* (Worcester, Clark University Press, 1934), Ch V.

129 ——, and WASHBURN, A. L., "An Explanation of Hunger," *American Journal of Physiology*, 29 (1912), 441-454.

Cannon's work in physiology has been most stimulating to American psychology. In connection with the drives, Cannon has demonstrated the precise nature of the stimuli which are responsible for hunger and thirst. He writes clearly and incisively.

130 CANTRIL, HADLEY, *The Psychology of Social Movements* (New York: John Wiley & Sons, Inc., 1941).

131. CARMICHAEL, BENSON, "The Death Wish in Daily Life," *Psychoanalytic Review*, 30 (1943), 59-66.

132 CARMICHAEL, LEONARD, "The Experimental Embryology of Mind," *Psychological Bulletin*, 38 (1941), 1-28

In this paper, which was a presidential address at the eighteenth annual meeting of the American Psychological Association in 1940, Carmichael presents conclusions from his researches on the psychological development of the human fetus. This paper shows to what extent the child is born into the world possessing capacity for reflex movements and how this is related to the later ongoing process of development.

133. CASON, HULSEY, "The Learning and Retention of Pleasant and Unpleasant Activities," *Archives of Psychology*, 21, No. 134 (1932)

134. CATTELL, R. B., *General Psychology* (Cambridge, Mass.: Sci-Art Publishers, 1941)

Cattell's book on general psychology presents a very sympathetic discussion of the unconscious. Cattell has the faculty for bringing out the significance of difficult concepts.

135 CHARLES, C. V., "Optimism and Frustration in the American Negro," *Psychoanalytic Review*, 29 (1942), 270-279.

This paper shows how optimism and a carefree attitude can be a reaction formation against frustration and degradation.

136. CHASSELL, J. O., "Vicissitudes of Sublimation," *Psychiatry*, 2 (1938), 221-232

This is one of the most important discussions of sublimation, adding a number of refinements to the concept. Chassell presents a few cases from his own practice in which sublimation is a factor and then discusses the social significance of sublimation and some of its dangers.

137. CHICAGO INSTITUTE FOR PSYCHOANALYSIS, *Ten Year Report 1932-1942* (1943)

138. CLAPARÈDE, EDOUARD, "Some Major Laws of Conduct," *American Journal of Psychology*, 50 (1937), 68-78

In this paper, which is contained in the jubilee volume of the *American Journal of Psychology*, Claparède gives under a number of laws the main principles of the dynamic psychology of learning. These principles, growing out of Claparède's long experience, appear at the present time to be fundamentally sound according to the latest experimental findings.

139. CLARK, L. P., "Unconscious Motives Underlying the Personalities of Great Statesmen and their Relation to Epoch-Making Events III The Narcissism of Alexander the Great," *Psychoanalytic Review*, 10 (1923), 56-69

140. ——, "Narcissism as a Factor in Neuroses and Psychoses," *Medical Journal and Record*, 137 (1933), 56-64.

In this article Clark has made the most comprehensive statement of the meaning of narcissism and its dynamic implications which is available today.

141 ——, "The Question of Prognosis in Narcissistic Neuroses and Psychoses," *International Journal of Psychoanalysis*, 14 (1933), 71-86

This psychoanalyst has made a profound study of the varieties of self-love based in large part on his own extensive practice.

142. ——, "Treatment of Narcissistic Neuroses and Psychoses," *Psychoanalytic Review*, 20 (1933), 304-326.

143. CLOTHIER, FLORENCE, "Psychological Implications of Unmarried Parenthood," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 531-549

Clothier presents cases which illustrate the identification of a parent with his child.

144. COGHILL, H deF, "Significance of Children's Wishes in Psychiatric Examinations," *American Journal of Orthopsychiatry*, 7 (1937), 270

145. COLE, LUELLA, *General Psychology* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1939)

Cole's book is one of the few general texts in psychology which give attention to the problems of the unconscious Cole includes a very comprehensive and fair discussion of theories with regard to the unconscious

146. COLEMAN, S M, "The Phantom Double, Its Psychological Significance," *British Journal of Medical Psychology*, 14 (1934), 254-273

147. COLLIER, K G, "The Role of Projection in the Genesis of the Superego," *British Journal of Medical Psychology*, 20 (1944), 96-99

148. CONKLIN, E S., "The Foster-Child Fantasy," *American Journal of Psychology*, 31 (1920), 59-76

This is a factual questionnaire study in which a group of college students were asked to recall foster-child fantasies which they might have had in childhood Conklin is able to relate the incidence of these fantasies to various factors

149 ———, *Principles of Adolescent Psychology* (New York Henry Holt and Company, 1935)

150. CORIAT, I H, "Instinctual Mechanisms in the Neuroses," *International Journal of Psychoanalysis*, 11 (1930), 61-74

This is an interesting paper in which Freud's life and death instincts are elaborated to explain neurosis and therapy

151. CRAFTS, L W., and GILBERT, R W, "The Effect of Punishment During Learning Upon Retention," *Journal of Experimental Psychology*, 17 (1934), 73-84

152. CRAIG, WALLACE, "Male Doves Reared in Isolation," *Journal of Animal Behavior*, 14 (1914), 121-133.

153 ———, "Appetites and Aversions as Constituents of Instincts," *Biological Bulletin*, 34 (1918), 91-107

This is one of two significant articles presenting an experimental basis for the concepts of appetite and aversion

154 CRANE, H W, "Potentialities of the Individual to Adjust," *Social Forces*, 17 (1938), 220-225

155 CREEGAN, R F, "A Symbolic Action During Bereavement," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 37 (1942), 403-405

156 CRUTCHFIELD, R S., "Psychological Distance as a Function of Psychological Need," *Journal of Comparative Psychology*, 28 (1939), 447-469

The set to do work increases with intensity of need

157. CURRAN F J, "Aggressive Traits in Children," *Diseases of the Nervous System*, 3 (1942), 114-117.

This is a popular radio address, psychiatrically oriented

158. CURTIS, Q F, "Frustration as an Experimental Problem IV Some Physiological Consequences of Frustration," *Character and Personality*, 7 (1938), 140-144

159. ———, "Environmental Background and Resistance to Conflict in the Dog and Sheep," *Psychological Bulletin*, 38 (1941), 578

160. DARLINGTON, H. S, "Confession of Sins," *Psychoanalytic Review*, 24 (1937), 150-164

This writer surveys the various forms of confession in a large number of primitive societies and draws certain conclusions concerning its psychological significance

161. DASHIELL, J F, *Fundamentals of General Psychology* (Boston Houghton Mifflin Company, 1937)

In this book by one of the foremost psychologists there is a very clear presentation of the biological bases of behavior

162. DAVIDSON, S. M., "Anxiety States Arising in Naval Personnel—Afloat and Ashore," *New York State Journal of Medicine*, 42 (1942), 1654-1656

163. DE FOREST, IZETTE, "Love and Anger, The Two Activating Forces in Psychoanalytic Therapy," *Psychiatry*, 7 (1944), 15-29

164. DEMBO, TAMARA, "Der Arger als Dynamisches Problem," *Psychologiche Forschung*, 15 (1931), 1-144

This is a pioneer study of the arousal of anger by frustration, initiated under the leadership of Kurt Lewin

165 DENNIS, WAYNE, "Infant Reaction to Restraint An Evaluation of Watson's Theory," *Transactions of the New York Academy of Sciences, New Series*, 2 (1940), 202-218

An intense and persisting stimulus and change from accustomed ways may cause crying and restlessness in infants, but restraint by itself will not.

166 DERI, FRANCES, "On Sublimation," *Psychoanalytic Quarterly*, 8 (1939), 325-334

167 DERSHIMER, F W, "A Theory of the Origin of All Conflict and the Mechanism of Psychoanalysis," *Psychoanalytic Review*, 15 (1938), 162-164

168. DESPERT, J L, "Technical Approaches Used in the Study and Treatment of Emotional Problems in Children Part Four Collective Phantasy," *Psychiatric Quarterly*, 11 (1937), 491-506.

169. ———, "School Children in Wartime," *Journal of Educational Sociology*, 16 (1942), 219 230

This is a helpful paper on children's reactions to war

170. ———, and POTTER, H W., "Technical Approaches Used in the Study and Treatment of Emotional Problems in Children Part One The Story A Form of Directed Phantasy," *Psychiatric Quarterly*, 10 (1936), 619-638

These are two out of a collection of several papers reporting Despert's use of various projective devices for the study of fantasy in young children The first paper describes methods of securing fantasies by group procedures The second paper describes the use of a story method

171 DEUTSCH, HELENE, "Concerning the Actual Conflict in the Neuroses," *Psychiatric Quarterly*, 4 (1930), 466-473

172. ———, *Psychoanalysis of the Neuroses*, International Psychoanalytical Library, No 23 (London The Hogarth Press, 1932)

This book is an important contribution to the psychoanalytic theory of neurosis It shows how unconscious processes result in conflict and neurotic behavior The first chapter is a helpful and penetrating analysis of the meaning of conflict, how it arises, and its place in determining pathological states Deutsch believes that the main function of a neurosis is to relieve a person from anxiety which is frequently aroused by the threat of loss or separation Hysterical and obsessional neuroses are discussed in terms of regression and reaction formation Many illustrations are given to show how compulsions are displacements of love and hate impulses There is a discussion of the distinction between identification with an object and an emotional relationship with that object Throughout Deutsch shows how the superego is a factor in the development of psychoneuroses and the part that guilt plays There are also helpful interpretations of the significance of narcissism in neurotic states

173. ———, *The Psychology of Women* (New York Grune & Stratton, Inc, 1944), Vol 1.

Deutsch's studies of the psychology of women which have been available for many years in technical papers, most of them in German, are now brought together in the first of two volumes She discusses the place that identification plays in the adolescent girl and in the woman Deutsch has keen insight into the fantasy life of women and their love problems This book should be consulted in particular for the penetrating chapters on homosexuality and the analysis of feminine narcissism. Her theory of the balance between feminine masochism and narcissism is of importance

174. DEVEREUX, GEORGE, "Maladjustment and Social Neurosis,"

American Sociological Review, 4 (1939), 844-851.

One may turn to Devereux for a discussion of the concept of adjustment in terms of deviation from a social norm.

175 DEWEY, JOHN, "The Theory of Emotion I Emotional Attitudes," *Psychological Review*, 1 (1894), 553-569

176. ——, "The Theory of Emotion II The Significance of Emotions," *Psychological Review*, 2 (1895), 13-32

177. DIETERLE, R R., and KOCH, E J, "Experimental Induction of Infantile Behavior in Major Hysteria," *Journal of Nervous and Mental Diseases*, 86 (1937), 688-710

In this paper the description of extreme regression of two hysterical patients is given in considerable detail This paper is clinical evidence of the fact that infantile dispositions remain unchanged even in adult life.

178. DOLLARD, JOHN, "Hostility and Fear in Social Life," *Social Forces*, 17 (1938), 15-29

This article contains some observations by a psychoanalytical sociologist on expressions of aggression among Southern Negroes

179. ——, DOOB, L W., MILLER, N E, MOWRER, O H, SEARS, R R, *Frustration and Aggression* (New Haven· Yale University Press, 1939)

In this book by a group of Yale scientists the relation of frustration to aggression is elaborated It presents the thesis that all frustration leads to aggression and all aggression is caused by frustration However, the authors recognize that in many instances aggression may be repressed or displaced There is a discussion of punishment as a form of frustration and the relation of punishment to anxiety In brief, it is suggested that as a person inhibits behavior in response to punishment from without, he recognizes himself as the source of this frustration and thereby turns aggression toward him self, which is later recognized as self punishment This principle is used in this book as the basis for explaining the motivation for self-punishment

180. ——, and HARTEN, DONALD, *Fear in Battle* (New Haven The Institute of Human Relations, Yale University, 1943, revised edition, Washington The Infantry Journal, 1944)

This 64-page booklet presents the results of a questionnaire study of 300 veterans of the Abraham Lincoln Brigade who volunteered in the Civil War in Spain It is practical and well organized

181. DOOB, L W, *The Plans of Men* (New Haven Yale University Press, 1940)

182 ——, and SEARS, R R., "Factors Determining Substitute Behavior and Overt Expression of Aggression," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 34 (1939), 293-313.

183. DREVER, JAMES, "Is the Doctrine of Instincts Dead? A Symposium IV. Instinct as Impulse," *British Journal of Educational Psychology*, 12 (1942), 88-96

184 DUNBAR, H F, *Emotions and Bodily Change, A Survey of Literature in Psychosomatic Inter-relationships* (1910-1933) (New York Columbia University Press, 1935, revised edition, 1938)

185. DUNLAP, KNIGHT, "Are There Any Instincts?" *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 14 (1919), 307-311.

186. ——, *Mysticism, Freudianism, and Scientific Psychology* (St. Louis. C V. Mosby Company, 1920).

187. ——, "The Identity of Instinct and Habit," *Journal of Philosophy*, 19 (1922), 85-94

In these papers Dunlap challenges the instinct theory that had held sway for thirty years in American psychology This was the first bomb to be thrown into the structure of the instinct theory

188 DURBIN, E. F. M, and BOWLBY, JOHN, *Personal Aggressiveness and War* (New York Columbia University Press, 1939)

This essay originally appeared as part of the symposium entitled, *War and*

Democracy, edited by E F M Durbin and others (See reference No 189)

189. ——, and OTHERS, *War and Democracy* (London. Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, 1938).

These two books, which were published before the Second World War, constitute a very timely analysis of the psychological and sociological nature of war and its significance at the present time The social factors contributing to war have been summarized in the chapter, "Aggression" These books constitute an important contribution on the social aspects of aggression.

190. DURFEE, M B, "Note on Self-Identification with Enemy Nationals," *Mental Hygiene*, 28 (1944), 23-27.

191. EDELSTON, H, "Separation Anxiety in Young Children," *Genetic Psychology Monograph*, 28 (1943) 3-95

This is a study of the anxiety which arises from the separation of infants from their mothers in hospitals

192. EDER, M D, "On the Economics and Future of the Superego," *International Journal of Psychoanalysis*, 10 (1929), 249-255.

193. EISENDERFER, ARNOLD, "The Clinical Significance of the Single-Parent Relationship in Women," *Psychoanalytic Quarterly*, 12 (1943), 223-239.

194 EISNER, EUGENE, "Phantasy in Maladjusted Children as Observed in Three Cases at the Southard School," *Bulletin of the Menninger Clinic*, 3 (1939), 27-34

195. ELIOT, T D, "The Use of Psychoanalytic Classification in the Analysis of Social Behavior Identification," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 22 (1927), 67-81

This article contains a discussion of identifications as an expansion of the limits of the self

196. ELLIOTT, M H, "Drives and the Characteristics of Driven Behavior," *Psychological Review*, 42 (1935), 205-213.

This is an excellent paper with a first-rate discussion of the nature of drives and their relation to behavior based on current experimental findings.

197. ——, and BOUSFIELD, W A, "Two Basic Mechanisms in Motivation," *Psychological Review*, 43 (1936), 94-99

In this paper the authors contrast the proprioceptive and sympathicoadrenal mechanisms which are operative in drive

198. ELLIS, HAVELOCK, "The Conception of Narcissism," *Psychoanalytic Review*, 14 (1927), 129-153.

Havelock Ellis maintains that although the term *narcissism* did not originate with him he was the first to use it in its present connotation He reviews some of the early developments in the theory of narcissism but fails to help the reader in integrating separate contributions.

199. ENGLISH, O S., and PEARSON, G H J, *Common Neuroses of Children and Adults* (New York W W Norton & Company, 1937)

This is another valuable source book on dynamic principles in personality Chapter II contains one of the best discussions of the foundations of unconscious fantasy in infantile development available in the literature Chapter V, dealing with anxiety states in children, and Chapter XI, inhibitions in social behavior, are worth consulting The concept of ambivalence is clearly elaborated, and there is a helpful analysis of the development of aggressive traits in infancy These authors also give a realistic description of superego formation.

200. ERICKSON, M H, "Experimental Demonstrations of the Psychopathology of Everyday Life," *Psychoanalytic Quarterly*, 8 (1939), 338-353.

This paper reports the results of some most ingenious experiments using hypnotism in which unconscious processes in a variety of forms are demonstrated

201 FAIRBAIRN, W R D, "Some Points of Importance in the Psychology of Anxiety," *British Journal of Medical Psychology*, 9 (1929), 303-313

This is a straightforward statement of certain psychological implications of anxiety in which the author points out some of the distinctions between anxiety and

fear He also discusses neurotic symptoms as an attempted escape from anxiety.

202. ———, "Is Aggression an Irreducible Factor?" *British Journal of Medical Psychology,* 18 (1939), 163-170

This article discusses two methods of controlling aggression—one by reducing the amount of frustration and the other by imposing external and internal control.

203. ———, "The Repression and the Return of Bad Objects (With Special Reference to the War Neuroses)," *British Journal of Medical Psychology,* 19 (1943), 317-341

This illuminating paper discusses the process of introjection and shows how fear of punishment and loss of parents is transferred into an inner process There is a valuable statement of certain psychological implications of anxiety and of neurotic symptoms as an attempted escape from anxiety

204. ———, "The War Neuroses: Their Nature and Significance," *British Medical Journal,* 4284 (Feb. 13, 1943), 183-186

In this paper, the author has made the statement that war neuroses are a form of separation anxiety

205. FARIS, ELLSWORTH, "Are Instincts Data or Hypotheses?" *American Journal of Sociology,* 27 (1921-1922), 184-196.

A paper by a sociologist attacks the instinct theory in the era following the First World War

206. FARROW, E P, "On the Psychological Importance of Blows and Taps in Early Infancy," *Psychoanalytic Review,* 14 (1927), 447-457

Blows and taps given in early infancy have a profound effect on the developing personality and result in a considerable amount of repression, which is the origin of the "Freudian censor"

207. FEDERN, PAUL, "The Narcissistic Factor in Ego Structure," *Psychoanalytic Review,* 15 (1928), 85-107.

208. ———, "Narcissism in the Structure of the Ego," *International Journal of Psychoanalysis,* 9 (1928), 401-419

209. FEIGENBAUM, DORIAN, "On Projection," *Psychoanalytic Quarterly,* 3 (1936), 303-319.

This is an advanced paper in psychoanalytical theory The place of projection in neuroses and psychoses is discussed A variety of illustrations of forms of projection are given

210. FENICHEL, OTTO, "Identification," *Archives of Psychoanalysis,* 1 (1926), 202-209

211. ———, "The Clinical Aspect of the Need for Punishment," *International Journal of Psychoanalysis,* 9 (1928), 47-70.

This is an important paper discussing the nature and motivation of self-punishment derived from the author's own clinical experiences He shows how self-punishment helps to reduce guilt and even includes within it a repetition of the act in disguised form for which punishment is sought Fenichel also discussed borrowed guilt and confession

212 ———, *An Outline of Clinical Psychoanalysis* (New York W. W. Norton & Company, 1934)

This rare book is one of the most important references on dynamic principles which operate in neurotic and psychotic states Practically every topic in the present book is touched upon in a helpful and illuminating way in Fenichel's outline, particularly aggression, anxiety, regression, identification, sublimation, and narcissism Fenichel illuminates the part that the superego and guilt play in various neurotic states

213. ———, "The Scopophilic Instinct and Identification," *International Journal of Psychoanalysis,* 18 (1937), 6-34

214. ———, "The Counter-Phobic Attitude," *International Journal of Psychoanalysis,* 20 (1939), 263-277.

This is an explanation of those forms of enthusiasm and strenuous activity which are defenses against strong underlying anxieties.

215. ———, "Psychoanalysis of Antisemitism," *American Imago,* 1 (March, 1940), 24-39

216 ———, "The Ego and the Affects," *Psychoanalytic Review*, 28 (1941), 47-60

217. FENTON, NORMAN, *Mental Hygiene in School Practice* (Stanford, Calif. Stanford University Press, 1943)

Fenton describes the characteristics of the wholesome personality

218 FERENCZI, SÁNDOR, *Contributions to Psychoanalysis* (Boston Richard Badger, 1916)

219. ———, *Further Contributions to the Theory and Technique of Psychoanalysis*, International Psychoanalytical Library, No. 11 (London, The Hogarth Press, 1926, New York Boni & Liveright, 1927)

Ferenczi is another of the early pioneers in the development of psychoanalytical theory However, he has not contributed so heavily to our understanding of dynamic processes as have some of the early writers

220. ——— II "Actual and Psychoneuroses in the Light of Freud's Investigations and Psychoanalysis" (1908), 30 54

221. ——— IV "On Forced Fantasies" (1924), 68-77

Ferenczi has made contributions to our understanding of fantasy In this paper he states that children in whom fantasies have been repressed are handicapped in their relations with other persons in later life

222. ———, "Gulliver Phantasies," *International Journal of Psychoanalysis*, 9 (1928), 283-300

This is an interesting paper wherein Ferenczi discusses fantasies in which persons are imagined to be very large or very small

223. FINCH, GLEN, "Chimpanzee Frustration Responses," *Psychosomatic Medicine*, 4 (1942), 233-251

An experimental determination of some of the factors determining response to frustration corroborating earlier observations

224 FISHER, V. E, *An Introduction to Abnormal Psychology* (New York. The Macmillan Company, 1929)

Fisher's discussion of the motivational foundation of adjustment is noteworthy because of its original treatment of mental disorder based on patterns of adjustment

225. FITE, M D, "Aggressive Behavior in Young Children and Children's Attitudes toward Aggression," *Genetic Psychology Monographs*, 22 (1940), 151-319

226 FLEMMING, E. G, "Day Dreams," *Scientific Monthly*, 35 (1932), 458-462.

This is a popular readable article on day-dreams

227 FLETCHER, J M, "Homeostasis as an Explanatory Principle in Psychology," *Psychological Review*, 49 (1942), 80-87

228 FLÜGEL, J C, "Freudian Mechanisms as Factors in Moral Development," *British Journal of Psychology*, 8 (1917), 477-509

Flugel discusses the social and ethical implications of displacement

229 ———, *Psychoanalytic Study of the Family*, International Psychoanalytical Library, No 3 (London The Hogarth Press, 1921)

Although this book was first published a quarter of a century ago, it still remains as a remarkably valuable and up-to-date discussion of the psychoanalytic implications in family relationships In the intervening years the significance of parent-child relationships has grown, and Flugel's book has perhaps more significance today even than when it was published Practically every topic in the present book is touched upon and elucidated in Flugel's treatise with special reference to the significance of relationships within the family Of special importance is the analysis of the Oedipus complex, a thorough-going discussion of ambivalence and the various vicissitudes of love and hate which originate within the family setting One should consult Flügel for a discussion of some of the standard fantasies, particularly those relating to birth, life, and death.

230. ———, "The Tannhauser Motif," *British Journal of Medical Psychology*, 15 (1936), 279-295

In this paper Flugel discusses the distinction between sacred and profane love

as illustrated in the story of Tannhauser and draws implications from this story for love relations in men and women in the present day

231. ———, "The Examination as Initiation Rite and Anxiety Situation," *International Journal of Psychoanalysis,* 20 (1939), 275-286

Flugel discusses examination fear from the psychoanalytical point of view and points out some of the symbolic significance of the dread of and inhibition toward examinations

232. ———, "Sublimation Its Nature and Conditions," *British Journal of Educational Psychology,* Part I, 12 (1942), 10-25, Part II, 12 (1942), 97-107, Part III, 12 (1942), 162-166

This is one of those splendid papers which reviews and surveys the literature and helps to orient the reader as to the present significance of the concept of sublimation

233. FOLSOM, J K, *Social Psychology* (New York Harper & Brothers, 1931).

Folsom, writing as a sociologist, includes a lengthy discussion of motivation, including the mechanisms He gives considerable space to compensation and a brief summary of the Freudian mechanisms In this book Folsom is influenced to a considerable extent by Lay's discussion

234 ———, *The Family* (New York John Wiley & Sons, Inc, 1934)

Folsom repeats his review of the mechanisms in this later book with a somewhat broader point of view indicating a wider acquaintance with the literature in this field

235 FORLANO, GEORGE, and AXELROD, H C, "The Effect of Repeated Praise or Blame on the Performance of Introverts and Extraverts," *Journal of Educational Psychology,* 28 (1937), 92-100

Individuals with extravert tendencies respond to punishment to a greater degree than individuals with introvert tendencies

236 FOSDICK, H E, *On Being A Real Person* (New York· Harper & Brothers, 1943)

Here is a fine discussion of the meaning of integration from a religious point of view.

237 FOSTER, JOSEPHINE, and ANDERSON, J E, *The Young Child and His Parents,* Institute of Child Welfare, Monograph Series, No 1 (Minneapolis· University of Minnesota Press, 1927)

238 FOULKES, S H, "The Idea of a Change of Sex in Women," *International Journal of Psychoanalysis,* 24 (1943), 53-56

239 FRANK, L. K, "The Management of Tension," *American Journal of Sociology,* 33 (1928), 705-736

240 "The Fundamental Needs of the Child," *Mental Hygiene,* 22 (1938), 353-379

This is an excellently written paper, widely quoted, presenting the fundamental needs of children from the mental hygiene and psychoanalytical point of view

241 ———, "Projective Methods for the Study of Personality," *Journal of Psychology,* 8 (1939), 389-413

242. FRANKEL, L R, "The Theory of Regression," *Journal of Speech Disorders,* 1 (1936), 107-112

243. FREDERICKSON, NORMAN, "The Effect of Frustration on Negativistic Behavior of Young Children," *Journal of Genetic Psychology,* 61 (1942), 203-226

Negativism in young children is associated with the frustrations attendant upon training

244 FREEMAN, G L, "Postural Tensions and the Conflict Situation," *Psychological Review,* 46 (1939), 226-240

In this discussion of the distinction between tonic and postural tensions, the author is presenting evidence to support his thesis that frustration which is not immediately surmounted leads to postural tension The writer believes that Freeman has unnecessarily confused frustration and conflict

245. ———, "Toward a Psychiatric Plimsole Mark Physiological Recovery Quotients in Experimentally Handled Frustration," *Journal of Psychology*, 8 (1939), 247-252

Stable individuals recover more rapidly from frustration than do unstable ones

246. FRENCH, T M, "Defense and Synthesis in the Function of the Ego," *Psychoanalytic Quarterly*, 7 (1938), 537-553

This brilliant paper by a member of the Chicago Psychoanalytic Institute indicates in clear-cut fashion how fantasy is a necessary factor in the infant's development from dependence to independence

247. ———, "An Analysis of the Goal Concept Based upon Study of Reaction to Frustration," *Psychoanalytic Review*, 28 (1941), 61-71

In this important paper French discusses reactions to frustrations, largely in terms of Lewin's formulation He is concerned with what frustration does to the goals and strivings toward them and believes that frustration disorganizes goal-seeking into more elementary strivings

248. ———, "Clinical Approach to the Dynamics of Behavior," in J McV Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York, The Ronald Press Company, 1944), Vol 1, Ch VII, 255-268.

249 ———, ALEXANDER, FRANZ, and CO-WORKERS, *Psychogenic Factors in Bronchial Asthma* (2 volumes), Psychosomatic Medicine Monograph, Vol 1, No 4, Vol 2, Nos 1, 2 Published with the sponsorship of the Committee on Problems of Neurotic Behavior, Division of Anthropology and Psychology, National Research Council, Washington, D C (Menasha, Wis George Banta Publishing Company, 1941)

250. FREUD, ANNA, *Introduction to the Technic of Child Analysis*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 48 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1928)

251. ———, *The Ego and the Mechanisms of Defense*, International Psychoanalytical Library, No 30 (London The Hogarth Press, 1937, first published in German, 1936)

This little book is already a classic in the field of ego psychology For the first time the various mechanisms are brought together as representing a defense against anxieties from which the ego wishes to protect itself By placing repression as one among a number of other mechanisms Miss Freud sets the pattern for the current point of view with regard to dynamic motivating forces within the personality Of particular importance is her concept of identification with the aggressor, which in this book is discussed in terms of the introjection of those persons toward whom one feels hostile In her discussion of the restriction of the ego and intellectualism at puberty, Miss Freud gives excellent case illustrations of the mechanism of isolation as it is defined in the present book, although she does not call it by this name In the last two chapters she illustrates how the adolescent manages guilt by ascetic tendencies

252. ———, and BURLINGHAM, D. T, *Young Children in War-Time* (London George Allen & Unwin, 1942), and *War and Children* (New York International Universities Press, 1943)

253. ———, and BURLINGHAM, D T, *Infants Without Families* (London· George Allen & Unwin, 1944, New York· Medical War Books, International Universities Press, 1944)

254 FREUD, SIGMUND *The Interpretation of Dreams* (New York The Macmillan Company, 1913, second edition, 1933, third edition, 1937, first published in German in 1900) Also reprinted in *The Basic Writings of Sigmund Freud* (New York The Modern Library, Inc, 1938), Book II, 181-549

The fantasy nature of dreams is analyzed in this first book by Freud One will find here in the first formulation of the different levels of the unconscious Some of the principal mechanisms are also first described in this book, notably displacement, identification, and condensation

255. ———, *The Psychopathology of Everyday Life* (New York, The Mac-

millan Company, 1914, first published in German, 1904) Also reprinted in *The Basic Writings of Sigmund Freud* (New York The Modern Library, Inc, 1938), Book I, 35-178

This book contains a number of homely illustrations of condensation from common errors and slips and in various forms of wit

256. ———, *Three Contributions to the Theory of Sex*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 7 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1910, first published in German, 1905) Also reprinted in *The Basic Writings of Sigmund Freud* (New York The Modern Library, Inc, 1938), Book III, 553-629

257 ———, *Wit and Its Relations to the Unconscious* (New York Dodd, Mead & Company, 1916, first published in German, 1905) Also reprinted in *The Basic Writings of Sigmund Freud* (New York The Modern Library, Inc, 1938), Book IV 633-803

258 ———, *A General Introduction to Psychoanalysis* (New York, Boni & Liveright, 1920, Liveright Publishing Corporation, 1935, first published in German, 1916) Also published in England under the title, *Introductory Lectures on Psychoanalysis* (London George Allen & Unwin, 1922, second edition, 1929)

In this book Freud presents in systematic form the theory of psychoanalysis in a series of popular lectures delivered in Vienna in 1915-1917 These lectures are of particular importance in throwing light on Freud's early concepts of fixation and regression and the mechanism of condensation He presents a clear and sane discussion of the meaning of frustration and its significance in the production of mental disorder.

259. ———, *Beyond the Pleasure Principle* International Psychoanalytical Library, No 4 (London The Hogarth Press, 1922, first published in German, 1920)

260. ———, *Group Psychology and the Analysis of the Ego*, International Psychoanalytical Library, No 6 (London. The Hogarth Press, 1922, first published in German, 1921).

In this monograph Freud develops further his concept of the superego and relates it to the process of culture building Chapter VII is devoted to the mechanism of identification At the end of this treatise he redefines neurosis in terms of conflict

261. ———, *Collected Papers*, International Psychoanalytical Library, No. 7 (London The Hogarth Press, 1924), Vol 1

This volume contains some of Freud's early papers

262. ———, V. "The Justification for Detaching from Neurasthenia a Particular Syndrome The Anxiety Neurosis," 76-106, also in *Neurologisches Zentralblatt*, No 2 (1895, but written in 1894)

263. ———, V "Obsessions and Phobias Their Psychic Mechanisms and Aetiology," 128-137; also in *Revue Neurologique*, III (1895)

264. ———, *Collected Papers*, International Psychoanalytic Library, No. 8 (London The Hogarth Press, 1921) Vol 2

This is the second of four volumes of the English translations of miscellaneous papers of Freud Clinical papers and papers on technique are included

265. ———, I "Psychoanalysis and the Ascertaining of Truth in Courts of Law" (1906), 13-24.

266. ———, IV "Character and Anal Erotism" (1908), 45-50

In this paper Freud relates character traits of orderliness, parsimoniousness, and obstinacy as reaction formations against things that are unclean and points out their development from early interests in toilet processes.

267. ———, V "Hysterical Fantasies and Their Relation to Bisexuality" (1908), 51-58

268. ———, VI "On the Sexual Theories of Children" (1908), 59-75.

Freud discusses some of the beliefs of young children with regard to birth and sexual matters

269. ——, X "Types of Neurotic Nosogenesis" (1912), 113-121

Freud suggests two methods of meeting frustration which can be called healthy and normal as compared with the pathological which drives an individual into conflict and hence neurosis.

270. ——, XVII " 'A Child Is Being Beaten.' A Contribution to the Study of the Origin of Sexual Perversions" (1914), 172-201.

This important paper contains a discussion of the beating fantasy and its dynamic significance

271. ——, XIX. "Certain Neurotic Mechanisms in Jealousy, Paranoia and Homosexuality" (1922), 232-243

This paper relates these three phenomena and shows how the mechanism of projection helps to explain them

272. ——, XXI "Neurosis and Psychosis" (1924), 250-254

Using his concept of the id, ego, and superego, Freud makes a distinction between a neurosis which is the result of a conflict between the ego and its id, and a psychosis which is the analogous outcome of a similar disturbance in the relation between ego and its environment

273. ——, XXII "The Economic Problem in Masochism" (1924), 255-268.

This is an important paper with Freud's mature reflections on the problems of masochism He discusses three types—erotogenic (sexual), feminine, and moral In this book these three types of masochism are recognized as variations of a more primitive tendency towards dependence Although sexual masochism has had the spotlight in earlier discussions, so-called moral masochism is recognized today as being the most important of the three types for the understanding of personality

274. ——, XXIII "The Passing of the Oedipus Complex" (1924), 269-276

In this paper Freud discusses how the Oedipus complex is normally resolved, and how the strong emotions of love and hate are displaced through relationships with other persons, leaving more tender feelings toward the parents

275 ——, XXVIII "The Dynamics of the Transference" (1912), 312-322

276. ——, XXXIII "Further Recommendations in the Technique of Psychoanalysis Observations on Transference Love" (1915), 377-391

In this paper Freud discusses the phenomenon of transference and points out the necessity of the analyst to be aware of his own emotions and to resist becoming emotionally involved in the relationship He sees transference love as a variety of infantile or narcissistic love

277 ——, *Collected Papers,* International Psychoanalytical Library, No 9 (London The Hogarth Press, 1925), Vol 3

This volume contains five case histories

278. ——, III "Notes upon a Case of Obsessional Neurosis" (1909), 296-389

In this early paper Freud first mentions the tendency of obsessional neurotics to isolate their protective acts from other areas of life in order to prevent other feelings from insinuating themselves

279. ——, *Collected Papers,* The International Psychoanalytical Library, No 10 (London The Hogarth Press, 1925), Vol 4

This volume contains papers on metapsychology and applied psychoanalysis

280. ——, II "A Note on the Unconscious in Psychoanalysis" (1912), 22-29

In this paper Freud further elaborates his concept of the unconscious, relating it to the process of repression

281. ——, III "On Narcissism An Introduction" (1914), 30-59

This important paper presents Freud's principal statement concerning narcissism wherein he distinguishes between narcissistic and object love He also distinguishes between what he calls narcissistic love and anaclitic love In the former, one chooses a love object which resembles the self In anaclitic love, one selects as a love object someone who can serve the self by nurture or protection.

282. ——, IV. "Instincts and Their Vicissitudes" (1915), 60-83

This very important paper is the first to describe in systematic form the ways

in which aggressive tendencies can be modified This paper is still remarkably modern even though it is now some thirty years old The instincts which Freud discusses in this paper are identical with the concept of drive as used in this book

283. ———, V. "Repression" (1915), 84-97

This is another important paper in the series on metapsychology showing how repression is a defense against anxiety. However, this paper represents Freud's earlier point of view in which he believed that repressed affects are transformed into anxiety instead of his later belief that anxiety is managed by repression.

284. ———, VIII "Mourning and Melancholia" (1917), 152-170

In this paper Freud presents his analysis of melancholia and relates it to aggressive impulses, originally directed toward others, which have been turned inward

285 ———, IX. "The Relation of the Poet to Daydreaming" (1908), 173-183

Freud anticipates the modern interest in projective techniques by showing how individuals work out fantasies through art productions

286 ———, XI. "Contributions to the Psychology of Love A Special Type of Choice of Object Made by Men" (1912), 192-202

In this paper Freud discusses the rescue fantasy and how it helps to explain the common distinction made by men between the good and bad woman

287. ———, XII "Contributions to the Psychology of Love The Most Prevalent Form of Degradation in Erotic Life" (1912), 203-216

288. ———, XIII "Contributions to the Psychology of Love The Taboo of Virginity" (1918), 217-235

289. ———, XVIII "Some Character-Types Met With in Psychoanalytic Work" (1915), 318-344

Among other types in this paper Freud discusses those who develop neurotic symptoms as a result of success and those who seek out self-punishment through criminality He points out that no matter how big a wish is in fantasy it may be accepted by the ego, but as it is about to be translated into action the ego may raise defenses against it In this paper Freud presents the important principle that mental illness cannot be caused by external frustration and a conflict is a necessary condition for neurosis

290. ———, XXII. "The 'Uncanny'" (1919), 368-407

Freud attempts to explain man's fear and dread of the uncanny in terms of repressed aggressive impulses

291. ———, XXIV "A Neurosis of Demoniacal Possession in the 17th Century" (1923), 436-472

In this paper Freud shows how religious states can be traced to the displacement of repressed relationships to early parental figures

292 ———, "Negation," *International Journal of Psychoanalysis,* 6 (1925), 367-371

In this pithy article Freud shows how negation may have important positive significance One can never deny some impulse without the possibility of harboring the same positively

293. ———, *The Ego and the Id,* International Psychoanalytical Library, No 12 (London The Hogarth Press, 1927, first published in German, 1923).

In this monograph Freud first uses the term *superego* and defines and elucidates it He also discusses the turning in of aggression on the self and the development of introjected tendencies

294 ———, *The Problem of Lay Analysis* (New York Brentano's, 1927).

295. ———, *Inhibitions, Symptoms, and Anxiety,* Monograph Series, No 8 (Stamford, Conn The Psychoanalytic Institute, 1927, now out of print), International Psychoanalytical Library, No 28 (London The Hogarth Press, 1936) Also published under the title, *The Problem of Anxiety* (New York W W Norton & Company, Inc, 1936)

This book represents Freud's last extensive revision of his technical formulations The Freud represented in *The Problem of Anxiety* is substantially different from the Freud of his early papers Those who discuss Freud's theories in

terms of his early papers are not representing the mature Freud of *The Problem of Anxiety* Here he revives his concept of defense and makes it central in his treatment of anxiety In his early studies he speaks of anxiety as an outgrowth of repression The impulse, whether of love or hate, which was repressed turned into anxiety, and he thought in his early work that anxiety was one method by which unacceptable impulses were met and managed Later this early formulation, while not wholly incorrect, seemed unsatisfactory to him And in this last work he reverses his earlier position and points out how repression may be one out of many of the defenses raised against anxiety Anxiety is a direct response to more primitive traits, either those against the satisfaction of libidinal tendencies or against the strength and dangers of the impulse to hate

In this book Freud first formally mentions the two mechanisms of isolation and undoing However, his discussion of them is abstract, and he fails to elaborate or to give illustrations, so that these two mechanisms have received niggardly treatment in subsequent discussions

296. ——, *Civilization and Its Discontents,* International Psychoanalytical Library, No. 17 (London The Hogarth Press, 1929)

In this essay on war and its psychological significance Freud devotes considerable space to the problem of aggression, its influence on culture, and society's methods on the control of aggression He also elaborates his concept of the superego

297 ——, *New Introductory Lectures in Psychoanalysis,* International Psychoanalytical Library, No 24 (London The Hogarth Press, 1933, New York W W Norton & Company, Inc, 1933)

In these new lectures Freud refines some of his earlier formulations Of particular importance is his more extensive discussion of the process of introjection and the formation of the superego He discusses in some detail how aggressive impulses are turned in on the self and gives his first comprehensive discussion of guilt His analysis of masochism is further refined and serves as a basis for current discussions of this concept, although Freud fails to elaborate the tension reducing nature of self-punishment tendencies He suggests substituting the concept of the need for punishment for the earlier phrase "unconscious sense of guilt." He discusses in clear outline the part the conflict plays in the origin of pathological states

298. ——, *A General Selection from the Works of Sigmund Freud,* Psychoanalytical Epitomes, No 1 (London The Hogarth Press, 1937).

299. ——, *The Basic Writings of Sigmund Freud* including "Psychopathology of Everyday Life," "The Interpretation of Dreams," "Three Contributions to the Theory of Sex," "Wit and Its Relation to the Unconscious," "Totem and Taboo," and "The History of the Psychoanalytic Movement" (New York The Modern Library, Inc, 1938)

300. FRINK, H W, *Morbid Fears and Compulsions* (New York Dodd, Mead & Company, 1918)

In Chapter IV, Frink presents one of the first general discussions of Freudian mechanisms including overcompensation, displacement, projection, introjection, and rationalization Frink writes with clarity and decisiveness and with many helpful illustrations

301. FROMM, ERICH, *Autoritat und Familie* (Paris, 1936)

302 ——, "Selfishness and Self-Love," *Psychiatry,* 2 (1939), 507-523

This is a very significant and helpful paper Fromm's distinction between selfishness and self-love corresponds closely to the distinction made in the chapter "Love and Self-Love," between narcissism based on acceptance and rejection Fromm thinks of selfishness as a kind of pseudo self-love which is characterized by its greediness and demandingness Fromm stresses the necessity of self-respect as a basis for forming good relationships with others His definition of love in terms of passionate affirmation of value and the striving of the happiness, development and freedom of another person constitute a splendid formulation

303 ——, *Escape from Freedom* (New York Farrar & Rinehart, Inc, 1941) Also published under the title, *The Fear of Freedom,* International Library of Sociology and Social Reconstruction (London Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, 1942)

Fromm has made one of the most significant analyses of love He recognizes

various kinds of selfish and inferior love, as, for instance, sadistic love, which aims at dominating and controlling the other person, and masochistic love, which aims at gaining security for the self by self-sacrifice and which is essentially selfish, and a more genuine love based on the recognition and the respect of the equality and freedom of the other person By mature love the person respects himself as he finds value in another

Fromm also distinguishes between dependent and self-sufficient rôles in personality He distinguishes the normal from the pathological superego and elucidates the relation between the superego and attitudes toward authority He presents a theory of sadism which would base it on the attempt of the individual to obtain security by warding off dangers aggressively He marks the desire to submerge the self in a submissive rôle to another person as a leader as the essence of the masochistic attitude

304 ——, "Shall We Hate Hitler?" *Journal of Home Economics*, 34 (1942), 220-223

In this paper Fromm briefly discusses self-destruction tendencies and distinguishes between reactive hate and character hate

305. FROMM-REICHMANN, FRIEDA, "Psychoanalytical Remarks on the Clinical Significance of Hostility," *Medical Annals of The District of Columbia*, 5 (1936), 260-263

In this address the author discusses migraine, agoraphobia, and suicide as expressions of guilt and self punishment

306 FUCHS, S H, "On Introjection," *International Journal of Psychoanalysis*, 19 (1937), 269-293

A thorough-going review of the literature on introjection, presenting contributions of all those who have helped to develop this concept. An extremely important paper for those who wish to survey the historical origins of this term

307. FURFEY, P H, *The Gang Age* (New York The Macmillan Company, 1926)

In this book there is a chapter in which an attempt is made to classify the mechanisms

308 GALSWORTHY, JOHN, *The Forsythe Saga* (New York· Charles Scribner's Sons, 1906, 1922)

309 GALTON, FRANCIS, *Inquiries into Human Faculty and Its Development* (New York: The Macmillan Company, 1883) Also published as No 263 in Everyman's Library (New York E. P Dutton Co, Inc, 1907)

310. GARNETT, S C., *Instinct and Personality* (New York Dodd, Mead & Company, 1928)

This is one of a number of statements with regard to the unconscious by a psychologist who is not a Freudian and yet who has discovered for himself the existence of unconscious motivation forces These discussions seem a little naïve in many respects

311 ——, "Instinct, Intelligence, and Appetite," *British Journal of Medical Psychology*, 8 (1928), 249-263

312 GATES, A I, *Psychology for Students of Education* (New York The Macmillan Company, 1923, revised edition, 1930)

This book contains common sense observations on methods of reaction to frustration The author devotes some pages to rationalization, particularly those varieties which he calls the "sour grapes," and "sweet lemon" or "pollyanna" mechanisms

313. ——, *Elementary Psychology* (New York The Macmillan Company, 1928)

314. ——, and BENNETT, C C., *Reversal Tendencies in Reading* (New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1933)

315. GELLHORN, ERNST, *Autonomic Regulations* (New York Interscience Publishers, 1943)

A reference throwing light on the nature of the parasympathetic nervous system. Gellhorn has evidence to indicate that the sympathetic and the parasympathetic operate in all sorts of combinations and that the older notion that one is always opposed in its effects to the other is an oversimplification

316. GERARD, M. W., "Enuresis, A Study in Etiology," *American Journal of Orthopsychiatry*, 9 (1939), 48-58.

317 GLOVER, EDWARD, "Sublimation, Substitution, and Social Anxiety" *International Journal of Psychoanalysis*, 12 (1931), 263-297.

This contribution reviews the orthodox theory of the concept of sublimation as a substitute for the natural expression of impulses but goes beyond it by showing how it is a device for protecting against anxiety and guilt It is Glover's belief that in a true sublimation anxiety is completely absorbed He points out the compulsive nature of some sublimations where an individual sets up a basic system of values which he cannot afford to have broken down Glover also likens sublimation to a dispersed or an extended and successful phobia

318 ———, "Medico-Psychological Aspects of Normality," *British Journal of Psychology*, 23 (1932-1933), 152-166

319. ———, *War, Sadism and Pacifism* (London George Allen & Unwin, 1933)

320. ———, *The Psychology of Fear and Courage* (New York Penguin Books, 1940)

321. ———, and BRIERLEY, MARJORIE, *The Technique of Psychoanalysis* (Baltimore The Williams and Wilkins Company, 1940)

In a discussion of technique in psychoanalysis, Glover reports briefly on a symposium on the criteria of success treatment in which Jones, Sharpe, Brierley, and Glover participated These criteria constitute one of the most helpful discussions of the criteria of good adjustment which may be found

322. GOLDFARB, WILLIAM, "The Effects of Early Institutional Care on Adolescent Personality," *Journal of Experimental Education*, 12 (1943), 106-129

323 GOULD, ROSALIND, "Repression Experimentally Analyzed," *Character and Personality*, 10 (1942), 259-288

This is a penetrating experimental study Gould shows that the greater the tension (frustration), the greater the repression but that what is repressed depends upon the specific motivating factors

324. GRANICH, LOUIS, "An Analysis of Motivation," *Psychological Review*, 39 (1932), 235-244

This helpful article contains a number of definitions of motivation and allied terms which show the confusion of terminology in this area

325 GREEN, G H, *Psychoanalysis in the Classroom* (London The University of London Press, 1921)

326. ———, *The Day Dream* (London The University of London Press, 1923)

Green's book is classic on the description and analysis of the process of day-dreaming

327. GREENACRE, PHYLLIS, "The Predisposition to Anxiety," *Psychoanalytic Quarterly*, 10 (1941), 66-94, 610-638

This paper by a psychiatrist discusses the presence of anxiety before, at, and directly following birth and how the experiences at birth and in the days following predispose the infant to the methods by which he will meet later traumatic situations The paper is noteworthy for its clarification of the significance of the birth trauma for its relation to later anxiety

328 GRIFFITHS, RUTH, *A Study of Imagination in Early Childhood and Its Function in Mental Development* (London Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, 1935)

This is an experimental study based on the observation and interviewing of young children Although this study has had wide acceptance, it has not proved especially helpful in understanding the nature of fantasy

329. GRINKER, R R, "A Comparison of Psychological 'Repression,' and Neurological 'Inhibition,'" *Journal of Nervous and Mental Disease*, 89 (1939), 765-781

This is a scholarly paper discussing repression in connection with neurological concepts of inhibition

330. GROSS, A A, "The Manners and Morals of Adjustment," *Mental Hygiene*, 23 (1939), 445-455

331. GROVES, E R and BLANCHARD, PHYLLIS, *Introduction to Men-*

tal Hygiene (New York: Henry Holt and Company, 1930)

These authors give particular emphasis to the way in which the guilty person feels isolated and strives to make himself at one with his group, particularly the family They also briefly discuss the function of confession in guilt reduction

332. GUTHEIL, E A, "Musical Day-Dreams," *Psychoanalytic Review*, 22 (1935), 424-431

Gutheil has made special studies of the fantasy nature of musical production and has been able to supply interesting and convincing illustrations of how music has fantasy meaning to the individual composer.

333 ———, *The Language of the Dream* (New York The Macmillan Company, 1939)

The author likens the dream to a drama in which the subject can project his conflict The characters in a dream are projections of the subject's own impulses, feelings, and tendencies This book gives illustrations showing how in dreams there is a return to childhood states and fantasies and how through regression much of the subject-matter of dreams is infantile Gutheil believes that the superego is the force which directs distortion in dreams By means of drawings he points out how art products become sublimations of more primitive tendencies

334. GUTHRIE, E. R, *The Psychology of Human Conflict* (New York Harper & Brothers, 1938)

Here is a book written from the behavioristic point of view dealing wholly with the problem of conflict According to Guthrie, conflict is the simultaneous operation of two incompatible action systems for one of which there is a failure of inhibition Guthrie discusses unconscious conflict in terms of implicit reactions, which are one of the antagonistic action systems which have been aroused The treatment in this book is consistent and novel and by linking up concepts of conflict with other psychological concepts provides a general psychological orientation to this topic

335. HAGMAN, R R, "A Study of Fears of Children of Pre-School Age," *Journal of Experimental Education*, 1 (1932), 110-130

A study which reports a high correlation between the number of fears of children and of their parents

336. HALDAR, RANGIN, "Art and the Unconscious," *Indian Journal of Psychology*, 10 (1935), 191-195

Haldar, in this paper, states that art is a sublimation of anal erotic tendencies and a projection of narcissistic tendencies into constructions in the real world

337 HALL, C S, and KLEIN, S J, "Individual Differences in Aggressiveness in Rats," *Journal of Comparative Psychology*, 33 (1942), 371-383

This paper presents evidence from experimental studies of rats which indicates that aggressiveness is constitutional

338. HALLOWELL, A I, "Fear and Anxiety as Cultural and Individual Variables in a Primitive Society," *Journal of Social Psychology*, 9 (1938), 25-47

339. ———, "The Social Function of Anxiety in a Primitive Society," *American Sociological Review*, 6 (1941), 869-887

Hallowell illustrated how illness may be a punishment for hostile fantasies directed toward an enemy and how the fears of illness as a punishment for the violation of tribal customs assist in the perpetuation of culture

340. HALVERSON, H M, "Infant Sucking and Tensional Behavior," *Journal of Genetic Psychology*, 53 (1938), 365-430

This is an objective study in which various concomitants of infant sucking are described, including penis erections It is believed that these tensional states are early expressions of anxiety.

341 HAMILTON, G V, "A Study of Perseverance Reaction in Primates and Rodents," *Behavior Characteristics*, 3, Serial No 13 (Baltimore The Johns Hopkins Press, 1916)

342. ———, *Objective Psychopathology* (St Louis. C V Mosby Company, 1925)

Hamilton discusses response to frustration and gives us the term *persistent non-adjustive reaction*

343. HARNIK, JENÖ, "The Various Developments Undergone by Narcissism in Men and in Women," *International Journal of Psychoanalysis,* 5 (1924), 66-83

344 ———, "The Economic Relations Between the Sense of Guilt and Feminine Narcissism," *Psychoanalytic Review,* 15 (1928), 94, 95

This author has written on various aspects of guilt, particularly its significance in depressive states

345. ———, Introjection and Projection in the Mechanism of Depression," *International Journal of Psychoanalysis,* 13 (1932), 425-432

This is a paper of minor importance in which projection is seen first in the act of vomiting

346. HARRIMAN, P L, "Some Imaginary Companions of Older Subjects," *American Journal of Orthopsychiatry,* 7 (1937), 368-370

This is one of several studies of the imaginary companion

347 HART, BERNARD, *Psychology of Insanity,* The Cambridge Manuals of Science and Literature (Cambridge, Eng Cambridge University Press, 1912, fourth edition, New York The Macmillan Company, 1931)

In this small but widely read book, Hart indicates how the mechanisms enter into the mental disorders, with a particularly helpful chapter on projection

348. HART, HORNELL, *Chart for Happiness* (New York The Macmillan Company, 1940)

In this book Hart describes two euphorimeter or happiness tests One is a test of happiness at the moment and the other "in the long run" Hart has given these tests to many groups and is able to state from his experimental findings some of the conditions for happiness

349. ———, *Personality and the Family* (Boston, D C. Heath and Company, 1941).

350. HARVEY, N A, *Imaginary Playmates and Other Mental Phenomena* (Ypsilanti, Michigan State Normal College, 1919)

This is a somewhat rare and inaccessible book The author has brought together material on number- alphabet- and calendar-imagery forms

351 HASLERUD, G M., "Effect of Three Kinds of Frustration upon Behavior of Young and Adult Chimpanzees," *Psychological Bulletin,* 34 (1937), 721, 722

352 ———, "Frustration as an Experimental Problem III Some Inter-Relations of Behavioral Measures of Frustration in Chimpanzees," *Character and Personality,* 7 (1938), 136-139

This is a discussion of observations of reactions to frustration among chimpanzees

353 HEALY, WILLIAM, BRONNER, A F, and BOWERS, A M, *The Structure and Meaning of Psychoanalysis* (New York Alfred A Knopf, 1930)

This important reference book and compendium of psychoanalytic concepts and theories is a veritable mine of dynamic principles Practically all of the topics discussed in the present volume receive consideration in this book Here may be found the most exhaustive analyses of the psychoanalytic mechanisms However, no attempt has been made to eliminate inconsistencies or to pull the material together into a consistent and unified theory

354 HEATHERS, G L, and ARAKELIAN, PETER, "The Relation Between Strength of Drive and Rate of Extinction of a Bar-Pressing Reaction in the Rat," *Journal of General Psychology,* 24 (1941), 243-258

355. HEIMANN, PAULA, "A Contribution to the Problem of Sublimation and the Relation to Processes of Internalization," *International Journal of Psychoanalysis,* 23 (1942), 8-17

356. HENDRICK, IVES, *Facts and Theories of Psychoanalysis* (New York. Alfred A Knopf, 1934)

This basic text on psychoanalysis gives many illustrations of unconscious processes I find Hendrick sensitive to the part that guilt plays in unconscious mo-

tivation However, he is not at all times clear in his discussions of unconscious guilt He tends to personify mental processes and fails to recognize their full dynamic significance He makes much of the conflict between the basic drives and anticipated self-punishment which he believes to be the basis of all neurotic development This book provides interesting illustrations of how early oral, anal, and genital tendencies reveal themselves in later life both by allusions in the language and also by actual behavior.

357 ——, "Suicide as Wish Fulfillment," *Psychoanalytic Quarterly*, 14 (1940), 30-42

This paper presents some interesting thoughts on the attempt to master aggression by identification

358. HENSHAW, R P, "The Concept of Adjustment and the Problem of Norms," *Psychological Review*, 9 (1942), 284-292

359. HEROLD, C M, "Critical Analysis of the Elements of Psychic Functions, Part III," *Psychoanalytic Quarterly*, 11 (1942), 187-210

This author argues against the listing of specific drives in favor of undifferentiated drives This is a far removal from the old doctrine of specific instincts

360 HESS, J H, MOHR, G J, and BARTELME, P F, *The Physical and Mental Growth of Prematurely Born Children* (Chicago University of Chicago Press, 1934)

These authors discuss the prematurely born child and correlate many infantile anxiety states with the fact of premature birth To generalize on these findings, one could claim that the difficult birth predisposes toward greater anxiety

361 HIGGENSON, G deV, *Psychology* (New York The Macmillan Company, 1936)

Another book on general psychology which gives a sympathetic treatment to the unconscious

362. HILGARD, E R and MARQUIS, D G, *Conditioning and Learning* (D Appleton-Century Company, Inc, 1940)

363 HILL, L B, "The Use of Hostility as Defense," *Psychoanalytic Quarterly*, 7 (1938), 254-264

364 HINSIE, L. E, "Paranoia," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York Covici-Friede, 1933; London George Allen & Unwin, 1933), 258-269

365. HOBBES, THOMAS, *Leviathan* (London 1651; New York Oxford University Press)

This treatise, written nearly three hundred years ago is remarkable for its insight and freedom from a traditional and religious point of view Hobbes discusses appetite and aversion and relates them to love and hate Hobbes gives the first formulation of the pain-pleasure principles and is the forerunner of a long line of English philosophers and psychologists who follow the hedonistic school

366. HOLLITSCHER, WALTER, "The Concept of Rationalization," *International Journal of Psychoanalysis*, 20 (1939), 330-332

This paper maintains that rationalizations merely attempt to close the gap between unconscious and conscious recognition of motives and may be either right or wrong.

367. ——, "On the Concept of Psychological Health and Illness," *International Journal of Psychoanalysis*, 24 (1943), 125-140

368. HOLLOMAN, L L, "On the Supremacy of the Negro Athlete in White Athletic Competition," *Psychoanalytic Review*, 30 (1943), 157 162

369. HOLMES, F B, "An Experimental Investigation of a Method of Overcoming Children's Fears," *Child Development*, 71 (1936), 6-30

370. HOLMES, J H, "If America Enters the War What Shall I Do?" *The Christian Century*, 57 (Dec. 11, 1940), 1546-1549

371 HOLT, E B., *Animal Drive and the Learning Process* (New York. Henry Holt and Company, 1931)

This is an excellent, scholarly, and scientific discussion of the organic basis of drive and how behavior is derived from organic need through a process of learning The point of view of Holt's book has been largely incorporated in the present book

372. HORNEY, KAREN, "The Overvaluation of Love," *Psychoanalytic Quarterly*, 3 (1934), 605-638

This author has made significant contributions to the psychology of women based on her psychoanalytic practice The paper listed above presents impressions that she has gained from her work with women concerning their overvaluation of love This point of view has undergone further refinement in her more recent books

373. ——, *The Neurotic Personality of Our Time* (New York W W Norton & Company, Inc, 1937)

This author has a fresh point of view, of considerable importance, toward anxiety She sees anxiety as arising from threats to safety and satisfaction, interpreting these both from the point of view of the infant and also of the adult She describes with particular clarity how anxiety arises when various personality defenses against it have been overthrown She speaks of neurotic trends, meaning character traits which have been built up to ward off anxiety, and she thinks of these as façades or false fronts designed to hide both from the world and from oneself weaknesses and unacceptable impulses underneath Anxiety arises when these façades are threatened There is a discussion of self-recrimination and other expressions of inferiority which protect a person against change and invite reassurance from others Horney presents a very penetrating analysis of neurotic love which she believes is a regression of love to the narcissistic level.

374. ——, *New Ways in Psychoanalysis* (New York W W Norton & Company, Inc, 1939)

Horney cuts through the orthodox Freudian formulations Her analysis of the motivation underlying repression is particularly valuable She believes that repression occurs when underlying drives become a threat to the personality structure She is critical of Freud's concept of fixation and questions whether infantile traits persist in unaltered form in child and adult behavior The superego she conceives as being the front by which the individual tends to hide both from himself and others his underlying weakness Horney's position with regard to guilt is important and deserves careful consideration She emphasizes particularly the fear of being detected or unmasked and believes the various expressions of guilt grow out of the need to hide tendencies which would reveal the weakness of the individual both from himself and others The guilt producing conflict she sees in terms of a disparity between the impulse which has to be hidden and the defense against it Horney is critical of the concept of sublimation using it as an illustration of the general criticism of the libido theory Horney doubts the operation of a *repetition compulsion* which implies that there is a tendency to repeat in later life the kinds of activity which had their initiation in infancy

375. ——, *Self Analysis* (New York W W Norton & Company, Inc, 1942)

376. HORTON, DONALD, "The Function of Alcoholism in Primitive Societies A Cross Cultural Study," *Quarterly Journal of Study of Alcohol*, 4 (1943), 199-320

This doctor's dissertation analyzes the excessive use of alcohol in terms of the Yale theory of learning The author concludes that alcohol serves to reduce anxiety and attempts to demonstrate his point by relating the use of alcohol to the conditions of living in various primitive societies

377 HOVLAND, C. I, and SEARS, R R, "Experiments on Motor Conflicts I Types of Conflict and Their Modes of Resolution," *Journal of Experimental Psychology*, 23 (1938), 477-493

This is the first of a series of experiments designed to validate some of Lewin's theories concerning the response to his three types of conflict, namely two opposing positive valences, one positive and one negative valence, and two negative valences Hovland and Sears believe there is a fourth type not mentioned by Lewin in which two positive valences cooperate with two negative valences in producing a conflict In general their experimental results confirm Lewin's deductive conclusions

378 HOWARD, F E, and PATRY, F L, *Mental Health, Its Principles and Practice* (New York Harper & Brothers, 1935)

These two writers discuss the healthy-minded person and emphasize particularly his adaptability and capacity to find substitute solutions to his difficulties

379. HOWE, E G, "Compulsive Thinking as a Castration Equivalent," *British Journal of Medical Psychology*, 9 (1929), 159-178

Here is one of the few helpful discussions of the mechanism of isolation, although it is not specifically recognized by that name

380. VON HUG-HELLMUTH, HERMINE, *A Study of the Mental Life of the Child*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 29 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1919)

Here is another surprising contribution written years before its time and hidden in this monograph series It takes its place as one of the most important and authoritative child psychologies based on a dynamic point of view It contains an excellent section on imagination.

381. HULL, C L, *Principles of Behavior* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1943).

382. HUME, DAVID, *An Inquiry Concerning the Human Understanding* (Edinburgh, 1777)

383 HUNT, J McV, "An Instance of the Social Origin of Conflict Resulting in Psychosis," *American Journal of Orthopsychiatry*, 8 (1938), 158-164

384. ———, "The Effects of Infant Feeding Frustration upon Adult Hoarding in the Albino Rat," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 36 (1941), 338-360

385. ———, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York The Ronald Press Company, 1944), Vols 1, 2

This is a valuable collection of original papers reviewing recent developments and the present status of various topics in personality Some of them are treated from the dynamic viewpoint

386. ———, and WILLOUGHBY, R. R, "The Effect of Frustration on Hoarding in Rats," *Psychosomatic Medicine*, 1 (1939), 309, 310

Deprivation, in the sense that the goal object (in this case, food) lacks qualities of adequate satisfaction, has more influence on hoarding than does frustration, in the sense of the removal or denial of the object (food) altogether.

387. HURLOCK, E B, and BURNSTEIN, M, "The Imaginary Playmate. A Questionnaire Study," *Journal of Genetic Psychology*, 41 (1932), 380-392

This is probably the best of the questionnaire inquiries on the imaginary playmate

388. HUSCHKA, MABEL, "The Incidence and Character of Masturbation Threats in a Group of Problem Children," *Psychoanalytic Quarterly*, 7 (1938), 338-356

This paper reports evidence of the frequency with which anxious children have been threatened with bodily harm for masturbatory practices

389. ———, "The Child's Response to Coercive Bowel Training," *Psychosomatic Medicine*, 4 (1942), 301-308

This is one of a growing number of recent studies which testify by direct observation to some of the earlier and tentative psychoanalytic findings.

390. HUTCHINSON, E D, "The Period of Frustration in Creative Endeavor," *Psychiatry*, 3 (1940), 351-359.

This paper discusses what becomes of the frustrations of the creative person

391. HUTTON, LAURA, *The Single Woman and Her Emotional Problems* (Baltimore William Wood and Company, 1935, second edition, 1937)

Hutton discusses the adjustment problems of the single woman from a Freudian point of view

392 ICHHEISER, G, "On Certain Conflicts in Occupational Life," *Occupational Psychology*, 14 (1940), 107-111.

This paper provides interesting illustrations of frustration in occupational life. The author uses the term *conflict* throughout, referring in every case to psychological frustrations.

393. IOVETZ-TERESCHENKO, N M, *Friendship—Love in Adolescence* (London George Allen & Unwin, 1936)

This author from Russia gathered letters, diaries, and interview material from adolescents which indicate that the feelings and attitude of friendship as expressed by adolescents are quite different from their sexual interests

394. ISAACS, SUSAN, "Privation and Guilt," *International Journal of Psychoanalysis,* 10 (1929), 335-347

395 ——, "Habit," in John Rickman, editor, *On the Bringing up of Children* (London Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, 1938), Ch. V, 123-166

396 ——, *Social Development in Young Children* (New York. Harcourt, Brace and Company, 1937)

This important book is based on Mrs Isaacs' observations and interpretations of conversations of children from three to four years old while she was head mistress of the Malting House School. It is rich in illustration and realistic in content and has been drawn upon perhaps as much as any one single source in the preparation of the present volume There is probably no other book as rich in analysing the nature and meaning of aggressiveness in children Mrs Isaacs has a profound understanding of the effect of punishment on children She illustrates how a child will reach out for punishment in order to test its severity to determine how much he will be able to tolerate She describes clearly the process by which punishment and aggression are turned in on the person This reference gives the best description of the process of testing reality Mrs Isaacs shows how anxiety grows out of the punishment of aggressive and erotic tendencies She makes the superego particularly vivid as the "internalized parent" She shows how little children project their own bad tendencies both in thought and action and how they project the superego onto other children and adults Her discussion of the reaction of the child to weak parents in terms of the identification of the submissive parent with the bad wish-self within is excellent She has provided us with one of the most important contributions on fantasy in children She emphasizes the use of love to reassure the self against impulses of hate

397. ——, "An Acute Psychotic Anxiety Occurring in a Boy of Four Years," *International Journal of Psychoanalysis,* 24 (1943), 13-32.

398. ISAKOWER, OTTO, "On The Exceptional Position of the Auditory Sphere," *International Journal of Psychoanalysis,* 20 (1939), 340-348

399. JAMES, WILLIAM, "Some Human Instincts," *Popular Science Monthly,* 31 (1887), 160-170, 666-681.

400. ——, "What Is an Instinct?" *Scribner's Magazine,* 30 (1887), 433-451

401 ——, *Psychology* (New York Henry Holt and Company, 1890), Vols 1, 2.

James was not the first to recognize instincts in human behavior As early as 1881, William Preyer discussed the behavior of his own son in terms of instinct, but James was the first to formulate a list of instincts of human behavior, and the instinct theory which held sway in American psychology for thirty years may be said to have had its start with James This instinct theory, stemming as it does from the biological discoveries of the nineteenth century, is an interlude in psychological thought The point of view of Hobbes is more modern, and we like to think more true, than the doctrine based on innate instinct

402. ——, *Talks to Teachers on Psychology* (New York Henry Holt and Company, 1899)

403 ——, "The Moral Equivalent of War," in *Memoirs and Studies* (New York Longmans, Green and Co, 1911 Originally this was a publication of the American Association For International Conciliation, Feb, 1910, No 27)

404. JAMESON, E D, *Fantasy in Early Childhood A Psychoanalytic Description of Personality Formation in the Normal Child,* Doctor of Education Project, Manuscript No 46 (New York Teachers College, Columbia University, 1938)

This unpublished Doctor of Education project is a lucid and penetrating analysis of fantasy from before birth through the first year of infancy

405 JEKELS, LUDWIG, and BERGLER, EDMUND, "Uebertragung und Liebe," *Imago*, 20 (1934), 7-31

This is one of the first occasions in which guilt is proposed as a basis for object love

406. JELGERSMA, G, "Projection," *International Journal of Psychoanalysis*, 7 (1926), 353-358

This is a basic paper discussing the place of projection in psychoanalytic theory

407 JENKINS, L B, "Mental Conflicts of Eurasian Adolescents," *Journal of Social Psychology* 5, (1934), 402-408

This is an interesting paper on culture conflict in a Eurasian community

408. JENKINS, R L, "The Sense of Guilt and Its Relations to Treatment Work with Offenders," *Mental Hygiene*, 26 (1942), 568-582

This paper describing cases in a boy's corrective institution in which guilt was stunted, missing, or misdirected, is a contribution to our understanding of the psychopathic personality and the superego

408 JERSILD, A T, *Child Psychology* (New York Prentice-Hall, 1933, revised edition, 1940)

Jersild's researches on children's fears are classical, but limited to a description and tabulation of fears commonly expressed by children, and to statistical relationships to such general factors as age, sex, et cetera He also has made experimental and observational studies of fantasies and day-dreaming in children, reporting that children's day-dreams represent wishes more often than fears He also reviews some of the significant studies in the growth of sympathy in young children

410. ——, and HOLMES, F B, *Children's Fears*, Child Development Monograph, No 20 (New York. Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1935)

411 ——, and HOLMES, F B., "Methods of Overcoming Children's Fears," *Journal of Psychology*, 1 (1935), 75-104.

412 ——, and MARKEY, F V, *Conflicts between Preschool Children*, Child Development Monograph, No. 21 (New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1935)

In this study aggression is equated with general activity, inasmuch as positive correlation was found between all aspects of combative behavior

413. ——, MARKEY, F V, and JERSILD, C D, *Children's Fears, Dreams, Wishes, Daydreams, Likes, Dislikes, Pleasant and Unpleasant Memories*, Child Development Monograph, No 12 (New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1933)

414 JOKL, P H., "The Mobilizing of the Sense of Guilt A Contribution to the Problem of Active Therapy," *International Journal of Psychoanalysis*, 8 (1927), 479-485

This author discusses active therapy in which steps are taken to produce guilt in order that it may be more directly dealt with

415 JONES, ERNEST, *Papers on Psychoanalysis* (London· Baillière, Tindall and Cox, Baltimore. William Wood and Company, 1913, second edition 1918, third edition 1923; fourth edition 1938)

This collection of the papers of the eminent British psychoanalyst, now in its fourth edition, includes a number of significant theoretical formulations, and provides numerous illustrations of the various mechanisms and dynamic trends within personality In particular Jones has made important contributions to our understanding of the superego, to the character structure resulting from the fixation of infantile trends and in the understanding of the feminine character.

416. ——, (from the third edition), II "Rationalization in Everyday Life," 8-15, also *Journal of Abnormal Psychology*, 3 (1908), 161-169

Jones, in this paper, is the first to use the term *rationalization* in its present meaning

417. ——, XXX (from the third edition), "Hate and Anal Erotism in the Obsessional Neurosis" (1913), 553-561.

Jones has elaborated the earlier findings on the infantile sadistic trends and has correlated them with later neurotic tendencies

418. ———, V (from the fourth edition), "The Unconscious and Its Significance for Psychopathology" (1914), 120-128.

419. ———, VI "The Theory of Symbolism" (1916), 129-186

420. ———, VII "The Origin and Structure of the Superego" (1926), 187-195.

In this paper Jones brings together various statements of Freud concerning the superego and attempts to relate this phase of personality to consciousness, repression, external love objects, also fear, hate, and sex He sees the superego as a compromise between the desire to love and the desire to be loved

421 ———, VIII "The Classification of the Instincts" (1923), 196-202

This paper is an important discussion of the classification of the fundamental drives

422 ———, IX "Psychoanalysis and the Instincts" (1935), 203-220

In this second paper on the discussion of drives Jones finds Freud's life and death instincts difficult to assimilate into his theoretical structure

423. ———, XII, "The Relationship between Dreams and Psychoneurotic Symptoms" (1911), 265-287

424. ———, XIII "A Forgotten Dream Note on the Oedipus Saving Fantasy" (1912), 288-298

In this paper the saving or rescue fantasy is discussed

425. ———, XIX "The Pathology of Morbid Anxiety" (1911), 407-432

This paper, together with the following and later paper, is a contribution by Jones to our understanding of the nature of anxiety

426 ———, XX "The Psychopathology of Anxiety" (1929), 433-443

427. ———, XXI, "Fear, Guilt and Hate" (1929), 444-459.

This is one of the most important of the collected papers tying together three dynamic concepts and particularly relating anxiety to aggression and discussing the ways in which this anxiety may become introjected as guilt

428. ———, XXIV "Jealousy" (1929), 469-485

This brilliant analysis of the emotion of jealousy is one of the most erudite of Jones' papers

429. ———, XXVII. "The Significance of the Grandfather for the Fate of the Individual" (1913), 519-524

This paper and the next following anticipated by many years the now familiar mechanism by which the attitude of parents towards their children may be the displacement of infantile attitudes toward their own parents

430. ———, XXVIII "The Fantasy of the Reversal of Generations" (1913), 525-530

431. ———, XXIX, "Anal-Erotic Character Traits" (1918), 531-555

Here is a comprehensive survey of character traits in mature years resulting from infantile attitudes toward excretory tendencies

432. ———, XXX. "The Early Development of Female Sexuality" (1927), 556 570

This paper and the two following contain Jones' mature deliberations with regard to the dynamics underlying the formation of the feminine character with particular emphasis on some of the infantile fantasies and impulses which are characteristic of the girl baby It is in this paper that Jones first introduces his term *aphanisis*, by which he refers to the loss or extinction of libidinal impulses Jones believes that the fear of this loss is one of the most important causes o anxiety.

433. ———, XXXI "The Phallic Phase (1932), 571-604

434. ———, XXXII "Early Female Sexuality" (1935), 605-616

435 ———, "The Development of the Concept of the Superego," *Journal of Abnormal and Social Psychology,* 23 (1928), 276-285

Jones, probably more than any other, is helpful in elucidating the motivation underlying the superego

436. ———, "Psychoanalysis and the Psychology of Religion," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York Covici-Friede, 1933, London George Allen & Unwin, 1933), 323-337 Reprinted under the title, "Psychology of Religion" (New York International University Press, 1944), 315-325

437. ———, "Psychoanalysis and the Instincts," *British Journal of Psychology*, 26 (1936), 273-288

438. ———, "Love and Morality—A Study of Character Types," *International Journal of Psychoanalysis*, 18 (1937), 1-5

439 ———, "The Concept of a Normal Mind," *International Journal of Psychology*, 23 (1942), 1-8

This paper, which originally appeared in Schmalhausen's *Our Neurotic Age*, defines normality in terms of (1) positive social feeling, (2) efficiency in mental functioning, and (3) happiness

440. JONES, M C, "The Elimination of Children's Fears," *Journal of Experimental Psychology*, 7 (1924), 383-390

This is a classical study of the elimination of fear in children by conditioning

441. JOST, HUDSON, "Some Physiological Changes During Frustration," *Child Development*, 12 (1941), 9-15

Frustration causes sympathetic physiological reactions

442. JUNG, C G, *Psychology of the Unconscious* (New York Moffatt, Yard & Company, 1916, New York Dodd, Mead & Company, 1925)

Jung believes in the racial inheritance of fantasy, a point of view which has not been adopted in the present discussion

443 ———, *Studies in Word Association* (New York Moffatt, Yard & Company, 1918)

444. ———, *Psychological Types* (New York Harcourt, Brace and Company, 1923)

445. KAHN, EUGENE, "Adjustment and Its Limits," *American Journal of Psychiatry*, 94 (1938), 1277-1290

One may find in Kahn's discussion the distinction between elaboration of the meaning of active and passive adjustment Kahn also gives some attention to the problem of the genius and his place in society

446. KAMIAT, A H, "The Cosmic Phantasy," *Psychoanalytic Review*, 15 (1928), 210-219

An important paper dealing with fantasies of the cosmos, heaven, Utopia, and world destruction

447. KANN, ROBERT, "Criminology and Aggression," *Psychoanalytic Review*, 28 (1941), 384-408

448 KANTOR, J R, "Toward a Scientific Analysis of Motivation," *Psychological Record*, 5 (1942), 225-275

This is a somewhat logical and semantic analysis of recent motivation theories

449. KARDINER, ABRAM, *The Individual and His Society* (New York Columbia University Press, 1939)

In this book Kardiner, surveying the impact of culture on personality in two primitive cultures, is able to draw significant conclusions concerning this impact He reviews the conditions for the arousal of anxiety in varying cultures and summarizes the forces that make for differences in anxiety production In particular, he recognizes the fear of retaliation arising from a person's projection of his hostile feelings onto another He shows how the superego is a factor in the establishment of culture and relates guilt to the aggressiveness in the culture growing out of the conditions of living He discusses the ways in which various types of conflict are met in different culture groups Kardiner bases his analysis of our present culture to a considerable degree on infantile strivings for omnipotence

450. ———, *The Traumatic Neuroses of War*, Psychosomatic Medicine Monograph, Nos 2, 3. Published with the sponsorship of the Committee on Problems of Neurotic Behavior, Division

of Anthropology and Psychology, National Research Council, Washington, D C (Menasha, Wis George Banta Publishing Company, 1941, New York Paul B Hoeber, 1941)

451 KEISTER, M. E, "The Behavior of Young Children in Failure," in R. G Barker, J S Kounin, and H F Wright, editors, *Child Behavior and Development* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1943), Ch XXV

452. KELLY, E L, "Psychological Factors in Assortative Mating," *Psychological Bulletin*, 37 (1940), 473

453. KLEE, J B, "The Relation of Frustration and Motivation to the Production of Abnormal Fixations in the Rat," *Psychological Monographs*, 56, No 4, whole No 257 (1944)

454 KLEEMAIER, R W, "Fixation and Regression in the Rat," *Psychological Monograph*, 54 No 4, whole No 246 (1942)

This is one of the many recent experimental studies attempting to demonstrate fixation and regression experimentally with rats The author's most positive conclusion is that electric shock is important in causing fixated behavior

455 KLEIN, MELANIE, "Infant Analysis," *International Journal of Psychoanalysis*, 7 (1926), 31

Here is an early paper showing the relation between early introjections of mother and other figures who are targets of the infant's wrath and later attempts to make reparation for this damage by sublimation

456 ———, "Infantile Anxiety-Situations Reflected in a Work of Art and in the Creative Impulse," *International Journal of Psychoanalysis*, 10 (1929), 436-443

Mrs Klein shows how early introjected parental figures which are associated with hate and badness, are later managed by projecting them out into the world as art products in which reconstructed good figures serve as reparations for earlier hate and aggressive tendencies This discussion indicates a dynamic basis for sublimation

457. ———, "A Contribution to the Theory of Intellectual Inhibition," *International Journal of Psychoanalysis*, 12 (1931), 206-218

In this paper Klein shows how a boy's difficulty in learning French is due to emotional conflict and how the French words are related to his Oedipus situation Klein says that by helping the boy to sublimate his Oedipus conflict she was able to help him resolve his difficulties with the language

458. ———, *The Psychoanalysis of Children*, International Psychoanalytical Library, No 22 (London The Hogarth Press, 1932)

This amazing book is difficult to accept in its entirety because of the depth of its probings into the infantile mind Mrs Klein secured her data from observations of the play of young children, and the validity of her findings depend on the validity of her method of play interpretation Her data were obtained from neurotic children whose fantasies were probably more distorted than would be those of a normal child However, many of her findings are being validated by subsequent work in child analysis She points out that frustration is looked upon by the young child as punishment and discusses the effect on later development of difficulty in tolerating frustration in early infancy Mrs Klein finds many phenomena appearing in the first months of life which formerly were believed to have their origin at a much later period Anxiety is present from the beginning of life and is related to inner tensions and discomforts as well as to outer frustrations The superego also is observed in the first and second years of life, and, according to Mrs Klein, stems not only from the restraints of the children's parents but also from the sadistic tendencies of the infant itself Mrs Klein has paved the way of the British school of psychoanalysis in its belief that anxiety, guilt, and reactions thereto are a function of the infant's inner processes as much as they are reaction to outer frustrations This book is a valuable source on infantile fantasy

459 ———, "The Early Development of Conscience in the Child," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York Covici-Friede, 1933, New York The International Universities Press, 1944), 149-161 Reprinted (London George Allen & Unwin, 1933), 64-74

In this paper Mrs Klein gives a less technical summary of some of her findings resulting from her analyses of young children.

460. "A Contribution to the Psychogenesis of Manic-Depressive States," *International Journal of Psychoanalysis*, 16 (1935), 145

461. ———, "Weaning," in John Rickman, editor, *On the Bringing up of Children* (London Kegan Paul, Trench, Trubner & Co, 1938), Ch II, 34-56

462. ———, and RIVIERE, JOAN, *Love, Hate and Reparation*, Psychoanalytical Epitomes, No 2 (London The Hogarth Press, 1937)

This little book is a gem The essay by Joan Riviere is a masterly treatment of the problems of hate and aggression as they develop in the young child Mrs Klein's essay represents her philosophy of the dynamic factors which lead to the development of the mature personality Many of the positions taken in this book must be recognized as pure speculation, but they represent a consistent statement of the implications of the points of view of the British school of psychoanalysis concerning the development of personality from drives in the infant Mrs Klein describes the nature of mature love and interprets it as the fulfilment of early infantile strivings She points out how relations betwen husband and wife in a successful marriage grow out of their fantasies as children in relation to their own parents She elaborates the meaning of reparation, and according to her theory many of the noblest traits in people grow out of their attempt to do reparation for earlier sadistic impulses Mrs Klein is one of the few psychoanalysts to devote attention to the positive well-integrated person

463 KLUCKHOHN, CLYDE, "Myths and Rituals A General Theory," *Harvard Theological Review*, 35 (1942), 45-79

This is a very interesting paper explaining myths and rituals as institutionalized defenses against anxiety.

464. KNIGHT, R P, "Introjection, Projection and Identification," *Psychoanalytic Quarterly*, 9 (1940), 334-341.

This is one of these rare articles which clarifies much confused thinking by a simple distinction

465 ———, "Intimidation of Others as a Defense against Anxiety," *Bulletin of the Menninger Clinic*, 6 (1942), 4-14

466. KOCH, H. L, "The Influence of Some Affective Factors upon Recall," *Journal of General Psychology*, 4 (1936), 171-190

This is one of several experimental studies of recall which indicates the fact that unpleasant material may be repressed.

467. KOPP, R O, "Sensation and Narcissism," *International Journal of Psychoanalysis*, 6 (1925), 292-299

468 KORCHIN, S J, "A Comparative Study of Three Projective Techniques in the Measurement of Frustration-Reaction Types," *Clark University Bulletin*, 15 (1943), 70-72

This abstract of a Clark University thesis presents the results of an experiment in which Rosensweig's triadic hypothesis is verified

469. KRIS, ERNST, "Laughter as an Expressive Process," *International Journal of Psychoanalysis*, 21 (1940), 314-341

In this paper Kris discusses laughter as a defense against anxiety among other meanings and functions

470 ———, "Art and Regression," *Transactions of the New York Academy of Sciences* Series II, No 6 (May, 1944), 236-250

Kris distinguishes between libidinal and historical regression and ego regression which correspond roughly to our two major types The author also proposes an interesting theory of art as a regressive phenomenon

471. KUBIE, L S., "The Fantasy of Dirt," *Psychoanalytic Quarterly*, 6 (1937), 388-425.

This is a paper with wide implications concerning the origin of attitudes of disgust and revulsion to dirt and obscenity

472. ———, "Athletics and Aggression," *Child Study*, 15 (1938), 236-238, 254.

A New York psychoanalyst discusses with parents some of the motivational factors in athletics

473. ———, "A Critical Analysis of the Concept of a Repetition Compulsion," *International Journal of Psychoanalysis*, 20 (1939), 390-402

474. ———, "The Ontogeny of Anxiety, *Psychoanalytic Review*, 28 (1941), 78-85

A significant paper describing some of the adjustments which the infant has to make at the time of birth This paper analyzes the trauma of birth and shows what it means physiologically

475 ———, "A Physiological Approach to the Concept of Anxiety," *Psychosomatic Medicine*, 3 (1941), 263-276

This is a superb paper in which Kubie extends and clarifies some of Freud's later theories of anxiety Kubie ties anxiety up to its physiological roots and points out how it comes in between tendencies toward excitation and inhibition, and how it apparently both precedes and follows inhibition

476 KÜNKEL, FRITZ, *Let's Be Normal!* (New York: Ives Washburn, Inc, 1929).

477. ———, and DICKERSON, R E., *How Character Develops* (New York Charles Scribner's Sons, 1940)

Kunkel approaches his topic from the standpoint of individual psychology and [illegible] l has made an [illegible] which is not much different from the concept of secondary narcissism as described in the present book

478 KUNTZ, ALBERT, *The Autonomic Nervous System* (Philadelphia Lea & Febiger, 1929, second edition, 1934)

Of the various manuals on the autonomic nervous system mentioned in this bibliography, this is the most adequate in its discussion of the nervous regulation of sexual activity

479. LAFORE, G G, *Practices of Parents in Dealing with Preschool Children* (New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1945)

480. LAFORGUE, RENÉ, "The Mechanisms of Isolation in Neurosis and Their Relations to Schizophrenia," *International Journal of Psychoanalysis*, 10 (1929), 170-182

481. ———, "On the Eroticization of Anxiety," *International Journal of Psychoanalysis*, 11 (1930), 312-321.

Discussing cases in which anxiety is pleasurable the author also points out how guilt, too, can serve pleasure This tendency can be seen more clearly in Alexander and Reik's theory that through self-punishment one buys the privilege of prohibited enjoyment

482. ———, *The Relativity of Reality Reflections on the Limitations of Thought and the Genesis of the Need for Causality*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 66 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1940)

483. LAMPL, HANS, "Contributions to Case History A Case of Borrowed Sense of Guilt," *International Journal of Psychoanalysis*, 8 (1927), 143-158.

Lampl's contribution is the most elaborated discussion of the nature of borrowed guilt

484. LANDIS, CARNEY, and others, *Sex in Development* (New York Paul B Hoeber, 1940)

485. LANGE, CARL, *Om Sindsbevaegelser, et psyko-fysiologisk studie* (Kjøbenhavn, 1885)

486. LANGFORD, W S, "Anxiety Attacks in Children," *American Journal of Orthopsychiatry*, 7 (1937), 210-218

Langford presents a helpful review of the physical manifestations of anxiety states

487 LASHLEY, K S, "Experimental Analysis of Instinctive Behavior," *Psychological Review*, 45 (1938), 445-472

This noteworthy presidential address presents the latest published thoughts of Lashley concerning human behavior Lashley finds it difficult to trace all the motivation back to visceral tensions and

presents evidence to indicate that there is a driving force within the nervous system itself

488 LAWTON, GEORGE, "What is a Well-Adjusted Person?" *Journal of Adult Education*, 10 (1938), 395, 396

In this paper Lawton lists a number of criteria of good adjustment This is a carefully thought-out paper and is well worth consulting It has been used extensively in preparing the criteria of good adjustment in the chapter, "Normality"

489. LAY, WILFRED, *The Child's Unconscious Mind* (New York Dodd, Mead & Company, 1919).

This book by a lay writer gives considerable stress to the operation of the mechanisms in the formation of personality Lay does not stay strictly with the orthodox psychoanalytic formulations, and since his work is not based on clinical findings, it tends to be distorted in several respects On the other hand, it has many stimulating ideas

490 LEHMAN, H C, and WITTY P A, "Playing School A Compensatory Mechanism," *Psychological Review*, 33 (1926), 480-485

491. ———, "Some Compensatory Mechanisms of the Negro," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 23 (1928), 28-37

These two articles discuss forms of play as compensatory devices

492 LEHRMAN, P R, "Phantasy in Neurotic Behavior," *Medical Journal and Record*, 126 (1927), 342-374

493 ———, "The Fantasy of Not Belonging to One's Family," *Archives of Neurology and Psychiatry*, 18 (1927), 1015-1023

Lehrman has made contributions to the interpretation of the significance of the foster-child fantasy. He points out how this fantasy grows out of the Oedipus complex and is an attempt to justify Oedipus strivings

494 LERNER, EUGENE, and MURPHY, L B, *Methods For the Study of Personality in Young Children*, Monographs for the Society for Research in Child Development, No 30 (Washington, D C Society for Research in Child Development, National Research Council, 1941)

495. LEVEY, H B, "A Critique of the Theory of Sublimation," *Psychiatry*, 2 (1939), 239-270

This is an unusually thorough critique with quotations from writers from various fields concerning sublimation. These quotations are so well selected as to make it unnecessary in large part to refer to the original sources Levey tends to be critical of the concept of sublimation as developed by Freud because of the large number of issues not satisfactorily settled

496 LEVIN, MAX, "The Feelings of Guilt and Its Effects," *Mental Hygiene*, 15 (1931), 714-728

497. ———, "Activation of a Repressed Impulse under Apparently Paradoxical Circumstances," *International Journal of Psychoanalysis*, 17 (1936), 355-359

This author has the interesting theory that when the ego establishes stronger defenses in one direction the result is that expression of libidinal tendencies in another direction may be relaxed It is thought that when the defenses are weak in general, barriers must be raised against any kind of expression as in certain compulsive characters, whereas when the ego is stronger it can afford to lower its barriers in many directions

498 LEVINE, MAURICE, *Psychotherapy in Medical Practice* (New York· The Macmillan Company, 1942)

This book contains one of the finest discussions of the meaning of normality available

499. LEVY, D. M., "Finger-Sucking and Accessory Movements in Early Infancy (An Etiologic Study)," *American Journal of Psychiatry*, 7 (1928), 881-918

500. ———, "Experiments on the Sucking Reflex and Social Behavior of Dogs," *American Journal of Orthopsychiatry*, 4 (1934), 203-224.

501. ———, "Hostility Patterns in Sibling Rivalry Experiments," *American Journal of Orthopsychiatry*, 6 (1936), 183-257

This study of David Levy's is one of the two studies (the other by Pearson) which describe from actual observation the methods which children employ in handling and defending themselves against aggressive trends The importance of this study cannot be overemphasized

502. ———, *Studies in Sibling Rivalry*, Research Monograph, No 2 (New York The American Orthopsychiatric Association, 1937)

503. ———, V "The Hostile Act," *Psychological Review*, 48 (1941), 356 361

504. ———, "Experiments in Sibling Rivalry," in R G Barker, J S Kounin, and H. F Wright, editors, *Child Behavior and Development* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1943), Ch XXIII, 397-410

505. ———, "Hate as a Disease," *Journal of Educational Sociology*, 16 (1943), 354-358

506. ———, "Hostility Patterns Deviations from the Unit Act of Hostility," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 441-462

507. LEWIN, B. D, "Conscience and Consciousness in Medical Psychology," *Psychoanalytic Review*, 17 (1930), 20-25

This author shows how conscience and consciousness have the same etymological roots, indicating that consciousness, perhaps, grows out of one's awareness of right and wrong

508. ———, "Anal Eroticism and the Mechanism of Undoing," *Psychoanalytic Quarterly*, 1 (1932), 343, 344

509. ———, "The Body as Phallus," *Psychoanalytic Quarterly* 2 (1933), 24-27

510. ———, "Obsessional Neuroses," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York Covici-Friede, 1933, London George Allen & Unwin, 1933), 219-228 Reprinted (New York International Universities Press, 1944), 199-206

511. LEWIN, KURT, "Environmental Forces in Child Behavior and Development," in Carl Murchison, editor, *Handbook of Child Psychology* (Worcester, Mass Clark University Press, 1931), Ch XIV, 590-625.

512. ———, *A Dynamic Theory of Personality* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1935)

Lewin's theoretical analyses of dynamic factors are of the highest importance They have already had considerable influence on psychological thinking and have been incorporated into this book in the chapters on frustration, punishment, aggression, and conflict Lewin has made an important analysis of the significance of barriers in frustrations and the varieties of substitute responses to frustration His analysis of the three types of conflict is classical In Chapter IV, "The Psychological Situation—Reward and Punishment," there is a discussion and analysis of situations in which punishment is given and the ways in which a child may respond to it

513. ———, *The Conceptual Representation and the Measurement of Psychological Forces*, Contributions to Psychological Theory, 1, No 4 (Durham, N C Duke University Press, 1938)

514. ———, LIPPITT, RONALD, and ESCALONA, S K, *Studies in Topological and Vector Psychology* I University of Iowa Studies in Child Welfare, 14, No 3 (Iowa City University of Iowa Press, 1940)

515 ———, LIPPITT, RONALD, and WHITE, R K, "Patterns of Aggressive Behavior in Experimental Created Social Climates," *Journal of Social Psychology*, 10 (1939), 271-299

516. ———, and OVSIANKINA, M., "Untersuchungen zur Handlungs und Affektpsychologie, VI Die Wiederaufnahme unterbrochener Handlungen," *Psychologische Forschung*, 11 (1928), 302-379

517. ———, and ZEIGARNIK, BLUMA, "Untersuchungen zur Handlungs und Affektpsychologie, III, Das Behaltenerledigter und unerledigter Handlungen, *Psychologische Forschung*, 9 (1927), 1-85

518 LIDDELL, H S, "Conditioned Reflex Method and Experimental Neurosis," in J McV Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York The Ronald Press Company, 1944), Vol 1, Ch XII, 389-412.

519. LIPPMANN, H S, "The Treatment of Aggression Round Table VI Psychoanalytic," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 415-418

520. LISS, EDWARD, "Libidinal Fixations as Sublimation Determinants," *American Journal of Orthopsychiatry*, 5 (1935), 126-131

521. ———, "Examination Anxiety," *American Journal of Orthopsychiatry*, 14 (1944), 345-349

This author continues his analysis of the unconscious determinants of various aspects of education

522. LOCKE, JOHN, *An Essay Concerning the Human Understanding* (London 1690, New York E P Dutton & Co, Inc)

523 LORAND, SÁNDOR, "A Note on the Psychology of the Inventor," *Psychoanalytic Quarterly*, 3 (1934), 30-41

In this paper Lorand indicates how invention has a dynamic origin in fantasy

524. ———, "Fairy Tales and Neurosis," *Psychoanalytic Quarterly*, 4 (1935), 234-243

525. ———, "Fairy Tales, Lilliputian Dreams, and Neurosis," *American Journal of Orthopsychiatry*, 7 (1937), 456-464

Lorand has made contributions to our understanding of the significance of fairy-tales He believes that they may contribute definitely to the neurotic difficulties of an anxious child

526. ———, "Role of the Female Penis Fantasy in Male Character Formation," *International Journal of Psychoanalysis*, 20 (1939), 171-182

527 ———, editor, *Psychoanalysis Today* (New York; Covici-Friede, 1933, London George Allen & Unwin, 1933). Republished (New York International Universities Press, 1944)

528. LORENTE DE NÓ, R, "Facilitation of Motoneurones," *American Journal of Physiology*, 113 (1935), 505-523

529. LORGE, IRVING, "Is Punishment Necessary for Discipline?" *Understanding the Child*, 3 (June, 1933), 7-9

Here are some interesting generalizations concerning punishment from learning experiments and applications of them to the general problem of discipline

530 LOUTTIT, C M, *Clinical Psychology* (New York Harper & Brothers, 1936)

Louttit summarizes data concerning day-dreaming and points out its values and its dangers when carried to excess.

531. LOW, BARBARA, *Psychoanalysis and Education* (New York Harcourt, Brace and Company, 1928)

This book gives illustrations of unconscious tendencies of children, particularly as they may be observed in the school situation

532. LOWENFELD, MARGARET, "The World Pictures of Children A Method of Recording and Studying Them," *British Journal of Medical Psychology*, 18 (1939), 65-101.

Miss Lowenfeld has devised her own projective method of permitting children to build up a fantasy world out of a collection of toy materials This paper is extremely interesting because of the vitriolic attack on Miss Lowenfeld's work by a group of child analysts

533. LOWREY, L G, *Problems of Aggression and Hostility in the Exceptional Child*, Proceedings of Fifth Institute on the Exceptional Child, under the auspices of the Child Research Clinic of the Woods Schools (Langhorne, Pa · 1938), 22-30.

534 ———, "The Treatment of Aggression Round Table I. Introduction," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 384-387.

535. ———, "The Treatment of Aggression. Round Table IX Summary," *American Journal of Orthopsychiatry,* 13 (1943), 437-440

536. LUNDHOLM, HELGE, "A Comparative Study of Creative Imagination in Normal People and in the Mentally Diseased," *American Journal of Psychiatry,* 3 (1924), 738-756

537 ———, "Repression and Rationalization," *British Journal of Medical Psychology,* 13 (1933), 23-50

Lundholm believes that every inhibited process is drained off and expressed by some other process He shows how repression is used to manage the painful effects of a sense of guilt and illustrates this theory by showing how with the manipulation of evidence in rationalization one attempts to minimize, and free himself from, guilt

538. LUNGER, RUTH, and PAGE, J D, "Worries of College Freshmen," *Journal of Genetic Psychology,* 54 (1939), 457-460

This is a study of anxieties of college freshmen, indicating that men tend to worry more about their adequacy, while women have more worries concerning their relationships

539. LURIA, A. R, *The Nature of Human Conflicts* (New York· Liveright, Inc., 1932)

This book containing the experimental work by a Russian psychologist on conflict has been favorably commented on and highly appreciated since its publication in this country It contains much factual information concerning physiological reactions to the conduct situation The author, however, has not been able to find much of value in Luria's work for his own thinking

540 LYLE, JEANETTA, and SHAW, R F, "Encouraging Fantasy Experience in Children," *Bulletin of the Menninger Clinic,* 1 (1937), 78-86

This is an application on Miss Shaw's finger-painting method in the production of fantasy material, with some suggestions concerning the interpretation of finger-paintings

541. McALLISTER, DAVID, "Water as a Disciplinary Agent Among the Crow and Blackfoot," *American Anthropologist,* 43 (1941), 593-604

Water is used as a disciplinary agent and method of control through the arousal of anxiety in two Indian tribes

542. McCLELLAND, D C, "Functional Autonomy of Motives as an Extinction Phenomenon," *Psychological Review,* 49 (1942), 272-283

This is a critique of the concept of functional autonomy The author shows how it can be subsumed under recognized learning principles

543. McCORD, FLETCHER, "The Effect of Frustration on Hoarding in Rats," *Journal of Comparative Psychology,* 32 (1941), 531-541

544. McCORMICK, T C, "A Point of View on Instincts in Social Psychology," *Journal of Abnormal and Social Psychology,* 26 (1931), 102-105

545. MACCURDY, J T, *The Psychology of Emotion* (New York Harcourt, Brace and Company, 1925)

An older treatise on abnormal behavior with considerable stress paid to regression as an explanation of mental disorder

546. McDONALD, M W, "Criminally Aggressive Behavior in Passive Effeminate Boys," *American Journal of Orthopsychiatry,* 8 (1938), 70-78

547 McDOUGALL, WILLIAM, *An Introduction to Social Psychology* (New York John W Luce & Company, 1921; 1926)

McDougall's list of instincts and emotions is classic. McDougall was one of the first of the psychologists to emphasize the driving nature of the instincts, and although he discusses them in terms of their innateness, his work is really a bridge between the older concept of the innate nature of instincts and the present dynamic concept

548 McGRANAHAN, D V., "A Critical and Experimental Study of Repression," *Journal of Abnormal and Social Psychology,* 35 (1940), 212-225

549. MACIVER, R M, "Maladjustment," *Encyclopedia of Social Science*

(New York, The Macmillan Company, 1930), Vol 10, 60-63

This is a pointed article in which MacIver criticizes caustically the concept of adjustment as normality in terms of the individual and his particular needs

550 McKINNEY, FRED, *Psychology of Personal Adjustment* (New York John Wiley & Sons, Inc, 1941).

On page 13, McKinney gives an outline entitled, "The Essence of Adjustment" which represents a sound analysis Unfortunately, in the judgment of the writer, he fails to use this analysis in the most effective way in the book.

551. MacKINNON, D. W., "Violation of Prohibitions," in H. A Murray, Jr, *Explorations in Personality* (New York Oxford University Press, 1938), Sec. 14, Ch VI, 491-501

Individuals who have been the recipient of physical rather than psychological punishment as children are more likely to violate prohibitions in later life The individual who violates prohibitions experiences less guilt, because of his open expression, than the individual who represses such tendencies

552 ———, "A Topological Analysis of Anxiety," *Character and Personality,* 12 (1944), 163-176

This author attempts a topological analysis of anxiety but fails to reveal the evidence on which conclusions with regard to anxiety are determined In this analysis of anxiety, fear is set opposite to strong purposive drives and the strength of anxiety is made dependent on the relative strength of these two factors

553 MAIER, N R F., "The Role of Frustration in Social Movements," *Psychological Review,* 49 (1942), 586-599

Frustration and suffering are necessary as a prelude to reform and social movement

554 ———, GLASER, N M, and KLEE, J B, "Studies in Abnormal Behavior in the Rat III The Development of Behavior Fixations Through Frustration," *Journal of Experimental Psychology,* 26 (1940), 521-546

Fixation, in the sense of repetition of response, is an outcome of frustration The author believes, however, that Maier in this paper is using fixation in a very specialized sense which does not coincide with the meaning of the term as it is used elsewhere in this book The repetition of behavior would seem to be a more exact description of Maier's findings The author is of the opinion that the conditions of many of these laboratory experiments must be carefully defined before the results can have a general interpretation

555. MARMOR, JUDAH, "The Role of Instinct in Human Behavior," *Psychiatry,* 5 (1942), 509-516

This author is outspoken against instinct as a fixed form of human response apart from experience

556. MARQUAND, J. P, *H M Pulham, Esquire* (Little, Brown & Company, 1941).

557 MARQUIS, D P, "A Study of Frustration in New Born Infants," *Journal of Experimental Psychology,* 32 (1943), 123-138

When the nursing of new-born infants is interfered with, they respond by body movements, crying, and mouth movements

558. MASLOW, A H, "Appetites and Hungers in Animal Motivation," *Journal of Comparative Psychology,* 20 (1935), 75-83

559. ———, VII "Deprivation, Threat, and Frustration," *Psychological Review,* 48 (1941), 364-366

Frustration reactions are produced only when there is a threat to the security or adequacy of the individual

560. ———, "A Comparative Approach to the Problem of Destructiveness," *Psychiatry,* 5 (1942), 517-522

Destructiveness is a symptom of a variety of dynamic processes.

561 ———, "The Dynamics of Psychological Security-Insecurity," *Character and Personality,* 10 (1942), 331-344.

This is a significant paper presenting conclusions from the author's years of intensive psychological study of individuals He presents a list of fourteen criteria of the secure individual and discusses fifteen dynamic principles which he has observed operating He believes that the

defenses an individual adopts against insecurity tend to perpetuate themselves.

562. ———, "Conflict, Frustration, and the Theory of Threat," *Journal of Abnormal and Social Psychology,* 38 (1943), 81-86

563. ———, "Preface to Motivation Theory," *Psychosomatic Medicine,* 5 (1943), 85-92

564. ———, "A Theory of Human Motivation," *Psychological Review,* 50 (1943), 370-396

This is an important theoretical paper in which the author presents a theory of hierarchy of drives.

565. ———, and MITTELMANN, BELA, *Principles of Abnormal Psychology* (New York Harper & Brothers, 1941)

This text on abnormal psychology, written from the dynamic point of view, is noteworthy because of its penetrating analysis of the types of frustration, anxiety, and conflict Guilt is discussed in terms of conflict and the discrepancy and tension between ego and superego There is a helpful analysis of the ability to accept love One may find here one of the best analyses of the criteria of good adjustment available in the literature. These authors include one of the best elaborations of the mechanism of undoing, tying it up with the concept of reparation with which it is made identical in the present book

566. MASSERMAN, J H, *Behavior and Neurosis* (Chicago· The University of Chicago Press, 1943)

567. ———, J H, and BALKEN, E R, "The Clinical Application of Fantasy Studies," *Journal of Psychology,* 6 (1938), 81-88

568. ———, "The Psychoanalytic and Psychiatric Significance of Fantasy," *Psychoanalytical Review,* 26 (1939), 343-379, 535-549

These are further papers by these authors reporting the results of their use of Murray's thematic apperception method with psychiatric patients

569 ———, and SIEVER, P W, "Dominance, Neurosis, and Aggression," *Psychosomatic Medicine,* 6 (1944), 7 16

In this significant paper the authors give experimental evidence that dominance does not necessarily involve aggressive behavior, but only when a dominant rôle is threatened and individuals are displaced from their dominant rôle

570 MATHER, JEAN, "The Unconscious Significance of Fairyland," *Australian Journal of Psychology and Philosophy,* 11 (1933), 258-274, 12 (1934), 16-32

This is an interesting paper interpreting fairy-tales as they represent basic impulses and drives in the young child

571 MATTE BLANCO, IGNACIO, "On Introjection and the Processes of Psychic Metabolism," *International Journal of Psychoanalysis,* 22 (1941), 17-36.

This paper discusses the modification of the superego following psychotherapy. Split or partial attitudes toward persons become integrated with more realistic attitudes toward others and toward the self.

572 MEAD, MARGARET, *Growing Up in New Guinea* (New York William Morrow and Company, Inc, 1930)

573 ———, *Sex and Temperament in Three Primitive Societies* (New York William Morrow and Company, Inc, 1935)

574 MELTZER, HYMAN, "The Present Status of Experimental Studies on the Relationship of Feeling to Memory," *Psychological Review,* 37 (1930), 124-135

The author makes a serviceable review of the many studies of forgetting of unpleasant material and its possible relation with repression However, practically all the studies which Meltzer undertakes himself or which he reviews indicate that both pleasant and unpleasant items are remembered slightly better than neutral items

575. MENAKER, ESTHER, "The Masochistic Factor in the Psychoanalytic Situation," *Psychoanalytic Quarterly,* 11 (1942), 171-186

576 MENNINGER, K. A, *The Human Mind* (New York Alfred A

Knopf, 1930, 1937, third edition, 1945)

This text, written in popular style by an eminent psychoanalyst, contains helpful discussions and illustrations of the mechanisms. Ten types of "persistent fantasies or play themes" are described and illustrated from the Bible and other literature, newspaper clippings, and anecdotes.

577. ——, *Man Against Himself* (New York Harcourt, Brace and Company, 1938)

This book is devoted to self-punishing tendencies, aggression turned in upon the self, and masochism Menninger's treatment of the use of sublimation in the handling of aggression is as adequate as will be found in the literature.

578 ——, *Love Against Hate* (New York Harcourt, Brace and Company, 1942)

In this more recent book Menninger has provided us with one of the most adequate discussions of love from the point of view of ego psychology Certain sections of this book are superb, particularly his analysis of the frustrations of women and his analysis of the way in which love can serve as a bulwark against hate tendencies I find Menninger not altogether clear in his discussion of self-love, and he leaves the reader somewhat in doubt as to whether he believes that self-love is a good or bad thing One can find contradictory statements on this issue His analysis of the ways in which love may find expression is a practical contribution In some ways his discussion of love in the chapter, "Clinical Techniques" in *Man Against Himself* is more pointed than the more complete and discursive treatment in the later book Menninger equates the mechanism of undoing with the process of reparation, giving illustrations of how this mechanism operates in various occupations

579. ——, "Work as Sublimation," *Bulletin of the Menninger Clinic*, 6 (1942), 170-182

In this paper Menninger discusses work as sublimation and gives copious illustrations of the sublimatory value of different kinds of work He discusses distaste of work in relation to resistance to authority and suggests that work should have an erotic element to be pleasurable

580 MILL, J. S, *Utilitarianism* (London 1863, reprinted from *Fraser's Magazine*, 1861, tenth edition, 1888; New York: E. P. Dutton & Co., Inc., 1910).

581 MILLER, M. L., "Blood Pressure Findings in Relation to Inhibited Aggressions in Psychotics," *Psychosomatic Medicine*, 1 (1939), 162-172

Blood pressures tend to be higher in paranoid and depressed states, indicating that when aggression is inhibited it produces tensions in the vascular system

582 MILLER, N E, "Experiments Relating Freudian Displacement to Generalization of Conditioning," *Psychological Bulletin*, 39 (1939), 516, 517.

583 ——, "An Experimental Investigation of Derived Drives," *Psychological Bulletin*, 38 (1941), 534, 535

584 ——, "Experimental Studies of Conflict," in J McV Hunt editor, *Personality and the Behavior Disorders* (The Ronald Press Company, 1944), Vol 1, Ch XIV, 431-465

This is an important contribution at this writing inasmuch as it reviews recent experimental literature on conflict and refers to many hitherto unpublished studies

585. ——, and DOLLARD, JOHN, *Social Learning and Imitation* (New Haven Yale University Press, 1941)

These authors show how anxiety follows from punishment and is a response to the anticipation of punishment They indicate how anxiety in minor amounts is aroused in every learning situation in which the wrong response is made to be followed by punishment or frustration This incorporation of anxiety into learning theory is highly significant

586. ——, SEARS, R R, MOWRER, O H, DOOB, L W, and DOLLARD, JOHN, "I The Frustration-Aggression Hypothesis," *Psychological Review*, 48 1941), 337-442

This is one of a series of articles in this issue of the *Psychological Review* in which the thesis that all frustration leads to aggression is elaborated

587. MILNER, MARION, "The Toleration of Conflict," *Occupational Psychology*, 17 (1943), 17-24

This forceful article stresses the point that conflicts are normal and hence are to be tolerated rather than eliminated in many instances It is wise and normal to use a number of constructive defenses and mechanisms against anxiety which is the pain of conflict

588. MONEY-KYRLE, R. E , "A Psychologist's Utopia," *Psyche,* 11, No 44 (1931), 48-69

In this rather extreme article advocating sexual freedom the author defends the thesis that a considerable part of social aggression arises from restrictions on sexual expression

589. ——, *The Development of the Sexual Impulses,* International Library of Psychology, Philosophy and Scientific Method (London Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, New York Harcourt, Brace and Company, 1932)

590. MONTAGUE, M. F A , "On the Physiology and Psychology of Swearing," *Psychiatry,* 5 (1942), 189-201

This is a somewhat literary treatment of swearing, weeping, and laughing as methods of tension reduction

591. MOODIE, WILLIAM, "Anxiety States in Children," in R G Gordon, editor, *A Survey of Child Psychiatry* (New York Oxford University Press, 1939)

592. MORGAN, C. D , and MURRAY, H A , JR , "A Method for Investigating Fantasies The Thematic Apperception Test," *Archives of Neurology and Psychiatry,* 34 (1935), 289-306

This is the original paper describing the Thematic Apperception Test

593. MORGAN, J J B , "The Overcoming of Distraction and Other Resistances," *Archives of Psychology,* 5, No. 35 (1916)

594. ——, *The Psychology of the Unadjusted School Child* (New York The Macmillan Company, 1926, revised edition, 1936)

One may consult this book for some of the social and educational implications of dynamic processes within the individual Morgan discusses the value of punishment as a method in child guidance, the significance of anxiety in childhood, and the meaning of regression, its varieties, and the factors which cause it, with a helpful discussion of its educational implications There are valuable chapters on rationalization, day-dreaming, and the stages through which a child passes from love of himself to a mature interest in others Morgan discusses adjustment from the educational and normative point of view, pointing out some of the goals which parents should keep in mind with regard to the healthy development of their children.

595. ——, *Psychology of Abnormal People* (New York. Longmans, Green and Co., 1928)

This popular text elaborates many dynamic principles Of particular value is Morgan's analysis of compensation and his discussion of the various forms in which fantasies present themselves.

596. ——, *Child Psychology* (New York Farrar & Rinehart, Inc , 1931, third edition, 1942)

Morgan has an excellent analysis of the motivation for punishment and the effects of punishment and an evaluation from the point of view of education

597. ——, *Keeping a Sound Mind* (New York The Macmillan Company, 1934) Revised and published with title, *How to Keep a Sound Mind* (New York The Macmillan Company, 1945)

This is one of the most widely used texts on mental hygiene

598. MOWRER, O H , "Frustration as an Experimental Problem II Some Research Implications of the Frustration Concept as Related to Social and Educational Problems," *Character and Personality,* 7 (1938), 129-135

This is an article in the *Character and Personality* symposium series with some penetrating comments on the significance of frustration in development

599. ——, "Preparatory Set (Expectancy) a Determinant in Motivation and Learning," *Psychological Review,* 45 (1938), 62-91

In this paper Mowrer discusses set as a condition of preparatory physiological tension and argues that these tensions add to the drive

600. ———, "A Stimulus-Response Analysis of Anxiety and Its Role as a Reinforcing Agent," *Psychological Review*, 46 (1939), 553-565

Mowrer's analysis of anxiety and his attempt to relate it to modern psychological principles is significant. He discusses the physiological basis for anxiety, the relation between anxiety and conflict, the relation of anxiety to anger and drives, anxiety reduction and its possible function as a reinforcing agent He discusses the relation of anxiety to punishment Mowrer describes anxiety as the reaction to the discrepancy between preparation for action and the action itself According to his theory, anxiety disappears when it becomes translated into action Miller and Dollard criticize this position and believe that action dispels anxiety only when the threat of danger is removed

601. ———, "Anxiety: Some Social and Psychological Implications," Paper 13 in *Papers Presented Before the Monday Night Group*, 1939-1940 (New Haven Institute of Human Relations, Yale University, mimeographed, 1940)

602. ———, "Anxiety Reduction and Learning," *Journal of Experimental Psychology*, 27 (1940), 497-516

In this paper Mowrer points out how anxiety may serve as a drive in learning and how its reduction may serve as a reward and hence set off the law of effect

603. ———, "An Experimental Analysis of 'Regression' with Incidental Observations on Reaction Formation," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 35 (1940), 56-87

604 ———, and KLUCKHOHN, CLYDE, "Dynamic Theory of Personality," in J McV Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York The Ronald Press Company, 1944), Ch III, 69-135

605 MUENZINGER, K F, and VINE, D O, "Motivation in Learning IX The Effect of Interposed Obstacles in Human Learning," *Journal of Experimental Psychology*, 29 (1941), 67-74

606. MURPHY, GARDNER, MURPHY, L B, and NEWCOMB, T M, *Experimental Social Psychology* (New York Harper & Brothers, 1931, revised edition, 1937).

The treatment of drives in this book is outstanding because it avoids categorical formulation The Murphys are keen observers of child behavior, and they attempt to retain in their discussions of the foundations of behavior all of the complexity that one sees in an actual person This book is well worth consulting for a point of view which stays close to reality There is a long treatment of aggressiveness in children from the point of view of child development and a splendid discussion of the development of sympathy in young children The point is made that since repressed material is inaccessible to conditioning it persists in unaltered form over large portions of a person's life

607. MURPHY, L B, *Social Behavior and Child Personality* (New York: Columbia University Press, 1937).

608. MURRAY, H. A, JR, "The Effect of Fear upon Estimates of the Maliciousness of Other Personalities," *Journal of Social Psychology*, 4 (1933), 310-329

Children's attitudes concerning each other were studied after a game of murder was played in the evening After this game there was an overestimation of the maliciousness of other personalities, and it was concluded that fear tends to increase projection

609 ———, "Basic Concepts for a Psychology of Personality," *Journal of General Psychology*, 15 (1936), 241-268.

610 ———, "Facts Which Support the Concept of Need or Drive," *Journal of Psychology*, 3 (1937), 27-42

611. ———, "Techniques for a Systematic Investigation of Fantasy," *Journal of Psychology*, 3 (1937), 115-143

In this paper Murray elaborates on a variety of projective techniques Murray has probably contributed more to the development of projective methods than any other person

612. ———, and others, *Explorations in Personality* (New York Oxford University Press, 1938).

This book is a mine of source material on dynamic tendencies in personality

Murray's formulations of needs has been drawn on heavily in the preparation of the chapter on drive in this book He analyzes anxiety in terms of withdrawing and breaks it down into the avoidance of danger (blamavoidance) and avoidance of inferiority (infavoidance) He breaks the superego down into two separate tendencies "superego integration," by which he means the superego that is assimilated by, and in harmony with, the ego and "superego conflict," in which these two parts of personality are in conflict

613 MURRAY, J M, "The Conscience During Adolescence," *Mental Hygiene*, 22 (1938), 400-408

614 MURSELL, J L, "The Logic of Sublimation A Criticism," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 21 (1926), 75-84

The writer presents the psychoanalytic point of view and criticizes the concept of sublimation

615. MYERS, C S, "Is the Doctrine of Instincts Dead? A Symposium. VI Retrospect and Prospect," *British Journal of Educational Psychology*, 12 (1942), 118-155

616 NUNBERG, HERMAN, "The Sense of Guilt and the Need for Punishment," *International Journal of Psychoanalysis*, 7 (1926), 430-433

I find this paper one of the most helpful discussions and analyses of guilt in the literature Nunberg has brought together the recent discoveries of others and has added to them his own insight based on his clinical experiences This is an important paper in this field

617 ———, "The Feeling of Guilt," *Psychoanalytic Quarterly*, 3 (1934), 589-604

Nunberg, who has made such important contributions to the meaning of guilt, has also aided in our understanding of the superego

618 ———, "Ego Strength and Ego Weakness," *American Imago*, 3, No 3 (August, 1942), 25-40

The mechanisms indicate the strength rather than the weakness of the ego in its fight against infantile characteristics

619 OBENDORF, C P, "Kidding—A Form of Humor," *International Journal of Psychoanalysis*, 13 (1932), 479-480

Obendorf relates this mild form of playful aggression to the projection of guilt tendencies

620 OLDEN, CHRISTINE, "About the Fascinating Effect of the Narcissistic Personality," *American Imago*, 2 (1941), 347-355

This paper deals with tendencies to project omnipotent impulses and helps to distinguish between love as an ego and as a libido phenomenon

621 OLTMAN, J E, and FRIEDMAN, SAMUEL, "The Rôle of Hostility in Affective Psychoses," *Journal of Nervous and Mental Disease*, 97 (1943), 170-196

This is a fine discussion which goes a long way toward an understanding of the affectional psychoses as functional processes—a far cry from the purely classificatory and constitutional point of view

622 O'MALLEY, MARY, "Significance of Narcissism in the Psychoses," *Psychoanalytic Review*, 16 (1929), 241-271

623. ORTON, S T, *Reading, Writing and Speech Problems in Children* (New York W W Norton & Company, Inc, 1937)

624 PATRICK, J R, "Studies in Rational Behavior and Emotional Excitement II The Effect of Emotional Excitement on Rational Behavior in Human Subjects," *Journal of Comparative Psychology*, 18 (1939), 153-195

625 PATTERSON, R M, "Psychiatric Study of Juveniles Involved in Homicide," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 125-130

626. PAYNE, S M, "Observation on the Formation and Function of the Superego in Normal and Abnormal Psychological States," *British Journal of Medical Psychology*, 7 (1927), 73-87

In this well-organized paper the writer has classified superego phenomena into

four groups which aid in the understanding of some of the aberrations of superego development

627. PEAR, T H, "Is the Doctrine of Instincts Dead? A Symposium V Not Dead, but Obsolescent," *British Journal of Educational Psychology*, 12 (1942), 139-147

628 PEARL, RAYMOND, "Influence of Alcohol on Duration of Life," *National Academy of Science Proceedings*, 10 (June, 1924), 231-237

629 PEARSON, G H J, "Some Theoretical Considerations on the Formation of the Superego," *Psychoanalytical Review*, 19 (1932), 164-167

This is a straightforward and clearly formulated statement of some of the basic principles of superego development

630 ———, "The Chronically Aggressive Child," *Psychoanalytical Review*, 26 (1939), 485-525

This important article on aggressiveness in children deserves wide reading From observations of children in the nursery school of Temple University, Philadelphia, Pearson has made an important classification of methods of managing aggressive tendencies

631. PECK, M W, *The Meaning of Psychoanalysis* (New York Alfred A Knopf, 1931)

The first chapter in Peck's book contains a very simple and elementary discussion of the unconscious

632 PFEIFFER, SIGMUND, "A Form of Defense," *International Journal of Psychoanalysis*, 11 (1930), 492-496

633. PFISTER, O R, *Love in Children and Its Aberrations* (London George Allen & Unwin, 1924, New York Dodd, Mead & Company, 1924)

This book by a Swiss psychoanalyst recognizes regression as an important mechanism in causing abnormal behavior

634. PHILIP, H L, "An Experimental Study of the Frustration of Will-Acts and Conation," *British Journal of Psychology Monograph Supplement*, 7, No 21 (1936).

635. PIAGET, JEAN, *The Child's Concept of the World*, International Library of Psychology, Philosophy and Scientific Method (London Kegan Paul, Trench, Trubner and Company and New York Harcourt, Brace and Company, 1920)

Piaget is noted for his detailed studies of the mental life of young children and his classifications based on his findings His work has not been of especial value in preparing the present discussion

636. PIERCE, C L, "The Objective and Subjective Development of the Ego," *Archives of Psychoanalysis*, 1 (1926), 1-92

637. PINTNER, RUDOLPH, and LEY, JOSEPH, "Worries of School Children," *Journal of Genetic Psychology*, 56 (1940), 67-76

A study of worries of school children, showing that girls tend to worry more than boys and that they are more concerned with their social relationships.

638. PLANT, J S, *Personality and the Cultural Pattern* (New York. The Commonwealth Fund, 1937).

This contains an excellent analysis of the concepts of adequacy and security

639 PLATONOW, K I, "On the Objective Proof of the Experimental Personality Age Regression," *Journal of General Psychology*, 9 (1933), 190-209.

This is a translated paper by a Russian physiologist in which the possibility of inducing regression in hypnosis is discussed

640 PLATT, WASHINGTON, and BAKER, R A, "The Relationship of Scientific 'Hunch' to Research," *Journal of Chemical Education*, 8 (1931), 1969-2002

641. POWDERMAKER, FLORENCE, and GRIMES, L I, *Children in the Family* (New York Farrar & Rinehart, Inc, 1940)

This book, written jointly by a psychiatrist and a mother, is one of the most helpful discussions of the factors to be considered in the choice of punishment.

642. POWDERMAKER, HORTENSE, "The Channeling of Negro Aggression by the Cultural Process," *American Journal of Sociology*, 48 (1943), 750-758

This author describes the various ways in which Negroes turn their aggression and hostility in upon themselves

643 PRESCOTT, D A, *Emotion and the Educative Process* (Washington, D C American Council on Education, 1938)

This book includes discussions of the educational implications of punishment and of anxiety

644 QUEEN, S A, "A Study of Conflict Situations," *American Sociological Society Papers*, 24 (1930), 56-64

This is a discussion of sociological conflict Perhaps it has more value psychologically for frustration than for conflict It discusses certain conflicts in the task of the social worker

645 RADO, SÁNDOR, "Developments in the Psychoanalytic Conception and Treatment of the Neuroses," *Psychoanalytic Quarterly*, 8 (1939), 427-437

This paper gives a basic definition of anxiety in terms of emergency control According to Rado, there is a minimum of intellectual control in anxiety states

646. RANK, OTTO, *The Myth of the Birth of the Hero*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 18 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1914)

This monograph, in which Rank has described the variations in the myth of the birth of the hero as found in various parts of the world, has become a classic

647. ———, *The Trauma of Birth* (New York Harcourt, Brace and Company, 1929).

648 ———, *Will Therapy* (New York Alfred A Knopf, 1936).

649 RANSON, S W, *Anatomy of the Nervous System* (Philadelphia W B Saunders Company, 1920, sixth edition revised, 1939)

This is a good general text on the nervous system

650. RAPAPORT, DAVID, *Emotions and Memory*, The Menninger Monograph Series, No 2 (Baltimore The Williams & Wilkins Company, 1942)

This is a comprehensive and complete review of experimental studies of memory and forgetting Unfortunately the author has difficulty in presenting his conclusions in clear-cut form, and the book impresses one as being abstract and remote

651. RATHBUN, CONSTANCE, "The Place of Repression in Morality," *Journal of Philosophy*, 28 (1931), 225-237

This is one of many philosophical discussions of repression and the unconscious It was selected for inclusion in this bibliography because of the writer's significant point that the unconscious helps to keep the personality from stagnation

652 REEVE, G H, "The Treatment of Aggression Round Table V General Principles," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 411-417.

653. REICH, WILHELM, "The Sources of Neurotic Anxiety A Contribution to the Theory of Psychoanalytic Therapy," *International Journal of Psychoanalysis*, 7 (1926), 381-391

654. ———, "Discussion on the Need for Punishment and the Neurotic Process A Criticism of Recent Theories of the Problem of Neurosis," *International Journal of Psychoanalysis*, 9 (1928), 227-240

Reich discusses the hypothesis that punishment relieves guilt

655 ———, *The Function of the Orgasm* (New York Orgone Institute Press, 1942)

This book is somewhat of a puzzle, intensely stimulating, filled with novel ideas, it impresses the writer as being fundamentally sound, based on experimental physiological evidence. Reich tends to see love primarily from the point of view of its physical sexual basis His theory is pushed to certain refinements which the writer finds difficult to follow

656. REIK, THEODOR, *Gestandniszwang und Strafbedurfnis, Probleme der Psychoanalyze und den Kriminolo-*

gie. Internationaler Psychoanalysicher Bibliothek (Internationaler Psychoanalysicher Verlag, 1925)

Reik is a pioneer in the analysis of masochism and self-punishment tendencies

657. ———, "Aggression from Anxiety," *International Journal of Psychoanalysis,* 22 (1941), 7-16

A person sometimes tends to fight against the other person or situation which is fear-provoking as a method of defending himself from anxiety.

658 ———, *Masochism in Modern Man* (New York Farrar & Rinehart, 1941)

This is an authoritative treatise on masochism, particularly social masochism. Reik elaborates his theories of the vicissitudes of punishment and in particular the turning in of punishment on the self and the later need for punishment Reik shares with Alexander credit for showing how punishment may actually serve as payment for subsequent (or previous) forbidden pleasure The book discusses the differences between men and women in superego formation and includes a brief discussion of narcissistic tendencies anticipating his later book, *A Psychologist Looks at Love*

659 ———, "Neurotic Camouflage and Thought Rehearsal," *American Imago,* 2 (1941), 86-103

Reik has elevated the process of anticipation into a mechanism and shows how it operates in various expressions of masochism

660. ———, *A Psychologist Looks at Love* (New York Farrar & Rinehart, 1944)

This is one of the most important contributions to our present psychological understanding of love Reik treats love from the point of view of its ego implications and distinguishes it clearly from sex, somewhat in contrast with Freud's earlier point of view The present treatment is essentially in agreement with Reik's

661. ———, *Psychology of Sex Relations* (New York Farrar & Rinehart, 1945)

In this book, the author elucidates still further his distinction between love as an ego response and sex as a physiological reaction

662. RETHLINGSHAFER, DOROTHY, "Experimental Evidence for Functional Autonomy of Motives," *Psychological Review,* 50 (1943), 397-407.

663 REXROAD, C N, "Administering Electrical Shock for Inaccuracy in Continuous Multiple Choice Reactions," *Journal of Experimental Psychology,* 9 (1926), 1-19

664. RIBBLE, M A, "Significance of Infantile Sucking for Psychic Development," *Journal of Nervous and Mental Diseases,* 90 (1939), 455-463

665 ———, "Disorganizing Factors in Infant Personality," *American Journal of Psychiatry,* 98 (1941), 459-463

666. ———, *The Rights of Infants* (New York Columbia University Press, 1943)

667 ———, "Infantile Experience in Relation to Personality Development," in J McV Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York. The Ronald Press Company, 1944), Vol 2, Ch XX, 621-651

This author discusses the difficulties of birth, nursing, weaning, and toilet training and the disorganization which results from frustration of these primitive activities

668. RICHTER, C P, "Animal Behavior and Internal Drives," *Quarterly Review of Biology,* 2 (1927), 307-343

This is a very good article commenting on the rhythm or periodicity of drive

669. ———, "Biology of Drives," *Psychosomatic Medicine,* 3 (1941), 105-110

This paper discusses homeostasis and shows how an organism takes over behaviorally the maintenance of a constant inner environment when physiological controls are rendered ineffective

670. RICKLIN, FRANZ, *Wish Fulfillment and Symbolism in Fairy Tales,* Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 21 (New York. Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1915).

Here is another of the attempts to analyze the symbolic significance of fairy-tales.

671. RICKMAN, JOHN, "The Development of the Psychoanalytical Theory of the Psychoses," Supplement No 2 to the *International Journal of Psychoanalysis* (1928)

In this synopsis of psychoanalytic theory, Rickman reviews many of the positions which have been taken concerning anxiety and some of the early classical formulations of the nature of the superego

672 ———, "On 'Unbearable' Ideas and Impulses," *American Journal of Psychology*, 50 (1937), 248-253

673 ———, "Sexual Behavior and Abnormalities," *British Encyclopaedia of Medical Practice* (London Butterworth and Company, 1939-1940), 110-125.

674 RICKMAN, JOHN, editor, *On the Bringing up of Children* (London Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, 1938)

Of particular significance for an understanding of fantasy are the chapters by Middlemore, "The Uses of Sensuality," and by Isaacs, "Habit"

675 RIOCH, J M, "The Transference Phenomena in Psychoanalytic Theory," *Psychiatry*, 6 (1943), 147-156

This is an important discussion of transference The author believes that transference does not have its origin in the relationship to one person, that is, a parent, but has a natural history which involves cumulative relationships to many persons

676 RIVERS, W H R, *Instinct and the Unconscious*, Cambridge Medical Series (Cambridge, Eng · Cambridge University Press, 1920, second edition, 1924)

This older book was by one of England's energetic psychologists Rivers had experience with shell-shocked patients during the First World War and was able to gather considerable clinical data bearing on the problems of repression and the unconscious Rivers was one of those who took a somewhat antagonistic attitude toward psychoanalysis and yet discovered some of the same phenomena independently This book is permeated with the author's enthusiasm

677 RIVIERE, JOAN, "A Contribution to the Analysis of the Negative Therapeutic Reaction," *International Journal of Psychoanalysis*, 17 (1936), 304-320

678. ———, "On the Genesis of Psychical Conflict in Earliest Infancy," *International Journal of Psychoanalysis*, 17 (1936), 395-422

This is one of the most important and significant papers on this topic Riviere summarizes the work of the English school of psychoanalysis She finds the origin of the conflict in internal frustration and elaborates the manner in which these internal conflicts become externalized. This is an excellent discussion of the nature of conflict between basic impulses

679. RIVLIN, H. N, *Educating for Adjustment* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1936)

Chapter V in an otherwise excellent book is somewhat unfortunate in the sense that the author apparently finds more value in punishment in the classroom situation than would seem to be justified when teachers are only too ready to look to punishment as a method for solving their disciplinary difficulties It seems a pity to stress the possibilities of punishment in the classroom instead of using the space for more positive proposals

680. ROBINSON, E S., "The Compensatory Function of Make-Believe Play," *Psychological Review*, 27 (1920), 429-439

This is an interesting discussion of play in dynamic terms by a Yale psychologist

681. ———, "A Concept of Compensation and Its Psychological Setting," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 17 (1923), 383-394

This is an early article discussing compensation as a mechanism It is somewhat abstract, but the treatment is comprehensive

682 ROBINSON, J H, *Mind in the Making* (New York Harper & Brothers, 1921)

Robinson includes in this book a noteworthy discussion of rationalization,

making the distinction between good and real reasons

683. RODNICK, E H, and KLEBANOFF, S G, "Projective Reactions to Induced Frustration as a Measure of Social Adjustment," *Psychological Bulletin*, 39 (1942), 489.

684. ROHEIM, GEZA, *The Riddle of the Sphinx*, International Psychoanalytical Library, No 25 (London The Hogarth Press, 1934).

Roheim discusses sublimation briefly, particularly in its relation to anxiety

685. ——, "Transition Rites," *Psychoanalytic Quarterly*, 11 (1942), 336-374

Roheim points out how certain savage rites symbolize separation and permit a working through of separation anxiety

686. ——, *Origin and Function of Culture*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 69 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1943)

Roheim makes the statement that defense systems against anxiety are the stuff culture is made of

687 ——, "Sublimation," *Psychoanalytic Quarterly*, 12 (1943), 338-352.

688. ——, *War, Crime and the Covenant* (New York International Universities Press, 1945)

In this book, Roheim presents anthropological data which throw light on psychological factors important in considering war, crime, and the law

689. RORSCHACH, HERMANN, *Psychodiagnostics* (New York Grune & Stratton, Inc, 1942).

690. ROSENBERG, ELIZABETH, "A Clinical Contribution to the Psychopathology of the War Neuroses," *International Journal of Psychoanalysis*, 24 (1943), 32-41.

691. ROSENZWEIG, SAUL, "Types of Reaction to Frustration," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 29 (1934), 298-300.

692. ——, "A Test for Types of Reaction to Frustration," *American Journal of Orthopsychiatry*, 5 (1935), 395-403.

693. ——, "Frustration as an Experimental Problem VI General Outline of Frustration," *Character and Personality*, 7 (1938), 151-160.

This is a masterly analysis of the problem of frustration Rosenzweig's breakdown into three internal and three external types seems to the writer to be significant This is a most helpful article.

694. ——, "Fantasy in Personality and Its Study in Test Procedures," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 37 (1942), 40-51.

695. ——, "An Experimental Study of 'Repression' with Special Reference to Need—Persistance and Ego-defensive Reactions to Frustration," *Journal of Experimental Psychology*, 32 (1943), 67-74

696. ——, "An Outline of Frustration Theory," in J McV Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York The Ronald Press Company, 1944), Vol I, Ch XI, 379-388.

697. ——, and MASON, GWENDOLYN, "An Experimental Study of Memory in Relation to the Theory of Repression," *British Journal of Psychology*, 24 (1934), 247-265.

This is perhaps the first experimental study of repression in which the material to be forgotten is something about which the individual cares personally The results are positive, but the experiment is hampered by crude measuring devices

698 ——, and SARASON, SEYMOUR, "An Experimental Study of the Triadic Hypothesis Reaction to Frustration, Ego-Defense, and Hypnotizability," *Character and Personality*, 11 (1942), 1-19, 150 165.

Those who remember failures react to frustration aggressively, those who forget failures react to frustration by various substitute reactions

699. SACHS, HANNS, "One of the Motive Factors in the Formation of the

Superego in Women," *International Journal of Psychoanalysis*, 10 (1929), 39-50

Sachs' discussion of the superego in women is classical He shows that the superego in men is menacing, but in women it represents more an act of renunciation.

700. ———, "The Delay of the Machine Age," *Psychoanalytic Quarterly*, 2 (1933), 404-424

This writer attempts to interpret man's interest in machines as a projection of his omnipotent tendencies.

701. SACHS, WULF, *Psychoanalysis Its Meaning and Practical Applications* (London Cassell and Company, 1934)

This simple manual of psychoanalysis is noteworthy for its clear exposition

702. SADGER, ISIDOR, "A Contribution to the Understanding of Sado-Masochism," *Archives of Psychoanalysis*, 1 (1926), 218-220

Sadger discusses the masochistic significance of homosexuality

703. SANDERS, M J, "An Experimental Demonstration of Regression in the Rat," *Journal of Experimental Psychology*, 21 (1937), 493-510

This paper contains a serviceable review of previous research on experimentally induced regression

704. SARASON, S B, "The Relationship of Reaction to Frustration, Ego-Defense, and Suggestibility. An Experimental Study of the Triadic Hypothesis," *Clark University Bulletin*, 14 (1942), 62-65.

705. SARBIN, T R, "Adjustment in Psychology," *Character and Personality*, 8 (1940), 240-249.

A somewhat academic discussion of several meanings of adjustment.

706. SARKAR, J K, "Introjection and Projection," *Indian Journal of Psychology*, 4 (1929), 135-146

Sarkar would make introjection synonymous with every pleasurable activity and projection synonymous with every unpleasant activity.

707. SCHAUFFLER, R H., *The Unknown Brahms* (New York Dodd, Mead & Company, 1933)

708. SCHILDER, PAUL, *Introduction to a Psychoanalytic Psychiatry*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 50 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1925).

Schilder's contribution is in showing the extent to which individuals are interested in their own bodies and how narcissism grows out of this more narrow interest The most recent of Schilder's writings helps one to understand the relation between narcissism and social relations

709. ———, "The Unity of Body, Sadism, and Dizziness," *Psychoanalytic Review*, 17 (1930), 114-122

710. ———, "The Meaning of Neurosis and Psychosis," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York Covici-Friede, 1933, London George Allen & Unwin, 1933), 176-191 Reprinted under the title, "Neuroses and Psychoses" (New York· International Universities Press, 1944), 249-260

711. ———, "Psychoanalysis and Criminology," in Sándor Lorand, editor, *Psychoanalysis Today* (New York Covici-Friede, 1933, London George Allen & Unwin, 1933), 349-374 Reprinted under the title, "Problems of Crime" (New York International Universities Press, 1944), 342-353

This paper traces some of the implications of the superego concept as related to the psychology of the criminal and discusses the need for punishment in relation to criminal tendencies

712. ———, *The Image and Appearance of the Human Body*, Psyche Monograph, No 6 (Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, 1935)

This monograph contains one of the most helpful, clarifying, and thought-provoking discussions of identification in the literature

713. ———, *Psychotherapy* (New York W. W. Norton & Company, Inc, 1938)

714. ——, "Types of Anxiety Neurosis," *International Journal of Psychoanalysis*, 22 (1941), 209-228

In this paper Schilder elucidates some of the aggressive components in anxiety neurosis.

715. ——, *Goals and Desires of Man* (New York Columbia University Press, 1942).

716. ——, and WECHSLER, DAVID, "The Attitudes of Children Toward Death," *Journal of Genetic Psychology*, 45 (1934), 406-450

717. ——, and WECHSLER, DAVID, "What Do Children Know of the Interior of Their Bodies?" *International Journal of Psychoanalysis*, 16 (1935), 355-360

718. SCHIMMENTI, J M., "Mechanism of the Formation of the Conscience," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 31 (1936), 338-339

A very brief and highly schematic analysis of the superego, probably based more on speculation than on experience

719. SCHMIDEBERG, MELITTA, "Anxiety States," *Psychoanalytic Review*, 27 (1940), 439-449

A paper of insight by a child-analyst showing some of the symbolic meanings of neurotic states as defenses against anxiety This author also includes some excellent hygienic advice

720. SCHOHAUS, WILLI, *The Dark Places of Education* (New York: Henry Holt and Company, 1932)

721. SEARL, M. N, "The Flight to Reality," *International Journal of Psychoanalysis*, 10 (1929), 280-291

722. ——, "Play, Reality and Aggression," *International Journal of Psychoanalysis*, 14 (1933), 310-320.

This is an excellent paper showing how play is necessary in helping the child to gain a sense of reality

723. ——, "The Psychology of Screaming," *International Journal of Psychoanalysis*, 14 (1933), 193-205.

724. ——, "Infantile Ideals," *International Journal of Psychoanalysis*, 17 (1936), 17-39.

One of the few descriptions of the ego ideal or positive superego This paper tends to be a little abstract and speculative.

725. SEARS, R R, "Experimental Studies of Projection. I Attribution of Traits," *Journal of Social Psychology*, 7 (1936), 151-163

There is a tendency to attribute to others a lower rating on unfavorable traits than one gives to oneself

726. ——, "Functional Abnormalities of Memory with Special Reference to Amnesia," *Psychological Bulletin*, 33 (1936), 229-274

This notable review of concepts regarding repression and experimental literature on forgetting as related to repression, is one of the important sources in this field. Sears has done a great service in his careful definitions and in his reformulation of the problem of repression and the unconscious in experimental terminology The earlier criticism by Woodworth was that the concept of repression could hardly be accepted by experimental psychology because of its inexact formulation

727. ——, "Initiation of the Repression Sequence by Experienced Failure," *Journal of Experimental Psychology*, 20 (1937), 570-580

In this study, Sears attempts an experimental determination of the process of repression

728. ——, "II Non-Aggressive Reactions to Frustration," *Psychological Review*, 48 (1941), 343-346.

In this supplementary statement to the book, *Frustration and Aggression*, Sears reemphasizes the point made in the book that the natural, aggressive responses to frustration can be modified in various ways In this article Sears makes an analysis of these modifications

729. ——, *Survey of Objective Studies of Psychoanalytic Concepts*, Social Science Research Council Bulletin, No 51 (New York Social Science Research Council, 1943)

Although the animal experiments on what fixation is as a phenomenon do not entirely meet the conditions of fixation

as a psychoanalytically defined concept, they may be safely applied Sears in his analysis shows how fixation can be explained in terms of current learning theory

730 ——, "Experimental Analyses of Psychoanalytical Phenomena," in J McV Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York The Ronald Press Company, 1944), Vol 1, Ch IX, 306-332

Sears reviews the experimental studies which demonstrate and illustrate regression tendencies

731. ——, and HOVLAND, C I, "Experiments in Motor Conflict II Determination of Mode of Resolution by Comparative Strength of Conflicting Responses," *Journal of Experimental Psychology,* 28 (1941), 280-286

732. ——, and SEARS, P S, "Minor Studies in Aggression V Strength of Frustration-Reaction as a Function of Strength of Drives," *Journal of Psychology,* 9 (1940), 297-300

733. SEASHORE, H G., and BAVELAS, ALEX, "A Study of Frustration in Children," *Journal of Genetic Psychology,* 61 (1942), 279-314

When children are required to continue a task (drawing a man) the quality of work deteriorates, less time is spent on the task, and there is verbal protest

734. ——, and KATZ, BARNEY, "An Operational Definition and Classification of Mental Mechanisms," *Psychological Record,* 1 (1937), 1-24

Here is an attempt to classify twelve mechanisms The insight into the nature of the mechanisms tends to stay on a somewhat superficial level

735. SEEBERG, ELIZABETH, "Analysis of Aggression in a Five-Year-Old Girl," *American Journal of Orthopsychiatry,* 13 (1943), 53-61

This paper contains considerable insight into the underlying dynamics of aggression It shows how interpretation helps to relieve aggressive urges by permitting their complete subjective expression

736. SEWARD, G H, "Studies on the Reproductive Activities of the Guinea Pig V Specificity of Sexual Drive in the Male," *Journal of Genetic Psychology,* 59 (1941), 389-396

This paper shows the necessity of an external stimulus for the release of drive

737. ——, "The Validation of Drive," *Psychological Review,* 49 (1942), 88-95

This is a theoretical paper showing how one bit of behavior may be the expression of many motivations.

738. ——, and SEWARD, J P, "Internal and External Determinants of Drives," *Psychological Review,* 44 (1937), 349-363

739 SHAFFER, L F, *Psychology of Adjustment* (Boston Houghton Mifflin Company, 1936)

This well-written book has for many years held the approbation of psychologists for its sound and scientific analysis of the psychology of adjustment Although antipsychoanalytic, it borrows heavily from psychoanalytic concepts This book contains one of the clearest analyses of adjustment, basing it on a theory of learning A large part of this book is devoted to a discussion of the mechanisms The student is apt to become confused because of certain inconsistencies in the classification of the mechanisms For instance, identification is discussed as a kind of compensation, while projection is discussed under the heading of rationalization In the latter part of the book there is another discussion of these mechanisms in terms of psychoanalysis as distinct from the common sense point of view which psychologists might be expected to take, a distinction, however, which cannot be justified

740. SHARPE, E F, "Vocation," in Ernest Jones, James Glover, J C Flugel, and others, *Social Aspects of Psychoanalysis* (London. William and Norgate, 1924)

In this chapter on vocation Miss Sharpe presents a number of illustrations of how vocations represent sublimations of early tendencies

741. ——, "Certain Aspects of Sublimation and Delusion," *International Journal of Psychoanalysis,* 11 (1930), 12-23

In this paper Miss Sharpe shows how certain art practices represent a resurrection of earlier destructive fantasies

742. ——, "Similar and Divergent Unconscious Determinants underlying the Sublimations of Pure Art and Pure Science," *International Journal of Psychoanalysis*, 16 (1935), 186-202

In this later paper Miss Sharpe elaborates the significance of both art and science as sublimations, pointing out similarities and contrasts between them

743. ——, "Cautionary Tales," *International Journal of Psychoanalysis*, 24 (1943), 41-45

In this somewhat literary and quaint paper the tendency of parents and teachers to caution children against dangers, real and imaginary, is discussed.

744. SHERBON, F B, "Adolescent Phantasy as a Determiner of Adult Conduct," *Eugenics*, 2 (1929), 8-16

This somewhat popular paper reviews several studies of adolescent fantasy

745 SHERMAN, I. C, and SHERMAN, MANDEL, "Birth Phantasy in a Young Child," *Psychoanalytic Review*, 16 (1929), 408-410

746. SHERMAN, MANDEL, "Are Day-Dreams Dangerous?" *Parents Magazine*, 5, No 9 (1930), 16-17, 81

In this popular article written for parents Sherman has elaborated his point of view with regard to fantasy in mental hygiene and education At a number of points this author makes statements which are not backed up by evidence

747. ——, "How Mental Conflicts Help to Develop Children," *Toward Understanding Children*, University of Iowa Extension Bulletin, No 261 (1931), 69-77

This bulletin discusses the significance of conflict for education and adjustment

748 ——, *Mental Hygiene in Education* (New York· Longmans, Green and Co, 1934).

A good chapter on compensation may be found in this book

749. ——, *Mental Conflicts and Personality* (New York Longmans, Green and Co, 1938)

Included in this book on conflict is an extended discussion of regression as a failure of energy

750. ——, and JOST, HUDSON, "Frustration Reactions of Normal and Neurotic Persons," *Journal of Psychology*, 13 (1942), 3-19

751 SHIRLEY, MARY, "A Behavior Syndrome Characterizing Prematurely Born Children," *Child Development*, 10 (1939), 115-128

752. SILLMAN, L K, "Morale," *War Medicine*, 3 (1943), 498-502

In this brief report on morale, Sillman shows how beliefs can be used as a defense against anxiety

753. SILVERBERG, W V, "Notes on the Mechanism of Reaction Formation," *Psychoanalytic Review*, 19 (1932), 56-63

This is a paper that discriminates between reaction formation and sublimation and shows some of the specific conditions for the establishment of reaction formations

754 SKARD, A G, "Needs and Need-Energy," *Character and Personality*, 8 (1939), 28 41

This is an important paper based in part on informal experimental evidence, presenting certain laws governing drives and their interrelationship

755 SLAVSON, S R, "The Treatment of Aggression Round Table VII. Through Group Therapy," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 419-427

756. SLAWSON, JOHN, "The Treatment of Aggression. Round Table. VIII In a Specialized Environment," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 428-436

757. SMITH, M E, "Some Specific Applications of Mental Hygiene," *Hawaiian Educational Review*, 18 (1929), 59, 73-74

This is a discussion of culture conflicts found in the school situation in Hawaii.

758. SMITH, T. C, "The Psychology of Daydreams," *American Journal of Psychology*, 15 (1904), 465-488

This study coming out of the G Stanley Hall era of child study is the earliest study of the nature of fantasy life of children Smith has used a picture-story method which is in all respects identical with Murray's thematic apperception method It differs only in the penetration of the interpretation of the material Smith, however, has presented such important findings as that boys are more productive of fantasy than girls, which is only now being verified in current studies

759. SOLOMON, J C, "Active Play Therapy," *American Journal of Orthopsychiatry*, 8 (1938), 479-498

760. SOUTHARD, E E, and JARRETT, M C, *The Kingdom of Evils* (New York. The Macmillan Company, 1922)

761. SPENCER, HERBERT, *The Data of Ethics* (New York· D Appleton and Company, Inc, 1879, 1939)

762. SPRAGUE, C S, "Regression in Catatonia," *Journal of Nervous and Mental Disease*, 91 (1940), 566-578

This paper is a defense of the thesis that catatonic states are regressions to primitive modes of adjustment in which muscular activity and pure symbolism unrelated to external reality are attempts to ward off total annihilation

763 SPRING, W J, "Observations on World Destruction Phantasies," *Psychoanalytic Quarterly*, 8 (1939), 48-56.

764. STAGNER, ROSS, *The Psychology of Personality* (New York McGraw-Hill Book Company, Inc, 1937)

Stagner presents a keen analysis of some of the issues involved in the normative meaning of adjustment, which, however, he too completely accepts There is also a thoughtful analysis of the motivation of and response to punishment

765. STEPHEN, KARIN, "Introjection and Projection Guilt and Rage," *British Journal of Medical Psychology*, 14 (1934). 316-331

This important paper describes the process of introjection indicating how it arouses anxiety in the individual in the form of guilt at the same time that it serves as a mechanism in the defense against anxiety. This paper also relates introjection of the parental figures to fantasies of the contents of the body as these fantasies are associated with pleasurable and unpleasurable experiences with the parents in early infancy

766. ——, "Aggression in Early Childhood," *British Journal of Medical Psychology*, 18 (1939), 178-190.

This is an especially well-written paper describing the origins of aggression in the young child

767 STEPHENSON, G. U, and CAMERON, K, "Anxiety States in the Navy, A Clinical Survey and Impression," *British Medical Journal*, 2 (1943), 603-607

768. STERBA, RICHARD, "Aggression in the Rescue Phantasy," *Psychoanalytic Review*, 9 (1940), 505-518.

In this paper Sterba points out that in fantasying the rescue of another person there is a tendency to wish to do reparation for earlier unconscious aggressive fantasies

769. ——, *Introduction to the Psychoanalytic Theory of the Libido*, Nervous and Mental Disease Monograph Series, No 68 (New York Nervous and Mental Disease Publishing Company, 1942)

770. STERN, ADOLPH, "Day Fantasies in a Child," *New York Medical Journal*, 108 (1918), 628-632

This surprising paper, years ahead of time, employs methods essentially identical with those used in child analysis today and characterized by penetration of interpretation.

771. STONE, H M, and STONE, ABRAHAM, *A Marriage Manual* (New York: Simon and Schuster, Inc, 1939).

772 STRATTON, G M, "A Black Beast in Our Education?" *Scientific Monthly*, 29 (1929), 546-550

In this article, which the author intends to be largely destructive of the concept of repression, Stratton emphasizes the importance of suppression in education and makes a telling argument for stricter discipline in the upbringing of children

773. STRECKER, E. A, and APPEL, K. E, *Discovering Ourselves* (New York: The Macmillan Company, 1931; second edition, 1943)

A readable discussion of personality is here presented by two anti-psychoanalytical psychiatrists The last half of the book is devoted to a discussion of the mechanisms This book is unique in the degree to which it links up the mechanisms with many trends in everyday life. It is packed with helpful illustrations which tend to give the mechanisms more concrete significance It is interesting that two writers who, to some extent, are anti-Freudian should elaborate concepts which stem originally from Freud's work

774. SUTHERLAND, J D, "Three Cases of Anxiety and Failure in Examinations," *British Journal of Medical Psychology*, 19 (1941), 73-81

This interesting paper on examination failure shows how there may be a projection onto the instructor of the earlier conflict with the father which had been introjected The author provides illustrations of failures on examinations which served as self-punishments for the aggression which passing the examination successfully might signify.

775. SUTTIE, I D, *The Origins of Love and Hate* (London: Kegan Paul, Trench, Trubner and Company, 1935)

A somewhat confused book which draws heavily yet critically on the contributions of psychoanalysis

776. SVENDSEN, MARGARET, "Children's Imaginary Companions," *Archives of Neurology and Psychiatry*, 32 (1934), 985-999.

This is still another study of the imaginary companion

777 SYMONDS, P M, *Mental Hygiene of the School Child* (New York The Macmillan Company, 1935)

This volume contains a discussion of some of the basic concepts of good adjustment and provides illustrations of the mechanisms in children of school age

778. ——, "Criteria for the Selection of Pictures for the Investigation of Adolescent Phantasies," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 34 (1939), 271-274

779. ——, "How Teachers Solve Personal Problems," *Journal of Educational Research*, 38 (1945), 641-652.

780 ——, and SAMUEL, E A, "Projective Methods in the Study of Personality," *Review of Educational Research*, 11 (1941), 80-93

781. ——, KRUGMAN, MORRIS, and ALBERT, KATHRYN, "Projective Methods in the Study of Personality," *Review of Educational Research*, 14 (1944), 81-98.

782 TAUSK, VICTOR, "On the Origin of the 'Influencing Machine' in Schizophrenia," *Psychoanalytic Quarterly*, 2 (1933), 519-556

Tausk shows how power and terribleness which are attributed to parents in infancy are later projected onto the machine

783. TAYLOR, W S, "Rationalization and Its Social Significance," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 17 (1923), 410-418.

784 ——, "Alternative Response as a Form of 'Sublimation,'" *Psychological Review*, 39 (1932), 165-174.

This is an attempt to make the psychoanalytic concept of sublimation a simple variation of the more general psychological concept of the alternative response as a method of reducing residual tension

785 ——, "A Critique of Sublimation in Males A Study of Forty Superior Single Men," *Genetic Psychology Monographs*, 13 (1933), 1-115

In this monograph Taylor reviews previous discussions of the meaning of sublimation and presents elaborate data on the extent to which men find it possible by sublimated activities to master the need for direct sex expression. Taylor's conclusion is that sublimation is never completely effective in doing away with the need for direct sexual gratification. Taylor's review and discussion is broad and catholic but on the whole negative.

786. TERMAN, L. M, and MILES, C C, *Sex and Personality* (New York: McGraw-Hill Book Company, Inc., 1936)

787. ———, and OTHERS, *Psychological Factors in Marital Happiness* (New York: McGraw-Hill Book Company, Inc., 1938).

788. THOM, D. A., and OTHERS, "A Study of One Hundred and Twenty Well-Adjusted High-School Students," *Bulletin, Massachusetts Department of Mental Diseases*, 20 (1926), 3-106.

789. THOMAS, W. I., *The Unadjusted Girl* (New York: Little, Brown & Company, 1923).

In this book may be found a classic list of four drives found in the adolescent girl.

790. THOMSEN, ARNOLD, "Psychological Projection and the Election: A Simple Class Experiment," *Journal of Psychology*, 11 (1941), 115-117.

791. THOMPSON, CLARA, "Identification with the Enemy and Loss of the Sense of Self," *Psychoanalytic Quarterly*, 9 (1940), 37-50.

792. THORNDIKE, E. L., *Instinct*, Fifth Biological Lecture from the Marine Biological Laboratory of Woods Hole (Boston: Ginn and Company, 1899).

793. ———, *The Human Nature Club: An Introduction to the Study of Mental Life* (New York: Longmans, Green and Co., 1901).

794. ———, *Animal Intelligence: Experimental Studies* (New York, The Macmillan Company, 1911).

795. ———, *Educational Psychology*, Vol. 1, *The Original Nature of Man* (New York, Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1913).

Thorndike's discussion of instincts came at the height of the vogue for instincts in American psychology. Thorndike presents his point of view with great vigor and many of his observations are still as true today as when originally formulated. However, psychology today no longer sees these original tendencies in man as having the same innate quality as Thorndike gave them.

796. ———, *Human Learning* (New York: D. Appleton-Century Company, Inc., 1931).

797. ———, *The Fundamentals of Learning* (New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, 1932).

798. ———, *The Psychology of Wants, Interests, and Attitudes* (New York: D. Appleton-Century Company, Inc., 1935).

In two chapters of this book, Thorndike summarizes a large number of experimental studies which indicate that punishment does not directly affect the learning process but may influence the choice of activities to be practiced and learned. Thorndike also discusses the rationale of punishment and offers several constructive suggestions.

799. ———, *Human Nature and the Social Order* (New York: The Macmillan Company, 1940).

800. ———, "Is the Doctrine of Instincts Dead? A Symposium. III. Human Instincts and Doctrines about Them," *British Journal of Educational Psychology*, 12 (1942), 85-87.

801. ———, and WOODYARD, ELLA, "The Influence of the Relative Frequency of Successes and Frustrations upon Intellectual Achievement," *Journal of Educational Psychology*, 25 (1934), 241-250.

Even if interest flags as a result of frustration, there is no diminution of power to accomplish mental tasks.

802. ———, and OTHERS, *Prediction of Vocational Success* (New York: The Commonwealth Fund, 1934).

803. THORNER, M. W., and PEARSON, G. H. J., "Behavior Disorders of Intellectual Origin Occurring in Childhood," *American Journal of Diseases of Children*, 60 (1940), 1245-1251.

804. THORNTON, HENRY, and THORNTON, FREDA, *How to Achieve Sexual Happiness in Marriage* (New York: The Vanguard Press, 1939).

805. THOULESS, R H, *How to Think Straight* (New York Simon and Schuster, Inc, 1939)

This book is a particularly helpful discussion from the point of view of logic

806 TOLMAN, E C, "The Nature of Fundamental Drives," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 20 (1926), 349-358

807 ——, *Purposive Behavior in Animals and Men* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1932)

Tolman has been a clear thinker and has made a clear-cut classification of visceral and psychogenic drives In a later article he further elaborates his original point of view by schematizing the process by which an organism adapts to familiar surroundings, responding not only to inner drives but also to learned cues

808 ——, "Demands and Conflicts," *Psychological Review*, 44 (1936), 158-169

809 ——, "Motivation, Learning and Adjustment," *Proceedings of the American Philosophical Society*, 84 (1941), 543-563

810. ——, *Drives Toward War* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1942)

In this little book Tolman presents a compact statement of his theory of drives and an interesting, but not wholly convincing, classification of the various methods of adjustment to thwarted drives

811 ——, "A Drive-Conversion Diagram," *Psychological Review*, 50 (1943), 503-513

Tolman attempts to diagram the way in which drives are modified to meet the various exigencies of life

812 ——, "Identification and the Post-War World," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 38 (1943), 141-148

813. TOLSTOI, LEO, N, *War and Peace* (Paris, 1884; New York Modern Library, Inc., 1933)

814 TRAVIS, L E, and BARUCH, D M, *Personal Problems in Everyday Life* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1941)

This book is noteworthy because of its extremely clear and simple exposition of some of the more profound dynamic principles These authors deal in a realistic way with the meaning of self-aggression and self-punishment and make helpful suggestions regarding the importance of love in early development

815 TUCKER, R L, "Conflict Between Conscience and the State," *Religious Education*, 32 (1937), 180 183

This discusses the nature of conflicts between the conscience and the state with regard to military service.

816. VAN OPHUIJSEN, J H W, "The Theory of Regression in Clinical Psychiatry," *Psychiatric Quarterly*, 4 (1930), 620-630

This is a paper by a Dutch psychoanalyst now residing in New York City noteworthy for its statement of the fundamental principles of regression

817. VARENDONCK, JULIEN, *The Psychology of Daydreams* (New York The Macmillan Company, 1921)

This book is frequently referred to but is not very helpful in the understanding of the nature of day dreaming.

818 VAUGHAN, W F, "Psychology of Compensation," *Psychological Review*, 33 (1926), 4-67, 479

This article appears later as a chapter in Vaughan's book, *The Lure of Superiority*

819 ——, *The Lure of Superiority* (New York Henry Holt and Company, 1928)

This is a book dealing entirely with compensation It not only touches on the individual's striving for superiority but contains chapters which interpret social phenomena from the point of view of their meaning as compensatory devices

820 VERNON, P E, "Is the Doctrine of Instincts Dead? A Symposium. II Some Objections of the Theory of Human Instincts," *British Journal of Educational Psychology*, 12 (1942), 1 9.

821 VOSTROVSKY, CLARA, "A Study of Imaginary Companions," *Education*, 15 (1895), 393-398

This is an old article written before the days of experimental inquiry but noteworthy because it appears to be the first recognition of this day-dream in published literature.

822. WADA, TOMI, "An Experimental Study of Hunger in Relation to Activity," *Archives of Psychology*, No 57, 8 (1922)

823 WAELDER, ROBERT, *Psychological Aspects of War and Peace*, Geneva Studies, 10, No 2 (Geneva: Geneva Research Center, 1939)

A most stimulating and thought-provoking book by a psychoanalyst on the psychological factors in the time of war and the conditions for the establishment of peace.

824. WALLIN, J. E W, *Minor Mental Maladjustments in Normal People* (Durham, N C Duke University Press, 1939)

Wallin discusses with broad strokes some of the readily accepted criteria of good adjustment

825 WANNAMAKER, CLAUDIA, "The Meaning and Significance of Social Adjustment," *Journal of Health and Physical Education*, 10 (January, 1939), 12, 13, 57

826. WASHBURNE, J N, "The Impulses of Adolescents as Revealed by Written Wishes," *Journal of Juvenile Research*, 16 (1932), 193-212

This is an experimental study and analysis of the wishes of adolescents

827. ———, *Social Adjustment Inventory* (Yonkers-on-Hudson, N Y World Book Company, 1940)

828. WATERS, R. H, and LEEPER, ROBERT, "The Relation of Affective Tone to the Retention of Experiences of Daily Life," *Journal of Experimental Psychology*, 19 (1936), 203-215

This is another more recent study of the relation of the feeling tone to memory

829. WATSON, G. B, "Happiness Among Adult Students of Education," *Journal of Educational Psychology*, 21 (1930), 79-109

A classic study in which a number of adults rated themselves for general happiness and also filled out a questionnaire concerning items in their childhood and family background By relating these Watson was able to point out some factors which are most closely related to happiness.

830. ———, "A Comparsion of the Effects of Lax versus Strict Home Training," *Journal of Social Psychology*, 5 (1934), 102-105

This article shows that students who were severely disciplined as children develop animosity toward their parents and guilt toward themselves

831. ———, and SPENCE, R. B, *Educational Problems for Psychological Study* (New York The Macmillan Company, 1930)

These authors present a serviceable list of six drives in terms of situations to be avoided and ends to be sought

832. WATSON, J B, *Psychology from the Standpoint of a Behaviorist* (Philadelphia J B Lippincott Company, 1919)

833. ———, "The Myth of the Unconscious," *Harper's*, 155 (1927), 502 508

834 WATSON, M. E, *Children and Their Parents* (New York F S Crofts and Company, 1932)

Kenworthy's ego-libido method of diagnosis has its only complete discussion in print in this volume

835 WEISS, EDWARD, "Regression and Projection in the Superego," *International Journal of Psychoanalysis*, 13 (1932), 449-478

Regression takes place in response to internal frustration more frequently than to external frustration Projections frequently consist of previously introjected material This paper discusses in detail ways in which the superego is expressed

836. ———, and ENGLISH, O S, *Psychosomatic Medicine* (Philadelphia W B Saunders Company, 1943)

There is a good discussion of anxiety in this book, particularly with reference to its physiological bases, which serves as an introduction to the discussion of various somatic disorders which may represent bodily expressions of anxiety. In one section of this book these authors discuss the meaning of normality

837. WELLS, F L, "Value Psychology and the Affective Disorders with Special Reference to Regression," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 21 (1926), 135-148

838. ———, "Social Maladjustments Adaptive Regression," in Carl Murchison, editor, *Handbook of Social Psychology* (Worcester, Mass.. Clark University Press, 1935), Ch XVIII, 845-915

This chapter in the *Handbook of Social Psychology* is an extension of Wells' earlier article in the *Journal of Abnormal and Social Psychology* The chapter in the *Handbook*, noteworthy for its breadth of scholarship, discusses regression from a number of different points of view in psychology He points out how it may represent fundamentally a failure of energy to cope with the present situation There is an excellent bibliography in connection with this chapter Wells discusses the place of values in the concept of adjustment and the relation of science to the study of adjustment

839. WELLS, W. R, "The Sublimation of Non-Sexual Instincts," *Pedagogical Seminary*, 28 (1921), 73-77

840. WETZEL, A. E, "Regression in Manic-Depressive Reactions," *Psychiatric Quarterly*, 7 (1933), 386-400.

The author presents illustrations of regressive behavior from his clinical experience with manic-depressive psychoses

841 WHITE, J C, and SMITHWICK, R. H., *Autonomic Nervous System Anatomy, Physiology, and Surgical Applications* (New York The Macmillan Company, 1941).

This is one of the best systematic treatises on the autonomic nervous system.

842. WHITE, R W, "Interpretation of Imaginative Productions," in J. McV. Hunt, editor, *Personality and the Behavior Disorders* (New York. The Ronald Press Company, 1944), Vol 1, Ch. VI, 214-251.

This is a very helpful review and discussion of the major "projective methods" including the Rorschach and Thematic Apperception methods and play

843 WHITE, W A, *Mechanisms of Character Formation* (New York The Macmillan Company, 1916).

This early exposition of psychoanalytic theory, as so often happens in statements by pioneer thinkers, is noteworthy for its clarity

844. ———, *Principles of Mental Hygiene* (New York The Macmillan Company, 1917)

The author gives some illustrations of sublimation from the earlier point of view, particularly in the choice of vocations

845. WHITING, J W M, and MOWRER, O H, "Habit Progression and Regression—A Laboratory Study of Some Factors Revelant to Human Socialization," *Journal of Comparative Psychology*, 36 (1943), 229-253.

846. WILLIAMS, F E, "Putting Away Childish Things," *Survey Graphic* (April, 1928), 14, 15

847. WILLIAMS, H. D., "Conflicting Authorities in the Life of the Child," *Religious Education*, 27 (1932), 413-417.

848. WINNICOTT, D W, "The Observation of Infants in a Set Situation," *International Journal of Psychoanalysis*, 22 (1941), 229-249

Winnicott describes a simple and effective procedure in the examination of young children and indicates some of the early and primitive expressions of anxiety. He shows how infants sometimes exhibit guilt by hesitation

849. WITTELS, FRITZ, "Lilith Neurosis," *Psychoanalytic Review*, 19 (1932), 241-256

850 ———, "Mona Lisa and Feminine Beauty—A Study of Bisexuality," *International Journal of Psychoanalysis*, 15 (1934), 25-40.

851. ———, "Psychology and Treatment of Depersonalization," *Psychoanalytic Review*, 27 (1940), 57-64.

Wittels has added to the discussion of the dissociation of love and the concept of sacred and profane love Lilith is a legendary first wife of Adam representing the mother-figure

852. ———, "The Phantom of Omnipotence," *Psychoanalytic Review*, 28 (1941), 163-172

853 WOLF, ALEXANDER, "The Dynamics of the Selective Inhibition of Specific Functions in Infancy," *Psychosomatic Medicine*, 5 (1943), 27-38

854. WOLFE, W B, *How to Be Happy Though Human* (New York Farrar & Rinehart, Inc., 1931)

Wolfe, an interpreter of Adler's Individual Psychology, presents an extended discussion in popular style of compensation and also a treatment of love along the more traditional lines of the stresses and strains in the marriage relationship

855. WOLFF, WERNER, *The Expression of Personality Experimental Depth Psychology* (New York Harper & Brothers, 1943)

856 WOODWORTH, R S, "Some Criticisms of Freudian Psychology," *Journal of Abnormal Psychology*, 12 (1917), 174-194

An outspoken critic of psychoanalysis uses considerable space in this paper in attacking the concept of sublimation His arguments are not very profound, however, and consist largely in ridiculing persons for finding sex in so many commonplace activities In its day, Woodworth's criticisms were taken seriously and had widespread influence However, in clinical work with adults and children these same phenomena which demand explanation crop up again and again

857. ———, *Dynamic Psychology* (New York Columbia University Press, 1918)

858 ———, *Psychology* (New York Henry Holt and Company, 1921, 1929, 1936, fourth edition, 1940)

Woodworth's earlier book is a classic. It contains the first formulation of the principle that habits may become drives on their own account.

859. ———, *Adjustment and Mastery* (Baltimore The Williams and Wilkins Company, 1943)

In this choice essay Woodworth discusses the meaning of adjustment in terms of success and mastery

860. WRIGHT, H. F, *The Influence of Barriers Upon Strength of Motivation*, Contributions to Psychological Theory, 1, No 3 (Durham, N C Duke University Press, 1937)

This is an interesting and significant study based on the concepts of Kurt Lewin on the relation between the strength of barrier and the reaction to frustration This is one of the few significant studies on this topic, and the penetrating discussion throws considerable light on the factors conditioning response to frustration

861. ———, "The Effect of Barriers upon Strength of Motivation," in R G Barker, J S Kounin, and H F Wright, editors, *Child Behavior and Development* (New York McGraw-Hill Book Company, 1943), Ch XX, 379-396

862. WRIGHT, M E, "Constructiveness of Play as Affected by Group Organization and Frustration," *Character and Personality*, 11 (1942), 40-49

Children are less disorganized by frustration when they are with congenial companions than when they are alone.

863. ———, "The Influence of Frustration Upon the Social Relations of Young Children," *Character and Personality*, 12 (1943), 111-122.

This important study reveals that frustration has certain social as well as individual consequences When a group of children experience a common frustration, they become more friendly toward one another and cooperate in attempting to overcome the barrier, and in like manner their hostilities and destructiveness to other persons are enhanced

864. YASKIN, J C., "The Psychobiology of Anxiety," *Psychoanalytic Review Supplement*, 23-4 (1937), 1-93

A very thorough and comprehensive review of psychological and medical knowledge concerning anxiety Much of this material is from the medical point of view, which is not so pertinent to the

present discussion This paper also illustrates various anxiety states by cases

865. YOUNG, KIMBALL, "Parent-Child Relationship Projection of Ambition," *The Family*, 8 (1927), 67-73

Here is a good discussion with case illustrations of the projection of ambitions by parents on children

866. ——, "Freedom, Responsibility, and Self-Control," *Mental Hygiene*, 21 (1937), 177-186.

Young tends to imbue the concept of adjustment with an idealistic note

867. ——, "Adjustment," *Encyclopedia of the Social Sciences* (New York The Macmillan Company, 1930), Vol 1, 438-439.

868 YOUNG, P C, "The Veridicality of Hypnotically Induced Regression," *Psychological Bulletin*, 34 (1937), 784.

869. ——, "Hypnotic Regression—Fact or Artifact," *Journal of Abnormal and Social Psychology*, 35 (1940), 273-278

870. YOUNG, P T, *Motivation of Behavior* (New York John Wiley & Sons, Inc, 1936)

This book is perhaps the best single reference on motivation and contains a comprehensive statement of current theories of drive

871. ——, "The Experimental Analysis of Appetite," *Psychological Bulletin*, 38 (1941), 129-164

In this review of literature on appetite Young presents evidence in favor of partial hungers and discusses recent experimental work which indicates the pleasure basis of appetite

872 ——, *Emotion in Man and Animal* (New York John Wiley & Sons, Inc, 1943)

Chapter III in this book deals especially with drive

873. ZACHRY, C B, *Emotion and Conduct in Adolescence* (New York D Appleton-Century Company, Inc, 1940)

This book discusses the psychology of adolescence from the dynamic point of view The motives underlying adolescent destructive and aggressive trends are clearly illustrated, and there is a discussion of some of the more common forms of day dreaming in adolescents with their dynamic significance

874. ZANDER, A F, "A Study of Experimental Frustration," *Psychological Monograph*, 56, No 3, Whole No. 256 (1944)

This is a significant study of responses to frustration in relation to the quality of adjustment of the person who is frustrated Zander finds that well-adjusted children respond to frustration with greater tension and aggression, whereas maladjusted children meet frustrations by turning away from them, inhibition and regression

875 ZELIGS, ROSE, "Children's Worries," *Sociology and Social Research*, 24 (1939), 22-32

One of three studies presenting data concerning children's worries

876. ZILBOORG, GREGORY, "Anxiety Without Affect," *Psychoanalytic Quarterly*, 2 (1932), 48 67

In this paper the author discusses the interesting phenomenon of anxiety states without feeling The purpose of many of the defenses against anxiety is to deaden or narcotize the feeling of dread, but the anxiety state exhibits itself through symptomatic behavior

877. ——, "Sidelights on Parent-Child Antagonisms," *American Journal of Orthopsychiatry*, 2 (1932), 35-43

In this paper certain mechanisms in parent hostility toward children are discussed

878. ——, "Differential Diagnostic Types of Suicide," *Archives of Neurology and Psychiatry*, 35 (1936), 270-291

This author, who has made intensive study of suicide, points out some of the motivational factors when aggression turns inward He shows that in destroying oneself one also wishes to hurt other persons who are closely related

879. ——, "Considerations on Suicide With Particular Reference to That of

the Young," *American Journal of Orthopsychiatry*, 7 (1937), 15-31

Zilboorg in this paper discusses the operation of identification in depressive states

880 ———, "Loneliness Its Relation to Narcissism," *Atlantic Monthly*, 161 (1938), 45-59

In this popular article Zilboorg discusses the narcissistic tendencies toward isolation and self-sufficiency.

881. ———, "The Treatment of Aggression Round Table. II. Dynamics," *American Journal of Orthopsychiatry*, 13 (1943), 388-391

882. ZIM, HERBERT, *Science Interests and Activities of Adolescents* (New York Ethical Culture Schools, published privately, 1940)

883 ZINN, E, *Anxiety—Clinically Viewed*, Paper presented before the Monday Night Group, 1939-1940 (New Haven Institute of Human Relations, Yale University, mimeographed, 1940).

Index